साहित्य भवन

15.2

विश्व का इतिहास

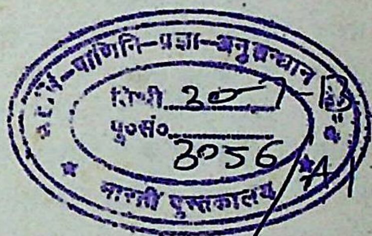
सी. के. सक्सेना



ब. जागृति आर्या

विश्व का इतिहास
[HISTORY OF WORLD]

(1789 A. D.—1919 A. D.)



लेखक

चन्द्र कुमार सक्सेना

एम. ए. (इतिहास एवं राजनीतिशास्त्र)

2002-03



साहित्य भवन

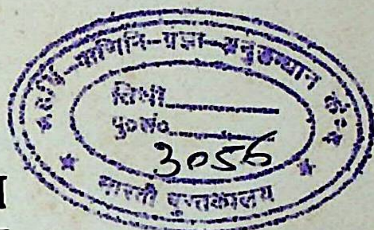
पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि.

संस्करण : 2002-03

ISBN : 81-7618-248-6

कीमत : एक सौ पचास रुपया मात्र

प्रकाशक एवं मुद्रक : साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा०) लि०
प्रशा० कार्या० : 34, लाजपत कुंज, आगरा-282 002
दूरभाष : 523369, 353154, 354189, 354260
फैक्स : (0562) 358183
e-mail : sahityabhawan@yahoo.com



भूमिका

प्रवुद्ध पाठकों ने मेरी प्रकाशित कृति का यथेष्ट स्वागत करके, मुझको 'विश्व का इतिहास' लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उन्नत एवं अग्रणी विशाल यूरोप महाद्वीप अनेक महाशक्तियों के साथ अनेक छोटे-छोटे राज्यों एवं विभिन्न जातियां एवं उपजातियों का महाद्वीप है। इन समस्त राज्यों की राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक गतिविधियों को सीमित पृष्ठों में अभिव्यक्त करना अत्यकि जटिल कार्य है। इस सन्दर्भ में उपलब्ध किसी भी कृति को पूर्ण कहना सम्भव नहीं है। मैंने परीक्षोपयोगी कृति लिखने का प्रयास किया है और विश्वास करता हूँ कि विद्यार्थी लाभांन्वित होंगे।

प्रस्तुत कृति की गुणवत्ता एवं उपयोगिता के कुशल एवं निष्पक्ष निर्णायक महृदय प्रवुद्ध पाठक स्वयं हैं।

इस कृति के लेखन एवं प्रकाशन में श्री राजीव वंसल एवं श्री संजय वंसल ने अथक परिश्रम किया। इनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

मेरी पत्नी राधा सक्सेना, पुत्र विनीत सक्सेना, विप्लव सक्सेना, पुत्रवधू दीपिका सक्सेना, पुत्री वर्तिका, पुत्र तुल्य प्रणव वर्मा के सद्-परामर्श, सहयोग, प्रोत्साहन एवं प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष योगदान को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। मैं विश्वास करता हूँ कि प्रवुद्ध पाठक अपने उपयोगी परामर्श से पूर्ववत् प्रोत्साहित करेंगे।

—लेखक



विषय-सूची


तिथी
पु०सं०
भारती पुस्तकालय

1

फ्रान्स की राज्य क्रान्ति से पूर्व यूरोप की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थिति

SOCIAL ECONOMIC, RELIGIOUS & POLITICAL CONDITION OF EUROPE ON THE EVE OF FRENCH REVOLUTION]

फ्रान्स की राज्य क्रान्ति का अध्ययन करने से पूर्व यूरोपीय महाद्वीप में स्थित विभिन्न ों की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थिति का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है। त यूरोप के विषय में किसी प्रकार का सामान्यीकरण सहज नहीं है। यूरोपीय महाद्वीप ामान्य रूप से दो अवधारणात्मक क्षेत्रों—पूर्वी यूरोप एवं पश्चिमी यूरोप में विभाजित जाता है। पूर्वी यूरोप के अन्तर्गत यूरोप में स्थित रूसी साम्राज्य का भाग, हैप्सबर्ग ज्य, तुर्की साम्राज्य का यूरोपीय भाग और पूर्वी प्रशा आते हैं। ब्रिटेन, फ्रान्स, हालैण्ड, लैण्ड एवं मध्य यूरोप में स्थित राज्यों को पश्चिमी यूरोप के अन्तर्गत रखा जाता है। रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में स्कैण्डिनेविया रूस से सम्बद्ध था। लेकिन पश्चिमी का प्रभाव दृष्टिगत होने लगा था। फ्रान्स, स्पेन, आस्ट्रियाई साम्राज्य की राजनीतिक ाकांक्षाओं के परिणामस्वरूप इटली अनेक भागों में विभाजित हो गया था। उत्तरी और इटली एवं पश्चिमी यूरोप में बौद्धिक प्रभाव की दृष्टि से अनेक तत्व समान थे। रियाई प्रायद्वीप स्पेन और पुर्तगाल यद्यपि तकनीकी दृष्टि से पश्चिम में स्थित हैं लेकिन क, राजनीतिक एवं बौद्धिक दृष्टि से पूर्वी यूरोप के अनुरूप हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए अठारहवीं शताब्दी को चार भागों में विभाजित किया है: (1) ''' 1715-1740, इसको शान्तिकाल माना जाता है। (2) सन् 1741-1761, अवधि में यूरोपीय देश अपने उपनिवेश स्थापित करने में व्यस्त थे। विभिन्न देशों में त्र युद्ध हुए जिसकी प्रतिक्रिया अमेरिकी महाद्वीप और दक्षिण एशिया में दृष्टिगत हो रही (3) सन् 1762-1788, यद्यपि अपेक्षाकृत शान्ति का काल था, लेकिन स्थानीय तनाव है। रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के मध्य पोलैण्ड का विभाजन हो गया। इसी अवधि में

अमेरिका का स्वतन्त्रता संघर्ष हुआ। (4) सन् 1789 में विश्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण फ्रान्स की राज्य क्रान्ति हुई जिसका यूरोपीय युद्ध के रूप में विकास हो गया।

पूर्व शताब्दी की स्थिरता की अपेक्षा इस शताब्दी में विभिन्न देशों में परस्पर अनेक युद्ध हुए, जिनके परिणामस्वरूप युद्धग्रस्त राज्यों के समक्ष विकट आर्थिक और वित्तीय संकट आया और अनेक देशों की सीमाओं में परिवर्तन हो गये। इन समस्त स्थितियों के उपरान्त अनेक यूरोपीय देशों के विद्वानों एवं दार्शनिकों ने ऐसी विचार-पद्धति को प्रेरित किया जिसको समकालीन विद्वानों ने 'प्रबोधन' (Enlightenment) की संज्ञा दी है। इस विचारधारा का तत्कालीन शासन प्रणालियों पर भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है।

आर्थिक स्थिति

(ECONOMIC CONDITION)

इस शताब्दी के वैचारिक वातावरण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्कालीन यूरोप की आर्थिक स्थिति का चित्रण करना आवश्यक है।

जनसंख्या (Population)—निःसन्देह इस शताब्दी में, यद्यपि जनगणना का कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ था, उपलब्ध अपुष्ट अनुमानों एवं आंकड़ों के आधार पर ज्ञात होता है कि जनसंख्या में मन्द गति से वृद्धि आरम्भ हो गयी थी। पूर्ववर्ती शताब्दी की अपेक्षा इस शताब्दी में प्लेग जैसी विनाशकारी महामारियों का प्रकोप कम हुआ और फसलों को क्षति भी अपेक्षाकृत कम हुई। मृत्यु दर कुछ कम हुई।

सन् 1740 तक जनसंख्या वृद्धि बहुत थी परन्तु उसके उपरान्त जनसंख्या वृद्धि दुगुनी हो गयी थी। ब्रिटेन, आस्ट्रिया, स्कैण्डिनेविया और नीदरलैण्ड में सर्वाधिक थी। यद्यपि दुर्भिक्षों में पर्याप्त कमी आयी थी परन्तु अधिकांक्ष क्षेत्रों में कुपोषण के कारण स्थिति भयंकर हो गयी थी। जेनेवा में प्रशासकीय वर्ग की औसत आयु प्रारम्भ में 41 वर्ष थी, जो बढ़कर 47 वर्ष हो गयी थी। फ्रान्स में औसत आयु 29 वर्ष थी। जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्न के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि हो रही थी और नौकरियों के लिए पूर्वापेक्षा अधिक छीना-झपटी के कारण वेतन में आनुपातिक वृद्धि नहीं हुई। खाद्यान्न के मूल्यों में वृद्धि एवं अपेक्षाकृत अधिक निर्धन कृषकों एवं वेतनभोगी शिल्पियों की दयनीय स्थिति इस शताब्दी में अशान्ति का मुख्य कारण थी। शासक वर्ग अत्यधिक चिन्तित था।

कृषि और कृषक (Agriculture and Peasants)—यूरोप की 85% जनसंख्या जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर थी। शेष 15% लोग भू-राजस्व से अपनी जीविका चलाते थे। समस्त यूरोप और इंग्लैण्ड में ग्रामीण जीवन न्यूंनाधिक 16वीं शताब्दी के अनुरूप ही था। खेती परम्परागत ढंग से ही की जाती थी। यूरोप के विभिन्न भागों के भू-स्वामियों में सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से कुछ समानता थी लेकिन कृषक वर्ग में एकरूपता का अभाव था। पूर्वी यूरोप में अधिकतर कृषि श्रमिक बंधुआ था लेकिन पश्चिमी यूरोप में वे स्वतन्त्र थे। खाद्यान्न के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि के कारण दो वर्गों, भू-स्वामी एवं महाजन जो प्राप्त करने वाले थे और छोटे कृषक वर्ग जो खाने वालों में थे, का अविर्भाव हुआ। पूर्वी यूरोप जनसंख्या के अनुपात में अधिक था और खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर था और अपने उत्पादन का कुछ भाग पश्चिमी यूरोप को निर्यात भी कर देता था।

भू-स्वामियों की समस्त कृषि योग्य भूमि तीन विशाल कृषि क्षेत्रों में विभाजित थी। एक समय में केवल दो क्षेत्रों में कृषि होती थी। एक क्षेत्र को बारी-बारी से अपनी उर्वरक शक्ति और सामर्थ्य अर्जित करने के लिए खाली छोड़ दिया जाता था। खेतों पर सहकारिता पद्धति से काम किया जाता था। उत्पादन इतना कम होता था कि कृषक का जीवनयापन सम्भव नहीं था। ग्रीष्म एवं शीत ऋतु में पशुओं के लिए पर्याप्त चारा नहीं होता था। चारे के अभाव में बहुत बड़ी संख्या में पशुओं की हत्या कर दी जाती थी।

कृषि सुधार के लिए आन्दोलन आरम्भ हो चुका था। कुछ डच और अंग्रेज कृषक कृषि के नये वैज्ञानिक उपायों का प्रयोग कर रहे थे। बारी-बारी से फसलों का भी प्रयोग किया जा रहा था एवं पशुओं के लिए पर्याप्त चारा उपलब्ध कराने के लिए चारे का भी उत्पादन किया जा रहा था। कृषि की वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग केवल धनी और सम्पन्न कृषक ही कर रहे थे। अधिकांश कृषक परम्परागत पद्धति से कृषि कर रहे थे।

वाणिज्य एवं उद्योग (Commerce and Industry)—उपलब्ध उद्योगों की कार्य पद्धति और उद्योगपतियों का दृष्टिकोण परम्परागत था। उद्योग श्रेणियों (Guilds) में संगठित थे। उच्च वर्गों के धनी एवं सम्पन्न व्यक्तियों की निरन्तर बढ़ती सम्पति के कारण उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। अत्यधिक दीन-हीन जनसमुदाय अपनी अपर्याप्त कृषि आय के कारण उद्योगों में नियोजन द्वारा पूर्ति के लिए उत्सुक था। इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, दक्षिण पश्चिम फ्रान्स और स्विट्जरलैण्ड में उद्योगों पर श्रेणी (गिल्ड) का किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं था। इन देशों में सामूहिक और यान्त्रिक ढाँचे पर उद्योगों का विकास हुआ। इन देशों में स्थानीय बाजारों एवं पूर्वी यूरोप के लिए ऊनी कपड़े का उत्पादन होता था। स्कैण्डिनेविया, प्रशा, पुर्तगाल और वेनिस के बुनकरों ने ऊनी कपड़े की तकनीक भली-भाँति सीख ली थी। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन, प्रशा, स्विट्जरलैण्ड, दक्षिणी इटली और बेल्जियम में, भारतीय सूती कपड़ा उद्योग के स्थान पर यूरोपीय सूती कपड़ा उद्योग प्रतिस्थापित करने के उद्देश्य से विकसित किया जा रहा था, परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्धा बहुत बढ़ गयी थी और सन् 1760 के बाद ऊनी कपड़ों के उत्पादन में पर्याप्त कमी आ गयी थी। यथार्थ में सूती कपड़ा उद्योग ग्रामीण कुटीर उद्योग के अन्तर्गत आता था। यद्यपि ग्रामों में ब्लीचिंग, छपाई और विपणन की सुविधा नहीं थी। सूती कपड़ा उद्योग के ग्रामों में विकास के कारण ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ और ग्रामीणों का नगर की ओर पलायन कम हो गया। निरन्तर परस्पर युद्धों के कारण इस्पात, युद्ध सामग्री, जलपोत निर्माण, चर्म उद्योग आदि का विकास हुआ लेकिन समस्त यूरोप में विभिन्न उद्योगों पर शासकों अथवा कुलीन वर्ग का ही पूर्ण नियन्त्रण था। ग्रामीण उद्योग के अतिरिक्त अन्य उद्योगों के कारण समस्त नगर औद्योगिक नगरों में परिवर्तित हो गये थे। सन् 1770 के बाद उद्योगों के विकास के कारण केवल ब्रिटेन में बर्मिंघम, मैनचेस्टर लीडर, नाटिंघम आदि औद्योगिक नगर बन गये। उद्योगों और वाणिज्य के द्रुतगति से विकास के परिणामस्वरूप औद्योगिक सम्पत्ति में वृद्धि हुई। सन् 1800 में लन्दन यूरोप का सबसे बड़ा नगर था। इसकी जनसंख्या 10 लाख से अधिक थी। इसके अतिरिक्त पेरिस, हैम्बर्ग, ब्रीमैन, रोम, वियाना, फ्रैंकफर्ट और मास्को यूरोप के बड़े नगरों में थे। इन नगरों की जनसंख्या में भी बहुत अधिक वृद्धि हुई।

इन नगरों के विकास के तीन प्रमुख कारण थे। सर्वप्रथम, सरकारी एवं प्रशासनिक गतिविधियों में भी विस्तार हो रहा था। अस्तु, सरकारी कर्मचारियों, महाजनों, वकीलों,

दरबारियों और राजनीतिज्ञों की संख्या में वृद्धि हुई। दूसरे, वाणिज्यिक गतिविधियों के विस्तार के कारण बन्दरगाहों का विकास हुआ और नये बन्दरगाहों का निर्माण किया गया। तीसरे औद्योगिक विकास एवं धनाढ्य व्यक्तियों की निरन्तर बढ़ती माँगों के कारण घरेलू नौकरों की संख्या में वृद्धि हुई। साथ ही वस्त्र और गृहसज्जा के वैभवशाली व्यवसायों के कारीगरों की संख्या बहुत बढ़ गयी।

प्रायः अत्यधिक धनी, सम्पन्न, विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों का वर्ग एवं उनकी सेवा में नियोजित अत्यधिक निर्धन व्यक्तियों का वर्ग था। दोनों वर्गों की जीवन शैली, सुख सुविधाओं और स्वास्थ्य की दृष्टि से आकाश-पाताल का अन्तर था।

उद्योगों का तीव्र गति से विकास हो रहा था। सूती कपड़ा मिलें स्थापित की जा रही थीं। दीवार घड़ी, हैट, जूतों आदि के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही थी, लेकिन साथ ही संकीर्ण विचारों और प्रतिस्पर्धाओं के कारण उसी देश में व्यापारिक संस्थानों में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष का वातावरण था, फिर भी निर्यात में वृद्धि हो रही थी। यथार्थ में एक ही व्यवसाय के एक सदस्य द्वारा तकनीकी सुधार का अन्य विरोध करता था। उद्योग और यान्त्रिकी पद्धति के विकास के कारण यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य प्रतिद्वन्द्विता भी प्रारम्भ हो गयी थी। अंग्रेज व्यापारियों एवं उत्पादकों ने अपने निम्न कोटि के उत्पादन द्वारा बाजारों को धोखा दिया। फ्रान्सीसी अपनी उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान देते थे। फ्रान्सीसी मन्त्री कोलबर्ट अपने देश को विश्व के सर्वाधिक महान उत्पादक देशों में देखने के लिए उत्सुक था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप के समस्त राष्ट्र उत्कृष्ट कोटि के उत्पादन के समर्थक हो गये थे। यूरोपीय देशों की सरकारों ने उत्पादक उद्योगों के द्रुतगति से विकास की आवश्यकता को अनुभव कर लिया था। उद्योगों के विकास के लिए करों में छूट और उदारतापूर्वक ऋणों की स्वीकृति आदि प्रोत्साहन दिये गये।

विदेशी व्यापार (Foreign Trade)—व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयाँ थीं। सड़कों की स्थिति दयनीय थी और सीमाशुल्क चौकियों की संख्या बहुत अधिक थी। राज्य के प्रत्येक प्रान्त में अपनी सीमा शुल्क चौकी थी, जो अपनी चौकी से निकलने वाली वस्तुओं पर सीमा शुल्क लगाते थे। इसके अतिरिक्त यूरोप के प्रत्येक देश ने विदेशी प्रतिस्पर्धाओं को समाप्त करने के लिए प्रतिबन्धित सीमा शुल्क की ऊँची दीवारें खड़ी कर दी थीं। इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी सदृश्य यूरोपीय देशों की सरकार से स्वीकृत संयुक्त कम्पनियों का भारत तथा पूर्वी द्वीप समूहों के साथ लाभदायक व्यापारिक सम्बन्ध थे। फ्रान्सीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी और डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ब्रिटिश कम्पनी के विरुद्ध कठोर संघर्ष किया। कालान्तर में इन कम्पनियों के मध्य व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विताओं ने राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का रूप ग्रहण कर लिया। प्राचीन बर्तनों, यूरोपीय उत्पादन एवं दासों को अमेरिका निर्यात किया जाता था और बदले में सोना, चाँदी, तम्बाकू, चावल, शक्कर, कॉफी इत्यादि प्राप्त करते थे।

वाणिज्यिक विकास ने पश्चिमी यूरोप के समुद्र तटों और पूर्वी यूरोप के आन्तरिक भू-भागों के मध्य व्यापारिक लाभ के अन्तर को बहुत बढ़ा दिया था। अधिकांश यूरोपीय देशों का व्यापार यूरोप महाद्वीप तक सीमित रहा लेकिन फ्रान्स, इंग्लैण्ड, डच, पुर्तगाल इसके अपवाद थे। यूरोप में चीनी, कपास, मसाले, तम्बाकू, रंग आदि उपलब्ध नहीं थे। इन वस्तुओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से सोलहवीं शताब्दी के उपरान्त अपने उपनिवेश स्थापित करने की

इच्छा प्रबल हो रही थी। समस्त स्थापित उपनिवेशों का स्वरूप एकसमान नहीं था। अफ्रीका, मध्य तथा दक्षिण अमेरिका शोषण पर आधारित उपनिवेशों के अन्तर्गत आते हैं। यूरोपीय देशों ने इन उपनिवेशों में कारखाने और कार्यालय स्थापित नहीं किये लेकिन अल्पकाल में अत्यधिक सम्पत्ति अर्जित कर ली। इसके ठीक विपरीत यूरोपवासियों ने भारत, श्रीलंका, हिन्देशिया, इण्डो-चीन आदि देशों में कारखाने और कार्यालय स्थापित किये। संयुक्त स्टॉक कम्पनियों ने व्यापारिक गतिविधियों के सुचारु संचालन के लिए औपनिवेशिक बस्तियों का निर्माण किया और धार्मिक उत्पीड़न अथवा निर्धनता के कारण देश छोड़ने के लिए यूरोपवासियों ने अपने व्यक्तिगत निवास-स्थान भी बनाये। जो व्यक्ति अपने देश में प्रतिस्पर्धा में पिछड़ गये थे अथवा किसी अपराध के लिए कानून के शिकंजे से बच निकले थे, विदेशी व्यापार में अधिक सक्रिय थे। इनके अपार लाभ को देखकर इन देशों की सरकारों ने समर्थन करना आरम्भ कर दिया। व्यापार से अर्जित लाभ का अधिकांश भाग अभिजात वर्ग और मध्य वर्ग के पास जाता था। सरकारों को लाभांश का नाम मात्र ही मिलता था। ब्रिटेन और हालैण्ड में व्यापारियों को सरकार में प्रतिनिधित्व मिला हुआ था, इस कारण उन्नतिशील विदेश व्यापार से इन देशों की सरकारें भी लाभान्वित हो रही थीं। सुदूर देशों के साथ स्थापित व्यापारिक सम्बन्धों ने बुद्धिजीवियों एवं शिक्षित वर्ग में इन देशों की सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उत्पन्न की।

सामाजिक स्थिति

(SOCIAL CONDITION)

अठारहवीं शताब्दी के यूरोप की सामाजिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्कालीन "एस्टेट" अर्थात् जागीर प्रथा जो समाज की मध्ययुगीन विचारधारा का ही अंग थी जिसके अनुसार कर्म के आधार पर समाज को योद्धा, पुरोहित और शेष जनता में वर्गीकृत किया जाता था, का अध्ययन आवश्यक है। सामान्य धारणा थी कि जनता योद्धा और पुरोहितों पर निर्भर थी। इन दो वर्गों के पास भू-सम्पदा के रूप में अपार सम्पदा थी और भूमि को सुरक्षित रखने के लिए सदैव चिन्तित रहते थे।

कुलीन वर्ग (Aristocratic Class)—यूरोप के प्रत्येक देश की कुल जनसंख्या का 2% अथवा 3% जनसमुदाय ही कुलीन वर्ग के अन्तर्गत आता था। ब्रिटेन और नीदरलैण्ड में कुलीन वर्ग का प्रतिशत बहुत कम था। स्विट्जरलैण्ड में कुलीन वर्ग नहीं था। जबकि स्पेन में कुल जनसंख्या का 15% कुलीन वर्ग था। कुलीनता की पहली श्रेणी वंशानुगत होती थी। दूसरी श्रेणी में, राजा की कृपा से प्राप्त कुलीनता होती थी। तीसरी श्रेणी में फ्रान्स और स्पेन जैसे देशों में उच्च सरकारी पदों को खरीद लेने से कुलीनता प्राप्त हो जाती थी। कुलीन वर्ग के व्यक्ति ही कुलीन वर्ग से सम्बन्धित व्यक्तियों के विवादों का निर्णय कर सकते थे। इस प्रकार वे न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर थे। इसके अतिरिक्त पूर्वी यूरोप में कुलीन वर्ग के व्यक्तियों को ही कृषिदास रखने का अधिकार था। यह आवश्यक नहीं था कि कुलीन वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति धनवान, उपाधि प्राप्त अथवा भू-स्वामी अथवा सेना में किसी उच्च पद पर कार्यरत हो। समस्त कुलीन वर्ग का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यूरोप की समस्त भूमि के 15% से 40% तक भूमि पर कुलीन वर्ग का स्वामित्व था। साथ ही लकड़ी, धातु खदानों और कोयला खदानों पर कुलीन वर्ग का पूर्ण स्वामित्व था। यद्यपि परम्परानुसार

फ्रान्स और स्पेन में कुलीन वर्ग के व्यक्ति व्यापार में भाग लेने के लिए अधिकृत नहीं थे, लेकिन वे व्यक्तिगत रूप से व्यापार करते थे। भूमि पर निरन्तर बढ़ते दबाव के कारण रूस और स्पेन जैसे पिछड़े क्षेत्रों में कुलीन वर्ग को अपनी भूमि पर पूर्वापेक्षा अधिक नियन्त्रण रखना आवश्यक हो गया। अतः वे अधिक कठोरता के साथ सामन्तवादी भू-राजस्व, जिस पर परम्परागत अधिकार था, वसूलने लगें। कुलीन वर्ग भू-राजस्व, कृषि योग्य बनायी गयी भूमि पर निर्धारित भू-राजस्व, पंचायती भट्टीं, कोल्हू एवं बूचड़खाने पर अधिकार करते थे। इस प्रकार राजस्व वसूली पर सामान्य जनता, सुधारकों, स्वयं कुलीन वर्ग के व्यक्तियों एवं सरकार ने विरोध करना आरम्भ कर दिया। राज्यों ने अनुभव किया कि राज्य को राजस्व से आय बहुत कम हो गयी। इसके अतिरिक्त शासकों को विश्वास नहीं रहा कि वे अपनी- अपनी सामन्ती द्वारा राज्य की रक्षा करेंगे। शासकों ने कुलीन वर्ग के राज्य के प्रशासकीय पदों पर वंशानुगत नियुक्ति के अधिकार को समाप्त कर दिया।

यूरोप के प्रत्येक देश में सामान्यतः समाज विशेषाधिकार प्राप्त और गैर-विशेपाधिकार प्राप्त वर्गों में विभाजित था। विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के अन्तर्गत पादरी और कुलीन वर्ग के व्यक्ति आते थे। समाज में सर्वोच्च स्थान इन दो वर्गों के व्यक्तियों के लिए सुरक्षित थे। इनकी संख्या बहुत कम थी। केवल फ्रान्स में 2,50,00,000 की कुल जनसंख्या में 1,30,000 पादरी और 1,50,000 कुलीन वर्ग के थे। इस प्रकार लगभग 1% विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के थे। यूरोप के समस्त देशों में विशेषाधिकार प्राप्त और गैर-विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों का अनुपात भिन्न था।

यूरोप के समस्त देशों में विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति अनेक विशेषाधिकारों का उपभोग कर रहे थे। इस समुदाय का व्यक्ति वंशानुगत श्रेष्ठ माना जाता था और अपने से निम्न स्तर की कन्या से विवाह नहीं करता था। उसको सम्मानजनक उपाधियों से सम्बोधित किया जाता था और उसको जन्म के आधार पर दरबार के कुलीन सभासदों में सम्मिलित कर लिया जाता था। वे अत्यधिक भव्य एवं आकर्षक वस्त्र पहनते थे और शौर्य एवं साहस के प्रतीक स्वरूप तमगे उनके सीने पर लगे रहते थे।

ये कुलीन एवं पादरी वैभव एवं विलासितापूर्ण, साथ ही अनैतिक जीवन व्यतीत करते थे। कुलीनों के लिए अनेक पत्नियाँ रखना प्रतिष्ठा का द्वैतक था। चर्च के राजकुमारों के पास अपार सम्पत्ति, सुख-सुविधा और विलासिता के समस्त साधन उपलब्ध थे। स्ट्रासबर्ग के पादरी की वार्षिक आय 5,00,000 फ्रैंक थी। चर्च के ये राजकुमार अविवाहित थे, वे अपनी सम्पत्ति का सर्वाधिक उपभोग अपने जीवन काल में ही कर लेते थे। एक अनुमान के अनुसार समस्त यूरोप की 1/3 भूमि ईसाई मतावलम्बी चर्चों के हाथों में थी। इसी प्रकार प्रत्येक कुलीन के पास हजारों एकड़ भूमि थी। उन्होंने चर्च और सेना में समस्त उच्च पदों पर एकाधिकार कर लिया था। वे राजा द्वारा स्वामित्वों और पेंशन की स्वीकृति से अधिक धनी हो गये थे।

विशेषाधिकार प्राप्त दोनों वर्ग राज्य के करों के भुगतान में अपने अधिकार के रूप में छूट का दावा करते थे। मध्यकालीन युग में कुलीन विचारशील दस्यु समूहों से कृषकों की रक्षा करते थे और चर्च समाज की शैक्षणिक एवं सामाजिक सेवा करते थे। अस्तु ये दोनों वर्ग अपनी सेवाओं के बदले में करों में भुगतान से छूट का दावा करते थे। लेकिन अठारहवीं शताब्दी में अधिकांश करों को राजतन्त्र ने अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया था और वंशानुगत कुलीन आलंकारिक और भारस्वरूप बन गये थे। इस प्रकार उच्च दोनों वर्ग कराधान से पूर्णरूप से मुक्त रहे और राज्य के वित्तीय भार को कम करने में किसी प्रकार का कोई योगदान

नहीं दिया। यथार्थ में दोनों उच्च वर्ग राज्य को करों का भुगतान करना अपना अपमान समझते थे।

अधिकांश कुलीन अनुपस्थित भू-स्वामी थे। वे जीवन के अधिकांश समय नगरों में रहते थे और दैनिक जीवन का अधिकांश समय राजदरबार में व्यतीत होता था। उनकी भूमि का प्रबन्ध उनके आधिकारिक प्रतिनिधि करते थे। इन प्रतिनिधियों का मुख्य उद्देश्य कृषकों का अधिकाधिक शोषण करना था। इनमें से कुछ कुलीन निर्धन थे और अन्य कुलीनों के सदृश्य विलासितापूर्ण और अपव्ययी जीवन व्यतीत करने में समर्थ नहीं थे। अधिकांश समय वे ग्रामों में व्यतीत करते थे लेकिन उनमें धनी और सम्पन्न कुलीनवर्गीय व्यक्तियों के समान कुलीनता का गर्व था। इस कारण ग्रामों में ग्रामीणों के साथ सामाजिक आदान-प्रदान और खान-पान नहीं था। इसी प्रकार धनी और निर्धन पादरियों के मध्य वहुत अन्तर था। जबकि कार्डिनल डी रोहन की वार्षिक आय 25,00,000 लीरा थी, ग्रामीण क्षेत्रों के पादरियों के लिए जीवनयापन भी कठोर था।

इन दो वर्गों के अतिरिक्त शेष जनसमुदाय गैर-विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग में आता था और फ्रान्स का यह समुदाय तृतीय एस्टेट के रूप में विदित था। इस वर्ग के अन्तर्गत व्यापारी, दुकानदार, बुद्धिजीवी, श्रमिक और कृपक आते थे। इस समुदाय को कोई राजनीतिक अधिकार और विशेषाधिकार नहीं था। अठारहवीं शताब्दी में व्यापारियों, बैंकरों, थोक व्यापारियों और धनी दुकानदारों के एक अत्यधिक सम्पन्न वर्ग का आविर्भाव हुआ। उत्पादकों, व्यापारियों और धनी दुकानदारों के उद्भूत मध्य वर्ग एक अलग वर्ग बन गया। उस वर्ग के व्यक्ति प्रायः नगरों में रहते थे, इसलिए फ्रान्स में यह वर्ग, मध्य वर्ग के रूप में विदित था। इंग्लैण्ड में मध्य वर्ग की संख्या सर्वाधिक थी और फ्रान्स में भी मध्य वर्ग की संख्या लगभग समान ही थी। यह वर्ग पादरी और कुलीन वर्ग एवं जनसमुदाय के मध्य में था। इस प्रकार फ़ान्स में दो पूर्णरूप से विलग सामाजिक व्यवस्थाओं के मध्य रिक्त स्थान की पूर्ति हो गयी थी। यह अठारहवीं शताब्दी की विशिष्टता थी। मध्यम वर्ग से अधिकांश वकीलों, राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों का उद्‌भव हुआ।

18वीं शताब्दी में कृषक वर्ग की अत्यधिक दयनीय एवं हृदय द्रावक स्थिति थी। यूरोप के प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में कृषिदासता विद्यमान थी। कृषि दास, दासों के अनुरूप अपने स्वामी के प्रति समर्पित एवं निष्ठावान होते थे। इंग्लैण्ड में कृषि दासों को समस्त बन्धनों से मुक्त कर दिया गया था। फ्रान्स में कृषि दासों की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी। रूस में कृषि दास अपने स्वामी की अनुमति के बिना विवाह भी नहीं कर सकते थे। कृषि दासों पर समस्त प्रकार के क्रूरतम अत्याचार किये जाते थे। उनको सामन्ती कानूनों का उल्लंघन करने के आरोप में भारी आर्थिक एवं शारीरिक दण्ड दिया जाता था। उनको देश की सड़कों के निर्माण कार्य बिना किसी प्रकार के पारिश्रमिक के करना पड़ता था। कृषक का पूरा परिवार घास-फूस और मिट्टी से बनी एक कमरे वाली झोपड़ी में रहते थे। ये झोपड़ियाँ टपकती थीं। कठोर शीत ऋतु में कृषक परिवार सर्दी से ठिठुरते रहते थे।

दीन-हीन कृषक को राजा, भू-स्वामी और चर्च द्वारा लगायें करों का भुगतान करके कराधान के भारी बोझ को वहन करना पड़ता था। किसान करों के भार से चीत्कार करता था लेकिन उसकी पीड़ा और आर्तनाद को सुनने वाला कोई नहीं था। कृषकों को राज्य को भू-राजस्व, व्यक्ति कर, अथवा टेल (Taile) अथवा आयकर देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त

किसान को अनेक अप्रत्यक्ष करों का भुगतान राजा को करना पड़ता था। भू-स्वामी की, जिस भूमि पर कृषक खेती करता था, उस भूमि का किराया देना पड़ता था। यह किराया भू-स्वामी के घर सप्ताह में कुछ दिन बेगार (निशुल्क श्रम) के रूप में देना पड़ता था। बेगार के अतिरिक्त किसान भू-स्वामी को अपनी उपज का कुछ अंश एवं कुक्कुट देता था। कृषक की आय का 1/10 चर्च के अंशदान के रूप में लेता था। यथार्थ में चर्च का अंशदान अपेक्षाकृत बहुत अधिक होता था। इस प्रकार कृषक अपनी कुल उपज का 4/5 भाग राजा, भू-स्वामी और चर्च को इन करों के रूप में देता था। ये सब कृषक का अत्यधिक शोषण कर रहे थे। सर्वोत्कृष्ट उपज के उपरान्त भी कृषक स्वयं और अपने परिवार का भरण-पोषण बहुत मुश्किल से कर पाते थे।

धार्मिक स्थिति

(RELIGIOUS CONDITION)

कैथोलिक चर्च (Catholic Church)—16वीं शताब्दी में जर्मन प्रोफेसर मार्टिन लूथर के नेतृत्व में कैथोलिक चर्च के विरुद्ध विद्रोह ने ईसाई मतावलम्बियों को विभाजित कर दिया था। उत्तरी यूरोप के अनेक देशों में प्रोटेस्टेन्ट समर्थकों, जो मार्टिन लूथर के अनुयायी थे, ने अपने स्वतन्त्र चर्च स्थापित कर लिये थे और रोमन कैथोलिक चर्च का नियन्त्रण इन देशों में बहुत कम हो गया था। इसके उपरान्त भी फ्रान्स, इटली, स्पेन, आस्ट्रिया, नीदरलैण्ड, बवेरिया, पोलैण्ड एवं स्विट्जरलैण्ड के अधिकांश भागों का राज्य धर्म कैथोलिक ही था। रूस का अपना रूढ़िवादी स्लाव चर्च था। इंग्लैण्ड में हेनरी अष्टम के नेतृत्व में ऐंग्लिकन चर्च स्थापित किया गया था। आयरलैण्ड, बोहेमिया और हंगरी में अधिकांश जनता रोमन कैथोलिक धर्म की समर्थक थी। पूर्वी यूरोप में भी अधिकांश जनसमुदाय यद्यपि तुर्क मुसलमानों से उत्पीड़ित था, रोमन कैथोलिक धर्म का अनुयायी था। यूरोप में प्रति-सुधारवादी आन्दोलन ने रोमन कैथोलिक चर्च को अधिक विघटन से बचा लिया था। अनेक अत्यधिक उत्साही एवं संमर्पित कैथोलिक धर्मावलम्बियों ने स्वेच्छापूर्वक अपने समस्त भौतिक सुख-साधनों का बलिदान करके चर्च के प्रभुत्व और उत्थान के लिए कार्य किया।

कैथोलिकों और प्रोटेस्टेन्टों के मध्य सम्बन्ध (Relations between Catholics and Protestant)—कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेन्ट अनुयायियों के मध्य परस्पर किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था। रोमन कैथोलिक के स्वयं के अपने सिद्धान्त, संस्कार, रीति-रिवाज एवं मान्यताएँ थीं। इसके पादरी अपने निष्ठावान अनुयायियों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करते थे और प्रोटेस्टेन्ट समर्थकों की विधर्मी कहकर आलोचना करते थे। प्रोटेस्टेन्ट शासक पोप को केवल इटली का राजकुमार मानते थे। पोप को अवांछित धार्मिक सम्प्रदाय का सर्वोच्च धर्माधिकारी माना जाता था। प्रोटेस्टेन्ट धर्म के अनुयायियों की रोमन कैथोलिक के सिद्धान्तों, संस्कारों, मान्यताओं में कोई आस्था नहीं थी। प्रोटेस्टेन्ट धर्म के शासकों के राज्यों में रोमन कैथोलिक धर्मावलम्बियों को किसी प्रकार के राजनीतिक तथा नागरिक अधिकार नहीं थे और उनको देशद्रोही माना जाता था।

पोप की शक्तियाँ (Powers of Pope)—रोमन कैथोलिक शासित राज्यों में भी पोप की सत्ता और प्रभुत्व बहुत कम हो गया था। इन राज्यों के शासकों को अपनी राजनीतिक शक्तियों और अधिकारों का गर्व था। विभिन्न कैथोलिक शासित राज्यों के शासक ही पादरी, मठाधीश एवं चर्च के अन्य उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करते थे। यद्यपि ये धर्माधिकारी एवं अन्य सम्भ्रान्त कैथोलिक अनुयायी निर्धारित शुल्क पोप को देते थे। पोप के धार्मिक

न्यायालयों का क्षेत्राधिकार बहुत सीमित हो गया था और शासकों के न्यायालयों का क्षेत्राधिकार असीमित हो गया था। धार्मिक विषयों से सम्बन्धित बहुत कम विवादों में पोप के समक्ष अपील की अनुमति दी जाती थी। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के कारण पोप की शक्तियों और सत्ता को सीमित किया गया था, लेकिन करोड़ों अज्ञानी कृषकों के लिए पोप अब भी पूर्ववत् सर्वोच्च धार्मिक एवं राजनीतिक व्यक्तित्व था।

विशेषाधिकार (Privileges)—कैथोलिक शासकों द्वारा शासित राज्यों के जनसमुदाय में पादरियों का प्रभुत्व पूर्ववत बना हुआ था। जनसमुदाय की पोप और पादरी में अपूर्व आस्था और विश्वास था। अस्तु चर्च को पहले के समान ही अनेक विशेषाधिकार और सामान्य अधिकार थे। चर्च के अन्तर्गत भूमि के लिए चर्च राज्य को किसी प्रकार का कर नहीं देता था। अधिकांश शिक्षा पर चर्च का पूर्ण नियन्त्रण था। अस्पतालों का संचालन चर्च करते थे और रोगियों की सेवा- सुश्रुषा सहृदय पादरी करते थे। समस्त विवाह चर्च में सम्पन्न होते थे। कैथोलिक धर्मावलम्बी देशों में प्रोटेस्टेन्ट अनुयायियों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये थे और उनको विधर्मी माना जाता था। ऐसे देशों में समस्त जनसमुदाय, ऐसी मान्यता थी, केवल कैथोलिक धर्म का पालन करता था। कैथोलिक शासित कुछ देशों में प्रोटेस्टेन्ट अनुयायियों को विभिन्न प्रकार से उत्पीड़ित किया जाता था और जीवित जला दिया जाता था।

इंग्लैण्ड में एग्लिकन चर्च (Anglican Church in England)—इंग्लैण्ड के शासक हेनरी अष्टम ने परम धर्माध्यक्ष (पोप) से मुक्त पूर्णरूप से स्वतन्त्र चर्च स्थापित किया था। एग्लिकन (Angliean) चर्च के नाम से सर्वविदित इंग्लैण्ड का राज्य चर्च स्थापित किया गया था। इस चर्च के पास अपार सम्पत्ति थी और अनेक विशेषाधिकार थे। यह चर्च पूर्णरूप से राष्ट्रीय था और उत्कट देशभक्ति से अनुप्राणित था। इंग्लैण्ड में निम्नवर्गीय पादरी समुदाय निर्धन था और रोमन कैथोलिक अनुयायियों की स्थिति दयनीय थी। इनको किसी प्रकार के धार्मिक, नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार नहीं थे। कुछ वयोवृद्ध धर्माधिकारी एवं काल्विन (Calvin) के अनुयायी कुछ महत्वपूर्ण विरोधी सम्प्रदाय थे।

राजनीतिक स्थिति

(POLITICAL CONDITION)

निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन (Absolute and Arbitrary Administration)—फ्रान्स की क्रान्ति के समय यूरोप में निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासक थे। इंग्लैण्ड और स्विट्ज़रलैण्ड दो अपवाद थे। प्रशासनिक अत्याचारों और अन्याय के विरुद्ध यूरोप के राज्यों की जनता को किसी प्रकार के संवैधानिक, राजनीतिक अथवा न्यायिक उपचार के अधिकार नहीं थे। यूरोप के पूर्णरूप से निरंकुश राजा, राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त में विश्वास करते थे और इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते थे। फ्रान्स का स्वेच्छाचारी राजा लुईस चौदहवें गर्व के साथ कहता था, "मैं ही राजा हूँ।" राज्य की जनता मात्र पशुओं के समूह के सदृश्य थी और राजा जनसमुदाय को कोई भी दण्ड दे सकता था।

अठारहवीं शताब्दी के कुछ निरंकुश शासकों ने अपने निरंकुशतावाद में सहृदयता सहानुभूति, दया आदि का मिश्रण कर लिया। ऐसे शासकों को इतिहासकारों ने प्रबुद्ध शासकों की संज्ञा दी। प्रबुद्ध शासकों ने अपने देश की जनता के प्रति अपने दायित्वों की अनुभूति की। इन शासकों ने अपने निरंकुश स्वरूप को बनाये रखते हुए अपनी जनता के हित और

कल्याण के लिए प्रशासनिक पद्धति एवं गतिविधियों के प्रयास किये। प्रशा के फ्रेडरिक महान, रूस की कैथरिन द्वितीय, आस्ट्रिया के मेरिया थेरेसा और जोसेफ द्वितीय, स्पेन के चार्ल्स तृतीय और पुर्तगाल के जोसेफ प्रथम की गणना कुछ महत्वपूर्ण प्रबुद्ध निरंकुश शासकों में की जाती है।

कुलीन तन्त्र और इसका प्रभाव (Aristocracy and its Effect)—भू-स्वामियों का कुलीन तन्त्र ही निरंकुश राजा की सत्ता में कुछ अंशों तक भागीदार था। सामन्तवाद के अवशेष अठारहवीं शताब्दी में पूर्ववत पूर्णरूप से विद्यमान थे। शक्तिशाली कुलीनों की विशाल आकार की जागीरें थीं और वे अपने सीमित क्षेत्राधिकार में छोटे निरंकुश शासकों के अनुरूप ही व्यवहार करते थे। दीर्घकाल से वे राज्य के निरंकुश शासकों की शक्ति के मूल स्रोत और आधार स्तम्भ थे। इनको सहज ही समाप्त कर देना सम्भव नहीं था। इन कुलीनों को विशेष रूप से कुछ राजनीतिक एवं सामाजिक विशेषाधिकार मिले हुए थे। इन कुलीनों को राज्य के समस्त नागरिक, सैनिक एवं चर्च के उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था और ये कुलीन राजा को कानून निर्माण में परामर्श देते थे। ये कुलीन स्वयं राज्य को किसी प्रकार के कर का भुगतान नहीं करते थे लेकिन अपनी भूमि के किरायेदारों से विभिन्न प्रकार के कर वसूलने के लिए अधिकृत थे। प्रायः कुलीन विलासितापूर्ण एवं अनैतिक जीवन व्यतीत करते थे। प्रो. हेजन ने न्यायोचित विचार व्यक्त किया है, "यूरोप कुलीनतान्त्रिक ढंग से संगठित था और कुलीनों के लाभ के लिए था।"

अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता का अभाव (Lack of International Morality)—यूरोप के निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासकों के समक्ष अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं थी। यूरोप में किसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और शासकों के मध्य परस्पर भ्रातृत्व की भावना का सर्वथा अभाव था। कभी-कभी इन निरंकुश शासकों ने परस्पर अत्यधिक संकीर्ण, अशोभनीय, विश्वासघाती ढंग से व्यवहार किया। उदाहरणार्थ, प्रशा के फ्रेडरिक महान ने आस्ट्रिया के शासक चार्ल्स छठे की पुत्री मारिया थेरेसा के उत्तराधिकार को स्वीकार किया लेकिन आस्ट्रिया के सम्राट के निधन के बाद वह अपने दिये हुए वचन एवं नैतिक दायित्व को बिल्कुल भूल गया। आस्ट्रिया के अधिकृत साइलेसिया प्रान्त पर फ्रेडरिक ने सशस्त्र आक्रमण किया और उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के अनैतिक, क्रूर, महत्वाकांक्षी एवं शक्तिशाली राज्यों ने अपने पड़ोसी छोटे राज्य पोलैण्ड का निर्ममतापूर्वक अनेक छोटे-छोटे भागों में विभाजन किया। अन्तर्राष्ट्रीय अनुबन्धों के प्रावधानों का स्वच्छन्दतापूर्वक उल्लंघन करना और प्रावधानों की अवहेलना करना अनुचित और अनैतिक नहीं माना जाता था। स्वार्थी, लोभी एवं दम्भी शासकों में दीर्घकालीन परम्पराओं, मान्यताओं एवं व्यवस्थाओं के लिए कोई सम्मान नहीं था। किसी भी गतिविधि की वैधता की सदैव उपेक्षा करते थे।

यूरोप के महत्वपूर्ण देश (Important Countries of Europe)—विशाल यूरोप महाद्वीप अनेक छोटे और बड़े स्वतन्त्र राज्यों में विभाजित था। देश के क्षेत्रीय आकार से देश के महत्व और शक्ति का निर्धारण नहीं होता था।

फ्रान्स—यद्यपि फ्रान्स क्षेत्रीय आकार की दृष्टि से सर्वाधिक विशाल देश नहीं था लेकिन सर्वाधिक भव्यता और शक्ति की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण था। फ्रान्स की भव्यता और शक्ति पतनोन्मुख थी। लुइस चौदहवें (सन् 1643-1715) ने अपने शासनकाल में अनेक युद्ध

किये और आमोद-प्रमोद तथा विलासिता पर अत्यधिक अपव्यय किया। अस्तु फ्रान्स आर्थिक दृष्टि से दिवालिया होने की स्थिति में पहुँच गया था। उसके उत्तराधिकारी लुइस पन्द्रहवें (सन् 1715-1774) ने अनेक युद्धों पर धन का अपव्यय किया। वह विलासी प्रवृत्ति का था। उसने अनेक महिलाओं के साथ विलासिता पर अत्यधिक व्यय किया। परिणामस्वरूप राजकोष लगभग रिक्त हो गया था। 20 वर्षीय लुइस सोलहवें को फ्रान्स के सिंहासन पर आरूढ़ होने के समय राजकोष रिक्त मिला। कराधान के भारी बोझ और अकुशल एवं दोषपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था के कारण जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। प्रो. हेजन ने विचार व्यक्त किया है, "जब तक फ्रान्स की जनता ने अन्ततोगत्वा विद्रोह नहीं कर दिया और विख्यात फ्रान्स की क्रान्ति में समस्त शासन प्रणाली को समाप्त नहीं कर दिया, फ्रान्स की जनता में अधिकाधिक असन्तोष उत्पन्न करते हुए, निरंकुश राजतन्त्र कार्य करता रहा।"

जर्मनी—अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी 360 स्वतन्त्र प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्यों में विभाजित था। प्रशा एकमात्र उल्लेखनीय राज्य था। फ्रेडरिक महान (सन् 1740-1780) के शासन काल में प्रशा अपने गौरव के चरम पर था। फ्रेडरिक एक कुशल साहसी और वीर सैनिक, राजनीतिज्ञ एवं विद्वान था। उसके पास 2,00,000 कुशल सैनिकों की विशाल सेना थी। उसने आस्ट्रिया से युद्ध में विजय प्राप्त कर साइलेसिया और पोलैण्ड के 1/3 भाग का अपने राज्य में विलय करके राज्य की सीमाओं का विस्तार किया था। वरटैम्बर्ग, सैक्सोनी, बवेरिया और हैनोवर अन्य प्रमुख राज्य थे। अन्य छोटे राज्य थे। 50 राज्य इतने छोटे थे कि उनका क्षेत्राधिकार एक जिले अथवा नगर तक ही सीमित था। अधिकांश राज्य गृह युद्ध से ग्रस्त थे।

आस्ट्रिया—प्रायः आस्ट्रिया के विषय में कहा जाता है कि आस्ट्रिया साम्राज्य विवादों का उत्पाद था। यह यूरोप महाद्वीप में सर्वाधिक अस्थिर और कमजोर साम्राज्य था। रूडोल्फ प्रथम ने तेरहवीं शताब्दी में आस्ट्रिया राज्य स्थापित किया था। तदुपरान्त इसका निरन्तर विस्तार और विकास होता गया। हैप्सबर्ग वंश के शासकों ने विस्तारवादी नीति का अनुसरण करते हुए आस्ट्रिया साम्राज्य की सीमाओं का बहुत अधिक विस्तार किया। हैप्सबर्ग वंश के प्राचीन अधिकृत क्षेत्रों में विस्तारवादी नीति के क्रियान्वयन द्वारा हंगरी, बोहेमिया को जोड़ा। इसके अतिरिक्त मोरेजिया, साइलेसिया, क्रोसिया एवं अन्य अनेक छोटे राज्यों का आस्ट्रिया में विलय किया गया। इनमें से कुछ राज्यों ने आस्ट्रिया में विलय के बाद भी अपने विशिष्ट विशेषाधिकार पूर्ववत बनाये रखे। इस अनियन्त्रित ढंग से गठित साम्राज्य में विभिन्न जातियों के लोग रहते थे। इन विभिन्न जातियों में अपने उद्भव, इतिहास, भाषा एवं पारम्परिक संस्थाओं की दृष्टि से कुछ भी समान नहीं था। जर्मन और मैग्यार दो प्रमुख जातियाँ थीं। आस्ट्रिया में जर्मन जाति का और हंगरी में मैग्यार जाति का बाहुल्य था। हंगरी के पूर्वी भागों में रूमानिया जाति के लोग बहुत बड़ी संख्या में थे। साम्राज्य में समग्र दृष्टि से स्लाव जाति का बहुमत था लेकिन स्लाव समस्त साम्राज्य में बिखरे हुए थे और परस्पर विभाजित थे। इस आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य में इनके अतिरिक्त अन्य अनेक जातियाँ थीं। इस प्रकार यह साम्राज्य विविध जातियों, रंगों, भाषाओं, परम्पराओं और मान्यताओं का साम्राज्य था। इनमें अपेक्षित राष्ट्रीय चेतना और देशभक्ति की पवित्र भावना का सर्वथा अभाव था। आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस द्वितीय ने स्वयं कहा था, "मेरा राज्य कीड़ों का खाया हुआ घर है, यदि एक भाग हटा दिया जाता है तो कोई नहीं कह सकता है कितना भाग गिर जायेगा।"

आस्ट्रिया साम्राज्य पर हैप्सबर्गवंशीय साम्राज्ञी मेरिया थेरेसा ने सन् 1740-1780 तक शासन किया। उनके जीवन के अन्तिम 15 वर्षों में उनके पुत्र जोजफ द्वितीय ने रीजेन्ट अर्थात्

प्रतिशासक के रूप में शासन किया और मेरिया थेरेसा के स्वर्गवास के बाद सन् 1780 में सिहासनारूढ़ हुआ और सन् 1790 में देहावसान तक शासन किया। दोनों ने प्रशासनिक सुधारों के लिए प्रयास किये। मेरिया थेरेसा अपने प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना चाहती थी। जोजफ एवं उसके अधिकारियों ने समकालीन दार्शनिक कृतियों का अध्ययन किया था। अस्तु उसके प्रयासों की पृष्ठभूमि में 'प्रबुद्ध निरंकुश' का सुसंगत दर्शन था। बहुभाषी एवं बहुजातीय आस्ट्रिया साम्राज्य की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याएँ अत्यधिक जटिल थीं। इस कारण जोजफ के प्रयास सफल नहीं हुए।

विशाल क्षेत्रफलीय आकार के आस्ट्रिया साम्राज्य की राजधानी जर्मन भाषी विएना नगर में स्थित थी। यह विशाल साम्राज्य उत्तर में चेक भाषी बोहमिया से दक्षिण-पूर्व में रूमानिया भाषी ट्रान्सिल्वेनियन आल्पस तक और दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम में सर्बीयाई और क्रोशियाई भाषी क्षेत्रों तक फैला हुआ था। उत्तर और दक्षिण के इन प्रदेशों के मध्य हंगरी स्थित था और इस क्षेत्र को डेन्यूब नदी ने उर्वर बना दिया था। इस क्षेत्र में मैग्यार जाति का प्रभुत्व था। इसके अतिरिक्त उत्तर पूर्व स्लोवाक और पश्चिम में स्लोवनीज जाति के भाषाभाषी रहते थे। इस क्षेत्र के निवासियों के जीविकोपार्जन का मुख्य स्रोत कृषि कार्य था। भूमि ही सम्पत्ति का मुख्य आधार थी। भू-स्वामी वर्ग में जर्मन और हंगरी भाषी मैग्यार दो भिन्न भाषायी समूहों का बाहुल्य था जो राज्य की सबसे बड़ी दुर्बलता थी। राजकीय अधिकारियों ने सेना और नौकरशाही के माध्यम से अपना नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास किया। दूसरी ओर, विभिन्न समूहों ने स्थानीय विशेषाधिकार और स्वायत्तता की प्रबल माँग की। मैग्यार जैसे भाषायी भू-स्वामी समूह की अपनी जिला एसेम्बलियाँ (जो कांग्रीगेशन अथवा सभा के नाम से विदित थीं) इन एसेम्बलियों का स्थानीय कर पद्धति, प्रशासनिक, न्यायपालिका एवं चर्च की नियुक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण था। मठ सदृश कुछ अन्य समूह विशेषाधिकार प्राप्त धार्मिक संगठन थे। ये संगठन समस्त करों से मुक्त थे लेकिन इन्होंने कुलीनों से उपहारस्वरूप भूमि लेकर अपनी भू-सम्पत्ति बढ़ा ली थी। भू-स्वामी कृषकों से परम्परागत सामन्तवादी कर वसूल करते थे। हस्तशिल्प उद्योग और व्यापार कुलीनों और पादरी वर्ग की आवश्यकताओं और माँग पर निर्भर थे।

मेरिया थेरेसा स्वयं निष्ठावान कैथोलिक थी। प्रोटेस्टेन्ट अनुयायियों एवं यहूदियों के प्रति पूर्वाग्रह ग्रस्त थी। पुत्र जोजफ के सहिष्णुता के परामर्श का मेरिया ने विरोध किया था। लेकिन मेरिया ने इस विचार का अनुमोदन किया कि चर्च की भू-सम्पत्ति कर मुक्त नहीं होनी चाहिए। सन् 1765 से 1769 की अवधि में अनेक उपायों द्वारा चर्च की भू-सम्पत्ति वृद्धि एवं धर्म संघों में प्रवेश के इच्छुक व्यक्तियों की सख्या को नियन्त्रित कर दिया गया। सरकार ने धर्म संघों को अपनी आय-व्यय का लेखा प्रस्तुत करना अनिवार्य कर दिया और चर्च एवं धर्म संघों की भूमि पर करारोपण किया।

जोजफ नें अक्टूबर, 1781 और जनवरी, 1782 के मध्य जारी राजाज्ञाओं के माध्यम से प्रोटेस्टेन्ट एवं अन्य ईसाई सम्प्रदायों और यहूदियों के प्रति सहिष्णुता की नीति का परिचय दिया। अकर्मण्य, निष्क्रिय तथा विलासितापूर्ण तथा भव्य जीवनयापन करने वाले मठों पर निषेधाज्ञा प्रचलित कर दी गयी। 700 मठों को समाप्त कर दिया गया। 65,000 में से 38,000 धार्मिक व्यक्तियों को पेंशन स्वीकृत करके मठ त्यागने के आदेश दे दिये। मठों की

भूमि बेचकर प्राप्त धन का पेंरिशों के पादरियों को अपेक्षाकृत अधिक वेतनमान देने के लिए प्रयोग किया गया।

जोजफ ने अपने प्रतिशासन और शासन की अवधि में विश्वविद्यालय स्तर पर धर्मशास्त्र की अपेक्षा गणित, राजनीति विज्ञान और चिकित्साशास्त्र के विकास, व्यापक प्रचार-प्रसार एवं अध्ययन पर अधिक बल दिया।

किसानों के लिए सामान्य वर्षों में परम्परागत सामन्तवादी करों का भार बहुत अधिक था, लेकिन फसलों के नष्ट हो जाने की स्थिति में करों का भुगतान असहनीय हो जाता था। सन् 1771 में जोजफ ने स्वयं इस क्षेत्र का व्यापक दौरा किया और कृषकों की दयनीय स्थिति देखकर विचलित हो गया। मेरिया थेरेसा किसानों के ऊपर करों का भार डालना चाहती थी लेकिन कृषि दास-प्रथा के संस्थागत अस्तित्व को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थी।

कृषि दास-प्रथा आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं थी। कुलीन वर्ग राज्यों को किसानों से करों के रूप में प्राप्त धन का बहुत कम अंश देता था। तीसरे कृषि दास-प्रथा व्यक्ति स्वातन्त्र्य के सर्वमान्य सिद्धान्त के विरुद्ध थी। जोजफ कृषि दास-प्रथा समाप्त करने के प्रति कृत संकल्प था। सन् 1780 में जारी अध्यादेश द्वारा यद्यपि कृषि दास-प्रथा समाप्त नहीं हुई लेकिन सामन्तवादी कर वसूली का भार अवश्य कम हो गया। साथ ही कृषि दास को अपनी पैतृक भूमि का उत्तराधिकारी मान लिया गया। सन् 1784 में जारी अध्यादेश के अनुसार भूमि-कर समान दरों पर निर्धारित किया और किसी वर्ग को विशेषाधिकार के नाम पर मिलने वाली करों में छूट को समाप्त कर दिया गया। जोजफ प्रबुद्ध जन-कल्याण के लिए किये गये प्रयासों में, विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के शक्तिशाली विरोध, नौकरशाही और जनसमुदाय के मध्य जनसम्पर्क के अभाव और एक साथ अनेक संस्थाओं में सुधार करने की प्रबल आकांक्षा के कारण असफल हुआ।

रूस—यूरोप और एशिया दोनों ओर यह विशाल साम्राज्य फैला हुआ था। भौगोलिक एवं जलवायु सम्बन्धी कारणों से इस विशाल साम्राज्य की सापेक्षिक दृष्टि से जनसंख्या बहुत कम थी। उत्तर के शीत ध्रुवीय प्रदेश अथवा दक्षिण पूर्व कैस्पियन सागर की उत्तरी सीमाओं पर स्थित अर्द्ध सूखे घास वाले मैदान स्थायी रूप से कृषि के अनुकूल नहीं थे। यूरोप स्थित रूस में काली मिट्टी का घास वाला मैदानी क्षेत्र सर्वाधिक उर्वर क्षेत्र था। इस क्षेत्र को डोन और नाईपेर नदियों से जल प्राप्त होता था। यह क्षेत्र प्रारम्भिक मध्ययुगीन रूसी साम्राज्य का मध्य भाग था। कीव इसकी राजधानी था। 13वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक मंगोलों के निरन्तर आक्रमणों के कारण यह साम्राज्य ध्वस्त हो गया था। यहाँ मंगोलों का प्रभुत्व था। उत्तर ध्रुवीय प्रदेश का दक्षिणी भाग एवं काली मिट्टी क्षेत्र का उत्तरी भाग विशाल उत्तरी यूरोपीय भाग मुख्य रूप से वनों का प्रदेश था। इस क्षेत्र को पूरे वर्ष बहने वाली गहरी नदियों से जल मिलता था। इस क्षेत्र के जंगलों को साफ करके कृषि योग्य बना दिया गया था। इसी क्षेत्र में मस्कोवी का विशाल राज्य स्थित था। 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इसके शासकों ने मंगोल आक्रमणों का सामना करने का निश्चय किया। इस शताब्दी के अन्त तक मस्कोवी के शासकों ने अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर ध्रुवीय प्रदेश से लेकर ऊपर डोन नदी घाटी तक कर लिया था।

सन् 1613 में रोमोनोव वंश के शासकों ने एकीकरण की प्रक्रिया आरम्भ की और साम्राज्य का विस्तार एशिया महाद्वीप के पूर्वी साइबेरिया में हुआ। पीटर प्रथम (सन्

1689-1725) के विजय अभियान के परिणामस्वरूप साम्राज्य का विस्तार बाल्टिक सागर तक हो गया और पीटर ने इस के तट पर सेण्ट पीटर्सबर्ग नाम से नया नगर स्थापित करके अपनी राजधानी बनाया। वह रूस का पहला जार था। वह डोन नदी घाटी में कोसाक जाति का दमन करने में सफल हो गया। कैथरीन महान (सन् 1726-1796) के शासन काल में रूस ने तुर्की को पराजित करके काला सागर के निकटवर्ती क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। कैथरीन एक प्रबुद्ध निरंकुश शासिका थी। कैथरीन स्वयं विद्वान थी और तत्कालीन प्रबोधन में गहन रुचि लेती थी। उसने दीदरों को आर्थिक सहायता प्रदान की। द. आलेम्बर्ट और वाल्टेयर जैसे विद्वान दार्शनिकों के साथ पत्र-व्यवहार करती थी। सन् 1764 में रूस के लिए नई विधि-संहिता बनाने का शुभारम्भ किया। विधि आयोग के मार्गदर्शन के लिए प्रारूप बनवाया, जिस पर समकालीन राजनीतिक दार्शनिकों मान्टेस्क्यू और बोकारियों के विचारों का प्रभाव था। इस प्रारूप में समस्त नागरिकों के लिए एक समान कानून और यातना देने की प्रचलित प्रथा के उन्मूलन पर बल दिया गया था। रूस यूरोप का सर्वाधिक विशाल राज्य था। 20 लाख वर्गमील क्षेत्र यूरोप में था। यद्यपि अनेक जातियाँ हैं, लेकिन स्लाव सर्वाधिक हैं। रूस अनिवार्य रूप से कृषि प्रधान देश था और 19वीं शताब्दी के अन्त तक बनाये रखा।

पोलैण्ड—17वीं शताब्दी में पोलैण्ड एक बड़ा राज्य था, लेकिन अपने तीन शक्तिशाली विस्तारवादी भूखे भेड़ियों प्रशा, रूस और आस्ट्रिया पड़ोसी राज्यों की भूख का निरन्तर शिकार बना रहा। सन् 1772, सन् 1793 और सन् 1795 में तीन भूखे भेड़ियों ने पोलिश की आकांक्षाओं एवं भावनाओं की अवहेलना करते हुए आपस में बाँट लिया। लो देशों के 17 प्रान्त कभी स्पेन राज्य के अधिकृत क्षेत्र थे। स्पेन के निरंकुश राजा फिलिप द्वितीय के शासन काल में सात उत्तरी प्रान्तों ने स्पेन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया और स्वयं को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया। इस प्रकार हालैण्ड का उद्भव हुआ। शेष दस प्रान्तों पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था। ये 10 प्रान्त बेल्जियम के रूप में सर्वविदित हैं। इस प्रकार हालैण्ड और बेल्जियम दो स्वतन्त्र देशों का उद्भव एवं विकास हुआ।

इटली—निःसन्देह 15वीं और 16वीं शताब्दियों में इटली ने सांस्कृतिक क्षेत्र में यूरोप महाद्वीप का नेतृत्व किया, लेकिन 18वीं शताब्दी में राजनीतिक दृष्टि से इटली की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। इटली अनेक स्वतन्त्र प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों में विभाजित था। इटली केवल भौगोलिक अभिव्यक्ति के लिए शेष रह गया था। राजनीतिक दृष्टि से आस्ट्रिया-हंगरी का पूर्ण प्रभुत्व था। यूरोप में विशाल और शक्तिशाली राज्य स्पेन के भी दुर्दिन आ गये थे। स्पेन का बोबोर्न वंशीय निरंकुश शासक चार्ल्स चतुर्थ (1788-1808) वृद्ध, दुर्बल और मूर्ख शासक था। स्विट्जरलैण्ड, नार्वे, स्वीडेन एवं डेनमार्क यूरोप के अन्य स्वतन्त्र, प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य थे लेकिन इन राज्यों ने यूरोप की राजनीतिक गतिविधियों को किसी भी रूप में प्रभावित नहीं किया। लार्ड एक्टन ने राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में विचार व्यक्त किया है कि सन् 1789 में सम्पूर्ण यूरोप के रूप में कोई अस्तित्व नहीं था।

इंग्लैण्ड—इंग्लैण्ड, फ्रान्स और उसके विचारों का सदैव शत्रु रहा। इंग्लैण्ड में संसदीय प्रणाली का उद्भव हो चुका था और विकास की दिशा में अग्रसर था। लेकिन सन् 1714 में हैनोवर वंशीय शासक के आगमन के उपरान्त लोकतान्त्रिक प्रणाली के विकास के लिए निरन्तर प्रयास किये गये। आज भी इंग्लैण्ड में हैनोवर वंश का ही शासन है। 17 जुलाई,

1917 को एक राजकीय घोषणा के द्वारा इसका नाम बदलकर 'विण्डसर' (House of Windsor) कर दिया गया। संसद की सर्वोच्चता और राजा की सर्वशक्तिमान सर्वोच्च सत्ता के मध्य विवाद सत्रहवीं शताब्दी में स्टुअर्ट वंशीय शासकों के काल से चल रहा था। इस विवाद का अन्त अठारहवीं शताब्दी में संसद की विजय और संसदीय अथवा मन्त्रिपरिषदीय सरकार की स्थापना के साथ हुआ।

सन् 1714 में जर्मन मूल के 54 वर्षीय जार्ज प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ और हैनोवर के नागरिकों की अपेक्षा अपने नये राज्य की अधिक चिन्ता थी और हृदय से जर्मन राजकुमार ही रहना चाहता था। जार्ज प्रथम जर्मन भाषी था। उसको अंग्रेजी का बिल्कुल ज्ञान नहीं था। जार्ज और मन्त्रियों के मध्य परस्पर विचार-विमर्श बहुत कठिन था। मन्त्रियों को जर्मन भाषा का ज्ञान नहीं था। जार्ज प्रथम ने सन् 1714 से सन् 1727 तक शासन किया। उसके पुत्र जार्ज द्वितीय ने सन् 1727 से सन् 1760 तक शासन किया। उसको अंग्रेजी भाषा का ज्ञान था, लेकिन वह धारा-प्रवाह बोलने में असमर्थ था। उसकी भी विशाल साम्राज्य की अपेक्षा जर्मनी के एक छोटे राज्य में अधिक रुचि थी। इन दोनों शासकों की मुख्य रुचि धन अर्जित करने में थी। नीति विषयक सरकारी कार्यों में वे कभी भाग नहीं लेते थे। 46 वर्षों तक इन शासकों ने राजतन्त्रीय शक्तियों का प्रयोग नहीं किया। परिणामस्वरूप सत्ता स्वतः ही संसद और उसकी मन्त्रिपरिषद में स्थानान्तरित हो गयी। एक लोकप्रिय लोकोक्ति इंग्लैण्ड के शासन के प्रति इस प्रकार है 'राजा शासन करता है लेकिन (प्रशासनिक गतिविधियों का) संचालन नहीं करता है।' यथार्थ में संसद अपने सदस्यों की एक समिति, मन्त्रिपरिषद के द्वारा शासन करती है।

इस अवधि में इंग्लैण्ड ने अनेक उपनिवेश स्थापित कर लिए थे और अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए निरन्तर संघर्ष कर रहा था। ब्रिटेन के उपनिवेशों में बहुत वृद्धि हो गयी थी। उपनिवेशों में अभूतपूर्व विस्तार सन् 1756 से सन् 1763 तक क्रीमिया युद्ध के नाम से विख्यात सप्तवर्षीय युद्ध का परिणाम था। इस युद्ध के प्रथम चरण में इंग्लैण्ड और फ्रान्स के मध्य युद्ध हुआ। दूसरे चरण में एक ओर प्रशा था और उसके विरुद्ध आस्ट्रिया, फ्रान्स और रूस थे। इस युद्ध में इंग्लैण्ड और प्रशा लाभान्वित हुए थे।

जार्ज तृतीय ने सन् 1760 से सन् 1820 तक शासन किया। जार्ज तृतीय अपने पूर्वजों के अनुरूप जर्मनवासी की अपेक्षा इंग्लैण्ड का मूल निवासी था। इंग्लैण्ड में ही उसका जन्म हुआ था और शिक्षा उसने भी यहीं ग्रहण की थी, लेकिन वह अल्पबुद्धि और जिद्दी था। उसकी माँ एक जर्मन राजकुमारी थी और निरंकुश शासन की भावनाओं और विचारों से पुरातन शासन की प्रबल समर्थक थी। उसने अपने पुत्र से वास्तविक अर्थ में राजा बनने का आग्रह किया और उसने भी प्राचीन राजतन्त्रीय ढंग से शासन करने का दृढ़ निश्चय किया। इस निश्चय के परिणामस्वरूप लोकतान्त्रिक संसदीय प्रणाली, जो पूर्णरूप से स्थापित हो चुकी थी और निरंकुश शासन के प्रबल महत्वाकांक्षी जार्ज तृतीय के मध्य भीषण संघर्ष आरम्भ हो गया। जार्ज तृतीय ने औपचारिक रूप से मन्त्रिपरिषद का विरोध नहीं किया वरन् मन्त्रिपरिषद में केवल अपने चाटुकार और कठपुतली मन्त्रियों की नियुक्ति करने का प्रयास किया और इनके द्वारा संसद पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया। अनेक वर्षों बाद मन्त्रिपरिषदीय

प्रणाली का रूपान्तर हो गया और मन्त्रिपरिषद एवं संसद के दोनों सदनों पर राजा का पूर्ण नियन्त्रण हो गया। सन् 1770 से सन् 1782 तक लार्ड नार्थ के नेतृत्व में गठित मन्त्रिपरिषद ने जार्ज तृतीय की इच्छानुसार कार्य किया। इस प्रकार जार्ज तृतीय बहुत अंशों तक निरंकुश शासक बनने में सफल हो गया।

अमेरिका की क्रान्ति (American Revolution)—जार्ज तृतीय ने मन्त्रिपरिषद एवं संसद पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने के बाद विशाल ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश की ओर नेतृत्व किया। एक इतिहासकार ने इसको इंग्लिश इतिहास का सर्वाधिक दुखान्त विनाश कहा है। राजा की दमनकारी नीतियों के परिणामस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य में अमेरिका की क्रान्ति अथवा स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। राजा के इंग्लैण्ड और अमेरिका में समर्थक और विरोधी दोनों ही थे। इस संकट में अमेरिका की स्वतन्त्रता एवं इंग्लैण्ड की संसदीय प्रणाली का अस्तित्व और प्रभुत्व दाँव पर थे। यदि जार्ज तृतीय सफल हो जाता तो औपनिवेशक स्वतन्त्रताओं का अन्त हो जाता और संसद के प्रभुत्व की प्रबल आकांक्षा विलुप्त हो जाती।

अमेरिका की क्रान्ति स्वतन्त्र व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों के लिए संघर्ष था। फ्रान्स ने सप्तवर्षीय युद्ध में अपनी अपमानजनक पराजय का प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड के विरुद्ध संघर्ष में 13 उपनिवेशीय बस्तियों की सहायता की। अमेरिका के स्वतन्त्रता संघर्ष में विजय के परिणामस्वरूप जार्ज तृतीय अत्यधिक अलोकप्रिय हो गया और इंग्लैण्ड के लिए संसदीय प्रणाली की लोकतान्त्रिक सरकार बच गयी। जार्ज तृतीय का निरंकुश शासक बनने का स्वप्न ध्वस्त हो गया। राजतान्त्रिक शासन के अधीन स्वतन्त्र सरकार के मूलभूत सिद्धान्त को समाप्त करने के प्रयास में साम्राज्य का क्षय हो गया। नये विश्व में गणतान्त्रिक सरकार के सिद्धान्तों के विकास के लिए क्षेत्र मिले और विश्व के प्राचीन देशों में से एक संवैधानिक अथवा सीमित राजतन्त्र को प्रबल समर्थन मिला।

फ्रान्स की क्रान्ति के संचालकों एवं जनसमूह के प्रमुख प्रेरणा स्रोत तत्कालीन महान राजनीतिक, दार्शनिक, अर्थशास्त्री एवं समाज की संवेदना को अनुभव करने वाले और उनको अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले साहित्यकार थे। इन विद्वानों की कृतियों और विचारों का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

जान लॉक (John Locke) (सन् 1632-1704)—सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के उदारवादी चिन्तन एवं विचारधारा के जनक तथा सामाजिक संविदावादी सिद्धान्त एवं लोकतान्त्रिक शासन पद्धति के प्रबल तीन प्रतिपादकों में एक जान लॉक का राजनीतिक दर्शन उनकी सन् 1690 में प्रकाशित कृति 'सेकेण्ड ट्रीटाइज आफ सिविल गवर्नमेन्ट' (Second Treatise of Civil Government) में निहित हैं। इस कृति में लॉक ने सन् 1688 की गौरवशाली रक्तहीन औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरुप इंग्लैण्ड में स्थापित संसदीय प्रणाली के शासन को न्यायोचित प्रमाणित करने के लिए सीमित राजतन्त्रीय शासन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। लॉक ने विचार व्यक्त किया कि मूल रूप से समस्त प्राणी प्राकृतिक वातावरण में रहते थे, जिसमें पूर्ण स्वतन्त्रता एवं समानता थी। किसी प्रकार की कोई सरकार नहीं थी। एकमात्र कानून प्राकृतिक कानून था। इसमें व्यक्ति ने स्वयं पर अपने जीवन,

स्वतन्त्रता और सम्पति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए प्रवृत्त किया। शीघ्र ही मनुष्यों ने अनुभव किया कि प्राकृतिक स्थिति की असुविधाएँ इसके लाभों की अपेक्षा अधिक थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकारों को प्रवृत्त करने का प्रयास कर रहा था, अस्तु भयानक अस्त-व्यस्तता, असुरक्षा की अनिवार्य स्थिति उत्पन्न हो गयी। अतः लोगों ने स्वयं एक नागरिक (असैनिक) समाज स्थापित करने, सरकार गठित करने और इसको अपने कुछ अधिकारों को समर्पित करने के लिए सहमति व्यक्त की। लेकिन उन्होंने सरकार को निरंकुश नहीं बनाया। उन्होंने सरकार को केवल प्राकृतिक अधिकार की कार्यपालिका शक्ति ही प्रदान की। जैसे कि राज्य समाज के समस्त सदस्यों के संयुक्त रूप के अतिरिक्त कुछ नहीं है, इसकी सत्ता उन व्यक्तियों के समाज में प्रवेश करने से पूर्व प्राकृतिक स्थिति में जो शक्ति अथवा अधिकार की अपेक्षा अधिक नहीं हो सकती है। ये अधिकार उन व्यक्तियों ने एक समुदाय को दिये थे। समस्त शक्तियाँ, जो स्पष्ट रूप से समर्पित नहीं की थी, व्यक्तियों के पास स्वयं सुरक्षित हैं। यदि सरकार राजनीतिक संविदा (अनुबन्ध) के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से स्वीकृत सत्ता का अतिक्रमण करती अथवा दुरुपयोग करती, सरकार अत्याचारी अथवा अमानुषिक बन जाती है, तब व्यक्तियों को अनुबन्ध को भंग करने अथवा उसके विरुद्ध विद्रोह करने और उसे अपदस्थ करने का अधिकार है।

लॉक ने किसी भी रूप में निरंकुशतावाद की कटु आलोचना की। उसने निरंकुश राजतन्त्र की भी निन्दा की। वह संसद की निरंकुश प्रभुसत्ता का भी कटु आलोचक था। निःसन्देह उसने कानून निर्मात्री शाखा की सर्वोच्चता का समर्थन किया। उसकी इच्छा थी, कि कार्यपालिका विधान सभा की प्रतिनिधि होना चाहिए, लेकिन उसने जनता के प्रतिनिधियों को भी असीमित सत्ता का समर्थन नहीं किया। उसने विचार व्यक्त किया कि सरकार का गठन व्यक्ति की सम्पत्ति सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है। उसने किसी भी राजनीतिक अभिकरण को किसी एक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का अतिक्रमण करने का अधिकार नहीं दिया था। प्राकृतिक कानून जिसमें व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार निहित हैं, स्वतः ही सरकार की प्रत्येक शाखा पर प्रतिबन्ध हैं। जनता के प्रतिनिधियों का बहुमत भी वाणी अथवा भाषण की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाने और सम्पत्ति का अधिहरण करने के लिए विधिक रूप से कार्यवाही नहीं कर सकता। लॉक सामाजिक स्थायित्व अथवा सामाजिक प्रगति की अपेक्षा व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित रखने के लिए अधिक चिन्तित था। उसने सम्भवतः किसी भी रूप में निरंकुशतावाद के दोषों की अपेक्षा अराजकता के दोषों को स्वीकार किया होता। उसके प्राकृतिक अधिकारों, सीमित सरकार और निरंकुशता का सक्रिय विरोध के सिद्धान्त फ्रान्सीसी क्रान्ति के प्रमुख प्रेरणा स्रोत थे। अमेरिका के स्वतन्त्रता सेनानियों ने इन सिद्धान्तों को आत्मसात् कर लिया। उनको ब्रिटिश दमन के विरुद्ध औपनिवेशिक विद्रोह का सैद्धान्तिक आधार मिल गया। अमेरिका के स्वतन्त्रता की उद्घोषणा में इन सिद्धान्तों को अक्षरक्षः सम्मिलित किया गया है।

वाल्टेयर (Voltaire) (सन् 1694-1778)—वह रूढ़िवादी ईसाई धर्म को मानव समुदाय का सर्वाधिक कट्टर शत्रु मानता था। वह निरंकुश सरकार से अत्यधिक घृणा करता था। इंग्लैण्ड में अपने निर्वासन की अवधि में उसने लॉक की कृति का अध्ययन किया था

और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के प्रबल प्रतिपादन से अत्यधिक प्रभावित था। फ्रान्स लौटकर उसने अपने जीवन का अधिकांश समय बौद्धिक, धार्मिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए अनवरत संघर्ष में व्यतीत किया। लॉक के अनुरूप वह भी प्राकृतिक अधिकारों को प्रवृत्त करने के लिए सीमित सरकार का प्रबल समर्थक था। वाल्टेयर की धारणा थी कि समस्त मनुष्यों को प्रकृति ने स्वतन्त्रता, सम्पत्ति और सम्पत्ति की सुरक्षा का समान अधिकार प्रदान किया है। लेकिन वह लोकतान्त्रिक नहीं था। वह प्रबुद्ध राजतन्त्र अथवा मध्यम वर्ग द्वारा शासित गणतन्त्र को सरकार का आदर्श रूप मानता था। वह जीवनपर्यन्त जनसमुदाय से भयभीत रहा। उसको सदैव आशंका थी कि संगठित धर्म की उसकी आलोचना जनसमूह को हिंसात्मक गतिविधियों के लिए उत्तेजित नहीं कर दे।

बैरन द मान्टेस्क्यू (Baran D Montesquieu) (सन् 1689-1755)—वाल्टेयर के समान वह भी लॉक का शिष्य एवं ब्रिटिश संस्थाओं का प्रबल प्रशंसक था। अठारहवीं शताब्दी के राजनीतिक दर्शनिकों में मान्टेस्क्यू का विशिष्ट स्थान है। उसने अपनी प्रतिष्ठित कृति "स्प्रिट ऑफ लॉज" (Spirit of Laws) में राज्य के सिद्धान्त के सन्दर्भ में नवीन पद्धतियों एवं अवधारणाओं को अभिव्यक्त किया है। उसने निगमन द्वारा सरकार के विज्ञान का आधार बनाने की अपेक्षा उसने अरस्तु की वास्तविक राजनीतिक प्रणाली अध्ययन करने की पद्धति का अनुसरण किया। उसने इस तथ्य को कि समस्त व्यक्तियों के लिए समस्त परिस्थितियों में कोई एक पूर्ण सरकार हो सकती है, अस्वीकार किया। उसने इसके विपरीत विचार व्यक्त किया कि राजनीतिक संस्थाओं को सफल होने के लिए भौतिक स्थितियों और राष्ट्रों, जिनकी उनको सेवा करनी है, के सामाजिक प्रगति के स्तर के साथ समस्वर होना चाहिए। इस प्रकार उसने घोषणा की कि विशाल क्षेत्रीय देशों के लिए निरंकुशतावाद सर्वाधिक उपयुक्त है, मध्यम आकार के देशों के लिए सीमित राजतन्त्र और छोटे राज्यों के लिए गणतन्त्र सर्वाधिक उपयुक्त है। अपने स्वयं के राष्ट्र फ्रान्स के लिए उसका मत था कि सीमित राजतन्त्र सर्वाधिक उपयुक्त स्वरूप होगा। उसकी मान्यता थी कि अत्यधिक विशाल देशों को किसी प्रकार की संघीय योजना के बिना गणतन्त्र में परिवर्तित करना उचित नहीं होगा।

मान्टेस्क्यू विशेष रूप से अपने शक्तियों के पृथक्कीकरण (Seperation of Posers) के सिद्धान्त के लिए विश्वविख्यात है। उनकी दृढ़ धारणा थी कि किसी व्यक्ति को प्रदत्त शक्ति का किसी सीमा तक दुरूपयोग करने की व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। परिणामस्वरूप प्रत्येक सरकार, इसका स्वरूप कुछ भी हो, निरंकुशतावाद के स्तर तक पतित हो सकती है। इस प्रकार के दुष्परिणामों को रोकने के लिए उन्होंने विचार व्यक्त किया कि सरकार की सत्ता को, विधायी कार्यपालिका और न्यायिक तीन स्वाभाविक विभागों में विभाजित कर देना चाहिए। जब कभी इनमें से दो अथवा अधिक को एक ही व्यक्ति के हाथों में संकलित होने की अनुमति दी जाती है, स्वतन्त्रता का अन्त हो जाता है। निरंकुशता से बचने का एकमात्र उपाय सरकार के प्रत्येक अंग को अन्य दो अंगों के ऊपर अवरोध (check) के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाना चाहिए। उदाहरणार्थ, कार्यपालिका को निषेधाधिकार द्वारा कानून निर्मात्री शाखा के अतिक्रमणों को रोकने की शक्ति देनी चाहिए। कार्यपालिका को नियन्त्रण में रखने के लिए विधान सभा को महाभियोग चलाने का अधिकार

देना चाहिए। स्वतन्त्र न्यायपालिका हो, जिसमें विधान सभा अथवा कार्यपालिका की निरंकुश गतिविधियों के विरुद्ध व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा के लिए शक्तियाँ निहित होनी चाहिए। मान्टेस्क्यू कीं इस प्रिय योजना का अभिप्राय लोकतन्त्र को सहज और सुविधाजनक बनाना नहीं था। इसके विपरीत इसका उद्देश्य बहुमत की निरंकुश सर्वोच्चता, जो सामान्यतः विधान सभा में निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा अभिव्यक्त होती थी, को रोकना था। किसी भी स्वरूप में, चाहे वह कुछ व्यक्तियों की हो अथवा अनेक व्यक्तियों की निरंकुश सरकार के प्रति मध्यम वर्ग में गहन विरोध था। मान्टेस्क्यू का शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धान्त को फ्रान्स की क्रान्ति काल की पहली संगठित सरकार में समाविष्ट किया गया था। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में कुछ मामूली परिवर्तनों के साथ इस सिद्धान्त को समाहित किया गया है।

जीन जैक्स रूसो (Jean Jacks Rosseau) (सन् 1712-1778)—जीन-जैक्स रूसो लोकतन्त्र के महान् सिद्धान्त का जनक था। लोकतन्त्र के सिद्धान्त का फ्रान्सीसी क्रान्ति के बौद्धिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण स्थान था। उदारवाद के विपरीत लोकतन्त्र अपने मूलभूत अर्थ में लोकप्रिय शासन स्थापित करने की अपेक्षा व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा के लिए चिन्तित नहीं था। जो कुछ नागरिकों का बहुमत चाहता है, देश का सर्वोच्च कानून है क्योंकि जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है। अल्पमत का प्रभुसत्ता-सम्पन्न अधिकार बहुमत बनने का है। लोकतन्त्र के प्रवर्तक सामान्यतः अधिकारों के रूप में भाषण और प्रेस की स्वतन्त्रता के प्रति समर्पित है। इन अधिकारों का सरकार विधिक दृष्टि से उल्लंघन कर सकती है। वर्तमान आदर्श को साधारणतया उदारवाद के साथ मिश्रित कर दिया गया है, अस्तु इस तथ्य का उद्भव हुआ है। यथार्थ में लोकतन्त्र और उदारवाद आज समानार्थक रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। मूलरूप से दोनों, पूर्णरूप से पृथक् आदर्श थे। ऐतिहासिक लोकतन्त्र समस्त व्यक्तियों की स्वाभाविक समानता, वंशानुगत विशेषाधिकार के विरोध और जनसमूह की बुद्धि और गुणों में अटूट आस्था में विश्वास करता था।

रूसो स्वच्छन्दतावाद का जनक था। निरन्तरता सदैव उसका सर्वोच्च गुण नहीं था। राजनीतिक सिद्धान्तों को अभिव्यक्त करने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियाँ "सोशल कान्ट्रेक्ट". (Social Contract) और "डिस्कोर्स आन दि ओरिजन ऑफ इनइक्वलिटी" (Discource on the origin of inequality) थीं। दोनों कृतियों में उन्होंने लोकप्रिय अभिधारणा को मान्यता दी है कि समस्त मनुष्य प्राकृतिक स्थिति में रहते थे। लेकिन लॉक के विपरीत वह प्राकृतिक स्थिति को वास्तविक स्वर्ग के रूप में मानता था। किसी भी व्यक्ति को अपने अधिकारों को अन्यों के विरुद्ध बनाये रखने में कोई असुविधा नहीं होती। यथार्थ में किसी भी प्रकार के संघर्ष के बहुत कम अवसर आते थे, क्योंकि दीर्घकाल तक मनुष्यों के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी और प्रत्येक व्यक्ति पड़ोसी के समान था। कालान्तर में मुख्य रूप से इस तथ्य के कारण कि कुछ लोगों ने भूमि के टुकड़ों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया, अनेक विवाद उत्पन्न हो गये। यह सब इस ढंग से हुआ कि विभिन्न अंशों की असमानता विकसित हो गयी। परिणामस्वरूप "धोखाधड़ी, मक्कारी, धृष्टतापूर्ण प्रदर्शन और अतृप्त महत्वाकांक्षा का मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों पर प्रभुत्व हो गया। व्यक्तियों के लिए एक असैनिक (नागरिक) समाज की स्थापना करना और अपने समस्त अधिकारों को उस समाज

में समर्पित करके उनको अपने अधिकारों की सुरक्षा की आशा थी। यह कार्य व्यक्तियों ने एक सामाजिक संविदा के माध्यम से किया था। इसमें प्रत्येक व्यक्ति, व्यक्तियों के सामूहिक रूप के साथ बहुमत की इच्छा के समक्ष समर्पण करने के लिए सहमत हो गया। इस प्रकार राज्य का उद्‌भव हुआ।

रूसो ने उदारवादियों से पूर्णरूप से भिन्न प्रभुसत्ता की अवधारणा का विकास किया। लॉक के अनुसार, प्रभुसत्तात्मक शक्ति का एक भाग राज्य को दिया गया था, शेष जनसमुदाय ने स्वयं के पास रखा था। उससे भिन्न रूसो ने विचार व्यक्त किया कि प्रभुसत्ता अविभाज्य है और जब असैनिक समाज का गठन किया, समस्त प्रभुसत्ता समाज में स्वतः ही समाहित हो गयी। उसने बल देते हुए कहा कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक संविदा का सदस्य बन जाता है, जिसने अपने समस्त अधिकार सामूहिक रूप से जनता को दे दिये और पूर्णरूप से 'सामान्य इच्छा' (General Will) के प्रति समर्पण के लिए सहमत हो गया। इसका अर्थ है कि राज्य की सर्वोच्च सत्ता पर किसी प्रकार का कोई बन्धन अथवा सीमा नहीं है। बहुमत के मत द्वारा अभिव्यक्त सामान्य इच्छा अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। राजनीतिक अर्थ में बहुमत जो निर्णय करता है, सदैव उचित है और प्रत्येक नागरिक पूर्णरूप से उस निर्णय से बाध्य है। व्यावहारिक दृष्टि से राज्य का अर्थ बहुमत है जो विधिक दृष्टि से सर्वव्यापक है। रूसो के अनुसार इसका यह अर्थ नहीं होता है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। इसके विपरीत राज्य के अधीन हो जाने से वास्तविक स्वतन्त्रता में वृद्धि हो जाती है। समाज को अपने समस्त अधिकार समर्पित करके व्यक्ति कानून का पालन करने वाली तर्कसंगत वास्तविक स्वतन्त्रता बदले में प्राप्त करता है। व्यक्ति को सामान्य इच्छा का पालन करने को बाध्य करने का अर्थ उसको स्वतन्त्र होने के लिए विवश करना है। रूसो द्वारा राज्य का उल्लेख करने का अर्थ सरकार नहीं होता। वह राज्य को राजनीतिक दृष्टि से संगठित मानव समुदाय मानता था जिसका सर्वोच्च कार्य सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है। राज्य की सत्ता का प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता है, लेकिन जनता द्वारा स्वयं मौलिक कानूनों के निर्माण के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त करना चाहिए। सरकार, राज्य का मात्र कार्यपालिका अभिकरण है। इसका कार्य सामान्य इच्छा का निर्माण करना नहीं है, वरन् सामान्य इच्छा को कार्यान्वित करना है। इसके अतिरिक्त मानव समुदाय सरकार स्थापित कर सकता है अथवा जब कभी समाज चाहता है, नीचे गिरा सकता है।

रूसो के समानता और बहुमत की सर्वोच्चता के सिद्धान्तों ने फ्रान्स की क्रान्ति के द्वितीय चरण को सर्वाधिक प्रभावित किया था। रोबेसपियरे जैसे उग्र सुधारवादी रूसो के विचारों के प्रबल समर्थक थे। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति जैकसन ने अपने लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों में रूसो के दार्शनिक सिद्धान्तों को सम्मिलित किया था। रूसो के अनुसार, राज्य विधिक दृष्टि से सर्वव्यापक है और वास्तविक स्वतन्त्रता सामान्य इच्छा के समक्ष समर्पण में निहित है। उसने राज्य को उपासना की वस्तु बना दिया और व्यक्ति को राजनीतिक तन्त्र में मात्र दाँता बना दिया। यद्यपि रूसो ने विचार व्यक्त किया कि बहुमत नैतिक प्रतिबन्धों से सीमित रहेगा और अपनी सरकार को गिरा देने के जनता के अधिकार पर बल दिया। ये सीमाएँ रूसो द्वारा प्रतिपादित पूर्ण (निरंकुश) प्रभुसत्ता का प्रतिरोध करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

एडम स्मिथ (Adam Smith) (सन् 1723-1790)—स्काटलैण्डवासी एडम स्मिथ प्रबुद्ध युग के सर्वाधिक महान एवं उत्कृष्ट अर्थशास्त्रियों में थे। स्मिथ ने अपना जीवन एडिनबरा विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य के प्राध्यापक के रूप में आरम्भ किया था। सन् 1759 में प्रकाशित कृति "थ्योरी आफ मारल सेन्टीमेण्ट्स" (Theory of Moral Sentiments) से स्मिथ को ख्याति मिली। सन् 1776 में उसकी कृति "इनक्वायरी इन टू दि नेचर एण्ड काजेज आफ दि वैल्थ आफ नेशन्स" (Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations) प्रकाशित हुई। इस कृति को आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त की आधारशिला माना जाता है। इस कृति में स्मिथ ने विचार व्यक्त किया कि कृषि अथवा प्रकृति अमूल्य उपहार की अपेक्षा श्रम ही सम्पत्ति का वास्तविक स्रोत है। सामान्य रूप से स्मिथ ने हस्तक्षेप नहीं करने के सिद्धान्त को स्वीकार किया। उसका दृढ़ विचार था कि समस्त मानव समुदाय की समृद्धि को प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों के लिए स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की अनुमति देकर प्रोत्साहित किया जा सकता है। लेकिन उसने स्वीकार किया कि कुछ प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप वांछनीय होंगे। राज्य को अन्याय और दमन रोकने, शिक्षा के विकास और सार्वजनिक स्वास्थ्य की सुरक्षा और अनिवार्य उद्यमों को बनाये रखने के लिए राज्य को हस्तक्षेप करना चाहिए। हस्तक्षेप नहीं करने के सिद्धान्त की व्यापक सीमाएँ थीं। 18वीं और 19वीं शताब्दियों के आर्थिक व्यक्तिवादियों ने स्मिथ की कृति 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' को पवित्र आर्थिक कृति के रूप में स्वीकार किया। फ्रान्स की क्रान्ति में इसका अप्रत्यक्ष लेकिन गम्भीर प्रभाव था। यह वाणिज्यवादियों के लिए उत्तर था और मध्यम वर्ग की राजनीतिक प्रणाली जो आर्थिक स्वतन्त्रता के मार्ग को अवरुद्ध करती थी, को समाप्त करने की महत्त्वाकांक्षा को बल दिया।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनेक विद्वानों ने उत्पादन और व्यापार के ऊपर सार्वजनिक नियन्त्रण के सन्दर्भ में पारम्परिक अवधारणाओं की कटु अलोचना की। उनकी आलोचना का मुख्य लक्ष्य वाणिज्यवादी नीति थी। नया अर्थशास्त्र प्रबुद्ध युग की मूलभूत अवधारणाओं विशेष रूप से कठोर कानूनों द्वारा शासित यान्त्रिक विश्व का विचार पर आधारित था। सामान्य रूप से यही धारणा प्रचलित थी कि उत्पादन और सम्पत्ति का वितरण भौतिकशास्त्र और खगोलशास्त्र के नियमों के अनुरूप नियमों से शासित होते हैं। नये आर्थिक सिद्धान्त को राजनीतिक उदारवाद का प्रतिरूप माना जा सकता है। दोनों के मुख्य उद्देश्य समान थे। दोनों, सुरक्षा और व्यक्ति के स्वयं की आर्थिक गतिविधियों के संचालन के लिए अधिकतम सम्भव स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के अनुरूप न्यूनतम स्तर तक सरकार की शक्तियों को कम करना चाहते थे।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. "सभी प्रकार के लेखकों ने फ्रान्स की राज्य क्रान्ति को तैयार किया।" क्या आप सहमत हैं ?
   "All sorts of the writers prepared the ground for the French Revolution." Do you agree ? (बी. आर. अम्बेदकर, 1997)

2. 1789 की फ्रान्सीसी क्रान्ति में बुद्धिजीवियों की भूमिका का विवरण दीजिये।
   Discuss the role of the intellectuals in the French Revolution of 1789.
   (गोरखपुर, 1996, 98, 2000; अवध, 1994; बुन्देलखण्ड, 1995; रुहेलखण्ड, 1995, 97; मगध, 1996; गढ़वाल, 2000)
3. 1789 की फ्रान्सीसी क्रान्ति में दार्शनिकों की देनों का विवेचन करें।
   Discuss the contribution of the philosophers to the French Revolution of 1789. (अवध, 1991, 97, 99; रुहेलखण्ड, 1991, 93, 99; गोरखपुर, 1989, 94; बुन्देलखण्ड, 1992, 98; मगध, 1991, 96, 98; पटना, 1998; राँची, 1996, 98; मेरठ, 1991, 95; रायपुर, 1997)
4. फ्रान्सीसी क्रान्ति के समय फ्रान्स की स्थिति का वर्णन करें। क्रान्ति के उत्पत्ति के कारणों का वर्णन करें।
   Describe the condition of France on the eve of the French Revolution and give chief causes of the outbreak of this revolution.
   (लखनऊ, 1993, 97, 2000; पटना, 1994; राजस्थान, 2000)
5. प्राचीन शासन व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए। क्या आप समझते हैं कि फ्रान्स की क्रान्ति अनिवार्य थी ?
   Discuss the main features of the Ancient Regime. Do you think that the revolution of 1789 was meritable ? (गढ़वाल, 1998)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. क्रान्ति से पूर्व फ्रान्स के व्यक्तियों की औसत आयु—
   (क) 59 वर्ष (ख) 70 वर्ष (ग) 20 वर्ष (घ) 29 वर्ष
2. यूरोप की कितने प्रतिशत जनता जीविकोपार्जन पर निर्भर थी—
   (क) 40% (ख) 75% (ग) 85% (घ) 55%
3. सन् 1800 में लन्दन की जनसंख्या ············ थी—
   (क) 30 लाख (ख) 10 लाख (ग) 35 लाख (घ) 47 लाख
4. फ्रान्स की 2,50,00,000 जनसंख्या में पादरियों की संख्या ············ थी—
   (क) 1,30,000 (ख) 3 लाख (ग) 2,30,000 (घ) 1,85,000
5. अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी कितने स्वतन्त्र प्रभुसत्ता राज्यों में ············ विभाजित था—
   (क) 240 (ख) 360 (ग) 300 (घ) 200
6. प्रशा के शासक फ्रेडरिक के कुशल सैनिकों की संख्या ············ थी—
   (क) 50,000 (ख) 3 लाख (ग) 2 लाख (घ) 4 लाख
7. आस्ट्रिया में मेरिया थेरेसा ने सन् 1740—80 तक शासन किया। इसके कुछ वर्षों तक उसके पुत्र जोसेफ ने रीजेण्ट के रूप में कार्य किया था। जोसेफ का रीजेण्ट के रूप में कार्यकाल क्या था—
   (क) 15 वर्ष (ख) 25 वर्ष (ग) 17 वर्ष (घ) 12 वर्ष
8. रूस के शासक पीटर महान् का शासनकाल ············ था—
   (क) 1680-1715 (ख) 1692-1717 (ग) 1689-1725 (घ) 1697-1729
9. सन् 1714 में जर्मन मूल का जार्ज प्रथम इंग्लैण्ड में सिंहासनारूढ़ हुआ। इस समय उसकी आयु ············ थी—
   (क) 70 वर्ष (ख) 54 वर्ष (ग) 41 वर्ष (घ) 71 वर्ष

10. इंग्लैण्ड में जार्ज तृतीय ने .... शासन किया—
(क) 1760-1820 (ख) 1783-1843 (ग) 1771-1821 (घ) 1799-1859
11. इंग्लैण्ड में गौरवशाली रक्तहीन क्रान्ति किस सन् में हुई थी—
(क) 1681 (ख) 1689 (ग) 1688 (घ) 1691
12. जान लॉक रचित कृति का नाम—
(क) स्प्रिट ऑफ लाज (Spirit of Laws)
(ख) सैकेण्ड ट्रीटाइज ऑफ सिविल गवर्नमेण्ट (Second Treatise of Civil Government)
(ग) सोशल कॉण्ट्रेक्ट (Social Contract)
(घ) लैवायथन (Levithan)

[उत्तर—1. (घ), 2. (ग), 3. (ख), 4. (क), 5. (ख), 6. (ग), 7. (क), 8. (ग), 9. (ख), 10. (ख), 11. (ग), 12. (ख)।]

2

फ्रान्स की क्रान्ति—सन् 1789

[FRENCH REVOLUTION, 1789]

क्रान्ति के अंग्रेजी पर्याय रिवोल्यूशन (Revolution) का अर्थ सत्रहवीं शताब्दी में सामान्यतः राजनीतिक परिवर्तन की अपेक्षा चक्रीय गति ही ग्रहण किया जाता था। सन् 1688 में इंग्लैण्ड में घटित घटनाओं की अभिव्यक्ति के लिए सन् 1700 के निकट फ्रान्स के कुछ विद्वानों ने क्रान्ति शब्द का प्रयोग किया था। उसी समय से विद्वानों ने दृढ़ निश्चय किया कि इंग्लैण्ड के राजनीतिक परिवर्तनों के अनुरूप फ्रान्स के राजनीतिक परिवर्तनों को भी 'फ्रान्स की राज्य क्रान्ति' की संज्ञा प्रदान करना ही न्यायोचित है'। एक अंग्रेज प्रेक्षक ने सन् 1789 में पेरिस में विचार व्यक्त किया कि "क्रान्ति पूर्ण हो गयी"। उसी आधार पर आज भी विद्वान '1789 की फ्रान्स की राज्य क्रान्ति' शीर्षक के अन्तर्गत ही लिखते हैं। पिछले तीन दशकों में किये गये शोधकार्य के आधार पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सन् 1787 से 1799 के मध्य घटित घटनाएँ अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक कारणों का परिणाम थीं। अस्तु क्रान्ति के आरम्भ होने तथा समाप्ति की निश्चित तिथि निर्धारित करना सम्भव नहीं है। लगभग एक शताब्दी पूर्व फ्रान्स के विद्वान तोकेविले ने मत व्यक्त किया (इसको सत्य स्वीकार किया जाता है) कि क्रान्ति की अनेक घटनाओं का अतीत की घटनाओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह घटनाएँ अतीत से किसी प्रकार विलग नहीं थी। फ्रान्स की बारह वर्ष की अवधि का मानव इतिहास में मूलभूत महत्व है। यह काल एक ऐसे चित्रपट के सदृश्य है और उनका प्रभाव पूरी उन्नीसवीं शताब्दी में निरन्तर दृष्टिगत होता है।

अनेक दृष्टियों से फ्रान्सीसी क्रान्ति महान पाश्चात्य क्रान्ति का एक पक्ष थी। पाश्चात्य क्रान्ति अमेरिका के उपनिवेशों में सन् 1770 में प्रारम्भ हो चुकी थी। सन् 1782-83 में उसका प्रसार आयरलैण्ड एवं अन्य लो (LOW) देशों हंगरी और पोलेण्ड में हो चुका था। "फ्रान्स की क्रान्ति के साथ यूरोपीय इतिहास, एक देश के इतिहास, एक राष्ट्र, एक घटना और एक व्यक्ति में समाहित हो जाता है। राष्ट्र फ्रान्स है, घटना फ्रान्स की क्रान्ति है और एक व्यक्ति नैपोलियन है।"

फ्रान्स की क्रान्ति, फ्रान्स और यूरोप की ही नहीं वरन् मानव इतिहास की भी एक महान घटना थी। इसने मानवता को स्वतन्त्रता एवं भ्रातृत्व के नवीन विचार दिये, जिनका विश्व के समस्त भागों में व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ। यह जितना शस्त्रों का युद्ध था उतना ही विचारों का भी था। क्रोपकिन (Kropotkin) ने मत व्यक्त किया है, "फ्रान्स की महान क्रान्ति जिसने समस्त यूरोप को उत्तेजित किया, हर वस्तु को समाप्त कर दिया और कुछ वर्षों में विश्वव्यापी पुनर्निर्माण का कार्य आरम्भ किया तथा अन्तरिक्षीय शक्तियों के विलोपन तथा विश्व के पुनःसृजन के रूप में कार्य किया।" वह आगे कहते हैं, "दो महान विचारधाराओं का निर्माण किया गया और उन्होंने महान फ्रान्स की क्रान्ति का निर्माण किया। उनमें से एक विचारधारा, राज्यों के राजनीतिक पुनर्गठन से सम्बन्धित मध्यम वर्गों से आयी, दूसरी क्रियाशीलता की धारा जनता से आयी। नगरों के कृषक तथा श्रमिक दोनों, अपनी आर्थिक स्थिति में तत्काल तथा निश्चित सुधार चाहते थे और जब ये दोनों धाराएँ परस्पर मिल गयीं और एक उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयास में सम्मिलित हो गयी, जो कुछ काल के लिए दोनों के लिए समान था, जब उन्होंने कुछ समय तक एक दूसरे की सहायता की, तो उसका परिणाम क्रान्ति थी।" फ्रान्स की क्रान्ति के कारण अथवा कारणों का उल्लेख करना अत्यधिक जटिल कार्य है। प्राचीन शासन, राजतन्त्र, मध्यम वर्ग, दार्शनिक, कृषक, वित्तीय दिवालियापन (रिक्तता) अथवा अन्य किसी भी एक को क्रान्ति के आरम्भ होने का सर्वाधिक निर्णायक कारण नहीं कह सकते हैं।

फ्रान्स की क्रान्ति के कारणों को सुविधा की दृष्टि से, राजनीतिक, आर्थिक तथा बौद्धिक तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। यद्यपि यह वर्गीकरण स्वेच्छाचारी प्रतीत होता है क्योंकि इनमें से कोई भी एक दूसरे से पृथक् नहीं था। उदाहरणार्थ, बौद्धिक कारणों और कुछ अंशों तक राजनीतिक कारणों का उद्भव आर्थिक कारणों से ही हुआ है।

पतित राजनीतिक व्यवस्था (Corrupt Political System)

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पश्चिमी जगत के राजनीतिक इतिहास में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। निरंकुश शासकों के काल में विकसित प्रशासनिक व्यवस्था तथा समाज का पतन हो गया। इंग्लैण्ड में अधिकांश राजनीतिक प्रणाली का सन् 1689 के उपरान्त रूपान्तर हो गया था, लेकिन अन्य यूरोपीय देशों में निर्जीव तथा भ्रष्ट करती हुई पतित प्रशासनिक व्यवस्था चल रही थी। यूरोप के प्रत्येक प्रमुख देश में सैनिकवाद तथा कुलीनों का दमन करके अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने की तीव्र महत्वाकांक्षाओं के प्रभाव में निरंकुश राजतन्त्र का विकास हो रहा था। फ्रान्स के अन्तिम तीन बोर्बो राजाओं के शासन काल के समान दयनीय स्थिति किसी अन्य देश में नहीं थी। एडवर्ड बर्न्स तथा फिलिप लीरैलिस लिखते हैं, "लुईस चौदहवें निरंकुश शासन का सर्वोच्च अवतार था। उसके उत्तराधिकारी लुईस पन्द्रहवें तथा लुईस सोलहवें सरकार को अपव्यय तथा अनुत्तरदायित्व के निम्नतम स्तर तक खींच ले गये। इसके अतिरिक्त उनकी जनता उनकी हानियों से अवगत होने के लिए पर्याप्त प्रबुद्ध थी।" फ्रान्स की क्रान्ति व्यापक पश्चिमी क्रान्ति का चरमोत्कर्ष थी। इसके साथ यह सर्वाधिक व्यापक तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी।

लेखक द्वय आगे कहते हैं, "यह बोर्बो राजाओं का निरंकुश शासन था। लगभग 200 वर्षों तक फ्रान्स में सरकार अधिकांश एक व्यक्ति की संस्था थी। चौदहवीं, पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियों में फ्रान्स में संसद के नाम से विख्यात एस्टेट्स जनरल (धर्माधिकारियों कुलीन वर्ग तथा जनता के प्रतिनिधियों से गठित) अनियमित अन्तरालों के बाद मिलती थी, लेकिन सन् 1614 के बाद इसका कभी आह्वान ही नहीं किया गया। इसके बाद से राजा ही प्रभुसत्ता का एक मात्र स्रोत था। वास्तविक अर्थ में राजा ही राज्य था। उसकी साम्राज्यवादी इच्छा जो कुछ निर्देश देती, बिना महाभियोग अथवा किसी प्रकार के वैधानिक प्रतिबन्धों के वह लगभग सब कुछ कर सकता था। संवैधानिकता अथवा जनता के प्राकृतिक अधिकारों के प्रश्न उसको कष्ट नहीं देते थे।"

लुईस चौदहवें के शासन काल में निरंकुश राजतन्त्र अपने गौरव तथा शक्ति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। वह कहता था, "प्रभुसत्ता मेरे व्यक्तित्व में निहित है, विधायी शक्तियाँ केवल मुझ में निहित हैं।" वह प्रायः कहता था, "मैं ही राज्य हूँ।" राजा कभी देश के विभिन्न भागों की स्थिति से परिचित होने के लिए यात्रा नहीं करता था, इसलिए उसका जनता के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध समाप्त हो चुका था। जनता की पीड़ाओं एवं आकांक्षाओं का उसको किंचित भी ज्ञान नहीं था। उसका ध्यान केवल अपनी राजधानी पर केन्द्रित था। राजधानी में देश के समस्त कुलीन राजकीय दरबार के निम्नस्तरीय हास्य-विनोद में भाग लेने के लिए एकत्र होते थे। राजा स्वेच्छापूर्वक किसी को राजाज्ञा अथवा Letters De Cachet गिरफ्तार करवा सकता था और बिना विवाद के न्यायालय द्वारा सुनवाई के दण्ड दे सकता था। राजा के अतिरिक्त उसके कृपापात्र भी स्वेच्छापूर्वक इस अधिकार का प्रयोग करते थे। व्यक्ति को केवल राज्य मुद्रांकित पत्र की आवश्यकता होती थी। राजा के कृपापात्र ऐसे मुद्रांकित पत्र जिसमें नाम का स्थान रिक्त रहता था, सहज ही प्राप्त कर लेते थे। अतः किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं थी।

लुईस पन्द्रहवें (Louis XV)—लुईस चौदहवें का उत्तराधिकारी लुईस पन्द्रहवाँ (सन् 1715-1774) निष्क्रिय, अयोग्य, अकर्मण्य तथा विलासी था। वह सदैव आमोद-प्रमोद एवं विलासिता में ही निमग्न रहता था। उसकी प्रिय महिलाओं का देश की राजनीति पर अत्यधिक प्रभाव था। महान लुईस चौदहवें ने वित्तीय रिक्तता अपने उत्तराधिकार के रूप में अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ी थी। अपनी मृत्यु-शैय्या पर अपने प्रपौत्र लुईस पन्द्रहवें, उत्तराधिकारी को परामर्श देते हुए कहा था, "मेरे बच्चे, अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्वक रहने का प्रयत्न करना, युद्ध के लिए मेरी अभिरुचि का अनुकरण मत करना, न अत्यधिक व्यय करना जैसा मैंने किया, शीघ्रातिशीघ्र लोगों को पीड़ाओं से मुक्त करने का प्रयत्न करना और इस प्रकार वह प्राप्त करना जो दुर्भाग्य से मैं स्वयं करने में असमर्थ रहा हूँ।" सर्वविदित है, उसने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और लोगों को सुख-शान्ति देने की अपेक्षा, अपने युद्धों तथा निम्नस्तरीय हास्य-विनोद के द्वारा लोगों की पीड़ाओं में वृद्धि की।

आस्ट्रिया के पेरिस में राजदूत काम्टे द मर्सी ने साम्राज्ञी मेरिया थेरेसा, लुईस पन्द्रहवें की सास को लिखा, "दरबार में अस्त-व्यस्तता, चुगली, लोकोपवाद एवं अन्याय के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सरकार के उच्च तथा आदर्श सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए कोई प्रयास

नहीं किया गया है। हर बात सौभाग्य अथवा अवसर पर छोड़ दी जाती है। राष्ट्र के प्रशासनिक विषयों की दयनीय स्थिति ने अकथनीय घृणा तथा हतोत्साह को उत्तेजित किया है, जबकि उन लोगों के षड्यन्त्र, जो घटनास्थल पर उपस्थित होते हैं, अराजकता को बढ़ाते हैं। पवित्र कार्य बिना किये हुए छोड़ दिये गये हैं और अप्रिय व्यवहार को सहन किया जाता है।" डा. जी. पी. गूच कहते हैं, "लुईस पन्द्रहवें की अपने देशवासियों को पैतृक सम्पति के रूप में कुशासित, असन्तुष्ट तथा कुंठित फ्रान्स था। दूर से देखने से प्राचीन शासन बेसिल के समान सुदृढ़ (ठोस) प्रतीत होता है, लेकिन दीवारें मरम्मत के अभाव में जीर्ण-शीर्ण हो चुकी थीं, और इसकी नींव ने गिरने का संकेत दिया। निरंकुश राजतन्त्र, विशेषाधिकृत कुलीन तन्त्र, असहिष्णु चर्च, बन्द सहयोगी संसद, सब लोकप्रिय हो चुकी थीं और सेना, कभी फ्रान्स का गौरव, रौसबेक में निन्दनीय पराजय से कलंकित हो गयी। यद्यपि गणतन्त्रवाद का थोड़ा विचार था लेकिन राजतन्त्र की रहस्यात्मकता वाष्प बन कर उड़ चुकी थी।"

लुईस सोलहवाँ (Louis XVI)—बीस वर्ष की आयु में लुईस सोलहवाँ (सन् 1774-1793) राजा बना। कभी किसी ने सोचा था कि वह कभी राजा बनेगा। उससे पूर्व अनेक राजकुमार उत्तराधिकार के क्रम में थे। उसका राजा बनना एक सुदूर स्वप्न था, लेकिन अन्य समस्त राजकुमारों के आकस्मिक निधन के कारण दिवा स्वप्न साकार हो गया। प्रशासन योग्य बनाने के लिए कोई शिक्षा नहीं मिली थी। राज्य के विषयों की कुशलतापूर्वक व्यवस्था करने में असमर्थता तथा असहाय स्थिति का अनुमान उसके स्वयं के कथन से लगाया जा सकता है। उसने कहा, "ऐसा प्रतीत होता है, जैसे विश्व मेरे ऊपर गिर रहा है। ईश्वर! मेरे ऊपर कितना भार है और मुझे कुछ भी नहीं सिखाया है।" वह अत्यधिक कुरूप था और परिषदों की बैठकों की अध्यक्षता करने में लज्जा अनुभव करता था। वह आलसी और मूर्ख था। ताले बनाना तथा महल की खिड़की से हिरन का शिकार करना प्रिय शौक थे। जब देश के समक्ष गम्भीर समस्याएँ थीं, वह राजा के रूप में असफल हुआ। समकालीन विद्वान लिखता है, "कोई उसका विश्वास नहीं करता है, क्योंकि उसकी कोई इच्छा नहीं है।" उसकी प्रशासन कला में रुचि नहीं थी। मोलेशेरबस् के त्याग-पत्र पर अभिव्यक्त विचार से स्पष्ट है। उसने कहा, "तुम कितने भाग्यशाली हो। मैं चाहता हूँ मैं भी त्याग-पत्र दे दूँ।"

मेरी आंत्वानेट—लुईस सोलहवें पर भी उसकी पत्नी मेरी आंत्वानेट का सर्वाधिक प्रभाव था। आस्ट्रिया के सम्राट जोसेफ द्वितीय की बहन तथा आस्ट्रिया-हंगरी की साम्राज्ञी मेरिया थेरेसा की पुत्री अत्यधिक सुन्दर एवं भव्य थी। उसकी इच्छाशक्ति दृढ़ थी तथा निर्णय लेने की अपूर्व क्षमता थी, लेकिन वह अत्यधिक घमण्डी, जिद्दी, विवेकहीना तथा अपव्ययी महिला थी। प्रशासनिक विषयों का उसे कोई अनुभव नहीं था। वह लुईस को परामर्श देने तथा उसके कल्याण के लिए कार्य करने में असमर्थ थी। वह सदैव लोभी एवं स्वार्थी चाटुकारों से घिरी रहती थी। राज्य के प्रशासनिक विषयों में अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण समस्याओं तथा विवादों में वृद्धि हुई। एच. ए. एल. फिशर क्रान्ति के लिए आंत्वानेट के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में लिखते हैं, "आलोचकों को वह साइरन (भोंपू) के सदृश्य प्रतीत होती थी, जो राज्यरूपी जलपोत को चट्टानों की ओर ले जा रहा हो।"

विनाशकारी युद्धों में सक्रिय भाग (Active Participation in Destructive Wars)—अठारहवीं शताब्दी में फ्रान्स ने अनेक विनाशकारी युद्धों में सक्रिय भाग लिया। यह क्रान्ति के राजनीतिक कारणों में सर्वाधिक निर्णायक कारण था। प्रशासनिक नीतियाँ कितनी ही दमनकारी हों, लेकिन प्रशासनिक प्रणाली की कटु आलोचना से क्रान्तियाँ नहीं होती हैं। किसी राजनीतिक और सामाजिक कायापलट (जिस ढंग से वास्तविक क्रान्ति की व्याख्या करनी चाहिए) के लिए वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था का पूर्णरूप से पतन हो जाना आवश्यक है। अराजकता की स्थिति उत्पन्न करने, सरकार के निकम्मेपन और भ्रष्टाचार को व्यक्त करने और जनसमुदाय और प्रबल समर्थकों में घृणा और कठिनाई उत्पन्न करने के लिए कुछ अनिवार्य रूप से घृणित होना चाहिए। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विदेशी शक्तियों से अपमानजनक पराजय अथवा संघर्ष द्वारा गम्भीर घातक परिणामों से श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं हो सकता है। दीर्घकालीन और विनाशकारी युद्धों के अतिरिक्त आधुनिक युग में किसी महान क्रान्ति के लिए किसी अन्य कारण की कल्पना नहीं की जा सकती। लुईस पन्द्रहवें के शासन काल में सप्तवर्षीय युद्ध (सन् 1756-1763) ने फ्रान्स की क्रान्ति के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण किया। इस युद्ध में फ्रान्स के विरुद्ध इंग्लैण्ड और प्रशा थे। आस्ट्रिया और कुछ काल के लिए रूस की सहायता के उपरान्त भी फ्रान्स की अपमानजनक पराजय हुई थी। परिणामस्वरूप, फ्रान्स को अपने लगभग समस्त औपनिवेशिक क्षेत्रों से वंचित होना पड़ा था। यह स्वाभाविक और न्यायोचित भी था कि इस महाविनाश और विपत्ति के लिए सरकार की अकर्मण्यता और अयोग्यता को दोषी माना जाये। सन् 1778 में लुईस सोलहवें द्वारा अमेरिका के स्वतन्त्रता संघर्ष में सक्रिय सहयोग और समर्थन ने इस युद्ध के घातक परिणामों को अत्यधिक भयंकर बना दिया था। यद्यपि फ्रान्स ने विजयी शक्ति का समर्थन किया था, लेकिन पश्चिमी गोलार्द्ध में तीन वर्ष से अधिक समय तक युद्धपोत और सेनाओं के व्यय ने फ्रान्स को लगभग दिवालिया कर दिया था।

वित्तीय स्थिति (Economic Condition)

फ्रान्स सरकार की दयनीय वित्तीय स्थिति फ्रान्स की क्रान्ति का एक अन्य प्रमुख कारण थी। "वित्तीय कारण क्रान्ति के आधार में निहित थे। लुईस चौदहवें के युद्धों ने फ्रान्स की अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया था, और उसकी मृत्यु के समय देश की वित्तीय स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। यद्यपि लुईस चौदहवें ने अपने उत्तराधिकारी लुईस पन्द्रहवें को युद्ध से विलग रहने का परामर्श दिया था, लेकिन उसने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। लुईस चौदहवें ने अपनी नई राजधानी वर्साय के निर्माण तथा इसकी साज-सज्जा पर अत्यधिक अपव्यय किया था। उसी परम्परा का अनुसरण करते हुए लुईस पन्द्रहवें ने महलों के विशेष प्रबन्ध तथा प्रिय महिलाओं के भोग विलास पर अपव्यय किया था। इसके अतिरिक्त उसने अनेक युद्धों में सक्रिय भाग लेने की धृष्टता भी की। उसने पोलैण्ड तथा आस्ट्रिया के उत्तराधिकार युद्धों तथा सप्तवर्षीय युद्ध में भाग लिया। लुईस सोलहवें के राज्याभिषेक के समय फ्रान्स वित्तीय रिक्तता के कगार पर खड़ा था, लेकिन फ्रान्स ने अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम में भी सक्रिय भाग लिया। निस्सन्देह फ्रान्स को, सप्तवर्षीय युद्ध में इंग्लैण्ड से पराजय

का प्रतिशोध लेने से मानसिक सन्तोष मिला, लेकिन वित्तीय स्थिति पूर्वापेक्षा अधिक खराब हो गयी, जो फ्रान्स की क्रान्ति का तात्कालिक कारण बनी। वर्साय के दरबार में 1,800 व्यक्ति थे। इसमें 1,600 कर्मचारी राजा और उसके परिवार की व्यक्तिगत सेवा के लिए थे। रानी के 500 सेवक थे। राज्य के अस्तबल में 1,900 घोड़े तथा 200 वाहन थे। इनका वार्षिक व्यय 40 लाख डालर से अधिक था। राजा की मेज 15 लाख डालर की थी। चारों ओर विलासिता का साम्राज्य था। फ्रान्स की क्रान्ति के समय कुल व्यय 2,80,00,000 डालर था।

फ्रान्स की वित्तीय प्रणाली भी दयनीय तथा निन्दनीय थी। कुलीन वर्ग तथा धर्माधिकारी वर्ग देश की कुल सम्पत्ति के 40 प्रतिशत का स्वामी था, लेकिन उसने राजकोष में किसी प्रकार का योगदान नहीं दिया। परिणामस्वरूप करारोपण का भार देश की सामान्य जनता पर पड़ा। करों के भार ने जनसमुदाय में अत्यधिक कटुता और आक्रोश को जन्म दिया। राष्ट्रीय ऋण बहुत अधिक बढ़ गया था, और यह ऋण 4,46,74,78,000 फ्रैंक पहुँच गया था। सन् 1788 में कुल राजस्व 47,24,15,549 था और राज्य को केवल 21,17,08,977 फ्रैंक ही प्राप्त हुए। फ्रान्स को 23,69,99,99। फ्रैंक प्रतिवर्ष ब्याज देना पड़ता था। फ्रान्स की क्रान्ति के समय राज्य के कुल वार्षिक व्यय का 3/4 (तीन चौथाई) रक्षा तथा सार्वजनिक ऋण सेवा पर व्यय होता था। सार्वजनिक ऋण भी अतीत के युद्धों का ही परिणाम था। बिना राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सार्वजनिक भुगतान को संकट में डाले हुए राष्ट्रीय व्यय के इन मदों में किसी प्रकार की कमी करना बिल्कुल असम्भव था। सन् 1788 में असैनिक व्यय कुल वार्षिक व्यय का 23 प्रतिशत था। इसमें कुछ कमी की जा सकती थी। राजवंश का व्यय, कुल व्यय का 6% था। इसमें कमी करने से भी स्थिति में सुधार नहीं हो सकता था। कुछ उग्र सुधार करने की अतीव आवश्यकता थी।

टुरगोट (Turgot) (सन् 1774-76)—सन् 1774 में लुईस सोलहवें ने फ्रान्स के एक अंत्यधिक निर्धन प्रान्त के इन्टेन्डेन्ट, टुरगोट को वित्त महानियन्त्रक (Controlller General of Finance) नियुक्त किया। उसने सर्वोत्कृष्ट प्रबुद्ध अर्थशास्त्रियों के वित्तीय सिद्धान्तों को प्रवृत्त करके अपने प्रान्त को सम्पन्न तथा समृद्धशाली बनाया था। उसने अपने कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते समय कहा, "दिवालियापन (रिक्तता) नहीं, करारोपण में वृद्धि नहीं, कोई ऋण नहीं" उसने सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता तथा सार्वजनिक सम्पत्ति में विकास द्वारा वित्तीय समस्याओं का समाधान करने की आशा प्रकट की। कृषि, उद्योग एवं वाणिज्य में उन्मुक्तता का सूत्रपात करके सार्वजनिक सम्पत्ति में विकास किया तथा निरर्थक व्यय रोककर टुरगोट ने लाखों डालर की बचत की, परन्तु वे लोग जो निरर्थक व्यय के माध्यम से लाभान्वित हो रहे थे, क्रुद्ध हो गये। उसने कोरवी (Corvee) अनिवार्य श्रम के उन्मूलन का प्रयास किया तथा अनाज का उन्मुक्त आन्तरिक व्यापार स्थापित किया। उसने विभिन्न व्यवसायों की संस्था 'गिल्ड' को समाप्त कर दिया। टुरगोट विरोधियों ने मेरी आंत्वानेट (Antoinette) के माध्यम से राजा के ऊपर टुरगोट को पदमुक्त करने के लिए दबाव डाला। लुईस सोलहवें ने कहा, "एम. टुरगोट और मैं ही ऐसे व्यक्ति हैं जो जनता से प्रेम करते हैं" लेकिन उसने अपने कार्यों द्वारा अपने प्रेम को प्रमाणित नहीं किया। लुईस सोलहवें ने सन् 1776 में टुरगोट को सेवामुक्त करके स्वयं के लिए विभिन्न विपत्तियों को आमन्त्रित किया।

नैकर (Necker) (सन् 1776-81)—टुरगोट को पदमुक्त करने की घटना ने प्राचीन शासन की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला। टुरगोट के पतन ने समाज सुधारकों को चेतावनी दी। विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को प्रभावित करने वाला कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए। सन् 1776 में जेनेवा के एक महाजन नैकर (Necker) को टुरगोट के उत्तराधिकारी के रूप में वित्त महानियन्त्रक नियुक्त किया। नैकर का जन्म निर्धन परिवार में हुआ और अपने प्रयासों से ही अपार सम्पति अर्जित की थी। उसको मितव्ययिता कार्यान्वित करते हुए अत्यधिक विरोध का सामना करना पड़ा। उसने पहली बार राज्य के अपव्यय का विवरण प्रकाशित किया। इससे पूर्व वित्तीय विवरण गुप्त रखा जाता था। उसने नये ऋणों का आह्वान किया। विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति क्रुद्ध हो गये। सरकार में विश्वास पैदा करने तथा नये ऋणों को सुविधाजनक बनाने के लिए काम्टे रेन्डू (आय-व्यय) विवरण प्रकाशित किया। इस विवरण में अनेक देशों को निःशुल्क उपहारों तथा कुलीन वर्गों पर पेंशन पर खर्च राशि को दर्शाया था। इससे दरबार का कर्मचारी वर्ग क्रुद्ध हो गया। सन् 1781 में नैकर को पदमुक्त कर दिया गया।

कैलोन (Calonne)—एक मनोहर तथा सुखद व्यक्ति को वित्त महानियन्त्रक नियुक्त किया गया। सबको प्रसन्न करना ही उसका मुख्य उद्देश्य था। लोगों में विश्वास जाग्रत करने के लिए उसने धन का उन्मुक्त रूप से अपव्यय किया। ऋण लेने के सम्बन्ध में उसका दर्शन आश्चर्यजनक था। उसके अनुसार, "एक व्यक्ति जो ऋण लेना चाहता है, धनी दृष्टिगत होना चाहिए, और धनी दृष्टिगत होने के लिए उसे उन्मुक्त रूप से व्यय करके सबको चकित करना चाहिए।" उसके इस दर्शन के परिणामस्वरूप पानी की तरह धन आया। 3 वर्ष की अवधि में उसने राजकोष के लिए 30,00,00,000 (तीस करोड़) डालर का ऋण प्राप्त किया। उसने राज्य के घाटे की पूर्ति के लिए ऋण लिए थे। ऋण प्राप्त करने के लिए उसने ब्याज की दर में वृद्धि कर दी। इस ऋण के घातक परिणाम हुए। वित्तीय संकट बढ़ गया। अपनी नीति के दोष तथा भूल का अनुभव करते हुए, उसने टुरगोट के अनुरूप योजना प्रस्तुत की। इसके अन्तर्गत उसने कुलीनों के विशेषाधिकारों के उन्मूलन तथा खाद्यान्न के उन्मुक्त व्यापार का प्रस्ताव रखा। उसने राजा को, कुलीनों को विश्वास में लेने का परामर्श भी दिया। अगस्त 1786 में सरकारी कोष रिक्त हो गया। आर्थिक समस्या के समाधान हेतु उसने राजा से विशिष्टों की सभा का आह्वान करने का आग्रह किया। कैलोन के परामर्श के अनुसार सन् 1787 में विशिष्ट व्यक्तियों की सभा का आह्वान किया गया। इस सभा में प्रमुख सामन्त, बिशप तथा मजिस्ट्रेट सम्मिलित थे। इनकी नियुक्ति राजा करता था। इसमें जनता के प्रतिनिधित्व का प्रश्न ही नहीं था। 145 सदस्यों वाली सभा में देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए, समाज के समस्त वर्गों पर समान रूप से करारोपण का प्रस्ताव रखा। सभा ने कैलोन के भूमि कर प्रस्ताव की, असंवैधानिक तथा अनावश्यक कहते हुए, आलोचना की तथा अनजाने में ही करारोपण के प्रश्न को एस्टेट्स जनरल (संसद) जिसका अधिवेशन सन् 1614 से नहीं हुआ था, में विचारार्थ भेजने की अनुशंसा की। सभा के सदस्यों ने कैलोन को मन्त्री पद से मुक्त करने का भी अनुरोध किया। एक बार पुनः सभा के अनुरोध तथा रानी के प्रभाव में कैलोन को सेवामुक्त कर दिया।

ब्रीन (Breene)—कैलोन के उपरान्त रानी के कृपापात्र ब्रीन को नया वित्तीय महानियन्त्रक नियुक्त किया गया। उसने सड़क निर्माण कार्य के लिए निःशुल्क अनिवार्य श्रम (कोरवी) को समाप्त कर दिया। प्रान्तीय विधान सभाएँ स्थापित कीं तथा खाद्यान्न के उन्मुक्त व्यापार का पुनः सूत्रपात किया। शीघ्र ही उसने अनुभव किया कि उसको अपने पूर्वजों के अति सुधारवादी उपायों का आश्रय लेना चाहिए। ब्रीन ने विशेषाधिकार प्राप्त तथा सामान्य जनता दोनों पर समान रूप से भूमि कर तथा नया 'स्टाम्प कर' लगाने का प्रस्ताव रखा। विशिष्टों की सभा (Assembly of Notables) ने ब्रीन के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। राजा ने इस सभा को भंग कर दिया तथा ब्रीन के प्रस्तावों को पंजीकरण के लिए पार्लेमाँ (संसद) के पास भेज दिया। पार्लेमाँ, 13 सदस्यीय पेरिस की शक्तिशाली संस्था, राजा के स्वेच्छाचारी आचरण पर अंकुश लगा सकती थी। यह कोई प्रतिनिधि सभा नहीं थी, वरन् इसकी स्थिति उच्च न्यायालयों के सदृश्य थी। न्याय करने के अतिरिक्त पार्लेमाँ का एक मुख्य कार्य राजा के आदेशों को कानून के रूप में पंजीकृत करना था। पार्लेमाँ किसी आपत्तिजनक तथा जन विरोधी आदेश को पंजीकृत करने से मना कर सकती थी और जनता का ध्यान आकृष्ट कर सकती थी। परन्तु राजा के पुनः आदेश देने पर पार्लेमाँ को विवश होकर पंजीकृत करना पड़ता था। क्रान्ति से पूर्व के वर्षों में पार्लेमाँ ने अनेक अनुचित आदेशों के पंजीकरण से मना कर दिया था। किसी अन्य जन प्रतिनिधि संस्था के अभाव में पार्लेमाँ ही कभी-कभी सरकार की नीतियों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करती थी। पार्लेमाँ के न्यायाधीशों ने पदों का क्रय करके कुलीनता प्राप्त कर ली थी और वे वंशानुगत हो गये थे।

पार्लेमाँ ने प्रस्तावित नये करों को पंजीकृत करने से मना कर दिया और घोषणा की, कि एस्टेट्स जनरल को ही नवीन कर लगाने का अधिकार है। किसी अन्य को यह अधिकार नहीं है। पार्लेमाँ ने राजा से एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने का आग्रह किया। जनता ने पार्लेमाँ की घोषणा का हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया, परन्तु राजा ने पार्लेमाँ को अवैध घोषित करके भंग कर दिया तथा इसके सदस्यों को बन्दी बनाने का आदेश दे दिया। सैनिकों ने भी पार्लेमाँ के सदस्यों को बन्दी बनाने से मना कर दिया।

एस्टेट्स जनरल (Estates General)—उग्र तथा उत्तेजित जनसमूह ने पेरिस की सड़कों पर एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन बुलाने के लिए प्रबल माँग की। जनसमूह की माँग को स्वीकार करते हुए लुईस सोलहवें ने 1 मई, 1789 को एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन का आह्वान किया। नैकर को व्यापक अधिकार प्रदान कर पुनः वित्त महानियन्त्रक बनाया गया। राजा ने एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन के लिए दो सिद्धान्त निर्धारित किये: (1) तीसरी एस्टेट्स की सदस्य संख्या, कुलीनों तथा धर्माधिकारियों की सम्मिलित संख्या के समान हो, (2) दूसरे सिद्धान्त के अनुसार फ्रान्स की जनता से अपनी समस्त शिकायतों की विस्तृत सूची बनाने का आग्रह किया गया।

सर्वविदित है कि एस्टेट्स जनरल फ्रान्स की बहुत पुरानी प्रतिनिधि सभा थी। इसका 175 वर्षों से अर्थात् सन् 1614 से कोई अधिवेशन नहीं हुआ था। इस संस्था को मृतप्रायः मान लिया गया था और महान राष्ट्रीय संकट की स्थिति में पुनर्जीवित किया गया था।

परिणामस्वरूप फ्रान्स के किसी भी व्यक्ति को इसके स्वरूप, संगठन, कार्यप्रणाली, अधिकार, चुनाव प्रक्रिया आदि के विषय में बिल्कुल ज्ञान नहीं था। सन् 1788 में एस्टेटस जनरल का चुनाव सम्पन्न हुआ। एस्टेट्स जनरल तीन सदनात्मक संसद थी। पहले सदन के सदस्य कुलीन वर्ग के थे। दूसरे सदन के समस्त सदस्य धर्माधिकारी थे तथा तीसरे, अन्तिम सदन के सदस्य जनता के प्रतिनिधि थे। तीनों सदनों की कुल सदस्य संख्या 1,200 थी। इनमें 600 से अधिक तृतीय सदन के सदस्य थे।

एस्टेट्स जनरल की चुनाव प्रक्रिया से परिचित हो जाने के बाद सन् 1788 में विधिवत चुनाव हुआ। इस संसद के तीसरे सदन की कुल सदस्य संख्या, प्रथम एवं द्वितीय सदनों के कुल सदस्यों की संख्या के बराबर तथा पूर्वापेक्षा दुगुनी थी। लुईस सोलहवें द्वारा निर्धारित द्वितीय सिद्धान्त, शिकायतों की सूची के सम्बन्ध में तत्कालीन समस्त समस्याओं, विद्वानों के विचारों, अभिव्यक्त भावनाओं तथा विभिन्न आरोपों, आक्षेपों, प्रत्यारोपों तथा अपेक्षित आवश्यक सुधारों पर देशव्यापी विचार-विमर्श आरम्भ हो गया। जनता ने अपने प्रतिनिधियों को 50 हजार से अधिक स्मृति-पत्र (काया Cahiers) दिये। इन स्मृति पत्रों में स्वेच्छाचारी सरकार की समाप्ति, भविष्य में नियमित रूप से निर्धारित समय पर एस्टेट्स की बैठकें करने, करों का समय पर भुगतान करने, मानव अधिकारों की घोषणा, राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की अवधारणा, लिखित संविधान की आवश्यकता, वैधानिक शासन की स्थापना, नागरिक स्वतन्त्रता प्रदान करने, कानून के समक्ष समानता, करारोपण की समानता के अतिरिक्त स्थानीय विषयों जैसे सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था और बिना किसी प्रकार के भेदभाव के कर का भुगतान किये जाने को बनाये रखने की अनुमति सम्बन्धी विचार अभिव्यक्त किये गये थे। काया (Cahiers) में उग्र हिंसात्मक विद्रोह का कोई संकेत नहीं था। जनता ने राजा के प्रति गहन निष्ठा और एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने के लिए आभार व्यक्त किया था। इस विश्वास का अविर्भाव हुआ कि संकट समाप्त हो गया। राष्ट्र की निराशाजनक विषम परिस्थितियों में सर्वसम्मति से सहज ही मार्ग निकाल लिया जायेगा। समस्त फ्रान्स में अपूर्व आशावाद का संचार हो गया जो अल्पकालिक सिद्ध हुआ क्योंकि सरकार ने एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने में मौलिक प्रश्न अनिर्णीत छोड़ दिया था।

5 मई, 1789 को वर्साय के भव्य एवं गौरवशाली महल में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन आरम्भ हुआ। परम्परानुसार तीनों सदनों की बैठकें अलग-अलग होती थीं और तीनों सदन पृथक्-पृथक् निर्णय करते थे। किसी विधेयक के पारित होने के लिए तीन में से दो सदनों की स्वीकृति अनिवार्य थी। यदि प्रचलित प्रणाली का ही अनुसरण किया जाता तो जनता को कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं थी। जनता के प्रतिनिधियों के तृतीय सदन की सदस्य संख्या अधिक होने की स्थिति में भी जनाकांक्षाओं के अनुरूप विधेयकों के पारित होने की आशा नहीं थी। संकटापन्न स्थिति की सम्भावना से तीसरे सदन के प्रतिनिधियों ने तीनों सदनों की संयुक्त बैठक और समस्त प्रतिनिधियों के बहुमत से निर्णय करने का आग्रह किया। जन प्रतिनिधियों ने विचार व्यक्त किया कि राजा के द्वितीय सिद्धान्त में यही भावना अन्तर्निहित है। प्रथम एवं द्वितीय सदनों के सदस्यों ने संयुक्त बैठक तथा बहुमत निर्णय के

ब्रीन (Breene)—कैलोन के उपरान्त रानी के कृपापात्र ब्रीन को नया वित्तीय महानियन्त्रक नियुक्त किया गया। उसने सड़क निर्माण कार्य के लिए निःशुल्क अनिवार्य श्रम (कोरवी) को समाप्त कर दिया। प्रान्तीय विधान सभाएँ स्थापित कीं तथा खाद्यान्न के उन्मुक्त व्यापार का पुनः सूत्रपात किया। शीघ्र ही उसने अनुभव किया कि उसको अपने पूर्वजों के अति सुधारवादी उपायों का आश्रय लेना चाहिए। ब्रीन ने विशेषाधिकार प्राप्त तथा सामान्य जनता दोनों पर समान रूप से भूमि कर तथा नया 'स्टाम्प कर' लगाने का प्रस्ताव रखा। विशिष्टों की सभा (Assembly of Notables) ने ब्रीन के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। राजा ने इस सभा को भंग कर दिया तथा ब्रीन के प्रस्तावों को पंजीकरण के लिए पार्लेमाँ (संसद) के पास भेज दिया। पार्लेमाँ, 13 सदस्यीय पेरिस की शक्तिशाली संस्था, राजा के स्वेच्छाचारी आचरण पर अंकुश लगा सकती थी। यह कोई प्रतिनिधि सभा नहीं थी, वरन् इसकी स्थिति उच्च न्यायालयों के सदृश्य थी। न्याय करने के अतिरिक्त पार्लेमाँ का एक मुख्य कार्य राजा के आदेशों को कानून के रूप में पंजीकृत करना था। पार्लेमाँ किसी आपत्तिजनक तथा जन विरोधी आदेश को पंजीकृत करने से मना कर सकती थी और जनता का ध्यान आकृष्ट कर सकती थी। परन्तु राजा के पुनः आदेश देने पर पार्लेमाँ को विवश होकर पंजीकृत करना पड़ता था। क्रान्ति से पूर्व के वर्षों में पार्लेमाँ ने अनेक अनुचित आदेशों के पंजीकरण से मना कर दिया था। किसी अन्य जन प्रतिनिधि संस्था के अभाव में पार्लेमाँ ही कभी-कभी सरकार की नीतियों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करती थी। पार्लेमाँ के न्यायाधीशों ने पदों का क्रय करके कुलीनता प्राप्त कर ली थी और वे वंशानुगत हो गये थे।

पार्लेमाँ ने प्रस्तावित नये करों को पंजीकृत करने से मना कर दिया और घोषणा की, कि एस्टेट्स जनरल को ही नवीन कर लगाने का अधिकार है। किसी अन्य को यह अधिकार नहीं है। पार्लेमाँ ने राजा से एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने का आग्रह किया। जनता ने पार्लेमाँ की घोषणा का हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया, परन्तु राजा ने पार्लेमाँ को अवैध घोषित करके भंग कर दिया तथा इसके सदस्यों को बन्दी बनाने का आदेश दे दिया। सैनिकों ने भी पार्लेमाँ के सदस्यों को बन्दी बनाने से मना कर दिया।

एस्टेट्स जनरल (Estates General)—उग्र तथा उत्तेजित जनसमूह ने पेरिस की सड़कों पर एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन बुलाने के लिए प्रबल माँग की। जनसमूह की माँग को स्वीकार करते हुए लुईस सोलहवें ने 1 मई, 1789 को एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन का आह्वान किया। नैकर को व्यापक अधिकार प्रदान कर पुनः वित्त महानियन्त्रक बनाया गया। राजा ने एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन के लिए दो सिद्धान्त निर्धारित किये: (1) तीसरी एस्टेट्स की सदस्य संख्या, कुलीनों तथा धर्माधिकारियों की सम्मिलित संख्या के समान हो, (2) दूसरे सिद्धान्त के अनुसार फ्रान्स की जनता से अपनी समस्त शिकायतों की विस्तृत सूची बनाने का आग्रह किया गया।

सर्वविदित है कि एस्टेट्स जनरल फ्रान्स की बहुत पुरानी प्रतिनिधि सभा थी। इसका 175 वर्षों से अर्थात् सन् 1614 से कोई अधिवेशन नहीं हुआ था। इस संस्था को मृतप्रायः मान लिया गया था और महान राष्ट्रीय संकट की स्थिति में पुनर्जीवित किया गया था।

परिणामस्वरूप फ्रान्स के किसी भी व्यक्ति को इसके स्वरूप, संगठन, कार्यप्रणाली, अधिकार, चुनाव प्रक्रिया आदि के विषय में बिल्कुल ज्ञान नहीं था। सन् 1788 में एस्टेटस जनरल का चुनाव सम्पन्न हुआ। एस्टेट्स जनरल तीन सदनात्मक संसद थी। पहले सदन के सदस्य कुलीन वर्ग के थे। दूसरे सदन के समस्त सदस्य धर्माधिकारी थे तथा तीसरे, अन्तिम सदन के सदस्य जनता के प्रतिनिधि थे। तीनों सदनों की कुल सदस्य संख्या 1,200 थी। इनमें 600 से अधिक तृतीय सदन के सदस्य थे।

एस्टेट्स जनरल की चुनाव प्रक्रिया से परिचित हो जाने के बाद सन् 1788 में विधिवत चुनाव हुआ। इस संसद के तीसरे सदन की कुल सदस्य संख्या, प्रथम एवं द्वितीय सदनों के कुल सदस्यों की संख्या के बराबर तथा पूर्वापेक्षा दुगुनी थी। लुईस सोलहवें द्वारा निर्धारित द्वितीय सिद्धान्त, शिकायतों की सूची के सम्बन्ध में तत्कालीन समस्त समस्याओं, विद्वानों के विचारों, अभिव्यक्त भावनाओं तथा विभिन्न आरोपों, आक्षेपों, प्रत्यारोपों तथा अपेक्षित आवश्यक सुधारों पर देशव्यापी विचार-विमर्श आरम्भ हो गया। जनता ने अपने प्रतिनिधियों को 50 हजार से अधिक स्मृति-पत्र (काया Cahiers) दिये। इन स्मृति पत्रों में स्वेच्छाचारी सरकार की समाप्ति, भविष्य में नियमित रूप से निर्धारित समय पर एस्टेट्स की बैठकें करने, करों का समय पर भुगतान करने, मानव अधिकारों की घोषणा, राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की अवधारणा, लिखित संविधान की आवश्यकता, वैधानिक शासन की स्थापना, नागरिक स्वतन्त्रता प्रदान करने, कानून के समक्ष समानता, करारोपण की समानता के अतिरिक्त स्थानीय विषयों जैसे सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था और बिना किसी प्रकार के भेदभाव के कर का भुगतान किये जाने को वनाये रखने की अनुमति सम्बन्धी विचार अभिव्यक्त किये गये थे। काया (Cahiers) में उग्र हिंसात्मक विद्रोह का कोई संकेत नहीं था। जनता ने राजा के प्रति गहन निष्ठा और एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने के लिए आभार व्यक्त किया था। इस विश्वास का अविर्भाव हुआ कि संकट समाप्त हो गया। राष्ट्र की निराशाजनक विषम परिस्थितियों में सर्वसम्मति से सहज ही मार्ग निकाल लिया जायेगा। समस्त फ्रान्स में अपूर्व आशावाद का संचार हो गया जो अल्पकालिक सिद्ध हुआ क्योंकि सरकार ने एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने में मौलिक प्रश्न अनिर्णीत छोड़ दिया था।

5 मई, 1789 को वर्साय के भव्य एवं गौरवशाली महल में एस्टेट्स जनरल का अधिवेशन आरम्भ हुआ। परम्परानुसार तीनों सदनों की बैठकें अलग-अलग होती थीं और तीनों सदन पृथक्-पृथक् निर्णय करते थे। किसी विधेयक के पारित होने के लिए तीन में से दो सदनों की स्वीकृति अनिवार्य थी। यदि प्रचलित प्रणाली का ही अनुसरण किया जाता तो जनता को कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं थी। जनता के प्रतिनिधियों के तृतीय सदन की सदस्य संख्या अधिक होने की स्थिति में भी जनाकांक्षाओं के अनुरूप विधेयकों के पारित होने की आशा नहीं थी। संकटापन्न स्थिति की सम्भावना से तीसरे सदन के प्रतिनिधियों ने तीनों सदनों की संयुक्त बैठक और समस्त प्रतिनिधियों के बहुमत से निर्णय करने का आग्रह किया। जन प्रतिनिधियों ने विचार व्यक्त किया कि राजा के द्वितीय सिद्धान्त में यही भावना अन्तर्निहित है। प्रथम एवं द्वितीय सदनों के सदस्यों ने संयुक्त बैठक तथा बहुमत निर्णय के

प्रस्ताव का सक्रिय विरोध किया। तृतीय सदन के आशावाद, आदर्शवाद, आकांक्षाओं तथा उद्वेलित भावनाओं को इस विरोध से आघात पहुँचा। जनप्रतिनिधियों ने विश्वास व्यक्त किया कि उनका कार्य मानव समुदाय के साथ फ्रान्स के लोगों के कल्याण के लिए कार्य करना था। राजा के दोनों प्रस्तावों के तथाकथित अन्तर्निहित विचार से प्रोत्साहित होकर दोनों सदनों के द्वारा पृथक् मतदान के विरुद्ध तृतीय सदन ने राजा से निवेदन किया। जन प्रतिनिधियों ने अन्य दोनों सदनों को, उनके साथ सम्मिलित होने के लिए अधिकृत निमन्त्रण भी भेजा। तृतीय सदन के अनुरोध को दोनों सदनों ने स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। यहीं से गत्यावरोध तथा संघर्ष आरम्भ हो गया। यह संघर्ष 6 मई को आरम्भ हुआ और जून के अन्त तक चलता रहा।

तृतीय सदन ने 17 जून, 1789 को स्वयं को राष्ट्रीय सभा के रूप में घोषित कर दिया और दावा किया कि वे फ्रान्स के बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः सदन को समस्त राष्ट्र के लिए तथा समस्त राष्ट्र के हित में विचार व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार था। यह एक अत्यधिक साहसिक एवं क्रान्तिकारी कदम था। एक के बाद एक संकट आते गये। 20 जून, 1789 को लुईस सोलहवें ने कुलीनों से प्रभावित होकर, तृतीय सदन की गतिविधियों में हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से सदन के सभा भवन पर ताला लगवा दिया और सैनिक नियुक्त कर दिये। प्रतिनिधियों से कहा गया कि विशेष शाही अधिवेशन के लिए तैयारियाँ करने के उद्देश्य से सभा भवन बन्द कर दिया गया। पुतोक को अनुमान था कि इसका अर्थ एसेम्बली (तृतीय सदन) जिसमें जनाकांक्षायें केन्द्रित थीं, समय से पूर्व समाप्त करना था। देश में सर्वत्र विषाद और निराशा का वातावरण था। सदस्य भी अत्यधिक निराश एवं विचलित थे। राजा की इस कार्यवाही से क्रुद्ध लेकिन सदन के साहसी एवं निष्ठावान प्रतिनिधियों ने निकट ही टेनिस कोर्ट के रूप में प्रयोग में आने वाले सार्वजनिक भवन में सभा की और अपने अध्यक्ष प्रतिष्ठित खगोलशास्त्री बेली (Bailly) को उठाकर मेज पर बैठा दिया और उस क्रान्तिकारी क्षण के लिए उसके चारों ओर एकत्रित हो गये। **अपेक्षित शपथ ली जो 'टेनिस कोर्ट की शपथ' के रूप में इतिहास में विख्यात है।** इस शपथ में विचार व्यक्त किया गया, "राष्ट्रीय सभा यह निश्चित करती है कि हम कभी अलग नहीं होंगे और जब तक संविधान का निर्माण नहीं हो जाता तथा उसे दृढ़ नींव पर नहीं रख दिया जाता, तब तक जहाँ भी और जब भी परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक होगा, एकत्र होते रहेंगे। यह पवित्र शपथ समस्त सदस्यों द्वारा ली जाती है तथा समस्त सदस्य व्यक्तिगत रूप से इस सुदृढ़ प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करके इसका अनुमोदन करते हैं।" टेनिस कोर्ट की शपथ फ्रान्स की क्रान्ति की एक महान घटना थी। इसने निरंकुश राजतन्त्र के आधार को ही विचलित कर दिया। शपथ के महत्व को व्यक्त करते हुए हेजन लिखते हैं, "टेनिस कोर्ट की शपथ फ्रान्स की क्रान्ति का वास्तविक आरम्भ थी। राजा की राजाज्ञा के विरुद्ध एवं बिना स्वीकृति के राष्ट्र के प्रतिनिधियों की साधारण घोषणा ने प्राचीन सामन्तवादी एस्टेट्स जनरल को राष्ट्रीय सभा में रूपान्तरित कर दिया और इसे फ्रान्स में संवैधानिक शासन स्थापित करने के लिए उत्तरदायित्व दिया। टेनिस कोर्ट की शपथ दैविक अधिकारों पर आधारित निरंकुश राजतन्त्र की समाप्ति तथा जन भावना पर

आधारित सीमित राजतन्त्र के आरम्भ होने की पवित्र घोषणा थी।" राष्ट्रीय सभा ने शपथ के अतिरिक्त अपने अधिवेशन में दृढ़ निश्चय किया कि करों के प्रस्तावों पर उन्मुक्त रूप से राष्ट्रीय सभा में विचार-विमर्श होना चाहिए और सभा की सहमति के बिना आरोपित प्रत्येक कर अवैध था।

राष्ट्रीय सभा की गतिविधियों से विचलित होकर लुईस सोलहवें ने 23 जून को तीनों सदनों की संयुक्त बैठक का आह्वान किया और उसने तृतीय सदन (Third Estate) के हाल के समस्त निर्णयों को अवैध और असंवैधानिक घोषित कर दिया और उसने संयुक्त बैठक में कुछ सुधार प्रवृत्त करने की इच्छा व्यक्त की। इसके अतिरिक्त उसने राष्ट्रीय सभा की कार्यवाही को अस्वीकार कर दिया और रानी के प्रभाव में पुनः तीनों सदनों को पृथक्-पृथक् बैठक करने तथा मतदान करने का आदेश दिया। राजा ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि कुलीन वर्ग के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार तथा विशेषाधिकार पूर्ववत् बने रहेंगे। राजा की इस नीति का कुछ कुलीन वर्ग तथा निम्न धर्माधिकारी वर्ग ने भी विरोध किया और राजा के कुछ सहयोगी सभा भवन से बाहर चले गये परन्तु जनता के प्रतिनिधि वहीं बैठे रहे। मिराबो (Mirabeau) एक कुलीन था। उसके सहयोगी कुलीनों ने उसको एस्टेट्स जनरल के लिए चुनने से मना कर दिया और तृतीय सदन (Third Estate) के सदस्यों ने मिराबो को चुन लिया। एक जन प्रतिनिधि मिराबो ने साहसिक घोषणा कर जन प्रतिनिधियों का मार्गदर्शन किया। उसने कहा, "हम यहाँ जनता की भावनाओं का सम्मान करते हुए उपस्थित हुए हैं और जब तक बन्दूक की गोली से हमको हटाया नहीं जायेगा, हम यहाँ से नहीं जायेंगे।" मिराबो के प्रस्ताव को तृतीय सदन ने स्वीकार करते हुए कहा, "समस्त व्यक्ति जो राष्ट्रीय सभा (National Assembly) के किसी भी सदस्य के साथ हिंसात्मक कार्यवाही करेंगे, अलोकप्रिय और राष्ट्र के प्रति देशद्रोही और मृत्युदण्ड के दोषी होंगे।" सभा के अध्यक्ष (Master of Ceremonies) ने राजा को मिराबो की घोषणा से अवगत करा दिया और राजा ने भी प्रत्युत्तर में कहा, "अगर वे बैठना चाहते हैं तो बैठने दो।" राजा की स्थिति अत्यधिक विकट हो गयी। राजा की प्रतिक्रिया से उत्तेजित होकर दो दिन बाद द्वितीय सदन के अनेक सदस्य धर्माधिकारी, तृतीय सदन के सदस्यों में सम्मिलित हो गये। तदुपरान्त 27 जून, 1789 को अधिकांश धर्माधिकारी सदस्य तथा 47 प्रथम सदन के कुलीन वर्गीय सदस्य भी जन प्रतिनिधियों के साथ सहर्ष सम्मिलित हो गये। राजा को यह भी सूचना मिली कि यदि राजा स्वीकृति नहीं देगा तो 30,000 हृष्ट-पुष्ट लोग उसके महल को घेर लेंगे। अन्ततोगत्वा राजा लुईस सोलहवें को परिस्थितियों के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा। अब राजा ने स्वीकृति देने का निश्चय कर लिया था। राजा ने शेष कुलीन वर्गीय सदस्यों तथा धर्माधिकारियों से राष्ट्रीय सभा के साथ सम्मिलित हो जाने का आदेश दिया और 27 जून, 1789 को तीनों सदनों की संयुक्त बैठक की अनुमति दे दी। इस प्रकार राष्ट्रीय सभा को अपेक्षित मान्यता प्राप्त हो गयी। यह जनता की पहली महत्वपूर्ण विजय थी। अन्ततोगत्वा विवाद का निर्णय हो गया। राष्ट्रीय सभा ने तत्काल संविधान के लिए एक समिति नियुक्त की। राष्ट्रीय सभा, जो तीनों सदनों के विलय से पूर्ण हो गयी, ने संविधान सभा का रूप ग्रहण

कर लिया। परिणामस्वरूप प्रभुसत्ता राजा की अपेक्षा जनता में केन्द्रित हो गयी। राजा को भी ज्ञात नहीं था, कि इस दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए संघर्ष का क्या परिणाम होगा।

इस क्रान्ति का इतिहासकार **तोकविल** विश्लेषण करते हुए लिखते हैं, "किसी देश में क्रान्ति तब नहीं होती जब खराब स्थिति और अधिक खराब हो जाये, जिस समय क्रान्ति होती है, उस समय की स्थिति निश्चय ही उससे पहले की स्थिति से अच्छी होती है। अनुभव से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि खराब सरकार के लिए सर्वाधिक संकट का समय तब होता है, जब वह सुधार का कार्य प्रारम्भ करती है।" **प्रोफेसर गुडविन** अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं, "सन् 1789 की फ्रान्स की क्रान्ति के तात्कालिक कारणों को न तो कृषकों की आर्थिक शिकायतों में, न मध्यमवर्ग के राजनीतिक असन्तोष में बल्कि फ्रान्स के कुलीन वर्ग की प्रतिक्रियावादी आकांक्षाओं में खोजना चाहिए। यद्यपि क्रान्ति ने राजनीतिक सत्ता को स्थापित कर दिया और मध्यम वर्ग की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर दिया। इसको वर्ष 1787 में कुलीन वर्ग ने गति प्रदान की थी और 1788 में अपने वित्तीय तथा राजनीतिक विशेषाधिकारों, जिनको बोर्बो राजतन्त्र ने अपनी सुधारवादी नीतियों के द्वारा चेतावनी दी थी, के सुरक्षा के प्रयास किये थे। जुलाई 1788 में लुईस सोलहवें का एस्टेट्स जनरल अथवा राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा, जिसका अधिवेशन सन् 1614 से नहीं हुआ था, के आह्वान के निर्णय ने निष्क्रिय आध्यात्मिक एवं न्यायिक कुलीन तन्त्र के सामूहिक दबाव के समक्ष राजा द्वारा आत्मसमर्पण का संकेत दिया। इन विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को आशा थी कि एस्टेट्स जनरल में मतदान की परम्परागत पद्धति का अनुसरण (आदेश के द्वारा, सदस्यों की संख्या के अनुसार नहीं) उनको आमूल सुधारों को रोकने में ही समर्थ नहीं बनायेगा वरन् तीसरी एस्टेट की उसी प्रकार अधीनता द्वारा सम्राट के ऊपर अपनी विजय को भी सुदृढ़ कर सकेंगे। इस भयानक भ्रामक अनुमान ने क्रान्ति को, जिसको कुलीनता द्वारा राजनीतिक तथा वित्तीय समानता के परिणामों की स्वीकृति के द्वारा टाला जा सकता था, अनिवार्य बना दिया।"

तीनों सदनों की संयुक्त बैठक से राष्ट्रीय सभा के गौरव तथा गरिमा में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। राष्ट्रीय सभा ने संविधान निर्माण कार्य का दायित्व लेकर 9 जुलाई, 1789 को इस सभा को संविधान सभा घोषित कर दिया। इसके साथ ही नवीन सामाजिक व्यवस्था के प्रवर्तन और संवैधानिक आधार तैयार करने के दायित्व की भी घोषणा कर दी। बाध्य होकर राजा को राष्ट्रीय सभा के निर्णय को स्वीकार करना पड़ा। लुईस सोलहवें तथा राष्ट्रीय सभा दोनों में परस्पर सन्देह तथा अविश्वास की भावना थी। राजा ने सेना का आह्वान किया। सैनिक टुकड़ियाँ वर्साय महल के चारों ओर एकत्र हो गयीं। इससे पेरिस की स्थिति अत्यधिक उत्तेजक हो गयी। तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ चौराहों के वक्ता **डेसमोलिन (Desmoulins)** ने पेरिस के विशाल जनसमूह को सम्बोधित किया। राजा पर कुलीन वर्गों तथा रानी का दबाव निरन्तर बढ़ रहा था। अन्तोगत्वा राजा ने तथाकथित संविधान सभा के दमन का प्रयास किया। यह प्रयास राजा की अदूरदर्शिता प्रमाणित करता है। संविधान सभा के सदस्य सैनिकों के दबाव से भयभीत हो गये और स्वतन्त्र रूप से कार्य करना कठिन हो गया। मिराबो के माध्यम से लुईस सोलहवें से सैनिक हटा लेने का अनुरोध किया। राजा ने प्रत्युत्तर में कहा कि यदि

प्रतिनिधि सैनिकों से भयभीत हों तो पेरिस छोड़कर अन्यत्र चले जायें किन्तु प्रतिनिधियों ने आत्मसमर्पण नहीं किया।

नैकर की पदमुक्ति (Dismissal of Necker)—11 जुलाई, 1789 को लोकप्रिय वित्तीय महानियन्त्रक नैकर और उसके सहयोगियों को सेवामुक्त करके तत्काल देश छोड़ने का आदेश दे दिया। नैकर और उसके सहयोगी सुधारों के प्रबल समर्थक थे। यह समाचार आग की तरह समस्त पेरिस में फैल गया और वातावरण में अत्यधिक उत्तेजना आ गयी। कामिल द मूले नाम के पत्रकार तथा अन्य उग्र क्रान्तिकारियों ने पेरिस के लोगों को सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रोत्साहित किया। रातों रात पेरिस के जनसमूह ने येन-केन-प्रकारेण शस्त्रास्त्रों का संग्रह कर लिया।

बास्तील का पतन (Fall of Bastil)—क्रान्तिकारियों को ज्ञात हुआ कि बास्तील के दुर्ग में अपार शस्त्रास्त्रों का संग्रह किया गया था। बास्तील पेरिस से कुछ दूरी पर स्थित राजनीतिक अपराधियों को रखने के लिए एक छोटा दुर्ग था। जनता इस दुर्ग को निरंकुशता तथा अत्याचार का प्रतीक मानती थी और घृणा करती थी। परिणामस्वरूप उत्तेजित जनसमूह ने बास्तील पर आक्रमण कर दिया। बास्तील के प्रशासक ने कुछ सैनिकों की सहायता से क्रुद्ध जनसमूह को रोकने का प्रयास किया। अनेक घंटों तक भीषण सशस्त्र संघर्ष हुआ। जनसमूह के लगभग 250 व्यक्ति शहीद हो गये अथवा सैकड़ों घायल हो गये। यथार्थ में बास्तील में शस्त्रास्त्र नहीं थे। प्रशासक ने अन्त में आत्मसमर्पण कर दिया। जनसमूह ने दुर्ग में प्रवेश करके समस्त बन्दियों जो केवल सात थे (4 सिक्के ढालने वाले, 2 पागल तथा एक हत्यारा) को मुक्त कर दिया तथा किले को ध्वस्त कर दिया। स्मृति के रूप में लोग लोहे तथा पत्थर के टुकड़े ले गये। उन्मत्त जनसमूह ने प्रशासक का सिर काट दिया और पाइक पर रखकर सड़कों पर प्रदर्शन किया। महिलाओं और बच्चों ने अपने आनन्द को व्यक्त करने के लिए कटे हुए सिर के चारों ओर नृत्य किया। कुछ दिन बाद दो मन्त्रियों की भी नृशंस हत्या कर दी गयी। बास्तील के पतन से पेरिस में अपूर्व हर्षोल्लास का वातावरण हो गया। एक साधारण दुर्ग पर उग्र जनसमूह ने आधिपत्य स्थापित करके ध्वस्त कर दिया था, परन्तु यह घटना भावी घटनाओं की पूर्व सूचना थी। यथार्थ में यह सशस्त्र क्रान्ति का बिगुल था। **ग्लियो ग्योरश्वाय** कहते हैं "बास्तील निरंकुशतावाद तथा दमन का घृणित प्रतीक था। बास्तील एक दुर्ग ही नहीं वरन् एक सिद्धान्व और परम्परा का प्रतीक था। उसका पतन, सिद्धान्त और परम्परा का पतन था।"

बास्तील का पतन फ्रान्स के इतिहास में एक विशेष महत्वपूर्ण घटना है। फ्रान्स में बोर्बो शासकों के श्वेत ध्वज के स्थान पर लाल श्वेत तथा नीले रंग का नया ध्वज ग्रहण किया गया। बास्तील के पतन को राजतन्त्र की पराजय तथा स्वतन्त्रता की विजय के रूप में मान्यता दी जाती है। 14 जुलाई राष्ट्रीय अवकाश घोषित किया गया। बास्तील के पतन का महत्व दर्शाते हुए विख्यात इतिहासकार गुडविन लिखते हैं, "समस्त क्रान्तिकाल में बास्तील के पतन सदृश्य बहुमुखी एवं गम्भीर परिणामों वाली अन्य कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। इस दुर्ग के पतन को फ्रान्स में ही नहीं वरन् समस्त विश्व में नवोदय का प्रतीक माना गया।"

14 जुलाई, 1789 को आरम्भ हिंसात्मक गतिविधियाँ फ्रान्स की क्रान्ति के अन्त तक निरन्तर चलती रहीं। पेरिस व्यावहारिक रूप में राजतन्त्रीय नियन्त्रण से मुक्त हो गया। लुईस सोलहवें ने पेरिस की नई सरकार को मान्यता दे दी तथा लेफायेट (Lafayette) की राष्ट्रीय सेना (National Guard) और लोकप्रिय सेना के अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति की पुष्टि कर दी।

सामन्तों के दुर्गों पर आक्रमण (Attack on the Forts of Feudals)—बास्तील के पतन के देशव्यापी परिणाम हुए। ग्रामों तथा नगरों में पेरिस के अनुरूप स्थानीय सरकारों का गठन किया गया। ग्रामों में कृषकों ने भी क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। कुलीनों तथा धर्माधिकारियों के घरों को जला दिया, दुर्गों को नष्ट कर दिया, सामन्तों के महत्वपूर्ण दस्तावेजों को प्रज्जवलित कर दिया तथा समाहर्त्ताओं को नदी में डुबो दिया। इस प्रकार फ्रान्स के समस्त ग्रामीण क्षेत्र में राजकीय सत्ता पंगु तथा निष्क्रिय हो गयी थी। पेरिस नगर के नेताओं ने सरकारी सैनिकों के अत्याचारों के भय से नगर की प्रशासनिक व्यवस्था पेरिस के एस्टेट्स जनरल के निर्वाचित प्रतिनिधियों को सौंप दी। इस प्रकार 'पेरिस कम्यून' (Paris Commune) जन प्रतिनिधियों की पहली स्वायत्तशासी संस्था थी। लुईस सोलहवें स्वयं लाल, श्वेत तथा नीले रंगों वाली, क्रान्ति की प्रतीक, कलंगी पहन कर पेरिस को शान्त करने के उद्देश्य से जनसमूह में उपस्थित हुआ और जनसमूह ने हर्षोल्लास के साथ लुईस की उपस्थिति का स्वागत किया। इससे स्पष्ट था कि जनता का राजा के साथ किसी प्रकार का व्यक्तिगत विरोध नहीं था। पेरिस के मेयर ने लुईस सोलहवें का आह्वान करते हुए हृदय के उद्‌गार व्यक्त किये, "सन् 1589 में एक दिन हेनरी चतुर्थ ने पेरिस की जनता को जीता था, आज पेरिस की जनता ने राजा को जीत लिया है।" इससे राजा और प्रजा के मध्य परिवर्तित सम्बन्धों का बोध होता है। जबकि देश के विभिन्न भागों में हिंसक गतिविधियाँ निर्बाध रूप से निरन्तर चल रही थीं, राष्ट्रीय सभा इन हिंसक घटनाओं के प्रति मूकदर्शक मात्र बनी रही।

सामन्तवाद का समापन (Abolition of Feudalism)—4 अगस्त, 1789 को राष्ट्रीय सभा समस्त देश में व्याप्त अराजकता, अशान्ति, असुरक्षा तथा अव्यवस्था पर विचार-विमर्श कर रही थी और हिंसक घटनाओं के लिए उत्तरदायी अपराधियों को दण्ड देने तथा सम्पत्ति की समुचित सुरक्षा के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया कि अनायास ही नोआइय (Viscount of Noailles) नाम के एक कुलीन ने प्रस्ताव का विरोध किया और उसने करों में असमानता तथा कुलीन वर्ग के समस्त विशेषाधिकारों को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव राष्ट्रीय सभा के पटल पर रखा। उसने मत व्यक्त किया कि प्रचलित सामन्तवादी व्यवस्था, उनकी सम्पत्ति तथा संलग्न विशेषाधिकार ही समाज में व्याप्त असन्तोष, कुंठा, ईर्ष्या, द्वेष और शत्रुता का मूल कारण हैं। इसके साथ ही उसने घोषणा की, "मैं अपने समस्त विशेषाधिकारों का परित्याग करता हूँ।" कुलीन के प्रस्तुत प्रस्ताव का एक अन्य कुलीन आग्योन (Duke d' Aiguillon) ने समर्थन किया। यह कुलीन राजा के बाद था और फ्रान्स का सबसे बड़ा सामन्त था। स्थिति अत्यधिक नाटकीय थी। कुलीनवर्गीय सदस्य भावावेश में आ गये। सामन्त तथा धर्माधिकारी प्रतिनिधियों में भी प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो गयी। प्रातःकाल होने तक लगभग समस्त कुलीन

तथा धर्माधिकारी प्रतिनिधियों ने स्वेच्छा से अपने विशेषाधिकारों का परित्याग कर दिया। 4 अगस्त के दीर्घकालीन अधिवेशन में 30 प्रस्ताव पारित किये गये। प्रतिनिधियों ने भावावेश में विलाप किया। परस्पर गले मिले और एक दूसरे को विश्वास और स्नेह के प्रतीक स्वरूप चुम्बन लिया। परिणामस्वरूप सामन्तवाद तथा धर्माधिकारियों के समस्त प्रतीक एक रात्रि में ही ध्वस्त हो गये। प्रचलित अर्द्धदास प्रथा, अनिवार्य निःशुल्क श्रम, विभिन्न प्रकार के कृषकों द्वारा भू-स्वामियों की सेवा, उपहार, समस्त कर, आदि समस्त कष्टप्रद तथा भेदमूलक अवयव समाप्त हो गये। चर्च को देय समस्त करों का उन्मूलन हो गया। श्रेणियों का अन्त कर दिया गया। कानून के समक्ष समानता के सिद्धान्त को कार्यान्वित किया गया। योग्यता के आधार पर समस्त सरकारी पदों पर नियुक्ति का प्रावधान किया गया। निःशुल्क एवं निष्पक्ष न्याय का आश्वासन दिया गया। पदों के क्रय-विक्रय की प्रचलित प्रथा समाप्त हो गयी। भेदभाव रहित समान करारोपण की प्रणाली को स्वीकार किया गया। इस प्रकार समस्त भेदभाव, ईर्ष्या, द्वेष, मनोमालिन्य समाप्त हो गये और समानता का सिद्धान्त समाज और राज्य का मूल आधार बन गया। कल्पनातीत सामाजिक क्रान्ति हो गयी। यथार्थ में सूर्योदय के साथ फ्रांन्स के लिए अब नवप्रभात था।

संविधान सभा और मानवाधिकारों की घोषणा (Constituent Assembly and Declaration of Human Rights)—बास्तील पर जनसमूह द्वारा आक्रमण से पूर्व ही मानवाधिकारों की उद्घोषणा का प्रारूप अमेरिका की क्रान्ति के नायक और फ्रान्स के प्रतिष्ठित अधिकारी लेफायटे (Lafayette) ने अमेरिका के मानवाधिकार के अनुरूप प्रस्तुत किया था। 27 अगस्त, 1789 को संविधान सभा ने मानव तथा नागरिकों के अधिकारों की घोषणा (Declaration of the Rights of Man and Citizens) का अधिनियम पारित किया। स्वतन्त्रता का अधिकार (धर्म, भाषण तथा प्रेस की स्वतन्त्रता), सम्पत्ति का अधिकार (अलंघनीय तथा पवित्र) और सुरक्षा और दमन के विरोध का अधिकार प्रदान किये गये। इस अधिनियम ने कानून के समक्ष समानता, समान करारोपण तथा सरकारी पदों के लिए समान पात्रता की घोषणा की। मानवाधिकार, इंग्लैण्ड और अमेरिका में स्वीकृत मानवाधिकारों के अनुरूप थे। विश्व के राजनीतिक और सामाजिक विकास में यह एक निर्विवादित अवधारणा रही है। सम्पत्ति के अलंघनीय तथा पवित्र अधिकार पर बल से मध्यवर्गीय भावना स्पष्ट होती है। इसमें सामाजिक तथा आर्थिक समानता का उल्लेख नहीं था।

मानवाधिकारों के कुछ अन्य प्रावधान निम्न प्रकार हैं—

1. मनुष्य के कुछ प्राकृतिक अधिकार हैं जो जन्म लेते ही स्वतः प्राप्त हो जाते हैं, जैसे जीवन रक्षा का अधिकार जन्म सिद्ध अधिकार है।
2. जन-सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति ही कानून है। व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्नों का परिणाम राज्य का उद्भव है। अस्तु व्यक्ति स्वयं अथवा अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रशासन एवं कानून निर्माण प्रक्रिया में भाग लेने के लिए अधिकृत है।
3. किसी व्यक्ति को अवैध ढंग से गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।

4. नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा राज्य का दायित्व है।
5. अन्य नागरिकों को हानिकारक कार्य वर्जित हैं।
6. राज्य के समस्त पदाधिकारी जनता के प्रति उत्तरदायी हैं।

मानवाधिकारों की घोषणा में कर्तव्यों का उल्लेख नहीं था, जिसके परिणामस्वरूप अराजकता का साम्राज्य स्थापित हो गया। सामान्य निर्धन वर्ग को जीविकोपार्जन का कोई आश्वासन नहीं दिया गया। इसमें व्यापार एवं व्यवसाय की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं था।

मनुष्य और नागरिकों के अधिकारों की उद्घोषणा ने संविधान, जिस पर राष्ट्रीय सभा के प्रतिनिधि परिश्रम कर रहे थे, की प्रस्तावना का कार्य किया। यथार्थ में यह घोषणा-पत्र फ्रान्स की क्रान्ति का "एक उज्जवल पक्ष था, जिसके अभाव में यह यूरोप की महत्वपूर्ण घटना नहीं होती।" यह घोषणा "प्राचीन व्यवस्था की मृत्यु का प्रमाण-पत्र थी परन्तु इसमें फ्रान्स के नवीन जीवन की आशा निहित थी।" उन समस्त सिद्धान्तों का समावेश किया गया था, जिनके द्वारा संविधान सभा प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करना चाहती थी। इसके द्वारा नये दावों का समर्थन किया गया तथा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अधिकारों की पुष्टि की गयी, जिसको संविधान निर्माताओं ने अतिआवश्यक स्वीकार किया। इसे विश्व के किसी भी भाग में कुशलतापूर्वक प्रवृत्त किया जा सकता था। निरंकुश राजतन्त्रों तथा सामन्ती व्यवस्था से मुक्ति के लिए यह एक सार्थक चमत्कारी मन्त्र था। यह घोषणा राजतन्त्रीय देशों के लिए चुनौती थी। इसने समस्त विश्व के लोगों में नवीन स्फूर्ति, आशा एवं शक्ति का संचार किया। इस घोषणा ने जनता के अधिकारों के क्रमिक विकास के लिए मार्ग प्रशस्त किया। "यह कागज का टुकड़ा नैपोलियन की सेना से भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ।" इस उद्घोषणा को फ्रान्स में लोकतान्त्रिक तथा गणतान्त्रिक विचारों के विकास के इतिहास में सर्वाधिक विलक्षण तथ्य कहा गया है और आधुनिक युग के धार्मिक सिद्धान्त की संज्ञा प्रदान की गयी है।

मानवाधिकार घोषणा-पत्र पर संविधान सभा में विचार-विमर्श के समय कुछ मतभेद हो चुके थे, जो सामान्य सम्पत्ति के स्वामियों तथा निर्धन सम्पत्तिहीन व्यक्तियों के आदर्शों तथा सिद्धान्तों में विषमता का संकेत देते थे। मध्य वर्ग बिना राजनीतिक और वैधानिक सुधारों के क्रान्ति को रोकना चाहता था, जिससे उत्तरदायी संवैधानिक राजतन्त्र पर उनका नियन्त्रण हो जाये। लेकिन नगरों में श्रमिक तथा ग्रामों में कृषक सामाजिक क्रान्ति की आशा से उग्र सुधारवादी तथा जनोत्तेजकों से प्रेरित थे, जिससे सत्य अर्थों में समानतावादी समाज का शुभारम्भ हो जाये। उनके मस्तिष्क में अस्पष्ट विचार था कि मनुष्यों को केवल अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की दृष्टि से ही समान नहीं होना चाहिए, वरन् शिक्षा, अवसरों और सम्पत्ति की दृष्टि से भी समान होना चाहिए। प्रतिनिधियों में कुछ समाधिमग्न स्वप्नदृष्टा थे, जिनका विश्वास था कि प्रबुद्ध राजाज्ञाओं द्वारा निर्धनता और अज्ञानता के अस्तित्व को समाप्त करना तथा समस्त नागरिकों को गुणवान एवं सुखी बनाना सम्भव था। युद्ध अथवा क्रान्ति जैसे कार्यों के लिए भगीरथ प्रयत्न में व्यस्त व्यक्ति भी अस्पष्ट एवं उच्च आकर्षक आदर्शों के प्रलोभन में आ जाते हैं, जो उनको अपने भावी कार्यों के कुरूप पक्ष के प्रति नेत्रहीन बनाने में

सहायता करते हैं। फ्रान्स की क्रान्ति के समय में एक ही अपेक्षा के साथ अनेक नेताओं का उद्‌भव हुआ, जो आदर्श राज्य बनाने के प्रयास में, अपने स्वयं के सिर के साथ सहस्त्रों सिरों का वलिदान करने के लिए सहर्ष तत्पर थे। ऐसे व्यक्ति तथा विश्वसनीय जन समुदाय के लिए जो उनकी ओर ध्यान देता था, क्रान्ति मृगतृष्णा की कटुता ला सकती थी। इसी समय निम्नवर्गीय जनसमूह का शक्तिशाली जनशक्ति के रूप में अभ्युदय हुआ और पेरिस के इस नवोदित जनसमूह ने फ्रान्स की क्रान्ति का पाँच वर्ष तक संचालन किया।

लुईस सोलहवें ने कुलीन वर्ग के हितों का समर्थन करते हुए मध्यम वर्ग का विरोध करना आरम्भ कर दिया और संविधान द्वारा पारित अगस्त माह के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। राजा का यह दृष्टिकोण उसके स्वयं तथा देश के लिए घातक तथा दुर्भाग्यपूर्ण था। अपुष्ट समाचारों से जनसमूह को ज्ञात हुआ कि राजा क्रान्ति के दमन के लिए वर्साय में सेना एकत्र कर रहा था और भोज, भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद पर असीमित धन का अपव्यय कर रहा था, जबकि पेरिस के निकट निर्धन जनसमुदाय अकाल पीड़ित था और भूख से लोग काल-कवलित हो रहे थे। उग्र सुधारवादी पत्रकारों द्वारा प्रोत्साहित एवं उद्वेलित जनसमूह ने माँग की कि राजा को दरवार के भ्रष्ट एवं दूषित प्रभाव से मुक्त करने के लिए वर्साय से दूर रखना चाहिए।

निर्धन महिलाओं का वर्साय की ओर कूच (March of Poor Women to Versailles)—इस अत्यधिक असन्तोष, पीड़ा एवं कुंठा की स्थिति से क्रान्ति की एक अन्य महत्वपूर्ण घटना का उदय हुआ। 5 अक्टूबर, 1789 को सहस्त्रों निर्धनवर्गीय पीड़ित स्त्रियों का विशाल समूह एकत्रित होकर 'हमें रोटी दो' का नारा लगाते हुए वर्साय पहुँचा और राजप्रासाद को चारों ओर से घेर लिया, यद्यपि राष्ट्रीय सुरक्षा सेना के अध्यक्ष लेफायटे ने जनसमूह को रोकने का प्रयास किया। कहा जाता है कि ये स्त्रियाँ रोटी के मूल्य कम करवाना चाहती थीं और राष्ट्रीय ध्वज का अपमान करने के लिए दण्ड दिलवाना चाहती थीं। राजकीय सेना को बैरकों में वापिस भेज दिया गया। लेफायटे को विश्वास था कि राज परिवार की सुरक्षा करने में समर्थ होगा। राजा-रानी दोनों ने संयुक्त रूप से आश्वासन देकर जनसमूह को शान्त करने का असफल प्रयास किया। सारी रात युद्ध के लिए अदृश्य रूप से तैयारियाँ चलती रहीं। 6 अक्टूबर को प्रातः जनसमूह ने राजप्रासाद के एक द्वार से प्रवेश किया और रानी के अंगरक्षक की हत्या कर दी। जनसमूह साम्राज्ञी के शयन कक्ष तक पहुँच गया और वह सुरक्षा के लिए राजा के कक्ष में गयी। जनसमूह ने माँग की कि राजा और राजपरिवार को उनके साथ पेरिस चलना चाहिए। लुईस सोलहवें ने विवश होकर जनसमूह की माँग को स्वीकार कर लिया तथा जनसमूह के साथ पेरिस के लिए चल दिया और जनसमूह हर्षोल्लास के साथ नाच गा रहा था "हम लोग रोटी वाले, रोटी वाले की पत्नी तथा रोटी वाले के छोटे पुत्र को ले चले।" विशाल जनसमूह पेरिस पहुँच गया। इस असाधारण एवं अपमानजनक घटना ने लुईस सोलहवें और उसके परिवार को वर्साय छोड़ने और पेरिस में रहने के लिए विवश कर दिया।

लुईस सोलहवें को पेरिस के मध्य में स्थित तुइलरी के विशाल प्रासाद में रखा गया। यथार्थ में राजा की स्थिति एक बन्दी के सदृश्य हो गयी। तदुपरान्त राजा लुईस सोलहवें कभी

भी वर्साय नहीं गया। लुईस सोलहवें के पेरिस आने के बाद 16 अक्टूबर को तथाकथित संविधान सभा को भी वर्साय से पेरिस स्थानान्तरित कर दिया गया। संविधान सभा के अधिकांश सदस्य ग्रामीण क्षेत्रों के थे और वे पेरिस आकर शहरी संस्कृति से प्रभावित हो गये। इस परिवर्तन के दूरगामी परिणाम हुए। अगले पाँच वर्षों तक पेरिस ने फ्रान्स की क्रान्ति का निर्देशन तथा संचालन किया।

वर्ष 1790 अपेक्षाकृत शान्त रहा। पूर्व वर्ष में अच्छी फसल हुई थी। संविधान सभा संविधान निर्माण का कार्य करती रही। फ्रान्स में सीमित संवैधानिक राजतन्त्र का प्रावधान था और मन्त्रियों के अधिकारों और शक्तियों को अत्यधिक सीमित कर दिया गया था। राजतन्त्र का सेना पर नियन्त्रण शिथिल हो रहा था, अतः शक्ति एवं सत्ता भी क्षीण हो रही थी। दूसरी ओर स्थानीय अधिकारियों के संरक्षण में राष्ट्रीय सुरक्षा सेना को शक्तिशाली बनाया जा रहा था।

संविधान का निर्माण (Framing of the Constitution)—संविधान का धीरे-धीरे विकास किया गया। अपेक्षाकृत अधिक मौलिक सिद्धान्तों को 1789 में स्वीकार कर लिया था। अनेक कानून 1790 और 1791 में पारित किये गये जो यथार्थ में संविधान के भाग थे। इसका टुकड़ों में विकास हुआ। राजा ने 1791 में एक संशोधित, परिवर्तित और संकलित रूप में संविधान स्वीकार किया था। यह सन् 1789 की अपेक्षा सन् 1791 का संविधान था। यह फ्रान्स का पहला लिखित संविधान था। सन् 1791 में फ्रान्स के इतिहास में पहली बार संविधान सभा ने संविधान का निर्माण किया। नये संविधान के अनुसार (1) राज्य की प्रभुसत्ता जनता में निहित थी, (2) शक्ति का राज्य और जनता के हित में केन्द्रीकरण का प्रावधान था अर्थात् शक्तियों के पृथक्कीरण के सिद्धान्त (प्रर्वतक मान्टेस्क्यू) के आधार पर व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के गठन की व्यवस्था थी। फ्रान्स की शासन पद्धति का स्वरूप यद्यपि राजतन्त्रीय ही रहा लेकिन राजतन्त्र की शक्तियों और सत्ता को सीमित कर दिया गया। राजा को 2,50,00,000 फ्रैंक निश्चित वेतन दिया जाता था। राजा को निषेधाधिकार दिया गया था। यद्यपि उसको कानून बनाने की शक्ति से वंचित कर दिया गया था लेकिन विधान सभा द्वारा पारित कानूनों को तत्काल प्रवृत्त होने से रोक सकता था। राजा दो बार लगातार विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को स्वीकृति देने से मना कर सकता था और लगभग 4 वर्ष तक पारित विधेयक को प्रवृत्त होने से रोक सकता था लेकिन तीसरी बार पारित हो जाने के बाद राजा की सहमति के बिना स्वतः प्रवृत्त हो जाता था। संविधान में मानवाधिकारों की पूर्व उद्घोषणा को वैधानिक स्वरूप प्रदान कर दिया। इसके अतिरिक्त विदेश जाने के अधिकार, राज्य द्वारा अधिग्रहीत सम्पत्ति के लिए क्षतिपूर्ति का अधिकार, तथा शिकायत करने के अधिकार को मानवाधिकारों के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। प्रशासन की सुविधा के लिए प्रशासन को अनेक विभागों तथा राज्य को अनेक जिलों तथा कम्यूनों में विभाजित किया गया। कम्यून न्यूनतम प्रशासनिक इकाई थी।

विधान सभा (Legislative Assembly)—संविधान के अनुसार 745 सदस्यों वाली व्यवस्थापिका सभा का प्रावधान था। इसका कार्यकाल दो वर्ष निश्चित किया गया। व्यवस्थापिका सभा के गठन के लिए निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था थी। सार्वभौम वयस्क

मताधिकार का प्रावधान नहीं था। निर्वाचन में मतदान के लिए नागरिकों को सक्रिय तथा निष्क्रिय नागरिक, दो समूहों में विभाजित किया गया। 40 लाख सक्रिय नागरिक थे और 30 लाख निष्क्रिय नागरिक थे जिनको मताधिकार नहीं था। मतदान के अधिकार के लिए आर्थिक योग्यता निर्धारित की गयी। 25 वर्ष तथा इससे ऊपर तीन दिन की आय के समान कर दाता, तथा नगरपालिका एवं राष्ट्रीय रक्षक दल में पंजीकृत प्रत्येक व्यक्ति को सक्रिय नागरिक की कोटि में रखा गया। सक्रिय नागरिक भी अप्रत्यक्ष मतदान के लिए अधिकृत थे। 100 सक्रिय नागरिक एक प्रतिनिधि का चुनाव करते थे। सम्पत्ति का स्वामी तथा 10 दिन की आय के बराबर वार्षिक कर दाता ही निर्वाचक चुना जा सकता था। निर्वाचकों का निर्वाचक मण्डल प्रतिनिधि (डिप्टी) चुनता था। भू-स्वामी तथा 54 फ्रैंक वार्षिक कर दाता ही प्रतिनिधि चुना जा सकता था। व्यवस्थापिका सभा ही सर्वोच्च कानून निर्मात्री सभा थी और इसकी स्वीकृति के अभाव में युद्ध और शान्ति की घोषणा नहीं हो सकती थी। राजा व्यवस्थापिका सभा को भंग करने के लिए अधिकृत नहीं था।

निर्वाचित न्यायपालिका (Elected Judiciary)—न्यायाधीशों के पदों के क्रय-विक्रय की परम्परा को समाप्त कर दिया गया। निर्वाचन के आधार पर न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। मुद्रित पत्रों के प्रचलन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। न्यायालय के समक्ष समानता के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गयी।

चर्च की भूमि का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of the Land of Church)—इन समस्त संवैधानिक परिवर्तनों के उपरान्त भी वित्तीय स्थायित्व की विकट समस्या का समाधान पूर्ववत बना रहा। सार्वजनिक ऋणों द्वारा अल्प मात्रा में धन की प्राप्ति हुई। इसी अवधि में तालीराँ नाम के एक धर्माधिकारी (बिशप) ने चर्च की सम्पत्ति को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा। फ्रान्स की कुल भूमि का पाँचवाँ भाग चर्च के नियन्त्रण में था। इस भूमि के अधिग्रहण से कुछ काल के लिए आर्थिक समस्या का समाधान हो सकता था और ऋणों के कुछ अंशों के भुगतान में सफलता मिल सकती थी। तालीराँ के प्रस्ताव का मिराबो ने भी प्रबल समर्थन किया। संविधान सभा में बहुत विचार-विमर्श के उपरान्त केवल 22 मतों के बहुमत से प्रस्ताव पारित हो गया। 3 नवम्बर, 1789 को संविधान सभा ने चर्च की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कर दिया। चर्च की अधिग्रहीत भूमि की क्षतिपूर्ति के रूप में राज्य ने चर्च के शैक्षणिक तथा निर्धनों को उदार-वृत्ति एवं लिपिकों के वेतन के भुगतान का दायित्व लिया।

कागज की मुद्रा अथवा एसाइनेट (Paper Currency or Assignats)—चर्च की भूमि के विक्रय से क्रेताओं के नये वर्ग का उद्भव हुआ, जिस के हित क्रान्ति के साथ सम्बद्ध थे। चर्च की भूमि के विक्रय से प्राप्त धनराशि से, नवीन सुरक्षा पर आधारित एसाइनेट (Assignats) के रूप में राजकोष से बॉण्ड प्रचलित किये गये। इनका प्रयोग विनिमय बीजक के रूप में होने लगा। इस पर पाँच प्रतिशत ब्याज देय था। यह एक नवीन वित्तीय उपाय था और प्रारम्भ में चर्च की सम्पत्ति पर धरोहर स्वरूप थे। लेकिन 1790 के अन्त में इन पर ब्याज समाप्त कर दिया गया और अपरिवर्तनीय कागज की नियमित मुद्रा बन गये। सन् 1792 के उपरान्त यूरोप के साथ युद्ध के प्रयासों को वित्तीय सहायता के लिए अपेक्षा से अधिक कागज की मुद्रा छापी गयी। परिणामस्वरूप मुद्रा का अवमूल्यन (Depreciation)

तथा सन् 1793 के प्रारम्भ में मुद्रा स्फीति का संकट उत्पन्न हो गया। जनता ने कागज की मुद्रा के एसाइनेट को स्वीकार करना बन्द कर दिया। सन् 1789 में चर्च की भूमि का अनुमानित मूल्य 4,00,00,00,000 फ्रैंक था और इसी मूल्य के एसाइनेट (Assignats) जारी किये गये और जनता मुद्रित मूल्य पर स्वीकार करती थी। सन् 1789 में 100 फ्रैंक का एसाइनेट का मूल्य सिक्कों में 100 फ्रैंक ही था। सन् 1791 में 100 फ्रैंक के एसाइनेट का मूल्य सिक्कों में 82 फ्रैंक रह गया और 1796 में आधे से भी कम रह गया। जटिल वित्तीय समस्या का यह ईमानदार अथवा प्रभावकारी समाधान नहीं था। संविधान सभा ने समस्या के समाधान के लिए कुछ नहीं किया। स्थिति सुधरने की अपेक्षा बिगड़ गयी और चर्च क्रान्ति का विरोधी हो गया। भूमि क्रेता क्रान्ति के प्रबल समर्थक बन गये और इन्हीं व्यक्तियों ने क्रान्ति की रक्षा की।

पादरियों का असैनिक संविधान (Civil Constitution of Clergy)—चर्च के स्वरूप तथा संगठन में भी अनेक परिवर्तन किये गये। 24 अगस्त, 1790 को धर्माधिकारियों के लिए "पादरियों का असैनिक संविधान (Civil Constitution of Clergy) प्रवृत्त किया गया। विधान सभा द्वारा पारित अधिनियम के अनुसार धर्म प्रदेशों की संख्या घटाकर 134 से 83 कर दी गयी। इस संविधान के अनुसार निम्नलिखित प्रावधान थे—

1. एक प्रान्त (विभाग) में केवल एक ही धर्माधिकारी (विशप) की नियुक्ति की व्यवस्था थी।
2. राज्य सरकार समस्त धर्माधिकारियों को वेतन का भुगतान करेगी। अधिकांश बिशपों की आय बहुत कम हो गयी और पैरिश (Parish) के पादरियों की आय में पर्याप्त वृद्धि हो गयी।
3. धर्माधिकारी (विपश) पोप की अपेक्षा राज्य के अधीन रहकर अपने दायित्वों का निर्वाह करेंगे।
4. समस्त धर्माधिकारियों (बिशप तथा पादरी) को जनता चुनेगी और निर्वाचन में रोमन कैथोलिक मतावलम्बियों के अतिरिक्त प्रोटेस्टेन्ट तथा यहूदी भी समान रूप से मतदान के लिए अधिकृत होंगे।

फ्रान्स के अधिकांश बिशप एवं पादरी निष्ठावान कैथोलिक मतावलम्बी थे। चर्च के लिए एक अलग विभाग की उत्पत्ति का इन लोगों ने विरोध किया। नवम्बर, 1790 में समस्त पदों पर आसीन धर्माधिकारियों से संविधान के प्रावधान के अनुसार 'पादरियों के असैनिक संविधान' के प्रति निष्ठा की शपथ लेने के लिए आग्रह किया गया। इसने देश का विभाजन कर दिया। 4 धर्माधिकारियों (बिशप) के अतिरिक्त समस्त धर्माधिकारियों ने शपथ लेने से मना कर दिया। 2/3 पादरियों ने भी शपथ के आग्रह को अस्वीकार कर दिया। शपथ लेने से मना करने वाले धर्माधिकारियों को अपने पदों से मुक्त कर दिया गया तथा सार्वजनिक शान्ति और व्यवस्था का शत्रु घोषित किया गया। शपथ की सहमति व्यक्त करने वाले पादरियों एवं बिशपों को वैधिक तथा असहमति व्यक्त करने वालों को जिद्दी अथवा अविधिक कहा गया। अनेक पादरी स्वदेश छोड़कर अन्यत्र चले गये अथवा क्रान्ति के विरोध की योजना तैयार करने लगे। पोप पायस षष्ठम भी अब क्रान्ति का कटु आलोचक था। इस विभाजन

ने अनेक क्षेत्रों में बहुमत के समर्थन से प्रतिक्रान्ति को व्यावहारिक बना दिया। इसके अतिरिक्त लुईस सोलहवें को क्रान्ति का पूर्वापेक्षा अधिक विरोधी बना दिया। अनेक कृषक भी क्रान्ति के विरोधी हो गये। अप्रवासियों में अन्तःकरण की चेतना जाग्रत हो गयी। संविधान सभा ने जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की तथा चर्च को देय कर बन्द कर दिया। चर्च पर किसी वर्ग विशेष का नियन्त्रण नहीं रहा और वह सार्वजनिक सम्पत्ति वन गया। संविधान सभा के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए सी. डी. एम. कैटलबी अपनी कृति 'आधुनिक काल का इतिहास' में लिखते हैं, "इसने एक सामाजिक एवं नागरिक क्रान्ति का सूत्रपात किया और सार्वजनिक नीति का आधार जनसमुदाय की इच्छा को स्वीकार किया था। इसने भविष्य के लिए एवं समस्त विश्व के लिए एक नये सन्देश की 'जनसाधारण के वैयक्तिक महत्व के संदेश' उद्घोषणा की थी।

फ्रान्स यूरोप में युद्ध में व्यस्त था। फ्रान्स के अनेक क्षेत्रों में असैनिक (गृह) युद्ध के सूत्रपात ने सरकार के संघर्ष को निराशाजनक बना दिया। लुईस सोलहवें चर्च के प्रति अत्यधिक निष्ठावान था। अतः धर्माधिकारियों के समर्थन में उसका दृष्टिकोण भी कठोर तथा दृढ़ हो गया। अनेक वर्गों में लोगों को उत्तेजित किया। वेन्डी (Vendee) में फ्रान्स का सर्वाधिक भाव प्रवण एवं उग्र असैनिक युद्ध हुआ। बहुत बड़ी संख्या में निम्न वर्गीय पादरी, जो अब तक क्रान्ति के समर्थक थे, क्रान्ति के विरोधी हो गये। राजा और संविधान के मध्य प्रभावशाली सम्पर्क स्थापित करने वाला एकमात्र व्यक्ति काम्ट द मिराबो, क्रान्ति के प्रारम्भिक वर्षों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट राजनीतिक था। उसका जन्म एक कुलीन परिवार में हुआ था। उसने अनेक भ्रष्ट आचरण किये थे। वह एक अन्य व्यक्ति की पत्नी को भगा ले गया था। वह इतना बड़ा धूर्त, मक्कार तथा दुष्ट प्रवृत्ति का था कि कुछ ही उसका विश्वास करते थे। वह अपार ऋण से ग्रस्त रहा और लुईस सोलहवें को राजनीतिक सूचनाएँ देकर मासिक वेतन लेता था। रानी आँत्वानेट (Marie Antoinette) ने उसको अनेक प्रलोभन देकर अपना विश्वासपात्र बना लिया था। संविधान सभा को उसकी गतिविधियों पर सन्देह था। लेकिन जब तक वह जीवित रहा सहयोग निरन्तर चलता रहा। अप्रैल 1791 में उसने मृत्यु शैय्या पर कहा, "मैं अपने साथ राजतन्त्र के अन्तिम टुकड़े ले जाता हूँ" यह सत्य सिद्ध हुआ। उसकी मृत्यु के दो माह बाद रानी आँत्वानेट को साथ लेकर फ्रान्स से पलायन का निश्चय किया।

वर्नीज पलायन (Escape to Vernese)—सर्वविदित है कि संविधान सभा राजा तथा राजतन्त्र के विरुद्ध नही थी। नये संविधान की सीमाओं के अन्तर्गत प्रतिष्ठापूर्वक जीवनयापन का समुचित प्रावधान था। बास्तील के पतन के बाद अनेक सामन्तों ने अन्य देशों में शरण ले ली थी। इनमें लुईस सोलहवें का भाई भी था। लुईस सोलहवें ने विचार व्यक्त किया, "ऐसी स्थिति में फ्रान्स का राजा बने रहने की अपेक्षा मेत्ज का राजा रहना पसन्द करूँगा।" अपनी सत्ता के लोप से अपमानित एवं आत्मा से आहत लुईस सोलहवें ने फ्रान्स के पूर्वी भाग में भागने की योजना बनायी। वहाँ उसके फ्रान्सीसी निष्ठावान सैनिक थे, जिन पर वह विश्वास कर सकता था। विदेशों में बसे हुए सामन्तों तथा भाई के अदूरदर्शी परामर्श के अनुसार सपरिवार फ्रान्स से भागकर आस्ट्रिया पहुँचने का कार्यक्रम बनाया। 20 जून, 1791

की रात्रि में लुईस सोलहवें एक नौकर का तथा साम्राज्ञी एक रूसी महिला का भेष बनाकर एक भद्दी सी गाड़ी में तुलिरीज से भाग गये। लुईस सोलहवें ने भेष बदलकर परिवार के साथ वर्नीज पर सीमा पार करने का प्रयास किया लेकिन एक युवक ने लुईस को पहचान लिया। लुईस को परिवार सहित बन्दी बना लिया गया और जून, 1791 में वापिस पेरिस लाया गया। इसके बाद घटनाक्रम में गति आयी। राजा को त्यक्ता तथा देशद्रोही घोषित किया गया। यूरोप में राजतन्त्र के समर्थकों को आशंका थी कि फ्रान्स में राजपरिवार सुरक्षित नहीं था। राजा लुईस सोलहवें का पलायन फ्रान्स तथा शेष यूरोप के मध्य का निर्णायक कारण था। देश ने भी अनुभव किया था कि राजा की अनुपस्थिति से राज्य का विनाश नहीं हुआ था।

पलायन के प्रभाव (Effects of Escape)—इस घटना ने संविधान सभा तथा समस्त देश में राजनीतिक तथा सामाजिक मतभेदों को पूर्वापेक्षा अधिक गम्भीर एवं गहन कर दिया। राजा ने अपनी वास्तविक भावनाओं को व्यक्त कर दिया था। उसके प्रति जनता की निष्ठा समाप्त हो गयी। जनता को उसके कथन में किसी प्रकार का विश्वास नहीं रहा। गणतान्त्रिक दल का अभ्युदय हुआ। पेरिस स्थित अनेक क्लबों ने राजा को अपदस्थ करने की माँग को तीव्र कर दिया। प्रदर्शनकारियों पर गोलियों की वर्षा की गयी परिणामस्वरूप अनेक प्रदर्शनकारियों की मृत्यु हो गयी। इससे संविधान सभा में अपरिवर्तनीय विभाजन हो गया और नवीन कार्यकर्ताओं की भर्ती से गणतन्त्रवादी आन्दोलन शक्तिशाली हो गया।

नये संविधान के प्रावधानों के अनुसार सितम्बर, 1791 में संविधान सभा को भंग कर दिया गया तथा अक्टूबर, 1791 में नई विधान सभा के गठन के लिए निर्वाचन हुए। नये निर्वाचित सदस्यों में बहुमत संयमित तथा सन्तुलित दृष्टिकोण वालों तथा विचारकों का था। गणतन्त्रीय विचारधारा के सदस्यों की संख्या बहुत कम थी। गणतन्त्रवादी राजतन्त्र को समाप्त करके गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। गणतन्त्रवादियों के अल्पमत में होते हुए भी, वे जेरोडिन्स, तथा जैकोबिन दो दलों में विभाजित थे। जेरोडिन्स गणतन्त्रवादियों की संख्या जैकोबिन अनुयायियों की अपेक्षा अधिक थी। जैकोबिन समर्थकों के विचार अत्यधिक उग्र एवं क्रान्तिकारी थे। मारा, दाँतों तथा रोबस्पियेरे जैकोबिन विचारधारा के प्रमुख नेता थे।

सिद्धान्तों की दृष्टि से दोनों दलों में नाममात्र का अन्तर था। जेरोडिन्स अनुयायी अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत थे और उनके उच्च आदर्श थे। जैकोबिन्स को पेरिस के जनसमूह का समर्थन प्राप्त था और ये लोग अपनी सफलता के लिए हिंसात्मक गतिविधियों में विश्वास करते थे। नवगठित राष्ट्रीय सभा ने उन व्यक्तियों की, जो देश छोड़कर देश की सीमाओं पर एकत्र हो गये थे, यदि वे लौट कर नहीं आते हैं, भूमि अधिहरण करने की चेतावनी दी। राजा ने इस प्रकार के प्रस्ताव पर स्वीकृति देने से मना कर दिया। नवगठित राष्ट्रीय सभा के समक्ष क्रान्ति विरोधी, धर्माधिकारियों तथा कुलीन वर्गों के व्यक्तियों को नियन्त्रित करने की विकट समस्या थी। क्रान्ति विरोधी कुलीनवर्गीय व्यक्ति विदेशों में क्रान्ति के विरुद्ध जनमत तैयार करने तथा उन देशों के शासकों को फ्रान्स के ऊपर आक्रमण करने के लिए उत्तेजित करने में व्यस्त थे। प्रशा एवं आस्ट्रिया ने घोषणा कर दी थी कि फ्रान्स से यूरोप के राज्यों के लिए

संकट उत्पन्न हो गया, तथा अन्य राज्यों से फ्रान्स के विरुद्ध सहायता के लिए अनुरोध किया। क्रान्ति के महान आदर्शों तथा सिद्धान्तों की सुरक्षा के लिए फ्रान्स को राजतन्त्र समर्थक विदेशी शक्तियों से भीषण युद्ध करना पड़ा। परिणामस्वरूप एक ऐतिहासिक युद्ध का शुभारम्भ हुआ जिसने क्रान्ति को सदैव नवीन शिक्षा प्रदान की।

दीर्घकालीन युद्ध की घोषणा (Declaration of Long-term Wars)—सन् 1792 में जेरोडिन्स गणतन्त्रवादियों ने आस्ट्रिया के सम्राट से फ्रान्स के क्रान्ति विरोधियों को निष्कासित करने की माँग की। परिणामस्वरूप जेरोडिन्स प्रतिनिधियों ने 20 अप्रैल, 1792 को लुईस सोलहवें को आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने के लिए बाध्य किया। यह युद्ध 23 वर्षों तक निरन्तर चलता रहा तथा यूरोप के लगभग समस्त देशों ने सक्रिय भाग लिया। इस युद्ध के अनेक महत्वपूर्ण परिणाम हुए। इसने क्रान्ति के स्वरूप में आमूल परिवर्तन कर दिया। संयमित तथा सन्तुलित विचारधारा वालों तथा उग्रवादियों में परस्पर मतभेदों को पूर्वापेक्षा अधिक बढ़ा दिया। क्रान्ति को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का बना दिया और अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उग्र रूप पर बल दिया। यह युद्ध फ्रान्स की पराजय, अपमान तथा आक्रमण की पाँच माह की कहानी है।

युद्ध की घोषणा के तत्काल बाद क्रुद्ध प्रदर्शनकारियों ने राजा के महल में प्रवेश किया और राजा को स्वतन्त्रता की प्रतीक टोपी पहनने तथा राष्ट्र के अच्छे स्वास्थ्य के लिए मदिरा पान करने के लिए बाध्य किया। राजतन्त्र की प्रतिष्ठा को अपूरणीय क्षति पहुँची। जुलाई, 1792 में ब्रनस्विक के ड्यूक ने घोषणा की कि वह पेरिस नगर को दण्ड देगा, यदि फ्रान्स के राजा को शारीरिक चोट पहुँचायी गयी अथवा राजा का अपमान किया गया। पेरिस की जनता भयाक्रान्त हो गयी। जनसमूह शत्रु के साथ राजतन्त्र के सम्बन्धों की गरिमा तथा परिणामों को भली-भाँति समझता था। लेकिन जनसमूह ने लुईस सोलहवें के महल पर आक्रमण कर दिया, और स्वीडेन के दो अंगरक्षकों की हत्या कर दी। पेरिस की क्रान्तिकारी सरकार ने अनेक क्रान्तिविरोधियों को बन्दी बनाकर कारागृहों में डाल दिया और विदेशी सेनाओं के फ्रान्स में प्रवेश करते ही समस्त बन्दियों की हत्या कर दी गयी जिससे वे शत्रुओं से मिलकर फ्रान्स के विरुद्ध षड्यन्त्र की रचना नहीं कर सकें। लुईस सोलहवें को भी बन्दी बना लिया गया। देश के नये संविधान के निर्माण के लिए राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) का चुनाव करवाया गया।

राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention)—20 सितम्बर, 1792 को नवनिर्वाचित राष्ट्रीय सम्मेलन का पहला अधिवेशन आरम्भ हुआ और इस अधिवेशन में ही राजतन्त्र को औपचारिक रूप से समाप्त करने के लिए प्रस्ताव पारित किया गया और गणतन्त्र की स्थापना की गयी। राष्ट्रीय सम्मेलन ने घोषणा की कि हमारा उद्देश्य समस्त विश्व में स्वतन्त्रता तथा समानता स्थापित करना है तथा विरोध करने वालों के साथ शत्रुओं के सदृश्य व्यवहार किया जायेगा। उन्होंने सहस्त्रों क्रान्ति विरोधियों की नृशंस हत्या कर दी तथा क्रान्ति का विरोध करने की स्थिति में मृत्यु दण्ड की चेतावनी भी दी। फ्रान्स को विशाल तथा गौरवशाली बनाने के उद्देश्य से क्रान्तिकारी सरकार ने नीदरलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। आस्ट्रिया तथा प्रशा के साथ पहले से ही युद्ध हो रहा था। ब्रिटेन तथा स्पेन भी सहयोगी राष्ट्रों के रूप में हालैण्ड, प्रशा और आस्ट्रिया के समर्थन में फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हो गये। फ्रान्स पर

चारों ओर से संकट के बादल छा गये। इस संकट की स्थिति में फ्रान्स की जनता तथा नेताओं ने असाधारण साहस, दृढ़ संकल्प, कार्यकुशलता, कूटनीति और अपूर्व धैर्य का परिचय दिया। देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए 12 सदस्यीय जनरक्षा समिति का गठन किया गया और एक क्रान्तिकारी न्यायालय भी स्थापित किया गया। तुलेरीज में कुछ दस्तावेज प्राप्त हुए जिनसे सिद्ध होता था कि लुईस सोलहवें ने फ्रान्स क्रान्ति- विरोधी पलायनकर्ताओं तथा देश में क्रान्ति विरोधियों को धन देकर क्रान्ति को विफल करने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रारम्भ में यूरोपीय देशों के साथ युद्ध में फ्रान्स की अनेक स्थानों पर पराजय हुई। सीमाओं पर स्थित लगभग समस्त दुर्गों पर शत्रुओं की सेनाओं का आधिपत्य हो गया। जनसमूह ने उत्तेजित होकर देश की रक्षा का व्रत लिया। क्रान्तिकारियों ने कारागृहों में बन्दी सहस्त्रों क्रान्ति विरोधी धर्माधिकारियों तथा अन्य की देशद्रोही होने के सन्देह में नृशंस हत्या कर दी। फ्रान्स की वीरसेना ने शत्रु को रोक दिया। जनवरी, 1793 में लुईस सोलहवें को मृत्यु दण्ड दिया गया। यह काल आतंक के शासन के रूप में विख्यात है।

राजा को मृत्यु दण्ड देने के उपरान्त क्रान्तिकारियों को अत्यधिक संकट का सामना करना पड़ा। विदेशी सेनाओं से फ्रान्स की सेना की निरन्तर पराजय हो रही थी। दूसरे चारों ओर प्रतिक्रान्तिकारियों के हिंसात्मक सशस्त्र विद्रोह हो रहे थे। इसी अवधि में जैकोबिन तथा जेरोडिन्स के मध्य मतभेद चरमोत्कर्ष पर पहुँच गये। जैकोविन नेता रोवस्पियेरे ने अनेक जेरोडिन्स नेताओं की नृशंस हत्या कर दी, लेकिन जेरोडिन्स ने उसकी हत्या कर दी। जेरोडिन्स समर्थकों के निष्कासन की तीव्र माँग करने वाले उग्र जनसमूह ने राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) को घेर लिया। जेरोडिन्स प्रतिनिधियों ने पेरिस को अराजकता तथा विनाश का केन्द्र कहकर कटु आलोचना की थी तथा सितम्बर, 1792 के सामूहिक हत्याकाण्ड के लिए जेकोबिन समर्थकों को उत्तरदायी घोषित करने का प्रयास किया। जेरोडिन्स को निष्कासित कर दिया गया और जेकोबिन समर्थकों के आतंक के शासन के साथ विजय अभियान पूर्ण हो गया था। जैकोबिन समर्थकों ने सार्वजनिक सुरक्षा समिति का गठन किया था तथा क्रान्तिकारी न्यायालय स्थापित किया। इसने पेरिस के संदेहास्पद व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही की थी। मिशन के डिप्टीज (सम्मेलन के जैकोबिन समर्थक प्रतिनिधियों) ने प्रान्तों में आतंक का व्यापक प्रसार किया।

आतंक की लहर चल ही रही थी। सम्मेलन ने अनेक उपयोगी कार्य किये। उन्होंने शिक्षा प्रणाली की व्यापक योजना बनायी। कानूनों का आधुनिकीकरण किया एवं उनको संहितावद्ध किया। मापतौल की दशमलव प्रणाली का शुभारम्भ किया। निर्धनों के कल्याण तथा कृषि-सुधार कार्यों की ओर ध्यान दिया। लेकिन ईसाई धर्म के संस्कारों, पर्वों तथा उत्सवों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। विवेक (बुद्धि) की सर्वोच्च देवता के रूप में उपासना के लिए नोट्रेडेम (Notre Dame) विवेक का मन्दिर बनाया गया। ईसाई कैलेण्डर का प्रयोग निलम्बित कर दिया गया तथा नया कैलेण्डर बनाया गया। प्राकृतिक प्रक्रियाओं के नाम पर महीनों के नाम रखे गये।

सन् 1793 के उत्तरार्द्ध में फ्रान्स की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गयी। फ्रान्स द्वारा हालैण्ड पर आक्रमण असफल हो गया। फ्रान्स की सेनाओं की पराजय से उत्तेजित होकर जैकोबिन समर्थकों ने कठोर कदम उठाये। जेरोडिन्स तथा आन्तरिक विद्रोहियों के विरुद्ध

निर्मम दमन अभियान आरम्भ किया। धनी व्यक्तियों के ऊपर करारोपण किया गया। अनिवार्य सैन्य भर्ती का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। काम के अधिकार का आश्वासन दिया गया। पेरिस के जनसमुदाय की खाद्य सामग्री की विशद् समस्या का समाधान किया गया और सड़कों पर जनसमुदाय से सहयोग और सहायता के लिए अनुरोध किया गया। कार्नो ने सैन्य संगठन के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का शुभारम्भ कर दिया।

डायरेक्टरी (Directory)—अप्रैल, 1794 तक फ्रान्स में पुनः स्थायित्व आ गया था। सन् 1791 के संविधान को समाप्त कर दिया गया और राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) ने फ्रान्स के नये संविधान का निर्माण किया। नये संविधान में अराजकता की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए सत्ता को विभाजित कर दिया गया। नये संविधान के प्रावधानों के अनुसार समस्त प्रशासनिक शक्ति डायरेक्टरी के नाम से प्रसिद्ध पाँच सदस्यीय समिति को प्रदान की गयी। इस समिति का कार्यकाल पाँच वर्ष था और डायरेक्टरी में एक सदस्य को सेवानिवृत्त करने की व्यवस्था थी। वास्तविक सत्ता सेना के अध्यक्षों को दी गयी। नये संविधान में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका सभा का प्रावधान किया गया। 500 सदस्यों की परिषद केवल प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत थी और प्राचीनों की परिषद (Council of Ancients) प्रस्तावों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए अधिकृत थी।

फ्रान्स की जनता ने जनमत संग्रह द्वारा नया संविधान स्वीकार किया, लेकिन जनमत संग्रह में कुछ ही लोगों ने भाग लिया। पेरिस के जनसमूह ने महल पर आक्रमण कर दिया। उस समय राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा था। लेकिन नैपोलियन के नेतृत्व में सैनिकों के समूह ने 'छर्रे के झोंके' की तरह जनता के समूह को तितर-बितर कर दिया। पेरिस के जनसमूह ने चार वर्ष तक क्रान्ति की गतिविधियों तथा नीतियों का संचालन किया। जनसमूह की एकता और शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी और इसका महत्व भी क्रान्ति के संचालकों के रूप में समाप्त हो गया।

डायरेक्टरी का शासन 27 अक्टूबर, 1795 से 19 नवम्बर, 1799 तक चलता रहा। डायरेक्टरी का अधिकांश समय विदेशी शक्तियों से युद्ध में व्यतीत हुआ। इसी अवधि में विश्वविख्यात नैपोलियन बोनापार्ट का अभ्युदय हुआ। उसने अपने कुशल सैन्य संचालन, सामरिक नीति, बुद्धि, चातुर्य, साहस और शौर्य से आस्ट्रिया की सेना को पराजित कर सन्धि के लिए बाध्य कर दिया। डायरेक्टरी का शासन जनता में लोकप्रिय नहीं था। डायरेक्टरी प्रान्तीय विद्रोहों का दमन करने तथा राजतन्त्र समर्थकों के प्रभाव को रोकने में असफल रही। डायरेक्टरी की सरकार अत्यधिक भ्रष्ट, अदूरदर्शी तथा अकुशल थी। इसने श्रमिकों का दमन किया। पूँजीपतियों को अधिकाधिक ऋण देने के लिए बाध्य किया। जनता डायरेक्टरी की प्रशासनिक व्यवस्था तथा नीतियों से अत्यधिक असन्तुष्ट थी। डायरेक्टरी अपने अस्तित्व के लिए सेना पर निर्भर थी। उत्तरी इटली तथा दक्षिणी जर्मनी में फ्रान्स की असफलताओं ने जनसमूह को डायरेक्टरी के विरुद्ध उत्तेजित कर दिया। फ्रान्स के जनसमूह की आकांक्षाओं का सम्मान करते हुए नैपोलियन बोनापार्ट ने 19 नवम्बर, 1799 को फ्रान्स का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया और डायरेक्टरी के चार वर्ष के भ्रष्ट एवं अकुशल शासन को समाप्त कर दिया। हेजन ने विचार व्यक्त किया है, "अठारहवीं शताब्दी ने अपने अन्तिम दशक में, विश्व के इतिहास में एक स्मरणीय युग के रूप में, अपना विधिक चरमोत्कर्ष प्राप्त कर लिया। फ्रान्स

में पुरातन शासकों को ध्वस्त करके यूरोप में पुरातन शासन को निर्ममतापूर्वक विचलित कर दिया। फ्रान्स ने अपनी आश्चर्यजनक गतिविधियों द्वारा भावी शताब्दी के चौथाई शताब्दी तक पूर्ण नियन्त्रण रखा।

नैपोलियन बोनापार्ट ने प्रशासनिक प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर दिया। नई सरकार में कौन्सल के नाम से प्रसिद्ध तीन सदस्य थे। नैपोलियन प्रथम कौन्सल तथा वास्तविक शासक था। कुछ काल बाद वह एकमात्र कौन्सल रह गया, और सन् 1804 में फ्रान्स का सम्राट बन गया।

इस प्रकार फ्रान्स की क्रान्ति का अन्त हो गया, लेकिन इसके प्रेरक विचार कि "हर व्यक्ति को स्वतन्त्र होना चाहिए तथा समस्त व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए", आज भी जीवन्त हैं और फ्रान्स से ये विचार विश्व के समस्त भागों में पहुँच गये।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. 1789 की राज्यक्रान्ति के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
   Discuss the nature of the French Revolution. (भागलपुर, 1996)
2. सन् 1789 में फ्रान्स की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का उल्लेख कीजिये।
   Describe the social-economic condition of France in 1789.
   (रुहेलखण्ड, 1993; अवध, 1998)
3. फ्रान्स की क्रान्ति की प्रमुख घटनाओं का संक्षेप में विवेचन कीजिये।
   Describe the main events of the French Revolution. (अवध, 1999)
4. फ्रान्सीसी क्रान्ति के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिये।
   Discuss various stages of the French Revolution. (गोरखपुर, 1998)
5. फ्रान्सीसी राज्य क्रान्ति की पूर्व सन्ध्या पर वहाँ की पुरातन व्यवस्था के दोषों का विवरण दीजिये।
   Describe the defects of the ancient administration on the eve of the French Revolution. (बुन्देलखण्ड, 1991)
6. 1789 ई. की फ्रान्सीसी क्रान्ति के तात्कालिक कारणों का विवेचन करें।
   Discuss immediate causes of the French Revolution.
   (मगध, 1997, 99; मेरठ, 1996, 97)
7. फ्रान्स की 1789 की क्रान्ति के राजनीतिक कारणों की समीक्षा कीजिये।
   Discuss the political causes of the French Revolution of 1789.
   (मेरठ, 1998)
8. फ्रान्स की क्रान्ति में मिराबों की भूमिका का मूल्यांकन कीजिये।
   Evaluate the role played by Mirabeau in French Revolution. (मेरठ, 1999)
9. 1789 की क्रान्ति के कारणों का विवेचन कीजिये।
   Examine the causes of the French Revolution of 1789.
   (लखनऊ, 1992, 94, 96, 98; गढ़वाल, 1996)
10. 1789 से 1799 के मध्य फ्रान्स की क्रान्ति के पश्चात् की घटनाओं को रेखांकित कीजिये।
    Trace the post-revolution events in France between 1789 and 1799.
    (लखनऊ, 1999)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. फ्रान्स के कुछ विद्वानों ने सन् ········ में इंग्लैण्ड में घटित घटनाओं के लिए क्रान्ति शब्द का प्रयोग किया—
   (क) 1685 (ख) 1688 (ग) 1691 (घ) 1695
2. इंग्लैण्ड में अधिकांश राजनीतिक प्रणाली का सन् ········ के उपरान्त रूपान्तर हो गया था—
   (क) 1688 (ख) 1689 (ग) 1690 (घ) 1691
3. लुईस सोलहवें बीस वर्ष की आयु में सन् ·········· में सिंहासनारूढ़ हुआ—
   (क) 1771 (ख) 1772 (ग) 1773 (घ) 1774
4. वर्साय के दरबार का वार्षिक व्यय ········· से अधिक था—
   (क) 50 लाख डालर (ख) 60 लाख डालर (ग) 40 लाख डालर (घ) 30 लाख डालर
5. कुलीन वर्ग तथा धर्माधिकारी वर्ग देश की कुल सम्पत्ति के ········· का स्वामी था—
   (क) 25% (ख) 30% (ग) 35% (घ) 40%
6. सन् ·········· में असैनिक व्यय कुल वार्षिक व्यय का ·········· था—
   (क) 20% (ख) 21% (ग) 22% (घ) 23%
7. एस्टेट्स जनरल अथवा राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन सन् ········· से नहीं हुआ था—
   (क) 1612 (ख) 1614 (ग) 1616 (घ) 1617
8. राष्ट्रीय सभा ने संविधान निर्माण कार्य का दायित्व लेकर 9 जुलाई, ·········· को इस सभा को संविधान सभा घोषित कर दिया—
   (क) 1786 (ख) 1787 (ग) 1788 (घ) 1789
9. 27 अगस्त सन् ·········· को संविधान सभा ने मानव तथा नागरिकों के अधिकारों की घोषणा का अधिनियम पारित किया—
   (क) 1788 (ख) 1789 (ग) 1790 (घ) 1791
10. सन् ················ में फ्रान्स के इतिहास में पहली बार संविधान सभा ने संविधान का निर्माण किया—
   (क) 1789 (ख) 1790 (ग) 1791 (घ) 1792

[उत्तर—1. (ख), 2. (ख), 3. (घ), 4. (ग), 5. (घ), 6. (घ), 7. (ख), 8. (घ), 9. (ख), 10. (ग) ।]

3

फ्रान्स की क्रान्ति के उद्देश्य, स्वरूप एवं इसकी उपलब्धियाँ

[AIMS, CHARACTER AND ACHIEVEMENTS OF THE FRENCH REVOLUTION]

नवजात शिशु अथवा ऐतिहासिक महत्व की किसी महान घटना के उद्देश्य स्वरूप अथवा भविष्य के गर्भ में निहित उपलब्धियों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कोई कुछ भी नहीं कह सकता। सन् 1789 से 1795 तक फ्रान्स में घटित घटनाओं को भावी नवीन सामाजिक व्यवस्था की प्रसव पीड़ा कहा जा सकता है। फ्रान्स की क्रान्ति के रूप में सर्वाधिक विख्यात विश्व के इतिहास की अभूतपूर्व घटना की आद्योपान्त शक्तिशाली प्रक्रिया के अन्तर्निहित उद्देश्यों, इसके वास्तविक स्वरूप तथा क्रांन्ति के समापन के बाद इसकी समस्त उपलब्धियों को कुछ पृष्ठों में समायोजित करके अंभिव्यक्त करना सम्भव प्रतीत नहीं होता है। 14 जुलाई, 1789 को बास्तील के पतन की विस्फोटक घटना, कुख्यात असामाजिक तत्वों तथा लुटेरों का कार्य थी लेकिन इस घटना ने पेरिस को असन्तुष्ट, कुंठाग्रस्त एवं पीड़ित जनसमुदाय की सुषुप्त भावनाओं और चेतना को उद्वेलित किया। कोई समकालीन विचारधारा, सिद्धान्त, आदर्श अथवा घटना मानव इतिहास में इस प्रकार नवयुग के प्रादुर्भाव का शंखनाद नहीं कर सकती थी।

कोई भी विद्वान एवं इतिहासकार निश्चित रूप से नहीं कह सकता है कि तत्कालीन दार्शनिकों, विचारकों तथा विद्वानों ने सन् 1789 से सन् 1795 के मध्य घटित घटनाओं के परिणामस्वरूप क्रान्तिकारी परिवर्तनों की स्वप्न में भी कल्पना की होगी। अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों (डिप्टी) के माध्यम से राजा को प्रेषित अपनी शिकायतों के द्वारा भविष्य में इतनी महान उपलब्धियों की कल्पना भी नहीं की थी। इन स्मृति-पत्रों (काया Cahier) द्वारा कुछ ने शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने का अनुरोध किया था। कुछ व्यक्तियों ने सड़क पर प्रकाश की व्यवस्था करने तथा सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान करने का आग्रह किया था। इन स्मृति-पत्रों में अभिव्यक्त सीमित आकांक्षाओं के साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था द्वारा तत्कालीन पीड़ादायक असमानताओं के समूल विनाश की सुखद आशा अन्तर्निहित थी। इन दुःखद तथा

कटु असमानताओं को प्राचीन, परम्परागत, संकीर्ण, स्वार्थी, दम्भी, धर्मान्ध विचार, सिद्धान्त, आस्थाएँ, विश्वास, मान्ताएँ एवं संस्थाएँ बनाये हुए थीं।

यह एक उद्देश्य था जिसने राष्ट्रीय सभा के प्रतिनिधियों (डिप्टी) को परस्पर प्रतिस्पर्धा के लिए प्रेरित किया था, और 3 नवम्बर, 1789 की रात्रि को इन प्रतिनिधियों ने समस्त सामन्तवादी व्यवस्था को कुछ ही समय में एक झटके से ध्वस्त कर दिया था। तदुपरान्त प्रतिनिधियों ने असैनिक प्रशासन का पुनर्गठन किया, न्याय प्रणाली में समुचित सुधार किये, और शिक्षा प्रणाली में भी अपेक्षित सुधार करके अधिकाधिक व्यक्तियों के लिए सुलभ तथा सहज बनाया। इसी अवधि में वैध तथा सशक्त असैनिक सत्ता के अभाव तथा प्रान्तों में व्याप्त अराजकता, अव्यवस्था तथा अशान्ति के कारण वित्तीय स्थिति अत्यधिक दयनीय एवं गम्भीर हो गयी। फ्रान्स का कैथोलिक चर्च फ्रान्स की कुल भूमि के 1/5 भाग का स्वामी था। अतः यह विचार किया गया कि चर्च की सम्पत्ति के अधिहरण द्वारा वित्तीय संकट का निराकरण करना सम्भव होगा। यथार्थ में राष्ट्रीय सभा ने आध्यात्मिक आधार पर शत्रुता, द्वेष, कटुता एवं मनोमालिन्य को उत्तेजित किया था। निरन्तर बिगड़ती हुई स्थिति के कारण अधिकांश क्रान्ति विरोधी धर्माधिकारी देश छोड़कर समीपवर्ती देशों में चले गये और राजतन्त्रीय एवं सामन्तवादी यूरोपीय शक्तियों ने आधे मन से नई सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दी। आस्ट्रिया की सेना ने सरलता से क्रान्तिकारियों की सेनाओं को पराजित कर दिया और आस्ट्रिया ने गर्व के साथ कहा कि फ्रान्सवासियों को दण्ड देने के लिए उनको तलवारों की अपेक्षा केवल चाबुकों की आवश्यकता थी। पराजित एवं अपमानित क्रान्तिकारियों ने पेरिस में अपने नियन्त्रण को कस लिया और अधिनायकतन्त्र स्थापित किया जो भावी एकदलीय शासन पद्धति का स्मरण कराती है। गणतन्त्रवाद के काल में समस्त विचित्र प्रयोग जैसे गुणों का शासन ईश्वर की अपेक्षा बुद्धि अथवा विवेक की उपासना आदि किये गये। इनमें से किसी एक को भी क्रान्ति का उद्देश्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

इस प्रक्रिया में आतंक के शासन ने नवीन मूलभूत शक्ति को उन्मुक्त कर दिया जो निश्चित रूप से समस्त विश्व के इतिहास में परिवर्तन कर देती। यह नवीन आस्था तथा विश्वास से प्रेरित नागरिकों की सेना थी, जिसने यूरोप की आक्रमणकारी सेनाओं को पराजित किया था। जब तक विदेशी सेनाओं ने फ्रान्स की भूमि को छोड़ा, फ्रान्सवासियों में सद्‌बुद्धि का उदय हो चुका था। परिणामस्वरूप उग्रवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले रोबस्पियेरे तथा जैकोबिन समर्थकों को समूल नष्ट कर दिया गया।

फ्रान्स ने डायरेक्टरी (निदेशक मण्डल) नवीन प्रशासनिक संस्था को स्थापित करने का प्रयास किया। इस प्रयास को भी निश्चित रूप से असफल होना था। 14 जुलाई, 1789 को बास्तील के भीषण भयावह विध्वंस के उपरान्त उन्मुक्त मौलिक (क्रूर एवं बर्बर) शक्तियाँ अत्यधिक उपद्रवी एवं विशालकाय थीं, जिनको नियन्त्रित करना तथा रचनात्मक कार्यों में प्रयुक्त करना अत्यधिक दुष्कर कार्य था। इस अत्यधिक विषम एवं जटिल स्थिति का लाभ उठाते हुए नवयुवक नैपोलियन बोनापार्ट ने स्थिति का सर्वाधिक उपयोग किया और अन्ततोगत्वा स्वयं को फ्रान्स के सम्राट के रूप में स्थापित किया और गणतन्त्रीय सिद्धान्तों को हास्यास्पद प्रमाणित करने का प्रयास किया। गणतान्त्रिक व्यवस्था के समर्थकों ने जनवरी, 1793 में लुईस सोहलवें की हत्या (मृत्यु दण्ड) करवा कर विजय का डंका बजाया था।

विख्यात वाटरलू के युद्ध में नैपोलियन की पराजय एवं फ्रान्स से निष्कासन के बाद क्रान्ति की विभीषिका को नियन्त्रित कर दिया गया। लेकिन क्रान्ति की अवधि में उन्मुक्त प्राथमिक (मौलिक क्रूर एवं बर्बर) शक्तियाँ सन् 1815 के बाद भी कुछ अन्तराल के बाद प्रायः विप्लव एवं उपद्रव करती रहीं। ऐसा प्रतीत हुआ कि फ्रान्सवासियों का उत्साह, आवेग एवं क्षोभ विल्सन के चौदह सूत्री (प्रस्तावित सन्धि के) प्रावधानों में चरमोत्कर्ष में पहुँच गया था। लेकिन सन् 1919 में यूरोप के शान्ति निर्माता फ्रान्स के परम्परागत पैतृक निधि स्वरूप राष्ट्रवाद तथा स्वशासन जैसे सिद्धान्तों का उपहास करते रहे। यूरोप में एक बार पुनः अत्यधिक संकट का समय आया। इस कठिन समय को विभिन्न विचारधाराओं, सैन्यवाद तथा कुंठाग्रस्त महत्वाकांक्षाओं ने उग्र रूप प्रदान किया। ये अवयव परस्पर सम्बद्ध थे, परिणामस्वरूप, यूरोप में द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से यूरोपीय उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गयी, फ्रान्स की क्रान्ति के उद्देश्यों का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ और समस्त मानव समाज की अमूल्य पैतृक निधि बन गये। फ्रान्स की क्रान्ति के तीन मन्त्र स्वरूप शब्द स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व का भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

फ्रान्स की क्रान्ति का स्वरूप प्रारम्भ में अत्यधिक हिंसात्मक, विनाशकारी, संवेदनात्मक, क्रोधपूर्ण तथा भावावेश का था, क्योंकि दीर्घकाल से फ्रान्स में मानव चेतना एवं संवेदना ने हीनभावना एवं अपमान सहन किया था। मानव की आत्मा कुंठाग्रस्त तथा आहत थी। प्रतिशोध के लिए हृदय में तीव्र आक्रोश था। 14 जुलाई, सन् 1789 के उपरान्त हीन भावनाओं से ग्रस्त अब तक दलित जनसमुदाय की हिंसात्मक गतिविधियों का प्रभाव शत्रुओं तथा अनेक काल्पनिक शत्रुओं पर पड़ा। क्रियात्मक अथवा दुष्क्रियात्मक, प्राचीन व्यवस्था के प्रत्येक अवयव को समूल नष्ट कर दिया गया।

नयी व्यवस्था के नाम पर अराजकता की स्थिति को स्वीकार कर लिया। अपने नये कैलेण्डर का सूत्रपात किया तथा नवीन देवता विवेक की पूजा-उपासना का व्यापक प्रचार किया। यूरोप की समस्त रूढ़िवादी तथा पुरातन पंथी शक्तियाँ तथाकथित विनाश को रोकने के लिए संगठित हो गयी। आकर्षक तथा चमत्कारिक नैपोलियन बोनापार्ट के नेतृत्व में फ्रान्स की क्रान्ति ने समस्त यूरोप को नये दर्शन की दीक्षा दी। जीवन के नियमानुसार विधि की विडम्बना तथा विरोधाभास ही था कि नैपोलियन क्रान्ति की उत्पत्ति तथा क्रान्ति का विनाशक था। उसके शासनकाल में क्रान्ति पुनः किसी एक व्यक्ति की अधिकांश यूरोप पर आधिपत्य स्थापित करने का व्यक्तिगत लोभ तथा उत्कट महत्वाकांक्षा बन गयी। फ्रान्स की क्रान्ति के मूलभूत सिद्धान्तों एवं विचारों, जिनका व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया गया था, ने यूरोप के पतित तथा अपमानित देशों को अपनी अन्तर्निहित शक्तियों, साहस, धैर्य तथा बुद्धि चातुर्य को, फ्रान्स की क्रान्ति तथा नैपोलियन बोनापार्ट के आक्रमणात्मक अभियानों को कुशलतापूर्वक परास्त करने के लिए प्रेरित किया। अन्ततोगत्वा यूरोपीय राष्ट्रों की विजय हुई तथा फ्रान्स की क्रान्ति के भयावह स्वरूप को समूल नष्ट कर दिया गया। सन् 1815 में यूरोप के राजनीतिज्ञों ने विशेष सुख और शान्ति का अनुभव किया कि उन्होंने विशाल भीमकाय दानव को दफना दिया था। शीघ्र ही तात्कालिक घटनाओं ने उस समय तक के लिए राजनीतिज्ञों की सुखद एवं मनोरम आशाओं पर तुषारापात कर दिया जब तक यूरोपीय राष्ट्रों ने फ्रान्स की क्रान्ति की अमूल्य पैतृक निधि को स्वीकार नहीं किया। यूरोप में अपेक्षित शान्ति का अभाव रहा।

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक पश्चिमी विश्व की औपनिवेशिक शक्तियों ने भी एक महान निधि को स्वीकार कर लिया था।

इस प्रकार फ्रान्स की क्रान्ति का आरम्भ हिंसात्मक आवेग के रूप में हुआ था। यह क्रान्ति निरन्तर क्रूर, बर्बर तथा निर्मम होती गयी तथा इसका अन्त एक व्यक्ति के अधिनायकतन्त्र में हुआ। तदुपरान्त अधिनायकतन्त्र ही एक व्यक्ति की परम्परागत राजवंशीय साम्राज्य स्थापित करने की तीव्र महत्वाकांक्षा में परिवर्तित हो गया। रोबस्पियेरे तथा नैपोलियन के समस्त कार्यों में फ्रान्स की क्रान्ति में उर्वर कछारी भूमि निहित थी। स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्रीयता, लोकप्रिय प्रभुसत्ता तथा धर्मनिरपेक्षवाद इस उर्वरक भूमि की प्रमुख उपज थे। इन सिद्धान्तों एवं आदर्शों को विश्व के अधिकांश देशों ने कालान्तर में आधुनिक स्वरूप में स्वीकार कर लिया।

फ्रान्स की क्रान्ति की विभिन्न उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट दृष्टिगत होता है कि इसने सर्वप्रथम फ्रान्स में, तदुपरान्त यूरोप में तथा कालान्तर में समस्त विश्व में प्राचीन जीर्ण-शीर्ण दुर्बल व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया। रचनात्मक दृष्टि से फ्रान्स की क्रान्ति ने स्वतन्त्रता, समानता, राष्ट्रीयता, लोकप्रिय प्रभुसत्ता एवं धर्मनिरपेक्षवाद जैसी सम्पन्न एवं समृद्ध पैतृक सम्पत्ति यूरोप तथा कालान्तर में समस्त विश्व को प्रदान की। फ्रान्स के क्रान्तिकारी विचार एवं आदर्श, दक्षिणी अफ्रीका, अन्तर्राष्ट्रीय राजक्षमा (Amnesty International) के विवरणों, तारकुंडे के विवरणों एवं समस्त विश्व में राष्ट्रों की सुरक्षा और अखण्ड़ता के विशालकाय जूतों (Fackboots) के नीचे निर्दोष व्यक्तियों के करुण चीत्कार में प्रतिध्वनित होते हैं। फ्रान्स की क्रान्ति की उपलब्धियों को आन्तरिक तथा बाह्य उपलब्धियों के रूप में विभाजित करके, आन्तरिक उपलब्धियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय सभा तथा राष्ट्रीय सभा के कार्यों का विस्तृत उल्लेख करना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त जेरोडिन्स तथा जैकोबिन के राष्ट्रीय सम्मेलन की अवधि में अल्पकालीन समाजवादी कार्यों जैसे नया कैलेण्डर, नया धर्म तथा कुछ समाजवादी उपायों की भी चर्चा आवश्यक है। अन्त में फ्रान्स के राष्ट्रवाद की परिपक्वता का वर्णन अति आवश्यक है। इन समस्त विषयों पर अगले पृष्ठों में विस्तार के साथ चर्चा है।

बाह्य उपलब्धियों के अन्तर्गत फ्रान्स के क्रान्तिकारी विचारों जैसे नैपोलियनकालीन संहिता, स्वच्छन्दतावाद, धर्मनिरपेक्षवाद, स्वतन्त्रता, समानता, युद्ध में नवीन रणनीति तथा सामरिक नीतियों का सूत्रपात, लोकप्रिय राष्ट्रीय सेनाओं का उद्भव तथा राष्ट्रीयता की स्वच्छन्द चेतना का वर्णन करना आवश्यक है। इनका विस्तृत विवरण अगले पृष्ठों में किया गया है।

उद्देश्य (Aims)

1. एस्टेट्स जनरल के 175 वर्षों के बाद 5 मई, 1789 को अधिवेशन के समय जनता को शान्ति व्यवस्था एवं सुखद वातावरण से लेकर कष्टप्रद, शोषणात्मक सामन्तवादी सामाजिक व्यवस्था के समूल उन्मूलन की आशा थी। जनता ने अपने अधिकांश स्मृति-पत्रों (काहियो Cahiers) में पुरातन तथा अप्रचलित प्रथाओं, परम्पराओं एवं मान्यताओं के विरुद्ध तीव्र आक्रोश अभिव्यक्त किया था तथा निष्पक्ष, सौहार्द्रपूर्ण एवं सुखद सामाजिक व्यवस्था का आग्रह किया था।
2. बास्तील पर आक्रमण में सक्रिय जनसमूह तथा रोटी की माँग करते हुए क्षुधा पीड़ित महिलाएँ, जो फ्रान्स के राजा लुईस सोलहवें को वर्साय से पेरिस ले गयीं,

असन्तोष तथा मानसिक कुंठाओं के कारण अत्यधिक उत्तेजित तथा भावावेश में थीं। उनके मस्तिष्क में क्रान्ति का कोई स्पष्ट उद्देश्य अथवा स्वरूप नहीं था।

3. प्रान्तों में पुरातन रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था पर आक्रमण करने वाले कृषक तथा शिल्पकार केवल अलोकप्रिय पुरातन अन्यायों का अन्त करना चाहते थे। उनको भी स्पष्ट नहीं था कि इनके स्थान पर किस प्रकार की नवीन सामाजिक व्यवस्था होनी चाहिए।
4. राष्ट्रीय सभा के सदस्य निश्चित रूप से पुरातन निरंकुश शासन का अन्तं चाहते थे और देशवासियों तथा नागरिकों को कुछ स्वतन्त्रता तथा प्राकृतिक अधिकार देना चाहते थे।
5. जब फ्रान्स के आकाश पर विदेशी आक्रमण के काले बादल छा गये। क्रान्तिकारी केवल स्वयं की विदेशी आक्रमणों से रक्षा के लिए ही व्यग्र थे। इसके अतिरिक्त उनके मस्तिष्क में अन्य कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं था।
6. राष्ट्रीय सम्मेलन (National Assembly) के कार्यों से स्पष्ट होता है कि उनके कुछ निश्चित उग्र सुधारवादी उद्देश्य थे।
7. गणतन्त्रवादी विशेष रूप से जैकोबिन समर्थक सद्गुणों पर आधारित गणतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। समाजवाद से सम्बन्धित कुछ उद्देश्य केवल अस्तित्व को बनाये रखने के लिए ही थे।
8. राष्ट्रीय सम्मेलन (National Assembly) का सन्तुलित तथा स्वस्थ वर्ग, जैसा संविधान से ज्ञात होता है और जिसके परिणामस्वरूप निदेशक मण्डल का अभ्युदय हुआ था, केवल व्यवस्थित सरकार चाहता था।
9. सन् 1791 से 1795 के अशान्त, अव्यवस्थित तथा हिंसक उपद्रवग्रस्त काल में अनेक समाजवादी सुधारों का शुभारम्भ किया गया, लेकिन इन सुधारों का मुख्य उद्देश्य पेरिस के जनसमूह को नियन्त्रित करना ही था।
10. उद्देश्यों की विविधता तथा क्रान्ति की प्रगति के साथ साथ उनकी अभिव्यक्ति से ज्ञात होता है कि क्रान्ति के आरम्भ के साथ फ्रान्स के क्रान्तिकारियों के पास कोई निश्चित रूपरेखा नहीं थी। क्रान्ति के विभिन्न चरणों में क्रान्ति की विविध दृष्टिकोणीय आधुनिकता की प्रतीक अन्तर्निहित शक्ति के परिणाम स्वरूप शनैः-शनैः विभिन्न उद्देश्य आधुनिक दृष्टिकोण, समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व, राष्ट्रीयता लोकप्रिय प्रभुसत्ता और धर्म निरपेक्षवाद, का सार है।

स्वरूप (Character)

1. एस्टेट्स जनरल का आह्वान करने से पूर्व समाज में चारों ओर प्रचलित अन्यायों तथा असमानताओं के विरुद्ध जनता में तीव्र कुंठा, निराशा उन्माद, तथा जनाक्रोश की उग्र भावना व्याप्त थी।
2. एस्टेट्स जनरल के आह्वान के साथ जनता में आशा एवं चेतना का संचार हुआ और सौभाग्य से राष्ट्रीय सभा ने जन भावनाओं तथा जन कल्याण की भावनाओं से प्रेरित होकर कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये। लेकिन राष्ट्रीय सभा द्वारा धार्मिक विषयों को स्पर्श करते ही फ्रान्स की क्रान्ति का स्वरूप अव्यवस्थित तथा उग्र उपद्रव ग्रस्त हो गया।

3. बास्तील के पतन के साथ ही वैध राजनीतिक सत्ता का भी पतन हो गया। परिणामस्वरूप फ्रान्स के समस्त प्रान्तों में अस्थिरता, अशान्ति एवं अराजकता का साम्राज्य स्थापित हो गया। सन् 1791 के उपरान्त पेरिस कम्यून तथा जैकोबिन क्लब से प्रोत्साहित प्रान्तों में क्रूर एवं बर्बर अत्यचारों के केन्द्र स्थापित हो गये। सन् 1791 से 1795 तक चरित्रहीनता, अनैतिकता तथा निर्ममता का निरंकुश साम्राज्य था।
4. सन् 1795 के उपरान्त फ्रान्स की क्रान्ति पर एक ही व्यक्ति नैपोलियन बोनापार्ट का पूर्ण आधिपत्य हो गया। यही व्यक्ति अन्ततोगत्वा सन् 1804 में फ्रान्स का विख्यात तथा प्रतिभाशाली सम्राट बना।

फ्रान्स की क्रान्ति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियाँ अथवा कारण

(CIRCUMSTANCES OR CAUSES RESPONSIBLE FOR FRENCH REVOLUTION)

फ्रान्स के तत्कालीन प्रबुद्ध विचारकों एवं दार्शनिकों तथा महत्वपूर्ण शक्तियों ने सन् 1789 की विश्वविख्यात फ्रान्स की क्रान्ति का पूर्वाभास नहीं दिया था। मानव समुदाय की कुछ अन्य इच्छा थी लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों ने मानव समुदाय को क्रान्ति के लिए विवश कर दिया था। किसी एक तत्व अथवा अवयव की अपेक्षा अनेक विषम एवं कुंठाग्रस्त परिस्थितियों के परिणामस्वरूप क्रान्ति हुई।

तत्कालीन दार्शनिकों तथा विचारकों एवं फ्रान्स की क्रान्ति में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना निरर्थक है। दार्शनिकों ने किसी भी निरंकुश राजतन्त्र का समर्थन नहीं किया यद्यपि वे उनको संरक्षण देने और उनके विचारों एवं सिद्धान्तों को ग्रहण करने के लिए तत्पर थे। इन दार्शनिकों एवं विचारकों के अधिकांश प्रशंसक कुलीन वर्गीय व्यक्ति वकील, व्यापारी, स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति एवं राजवंश के कुछ सदस्य थे। ये उनसे प्रसन्न रहते थे। कालान्तर में, क्रान्ति की अवधि में इन दार्शनिकों के विचारों तथा सिद्धान्तों का प्रयोग इन उपायों का औचित्य सिद्ध करने के लिए किया गया जिनका सम्भवतः दार्शनिकों ने विरोध किया होता। इन दार्शनिकों ने तत्कालीन, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था के प्रति आलोचनात्मक तथा श्रद्धाहीन एवं अवमानी दृष्टिकोण विकसित तथा प्रोत्साहित किया था। फ्रान्स की क्रान्ति के प्रारम्भ में इन दार्शनिकों का इतना ही प्रभाव था। इसके अतिरिक्त दार्शनिकों तथा विचारकों ने जनसमुदाय को विभिन्न प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक गतिविधियों के गुण एवं दोष के आधार पर विवेकपूर्ण विश्लेषण के लिए तैयार कर दिया था।

फ्रान्स में प्राचीन शासन (Ancient Reign in France)—फ्रान्स में सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति एवं क्रान्तिकारी परिस्थितियों के सृजन के लिए मुख्य रूप से निरंकुश राजतन्त्र ही उत्तरदायी था जिसको धन की अतीव आवश्यकता थी। प्रशासनिक व्यवस्था के व्यय में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। इसके अतिरिक्त युद्धों का व्यय वहन करना अत्यधिक कठिन हो रहा था। लेकिन क्रान्ति की विभीषिका से बचा जा सकता था। यथार्थ में फ्रान्स एक विशाल, घनी जनसंख्या वाला, समृद्ध, सम्पन्न एवं शक्तिशाली राज्य था। सन् 1715 में फ्रान्स की जनसंख्या 1,90,00,000 थी जो बढ़कर सन् 1789 में 2,60,00,000 हो गयी। उसमें 2,20,00,000 कृषक अथवा निम्नतम वर्ग के थे। फ्रान्स का कृषक वर्ग कुलभूमि के 2/5 भाग पर कृषि करता था। विधि की विडम्बना ही थी कि इन्हीं तत्वों ने क्रान्तिकारी परिस्थितियों

के सृजन में सर्वाधिक योगदान दिया। समस्त समृद्ध एवं सम्पन्न वर्ग स्वयं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए अत्यधिक व्यग्र थे। वे तत्कालीन सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए उत्सुक थे।

सन् 1789 में विभिन्न दोषों तथा विषमताओं के निराकरण, अपेक्षाकृत कुशल तथा समानता पर आधारित करारोपण तथा प्रशासनिक व्यवस्था की माँग में, निरन्तर वृद्धि हो रही थी। तत्कालीन सरकार की जटिल स्थिति में जब लुईस सोलहवें ने सुधार करने का प्रयास किया, तब स्थिति सुधरने की अपेक्षा अधिक बिगड़ गयी। प्रत्येक धर्माधिकारी (विशप) कुलीन था। यथार्थ में कुलीन परिवारों के व्यक्तियों ने समस्त सर्वोच्च राजकीय पदों पर एकाधिकार स्थापित कर लिया था। फ्रान्स की कुल जनसंख्या ढाई करोड़ से अधिक थी। इनमें लगभग 50 लाख कुलीन वर्ग के सदस्य थे। निरन्तर प्रगतिशील व्यापारियों, वाणिज्यिकों, महाजनों तथा वकीलों में अत्यधिक असन्तोष तथा कुंठा थी। इन वर्गों के व्यक्तियों को राज्य एवं चर्च के महत्वपूर्ण तथा प्रतिष्ठित पदों से वंचित रखा गया था। व्यक्ति का सामाजिक स्तर किसी वर्ग विशेष में आकस्मिक जन्म से ही निर्धारित होता था। इसके अतिरिक्त कुलीन तथा धर्माधिकारी वर्ग अपने परम्परागत स्वीकृत विशेषाधिकारों के अन्तर्गत विभिन्न राजकीय करों से मुक्त था। परिणामस्वरूप राज्य का समस्त आर्थिक भार मध्यम वर्ग तथा अपेक्षाकृत समृद्ध एवं सम्पन्न कृषकों पर ही पड़ता था। एस्टेट्स जनरल के आह्वान से पीड़ित वर्गों को अपना राजनीतिक महत्व सिद्ध करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

राजा और उसके मन्त्री जनाकांक्षाओं को सन्तुष्ट करने की स्थिति में नहीं थे। तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती देने का साहस नहीं था। विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों के अधिकार तथा उनकी निरापदता, राजा के शासन के अधिकार के अनुरूप ही दैविक अधिकार सिद्धान्त पर आधारित थे। कुलीन तथा धर्माधिकारियों के विशेषाधिकारों की आलोचना का अर्थ, उससे सम्बद्ध समस्त भागों, राजतन्त्र की शक्ति और सत्ता की आलोचना था। यथार्थ में राजा एक ऐसी सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक प्रणाली में ग्रस्त था, जिसने उसको स्वायत्तता तथा क्षेत्राधिकार से वंचित कर दिया था वरन् इस प्रणाली ने विशेषाधिकृत सामाजिक व्यवस्था के माध्यम से राजा को शासन करने के लिए अनुग्रहीत किया हुआ था। राजा को सत्ता ईश्वर से नहीं वरन् निर्धारण (Prescription) से प्राप्त थी। राजा की शक्ति निर्बाध एवं असीम नहीं थी, वरन् विवेकाधीन तथा स्वेच्छा पर आधारित थी। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि सरकारी तन्त्र पुरातन, स्थिर तथा गतिहीन था। सिद्धान्त रूप में असीम तथा निर्बाध राजतन्त्र था, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से शक्तिहीन था। फ्रान्स के विख्यात दार्शनिक वाल्टेयर ने मत व्यक्त किया कि मध्यम वर्ग फ्रान्स के समाज के गैर-विशेषाधिकृत वर्ग का था। इसमें प्राध्यापक, वकील, चिकित्सक, महाजन एवं व्यापारी सम्मिलित थे। यह वर्ग वित्त, व्यापार एवं उद्योग में सर्वाधिक शक्तिशाली था। इनके पास मस्तिष्क और धन दोनों थे। ये वे व्यक्ति थे, जिन्होंने विश्व के विभिन्न भागों की यात्रा की थी। परिणामस्वरूप हर प्रकार से उनका दृष्टिकोण बहुत व्यापक था। वे फ्रान्स के दार्शनिकों से अत्यधिक प्रभावित थे। परिणामस्वरूप वे अपने हेय स्तर को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं थे। हेय स्तर प्राचीन शासन ने उन पर आरोपित किया था। इस वर्ग के वे सदस्य हैं जो फ्रान्स के जनसमूह के उनके प्राचीन शासन के विरुद्ध संघर्ष में नेता बने।

प्रोफेसर सालवैमिनी (Salvemni) कहते हैं, "अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रान्स के समाज को प्राचीन नगर के सदृश्य कहा जा सकता है जिसका बिना किसी रूप-आकार अथवा व्यवस्था के विकास हुआ, विविध सामग्री तथा भिन्न-भिन्न युगों की पद्धतियों के अनुसार पुराने तथा बहिष्कृत भवनों को साथ-साथ मिलाकर सुदृढ़ तथा नवीन भवनों के रूप में निर्माण कर दिया गया। लगभग समस्त निवासी श्रमिक वर्ग, मध्यम वर्ग और विशेषाधिकृत वर्ग का भी अधिकांश भाग अपनी सुविधानुसार पुराने और नये के विसंगत दावों के मध्य पीड़ित एवं असन्तुष्ट थे।" वह आगे लिखते हैं, "राज्य के अधिकारी भ्रष्ट एवं प्रतिक्रियावादी प्रणाली के तन्त्र बन चुके थे, जिसके विरुद्ध राष्ट्र को निश्चित रूप से विद्रोह करना चाहिए, यदि उसको सामन्तवादी अन्धकार में वापिस नहीं जाना था। विशेषाधिकृत वर्गों ने राजकोष को स्वेच्छापूर्वक लूटा, प्रशासन को ध्वस्त कर दिया तथा देश के आर्थिक जीवन को पंगु कर दिया वे बिना देखे हुए रसातल के तट तक पहुँच चुके थे और परस्पर लड़ते रहे जबकि सबको उसमें समाहित होना था।"

प्रोफेसर सालवैमिनी आगे कहते हैं, "ऐसी स्थिति में जनसमुदाय को स्वयं के विनाश तथा सामन्तवाद के प्रत्येक अवशेष के विनाश के मध्य चुनाव करने के लिए बाध्य किया गया और उन्होंने आशा की थी कि राजा अपनी पुरानी परम्परागत सामन्त विरोधी नीति पर लौट जायेगा जो उसके वंश का गौरव रहा है। अन्ततोगत्वा निरर्थक प्रतीक्षा से थककर, उन्होंने राजतन्त्र के साथ सामन्तवाद का जो कुछ शेष था, ध्वस्त कर दिया। राजतन्त्र जिसने सामन्तवाद के समर्थन में हस्तक्षेप किया था, स्वयं को अपने प्रयासों से अन्तिम शेष जंजीरों से मुक्त किया और आधुनिक समाज पर गणतन्त्र की नई मोहर लगा दी।"

इसी सन्दर्भ में जे. सी. हेराल्ड का अभिव्यक्त मत भी महत्वपूर्ण है। वह कहते हैं, "फ्रान्स की क्रान्ति देश के जनसमूह का विशेषाधिकृत वर्गों के विरुद्ध आन्दोलन था। फ्रान्स का कुलीन वर्ग समस्त यूरोप के समान क्रूर एवं बर्बर आक्रमणों के समय का है जिसने पवित्र रोमन साम्राज्य को भंग कर दिया। फ्रान्स में कुलीन वर्ग प्राचीन फ्रैंक तथा बुरंगुडियों का शेष राष्ट्र गाल (Gauls) का प्रतिनिधित्व करता था। सामन्तवादी प्रणाली के सूत्रपात ने सिद्धान्त स्थापित किया कि प्रत्येक भू-सम्पत्तिक एक स्वामी था, धर्माधिकारी तथा कुलीन समस्त राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करते थे। आंशिक रूप से भूमि से अनुबन्धित करके कृषकों को दास बना लिया गया था।"

"सभ्यता एवं ज्ञान की प्रगति ने लोगों को मुक्त किया। नवीन राज्य विषयान्तर्गत उद्योग तथा व्यापार सम्पन्न हुए। अठारहवीं शताब्दी में भूमि, सम्पत्ति तथा सभ्यता की उपलब्धियों का अधिकांश भाग लोगों का था। कुलीन अब भी विशेषाधिकृत वर्ग के थे। उच्च एवं मध्यम न्यायालयों पर उनका नियन्त्रण था। विभिन्न नामों तथा स्वरूपों में उनके पास सामन्तवादी अधिकार थे। वे समाज द्वारा किसी भी आरोपित कर में योगदान से मुक्त थे और सर्वाधिक सम्मानित पदों तक विशिष्ट रूप में पहुँच थी।" इतिहासकार मेरियट लिखते हैं, "यथार्थ में जब क्रान्ति हुई तो वह मुख्यतः राजा के राजतन्त्र के विरुद्ध नहीं थी वरन् विशेषाधिकारों से युक्त वर्गों, कुलीनों एवं धर्माधिकारियों के विरुद्ध थी और क्रान्तिकारियों ने प्रारम्भ में उन्हीं को समाप्त किया।"

"इन समस्त दोषों ने नागरिकों को विरोध के लिए उत्तेजित किया। क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य समस्त विशेषाधिकारों को नष्ट करना, न्याय, राजकीय सत्ता का अहस्तान्तरणीय

अवयव एवं जागीरों के न्यायालयों का उन्मूलन करना, जनसमुदाय की पूर्व दासता के अवशेष सामन्तवादी अधिकारों का दमन करना, समस्त नागरिकों और समस्त सम्पत्ति को बिना करारोपण के भेदभाव के पात्र बनाना था। अन्तिम क्रान्ति ने अधिकारों की समानता की घोषणा की।

विद्वान इतिहासकार **लियोगारशॉप** लिखते हैं, "उच्च तथा निम्न पादरियों में अभिमान और शत्रुता का सम्बन्ध था। निम्न पादरी उच्च पादरी के, उनके प्रति अपमानजनक व्यवहार का विरोध करते थे। उच्च पादरी उन्हें कुरूप, निकृष्ट तथा अज्ञानी जाति से सम्बन्धित समझते थे। इसी कारण निम्न पादरियों ने अपने पादरी वर्ग का परित्याग करके सन् 1789 में तृतीय एस्टेट का साथ दिया था।"

आर्थिक कारण (Economic Causes)—इसके अतिरिक्त दीर्घकालीन मुद्रा स्फीति के कारण आर्थिक संकट निरन्तर बढ़ रहा था। क्रान्ति से चार वर्ष पूर्व वस्तुओं के मूल्यों में 65 प्रतिशत की वृद्धि हुई। प्राकृतिक प्रकोप ने संकट को अत्यधिक विकट बना दिया था। सन् 1787 एवं 1788 में कृषि उपज बहुत कम थी। डबल रोटी के मूल्य इस सीमा तक बढ़ गये कि लोगों के लिए खरीदना कठिन हो गया और भूख से मरने की स्थिति उत्पन्न हो गयी। चारों ओर व्यापक असन्तोष था। परिणामस्वरूप क्रुद्ध जनता ने खाद्यान्न के गोदामों पर आक्रमण कर दिया। इसके अतिरिक्त क्षुब्ध, पीड़ित, त्रस्त जनता ने डबल रोटी के मूल्य निर्धारकों, डबल रोटी पकाने वालों, कृषकों, खाद्यान्न व्यापारियों, एवं राजकीय करों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। निराशा एवं उपद्रवों के सहायक कारणों के परिणामस्वरूप मदिरा व्यापार की अवनति हुई तथा फ्रान्स में इंग्लैण्ड के सस्ते उत्पादनों का बाहुल्य हो गया। व्यापक भुखमरी के परिणामस्वरूप लोगों ने राजकीय करों विशेष रूप से खाद्यान्न तथा पेय पदार्थों पर करों का असाधारण हिंसात्मक विरोध किया और अधिकांश खाद्य उत्पादनों पर आरोपित करों तथा सीमा शुल्क हटाने की प्रबल माँग की। इतनी विकट परिस्थितियों में, विशेषाधिकृत वर्गों के कर मुक्ति का तीव्र विरोध किया गया। दैनिक वेतन भोगी श्रमिक, शिल्पकार, खनिज उत्पादक और छोटे व्यापारियों के साथ धर्म शुल्क, जागीरदारी शुल्क तथा आखेट अधिकार के विरोध में विशाल कृषक समुदाय भी सम्बद्ध हो गया था। इस प्रकार सन् 1788-89 की शीत ऋतु में अत्यधिक उत्तेजक महत्वपूर्ण समय आया, जबकि राजनीतिक असन्तोष तथा कुंठा एवं आर्थिक त्रास और संकट परस्पर सम्बद्ध हो गये।

तत्कालीन सामाजिक व्यथा तथा कष्ट ने लोगों को नगरों की ओर पलायन के लिए विवश किया। नगरों की ओर सामूहिक पलायन ने हिंसा, क्रूरता तथा बर्बरता को प्रोत्साहित किया। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1789-94 के मध्य पेरिस का जनसमूह तथा ग्रामीण कृषक समुदाय विभिन्न हिंसात्मक गतिविधियों के लिए कुख्यात था। 14 जुलाई, 1789 को बास्तील के पतन के उपरान्त समस्त ग्रामीण क्षेत्र में हिंसा की अग्नि प्रज्जवलित हो गयी। राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने फ्रान्स की स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान करते हुए उदारता का परिचय दिया और एक आदेश द्वारा सामन्तवादी शासन की समाप्ति की घोषणा की। फ्रान्सवासी भलीभाँति जानते थे कि कृषकों ने स्वतन्त्रता को पुनर्स्थापित किया था तथा सामन्तवाद को ध्वस्त कर दिया था।

उपलब्ध तथ्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि क्रान्तिकारी स्थिति ने ही क्रान्ति की अन्तर्निहित सुषुप्त भावना को उद्दीप्त एवं उत्तेजित किया और इस क्रान्ति में कृषकों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण

भूमिका रही। दार्शनिकों के उपदेशों ने केवल राष्ट्रीय सभा कालान्तर में विधान सभा तथा राष्ट्रीय सम्मेलन में मध्यम वर्ग के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों के प्रत्येक कार्य को न्यायोचित सिद्ध करने का ही मूल कार्य किया। इस प्रक्रिया में सरकारी तन्त्र स्थिति को नियन्त्रित करने में पूर्णतया अकुशल एवं अयोग्य सिद्ध हुआ और लुईस सोलहवें प्रत्येक संकट की स्थिति में समयानुकूल उचित कार्यवाही करने में असफल रहा।

राजतन्त्र का दायित्व (Responsibility of the Monarchy)

सन् 1774 में लुईस पन्द्रहवें का उत्तराधिकारी लुईस सोलहवें केवल 20 वर्ष की आयु का था। उसने आतंकित तथा भयभीत होकर कहा, "ऐसा प्रतीत होता है जैसे विश्व मेरे ऊपर गिर रहा है" और आरोप लगाया कि उसको कुछ भी नहीं सिखाया गया। वह मुख्य रूप से अपने महल की खिड़की से हिरन का शिकार करना तथा अपनी राजवंशीय काष्ठकला की दुकान पर ताले बनाने का खेल खेलना पसन्द करता था। उसने वर्साय में अपने महल के ऊपर के कमरे में अपनी पत्नी से छिपाकर लोहा गरम करके पिघलाने के लिए व्यक्तिगत भट्टी रखी हुई थी। वह शिकार प्रेमी था और सदैव खाते रहना बहुत प्रिय था। विधान सभा के समक्ष जब उस पर देशद्रोह का आरोप लगाया जा रहा था, वह भुना हुआ मुर्गा खाता रहा। उसकी पत्नी आंत्वानेट अत्यधिक रमणीय, कृपालु एवं राजोचित आचार-विचार की धनी महिला थी लेकिन उसको राजनीतिक सिद्धान्तों, आदर्शों एवं अनुभवों का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था। उसका विनोदप्रिय स्वभाव था, लेकिन शिष्टाचार से घृणा करती थी। इसके परिणामस्वरूप भ्रष्ट एवं अनुचित कार्यवाहियों का बाहुल्य हो गया।

लेकिन राजा और रानी दोनों का अन्तःकरण निष्कलंक तथा पवित्र था। उनमें किसी प्रकार की दूषित भावना नहीं थी। दोनों ने आनुतोषिक (liratuties) को भी त्याग दिया था, जिससे करदाताओं पर करों के भार में वृद्धि न हो। रानी ने निर्धनों की सहायता के लिए अपना व्यक्तिगत भत्ता भी छोड़ दिया था। इनसे दोनों की सर्वोत्कृष्ट उदार, सहृदय तथा निर्धनों के प्रति दया तथा सहानुभूति का आभास मिलता है।

1. एस्टेट्स जनरल का आह्वान करने से पूर्व लुईस सोलहवें की देश की वित्तीय स्थिति में अपेक्षित सुधार करने में असमर्थता तथा असहाय स्थिति घातक सिद्ध हुई।
2. लुईस सोलहवें ने एस्टेट्स जनरल के साथ दोहरी नीति का अनुसरण किया जबकि एस्टेट्स जनरल के सदस्य राज्य की दयनीय स्थिति में पर्याप्त सुधार करने के लिए दृढ़ संकल्प थे।
3. फ्रान्स के राजा ने एस्टेट्स जनरल जो राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में परिवर्तित हो गयी थी, के समक्ष समर्पण करके और कालान्तर में महिलाओं के साथ वर्साय से पेरिस तक की यात्रा करके भयंकर भूल की थी।
4. अपना देश फ्रान्स छोड़कर किसी अन्य देश को पलायन करने का लुईस सोलहवें का प्रयास अत्यधिक अदूरदर्शितापूर्ण तथा विवेकहीन था। 20 जून, 1791 को वर्नीज में गाड़ियों के तात्कालिक अवरोध ने लुईस सोलहवें को रोक लिया था। नगर में राजवंशीय सेना की टुकड़ियाँ थीं, लेकिन राजा ने आत्मसमर्पण करना ही उचित समझा। अश्रुपूरित नेत्रों से उसने अपने अभियोक्ता को अर्द्ध-नग्न जनसमूह के समक्ष हृदय से लगाया था।

5. लुईस सोलहवें की व्यक्तिगत दुर्बलताओं तथा कर्तव्यनिष्ठता के कारण क्रान्ति विरोधी उसको अपेक्षित सहयोग और सहायता नहीं दे सके। परिणामस्वरूप उसको फ्रान्स छोड़कर भागना पड़ा तथा विदेशी राजाओं से सहायता की याचना करनी पड़ी। यदि उसने मिराब्यू के परामर्श का अनुसरण करते हुए पेरिस के बाहर, फ्रान्स में विद्रोह का एक निश्चित मानदण्ड स्थापित किया होता अथवा जैसे नैपोलियन ने परामर्श देते हुए कहा थां, वह स्वयं अपने सैनिक घोड़े पर सवार हो गया होता तो उसने क्रान्ति के विरोध तथा दमन की दृढ़ नीति एवं इच्छा शक्ति को अभिव्यक्त किया होता, जिसका क्रान्तिकारियों पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता और क्रान्ति का इतना अधिक उग्र रूप नहीं होता।

कृषकों का दायित्व (Responsibility of the Peasants)

1. एस्टेट्स जनरल का आह्वान करने से पूर्व कृषकों में व्याप्त असन्तोष तथा कुंठा को वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि तथा दो वर्ष तक लगातार वर्षा के अभाव में अकाल की स्थिति एवं कृषि उत्पादनों में कमी ने बहुत बढ़ा दिया था। पीड़ित तथा त्रस्त कृषक गाँव छोड़कर नगरों को पलायन कर गये थे।

2. मूलरूप से फ्रान्स के कृषकों की आर्थिक स्थिति यूरोप के अन्य देशों के कृषकों की तुलना में खराब नहीं थी। कृषक स्वेच्छानुसार क्रय-विक्रय कर सकते थे, देश के किसी भी स्थान की यात्रा कर सकते थे, अपने व्यवसाय अथवा पत्नी का चुनाव कर सकते थे और अधिकांश कृषक अधिकाधिक भूमि प्राप्त करने के लोभी तथा अत्यधिक मितव्ययी थे। फ्रान्स में कृषकों की बाह्य रूप से दृष्टिगत सम्पत्ति के आधार पर करारोपण किया जाता था। अस्तु वे बाह्य रूप से अत्यधिक निर्धनता प्रकट करते हुए सम्पन्नता तथा समृद्धि को छिपाते थे। फ्रान्स की कुल भूमि के 2/5 भाग पर कृषकों का पूर्ण स्वामित्व था।

यद्यपि कृषकों की आर्थिक स्थिति सुखद और सन्तोषजनक थी, परन्तु उनकी अनेक शिकायतें थीं। उनकी शिकायत थी, कि उनकी भूमि पर अत्यधिक कर भार था। उनके कृषि उत्पादनों से बहुत कम लाभ मिलता था। उनकी महत्वाकांक्षाओं को अवरुद्ध किया जाता था। पूँजीवादी कृषि के स्वामी कुलीन वर्ग के व्यक्ति थे, जबकि कृषकों को केवल जीवन निर्वाह के स्तर पर जीवनयापन करना पड़ता था। प्राकृतिक प्रकोप की अवधि में उनको भूख से मृत्यु का वरण करना पड़ता था। समाज में भेदभाव के विरुद्ध अत्यधिक असन्तोष तथा कुंठा थी। मृत्यु दण्ड में भी असमानताएँ तथा विषमताएँ थीं, कुलीन वर्ग के व्यक्तियों का एक अपराध के लिए सिर काट दिया जाता था तथा उसी अपराध के लिए जनसामान्य को फाँसी के तख्ते पर लटका दिया जाता था। इतिहासकार हेज एवं मून अपनी कृति 'आधुनिक इतिहास' में भेदभाव तथा विषमताओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, "यद्यपि वैधानिक रूप से सामन्तवादी प्रणाली का अन्त हो चुका था परन्तु अभी तक कृषक को अपने स्वामी की चक्की पर अनाज पिसवाने, उसी के प्रेस में अंगूर का रस निकालने, अनेक कर देने, निःशुल्क श्रम करने तथा अनेक अरुचिकर परम्पराओं के अनुसार नत-मस्तक होना पड़ता था। कुलीन कृषकों से घृणा करते थे। स्थिति भयानक थी क्योंकि फ्रान्स की कुल जनसंख्या का बहुमत कृषक था।"

3. कृषकों में कुछ, जो बहुत अधिक पीड़ित तथा त्रस्त थे, नगरों में पलायन कर गये। ये ही कृषक सन् 1789 से 1794 तक पेरिस में उपद्रवी जनसमूह के अभिन्न अंग थे। बास्तील

के पतन के बाद देश के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों के क्रूर एवं बर्बर हिंसात्मक उपद्रव, पेरिस में जुलाई, 1789 का विप्लवी जनसमूह, विद्रोही कृषक महिलाओं की राजा को लेकर वर्साय से पेरिस की यात्रा, लावेन्डी में कृषकों के विद्रोह, फ्रान्स की क्रान्ति में कृषकों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

मध्यम वर्ग का दायित्व (Responsibility of the Middle Class)

1. फ्रान्स का मध्यम वर्ग सम्पन्न तथा समृद्ध था। प्रायः अत्यधिक प्रबुद्ध सामन्तवादी करों से बहुत कम पीड़ित तथा त्रस्त था, परन्तु वे धार्मिक असहिष्णुता तथा विवादों की सुनवायी की अवधि में शारीरिक यातनाओं के रूप में न्यायिक दुरुपयोग तथा असमान एवं विषम दण्ड प्रक्रिया से अत्यधिक असन्तुष्ट, क्षुब्ध तथा क्रुद्ध थे। इससे मध्यम वर्ग के स्वाभिमान एवं प्रतिष्ठा पर आघात होता था। एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन से पूर्व मध्यम वर्ग में व्याप्त असन्तोष तथा कुंठा तत्कालीन क्रान्तिकारी स्थिति का महत्वपूर्ण अवयव था। एक विद्वान इतिहासकार लिखते हैं, "इस वर्ग में वकील, चिकित्सक, प्राध्यापक, महाजन, व्यापारी आदि सम्मिलित थे। इस वर्ग के पास धन और मस्तिष्क सब कुछ था। परन्तु कुलीन वर्ग में उत्पन्न न होने के कारण, विशेषाधिकारों से वंचित थे। मध्यम वर्ग के असन्तोष का मुख्य कारण यह था कि सुयोग्य एवं समृद्ध होते हुए भी कुलीनों के समान सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे और वे अनेक राजनीतिक अधिकारों से भी वंचित थे।" मध्यम वर्ग का क्रान्ति पर इतना प्रभाव था कि सन् 1789 से सन् 1792 तक का समय फ्रान्स के इतिहास में मध्यम वर्ग के कुलीन तन्त्र के रूप में विख्यात है।

2. अमेरिका महाद्वीप के ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन 13 उपनिवेशों द्वारा सन् 1776 में आरम्भ क्रान्ति (स्वतन्त्रता संघर्ष) तथा इसके सन् 1783 में सफलतापूर्वक समापन ने फ्रान्सवासियों को निरंकुश शासन से मुक्ति के लिए सर्वाधिक प्रोत्साहित किया। अमेरिका स्थिति 13 उपनिवेशों के स्वतन्त्रता संघर्ष में मुख्य रूप से मध्यमवर्गीय समूह ने ही स्वतन्त्रता तथा मानवाधिकारों के नाम पर ब्रिटिश शासक जार्ज तृतीय के घृणित शासन को समाप्त कर दिया था। उपनिवेशवासियों के सफल संघर्ष ने समस्त यूरोप को सर्वाधिक प्रभावित किया था। फ्रान्स के काम्ट द सैगूर ने अपनी वृद्धावस्था में विगत दिनों को स्मरण करते हुए कहा था, "इन नव गणतन्त्रवादियों की वीरता ने (अमेरिका महाद्वीप के उपनिवेशवासियों) यूरोप के समस्त भागों में प्रतिष्ठा एवं सम्मान अर्जित किया तथा न्याय और मानवता के प्रबल समर्थकों की सहानुभूति प्राप्त की थी। .... शीघ्र ही स्वतन्त्र अमेरिका के राजदूत पेरिस आये। फ्रान्स में पुराने राजतन्त्र के मध्य कितने उत्साह तथा हर्षोल्लास के साथ उनका स्वागत किया गया। इसको अभिव्यक्त करना अत्यधिक कठिन होगा। ये जनता के प्रतिनिधि (राजदूत) थे जिन्होंने अपने राजा के विरुद्ध संघर्ष किया था।

3. एस्टेट्स जनरल के तृतीय सदन के अधिकांश सदस्य, मध्यमवर्गीय जनता के प्रतिनिधि थे। इनमें भी विशेष रुप से वकीलों की संख्या अधिक थी।

4. नये संविधान के प्रावधानों के अनुसार सन् 1791 में आविर्भूत विधान सभा के भी अधिकांश सदस्य मध्यम वर्ग के ही थे।

5. विभिन्न गुट जिन्होंने सन् 1791 के बाद परस्पर संघर्ष किया और इसका अन्त सन् 1795 में निदेशक मण्डल (डायरेक्टरी) के गठन के साथ हुआ, भी सब मध्यमवर्ग के ही थे।

इनमें भी वकीलों की संख्या बहुत अधिक थी। मारट, डान्टन तथा रोबेस्पियेरे जैसे मध्यमवर्गीय व्यक्तियों की आतंक तथा अराजकता का शासन स्थापित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका थी।

6. निस्सन्देह वे इस क्रान्ति से लाभान्वित हुए थे।

(क) क्रान्तिकालीन विभिन्न विधेयकों द्वारा सामन्तवाद, लिपिकीय, प्रान्तीय कारपोरेट (प्रतिनिधि) नगरपालिका, कुलीनों के विशेषाधिकारों और आन्तरिक सीमाशुल्क प्रणाली एवं स्वामित्वों को समाप्त कर दिया गया। इसके अतिरिक्त एक कानून के द्वारा अपने हितों की सुरक्षा के लिए श्रमिकों की इन संस्थाओं के साथ किसी भी रूप में सम्बद्धता पर प्रतिबन्ध लगा दिया और कर-संरचना का यौक्तिकीकरण (तर्कसंगत बनाना) किया एवं माप-तौल की नवीन तथा एकरूपीय प्रणाली का सूत्रपात किया गया। आर्थिक विषयों में राज्य के हस्तक्षेप को न्यूनतम स्थिति तक कम करके फ्रान्स को पूँजीवाद के लिए मुक्त किया। इस प्रकार उन्मुक्त व्यापार, उन्मुक्त उद्योग, उन्मुक्त विनिमय, उन्मुक्त संविदा, उन्मुक्त प्रतियोगिता, उन्मुक्त बाजार आदि को आश्वस्त किया। ये सब पूँजीवाद अर्थात् मध्यम वर्ग की प्रगति के लिए पूर्व अपेक्षित आवश्यकताएँ हैं। यथार्थ में फ्रान्स की क्रान्ति ने व्यक्ति को प्राचीन परम्परागत बन्धनों से मुक्त करके, उसे अपनी समस्त अन्तर्निहित शक्तियों का उन्मुक्त रूप से अपने पूर्ण विकास के लिए प्रयोग करने का अवसर प्रदान किया। इसके अभाव में पूँजीवाद का विकास सम्भव नहीं है।

(ख) मानवाधिकारों की उद्घोषणा स्पष्ट रूप से मध्यमवर्गीय चेतना एवं मनोवृत्ति को प्रतिबिम्बित करती है। इसके अन्तर्गत सम्पत्ति को अलंघनीय तथा पवित्र अधिकार घोषित किया गया और सम्पत्ति के राज्य द्वारा सम्पत्तिहरण की स्थिति में क्षतिपूर्ति की आवश्यकता पर बल दिया गया।

(ग) सन् 1791 का संविधान मध्यमवर्गीय व्यक्तियों के कठोर श्रम का परिणाम था। इसमें सम्पत्ति की सुरक्षा पर विशेष बल दिया गया। सम्पत्ति का केवल अधिकार ही नहीं है वरन् सम्पत्ति निर्वाचक (सम्बन्धी) तथा मतदान की योग्यता का आधार भी थी।

(घ) सामन्तवाद के अवशेषों को समाप्त करने तथा राजसत्ता की शक्तियों तथा अधिकारों को कम करने एवं कालान्तर में पूर्णतया समाप्त करने के बाद मध्यम वर्ग राज्य में सर्वोच्च सत्ता के रूप में शेष रह गया।

(ङ) चर्च की भूमि के अधिहरण के बाद विक्रय से भी मध्यम वर्ग ही लाभान्वित हुआ। निर्धनतम कृषक तथा दैनिक वेतनभोगी श्रमिक इस असाधारण अवसर से लाभान्वित होने की स्थिति में नहीं थे। कुछ सम्पन्न एवं धनी कृषकों अथवा मध्यमवर्गीय समृद्ध व्यक्तियों ने ही चर्च की भूमि का क्रय किया था।

राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में मध्यम वर्ग के प्रभुत्व काल में ही राज्य की सत्ता तथा प्रशासनिक प्रणाली पर पूर्ण नियन्त्रण निरंकुश राजतन्त्र तथा सामन्तवादी वर्गों से उनके हाथ में आया था और जब यह सत्ता तथा प्रशासनिक नियन्त्रण मध्यम वर्ग से निर्धन वर्ग में स्थानान्तरित होता हुआ प्रतीत होने लगा, मध्यम वर्ग ने क्रान्ति की समाप्ति का प्रयास किया। लगभग प्रारम्भ से ही मध्यम वर्ग तथा सम्पत्तिहीन वर्गों के बीच आन्तरिक संघर्ष ने सुधार कार्यों की प्रगति को अवरुद्ध किया था। अनेक कर्मठ तथा उत्साही क्रान्तिकारी

परिवर्तनों के पोषक एवं प्रबल समर्थकों के लिए राजनीतिक क्रान्ति पर्याप्त नहीं थी। वे सामाजिक क्रान्ति चाहते थे जिससे धनी एवं सम्पन्न व्यक्तियों की सम्पत्ति को निर्धनों में वितरित किया जा सके। आन्तरिक क्रान्ति की अवधि में मध्यम वर्ग ने इस प्रकार के समतावादी सिद्धान्तों के विरुद्ध निर्ममतापूर्वक निरन्तर संघर्ष किया और प्रत्येक अवसर पर इस मत तथा सिद्धान्त की व्यक्तिगत सम्पत्ति को पवित्र तथा अलंघनीय समझना चाहिए, का प्रबल समर्थन किया।

सरकार का दायित्व (Responsibility of the Government)

सरकार के प्राचीन संरचनात्मक स्वरूप पर पूर्व पृष्ठों में विस्तृत रूप से लिख चुके हैं।

एस्टेट्स जनरल के आह्वान से पूर्व तत्कालीन सरकार देश के समक्ष विभिन्न विकट तथा जटिल समस्याओं का समाधान करने में असफल रही। एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन के आरम्भ होने के बाद जैसे ही तृतीय एस्टेट्स (सदन, जन सामान्य के निर्वाचित सदस्यों का सदन) ने राष्ट्रीय सभा (National Assembly) का स्वरूप ग्रहण किया, पुरानी सरकार का पतन हो गया।

1. सरकार की प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्ट तथा दूषित थी। राजतन्त्रीय अधिकारियों के सोपानात्मक संगठन ने प्रशासकीय शक्तियों तथा अधिकारों को ग्रहण कर लिया था। इस सोपानात्मक संगठन में अनेक पद दायित्वहीन थे। अनेक हास्यास्पद पदों जैसे 'पेरिस का बियर टेस्टर' (बियर मदिरा चखने वाला), 'कन्ट्रोलशिप आफ विग्स' (कृत्रिम बालों का नियन्त्रक) और 'हैरीडिटरी जूरी इन्चार्ज आफ बर्यल' (कब्रिस्तानों का न्यायिक अधीक्षक) आदि का सृजन किया गया था। जब कभी राजवंशीय प्रवीणता तथा राजकोष रिक्त हो जाते थे, पूर्व राजा द्वारा स्वीकृत सम्मान, उपाधियों तथा नगरपालिका अधिकारों को निरस्त कर दिया जाता था और उनको पुनः बेचा जाता था। पदों के विक्रय तथा पुनः विक्रय पद्धति, बचे हुए काम का निरन्तर संकलन और मुख्यालय से जारी निरर्थक, हास्यास्पद, मनमौजी एवं स्वेच्छाचारी आदेशों ने इतिहास में अप्राप्य अथवा अनुपलब्ध अस्त-व्यस्तता को अत्यधिक विशाल स्वरूप प्रदान किया था।

2. क्रान्ति से पूर्व फ्रान्स की प्रशासनिक व्यवस्था अकुशल, भ्रष्ट, अव्यवस्थित एवं अपव्ययी थी। केन्द्रीकृत शासन प्रणाली का सर्वोच्च राजा था। राजा की प्रशासन में परामर्श तथा सहायता के लिए पाँच समितियाँ थीं। प्रशासनिक सुविधा के लिए समस्त देश को दो प्रकार के प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया था। 40 प्रान्त जिनमें अधिकांश प्राचीन प्रान्त थे, गवर्नमेण्ट के नाम से प्रसिद्ध थे। इनका केन्द्रीकृत शासन से कोई सम्बन्ध नहीं था। जनरलिटी के नाम से प्रसिद्ध उप प्रान्त थे। इनका सर्वोच्च अधिकारी राज्यपाल कुलीन वर्गीय फ्रान्स के राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था। वह राज्य से वेतन प्राप्त करता था और सदैव राजदरबार में रहकर भोग विलासमय जीवन व्यतीत करता था। वास्तविक शासन, राजा द्वारा नियुक्त कुलीनवंशीय इन्टेन्डेन्ट (Intendent) करता था और वह राजा के प्रति उत्तरदायी होता था। शान्ति, व्यवस्था, सुरक्षा, कर संकलन आदि का दायित्व इन्टेन्डेन्ट का ही होता था। वह पार्लेमाँ के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों की अध्यक्षता करता था। व्यावहारिक दृष्टि से प्रान्त में उसकी शक्ति राजा के सदृश्य असीमित थी। वह केवल राजा के आदेशों को प्रवृत्त करने तथा स्वयं की आय में येन-केन प्रकारेण वृद्धि में ही रुचि लेता था। स्थानीय शासन का फ्रान्स में कोई

महत्व नहीं था। स्थानीय प्रशासन भी वर्साय के राजमहल से ही संचालित होता था। कोई व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए अधिकृत नहीं था।

3. कानून की दृष्टि से देश में एकरूपता का सर्वथा अभाव था। देश में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में लगभग 400 सीमा-शुल्क चौकियाँ थीं। एक नगर में जो बात वैध थी और उचित मानी जाती थी, वही बात केवल 5 मील दूर स्थित दूसरे नगर में अवैध मानी जाती थी। फ्रान्स में प्रचलित कानूनों की भिन्नता के सन्दर्भ में विख्यात दार्शनिक वाल्टेयर कहते हैं, "किसी व्यक्ति को फ्रान्स में यात्रा करते समय सरकारी कानून उसी प्रकार बदलते हुए मिलते हैं, जैसे उसकी गाड़ी के घोड़े बदलते हैं।" व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का किसी प्रकार का कोई आश्वासन नहीं था। बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) का कोई प्रावधान नहीं था। कानून तथा न्याय के क्षेत्र में भी अव्यवस्था तथा भ्रष्टाचार व्याप्त था। देश में प्रवृत्त कानूनों के विषय में जनता को बिल्कुल ज्ञान नहीं था। समस्त देश में लगभग 385 न्यायविधान प्रवृत्त थे। देश में अनेक प्रकार के न्यायालय थे, लेकिन उनके क्षेत्राधिकार भी स्पष्ट नहीं थे। किस विवाद का निर्णय किस न्यायालय में होगा, ज्ञात करना कठिन था। न्यायिक पदों के विक्रय की प्रचलित परम्परा के परिणामस्वरूप निष्पक्ष न्याय की आशा करना मृगतृष्णा थी। राजतन्त्र के विशेष मुद्रांकित पत्रों के माध्यम से किसी भी निरपराध व्यक्ति को कारावास में डाल दिया जाता था। वाल्टेयर एवं टिटरो जैसे महान विद्वानों को भी बास्तील के दुर्ग में कारावास का दण्ड भुगतना पड़ा था। न्यायालयों में लैटिन भाषा का प्रयोग होता था। फ्रान्स का जनसमुदाय लैटिन भाषा से अनभिज्ञ था। यद्यपि दण्ड व्यवस्था कठोर थी, परन्तु अपेक्षित निष्पक्षता का अभाव था। यदि कोई व्यक्ति राजा को मानसिक वेदना पहुँचाता अथवा किसी प्रभावशाली व्यक्ति अथवा धर्माधिकारी को शारीरिक आघात पहुँचाता, उसको राजतन्त्रीय आदेश के द्वारा न्यायालय में बिना विवाद की सुनवाई के अनिश्चितकाल के लिए कारावास में डाल दिया जाता था।

माप-तौल, प्रचलित सिक्कों, निर्यात शुल्क तथा आन्तरिक, सीमाशुल्क सरल तथा एकरूपीय नहीं थे। एक विद्वान ने मत व्यक्त किया है कि कोई भी इतना प्रतिष्ठित नहीं था कि जो स्वयं को मन्त्रियों की दुर्भावना एवं लिपिकों की तुच्छ प्रवृत्तियों से सुरक्षित अनुभव करता।

4. देश की दयनीय आर्थिक स्थिति के लिए सरकार की अपव्ययिता तथा करारोपण प्रणाली ही उत्तरदायी थी। प्रोफेसर हेजन लिखते हैं, "सरकार आय के अनुसार व्यय करने की अपेक्षा व्यय के अनुसार आय को निश्चित करती थी।" परिणामस्वरूप राजा को व्यक्तिगत भोग-विलास पर राजकीय कोष से स्वेच्छाचारी ढंग से धन व्यय करने का अवसर मिल जाता था। राजा की विलासिता पर कोई अंकुश नहीं था। देश की कर संरचना अव्यवस्थित, दोषपूर्ण तथा दमनकारी ही नहीं थी वरन् स्वेच्छाचारी भी थी। राजकीय परिषद् के गुप्त अधिवेशन में स्वेच्छाचारी ढंग से करों में वृद्धि की जाती थी। ऐसा विश्वास किया जाता था कि राजस्व राजा के व्यक्तिगत आय-व्यय का अभिन्न अंग था। कराधान तथा कर समाहर्त्ता प्रणाली सर्वाधिक दोषपूर्ण तथा निन्दनीय थी। कराधान मुख्य रूप से गैर-विशेषाधिकृत कृषक तथा मध्यम वर्ग पर ही किया जाता था। कर समाहर्त्ता पद्धति भी अत्यधिक दोषपूर्ण थी। करों को ठेके पर प्राप्त करने के लिए ठेकेदार के साथ अनुबन्ध करने की प्रचलित परम्परा थी। ठेकेदार स्वेच्छापूर्वक कृषकों तथा अन्य करदाताओं से कर लेता था। राजस्व का एक बड़ा भाग अपने

पास रखकर शेष राज्य सरकार को देता था। इस प्रकार राज्य को कुल राजस्व से 60 प्रतिशत की आय होती थी।

प्रत्यक्ष तथा परोक्ष, दो प्रकार के कर थे। भू-राजस्व, आयकर, सम्पत्ति पर कर प्रत्यक्ष करों के अन्तर्गत आते थे। नमक, मदिरा, तम्बाकू आदि पर कर परोक्ष करों में आते थे। नमक कर (गेबेल) सर्वाधिक कष्टप्रद था। नमक व्यापार के लिए एक कम्पनी को अधिकृत किया गया था। प्रचलित कानून के अनुसार 7 वर्ष से अधिक आयु के प्रत्येक व्यक्ति के लिए 7 पौंड नमक क्रय करना आवश्यक था। कम्पनी स्वेच्छापूर्वक निर्धारित मूल्य पर नमक बेचती थी। रोटी के लिए पैसे नहीं होने की स्थिति में भी नमक क्रय करने के लिए बाध्य थे, अन्यथा उनको दण्ड वहन करना पड़ता था। ऐसा अनुमान है कि नमक कर का अतिक्रमण करने वाले लगभग 30,000 व्यक्तियों को प्रतिवर्ष कारावास का दण्ड दिया जाता था। नमक का अवैध व्यापार करने के आरोप में मृत्यु दण्ड तक दिया जाता था।

5. सरकार, प्रशासनिक व्यवस्था, करारोपण प्रणाली तथा न्याय प्रणाली भ्रष्ट अव्यवस्थित, निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थी। व्यक्ति के विचार व्यक्त करने तथा भाषण देने पर राज्य अथवा चर्च का पूर्ण नियन्त्रण था।

6. राजा की आय तथा राष्ट्रीय आय के मध्य किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। राज्य का आय-व्यय का वार्षिक विवरण (बजट) नहीं बनाया जाता था। राजा अथवा उसके प्रतिनिधि उसी गति से व्यय करते थे जिस गति से आय होती थी। निरर्थक व्यय अथवा अपव्यय पर संसदीय आलोचना द्वारा अंकुश लगाने का कोई प्रावधान नहीं था।

दार्शनिकों एवं विचारकों का दायित्व (Responsibility of the Philosphers and Thinkers)

निरंकुश राजतन्त्र काल में फ्रान्स में संसद नाम की राजनीतिक संस्था का अभाव था। तत्कालीन विद्वान एवं दार्शनिक ही राजनीतिज्ञ बन गये थे। समाज के असन्तुष्ट तथा कुंठाग्रस्त व्यक्तियों को लेखकों एवं विद्वानों ने, अपनी अन्तर्मन की पीड़ा, वेदना एवं मानसिक क्लेश को अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। दार्शनिकों ने देश की दयनीय आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थिति का सजीव चित्रण अपनी सृजनात्मक कृतियों में किया और जनता की पीड़ा, वेदना तथा कष्टों को साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे हास्य-व्यंग, आलोचना तथा समालोचना, सामाजिक सिद्धान्त आदि के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इन बुद्धिवादी लेखकों ने स्वतन्त्र चिन्तन के लिए जन-समुदाय को प्रेरित किया। अपनी कृतियों के माध्यम से समाज में व्याप्त असमानता, शोषण, अत्याचार, धार्मिक असहिष्णुता तथा भ्रष्ट एवं निरंकुश राजतन्त्र के कारण मानव की पीड़ाओं, आर्थिक नियन्त्रण, निम्न वर्ग के असन्तोष तथा कुंठा को अभिव्यक्ति प्रदान की। मानव मस्तिष्क को पुराने रूढ़िवादी, संकीर्ण तथा धर्मान्ध विचारों से मुक्त करने के लिए इन विद्वानों ने आह्वान किया। कैटलबी लिखते हैं, "वे जनता के प्रेरणा स्रोत थे। वे उसके असन्तोष को व्यक्त कर रहे थे, उसकी शिकायतों को सामने रख रहे थे, उसे नेतृत्व तथा विश्वास दे रहे थे। संसद विहीन देश में साहित्यकार ही राजनीतिज्ञ हो गये थे। उन्होंने फ्रान्स की संस्थाओं के खोखलेपन को सहस्त्रों प्रकार से, व्यंग तथा हास्य, आलोचना तथा तुलना, वैज्ञानिक व्याख्या, समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों तथा स्पष्ट निन्दा द्वारा अभिव्यक्त कर दिया।"

इस अवधि के बौद्धिक आन्दोलन ने जीवन के प्रति वैज्ञानिक पद्धति तथा दृष्टिकोण का प्रयोग किया। आशावादिता इस काल के चिन्तन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण था। विद्वानों ने जनसमूह को निराशा एवं हतोत्साहित होने की अपेक्षा उज्जवल भविष्य की कामना से प्रोत्साहित किया। मनुष्य इस काल के चिन्तन का मुख्य केन्द्र-बिन्दु था। बुद्धिवादियों ने मानव कल्याण को ही सर्वोपरि स्वीकार किया तथा राज्य, चर्च, एवं अन्य धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं से मानव कल्याण के लिए कार्य करने का आग्रह किया।

प्रायः बौद्धिक चेतना को फ्रान्स की क्रान्ति की आत्मा माना जाता है। जार्ज एलन फ्रेन्च लिखते हैं, "फ्रान्स की क्रान्ति का कारण वहाँ के लोगों का दुःख तथा उन पर होने वाले अत्याचार नहीं थे वरन् बुद्धिवादी वर्ग के विचार थे। यह वर्ग समाज, राज्य तथा प्रशासन में व्याप्त असंगतियों को समूल नष्ट करने के लिए कृत-संकल्प था।" एक अन्य विद्वान शातोब्रियां ने मत व्यक्त किया है, "फ्रान्स की क्रान्ति बौद्धिक आन्दोलन एवं भौतिक दुःखों के सम्मिश्रण से हुई थी। बौद्धिक आन्दोलन ने ही भौतिक पीड़ाओं का अत्यधिक भयावह रूप से विरोध किया था।"

दार्शनिकों तथा फ्रान्स की क्रान्ति के मध्य परस्पर सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए डेविड थामसन लिखते हैं, "फ्रान्स के दार्शनिकों तथा सन् 1789 की फ्रान्स की क्रान्ति के मध्य बहुत दूरी का तथा परोक्ष सम्बन्ध है। उन्होंने क्रान्ति का उपदेश नहीं दिया। वे लोग किसी भी राजा की सहायता करने के लिए तत्पर थे जो इनको संरक्षण देने तथा इनके उपदेशों को स्वीकार करने के लिए तैयार होता। इसके अतिरिक्त उनके समर्थक भी क्रान्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं थे और क्रान्ति का समर्थन भी नहीं करते थे। उनमें अनेक पूँजीपति, वकील, व्यापारी, स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, जो अन्य लोगों से अपेक्षाकृत श्रेष्ठ थे। दार्शनिकता के सिद्धान्त का प्रयोग क्रान्ति की अवधि में ही हुआ और इस प्रकार के कार्यों के लिए किया गया जिनसे इनके जनक स्वयं घृणा करते थे। क्रान्ति के प्रारम्भ में उनका कुछ प्रभाव केवल इसलिए था, कि उन्होंने तत्कालीन समस्त सामाजिक व्यवस्था के प्रति एक आलोचनात्मक एवं खण्डनपूर्ण विचारधारा को जन्म दिया। उन्होंने आवश्यकता के समय प्राचीन व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए जनता को मानसिक दृष्टि से तैयार किया था। सन् 1789 में फ्रान्स की जनता को उसकी इच्छा के विरुद्ध क्रान्तिकारी बना देने के लिए उस काल की क्रान्तिकारी परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं और इस परिस्थिति को लाने के लिए दार्शनिक सिद्धान्त की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं थी।"

फ्रान्स के तत्कालीन विचारकों में वाल्टेयर ने चर्च की सत्ता को सर्वाधिक आघात पहुँचाया। एक प्रकार से उसने समस्त समाज तथा मानव विरोधी प्रत्येक तत्व का कुरूप उपहास किया। एक व्यंग्यात्मक कथन के परिणामस्वरूप उसको बास्तील के दुर्ग में कारावास का दण्ड दिया गया। जबकि एक प्रत्युत्तर के कारण एक कुलीन के दास (नौकर) ने उसको चाबुक से मारा। फ्रेडरिक महान का वह सम्मानित अतिथि था, लेकिन अपने संरक्षक की कविताओं को चुराया और क्रोधावेश में प्रशा का दरबार त्याग कर चला गया। चोरी के लिए उसको पकड़ा गया और कारावास का दण्ड दिया गया।

महान् दार्शनिक रूसो भिन्न था। उसने व्यक्तियों की भावनाओं तथा संवदेनाओं को उद्वेलित किया। उसने अपनी चिन्तन की यात्रा उस स्थान से आरम्भ की जहाँ वाल्टेयर रुक गया था। रूसो ने बुद्धि के घोड़ों को गाड़ी में जोता था, जब कि वाल्टेयर ने भावनाओं के चीते को उन्मुक्त छोड़ दिया था। रूसो के सम्बन्ध में नैपोलियन ने स्वयं कहा था, "यदि

रूसो न हुआ होता तो फ्रान्स की क्रान्ति सम्भव नहीं होती। अपनी सृजनात्मक कृतियों के माध्यम से जन समुदाय को राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दोषों तथा विषमताओं के विरुद्ध सजग करने का काम फ्रान्स के दार्शनिकों तथा लेखकों ने ही किया।"

विख्यात राजनीतिक विचारक मान्टेस्क्यू ने स्वतन्त्रता के लिए अत्यधिक उत्साह तथा भावावेश के साथ आग्रह किया तथा निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन पर प्रभावशाली अवरोध के लिए शक्तियों के पृथक्कीकरण के नये सिद्धान्त का प्रवर्तन किया। लेकिन दार्शनिक एवं विचारक कटु आलोचना के प्रति सदैव सावधान तथा सजग रहते थे। वह अपने विचारों तथा भावनाओं को कुशलतापूर्वक संयत ढंग से अभिव्यक्त करने में पारंगत थे। तत्कालीन साहित्य पर साधारणीकरण तथा भाव-प्रवणता, अमूर्त सिद्धान्तों तथा तर्क शास्त्र, सूत्रों तथा संवेदनात्मक के परस्पर समरूपता का प्रभुत्व था। ये सब संविधान निर्माण प्रक्रिया के लिए सुदृढ़ आधार नहीं हो सकते थे। निःसन्देह इससे पूर्व किसी भी क्रान्ति में जनसमुदाय में आशा और चेतना का संचार करने वाला इतना अधिक साहित्य उपलब्ध नहीं था।

1. किसी भी दार्शनिक अथवा विचारक ने प्रत्यक्ष रूप से क्रान्ति में भाग नहीं लिया था। क्रान्ति में दार्शनिकों तथा विचारकों के योगदान का प्रश्न विवादग्रस्त हो सकता है परन्तु उन्होंने क्रान्ति की पूर्व सूचना अवश्य दे दी थी। दार्शनिकों को क्रान्ति के सिद्धान्तों का जनक स्वीकार नहीं किया जाये परन्तु वे क्रान्ति के प्रचारक तथा प्रबल समर्थक अवश्य थे। दार्शनिकों तथा विचारकों के विचारों तथा प्रवर्तित सिद्धान्तों का विशेष रूप से मध्यम वर्ग में व्यापक प्रचार एवं प्रसार अवश्य हुआ था। केवल अनेक कुलीनवर्गीय व्यक्तियों तथा धर्माधिकारियों ने ही नहीं वरन् सम्पन्न एवं समृद्ध कृषकों तथा मितव्ययी शिल्पकारों ने भी महान् दार्शनिकों के उदात्त विचारों को हृदयंगम कर लिया था।

2. जनसमुदाय द्वारा अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को दिये गये स्मृति-पत्रों (काहियो Cahiers) की भाषा शैली किसी भी रूप में क्रान्तिकारी नहीं थी। स्मृति-पत्रों में जनसमुदाय ने राजा के प्रति निष्ठा तथा राजभक्ति अभिव्यक्त की थी। भावनात्मक दृष्टि से अधिकांश स्मृति-पत्रों में तत्कालीन उग्र सुधारवादी राजनीतिक दार्शनिकों के विचार एवं सिद्धान्त प्रतिबिम्बित थे। वे सरकार तथा समाज में मूलभूत बुद्धिवादी तथा न्यायसंगत सुधार चाहते थे। इसके अतिरिक्त अधिकांश स्मृति-पत्रों ने समाज में व्याप्त असमानताओं, विषमताओं, भ्रष्टाचार, अत्याचार, स्वेच्छाचारिता, शोषण, पीड़ा और कष्टों के उन्मूलन पर बल दिया था।

3. निदेशक मण्डल (डायरेक्टरी) का शासन आरम्भ होने से पूर्व, क्रान्ति काल में अधिकांश रचनात्मक कार्य इन्हीं दार्शनिकों की प्रेरणा से किये गये थे।

4. फ्रान्स की जनता भावनाओं, मनोवेगों तथा विचारों की मुक्ति के लिए रूसो की प्रतिष्ठित कृतियों के प्रति ऋणी थी। रूसो ने मध्यम वर्ग तथा कुलीन वर्ग की निन्दा करते हुए जनसाधारण को ही अपने समस्त विचारों तथा सिद्धान्तों का आधार बनाया था। रूसो के लिए संवेदना, अनुभूति तथा भावना, बुद्धि अथवा विवेक की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण थे। जनसामान्य के लिए रूसो एक महान् एवं पूज्य आदर्श प्राणी था। पेरिस में लोग उसी प्याले से काफी पीने के लिए पंक्तिबद्ध खड़े होते थे, जिससे रूसो ने पहले काफी पी थी। यथार्थ में यह भाग्य की विडम्बना तथा दुर्भाग्य ही था कि रोबेस्पियेरे ने स्वयं के 'जनरल विल' (सामान्य इच्छा होने का दावा किया था जबकि रूसो के अनुसार 'जनरल विल' सामान्य इच्छा) राज्य में निरंकुश प्रभुसत्ता होनी चाहिए।

राष्ट्रीय (संविधान) सभा के कार्य (Functions of the National (Constituent) Assembly)

सामन्तों तथा धर्माधिकारियों के समस्त विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये। 4 अगस्त, 1789 को राष्ट्रीय सभा में उपद्रवियों को दण्ड देने तथा निजी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए विधेयक सदन के पटल पर रखा गया। नोआल्स (Noailles) नामक एक कुलीन प्रतिनिधि ने इसका विरोध करते हुए करों में समानता तथा विशेषाधिकारों की समाप्ति का विधेयक सदन के पटल पर रखा और स्वयं अपने विशेषाधिकारों के परित्याग करने की घोषणा की। स्थिति ने नाटकीय मोड़ लिया। सदस्यों में भावावेश में प्रतियोगात्मक सहृदयता तथा दयालुता आरम्भ हो गयी और सदस्य विधायी उन्माद से ग्रस्त थे। अपना स्वयं का अथवा अपने पड़ोसियों का जो कुछ परित्याग कर सकते थे, त्याग दिया। कुलीनों ने अपने समस्त (बकाया) शेष करों को छोड़ दिया, धर्माधिकारियों (बिशप) ने उपाधियों का परित्याग कर दिया, प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने अपने विशेषाधिकार त्याग दिये। केवल एक रात्रि में तीस विधेयक पारित किये गये। इन विधेयकों के द्वारा कृषि दास-प्रथा, सामन्तों के क्षेत्राधिकार, विक्रय योग्य सरकारी पद, लिपिकीय शुल्क, नगरपालिका तथा प्रान्तीय अधिकार समाप्त कर दिये गये। 4 अगस्त की रात्रि के महत्व को दर्शाते हुए क्रोपोकिन (Kropolkin) लिखते हैं, "4 अगस्त, की रात्रि क्रान्ति की महान् तिथियों में से एक है। 14 जुलाई और 15 अक्टूबर 1789, 21 जून 1791, 10 अगस्त, 1792 और 31 मई 1793 की तरह यह क्रान्तिकारी आन्दोलन के महान् चरणों में से एक थी और इसने भावी युग के स्वरूप को निर्धारित किया था। उस रात्रि के महत्व को कम करने का प्रयास करना न्यायोचित नहीं होगा। घटनाओं को आगे बढ़ाने के लिए इस प्रकार के उत्साह की आवश्यकता है। जब कभी सामाजिक क्रान्ति होती है, इसकी पुनः आवश्यकता होगी। क्रान्ति में उत्साह को उत्तेजित करना चाहिए और शब्द जो हृदय में कम्पन उत्पन्न करें, बोलने चाहिए। यथार्थ में कुलीन वर्ग, पादरी तथा हर प्रकार के विशेषाधिकृत व्यक्तियों ने उस रात्रि की बैठक से क्रान्ति की प्रगति को भलीभाँति समझ लिया था। इसके विरुद्ध शस्त्रास्त्र लेने की अपेक्षा इसके समक्ष समर्पण करने का निश्चय कर लिया था। यह तथ्य स्वयं मानव मस्तिष्क की विजय थी। उत्साह के साथ परित्याग किया गया था, यह अत्यधिक महान् था।"

2. 27 अगस्त, 1789 को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानवाधिकारों की उद्घोषणा (Declaration of the Rights of Man and Citizens) राष्ट्रीय सभा का दूसरा महान् कार्य था। इस विधेयक में रूसो के दर्शन की अन्तर्निहित चेतना प्रतिबिम्बित होती थी और इसमें इंग्लैण्ड तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अनेक संवैधानिक कानूनों को सम्मिलित किया गया था। यह फ्रान्स की क्रान्ति का मंच बन गया और उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों के विश्व के राजनीतिक विचारकों को प्रभावित किया। राष्ट्रीय सभा द्वारा घोषित मानवाधिकारों की चर्चा पूर्व पृष्ठों में विस्तारपूर्वक कर चुके हैं।

मानवाधिकारों की घोषणा समस्त व्यक्तियों, भावीयुगों, विश्व के प्रत्येक देश के लिए थी और समस्त विश्व के लिए एक अद्वितीय उदाहरण थी। इस उद्घोषणा की समाप्ति इस दृढ़ कथन के साथ हुई थी कि व्यक्तिगत सम्पत्ति एक पवित्र अधिकार था, जब सार्वजनिक आवश्यकता की माँग हो और इसकी क्षतिपूर्ति वैध रूप से निर्धारित कर दी गयी, इसके अतिरिक्त किसी को भी उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

3. राष्ट्रीय सभा ने समस्त देश में एक समान प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। पुराने प्रान्त, प्रान्तीय सरकारें, इन्टेन्डेन्टस, आदि समाप्त कर दिये। देश में 83 नये विभाग तथा निर्वाचित परिषदें स्थापित की गयीं। ये विभाग आकार तथा सदस्य संख्या में समान थे और इनके नाम देश के पहाड़ों तथा नदियों के नाम पर रखे गये थे। प्रत्येक विभाग को कैन्टनों तथा कम्यूनों में विभाजित किया गया था। स्थानीय प्रखण्डों के अध्यक्ष, कार्यपालिका द्वारा मनोनीत करने की अपेक्षा, जनता द्वारा निर्वाचित होते थे। नवीन न्यायिक प्रणाली समस्त देश के लिए आरम्भ की गयी थी। इन न्यायालयों के न्यायाधीशों का चुनाव जनता करती थी। विधि प्रणाली को सरल बनाने तथा एकरूपता प्रदान करने के लिए प्रयास किये गये, लेकिन यह कार्य नैपोलियन के प्रथम कौन्सल बनने तक पूर्ण नहीं हो सका। मिराब्यू ने टिप्पणी करते हुए कहा, "राज्य का विघटन इससे अधिक सुनियोजित ढंग से नहीं हो सकता था।" कार्यपालिका शक्ति अत्यधिक निर्बल हो गयी और इसने पहले अनौपचारिक कम्यूनों के क्रूर एवं बर्बर शासन तथा अन्ततोगत्वा सन् 1793 के अराजकतापूर्ण शासन एवं नैपोलियन के अधिनायक तन्त्र के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

नये संविधान में न्यायिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये गये। न्यायाधीशों के पदों का क्रय-विक्रय होता था तथा वंशानुगत थे। भविष्य में समस्त न्यायाधीश जनता द्वारा निर्वाचित होंगे और इनका कार्यकाल 2 से 4 वर्ष निश्चित किया गया। फौजदारी विवादों में जूरी व्यवस्था का सूत्रपात किया गया।

नवम्बर, 1789 में चर्च की समस्त सम्पत्ति का अधिहरण कर लिया गया। फरवरी, 1790 में मठों को ध्वस्त कर दिया गया तथा अन्य धार्मिक समुदायों का दमन कर दिया गया। अप्रैल, 1790 में पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा की गयी। जुलाई, 1790 में पादरियों के लिए असैनिक संविधान (Civil Constitution of the Clergy) का निर्माण किया गया। विशप तथा प्रीस्ट की संख्या कम कर दी गयी और उनको एक असैनिक संगठन घोषित कर दिया। इसके अनुसार इन धर्माधिकारियों को जनता द्वारा निर्वाचित होना था। पोप के साथ उनका सम्बन्ध नाममात्र का रह गया। दिसम्बर, 1790 में राष्ट्रीय सभा द्वारा पारित एक आदेश के द्वारा समस्त कैथोलिक धर्म के धर्माधिकारियों द्वारा असैनिक संविधान के प्रति निष्ठा की पवित्र शपथ लेना अनिवार्य कर दिया। पोप ने असैनिक संविधान की कटु आलोचना की तथा फ्रान्स में धर्माधिकारियों से असैनिक संविधान के प्रति शपथ न लेने के लिए आदेश दिया। धर्माधिकारी दो वर्गों में विभाजित हो गये। शपथ लेने वाले धर्माधिकारी 'ज्योरिंग क्लैर्जी' (Juring Clergy) कहलाते थे तथा शपथ न लेने वाले 'नान-ज्योरिंग क्लैर्जी' (Non-Juring Clergy) कहलाते थे। निम्न वर्ग के अधिकांश धर्माधिकारी जिनकी फ्रान्स की क्रान्ति के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी, अब क्रान्ति के विरोधी हो गये। कुछ ही धर्माधिकारियों ने असैनिक संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ ली थी।

देश में आर्थिक स्थिति में सुधार के उद्देश्य से चर्च की सम्पत्ति का नवम्बर, 1789 में अधिहरण कर लिया गया था। चर्च की सम्पत्ति की सुरक्षा के आधार पर राष्ट्रीय सभा ने एसिगनैटस (Assignates) के रूप में प्रसिद्ध कागज की मुद्रा प्रचलित की। यदि कागज की मुद्रा को आवश्यकता से अधिक छापने की अनुमति नहीं दी जाती है, यह कुशलतापूर्वक कार्य करती है। अस्तु कागज की मुद्रा को निश्चित न्यायसंगत सीमाओं में सीमित रखना चाहिए। राष्ट्रीय सभा, अधिकाधिक कागज की मुद्रा को छापने के स्वाभाविक प्रलोभन तथा

परिणामस्वरूप राजस्व में अधिकाधिक वृद्धि को नहीं रोक सकी, अस्तु मुद्रास्फीति आरम्भ हो गयी। निदेशक मण्डल के शासन काल में कागज की मुद्रा को बाध्य होकर निरस्त करना पड़ा निस्सन्देह एसिगनैट (Assignats) के प्रचलन ने कुछ काल के लिए वित्तीय समस्या का समाधान कर दिया, लेकिन यह फ्रान्स का सर्वाधिक दुःखद अध्याय था।

राष्ट्रीय सभा ने सन् 1791 में संविधान निर्माण कार्य पूर्ण कर लिया। राष्ट्रीय सभा को इसी कारण संविधान सभा भी कहते हैं। राजा के हस्ताक्षर के उपरान्त इसको समस्त देश में प्रवृत्त किया गया। विख्यात राजनीतिक दार्शनिक मान्टेस्क्यू के शक्तियों के प्रवर्तित पृथक्कीकरण के सिद्धान्त पर आधारित तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा अपने संविधान में समन्वित, फ्रान्स का पहला लिखित संविधान था। विधायिका, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को एक दूसरे से पृथक् रखा गया था और प्रत्येक के लिए पृथक् विभाग स्थापित किये गये। विधायी शक्ति विधान सभा के नाम से प्रसिद्ध सदन में निहित थी। इस सदन की कुल सदस्य संख्या 745 थी और इनका अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा चुनाव होता था। कर दाता सक्रिय नागरिक थे और उन्हीं को मतदान का अधिकार था। निश्चित सम्पत्ति का स्वामित्व सदस्य निर्वाचित होने के लिए आवश्यक था। सम्पत्ति की अनिवार्य योग्यता निर्धारित करने से स्पष्ट संकेत मिलता है कि राष्ट्रीय सभा में मध्यम वर्ग का प्रभुत्व था। औपचारिक दृष्टि से कार्यपालिका की सर्वोच्च सत्ता राजा में निहित थी। संविधान के प्रावधानों के अनुसार स्थानीय शासन, धर्माधिकारियों, नौ-सेना तथा सेना को राजा के नियन्त्रण से मुक्त कर दिया गया था। प्रोफेसर हेजन कहते हैं, "सन् 1791 के संविधान ने फ्रान्स की सरकार में सुधार का प्रतिनिधित्व किया, इतने पर भी इसने सुचारु ढंग से कार्य नहीं किया और यह (संविधान) अधिक समय नहीं चल सका। स्व-सरकार की कला में प्रथम प्रयोग के रूप में इसका अपना महत्व था, लेकिन इसने अनेक विषयों में अनुभवहीनता तथा निम्नस्तरीय निर्णयों को अभिव्यक्त किया, जिसने भविष्य के लिए कष्ट तथा विपत्तियाँ तैयार कीं। कार्यपालिका तथा विधायिका इतने कठोर ढंग से पृथक् थे, कि उनमें परस्पर संचार बहुत कठिन होता था और परिणामस्वरूप निलम्बन को प्रोत्साहन दिया जाता था। राजा विधान सभा से अपने मन्त्रियों को चुन नहीं सकता था, विधायिका से विचारों में मतभेद होने की स्थिति में उसको भंग नहीं कर सकता था, जैसा इंग्लैण्ड का राजा कर सकता था। इस प्रकार मतदाताओं को स्वयं ही निर्णय करने की अनुमति देता था। राजा का निषेधाधिकार, यदि वह इसका प्रयोग करता था, यद्यपि विधायिका के आक्रमणों से रक्षा करने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली शस्त्र नहीं था, लेकिन विधायिका को उत्तेजित करने के लिए पर्याप्त था। नागरिकों में सक्रिय तथा निष्क्रिय का भेदभाव स्पष्ट रूप से मानवाधिकारों की उद्घोषणा की लज्जाजनक अवज्ञा थी और इसने निश्चित रूप से असन्तुष्ट वर्ग उत्पन्न किया। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण इतना अधिक पूर्ण था कि राष्ट्रीय सरकार की कार्य कुशलता समाप्त हो गयी थी। फ्रान्स को 83 टुकड़ों में विभाजित कर दिया गया था और इन समस्त इकाइयों में परस्पर समन्वय स्थापित करके समस्त राष्ट्र की इच्छा के प्रत्युत्तर में महान् राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दिशा निर्देश देना अत्यधिक कठिन हो गया था और कुछ स्थितियों में असम्भव हो गया था।" राष्ट्रीय सभा ने अपनी अल्पावधि में कुल 25,000 विधेयक पारित किये।

यदि हम राष्ट्रीय सभा के अल्पावधि में विभिन्न कार्यों की समीक्षा करें तो इसके द्वारा विशाल स्तर पर किये गये विनाश से सर्वाधिक प्रभावित होंगे। उल्लेखनीय है कि विश्व की

किसी भी अन्य विधान सभा अथवा संसद ने इतने कम समय में इतना अधिक विनाश नहीं किया है। सरकार के पुराने स्वरूप, पुराने क्षेत्रीय खण्डों, पुरानी वित्तीय व्यवस्था, पुराने न्यायिक तथा विधि-विषयक नियमों पुरानी आध्यात्मिक व्यवस्था और इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमि स्वामित्व की पुरानी परम्पराओं, जैसे कृषि दास-प्रथा तथा सामन्तवाद को राष्ट्रीय सभा ने अल्पकाल में समाप्त कर दिया। विभिन्न श्रेणियों को भी समाप्त कर दिया गया तथा शिल्पकारों के संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

राष्ट्रीय (संविधान) सभा ने अपने 2 वर्ष से अधिक की अल्पावधि में (सन् 1789 से सन् 1791) विनाश तथा पुनर्निर्माण की प्रगति का शुभारम्भ किया। (1) इसने पारित विधेयक के द्वारा फ्रान्स में सामन्तवाद तथा कृषि दास-प्रथा को समाप्त किया, यद्यपि पुरानी प्रणाली का पूर्ण उन्मूलन अपूर्ण ही रह गया। (2) इसने फ्रान्स में पुरानी पैबन्दवाली प्रान्तीय, वित्तीय तथा आध्यात्मिक खण्डों को नष्ट कर दिया और उनके स्थान पर 83 समान विभाग स्थापित किये। (3) इसने सदैव परस्पर संघर्षरत विधायी न्यायालयों, पार्लेमाँ तथा सामन्तवादी न्यायालयों में व्याप्त अव्यवस्था को समाप्त किया। इस अव्यवस्था ने पुराने शासन के अन्तर्गत न्यायिक प्रशासन को अत्यधिक जटिल बना दिया था। इसके स्थान पर निर्वाचित न्यायाधीशों के साथ क्रमिक न्यायिक न्यायालयों की प्रणाली का शुभारम्भ किया। (4) इसने चर्च तथा मठों को उनकी सम्पत्ति तथा शक्तियों से वंचित कर दिया तथा धर्माधिकारियों को राज्य का सेवक बना दिया। (5) इसने निरंकुश शासक (राजतन्त्र) को सत्ता के अधिकांश भाग से वंचित कर दिया और उसको प्रभुसत्ता-सम्पन्न जनता द्वारा निर्वाचित राष्ट्रीय सभा (संविधान सभा) तक सीमित कर दिया।

यह समस्त विनाश प्रक्रिया किसी एक घटना अथवा निर्णय का परिणाम नहीं थी। इस प्रक्रिया के लिए अनेक पीढ़ियों से अत्यधिक कष्टप्रद तैयारी हो रही थी। जनसमुदाय की अपने प्रतिनिधियों को दिये गये स्मृति-पत्रों में अभिव्यक्त भावनाएँ, एवं मनोवेग पीढ़ियों की क्रमिक तैयारी को प्रतिबिम्बित करते हैं। केवल राष्ट्रीय सभा द्वारा पारित विधेयकों के माध्यम से पुरानी व्यवस्था का विनाश सम्भव नहीं था। इस विनाश प्रक्रिया में जनता एवं राष्ट्र की इच्छा की शक्तिशाली ढंग से अभिव्यक्ति ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस विनाश से भावी व्यक्तिवाद एवं लोकतान्त्रिक राष्ट्रीय राज्य का अभ्युदय हुआ। **एच. जी. वैल्स** लिखते हैं, "इस सभा के अनेक कार्य रचनात्मक तथा चिरस्थायी प्रकृति के थे, परन्तु इसके अनेक कार्य प्रायोगिक थे और अस्थायी सिद्ध हुए। अतः यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय संविधान सभा ने जनता की प्रभुसत्ता, सामाजिक समानता, मानवाधिकारों की घोषणा सामन्तवाद के अन्त की घोषणा की लेकिन यह स्थायी रूप से संविधान प्रवृत्त करने में असफल रही। राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में असफल रही, इसलिए असफल रही।"

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. आतंक शासन को परिभाषित करते हुए मूल्यांकन करें।
   Define and evaluate the reign of Terror. (भागलपुर, 1996; मगध, 1998)
2. सन् 1789 में फ्रान्स में ही राज्य क्रान्ति क्यों हुई, अन्यत्र क्यों नहीं ?
   Why did the Revolution of 1789 occur in France and not else where ?
   (भागलपुर, 1997; पटना, 1996; राँची, 1996, 98)

3. 1789 की फ्रान्सीसी क्रान्ति के स्वरूप एवं परिणामों का विश्लेषण कीजिए।
Analyse character and results of the French Revolution of 1789.
(बुन्देलखण्ड, 1992; अवध, 1993, 98; जबलपुर, 1996, 98, 2000; बी. आर. अम्बेदकर, 1996)

4. 1789 की फ्रान्सीसी क्रान्ति के सामाजिक-आर्थिक कारणों का परीक्षण कीजिए।
Examine social-economic causes of the French Revolution of 1789.
(अवध, 1992, 95, 96, 97; रुहेलखण्ड, 1991, 92, 93, 95, 96, 97, 2000; बुन्देलखण्ड, 1990, 93, 94, 96, 99; गोरखपुर, 91, 93, 95, 99; रायपुर, 1998; मगध, 1992, 95, 97; मेरठ, 1996, 98; राँची एवं जबलपुर, 1997, 99)

5. आतंक का राज्य से आप क्या समझते हैं ? विवरण दीजिए।
What do you understand by reign of Terror ? Discuss.
(जबलपुर, 1997; मगध, 1992, 95, 96, 98; वीर कुंवर सिंह, 1994; राँची, 1998)

6. 1789 की फ्रान्सीसी क्रान्ति के तात्कालिक कारणों की विवेचना कीजिए।
Discuss the immediate causes of the French Revolution of 1789..
(मगध, 1999)

7. आतंक के राज्य की स्थापना कैसे हुई ? इसकी क्या उपलब्धियाँ थीं ?
How was the reign of Terror established ? What were its achievements ?
(राँची, 1996; बुन्देलखण्ड, 1990, 95; पटना, 1997; ग्वालियर, 2000; मेरठ, 1998, 99; अवध, 1991)

8. 1789 ई. की क्रान्ति निरंकुशता की अपेक्षा असमानता के विरुद्ध अधिक विद्रोह थी।
The French Revolution of 1789 was revolution against inequality rather than Absolutism.
(रायपुर, 1999)

9. इस प्रकार शासकीय दुर्बलता, सामाजिक अन्याय, आर्थिक संकट तथा सुधार की महत्वाकांक्षा आदि मिश्रित कारणों से, फ्रान्सीसी क्रान्ति का आरम्भ हुआ।
The French Revolution started because of the administrative weakness, social injustice, economic crisis and ambition of Reforms. (जबलपुर, 1995)

10. लुईस सोलहवें के शासन काल का वर्णन करो। क्या वह एक योग्य एवं महान् शासक था? उसकी असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिये।
Describe the reign of Louis XVI. Was he an able and great ruler ? Throw light on the causes of his failure. (बुन्देलखण्ड, 1997; मेरठ, 1992; राँची, 1998)

11. "फ्रान्सीसी क्रान्ति का स्वरूप मध्यवर्गीय था।" आलोचनात्मक विश्लेषण करें।
"Character of the French Revolution was middle class." Critically comment.
(वीर कुंवर सिंह, 1998)

12. 1789 की फ्रान्सीसी क्रान्ति की देनों का विवेचन करें।
Discuss the contributions of the French Revolution of 1789. (राँची, 1997)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. सन् .... तक फ्रान्स में घटित घटनाओं को भावी नवीन सामाजिक व्यवस्था की प्रसव पीड़ा कहा जा सकता है—
(क) 1783-1790 (ख) 1785-1792 (ग) 1787-1794 (घ) 1789-1795

2. 14 जुलाई, ………… को बास्तील के पतन की विस्फोटक घटना कुख्यात असामाजिक तत्वों तथा लुटेरों का कार्य थी—
(क) 1789 (ख) 1790 (ग) 1791 (घ) 1792
3. फ्रान्स का कैथोलिक चर्च फ्रान्स की कुल भूमि के ………… भाग का स्वामी था—
(क) 4/5 (ख) 3/5 (ग) 2/5 (घ) 1/5
4. गणतान्त्रिक व्यवस्था के समर्थकों ने जनवरी ………… में लुईस सोलहवें की हत्या करवाकर विजय का डंका बजाया था—
(क) 1789 (ख) 1790 (ग) 1791 (घ) 1793
5. राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन 20 सितम्बर, ………… को आरम्भ हुआ—
(क) 1790 (ख) 1791 (ग) 1792 (घ) 1793
6. 20 सितम्बर, ……………… को मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को वाल्मी में पराजित किया—
(क) 1790 (ख) 1791 (ग) 1792 (घ) 1793
7. माह के नामों में परिवर्तन कर दिया गया तथा नया वर्ष 22 सितम्बर, ………… से आरम्भ हुआ—
(क) 1789 (ख) 1790 (ग) 1791 (घ) 1792
8. रोबिस्पियेरे की नृशंस हत्या के उपरान्त 8,000 बन्दियों को जुलाई, ………… में मुक्त कर दिया गया—
(क) 1791 (ख) 1792 (ग) 1793 (घ) 1794
9. फ्रान्सवासी इंग्लैण्ड की सन् ………… की गौरवशाली रक्तहीन क्रान्ति से भली-भाँति परिचित थे—
(क) 1687 (ख) 1688 (ग) 1689 (घ) 1690
10. नैपोलियन का जन्म 15 अगस्त, ……… को कोर्सिका द्वीप में हुआ था—
(क) 1768 (ख) 1769 (ग) 1770 (घ) 1771

[उत्तर—1. (घ), 2. (क), 3. (घ), 4. (घ), 5. (ग), 6. (ग), 7. (घ), 8. (घ), 9. (ख), 10. (ख)]

4

राष्ट्रीय सम्मेलन
[NATIONAL CONVENTION]

तृतीय क्रान्तिकारी सभा (Third Revolutionary Assembly)—राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन 20 सितम्बर, 1792 को आरम्भ हुआ और यह 26 अक्टूबर, 1795 तक सत्ता में रहा। फ्रान्स की क्रान्ति ने द्वितीय चरण में प्रवेश किया, जो अनेक दृष्टियों से प्रथम से भिन्न था। 10 अगस्त, 1792 को विधान सभा ने राज सत्ता को निलम्बित करने, सार्वभौम वयस्क मताधिकार द्वारा नये चुनाव का विधेयक पारित किया। प्रोफेसर हेज (Hayes) लिखते हैं, "सम्भवतः इतिहास में किसी भी विधायी संस्था का इतनी जटिल समस्याओं का समाधान करने के लिए आह्वान नहीं किया गया जितनी राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) के समक्ष इसके प्रथम अधिवेशन के प्रारम्भ में ही थी।" अपदस्थ राजा का भी कुछ करना था। देश को विदेशी आक्रमण से सुरक्षित रखना था। आन्तरिक विद्रोह का दमन करना था। सरकार स्थापित करनी थी। सामाजिक सुधारों को पूर्ण करना तथा सुदृढ़ करना था। देश के लिए नया संविधान बनाना था। 21 सितम्बर, 1792 को राष्ट्रीय सम्मेलन ने सर्व सम्मति से स्वीकार किया कि फ्रान्स में राजतन्त्र का उन्मूलन हो गया है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक पटल पर गणतन्त्र का उद्‌भव हुआ। इस चरण में निम्नवर्गीय तत्वों का प्रभुत्व था। सापेक्षिक रूढ़िवादी मध्य वर्ग का कोई नियन्त्रण नहीं था। इसकी अपेक्षा पेरिस के श्रमजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले अति उग्रवादी क्रान्ति के स्वरूप निर्धारित करने के उत्तरदायी थे। वाल्टेयर और मान्टेस्क्यू के उदारवादी दर्शन का स्थान रूसो के उग्र सुधारवादी समतावादी सिद्धान्तों ने ले लिया था। यह द्वितीय चरण पूर्वापेक्षा अधिक उग्र, हिंसात्मक एवं रक्तरंजित था। राजा को मृत्युदण्ड के अतिरिक्त सितम्बर, 1792 का भीषण नरसंहार एवं 1793 की ग्रीष्मऋतु से सन् 1794 की ग्रीष्म तक आतंक के साम्राज्य के लिए द्वितीय चरण उल्लेखनीय था।

राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention)

मध्यमार्गी अथवा नरमपंथी मध्यवर्गीय से अति सुधारवादी (उग्रवादी) और हलचल के चरण में अभूतपूर्व परिवर्तन के लिए अनेक अवयव थे। सर्वप्रथम, श्रमजीवी वर्ग की निराशा

और कुंठा का उल्लेख किया जा सकता है। क्रान्ति के प्रारम्भ से ही प्रत्येक नागरिक को समानता और न्याय सुनिश्चित करने का वचन दिया गया था। मानवाधिकारों की घोषणा से यह भावना सुदृढ़ हुई थी। निजी सम्पत्ति की पवित्रता पर विशेष बल दिया गया था। लेकिन क्रान्ति के सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल के तीन वर्ष बाद नगर के श्रमिकों के जीविकोपार्जन के लिए स्थितियाँ पूर्ववत् अत्यधिक कठोर एवं निराशाजनक थीं। यथार्थ में स्थितियाँ पूर्वापेक्षां अधिक कठोर थीं। सन् 1791 की बसन्त ऋतु में सरकार ने अनेक सार्वजनिक कारखानों को समाप्त कर दिया। इससे हजारों लोग बेरोजगार हो गये। इसके अतिरिक्त नये पारित कानूनों ने श्रमिक संघों के संगठन, सामूहिक सौदाकारी, धरनों और हड़तालों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सन् 1791 का संविधान स्वीकार करने के बाद सामान्य जनसमूह को ज्ञात हुआ कि उनको मताधिकार भी नहीं था। इससे अधिक उनको स्पष्ट अनुभव हुआ कि उसने स्वामियों के एक दल के स्थान पर स्वामियों के दूसरे दल को सत्ता दे दी। ऐसी स्थिति में जनसमूह का उग्रवादियों के उपदेशों जिन्होंने उनको सुरक्षित और समृद्ध भूमि की ओर प्रशस्त करने का आश्वासन दिया था, के प्रति मोहभंग हो गया।

उग्र सुधारवादी चरण में परिवर्तन के लिए दीर्घकाल से संकलित क्रान्ति की तीव्र भावना उत्तरदायी थी। इस प्रकार का प्रत्येक आन्दोलन प्रबल असन्तोष के वातावरण का निर्माण करता है, जिसका अन्यों की अपेक्षा कुछ व्यक्तियों ने अपेक्षाकृत अधिक गहनता से अनुभव किया। परिणामस्वरूप एक प्रकार के व्यावसायिक क्रान्तिवादियों का आविर्भाव हुआ जो इतनी अधिक उपलब्धियों के उपरान्त भी सदैव असन्तुष्ट ही था। ये लोग पुरातन व्यवस्था के प्रबल समर्थकों की कटु आलोचना और निन्दा की अपेक्षा क्रान्ति के प्रथम चरण के नेताओं की अधिक तीव्र और घृणास्पद शब्दों में निन्दा और आलोचना करते थे। ऐसे व्यक्तियों के लिए अपने स्वयं के आदर्शों की उपलब्धि का क्रय करने के उद्देश्य से नरसंहार और अराजकता का मूल्य नगण्य था। ऐसे व्यक्ति अपने सर्वाधिक निकट सहयोगी से असहमति की स्थिति में उसकी हत्या करने में संकोच नहीं करेंगे, जैसे वे सर्वाधिक घृणित प्रतिक्रियावादी को सहर्ष समाप्त करने में संकोच नहीं करते हैं। ऐसे राजनीतिज्ञ कट्टर धर्मान्धी के अनुरूप होते हैं। राष्ट्रीय सम्मेलन ने इन समस्त कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया।

अपदस्थ राजा लुईस सोलहवें पर मुकदमा चलाया गया और सर्वसम्मति से उसको विदेशी शक्तियों के सहयोग से देशद्रोह के लिए अपराधी स्वीकार किया गया। उसको रविवार 21 जनवरी, 1793 को मृत्यु दण्ड दे दिया गया। राष्ट्रीय सम्मेलन के कार्यों का दो भागों, विदेश नीति तथा आन्तरिक नीति के अन्तर्गत चर्चा करना सुविधाजनक है। दिसम्बर, 1792 में राष्ट्रीय सम्मेलन ने घोषणा की कि फ्रान्स राष्ट्र घोषणा करता है कि वे प्रत्येक व्यक्ति को अपना शत्रु मानेगा जो स्वतन्त्रता और समानता को अस्वीकार करता है अथवा परित्याग करता है, राजा एवं विशेषाधिकृत वर्गों के साथ सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है अथवा उसको पुनः राजा के पद पर बुलाना चाहता है अथवा इनके साथ व्यवहार करता है।"

फ्रान्स के क्रान्तिकारी अपने आदर्शों, सिद्धान्तों तथा विचारों का यूरोप के अन्य देशों में प्रचार करने के लिए कृत संकल्प थे। यूरोप के अन्य देश प्रवासी फ्रान्सवासियों के सक्रिय

सहयोग से यूरोप के अन्य देशों में फ्रान्स के विरुद्ध व्यापक प्रचार कर रहे थे। अस्तु विदेशी सहायता से प्रवासियों (राजतन्त्र समर्थकों) द्वारा फ्रान्स के ऊपर आक्रमण की पूर्ण सम्भावना थी। फ्रान्स ने सामन्तों के समस्त करों को समाप्त कर दिया था। यह अलंजेक तथा अन्य सीमावर्ती प्रान्तों पर भी प्रवृत्त होता था। इन पर पहले तत्कालीन जर्मन साम्राज्य का आधिपत्य था। सन् 1648 की वेस्टफेलिया की शान्ति सन्धि के अन्तर्गत फ्रान्स ने जर्मनी के राजाओं को कुछ विशेषाधिकार तथा अधिकार स्वीकार किये थे, लेकिन फ्रान्स की कार्यवाही से उनको आघात पहुँचा था। फ्रान्स की सरकार ने जर्मन राजाओं के समक्ष, उनके अधिकारों के हनन के कारण क्षति के लिए क्षतिपूर्ति का प्रस्ताव रखा, लेकिन जर्मन राजाओं ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। फ्रान्स ने एविगनन पर भी आधिपत्य स्थापित कर फ्रान्स में विलय कर लिया था। एविगनन चौदहवीं शताब्दी से पोप के नियन्त्रण में था। इसको अन्तर्राष्ट्रीय कानून का अतिक्रमण माना जाता था। फ्रान्स ने आस्ट्रिया से फ्रान्स के प्रवासियों को आस्ट्रिया की भूमि से निष्कासित करने का आग्रह किया था, लेकिन आस्ट्रिया ने प्रवासियों को निष्कासित नहीं किया। यह भी सन्देह था कि वह प्रवासियों की सहायता कर रहा था। इसी अवधि में फ्रान्स की साम्राज्ञी मेरी आंत्वानेट, विवाह पूर्व हैप्सबर्ग वंश की सदस्य थी, आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग वंशीय सम्राट से अपने पति की सहायता के लिए भावपूर्ण निवेदन कर रही थी। 27 अगस्त, 1791 को प्रशा तथा आस्ट्रिया दोनों ने पिलनित्ज घोषणा की कि फ्रान्स में यदि यूरोप के अन्य देश सहायता करें तो वह हस्तक्षेप करने के लिए तैयार था। फ्रान्स में राजतन्त्र की संस्था और उसके अधिकारों की पुनर्स्थापना यूरोप के समस्त राजाओं के समान हित का विषय था। विदेशी हस्तक्षेप की धमकी का फ्रान्स की जनता ने विरोध किया और इस विरोध ने गिरोन्दिस्त समर्थकों को शक्ति प्रदान की। वे पहले से ही आस्ट्रिया और प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने के पक्ष में थे। अधिकांश क्रान्तिकारियों को विदेशी शक्ति से संघर्ष का स्वागत करने की प्रवृत्ति थी। नरम दलीय क्रान्तिकारी आशा करते थे कि सैनिक सफलता नये शासन के प्रति निष्ठा को सुदृढ़ करेगी लेकिन उग्रवादी गुप्त आशा से युद्ध के लिए चिल्ला रहे थे कि फ्रान्स की पराजय होगी। इससे फ्रान्स में राजतन्त्र समाप्त करने का अवसर मिलने की सम्भावना थी। फ्रान्स की सरकार ने आस्ट्रिया को अन्तिम निर्णय की सूचना दी तथा 20 अप्रैल, 1792 में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

गिरोनदिस्त युद्ध का सफलतापूर्वक संचालन नहीं कर सके। फ्रान्स की समस्त युद्ध क्षेत्रों में पराजय हुई। बेल्जियम पर फ्रान्स का आक्रमण असफल हुआ। आस्ट्रिया और प्रशा की संयुक्त सेनाओं ने फ्रान्स को पराजित किया। संयुक्त सेनाओं के सेनाध्यक्ष के रूप में ब्रन्सविक के ड्यूक ने फ्रान्सवासियों के लिए जुलाई, 1792 में घोषणा की कि वह फ्रान्स के बोर्बो राजा लुईस सोलहवें को उसके वैध राजस्व के पद पर पुनर्स्थापित करना चाहता था। इसके प्रत्युत्तर में अगस्त, 1792 में पेरिस में भीषण उपद्रव हो गये। इस उपद्रव के परिणामस्वरूप डान्टन ने अधिनायकतन्त्र की स्थापना की। 10 अगस्त, 1792 को राजा को निलम्बित कर दिया गया और देश के लिए नया संविधान बनाने के लिए राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए चुनाव कराने का आदेश दिया। अधिनायक डान्टन कहता है, "मेरे विचार से राजतन्त्र

समर्थकों को आतंकित करना ही शत्रु को रोकने का एकमात्र उपाय है।" "साहसिकता, अधिक साहसिकता और सदैव अधिकाधिक साहसिकता।" इस नीति के परिणामस्वरूप पेरिस में पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों, कुलीनों, मजिस्ट्रेटों, पादरियों, बिशपों तथा अन्य सन्देहास्पद राजतन्त्र समर्थकों की क्रूर एवं निर्मम हत्याएँ की गयीं। मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ फ्रान्स में आगे बढ़ रही थीं। आतंक गहन हो गया। सर्वोच्च सत्ता डान्टन तथा उसके सहयोगियों ने अपने हाथ में ले ली। 20 सितम्बर, 1792 को मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को वाल्मी में पराजित किया। तत्काल संकट से फ्रान्स को बचा लिया। इन परिस्थितियों में नव निर्वाचित राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन आरम्भ हुआ था।

मित्र राष्ट्रों को पराजित करने के बाद फ्रान्स ने यूरोप के समस्त राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। आस्ट्रिया, प्रशा, इंग्लैण्ड, स्पेन और सर्डीनिया फ्रान्स में क्रान्ति का दमन करने के लिए संगठित हो गये। कारनोट के नेतृत्व में फ्रान्सवासियों में सैन्यवाद की भावना तथा चेतना का संचार किया गया। फरवरी, 1793 में 5 लाख प्रशिक्षित सैनिकों की सेना के गठन का आदेश दिया। अगस्त, 1793 में राष्ट्रीय सम्मेलन में पारित विधेयक के अनुसार 18 से 25 वर्ष की आयु के प्रत्येक फ्रान्सवासी के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गयी। कारनोट, सार्वजनिक सुरक्षा के एक सदस्य ने सेना को प्रशिक्षण दिया और आक्रमण को रोकने के लिए फ्रान्स की सीमाओं पर भेज दिया। उसने अभियान की योजना बनायी। विश्वसनीय अधिकारियों को नियुक्त किया और फ्रान्स की क्रान्ति की सफलता के लिए साहस, वीरता और निर्भीकता का अमूल्य मन्त्र दिया। सन् 1793 के अन्त तक 7,70,000 कर्तव्यनिष्ठ, फ्रान्स की क्रान्ति के लिए समर्पित व्यक्तियों की सेना का गठन हो गया। मध्यम वर्ग, शिल्पकारों तथा कृषकों ने सरकार की गतिविधियों का समर्थन किया। लगभग एक दर्जन सेनाओं को फ्रान्स के शत्रुओं के विरुद्ध हर दिशा में भेजा गया। राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रतिनिधि प्रत्येक के साथ गये और प्रत्येक से विजय का आग्रह किया। विजय न मिलने की स्थिति में उनकी हत्या कर दी जाती थी। विजय अथवा मृत्यु के मध्य एक का वरण करना था। इन्होंने अदम्य साहस के साथ प्रयास किया। यद्यपि यह अमानवीय दण्ड था लेकिन उसने निराशाग्रस्त सेनाओं में अभूतपूर्व शक्ति और शौर्य का संचार किया। सेनाओं ने अद्वितीय शौर्य का प्रदर्शन किया और विजयी हुए।

देश को विदेशी सेनाओं से ही मुक्त नहीं किया वरन् राइन नदी के किनारे नीदरलैण्ड, सेवाय तथा पाइरिनीज पर्वत के उस पार भी प्रवेश किया। बेल्जियम पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। शीघ्र ही हालैण्ड, स्पेन तथा प्रशा ने आत्मसमर्पण कर दिया और फ्रान्स के साथ सन्धि कर ली। फ्रान्स को आस्ट्रिया के नीदरलैण्ड, राइन नदी के क्षेत्र मिल गये। इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया और सर्डीनिया फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध में नहीं गये।

सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety)—1793 की बसन्त ऋतु के बाद राष्ट्रीय सम्मेलन ने फ्रान्स की सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति सार्वजनिक सुरक्षा समिति को दे दी। इस समिति के सदस्य रोबेस्पियेरे, कारनोट और सेन्टजस्ट थे। इस समिति के 12 सदस्य थे। यह संस्था विदेशी सम्बन्धों को निर्धारित करती थी, सशस्त्र सेनाओं पर

नियन्त्रण रखती थी और इसने आतंक के शासन को प्रवृत्त किया। अन्त में सर्वव्यापक सर्वाधिक शक्तिशाली बन गयी।

आतंक का शासन (Reign of Terror)—संकट का सामना करने और फ्रान्स को उसके समक्ष अनेक जटिलताओं और संकटों के बीच से मार्ग बनाने के लिए एक अन्तरिम सरकार का गठन किया गया। एक ऐसी सरकार जिसने आतंक के शासन का उद्घाटन किया जो दीर्घकाल तक राष्ट्रों के मध्य फुफकार और कहावत बनी रही। इस अन्तरिम सरकार की दो महत्वपूर्ण समितियाँ, सार्वजनिक सुरक्षा समिति और सामान्य सुरक्षा समिति थी। इनकी नियुक्ति राष्ट्रीय सम्मेलन ने की थी। इसके अतिरिक्त जीवनलक्ष्य के प्रतिनिधियों (Representatives of Life Aims) क्रान्तिकारी न्यायालय (Revolutionary Tribunal) देश के समस्त नगरों और ग्रामों में राजनीतिक क्लबों और निगरानी समितियों (Committees of Surveillance) की नियुक्ति की थी। सन् 1794 से 1795 तक फ्रान्स में वास्तविक आतंक का शासन (Reign of Terror) था। सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety) की दो अन्य सहायक समितियाँ, सामान्य सुरक्षा समिति (Committee of General Security) तथा क्रान्तिकारी न्यायालय (Revolutionary Tribunal) थे।

क्रान्तिकारी न्यायालय (Revolutionary Tribunal)—इस न्यायालय का गठन देशद्रोहियों और षड्यन्त्रकारियों पर द्रुतगति से मुकदमा चलाने के लिए किया गया था। यह एक असाधारण न्यायालय था। इसके निर्णयों के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती थी। समस्त निर्णय मृत्युदण्ड के होते थे। सार्वजनिक सुरक्षा समिति द्वारा नियुक्त क्रान्तिकारी न्यायालय ने दासोचित ढंग से आदेशों का पालन किया। इसने इतनी द्रुत गति से कार्य किया कि न्याय को निर्मम उपहास बना दिया। एक व्यक्ति को 10 बजे सूचित किया जाता था कि 11 बजे उसे क्रान्तिकारी न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना है। 2 बजे तक मृत्यु दण्ड दिया जाता था और 4 बजे तक फाँसी पर चढ़ा दिया जाता था।

संदेहास्पद कानून (Suspicious Laws)

1. सार्वजनिक सुरक्षा समिति आन्तरिक शत्रुओं अथवा व्यक्तियों के विरुद्ध भीषण उन्मूलन अभियान में व्यस्त थी। सन्देह का कानून के अन्तर्गत कोई व्यक्ति जिसका कुलीन परिवार में जन्म हुआ, अथवा क्रान्ति से पूर्व कुलीन पद पर था अथवा प्रवासी से कोई सम्बन्ध था अथवा नागरिकता का प्रमाण-पत्र नहीं दे सकता, मृत्युदण्ड का भागी था। आतंक के शासन में पेरिस में 5,000 व्यक्तियों को मृत्यु दण्ड दिया गया। संदेहास्पद व्यक्तियों को खोजने तथा मृत्यु दण्ड देने के लिए स्थानीय न्यायालय स्थापित किये गये। एक अनुमान के अनुसार प्रान्तों में लगभग 15,000 व्यक्तियों को मृत्यु दण्ड दिया गया। डान्टन, सेन्टजस्ट तथा रोबेस्पियेरे की मृत्यु के साथ आतंक का शासन (Reign of Terror) समाप्त हो गया। इस अवधि में राष्ट्रीय सम्मेलन ने उग्र सुधारवादी सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य किया और आर्थिक क्षेत्रों में समाजवादी नीतियों का अनुसरण किया। गिरोन्दिस्त तथा जैकोबिन

समुदायों में परस्पर शत्रुता थी। इस अवधि की कुछ उपलब्धियाँ फ्रान्स की पैतृक सम्पति बन गयीं। सन् 1793 से अब तक का सर्वाधिक लोकतान्त्रिक संविधान बनकर तैयार हो गया।

2. राष्ट्रीय सम्मेलन ने जनता में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का व्यापक प्रचार और प्रसार किया। अनिवार्य सैनिक सेवा का शुभारम्भ किया गया। इस प्रकार यूरोप में वास्तविक सैन्यवाद का सूत्रपात हुआ।

3. राष्ट्रीय सम्मेलन ने फ्रान्स की फ्रेन्च भाषा को ही एकमात्र राष्ट्रीय भाषा स्वीकार किया और समस्त देश में शिक्षा का माध्यम फ्रेन्च भाषा बना दिया।

4. देश के राष्ट्रीय कानूनों को संहिताबद्ध करने के लिए प्रयास और उल्लेखनीय प्रगति भी की। ऋण के लिए कारावास के दण्ड को समाप्त कर दिया। फ्रान्स के उपनिवेशों में दास प्रथा समाप्त कर दी। स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार प्रदान किये। ज्येष्ठ पुत्र के ही समस्त सम्पत्ति के उत्तराधिकार को समाप्त कर दिया। सब बच्चों को सम्पत्ति में समान अधिकार प्रदान किया। माप तौल की मीट्रिक प्रणाली का देश के समस्त भागों में समान रूप से सूत्रपात किया।

कम्यून बनाम राष्ट्रीय सम्मेलन (Commune *Versus* National Assembly)— अब तक गणतन्त्र अथवा फ्रान्स के शत्रुओं का दमन करना ही मूल लक्ष्य था। लेकिन शीघ्र ही इन पद्धतियों का प्रयोग राजनीतिक एवं व्यक्तिगत शत्रुओं के विरुद्ध आरम्भ हो गया। राजनीति ने व्यक्तिगत स्वरूप एवं युद्धों के जोखिम का रूप ले लिया।

10 अगस्त, 1792 से राज्य में दो शक्तियाँ कम्यून अथवा पेरिस की सरकार और फ्रान्स की सरकार अथवा राष्ट्रीय सम्मेलन थी। इन दोनों ने राजतन्त्र के उन्मूलन एवं गिरोन्दिस्त के पतन के लिए परस्पर सहयोग किया। अब दोनों में मतभेद हो गये। सर्वाधिक उग्रदल (हिंसक) दल जिसका क्रान्ति में विकास हुआ था, पर कम्यून का पूर्ण नियन्त्रण था। कम्यून ने ही राष्ट्रीय सम्मेलन को फ्रान्स को ईसाईकरण से मुक्त करने के लिए बाध्य किया था।

5. धार्मिक क्षेत्र में भी कुछ प्रयोग किये। राष्ट्रीय सम्मेलन ईसाई धर्म के परम्परागत स्वरूप के विरुद्ध था। धर्माधिकारियों को संदेहास्पद व्यक्ति समझा जाता था। फ्रान्स को ईसाई धर्म मुक्त करने का प्रयास किया गया। चर्च को विवेक अथवा बुद्धि के मन्दिर के रूप में रूपान्तरित कर दिया गया। अनेक कैथोलिक धर्माधिकारियों ने ईसाई धर्म त्याग दिया। नवम्बर, 1793 में नोट्रेडेम के कैथेड्रल में पेरिस कम्यून के तत्वाधान में, विवेक का धर्म (Religion of Reason) का उद्घाटन किया गया। सार्वभौम वयस्क मताधिकार एवं जनमत संग्रह के अधिकार का प्रावधान किया गया। निर्धनों को रोजगार दिलवाकर अथवा जीविकोपार्जन के साधन जुटाकर जीवनयापन सहज करना समाज का दायित्व था। संविधान ने शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का आवश्यक दायित्व घोषित किया। रोबेस्पियेरे की मृत्यु के बाद राष्ट्रीय सम्मेलन ने घोषणा की कि धर्म व्यक्तिगत विषय था। किसी अधिकृत धर्म को बनाये रखना अथवा स्थापित करना राज्य का विषय नहीं था। परिणामस्वरूप धार्मिक

सहिष्णुता की नीति को कार्यान्वित किया गया तथा 1795 में अनेक चर्चों को ईसाई धर्म की पूजा-उपासंना के लिए पुनर्स्थापित किया गया।

राष्ट्रीय सम्मेलन ने कैलेण्डर में भी परिवर्तन किये। प्रत्येक वर्ष के कैलेण्डर में 12 माह थे तथा 10 दिन का सप्ताह होता था और 3 सप्ताह का माह होता था। प्रत्येक 10 वाँ दिन अवकाश का घोषित किया गया। वर्ष के अन्त में शेष अथवा 6 दिन राष्ट्रीय अवकाश के मनाये जाते थे। माह के नामों में परिवर्तन कर दिया गया तथा नया वर्ष 22 सितम्बर, 1792 से आरम्भ हुआ।

प्रवासी फ्रान्सवासियों की सम्पत्ति का अधिहरण कर लिया गया। सम्पत्तिशाली धनवानों, धर्माधिकारियों तथा समस्त कुलीनों को संदेहास्पद राजतन्त्र समर्थक माना जाता था। विशाल भूमि सम्पत्ति को छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर आसान शर्तों पर उनका विक्रय किया गया जिससे साधारण व्यक्ति भी भूमि का स्वामी बन सकता था। इस प्रकार भू-स्वामी कृषकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। व्यक्तियों, जिनको भू-स्वामित्व से वंचित कर दिया गया था, को किसी भी प्रकार की क्षतिपूर्ति नहीं दी गयी। जीवन निर्वाह व्यय को नीचे रखने के लिए धनी एवं सम्पन्न व्यक्तियों को सरकार को ऋण देने के लिए बाध्य किया गया। 'अधिकतम के कानून' (The Laws of the Maximum) पारित किये गये। इनके द्वारा खाद्यान्न तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं के मूल्य निश्चित कर दिये गये और श्रमिकों का दैनिक पारिश्रमिक भी निश्चित किया गया। इस कानून के अनुसार फ्रान्स के प्रत्येक व्यक्ति को नागरिक के रूप में सम्बोधित किया जाता था। समाज में अब किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहा।

तीसरे वर्ष का संविधान (Constitution of the Third Year)—राजतन्त्रात्मक शासन की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए राष्ट्रीय सम्मेलन ने सन् 1795 अथवा तीसरे वर्ष के नये संविधान का निर्माण किया। 28 जुलाई, 1794 को रोबेस्पियेरे की मृत्यु के बाद संदेहास्पद व्यक्तियों से सम्बन्धित कानून तथा अधिकतम के कानून निरस्त कर दिये गये। सन् 1795 तक गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित करने का दृढ़ निश्चय किया। गिरोन्दिस्त समर्थकों द्वारा सन् 1791 के संविधान को भी निरस्त कर दिया गया और सन् 1795 का नया संविधान बनाया गया। पेरिस की जनता के राजनीतिक महत्व को कम करने के उद्देश्य से सार्वभौम वयस्क मताधिकार को समाप्त कर दिया गया और सम्पत्ति के आधार पर मताधिकार को पुनर्स्थापित किया गया। नये संविधान के अनुसार फ्रान्स में द्विसदनीय संसद का प्रावधान था। निम्न सदन की अधिकतम सदस्य संख्या 500 निश्चित की गयी। इसके सदस्यों की न्यूनतम आयु 30 वर्ष थी और इस सदन को ही समस्त विधेयक सदन में प्रस्तुत करने का अधिकार था। ये विधेयक बिना ज्येष्ठों (Elders) के अनुमोदन के अधिनियम का रूप नहीं ले सकते थे। उच्च सदन (ज्येष्ठों की परिषद् Council of Elders) में 250 सदस्यों का प्रावधान था। इस सदन के सदस्यों की न्यूनतम आयु 40 वर्ष अनिवार्य थी और उनको विवाहित अथवा रंडुआ (पत्नी की मृत्यु के बाद) होना चाहिए था।

डायरेक्टरी (Directory)

निदेशकों की न्यूनतम आयु 40 वर्ष एवं परिषदों द्वारा निर्वाचित होना आवश्यक था। इनमें से एक के हर वर्ष सेवानिवृत्त होने का प्रावधान था। राष्ट्रीय सम्मेलन ने विभिन्न आशंकाओं से ग्रस्त होकर संविधान के अतिरिक्त दो आज्ञप्ति (आदेश) जारी किये। इसमें प्रावधान था, कि प्रत्येक परिषद् के दो-तिहाई सदस्य वर्तमान राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा निर्वाचित होने चाहिए। जनता ने भारी बहुमत से संविधान का अनुमोदन कर दिया। लेकिन दो विज्ञप्तियों ने विरोध उत्पन्न कर दिया। इन विज्ञप्तियों की भी पुष्टि कर दी गयी। पेरिस के अधिकांश मतदाता इन विज्ञप्तियों के विरुद्ध थे।

राष्ट्रीय सम्मेलन ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किये। असैनिक तथा सैनिक अभियन्ताओं को समुचित प्रशिक्षण देने के लिए सन् 1794 में सार्वजनिक सेवाओं का विद्यालय स्थापित किया गया। पूर्वी देशों से निकट सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्राच्य भाषाओं का विद्यालय स्थापित किया गया। सन् 1793 में प्राकृतिक इतिहास के संग्रहालय का पुनर्गठन तथा विकास किया गया। फ्रान्स के सर्वाधिक विख्यात एवं प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों को अपनी प्रयोगशालाओं में अनुसन्धान कार्य करने के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दी गयी। इन वैज्ञानिकों ने अनेक वैज्ञानिक विषयों पर सार्वजनिक भाषण भी दिये। उद्योगों के लिए एक संग्रहालय तथा एक विद्यालय भी स्थापित किया गया। सन् 1794 में चिकित्सा शास्त्र की उच्च शिक्षा के लिए तीन महाविद्यालय खोले गये। इनमें सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी और विद्यार्थियों का चयन प्रतियोगात्मक प्रवेश परीक्षा द्वारा होता था। पुराने विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा परिषदों के स्थान पर राष्ट्रीय सम्मेलन ने 25 अक्टूबर,1795 को राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किया। सरकार ने 100 से अधिक विदेशी विद्वानों को आमन्त्रित किया, जिससे राष्ट्रीय संस्थान गणतान्त्रिक विद्वानों का प्रतिनिधि संस्थान बन सके।

अलंकृत परिधानों में लोगों की रुचि कम हो गयी। पुराने शासन के बहुप्रचलित रेशमी वस्त्रों की अपेक्षा अधिकांश लोग सूती लम्बी पतलून पहनने लगे। यह वस्त्र अब तक श्रमिकों के निम्नतम वर्ग के व्यक्ति ही पहनते थे।

गिरोन्दिस्त तथा जैकोबिन (Girandists and Jacobins)

राष्ट्रीय सम्मेलन में विविध उग्र विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक दल थे। सन् 1791 में गठित विधान सभा में दो दल गिरोन्दिस्त तथा जैकोबिन प्रमुख थे। गिरोन्दिस्त के अधिकांश समर्थक पेरिस के बाहर के क्षेत्रों के थे और वे गणतान्त्रिक थे, लेकिन उग्र लोकतान्त्रिक नहीं थे। इनमें गिरोन्दिस्त बहुमत में थे और जैकोबिन अल्पमत में थे। तथाकथित गिरोन्दिस्त गिरोन्डी जिले के थे। वे अत्यधिक प्रबुद्ध, परिष्कृत, ईमानदार एवं सुसंस्कृत आचार-विचारों के थे। उनके विचार एवं भावनाएँ पवित्र थीं। वे कर्त्तव्यनिष्ठ एवं उदार विचारों के थे। आत्मसंयमी एवं व्यवस्था प्रिय गिरोन्दिस्त अतीत के साथ समझौता करने के लिए तत्पर नहीं थे और फ्रान्स में अपने उच्च आदर्शों के अनुरूप आदर्श राज्य

स्थापित करने की आशा करते थे। इनमें से अधिकांश वकील थे और राजनीति में बिल्कुल नये थे। वे सब अकल्पित अवसरों से अत्यधिक चकित थे। एक पर्यवेक्षक ने लिखा, "वे पेरिस में प्रहसन तथा पर्दे गिरे हुए देखकर अत्यधिक असन्तुष्ट थे और इनमें से कुछ ध्वस्त करके गौरव प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। यह एक अनिष्ट सूचक (अपशकुन) था। अब सिंहासन के अतिरिक्त ध्वस्त करने के लिए अन्य कुछ नहीं था जिसको वे नष्ट करते।"

वे गणतन्त्रात्मक सरकार के प्रबल समर्थक थे। राजनीतिक क्षेत्र में गिरोन्दिस्त प्रयोगवादी थे। सैद्धान्तिक दृष्टि से परिपक्व तथा अत्यधिक उत्साही थे। उनमें अभूतपूर्व वाक्पटुता थी। वे प्राचीन शूरवीरों तथा नायकों से अपनी पहचान बनाते थे। वे जनोत्तेजक थे, लेकिन उनमें दूरदर्शिता का अभाव था। उनमें एक भी व्यावहारिक राजनीतिज्ञ नहीं था। ब्रूटस, एरिस्टाइड उनके पूज्य आराध्य थे और प्लूटार्क उनके सुसमाचार लेखक थे। कुछ इतिहासकार गिरोन्दिस्त समर्थकों को दुखान्त आदर्शवादियों की संज्ञा प्रदान करते हैं।

विधान सभा के दाहिनी ओर फ्यूलैन्टस (Feuillants) बैठते थे, जो विधि की विडम्बना, सदैव विधान सभा के विरोध पक्ष में थे और बायीं ओर उग्रवादी एवं क्रान्तिकारी जैकोबिन बैठते थे। इसी समूह के दल ने शनैः शनैः अपनी प्रतिष्ठा बनायी।

गिरोन्दिस्त पुराने विशाल प्रासाद को गिराकर क्रान्ति के लिए कुछ उल्लेखनीय करने के लिए उत्सुक थे। परिणामस्वरूप उन्होंने उत्तेजना की नीति का आश्रय लिया। फ्रान्स के बाहर प्रवासी कुलीन तथा देश के अन्दर धर्माधिकारी जिन्होंने धर्माधिकारियों के लिए असैनिक संविधान जुलाई, 1790 के प्रति निष्ठा की शपथ नहीं ली थी, उस समय दो प्रमुख शत्रु थे। गिरोन्दिस्त समर्थकों ने दोनों की अशान्ति और अव्यवस्था के पोषक तथा राजा के मित्रों के रूप में कटु आलोचना की। उन्होंने विधेयक पारित करके समस्त प्रवासियों को, जो जनवरी, 1792 तक फ्रान्स में लौटकर नहीं आ जाते, मृत्युदण्ड की घोषणा कर दी। तदुपरान्त धर्माधिकारियों से एक सप्ताह की अवधि में संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेने का आदेश दिया अन्यथा दण्ड स्वरूप उनको जीविकोपार्जन तथा पेंशन से वंचित कर दिया जायेगा।

चर्च के-प्रश्न ने लुईस सोलहवें के अन्तःकरण को प्रभावित किया और उसने दोनों विधेयकों को अपने निषेधाधिकार के अन्तर्गत अस्वीकार कर दिया। गिरोन्दिस्त यथार्थ में यही चाहते थे और इसके लिए वे तैयार भी थे। वे राजा को देशद्रोही प्रमाणित करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने विदेशी युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की और युद्ध के लिए जनसमुदाय को प्रेरित किया। उस समय फ्यूलैन्टस तथा राजतन्त्रवादी भी युद्ध चाहते थे। उनका विचार था कि कार्यपालिका शक्तिशाली होगी। केवल उग्र जैकोबिन समर्थक सहमत नहीं थे और वे उनसे विलग हो गये। जैकोबिन समर्थकों ने युद्ध का विरोध किया। उनका विचार था कि युद्ध से राजतन्त्र को पुनर्जीवन मिलेगा अथवा अधिनायकतन्त्र स्थापित हो जायेगा।

इस समय विदेशी शक्तियों ने प्रज्जवलित अग्नि में घृत डाल दिया। पिल्लनिट्ज (Pillnitz) की उद्घोषणा तथा कोबलेन्ज (Coblenz) की नीति घोषणा ने फ्रान्स की क्रान्ति

की कटु आलोचना की और पेरिस को ध्वस्त करने की धमकी दी। अप्रैल, 1792 में फ्रान्स के राजा लुईस सोलहवें को हंगरी तथा बोहमिया के राजाओं के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने के लिए विवश किया।

पेरिस की सड़कों पर जनसमूह ने हर्षोल्लास के साथ युद्ध की घोषणा का स्वागत किया, लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ युद्ध के कारण फ्रान्स की सेना की पराजय हुई और नीदरलैण्ड भी ध्वस्त कर दिया गया। लेफायटे को बाध्य होकर युद्ध में पीछे हटना पड़ा। यह दृश्य अत्यधिक हास्यास्पद तथा अपमानजनक था। आस्ट्रियावासियों ने उपहास करते हुए कहा, "हमको तलवारों की नहीं वरन् चाबुकों की आवश्यकता थी।" दुर्भाग्य से आस्ट्रिया ने यह सोचते हुए कि विजय निश्चित थी, युद्ध की गतिविधियों में विलम्ब किया। जुलाई, 1792 के अन्त में प्रशा ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रन्सविक के नेतृत्व में आस्ट्रिया तथा प्रशा की संयुक्त सेनाओं ने फ्रान्स पर आक्रमण कर दिया।

तदुपरान्त विदेशी शक्तियों ने तीन माह का समय व्यर्थ नष्ट कर दिया। युद्ध में फ्रान्स की पराजयों के लिए राजा की दोषी मानते हुए गिरोन्दिस्त तथा जैकोबिन समर्थकों ने राजतन्त्र विरोधी शक्तियों को उत्तेजित किया। जनसमूह ने तुलिरीज में प्रवेश किया और राजा को कड़वी मदिरा पीने तथा सिर पर लाल टोपी पहनने के लिए बाध्य किया। जुलाई, 1792 की ब्रन्सविक की नीति घोषणा ने पेरिस के जनसमूह को अपेक्षाकृत अधिक हिंसक बना दिया। राजा को विधान सभा के सामने 10 अगस्त, 1792 को लाया गया। उसके राजा के रूप में समस्त कार्यों को निलम्बित कर दिया गया तथा राजा को पेरिस के उपद्रवी कम्यूनों को सौंप दिया गया।

इस स्थिति में विधान सभा ने राजा के भविष्य का निर्णय करने के लिए राष्ट्रीय सम्मेलन का आह्वान किया। सितम्बर, 1792 में राष्ट्रीय सम्मेलन के आह्वान के साथ एक प्रकार से क्रान्ति के प्रथम चरण का अन्त हो गया। 21 सितम्बर, 1792 को राष्ट्रीय सम्मेलन ने राजा को अपदस्थ करने का विधेयक पारित कर दिया। इस समय तक विदेशी सेनाओं की फ्रान्स में प्रगति को भी रोक दिया गया था। इससे प्रोत्साहित होकर राष्ट्रीय सम्मेलन ने राजा को मृत्यु दण्ड दिया तथा उसको रविवार 21 जनवरी, 1793 को फाँसी दी गयी। 10 बजे प्रातः वह साहस और शान्त भाव से फाँसी की सीढ़ियों पर चढ़ा और कहा, "सज्जनो! मैं उस सबके लिए निर्दोष हूँ, जिसके लिए मुझे अपराधी घोषित किया गया है।" इसके तत्काल बाद शत्रुओं की संख्या में बहुत वृद्धि हो गयी। फ्रान्स, आस्ट्रिया और प्रशा के विरुद्ध युद्ध में व्यस्त था। अब फ्रान्स के विरुद्ध इंगलैण्ड, रूस, स्पेन, हालैण्ड, जर्मनी के अन्य अनेक राज्य एवं इटली भी युद्ध में सम्मिलित हो गये। फ्रान्स, जो विघटन की प्रक्रिया में था, से क्षेत्र प्राप्त करने का स्वर्णिम अवसर था।

इसी अवधि में फ्रान्स में, विशेष रूप से ब्रिटेनी तथा ला वैन्डी में, अत्यधिक संस्तंमी (आकर्षी अथवा अराज़कता तथा मदान्ध) असैनिक (गृह) युद्ध आरम्भ हो गया। वैन्डी के 1,00,000 शक्तिशाली कृषकों ने राजा के हत्यारे और चर्च के उत्पीड़क गणतन्त्र के विरुद्ध

विद्रोह कर दिया। ड्यू-मौरी (Dum ouriez) फ्रान्सीसी सेना का कुशल सेनाध्यक्ष राष्ट्रीय सम्मेलन के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा था और देशद्रोही बनकर शत्रु की ओर जाने वाला था। अनेक नगरों में असैनिक उपद्रव आरम्भ हो गये। सन् 1793 के प्रारम्भ में फ्रान्स की सेनायें अनेक युद्ध क्षेत्रों में पराजित हो गयीं। इसने आन्तरिक स्थिति को उत्तेजित कर दिया। गिरोन्दिस्तों (Girondists) ने जनता का समर्थन खो दिया। मई, 1793 के अन्त में पेरिस के जनसमूह ने राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) में बलपूर्वक प्रवेश किया तथा अनेक गिरोन्दिस्त प्रतिनिधियों (डिप्टी) को गिरफ्तार कर लिया।

2 जून, 1793 को आकस्मिक शासन परिवर्तन ने क्रान्ति के सर्वाधिक शौर्य तथा गौरवपूर्ण अध्याय लेकिन सर्वाधिक भयंकर तथा भीषण चरण का सूत्रपात किया। राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) पर किस समूह का नियन्त्रण हो, सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न था। इससे फ्रान्स की क्रान्ति को गम्भीर आघात पहुँचा। विदेशी आक्रमणकारियों से युद्धरत क्रान्तिकारी सेना का मनोबल गिरा हुआ था। असैनिक (गृह) युद्ध काल में फ्रान्स के अधिक प्रान्तों पर क्रान्तिविरोधी शक्तियों का नियन्त्रण हो गया था। आर्थिक क्षेत्र में भीषण संकट था। वित्तीय स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। राष्ट्रीय सम्मेलन के सदस्य स्वयं भयावह स्थिति से निराश तथा चकित थे। पेरिस भयाक्रान्त था और शान्ति एवं व्यवस्था की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। तत्कालीन स्थिति ने जनसमूह को उद्वेलित तथा प्रेरित किया। बीस वर्ष बाद नैपोलियन की सरकार के अधिकारी ने स्मरण करते हुए कहा, "उत्साही तथा सांहसी जैकोबिन सरकार के अच्छे पुराने दिन थे, समर्थक गद्दे ऊनीवस्त्र और लकड़ी के जूते पहने हुए साधारण रोटी तथा निकृष्ट बियर पर जीवन व्यतीत करते थे, और अपने सभा कक्ष के फर्श पर बिछे गद्दों पर सोने के लिए चले जाते थे, जब वे काम करते-करते बहुत थक जाते थे और अधिक विचार-विमर्श में असमर्थ होते थे। इस प्रकार के वे लोग जिन्होंने फ्रान्स की रक्षा की थी।"

आकस्मिक शासन परिवर्तन के उपरान्त जैकोबिन समर्थकों ने द्रुतगति से सरकारी तन्त्र पर अपना नियन्त्रण सुदृढ़ किया। जैकोबिन समर्थक विजयी हुए। जैकोबिन समर्थकों ने प्रत्यक्ष लोकतन्त्र पर बल दिया और क्रान्ति विरोधी शक्तियों के विरुद्ध राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए जनता को प्रोत्साहित तथा प्रेरित किया एवं कुशलतापूर्वक नेतृत्व किया। जैकोबिन समर्थकों के नेतृत्व में देश की प्रभावशाली सरकार के रूप में सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety) का गठन किया गया। शक्तिशाली व्यक्तियों की इस विशिष्ट समिति का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण सदस्य रोबेस्पियेरे था। यह समिति सामान्यतः तुलिरीज में प्रातः 8 बजे अपना कार्य आरम्भ कर देती थी और देर रात तक काम करती थी। यह किसी अन्य की अपेक्षा जैकोबिन आतंक काल के लिए सर्वाधिक विख्यात था। उसी समय से उसने इतिहासकारों को चमत्कृत किया अथवा पीड़ित किया। वह हिंसा के माध्यम से ही सत्ता में आया, आतंकवादी नीति के द्वारा सत्ता में बना रहा, और स्वयं की अमानुषिक हत्या द्वारा अपना जीवन समाप्त कर दिया। लेकिन उसने फ्रान्स की क्रान्ति को बचा लिया।

रोबेस्पियेरे विधि विषयक कठिनाइयों तथा विवादों में निर्धनों की सहायतार्थ स्वयं अत्यधिक कष्ट सहन के लिए विख्यात हो चुका था। इसी ख्याति के आधार पर सन् 1789 में वह तृतीय एस्टेट (जनप्रतिनिधियों का तीसरा सदन) के लिए चुना गया था। राष्ट्रीय तथा संविधान सभाओं का वह ओजस्वी वक्ता था। अस्तु वह जैकोबिन क्लब का प्रमुख सदस्य बन गया। उसने सन् 1792 में गिरोन्दिस्त द्वारा युद्ध के आह्वान का तीव्र विरोध किया था। इस विरोध से उसको राष्ट्रीय स्तर की ख्याति मिली थी। वह रूसो से सर्वाधिक प्रभावित था और उसके क्रान्तिकारी विचार, मान्यताएँ तथा आस्थाएँ रूसो के विचारों एवं सिद्धान्तों पर ही आधारित थे। रोबेस्पियेरे की आस्थाएँ बहुत स्पष्ट और दृढ़ थीं और तत्कालीन मानदण्डों के अनुसार अत्यधिक कट्टर थीं। अस्तु पवित्र तथा सद्‌गुणी थीं। उसने मत व्यक्त किया कि क्रान्ति मानव इतिहास में सर्वाधिक महान् प्रगति थी। इसकी पराजय, पाप की विजय होगी। इसकी सुरक्षा में कोई भी साधन उचित अथवा अनुचित न्यायोचित था।

दुबला-पतला, चश्माधारी और साधारण रूप-रंग का रोबेस्पियेरे अत्यधिक कुशाग्रबुद्धि तथा प्रतिभाशाली नेता था और उद्देश्यों में असाधारण निश्चितता थी। वह प्रान्तीय वकीलों का मुख्य आधार था और क्रान्तिकारी विधान सभाओं पर उसका प्रभुत्व था। वह दीन-हीन परिवार का छोटा व्यक्ति था, लेकिन क्रान्ति की उथल-पुथल ने उसको महान् बना दिया था। वह आधुनिक इतिहास में जैकोबिन के समस्त सिद्धान्तों तथा आदर्शों का प्रबल समर्थक था। जैकोबिन के मूलभूत आदर्श एवं सिद्धान्त, सैद्धान्तिक आदर्शवादी, जनता की उत्कृष्ट प्रभुसत्ता, समस्त व्यक्तियों की स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व और अविभाज्य गणतन्त्र थे। वह निर्दयी और कट्टर था। उसने जुलाई, 1793 से जुलाई, 1794 तक राष्ट्रीय सम्मेलन पर अपना प्रभुत्व रखा। जुलाई, 1794 में उसकी नृशंस हत्या कर दी गयी।

सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee of Public Safety) तथा सामान्य सुरक्षा समिति (Committee of General Security) इन दो प्रशासनिक संस्थाओं के माध्यम से वह काम करता था। सार्वजनिक सुरक्षा समिति को सरकार के व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किये थे और सामान्य सुरक्षा समिति समस्त पुलिस दायित्वों का निर्वाह करती थी। डान्टन के निष्कासन के बाद रोबेस्पियेरे सार्वजनिक सुरक्षा समिति का सदस्य बना। अगस्त, 1792 में पेरिस में क्रान्तिकारी न्यायालय के रूप में विख्यात विशेष न्यायालय का अभ्युदय हुआ। यह न्यायालय मूलरूप से राजनीतिक विवादों को सुनता था और निर्णय देता था। अब यह एक सुविधाजनक साधन बन गया था जिसके माध्यम से सरकार नियमित न्यायालयों को छोड़कर कार्य कर सकती थी।

सरकार की विभिन्न लोकप्रिय प्रशासनिक संस्थाओं ने काम करना बन्द कर दिया था, जबकि देश में प्रति क्रान्ति की व्यवस्था थी और बाह्य आक्रमणों का भय तथा आतंक था। इसी कारण आतंक का शासन सम्भव हुआ। 70 प्रतिशत आतंक पीड़ित व्यक्ति कृषक तथा श्रमिक वर्गों के थे। इनमें से अधिकांश राज्य के विरुद्ध विद्रोह में सम्मिलित थे। वैन्डी तथा लायन्स (Lyans) में सामूहिक रूप से प्रति क्रान्तिकारियों को मृत्यु दण्ड दिया गया। इन स्थानों पर राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) के विरुद्ध उन्मुक्त रूप से विद्रोह

रहा था। प्रारम्भ में कुलीन वर्ग तथा धर्माधिकारी ही आतंक के शिकार हुए। शीघ्र ही धनी तथा सम्पन्न व्यक्तियों तक इसका प्रसार हो गया और अन्ततोगत्वा वे लोग डान्टन तथा रोबेस्पियेरे सहित स्वयं इसके शिकार हो गये, जिन्होंने आतंक को प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया था।

तत्काल विदेशी युद्धों पर कार्यवाही की गयी। राष्ट्रीय सम्मेलन ने सम्पूर्ण मानव शक्ति की गतिशीलता का आदेश दिया और सेना के एक भूतपूर्व अभियन्ता तथा प्रतिभाओं के धनी व कुशल संगठनकर्ता कारनोट ने मानव शक्ति की विशाल आपूर्ति को पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित तथा सुसज्जित सेनाओं में रूपान्तरित कर दिया। उसने कुशल रणनीति तथा सामरिक नीति से सेनाओं के बीच युद्धों को राष्ट्रों के मध्य संघर्ष में रूपान्तरित कर दिया। एक वर्ष से कम अवधि में ही समस्त आक्रमणकारियों को फ्रान्स की भूमि से निष्कासित कर दिया। असैनिक (गृह) युद्ध पर भी उतनी ही शीघ्रता से नियन्त्रण कर लिया गया। लावैन्डी के सर्वाधिक शक्तिशाली हिंसक विद्रोह का भी भीषण संघर्ष के बाद दमन कर दिया गया। अन्य स्थानों पर विरोध को दमन चक्र द्वारा शान्त कर दिया गया।

जून, 1794 तक परिस्थितियाँ फ्रान्स के अनुकूल हो गयीं। वैन्डी के सशक्त तथा हिंसात्मक विद्रोह का दमन कर दिया गया था। प्रशा तथा आस्ट्रिया की सेनाओं को एलजेक और लारेन से बाहर निकाल दिया गया था। समस्त बेल्जियम पर फ्रान्स का आधिपत्य स्थापित हो गया था। लेकिन यह विजय बहुत मूल्यवान सिद्ध हुई। सन् 1793 में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए संघर्ष तथा सन् 1794 में क्रान्ति के सैनिकीकरण ने क्रान्ति को अपने उद्देश्यों तथा लक्ष्यों से पथभ्रष्ट कर दिया।

विदेशी आक्रमण के दबाव से मुक्त होने के बाद राष्ट्रीय सम्मेलन के कुछ सदस्य रोबेस्पियेरे के विरुद्ध हो गये और रोबेस्पियेरे की नृशंस हत्या के उपरान्त 80,000 बन्दियों को जुलाई, 1794 में तत्काल मुक्त कर दिया था।

उग्र सुधारवादियों के विभिन्न दलों के मध्य परस्पर घृणा, अधम तथा नीच, ईर्ष्या, द्वेष एवं वैमनस्य आतंक के शासन का दुखद पक्ष था। सन् 1794 में डाल्टन की उसके सहयोगी एवं मित्र डेसमोलिन के साथ हत्या कर दी गयी। रोबेस्पियेरे जिसने सद्गुणों के गणतन्त्र की स्थापना के लिए प्रयास किया था, की 28 जुलाई, 1794 में राष्ट्रीय सम्मेलन के अपेक्षाकृत रूढ़िवादी स्दस्यों द्वारा नृशंस हत्या करवा दी गयी।

तेरहवें वैन्डीमियारे का विद्रोह (5 अक्टूबर, 1795) (The Insurrection of Vendemiaire)—पेरिस केवल विरोध में मत देकर सन्तुष्ट नहीं था। इसने चरमोत्कर्ष को रोकने के लिए प्रस्ताव रखा। इस समय राष्ट्रीय सम्मेलन के विरुद्ध मध्यमवर्गीय और धनी सम्पन्न वर्गों ने जो यथार्थ में राजतन्त्रवादी थे, विद्रोह संगठित किया था। राष्ट्रीय सम्मेलन ने अपनी सुरक्षा का दायित्व सेनाध्यक्ष के रूप में बर्रास (Barras) जो सेनाधिकारी की अपेक्षा राजनीतिज्ञ अधिक था, को सौंप दिया। बर्रास ने अपनी सहायता के लिए कोर्सियावासी 25 वर्षीय सेनाधिकारी को आमन्त्रित किया। इस नवयुवक अधिकारी ने दो वर्ष पूर्व गणतन्त्र के

लिए तौलोन पुनः प्राप्त करने में सहायता की थी। यह छोटा बोनापार्ट तोपखाने का अधिकारी था और उसको तोपों की क्षमता में अत्यधिक विश्वास था। बोनापार्ट को जब ज्ञात हुआ कि नगर के बाहर खेमे में 40 तोपें हैं जिनको आक्रमणकारी ले जा सकते हैं। उसने तत्काल एक साहसी युवा अश्वारोही सैनिक जाओचिम मुरार को भेजा। मुरार और उसके अश्वारोही सैनिक द्रुतगति से गये, विद्रोहियों को भगा दिया और प्रातः 6 बजे तोपों को खींचकर तुलिरीज ले आये।

तोपों को तुलिरीज के बाहर लगा दिया गया और तुलिरीज को अपराजेय बना दिया गया। यहीं राष्ट्रीय सम्मेलन का अधिवेशन होता था। राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रत्येक सदस्य को राइफल और गोलियाँ दी गयीं। तेरहवें वैन्डीमियारे 5 अक्टूबर, 1795 को सियेन की सड़कों के दोनों ओर दो पंक्तियों में विद्रोही आये। अनायास मध्यान्ह में 4.30 बजे भीषण गोलीबारी सुनायी पड़ी। यह बोनापार्ट था उसने समस्त विद्रोहियों को समाप्त कर दिया। राष्ट्रीय सम्मेलन को बचा लिया और बोनापार्ट ने अपना असाधारण अभियान आरम्भ कर दिया। कार्लामिल कहता है, "अंगूर की केवल गंध छोड़ी गयी, जिसने समाप्त कर दिया है जिसको हम विशिष्ट रूप से फ्रान्स की क्रान्ति कहते हैं।" यह कथन पूर्णतया सत्य नहीं था। यद्यपि इससे क्रान्ति का अन्त नहीं हुआ, लेकिन इसने क्रान्ति के एक चरण का अन्त कर दिया और एक अन्य चरण का शुभारम्भ किया।

राष्ट्रीय सम्मेलन का विघटन (Dissolution of the National Assembly)—26 अक्टूबर, 1795 को राष्ट्रीय सम्मेलन ने स्वयं को भंग कर दिया। इसका असाधारण इतिहास रहा। इसने अपने अस्तित्व के तीन वर्ष में अनेक दिशाओं में अभूतपूर्व गतिविधियों का प्रदर्शन किया। आन्तरिक मतभेदों और विरोधों से उत्पन भीषण कठिनाइयों और विदेशी आक्रमणों के मध्य अपने अधिवेशन किये। फ्रान्स के साठ विभागों और इंग्लैण्ड, प्रशा, आस्ट्रिया, पीडमोन्ट, हालैण्ड, स्पेन की विदेशी शक्तियों के गठबन्धन ने आक्रमण किये, लेकिन सब पर विजय प्राप्त की। गृहयुद्ध समाप्त कर दिया। सन् 1795 की ग्रीष्म ऋतु में प्रशा, हालैण्ड और स्पेन ने सन्धि कर ली और युद्ध से अलग हो गये। आस्ट्रिया अधिकृत नीदरलैण्ड और राइन नदी के पश्चिमी तट पर स्थित जर्मन प्रान्तों पर फ्रान्स का नियन्त्रण था। फ्रान्स ने तथाकथित प्राकृतिक सीमाओं को प्राप्त कर लिया था। आस्ट्रिया और इंग्लैण्ड के साथ युद्ध चलता रहा।

राष्ट्रीय सम्मेलन और गणतन्त्र (National Assembly and Republic)—तीन वर्ष की अवधि में राष्ट्रीय सम्मेलन ने राजतन्त्र की प्राचीन भूमि में गणतन्त्र की घोषणा की, दो संविधानों का निर्माण किया, पूजा-उपासना के दो रूपों को स्वीकृति दी और किसी भी यूरोपीय देश में अत्यधिक कठिन कार्य चर्च और राज्य को एक दूसरे से अलग कर दिया। राजा को मृत्युदण्ड दिया और आतंक का शासन स्थापित किया जिसने गणतन्त्र को कमजोर किया और बोनापार्ट के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

इस प्रकार फ्रान्स की क्रान्ति के अन्तिम दृश्य का दुखान्त हुआ। यथार्थ में फ्रान्स की क्रान्ति तथा नैपोलियन युग थोड़े असामान्य थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के स्वतन्त्रता संघर्ष में

सक्रिय भाग लेने वाले फ्रान्स के शूरवीर नायक एवं राष्ट्रीय सुरक्षा सेना के नवनियुक्त सेनाध्यक्ष लेफायते (Lafayette) ने अमेरिका की क्रान्ति के इंग्लैण्ड के गणतन्त्रीय विचारधारा के समर्थक, नायक एवं लोकप्रिय नेता टॉम पेन को बास्तील के दुर्ग की चाबी, जार्ज वाशिंगटन को देने के लिए दी, तथा इसी प्रकार की अन्य रोमांचकारी घटनाओं से इस युग का इतिहास परिपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की इस प्रकार की घटनाएँ लोकतान्त्रिक अन्तर्राष्ट्रीयता की सुदृढ़ता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हैं। भावी उन्नीसवीं शताब्दी में विश्व के विभिन्न भागों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने निश्चित थे। फ्रान्स की क्रान्ति आरम्भ होने से पूर्व अमेरिका के 13 उपनिवेशों ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। आमूल सुधार तथा लोकतान्त्रिक जनमत की प्रबल धारा इंग्लैण्ड और अमेरिका, दोनों देशों तथा फ्रान्स की क्रान्ति से पूर्व फ्रान्स में भी अत्यधिक मजबूत तथा शक्तिशाली थी। अपनी प्रेरणा में अप्रतिरोध्य औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ हो चुकी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के परिवर्तनों में निहित मूल कारण वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्रान्ति सन् 1789 से पूर्व ही बहुत प्रगति कर चुकी थी। कला एवं साहित्य के क्षेत्रों में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन फ्रान्स की क्रान्ति से पहले हो चुके थे और इन्होंने फ्रान्स की क्रान्ति को रूप-आकार तथा क्रान्ति का चरित्र प्रदान किया था। एक विद्वान इतिहासकार ने मत व्यक्त किया है, "इतिहास के दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में, इस काल की सर्वाधिक विचलित करने वाली राजनीतिक सैनिक तथा कूटनीतिक घटनाएँ भी, अनेक महान् घटनाओं के मध्य, जिन्होंने मानव इतिहास को नयी दिशा दी, बहुत सीमित तथ्य प्रतीत होती हैं। व्यक्ति जिन्होंने भावी यूरोप को नया स्वरूप तथा रूप-आकार प्रदान किया, ही केवल शौर्यपूर्ण घटनाओं में मुख्य भाग लेने वाले नहीं थे वरन् एन्ट्वाइन लेवाइजर (Antoinc Lavoisier) और एडम स्मिथ (Adam Smith), जेम्स वाट तथा जर्मी बेन्थम (James Watt & Jermy Bentham) भी थे। जब बन्दूक की गोलियों का धमाका तथा धुआँ शान्त हो चुका था, मानव भाग्य की पूर्वापेक्षा अधिक स्थायी शक्तियों को राष्ट्रों, और राज्यों तथा शक्तियों के भाग्य को नयी दिशा तथा स्वरूप प्रदान करते हुए देखा जा सकता है। जान हाल स्टेवार्ट क्रान्ति के व्यापक महत्व के सन्दर्भ में लिखते हैं, "फ्रान्स की क्रान्ति के परिणाम इतने दूरगामी रहे कि उनका किसी भी रूप में सन्तोषजनक मूल्यांकन करने पर वे 'सम्पूर्ण फ्रान्स का इतिहास' तथा 1789 से यूरोप का स्वरूप लेंगे।" ऐसी कहावत चरितार्थ थी कि यदि फ्रान्स को जुकाम होता है तब समस्त यूरोप छींकता है। विद्वान इतिहासकार हेजन ने मत व्यक्त किया है, "फ्रान्स की क्रान्ति ने राज्य के सम्बन्ध में एक नवीन अवधारणा को जन्म दिया। राजनीति तथा समाज के सन्दर्भ में नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये और जीवन का एक नया, दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इसने बहुसंख्यक जनता में कल्पना तथा विचार उद्वेलित किये, उनमें अभूतपूर्व उत्साह का संचार किया तथा असीम आशाओं से अनुप्राणित किया।" हालैण्ड रोज लिखते हैं, "यह क्रान्ति विचार, समाज और राजनीति के क्षेत्र में एक ऐसी विजय है जो अव्यवस्था, विशेषाधिकार तथा निरंकुश शासन से युक्त पुरातन शासन प्रणाली" को पार कर गयी थी।" पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी विख्यात कृति "विश्व इतिहास की झलक" में विचार व्यक्त किया है, "गणराज्य का विचार समस्त यूरोप में फैल गया और इसके साथ ही उन सिद्धान्तों का भी

व्यापक प्रसार हुआ जिनकी घोषणा मानवाधिकारों की घोषणा में की गयी।" एक विद्वान इतिहासकार ने क्रान्ति के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मत व्यक्त किया है, "सम्भवतः हलचलपूर्ण चौदहवीं शताब्दी का अन्तिम महत्व यह है कि अत्यधिक कम समय में इतिहास में अत्यधिक घटित हुआ। पुरानी व्यवस्था किसी प्रकार समाप्त हो जाती लेकिन वह अपेक्षाकृत शनैः शनैः तथा अधिक शान्तिपूर्वक समाप्त हो सकती थी। क्रान्ति में उत्साही, साहसी तथा सुसज्जित शक्तियों के विस्फोट, युद्धों की दीर्घकालीन मानसिक पीड़ा, क्रमानुसार अधिनायकतन्त्र की गतिशीलता, साम्राज्य के विलक्षण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति सब इस अवधि में इस प्रकार संकलित हैं और अपनी घटनाओं में इस प्रकार घनिष्ठता के साथ परस्पर सम्बद्ध हैं कि उन्होंने ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं को विकृत तथा विघटित कर दिया।"

क्रान्ति फ्रान्स में ही क्यों, किसी अन्य में नहीं (Why Revolution in Francea only, not else where)

इंग्लैण्ड के अतिरिक्त अठारहवीं शताब्दी के यूरोप में जनता का अधिकतम शोषण तथा शक्तियों की अत्यधिक स्वेच्छाचारिता राज्यों की सामान्य विशेषता थी। यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा फ्रान्स की जनसंख्या, सम्पत्ति तथा शक्ति भी बहुत अधिक थी। प्रशा, आस्ट्रिया, रूस एवं कुछ अन्य राज्यों की तुलना में फ्रान्स का कृषक वर्ग इतना अधिक दीन-हीन भी नहीं था। फ्रान्स की कुल भूमि के 2/3 भाग के कृषक ही स्वामी थे।

इतनी सुखद तथा अनुकूल परिस्थितियों के उपरान्त भी क्रान्ति फ्रान्स में ही आरम्भ हुई, क्यों ? फ्रान्स में प्राचीन सिद्धान्तों, रूढ़ियों, संस्कारों, मान्यताओं तथा संकीर्ण विचारों एवं धार्मिक अन्धविश्वासों एवं धर्मान्ध गतिविधियों से नियन्त्रित सरकार तथा प्रशासन था। विद्रोही तथा क्रान्तिकारी सुधारों की प्रवृत्ति तथा भावनाओं से अनुप्राणित अनेक विद्वान थे। फ्रान्सवासियों का स्वभाव अत्यधिक चंचल एवं अस्थिर है। सन् 1789 तक विभिन्न आर्थिक, प्रशासनिक, साम्राज्यवादी तथा धार्मिक कारणों से राजकोष रिक्त हो चुका था। सरकारी तन्त्र की पुनर्संरचना असम्भव हो गयी थी। लुईस सोलहवें, फ्रान्स का शासक सहृदय, उदार तथा सद्विचारों वाला व्यक्ति था लेकिन प्रशासनिक दृष्टि से अयोग्य था। इन समस्त विशेष तत्वों को ही समन्वित रूप में क्रान्तिकारी स्थिति की संज्ञा दी जाती है। उल्लेखनीय है कि यूरोप के अन्य समस्त राज्यों में भी फ्रान्स की क्रान्ति के सूत्र उपलब्ध थे।

(1) अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में फ्रान्स के गैर-विशेषाधिकृत वर्गों के साथ यूरोप के अन्य पड़ोसी राज्यों के गैर-विशेषाधिकृत वर्गों की अपेक्षा अच्छा व्यवहार होता था। विधि की विडम्बना इसी कारण सत्ता के दुरुपयोग को सहन करने का उनका स्वभाव तथा प्रवृत्ति नहीं थी और अपने प्रमुख दार्शनिकों तथा विचारकों के अधिक महिमामय एवं दृढ़ संकल्प के साथ प्रवर्तित आकर्षक विचारों, सिद्धान्तों एवं आदर्शों के अनुरूप अपेक्षित सुधारों के लिए अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करने के लिए तत्पर नहीं थे।

फ्रान्स का कृषक वर्ग, यद्यपि यूरोप के अन्य देशों के कृषक वर्ग की अपेक्षा सम्पन्न तथा समृद्ध था, परन्तु संख्या में कम था। कृषक ने अठारहवीं शताब्दी के अधिकांश समय

निरन्तर उन्नतिशील जीवनस्तर का उपभोग किया था, अब आर्थिक अवनति (मन्दी) से प्रभावित थे और सन् 1787 तक आर्थिक स्थिति गम्भीर हो गयी थी और निरन्तर खराब ही हो रही थी। जैसे ही रोटी के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हुई गैर-विशेषाधिकृत वर्गों ने अनुभव किया कि परम्परागत सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक कर, कुछ कर वे कुलीन वर्ग को देते थे तथा धार्मिक कर वे धर्माधिकारियों को देते थे, अत्यधिक असहनीय हो गये थे।

(2) व्यावसायिक तथा व्यापारी वर्ग, मध्यम वर्ग (यद्यपि अत्यधिक प्रबुद्ध तथा सर्वाधिक प्रगतिशील था) और राष्ट्र के सम्पन्न तथा समृद्धशाली तत्व (अन्य राज्यों से पूर्णतया भिन्न) को अपेक्षित सामाजिक तथा राजनीतिक सम्मान तथा प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया था। ये लोग तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था से सर्वाधिक घृणा करते थे। इस व्यवस्था ने कम योग्य तथा कम शिक्षित व्यक्तियों को उनके केवल कुलीन वंश में जन्म के आधार पर विशेषाधिकार तथा वरीयता प्रदान की थी।

(3) फ्रान्स के कुलीन तन्त्र की प्रतिक्रियावादी आकांक्षाओं ने फ्रान्स की क्रान्ति को प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया। बहुत समय से इसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी थी, लेकिन समस्त प्राचीन प्रशासनिक एवं सामन्तवादी व्यवस्था के सदस्य विशेषाधिकारों तथा प्रतिरक्षा अधिकारों का उपभोग कर रहे थे। सन् 1787-88 की घटनाओं से स्पष्ट सिद्ध होता है कि यह वर्ग अपने वित्तीय तथा राजनीतिक विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए कृत संकल्प थे। सन् 1787-88 के राजनीतिक संकट ने असंगठित अज्ञात मध्यम वर्ग की कुलीनतान्त्रिक प्रतिक्रिया के विरुद्ध अपने हितों की सुरक्षा की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया था। राजनीतिक संकट ने मध्यम वर्ग में राजनीतिक चेतना तथा सजगता को उद्वेलित किया था।

(4) फ्रान्स भौगोलिक दृष्टि से इंग्लैण्ड के निकटस्थ है। अतः ब्रिटेन के उदारवादी विचारों विशेष रूप से विख्यात राजनीतिक दार्शनिक लॉक (Locke) के विचारों से सर्वाधिक प्रभावित था। फ्रान्सवासी इंग्लैण्ड की ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया जैसे असैनिक युद्ध तथा सन् 1688 की गौरवशाली रक्तहीन क्रान्ति से भलीभाँति अवगत थे।

(5) अमेरिका की क्रान्ति तथा फ्रान्स द्वारा अमेरिका का पूर्ण समर्थन का फ्रान्स की अर्थव्यवस्था पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त अमेरिका की क्रान्ति ने फ्रान्सवासियों को नवीन सामाजिक व्यवस्था के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. फ्रान्स में राष्ट्रीय एसेम्बली के कार्यों का वर्णन करें।
   Discuss the functions of the National Assembly in France.
   (बी. आर. अम्बेदकर, 1999; पटना, 1996; मगध, 1991, 93, 95, 97, 99; गढ़वाल, 1997; रुहेलखण्ड, 1991, 93, 95, 99; गोरखपुर, 1989, 99; लखनऊ एवं अवध, 1991, 95) वीर कुंवर सिंह एवं बुन्देलखण्ड, 1998;

2. संविधान सभा की उपलब्धियों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
Critically examine the achievements of the Constituent Assembly.
(रुहेलखण्ड, 1996; गोरखपुर, 1989, 90, 92, 93, 99; बुन्देलखण्ड, 1993, 94, 95, 96; जबलपुर एवं राँची, 1999; मगध, 1997; गढ़वाल, 1995, 98)

3. डायरेक्टरी के कार्यों पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on the working of Directory.
(जबलपुर, 1995, 2000; रुहेलखण्ड, 1998, 2000; बुन्देलखण्ड, 1991, 97)

4. फ्रान्सीसी राज्य क्रान्ति में विधान सभा के योगदान का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
Critically examine contribution of the National Assembly to the French Revolution. (जबलपुर, 1996, 98, 2000; राँची, 1997; राजस्थान, 2000)

5. राष्ट्रीय सम्मेलन की गृह एवं विदेश नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
Critically examine domestic and foreign policy of the National Assembly.
(बुन्देलखण्ड, 1992; गोरखपुर, 1994; अवध, 1997)

6. गिरोदिस्तों और जैकोबिनों के मध्य राजनीतिक एवं सैद्धान्तिक मतभेदों का वर्णन कीजिये।
Explain political and ideological differences between Girondists and Jacobins. (बुन्देलखण्ड, 1995, 99; गढ़वाल, 2000)

7. 1791 में फ्रान्स की व्यवस्थापिका सभा की मुख्य समस्याओं का विश्लेषण कीजिये और व्यवस्थापिका सभा ने उनको किस प्रकार हल किया ?
Critically examine the main problems before the National Assembly in 1791 and how it resolved the same ? (बुन्देलखण्ड, 1997, 99; अवध, 1992; गढ़वाल, 2000; मेरठ, 1991, 94, 95, 96; गोरखपुर, 1989, 93, 94, 99)

8. 1791 के फ्रान्स के प्रथम संविधान का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
Critically examine the first French Constitution of 1791.
(गोरखपुर, 1997, 2000; अवध, 1991; मेरठ, 1997)

9. गिरोन्दिस्त कौन थे ? इस दल के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिये।
Who were Girondists ? Discuss the causes of the failure of this party.
(गढ़वाल, 1996)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. फ्रान्स की सरकार ने आस्ट्रिया को अन्तिम निर्णय की सूचना दी तथा अप्रैल में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी—
(क) 1790 (ख) 1791 (ग) 1792 (घ) 1793
2. फरवरी ········ में 5 लाख की सेना के गठन का आदेश दिया—
(क) 1790 (ख) 1791 (ग) 1792 (घ) 1793
3. अगस्त ········ में राष्ट्रीय सम्मेलन में पारित विधेयक के अनुसार 18 से 25 की आयु के प्रत्येक फ्रान्सवासी के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गई—
(क) 1791 (ख) 1792 (ग) 1793 (घ) 1794
4. सन् ·········· में राष्ट्रीय सम्मेलन ने फ्रान्स की सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति सार्वजनिक सुरक्षा समिति को दे दी—
(क) 1792 (ख) 1793 (ग) 1794 (घ) 1795
5. आतंक के शासन में पेरिस में ·········· व्यक्तियों को मृत्यु दण्ड दिया गया—
(क) 10,000 (ख) 8,000 (ग) 7,000 (घ) 5,000

6. नवम्बर .... में नौट्रेडेम के कैथेड्रल में विवेक का धर्म का उद्घाटन किया गया—
(क) 1792 (ख) 1793 (ग) 1794 (घ) 1795
7. प्रत्येक वर्ष के कैलेण्डर में 12 माह थे तथा .... दिन का सप्ताह होता था—
(क) 7 दिन (ख) 8 दिन (ग) 9 दिन (घ) 10 दिन
8. वर्ष के अन्त में शेष .... दिन राष्ट्रीय अवकाश के मनाये जाते थे—
(क) 10 दिन (ख) 8 दिन (ग) 6 दिन (घ) 4 दिन
9. जुलाई .... में रोबेस्पियरेरे की मृत्यु के बाद संदेहास्पद व्यक्तियों में से सम्बन्धित कानून तथा अधिकतम के कानून निरस्त कर दिये गये—
(क) 1794 (ख) 1795 (ग) 1796 (घ) 1797
10. सन् .... में चिकित्साशास्त्र की उच्च शिक्षा के लिए तीन महाविद्यालय खोले गये—
(क) 1792 (ख) 1793 (ग) 1794 (घ) 1795

[उत्तर—1. (ग), 2. (घ), 3. (ग), 4. (ख), 5. (घ), 6. (ख), 7. (घ), 8. (ग), 9. (क), 10. (ग) ।]

5

नैपोलियन युग

[NAPOLEONIC ERA]

डायरेक्टरी और युद्ध (Directory and War)—डायरेक्टरी का कार्यकाल 26 अक्टूबर, 1795 से 19 नवम्बर, 1799 तक रहा। इसका अपना नाम गणतन्त्र की कार्यपालिका के स्वरूप से मिला था। इसका प्रावधान 1795 के संविधान में किया गया था। इसका 4 वर्ष का इतिहास अत्यधिक संकटमय एवं अनिश्चित था और हिंसात्मक अपदस्थ द्वारा अन्त हुआ।

डायरेक्टरी के समक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या विदेशी शक्तियों इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, पीडमोन्ट एवं जर्मनी के दो राज्यों के विरुद्ध युद्ध जारी रखना और उनको पराजित करने की थी। प्रशा, स्पेन और हालैण्ड ने सन्धि कर ली और संयुक्त युद्ध से अलग हो गये। फ्रान्स ने आस्ट्रिया अधिकृत नीदरलैण्ड, आधुनिक बेल्जियम को पराजित करके फ्रान्स में विलय कर लिया था। आस्ट्रिया द्वारा इस विलय की मान्यता प्राप्त करने के लिए आस्ट्रिया को पराजित करना आवश्यक था। डायरेक्टरी ने पूर्ण शक्ति के साथ इसी लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित किया। विदित है कि फ्रान्स आक्रमणकारियों को पराजित कर चुका था। इसलिए फ्रान्स की भूमि पर युद्ध नहीं हो रहा था। अब फ्रान्स स्वयं आक्रमणकारी बन गया । फ्रान्सीसी सेनाओं द्वारा विभिन्न यूरोपीय देशों का विजय अभियान आरम्भ हो गया, जिसका अन्त दो दशक बाद आधुनिक युग के सर्वाधिक महान् सेनाध्यक्ष के पतन के बाद हुआ। डायरेक्टरी ने आस्ट्रिया के विरुद्ध दो समानान्तर आक्रमणों की योजना बनायी। डैन्यूब नदी घाटी के नीचे जर्मनी के दक्षिण की ओर से जिसका अन्त वियाना में होना था। यह सैन्य अभियान आल्पस पर्वत के उत्तर की ओर से था। आल्पस के दक्षिण में स्थित उत्तरी इटली में पीडमोन्ट अथवा सर्डीनिया और आस्ट्रिया फ्रान्स के शत्रु थे। आस्ट्रिया के नियन्त्रण में दो घाटी अर्थात् लोम्बार्डी के समृद्ध और सम्पन्न क्षेत्र थे। इसकी राजधानी मिलान थी। इटली के अभियान से सेनाध्यक्ष बोनापार्ट ने अपने यश और सत्ता का सूत्रपात किया।

नैपोलियन (Napolean)—नैपोलियन बोनापार्ट विश्व के सर्वाधिक महान् सेनाध्यक्षों में एक था। वह निर्विवाद रूप से आधुनिक युग का महान् व्यक्ति तथा यूरोप के इतिहास में युग निर्माता था। वह एक असाधारण मस्तिष्क तथा चरित्र का धनी था, जो किसी भी परिस्थिति

अथवा किसी भी देश में उच्च स्थान प्राप्त करता। विख्यात राजनीतिक दार्शनिक रूसो ने सन् 1762 में लिखा था, "मुझे पूर्वाभास हो गया है कि यह छोटा-सा द्वीप कोर्सिका (Corsica) एक दिन यूरोप को आश्चर्यचकित करेगा।" नैपोलियन के पूर्वज मूलरूप से इटलीवासी थे, लेकिन सोलहवीं शताब्दी में फ्रान्स के दक्षिण में भूमध्यसागर में स्थित एक छोटे द्वीप कोर्सिका में स्थायी रूप से बस गये थे। यह द्वीप इटली में स्थित जिनोआ के अधीन था, किन्तु नैपोलियन के जन्म से पूर्व जिनोआ ने यह द्वीप फ्रान्स को दिया था।

नैपोलियन का जन्म 15 अगस्त, 1769 में कोर्सिका द्वीप के अजासियो नगर में वकील परन्तु दीन-हीन कार्लो बोनापार्ट तथा सुन्दर, आकर्षक एवं परिश्रमी माता लेटीजिया रमोलिनों के परिवार में हुआ था। यद्यपि नैपोलियन पाँच भाई और तीन बहनें थे परन्तु दूसरा पुत्र क्षीणकाय नैपोलियन भाई-बहनों से विलग एकाकी जीवन व्यतीत करता था और भूमि पर रेखाएँ खींचता रहता अथवा दुर्ग बनाता तथा तोड़ता रहता था।

नैपोलियन ने प्रारम्भ में ब्रिमें तथा पेरिस के सैनिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की और इसी अवधि में उसने पाठ्यक्रम के विषयों के अतिरिक्त 18वीं शताब्दी के विद्रोह का उत्तेजनात्मक एवं तत्कालीन बुद्धिवादी विचारकों तथा दार्शनिकों जैसे वाल्टेयर, मान्टेस्क्यू, रूसो आदि की महान् कृतियों का अध्ययन किया था। जूलियस सीजर तथा सिकन्दर महान् के व्यक्तित्वों तथा कृतित्वों की उसके मस्तिष्क पर अमिट छाप थी। वह हीनभावना से ग्रस्त, आर्थिक दरिद्रता से दुखी एवं निराश तथा उच्च कुलीन परिवार में जन्म न लेने की मानसिक पीड़ा से त्रस्त था।

कोर्सिकन ने विश्व इतिहास में चमत्कार किया। अन्तर्निहित कोई शक्ति अथवा प्रेरणा सदैव उसको खटखटाती रहती थी। तीन सौभाग्यशाली घटनाओं की सहायता से नैपोलियन एक सेना का अध्यक्ष बन गया। नैपोलियन ने केवल 17 वर्ष की आयु में अपना सैनिक जीवन आरम्भ किया था। उसके नेतृत्व में सेना ने युद्धों में यूरोप में पहली बार सनसनी फैला दी और यहीं से चरमोत्कर्ष तक पहुँचने के लिए अभियान आरम्भ हुआ।

नैपोलियन के उल्का सदृश्य अभूतपूर्व उत्कर्ष, एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण विनाशकारी कार्यों के निर्माण में अद्वितीय योगदान करने वाले अनेक गुणों में, मेहराब के समान उत्कृष्ट महत्वाकांक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सत्ता ही एक चीज थी जिसने जीवनपर्यन्त उसे अपना दास बनाये रखा। एक बार उसने स्वयं स्वीकार किया कि "सत्ता मेरी उप-पत्नी है (प्रेमिका) है। इसे वश में करने के लिए मुझे इतने अधिक कष्ट उठाने पड़े हैं कि मैं न तो उसे किसी को छीनने दूँगा और न अपने साथ भोगने दूँगा, मैं इसे एक कलाकार की तरह प्यार करता हूँ।" वह दृढ़ता के साथ विश्वास करता था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने भाग्य के विधान को पूर्ण करना चाहिए। सन् 1804 में उसके राज्याभिषेक के समय पवित्र रोमन साम्राज्य के सर्वोच्च धर्माधिकारी पोप का आर्शीवाद देने के लिए आह्वान किया गया। अन्तिम क्षणों में राजमुकुट स्वयं अपने हाथों से अपने सिर पर रख लिया। इस प्रकार राज्याभिषेक के कार्य में ही पोप का निरादर किया। इस विशिष्ट घटना ने समस्त यूरोप के व्यक्तियों को नैतिक आघात पहुँचाया। नैपोलियन का महान् प्रशंसक बीथोविन भी अत्यधिक निराश हुआ। विरोध स्वरूप नैपोलियन की प्रशंसा में लिखित कविता 'इरोका' को फाड़ डाला। समस्त दृढ़

इच्छाशक्ति वाली महान् विभूतियों के समान नैपोलियन भी अपनी दुर्बलताओं से अवगत था। अनेक बार उसने स्वयं कहा, "मैं सदैव आक्रमण करते हुए प्रतीत होता हूँ"।

महत्वाकांक्षा के अतिरिक्त नैपोलियन एक निर्लज्ज, स्वार्थी तथा अहंवादी था। उसने सदैव कहा कि उसकी सेवा करना फ्रान्स की सेवा करना था। अपने प्रथम इटली के अभियान में निदेशक मण्डल को लिखा कि उसके सैनिक अपना जीवन ओष्ठ पर मन्द मुस्कान लिए अर्पित करते हैं और मृत्यु के साथ जुआ खेलते हैं। उसमें अभूतपूर्व शक्ति, आत्मविश्वास, निर्भीकता, चतुरता तथा साधन-सम्पन्नता थी। वह बाल्यकाल से ही विश्वास करता था कि कोई अन्तर्निहित शक्ति विजय तथा गौरव के लिए उसका मार्गदर्शन कर रही थी। इस दृष्टि से वह भाग्यवादी था। उसमें अपने समर्थकों तथा अनुयायियों में विश्वास जाग्रत करने की अपूर्व क्षमता थी। वह अपने सैनिकों से बहुत प्यार करता था और सैनिक भी उससे उतना ही प्रेम करते थे। उसकी स्मरण शक्ति भी विलक्षण थी। उसको अपनी समस्त टुकड़ियों तथा सैनिकों के नाम स्मरण थे। वाटरलू में वैलिंगटन से अन्तिम संघर्ष से पूर्व उसने वीरोचित स्वर में अपने सैनिकों के समक्ष घोषणा की थी, "मैं तुमसे कहता हूँ कि वैलिंगटन एक खराब सेनाध्यक्ष है, अंग्रेज खराब सैनिक हैं और यह एक वन-विहार होगा।" रूस के विनाशकारी अभियान के बाद भी उसका यही भाव तथा दृष्टिकोण था। रूस की युद्धभूमि में लगभग 5 लाख सैनिकों का बलिदान कर दिया। इस निराशाजनक स्थिति के उपरान्त नैपोलियन ने शीघ्र फ्रान्स लौटकर, जबकि उसके जनरल ने वापस लौटते हुए सैनिकों की पूर्ण देखभाल की, पीड़ित तथा दुखी फ्रान्सवासियों के समक्ष अत्यधिक अहंवादी स्वर में घोषणा की, "सम्राट कभी भी अच्छी स्थिति में नहीं है", इस प्रकार का दृष्टिकोण धरातलहीन, अहंवाद तथा स्वार्थपरता का बोध कराता है। जीवन के अन्तिम समय तक वह अपने अहंवाद तथा स्वकेन्द्रित स्वार्थपरता पर नियन्त्रण नहीं कर सका।

प्रायः वह विख्यात मैक्यावलीकालीन विशेषताओं को प्रदर्शित करता था। अनिवार्य विजय का आश्वासन देते हुए युद्ध के आह्वान मात्र से वह सैनिकों के उत्साह, साहस और शौर्य को सहज ही जाग्रत कर सकता था और फ्रान्स को अनेक वीरों के शौर्य तथा वीरता के कार्यों का विस्तृत उल्लेख करते हुए विवरण भेजता। इस विवरण (Report) को प्राप्त करने के लिए पत्रकारों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा रहती थी। लेकिन जनता पर कुशल शासन के लिए रिश्वत वितरित करने तथा धमकी देने के निम्न स्तर तक आने में उसने कभी संकोच नहीं किया। अन्य नेताओं के समक्ष उग्र भाषण देते हुए, धूर्तता, मक्कारी, सच्चाई, निष्कपटता, अबोधता एवं अज्ञानता का अद्भुत मिश्रण करके अपनी कूटनीतिक कुशलता का परिचय देता था। एक बार उसने अपने विरोधियों से कहा, "दो बजे मेरे सैनिकों को आक्रमण करने के आदेश हैं।" यह उसके कूटनीतिक चातुर्य का आभास कराता है।

प्रायः वह अत्यधिक निन्दक तथा कटु स्वभाव का हो जाता था। उसका, अपूर्व उत्साह तथा फूलों के साथ मुक्तिदाता के रूप में स्वागत किया गया। उसने मिलनवासियों को आस्ट्रिया के प्रभुत्व से मुक्त कराया। उसने परिषद् तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सेना का गठन किया। उसने अनेक कलाकारों तथा विद्वानों को संरक्षण दिया, लेकिन कुछ दिन बाद उसने उन पर दो करोड़ फ्रैंक का करारोपण किया तथा उनकी कलाकृतियों तथा पूर्व की पांडुलिपियों से भरी

अनेक गाड़ियाँ (वैगन) फ्रान्स भेज दीं। इसी प्रकार की कहानी की उसने वेनिस में पुनरावृत्ति की। सेन्ट मार्क के विशाल चौक में स्वतन्त्रता का पौधा लगाया और वेनिस के शेर के पंजे के नीचे मानवाधिकारों की घोषणा की एक प्रति रखी। फ्रान्सवासियों ने सन् 1792 से क्रान्तिकारी फ्रान्स के विरुद्ध, धर्मयुद्ध के एक नेता ने आस्ट्रिया की सेना को नगर दे दिया। इसके बदले में फ्रान्स को लोम्बार्डी तथा आस्ट्रिया अधिकृत नीदरलैण्ड मिला और फ्रान्स की इच्छानुसार राइन नदी तट तथा शेष इटली में स्थायी रूप से बसने की अनुमति मिली।

महत्वाकांक्षा, अहंवाद, स्वार्थपरता तथा कटुता के अतिरिक्त वह स्वयं में सदैव स्वप्न दृष्टा था। जब उसने पूर्व में इंग्लैण्ड को पंगु तथा निष्क्रिय बनाने का विचार किया, उसने स्वयं में एक अन्य सिकन्दर महान् का पूर्वानुमान किया। कालान्तर में उसने स्वीकार किया, "मैंने स्वयं को सिर पर पगड़ी बाँधे, एक हाथी पर बैठकर एशिया के मार्ग पर देखा।" उसने उच्च स्वर में कहा, "यह छोटा यूरोप बहुत ही छोटा क्षेत्र है। वास्तविक यश तो पूर्व में ही मिल सकता है।"

उसके व्यक्तित्व के विभिन्न गुण-दोषों का विश्लेषण करते हुए ज्ञात होता है कि वह अत्यधिक अतिविश्वास से ग्रस्त था। स्पेन पर आक्रमण के समय जब दुर्भाग्य ने दृढ़ निश्चय को विचलित कर दिया, वह विश्वास की आभा को रोक नहीं सका। उसने स्पेनवासियों से कहा, "ईश्वर ने मुझको दृढ़ इच्छाशक्ति तथा समस्त कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए शक्ति प्रदान की है। उसके सर्वाधिक निकटस्थ तथा विश्वासपात्र भलीभाँति जानते थे कि उसकी सामरिक नीति सफल नहीं हुई। उसके नौसैनिक मन्त्री डिक्री (Decree) ने सन् 1806 में लिखा था, "सम्राट ने बनाया और वह हम सबको नष्ट कर देगा।" सम्भवतः फ्रान्स की सेना के एक महान् जनरल मार्शल फोर्क (Marshal Forch) ने सर्वाधिक उपयुक्त स्मृति लेख लिखा था, "नैपोलियन भूल गया है कि मानव कभी ईश्वर नहीं हो सकता है। व्यक्ति से ऊपर राष्ट्र है और मानव समुदाय से ऊपर नैतिक नियम हैं। वह भूल गया है कि युद्ध सर्वोच्च उद्देश्य नहीं है क्योंकि शान्ति, युद्ध से ऊपर है।"

नैपोलियन के अति विश्वास का उसके सम्राट के रूप में शासनकाल में कोई औचित्य नहीं था। टिलसिट की सन्धि से पूर्व नैपोलियन फ्रान्स की सर्वाधिक महान् सैनिक सम्पत्ति था लेकिन टिलसिट के उपरान्त नैपोलियन का व्यक्तिगत नेतृत्व फ्रान्स पर भार बन गया। प्रारम्भ के अभियानों में उसके साहस और शौर्य ने लाभांश दिया। टिलसिट की सन्धि के उपरान्त प्रत्येक वस्तु निर्गम योग्य बन गयी। **वह सदैव इसी पूर्व धारणा पर कार्य करता रहा कि सैनिक समाधान सदैव सुलभ थे।** उसी विश्वास के आधार पर वह फ्रान्स के समस्त स्रोतों को विनाश के कगार तक ले गया। अन्य सहयोगियों, विश्वासपात्रों तथा सहायकों को प्रभावशाली ढंग से उसने सत्ता को नहीं सौंपा था। यह नैपोलियन की एक अन्य दुर्बलता थी। उसके अनुभवहीन मार्शलों ने नैपोलियनकाल की युद्ध प्रणाली के नियमों के आंशिक ज्ञान को ही प्रवृत्त किया था। परिणामस्वरूप स्पेन में फ्रान्स के सैनिक अभियान में अनेक क्रमिक विनाश एवं पराजय हुई।

सामंजस्य तथा समन्वय, विषयों को स्थायी रूप प्रदान करने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन होता है। नैपोलियन इस साधन की गरिमा तथा महत्व से पूर्णतया अनभिज्ञ था।

बिस्मार्क का स्वभाव नैपोलियन से बिल्कुल भिन्न था। नैपोलियन ने समन्वय तथा सामंजस्य की नीति का अनुसरण नहीं किया, अतः उसको अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए आस्ट्रिया को पाँच बार पराजित करना पड़ा। टैलीरैण्ड (Tallyrand) ने भी उसको चेतावनी दी थी लेकिन नैपोलियन ने उसके न्यायोचित तथा तर्कसंगत परामर्श की उपेक्षा की। उसने प्रशा के राजा को भी आघात पहुँचाया। प्रशा के राजा फ्रेडरिक महान् की यद्यपि वह बहुत प्रशंसा करता था, लेकिन उसके विचार से प्रशा न्यायोचित रूप से यूरोप की मुख्य शक्तियों में नहीं था। सन् 1807 में टिलसिट की सन्धि के प्रावधान प्रशा के लिए अत्यधिक घातक तथा कठोर थे। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार प्रशा को उसके अधिकृत क्षेत्र के आधे भाग से वंचित कर दिया गया, उसकी सेना को नगण्य संख्या तक सीमित कर दिया गया तथा प्रशा पर अपार धनराशि युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में आरोपित की गयी। रूस के साथ भी उदार तथा अनुग्राही व्यवहार करने के लिए तत्पर नहीं था। रूस के कुस्तुनतुनिया पर दावे को भी अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप रूस नैपोलियन से घृणा करने लगा। इसी अवसर पर टैलीरैण्ड ने भी नैपोलियन से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

नैपोलियन अपने विश्वसनीय व्यक्तियों का बिना किसी क्षतिपूर्ति के सहज और सरल ढंग से बलिदान कर सकता था, यह उसके चरित्र की अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण विशेषता थी। जब उसके अंकारा पर आधिपत्य स्थापित करने के समस्त प्रयास विफल हो गये और उसको मिस्र से पीछे हटना पड़ा, उसने सहस्त्रों बन्दियों की निर्मम तथा अमानुषिक हत्या करवाने तथा अपने अत्यधिक घायल रोगी तथा अस्वस्थ सैनिकों को अफीम की अधिक मात्रा दिलवाने में तनिक भी संकोच नहीं किया। यहाँ तक कि जब उसने मिस्र से पलायन करने का निश्चय किया तो उसने अपने सैनिकों को, जिनके फ्रान्स लौटकर आने की कोई आशा नहीं थी, उदासीन तथा निर्मोही बनकर वहीं छोड़ दिया।

नैपोलियन के चरित्र की उपर्युक्त दुर्बलताओं से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह एक ऐसा व्यक्ति था, जो केवल स्वयं के लिए जीवित रहा। यथार्थ में उसका आत्मविश्वास भी अपेक्षानुसार मजबूत तथा दृढ़ नहीं था। निदेशक को अपदस्थ करने से पूर्व नैपोलियन ने सेइस बोनापार्ट (Sieyes Bonaparte) संविधान को स्वीकार करवाने के लिए तत्कालीन विधानसभाओं को भी भयभीत तथा आतंकित किया था। पेरिस नगर में अशान्ति तथा अव्यवस्था के कारण दोनों विधान सभाओं ने पेरिस से दूर हटकर सेन्ट क्लाउड में अपना अधिवेशन किया था। उसकी सेनाओं ने समस्त क्षेत्र को घेर लिया। नैपोलियन ने प्राचीनों की परिषद् (Council of Ancients) को सम्बोधित करते हुए उग्र तथा हिंसात्मक भाषण दिया तथा फ्रान्स को, सर्वत्र प्रचलित भ्रष्टाचार एवं पराजयवाद से बचाने के लिए देशभक्ति की भावनाओं से अनुप्राणित कर्तव्यों पर विशेष बल दिया। उसने धमकी देते हुए कहा, "यदि कोई मेरे विधि-बहिष्कार का आह्वान करता है, युद्ध की कड़कती हुई बिजली उसको पृथ्वी पर कुचल देगी। याद रखो, मैं युद्ध में देवता के साथ हाथ में हाथ डालकर चलता हूँ।" लेकिन परिषद् (द्वितीय सदन) के 500 सदस्य अत्यधिक कठोर तथा कृत संकल्प थे। जब उसने विशाल कक्ष में प्रवेश किया, उसका "अधिनायक मुर्दाबाद", "उसको विधि बहिष्कृत करो" के नारों से अभिवादन किया गया था। इस स्थिति में नैपोलियन निराश हो गया और सदन

से स्वयं ही चला गया। उस दिन सदन के अध्यक्ष, उसके छोटे भाई लाउसिन (Loucien) ने विप्लव द्वारा परिवर्तन के विचार-विमर्श को स्थगित करने की घोषणा करके अपने भाई (नैपोलियन) को विधि-बहिष्कृत करने से बचा लिया था। तदुपरान्त सदन को खाली करवाने के लिए सेना को बुलाया था। उसी दिन 8 बजे रात्रि में प्राचीनों की परिषद् (Council of Ancients) ने पाँच निदेशकों के स्थान पर तीन कौन्सल, बोनापार्ट, सईस (Sieyes), ड्यूकोज (Ducos) नियुक्त करने की घोषणा की। इस त्रयी ने विख्यात उद्घोषणा प्रचलित की, "सिद्धान्त रूप में क्रान्ति स्थापित हो गयी है, जिसने इसे आरम्भ किया था, उसे समाप्त किया जाता है।"

नैपोलियन की समस्त दुर्बलताओं की व्यापक व्याख्या की जा सकती है। उसका कोई दृढ़ धार्मिक विश्वास अथवा आस्था नहीं थी। उसने दावा किया, "यदि मैं यहूदियों पर शासन कर रहा हूँ, मुझे सोलोमन के मन्दिर को पुनर्स्थापित करना चाहिए।" इसी दृढ़ मत तथा सहिष्णु धार्मिक विचारों के कारण परम धर्माध्यक्ष पोप के साथ सुखद तथा मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुआ तथा सन् 1801 की धर्म सन्धि की। नैपोलियन में किसी धर्म विशेष के प्रति दृढ़ आस्था तथा विश्वास के अभाव की मिस्र में उसके कथन से भी पुष्टि होती है। चर्च की घंटियों के प्रति निरर्थक भावुकता तथा संवेदनशीलता और तारों भरे विश्व के प्रति अत्यधिक आश्चर्य की भावना के अतिरिक्त नैपोलियन के मस्तिष्क में किसी धर्म का कोई विचार नहीं था। "लोग कहेंगे कि मैं बपतिस्मादाता (Baptist) हूँ। मैं कुछ नहीं हूँ। मिस्र में मैं मुसलमान था, यहाँ मैं लोगों के कल्याण के लिए कैथोलिक हो जाऊँगा।" जब सहृदय लेकिन साहसी पोप पवित्र अठारहवें ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में, यूरोप के सर्वाधिक कठोर शासक नैपोलियन को बहिष्कृत करने का साहस किया, नैपोलियन ने उसको तत्काल सांसारिक (भौतिक) शासन से वंचित कर दिया और बन्दी बनाकर फ्रान्स ले आया, जहाँ वह अत्यधिक अपमान तथा निन्दा के साथ सन् 1814 तक जीवित रहा।

अपने स्वयं के भाग्य में नारकीय तथा राक्षसी विश्वास तथा अत्यधिक अतिविश्वास के उपरान्त वह जीवनपर्यन्त हीनता की भावना से ग्रस्त रहा। नैपोलियन 1790 के दशक की क्रान्ति की उत्पत्ति था, इस कारण यूरोप का समस्त शासक वर्ग उससे घृणा करता था। मैटरनिक (Matternich) ने उसे क्रान्ति का अवतार कहा था और जार एलेक्जेण्डर प्रथम ने क्रान्ति का हाइड्र्यू (Hydrew) से सम्बोधित किया और फ्रेडरिक तृतीय की पत्नी उससे इस प्रकार घृणा करती थी जैसे वह नरक से निकल कर आया था। इन घृणास्पद कटु शब्दों से उत्तेजित होकर नैपोलियन ने अपना वंशानुगत शासन स्थापित करना आरम्भ कर दिया। स्वयं को रोबेस्पियेरे का उत्तराधिकारी होने से मना करते हुए एक विचित्र बात कही कि लुईस सोलहवाँ उसका चाचा था। उसने लोकप्रियता बढ़ाने के लिए बहुत परिश्रम के साथ नैपोलियन (स्वयं) से सम्बन्धित दन्त कथाओं को प्रोत्साहित किया। उसके अन्तःकरण में तीव्र कामना थी कि वह स्वयं को यूरोप के तत्कालीन शासकों के स्वीकार करने योग्य बने। नैपोलियन 9 मार्च, 1796 को जोसे फाइन नाम की सुन्दर विधवा स्त्री से विवाह कर चुका था, परन्तु यूरोप के शासक वर्ग में गणना की प्रबल आकांक्षा से प्रेरित होकर सन् 1809 में आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस द्वितीय की पुत्री से विवाह किया। इससे पूर्व रूस के जार की बहिन के प्रस्ताव को

अस्वीकार कर चुका था। फ्रान्स के अनेक मार्शलों ने नैपोलियन के विवाह की यह कहते हुए कटु आलोचना की थी कि उसने फ्रान्स की क्रान्ति के अमूल्य सिद्धान्तों तथा आदर्शों के साथ विश्वासघात किया था। नैपोलियन को आशा थी कि यूरोप के राजवंशों द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकार करने के बाद, कम से कम उसका भावी पुत्र आधे हैप्सबर्ग वंश का होगा। निश्चित रूप से उसको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, लेकिन यह व्यर्थ था। इस समय तक उसके भाग्य का सितारा स्पष्ट रूप से अस्त हो चुका था। मैटरनिक को प्रेषित उसकी टिप्पणी से उसके अन्तर्मन की अत्यधिक गुणगान, गौरवमान तथा शौर्य, वीरता, साहस तथा उत्साह की उत्कट कामना अभिव्यक्त होती है। इसी उत्कट आकांक्षा से वह भीषण युद्ध करता था। उसने मैटरनिक को लिखा था, "मैं एक हाथ चौड़ी भूमि देने की अपेक्षा मर जाऊँगा। जन्म से राजा 20 बार पराजय स्वीकार करते हैं। उसके बाद भी वे अपने महलों को जाते हैं। मैं अपने सौभाग्य का शिशु हूँ और मैं ऐसा नहीं कर सकता हूँ। जिस दिन मैं मजबूत तथा शक्तिशाली नहीं रहूँगा, जिससे मैं भयभीत नहीं होता, मेरी सत्ता एक दिन भी अधिक नहीं चलेगी।"

नैपोलियन के चरित्र के विकृत तथा कुरूप पक्ष का ही चित्रण किया गया है। लेकिन हम सब भलीभाँति जानते हैं कि वह यूरोपीय इतिहास का कोई साधारण व्यक्ति नहीं था, जिसको इतिहास के अतुल भण्डार में समाहित कर दिया जाये। वह अपने युग की अद्वितीय विभूति था। विश्व के इतिहासकारों तथा विद्वानों ने उसके चरित्र के विविध पक्षों को विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रित किया है। इंग्लैण्ड के विख्यात कवि लार्ड बायरन ने नैपोलियन के सम्बन्ध में सम्बोध गीति (Ode) की रचना की। जर्मन कवि हेन (Henie) ने गाथा-गीत (Ballade) का सृजन किया। उसके अन्दर निहित किसी अज्ञात दैविक शक्ति ने उसको प्रेरित तथा उद्वेलित किया तथा यूरोप के मंच पर 2 दशक तक प्रभुत्व स्थापित करने में समर्थ बनाया। असफलता के उपरान्त भी उसने एक अमूल्य पैतृक निधि छोड़ी जिसने यूरोप के इतिहास के स्वरूप तथा चेतना को ही बदल दिया।

ग्रामीण वातावरण से आया वह एक सामान्य विद्यार्थी नहीं था। विभिन्न भाषाओं के अध्ययन में नैपोलियन की रुचि नहीं थी, लेकिन गणित में वह बहुत प्रतिभाशाली था। स्कूल में नवयुवक नैपोलियन अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर रहता था, अपने कार्य तथा परिवार के प्रति अपूर्व उत्तरदायित्व की भावना थी, उसमें सहनशीलता की अपूर्व क्षमता थी। वह अत्यधिक चिड़चिड़ा, उदास, सीमित तथा यदाकदा अपने साथियों के प्रति निरन्तर बढ़ती हुई घृणा के कारण क्रुद्ध होने की प्रवृत्ति थी। उसके साथी उससे उसकी निर्धनता के कारण घृणा करते थे, और विदेशी उच्चारण तथा नाम का उपहास करते थे। उसके एक अध्यापक ने उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मत व्यक्त किया था, "नवयुवक ग्रेनाइट पत्थर का बना हुआ है लेकिन उसके अन्दर ज्वालामुखी है।" वह वाल्टेयर तथा मान्टेस्क्यू के विचारों तथा रूसो एवं ऐबे रैमल (Abbe Raymal) के सिद्धान्तों पर नागरिकों के साथ विचार-विमर्श करता था। यद्यपि उसके बगल वाले कमरे में बिलियर्ड खेली जाती थी, लेकिन वह अपने कमरे में इतिहास और गणित, प्लेटो तथा प्लूटार्क का अध्ययन करता था। उसने फ्रेडरिक महान् के अभियानों तथा इंग्लैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, स्पार्टा, मिस्र और तुर्की के संविधानों का अध्ययन किया था। उसने कोर्सिका के सुसज्जित दुर्ग द्वारा सुरक्षा की योजना बनायी थी। उसने कोर्सिका द्वीप से सम्बन्धित

कथावस्तु के आधार पर उपन्यास भी लिखा था। राजतन्त्रीय सत्ता, असमानता तथा आत्महत्या आदि विषयों पर निबन्ध भी लिखे थे।

नैपोलियन अत्यधिक कुशाग्रबुद्धि का व्यक्ति था और उसके उत्तर तीक्ष्ण, सुस्पष्ट, तथा सुनिश्चित होते थे। लेकिन वह कक्षा के दम्भी समूह, जो प्रायः फ्रेन्च भाषा के उच्चारण का उपहास करते थे, से क्षुब्ध रहता था। इन चुनौतियों का सामना करने में अभिव्यक्त तत्परता तथा नवीन कुशलता अद्भुत थी। उसने अपनी पूर्व कल्पना, दूरदर्शिता, साहस एवं सामर्थ्य से प्रारम्भ में विद्रोहियों का समर्थन करने वाली ब्रिटिश नौ-सेना के प्रयास को असफल कर दिया था। तदुपरान्त उसने अनेक बार इस प्रकार के विदेशी सैनिकों के प्रयास विफल किये।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण के नवयुवक नैपोलियन का मस्तिष्क विश्वकोश के लेखकों के अनुरूप विशद् एवं व्यापक विचारों तथा स्वयं अर्जित ज्ञान से अनुप्राणित था। इन दोनों ने ही उसको गणतन्त्रवादियों के विचारों, सिद्धान्तों तथा आदर्शों का प्रबल समर्थक एवं उत्साही प्रवक्ता बना दिया। चरमोत्कर्ष तथा उन्नति की उत्कट आकांक्षा से प्रेरित व्यक्ति तत्कालीन व्यवस्था के विभिन्न दोषों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में प्रवीण होता है और उज्जवल भविष्य का प्रबल समर्थन करता है। यदि पेरिस में गणतन्त्रवादियों को अपने सिद्धान्तों, आदर्शों तथा प्रमुख नीतियों के कार्यान्वयन में अपेक्षित सफलता नहीं मिली, उसके लिये नैपोलियन किसी भी रूप में उत्तरदायी नहीं था।

जब बहुआयामी नवयुवक ने सामान्य से ऊपर उन्नति की उत्कट कामना से प्रेरित होकर अत्यधिक संकट की स्थिति में पेरिस में प्रवेश किया, भाग्य ने उसकी सहायता की। उसकी स्थानीय सैनिक प्रतिभा ने उसको प्रोत्साहित किया। उसने सन् 1794 में पेरिस के उपद्रवी जनसमूह को हवा के एक झोकें के सदृश तितर-बितर कर दिया और तत्कालीन निदेशक मण्डल को बचा लिया। जीवन में सर्वाधिक उन्नति की आकांक्षा से प्रेरित नैपोलियन सुन्दर विधवा नवयुवती जोसेफाइन (Josephine) के अद्वितीय सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। उसका विश्वास था कि भाग्य उसके पक्ष में था। ऐसी किंवदन्ती है कि उसने अपने विवाह की मुद्रिका पर 'सौभाग्य की ओर' उत्कीर्ण करवाया। उस समय क्रान्तिकालीन शासन के समक्ष विकट समस्याएँ थीं। इन भावी विकट संकटों का साहस तथा शौर्य के साथ सामना करने के लिए नेता उपयुक्त गुणवान एवं चतुर व्यक्ति की खोज कर रहे थे। नवयुवक नैपोलियन नेताओं की आशानुरूप उपलब्ध था। नैपोलियन को शासन की उत्कृष्ट सेवाओं के लिए पुरस्कृत करते हुए जनरल के पद पर पदोन्नत कर दिया। नैपोलियन के सेना का नेतृत्व ग्रहण करते समय सैनिक अत्यधिक भीरु, कायर तथा निष्क्रिय थे, लेकिन नैपोलियन ने अदम्य साहस तथा नेतृत्व के विशिष्ट गुणों से इटली के अभियान के समय प्रत्येक सैनिक को शूरवीर में परिवर्तित कर दिया। नैपोलियन ने प्रचलित परम्परागत सैनिक तथा सामरिक नीतियों की अपेक्षा नवीन सैनिक नीतियों तथा युद्ध संचालन प्रणाली का शुभारम्भ किया। नवीन सैनिक क्षितिज पर उल्का के समान आविर्भाव प्रतीत होता था। सन् 1797 में कैम्पोफोरमियो की सन्धि द्वारा नैपोलियन ने स्वयं को एक कुशल सेनानायक के अतिरिक्त एक चतुर तथा बुद्धिमान कटूनीतिज्ञ सिद्ध किया। इससे फ्रान्स अत्यधिक रोमांचित तथा पुलकित था।

पेरिस लौटने पर समस्त जनसमूह ने नैपोलियन की ओर आशंका से ध्यान दिया। तत्कालीन निदेशक मण्डल के शासन की विश्वसनीयता समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने सोचा था कि वे इस महत्वाकांक्षी नवयुवक से मुक्त हो जायेंगे। लेकिन उसने निदेशक मण्डल द्वारा प्रस्तावित इंग्लैण्ड पर आक्रमण के परामर्श को सफलतापूर्वक अस्वीकार करते हुए, स्वप्न लोक के भव्य चमत्कार के समान ब्रिटिश साम्राज्य की जीवन-रेखाओं पर आक्रमण करने का प्रस्ताव रखा। इस प्रकार इंग्लैण्ड को भी अपमानित किया जा सकता था। मामेल्यूकस पर आशानुरूप विजय प्राप्त हुई। तदुपरान्त उसने मिस्र में जो कुछ किया, वह अत्यधिक महत्वपूर्ण था। उसने स्वयं की बहुमुखी प्रतिभा तथा व्यक्तित्व के विविध पक्षों को प्रदर्शित किया।

मिस्र के सैनिक अभियान के समय अक्रे (Acre) में उसको गम्भीर आघात पहुँचा था। इस आघात ने उसको पुनः फ्रान्स भागने के लिए विवश किया था। उसके फ्रान्स लौटने पर निदेशक मण्डल आतंकित था। जोसेफाइन (नैपोलियन की पत्नी) के भ्रष्ट, पतित तथा निम्न स्तरीय आचरण ने नैपोलियन की आस्था, निष्ठा तथा समर्पण की हत्या कर दी थी। तीस वर्षीय जनरल नैपोलियन ने विक्षिप्त होकर भावावेश में कहा था, "मेरे लिए केवल एक स्रोत शेष रह गया है—निरंकुश, अहंवादी तथा स्वार्थी बनना।" नैपोलियन ने अपने जीवन की मर्मान्तक पीड़ा एवं असहनीय वेदना को किसी प्रकार सहन किया। तदुपरान्त नैपोलियन के चरित्र तथा व्यक्तित्व का किस सीमा तक विकास हुआ, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। उस समय फ्रान्स की प्रशासनिक व्यवस्था भीषण रणक्षेत्र बन चुकी थी। इस परिस्थिति में नैपोलियन ने अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के नये रूप का प्रदर्शन किया। बाह्य रूप से उसने स्वयं को पराजित, निराश तथा कायर प्रदर्शित किया, लेकिन निदेशक मण्डल के विरुद्ध अपने षड्यन्त्र में सफल हुआ और स्वयं को फ्रान्स के गणतन्त्रीय शासन का उद्धारक तथा मुक्तिदाता सिद्ध किया। फ्रान्स को उस अवधि में इसी प्रकार के व्यक्ति की अतीव आवश्यकता थी। उसने फ्रान्स में व्याप्त अशान्ति अव्यवस्था तथा अराजकता को समाप्त किया। पेरिस की जनता का देश के शासन पर पूर्ण नियन्त्रण हो गया और राष्ट्र की भाग्य निर्माता बन गयी। एक बार पुनः उसने फ्रान्स को यूरोप का गौरवशाली प्रगतिशील एवं प्रतिष्ठित महान् साम्राज्य बना दिया। फ्रान्सवासियों की उत्कट इच्छा थी कि देश में शान्ति और व्यवस्था हो और देश गौरवशाली बने। नैपोलियन ने फ्रान्स की जनता को दोनों चीजें प्रदान कीं।

नैपोलियन के प्रथम कौन्सल (Consul) काल में उसकी रचनात्मक उपलब्धियाँ, उसके बहुआयामी व्यक्तित्व का एक अन्य अत्यधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। उसने क्षत-विक्षत प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया। उसने एक अन्तर्ज्ञानी प्रतिभा के रूप में, सन् 1789 की क्रान्ति के पूर्व फ्रान्स में उपलब्ध सर्वोत्कृष्ट को पुनर्जीवित किया। आलोचक कह सकते हैं कि उसने केवल लुईस सोलहवें के शासनकाल के पैतृक सम्पत्ति स्वरूप, विभिन्न उत्कृष्ट विचारों भावनाओं, सिद्धान्तों एवं आदर्शों को पुनर्जीवित किया, लेकिन उसने जो कुछ पुनर्स्थापित किया, उसकी देश को अतीव आवश्यकता थी। किसी भी समय अतीत से अनायास सम्बन्ध-विच्छेद नहीं किया जा सकता। किसी भी महान् व्यक्ति को अपनी द्रुतगति से उन्नति के प्रयास में अतीत का आश्रय लेकर नवीन स्वरूप देना पड़ता है। वह तत्कालीन परिस्थितियों

की अपेक्षाओं के अनुसार ही नया स्वरूप प्रदान करता था। नैपोलियन की उपलब्धियों के इस भाग में किसी को कोई दोष अथवा अभाव नहीं मिल सकता है।

नैपोलियन ने अपने कौन्सल काल में (सन् 1799-1804) में जनकल्याण के लिए अनेक कार्य किये। फ्रान्सवासियों को दीर्घकाल तक जनकल्याण कार्यों से लाभ हुआ। उसने बैंक ऑफ फ्रान्स की स्थापना की। इस बैंक का मुद्रा के प्रचलन पर कठोर नियन्त्रण था तथा सुदृढ़ मुद्रा प्रणाली स्थापित की और देश को अपेक्षित वित्तीय स्थिरता प्रदान करने में सहायता की। उसने सन् 1800 के उपरान्त अनेक वित्तीय समस्याओं, जिनसे अठारहवीं शताब्दी में फ्रान्स ग्रस्त रहा था, का समाधान कर दिया। संविधान सभा द्वारा सन् 1790 में स्थापित स्थानीय सरकार प्रणाली को संशोधित तथा परिवर्द्धित किया। निर्वाचित परिषदों के स्थान पर विभागों के लिए प्रीफेक्ट, जिलों के लिए सहायक-प्रीफेक्ट और कम्यून के लिए मेयर की नियुक्ति की गयी। यह प्रणाली दीर्घकालीन तथा अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई और इसका अब तक अनुसरण किया जा रहा है। इस प्रकार नैपोलियन के जन कल्याण की भावना से प्रेरित निर्देशन में क्रमानुसार अनेक सुधार किये गये।

नैपोलियन का दृढ़ विश्वास था कि एक शिक्षित राष्ट्र निश्चित रूप से सुदृढ़ तथा शक्तिशाली राष्ट्र होता है। 45 माध्यमिक विद्यालय थे और इसके 6,400 विद्यार्थी भव्य तथा विशाल विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे। भावी कुशल नेताओं के निर्माण के लिए माध्यमिक विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों का रूप आकार तथा पाठ्यक्रम बनाया गया था। पाठ्यक्रम के विषयों आदि पर सार्वजनिक शिक्षा निदेशक का पूर्ण एवं कठोर नियन्त्रण रहता था। नैपोलियन ने लिखा, "बच्चों को अब भी शिक्षित करना है कि उनको गणतन्त्रवादी, राजतन्त्रवादी, कैथोलिक धर्मानुयायी अथवा नास्तिक बनना चाहिए। यथार्थ में राज्य हो सकता है लेकिन वह राष्ट्र नहीं बन सकता है।" इसके विपरीत नारी शिक्षा का विषय गौण ही रहा। "हमको लड़कियों से चिन्तन करने के लिए नहीं कहना चाहिए," उसने मत व्यक्त किया "लेकिन उनका विश्वास करना चाहिए"। स्त्री शिक्षा का दायित्व धार्मिक संस्थाओं पर छोड़ दिया गया था।

नैपोलियन स्वयं किसी धर्म विशेष का अनुयायी नहीं था, लेकिन उसका विश्वास था कि प्रत्येक साधारण व्यक्ति को धर्म की आवश्यकता होती है। यदि शासक सामाजिक शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना चाहता है तो अपनी जनता के धर्म की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसने कहा, "यदि मैं यहूदियों पर शासन कर रहा हूँ, मुझे सोलोमन के मन्दिर को पुनर्स्थापित करना चाहिए।" वह कैथोलिक धर्मावलम्बियों पर शासन कर रहा था, अतः उसने सर्वोच्च धर्माध्यक्ष के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए कठिन परिश्रम किया। परिणामस्वरूप सन् 1801 की धर्म सन्धि हुई। यह नैपोलियन की कूटनीतिक विजय थी। इस सन्धि के परिणामस्वरूप कैथोलिकवाद को फ्रान्स के अधिकांश नागरिकों के धर्म के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गयी थी। नैपोलियन की सहृदयता के प्रत्युत्तर में पोप पियस (Pius) सातवें ने धर्माधिकारियों के लिए असैनिक संविधान के आवश्यक एवं महत्वपूर्ण प्रावधानों को स्वीकार कर लिया था। यद्यपि सम्पूर्ण उन्नीसवीं शताब्दी में धार्मिक समस्याएँ फ्रान्स के लिए कष्टप्रद बनी रहीं परन्तु धार्मिक सन्धि के विभिन्न प्रावधान सन् 1905 तक प्रवृत्त रहे।

नैपोलियन की प्रेरणा से निर्मित असैनिक कानून संहिता सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आकर्षक सुधार था। इस संहिता में फ्रान्स के प्रत्येक नागरिक के अधिकारों तथा कर्तव्यों की संक्षेप में क्रमबद्ध रूप से व्याख्या की गयी थी। संविधान सभा द्वारा रखी गयी आधारशिला पर आधारित तथा बहुआयामी प्रतिभा के धनी नैपोलियन द्वारा प्रेरित व्यावसायिक वकीलों की कुशल समिति ने असैनिक कानून संहिता का निर्माण किया था। इसके निर्माण पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि वह अपनी समस्त चालीस सैनिक विजयों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण संहिता का निर्माता था। इसके उपरान्त फौजदारी तथा वाणिज्यिक संहिताओं का निर्माण किया गया था। यह संहिताएँ भी पूर्व की भाँति बौद्धिक तथा व्यवस्थित चिन्तन से प्रेरित थीं। इस प्रकार फ्रान्स की कानून संहिता एवं प्रशासन अन्य यूरोपीय देशों के लिए उदाहरण बन गया।

प्रथम कौन्सल नैपोलियन सन् 1804 में सम्राट बन गया। तदुपरान्त नैपोलियन का पतन आरम्भ हो गया जिसको वह स्वयं भी नहीं रोक सका। जब उसने अनुभव किया कि वह पूर्ण तथा निरंकुश था, किसी प्रकार की कोई सीमा अथवा बन्धन नहीं था, उसके व्यक्तित्व की अन्तर्निहित विभिन्न दुर्बलताओं को उन्मुक्त रूप से कार्य करने का अवसर मिल गया। सन् 1804 से सन् 1815 का दशक फ्रान्स के लिए हर दृष्टि से तथा हर क्षेत्र में विनाश का काल था। इसी अवधि में नैपोलियन ने अपने भाइयों को चारों ओर राजाओं के रूप में प्रतिष्ठित करके तथा भव्य एवं गौरवशाली राजतन्त्र को पुनर्जीवित करके अपने विशाल एवं आकर्षक व्यक्तित्व को धूमिल कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने अपने सर्वोच्च सेनाध्यक्ष के पद को भी दाँव पर लगा दिया। उसके स्वयं के सफल सैनिक अभियानों के परिणामस्वरूप अद्‌भुत सैन्य कुशलता, साहस और शौर्य के भावी घातक परिणामों का अध्ययन करने में असफल रहा। उस समय तक धार्मिक प्रवृत्ति तथा उत्साह का यूरोप के निवासियों पर आधिपत्य स्थापित हो चुका था। फ्रान्स के नागरिक अपवाद नहीं थे। राष्ट्रवादी भावनाओं तथा धार्मिक उत्साह से अनुप्राणित फ्रान्स के सैनिकों की सैन्य शक्ति अभूतपूर्व थी। उसकी स्वयं की सैनिक तथा सामारिक नीतियाँ नयी नहीं रह गयी थीं। प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र उन नीतियों का अनुसरण ही नहीं कर रहा था वरन् उनमें भी समयानुकूल आवश्यक संशोधन तथा सुधार कर लिये थे।

चरितार्थ लोकोक्ति के अनुसार नैपोलियन ने जैसा बोया वैसा ही काटा। अन्त में उसका एकाकी बन्दी के रूप में देहावसान हुआ। नैपोलियन के उत्थान तथा पतन की विविध रंगी कहानी पूर्व निर्धारित थी। अनेक उत्कृष्ट गुणों के उपरान्त भी वह स्वयं अपना शत्रु था। उसका दुखान्त विश्व विख्यात नाटककार शेक्सपियर के दुखान्त नाटकों के नायकों के दुखान्त का स्मरण कराता है।

नैपोलियन का उत्थान और पतन (Napolean's Rise and Fall)

कोर्सिका द्वीप की इस महान विभूति जिसने स्वयं को फ्रान्स का सम्राट बनाया तथा यूरोप महाद्वीप पर 2 दशक तक अपना प्रभुत्व बनाये रखा, की कहानी विश्व के इतिहास में सर्वाधिक रोमांचकारी है।

सन् 1791 में नैपोलियन को सर्वप्रथम तोपखाना टुकड़ी का लेफ्टिनेंट नियुक्त किया गया था। वह तत्काल संवैधानिक राजतन्त्र के प्रबल समर्थक जैकोबिन क्लब का सक्रिय

सदस्य बन गया और शीघ्र ही इस क्लब का अध्यक्ष बन गया। उसने कुलीनों, भिक्षुकों तथा धर्माधिकारियों की कटु आलोचना करते हुए अनेक ओजस्वी भाषण दिये। शीघ्र ही उसका राष्ट्रीय सुरक्षा सेना (National Guard) के कमाण्डर के साथ तीव्र मतभेद हो गया और जनवरी, 1792 में उसको सेना से भागा हुआ सूचीबद्ध किया गया। कोर्सिका और पवोली में असैनिक (गृह) युद्ध आरम्भ होने पर राष्ट्रीय सुरक्षा सेना के कमान्डर ने नैपोलियन तथा उसके परिवार को निष्कासित कर दिया। उसकी आर्थिक स्थिति इतनी अधिक दयनीय हो गयी कि उसको विवश होकर अपनी प्रिय पुस्तकें तथा घड़ी भी बेचनी पड़ी, लेकिन जब फ्रान्स की सरकार अपने इटली के सैनिक अभियान में संकट में पड़ गयी, नैपोलियन का पुनः आह्वान किया गया। इस प्रकार भाग्य ने उसको विपत्तियों से बचा लिया।

अपनी नियुक्ति से पूर्व नैपोलियन ने फ्रान्स की क्रान्ति का हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया था। सन् 1789 की फ्रान्स की क्रान्ति की घटनाओं ने उसके सदृश व्यग्र एवं महत्वाकांक्षी नवयुवकों को कल्पनातीत अवसर प्रदान किये। प्राचीन शासन के अन्तर्गत उसकी निम्नस्तरीय पारिवारिक पृष्ठभूमि ने उसके फ्रान्स की सेना के सर्वोच्च पद तक उन्नति करने के मार्ग में व्यवधान डाला होता। सेना के सर्वोच्च पद तक उन्नति के उपरान्त महत्वाकांक्षी नैपोलियन के लिए केवल आकाश ही सीमा रह गयी थी। गिरोन्दिस्त तथा जैकोबिन के मध्य संघर्ष में उसने जैकोबिन समुदाय का प्रबल समर्थन किया था। इस अवधि में सर्वाधिक उपयोगी तथा अपेक्षित अनुकूल समय में और अनुकूल अवसर पर अपनी उपस्थिति को बनाये रखने के बहुमूल्य सिद्धान्त को अपने जीवन में कार्यान्वित करना आरम्भ कर दिया था।

जनवरी, 1791 में कोर्सिका से निष्कासित होने के उपरान्त सन् 1793 में वह पुनः तोपखाना सैनिक टुकड़ी में नाइस (Nice) में सम्मिलित हुआ था और इसी समय तोउलन से ब्रिटिश सैनिकों को निष्कासित करने के लिए तोपखाने का सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करके युद्ध तथा सामरिक नीतियों, रणकौशल, साहस एवं शौर्य का परिचय दिया था। सन् 1793 में वह तोउलन क्षेत्र में ही था कि एडमिरल हुड के नेतृत्व में ब्रिटिश नौ-सैनिक बेड़ा राजतन्त्रवादी विद्रोहियों के सहायतार्थ इस नौसैनिक अड्डे की ओर चल दिया। गणतन्त्रवादी तोपखाने के सैनिक रोगग्रस्त अथवा घायल थे और तोपखाने पर उसका अस्थायी रूप से नियन्त्रण था, लेकिन उसने इतनी कुशलता के साथ तोपखाने का संचालन एवं प्रयोग किया कि ब्रिटिश नौसैनिकों से नौसैनिक अड्डे को मुक्त करा लिया तथा राजतन्त्रवादियों को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य कर दिया। इस सफलता के परिणामस्वरूप नैपोलियन के मैक्सीमिलियन के भाई आगस्टिन रोबेस्पियेरे के साथ घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गये और नैपोलियन की पदोन्नति के लिए अनुशंसा की गयी। इस प्रारम्भिक स्थिति में भी वह अन्तर्निहित उत्कट महत्वाकांक्षा को गुप्त नहीं रख सका। तोउलन की घटना के तत्काल बाद उसके कटु स्वभाव के अनुभवी जनरल डुगुमायर (Dugumier) ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा, "यद्यपि उसका देश उसके प्रति कृतघ्न भी होता है, यह अधिकारी स्वयं ही अपनी प्रगति देखेगा।"

जैकोबिन समुदाय के पतन के उपरान्त नैपोलियन को एक माह दक्षिण फ्रान्स के एक कारागृह में व्यतीत करना पड़ा। बेरोजगार नैपोलियन ने, पेरिस में सर्वोत्कृष्ट सरकारी पदों की उपलब्धता का उचित अनुमान लगाते हुए पेरिस की ओर प्रस्थान किया। पेरिस में वह एक

साहसी राजनीतिक उद्यमी बर्रास (Barras), जिसने जैकोबिन को अपदस्थ करने में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया था और राजधानी पेरिस का प्रमुख व्यक्ति बन गया था, के दल का सक्रिय सदस्य तथा समर्थक बन गया। बर्रास को गणतन्त्रवादी सेना के तोपखाने के लिए एक अनुभवी एवं कुशल व्यक्ति की अतीव आवश्यकता थी। पेरिस का जनसमुदाय खाद्यान्नों के अत्यधिक अभाव के कारण क्षुब्ध, पीड़ित, निराश एवं उत्तेजित था और जनता ने पेरिस की सड़कों पर सरकार के विरुद्ध हिंसात्मक विद्रोह कर दिया। सशस्त्र जनसमूह बर्रास के सैनिकों की तुलना में 1 और 4 के अनुपात में था। लेकिन नैपोलियन की तोपें निर्णायक सिद्ध हुईं। स्थिति की गम्भीरता को अनुभव करते हुए उसने तत्काल अपेक्षित कार्यवाही की और जनसमूह को विघटित कर दिया। इस समस्त कार्यवाही में नैपोलियन ने बहुत कम संख्या में छोटे लोहे की गेदों का तोपों से प्रयोग किया था। कृतज्ञ बर्रास ने सर्वप्रथम नैपोलियन को सेना के जनरल के पद पर पदोन्नत किया और सन् 1796 में इटली में सैनिक अभियान का नेतृत्व प्रदान किया।

नैपोलियन और उसके सैनिक (Napolean and his Soldiers)—नैपोलियन ने फ्रान्स की जर्जर सेना का नेतृत्व करते हुए इटली के सैनिक अभियान में सार्डिनिया तथा आस्ट्रिया की शक्तिशाली संयुक्त सेनाओं पर उल्लेखनीय विजय प्राप्त करके ख्याति अर्जित की। इस अभियान में नैपोलियन के बहु आयामी व्यक्तित्व के समस्त अन्तर्निहित गुण अभिव्यक्त हो गये थे। उसके विविध गुणों को चित्रांकित करते हुए एक विद्वान इतिहासकार लिखते हैं, "स्वस्थ युवा की शक्ति और उत्सुकता और भावावेग में प्रेरणा, जिसका अब तक मोहभंग नहीं हुआ था, से प्रेरित नैपोलियन को अपनी सामरिक कुशलता, तोपखाने के अपेक्षाकृत नये, विज्ञान की पूर्ण दक्षता सिद्ध करनी थी तथा असीमित गतिविधियाँ प्रदर्शित करनी थीं जो उसके विरोधियों को आश्चर्यचकित कर दें तथा उनकी योजनाओं को ध्वस्त कर दें। अपने आगमन के तीसरे दिन उसने 110 श्रमिक सड़क निर्माण के लिए भेजे, एक ब्रिगेड में विद्रोह का दमन किया, तोपखाने की दो डिवीजनों को ठहराया, घोड़ा-चोरी के विषय में आदेश दिये और दो जनरलों के नेतृत्व के सम्बन्ध में प्रार्थनाओं के उत्तर दिये, एक जनरल को एन्टीबिस में स्थित राष्ट्रीय सुरक्षा सेना (National Guard) के आह्वान का आदेश दिया, विद्रोही ब्रिगेड में सर्वाधिक कुशल अधिकारी की खोज का एक अन्य आदेश दिया, समस्त कर्मचारियों को सम्बोधित किया, सैनिकों का पुनरीक्षण किया तथा प्रत्येक दिन के आदेश दिये। क्या वे स्वयं उस जनरल की तुलना कर सकते थे जो सैनिक अभियान के साथ-साथ गृह (फ्रान्स) स्थित निदेशकों के साथ पत्र-व्यवहार करता था और जिसमें प्रत्येक ठहरने के स्थान से प्रणय-पत्र लिखने की शक्ति रहती थी।"

इटली का अभियान (Italian Compaign) (1796-97)—अप्रैल, 1796 से अप्रैल, 1797 तक नैपोलियन के इटली अभियान को एक इतिहासकार ने संक्षेप में व्यक्त किया है, "वह आया, उसने देखा, उसने विजय प्राप्त की।" नैपोलियन इटली में आस्ट्रिया तथा सार्डिनिया की शक्तिशाली संयुक्त सेनाओं के विरुद्ध फ्रान्स की निर्बल, जर्जर तथा निराश सेना का नेतृत्व करने के लिए गया था। उसकी नीति थी कि शत्रु संगठित नहीं हो सके और एक-एक करके परास्त करो। सर्वाधिक कुशलता के साथ उसने निराश सैनिकों में नवीन उत्साह, साहस तथा चेतना का संचार किया और कुछ ही सप्ताहों में आस्ट्रिया की सेना को

ध्वस्त करके, विजेता के रूप में मिलन में प्रवेश किया। उसने आस्ट्रिया की सेना को पराजित करके पूर्व की ओर भगा दिया और सार्डिनिया के विरुद्ध संघर्ष किया, उनको पराजित किया। सार्डिनिया ने सन्धि का प्रस्ताव रखा और सेवाय (Savoy) और नाइस प्रान्त फ्रान्स को दे दिये। जून, 1796 से जनवरी, 1797 की अवधि में उसने आस्ट्रिया पर अनेक आक्रमण करके आस्ट्रियां को 17 अक्टूबर, 1797 में कैम्पो फ़ोरमियो (Campo Formio) की सन्धि करने के लिए बाध्य कर दिया। इस सन्धि के द्वारा फ्रान्स का अपनी पूर्वी सीमा पर राइन नदी के तट तक तथा समस्त बेल्जियम पर पूर्ण नियन्त्रण हो गया। फ्रान्स की जनता ने इन चमत्कारिक विजयों का हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया तथा नैपोलियन के सैनिकों ने उसके प्रति अपूर्व श्रद्धा व्यक्त की। वह सैनिकों का उपास्य बन गया। उसने अभूतपूर्व साहस और मृत्यु के प्रति घृणा अभिव्यक्त की थी।

इटली के गौरवपूर्ण विजय अभियान से नैपोलियन के फ्रान्स लौटने पर निदेशक मण्डल अत्यधिक अशान्त था। निदेशकों ने नैपोलियन के समक्ष ब्रिटेन पर आक्रमण करने का प्रस्ताव रखा। वह भलीभाँति जानता था कि यह कार्य कठिन ही नहीं वरन् असम्भव था। इसकी अपेक्षा उसने भारत की ओर फ्रान्स की सेना के नेतृत्व की उत्कट कामना से प्रेरित होकर, ब्रिटेन अधिकृत, फ्रान्स के निकटवर्ती पूर्वी देशों पर आक्रमण करने का प्रस्ताव रखा। उसने मत व्यक्त किया कि ब्रिटेन की शक्ति भूमध्यसागरीय तथा एशियायी वाणिज्य में निहित थी। मिस्र पर आधिपत्य स्थापित करो और एक ही चोट में यह वाणिज्य अस्त-व्यस्त हो जायेगा और ब्रिटिश साम्राज्यिक मुकुट का सर्वाधिक द्युतिमान हीरा भारत उसकी मुट्ठी में होगा। उसकी पूर्वी देशों विशेष रूप से भारत पर आधिपत्य स्थापित करने की उत्कट कामना थी। इटली के सफल अभियान में द्वितीय सिकन्दर के गौरव से अभिभूत तथा सिकन्दर की सेनाओं द्वारा हिन्द महासागर तक विजय अभियान ने नैपोलियन को उद्वेलित तथा प्रोत्साहित किया था।

मिस्र के विरुद्ध प्रस्थान (March against Egypt)—अस्तु 19 मई, 1798 में नैपोलियन ने मिस्र के लिए कूंच किया। ब्रिटिश नौ-सैनिक बेड़े से बचते हुए वह मिस्र पहुँच गया। मार्ग में उसने माल्टा पर आधिपत्य स्थापित किया। पिरामिडों के युद्ध में विजय प्राप्त की और नील नदी के तटीय क्षेत्र पर उसका पूर्ण नियन्त्रण हो गया। सन् 1798 में नील नदी के युद्ध में एड्मिरल नैल्सन ने उसको पराजित किया। फ्रान्स का नौ-सैनिक बेड़ा पूर्णतया ध्वस्त हो गया और नैपोलियन का फ्रान्स से सम्बन्ध टूट गया। उसने सीरिया पर आक्रमण किया परन्तु अक्रे (Acrė) पर आधिपत्य स्थापित करने में असफल रहा। सन् 1799 में वह किसी प्रकार फ्रान्स वापिस पहुँचा। मिश्र से ही उसको सूचना मिल चुकी थी कि यूरोपीय राष्ट्रों ने फ्रान्स के विरुद्ध द्वितीय गुट का गठन कर लिया था। इंग्लैण्ड ने धन की सहायता से आस्ट्रिया एवं रूस के साथ मिलकर द्वितीय गुट का गठन किया था। आस्ट्रिया ने इटली पर पुनः विजय प्राप्त करके नैपोलियन की समस्त उपलब्धियों को निरर्थक कर दिया। फ्रान्स लौटने से पूर्व उसकी निराश एवं निर्बल सेना मिस्र की ओर गयी। युद्ध में पराजय के कारण उसमें विचित्र क्रूरता एवं निर्दयता आ गयी। उसके क्रूर आदेश पर 3,000 बन्दियों की नृशंस हत्या कर दी गयी। फ्रान्स की सेना के गम्भीर रूप से घायल सैनिकों जिनके जीवित बचने की कोई आशा नहीं थी, को अफीम की अधिक मात्रा देकर हत्या करवा दी। वह लौटकर

मिस्र आया, लेकिन अपने सैनिकों को वहीं छोड़कर नैल्सन की सतर्क दृष्टि से बचता हुआ पेरिस लौट आया।

नैपोलियन के चरित्र के विशेष गुणों को चित्रित करते हुए विद्वान इतिहासकार लिखता है, "वह कैरो (Cairo) के दीवान की चाटुकारी कर सकता था, कुरान से उद्धरण दे सकता था, तर्क दे सकता था कि नास्तिक फ्रान्स ईसाई धर्मावलम्बी की अपेक्षा मुस्लिम मतावलम्बी अधिक था, उनके तत्काल धर्म परिवर्तन का निष्कर्ष निकाल सकता था, फ्रान्स की सेना के लिए मस्जिद की योजना बना सकता था, उसने कहा कि फ्रान्स की सेना को, तत्कालीन परिस्थितियों की आवश्यकता तथा मदिरा निषेध ने अल्लाह तथा उसके प्रवर्तक (पैगम्बर) को स्वीकार करने से रोक लिया था। फ्रान्स से अनेक सप्ताह तक समाचारों की प्रतीक्षा करने के बाद उसने वैज्ञानिक तथा पुरातात्विक गतिविधियों की ओर ध्यान दिया जिसने उसको आधुनिक मिस्र के ज्ञान का सर्वाधिक महान् प्रशंसक बना दिया। उसकी सेना को मानसिक वेदना तथा पीड़ा से मुक्त करने के लिए अंगूर की बेल लगायी गयी तथा खाद्यान्नों की उपज की गयी। बेकरी, पवन चक्की, दलाईखाने, जूतों की दुकानें और बारूद बनाने के कारखाने स्थापित किये गये। नील नदी के खनिजों और प्राकृतिक झीलों का पता लगाया गया। खगोल शास्त्रीय तथा भू-गर्भ शास्त्रीय सर्वेक्षण किये गये। चिकित्सकों ने प्राच्य रोगों के कारणों का पता लगाने के लिए अनुसन्धान किये। पुरातत्वशास्त्रियों ने मेमफिस के मन्दिरों तथा भोज के कुओं की खोज की। एक अभियन्ता को रोसेट्टा में एक त्रिभाषीय उत्कीर्णित शिलालेख प्राप्त हुआ जिसने चित्रलिपि की गूढ़ समस्या का समाधान कर दिया। जनरल स्वयं स्वेज गया, पुराने नगर के मार्ग का पता लगाया, नई नहर की योजना बनायी जिसकी पचास वर्ष बाद लेसैप्स ने पुष्टि कर दी।"

"उसके वापिस आने पर निदेशक आतंकित थे। उन्होंने उसको मृत मान लिया था। इसी प्रकार जोसेफाइन (उसकी पत्नी) ने मान लिया था जिसके दुश्चरित्र तथा निम्नस्तरीय आचरण ने उसके प्रथम समर्पण की सुन्दर आस्था की हत्या कर दी थी। निरंकुश, अहंवादी बनना ही एकमात्र मार्ग शेष रह गया था।" भावावेश में तीस वर्षीय जनरल ने मन की आन्तरिक पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहा था। उसके फ्रान्स पहुँचने पर जनता हर्षोल्लास से सड़कों पर नाचने-गाने लगी और लोग एक दूसरे का आलिंगन करने लगे। नैपोलियन ने अपने एक सहयोगी से कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्ति मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। यदि मैं कुछ समय पूर्व आता तो बहुत शीघ्रता होती, यदि मैं कुछ समय बाद आता तो बहुत विलम्ब हो जाता। मैं ठीक समय पर आया हूँ। अब नाशपाती पक चुके हैं।"

निदेशक अत्यधिक हतोत्साहित थे। नैपोलियन ने सियेस (Sieyes) की सहायता से षड्यन्त्र की रचना की। 500 सदस्यों वाली परिषद् तथा निदेशक मण्डल को 9 नवम्बर, 1799 के तीन कौन्सल नियुक्त करने के लिए बाध्य किया। ज्येष्ठों (Elders) और 500 सदस्यों ने समर्थन किया। डायरेक्टरी को समाप्त कर दिया एवं सियेस (Sieyes), ड्यूकोज (Ducos) और बोनापार्ट तीन कौन्सल नियुक्त किये। तीनों कौन्सलों ने एक ओर अविभाज्य स्वतन्त्रता, समानता और सरकार की प्रतिनिधि प्रणाली के प्रति निष्पक्षता का वचन दिया।

सन् 1799 का संविधान (Constitution of 1799)—क्रान्ति आरम्भ होने से चौथा संविधान 'आठवें वर्ष का संविधान' (The Constitution of the year VIII, 1799)

शीघ्रता से बनाया गया और राज्य सैनिक विप्लव के एक माह बाद प्रवृत्त किया गया। यह संविधान बोनापार्ट ने स्वयं बनाया था और इसका मुख्य उद्देश्य सर्वोच्च सत्ता स्वयं में निहित करना था। इसमें अन्य संविधानों द्वारा प्रस्तावित प्रावधानों को रखा गया, जो उसकी सर्वोच्च सत्ता को किसी प्रकार प्रभावित नहीं करते थे। परिणामस्वरूप गणतन्त्र के इस चरण का गठन, कौन्सुलेट के नाम से विख्यात है और इसकी अवधि सन् 1799 से सन् 1804 तक थी।

कार्यपालिका शक्ति तीन कौन्सल में निहित थी। इनका निर्वाचन 10 वर्ष के लिए होना था। वे पुनः चुनाव के योग्य थे। समस्त सत्ता प्रथम कौन्सल में निहित थी। यथार्थ में नैपोलियन ही सर्वोच्च था। तदुपरान्त नैपोलियन चतुरता तथा कूटनीति से सन् 1802 में प्रथम कौन्सल बनने में सफल हो गया। संविधान में 4 सभाओं (Assemblies), राज्य परिषद् (Council of State), न्यायाधिकरणों (Tribunate), विधायी संस्था (Legislative Body), और सीनेट (Senate) का प्रावधान था। क्रान्ति के महान् दृढ़ कथन जनता की प्रभुसत्ता की काल्पनिकता को बनाये रखने के लिए व्यापक प्रशासनिक तन्त्र की व्यवस्था थी। व्यावहारिक दृष्टि से लोकप्रिय प्रभुसत्ता समाप्त हो चुकी थी। बोनापार्ट ही वास्तविक राजा था। उसके पास सन् 1791 के संविधान में लुईस सोलहवें को प्रदत्त कार्यपालिका शक्तियों की अपेक्षा अधिक व्यापक शक्तियाँ थीं। यथार्थ में विधायी शक्ति भी उसमें निहित थी। उसके आदेश से तैयार किये गये विधेयक पर ही चर्चा और मतदान हो सकता था। फ्रान्स केवल नाम के लिए गणतन्त्र था। व्यावहारिक दृष्टि से पूर्ण राजतन्त्र था। बोनापार्ट की स्थिति दैवी अधिकार सम्पन्न राजा के अनुरूप ही थी। एक अपवाद यही था कि वह 10 वर्ष के लिए था और अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार नहीं था।

नैपोलियन की केन्द्रीकृत शासन प्रणाली (Napolean's Centralised Administrative System)—प्रथम कौन्सल ने एक अधिनियम पारित करवाकर समस्त स्थानीय सरकार अपने अधीन कर ली। प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष के रूप में प्रीफैक्ट, प्रत्येक प्रान्त के लिए उप-प्रीफैक्ट और प्रत्येक नगर अथवा कम्यून के लिए मेयर नियुक्त किया गया। नागरिकों की स्थानीय विषयों की व्यवस्था करने के अधिकार समाप्त कर दिये गये। राष्ट्रीय और स्थानीय सरकार पेरिस में बोर्बोन शासनकाल की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली ढंग से केन्द्रित थी।

नैपोलियन ने द्वितीय गुट की ओर ध्यान दिया। कारनट के अथक परिश्रम से जनता के नवयुवकों की संगठित सेना द्वितीय गुट के सहयोगी देशों को सफलतापूर्वक आगे बढ़ने से रोके हुए थी। नैपोलियन ने द्वितीय गुट को नष्ट करने के लिए इटली होकर आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। आस्ट्रिया ने पराजय के उपरान्त 9 फरवरी, 1801 में ल्यूनविले में नैपोलियन से सन्धि कर ली। तदुपरान्त नेपल्स ने भी आत्मसमर्पण कर दिया।

इंग्लैण्ड के साथ सन्धि (Treaty with England)—इसी अवधि में रूस, आस्ट्रिया से कुछ विषयों पर मतभेद के कारण द्वितीय गुट से विलग हो गया था। द्वितीय गुट का शेष एकमात्र सदस्य इंग्लैण्ड ही फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। अन्ततोगत्वा 27 मार्च, 1802 में फ्रान्स एवं इंग्लैण्ड के मध्य अमीन्स (Amiens) के स्थान पर सन्धि हो गयी। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार इंग्लैण्ड ने नैपोलियन के नेतृत्व में गठित फ्रान्स की सरकार को मान्यता प्रदान कर दी और विजित उपनिवेश फ्रान्स को वापिस कर दिये एवं माल्टा को खाली करने का आश्वासन भी दिया।

युद्धों से मुक्त होने के बाद (संन् 1792 के उपरान्त) पहली बार फ्रान्स में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित हुई। इस शान्ति एवं व्यवस्था की स्थिति ने नैपोलियन को फ्रान्स का पुनर्गठन करने तथा क्रान्तिकालीन अराजकता तथा अस्त-व्यस्तता में सुधार करने का सुअवसर प्रदान किया। उसने देश के कानूनों को सरल बनाया तथा कठोरता के साथ प्रवृत्त किया। देश की वित्तीय स्थिति में सुधार किया। फ्रान्स की बैंक स्थापित की और व्यापार एवं उद्योग को प्रोत्साहित किया। उसने रोमन कैथोलिक धर्म को पुनः राष्ट्रीय धर्म घोषित कर दिया। (क्रान्ति की अवधि में चर्च को उत्पीड़ित किया गया था) और नवीन सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का शुभारम्भ किया। इन वर्षों में उसने सर्वाधिक उपयोगी एवं दीर्घकालीन कार्य किये। 2 दिसम्बर, 1804 को वह अपने जीवन की चिरसंचित महत्वाकांक्षा के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया।

2 दिसम्बर, 1804 को नैपोलियन ने नोटरडम के विख्यात गिरिजाघर में आयोजित भव्य समारोह में फ्रान्स के सम्राट के रूप में अपना राज्याभिषेक किया तथा अपनी पत्नी को साम्राज्ञी घोषित किया। उसका दरबार भव्यता एवं गौरव का केन्द्र बन गया। वह वैज्ञानिक आविष्कारों तथा कला को निरन्तर प्रोत्साहित करता रहा।

इंग्लैण्ड के विरुद्ध संघर्ष (War against England)

मार्च, 1802 में इंग्लैण्ड और फ्रान्स के मध्य अमीन्स की सन्धि केवल युद्ध विराम थी। दोनों में परस्पर अविश्वास की भावना थी और दोनों ही भावी युद्ध के लिए तैयारी में व्यस्त थे। अंग्रेजों ने नैपोलियन के समक्ष, हालैण्ड तथा स्विट्ज़रलैण्ड खाली करने, माल्टा पर इंग्लैण्ड के नियन्त्रण को बनाये रखने तथा सार्डिनिया के राजा को पीडमोण्ट के बदले समुचित क्षति-पूर्ति की माँग प्रस्तुत की परन्तु नैपोलियन ने इन समस्त माँगों को अस्वीकार कर दिया। 18 मई, 1803 को इंग्लैण्ड ने फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यथार्थ में यह दो यूरोपीय औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी राष्ट्रों के मध्य औपनिवेशिक हितों की सुरक्षा के लिए युद्ध था। इंग्लैण्ड फ्रान्स को पूर्णतया पराजित तथा क्षीण करके समस्त यूरोप एवं एशिया में अपनी व्यापारिक गतिविधियों का प्रसार करना चाहता था तथा फ्रान्स भी इंग्लैण्ड की शक्ति को क्षीण करके समस्त यूरोप पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था।

फ्रान्स का इतिहास 10 वर्षीय अनवरत युद्ध का इतिहास है। फ्रान्स के निरन्तर बढ़ते हुए घमण्डपूर्ण उत्कर्ष एवं प्रभुत्व समस्त यूरोप के राज्यों की स्वतन्त्रता और व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए संकट था। नैपोलियन ने इंग्लैण्ड को पराजित करने तथा उसकी व्यापारिक गतिविंधियों को क्षतिग्रस्त करने के लिए हेनोवर पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और जर्मनी के समस्त बन्दरगाह इंग्लैण्ड की व्यापारिक गतिविधियों के लिए बन्द कर दिये। सन् 1804 में इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री कनिष्ठ पिट ने आस्ट्रिया, रूस और स्वीडन को सम्मिलित करके तीसरा गुट बना लिया। बवेरिया तथा वुर्टम्बर्ग फ्रान्स के साथ सम्मिलित हो गये। नैपोलियन ने इंग्लैण्ड की अपेक्षा आस्ट्रिया पर आक्रमण करके 20 अक्टूबर, 1805 को उल्म पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। 21 अक्टूबर, 1805 को फ्रान्स एवं इंग्लैण्ड के मध्य विख्यात ट्राफल्गर (Trafulger) का नौ-सैनिक युद्ध हुआ और फ्रान्स एवं स्पेन के नौ-सैनिक बेड़े पूर्णतया ध्वस्त हो गये। निस्सन्देह ब्रिटेन की नौ-सैनिक शक्ति सर्वोत्कृष्ट थी। इस युद्ध में

नौ-सैनिक एडमिरल नैल्सन शहीद हो गया। ट्राफल्गार की पराजय के उपरान्त फ्रान्स ने नौ-सेना द्वारा इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने का विचार सदैव के लिए त्याग दिया।

आस्ट्रिया के विरुद्ध नैपोलियन का तीसरा अभियान (Third Armed Compaign against Austria)—2 दिसम्बर, 1805 के आस्टरलिट्ज के युद्ध में नैपोलियन ने प्रशा और आस्ट्रिया की संयुक्त सेनाओं को पराजित किया और आस्ट्रिया ने बाध्य होकर 25 दिसम्बर, 1805 को फ्रान्स के साथ प्रेसबर्ग की सन्धि की। सन्धि के प्रावधान के अनुसार आस्ट्रिया ने फ्रान्स को वेनेशिया तथा डालमेशिया, बवेरिया को टायरौल तथा वुर्टम्बर्ग को बैडेन के क्षेत्र दिये। इस सन्धि के माध्यम से नैपोलियन 'राजाओं' का निर्माता' बन गया और जर्मनी का पुनः निर्माण हो गया। अनेक छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त करके 'राइन राज्य संघ' का गठन किया गया। इसमें बवेरिया, वुर्टम्बर्ग तथा जर्मनी के 14 छोटे राज्य सम्मिलित थे और इस संघ ने नैपोलियन को अपना संरक्षक स्वीकार किया। तदुपरान्त 6 अगस्त, 1806 को एक हजार वर्षों से चले आ रहे पवित्र रोमन साम्राज्य को समाप्त कर दिया। 'राइन राज्य संघ' के गठन के बाद नैपोलियन ने आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस को 'पवित्र रोमन सम्राट' का पद त्याग करने के लिए बाध्य कर दिया। इस प्रकार औपचारिक दृष्टि से पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया।

प्रशा जर्मनी का प्रमुख राज्य तत्कालीन अव्यवस्था तथा अराजकता से लाभ उठाकर अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करना चाहता था। जर्मनी में नैपोलियन के हस्तक्षेप से प्रशा के औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी हितों को आघात पहुँचा। 14 अक्टूबर, 1806 के जेना तथा आवरस्टेट के युद्धों में नैपोलियन ने प्रशा को परास्त किया। युद्धोपरान्त सन्धि के अनुसार हालैण्ड के एक भाग पर 'वासी की डची' नाम के नये राज्य का गठन किया गया और नैपोलियन के एक मित्र सैक्सनी को इसका अध्यक्ष बनाया गया। प्रशा की सेना में पर्याप्त कमी कर दी गयी और क्षतिपूर्ति का भुगतान न करने तक फ्रान्स की सेना के रहने का प्रावधान था।

टिलसिट की सन्धि (Treaty of Tilsit)—प्रशा के विनाश के उपरान्त नैपोलियन ने रूस पर आक्रमण कर दिया और इलो के युद्ध में दोनों पक्षों की अपार धन-जन की क्षति के उपरान्त भी युद्ध अनिर्णीत ही रहा परन्तु 14 जून, 1807 को फ्रीडलैण्ड के युद्ध में रूस की अपमानजनक पराजय हुई और विवश होकर जुलाई 1807 में टिलसिट के स्थान पर सन्धि हुई, जो नैपोलियन के चरमोत्कर्ष की प्रतीक थी। इस सन्धि के अनुसार रूस ने, हालैण्ड, जर्मनी तथा इटली में नैपोलियन द्वारा किये गये परिवर्तनों को मान्यता प्रदान कर दी। प्रशा के विघटन को स्वीकार कर लिया एवं इंग्लैण्ड के साथ व्यापार न करने का वचन दिया। यह सन्धि रूस तथा फ्रान्स के घनिष्ठ सम्बन्धों का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थी। नैपोलियन एक बार पुनः विजयी हुआ एवं तृतीय गुट के ब्रिटेन एवं स्वीडेन के अतिरिक्त अन्य देशों को पर्याप्त दण्ड दे चुका था।

सन् 1805 और 1806 के विजय अभियान नैपोलियन के साहसी, निर्भीक एवं कुशल सैनिक नेतृत्व का सर्वाधिक गौरवपूर्ण एवं आकर्षक अध्याय थे। उसने यूरोप के सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली तीन राज्यों आस्ट्रिया, रूस एवं प्रशा के मनोबल को क्षत-विक्षत कर दिया था। कुछ विद्वानों ने विचार व्यक्त किया कि मानो चार्लमेग्ने (Charlemagne) अथवा

जूलियस सीजर का आविर्भाव हो गया था परन्तु कुछ पूर्वज्ञानी तथा दूरदर्शी व्यक्ति... मत व्यक्त किया कि यह झंझावात शीघ्र ही निकल जायेगा जैसे यह आया था। नेपो... की विजय, नवीन पद्धतियों पर प्रशिक्षित, अनुशासित, साहसी, सुसज्जित एवं वीर सैनिक ... विजय थी जब कि यूरोप के राष्ट्र अतीत की परम्परागत तथा संकीर्ण युद्ध एवं सामरिक नीति... का अनुकरण कर रहे थे। यह जनता की आकांक्षाओं से उद्भूत नवीन सरकार तथा प्राचीन... सिद्धान्तों एवं आदर्शों पर गठित सरकारों के मध्य संघर्ष था।

सन् 1807 तक फ्रान्स की क्रान्ति पीछे रह गयी थी और यूरोप पर फ्रान्स की अपेक्षा एक व्यक्ति नैपोलियन का प्रभुत्व था। उसने अपनी भावनाओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप यूरोप को पुनर्व्यवस्थित किया था। अब यूरोप में सैनिक दृष्टि से अन्य कोई शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी नहीं था और रूस के जार के साथ नैपोलियन के घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उसने समस्त राजतन्त्रीय सुख-सुविधाओं, यश एवं सत्ता में अपने परिवार के सदस्यों को सक्रिय भागीदार बनाया। अपनी सहज, सरल एवं साधारण गृहिणी को एक भव्य समारोह में राजमाता के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया। अपने छोटे भाई जोसेफ को पहले नेपल्स का और कालान्तर में स्पेन का राजा बनाया। दूसरे भाई लुईस को हालैण्ड का तथा एक अन्य भाई जैरोम को वेस्टफेलिया का राजा बनाया। इस प्रकार नैपोलियन किसी व्यक्ति को मारने तथा जीवित रखने वाला देवता बन गया।

इंग्लैण्ड के साथ युद्ध (War with England)—टिलसिट की सन्धि के उपरान्त इंग्लैण्ड ही एक मात्र अविजित फ्रान्स का शत्रु देश शेष रह गया था और उसे पराजित किये बिना समस्त यूरोप पर प्रभुत्व स्थापित करना सम्भव नहीं था। इंग्लैण्ड भौगोलिक दृष्टि से चारों ओर से गहरे समुद्र से घिरे होने के कारण पूर्णतया सुरक्षित था। उसका नौ-सैनिक बेड़ा भी विश्व में सर्वोत्कृष्ट था, अस्तु सदैव अजेय माना जाता था। लेकिन इंग्लैण्ड की शक्ति तथा जनजीवन का मूल आधार उसकी व्यापारिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियाँ ही थीं।

आर्थिक युद्ध (Economic War)—नैपोलियन का विश्वास था कि इंग्लैण्ड के वाणिज्य और व्यापार पर अंकुश लगाकर पराजय स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा सकता था। अस्तु इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था को आघात पहुँचाने के उद्देश्य से उसने 'महाद्वीपीय प्रणाली' अथवा व्यापार बहिष्कार नीति का सूत्रपात किया। इसके अन्तर्गत यूरोप के देशों को नैपोलियन के अनेक आज्ञा-पत्रों का पालन करते हुए इंग्लैण्ड का आर्थिक बहिष्कार करना था और इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति को अत्यधिक दयनीय बनाकर अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य करना था।

बर्लिन का आदेश (आज्ञप्ति) (Decree of Berlin)—21 नवम्बर, 1806 को नैपोलियन ने बर्लिन आदेश के माध्यम से ब्रिटिश दीप समूह के विरुद्ध महाद्वीपीय नाकेबन्दी (Continental Blockade) की घोषणा की और इंग्लैण्ड एवं उसके समस्त उपनिवेशों के साथ यूरोपीय व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इंग्लैण्ड के मालवाहक जलयानों के लिए यूरोप के समस्त बन्दरगाहों पर प्रवेश नाकाबन्दी कर दी। अतिक्रमण करने वाले व्यापारी जलयानों को माल के साथ अधिहरण के आदेश के दिये। तदुपरान्त 25 जनवरी, 1807 को नैपोलियन ने वारसा आदेश प्रवृत्त करके प्रशा तथा हेनोबर के समुद्र तटों पर भी इंग्लैण्ड के साथ व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इन दो आदेशों के प्रत्युत्तर में इंग्लैण्ड ने 27 जनवरी, 1807 को 'परिषद् में आदेश' (Orders in Council) अध्यादेश की घोषणा की। इसके अनुसार फ्रान्स अथवा मित्रराष्ट्रों के जलयान उसके (इंग्लैण्ड) के सामुद्रिक प्रभाव क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकते थे और किसी प्रकार स्वतन्त्र व्यापार नहीं कर सकते थे। विद्वान हालैण्ड रोज ने इस सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया है, "नैपोलियन का इंग्लैण्ड की नाकेबन्दी का आदेश एक धमकी मात्र था, परन्तु इस धमकी के प्रत्युत्तर में ब्रिटेन ने उपनिवेशों के माल पर नैपोलियन अधिकृत राज्यों में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया।"

इंग्लैण्ड के आदेश से उद्वेलित होकर नैपोलियन ने 7 दिसम्बर, 1807 को मिलन से पूर्वापेक्षा अत्यधिक कठोर अध्यादेश प्रचलित किया। इसके अनुसार ब्रिटिश अधिकृत तटों से होकर आने वाले किसी भी देश के मालवाहक जलयान को पकड़ लिया जायेगा और उसके समस्त माल का अधिहरण कर लिया जायेगा।

इंग्लैण्ड के व्यापारिक प्रभुत्व को समाप्त करके फ्रान्स को यूरोपीय व्यापारिक केन्द्र बनाने के राष्ट्रवादी उद्देश्य से प्रेरित महाद्वीपीय व्यवस्था निस्सन्देह नैपोलियन की दूरदर्शिता तथा कूटनीति की प्रतीक थी, परन्तु इस प्रणाली के कठोर कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप फ्रान्स अत्यधिक विनाशकारी युद्धों में व्यस्त हो गया। इंग्लैण्ड की नौ-सैना ने यूरोपीय बन्दरगाहों की इतनी कठोर नाकेबन्दी की कि यूरोपीय देशों के अपने औपनिवेशिक देशों से ही सम्बन्ध टूट गये। यूरोप में माल का आवागमन अवरुद्ध हो गया। नैपोलियन की प्रबल इच्छा थी कि इस नीति के माध्यम से फ्रान्स के उद्योगों को नये बाजार मिलेंगे और फ्रान्स औद्योगिक तथा व्यापारिक दृष्टि से विकसित हो जायेगा परन्तु तत्काल फ्रान्स में विभिन्न उद्योगों का विकास सम्भव नहीं था। समस्त अपेक्षित वस्तुओं का उत्पादन भी नहीं होता था। फ्रान्स में उत्पादित वस्तुओं का स्तर अपेक्षाकृत निम्न होता था और मूल्य अधिक होते थे। महाद्वीपीय व्यवस्था से यूरोपीय व्यापार की अत्यधिक अवनति हुई। अपेक्षित आवश्यक वस्तुओं के अभाव से जनसामान्य का जीवन असह्य हो गया और तस्कर व्यापार में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। अस्तु वस्तुओं के मूल्य में भी वृद्धि हो गयी।

महाद्वीपीय प्रणाली (Continental System)—यूरोपीय राष्ट्रों ने महाद्वीपीय व्यवस्था का भी समर्थन नहीं किया परन्तु अधीनस्थ राज्यों ने विवश होकर सहयोग दिया था। स्वीडेन, हालैण्ड एवं रोम ने इसका विरोध किया था, यद्यपि यूरोपीय शक्तियों ने प्रतिशोध का विचार त्याग दिया था। जर्मनी, इटली और रूस, फ्रान्स के अधीनस्थ रहने के लिए तत्पर नहीं थे। ब्रिटेन, नौ-सैना पूर्ववत ही शक्तिशाली थी एवं फ्रान्स से प्रतिशोध लेने के लिए कृत संकल्प था।

नैपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था ने स्वयं के लिए अनेक राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विपत्तियों को आमन्त्रित किया था। ब्रिटेन पर भी इसका प्रभाव पड़ा। बेकारी की विकट समस्या उत्पन्न हो गयी। आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी एवं व्यापारिक गतिविधियाँ बहुत कम हो गयीं। ब्रिटिश सरकार नवीन उपनिवेशों से खाद्यान्न का आयात करने में असमर्थ थी, लेकिन यूरोपीय राष्ट्रों से पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न मिल रहा था, अस्तु आत्मसमर्पण का प्रश्न ही नहीं उठता। मारखम फेलिक्स (Markham Felix) मत व्यक्त करते हैं, "नैपोलियन ने अपनी महाद्वीपीय प्रणाली के द्वारा यूरोप की जनता को ही साम्राज्य के विरुद्ध उत्तेजित नहीं

किया वरन् उसने फ्रान्स के मध्यम वर्ग, जिसने उसे सत्ता प्रदान की थी, का भी विश्वास खो दिया।"

पुर्तगाल और स्पेन के साथ युद्ध (War with Portugal and Spain)—सन् 1807 में पुर्तगाल ने नैपोलियन की महाद्वीपीय व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया तथा इंग्लैण्ड से अपने पुराने मैत्री सम्बन्ध समाप्त करने से मना कर दिया। नैपोलियन ने स्पेन के साथ षड्यन्त्र रचकर पुर्तगाल पर आक्रमण कर दिया और पराजित करके पुर्तगाल का फ्रान्स में विलय कर लिया। इस अवसर पर नैपोलियन ने कहा था, "ब्रागांजा वंश का पतन इस बात का एक और प्रमाण है कि जो कोई ब्रिटिश सरकार का दामन पकड़ता है, उसका विनाश अनिवार्य है।" हालैण्ड में नियुक्त उसके भाई लुईस बोनापार्ट ने नैपोलियन के स्वभाव तथा मनोवृत्ति के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया था, "इंग्लैण्ड से आरम्भ संघर्ष के विरुद्ध वह कोई प्रतिरोध अथवा कोई शिकायत नहीं सुनता था तथा राजनीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के समस्त सिद्धान्तों की उपेक्षा करते हुए अपनी नीति को कार्यान्वित करता जा रहा था।" यथार्थ में महाद्वीपीय प्रणाली के नैपोलियन के लिए बहुत घातक परिणाम हुए। यद्यपि उसने अपने कष्टों तथा समस्याओं के निदान के लिए अथक संघर्ष किया, लेकिन मित्र राष्ट्रों को सर्वाधिक लाभ हुआ। अन्ततोगत्वा नैपोलियन यूरोपीय मंच से अस्त हो गया।

निराश पुर्तगालवासियों ने अपने पुराने मित्र इंग्लैण्ड से सहायता की याचना की। प्रत्युत्तर में ब्रिटिश नौ-सैनिक बेड़ा पुर्तगाल में आ गया और जैसे-जैसे नैपोलियन की समस्याएँ एवं विपत्तियाँ बढ़ती गयीं, ब्रिटिश सेनाएँ स्पेन के माध्यम से अन्त में फ्रान्स में प्रवेश कर गयीं। यह नैपोलियन युग का अन्तिम चरण था।

पुर्तगाल में नैपोलियन की सफलता ने स्पेन पर आक्रमण करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। पुर्तगाल में फ्रान्स तथा स्पेन का संयुक्त अभियान था। अस्तु अपने मित्र देश स्पेन मे फ्रान्स की सेनाएँ भेजने का अवसर मिल गया था। स्पेन ने सदैव फ्रान्स की सहायता की थी परन्तु साम्राज्यवादी अधिनायकतन्त्र अपनी महत्वाकांक्षाओं तथा हितों की पूर्ति के लिए मित्रों को भी नहीं छोड़ते और आक्रमण के लिए सहज ही कारण खोज लेते हैं। इस समय स्पेन का शासक चार्ल्स एक अयोग्य एवं निष्क्रिय व्यक्ति था। उसका पुत्र फर्डिनेण्ड भी अपने पिता से असन्तुष्ट था। पिता-पुत्र दोनों के मध्य ईर्ष्या, द्वेष तथा वैमनस्य रहता था। इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए नैपोलियन ने पिता-पुत्र दोनों ही को सन् 1808 में परस्पर वैमनस्य समाप्त करने के बाह्य उद्देश्य से फ्रान्स बुलाया और फ्रान्स की सीमा में प्रवेश करने के बाद स्पेन का राज्य त्यागने के लिए विवश किया। नैपोलियन ने अपने भाई जोसेफ, नेपल्स के शासक, को स्पेन का राजा बना दिया। जोसेफ के नेपल्स जाने के बाद नैपोलियन ने अपने बहनोई मुरट (Murat) को नेपल्स का राजा बनाया।

स्पेन में विद्रोह (Revolt in Spain)—नैपोलियन ने स्पेन में धार्मिक उत्साह और राष्ट्रीयता की पवित्र भावना को उत्तेजित किया था। दोनों की धर्मान्ध कट्टरता थी। स्पेनवासियों ने अपने राजा चार्ल्स चतुर्थ की फ्रान्स के नैपोलियन के साथ मित्रता का तीव्र विरोध किया था। चार्ल्स द्वारा स्पेन के राजसिंहासन का परित्याग कर नैपोलियन को देने तथा जोसेफ की राजा के रूप में नियुक्ति से स्पेन की स्वाभिमानी तथा उदात्त राष्ट्रीय भावनाओं से अभिभूत जनता उद्वेलित एवं उत्तेजित हो गयी। नैपोलियन विरोधी कैथोलिक धर्माधिकारियों ने भी

कैथोलिक जनता को उत्तेजित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। देश के समस्त भागों में हिंसात्मक विद्रोह आरम्भ हो गये। जोसेफ विद्रोह से भयभीत होकर एक माह में ही स्पेन छोड़कर भाग गया।

स्पेन के साथ युद्ध (War with Spain)—परिणामस्वरूप सन् 1808 तक महाद्वीपीय युद्ध के नाम से विख्यात स्पेन और फ्रान्स के मध्य दीर्घकालीन युद्ध हुआ। 19 जुलाई, 1808 को स्पेन की विद्रोही सेना ने फ्रान्स की सेना को पराजित किया और कमाण्डर न्यूपोन ने आत्मसमर्पण कर दिया। अस्तु नैपोलियन ने स्वयं स्पेन पर आक्रमण कर दिया और गोर्गास के युद्ध में विद्रोहियों को पराजित करके जोसेफ को पुनः सिहासनारूढ़ किया।

इंग्लैण्ड का हस्तक्षेप (Intervention of England)—सन् 1809 के आरम्भ में मध्य यूरोपीय राजनीतिक घटनाओं के कारण नैपोलियन स्पेन में विशाल सेना छोड़कर मध्य यूरोप की ओर चला गया। स्पेन में राष्ट्रवादी सक्रिय थे। ब्रिटिश सेना भी राष्ट्रवादियों की फ्रान्स के विरुद्ध पूर्ण सहायता कर रही थी और सन् 1812-13 में सेलमेंका तथा विक्टोरिया के युद्धों में फ्रान्स की सेना को पराजित करके स्पेन को फ्रान्स के नियन्त्रण से मुक्त करा लिया। नैपोलियन का भाई जोसेफ वस्तुतः नैपोलियन युग के अन्तिम वर्षों तक बन्दी ही रहा। स्पेन पर आक्रमण नैपोलियन की भयंकर भूल थी। स्पेन नैपोलियन के लिए विषाक्त फोड़ा सिद्ध हुआ और उसने स्वयं स्वीकार किया "स्पेन का नासूर मेरे विनाश का कारण था।" स्पेन के साथ युद्ध में फ्रान्स के तीन लाख सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए थे। इतिहासकार फिशर लिखते हैं, "स्पेन का विद्रोह उन राष्ट्रीय आन्दोलनों का अग्रज था, जिन्होंने अन्ततोगत्वा नैपोलियन का साम्राज्य ही नष्ट कर दिया। उनकी दृष्टि में नैपोलियन राष्ट्रीय धर्म का शत्रु राष्ट्रीय एकता का संहारक और राजमुकुट का विनाशक था।"

रूस पर आक्रमण (Attack on Russia)—नैपोलियन युग के अन्तिम वर्षों में रूस की एक अन्य उग्र तथा आक्रमणात्मक समस्या उत्पन्न हो गयी। महाद्वीपीय प्रणाली की घोषणा ने रूस के साथ युद्ध को उत्तेजित किया था। रूस ने भी महाद्वीपीय प्रणाली को अस्वीकार करते हुए, युद्ध का आह्वान किया था। फ्रान्स की विशाल एवं गौरवशाली सेना अस्त-व्यस्त हो चुकी थी और निराश जनसमूह ही शेष रह गया था। नैपोलियन गाड़ी से पेरिस आया और आठ दिन बाद जून 1812 में, मार्शल ने (Marshal Ney) ने, जिसके शौर्यपूर्ण नेतृत्व में पृष्ठरक्षक युद्ध में विजय के लिए "वीरों में सर्वाधिक वीर" की उपाधि से अलंकृत किया गया था, छः लाख की विशाल सेना के साथ नीमन (Niemen) नदी पार की। रूस की सेना ने प्रत्यक्ष युद्ध की अपेक्षा पीछे हटने की नीति का अनुकरण किया और पीछे हटते समय समस्त नगरों कस्बों तथा खड़ी फसलों को भी भीषण अग्नि में स्वाहा कर दिया। पशुओं का चारा भी शेष नहीं रहा। 7 सितम्बर, 1812 को बोरोडिनों के मैदान में भीषण युद्ध में 30,000 फ्रान्स के तथा 40,000 रूस के सैनिक शहीद हो गये। फ्रान्स की सेना यद्यपि विजयी थी लेकिन यह विजय निर्णायक नहीं थी। 14 सितम्बर को नैपोलियन की सेना मास्को पहुँची। वहाँ सेना को पाँच सप्ताह तक भूखा रहना पड़ा। भयंकर शीत दैविक विपत्तियाँ, भीषण दुर्गम मार्गों तथा रसद आपूर्ति के अभाव के कारण सेना को लौटना पड़ा। अन्त में छः लाख की विशाल सेना में केवल एक लाख सैनिक शेष रह गये थे। रूस के निरर्थक एवं असफल अभियान से नैपोलियन के जीवन का दुखद अध्याय आरम्भ हो गया। मार्शल ने इस युद्ध

के सम्बन्ध में अपनी पत्नी को लिखा, "रूस की गोलियों की अपेक्षा सामान्य अकाल तथा सामान्य शीत ने विशाल सेना पर विजय प्राप्त की। इसके अतिरिक्त वह क्या लिख सकता था, लेकिन उसने लिखा नहीं क्योंकि वह निष्ठावान् और मूर्ख था। जनरल बोनापार्ट का भयंकर अतिविश्वास तथा भ्रमात्मक गणनात्मक आकलन था। रूस के मैदानों में पाँच लाख सैनिकों का बलिदान कर दिया गया। इन निराशाजनक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में भी नैपोलियन ने दम्भपूर्वक पीड़ित फ्रान्सवासियों से घोषणा की, "सम्राट कभी भी अधिक स्वस्थ नहीं रहा।" मास्को से सेना के पीछे हटने के कार्य ने नैपोलियन के शत्रुओं के भावावेश को इतना अधिक उद्वेलित किया जो धर्मयुद्धों के बाद से यूरोप में कभी भी नहीं देखा गया था।"

जर्मनी में विजय अभियान (Victory Compaign in Germany)—जर्मनी में राजनीतिक चेतना के साथ राष्ट्रीय भावना का भी विकास हुआ। रूस में नैपोलियन की असफलता ने जर्मनी में प्रतिशोध की प्रबल भावना को उद्वेलित किया। सहस्त्रों स्वयंसेवक देश को नैपोलियन के नियन्त्रण से मुक्त कराने के लिए व्यग्र थे। प्रशा ने सन् 1807 से ही टिलसिट सन्धि के विरुद्ध अपनी सेना का पुनर्गठन आरम्भ कर दिया था। मार्च सन् 1813 में नैपोलियन ने रूस एवं प्रशा की संयुक्त सेनाओं को लेटजेन तथा बोटजेन के भीषण युद्धों में परास्त किया। इसी अवधि में नैपोलियन ने आस्ट्रिया के मेटरनिक के सन्धि से पूर्व युद्ध-विराम को स्वीकार करके भयंकर भूल की। तदुपरान्त आस्ट्रिया के चान्सलर मेटरनिक ने यूरोप में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से अनेक प्रस्ताव नैपोलियन के समक्ष रखे, लेकिन उसने समस्त प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया ने भी फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और रूस तथा प्रशा के साथ सम्मिलित हो गया।

प्रशा, आस्ट्रिया, रूस, स्वीडेन तथा इंगलैण्ड ने चौथे गुट का गठन किया और नैपोलियन ने भी विशाल सेना का गठन किया था। अगस्त 1813 में मित्रराष्ट्रों की सेनाओं ने नैपोलियन के विरूद्ध चारों ओर से बढ़ना आरम्भ कर दिया। ड्रेसडन के युद्ध में नैपोलियन विजयी हुआ, अन्यंथा अन्य समस्त युद्धों में नैपोलियन की सेना मित्र राष्ट्रों की सेनाओं से पराजित हो गयी। मार्च 1814 के लिपसिक (Leipsic) के युद्ध में नैपोलियन की सेना पूर्णतया ध्वस्त हो गयी। मास्को से सेना के वापस लौटने के विनाश के एक वर्ष के अन्दर ही मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध ने नैपोलियन की बाह्य सत्ता का पूर्ण पतन कर दिया। उसका साम्राज्य कठपुतली राज्य ताश के पत्तों से बने घर के सदृश्य हवा के एक झोंके से गिर गया। राइन नदी के तट पर स्थित राज्यों का संघ विघटित हो गया और इसके एक के अतिरिक्त अन्य समस्त राज्य विजयी मित्र राष्ट्रों के संघ में सम्मिलित हो गये। राजा जेरेम बोनापार्ट का वेस्टफेलिया के बाहर तक पीछा किया गया। हालैण्ड, फ्रान्स से मुक्त हो गया और आरेन्ज का विलियम राजा के रूप में अपने देश लौट गया। मार्च 1814 के युद्ध में पराजित होने के बाद नैपोलियन ने अक्तैनब्ल्यू (Aquatainbleau) के स्थान पर मित्र राष्ट्रों के साथ सन्धि की। इसके अनुसार नैपोलियन को फ्रान्स के राजसिंहासन पर समस्त अधिकारों का परित्याग करना पड़ा तथा उसे एल्बाद्वीप का शासक बनाकर भेज दिया गया और बीस लाख फ्रैंक वार्षिक अवकाश वेतन निश्चित हुआ।

एल्बाद्वीप से वापिसी (Return from Elba Island)—नैपोलियन से मुक्ति के उपरान्त यूरोप की विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए आस्ट्रिया की राजधानी वियाना

में सम्मेलन हुआ। इसमें बोर्बो वंश के शासक को पुनर्स्थापित किया गया और सन् 1792 की भौगोलिक सीमाओं को स्वीकार कर लिया गया। फ्रान्स के अधिकांश उपनिवेश उसको वापिस दे दिये गये। एल्बाद्वीप पर शासन की 10 माह की अवधि में उसे फ्रान्स में अशान्ति, 'अव्यवस्था' राष्ट्रों में परस्पर मतभेद तथा लुईस के शासन के प्रति असन्तोष के समाचार प्राप्त हुए। व्यग्र उद्यमी तथा महत्वाकांक्षी नैपोलियन निम्नस्तरीय जीवन व्यतीत नहीं कर सकता था। अतः उसने सन्धि के समस्त प्रावधानों की उपेक्षा करते हुए फ्रान्स में प्रवेश किया। फ्रान्स में आगमन पर फ्रान्सवासियों ने उसका हर्षोल्लास के साथ भव्य स्वागत किया और सहस्त्रों नागरिक उसकी सेना में भर्ती हो गये। लुईस अठारहवाँ नैपोलियन के पेरिस पहुँचने से पूर्व ही बेल्जियम चला गया और नैपोलियन पुनः सम्राट बन गया।

मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेनायें विघटित नहीं हुयी थीं। अतः स्थायी रूप से फ्रान्स का सम्राट बने रहने की बहुत कम सम्भावना थी। विशाल संयुक्त सेनाओं द्वारा चारों ओर से घिरने से पूर्व किसी मित्र राष्ट्र की सेना पर तत्काल विजय में ही कुछ आशा निहित थी। ब्रिटिश तथा प्रशा की सेनाओं को रूस एवं आस्ट्रिया से सेना और रसद की आपूर्ति हो सके, इससे पूर्व ही इंग्लैण्ड और प्रशा को पराजित करने के उद्देश्य से , 1,30,000 सैनिकों की विशाल सेना के साथ ब्रूसेल्स की ओर प्रस्थान किया। जबकि फ्रान्स की सेना का कमाण्डर ने और ब्रिटिश सेना का कमाण्डर विलिंगडन परस्पर युद्ध में व्यस्त थे। नैपोलियन ने लिग्नी के स्थान पर प्रशा की सेना को निर्ममतापूर्वक ध्वस्त कर दिया। इंग्लैण्ड और प्रशा, दोनों की सेनायें ब्रूसेल्स की ओर पीछे हट गयी लेकिन नैपोलियन ने प्रशा की सेना के पीछे हटने की स्थिति का भ्रान्तिपूर्ण अनुमान लगाया जो अत्यधिक घातक सिद्ध हुआ। नैपालियन ने अपने अनुमान के आधार पर ही 20,000 सैनिकों को प्रशा की सेना का पीछा करने के लिए भेजा। इससे फ्रान्स की शक्ति क्षीण हो गयी तथा 20,000 सैनिकों के भेजने का कोई लाभ नहीं हुआ। नैपोलियन ने अपनी कम सेना के साथ ही ब्रिटिश कमाण्डर वेलिंगडन पर आक्रमण कर दिया। वेलिंगडन पहले ही सामरिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण ब्रूसेल्स की ओर जाने वाले मुख्य मार्ग की रक्षा के उद्देश्य से वाटरलू में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर चुका था। सदैव की तरह अब भी नैपोलियन अपनी विजय के लिए पूर्ण आश्वस्त था।

वाटरलू का युद्ध (Battle of Waterloo)—नैपोलियन ने अपने व्यापक अनुभव के आधार पर कुशलतापूर्वक सीमा पार की और शत्रु की चुंगी चौकियों को पीछे वाटरलू की ओर जाने के लिए बाध्य किया। 18 जून, 1815 को नैपोलियन ने अपने उत्कृष्ट साहस और शौर्यपूर्ण जीवन का अन्तिम सर्वाधिक महान् एवं निर्णायक युद्ध मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेनाओं के विरुद्ध किया। उसके विरोधियों की भयानक आग उगलती तोपों ने उसके सैनिकों को युद्ध भूमि पर समाप्त कर दिया लेकिन उसकी सेना के पुराने रक्षकों (Old Guards) ने अद्वितीय साहस एवं शौर्य के साथ जीवन की अन्तिम सांस तक युद्ध किया। वेलिंगडन ने यद्यपि पराजित कर दिया था, लेकिन ब्लूचर की शक्तिशाली सेना के आगमन ने इस पराजय को पूर्ण विनाश में परिवर्तित कर दिया। सैन्य शास्त्र के प्रारम्भिक इतिहास में यह सब तथ्य सामान्य रूप से उपलब्ध होते हैं।

वाटरलू के युद्ध को विश्व के अनेक निर्णायक युद्धों में एक के रूप में उद्धरण देने की सामान्य परम्परा बन गयी। एक प्रकार से यह न्यायसंगत भी है। इस सन्दर्भ में स्मरणीय है

कि लगभग समस्त यूरोप के दृढ़ निश्चय के परिप्रेक्ष्य में, नैपोलियन के लिए युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प शेष नहीं रह गया था। मित्र राष्ट्रों ने अपनी असीमित सेना युद्धभूमि में दाँव पर लगा दी थी, जबकि नैपोलियन के अपने समस्त स्रोत लगभग समाप्त हो चुके थे। सौभाग्य की बात है कि मानव जीवन को सुरक्षित रखने के लिए, सन् 1815 के अभियान का प्रथम युद्ध अन्तिम भी था। नौ-सेना के क्षेत्र में ब्रिटेन का प्रभुत्व था, परन्तु वाटरलू के युद्ध में नौ-सेना की प्रतिष्ठा और महत्व ने पर्याप्त वृद्धि की और सिद्ध कर दिया कि नौ-सेना की निर्णायक युद्ध में अत्यधिक महत्वूपर्ण भूमिका होती है। इस युद्ध ने नैपोलियन के ऊपर वैलिंगडन की विजेता के रूप में प्रतिष्ठा तथा सम्मान में वृद्धि की।

जब संयुक्त मित्र राष्ट्रों ने अन्ततोगत्वा नैपोलियन को सदैव के लिए अपदस्थ कर दिया, रूस, ब्रिटेन तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मुख्य रूप से लाभान्वित हुए। फिनलैण्ड तथा पोलैण्ड के अधिकांश भाग पर रूस का अधिकार हो गया। ब्रिटेन ने नौ-सेना की सर्वोच्चता के कारण श्रीलंका पर आधिपत्य स्थापित किया, हॉलैण्ड से गुडहोप अन्तरीप प्राप्त हो गया, भारत में अपने नियन्त्रण में विस्तार किया और आस्ट्रेलिया महाद्वीप पर अपना शक्तिशाली दावा किया। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने फ्रान्स से लुइसियाना खरीद कर अपना अधिकृत क्षेत्र दुगुना कर लिया, लेकिन सन् 1812-14 के युद्ध में ब्रिटेन से कनाडा प्राप्त करने में असफल रहा। स्पेन और पुर्तगाल को नैपोलियन कालीन युद्धों के कारण सर्वाधिक क्षेत्रीय हानि हुयी। इसके अतिरिक्त लैटिन अमेरिका पर इन देशों का नियन्त्रण इतना अधिक निर्बल हो गया कि सन् 1815 के बाद के दशक में अमेरिका के क्षेत्र स्थायी रूप से इनके क्षेत्राधिकार से निकल गये।

नैपोलियन के शासन के परिणाम
(CONSEQUENCES OF NAPOLEAN'S RULE)

नैपोलियन, स्वयं को विश्वास था, "वह क्रान्ति का पुत्र है"। एक विद्वान लेखक ने इस सन्दर्भ में विचार व्यक्त किया, "नैपोलियन फ्रान्स की क्रान्ति का बालक एवं उत्तराधिकारी था, जिसने समानता को यदि नष्ट भी किया तो उसने अपने बनाये हुए कानूनों में इसे समाहित करके समानता की रक्षा की।" ग्राण्ट और टेम्पर लिखते हैं, "नैपोलियन को क्रान्ति ने जन्म दिया परन्तु अनेक रूपों में उसने उस आन्दोलन के उद्देश्यों और सिद्धान्तों को उलट दिया, जिनसे उसका उत्थान हुआ था।" अन्धकार से सर्वोच्च राजनीतिक सत्ता तक अपने द्रुत गति से उत्थान के लिए क्रान्ति की घटनाओं का वह ऋणी था जिसने उसको समुचित अवसर प्रदान किये। जब राज्य विप्लव द्वारा उसने सर्वोच्च सत्ता प्राप्त की थी, इसके साथ ही क्रान्ति की सफलता का समापन हो गया था और राजनीतिक कोमलता तथा भेद्यता भी प्रमाणित हो गयी थी। प्रथम कौन्सल बनने के उपरान्त उसने कहा था कि वह क्रान्ति का उत्तराधिकारी था और उसने उन सिद्धान्तों को जिन पर क्रान्ति का शुभारम्भ हुआ था, स्थायित्व प्रदान किया था।

नैपोलियन ने फ्रान्स को क्रान्ति के सिद्धान्तों एवं आदर्शों के युग से बिल्कुल विलग कर दिया था। उसने रूसो के सिद्धान्तों एवं आदर्शों की भी उपेक्षा की। उसका विचार था कि क्रान्ति के रोमांच का अन्त करना ही उसका मुख्य कार्य था। उसके इस उद्देश्य ने उसको रूस, आस्ट्रिया एवं प्रशा के प्रबुद्ध निरंकुश शासकों के अनुरूप बना दिया था। उसका विश्वास था कि मानवीय एवं प्रबुद्ध नीतियों को दृढ़तापूर्वक तथा अधिनायकतन्त्रीय ढंग से

प्रवृत्त करके ही, अराजकता, अशान्ति और अव्यवस्था को रोका जा सकता था। अस्तु उसके कुछ कार्यों में प्राचीन शासन की छाप होना स्वाभाविक ही था।

क्रान्ति ने नैपोलियन के राजनीतिक तथा संवैधानिक परिवर्तनों के लिए यथेष्ठ पृष्ठभूमि तैयार की थी। क्रान्ति ने संसद, सामुदायिक मण्डल और निहित स्वार्थों सहित प्राचीन शासन के समस्त प्रतीकों को समाप्त कर दिया था। क्रान्ति की कुछ उपलब्धियों को नैपोलियन ने यथावत् बनाए रखा। "उसने प्राचीन शासन को संगठित किया। उसने क्रान्ति को सुदृढ़ किया।" दोनों ही कथन सत्य हैं। दोनों कालों में वास्तविक निरन्तरता बनी हुयी थी। दोनों में उपलब्ध मौलिक राष्ट्रीय भावनाओं, प्रवृत्तियों एवं विशिष्ट तत्वों को साकार रूप प्रदान किया था।

नैपोलियन की उदात्त मानव कल्याण तथा राष्ट्रीय भावनाओं से अनुप्राणित अनेक सामाजिक, प्रशासनिक, वित्तीय सांस्कृतिक एवं सैनिक संस्थाएँ स्थायीरूप ग्रहण कर चुकी हैं। 'ग्रेनाइट जनसमूह' (Granite masses) एक सामाजिक संस्था है जिसके आधार पर आधुनिक फ्रान्स का निर्माण हुआ है। प्रीफेक्टस् की प्रशासनिक व्यवस्था, नैपोलियन द्वारा निर्मित समान कानून संहिता, न्यायिक प्रणाली, फ्रान्स की बैंक, देश का वित्तीय संगठन, अनेक विश्वविद्यालय और सैनिक परिषदें, स्थायी संस्थाओं के माध्यम से नैपोलियन ने केवल फ्रान्स के इतिहास में ही नहीं वरन् समस्त विश्व के इतिहास में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं।

नैपोलियन द्वारा फ्रान्स का पुनर्निर्माण

(RECONSTRUCTION OF FRANCE BY NAPOLEAN)

प्राचीन राजतन्त्रीय शासन के अन्तर्गत कृषक अपनी कुल आय का 2/5 अथवा 3/5 भाग विभिन्न करों के रूप में सरकार को देता था परन्तु नैपोलियन के शासन काल में कृषकों को केवल 1/5 भाग ही करों के रूप में देना पड़ता था। उल्लेखनीय है कि राजस्व भी कम होने की अपेक्षा पूर्व से दुगुना हो गया था। नवीन पूर्वापेक्षा अधिक योग्य, निष्पक्ष एवं न्यायप्रिय न्यायाधीशों ने कानून के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान में वृद्धि की तथा विशेष न्यायालयों ने व्यापक अव्यवस्था तथा राहजनी का अन्त किया। जीर्ण-शीर्ण सड़कों एवं पुलों को सुधारा गया, बन्दरगाहों की मिट्टी और कीचड़ निकाली गयी एवं नहरों को पूर्वापेक्षा अधिक गहरा किया गया। राष्ट्रीय ऋण की सुदृढ़ता तथा सन 1801 तक सन्तुलित आय-व्यय (बजट) ने व्यापारियों में आस्था तथा विश्वास को पुनर्जीवित किया। कुशल प्रशासन शान्ति एवं व्यवस्था का आश्वासन दे सकता था, अस्तु व्यापारिक गतिविधियों में पर्याप्त विकास हुआ। एक दशक के राजनीतिक प्रत्यावर्तन के बाद फ्रान्स की जनता ने योग्य, समर्थ, ईमानदार और क्रियाशील शासन के अन्तर्गत सुख एवं शान्ति की साँस ली। नगरों में व्यापारी तथा खेतों में कृषक नैपोलियन के ऋणी थे।

नैपोलियन ने धार्मिक विषयों पर बहुत सावधानी से विचार किया तथा निर्णय लिए। उसके स्वयं के धार्मिक विचार अस्पष्ट तथा अनिश्चित देववाद तक ही सीमित थे। उसको भलीभाँति विदित था कि अधिकांश फ्रान्सवासी कैथोलिक धर्म के निष्ठावान अनुयायी थे। अपने प्रथम इटली अभियान के समय उसने सर्वोच्च धर्माध्यक्ष के साथ मधुर एवं सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध रखे। सन् 1800 में मैरंगों के युद्ध का विजयोत्सव धार्मिक परम्पराओं तथा

रीति-रिवाजों के अनुसार मनाया गया। पोप प्रियस सप्तम को धार्मिक राज्य का परम धर्माध्यक्ष पुनर्स्थापित किया यद्यपि सावधानी के रूप में फ्रान्स की सशस्त्र सेना भी राजधानी रोम में रखी गयी।

सन् 1801 में नैपोलियन ने धर्माध्यक्ष पोप के साथ धार्मिक सन्धि की। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार—

(1) दस वर्ष पुराने रोम तथा फ्रान्स के कैलिकन चर्च के मध्य तीव्र मतभेद समाप्त हो गये और पोप की सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्ता अक्षुण्ण बनी रही।

(2) चर्च की अधिकृत भूमि-कृषक क्रेताओं की भूमि, के पट्टे पहली बार वैध स्वीकृत किये गये।

(3) फ्रान्स का धर्माधिकारी वर्ग (Clergy) कौन्सल सरकार के अधीन हो गया। बिशप के लिए नाम प्रस्तावित करने के लिए सरकार अधिकृत थी, लेकिन नियुक्ति के लिए पोप अधिकृत था। धर्माधिकारियों को राजकोष से वेतन देने की व्यवस्था की गयी। यद्यपि प्रबल एवं कठोर गणतन्त्रवादियों ने इस सन्धि के प्रावधानों से असहमति व्यक्त की और एक पिछड़ा कदम कहा परन्तु फ्रान्स की अधिकांश जनता ने रोम के साथ पुनर्मिलन का हार्दिक स्वागत किया। वे कैथोलिक मतावलम्बी जिन्होंने धार्मिक आधार पर क्रान्तिकारियों के समझौते का विरोध किया था, धार्मिक सन्धि (Concordant) से क्षुब्ध थे। यह धार्मिक सन्धि एक शताब्दी तक प्रवृत रही।

(4) क्रान्ति काल में जिन पादरियों को बन्दी बनाकर कारावास में डाल दिया गया था, उन्हें मुक्त कर दिया गया। प्रवासी धर्माधिकारियों को पुनः फ्रान्स में लौटने की अनुमति दे दी गयी।

(5) फ्रान्स में स्थित अन्य समुदायों के चर्च को भी इस सन्धि की परिधि में ले लिया गया। लूथरवादी तथा काल्विनवादी चर्च भी राज्य के नियन्त्रण में आ गये और उनके धर्माधिकारियों को भी राज्य कोष से ही वेतन दिया जाता था।

(6) कैथोलिक धर्म को राज्य धर्म के रूप में स्वीकार कर लिया गया परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। यहूदियों को भी राज्य का समान रूप से संरक्षण प्रदान किया गया। धार्मिक सहिष्णुता का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण था। धार्मिक उत्पीड़न एवं धर्मान्धता का अन्त हो गया। सन् 1807 में उसने पोप के राज्य पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और पोप को बन्दी बना लिया।

क्रान्ति के नेताओं ने चर्च द्वारा संचालित विद्यालयों को बन्द कर दिया था और उनके स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की योजना बनाई थी। इस योजना को नैपोलियन ने अपनी परम्परागत संगठनात्मक प्रतिभा के साथ पूर्ण रूप से कार्यान्वित किया था।

नैपोलियन ने आकर्षक एवं प्रभावशाली सार्वजनिक शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली का शुभारम्भ किया था।

(1) प्रत्येक कम्यून को प्रीफेक्ट अथवा सह-प्रीफेक्ट के निरीक्षण में प्राथमिक अथवा प्रारम्भिक विद्यालयों का संचालन करना था।

(2) उच्चतर माध्यमिक अथवा व्याकरण विद्यालयों में फ्रेंच, लैटिन और प्रारम्भिक विज्ञान के विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की। सार्वजनिक विद्यालयों पर राष्ट्रीय सरकार का पूर्ण नियन्त्रण था।

(3) प्रत्येक महत्वपूर्ण नगर में उच्च माध्यमिक विद्यालय अथवा लासीज (Lycees) स्थापित किये गये और इन विद्यालयों में राज्य द्वारा नियुक्त शिक्षक ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च शिक्षा प्रदान करते थे।

(4) विशेष विद्यालयों जैसे प्रौद्योगिक विद्यालय, असैनिक सेवा विद्यालय और सैनिक विद्यालय, को सार्वजनिक नियमों के नियन्त्रण में रखा गया।

(5) नवीन शिक्षा प्रणाली की समस्त फ्रान्स में एकरूपता बनाये रखने के लिए फ्रान्स में विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। इसके मुख्य अधिकारियों की नियुक्ति प्रथम कौन्सल करता था। विश्वविद्यालय द्वारा अनुज्ञप्ति के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति कोई विद्यालय स्थापित नहीं कर सकता था और सार्वजनिक रूप से शिक्षा नहीं दे सकता था।

(6) पेरिस में गठित एक सामान्य विद्यालय में सार्वजनिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों की भर्ती के उद्देश्य से एक केन्द्र की व्यवस्था की गयी थी। इन विद्यालयों को ईसाई धर्म के नैतिक सिद्धान्तों तथा राज्य के सर्वोच्च अधिकारी के प्रति भक्ति और निष्ठा को अपनी शिक्षा का मुख्य आधार बनाने के लिए निर्देश दिये गये थे। उसने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित किये। ये आज भी फ्रान्स की शिक्षा प्रणाली में प्रतिष्ठित संस्थायें मानी जाती हैं। निर्धन तथा प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देकर प्रोत्साहित किया और शोध कार्य के लिए एक पृथक संस्थान भी स्थापित किया। विभिन्न विषयों के अनुसन्धान केन्द्र स्थापित कर साहित्य कला को प्रोत्साहित किया।

पाठ्यक्रम बहुत विचार-विमर्श के बाद बनाये गये थे। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य अच्छे नागरिक बनाना तथा विद्यार्थियों को किसी अंन्य विषय की अपेक्षा राज्य को सर्वोच्च अधिकारी के प्रति उनके दायित्वों तथा कर्तव्यों की व्यापक शिक्षा देना था। फ्रान्स की वयस्क जनता भी एक प्रकार के संरक्षण में थी। केवल नियन्त्रिण पत्र-पत्रिकाओं और अधिकृत विज्ञप्तियों को पढ़ सकती थी, अथवा ऐसे नाटकों को देख सकती थी जो मूलभूत सिद्धान्तों को पुष्ट करने के लिए ही मंच पर दिखाये जाते थे। नैपोलियन ने पूर्व निरंकुश शासकों से उद्धृत ऐसे दार्शनिक सिद्धान्तों को इस सीमा तक कार्यान्वित किया था जिनकी सम्भवतः उन निरंकुश शासकों ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की होगी।

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि नैपोलियन में नीतिशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के प्रति कोई रुचि नहीं थी। सन् 1803 के एक अध्यादेश द्वारा इन विषयों के अध्ययन को उसने हतोत्साहित किया था। अध्ययन पर किसी प्रकार का सन्देह करना अथवा मानव जीवन और उसके सदाचार से सम्बन्धित अनुमान लगाने से अधिक निकृष्ट तथा निन्दनीय दुर्गुण निरंकुशतावाद का अन्य कोई हो ही नहीं सकता। नैपोलियन प्रेस अथवा साहित्य के माध्यम से व्यक्ति के विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के भी विरुद्ध था। समाचार-पत्रों पर केवल नियन्त्रण ही नहीं किया गया वरन् लगभग दमन ही कर दिया गया था।

विधि विषयक सुधार (Reforms relating to Laws)

अठारहवीं शताब्दी के बुद्धिवादियों का विधि विषयक सुधार एक प्रिय विषय एवं योजना रही थी। क्रान्तिकालीन विधान सभाओं ने इस सम्बन्ध में बहुत प्रगति की थी, लेकिन उनके द्वारा निर्मित प्रारम्भिक संरचना को सुव्यवस्थित संहिता का रूप आकार प्रदान करने का कार्य नैपोलियन के लिए शेष रह गया था। नवीन क़ानूनों ने कृषकों के अनेक दुर्वह करों से मुक्ति तथा शिल्पकारों की अप्रचलित श्रेणियों के प्रतिबन्धों से मुक्ति को स्वीकार किया था। सीमा- शुल्क के वैध उन्मूलन ने व्यापारियों तथा उत्पादकों को प्रोत्साहित किया था और उन्मुक्त व्यापार की अनुमति प्रदान की गयी थी। नवीन उत्तराधिकार कानूनों का समाज के ऊपर सर्वाधिक दूरगामी प्रभाव पड़ा। उसके अन्तर्गत परिवार के सब बच्चों को पिता की सम्पत्ति में समान भाग का उत्तराधिकारी बनाया गया। इस नीति ने विशाल अचल सम्पत्ति के विघटन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया तथा सम्पत्ति के व्यापक वितरण प्रणाली को पुष्ट एवं आश्वस्त किया।

नैपोलियन का मानव समाज के सर्वोत्कृष्ट कल्याणकर्ता एवं उपकारक होने का दावा, उसकी विधि विषयक संहिताओं पर ही आधारित है। नैपोलियन ने सेन्ट हेलना द्वीप में इस विधि संहिता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए स्वयं कहा था, "मेरा वास्तविक गौरव, मेरी चालीस युद्धों की विजयों में निहित नहीं है, मेरी विधि संहिता ही ऐसी है जो कभी भी मिट नहीं सकेगी और चिर-स्थायी सिद्ध होगी।" ये विधि संहिताएँ फ्रान्स की क्रान्ति के मूलभूत उदात्त विचारों एवं अवधारणाओं के यूरोप के अधिकांश भागों में व्यापक प्रचार एवं प्रसार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली साधन बन गयी थीं। क्रान्ति से पूर्व फ्रान्स में अनेक कानून प्रचलित थे और उनमें परस्पर अनेक विसंगतियाँ तथा विषमताएँ थीं। विधि संहिता फ्रान्स में प्रचलित अनेक कानूनों की विसंगतियों तथा विषमताओं का निराकरण करके न्यूनतम शब्दों एवं आकार में संकलित करने का यह एक सराहनीय प्रयास था। विधि संहिता में संकलित प्रत्येक कानून स्पष्ट, तर्क संगत तथा स्वयं में पूर्ण था। यथार्थ में फ्रान्स के निरंकुश शासक लुईस सोलहवें ने विधि संहिता के कार्य को आरम्भ किया था, क्रान्ति ने इस कार्य को पूर्ण करने की तीव्र इच्छा व्यक्त की और नैपोलियन ने पूर्ण करने का श्रेय प्राप्त किया।

यद्यपि नैपोलियन क्रान्ति का पुत्र था, लेकिन उसने क्रान्ति के अनेक मूलभूल सिद्धान्तों, आदर्शों एवं विचारों को अनेक प्रकार से बिल्कुल उल्टा कर दिया था। अनेक आलोचक कहते हैं, "नैपोलियन क्रान्ति का पुत्र था, परन्तु वह ऐसा पुत्र था जिसने अपनी माता की हत्या कर दी थी।" क्रान्ति ने समानता पर सर्वाधिक बल दिया था। विधि संहिता में प्रावधान है कि पैतृक सम्पत्ति का सब बच्चों में समान रूप से विभाजन होना चाहिए। इसने तलाक का सूत्रपात करके कैथोलिक मतावलम्बियों की भावनाओं को आघात पहुँचाया था। इसने ईसाइयों पर जन्म, मृत्यु तथा विवाह से सम्बन्धित चर्च के समस्त नियन्त्रण को समाप्त कर दिया था। नैपोलियन स्वयं इन सब तथ्यों को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं था।

असैनिक विधि संहिता के सम्बन्ध में एच. ए. एल. फिशर लिखते हैं "आलोचकों ने असैनिक विधि संहिता को शीघ्रगामी और अल्पज्ञ संरचना, सामान्य, विधि सम्बन्धी सिद्धान्तों को दर्शाने वाली परन्तु धर्माधर्म विचारों से बहुत दूर अथवा मुकदमों के जटिल विकास को छोड़ते हुए जेब की नोटबुक के रूप में आलोचना की। कार्य, जिस पर जर्मनवासियों ने अथक

प्रयासों के 15 वर्ष व्यतीत किये, नैपोलियन ने केवल 4 माह में पूर्ण करने का साहस किया। उसके अविवेक की निन्दा की गयी, परन्तु यह विधि संहिता कितनी ही अपूर्ण है, किसी विधि संहिता के न होने की अपेक्षा किसी विधि संहिता का होना अधिक श्रेष्ठ है, और यदि उस समय कार्य नहीं किया जाता और जैसा पहले था, फ्रान्स आज तक विधि संहिता विहीन होता। एकमात्र कानून 200 परम्पराओं की अपेक्षा श्रेष्ठ है, समानता विशेषाधिकार से श्रेष्ठ है। एक छोटी पुस्तक की परिधि में, जिसको देश का प्रत्येक स्त्री-पुरुष पढ़ सकता और समझ सकता है, असैनिक विधि संहिता ने क्रान्तिकारियों द्वारा अधिनियमित विशाल कानूनों से लेकर विभिन्न जातियों की पुरानी एवं चिरकालिक प्रगाढ़ परम्पराओं का समन्वय करते हुए, सभ्य और लोकतान्त्रिक समाज की रूपरेखा चित्रित की है। नारीवादियों और समाजवादियों को नैपोलियन के विधि सम्बन्धी कार्य में प्रशंसा के लिए बहुत कम मिलेगा, न ही उसने उनकी निन्दा का आह्वान किया। असैनिक (नागरिक Civil) विधि संहिता समाजवादियों की श्रेणी की नहीं वरन् उदारवादी दस्तावेज है और सभ्यता के इतिहास में इसका महत्व इस तथ्य में निहित है कि इसने फ्रान्स की क्रान्ति द्वारा यूरोप में आरम्भ किये गये व्यापक सामाजिक सुधारों को अभिव्यक्त किया है एवं आगे बढ़ाया है। विधि संहिताएँ क्रान्तिकारी चेतना एवं भावना असैनिक (नागरिक) समानता, धार्मिक सहिष्णुता, भूमि की सामन्तों एवं चर्चों से मुक्ति, सार्वजनिक रूप से मुकदमों की सुनवाई, जूरी द्वारा निर्णय की अनिवार्यता, विजयों को सुरक्षित रखती है। जर्मनी एवं इटली के लिए प्रारम्भिक संदेश के साथ नवीन चेतना का सर्वाधिक परिपक्व साकार रूप थी।"

नैपोलियनकालीन पाँच संहिताएँ, असैनिक (नागरिक) संहिता, (नागरिक) असैनिक प्रक्रिया संहिता, दण्ड संहिता, अपराध मूलक प्रक्रिया की संहिता तथा वाणिज्यिक संहिता थीं। इन सब में असैनिक (नागरिक) संहिता का सर्वत्र व्यापक रूप से स्वागत किया गया। इस संहिता का प्रारूप बनाने वाली समितियों के कार्य का नैपोलियन स्वयं निरन्तर निरीक्षण करता था। उसका प्रभाव सदैव परिवार एवं राज्य के सर्वोच्च व्यक्ति के पक्ष में था। वह परिवार में पिता की अपनी पत्नी तथा बच्चों के ऊपर समान रूप से सत्ता का समर्थन करता था। वह अधीनस्थ स्तरों के पक्ष में था। एन्जिल (Angel) ने ईव (Eve) से अपने पति की आज्ञा पालन करने के लिए कहा। इस संहिता ने पिता को बच्चों को कारावास का दण्ड देने के लिए भी अधिकृत किया है। इसने वैवाहिक सम्बन्ध-विच्छेद की अनुमति दी, परन्तु अनेक प्रतिबन्ध लगाकर विकृत कर दिया। इसने सम्पत्ति के विभाजन का समर्थन किया। विद्वानों ने मत व्यक्त किया है कि अनेक असुविधाओं के उपरान्त भी इन संहिताओं ने क्रान्ति की विभिन्न मूलभूत अवधारणाओं जैसे असैनिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, भूमि की मुक्ति, सार्वजनिक नियन्त्रण तथा जूरी निर्णय को सुरक्षित रखा था। सुस्पष्ट एवं सीमित शब्दों में संकलित संहिता आधुनिक यूरोप के मुख्य कानून बन गये, जो विभिन्न देशों के सभ्य एवं सुसंस्कृत समाजों पर शासन करते हैं।

नैपोलियन की संहिता ने समस्त फ्रान्सवादियों को बिना धर्म, पद, अथवा सम्पत्ति के भेदभाव के, समान रूप से समानता का आश्वासन दिया था। व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया था। भू-स्वामी, जिन्होंने चर्च की अथवा प्रवासी धर्माधिकारियों की अधिहरित (जब्त की गयी) भूमि को खरीद लिया था, नैपोलियन के प्रति आभारी थे। उसने

इस भूमि के स्वामित्व की पुष्टि कर दी थी और वैध स्वरूप प्रदान कर दिया था। व्यापारियों तथा वाणिज्यिकों ने आन्तरिक सीमा शुल्क चौकियों के उन्मूलन, सड़कों तथा बन्दरगाहों में अपेक्षित सुधारों, माप-तौल तथा मुद्रा प्रचलन की एकरूपीय प्रणाली के व्यापक लाभों एवं अन्य क्रान्तिकारी योजनाओं के सक्रिय क्रियान्वयन के लिए नैपोलियन की प्रशंसा की और कृतज्ञता व्यक्त की। कृषक सामन्तवादी करों के उन्मूलन, असामाजिक तत्वों, अव्यवस्था तथा अराजकता के दमन और कैथोलिक धर्म के पुनर्स्थापन के लिए नैपोलियन के ऋणी थे। यथार्थ में फ्रान्स में कोई ऐसा वर्ग नहीं था, जो नैपोलियन के कार्यों से किसी न किसी रूप में लाभान्वित नहीं हुआ हो। अस्तु समस्त वर्ग उसके प्रति अनुग्रहीत अनुभव करते थे। निस्सन्देह उसने क्रान्ति के अधिकांश राजनीतिक कार्य को नष्ट कर दिया था परन्तु उसने अनेक सार्वजनिक एवं आर्थिक सुधारों को सुरक्षित रखा तथा उनका विस्तार किया।

दण्ड प्रक्रिया संहिता प्रक्रिया के नीचे टिप्पणी में उसने निरंकुश राजतन्त्रकालीन कुख्यात लैटर द सैचेट (Letter de Cachet—a letter under the private seal of the King of France under the old regime by which royal pleasure was made known to individuals and administration of Justice often interfered.) को पुनर्जीवित किया, जबकि दण्ड संहिता में छाप लगाने की पद्धति का पुनः सूत्रपात किया।

नैपोलियन ने फ्रान्स के निरंकुश राजा लुईस सोलहवें के शासनकाल की जन कल्याण एवं सार्वजनिक हित की अनेक नीतियों का अनुसरण किया। उसने सार्वजनिक हित के व्यापक कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। सड़कों का निर्माण करवाया, नहरें बनवायीं, उत्पादन प्रणाली ने फ्रान्स के उत्पादकों को प्रोत्साहित किया। बेल्जियम तथा इंग्लैण्ड में विकसित कृषि पद्धति के आधार पर फ्रान्स में भी कृषि सुधार किया गया। लायन्स (Lyons) सिल्क उद्योग को पुनर्जीवित किया। पूर्वी देशों से सूती कपड़े का आयात किया और इंग्लैण्ड से आयातित मशीनों की सहायता से सूती कपड़े का उत्पादन किया गया।

सामान्य व्यय के द्वारा नैपोलियन ने सार्वजनिक हित के अनेक कार्यों को सम्पन्न करके स्वयं को उत्साही परोपकारक सिद्ध किया। युद्ध बन्दियों को पर्याप्त कार्य करने के लिए बाध्य किया। उसने देश में संचार तथा व्यापारिक साधनों में पर्याप्त सुधार किये और फ्रान्स के अधिकांश वर्गों की आर्थिक उन्नति तथा कल्याण को प्रोत्साहित किया। सन् 1811 तक नैपोलियन सैनिक उपयोग के लिए 229 चौड़ी सड़कों का निर्माण करवा चुका था। इनमें 30 सर्वाधिक महत्वपूर्ण सड़कें पेरिस को फ्रान्स की सीमाओं के अन्तिम छोर तक पहुँचाती थीं। उन पर उपयोगी तथा महत्वपूर्ण पुलों का निर्माण करवाया। फ्रान्स के प्रमुख नौ-सैनिक एवं वाणिज्यिक बन्दरगाहों का विस्तार किया गया तथा उनकी पूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था की गयी। चेरबौर्ग (Cherbourg) और तोलन (Toulan) के बन्दगाहों को विशेष रूप से विकसित किया गया।

देश के बेरोजगार व्यक्तियों को जीविकोपार्जन के समुचित साधन प्रदान करने के लिए नैपोलियन ने अथक प्रयास किया। "अनेक जूते बनाने वाले, हैट बनाने वाले, दर्जी तथा जीनसाज (घोड़े की काठी बनाने वाले) बेराजगार हैं। देखना यह है कि 500 जोड़े जूते प्रत्येक दिन बनाये जाते हैं", पुनः उसने कहा, "आदेश दो कि सेन्ट-एन्ट्वाइन के 2,000 श्रमिकों को कुर्सियों, तिजौरी की दराजों की आपूर्ति करनी है।" नैपोलियन ने पेरिस में महान् नगर योजना कार्यक्रम आरम्भ किया था। उसकी आंशिक आपूर्ति के लिए आदेश दिया था।

इतने अधिक उपयोगी श्रमिकों की उपयोगिता तथा जीविकोपार्जन के साधन प्रदान करने के उद्देश्य से जीवन के अलंकरण का कार्यक्रम आरम्भ किया। राज्य के विशाल भग्न महलों का पुनर्निर्माण तथा पुनः अलंकृत किया गया और सुन्दर बनाया गया। विशेष, आकर्षक लौवरे (विशाल दीर्घा) को पूर्ण किया गया और इटली, स्पेन तथा नीदरलैण्ड के विजय अभियानों में प्राप्त विभिन्न सुन्दर कलाकृतियों से अलंकृत किया गया। नैपोलियन के कौन्सल के रूप में शासन की अवधि में ही पेरिस यूरोप का अत्यधिक भव्य, आकर्षक तथा सुन्दर नगर बनने की प्रक्रिया में था। नैपोलियन युग में पेरिस की जनसंख्या दुगुनी हो गयी थी।

पेरिस के, यूरोप के प्रमुख कलात्मक केन्द्र बनने की बहुत सम्भावना थी। इसमें फ्रान्सवासियों की गर्वोक्ति तथा सौन्दर्यप्रियता की अन्तर्निहित प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि दृष्टिगत होती थी, लेकिन नैपोलियन ने इटली को उसकी अमूल्य कलात्मक निधि से वंचित कर दिया था। विजित देशों के कला तथा साहित्य से प्रभावित नैपोलियन ने फ्रान्स में भी कला और साहित्य को प्रोत्साहित किया था। "दस सर्वोत्कृष्ट चित्रकारों, मूर्तिकारों, रचनाकारों, संगीतकारों, शिल्पकारों एवं अन्य कलाकारों जिनकी अन्तर्निहित प्रतिभा समर्थन तथा प्रोत्साहन के योग्य बनाती थी, की सूचियाँ बनवायी थीं। लोगों ने शिकायत की कि इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। यह आन्तरिक विभाग के मन्त्री का दोष है।" कला एवं साहित्य के सम्बन्ध में नैपोलियन के उपर्युक्त विचार उसकी कला और साहित्य में रुचि को अभिव्यक्त करते हैं।

पेरिस के गौरव, प्रतिष्ठा तथा वैभव उसके साम्राज्य की भव्यता तथा स्वयं की आत्मिक उन्नति की प्रबल आकांक्षा से प्रेरित होकर नैपोलियन ने क्रान्ति के सिद्धान्तों, आदर्शों तथा अन्तर्निहित भावनाओं के विपरीत नये ढंग के कुलीन वर्ग का सृजन किया। प्रमुख जनरलों को फ्रान्स के मार्शलों के पदों पर पदोन्नत किया, प्रमुख राजनीतिज्ञों को 'हाइनैस' (Highness) की उपाधि से विभूषित कर भव्य प्रतिष्ठित व्यक्ति बना दिया, जबकि संसद सदस्यों (Senators) को भी 'एक्सीलैन्सी' (Excellency) से सम्बोधित किया जाता था। सन् 1802 में विशिष्ट समर्पित सेवाओं के लिए 'लीजन ऑफ आनर' (Legion of Honour) से सम्मानित कर नयी सामाजिक व्यवस्था का सूत्रपात किया। इस प्रकार नैपोलियन को मिथ्याभिमान की चाटुकारिता का अवसर मिल गया। निष्ठावान अनुयायियों की उत्कृष्ट सेवाओं को रिबन तथा पदक वितरित करके पुरस्कृत किया जाता था। पुरस्कृत व्यक्तियों को वार्षिक वृत्ति भी दी जाती थी।

अपने साम्राज्य के विस्तार के साथ उसने भाई-भतीजावाद को अत्यधिक प्रोत्साहित किया। अपने परिवार के अयोग्य एवं अनुपयुक्त सदस्यों को विभिन्न रूपों में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित किया। भाई-भतीजावाद के साथ उसने असंगत पक्षपात एवं अन्याय को भी प्रोत्साहित किया। नैपोलियन के बाद का भाई लुसियन, परिवार का सर्वाधिक योग्य सदस्य जीवनपर्यन्त नैपोलियन की दुर्भावना एवं कटु व्यवहार से पीड़ित रहा क्योंकि उसने सम्राट नैपोलियन की इच्छा के विरुद्ध विवाह कर लिया था।

नैपोलियन ने क्रान्ति से पैतृक सम्पत्ति में प्राप्त सत्ता को परम्परागत निरंकुश राजतन्त्रित सत्ता के साथ सफलतापूर्वक समन्वित कर लिया था। उसने सन् 1807 में 'भव्य' (Grand) की उपाधि भी ग्रहण कर ली थी। एक प्रकार से उसनें अठारहवीं शताब्दी के राजा पीटर महान् तथा फ्रेडरिक द्वितीय का अनुकरण किया था। फ्रान्स के सामान्य प्रशासन की पुनः संरचना में

भी दो युगों का प्रतिनिधित्व किया। वह हर क्षेत्र में केन्द्रीकृत सत्ता स्थापित करना चाहता था। उसके समस्त कार्यों में संविधान सभा की पवित्र भावनाओं, सिद्धान्तों एवं विचारों की अपेक्षा लुईस चौदहवें की भावनाओं एवं चेतना का बाहुल्य था। उसकी भाषा भी लुईस चौदहवें की रूपकों तथा अलंकारों से युक्त भाषा के लगभग अनुरूप ही थी। कुछ समय तक स्वयं के व्यक्तित्व को ही राष्ट्र की एकता का साकार रूप कहता था। उसने विचार व्यक्त किया कि शान्ति और व्यवस्था की मूलभूत भावना एवं प्रवृत्ति जिसको प्राचीन शासन की अराजकता पूर्ण स्थिति ने ध्वस्त कर दिया था, क्रान्ति का मुख्य. कारण थीं। विदेशी विषयों में उसने फ्रान्सवासियों को गौरव एवं यश दिलवाया और गृहिक विषयों में उसने सुव्यवस्थित राष्ट्रीय संगठन प्रदान किया। फ्रान्सवासी दोनों ही की प्राप्ति के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। उसने फ्रान्सवासियों को राजनीतिक स्वतन्त्रता से वंचित कर दिया, इसके लिए उन्होंने उसको (नैपोलियन) सहर्ष क्षमा कर दिया। फ्रान्सवासी राजनीतिक स्वतन्त्रता कभी नहीं चाहते थे। स्वीडेन के राजदूत नैपोलियन द्वारा सत्ता स्वयं अपने हाथ में लेने के बाद जनता की मानसिक स्थिति का विशद् चित्रण करते हुए लिखता है, "कुछ घृणित अराजकतावादियों के अतिरिक्त शेष लोग क्रान्ति कालीन हिंसात्मक आतंक तथा मूर्खता से इतने क्षुब्ध हो गये हैं, कि उनके लिए कोई भी परिवर्तन श्रेष्ठ होगा। राजतन्त्रवादी नैपोलियन में पुरातन व्यवस्था के लौटने की आशा करते हैं। तटस्थ लोग केवल इसी में शान्ति और व्यवस्था की सम्भावना देखते हैं। प्रबुद्ध गणतन्त्रवादी यद्यपि गणतन्त्र के लिए इसमें संकट अनुभव करते हैं परन्तु वे षड्यन्त्रकारियों के समुदाय की अपेक्षा एक योग्य व्यक्ति की सत्ता को श्रेष्ठ समझते हैं।"

इंग्लैण्ड के विख्यात कवि एवं उपन्यासकार **वाल्टर स्काट** फ्रान्स की तत्कालीन स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं, "धनिक वर्ग ने अपनी सुरक्षा की आशा से नैपोलियन का समर्थन किया। निर्धन एवं असहाय समुचित सहायता चाहते थे। प्रवासी धर्माधिकारी फ्रान्स लौटने के लिए उत्सुक थे। क्रान्तिकारियों ने इसलिए समर्थन किया जिससे उनको देश से निष्कासित करने अथवा अन्य किसी प्रकार का दण्ड नहीं मिले। साहसी व्यक्तियों को विजय की पूर्ण आशा थी और कायर व्यक्ति स्वयं की सुरक्षा के लिए व्यग्र थे।"

नैपोलियन के समस्त सुधार कार्यों जैसे विधि संहिताएँ एवं अन्य अपेक्षित न्यायिक सुधार, केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था, आज्ञाकारी चर्च, विद्यालय जो उसके सभासदों को प्रशिक्षण देते थे, और बैरक जो उसकी तोपों के चालकों को प्रशिक्षण देते थे एवं अनुशासित रखते थे, ने नैपोलियन के गौरव, यश, प्रतिष्ठा, एवं वैभव में अत्यधिक वृद्धि की थी।

राजनीतिक गतिविधियाँ (Political Activities)—राजनीतिक क्षेत्र में नैपोलियन का कार्य प्रतिक्रियावादी था। उसने गणतन्त्र का अन्त कर दिया। उसने वंशानुगत राजतन्त्र को पुनर्स्थापित किया और बोर्बों शासनकाल की अनेक विशेषताओं को पुनर्जीवित किया। उसके प्रीफेक्ट्स (उनको वह स्वयं निम्न स्तर पर सम्राट कहता था) राजतन्त्रीय शासन के इन्टेन्डेन्ट्स की प्रतिकृति थे। उसका राज्य राजतन्त्रीय परिषद् का परिष्कृत रूप था। उसके नियन्त्रण, नियमों तथा पुलिस प्रतिनिधियों की पूर्वपेक्षा अधिक प्रभावशीलता के अतिरिक्त प्राचीन शासन के नियमों एवं पुलिस कर्मियों के मध्य कोई अन्तर नहीं था। जनता के साथ छल-कपट करके उसने फ्रान्स में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से निरंकुशता को पुनर्स्थापित किया था। एक ऐसी निरंकुशता थी, जिसका रिशल्यू अथवा लुईस चौदहवें की गठित संस्थाओं से

अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत एवं संशोधित संस्थाएँ समर्थन करती थीं और ये संस्थाएँ पूर्वापेक्षा अधिक कार्यकुशल एवं केन्द्रीकृत थीं। नैपोलियन का शासन पूर्वापेक्षा अधिक सफल था और उसने फ्रान्स की एक दशक के क्रान्ति कालीन अशान्ति, अस्त-व्यस्तता, अव्यवस्था एवं अराजकता से मुक्त किया था, इसी कारण जनता ने उसको स्वीकार कर लिया परन्तु जनता ने सन् 1793 के लोकतान्त्रिक शासन के स्वप्नों को विस्मृत नहीं किया था और उनका बिल्कुल परित्याग भी नहीं किया था।

फ्रान्स के सम्राट के रूप में राज्याभिषेक के उपरान्त भी भाग्य तीन वर्ष तक उसके पक्ष में रहा। आस्टरलिट्ज तथा जेना (Austerlitz & Jena) के युद्धों में यूरोपीय राष्ट्रों के गठित तृतीय गुट की शक्ति को ध्वस्त कर दिया था। सन् 1807 में टिलसिट की सन्धि ने बहुत अंशों में समस्त यूरोप को उसके अधीन कर दिया था। यथार्थ में ब्रिटिश शक्ति अभी भी नैपोलियन के लिए अभेद्य थी और खुले समुद्र पर ब्रिटेन का पूर्ण एकाधिकार था। नैपोलियन के शासन में अधिनायकतन्त्रीय प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दृष्टिगत होने लगी थीं परन्तु उसकी सैनिक सफलताओं ने जनसमर्थन पर आधारित अधिनायकतन्त्र बनाये रखने में उसको समर्थ बनाया। उसने अपने पक्ष में उपलब्ध सामग्री को प्रकाशित करके मिथ्या जनमत तैयार किया था और हिटलर द्वारा बीसवीं शताब्दी में प्रयुक्त बहुत बड़ा झूठ (The Big Lie) का व्यापक रूप से प्रयोग किया। डेविड एवं गैरीकाल्ट ने सावधानीपूर्वक अपने चित्रों में नैपोलियन के उज्ज्वल चरित्र को अभिव्यक्त किया। परिणामस्वरूप जनमत संग्रह में उसको जनता का तथाकथित पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। सन् 1804 में साम्राज्य स्थापना का 2,50,69,000 मतदाताओं में केवल 35,70,000 व्यक्तियों ने मतदान द्वारा अनुमोदन किया था। इसके अतिरिक्त जनमत संग्रह भय तथा आतंक के वातावरण में करवाया गया था। भावी अधिनायकों के सदृश नैपोलियन ने दावा किया था, "मैंने राजमुकुट अधिकार स्वरूप ग्रहण नहीं किया, यह मुझे गन्दगी में मिला और फ्रान्स के लोगों ने मेरे सिर पर रख दिया।"

नैपोलियन ने जैसे ही सन् 1808 में महाद्वीपीय प्रणाली के द्वारा ब्रिटेन का गला घोंटकर मारने का प्रयास किया, वह निरन्तर अधिकाधिक विपत्तियों में ग्रस्त होता गया। इस प्रणाली के उसकी आशा के विपरीत भयंकर घातक परिणाम हुए। स्पेन ने फ्रान्स की सैन्य शक्ति को क्षीण कर दिया। इसके अतिरिक्त नैपोलियन द्वारा रूस पर आक्रमण (उसका तात्कालिक कारण महाद्वीपीय प्रणाली के प्रावधानों का अतिक्रमण था) ने यथार्थ में उसकी भव्य सेना के अधिकांश सैनिकों को नष्ट कर दिया। शीघ्र ही प्रशा का एक नवीन शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में अभ्युदय हो गया। लगभग समस्त यूरोपीय शक्तियाँ नैपोलियन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के लिए तत्पर थीं। सन् 1813 में लिपजिंग के युद्ध में नैपोलियन के कुल 1,95,000 सैनिकों के विरुद्ध प्रशा और आस्ट्रिया के 3,65,000 सैनिकों की विशाल संयुक्त सेना खड़ी थी। और सन् 1815 में मित्रराष्ट्रों ने 6 लाख सैनिकों की विशाल सेना का गठन कर लिया था। नैपोलियन के विरुद्ध मित्रराष्ट्रों की संयुक्त सेना अब प्राचीन परम्परागत सेना नहीं थी, वरन् इस सेना के सैनिकों को भी नैपोलियन के सैनिक के समान आधुनिक पद्धति पर प्रशिक्षण दिया गया था और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित किया गया था।

फ्रान्स में आर्थिक, वित्तीय एवं सैनिक दबाव के कारण जनता त्रस्त तथा क्षुब्ध हो चुकी थी ; प्रत्येक स्थान पर क्षुब्ध जनता में नवीन आक्रमणात्मक चेतना का आविर्भाव हो रहा था।

फ्रान्स में लोग उनके पौरुष के अविरल पलायन से अत्यधिक पीड़ित तथा दुःखी थे। सन् 1808 के उपरान्त युद्ध की प्रगति के साथ जनता नैपोलियन को अत्याचारी शासक के रूप में मानने लगी। वाटरलू के विख्यात एवं निर्णायक युद्ध के बाद नैपोलियन का पूर्ण पतन हो गया।

नैपोलियन ने अपनी सेना का पूर्ण विनाश देखकर निरर्थक मृत्यु की कामना की थी और कहा था, "मुझको वाटरलू में मर जाना चाहिए था।" आगे कहा, "लेकिन दुर्भाग्य है कि जब एक व्यक्ति मृत्यु की प्रबल कामना करता है, वह उसको नहीं मिल सकती है। लोग मेरे चारों ओर, सामने, पीछे सर्वत्र मारे गये हैं। लेकिन मेरे लिए कोई गोली नहीं थी। उसने आत्म- समर्पण कर दिया। उसको दक्षिणी अटलाण्टिक में स्थित सेण्ट हेलेना द्वीप में रखा गया। वहीं नैपोलियन का 6 वर्ष बाद 52 वर्ष की आयु में पेट के कैन्सर से देहान्त हो गया।

नैपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली (Napolean's Continental System)

ब्रिटेन तथा क्रान्तिकारी फ्रान्स और कालान्तर में नैपोलियनकालीन फ्रान्स के मध्य परस्पर संघर्ष में सामरिक तथा सैन्य दृष्टि से शक्ति सन्तुलन नहीं था। प्रायः ब्रिटेन ने फ्रान्स की क्रान्ति एवं नैपोलियन के खुले समुद्र में विजय अभियानों तथा आकांक्षाओं को ध्वस्त किया था। क्रान्ति और नैपोलियन का स्थल युद्ध में निर्विवाद आधिपत्य था। यूरोपीय राष्ट्रों के, एक के बाद एक अनेक गुटों का, क्रान्ति और नैपोलियन की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति और प्रभुता को अवरुद्ध करने के उद्देश्य से गठन किया गया परन्तु समस्त, गुट इस महाद्वीप में ध्वस्त तथा अस्त-व्यस्त हो गये और अन्त में इंग्लैण्ड अकेला रह गया। लेकिन सन् 1808 के उपरान्त महाद्वीप की परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।

सन् 1804 में इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री कनिष्ठ पिट ने आस्ट्रिया, रूस और स्वीडेन को मिलाकर तीसरे गुट का गठन किया। प्रशा तटस्थ रहा। नील नदी, कोपेनहेगन तथा ट्राफलगार के युद्धों में ब्रिटेन को विजय भी मिली, लेकिन मारेंगो, आस्टरलिट्ज जेना और फ्राइडलैण्ड के युद्धों में फ्रान्स विजयी रहा था। इसके अतिरिक्त फ्रान्स के नौ-सैनिक बेड़े के साथ डेनमार्क, हालैण्ड और स्पेन के नौ-सैनिक बेड़ों के विनाश ने नैपोलियन को इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने से रोक दिया था। निस्सन्देह-इंग्लैण्ड की स्थल सेना नैपोलियन की विध्वंसात्मक शक्तिशाली सेना का सामना करने में समर्थ नहीं थी। इस प्रकार खुले समुद्र पर ब्रिटेन का पूर्ण एकाधिकार था और यूरोप महाद्वीप पर नैपोलियन का पूर्ण प्रभुत्व था।

नैपोलियन भलीभाँति जानता था कि इंग्लिश चैनल को पार करना सम्भव नहीं था और इंग्लैण्ड की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक गतिविधियाँ पूर्णरूप से महाद्वीपीय व्यापार एवं वाणिज्य पर आश्रित थीं। उसको पूर्ण आशा एवं विश्वास था कि इंग्लैण्ड के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध द्वारा ब्रिटेन को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया जा सकता था। इंग्लैण्ड के व्यापार को नष्ट करने के उद्देश्य से प्रवृत्त आर्थिक प्रतिबन्धों को ही **'महाद्वीपीय प्रणाली अथवा व्यापार बहिष्कार की नीति'** भी कहते हैं। नैपोलियन ने हर सम्भव रूप से यूरोप को ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेशों के निर्यातित माल से दूर रखा। उसने प्रतिबन्धात्मक कर आरोपित किये और सीमा-शुल्क अधिकारियों की विशाल सेना नियुक्त की और विधिक सतर्कता एवं तकनीकी ज्ञान अर्जित करने का आग्रह किया। इस प्रक्रिया में नैपोलियन ने

यूरोपीय महाद्वीप में मित्रों की अपेक्षा शत्रु अधिक बना लिये। नैपोलियन की ब्रिटेन के विरुद्ध महाद्वीपीय प्रणाली असफल हो गयी।

(1) इंग्लैण्ड ने अपनी लचीली नीति तथा प्रवृत्ति एवं समुत्थान शक्ति द्वारा दक्षिण अमेरिका में नये स्रोतों की खोज की और प्राप्त भी हो गये और प्रशा, स्पेन एवं हालैण्ड जैसे यूरोपीय राष्ट्रों से अवैध वाणिज्यिक सम्बन्ध स्थापित किये।

(2) इसके अतिरिक्त नैपोलियन की असंगत, परस्पर विरोधी तथा सामंजस्यहीन नीति थी। महाद्वीपीय प्रणाली को प्रवृत्त करते समय कभी वह अत्यधिक उदार हो गया और कुछ अवसरों पर इस प्रणाली को अत्यधिक कठोरता के साथ कार्यान्वित किया।

इस प्रणाली का पूर्वाभास निदेशक मण्डल और कौन्सल कालीन शासन में मिलता था, लेकिन नवम्बर सन् 1806 में बर्लिन में राज्यादेश प्रचलित किया। यह महाद्वीपीय प्रणाली की सुनियोजित ढंग से व्याख्या करने तथा सक्रिय रूप से प्रवृत्त करने का पहला महत्वपूर्ण प्रयास था।

लेकिन प्रारम्भ से ही नैपोलियन ने इस प्रणाली को अपने समुचित उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए व्यापक रूप से कठोरता के साथ प्रवृत्त करना असम्भव समझ लिया था। प्रायः विरोध से बचने के लिए अपने अध्यादेशों में अपवादस्वरूप छूट के लिए अधिकृत कर देता था। ब्रिटेन अपनी नौ-सैनिक सर्वोच्चता के कारण अन्य यूरोपीय देशों को अपने निर्यातित माल को पकड़ने से रोक देता था। लेकिन ब्रिटिश उत्पादित वस्तुओं की निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा ने अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के लिए पुर्तगाल और स्पेन के माध्यम से डैन्यूब नदी के ऊपर विशेष अनुमति पत्रों के अन्तर्गत रास्ता बनाया। अन्य न्यायोचित विकल्प के अभाव में तस्कर साधनों का भी उन्मुक्त रूप से प्रयोग किया। उचित एवं अनुचित समस्त सम्भव साधनों का प्रयोग किया गया। अन्तिम संस्कार के लिए शवों की संख्या में अनायास आश्चर्यजनक वृद्धि हो गयी। कालान्तर में ज्ञात हुआ कि अन्तिम संस्कार के लिए निर्मित ताबूत में शक्कर भरी हुई थी। शक्कर, तम्बाकू, काफी, सूती कपड़ों एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं के बढ़े हुए मूल्यों से यूरोपीय महाद्वीप के निर्धन वर्ग को ही सर्वाधिक कष्ट हुआ। ग्रेट ब्रिटेन को इससे कोई हानि नहीं हुई। हालैण्ड, जो पूर्णरूप से एक वाणिज्यिक देश था, इस प्रणाली से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि इसके राजा, नैपोलियन के स्वयं के भाई, ने इस साम्राज्यिक अध्यादेश को प्रवृत्त करने से मना कर दिया।

नैपोलियन द्वारा इस प्रणाली के सक्रिय रूप से कार्यान्वयन में असंगति, परस्पर विरोध तथा सामंजस्यहीनता, इस प्रणाली का सर्वाधिक दुर्भाग्य था। अनेक अवसरों पर उसने कार्यान्वयन में उदारता व्यक्त की, लेकिन कुछ अन्य अवसरों पर अनावश्यक कठोरता का प्रदर्शन किया। नैपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली ने ब्रिटेन को भी प्रभावित किया था। इंग्लैण्ड में बेकारी बढ़ गयी, अर्थव्यवस्था ध्वस्त हो गयी और दिवालियेपन की स्थिति उत्पन्न हो गयी। वाणिज्यिक गतिविधियों को सर्वाधिक हानि हुई। प्रगति तथा विकास अवरुद्ध हो गया। ब्रिटेन नये संसार अर्थात् पूर्वी उपनिवेशों से पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न का आयात करने की स्थिति में नहीं था। यदि नैपोलियन ने यूरोपीय देशों से खाद्यान्न का निर्यात रोक दिया होता, उस स्थिति में इंग्लैण्ड द्वारा आत्मसमर्पण की सम्भावना हो सकती थी।

कालान्तर में, यूरोप के अधिकांश भाग पर नियन्त्रण करने के उपरान्त सन् 1811 में, विशेष रूप से उस समय जब ब्रिटेन खाद्यान्न के अत्यधिक अभाव से पीड़ित था, नैपोलियन ने नरम नीति का अनुसरण करने का निश्चय किया। उसने निश्चित वस्तुओं का ब्रिटेन से आयात करने की अनुमति दे दी। इसके साथ फ्रान्स से इंग्लैण्ड के लिए खाद्यान्न के निर्यात की भी अनुमति दी। यथार्थ में वह फ्रान्स के कृषकों एवं व्यापारियों को कुछ राहत देना चाहता था, लेकिन उसकी नरम नीति महाद्वीपीय प्रणाली के लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधक सिद्ध हुई।

इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के विरुद्ध तट-नाकाबन्दी करते समय ही अपनी सत्ता तथा प्रभुत्व का भी विस्तार किया। सन् 1808 में स्पेन पर आधिपत्य उसकी सर्वाधिक कूटनीतिक भूल थी। विद्वानों ने मत व्यक्त किया है कि स्पेन नैपोलियन के लिए विषाक्त फोड़ा सिद्ध हुआ। नैपोलियन ने स्वयं इस भूल को स्वीकार करते हुए कहा था, "स्पेन का नासूर मेरे विनाश का कारण था।" इस युद्ध में फ्रान्स के तीन लाख सैनिक शहीद हो गये थे। इसके परिणामस्वरूप प्रायद्वीपीय युद्ध हुआ। तदुपरान्त फ्रान्स के समस्त स्रोतों का अपक्षय ही हुआ। इसके अतिरिक्त फ्रान्स ने ब्रिटिश सेना को प्रायद्वीप (पुर्तगाल) में उतरने का अत्यधिक सुखद तथा आश्चर्यजनक अवसर प्रदान किया। पुर्तगाल में ब्रिटिश सेना ने अपनी सुरक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ करते हुए फ्रान्स के सैनिकों से युद्ध किया, और स्पेन में भी फ्रान्स के सैनिकों के साथ भीषण संघर्ष किया और कालान्तर में स्पेन से होते हुए ब्रिटिश सैनिक फ्रान्स की सीमाओं के निकट पहुँच गये।

इसी प्रकार महाद्वीपीय प्रणाली के प्रतिबन्धात्मक प्रावधान रूस के लिए भी कष्टप्रद थे। नैपोलियन ने रूस के जार के एक सम्बन्धी ओल्डेनबर्ग के जर्मन डची (शासक) को अपदस्थ करके उसके राज्य का फ्रान्स में विलय कर लिया था। इसके अतिरिक्त नैपोलियन ने रूस के जार की बहन के वैवाहिक प्रस्ताव को अस्वीकार करके, यूरोप के सर्वाधिक गौरवशाली हैप्सबर्ग वंश की राजकुमारी मैरी लूसी (Marie Lousie) को अपनी नई रानी बनाया था। आस्ट्रिया को चौथी बार पराजित करके यूरोप का रूपान्तर कर दिया था। उसने अपनी पत्नी जोसेफाइन को तलाक दे दिया, क्योंकि उसको अब तक अपेक्षित उत्तराधिकारी प्राप्त नहीं हुआ था। इस विवाह को दोनों पक्षों के लिए अत्यधिक लाभदायक समझा जाता था। इससे दोनों देशों के मध्य युद्ध की सम्भावना समाप्त हो गयी। आस्ट्रिया को सुरक्षा मिली और यूरोप के सर्वाधिक प्राचीन एवं गौरवशाली राजवंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध से नैपोलियन की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हुई। अप्रैल, 1810 में विवाह हुआ और अगले वर्ष सन् 1811 में पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। जार अतः अत्यधिक अप्रसन्न था और अपने क्रोध को व्यक्त करने के लिए महाद्वीपीय प्रणाली के प्रावधानों को निलम्बित कर दिया तथा टिलसिट की सन्धि से पूर्व के सामान्य व्यापारिक एवं वाणिज्यिक सम्बन्ध स्थापित किये। नैपोलियन इस अपमान को सहन नहीं कर सका और 6 लाख सैनिकों की विशाल सेना लेकर रूस पर आक्रमण कर दिया। प्रारम्भ में वह विजयी रहा। अन्ततोगत्वा उसकी सेना पीछे लौटने के लिए विवश हो गयी। इस अभियान में फ्रान्स की सेना के 5 लाख सैनिक हताहत हुए और नैपोलियन की प्रतिष्ठा, गौरव तथा यश समाप्त हो गया। इस अभियान से ही नैपोलियन के जीवन का दुखान्त आरम्भ हो गया है। सारांश में नैपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली पूर्णतया असफल रही और उसके विनाश का प्रमुख कारण बनी।

जर्मनी में नैपोलियन का प्रभाव (Napolean's Influence in Germany)

नैपोलियन ने सर्वप्रथम इटली और जर्मनी के राज्यों को भौगोलिक नाम के स्थान पर वास्तविक रूपरेखा प्रदान की। परिणामस्वरूप इटली और जर्मनी के भविष्य में एकीकरण के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। सन् 1804 में इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री कनिष्ठ पिट द्वारा आस्ट्रिया, रूस और स्वीडेन को सम्मिलित करके तृतीय गुट का गठन किया था। इस अवधि में जर्मनी को सर्वाधिक अपमान सहन करना पड़ा। जुलाई, 1807 में टिलसिट की सन्धि ने तृतीय गुट को ध्वस्त कर दिया और नैपोलियन को यूरोप महाद्वीप का स्वामी बना दिया। सन् 1806 में नैपोलियन की इच्छानुसार बवेरिया तथा वर्टम्बर्ग के राजाओं, बेडन (Baden), हैस-डार्म्सटैड (Darmstadt) और बर्ग (Berg) के भव्य ड्यूक-मेन्ज (Mainz) के आर्क बिशप और नौ छोटे राजकुमारों ने पवित्र रोमन साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और फ्रान्स के सम्राट के संरक्षण में राइन राज्य संघ (Confederation of the Rhine) का गठन किया। इस संघ ने नैपोलियन को 63,000 सैनिकों की सहायता का भी वचन दिया। तदुपरान्त नैपोलियन ने पवित्र रोमन साम्राज्य को भविष्य में मान्यता देने से मना कर दिया। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया के हैप्सबर्गीय सम्राट फ्रान्सिस द्वितीय ने रोमन साम्राज्य के औपचारिक सम्राट का पद त्याग दिया। उसके पूर्वज अनेक शताब्दियों से पवित्र रोमन साम्राज्य के सम्राट थे। इस प्रकार औपचारिक रूप से पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त हो गया।

सन् 1808 तक समस्त जर्मनी नैपोलियन के अधीन हो गया था। प्रशा को उसके कुल क्षेत्राधिकार के आधे भाग से वंचित कर दिया गया था और विजेता नैपोलियन के समस्त आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य किया गया। राइन राज्य संघ का विस्तार किया गया तथा उसको सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाया गया। उत्तर-पश्चिम जर्मनी में स्थित प्रशा, हैनोबर, ब्रसविक और हैसी के क्षेत्रों को मिलाकर नया वेस्टफेलिया राज्य बनाया और अपने भाई जैरेम (Jerame) को इसका राजा बनाया।

जर्मनी के मानचित्र में नैपोलियन द्वारा किये गये परिवर्तनों का जर्मनी के स्वाभिमानी तथा सैन्य प्रवृत्ति के व्यक्तियों ने तीव्र विरोध किया। फ्रान्स और रूस ने प्रत्येक राज्य से अलग-अलग सन्धि की और अपने विशिष्ट हितों की सुरक्षा के उद्देश्य से इन सन्धियों के प्रावधान रखे। जर्मनी के भविष्य को गम्भीर रूप से प्रभावित करने वाली समस्त घटनाओं का निर्णय जर्मनी के राजाओं अथवा राजकुमारों की अपेक्षा फ्रान्स के कूटनीतिज्ञों ने किया था।

इस राजनीतिक अपमान के अतिरिक्त नैपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली ने जर्मनी को सर्वाधिक आघात पहुँचाया था। जर्मनी के बुद्धिजीवियों को काली काफी बहुत प्रिय थी। शक्कर के अभाव के कारण वे काली काफी नहीं पी सके। इस अभाव ने बुद्धिजीवियों को नैपोलियन का विरोध करने के लिए उद्वेलित किया। बुद्धिजीवी वर्ग जर्मनी के राजनीतिक अपमान तथा आवश्यक वस्तुओं के अभाव के लिए नैपोलियन को ही उत्तरदायी मानता था। असाधारण प्रतिभाशाली बुद्धिजीवियों को क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता का पूर्व संकेत मिल चुका था और अपेक्षित परिवर्तनों के लिए उनमें पर्याप्त शक्ति और सामर्थ्य थी। स्कार्न हार्स्ट (Scharnhorst) ने नई सेना का गठन किया। क्लाजविट्ज (Clausewitz) सैनिक एवं सामरिक नीतियों तथा पद्धतियों के समस्त सिद्धान्तों का महान् ज्ञाता था। सैनिक राष्ट्रीय एवं देशभक्ति की पवित्र भावनाओं से अनुप्राणित थे। प्रचलित विशेषाधिकार प्रणाली को

समाप्त कर दिया। योग्यता के आधार पर ही अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। विभिन्न पदों पर सेना में सेवा अब कृषिदास प्रथा की प्रतीक नहीं थी। सेना अतीत की भाँति दोषों एवं दुर्गुणों के केन्द्र की अपेक्षा प्रतिष्ठा एवं गौरव का केन्द्र बन गयी थी। दो उत्कृष्ट उच्च अधिकारियों बैरन वान स्टेन (Baran Van Sten) और चान्सलर हरडेनबर्ग (Hardenburg) की अमूल्य समर्पित सेवाओं के परिणामस्वरूप प्रशा का पुनरुद्धार हुआ था। ये दोनों महान् विभूतियाँ अठारहवीं शताब्दी के मानवतावादी तथा देशभक्ति पूर्ण ज्ञानोदय से सर्वाधिक प्रभावित थीं।

जर्मनी में अनेक परिवर्तन तथा सुधार हुए। सन् 1810 के एक अध्यादेश द्वारा कृषि दास प्रथा को समाप्त कर दिया गया। कृषि दासों को निःशुल्क अनिवार्य सेवा एवं अपने भू-स्वामियों के सामन्तवादी क्षेत्राधिकार से मुक्त कर दिया गया। भूमि, जिस पर वे अन्य लोगों के लिए कृषि करते थे, उनकी स्वयं की सम्पत्ति बन गयी।

बौद्धिक क्षेत्र में भी जर्मनी में नवीन चेतना तथा सजगता का अभ्युदय हुआ। फिशेट (Fichete) ने जनता की सुषुप्त भावनाओं को जाग्रत करने के लिए ओजस्वी तथा उत्साही स्वर में देश को सम्बोधित किया तथा अरान्ड (Arandt) ने देशभक्तिपूर्ण काव्यात्मक रचनाओं से जनता में नवीन चेतना तथा राष्ट्रीय भावनाओं का संचार किया। शिक्षा का पूर्णरूप से पुनर्गठन किया गया। बर्लिन में एक नया विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। इस विश्वविद्यालय ने प्रारम्भ से ही महान् प्रतिष्ठित बुद्धिजीवियों को आकर्षित किया था। अस्तु इस विश्वविद्यालय का यूरोपीय विचारों, आदर्शों एवं भावनाओं पर अत्यधिक प्रभाव था।

प्रशा में उद्वेलित देशभक्ति तथा नवीन बुद्धिवादी चेतना का नैपोलियन को ज्ञान था। नैपोलियन ने इसका विरोध किया, गम्भीर परिणामों की धमकी दी और वह सन् 1808 में महान् देशभक्त, प्रबुद्ध बेरन वाम स्टेन को पदमुक्त करवाने में भी सफल हो गया था। प्रशा के इस दुर्जेय सुधारक ने भावी तीन वर्ष आस्ट्रिया में देशभक्ति की सुषुप्त भावनाओं को उद्वेलित करने में व्यतीत किये। तदुपरान्त स्टेन रूस के जार एलक्जेण्डर की नैपोलियन के विरुद्ध प्रतिशोध की भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए रूस गया। देशभक्ति की भावनाओं से अनुप्राणित संस्थाओं जैसे तुकेनबन्द (Tuqendund) अथवा गुणों का संघ (League of Virtue), जर्मनी के विख्यात साहित्यकारों फिशेट (Fichete) एवं अरण्ड (Arandt) ने अपनी साहित्यिक कृतियों, तथा कालान्तर में प्रशा की सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली के प्रणेता, सन् 1809 में बर्लिन में महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी विश्वविद्यालयों के संस्थापकों में एक एवं शिक्षा के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय सुधारों के लिए लोकप्रिय तथा विख्यात, शिक्षाविद् विलहैम वान हैमबोल्ड (Wilhem Von Hemboldt) ने देश की जनता में उदात्त राष्ट्रीय भावनाओं तथा देशप्रेम का संचार किया और नवयुग का सूत्रपात किया।

लिपजिग (Leipzig) तथा वाटरलू के निर्णायक युद्धों के बाद प्रशा का एक महत्वपूर्ण शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में आविर्भाव हुआ। सन् 1814-15 में तुर्की के अतिरिक्त समस्त यूरोपीय राष्ट्रों की, यूरोप महाद्वीप में व्याप्त अशान्ति एवं अव्यवस्था का निराकरण करने के उद्देश्य से आयोजित विशाल एवं भव्य सभा का वियाना में आयोजन किया गया। वह विशाल सम्मेलन विश्व के इतिहास में 'वियाना की काँग्रेस' के नाम से विख्यात है। वियाना के सम्मेलन में यद्यपि प्रशा को अनेक लाभ हुए, परन्तु जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में आस्ट्रिया

एक व्यवधान के रूप में शेष रह गया। इस सम्मेलन के सर्वसम्मति से स्वीकृत निर्णयों के अनुसार प्रशा को अतीत में नैपोलियन द्वारा ध्वस्त समस्त जर्मन क्षेत्र राइन नदी तट का अधिकांश भाग मिल गया। अतिरिक्त प्राप्त भू-भाग में स्थित मूल्यवान खनिज क्षेत्र प्रशा के लिए आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे और भावी शताब्दी में प्रशा के लिए वरदान सिद्ध हुए। प्रशा ने भी अधिकृत पोलैण्ड का कुछ भाग रूस को दे दिया। यह क्षेत्र अर्द्धस्लेविक राज्य था और स्थानान्तरण ने इसका रूपान्तर कर दिया था। यह क्षेत्र मूलरूप से कृषि प्रधान था, लेकिन इसको प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया।

वियाना सम्मेलन में आस्ट्रिया और प्रशा दोनों ने सन् 1803 में ध्वस्त लगभग दो सौ आध्यात्मिक राज्यों और स्थानीय छोटे क्षेत्रों के पुनर्स्थापन का तीव्र विरोध कियां। वियाना सम्मेलन का यह एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम था। सन् 1806 में नैपोलियन द्वारा विघटित पवित्र रोमन साम्राज्य को पुनर्जीवित करने के विषय में कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया गया। एक व्यक्ति की सर्वोच्च सत्ता के अधीन जर्मनी के एकीकरण का बेरन वान स्टेन (Baran Van Stein) का स्वप्न साकार नहीं हो सका। जर्मनी के विशाल भू-भाग में स्थित 38 राज्यों के एक संघ का गठन किया गया। वियाना की सन्धि के प्रावधानों के अनुसार इस संघ का प्रत्येक राज्य अपने आन्तरिक प्रशासन एवं व्यवस्था के लिए पूर्णरूप से स्वतन्त्र था, परन्तु संघ अथवा सदस्य देश के विरुद्ध किसी विदेशी शक्ति से सन्धि करने अथवा किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने पर पूर्ण प्रतिबन्ध था।

नैपोलियन और क्रान्ति (Napolean and Revolution)

नैपोलियन और क्रान्ति के परस्पर सम्बन्ध एक विवादास्पद विषय है और विद्वान आलोचकों एवं समालोचकों ने परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किये हैं। मूल विवाद का विषय है, क्या नैपोलियन फ्रान्स की क्रान्ति का समर्थक और क्रान्ति के निहित सिद्धान्तों और आदर्शों को कार्यान्वित करने वाला था अथवा निम्न परिवार में उत्पन्न महत्वाकांक्षी नैपोलियन प्राचीन परम्परागत निरंकुश राजतन्त्र का समर्थक था और उसने केवल निरंकुश राजतन्त्र को पुनर्स्थापित करने के लिए ही कार्य किया। दोनों प्रश्नों के पक्ष एवं विपक्ष में निम्न विचार व्यक्त किये जा सकते हैं :

(1) नैपोलियन ने स्वयं स्वीकार किया कि वह क्रान्ति का पुत्र है और सन् 1799 में घोषणा की कि वह क्रान्ति की सकारात्मक नीतियों का सक्रिय रूप से अनुसरण कर रहा है तथा पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण की उदात्त भावना से कार्यान्वित करने का प्रयास कर रहा है।

(2) सन् 1807 में नवगठित तथा उसके स्वयं के भाई जैरेम (Jerame) द्वारा शासित वेस्टफेलिया राज्य के नये संविधान का प्रारूप तैयार किया और अपने भाई जैरेम को चेतावनी देते हुए कहा कि यदि उसको शान्तिपूर्वक सुव्यवस्थित ढंग से शासन करना है, तो उसको जनता के विश्वास एवं प्रेम की आवश्यकता है और जनता को पूर्ण स्वतन्त्रता तथा समानता का अधिकार मिलना चाहिए।

(3) अपने शासन के अन्तिम समय में नैपोलियन ने कहा था कि सरकार को निष्पक्ष तथा न्यायप्रिय होना चाहिए एवं सब व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

(4) अपनी मृत्युशैय्या पर उसने कहा था कि उसने सरकार तथा प्रशासन का उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसने जनता के हितों को सुरक्षित रखा तथा जनता के हित में ही सदैव कार्य

किया। एक विद्वान ने मत व्यक्त किया है, "नैपोलियन फ्रान्स की क्रान्ति का बालक एवं उत्तराधिकारी था। यदि उसने समानता को नष्ट भी किया परन्तु अपने बनाये हुए कानूनों में निहित करके समानता की रक्षा भी की।"

(5) इसके विपरीत सन् 1800 में उसने फ्रान्स में पुलिस राज्य का गठन किया, जिसमें पुलिस उच्च अधिकारियों को व्यावहारिक रूप से असीमित अधिकार थे।

(6) सन् 1804 एवं कालान्तर में अपने परिवार के लगभग समस्त सदस्यों को सर्वोच्च प्रतिष्ठित पदों पर नियुक्त करके राजतन्त्रीय वंश परम्परा का सूत्रपात किया!

(7) सन् 1800 में उसने अपनी नीति तथा कार्यक्रमों के आलोचक समाचार पत्र-पत्रिकाओं का दमन किया तथा शेष का सावधानीपूर्वक सम्पादन करवाया एवं सब पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखा।

(8) वह स्त्रियों को हीन दृष्टि से देखता था और स्त्रियों को "केवल बच्चे बनाने की मशीन" कहता था। नैपोलियन ने अपनी असैनिक (नागरिक) संहिता में स्त्रियों को अयोग्य की श्रेणी में रखा था।

(9) उसने कर्मचारी पर नियोजक की वैध श्रेष्ठता को पुनर्स्थापित किया था।

(10) फ्रान्स अधिकृत उपनिवेशों में दास प्रथा को पुनः मान्यता प्रदान कर दी।

(11) यद्यपि प्राचीन परम्परागत कुलीनवर्ग क्रान्ति की भावनाओं एव सिद्धान्तों के अनुरूप समाप्त कर दिये गये थे परन्तु उच्च पदाधिकारियों तथा सेना के वरिष्ठ अधिकारियों को सम्मानित करके नये कुलीन वर्ग का सूत्रपात किया था।

(12) उसने शिक्षा प्रणाली को राजनीतिक सिद्धान्त बोधन के महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार किया था।

(13) उसने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की और विजित देशों को अपनी योजनाओं एवं कार्यक्रमों में धन-जन से योगदान करने के लिए बाध्य किया।

नैपोलियन अन्तिम महान् शासक था अथवा प्रथम आधुनिक अधिनायक था, विद्वानों के विचाराधीन प्रश्न शेष है।

फ्रान्स की क्रान्ति और नैपोलियन युग के परिणाम (Consequences of French Revolution and Napoleanic Era)

वियाना काँग्रेस से पूर्व दो दशक तक नैपोलियन के विशाल व्यक्तित्व का समस्त यूरोप पर प्रभुत्व रहा। सेन्ट हेलेना में उसके निर्वासन के बाद यूरोप ने स्वतन्त्रतापूर्वक साँस ली। लेकिन फ्रान्स की क्रान्ति ने एक समस्या प्रस्तुत की थी, जिसका नैपोलियन की पराजय से भी समाधान नहीं हुआ था।" नैपोलियन के पतन से उन विचारों का पतन नहीं हुआ था जिन्होंने फ्रान्स की क्रान्ति को प्रेरित किया था और जिनका नैपोलियन ने अपने शासनकाल में समस्त यूरोप में व्यापक प्रचार एवं प्रसार करने का प्रयल किया था।

फ्रान्स की क्रान्ति के कुछ स्थिति अनुसार परिवर्तनशील सिद्धान्तों में व्यक्तिवाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। समाज एवं सरकार की आधारभूत ईकाई किसी समूह की अपेक्षा एक व्यक्ति है। क्रान्ति से पूर्व समाज और सरकार के स्तम्भ सामूहिक समुदाय जैसे परिवार, जागीर,

श्रेणी, चर्च, विश्वविद्यालय आदि थे। व्यक्तियों की अपेक्षा सामूहिक समुदायों को स्वतन्त्रता अथवा विशेषाधिकार मिले हुए थे। फ्रान्स की क्रान्ति ने अतीत के इस विशाल प्रासाद को धराशायी कर दिया और नैपोलियन ने भी इनको पुनर्जीवित नहीं किया।

दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त धर्मनिरपेक्षवाद था। धर्म प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत विषय है और राज्य का धर्म से नाम मात्र का सम्बन्ध है। फ्रान्स की क्रान्ति ने निर्ममतापूर्वक चर्च से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया, लेकिन नैपोलियन ने क्रान्ति की उग्र भावनाओं में प्रसिद्ध धर्मसन्धि (Concordat) के द्वारा कुछ सुधार किया था। इंग्लैण्ड में धार्मिक समस्या का सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में समाधान हो चुका था। यथार्थ में इस प्रकार की उपलब्धि अमूल्य पैतृक सम्पति बन चुकी थी। धर्मनिरपेक्षवाद यूरोप का प्रमुख निर्देशक सिद्धान्त बन गया। परिणामस्वरूप धार्मिक सहिष्णुता की भावना प्रबल हो गयी और धर्मनिरपेक्ष समाज में धार्मिक हित गौण हो गये।

जैकोबिन राष्ट्रवादी फ्रान्स की क्रान्ति और नैपोलियन युग की तीसरी प्रमुख अमूल्य निधि थी। इस सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रीय राज्य राजनीतिक तथा सामाजिक संगठन का सर्वोच्च स्वरूप है। अस्तु राज्य व्यक्ति की सर्वोच्च निष्ठा, समर्पण एवं श्रद्धा के लिए अधिकृत है। फ्रान्स की क्रान्ति तक राष्ट्रीय भावना एवं संवेदना की राजतान्त्रिक संस्थाओं के साथ पहचान की जाती थी। सार्वजनिक निष्ठा तथा श्रद्धा के मुख्य केन्द्र-बिन्दु राजा ही थे, लेकिन क्रान्तिकारी फ्रान्स में राष्ट्रीय भावना लोकतान्त्रिक बन गयी, जबकि प्रभुसत्ता (सार्वजनिक) लोकतान्त्रिक हो गयी, राष्ट्रीय हित सर्वोपरि बन गये एवं अन्य समस्त हित गौण हो गये। नागरिकों ने राष्ट्रीय सेना में भर्ती होकर राष्ट्र की सेवा का व्रत लिया और राष्ट्रीय विद्यालयों में राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति के पाठ पढ़ाये गये। राजतन्त्रात्मक प्रतीकों एवं प्रार्थनाओं के स्थान पर राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय गीत प्रचलित हुए। यह सत्य है कि नैपोलियन जैकोबिन समुदाय के समान उग्र राष्ट्रवादी नहीं था। उसमें दृढ़ संकल्प का अभाव था। उसने उग्र राष्ट्रवाद का प्रयोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की उपलब्धि के लिए ही किया।

नैपोलियन की असैनिक (नागरिक) विधि संहिता द्वारा सुनिश्चित विधि की सर्वोपरिता चौथा प्रमुख सिद्धान्त था। विजय अभियान के परिणामस्वरूप जो भी क्षेत्र पेरिस के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में आया प्रत्येक को असैनिक विधि संहिता का भव्य उपहार दिया गया। कुछ दशकों में इसका यूरोप के अधिकांश भागों में व्यापक प्रचार एवं प्रसार हो गया।

सन् 1812 में वैलिंगडन ने ब्रिटिश तथा स्पेन, मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का नेतृत्व करते हुये सलामानका (Salamanca) पर उल्लेखनीय विजय प्राप्त की और मैड्रिड पर आधिपत्य स्थापित किया और जोसेफ तथा फ्रान्स के सैनिकों को वेलेनेशिया पलायन के लिए बाध्य कर दिया। उसी वर्ष स्पेनवासियों का समूह, जिसने फ्रान्सवासियों से क्रान्तिकालीन मूलभूत सिद्धान्तों का अध्ययन कर लिया था, केडिज (Cadiz) में एकत्र हुआ और एक संविधान का प्रारूप तैयार किया। उनको निकट भविष्य में स्पेन के पुनरुत्थान की पूर्ण आशा थी। यह लिखित संविधान अमेरिका तथा फ्रान्स के संविधानों के बाद समस्त दक्षिण यूरोप में कालान्तर में समस्त उदार संविधानों के लिए एक आदर्श बन गया। "इस राजा के प्राचीन मौलिक कानूनों" की प्रशंसा में लिखित प्रस्तावना के बाद, इसमें फ्रान्स की क्रान्ति के मूलभूत सिद्धान्तों को व्यक्त किया गया। इस संविधान में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा विधि की समानता के

सिद्धान्तों की उद्घोषणा की गयी थी और न्यायालयों, स्थानीय प्रशासन, कर प्रणाली, सेना एवं सार्वजनिक शिक्षा के व्यापक पुनर्गठन की व्यवस्था की गयी थी।

क्रोपोकिन (Kropolkin) ने मत व्यक्त किया है कि फ्रान्स की क्रान्ति ने फ्रान्स को शक्तिशाली एवं सम्पन्न बनाया। क्रान्ति के परिणामस्वरूप जीवन की समस्त आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन पूर्वापेक्षा अधिक होने लगा। "क्रान्ति के चार वर्षों में नये फ्रान्स का उदय हुआ। अनेक शताब्दियों में पहली बार कृषक ने भर पेट भोजन किया, अपनी पीठ सीधी की और बोलने का साहस किया। एक नये राष्ट्र का आविर्भाव हुआ था। नवोदय का ही परिणाम था कि फ्रान्स गणतन्त्र के अन्तर्गत अपने युद्ध करने में समर्थ रहा और नैपोलियन इस महान् क्रान्ति के सिद्धान्तों को स्विट्जरलैण्ड, इटली, स्पेन, बेल्जियम, हालैण्ड, जर्मनी और रूस की सीमाओं तक ले गया। इन समस्त युद्धों के बाद लोगों को आशा थी कि सन् 1815 में फ्रान्स दयनीय स्थिति तक पहुँच जायेगा और इसकी भूमि बंजर पड़ी होगी। यथार्थ में क्या देखा गया कि वहाँ लुईस सोलहवें के शासन काल की अपेक्षा अधिक सम्पन्नता थी। क्रान्ति द्वारा पुनर्संचारित शक्ति इतनी अधिक थी कि कुछ ही वर्षों में फ्रान्स सम्पन्न तथा समृद्ध कृषकों का देश बन गया।"

क्रोपोकिन कहते हैं कि फ्रान्स की क्रान्ति ने कृषिदास प्रथा एवं निरंकुशवाद का उन्मूलन कर दिया। कृषकों तथा जनता को अकल्पनीय स्वतन्त्रता दी गयी। ये दो उपलब्धियाँ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख कार्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनका शुभारम्भ 1789 में फ्रान्स में हुआ था और भावी शताब्दी में यूरोप में व्यापक प्रसार हुआ। मताधिकार फ्रान्स के कृषकों ने सन् 1789 में फ्रान्स में आरम्भ किया था और नैपोलियन की सेनाओं ने स्पेन, इटली, स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी और आस्ट्रिया में आगे बढ़ाया। प्रतिक्रियावादियों की अस्थायी विजय के बाद भी स्पेन एवं इटली में कृषिदास प्रथा का उन्मूलन हो गया। जर्मनी में सन् 1811 में कृषिदास प्रथा उन्मूलन प्रक्रिया आरम्भ हो गयी और सन् 1848 के युद्ध में बाल्कन प्रायद्वीप में कृषिदास प्रथा को समाप्त कर दिया। निरंकुश सत्ता उन्मूलन को यूरोप की यात्रा में 100 वर्षों का समय लगा। सन् 1648 में सर्वप्रथम निरंकुश सत्ता की आलोचना की गयी, और सन् 1789 में फ्रान्स में लुप्त हो गयी। दैवी अधिकार सिद्धान्त पर आधारित राजतन्त्रीय सत्ता यूरोप के समस्त भागों से पूर्णतया विलुप्त हो गयी।

क्रोपोकिन आगे लिखते हैं कि फ्रान्स की क्रान्ति ने साम्यवादी सिद्धान्तों के लिए अमूल्य निधि छोड़ी। फ्रान्स की क्रान्ति की अवधि में साम्यवादी विचारधारा प्रमुख रही। गणतन्त्र के प्रथम दो वर्षों में लोकप्रिय साम्यवाद आधुनिक समाजवाद की अपेक्षा अधिक प्रबल था। यह उपभोग का साम्यवादीकरण तथा राष्ट्रीयकरण था। रोबेस्पियेरे ने घोषणा की थी कि खाद्यान्नों की अधिकता का ही व्यापार होना था और जो आवश्यक था, उस पर सबका अधिकार था। सन् 1793 के साम्यवाद ने, सबको जीवनयापन के लिए आहार के अधिकार तथा इसके उत्पादन के लिए भूमि के अधिकार, वह और उसका परिवार जितनी भूमि पर कृषि कर सकता था, उसकी अपेक्षा अधिक भूमि के अधिकार की अस्वीकृति की पुष्टि की थी तथा समस्त व्यापार और उद्योगों पर सबके समान अधिकार का प्रयास किया गया था। लोगों ने इसका समस्त न्यूनतम कार्यक्रमों की अपेक्षा अधिक हार्दिक स्वागत किया था और इस प्रकार के कार्यक्रमों की प्रस्तावना में सर्वाधिक प्रयोग किया गया। "यथार्थ में फ्रान्स की क्रान्ति समस्त

आधुनिक साम्यवादियों, अराजकतावादियों तथा समाजवादियों का मूल स्रोत तथा उद्भव थी।"

इन मुख्य सिद्धान्तों के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के अतिरिक्त नैपोलियन युग ने अनेक देशों में नवीन सिद्धान्तों पर आधारित कानूनों के पुनरुद्धार के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रेरित किया। बैरन वान स्टेन ने नैपोलियन को सर्वोत्कृष्ट श्रद्धा सुमन अर्पित किये। प्रशा के सामाजिक एवं राजनीतिक पुनरुद्धार ने (आस्ट्रिया का पुनरुद्धार कुछ मात्रा में हुआ था) मध्य यूरोप के निरंकुश राजतन्त्रों द्वारा अपनी जनता के उत्साही समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से किये गये प्रयासों का प्रतिनिधित्व किया। इन राजतन्त्रों ने जनता के कल्याण के लिए कुछ सुधार किये, जिन्होंने फ्रान्सवासियों को प्रेरित किया था और फ्रान्सवासी इस संदेश को यूरोप के विभिन्न भागों में ले गये थे। कुछ अंशों में प्रशा का पुनरुद्धार बुद्धिजीवियों के सक्रिय विरोध का भी परिणाम था। इन बुद्धिवादियों ने अपनी दार्शनिक तथा साहित्यिक कृतियों में राष्ट्रवादी भावनाओं एवं विचारों को अभिव्यक्त किया था। कुछ अंशों में नैपोलियन तथा उसके विजय अभियानों के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। जर्मनी और स्पेन में नैपोलियन के अनावश्यक हस्तक्षेप ने इन दोनों देशों में राष्ट्रीय भावना को प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया था।

ओटोमन साम्राज्य के अन्तर्गत पूर्वी भूमध्यसागर स्थित देशों ने राष्ट्रवाद के प्रभाव को अनुभव किया था। सन् 1798 में नैपोलियन के नेतृत्व में मिस्र विजय अभियान के अनेक परिणाम हुए। मिस्र में ब्रिटिश सेना का आगमन हुआ। इयोनियम द्वीपों पर इंग्लैण्ड का आधिपत्य हो गया। नैपोलियन ने सर्बियां तथा एड्रियाटिक समुद्रतटीय क्षेत्र का अपने साम्राज्य में विलय कर लिया।

यद्यपि जैकोबिन का राष्ट्रवाद एकता के सूत्र में बाँधने वाली शक्ति थी, परन्तु व्यक्तिवाद और धर्म निरपेक्षवाद के सिद्धान्त सन् 1815 के बाद यूरोप में विभाजक सिद्ध हुए। कुछ राष्ट्रवादियों ने ब्रिटेन के रूढ़िवादियों के अनुरूप अतीत की प्रचलित मान्यताओं एवं परम्पराओं से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद का विरोध किया। इस दृष्टि से फ्रान्स के राष्ट्रवादियों में भी विभाजन हो गया था। यूरोप महाद्वीप के प्रत्येक देश में जहाँ क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा आदर्शों का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हो चुका था, नवीन व्यक्तिवाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के प्रबल समर्थकों एवं विरोधियों के समुदायों का आविर्भाव हो चुका था। इन दो परस्पर विरोधी समुदायों को रूढ़िवादी और उदार अथवा दक्षिणपंथी एवं वामपंथी कह सकते हैं। राजा और राजकुमार जिनकी प्रभुसत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ था, कुलीनवर्गीय व्यक्ति जिनको विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया गया था तथा भूमि का अधिहरण कर लिया गया था अथवा चेतावनी दी गयी थी तथा धर्माधिकारी जिनको विशेषाधिकारों एवं सम्पत्ति से वंचित कर दिया गया था अथवा निकट भविष्य में वंचित करने की सम्भावना थी, निश्चित रूप से रूढ़िवादी थे। उनके परम्परागत एवं वंशानुगत व्यक्तिगत हितों पर कुठाराघात हुआ था और प्राचीन व्यवस्था बनाये रखने में ही गहन रुचि थी, परन्तु क्रान्तिकालीन व्यक्तिवादी एवं धर्मनिरपेक्षतावादी सिद्धान्तों का विरोध सहज और स्वाभाविक था। इसके ठीक विपरीत अधिकांश मध्यमवर्गीय व्यक्ति (व्यावसायिक वर्ग, महाजन, व्यापारी, उत्पादक तथा दुकानदार) विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक एवं विद्यार्थी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के प्रबुद्ध बुद्धिजीवी और नये शिल्पकार, श्रमिक तथा खेतों में काम करने वाले दैनिक वेतन भोगी श्रमिक, स्वतः ही

क्रान्ति के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रबल समर्थक थे। अस्तु उदार दल के थे। एल. मुकर्जी लिखते हैं, "हर स्थान पर लोगों ने फ्रान्सवासियों से किसी न किसी प्रकार सार्वजनिक प्रभुसत्ता, व्यक्तिगत अधिकारों एवं राष्ट्रीय देशभक्ति के महत्व को सीखा था। वे इन विचारों को समाज एवं राजनीति में आवश्यक सिद्धान्त मानते थे। अस्तु फ्रान्स की क्रान्ति के सिद्धान्त उनके लिए एक नये धर्म के धार्मिक सिद्धान्त के समान थे और उसी धार्मिक उत्साह के साथ इन सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा थी।"

नैपोलियन के अपदस्थ होने के तत्काल बाद यूरोप में रूढ़िवादियों का प्रभुत्व अनायास बहुत बढ़ गया। ईसाई धर्म, विशेष रूप से कैथोलिक चर्च का उल्लेखनीय पुनरुत्थान हुआ। क्रान्तिकालीन सशस्त्र संघर्षों तथा नैपोलियन युगीन अन्य देशों के साथ भीषण युद्धों में प्रत्येक देश और लगभग समस्त वर्गों के सहस्त्रों नर-नारियों की नृशंस तथा निर्मम हत्याएँ हुई थीं। इसके अतिरिक्त सहस्त्रों नर-नारी अकाल, घृणित अपराधों, महामारी तथा अवर्णनीय रोगों से काल-कवलित हो गये थे। धर्माधिकारियों (पादरियों) तथा त्रस्त जनता ने संयुक्त रूप से शान्ति और व्यवस्था के लिए ईश्वरोपासना एवं आराधना की थी। जनतां की अन्तर्निहित भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए मैटरनिक (Matternich) ने कहा था, "यूरोप के लोग क्या चाहते हैं, स्वतन्त्रता नहीं वरन् शान्ति चाहते हैं।" तत्कालीन यूरोप के शासक फ्रान्स की क्रान्ति को केवल विधिसंगत सत्ता के विरुद्ध विद्रोह मानते थे। वे इसे केवल अस्त-व्यस्त करने वाली शक्ति समझते थे जिसके स्पर्श से सिंहासन तथा वेदी लुढ़क कर अनिश्चित रूप आकार में अस्त-व्यस्त हो गये और समस्त यूरोप को अत्यधिक भयावह विभीषिका में झोंक दिया। अस्तु उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि यूरोप की शान्ति के हित में क्रान्तिकालीन सिद्धान्तों की स्पष्ट अभिव्यक्तियों को समूल नष्ट करना चाहिए। क्रान्तिकालीन हृदयद्रावक रक्तपात एवं विभीषिका ने रूढ़िवादी राजतन्त्रीय शासकों को कठोर प्रतिक्रियावादी बना दिया था और आन्दोलनों के धरातल में निहित श्रेष्ठ तथा न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की उच्च आकांक्षाओं के प्रति नेत्रहीन कर दिया था। इस प्रकार तत्कालीन राष्ट्रवादी एवं उदार विचारों का एक तन्त्र और वैधता के सिद्धान्त विरोध कर रहे थे। इन्हीं के माध्यम से शासक वर्ग प्राचीन शासन को पुनः स्थापित करने का प्रयास कर रहा था। परिणामस्वरूप सन् 1815 में दो परस्पर विरोधी शक्तियों के मध्य दीर्घकालीन संघर्ष आरम्भ हो गया। एक ओर फ्रान्स की क्रान्ति के सिद्धान्तों एवं भावनाओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी और दूसरी ओर लोकतान्त्रिक एवं राष्ट्रवादी आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए कृत संकल्प संघर्ष था। दो विरोधी शक्तियाँ रूढ़िवादी एवं उदारवाद के मध्य यह संघर्ष उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। फ्रान्स की क्रान्ति ने कुछ स्पर्श अगोचर चिन्ह छोड़े हैं, जिनको शासक संक्रामण और जनता प्रेरणा कहती है।

फ्रान्स की क्रान्ति द्वारा उद्वेलित आकांक्षाएँ लोकतान्त्रिक एवं राष्ट्रवादी दो प्रकार के आन्दोलनों के रूप में अभिव्यक्त हुई। फ्रान्स, स्पेन एवं इंगलैण्ड में राष्ट्रीय एकता एवं स्वतन्त्रता दोनों मिल चुकी थीं, अतः जनता की माँग लोकतन्त्र की थी। जन-भावनाओं एवं सामान्य इच्छा की प्रतीक एवं अभिव्यक्ति लोकतान्त्रिक सरकार चाहती थी। सन् 1815 में यूरोप के किसी भी देश में इंगलैण्ड के अतिरिक्त पूर्ण रूप से लोकतान्त्रिक सरकार नहीं थी।

जर्मनी और इटली इस प्रकार के देश थे जहाँ की जनता एक ही जाति की थी परन्तु राजनीतिक दृष्टि से विभाजित थी। पोलैण्ड एवं आयरलैण्ड ऐसे देश थे जिनको मनमाने ढंग

से किसी क्रूर देश के साथ सम्बद्ध कर दिया गया था। इनकी मूलभूत राष्ट्रवादी भावनाएँ थीं और ये देश एकीकरण अथवा स्वतन्त्रता चाहते थे। वे राष्ट्रीय आधार पर यूरोप के मानचित्र को नया रूप देना चाहते थे। उनकी राष्ट्रीयता में तीव्र लोकतन्त्र की भावना मिश्रित थी और ये प्रायः दो आन्दोलन थे।

सन् 1815 के उपरान्त तत्कालीन यूरोपीय भावनाओं के आधार पर यूरोपीय राष्ट्रों ने सर्वप्रथम सामूहिक सुरक्षा का प्रयास किया। यह यूरोपीय सहमति (Concert of Europe) के रूप में विख्यात है। इसी प्रकार के सामूहिक सुरक्षा के प्रयासों के फलस्वरूप प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सन् 1919 में राष्ट्र संघ (लीग आफ नेशन्स) तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सन् 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ का अभ्युदय हुआ था।

यद्यपि राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षतावाद एवं व्यक्तिवाद के बहुआयामी सिद्धान्तों को सन् 1815 के उपरान्त कुछ काल के लिए आघात पहुँचा, परन्तु इन सिद्धान्तों की उस अवधि तक निरन्तर पुनरावृत्ति होती रही, जब तक कुछ देशों को छोड़कर आधुनिक विश्व के अधिकांश देशों ने पूर्णतया स्वीकार नहीं कर लिया। रूढ़िवाद, धर्मान्धता तथा रंगभेद की नीति से शासित जैसे दक्षिण अफ्रीका एवं कुछ अधिनायकतन्त्रीय देशों ने, इन सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया है। विद्वान इतिहासकार थामसन लिखते हैं, "नैपोलियनकालीन विजयों के समय यूरोप में आधुनिकीकरण का तीव्र झोंका आया। पश्चिमी यूरोप को फ्रान्स के अधीन मिलाये गये समूह अथवा अधीन क्षेत्रीय राज्यों के रूप में परिवर्तित करने के लिए भीषण हिंसात्मक प्रयास कम से कम निम्न सामन्वादी सत्ता के संकलित अवशेषों, प्राचीन क्षेत्राधिकारों तथा विशेषाधिकारों एवं अप्रचलित क्षेत्रीय विभाजनों से मुक्त करने में सफल हुए। उसके साफ किये अधिकांश भाग को पुनर्स्थापित नहीं किया जा सका। यदि फ्रान्स की क्रान्ति ने यूरोप को कुठाली (Melting Pot) में डाल दिया था, तो नैपोलियन ने इस प्रकार हिला दिया था कि वह आश्वस्त था कि उसने अधिकांश कूड़ा-करकट साफ कर दिया था और इसको ऐसा रूप आकार दे दिया था जो कभी विलीन नहीं हो सकता था। उसके पतन के बाद पुनर्स्थापन के लिए चाहे जितने निष्ठापूर्वक व्यापक प्रयास किये जायें, यूरोप पुनः वैसा नहीं हो सकता।"

थामसन आगे लिखते हैं, "यदि फ्रान्स की क्रान्ति नहीं होती अथवा नैपोलियन बोनापार्ट का जन्म नहीं हुआ होता, परन्तु यह निश्चित है कि यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी गम्भीर परिवर्तनों एवं व्यापक विस्तार का काल होता। फ्रान्स की क्रान्ति आरम्भ होने से पूर्व अमेरिका ने स्वतंन्त्रता प्राप्त कर ली थी और यह यूरोप और विश्व के भविष्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। ब्रिटेन और अमेरिका दोनों में ही उग्र सुधारवादी एवं लोकतान्त्रिक जनमत सन् 1789 से पूर्व ही बहुत सुदृढ़ एवं शक्तिशाली था और उसके कारण महान् उदारवादी परिवर्तन होते। अत्यन्त सम्मोहक प्रेरक शक्ति औद्योगिक क्रान्ति आरम्भ हो चुकी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तनों के मूल कारण विज्ञान और संस्कृति, सन् 1789 से पूर्व ही पर्याप्त प्रगति कर चुके थे। फ्रान्स का विख्यात वैज्ञानिक एन्ट्वाइन लैवोसियर (Antoine Lavoisier) सन् 1789 में अपने क्रान्तिकारी सिद्धान्त प्रकाशित कर चुका था, जिसने उसे आधुनिक रसायनशास्त्र का जनक बनाया और उसी समय अंग्रेज उपयोगितावादी दार्शनिक जर्मी बैन्थम ने अपनी विख्यात कृति "नीति शास्त्र और विधि निर्माण के सिद्धान्तों की प्रस्तावना" (Introduction to the Principles of Morals and Legislation)

प्रकाशित की। सन् 1776 में विख्यात अर्थशास्त्री एडम स्मिथ उत्कृष्ट अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की आधारशिला रख चुका था। साहित्य और कला के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन क्रान्ति से पूर्व ही आरम्भ हो चुका था और क्रान्ति के स्वरूप निर्धारण में बहुत काम किया था। कला के क्षेत्र में यह अत्यधिक विशाल एवं भव्य युगों में एक था, जिसके कार्य तत्कालीन घटनाओं से अत्यधिक प्रभावित थे परन्तु इसकी अन्तर्निहित प्रतिभा ने क्रान्ति की उथल-पुथल के बिना भी निश्चित रूप से उन्नति की होती। जब फ्रान्स में क्रान्ति आरम्भ हुई, जर्मनी में लुडविग वैन बीथोविन उन्नीस वर्ष का, वोल्फगैंग गोयथे (Wolfgang Goethe) चालीस वर्ष का था। नैपोलियन के साथ उनके व्यक्तिगत सम्बन्धों का उनकी प्रतिष्ठा पर कोई प्रभाव नहीं है। बीथोविन ने अपनी पहली 'इरोका सिम्फोनी' (काव्यात्मक रचना) (Eroica Symphony) बोनापार्ट को समर्पित की थी परन्तु उसने जब सुना कि उसने सन् 1804 में स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया, क्रोध में उसका नाम हटा दिया। गोथे ने सन् 1808 में एरफर्ट में आयोजित उत्सवों में भाग लिया था जहाँ उसको नैपोलियन द्वारा अलंकृत किया गया तथा उसकी चाटुकारी की गयी, जबकि नैपोलियन अपनी प्रतिष्ठा और गौरव के चरमोत्कर्ष पर था और गोथे ने बदले में उसकी बहुत प्रशंसा की थी। बीथोविन और गोथे दोनों ने नैपोलियन (उसकी सन् 1821 में सेन्ट हेलेना में मृत्यु हो गयी) के बाद तक अपने ढंग से मानव सभ्यता को अपना भव्य एवं गौरवपूर्ण योगदान करते हुए ही जीवन व्यतीत किया।

इतिहास के सर्वाधिक दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में, इस अवधि की सर्वाधिक विचलित करने वाली राजनीतिक, सैनिक एवं कूटनीतिक घटनाएँ भी अनेक तत्वों के मध्य, जिन्होंने मानव इतिहास को दिशा प्रदान की, बहुत सीमित तत्व प्रतीत होती है। व्यक्ति जिन्होंने यूरोप के भविष्य को नया रूप आकार दिया, इन शौर्यपूर्ण घटनाओं में प्रमुख भाग लेने वाले ही नहीं थे वरन् एन्टवाइन लैवोसियर और एडम स्मिथ, जेम्सवाट एवं जर्मी बैन्थम जैसे व्यक्ति भी थे। जब युद्ध की गड़गड़ाहट और बन्दूक की गोलियों का धुआँ समाप्त हो जाता है, मानव भाग्य की अधिक स्थायी शक्तियों को राष्ट्रों और व्यक्तियों के भाग्य का निर्माण करते हुए देखा जा सकता है।"

"सम्भवतः शताब्दी के चौथे काल के अत्यधिक अशान्ति एवं विक्षोभ का महत्व यह है कि बहुत अल्प समय में बहुत अधिक ऐतिहासिक घटनाएँ घटित हुईं। पुरानी व्यवस्था किसी प्रकार समाप्त होती, लेकिन यह अधिक मन्द गति से और शान्तिपूर्वक समाप्त हुई। क्रान्ति में उत्तेजित शक्तियों का विस्फोट, युद्धों की दीर्घकालीन मानसिक वेदना, अधिनायकतन्त्र के विभिन्न स्वरूपों के गतिवाद, साम्राज्य के विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति, इस समय में इतने घनीभूत रूप में मिले हुए और अपनी घटनाओं में इस प्रकार एक-दूसरे के ऊपर आ गये कि उन्होंने ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं को विकृत और ध्वस्त कर दिया। यह समय बहुसर्जक शक्तियों एवं स्मरणीय घटनाओं से अत्यधिक सम्पन्न था और इसने भावी पीढ़ियों को मन्त्रमुग्ध तथा चमत्कृत किया। निर्भीक एवं दुःसाहसी, सदैव मौलिक के लिए उत्सुक फ्रान्सवासियों ने पुनर्स्थापित राजतन्त्र, द्वितीय गणतन्त्र एवं द्वितीय साम्राज्य के लिए विचार किया। उदारवादी यूरोप में हर स्थान पर सन् 1793 के जैकोबिन संविधान अथवा सन् 1812 के स्पेन के संविधान की माँग कर रहे थे। वैधतावाद, जैकोबिनवाद, याजकवाद विरोधी

बोनापार्टवाद के प्रबल समर्थक भविष्य में आधी शताब्दी और उससे अधिक समय तक यूरोप में अपने युद्ध निरन्तर करते रहे जबकि ये युद्ध पुरानी पद्धति के हो गये और उन्नीसवीं शताब्दी की अपेक्षाकृत अधिक तात्कालिक समस्याओं एवं नवीन आवश्यकताओं के सन्दर्भ में इनका कोई महत्व नहीं रहा। वैधतावाद शीघ्र ही पुराना एवं विस्मृत तथ्य हो गया, जैकोबिनवाद एक पुराना सिद्धान्त मात्र रह गया, याजकवाद विरोधी गणतन्त्र के केवल कंकाल रह गये और बोनापार्टवाद एक डिब्बा बन गया लेकिन लोग इनके पक्ष में लड़ते रहे अथवा वाद-विवाद करते रहे जैसे किं वे उस चमत्कारी युग में घटित किसी भी चीज को गुजर जाने देने (विस्मृति) की कभी अनुमति नहीं दे सकते।"

"इसी अवधि में निरन्तर तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगीकरण एवं शिल्प-विज्ञान, लोकतन्त्र एवं विज्ञान की प्रगति से उत्पन्न समस्याएँ निरन्तर एकत्र होती गयीं। राजनीति के बाह्य धरातल पर आधा ही ध्यान दिया गया और नवीन क्रान्तिकारी स्थितियों का निर्माण हो गया। कम से कम भावी अर्द्ध-शताब्दी तक यूरोपीय राजनीति की यह विचित्रता थी कि वह समय के बहुत पीछे थी। समकालीन विषयों के सन्दर्भ में दल के प्रति निष्ठाएँ एवं दलों की परस्पर सम्बद्धता प्रायः महत्वहीन अथवा अर्द्ध-महत्व की रह गयी। सामाजिक संरचना में, क्रान्तिकारी परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में, राजनीतिक प्रणाली बहुत पीछे रह गयी और राजनीति अर्थशास्त्र से कुछ अलग सोचने का लोकाचार बन गयी। इतने पर भी सन् 1815 के बाद इन तथ्यों के घटित होने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वे क्यों घटित हुईं इसकी व्याख्या, शक्तियों के निरन्तरण एवं परिवर्तन, जो सन् 1815 के बाद विद्यमान थे, में निहित है।"

इस सन्दर्भ में प्रोफेसर गुडविन कहते हैं, "हमारे समय में सन् 1917 की रूस की क्रान्ति ने सन् 1789 की फ्रान्स की क्रान्ति को निष्प्रभ कर दिया और इसके आदर्शों को फासिस्ट और नाजी क्रान्तियों ने अस्थायी रूप से मन्द अथवा विकृत कर दिया। फ्रान्स के अन्दर आलोचकों ने समाज और राज्य के सम्बन्ध में व्यक्ति की प्राथमिकता पर बल देने का तिरस्कार किया, जबकि विदेशी पर्यवेक्षकों ने प्रश्न किया, क्या यह अन्ततोगत्वा एक भूल थी? और क्या मूल्य जो फ्रान्स को अपनी स्वतन्त्रता और समानता के लिए चुकाना पड़ा, बहुत अधिक था। इतिहासकार, अठारहवीं शताब्दी की अन्य क्रान्तियों, जो अनेक थीं, का तुलनात्मक अध्ययन करके और बल देते हुए कहते हैं कि आधुनिक लोकतन्त्र के विकास में इसका अनिवार्य योगदान था, कि इसने सिद्धान्त प्रतिपादित किया और लोकप्रिय प्रभुसत्ता के कार्यान्वयन के परिणामों का आकलन किया। सन् 1789 की क्रान्ति को अधिक सुव्यवस्थित रूप में प्रकाश मे लाने के लिए उत्सुक हैं। केवल सीमित अर्थ में फ्रान्स की क्रान्ति को आधुनिक सर्वसत्तावाद (सर्वाधिकारवाद) का स्रोत माना जा सकता है क्योंकि जैकोबिन अधिनायकतन्त्र और सन् 1793 की क्रान्तिकारी सरकार, केवल अन्तरिम एवं असामान्य स्वरूप थे, जिनके समक्ष फ्रान्स ने असैनिक (गृह) और विदेशी युद्ध के समय, अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा और अनिवार्य रूप से अपने उदार विचारों के लिए समर्पण किया।"

सन् 1789 की फ्रान्स की क्रान्ति का नेतृत्व एवं मार्गदर्शन करने वाले विशिष्ट व्यक्तियों की इस क्रान्ति में महत्वपूर्ण भूमिका थी। प्रमुख व्यक्तियों का संक्षिप्त जीवन-परिचय अग्रलिखित है :

ला फायते (La Fayette)—गिलबर्ट डी ला फायते (Gilbert de La Fayette) का जन्म फ्रान्स के एक सम्भ्रान्त परिवार में सन् 1757 में हुआ था। 2 वर्ष की आयु में वह पिता के स्नेह से वंचित हो गया था और 13 वर्ष की आयु में उसकी माँ ने उसको असहाय छोड़ दिया। वह रूसो के दार्शनिक विचारों से सर्वाधिक प्रभावित था। वह क्रान्ति के मूलमन्त्र स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व (Liberty, Equality and Fraternity) का प्रबल समर्थक था। फ्रान्स के राजा लुईस सोलहवें ने ला फायते को अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय सहयोग और सहायता के लिए भेजा था। उसने सन् 1781 में अपने अपूर्व साहस, शौर्य, पराक्रम, कुशल सैन्य नेतृत्व, सामरिक ज्ञान और युद्ध-कौशल का परिचय देते हुए ब्रिटिश सेनाध्यक्ष लार्ड कार्नवालिस की सेना को पराजित किया था। सन् 1789 में ला फायते को एस्टेट्स जनरल का कुलीन वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित किया गया। उसने राष्ट्रीय सभा (National Assembly) में मिराब्यू के सक्रिय सहयोग से पेरिस से सेना हटाने का आग्रह किया था। ला फायते ने मानवाधिकारों की घोषणा का प्रारूप बनाया था।

14 जुलाई, 1789 को बास्तील के दुर्ग पर जनता के आक्रमण के उपरान्त कानून एवं व्यवस्था की स्थिति में सुधार करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सुरक्षा दल (National Guard) का गठन किया गया, और ला फायते को इस दल का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस पद पर दो वर्ष तक कार्य किया।

ला फायते यद्यपि क्रान्ति का प्रबल समर्थक था, लेकिन फ्रान्स के सम्राट लुईस सोलहवें का अहित नहीं करना चाहता था। लुईस के आस्ट्रिया भागने के प्रयास में ला फायते पर सक्रिय सहयोग का दोषारोपण किया गया, जबकि यथार्थ में किसी प्रकार सहयोग नहीं दिया था। ला फायते ने पेरिस में जनसमूह पर गोली चलाने का आदेश दिया। इससे उसकी प्रतिष्ठा को आघात लगा। सन् 1792 में वह अपने बेल्जियम आक्रमण में असफल रहा। सन् 1794 से सन् 1799 तक वह आस्ट्रिया और प्रशा के कारागृहों में बन्दी रहा। नैपोलियन का उसने सक्रिय विरोध किया। सन् 1815 में नैपोलियन के पतन के बाद ला फायते ने राजनीति में सक्रिय होने का असफल प्रयास किया। सन् 1823 में वह अमेरिका गया, जहाँ उसका हार्दिक स्वागत किया गया। सन् 1830 की फ्रान्स की क्रान्ति में उसने पुनः सक्रिय भाग लिया और राष्ट्रीय सुरक्षा दल का एक बार पुनः अध्यक्ष नियुक्त किया गया। ला फायते जीवन-पर्यन्त संघर्षरत रहा।

मराट (Marat) (743-1793)—जीन पाल मराट (Zean Paul Marat) का जन्म सन् 1743 में फ्रान्स के एक साधारण परिवार में हुआ था। उसने चिकित्शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी और सन् 1789 तक उसने व्यवसाय में पर्याप्त मान-सम्मान अर्जित कर लिया था। वह लुईस सोलहवें के भाई काउण्ट आफ आर्टोइस (Count of Artois) का निजी चिकित्सक भी था। चिकित्सा के क्षेत्र में उसकी उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में स्काटलैण्ड के सेन्ट एन्ड्रयूज विश्वविद्यालय ने उसको डाक्टर की मानक उपाधि से सम्मानित किया।

मराट कुशल लेखक एवं जनसमुदाय की आकांक्षाओं का प्रबल समर्थक था। क्रान्ति के आरम्भ से ही क्रान्ति में निहित जनाकांक्षाओं और राजतन्त्र विरोधी विचार अभिव्यक्त किये। उसने 'दि फ्रेन्ड्स आफ दि पीपुल' (The Friends of the People) शीर्षक पत्रिका

भी प्रकाशित की और सन् 1792 तक इसके माध्यम से राजतन्त्र, पादरियों, सामन्तों एवं कुलीनों की कटु आलोचना की। उसने राष्ट्रीय सभा में अपने मध्यमवर्गीय सहयोगियों की समस्त सैद्धान्तिक अभिधारणाओं का विरोध किया। उसकी सीमित राजतन्त्र के प्रति निष्ठा थी और गणतन्त्र का विरोधी था। उसने विचार व्यक्त किया कि, "हमें राजा के निरंकुशतावाद का दमन करने के लिए स्वतन्त्रता के निरंकुशतावाद को स्थापित करना चाहिए।" उसके अभिव्यक्त विचारों "मैं सिर काटना पसन्द करता हूँ" के आधार पर प्रो. हेजन ने उस काल के सर्वाधिक रक्त-पिपासु चरित्रों में एक कहा है। सन् 1789 में एस्टेट्स जनरल के अधिवेशन के समय उसने राजनीति में प्रवेश किया। कालान्तर में वह गणतन्त्र का समर्थक वन गया। वह जैकोबिन दल का सदस्य था और बहुत लोकप्रिय था। सितम्बर, 1792 के भीषण नरसंहर में उसका प्रमुख हाथ था। वह राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) के लिए निर्वाचित हुआ था। वह ब्रिटेन की सरकार को कुलीनतान्त्रिक मानता था। उसको उत्पीड़न का शिकार बनाया गया। उसने सुरक्षा के लिए गन्दे नालों और तहखानों में शरण ली। उत्पीड़न उसको जनसमुदाय को अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए संघर्ष के निमित्त उद्वेलित करने से नहीं रोक सका। सन् 1793 में गिरोन्दिस्त के प्रति पूर्णरूप से समर्पित अन्धभक्त युवती शारलोट कोर्डे (Charlotte Corday) ने दिल में छुरा भोंक कर हत्या कर दी। कोर्डे को मृत्यु दण्ड दिया गया। उसने मृत्यु के समय कहा, "मैंने 1,00,000 अन्य व्यक्तियों के जीवन की रक्षा के लिए मराट की हत्या की।"

ऐबे सिएस (सन् 1749-1830)—ऐबे सिएस (Abbe Sieyes) का जन्म सन् 1749 में फ्रान्स के मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। अपने माता-पिता की प्रबल इच्छानुसार लगभग 1 दशक तक पादरी के रूप में कार्य किया और चर्च में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अन्य दोषों का समग्र ज्ञान प्राप्त कर लिया था। प्रारम्भ से ही उसकी राजनीति में गहन रुचि थी और स्वयं के सम्बन्ध में कहा, "राजनीति विज्ञान एक है, जिसमें, मैं सोचता हूँ, मैं पूर्ण हूँ। सिएस उग्र सुधारवादी था और चर्च, समाज एवं प्रशासन में क्रान्तिकारी सुधार करने की उसकी प्रबल कामना थी।

सिएस एस्टेट्स जनरल के तृतीय सदन के लिए जनसामान्य वर्ग का प्रतिनिधि निर्वाचित हुआ। इसी अवधि में एक पत्रिका प्रकाशित की जिसमें तृतीय सदन के महत्व पर व्यापक चर्चा की। इन विचारों ने तृतीय सदन को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। क्रान्तिकारी होते हुए उसने संवैधानिक राजतन्त्र और जनता के सीमित अधिकारों का समर्थन किया। 'टेनिस कोर्ट की शपथ' लेने के समय सिएस ने मिराबों का सक्रिय सहयोग किया। उसने राष्ट्रीय सम्मेलन (National Assembly) एवं डायरेक्टरी के सक्रिय सदस्य के रूप में अपने दायित्वों का निर्वाह किया। "आतंक के शासन" की अवधि में वह राजनीतिक दृष्टि से उदासीन रहा। सन् 1795 में वह सार्वजनिक सुरक्षा समिति (Committee for Public Safety) का सदस्य मनोनीत किया गया और सन् 1795 के संविधान निर्माण में उसने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। पेरिस की आक्रामक जनता से राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) की रक्षा की। नैपोलियन के फ्रान्स का सम्राट बन जाने के उपरान्त सिएस पुनः उदासीन हो गया। सन् 1830 में सिएस का देहावसान हो गया। लार्ड एक्टन ने ऐबे सिएस को सर्वाधिक मौलिक विचारक कहा है।

ब्रीसो (Brissot) (सन् 1754-1793)—सीधे-सादे सरल हृदय, अध्ययनशील, उत्कृष्ट पत्रकार ब्रीसो (Brissot) का जन्म सन् 1754 में फ्रान्स के मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। पिता की इच्छा के विपरीत पत्रकारिता को ही अपना व्यवसाय बनाया। वह लॉक एवं मान्टेस्क्यू के विचारों से अत्यधिक प्रभावित था। सन् 1789 में ब्रीसो ने 'पैट्रियट' (Patriot) शीर्षक पत्र का नियमित प्रकाशन आरम्भ किया। फ्रान्स की क्रान्ति के मूल मन्त्र स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व में पूर्ण आस्था थी। वह राजा को अपदस्थ करके गणतन्त्र स्थापित करना चाहता था। राष्ट्रीय सभा (National Assembly) और राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) पर ब्रीसो का पर्याप्त प्रभाव था।

ब्रीसो ने लुईस सोलहवें को अपदस्थ करने के अन्तर्निहित उद्देश्य से उसको आस्ट्रिया पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। उसका आशय था कि युद्ध में सफलता से उसकी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता में वृद्धि होगी और वह राजा को अपदस्थ करने में सफल हो जायेगा। पराजय की स्थिति में राजा पर दोषारोपण करके अपदस्थ करवा देगा। लेकिन युद्ध में फ्रान्स की पराजय से जनता ब्रीसो के विरुद्ध हो गयी और सन् 1793 में उसकी हत्या करवा दी गयी।

दांते (George Jacques Dante) (सन् 1759-1794)—अध्ययनशील, कुशल वक्ता जार्ज जैक्स दांते का जन्म पेरिस के निकट एक ग्राम के मध्यमवर्गीय कृषक परिवार में 26 अक्टूबर, 1759 को हुआ था। उसने उच्च शिक्षा प्राप्त करके वकालत से जीविकोर्पाजन आरम्भ किया। वह अपने धारा प्रवाह, हृदयस्पर्शी भाषण से श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध कर देता था। यद्यपि वह स्वयं मध्यमवर्गीय था, किन्तु निम्न वर्ग के कष्टों एवं पीड़ाओं के प्रति अपूर्व सहानुभूति थी और उनके सर्वांगीण विकास और कल्याण के लिए उत्सुक था।

दांते ने जैकोबिन दल के सक्रिय सदस्य के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ किया। सन् 1789 में ही मराट और डेसमोलिन्स (Desmoulins) के सहयोग से कार्डेलियर क्लब (Cordilier Club) स्थापित किया और इसके अध्यक्ष के रूप में निरंकुश राजतन्त्र की कटु आलोचना की। उसने जैकोबिन और गिरोन्दिस्त समर्थकों के मध्य व्याप्त वैमनस्य और द्वेष समाप्त करके दोनों को एकीकृत करने का असफल प्रयास किया।

सन् 1792 में राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) में गिरोन्दिस्त समर्थकों का प्रभुत्व था और विदेशी आक्रमण के कारण फ्रान्स की राजनीतिक स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। मित्र राष्ट्रों ने फ्रान्स को पराजित कर दिया। बेल्जियम में भी फ्रान्स असफल रहा। प्रशा के सेनाध्यक्ष ब्रुन्सविक (Brunswick) ने राजतन्त्र के समर्थन में 27 जुलाई, 1792 को फ्रान्स को चेतावनी दी कि यदि फ्रान्स के राजा लुईस सोलहवें एवं उसके परिवार को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाने का प्रयास किया गया, तब फ्रान्स को ध्वस्त कर दिया जायेगा। इस चेतावनी से पेरिस का जनसमूह उत्तेजित हो गया और जनता ने दांते के कुशल नेतृत्व में 10 अगस्त, 1792 को लुईस सोलहवें को बन्दी बना लिया। तदुपरान्त दांते का फ्रान्स पर पूर्ण नियन्त्रण हो गया। उसने विचार व्यक्त किया, "फ्रान्स के शत्रुओं को नष्ट करना और संविधान के अन्तर्गत कानून और व्यवस्था करना ही मेरा उद्देश्य है।" उसने आगे कहा, "क्रान्ति दो अग्नियों—आन्तरिक शत्रु और बाह्य शत्रु के मध्य घिरी हुई है।" क्रान्ति की रक्षा करने और गणतन्त्र स्थापित करने के उद्देश्य से ही आतंक का शासन (Reign of Terror) स्थापित

किया। उसने सर्वप्रथम अपने प्रतिद्वन्द्वी गिरोन्दिस्त समर्थकों की निर्मम हत्या करवा दी। इस प्रकार गिरोन्दिस्त का दमन कर दिया। कार्नो को रक्षामन्त्री नियुक्त किया। फ्रान्स की सेना को शक्तिशाली बनाया और मित्र राष्ट्रों को युद्ध में पराजित करके फ्रान्स को गौरवशाली बनाया।

दांते ने सन् 1794 में आतंक के शासन को समाप्त करने का प्रयास किया लेकिन रोबेस्पियेरे एवं अन्य जैकोबिन समर्थक दांते से सहमत नहीं थे। रोबेस्पियेरे ने दांते को बन्दी बना लिया और 5 अप्रैल, 1794 को मृत्यु दण्ड दे दिया। दांते एक उत्कृष्ट देशभक्त एवं राजनीतिज्ञ था। विद्वान लेखक लॉक ने विचार व्यक्त किया है, "दांते के चरित्र ने किसी अन्य क्रान्तिकारी नेता की अपेक्षा विश्व को अधिक व्यापक रूप से प्रभावित किया है।"

मिराब्यू (सन् 1749-1791)—गैबरिल रिक्वेटी मिराब्यू (Gabriel Riqueti Mirabeau) का जन्म सन् 1749 में एक सामन्त परिवार में हुआ था। वह बाल्यकाल से ही अत्यधिक चंचल एवं उदण्ड स्वभाव का था। चेहरे पर चेचक के गहरे दागों के कारण अत्यधिक कुरूप था और चरित्र से भी निन्दनीय था। नैतिकता का सर्वथा अभाव था। उस पर भ्रष्टाचार और रिश्वत लेने के आरोप लगे थे। मेडलिन ने उसके सम्बन्ध में लिखा, "उसका कुरूप चेहरा एस्टेट्स जनरल में उसके कुरूप चरित्र का प्रतीक था।"

वह अत्यधिक कुशाग्र बुद्धि एवं दूरदर्शी था। मिराब्यू ने अनेक देशों की यात्रा की। इंग्लैण्ड में अपने प्रवास की अवधि में इंग्लैण्ड की राजनीतिक स्थिति एवं प्रशासनिक प्रणाली का अध्ययन किया। वह इंग्लैण्ड की संवैधानिक राजतन्त्रात्मक प्रणाली से अत्यधिक प्रभावित था और फ्रान्स में इंग्लैण्ड के अनुरूप शासन पद्धति स्थापित करना चाहता था। मिराब्यू प्रारम्भ में जैकोबिन दल का सक्रिय सदस्य बना, परन्तु कालान्तर में इस दल से अलग हो गया।

उसने एस्टेट्स जनरल के तृतीय सदन में जनसामान्य वर्ग द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में प्रवेश किया और शीघ्र ही उसने क्रान्ति में उत्पन्न सर्वाधिक महान् व्यक्ति के रूप में अपना स्थान बना लिया था। टेनिस कोर्ट की शपथ के अवसर पर मिराब्यू ने ही बेली की अध्यक्षता में जनसमुदाय को शपथ दिलवाई थी। राजा द्वारा प्रेषित प्रतिनिधि ने जनसामान्य के प्रतिनिधि से उस स्थान से चले जाने के लिए कहा, उस समय मिराब्यू ने उत्तर दिया, "जाओ, उन लोगों से, जिन्होंने तुमको भेजा है, कह दो, संगीनों की शक्ति में राष्ट्र की इच्छा के विरुद्ध कोई शक्ति नहीं है।"

वह सिद्धान्तवादी की अपेक्षा व्यावहारिक एवं दूरदर्शी व्यक्ति था। वह प्राचीन शासन के दोषों का उन्मूलन करना चाहता था और संवैधानिक मार्ग से क्रान्ति का नेतृत्व करना चाहता था। वह निरंकुशतावाद का कट्टर विरोधी, राजतन्त्र और संवैधानिक स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थक था। लेकिन शक्तिशाली कार्यपालिका के पक्ष में था। सार्वजनिक व्यवस्था और कल्याण के प्रति उसका पूर्ण समर्पण था और इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वह राजा के परामर्शदाता के रूप में सम्बद्ध हो गया, लेकिन राजा ने उसका अविश्वास किया और उचित परामर्श पर ध्यान नहीं दिया। "मैं अपने साथ राजतन्त्र के अन्तिम चिथड़े ले जाता हूँ" यह विचार मिराब्यू ने मृत्यु के समय व्यक्त किये थे। राजा ने मिराब्यू के परामर्श से वंचित होकर अपने ही ढंग से कार्य किया जिनमें निश्चित निर्णय का अभाव, अनिश्चय और द्विविधा

अधिक थी, जिन्होंने उसका फाँसी के लिए मार्ग-प्रशस्त किया। फर्ग्यूसन एवं ब्रन ने कहा है, "मिराब्यू ने सामान्य जनता का समर्थन किया, लेकिन क्रान्ति का मार्गदर्शन करने के लिए लुईस सोलहवें से गुप्त रूप से अंशदान लिया। सन् 1791 में मृत्यु के समय एक महान् राजनीतिज्ञ के रूप में सम्मानित किया गया था। जब गुप्त रूप से धन के भुगतान के तथ्य प्रकाश में आये, उसकी देशद्रोही के रूप में निन्दा की गयी। लियो मराशाय ने कहा, "वह कभी दूषित सूचनाओं से ग्रस्त नहीं था। उसके शब्दों में अधिकारिता थी। समस्त क्रान्ति में वह वाद-विवाद करने वाले के रूप में अद्वितीय था।" कैटलबी ने प्रशंसा करते हुए विचार व्यक्त किया है, "एक मात्र व्यक्ति जो राष्ट्रीय सभा के जंगली गधों और दरबार के शाही पशु को सौहार्द्र के पथ ले जा सकता था।" 2 अप्रैल, 1791 को मिराब्यू का देहावसान हो गया।

रोबेसपियेरेरे (सन् 1748-1794)—मैक्समिलियन रोबेसपियरेरे (Maximilien Robespierre) का जन्म 7 मई, 1748 को आरस (Arras) नगर के सम्भ्रान्त वकील परिवार में हुआ था। उसका परिवार आयरलैण्ड का मूलवासी था। पेरिस विश्वविद्यालय से कानून की शिक्षा ग्रहण करके वकील के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया। सन् 1782 में उसको फौजदारी न्यायालय का न्यायाधीशं नियुक्त किया गया। उसको किसी अपराधी को मृत्यु दण्ड देने में अतीव मानसिक पीड़ा की अनुभूति हुई। अस्तु उसने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। वह अधीर और डरपोक स्वभावं का था और कार्यपालिका के लिए अपेक्षित योग्यता को प्रदर्शित करने में सदैव असमर्थ रहा, लेकिन उसने अभाव की पूर्ति सिद्धान्त के प्रति धर्मान्ध समर्पण द्वारा कर ली थी। उसका दृढ़ विश्वास था कि रूसो के दर्शन में समस्त मानव समुदाय की विविध समस्याओं के समाधान की विलक्षण शक्ति है। रूसो के दर्शन को स्वयं अथवा अन्यों के किसी भी मूल्य एवं किसी भी साधन द्वारा क्रियान्वित करने के लिए प्रतिबद्ध था। उसको विश्वास था कि उसके सुखद परिणाम होंगे। उसने रूसो की कृति 'सामाजिक संविदा' का गहन अध्ययन किया था और उसको रूसो के विचारों की प्रतिमूर्ति माना जाता था। वह स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के मूल मन्त्र को अक्षरशः क्रियान्वित करना चाहता था। रूसो के सिद्धान्त के प्रति अटूट निष्ठा के कारण वह जनसमुदाय में बहुत लोकप्रिय हो गया। यथार्थ में जनता ने उसका इतना अधिक स्वागत किया कि उसको जीवनपर्यन्त घुटनों तक जाँघिया, रेशमी मोजे पहनने और प्राचीन समाज के अनुसार पाउडर छिड़के बाल रखने की अनुमति दे दी गयी थी। रोबेसपियेरेरे उत्कृष्ट देशभक्त था और फ्रान्स के हित के लिए कुछ भी करने को तत्पर था।

सन् 1789 में एस्टेट्स जनरल के तृतीय सदन के लिए जनता के निम्न वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में जैकोबिन दल की ओर से निर्वाचित हुआ। उसने गिरोन्दिस्तों की युद्ध नीति का विरोध किया क्योंकि उसको स्पष्ट ज्ञात था कि युद्ध का परिणाम सैनिक अधिनायकतन्त्र की स्थापना होगा। सन् 1791 में वह जैकोबिन दल का सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोच्च बन गया। कालान्तर में वह राष्ट्रीय सम्मेलन का अध्यक्ष निर्वाचित हुआ। सन् 1793 में प्रान्तों के विद्रोह एवं मित्र राष्ट्रों के सैन्य आक्रमण के कारण फ्रान्स में अत्यधिक संकट की स्थिति थी। इस कारण सार्वजनिक सुरक्षा समिति का पुनर्गठन किया गया। दांते के स्थान पर रोबेसपियरेरे निर्वाचित हुआ। तदुपरान्त उसका प्रभावं सर्वोच्च था, और वह फ्रान्स का वास्तविक तानाशाह बन गया। यद्यपि वह आतंक के शासन के उद्भव से सम्बद्ध नहीं था, लेकिन इसका व्यापक

विस्तार करने के लिए वह उत्तरदायी था। उसका शासन आतंक की गतिविधियों की वृद्धि के लिए कुख्यात है। 10 जून, 1794 को कुख्यात कानून का निर्माण, चरमोत्कर्ष था। उसने अपराध के प्रमाण की औपचारिकता को समाप्त करके क्रान्तिकारी न्यायालय द्वारा मृत्यु दण्ड देने की क्षमता में वृद्धि कर दी। वह अराजकतावादियों के अत्याचारों और हरबर्टवादियों के विद्रोही नास्तिकता से घृणा करता था। दांते समर्थकों अथवा इन्डलजेन्ट्स द्वारा प्रतिपादित नरम नीति का विरोधी था। इन सबको मृत्युदण्ड दिलवा दिया। तदुपरान्त उसने सर्वोच्च व्यक्ति की उपासना का शुभारम्भ किया और स्वयं नये धर्म का मुख्य पादरी बन गया। उसका सामान्य उद्देश्य गुणों का गणतन्त्र स्थापित करना था और उसने विचार व्यक्त किया, कि यह केवल आतंक द्वारा ही सम्भव था। उसकी दृष्टि में "आतंक केवल अधिक द्रुत, अधिक प्रभावशाली, अधिक कठोर न्याय है और इस कारण गुण का शिशु है।"

अस्तु उसकी नीति आतंक को विभिन्न विरोधी दलों का दमन करके सुव्यवस्थित करना था। दांते समर्थकों के साथ दया, विंनाश कर सकती थी अथवा हर्बर्टवादियों के अमानुषिक अत्याचार गणतन्त्र को कलंकित कर सकते थे। लेकिन आतंक के दीर्घकाल तक संचालन, जबकि यह अपना कार्य कर चुका था, ने जनसमूह को क्रुद्ध कर दिया और राष्ट्रीय सम्मेलन में जैकोबिन सदस्यों ने विरोधियों को संगठित किया और 28 जुलाई, 1794 को प्रमुख आतंकवादी रोबेसपियरेरे को मृत्यु दण्ड दे दिया।

रोबेसपियरेरे, "एक मात्र दार्शनिक उत्साह और निकृष्ट षड्यन्त्र का मिश्रण" एक विचित्र और रोचक अध्ययन है। वह एक गुणवान, महिलाओं से घृणा करने वाला, रिश्वत देने वालों और रिश्वत लेने वालों के मध्य भ्रष्टाचार मुक्त व्यक्ति था। साथ ही वह संकीर्ण बुद्धि, अहंवादी और कल्पनातीत धर्मान्ध था। वह रूसो की कृतियों को अक्षरशः क्रियान्वित करना चाहता था। उसकी शक्ति उसके ईमानदार व्यक्तित्व, दृढ़ प्रतिबद्धता और उद्देश्य के प्रति अपूर्व निष्ठा के कारण थी। डेविड थामसन ने विचार व्यक्त किया है। उसने आगे कहा, "समस्त महान् फ्रान्सीसी क्रान्तिकारी व्यक्तियों में रोबेसपियरेरे सर्वाधिक स्मरणीय एवं सर्वाधिक प्रतीकात्मक था। ग्रान्ट और टेम्परले ने विचार व्यक्त किया है "रोबेसपियरेरे निर्विवाद रूप से पेरिस में अत्यधिक लोकप्रिय था। यह उसके जीवन का दुखान्त था और उसकी असफलता का कारण था कि जो प्रयास उसने फ्रान्स के पुनर्गठन और पुनर्जीवन के लिए किये, युद्ध और हिंसा के वातावरण में करने पड़े थे।"

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. नैपोलियन के उदय के प्रमुख कारणों का विश्लेषण करें।
   Analyse the chief causes of the rise of Napolean.
   (पटना, मेरठ एवं मगध, 1992, 96; बी. आर. अम्बेदकर, 1999; अवध, 1991, 95, 99; लखनऊ, 1991, 93, 95, 98; गढ़वाल, 1997)
2. नैपोलियन बोनापार्ट के फ्रान्स को योगदान का विवेचन कीजिए।
   Discuss the contribution of Napolean Bonapart to France.
   (बी. आर. अम्बेदकर, 1996, 98; भागलपुर, 1997)

3. प्रथम कौन्सल के रूप में नैपोलियन प्रथम की देन का वर्णन करें।
Discuss Napolean I's contribution to France as first consul.
(जबलपुर, 1995; अवध, 1992, 95, 97; रुहेलखण्ड, 1991, 93, 96, 97, 99, 2000; बुन्देलखण्ड, 1991, 94, 95, 98; मगध, 1996, 97; अवध, 1992, 94, 96, 98; रुहेलखण्ड, 91, 95, 97, 2000; राँची, 1999; मेरठ, 1991, 99; गढ़वाल, 1996, 99; लखनऊ, 1994, 96, 2000; पटना, 1994)

4. "मैंने प्रशंसा के राजकुमुट को जमीन पर पड़ा हुआ पाया और मैंने तलवार से उठाकर ग्रहण किया।" नैपोलियन के इस कथन पर प्रकाश डालिये।
"I found the crown of praise lying on the ground and lifted it with my sword and adopted it." Throw light on Napolean's statement.
(जबलपुर, 1995; बुन्देलखण्ड, 1997; गढ़वाल, 1995, 97, 99)

5. "महाद्वीपीय व्यवस्था ग्रेट ब्रिटेन के विरुद्ध नैपोलियन का आर्थिक अस्त्र था।" व्याख्या कीजिये।
"Continental system was Napolean's economic weapon against Great Britain." Discuss.
(जबलपुर, 1996, 99; रायपुर, 1998; गोरखपुर, 1990, 92, 95, 97, 99; अवध, 1994, 99; रुहेलखण्ड, 1991, 96, 98; बुन्देलखण्ड, 1990, 95, 96, 98, 99; राँची, 1999; लखनऊ ,1992, 95, 99; मेरठ, 1991, 92, 94, 95, 97, 98; गढ़वाल, 1995, 97, 99)

6. नैपोलियन बोनापार्ट के पतन के क्या कारण थे ? नैपोलियन के पतन के कारणों का विश्लेषण कीजिए।
What was the causes of the downfall of Napolean Bonaport ? Analyse causes of Nepolean's downfall.
(जबलपुर, 1996, 98; गोरखपुर, 1988, 96, 98, 2000; पटना, 1995; मगध, 1991, 93, 96, 98; बी. आर. अम्बेदकर, 1997; भागलपुर, 1996; अवध, 1992, 94, 96, 98; रुहेलखण्ड, 1991, 95, 97, 2000; ग्वालियर, 2000; लखनऊ ,1994, 97)

7. नैपोलियन बोनापार्ट के आन्तरिक सुधारों की विवेचना कीजिये।
Discuss Napolean Bonapart's internal reforms.
(जबलपुर, 1997, 99, 2000; रायपुर, 1997, 99; गोरखपुर, 1987, 93, 94, 96, 98, 2000; मगध, 1995; मेरठ, 1996)

8. किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—
(अ) डायरेक्टरी, (ब) प्रायद्वीपीय युद्ध, (स) मास्को अभियान, (द) वाटरलू का युद्ध।
Write short notes on any two :
(A) Directory, (B) Continental War,
(C) Moscow Compaign, (D) War of Waterloo. (जबलपुर, 1997, 2000)

9. नैपोलियन की विजयों का वर्णन कीजिये।
Discuss Napolean's war compaigns.
(जबलपुर, 1998; गोरखपुर, 1987, 99; अवध, 1993, 96, 98; बुन्देलखण्ड, 1992, 98; मेरठ, 1997; गढ़वाल, 1996)

10. नैपोलियन फ्रान्सीसी क्रान्ति का शिशु था।
Napolean was the baby of the French Revolution.
(गोरखपुर, 1989; बुन्देलखण्ड, 1992; मेरठ, 1993)

11. नैपोलियन प्रथम की उपलब्धियों का वर्णन कीजिये।
Describe Napolean I'st achievements.
(गोरखपुर, 1991; गढ़वाल, 1994, 95; लखनऊ, 1992, 96, 97)

12. 'महाद्वीपीय व्यवस्था', 'रूसी आक्रमण' और 'स्पेनी अल्सर' ने नैपोलियन को बर्बाद कर दिया। क्या आप सहमत हैं ?
'Continental system', 'Russian expdition' and 'Spanish Alcer', ruined Napolean. Do you agree ? (राँची, 1997; गढ़वाल, 2000)

13. चर्च के साथ नैपोलियन के सम्बन्धों का वर्णन कीजिये।
Describe the relations of Napolean with Church. (गढ़वाल, 2000)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. नैपोलियन 9 मार्च, ... को जोसे फाइन नाम की सुन्दरी से विवाह कर चुका था—
(क) 1794 (ख) 1795 (ग) 1796 (घ) 1797
2. सन् .... में आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस द्वितीय की पुत्री से विवाह किया—
(क) 1805 (ख) 1807 (ग) 1808 (घ) 1809
3. सन् .... में कैम्पोफोरमियों की सन्धि द्वारा नैपोलियन ने स्वयं को एक चतुर तथा बुद्धिमान कूटनीतिज्ञ सिद्ध किया—
(क) 1795 (ख) 1796 (ग) 1797 (घ) 1798
4. सन् .... नैपोलियन को सर्वप्रथम तोपखाना टुकड़ी का लैफ्टिनेन्ट नियुक्त किया गया था—
(क) 1789 (ख) 1790 (ग) 1791 (घ) 1792
5. मई .... में नैपोलियन ने मिस्र के लिए कूच किया—
(क) 1795 (ख) 1796 (ग) 1797 (घ) 1798
6. सन् .... में नील नदी के युद्ध में एडमिरल नैल्सन ने उसको पराजित किया—
(क) 1798 (ख) 1799 (ग) 1800 (घ) 1801
7. नैपोलियन चतुरता तथा कूटनीति से सन् .... में प्रथम कौन्सल बनने में सफल हो गया—
(क) 1800 (ख) 1801 (ग) 1802 (घ) 1803
8. 2 दिसम्बर सन् .... को नैपोलियन ने नोटरडम के गिरजाघर में फ्रान्स के सम्राट के रूप में अपना राज्याभिषेक किया—
(क) 1801 (ख) 1802 (ग) 1803 (घ) 1804
9. 26 सितम्बर, ... को आस्ट्रिया ने बाध्य होकर फ्रान्स के साथ प्रेसबर्ग की सन्धि की—
(क) 1802 (ख) 1805 (ग) 1807 (घ) 1809
10. 18 जून, ... को नैपोलियन ने अपने जीवन का अन्तिम निर्णायक युद्ध मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेनाओं के विरुद्ध किया—
(क) 1805 (ख) 1810 (ग) 1815 (घ) 1820

[उत्तर—1. (ग), 2. (घ), 3. (ग), 4. (ग), 5. (घ), 6. (क), 7. (ग), 8. (घ), 9. (ख), 10. (ग) ।]



6

यूरोप का पुनर्निर्माण

[RECONSTRUCTION OF EUROPE]

विएना काँग्रेस (The Congress of Vienna) (1814-15)—पृष्ठभूमि

नैपोलियन के पतन के उपरान्त विजित राष्ट्रों के रूढ़िवादी वर्गों के मस्तिष्कों में सर्वोपरि महत्वाकांक्षी प्रश्न यूरोप महाद्वीप में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने और यूरोप के पुनर्निर्माण एवं पुनर्गठन का था। नैपोलियन के द्रुतगति से विजय अभियान ने यूरोप के मानचित्र में परिवर्तन के साथ-साथ शक्ति-सन्तुलन भी भंग कर दिया था। उसने विजित क्षेत्रों को छोटे-छोटे राज्यों में परिवर्तित करके अपने निकटस्थ सम्बन्धियों को निरंकुश शासक बनाया था। अपने भाइयों जोसेफ बोनापार्ट (1808-1813) को स्पेन, लुई बोनापार्ट को हॉलैण्ड और जैरोम बोनापार्ट (1807-1813) को वेस्टफेलिया का निरंकुश राजा बनाया। इसके अतिरिक्त अपने सौतेले पुत्र युजीन को इटली स्थित एक क्षेत्र का राज्यपाल एवं अपनी बहन के पति जोकिम म्यूरा (1808-1815) को नेपल्स का शासक बनाया। इन समस्त शासकों में पूर्वानुभव का अभाव था। परिणामस्वरूप नैपोलियन द्वारा बनाये गये राज्यों में स्थायित्व का अभाव था। इसके अतिरिक्त नैपोलियन द्वारा नियुक्त शासकों को अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की, नैपोलियन के प्रति कृतज्ञता एवं निष्ठा की अपेक्षा अधिक चिन्ता थी। म्यूरा नेपल्स में अपनी स्थिति सुदृढ़ करना चाहता था। अस्तु उसने (1813-1814) में नैपोलियन के विरुद्ध आस्ट्रिया के साथ सहयोग किया। बर्नडोट की सेवाओं को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से नैपोलियन ने स्वीडेन का शासक बनाया था। वह भी नैपोलियन का शत्रु बन गया और मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध में सक्रिय भाग लिया।

नैपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली के परिणामस्वरूप अनेक आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो गया, अतः उन वस्तुओं के भाव बहुत बढ़ गये। अन्य अनेक कारणों से आर्थिक कठिनाइयों के साथ-साथ जनसमुदाय में नवनिर्मित राज्यों के शासकों के प्रति असन्तोष उत्पन्न हो गया। निःसन्देह प्रशासनिक प्रणाली पूर्वपेक्षा उदारवादी थी, लेकिन जनता क्रान्ति पूर्व की निरंकुश शासकों की स्थिति पुनर्स्थापित करने के लिए व्यग्र थी। फ्रान्स में टेलिराड के कुशल नेतृत्व में शक्तिशाली बोर्बो वर्ग का आर्विभाव हुआ। स्पेन भी उदात्त राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित था। जनमत वैधता के आधार पर राज्यों के मनोनयन के सिद्धान्त का समर्थक

था। इसी जनमत को विएना काँग्रेस का मुख्य आधार बनाया गया। जनमत यथार्थ में पुरातन शासन की सत्ता और गौरव को पुनर्जीवित करना चाहता था।

नैपोलियन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के अन्तिम चरण में यूरोप की महान् शक्तियाँ, रूस, ऑस्ट्रिया, प्रशा और इंग्लैण्ड ने परस्पर मतभेदों को विस्मृत कर सन् 1813 में परस्पर सक्रिय सहयोग के नये युग का सूत्रपात किया और संयुक्त रूप से नैपोलियन को पराजित किया। नैपोलियन की पराजय के उपरान्त पोलैण्ड की समस्या के सन्दर्भ में ऑस्ट्रिया, प्रशा और रूस के मध्य पुनः प्रबल मतभेद उत्पन्न हो गये। इसी सन्दर्भ में इंग्लैण्ड के विदेशमन्त्री कैसरले (Castleagh) ने ऑस्ट्रिया के चान्सलर मैटरनिख के सहयोग से मित्र राष्ट्रों के संघ का पुनर्गठन किया। मैटरनिख यूरोप के इतिहास में सन् 1815 से सन् 1848 तक यूरोप के भाग्य विधाता के रूप में विख्यात है।

प्रमुख राजनीतिज्ञों ने अनुभव कर लिया था कि पुरातन शासन का पूर्णरूप से पुनर्स्थापन अथवा क्रान्ति से पूर्व की यथास्थिति बनाये रखना सम्भव नहीं होगा। यह स्पष्ट था कि फ्रान्स की जनता कृषिदास प्रथा के पुनर्जीवन अथवा कुलीनों और पादरियों की अधिहरित भूमि उनको वापिस देना स्वीकार नहीं करेगी। यद्यपि स्थूलकाय लुईस अठारहवें को सिंहासनारूढ़ कर दिया गया था लेकिन यह विश्वास किया जा रहा था कि वह सन् 1814 के शासनादेश (Charter) के अनुरूप शासन करेगा। इसके अतिरिक्त कुछ विजेता राष्ट्र फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध में विजित क्षेत्रों को छोड़ने के लिए तत्पर नहीं थे। अस्तु यूरोप के पुनर्गठन के लिए प्रस्तावित प्रस्तावों में लुईस सोलहवें के शासनकाल के समय यूरोप के मानचित्र के अनुरूप पुनर्गठन के लिए संशोधन किये गये।

पेरिस की सन्धि (Treaty of Paris)—आस्ट्रिया के चान्सलर मैटरनिख ने नैपोलियन के पतन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था, इस कारण परस्पर विचार-विमर्श एवं यूरोप की समस्याओं के समाधान के लिए विएना का सर्वाधिक उपयुक्त स्थान के रूप में चयन किया गया। फर्ग्यूसन एवं ब्रन ने कहा कि "प्रतिक्रियावादियों के सम्मेलन के लिए यूरोप के सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी राष्ट्र आस्ट्रिया की राजधानी विएना को सम्मेलन स्थल वनाना स्वाभाविक एवं उचित ही था। इस काँग्रेस का मुख्य कार्य फ्रान्स के विजित क्षेत्रों का विजयी राष्ट्रों के मध्य न्यायोचित वितरण का था। क्षेत्रीय वितरण के कुछ विषयों पर विएना जाने से पूर्व 30 मई, 1814 को पेरिस की पहली सन्धि के हस्ताक्षर के समय मित्र राष्ट्रों के मध्य परस्पर सहमति हो गयी थी। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार पीडमोन्ट का राजा, जो नैपोलियन के शासन काल में अपने सार्डीनिया द्वीप में शरणार्थी का जीवन व्यतीत कर रहा था, को पुनः सिंहासनारूढ़ कर दिया गया और जेनोआ का क्षेत्र दिया गया, जो फ्रान्स की दक्षिणी-पूर्वी सीमा पर स्थित था, जिससे यह राज्य फ्रान्स द्वारा आक्रमण की स्थिति में पूर्वापेक्षा अधिक शक्ति के साथ विरोध कर सके। बेल्जियम, पूर्व में ऑस्ट्रिया के अधिकृत क्षेत्र का हालैण्ड के साथ विलय कर दिया गया और आरेन्ज वंश के शासक को पुनर्स्थापित किया गया। यह उत्तर में फ्रान्स द्वारा आक्रमण की स्थिति में अवरोधक के रूप में कार्य कर सकता था। सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता था कि वैधता के सिद्धान्त (Doctrine of Legitimacy) का यूरोप का पुनर्गठन का निर्धारण करते समय पालन होना चाहिए। इस सिद्धान्त का अर्थ था कि नैपोलियन ने जिन राजाओं को उनके सिंहासनों से वंचित कर दिया

था और उनको उनके अधिकृत राज्यों से निष्कासित कर दिया था, उन राजाओं को यूरोप की सामूहिक शक्तियों द्वारा उनके वैध राजा के रूप में पुनर्स्थापित करना चाहिए। लेकिन महान् शक्तियों ने अपने निजी स्वार्थों और हितों के लिए प्रायः इस सिद्धान्त की उपेक्षा की। इस सन्धि के अन्तर्गत फ्रान्स की सीमाओं का आधार सन् 1792 तक क्षेत्रीय विजयों तक स्वीकार किया गया। यूरोप के अन्य क्षेत्रों की पुनर्व्यवस्था के लिए विएना में समस्त विजेता राज्यों का विशाल सम्मेलन आयोजित करने का निश्चय किया गया।

चौमोंट (Chaumont) की सन्धि, सन् 1814—पेरिस की सन्धि के फ्रान्स पर आरोपित प्रतिबन्धों एवं यूरोप की पुनर्व्यवस्था से सम्बन्धित निर्णयों का अनुमोदन करने के लिए इंग्लैण्ड के विदेशमन्त्री कैसरले के प्रयासों से चौमोंट के स्थान पर इंग्लैण्ड, रूस, ऑस्ट्रिया और प्रशा चार महान् शक्तियों ने एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये। विएना सम्मेलन से पूर्व महान् शक्तियों की एकता को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से लन्दन स्थित एक सम्मेलन में चौमोंट की सन्धि का नवीनीकरण किया गया।

सन् 1814-15 की शीत ऋतु में अनेक देशों के सम्राट, विदेशमन्त्री और राजनीतिज्ञ परस्पर विचार-विमर्श के लिए एकत्रित हुए। पोलैण्ड और सैक्सोनी की नियति के विषय में विजेता राज्यों के मध्य बहुत मतभेद थे। प्रशा पोलैण्ड का बहुत बड़ा क्षेत्र रूस को देने के लिए उत्सुक था। रूस का जार नैपोलियन के विनाशकारी आक्रमण के उपरान्त स्वयं को यूरोप का मुक्तिदाता समझता था और वारसा का ग्रान्ड डची, जिसकी सरकार का नैपोलियन के साथ पतन हो गया था, जार चाहता था। यह राज्य पोलैण्ड से काटकर बनाया गया था। यह क्षेत्र 18वीं शताब्दी के अन्त में प्रशा और आस्ट्रिया ने प्राप्त किया था और जार पोलैण्ड के उस भाग के साथ संयुक्त करना चाहता था जो रूस को मिल गया था। जार पोलिश राज्य और राष्ट्रीयता को पुनर्स्थापित करना चाहता था और संसद एवं संविधान भी देना चाहता था। लेकिन इन क्षेत्रों के बदले में समस्त सैक्सोनी पर पूर्ण नियन्त्रण चाहता था। सैक्सोनी के राजा के लिए वैधता का सिद्धान्त प्रयुक्त होना चाहिए था, लेकिन वह नैपोलियन के साथ सन्धि के प्रावधानों के प्रति निष्ठावान रहा था और लिपसिक के युद्ध में नैपोलियन के साथ था। प्रशा ने उसको जर्मनी का देशद्रोही कहा था। रूस के जार ने प्रशा के प्रस्ताव का समर्थन किया। मैटरनिख ने आस्ट्रिया से लगे हुए इतने विशाल क्षेत्र पर प्रशा के नियन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। कैसरले, इंग्लैण्ड के विदेशमन्त्री और फ्रान्स के टेलीरैण्ड ने मैटरनिख का समर्थन किया। ये मतभेद युद्ध के स्तर तक बढ़ गये। रूस और प्रशा के दावों का विरोध करने के लिए इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया और फ्रान्स ने सन् 1815 के प्रारम्भ में एक सुरक्षात्मक संघ का गठन किया। जार को विश्वास हो गया कि अन्य पक्ष किसी भी स्थिति में समर्पण नहीं करेगा। परिणामस्वरूप जार ने कुछ बिन्दुओं पर समझौता कर लिया और प्रशा ने जार के विचारों और निर्णयों को स्वीकार कर लिया। अन्ततोगत्वा प्रशा को सैक्सोनी का केवल आधा भाग ही प्राप्त हुआ। फ्रान्स के टेलीरैण्ड ने फ्रान्स के लाभार्थ मित्र राष्ट्रों को उत्तेजित किया और मित्र राष्ट्रों के मध्य मतभेदों का शोषण किया। यद्यपि समस्त विवादों पर मित्र राष्ट्रों के मध्य परस्पर सहमति हो गयी थी। मित्र राष्ट्रों में परस्पर कितने तीव्र मतभेद थे, वे सब नैपोलियन से घृणा करते थे और उससे मुक्त होना चाहते थे। लेकिन नैपोलियन बोनापार्ट इस तनावपूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर एल्बा द्वीप से भाग गया और लुईस अठारहवें ने फ्रान्स छोड़ दिया।

परिणामस्वरूप नैपोलियन के साथ अन्तिम एवं निर्णायक वाटर लू का युद्ध हुआ। सन् 1815 में वाटर लू के युद्ध में नैपोलियन के पतन के बाद विएना काँग्रेस का कार्य पूरा किया गया।

विएना काँग्रेस के प्रमुख प्रतिनिधि—नवम्बर, 1814 में विएना काँग्रेस में विचार-विमर्श एवं निर्णय लेने का कार्य प्रारम्भ हुआ और 18 जून, 1815 को वाटर लू में नैपोलियन की पराजय से 9 दिन पूर्व 9 जून, 1815 को इस काँग्रेस के समस्त प्रतिनिधियों ने विविध विषयों से सम्बन्धित निर्णयों पर हस्ताक्षर किये थे। विएना काँग्रेस में यूरोप के 90 बड़े महाराजाओं एवं 63 राजाओं ने स्वयं अथवा उनके प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। लेकिन तुर्की का प्रतिनिधि अनुपस्थित था। दीर्घकालीन युद्ध की समाप्ति के उपरान्त यूरोप को नियति का निर्णय करने का अधिकांश कार्य समस्त पश्चिमी विश्व ने, जो युद्धों में ग्रस्त था, ने तथाकथित विएना काँग्रेस में किया था। यह काँग्रेस मिथ्या नामकरण की दोषी है, क्योंकि यथार्थ में प्रतिनिधियों का कभी किसी एक स्थल पर कोई अधिवेशन नहीं हुआ, लेकिन विएना में एकत्रित प्रतिनिधियों की साज-सज्जा एवं वैभव उतना अधिक था, कि प्रत्येक सर्वाधिक उपेक्षित प्रतिनिधि को भी यह अनुभव कराया गया कि वे युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं में सक्रिय भाग ले रहे थे। इस काँग्रेस की कोई सुनिर्धारित एवं सुनिश्चित कार्य प्रणाली नहीं थी। प्रारम्भ में इंग्लैण्ड, प्रशा, रूस और आस्ट्रिया चार प्रमुख राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए अपने ढंग से संचालित करना चाहते थे। फ्रान्स के प्रतिनिधि टैलीरैन्ड ने इन चार प्रमुख राज्यों को आठ राज्यों, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, आस्ट्रिया, रूस, प्रशा, स्पेन, पुर्तगाल और स्वीडेन की एक समिति बनाने के लिए बाध्य किया। जनवरी, 1815 में फ्रान्स को भी चार प्रमुख राज्यों के गुट में सम्मिलित कर लिया गया। अनेक विशिष्ट समस्याओं पर विचार-विमर्श के लिए 10 उप-समितियों का भी गठन किया गया, लेकिन विएना काँग्रेस पर पाँच प्रमुख राज्यों का ही प्रभुत्व बना रहा।

विविध विषयों पर निर्णय लेने के लिए निर्धारित प्रक्रिया नहीं थी। किसी विषय पर निर्धारित ढंग से प्रस्ताव रखने और उन पर विचार-विमर्श के उपरान्त मतदान की कोई व्यवस्था नहीं थी। नाचघरों एवं भव्य भोज के अवसर पर राज्य की सीमाओं का निर्धारण किया जाता था। संगीत सम्मेलनों में गम्भीर राजनीतिक विवादों पर निर्णय हो जाते थे। केवल उपहास में किसी प्रतिनिधि द्वारा अभिव्यक्त विचार, यदि अन्य प्रतिनिधियों को हितकर प्रतीत होता था, उसको स्वीकार कर लिया जाता था। यथार्थ में काँग्रेस का उपहास किया गया था। हेज ने उचित ही कहा है, "विएना काँग्रेस यथार्थ में कोई काँग्रेस नहीं थी।" डॉ. विमल चन्द्र पाण्डे ने विचार व्यक्त किया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि इस काँग्रेस में जो निर्णय हुए थे वे उस काँग्रेस से पूर्व ही गुप्त अथवा खुले रूप से निश्चित कर लिए गये थे। विएना काँग्रेस ने केवल निर्णयों के पंजीकरण (Registration) का कार्य किया था। कूटनीतिज्ञ भी पूर्व सन्धियों एवं गुप्त सन्धियों के प्रावधानों से बाध्य थे। कूटनीतिज्ञ निर्णयों के लिए दोषी नहीं थे।

विएना काँग्रेस के पाँच प्रमुख राज्यों का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है :

आस्ट्रिया—आस्ट्रिया, फ्रान्स और इंग्लैण्ड के अनुरूप एक राष्ट्र नहीं था। पश्चिम में हैप्सबर्ग के प्राचीन अधिकृत क्षेत्र आस्ट्रियन डचीज थे, जिनके निवासी मूलरूप से जर्मन थे। उत्तर में प्राचीन राज्य बोहेमिया था, जिसका सन् 1526 में हैप्सबर्ग के शासकों ने विलय कर

लिया था। पूर्व में डेन्यूब नदी का विशाल मैदानी क्षेत्र वाला हंगरी राज्य था। दक्षिण में आल्पस पर्वत के उस पार लोम्बार्डी-वेनेशिया था, जो विशुद्ध रूप में इटैलियन था। आस्ट्रिया साम्राज्य में डचीज की अधिकांश जर्मन मूल की जनसंख्या और मूलरूप से एशिया के वासी जो 9वीं शताब्दी से डैन्यूब नदी घाटी में बस गये थे, और हंगरी राज्य के बहुसंख्यक मैग्यार थे। आस्ट्रिया और हंगरी में स्लैविक जाति की अनेक शाखाएँ थीं। पूर्वी हंगरी में इन सबसे भिन्न रूमानियन भी थे।

सन् 1815 में लगभग 3 करोड़ की जनसंख्या वाले विशाल साम्राज्य पर शासन करना एक कठिन कार्य था। आस्ट्रिया के राजा फ्रान्सिस प्रथम (1792-1835) एवं उसके प्रधानमन्त्री (चान्सलर), दोनों ही प्रतिक्रियावादी, फ्रान्स की क्रान्ति के मूल मन्त्र स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के कट्टर विरोधी थे। उनकी नीति सुधारों की माँग का कटु विरोध करने, यथास्थिति बनाये रखने और विश्व को स्थिर रखने की थी। जनसमुदाय वर्गों में विभाजित था, जिसमें कुलीनों का सर्वोच्च विशेषाधिकृत वर्ग था। यह वर्ग अनिवार्य सैन्य सेवा एवं करों के बोझ से मुक्त था। साथ ही राज्य में सर्वोच्च पदों पर एकाधिपत्य था। दूसरी ओर कृषक वर्ग, जिनका बाहुल्य था, की अत्यधिक दयनीय स्थिति थी। शासन में निरंकुशता, समाज में सामन्तवाद, कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए विशेष विशेषाधिकार, जनसमुदाय के लिए दमन और कष्ट सन् 1815 में आस्ट्रिया की स्थिति थी।

आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस प्रथम ने अपने कुशल कूटनीतिज्ञ एवं चान्सलर मैटरनिख को विएना काँग्रेस के लिए आस्ट्रिया का प्रतिनिधि नियुक्त किया। वह समस्त प्रतिनिधियों में सर्वोत्कृष्ट एवं असाधारण व्यक्तित्व का व्यक्ति था। आस्ट्रिया के हितों की रक्षा करना ही मुख्य उद्देश्य था। उसको भलीभाँति विदित था कि आस्ट्रिया जैसे बहुजातीय राज्य को केवल निरंकुश शक्ति द्वारा ही अक्षुण्ण रखा जा सकता था। मैटरनिख ने कहा था, "प्राचीन को ही पकड़ो, क्योंकि यह अच्छी है। हमारे पूर्वजों को यह अच्छी प्रतीत हुई थी, इसलिए हमको इसको क्यों नहीं अपनाना चाहिए।" उसने लोकतन्त्र के विषय में कहा, "लोकतन्त्र केवल दिन के प्रकाश को सर्वाधिक अन्धकारमय रात्रि में परिवर्तित कर सकता है।" क्रान्ति के सम्बन्ध में अपने उग्र उद्‌गार व्यक्त किये थे, "यह (क्रान्ति) एक रोग है जिसका उपचार होना चाहिए। एक ज्वालामुखी जिसको बुझाना आवश्यक है, एक प्रकार का गलाव है, जिसे गर्म लोहे से जला दिया जाये, खुले जबड़े के साथ अनेक फनों वाला सर्प है, जो सामाजिक व्यवस्था को निगलना चाहता है।" विएना काँग्रेस पर मैटरनिख का प्रभुत्व था और समस्त प्रतिक्रियावादी निर्णय उससे प्रभावित थे। विएना काँग्रेस में मैटरनिख के साथ सम्राट फिलिप प्रथम भी थे।

रूस—विएना काँग्रेस में रूस का प्रतिनिधित्व जार अलेक्जेण्डर प्रथम एवं विदेशमन्त्री नैसलरोड और परामर्शदाता कैपोडिस्ट्रियाज ने किया। विएना काँग्रेस में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह मैटरनिख और अलेक्जेण्डर प्रथम ने किया था। अत्यधिक सक्रिय जार इतिहास के सर्वाधिक रहस्यमय व्यक्तित्वों में था। उसका पालन-पोषण महान् कैथरिन के विलासमय वातावरण में हुआ था। फ्रान्सीसी जैकोबिन शिक्षक से रूसो के सिद्धान्तों को आत्मसात् किया था। सन् 1801 में अपने पिता की हत्या के बाद वह रूस का शासक बना और दो दशक तक उसने यूरोप के सर्वाधिक उदारवादी राजा बनकर अपने अन्य साथी राजाओं के स्वप्न ध्वस्त किये। नैपोलियन को उसके रूस के विजय अभियान में पराजित करने के

उपरान्त उसका मस्तिष्क अधिकाधिक रहस्यवादी हो गया। उसने समस्त देशों के राजाओं को ईसाई धर्म के न्याय और शान्ति के महान् आदर्शों के अनुरूप परिवर्तित करने के प्रचार अभियान का विचार किया। स्वतन्त्रता और ज्ञानोदय के प्रति समर्पण एवं उसके धारा-प्रवाह अभिव्यक्ति का मुख्य प्रभाव रूढ़िवादियों का भयभीत होना था और उनको आशंका थी कि जार समस्त यूरोप पर अपनी सत्ता का विस्तार करने के लिए षड्यन्त्र रच रहा था। उसके ऊपर जैकोबिन के साथ मिलकर सर्वशक्तिशाली फ्रान्स के स्थान पर सर्वशक्तिशाली रूस का साम्राज्य स्थापित करने के लिए षड्यन्त्र रचने का दोषारोपण किया गया। लेकिन उसमें मैटरनिख के सदृश राजनीतिक तथा कूटनीतिक गुणों का अभाव था।

कैटलबी ने अलेक्जेण्डर के स्वभाव के विषय में लिखा है, "स्वभाव से अलेक्जेण्डर अस्थिर, अति संवेदनशील, सुनिश्चय वाला था, लेकिन उद्देश्य में अस्थिर, भावुक, काल्पनिक अहंवादी, अव्यावहारिक, सामंजस्यहीन आदर्शवादी था।" मैटरनिख उसको पागल समझता था, लेकिन वह एक शक्तिशाली शासक था, इस कारण उसके विचारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी।

इंग्लैण्ड—इंग्लैण्ड के योग्य एवं कुशल राजनीतिज्ञ, विदेशमन्त्री कैसरले को विएना काँग्रेस के लिए प्रतिनिधि मनोनीत किया गया था। नैपोलियन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्षों में इंग्लैण्ड ने मित्र राष्ट्रों के लिए साहूकार (Banker) के रूप में कार्य किया था। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति विचारणीय हो गयी थी। राष्ट्रीय ऋण पूर्वापेक्षा चार गुने हो गये थे। कैसरले का मुख्य दायित्व इंग्लैण्ड के राजनीतिक और आर्थिक हितों की रक्षा करने का था। राजनीतिक दृष्टि से इंग्लैण्ड में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से शक्ति-सन्तुलन बनाये रखना चाहता था। इंग्लैण्ड ने नैपोलियन को पराजित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था, अतः विएना काँग्रेस में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान था।

प्रशा—राष्ट्रवाद और सैन्यवाद के प्रबल समर्थक हार्डेनबर्ग ने विएना काँग्रेस में प्रशा का प्रतिनिधित्व किया था और प्रशा को शक्तिशाली बनाना ही मुख्य उद्देश्य था।

फ्रान्स—कुशाग्र बुद्धि, षड्यन्त्रकारी, अत्यधिक अनुभवी राजनीतिज्ञ टैलीरैण्ड ने विएना काँग्रेस में फ्रान्स का प्रतिनिधित्व किया था। उसने लुईस सोलहवें के शासन काल में बिशप के रूप में कार्य किया था। उसने सन् 1797 से सन् 1807 तक नैपोलियन के अधीन विदेशमन्त्री के रूप में कार्य किया था। टैलीरैण्ड ने नैपोलियन की स्पेन और पुर्तगाल पर आक्रमण करने की योजना का सक्रिय विरोध किया था। परिणामस्वरूप दोनों के मध्य गम्भीर मतभेद हो गये थे। उसी के कूटनीतिज्ञ प्रयासों के परिणामस्वरूप फ्रान्स को चार महाशक्तियों के साथ स्थान मिला था। 'वैधता के सिद्धान्त' का सूत्रपात टैलीरैण्ड ने ही किया था। उसने लॉर्ड कैसरले एवं अलेक्जेण्डर प्रथम को प्रभावित किया था। इन दोनों के समर्थन के कारण प्रशा के विरोध के उपरान्त फ्रान्स को स्थान मिला था।

इनके अतिरिक्त स्पेन, पुर्तगाल और स्वीडेन के प्रतिनिधि भी थे। महान् शक्तियों की समिति यूरोप के राजनीतिक भविष्य को निर्धारित करने में व्यस्त हो गयी। पहली बार जब मित्र राष्ट्रों ने संयुक्त रूप से नैपोलियन को पराजित किया था, उसी समय से महान् शक्तियों के मध्य विविध विषयों पर विचार-विमर्श आरम्भ हो चुका था। जब निर्णयों के दस्तावेजों

पर सदस्यों के हस्ताक्षर की आवश्यकता थी, उसी समय औपचारिक रूप से विएना काँग्रेस का अधिवेशन हुआ था।

विएना काँग्रेस के मार्गदर्शक सिद्धान्त—विएना काँग्रेस के समस्त निर्णय तीन प्रमुख सिद्धान्तों पर आधारित थे। इन सिद्धान्तों के परिणामस्वरूप पाँच महाशक्तियों को सर्वाधिक लाभ हुआ था। अस्तु इन शक्तियों ने सिद्धान्तों का स्वेच्छा से पालन किया था।

(1) वैधता का सिद्धान्त (Principle of Legitimacy)—विएना काँग्रेस के कार्य के मार्गदर्शन के लिए मूलभूत विचार वैधता का सिद्धान्त था। फ्रान्स को उसके विजेताओं द्वारा कठोर दण्ड से बचाने के उद्देश्य से टैलीरैण्ड द्वारा प्रतिपादित एक उपाय था। टैलीरैण्ड ने कूटनीतिक कुशलता से फ्रान्स को क्षेत्रीय हानि से बचाने के साथ फ्रान्स की युद्धों में क्षतिग्रस्त प्रतिष्ठा को भी बहुत अंश तक पुनर्स्थापित किया। लेकिन मैटरनिख ने प्रतिक्रिया की सामान्य नीति की सहज और सुविधाजनक अभिव्यक्ति के रूप में अन्ततोगत्वा स्वीकार कर लिया था। मैटरनिख ने इसको आस्ट्रियन नीति के बहुमूल्य अवयव एवं प्रतिक्रिया के युग का सूत्रपात करने के लिए उपयोगी तत्व माना था। वैधता का अर्थ था कि यूरोप को राजवंश, जिन्होंने क्रान्ति पूर्व शासन किया था, को अपने पुराने राज्यों में पुनर्स्थापित किया जाये। शासकों को वही समस्त क्षेत्र जो सन् 1789 से पूर्व उनके अधिकृत क्षेत्र थे, उनको पुनः दे दिये जायें।

(2) शक्ति-सन्तुलन का सिद्धान्त (Principle of Balance of Power)—नैपोलियन के विरुद्ध अनवरत युद्धों में यूरोपीय राष्ट्रों की धन-जन की अपार क्षति हुई थी। यूरोपीय राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी थी। कानून और व्यवस्था चरमरा गयी थीं। न्यूनाधिक अराजकता का राज्य था। नागरिकों का जीवन असुरक्षित था। बेरोजगारी और भूख से लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे। ऐसी दयनीय स्थिति में यूरोप के समस्त राष्ट्र युद्धों से मुक्ति और शान्ति एवं व्यवस्था चाहते थे। शक्ति-सन्तुलन के अभाव में स्थायी शान्ति व्यवस्था सम्भव नहीं थी। शक्ति सन्तुलन द्वारा किसी भी राष्ट्र को अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली बनने से रोकना था, जिससे वह किसी अन्य राष्ट्र के लिए खतरा नहीं बन सके। अपेक्षाकृत अन्य राष्ट्रों से अधिक शक्तिशाली होने के कारण ही फ्रान्स पिछले 25 वर्ष से युद्धों का भीषण तांडव नृत्य करता रहा। शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त के माध्यम से विएना काँग्रेस में फ्रान्स की शक्ति कम कर दी गयी और चारों ओर से शक्तिशाली राष्ट्रों से आवृत्त कर दिया गया।

(3) क्षतिपूर्ति एवं दण्ड का सिद्धान्त (Principle of Compensation and Punishment)—नैपोलियन के विजय अभियान के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों को अपूर्व आर्थिक क्षति हुई थी। अतः वे आर्थिक क्षतिपूर्ति का आग्रह कर रहे थे। इसके अतिरिक्त मित्र राष्ट्रों का सक्रिय समर्थन एवं सहयोग करने वाले राष्ट्रों को यथोचित ढंग से पुरस्कृत करना और मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध नैपोलियन के समर्थकों को दण्डित करना आवश्यक समझा गया। इस सिद्धान्त का कठोरता के साथ पालन किया गया।

विएना काँग्रेस के निष्कर्ष—वाटरलू के निर्णायक युद्ध में नैपोलियन की पराजय के उपरान्त पेरिस में दूसरी निर्णायक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए और इसके अन्तर्गत विभिन्न यूरोपीय

राष्ट्रों के भाग्य का निर्णय उनके पक्ष एवं विपक्ष के अनुसार हुआ। इस सन्धि के अन्तर्गत प्रभावित राष्ट्रों का विस्तृत उल्लेख निम्नलिखित है :

फ्रान्स—रूस और प्रशा फ्रान्स को पूर्णरूप से ध्वस्त करना चाहते थे, लेकिन कैसरले ने उदार एवं नरम दृष्टिकोण अभिव्यक्त करते हुए कहा, "हमारा उद्देश्य अन्य राष्ट्रों से बड़े-बड़े उपहार अथवा भेंट एकत्र करना नहीं है, वरन् हम चाहते हैं कि समस्त विश्व में शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो जाये।" वैधता के सिद्धान्त के आधार पर पेरिस की पहली सन्धि से ही पहले बोर्बो वंश के वैध शासक लुईस अठारहवें को फ्रान्स के सिंहासन पर पुनर्स्थापित करने का निर्णय कर लिया गया था। पेरिस की दूसरी सन्धि के प्रावधानों के अनुसार फ्रान्स की सीमाएँ सन् 1792 की अपेक्षा सन् 1790 में क्रान्ति के समय अधिकृत क्षेत्रों तक सीमित कर दी गयीं। युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में 70,00,00,000 फ्रैंक का आर्थिक दण्ड आरोपित किया गया। आर्थिक दण्ड का जब तक भुगतान न हो, उस समय तक मित्र राष्ट्रों के 1,50,000 सैनिक फ्रान्स में नियुक्त किये गये। नैपोलियन द्वारा विभिन्न देशों से लायी गयी कलाकृतियों के रख-रखाव पर व्यय क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त धन से करने की व्यवस्था थी। भविष्य में फ्रान्सीसी आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा के उद्देश्य से शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त के अनुसार फ्रान्स के चारों ओर शक्तिशाली राज्यों का सुदृढ़ अवरोध बना दिया गया। पूर्व में आस्ट्रिया साम्राज्य के एक प्रान्त बेल्जियम को हालैण्ड के साथ एक राज्य के रूप में मिला दिया गया और आरेन्ज वंश के वैध राजा को एकीकृत राज्य का शासक बनाया गया। इस प्रकार फ्रान्स के विरुद्ध उत्तर में यह एक शक्तिशाली अवरोध था।

प्रशा को राइन नदी स्थित समस्त क्षेत्र दे दिये गये जिससे वह इतना शक्तिशाली हो जाये कि फ्रान्स के पूर्व की ओर विजय अभियान को रोक सके। सार्डीनिया-पीडमोण्ट राज्य जेनोआ का क्षेत्र प्राप्त करके पूर्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली हो गया और दक्षिण पूर्व में फ्रान्सीसी आक्रमण को विफल करने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली था। इस प्रकार फ्रान्स के महत्वाकांक्षी विजय अभियान एवं राज्य विस्तार को रोकने के लिए चारों ओर से शक्तिशाली राज्यों से घेर दिया गया जो सहज ही फ्रान्सीसी आक्रमण के समक्ष समर्पण नहीं करेंगे।

रूस—विएना काँग्रेस से रूस पर्याप्त लाभान्वित हुआ। रूस को फिनलैण्ड, जो उसने सन् 1809 में स्वीडेन से युद्ध में प्राप्त किया था, अपने पास रखने की अनुमति दे दी गयी। इसके अतिरिक्त तुर्कों से छीना गया बैसरेविया और दक्षिण पूर्व स्थित तुर्की के अधिकृत क्षेत्र भी रूस के पास रहने दिये गये। इन सबमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वारसा के ग्रान्ड डची का अधिकांश भाग रूस को मिल गया। इस प्रकार रूस की सीमाओं का पश्चिम की ओर पूर्वापेक्षा अधिक विस्तार हो गया और यूरोपीय विषयों में रूस का महत्व अपेक्षाकृत अधिक बढ़ गया।

आस्ट्रिया—आस्ट्रिया को अपने पुराने पोलिश क्षेत्र पुनः प्राप्त हो गये और नीदरलैण्ड के मुआविजे के रूप में, पो घाटी में स्थित अपेक्षाकृत विशाल एवं समृद्ध लोम्बार्डो-वेनेशियन राज्य के नाम से विख्यात उत्तरी इटली का भाग मिल गया। एड्रियाटिक के पूर्वी तट पर स्थित इलीरियन प्रान्त भी आस्ट्रिया को पुनः प्राप्त हो गये। दो दशक तक अनवरत विनाशकारी युद्ध के उपरान्त आस्ट्रिया का अनेक नये क्षेत्रों की शक्ति के साथ आविर्भाव हुआ और उसकी जनसंख्या में भी 40 से 50 लाख की वृद्धि हो गयी। उसके सुदूर एवं अलाभकर क्षेत्रों के

बदले में ऐसे क्षेत्र मिल गये, जिन्होंने मध्य यूरोप में उसकी शक्ति को बहुत बढ़ा दिया। इटली के एक भाग का विलय और इटली के अन्य राज्यों पर अप्रत्यक्ष नियन्त्रण सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे।

इंग्लैण्ड—नैपोलियन के कट्टर शत्रु, बार-बार मित्र राष्ट्रों के संघर्ष के निर्माता, अनेक वर्षों तक मित्र राष्ट्रों के साहूकार अथवा बैंकर इंग्लैण्ड को अपने औपनिवेशिक क्षेत्र के अतिरिक्त क्षतिपूर्ति के रूप में भी कुछ क्षेत्र प्राप्त हुए। इंग्लैण्ड ने फ्रान्स अथवा सक्रिय सहयोगियों अथवा फ्रान्स के आश्रितों से, जो क्षेत्र जीते थे उनका अधिकांश भाग अपने पास रखा। डच, जिन्होंने कुछ समय फ्रान्स के पक्ष में युद्ध किया था, के मूल्यवान क्षेत्रों पर नियन्त्रण रखने की अनुमति दे दी गयी। इंग्लैण्ड ने उत्तरी सागर में हैल्गोलैण्ड (Helgoland), भू-मध्य सागर में माल्टा और आइनोनियन द्वीपों, दक्षिण अफ्रीका में अन्तरीप उपनिवेश (Cape Colony) श्रीलंका, दक्षिण अमेरिका के एक भाग पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखा। हालेण्ड के साथ बेल्जियम का विलय कर दिया गया था। औपनिवेशिक हानियों के बदले में ये क्षेत्र दिये गये थे।

प्रशा—विएना काँग्रेस में प्रशा को स्वीडिश पोमोरेनिया, कुछ पालिश क्षेत्र, सैक्सोनी का 2/5 भाग एवं राइन नदी के दोनों तट पर विशाल जिले प्राप्त हुए। राइन नदी के तटीय क्षेत्र की प्राप्ति ने प्रशा को फ्रान्स का सामना करने के लिए विवश किया और फ्रान्स के आक्रमण के विरुद्ध जर्मनी के हितों का सर्वोपरि रक्षक बन गया।

जर्मनी के 39 छोटे राज्यों के एक शिथिल संघ का गठन किया गया जिनके परस्पर सम्बन्धित विषयों पर आस्ट्रिया की अध्यक्षता में संघीय संसद (Diet) का नियन्त्रण था। संसद (Diet) के सदस्य जनता के प्रतिनिधियों की अपेक्षा, राज्यों के शासकों द्वारा मनोनीत सदस्य थे। जनहित अथवा जन कल्याण का कहीं कोई स्थान नहीं था। शासक सर्वोच्च था। यह व्यवस्था मैटरनिख के प्रभाव के कारण थी। वह जर्मनी को एकीकृत नहीं देखना चाहता था। कुछ अंशों में यह व्यवस्था जर्मन राज्यों के शासकों की व्यक्तिगत स्वार्थपरता एवं परस्पर ईर्ष्या-द्वेष के कारण थी। ये शासक अपनी स्वतन्त्रता को समर्पित नहीं करना चाहते थे और अपने राज्य का एकीकृत जर्मनी में विलय नहीं चाहते थे।

इटली—विएना काँग्रेस में इटली के भाग्य का भी निर्णय किया गया। कार्य के सामान्य सिद्धान्त कि आस्ट्रिया को नीदरलैण्ड अथवा बेल्जियम के बदले में क्षतिपूर्ति के रूप में कुछ मिलना चाहिए और पुराने राजवंशों को पुनर्स्थापित करना चाहिए, पर पहले ही सहमति हो गयी थी। क्षेत्रीय व्यवस्थाओं का निर्धारण आस्ट्रिया के हितों ने किया। आस्ट्रिया ने सर्वाधिक धनी एवं सैन्य दृष्टि से महत्वपूर्ण लोम्बार्डी और वेनेशिया पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस क्षेत्र से आस्ट्रिया समस्त प्रायद्वीप पर प्रभुत्व रख सकता था। डची आफ पामा नैपोलियन की पत्नी और आस्ट्रिया के साम्राज्यिक हैप्सबर्ग वंश की पुत्री मैरी लूसी (Marie Lousie) के नियन्त्रण में दे दिया गया। मोडेना (Modena) और टस्कैनी का हैप्सबर्ग वंशजों को शासनाध्यक्ष बनाया गया। इस प्रकार आस्ट्रिया का सुसम्बद्ध साम्राज्य बन गया और मध्य यूरोप पर प्रभुत्व हो गया। ईसाई धर्माध्यक्ष पोप के राज्यों को पुनर्स्थापित किया गया।

इटली के छोटे-छोटे राज्यों का कोई संघ नहीं बनाया गया। मैटरनिख की प्रबल इच्छा थी कि इटली केवल अनेक स्वतन्त्र राज्यों का समूह होना चाहिये और इटली केवल भौगोलिक अभिव्यक्ति रहना चाहिए।

यूरोप के मानचित्र में अन्य परिवर्तन—वैधता के सिद्धान्त के अन्तर्गत स्पेन और दो राज्यों सिसली, अथवा नेपल्स में बोर्बोन वंशीय शासकों को पुनर्स्थापित किया गया। सेवॉय वंश के राजाओं को सार्डीनिया-पीडमोण्ट में और आरेन्ज वंशीय शासक को हालैण्ड में पुनर्स्थापित किया गया। स्विट्ज़रलैण्ड में तीन प्रान्त (Cantons), जिनको फ्रान्स ने अपने साम्राज्य में मिला लिया था, जोड़ दिये गये और कुल संख्या 22 प्रान्त (Canton) हो गयी। इस प्रकार स्विट्ज़रलैण्ड की सीमाओं को पुनर्स्थापित कर दिया गया और इस महासंघ की तटस्थता बनाये रखने का समस्त यूरोपीय राज्यों ने आश्वासन दिया।

वैधता के सिद्धान्त का अनेक विवादों में विजेता को पराजित के मूल्य पर क्षतिपूर्ति देने अथवा पुरस्कृत करने की आवश्यकता का समझौता किया गया। नार्वे को डेनमार्क से अलग करके क्षतिपूर्ति के रूप में स्वीडेन को दे दिया गया, क्योंकि स्वीडेन का फिनलैण्ड रूस को और योमेरेनिया प्रशा को दे दिया गया। डेनमार्क को नैपोलियन का सक्रिय सशस्त्र सहयोग के लिए दण्डित किया गया और स्वीडेन को मित्र राष्ट्रों का सक्रिय सहयोग करने के लिए पुरस्कृत किया गया। सैक्सोनी (Saxsony) ने भी फ्रान्स का सक्रिय समर्थन किया था। परिणामस्वरूप सैक्सोनी को अपने अधिकांश भाग से दण्डस्वरूप वंचित होना पड़ा। सैक्सोनी के ये भाग प्रशा को पुरस्कार स्वरूप दिये गये थे। स्पेन और पुर्तगाल के अधिकृत क्षेत्रों को यथावत रखा गया।

विएना काँग्रेस के निष्कर्षों का मूल्यांकन—प्रो. फाइफ ने इन निष्कर्षों की प्रशंसा करते हुए कहा है, "दो युगों के मध्य सीमा पर खड़े हुए विएना का अधिनियम इतिहास में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है।" कैसरले के प्रभाव के कारण विएना काँग्रेस के निष्कर्ष से राजस्व प्राप्ति का उद्देश्य नहीं था। उसने एकत्रित कूटनीतिज्ञों से कहा था कि, "वे सब युद्ध के पुरस्कारों का वितरण करने के लिए एकत्रित नहीं हुए हैं वरन् हमको एक ऐसा समझौता करना है जो यूरोप की जनता को शान्ति देगा। समझौते के सिद्धान्त को जहाँ कहीं सम्भव हुआ, प्रयुक्त किया गया। परिणामस्वरूप फ्रान्स को किसी भी प्रकार से अनुचित रूप से दण्डित अथवा अपमानित नहीं किया जिससे जनाक्रोश उत्तेजित होता। सन् 1919 में जर्मनी को प्रथम विश्वयुद्ध के लिए दोषी घोषित किया गया था। परिणामस्वरूप उसको अपने अधिकृत क्षेत्रों, उपनिवेशों, निवेशों आदि से वंचित कर दिया गया था और उसकी सामर्थ्य के बाहर क्षतिपूर्ति के रूप में अरबों डालर की धनराशि देने का निर्देश दिया गया था। यह सत्य है कि नैपोलियन ही समस्त क्रूर आक्रमणों के लिए उत्तरदायी था और उसी ने यूरोप को अशान्ति, अव्यवस्था, अराजकता एवं दरिद्रता की भीषण अग्नि में झोंक दिया था, लेकिन समस्त दुष्कर्मों के लिए फ्रान्स को दोषी नहीं माना गया था। सन् 1815 में वाटरलू के स्थान पर नैपोलियन को दूसरी बार पराजित करने के उपरान्त भी फ्रान्स के साथ सहानुभूतिपूर्ण एवं सहृदय सन्धि की गयी। फ्रान्स की सीमाओं को सन् 1790 में फ्रान्स के अधिकृत क्षेत्रों तक सीमित कर दिया गया और नैपोलियन द्वारा विदेशों से लूटकर लायी गयी मूल्यवान कलाकृतियों के कोष को पुनर्स्थापित करने की अनुमति दी गयी। फ्रान्स के ऊपर केवल 7,00,00,00,00 फ्रैंक का आर्थिक दण्ड दिया गया। सन् 1818 में फ्रान्स द्वारा क्षतिपूर्ति करने के उपरान्त मित्र राष्ट्रों की सेना की 5 वर्ष की अवधि कम कर दी गयी। फ्रान्स के साथ सहृदय व्यवहार के

परिणामस्वरूप फ्रान्स की जनता में किसी प्रकार के प्रतिशोध की भावना अथवा मनोमालिन्य नहीं था।

सीमैन ने उसके विषय में लिखा है, "इसकी अपेक्षा यह कहना सम्भव है कि उसके किसी प्रावधान में महान् शक्तियों के मध्य युद्ध के बीज नहीं थे, और उसको यूटरेक्ट (Utrecht) अथवा वर्साय की सन्धियों की अपेक्षा श्रेष्ठ मानना चाहिए। यूटरेक्ट की सन्धि की कसक हैप्सबर्ग के वंशजों के हृदयों में थी और इसके उपनिवेशिक एवं वाणिज्यिक प्रावधानों ने ब्रिटिश शासकों को फ्रान्स और स्पेन के विरुद्ध युद्धों के लिए प्रोत्साहित किया था। वर्साय की सन्धि ने जर्मनी को अपमानित किया था, नये लोकतान्त्रिक राज्यों का सृजन किया जिनके लोकतन्त्र की जड़ें ही नहीं थीं, और जिनकी स्वतन्त्र प्रभुसत्ता काल्पनिक थी। नई समस्याएँ उत्पन्न करने के लिए पुरानी अल्पसंख्यक समस्याओं को समाप्त कर दिया गया। इटलीवासियों को निराश किया और फ्रान्सवासियों को उत्साहित किया। जनसमुदाय की विवेकहीन शक्तियों की अपील करके असन्तोष एवं अराजकता को जन्म दिया ज़बकि इसके विपरीत विएना में जनसमुदाय की उपेक्षा करके शान्ति स्थापित की। विएना में उदारवाद और राष्ट्रवाद की उपेक्षा से कोई युद्ध नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि युद्ध और शान्ति की समस्याओं का समाधान केवल महान् शक्तियाँ ही कर सकती हैं। अस्तु सामान्य तथ्यपूर्ण एवं न्यायोचित है कि विएना के निष्कर्ष में कोई ऐसा प्रावधान नहीं था जिसने किसी भी शक्ति को युद्ध के लिए कोई कारण दिया हो।"

विएना काँग्रेस के सचिव जेन्टज् ने लिखा, " सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण', 'यूरोप की राजनीतिक प्रणाली के पुनर्जीवन', 'शक्तियों के न्यायोचित पुर्नवितरण पर आधारित दीर्घकालीन शान्ति' जैसी सुन्दर लोकोक्तियों का उद्देश्य जनता को शान्त करना और पवित्र पुनर्एकीकरण को प्रतिष्ठा और गौरव प्रदान करना था। काँग्रेस का वास्तविक उद्देश्य विजेताओं के मध्य विजितों की लूट (लाभ) को बाँटना था।" कैटलबी इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे। उन्होंने लिखा "यह अनिवार्य था कि विजयी शक्तियों को अपने हितों की सुरक्षा का प्रयास करना चाहिए लेकिन उनका पराजित शत्रुओं के साथ व्यवहार बहुत विवेकपूर्ण और सहृदय था। यह सत्य है कि विजयी शक्तियों को अपना लाभ मिल गया, लेकिन फ्रान्स के मूल्य पर इतना अधिक नहीं मिला जितना अन्य देशों, जैसे पोलैण्ड के मूल्य पर मिला। यह सत्य है कि विजयी शक्तियों ने अधिकारों, स्वतन्त्रता और समस्त राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के विषय में चर्चा की लेकिन उनका आशय प्रत्येक सुस्पष्ट राष्ट्रवादी समूह की राजनीतिक सीमाएँ खींचना नहीं था। वे एक अन्य यूरोपीय युद्ध रोकने और उसके विरुद्ध सुरक्षा कवच प्रदान करने के लिए कृत संकल्प थे। यह नहीं भूलना चाहिए कि विजयी शक्तियों ने विएना काँग्रेस से पूर्व ही फ्रान्स के साथ सन्धि कर ली थी और उन्होंने फ्रान्स के प्रतिनिधि के विएना में समान स्तर पर भाग लेने की अनुमति दी थी। काँग्रेस ने अन्तिम अधिनियम में जो समाहित किया, उस सब पर विजयी शक्तियों के मध्य पहले ही सहमति हो चुकी थी। जहाँ कहीं पुनर्स्थापन सम्भव था, विएना काँग्रेस ने पुनर्स्थापित किया। इसने मुख्य रूप से पाँच प्रमुख शक्तियों के सन्तुलित यूरोपीय समाज के सिद्धान्त के आधार पर निर्माण किया था। परिणामस्वरूप अगले 45 वर्ष तक कोई भीषण युद्ध नहीं हुआ। जर्मनी में राज्यों की संख्या कम कर दी गयी और इसने जर्मन एकीकरण में सहायता की। रूस और सार्डीनिया को पूर्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली

बनाया गया था और उन्होंने जर्मनी और इटली के एकीकरण में सहयोग दिया। विएना काँग्रेस ने वास्तविक आधारशिला प्रदान की जिस पर भावी यूरोप का निर्माण होना था और अगले 4 दशक तक अन्तर्राष्ट्रीय स्थायित्व सुरक्षित रखा।

(1) किसी भी दृष्टि से विएना के निष्कर्ष आदर्श नहीं थे और इनमें अनेक दोष थे। प्रो. हेज ने विचार व्यक्त किया है, "इन समस्त क्षेत्रीय पुनर्समायोजनों में, बहुत थोड़ा था जो स्थायी था और अधिक अस्थायी था। हालैण्ड और बेल्जियम का विलय केवल 15 वर्ष चला। इटेलियन और जर्मन व्यवस्था का 50 वर्ष तक अस्तित्व रहा और पोलिश व्यवस्था एक शताब्दी तक चली।" लेकिन बेल्जियम का हालैण्ड के साथ समायोजित करने का कोई औचित्य नहीं था। हालैण्ड लोकतान्त्रिक, प्रोटेस्टेन्ट मतावलम्बी और जर्मन मूल का था, जबकि बेल्जियम इसके विपरीत रूढ़िवादी, कैथोलिक धर्मावलम्बी और बहुमत फ्रैन्च भाषाभाषी था। बेल्जियम की जनता हालैण्ड के नेतृत्व अथवा सर्वोच्चता को पसन्द नहीं करती थी, और बेल्जियम की जनता ने विद्रोह कर दिया और स्वतन्त्र हो गया। उल्लेखनीय है कि इस अस्वाभाविक विलय के लिए इंग्लैण्ड उत्तरदायी था। इंग्लैण्ड को आशंका थी कि बेल्जियम अकेला फ्रान्सीसी आक्रमण का सामना करने में असमर्थ रहेगा और फ्रान्स एक ही झटके में बेल्जियम को निगल जायेगा। हॉलैण्ड के साथ बेल्जियम को मिला देना शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त पर आधारित था, जिससे फ्रान्स के आक्रमण को विफल किया जा सके। सन् 1905 में स्वीडेन और नार्वे विलग होकर स्वतन्त्र राष्ट्र बन गये। सन् 1917 में रूस और फिनलैण्ड का गठबन्धन भी समाप्त हो गया। बिस्मार्क ने जर्मन परिसंघ को समाप्त कर दिया। कैवोर ने इटली के सम्बन्ध में निष्कर्षों को ध्वस्त कर दिया।

(2) निःसन्देह विएना काँग्रेस की कटु आलोचना की गयी। इसमें सम्मिलित कूटनीतिज्ञों की प्रतिक्रियावादी एवं अनुदार कहकर निन्दा की गयी। प्रायः यह कहा जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दी ने विएना काँग्रेस के कार्य अथवा निष्कर्षों को संशोधित करने का कार्य किया। यह सत्य है कि विएना काँग्रेस के कूटनीतिज्ञों ने राष्ट्रीय भावनाओं, राष्ट्रवादी आन्दोलनों जिन्होंने पोलैण्डवासियों, स्पेनवासियों, इटलीवासियों और जर्मनवासियों को ग्रस्त कर रखा था, की उपेक्षा की। अस्वाभाविक संघ के लिए बाध्य किया। नवोदित उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक शक्तियों के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति व्यक्त नहीं की। इन नवोदित शक्तियों की हाल ही में अभिव्यक्तियाँ यूरोप की शान्ति के लिए अत्यधिक घातक सिद्ध हो रही थी। पुराने विचारों, मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रति समर्पित व्यक्तियों द्वारा नई शक्तियों से अलग रहना और उनको घातक कहकर अस्वीकार करना अस्वाभाविक नहीं था। इसके अतिरिक्त कूटनीतिज्ञ पूर्व में की गयी पवित्र प्रतिज्ञाओं और सन्धियों से बँधे होने के कारण असहाय थे। इन सन्धियों द्वारा अनेक शासकों को पुनर्स्थापित करने और अन्य को मुआविजा देने के लिए सहमत हो चुके थे। उन सन्धियों के प्रावधानों का अनादर करना, अनैतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से मूर्खता होती। इस सत्य को स्वीकार करना चाहिए कि विएना काँग्रेस की व्यवस्था के परिणामस्वरूप यूरोप में 4 दशक तक शान्ति रही। ग्रान्ट और टैम्परले ने उपर्युक्त कथन की पुष्टि करते हुए कहा है, "लेकिन विएना काँग्रेस के शान्ति निर्माताओं ने पुरातन शासन के सर्वाधिक खराब की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट का प्रतिनिधित्व किया था और उनकी व्यवस्था (समझौते) ने यूरोप को 4 दशक तक किसी प्रमुख युद्ध से बचाया था। उनके विचारों के

अनुसार व्यवस्था पूर्णरूप से निष्पक्ष थी। फ्रान्स के साथ सहृदय व्यवहार किया गया था और शक्ति सन्तुलन और क्षेत्र का समायोजन बनिये द्वारा अपनी वस्तुओं को तौलते हुए अथवा बैंकर द्वारा लेखों का सन्तुलन करते हुए स्पष्ट सुन्दरता के साथ किया गया था। रूस को ही केवल अपने उचित भाग की अपेक्षा अधिक प्राप्त हुआ था और यह भी इस कारण था कि उसके पास सशस्त्र सेनाओं का अनावश्यक अनुपात था।"

(3) विएना काँग्रेस के कूटनीतिज्ञों ने गम्भीर त्रुटियाँ कीं और उनके समझौते (व्यवस्था) पर गम्भीर आरोप लगाये जाते हैं। उन्होंने फ्रान्स की क्रान्ति जैसी महान् उथल-पुथल की चुनौती की पूर्णरूप से उपेक्षा करके अपनी संकीर्ण दृष्टि का परिचय दिया था। अस्तु उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक प्रयोग और पुनर्निर्माण के लिए प्राप्त सुअवसर को खो दिया। उन्होंने शक्ति सन्तुलन बनाये रखने और पुराने राजवंशों के हितों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से स्वेच्छापूर्वक राष्ट्रवाद और लोकतन्त्र की नवीन शक्तियों के प्रति आँखें बन्द कर ली। पुरातन शासन की परम्पराओं के अनुरूप उन्होंने यूरोपीय जनता के साथ राजवंशीय विवर्धन के खेल में बन्धक व्यक्तियों के रूप में व्यवहार किया है। इसी कारण आस्ट्रिया को इटली के राज्यों पर प्रभुत्व बनाये रखने की अनुमति दी। जर्मनी की जनता की आकांक्षाओं की उपेक्षा की गयी और राजाओं को सर्वशक्तिशाली छोड़ दिया गया। बेल्जियम और नार्वे के ऊपर अस्वाभाविक और अप्रिय राष्ट्रों के साथ गठबन्धन के लिए विवश किया गया। फ्रान्स की क्रान्ति ने व्यापक रूप से राष्ट्रीय और उदार विचारों के बीज बोये थे। विएना काँग्रेस के निरंकुश तानाशाहों की अपनी अन्तर्निहित शक्ति का उचित आकलन करने में असफलता है जो उनकी भयंकर भूल सिद्ध हुई।

(4) निष्कर्षों की गम्भीर आलोचना इस रूप में की गयी है कि इसने छोटे राज्यों के अभिव्यक्त विचारों का उचित सम्मान नहीं किया। इस व्यवस्था (समझौते) का सुनिश्चित उद्देश्य पुरानी व्यवस्था और वर्तमान अधिकारों का पुनर्स्थापन करना था। विशाल राज्यों के लाभ के लिए छोटे राज्यों की निर्ममतापूर्वक बलि चढ़ा दी गयी। विएना के कूटनीतिज्ञों ने अपने हितों, स्वार्थों और उद्देश्यों के अनुकूल 'वैधता के सिद्धान्त' का विकास किया, लेकिन वेनिस और जैनोआ जैसे छोटे गण राज्यों तक इस सिद्धान्त का विस्तार नहीं करना दम्भी है। दोनों का अनेक राजतन्त्रों की अपेक्षा अधिक लम्बा और गौरवपूर्ण स्वतन्त्र जीवन रहा था लेकिन दोनों को समाप्त कर दिया। इसी प्रकार जर्मनी में छोटे राज्यों को कम करके आस्ट्रिया अथवा प्रशा की सुविधा के अनुरूप नये राज्य बनाये गये।

विएना काँग्रेस, वैधता का सिद्धान्त प्रयुक्त करने के कारण थोड़ी मानव द्वेषी प्रतीत होती है। अलंकृत राजाओं ने यूरोप के पुराने मानचित्र को पुनर्स्थापित करने से पूर्व वैधता के सिद्धान्त को अपने मुआविजे (क्षतिपूर्ति) की विचित्र प्रणाली के साथ मिलाकर मन्द कर दिया था। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य प्रमुख शक्तियों में से कुछ को युद्ध की लूट (लाभ) की भूख को सन्तुष्ट करने के योग्य बनाना था। उदाहरणार्थ, डच ने कुछ काल के लिए फ्रान्स के पक्ष में युद्ध किया था। इंगलैण्ड ने डच के मूल्यवान क्षेत्र छीन लिये थे। विएना काँग्रेस कें निर्णयों के अन्तर्गत इंगलैण्ड को ये क्षेत्र अपने पास रखने की अनुमति दे दी गयी।

(5) उदारवादियों की आशाओं पर तुषारापात हो गया। विएना काँग्रेस के निष्कर्षों के अन्तर्गत पुनर्स्थापित शासकों ने अपने देशों में प्रतिक्रियावादी शासन स्थापित किया और सर्वत्र

दमन आरम्भ हो गया। स्पेन और नेपल्स जहाँ बोर्बोन शासकों को पुनर्स्थापित किया गया था, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मैटरनिख ने स्वयं समस्त यूरोप पर अत्याचार और दमन की प्रतीक पुलिस प्रणाली प्रयुक्त करने का प्रयास किया। जब कभी उदारवाद का विस्तार हुआ, इसका दमन कर दिया गया। उदार विचारों को खंजर समझा जाता था। ट्रोप्पउ की विज्ञप्ति ने यूरोपीय राज्यों को अन्य राज्यों के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने में सहायता की। मैटरनिख का स्वयं का दृष्टिकोण था, "जो कुछ यरोपीय जनता चाहती है, वह स्वतन्त्रता नहीं शान्ति है।"

(6) हेजन ने कहा है, "विएना काँग्रेस अभिजात वर्गीय सम्मेलन था, जिनके लिए फ्रान्स की क्रान्ति द्वारा उद्घोषित राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र के विचार अबोधगम्य अथवा घृणित थे। शासकों ने अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप यूरोप को पुनर्व्यवस्थित किया, राज्यों का निर्णय इस प्रकार किया, जैसे ये उनकी निजी सम्पत्ति थीं, राष्ट्रीयता की पवित्र भावना की उपेक्षा की जिसका आश्चर्यजनक ढंग से उद्भव और विकास हुआ था, वे जनता की आकांक्षाओं के प्रति उदासीन थे। उन्होंने उन तत्वों की उपेक्षा की जो स्थायी व्यवस्था करते। विएना काँग्रेस की प्रमुख भूल का सुधार करने के लिए सन् 1815 के उपरान्त यूरोप के इतिहास को बार-बार और प्रायः सफल प्रयास देखने थे।"

(7) विएना में राजनीतिज्ञों की मानवता को रूपान्तरित करने में कोई रुचि नहीं थी क्योंकि उनकी आँखों में इस प्रयास के परिणामस्वरूप 25 वर्षीय सशस्त्र संघर्ष का दुखान्त हुआ। विएना में समस्या एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की थी जिसमें शक्ति के दावे की अपेक्षा नैतिक बाध्यता द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है।

भावी संकेत—यद्यपि विएना काँग्रेस का कार्य अवनतिशील एवं प्रतिक्रियात्मक था, इसके उपरान्त भी यह एक पुराने युग की समाप्ति का ही नहीं वरन् नये युग के सूत्रपात का प्रतीक है। इसके कुछ क्षेत्रीय समायोजनों के गर्भ में महत्वपूर्ण परिणाम निहित थे। सार्डीनिया और जेनोआ के विलय द्वारा इटली की एकता की दिशा में अचेतन रूप से लिया हुआ कदम था। इस प्राप्ति से सेवॉय राजवंश अपने इटली के विषय में लक्ष्य प्राप्ति के लिए उद्वेलित हो गया। जर्मनी की पुनर्व्यवस्था के परिणाम भी बहुत रोचक थे। प्रशा ने अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने पूर्वी अधिकृत क्षेत्रों को छोड़ दिया और अपनी हानियों के मुआविजे के रूप में पश्चिम में क्षेत्र प्राप्त हुए थे। जो क्षेत्र प्रशा ने छोड़ थे, उनकी अधिकांश जनसंख्या स्लाव थी और जो क्षेत्र प्राप्त किये थे, उनकी अधिकांश जनसंख्या जर्मन थी। इस प्रकार जर्मनी के प्रशीकरण की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम था। राइन नदी के तट के जिलों की प्राप्ति से प्रशा, आस्ट्रिया की अपेक्षा फ्रान्स के विरुद्ध प्रमुख शत्रु बन गया। आस्ट्रिया ने पश्चिम में अपने कुछ क्षेत्र नीदरलैण्ड (बेल्जियम) को छोड़ दिया था और राइन नदी की तटीय सीमाओं की सुरक्षा के दायित्व को छोड़कर स्पष्ट कर दिया था कि वह जर्मन हितों की उपेक्षा कर रहा था और इटली एवं हंगरी में अपने राजवंशीय हितों को सुदृढ़ करने के लिए समर्पित था। इस नीति के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया का जर्मनी से अन्ततोगत्वा निष्कासन हो गया और जर्मनी के प्रभावशाली नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण हो गया। पूर्व में रूस की क्षेत्रीय प्राप्तियों ने उसकी विस्तारवादी महत्वाकांक्षा में वृद्धि की और तुर्की के प्रति रूस का दृष्टिकोण अधिकाधिक खतरनाक हो गया। इसने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अत्यधिक जटिल समस्याओं

का सूत्रपात करते हुए "पूर्वी प्रश्न" (Eastern Questions) को पुनर्जीवित किया। इस प्रकार अनेक जटिल समस्याएँ जिनका भविष्य में यूरोप को सामना करना पड़ा, उनके कीटाणु विएना काँग्रेस में निहित थे।

पवित्र संघ (Holy Alliance)—मैटरनिख और उसके रूढ़िवादी सहयोगियों का एक प्रमुख उद्देश्य विएना समझौते को यथा स्थिति बनाये रखने के सिद्धान्त द्वारा स्थायी सुरक्षा के रूप में खड़ा करना था। विएना काँग्रेस के प्रावधानों को मित्र राष्ट्रों की सामूहिक सुरक्षा आश्वासन के अन्तर्गत रखना था, लेकिन अतीत के अनुभवों ने उनको आश्वस्त कर दिया था कि अपेक्षाकृत कुछ अधिक आवश्यक था। उन्होंने यूरोप की शान्ति को आश्वस्त करने और क्रान्तिकारी हिंसा की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए किसी स्थायी संगठन की आवश्यकता अनुभव की। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दो भिन्न-भिन्न प्रयोग किये गये। रूस के जार अलेक्जेण्डर प्रथम द्वारा प्रस्तावित पवित्र संघ (Holy Alliance) एवं दूसरा चार महान् शक्तियों के चतुर्मुखी संघ (Quadruple Alliance) पर आधारित यूरोप का संयुक्त संघ था।

रूस का जार अलेक्जेण्डर प्रथम एक काल्पनिक, अस्थिर, राजनीतिक आदर्शवाद और धार्मिक रहस्यवाद का परेशानी में डालने वाला मिश्रण था। तथाकथित पवित्र संघ जार अलेक्जेण्डर प्रथम के भावुक आदर्शवाद की उत्पत्ति था। उसने सहृदय एवं उदार स्वभाव की भावुकता के अन्तर्गत ईसाई धर्म के पवित्र सिद्धान्तों पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की योजना विकसित की। सितम्बर, 1815 में अलेक्जेण्डर ने प्रस्ताव रखा कि "यूरोप के समस्त राजाओं को न्याय, ईसाई धर्म की उदारता और शान्ति को अपना एकमात्र मार्गदर्शक स्वीकार करना चाहिए" और उनको अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एवं अपना जनता के साथ व्यवहार उदात्त सत्यों, जिसकी हमारे रक्षक का पवित्र धर्म शिक्षा देता है, पर आधारित करना चाहिए। लेकिन किसी भी सहयोगी राजा ने जार की पवित्र उद्घोषणा, जिसमें उसने यूरोप के समस्त राजाओं से ईसाई धर्म के उत्कृष्ट सिद्धान्तों को अपना मार्गदर्शक बनाने का आह्वान किया था, गम्भीरता से नहीं लिया। जार यथार्थ में हाल के वर्षों में भीषण युद्धों में रक्तपात और नैपोलियन के पतन से अत्यधिक धार्मिक बन गया था। पतित काले देवदूत के विपरीत जार की श्वेत देवदूत के रूप में प्रशंसा की जाती थी। जार की प्रबल आकांक्षा थी कि यूरोप के समस्त शासक अपने परस्पर व्यवहार, आन्तरिक विषयों एवं विदेशों से सम्बन्धों में ईसाई धर्म के उत्कृष्ट सिद्धान्तों को प्रयुक्त करे। समस्त शासक अपनी जनता के हितों एवं कल्याण के लिए अपने स्वयं के बच्चों की तरह कार्य करें। वह राजनीति को आध्यात्मिक बनाना चाहता था। शासकों को परस्पर भ्रातृत्व भाव को पुष्ट करना चाहिए और एक-दूसरे की हर अवसर पर और हर स्थान पर सक्रिय, सहृदय और अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ सहायता करना चाहिए।

जार के प्रति श्रद्धा और सम्मान के कारण पोप, तुर्की के सुल्तान एवं इंग्लैण्ड के प्रति-शासक राजकुमार के अतिरिक्त अन्य समस्त यूरोपीय शासकों ने जार के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए हस्ताक्षर कर दिये। इस प्रकार विख्यात पवित्र संघ (Holy Alliance) का गठन हुआ। यह राजनीति को आध्यात्मिक बनाने का समर्पित प्रयास था, लेकिन जार के अतिरिक्त अन्य किसी ने इसको गम्भीरता से नहीं लिया। यथार्थ में किसी भी राज्य ने कभी भी उच्च स्वर एवं उत्साहपूर्वक अनुमोदित सिद्धान्तों के अनुरूप कार्य करने का प्रयास नहीं किया। प्रो.

हेजन ने इसके सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया है, "पवित्र संघ के विषय में एकमात्र महत्वपूर्ण तथ्य इसका नाम था, जो उदारवादियों की दृष्टि में इतना अधिक अच्छा था कि इसको विलुप्त होना ही था। इसमें रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के शासकों के चरित्र एवं नीतियों के विषय में जो कुछ ज्ञात था, के साथ पवित्र संघ का व्यंगात्मक विरोध था।" कैसरले जैसे यथार्थवादियों ने इसको महान् रहस्यवाद के टुकड़े और मूर्खता के रूप में चित्रित किया जबकि मैटरनिख ने "उच्च स्वर वाला" कुछ नहीं कहा। यूरोप के उदारवादी पवित्र संघ को मानव जाति की स्वतन्त्रताओं के विरुद्ध निरंकुश शासकों के घृणापूर्ण समझौते के रूप में मानते थे। समझौता घृणापूर्ण नहीं था, क्योंकि इसने यथार्थ में कभी कार्य नहीं किया। जनमानस के मस्तिष्क में पवित्र संघ, चतुर्मुखी राष्ट्र संघ, जिसने मैटरनिख के कुशल मार्गदर्शन में उदारवाद और राष्ट्रवाद की समस्त अभिव्यक्तियों को समाप्त करने का प्रयास किया, की वास्तविक कार्य प्रणाली के साथ उलझा हुआ था। जार पवित्र संघ के शरीर के साथ पारदर्शक आत्मा प्रदान करने में सफल नहीं हुआ था। पवित्र संघ का व्यावहारिक महत्व नगण्य था। आलोचकों ने पवित्र संघ की कटु आलोचना करते हुए उसको प्रतिक्रिया के प्रतीक, अपनी जनता के विरुद्ध राजाओं के संघ और उदारवाद के विरुद्ध एक षड्यन्त्र कहा है। विभिन्न शक्तियों के पवित्र संघ के प्रति दृष्टिकोण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि शक्तियों के मध्य उद्देश्य का मतैक्य नहीं था और यदि परिस्थितियों की ऐसी अपेक्षा होती, तब उनके एक-दूसरे से विलग होने की पूर्ण सम्भावना थी। पवित्र संघ पवित्र प्रतिज्ञाओं की अपेक्षा कुछ नहीं था।

उल्लेखनीय है कि पवित्र संघ कोई सन्धि नहीं थी। इस कारण इसके पीछे हस्ताक्षरकर्ता को बाध्य करने की शक्ति नहीं थी। राजनीतिक दृष्टि से यह अपनी अस्पष्टता के कारण निरर्थक थी। उदारता और प्रेम को कूटनीतिज्ञ भाषा में परिभाषित नहीं किया जा सकता। पवित्र संघ जार का अपना शौक था और सन् 1825 में जार की मृत्यु के साथ इसका अन्त हो गया। इसका महत्व इस तथ्य में निहित है, इसमें शान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का विचार निहित था। इस विचार को सन् 1899 में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति आन्दोलन के हेग सम्मेलन में अभिव्यक्ति मिली।

चतुर्मुखी राष्ट्र संघ अथवा यूरोपीय संहति (Quadruple Alliance or Concert of Alliance)—विएना काँग्रेस की सामूहिक सन्धि के उपरान्त यूरोपीय कूटनीतिज्ञों के समक्ष शान्ति और व्यवस्था बनाये रखना सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय था। यूरोपीय संहति अथवा यूरोप की संयुक्त व्यवस्था का विचार सर्वप्रथम सन् 1791 में आस्ट्रिया के तत्कालीन चान्सलर काउन्ट खूनित (Count Khunitz) ने दिया था। सन् 1804 में जार ने इस प्रकार के प्रस्ताव की पुनरावृत्ति की थी। मार्च, 1814 में चौमोण्ट के स्थान पर रूस, प्रशा, आस्ट्रिया एवं इंगलैण्ड के मध्य सन्धि में इस विचार को अभिव्यक्ति मिली। चारों मुख्य शक्तियों ने विएना काँग्रेस के समय यूरोप की राजनीतिक प्रणाली को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया था। विएना काँग्रेस ने विजय को पुष्ट किया और जहाँ तक सम्भव हुआ, क्रान्ति से पूर्व की स्थितियों को पुनर्स्थापित किया। पवित्र संघ भी ईसाई धर्मावलम्बी राजाओं के मध्य नैतिक समझौते की अपेक्षा कुछ नहीं था। इसके क्रियान्वयन के लिए इसके पीछे कोई शक्ति नहीं थी। यूरोप की चार प्रमुख शक्तियाँ, उस समय तक सन्तुष्ट नहीं थी, जब तक उनको विएना के निष्कर्षों को स्थायित्व प्रदान करने वाला कोई सार्थक उपाय नहीं मिल जाता। विएना की व्यवस्थाओं

को सुरक्षित करने के उद्देश्य से चतुर्मुखी राष्ट्र संघ गठित करके पूर्वापेक्षा अधिक सकारात्मक एवं व्यावहारिक नीति का अनुसरण किया। 20 नवम्बर, 1815 को रूस, प्रशा, आस्ट्रिया और इंग्लैण्ड ने चतुर्मुखी राष्ट्र संघ (Quadruple Alliance) का गठन किया। इसके द्वारा चारों शक्तियों ने फ्रान्स के साथ सन्धियों को बनाये रखने एवं अब एकत्रित चारों शक्तियों ने विश्व के कल्याण के लिए घनिष्ठ सम्बन्धों के सुदृढ़ीकरण के लिए स्वयं को बाध्य किया। क्षेत्रीय व्यवस्थाओं को बनाये रखने एवं फ्रान्स के सिंहासन को बोनापार्ट के वंश से अलग रखने के लिए 20 वर्षीय संकल्प किया गया था। ये शक्तियाँ निश्चित अवधि पर संयुक्त सम्मेलन आयोजित करने और इस सम्मेलन में समान हित के विषयों पर विचार- विमर्श करने एवं जो कुछ भी यूरोप की शान्ति और समृद्धि के लिए सर्वाधिक हितकर होगा, पर निर्णय करने के लिए सहमत हो गयी। निश्चित अवधि पर संयुक्त सम्मेलन के उपरान्त 'यूरोपीय संहति अथवा संयुक्त व्यवस्था' (Concert of Europe) का आविर्भाव हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने ढंग का यह पहला प्रयास था। इसने 'सम्मेलन द्वारा कूटनीतिज्ञ' (Diplomacy by Conference) प्रणाली का शुभारम्भ किया, जो व्यक्तिगत कूटनीति की पुरानी प्रणाली से हटकर थी।

इसके बाद के वर्ष "सम्मेलनों के युग"(Age of Congresses) के नाम से विख्यात है। अनेक अवसरों पर यूरोपीय संहति अथवा संयुक्त व्यवस्था के सदस्य निर्धारित स्थानों पर सामूहिक विचार-विमर्श के लिए अपेक्षित प्रश्नों पर विचार विमर्श के लिए मिले। इन सम्मेलनों (Congresses) में सर्वाधिक प्रमुख व्यक्ति आस्ट्रिया का चान्सलर मैटरनिख था। उसके कुशल मार्गदर्शन में चतुर्मुखी संघ अथवा यूरोपीय संहति ने यथार्थ में महान् शक्तियों की तानाशाही स्थापित कर दी और उदारवाद का दमन करने के लिए समस्त महाद्वीप का पुलिसीकरण (पुलिस का निर्मम, क्रूर एवं अनियन्त्रित शासन) करने के लिए अधिकृत कर दिया। इस प्रकार यूरोपीय संहति का राष्ट्रीयता एवं लोकतन्त्र की नवोदित शक्तियों के साथ भीषण संघर्ष आरम्भ हो गया। यह मैटरनिख का सहायक बन गया और अन्तर्राष्ट्रवाद राष्ट्रीय हित का मात्र मुखौटा बन गया। यूरोपीय संहति के चार सम्मेलन : (1) एक्स ला शापेल सम्मेलन (सन् 1818), (2) ट्रोप्पऊ सम्मेलन (सन् 1820), (3) लायबाख सम्मेलन (सन् 1821), एवं वैरोना सम्मेलन (सन् 1822) हुए और सन् 1823 में यूरोप संहति अथवा संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) का विघटन हो गया।

एक्स ला शापेल सम्मेलन (Aix-la-Chappelle Conference) (1818) यूरोप संहति की गतिविधि एवं उदारवाद की क्रियाशीलता—यूरोपीय संहति द्वारा आयोजित पहला सम्मेलन सन् 1818 में एक्स ला शापेल में हुआ। इसी स्थान पर नैपोलियन ने यूरोप के कल्याण के लिए अपनी योजना प्रस्तुत की थी। इस सम्मेलन के विषय में मैटरनिख ने कहा था कि मैंने कभी भी अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर छोटा सम्मेलन नहीं देखा था। यह सम्मेलन इस प्रणाली का चरमोत्कर्ष था, जिसके द्वारा मित्र शक्तियों ने महाद्वीपीय राज्यों पर संयुक्त नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास किया था। इस सम्मेलन की यूरोप की सर्वोच्च परिषद् के रूप में मान्यता थी और इसने समस्त प्रकार के विवादों की अपील को स्वीकार किया था।

सम्मेलन के समक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न फ्रान्स का था। फ्रान्स ने आरोपित क्षतिपूर्ति के रूप में आर्थिक दण्ड का भुगतान कर दिया था, इस कारण फ्रान्स की भूमि से

तत्काल मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ हटाने का निर्देश दिया गया। फ्रान्स को सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किया गया था और फ्रान्स का प्रतिनिधित्व रिशेल्यू ने किया था। फ्रान्सीसी शासक, लुईस अठारहवें ने फ्रान्स को काँग्रेस प्रणाली में सम्मेलन में सम्मिलित करने का अनुरोध किया। फ्रान्स के प्रवेश पर शक्तियों में परस्पर मतभेद था। रूस ने प्रस्ताव रखा कि पवित्र संघ में निहित सिद्धान्तों का पालन किया जाये। इसके विपरीत इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया ने विचार व्यक्त किया कि फ्रान्स को चारों शक्तियों के साथ सन्धि करने के उपरान्त ही चतुर्मुखी संघ में प्रवेश दिया जाये। फ्रान्स का इतना अधिक अविश्वास था कि चतुर्मुखी संघ के प्रत्येक सदस्य के साथ पृथक्-पृथक् सन्धि फ्रान्स के सम्भावित दुर्व्यव्हार के विरुद्ध सुरक्षा के रूप में की गयी। जार अलेक्जेण्डर को प्रसन्न करने के लिए एक उच्च आदर्शों वाला वक्तव्य जारी किया गया। इसमें नैतिक, पंचशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों को व्यक्त किया गया था। इसका उद्देश्य जनता के अधिकारों का कठोरता से पालन करना, शान्ति काल की कलाओं की रक्षा करना, राज्य की समृद्धि में वृद्धि करना, धर्म और नैतिकता की संवेदनाओं को जाग्रत करना और न्याय एवं सौहार्द्र का उदाहरण स्थापित करना था।

सम्मेलन ने स्वयं को महाद्वीपीय क्षेत्राधिकार के साथ उच्च न्यायालय के रूप में परिवर्तित कर लिया। सम्मेलन ने मोनाको के शासक को कुशासन के लिए फटकार लगायी और प्रशासनिक प्रणाली में सुधार करने के लिए आदेश दिया। बावेरिया की क्षेत्रीय महत्वाकांक्षा को अवरुद्ध किया और स्वीडेन के राजा बर्नाडोटे से स्पष्टीकरण माँगा कि उसने नार्वे और डेनमार्क के साथ सन्धि के अनुसार अधिकारों की उपेक्षा क्यों की। हैस (Hcssc) के ऐलक्टर ने सम्मेलन से निवेदन किया कि उसको राजा की उपाधि ग्रहण करने की अनुमति दी जाये जो अस्वीकार कर दिया गया। सम्मेलन ने बेदन के डची के विवादग्रस्त उत्तराधिकार के प्रश्न पर भी विचार किया। रूस और आस्ट्रिया में यहूदी नागरिकों की स्थिति पर भी विचार किया गया। अनेक उपलब्धियों के उपरान्त सम्मेलन में प्रमुख शक्तियों के विरोधी हितों एवं परस्पर ईर्ष्या एवं द्वेष के कारण मतभेद उत्पन्न हो गये।

दक्षिण अमेरिका स्थित स्पेन के विद्रोही उपनिवेशों के साथ इंग्लैण्ड का विशाल स्तर पर फ्रान्स की क्रान्ति के समय से व्यापार चल रहा था और ब्रिटेन ने वहाँ पूँजी निवेश भी किया था। ब्रिटेन के विदेशमंत्री कैसरले ने विद्रोही उपनिवेशों को स्पेन के अधीन लाने अथवा स्पेन और विद्रोही उपनिवेशों के मध्य मध्यस्थता करने के किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार करने से मना कर दिया। उसका विचार था कि किसी भी प्रस्ताव के आने से पूर्व उन उपनिवेशों में ब्रिटिश हितों की सुरक्षा की जाये। कैसरले ने क्रूर समुद्री दस्युओं के विरुद्ध संयुक्त कार्यवाही करने से, इस आशंका से कि रूस के जलपोत भूमध्य सागर में सहज ही प्रवेश करके अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेंगे, मना कर दिया। भूमध्य सागर में क्रूर दस्युओं का आतंक था। रूस ने संयुक्त कार्यवाही का प्रस्ताव रखा था। समुद्री दस्यु ब्रिटेन का सम्मान करते थे, इस कारण उसके हित सुरक्षित थे। किसी भी विषय में कोई कार्यवाही नहीं की गयी।

एक्स ला शापेल में प्रमुख शक्तियों के मतभेद छोटे थे, लेकिन स्पष्ट दृष्टिगत होते थे। अगले सम्मेलन तक यह मतभेद बहुत बढ़ गये। सन् 1820 में स्पेन में सैनिक क्रान्ति आरम्भ हो गयी, जिसने राजा फर्डीनेण्ड सप्तम को सन् 1812 में निर्मित विख्यात लोकतान्त्रिक संविधान स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। संविधान स्पेन में नैपोलियन के विरुद्ध हुए

विद्रोह का प्रतीक था। इस समाचार से जार भयभीत हो गया। वह लोकतन्त्र से घृणा करता था और उसको भय था कि इस प्रकार के आन्दोलनों का अन्य स्थानों पर प्रसार होगा तो कोई भी शासक सुरक्षित नहीं रहेगा। स्पेन की स्थिति संकटपूर्ण हो गयी और फर्डीनेन्ड सप्तम ने विवश होकर सन् 1812 का संविधान प्रवृत्त कर दिया। प्रश्न था, क्या प्रमुख शक्तियाँ किसी देश के आन्तरिक विषयों में, केवल इस आधार पर कि उस देश में यथास्थिति को विचलित कर दिया गया था, हस्तक्षेप करने के लिए अधिकृत थीं। यूरोपीय संहति का वास्तविक उद्देश्य यूरोपीय राज्यों के बाह्य और आन्तरिक विषयों को नियन्त्रित करना था। इंग्लैण्ड इस नीति का कट्टर विरोधी था और उसने अन्य शक्तियों के इस नये कार्य का विरोध किया। ब्रिटेन का दृढ़ विचार था कि वह अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के सामान्य सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं था। यदि कभी किसी देश में आपातकालीन स्थिति उत्पन्न होती है, वह अलग से हस्तक्षेप के प्रश्न पर विचार करने के लिए तैयार था। प्रमुख शक्तियों द्वारा प्रस्तावित विचार कि "स्थापित व्यवस्था को, बिना किसी विचार के किस सीमा तक सत्ता का दुरुपयोग किया गया, समर्थन देने के उद्देश्य से" मित्र राष्ट्रों की सामूहिक शक्ति को प्रयुक्त किया जाये, को ब्रिटेन ने स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। स्पेन के विषय में जार ने अन्य शक्तियों का आह्वान करते हुए विज्ञप्ति जारी की, कि सम्मेलन आयोजित किया जाये और स्पेन के विद्रोह का दमन करने के लिए मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेना भेजकर स्पेन के राजा के नाम पर उस देश के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप किया जाये। इंग्लैण्ड के विदेशमन्त्री कैसरले ने इस प्रस्ताव का स्पष्ट विरोध करते हुए घोषणा की कि स्पेन में उत्पन्न स्थिति चतुर्मुखी संघ (Quadruple Alliance) के क्षेत्राधिकार के पूर्ण रूप से बाहर थी। चतुर्मुखी संघ का कभी भी अन्य राज्यों के आन्तरिक विषयों पर निगरानी रखने के लिए संघ बनाने का अभिप्राय नहीं था। इसका उद्देश्य यूरोप के प्रत्येक कोने में क्रान्तिकारी आन्दोलनों के गुणों पर विचार किये बिना उनका दमन करना नहीं था। कैसरले ने कहा, इंग्लैण्ड ने स्वयं को विएना काँग्रेस के क्षेत्रीय प्रवन्धों को बनाये रखने और नैपोलियन अथवा उसके वंशजों की वापिसी रोकने तक ही वाध्य किया था। उसने आगे कहा कि इंग्लैण्ड में वर्तमान राजवंश एवं संविधान (इंग्लैण्ड में कोई लिखित संविधान नहीं है) आन्तरिक क्रान्ति का ही परिणाम है। अस्तु इंग्लैण्ड का स्पेन में क्रान्ति का शक्ति द्वारा दमन करने की स्वीकृति देना न्यायोचित नहीं होगा। इंग्लैण्ड ने अन्य देशों के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करने की नीति को सुदृढ़ किया। मैटरनिख यद्यपि क्रान्ति से भयभीत था, लेकिन यह भी नहीं चाहता था कि रूस पश्चिमी यूरोप में सैन्य शक्ति का प्रदर्शन करे, अस्तु उसने कैसरले का समर्थन किया।

कुछ समय बाद पुर्तगाल, नेपल्स और पीडमोण्ट ने स्पेन की क्रान्ति का अनुसरण किया। प्रत्येक देश में तत्कालीन सरकार को अपदस्थ कर दिया गया और स्पेन में सन् 1812 में निर्मित संविधान के अनुरूप संविधान ग्रहण किया गया। नेपल्स और पीडमोण्ट की क्रान्तियों ने प्रत्यक्ष रूप से इटली में आस्ट्रिया के प्रभुत्व को चुनौती दी। इससे मैटरनिख कुछ चिन्तित हो गया। उसने अपना स्वर बदला और जार अलेक्जेण्डर द्वारा सम्मेलन आयोजित करने के आह्वान का समर्थन किया।

नेपल्स में विद्रोह और रूस-आस्ट्रिया सन्धि—स्पेन के अनुरूप इटली स्थित नेपल्स में भी आकस्मिक ढंग से सैनिक विद्रोह आरम्भ हो गया। इस विद्रोह का किसी को पूर्वानुमान नहीं था। स्पेन के शासक का अनुसरण करते हुए नेपल्स के राजा फर्डीनेण्ड प्रथम ने 1812

के उदारवादी संविधान को प्रवृत्त किया। आस्ट्रिया के चान्सलर मैटरनिख़ को गहरा आघात पहुँचा। क्रान्तिकारियों की गुप्त संस्था कारबोनारियों के सदस्यों को कारागृह में डाल दिया गया। लेकिन सिसली के द्वीपों में नेपल्स राज्य के विरुद्ध विद्रोह आरम्भ हो गया। ये विद्रोह आस्ट्रिया विरोधी थे। मैटरनिख इस क्रान्ति का पूर्णरूप से दमन करना चाहता था। अन्यथा उसको इस क्रान्ति के जर्मनी एवं आस्ट्रिया में फैलने की आशंका थी। ब्रिटिश विदेशमन्त्री लार्ड कैसरले इटली में आस्ट्रिया के आधिपत्य को मान्यता दे चुका था। कैसरले के अनुसार आस्ट्रिया के नेपल्स में हस्तक्षेप के दो कारण थे। इटली में आस्ट्रिया के विशेष हित दाँव पर थे। आस्ट्रिया साम्राज्य के अधिकृत क्षेत्र लोम्बार्डी और वेनेशिया को भी क्रान्ति के कारण खतरा था। हैप्सबर्ग वंशजों के द्वारा शासित पर्मा, मोडेना और टुसौनी की भी यही स्थिति थी। इसके अतिरिक्त नेपल्स के शासक और आस्ट्रिया के मध्य सन्धि हो चुकी थी। सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया नेपल्स की सहायता के लिए बाध्य था। आस्ट्रिया ने नेपल्स में क्रान्ति का दमन कर दिया था। अस्तु आस्ट्रिया इटली के अधिकृत क्षेत्रों में समयोचित कार्यवाही करने के लिए स्वतन्त्र था। कैसरले ने किसी राज्य के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप का सदैव प्रवल विरोध किया। लेकिन रूस का ज़ार अलेक्जेण्डर नेपल्स एवं सिसली में चतुर्मुखी संघ अथवा चतुर्गुट की संयुक्त सेना द्वारा हस्तक्षेप पर बल दे रहा था। मैटरनिख स्वयं को विलग अनुभव कर रहा था। पूर्व में मैटरनिख रूस की कुत्सित भावनाओं से आशंकित रहता था। जार, अलेक्जेण्डर में कोत्जेब्यू (Kotzebue) की हत्या एवं पैट्रोग्रेड में साम्राज्यिक रक्षकों द्वारा सैनिक विद्रोह के कारण आया था। मैटरनिख को किसी महान् शक्ति के सैनिक एवं नैतिक सहयोग की अतीव आवश्यकता थी। अस्तु उसने जार के संयुक्त सेना द्वारा हस्तक्षेप का स्वागत किया। मैटरनिख ने इंग्लैण्ड की अपेक्षा रूस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कूटनीतिक निर्णय लिया। परिणामस्वरूप यूरोप पूर्वीगुट और पश्चिमी गुट में विभाजित हो गया। रूस, आस्ट्रिया और प्रशा तथाकथित पूर्वी गुट के सदस्य थे और इंग्लैण्ड एवं फ्रान्स पश्चिमी गुट के सदस्य थे। रूस और आस्ट्रिया के गठबन्धन के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया के इंग्लैण्ड के साथ सम्बन्ध कटु हो गये। चतुर्मुखी संघ की वास्तविकता का एक प्रकार से अन्त हो गया।

ट्रोप्पयू सम्मेलन (The Congress of Troppau) (सन् 1820)—सन् 1820 के अन्त में ट्रोप्पयू के स्थान पर चतुर्गुट अथवा चतुर्मुखी संघ के सम्मेलन का आयोजन किया गया। इंग्लैण्ड के समर्थन में फ्रान्स ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। आस्ट्रिया एवं रूस के मध्य भविष्य के कूटनीतिक विषयों के आधारस्वरूप "पवित्र संघ सन्धि" के रूप में एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये। पवित्र संघ सन्धि की पुनर्व्याख्या करते हुए मैटरनिख ने समस्त उदारवादी विचारों और सिद्धान्तों को समाप्त कर दिया और इस सन्धि के अन्तर्गत शासकों को अपनी जनता पर पूर्ण नियन्त्रण रखने के लिए अधिकृत करवाया।

इस सम्मेलन में विख्यात ट्रोप्पयू विज्ञप्ति (Troppau Protocol) पारित कर दी गयी। इस विज्ञप्ति ने एक राज्य का अन्य राज्यों के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप को न्यायोचित घोषित कर दिया। विज्ञप्ति में प्रावधान था, राज्य जिनमें क्रान्ति के कारण सरकारों में परिवर्तन हो गया है, जिनके परिणाम अन्य राज्यों को धमकी देते हैं, स्वतः ही यूरोपीय संघ के सदस्य नहीं रहते हैं और इससे अलग रहेंगे, जब तक उनकी स्थिति विधिक व्यवस्था और

स्थायित्व का आश्वासन नहीं देती है। यदि इस प्रकार के परिवर्तनों के कारण अन्य राज्यों को तत्काल संकट का आभास होता है, शक्तियाँ शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा अथवा यदि आवश्यकता होती है, शस्त्रों द्वारा दोषी राज्यों को महान् संघ के वक्षस्थल में वापिस लाने के लिए स्वयं को बाध्य करते हैं। इस प्रकार पूर्वी यूरोप की शक्तियों (रूस, आस्ट्रिया और प्रशा) ने क्रान्ति का दमन करने के दायित्व को मान्यता दी। दायित्व की पूर्ति के लिए प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप भी उचित है। कैसरले ने विचार व्यक्त किया कि विज्ञप्ति को अनिवार्य रूप से अपनी जनता के विरुद्ध राजाओं का संघ माना जाये और इसके कारण क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना थी। कैसरले ने विज्ञप्ति में समाहित हस्तक्षेप के सिद्धान्त का पूरी शक्ति से विरोध किया और ब्रिटिश प्रतिनिधि मण्डल को इस विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर नहीं करने के निर्देश दिये। इस विरोध में यूरोपीय संहति (Concert of Europe) के निकट भविष्य में विघटन के कीटाणु निहित थे। किसिंजर ने इस सम्मेलन के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया है, "ट्रोप्पयू सम्मेलन मैटरनिख की कूटनीतिक कुशलता का उत्कृष्ट उदाहरण है। आस्ट्रिया को युग की सर्वाधिक प्रबल प्रवृत्ति के अनुरूप बनाने के लिए अनिच्छुक अथवा असमर्थ, राष्ट्रवाद और उदारवाद के विरुद्ध संघर्ष की सम्भावना का सामना करते हुए, वह इसको एक आस्ट्रिया के विवाद की अपेक्षा इसे यूरोपीय विवाद बनाने में सफल हो गया। पारिवारिक समझौते एवं संविधानवाद के प्रति अपील द्वारा उसने किसी प्रकार फ्रान्स को एकाकी कर दिया और नपुंसकता की स्थिति तक क्षीण कर दिया। ट्रोप्पयू में फ्रान्सीसी प्रतिनिधि की भूमिका अपेक्षाकृत अधिक दयनीय नहीं हो सकती थी। दूतों के साथ सर्वाधिक मैत्रीपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करते हुए, मैटरनिख ने उनको एक के बाद दूसरे जाल में प्रलोभित किया।

लैबाख सम्मेलन (Congress of Laibach) (सन् 1821)—अगले वर्ष लैबाख में निर्धारित सम्मेलन आयोजित किया गया। इसने इटली में आस्ट्रिया के प्रबल हितों को मान्यता दी। आस्ट्रिया को अपनी सेनाएँ नेपल्स भेजने और वहाँ विद्रोह का दमन करने का निर्देश दिया गया। आस्ट्रिया की सेनाओं ने यह काम सहज ही कर दिया। इटली के उत्तर में स्थित पीडमोन्ट में भी विद्रोह हो गया था। आस्ट्रिया की सेनाओं ने लौटते समय पीडमोन्ट विद्रोह का भी दमन कर दिया। इसमें पुनः पूर्वीगुट ने हस्तक्षेप करने पर बल दिया और ब्रिटेन ने इसका विरोध किया। सम्मेलन की समाप्ति से पूर्व पूर्वी ग्रीस (यूनान) में तुर्की के प्रतिक्रियावादी शासन के विरुद्ध विद्रोह आरम्भ हो गया। कैसरले ने मैटरनिख का सहयोग लेकर रूस द्वारा हस्तक्षेप को रोका।

वैरोना सम्मेलन (Congress of Verona) (सन् 1822)—चौथे और अन्तिम चतुर्मुखी संघ अथवा यूरोपीय संहति का सम्मेलन सन् 1822 में वैरोना में हुआ। विदित है कि यूनानियों (Greeks) ने तुर्की के प्रतिक्रियावादी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। रूस का जार अलेक्जेण्डर, आस्ट्रिया द्वारा नेपल्स एवं पीडमोन्ट में सैनिक कार्यवाही के अनुरूप अकेले ही सैनिक कार्यवाही करना चाहता था। बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया का रूस प्रतिद्वन्द्वी था और मैटरनिख यूनान के विषय में रूस के हस्तक्षेप को रोकने के लिए प्रतिबद्ध था। इंग्लैण्ड भी बाल्कन क्षेत्र में रूस के हस्तक्षेप का प्रबल विरोधी था, अस्तु आस्ट्रिया ने इंग्लैण्ड का समर्थन किया। इन परिस्थितियों में वैरोना सम्मेलन में यूनान के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया।

सन् 1820 में स्पेन में विद्रोह हुआ था और वहाँ के शासक फर्डीनेण्ड सप्तम ने सन् 1812 का संविधान प्रवृत्त कर दिया था। फर्डीनेण्ड सप्तम ने चतुराई से कार्य किया। स्पेन का शासक और फ्रान्स का राजा दोनों बोर्बोन वंश के थे। फर्डीनेण्ड सप्तम ने फ्रान्स के शासक से सैनिक सहायता का निवेदन किया। यह निवेदन एक बोर्बोन शासक की दूसरे बोर्बोन शासक के साथ पुराने बोर्बोन वंश के पारिवारिक समझौते का पुनर्जीवन प्रतीत हुआ। इससे इंग्लैण्ड को आघात पहुँचा। सन् 1822 में इंग्लैण्ड के विख्यात विदेश मन्त्री कैसरले ने आत्म-हत्या कर ली और ब्रिटेन के नये विदेशमन्त्री लार्ड कैनिंग सम्मेलन (काँग्रेस) प्रणाली को प्रतिक्रियावादियों की संस्था मानता था। वैरोना सम्मेलन में फ्रान्स ने स्पेन के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की इच्छा व्यक्त की और प्रमुख शक्तियों से नैतिक समर्थन का आग्रह किया। आस्ट्रिया, रूस, और प्रशा ने फ्रान्स के प्रस्ताव का समर्थन किया लेकिन इंग्लैण्ड ने प्रस्ताव का तीव्र विरोध किया। लार्ड कैनिंग ने ब्रिटिश प्रतिनिधि वैलिंगटन के ड्यूक को निर्देश दिया कि "स्पेन के आन्तरिक विषयों में किसी प्रकार के हस्तक्षेप पर कठोर संयम रखे। ब्रिटेन के हस्तक्षेप नहीं करने के दृष्टिकोण को अन्य शक्तियों ने स्वीकार नहीं किया। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड ने स्वयं को सम्मेलन से अलग कर लिया। इस प्रकार सम्मेलन (काँग्रेस) युग का अन्त हो गया। लार्ड कैनिंग यूरोपीय संहति (Concert of Europe) के विघटन से बहुत प्रसन्न था। कैनिंग का कथन, "प्रत्येक देश अपने लिए और ईश्वर हम सबके लिए"यूरोपीय कूटनीति के लिए कालान्तर में सत्य सिद्ध हुआ। कैनिंग की नीतिं गतिशील, भयमुक्त और उदारवादी थी। कैनिंग ने अपने पूर्वज कैसरले की आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करने की नीति का स्पष्ट रूप से और दृढ़ता के साथ अनुसरण किया। इंग्लैण्ड के विरोध के उपरान्त अन्य शक्तियों का समर्थन प्राप्त करके फ्रान्स की सेना ने स्पेन में प्रवेश किया, जनान्दोलन का क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया और बोर्बोनवंशीय शासक फर्डीनेण्ड सप्तम को पुनर्स्थापित किया, जो निरंकुश शासक बन गया।

चतुर्गुट अथवा चतुर्मुखी संघ के प्रमुख सदस्य इंग्लैण्ड कें अलग हो जाने से यूरोपीय संहति (Concert of Europe) का अस्तित्व समाप्त हो गया। इंग्लैण्ड ने अपनी स्वतन्त्र नीति और कार्य प्रणाली आरम्भ की। स्पेन में फ्रान्सीसी प्रभाव के विस्तार के प्रति इंग्लैण्ड को सर्वाधिक ईर्ष्या थी और आशंका थी कि फ्रान्स स्पेन की दक्षिणी अमेरिका स्थित विद्रोही उपनिवेशों को पुनः प्राप्त करने में सहायता कर सकता था। ऐसी स्थिति में इन उपनिवेशों के साथ इंग्लैण्ड का लाभदायक व्यापार बन्द हो जायेगा। लार्ड कैनिंग ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि यदि फ्रान्स स्पेन पर अपना प्रभुत्व रखना चाहता था, तो स्पेन को अपने दक्षिण अमेरिका स्थित उपनिवेशों से मुक्त हो जाना चाहिए। अस्तु लार्ड कैनिंग ने दक्षिण अमेरिका स्थित स्पेन के उपनिवेशों को स्वतन्त्र राज्यों के रूप में मान्यता दे दी। उसने गर्व के साथ कहा कि "पुराने विश्व के सन्तुलन के समाधान के लिए नये विश्व को अस्तित्व में ले आया।"

कैनिंग को अपने दृष्टिकोण के प्रबल समर्थक के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो मिल गये। मुनरो को भय था कि किसी भी प्रमुख शक्ति के अधिनायकवाद का नये विश्व तक विस्तार का प्रयास अमेरिका की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं के लिए संकट उत्पन्न कर देगा। अस्तु उसने यूरोपीय शक्तियों को अमेरिका के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने एवं इस महाद्वीप में साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से क्षेत्र प्राप्त करने के विरुद्ध चेतावनी देते हुए विख्यात उद्घोषणा की जो इतिहास में 'मुनरो सिद्धान्त' के रूप में प्रसिद्ध

है। राष्ट्रपति मुनरो के प्रबल विरोध एवं लार्ड कैनिंग के सुदृढ़ दृष्टिकोण के कारण आस्ट्रिया के चान्सलर मैटरनिख को अपनी अन्य राज्यों के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की नीति का परित्याग करना पड़ा।

यूरोपीय संहति के असफलता के कारण (Causes of the Failure of the Concert of Europe)—यूरोपीय संहति की असफलता के कारणों के खोजने की आवश्यकता नहीं है। यह संहति किसी अन्य राज्य के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप का सिद्धान्त, रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी, निरंकुश तत्वों, प्राचीन परम्पराओं एवं मान्यताओं का प्रबल समर्थक थी। राष्ट्रवाद, लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था, उदारवाद, प्रगति एवं गतिशीलता का कट्टर विरोधी थी। रूस, प्रशा और आस्ट्रिया इस सिद्धान्त के प्रतिपादक एवं समर्थक थे। इसके विपरीत इंग्लैण्ड, राष्ट्रीयता, उदारवादी एवं लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था का पोषक, इस सिद्धान्त का प्रबल विरोधी था। परिणामस्वरूप चतुर्मुखी संघ सन् 1818 से दो विरोधी खेमों में विभाजित हो गया था।

निरंकुशता और संविधानवाद दो परस्पर विरोधी कभी साथ-साथ नहीं चल सकते। इंग्लैण्ड अपनी संसदीय संस्थाओं के माध्यम से लोकतन्त्रात्मक भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता था और इंग्लैण्ड का यूरोप की रूढ़िवादी निरंकुश शक्तियों के साथ सौहार्द्रपूर्ण ढंग से कार्य करना सम्भव नहीं था। यूरोपीय संहति निरंकुशता को सुरक्षित रखने और लोकतन्त्र एवं राष्ट्रवाद का हर रूप और आकार में दमन करने के लिए एक गुट में परिवर्तित हो गया थी।

यह संघ प्रारम्भ से ही शक्तियों के मध्य एक दूसरे के प्रति कटु ईर्ष्या और द्वेष एवं विरोधी सिद्धान्तों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के उपयोगी अभिकरण के रूप में सन्तोषजनक ढंग से कार्य नहीं कर सका। एक्स ला शापेल के सम्मेलन में दास व्यापार एवं बारबरी समुद्री दस्युओं के उन्मूलन के विषय में शक्तियों के मध्य निजी स्वार्थों के कारण असहमति थी। परिणामस्वरूप इन विषयों पर अन्त तक अपेक्षित निर्णय नहीं हो सका। शक्तियों में परस्पर आन्तरिक सौहार्द्रता एवं सामंजस्य का अभाव था। कुछ समय तक सहयोग का बाह्य प्रदर्शन ही चलता रहा। फ्रान्स द्वारा स्पेन के आन्तरिक विषय में हस्तक्षेप ने ही स्थिति को विकराल बना दिया और यूरोपीय संहति ध्वस्त हो गयी।

इतिहासकारों ने मत व्यक्त किया है कि यूरोपीय संहति (Concert of Europe) नैपोलियन के भीषण युद्धों का उत्पाद थी और इसका मुख्य उद्देश्य सबके समान शत्रु फ्रान्स के विरुद्ध सुरक्षा को सुनिश्चित करना था। फ्रान्स का खतरा समाप्त होते ही शक्तियों में एकता भी समाप्त हो गयी और प्रत्येक शक्ति ने व्यक्तिगत रूप से अपनी कूटनीतिक कुशलता के साथ निर्णय लेने का निश्चय किया।

रूस के जार अलेक्जेण्डर प्रथम और आस्ट्रिया के चान्सलर मैटरनिख के प्रभाव में सम्मेलन (काँग्रेस) प्रणाली यथार्थ में "यूरोप को जंजीरों में बाँधने के लिए एक संघ" अर्थात् जनता की स्वतन्त्रताओं का दमन करने के लिए राजाओं का एक श्रमिक संघ बन गया। संसदीय संस्थाओं वाले इंग्लैण्ड से तीन निरंकुश शक्तियों के साथ सौहार्द्रपूर्ण ढंग से कार्य करने और इनकी प्रतिक्रियावादी नीतियों का समर्थन करने की आशा नहीं की जा सकती। चतुर्मुखी संघ प्रणाली यूरोप के विभिन्न राज्यों में निरंकुश राजतन्त्र स्थापित करना चाहती थी। कैसरले और उसके उत्तराधिकारी लार्ड कैनिंग ने निरंकुश राजतन्त्र एवं अन्य राज्यों के आन्तरिक विषयों में सशस्त्र हस्तक्षेप द्वारा लोकतन्त्रात्मक एवं उदारवादी प्रवृत्तियों के विरोध

का प्रबंल विरोध किया। यद्यपि कैसरले ने सम्मेलनों द्वारा शक्तियों के पुनर्एकीकरण का समर्थन किया था, लेकिन लार्ड कैनिंग तो सम्मेलनों का कटु विरोधी था। वह "प्रत्येक राष्ट्र स्वयं के लिए और ईश्वर हम सबके लिए के सिद्धान्त" का प्रबल समर्थक था।

इसके अतिरिक्त शक्तियों के मध्य व्याप्त परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, मनोमालिन्य एवं प्रतिद्वन्द्विता अपने प्रभाव क्षेत्र एवं अधिकृत क्षेत्र में विस्तार की प्रबल महत्वाकांक्षा, अन्य की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बनने की कामना को समाप्त करना तथा प्रत्येक के विभिन्न हितों में समन्वय स्थापित करना सम्भव नहीं था। प्रत्येक शक्ति का अपना हित क्षेत्र था और अपने हित की सम्पूर्ण शक्ति तथा उत्साह के साथ रक्षा करता था। साथ ही अपने हित क्षेत्र में किसी अन्य शक्ति का हस्तक्षेप स्वीकार्य नहीं था। कोई किसी का स्थायी मित्र नहीं था, कोई किसी का स्थायी शत्रु नहीं था, केवल संकीर्ण हित ही सर्वोपरि थे। त्याग, सहिष्णुता एवं मानव कल्याण जैसे उत्कृष्ट विचारों का सर्वथा अभाव था। परस्पर प्रतिद्वन्द्विता एवं ईर्ष्या ने बारबरी समुद्री दस्यु एवं प्रचलित क्रूर एवं निर्मम दास प्रथा के दमन के लिए सामूहिक कार्यवाही को रोक दिया।

कैटलबी ने यूरोपीय संहति (Concert of Europe) की असफलता के सन्दर्भ में विचार व्यक्त किया है, "ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप नहीं करने के सिद्धान्त का दृढ़ कथन आंशिक रूप से एकाकीपन की नीति की ओर लौटना था और आंशिक रूप से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए दावा था, जिसका सामूहिक कार्यवाही के साथ समन्वय करना सम्भव नहीं था। यह पूर्वी शक्तियों की निरंकुशता के विरुद्ध विरोध था और भूमध्य सागरीय प्रणाली के शक्तिशाली अधिनायकवाद के विरुद्ध कठोर कदम था। इसमें सन्देह है कि इंग्लैण्ड ने कभी भी समान यूरोपीय नीति के विचार के प्रति स्वयं की प्रतिबद्धता व्यक्त की थी। उसके राजनीतिज्ञों ने इसके तार्किक निहितार्थ का पूर्वानुमान नहीं लगाया था जो ट्रोप्पयू की विज्ञप्ति में निहित था। चतुर्मुखी संघ (Quadruple Alliance) कैसरले के लिए फ्रान्स के विरुद्ध चौमोन्ट की सन्धि का पुनर्नवीनीकरण था। यूरोपीय संहति का विघटन शक्तियों के विभिन्न हितों, संवैधानिक दृष्टिकोणों के अशाम्य मतभेदों और राजनीतिक आस्था के किसी सर्वसम्मति स्वीकृति सिद्धान्तों के अभाव के कारण हुआ। शक्तियाँ सहमत थीं कि शक्ति बनाये रखनी चाहिए लेकिन वे उस बिन्दु पर, जिसमें शान्ति को जोखिम में डाल दिया जाये पर सहमत नहीं थीं। वे सामान्य हितों की रक्षा करने के लिए तत्पर थे लेकिन उनके पास फ्रान्स से भय के अतिरिक्त अन्य कोई सामान्य हित नहीं था। वे यह निर्णय नहीं कर सके कि क्या अपने व्यक्तिगत हितों को सामूहिक कार्यवाही में समाहित करना अधिक उचित होगा अथवा प्रभाव के पृथक् क्षेत्र के आधार पर उनका निमग्न होना उचित होगा। परिणाम था कि यूरोपीय संहति शान्ति को बनाये रखने के उद्देश्य से गठित निरंकुशता को बनाये रखने के लिए वैरोना के तीन भद्र पुरुषों के गुट तक संकुचित हो गयी और सामूहिक कार्यवाही को राष्ट्रीय हित के पुराने सिद्धान्त और अस्थायी संघ के लिए त्याग दिया।"

यह शुभ था कि यूरोपीय संहति धराशायी हो गयी। यदि यह चलती रहती, तो यूरोप में राष्ट्रवादी एवं उदारवादी शक्तियों को गहरा आघात लगता। ग्रेट ब्रिटेन ने पहले विरोध करके और बाद में संहति को त्यागकर राष्ट्रवाद और संविधान की महान् सेवा की थी।

ग्रान्ट और टैम्परले ने सम्यक् मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय सरकार के इस पहले गम्भीर प्रयोग को बिना इसके कुछ गुणों का उल्लेख किये नकारना उचित नहीं

है। शासकों के मध्य व्यक्तिगत सम्मेलन और परस्पर विश्वास का विचार उत्कृष्ट था। कैसरले पुनर्गठनों को प्रोत्साहित करने के प्रति निष्ठावान था और मैटरनिख निश्चित बिन्दु तक था। लेकिन अलेक्जेण्डर इतना दूर और बहुत अधिक तेजी से गया कि दोनों पकड़ नहीं सकते थे। सन् 1820 के उपरान्त सम्मेलन (काँग्रेस) प्रणाली यथार्थ में जनता की स्वतन्त्रताओं का दमन करने के लिए राजाओं का एक श्रमिक संघ बन गया। इस प्रणाली की निरन्तरता के लिए संसदीय इंग्लैण्ड सहमति नहीं दे सकता था और संसदीय फ्रान्स ने इसमें अनिच्छा से भाग लिया। तीस के दशक में पुनः यूरोपीय सम्मेलन हुए जिन्होंने बहुत कल्याण किया। यद्यपि महान् शक्तियों ने पुनः नेतृत्व किया। इसमें निरंकुशतावाद के सिद्धान्त को पुनर्जीवित करने, क्रान्ति की निन्दा करने अथवा शक्ति द्वारा हस्तक्षेप करने की सामान्य नीति की घोषणा करने का सामूहिक प्रयास नहीं था। संसदीय इंग्लैण्ड और संसदीय फ्रान्स अब पूर्वी यूरोप के तीन निरंकुश राजतन्त्रों के साथ सम्मेलन में मुक्त रूप से प्रवेश करने के योग्य थे। सम्मेलन जिसने बेल्जियम की स्वतन्त्रता का निर्णय किया, इस तथ्य का उदाहरण है कि किस प्रकार महान् शक्तियाँ बिना किसी परेशानी के मिल सकते हैं और दीर्घकालीन अच्छे परिणाम होते हैं, क्योंकि प्रत्येक ने संस्थाओं और अन्य की कठिनाइयों का सम्मान किया।

संक्षेप में, सम्मेलन (काँग्रेस) प्रणाली असफल हुई, क्योंकि शक्तियाँ राष्ट्रीय हितों का जन-सामान्य के कल्याण के साथ समन्वय स्थापित करने में विफल रहीं।

मैटरनिख (Matternich सन् 1773-1859)—नैपोलियन के पतन में मैटरनिख के निर्देशन में आस्ट्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका थी और उसके उपरान्त उसने आस्ट्रिया के चान्सलर के रूप में आस्ट्रिया की नीति को उत्साही और निश्चित दिशा दी, जिसने उसको बाद में स्वयं नैपोलियन के विजेता के रूप में गर्व करने योग्य बना दिया। सन् 1815 से सन् 1848 तक यूरोपीय राजनीतिक क्षितिज पर उसका निर्विवाद प्रभुत्व रहा। इतिहास में यह अवधि मैटरनिख युग के रूप में विख्यात है। हेजन ने विचार व्यक्त किया है, "वह सर्वाधिक विख्यात राजनीतिज्ञ था। वह केवल आस्ट्रिया और जर्मनी की राजनीति का ही नहीं वरन् यूरोपीय कूटनीति का केन्द्र-बिन्दु था। वह उन्नीसवीं सदी में आस्ट्रिया में उत्पन्न सर्वाधिक विख्यात राजनीतिज्ञ था।

काउन्स क्लीमेंस वान मैटरनिख (Count Clemens Von Mattternich) का जन्म 15 मई, 1773 को कोब्लेंग (Cobleng) नगर में राइन नदी घाटी में स्थित आस्ट्रिया की राजनयिक सेवा में कार्यरत उच्च पदाधिकारी के परिवार में हुआ था। उसका पिता तीन छोटे जर्मन राज्यों में राजदूत था। मैटरनिख ने स्ट्रासबर्ग तथा मेंज विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी और इसी अवधि में उसने फ्रान्स की क्रान्ति के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। फ्रान्स की क्रान्ति में जैकोबिन दल की गतिविधियों ने उसको क्रान्ति विरोधी बना दिया। स्ट्रासबर्ग विश्वविद्यालय के युवा विद्यार्थी के रूप में उसनें जन समूह की फ्रान्स की क्रान्ति के सूत्रपात से सम्बन्धित उग्र एवं हिंसात्मक गतिवधियों को देखा था। इन सबने उसके हदय में जीवन-पर्यन्त के लिए राजनीतिक नवीनता के प्रति घृणा का भाव भर दिया था। सन् 1795 में मैटरनिख का विवाह आस्ट्रिया के तत्कालीन चान्सलर कानिज की पौत्री के साथ हो गया। परिणामस्वरूप उसकी प्रतिष्ठा में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। सन् 1801 से सन् 1806 की अवधि में उसने मध्य यूरोप के अनेक देशों में राजदूत के रूप में कार्य किया। सन् 1809 में आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस प्रथम ने मैटरनिख को प्रधानमन्त्री (चान्सलर) नियुक्त किया और उसने

सन् 1848 तक इस पद पर कार्य किया और अपनी कुशल कूटनीतिज्ञता से आस्ट्रिया के हितों की रक्षा की।

मैटरनिख एक उच्च पदीय व्यक्ति, धनी, परिष्कृत, साहित्यिक और वैज्ञानिक आत्म-प्रदर्शन के साथ सामाजिक उपलब्धियों का मिश्रण, उसके अवगुण सर्वत्र विद्यमान थे। वह कूटनीतिज्ञों का राजा था, यूरोपीय राजनीति के समस्त षड्यन्त्रों के मध्य पर्याप्त सहज था। उसका अहंभाव शानदार था। उसने स्वयं के विषय में कहा, जैसे वह यूरोपीय समाज की पतनोन्मुख संरचना को उठाने के लिए हुआ है। उसने प्रायः समस्त विश्व अपने कन्धों पर टिका हुआ अनुभव किया। वह कहता है, "मेरी स्थिति में यह विशिष्टता है कि समस्त आँखें, समस्त आकांक्षाएँ केवल उस बिन्दु की दिशा में हैं, जहाँ मैं होता हूँ।" वह प्रश्न करता है। लाखों व्यक्तियों के मध्य मुझे ही क्यों सोचना चाहिए, जब अन्य नहीं सोचते हैं, कार्य करना चाहिए जब अन्य कार्य नहीं करते हैं, और लिखना चाहिए, क्यों कि अन्य नहीं जानते हैं, कैसे लिखा जाये।" उसने अपने क्रियाशील जीवन के अन्त में स्वीकार किया कि वह शाश्वत कानून के मार्ग से भटका नहीं कि "उसके मस्तिष्क ने कभी कोई गलती नहीं की।" उसने अनुभव किया और कहा कि अपने जाने के बाद वह रिक्त स्थान छोड़ जायेगा।

यद्यपि विश्लेषण से ज्ञात होता है उसका चिन्तन पूर्णरूप से नकारात्मक था। चिन्तन फ्रान्स की क्रान्ति के प्रति उसकी घृणा से परिपूर्ण था। इस शब्द क्रान्ति में सम्मिलित हर चीज का उसने जीवनपर्यन्त विरोध किया। उसने उसकी उग्र एवं सनसनीखेज शब्दों में निन्दा की। "यह रोग था जिसका उपचार होना चाहिए, ज्वालामुखी है जिसको बुझाना चाहिए, घेंघा है जिसको गर्म लोहे से जला देना चाहिए, सामाजिक व्यवस्था को निगलने के लिए खुले जबड़े का सर्प है।" वह निरंकुश राजतन्त्र में विश्वास करता था और उसका समर्थन करने में स्वयं को "ईश्वर का स्थानापन्न" मानता था। वह संसद और सरकार की प्रतिनिधि प्रणाली से घृणा करता था। स्वतन्त्रता, समानता और संविधान सम्बन्धी समस्त चर्चा को घातक, फ्रान्स के क्रान्तिकारी मस्तिष्कों की घृणास्पद चट्टान मानता था। वह स्वयं को यथास्थिति वाले व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता था। चीजों को वैसा ही रखो जैसी वे हैं, समस्त नवीन शुभारम्भ पागलपन है। वह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए समस्त संघर्षों, स्व-शासन की समस्त आकांक्षाओं का कट्टर विरोधी था, वह किसी प्रकार के सुधार का विरोध करता था। उसका विचार था लोकतन्त्र केवल दिन के प्रकाश को सर्वाधिक अंधेरी रात में बदल सकता है। ऐसा व्यक्ति था, जो यूरोपीय मंच के केन्द्र में नैपोलियन का उत्तराधिकारी था।

मैटरनिख ने प्रतिक्रिया के सबसे निकृष्ट रूप का प्रतिनिधित्व किया। लोकतन्त्र, राष्ट्रीयता और उदारवाद का दमन करने एवं निरंकुश राजतन्त्र की स्थिति को बनाये रखने के लिए अन्य राज्यों के आन्तरिक विषयों में सशस्त्र हस्तक्षेप करने का प्रबल समर्थक था। उल्लेखनीय है कि मैटरनिख के कठोरतम रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी बनने के लिए आस्ट्रिया की परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं। वह आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री था और आस्ट्रिया साम्राज्य के हित उसकी नीति निर्धारित करते थे। ये साम्राज्य अनेक राज्यों और विभिन्न जातियों के निवासियों का विचित्र मिश्रण था। अनेक राष्ट्रीयताओं को साथ-साथ बनाये रखने के लिए उन सबकी केवल एक शासक के प्रति निष्ठा आवश्यक थी। यदि उग्र राष्ट्रवादी सिद्धान्तों को अपने विध्वंसात्मक प्रभाव के साथ कार्य करने की अनुमति दी जाती तो इस

शिथिल विशाल साम्राज्य का अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विघटन निश्चित था। अस्तु उसने उदारवादी एवं राष्ट्रवादी विद्रोहों का यूरोप के किसी भी भाग में क्रूरता के साथ दमन किया जिससे उनके विषाक्त कीटाणु आस्ट्रिया की अधिकृत सीमाओं तक नहीं पहुँच जायें। उसकी प्रतिक्रियावादी नीति के पीछे आस्ट्रिया साम्राज्य को सुरक्षित रखने का दृढ़ संकल्प निहित था।

गृह-राज्य आस्ट्रिया—विशाल आस्ट्रिया साम्राज्य में जर्मन और मैग्यार दो प्रमुख जातियाँ थीं। हंगरी में मैग्यार वंशजों का बाहुल्य था। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया और हंगरी में स्लाविक जाति की अनेक शाखाएँ थीं। पूर्वी हंगरी में पूर्णतया भिन्न रूमानियावासी थे।

लगभग तीन करोड़ जनसंख्या वाले विशाल साम्राज्य पर शासन कठिन कार्य था। मैटरनिख और आस्ट्रिया के शासक फ्रान्सिस ने नीति सुधार के लिए समस्त माँगों का विरोध किया और वे यथास्थिति बनाये रखने और विश्व को स्थिर रखने के प्रबल समर्थक थे। समाज अनेक वर्गों में विभाजित था। इनमें कुलीन वर्ग सबसे उच्च विशेषाधिकृत वर्ग था। इस वर्ग के व्यक्ति अनिवार्य सैन्य सेवा एवं करों के भुगतान से मुक्त थे। राज्य में सर्वोच्च पदों पर इनका स्वामित्व था। भूमि के बहुत बड़े भाग पर उनका नियन्त्रण था और बहुत बड़ी मात्रा में भू-राजस्व प्राप्त होता था। इसके विपरीत कृषक वर्ग था, जिनका बाहुल्य था, लेकिन उनकी स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। उनके ऊपर करों का भारी बोझ था। सरकार में निरंकुशता, समाज में सामन्तवाद, कुछ निकटस्थ व्यक्तियों के लिए विशेषाधिकार, जनसमुदाय के लिए दमन और कष्ट एवं पीड़ा सन् 1815 में यह आस्ट्रिया की स्थिति थी।

पुलिस प्रणाली—सरकार का निश्चित उद्देश्य यथास्थिति बनाये रखने का था और मैटरनिख के नेतृत्व में 33 वर्ष तक यथास्थिति बनाये रखने में सफल रहा। फ्रान्सिस के शासन काल में (सन् 1835) तक और फर्डीनेण्ड प्रथम (सन् 1835-1848) तक मैटरनिख ही प्रधानमन्त्री रहा। मानव स्वभाव एवं आधुनिक भावना एवं चेतना के विरुद्ध संघर्ष में उसकी प्रशासनिक व्यवस्था, हस्तक्षेप करने वाली पुलिस, व्यापक गुप्तचर प्रणाली और विचारों पर सतर्क नियन्त्रण पर आधारित थी। थियेटर, समाचार-पत्र और पुस्तकों पर पूर्ण नियन्त्रण था। सीमाओं पर विशेष निगरानी थी, जिससे उदारवाद, लोकतन्त्र एवं राष्ट्रवाद से सम्बन्धित विदेशी पुस्तकें देश की जनता को भ्रष्ट करने के लिए प्रवेश नहीं कर सकें। राजनीति शास्त्र और इतिहास, अध्ययन के विषय के रूप में व्यावहारिक दृष्टि से अदृश्य हो गये थे। सरकारी कार्यालयों, मनोरंजन स्थलों एवं शैक्षणिक संस्थाओं में गुप्तचर कार्यरत थे। यह सरकार विशेष रूप से विचारों से भयभीत थी, अस्तु विश्वविद्यालयों, विचारों के उद्गम क्षेत्र से भी भयभीत थी। प्रोफेसर और विद्यार्थियों दोनों पर ही अपमानजनक प्रतिबन्ध थे। गुप्तचर भाषणों में भी भाग लेते थे। प्रत्येक प्रोफेसर को विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से ले जाने वाली समस्त पुस्तकों की सूची देना अनिवार्य था। पाठ्य पुस्तकें सरकार द्वारा स्वीकृत की जाती थीं। विद्यार्थी न तो विदेशों में अध्ययन कर सकते थे और न अपनी इच्छानुसार सामाजिक संस्थाओं का गठन कर सकते थे। आस्ट्रियावासी बिना सरकार की अनुमति के विदेशों की यात्रा नहीं कर सकते थे और यह अनुमति शायद ही कभी दी जाती थी। आस्ट्रिया को यूरोप के उदारवादी विचारों के विरुद्ध जहाँ तक सम्भव था, वायुरुद्ध की तरह चारों ओर से बन्द कर दिया गया था। कार्लमार्क्स ने विचार व्यक्त किया, "सीमा के चारों ओर जहाँ

कहीं आस्ट्रिया की सीमा सभ्य देश को स्पर्श करती थी, किसी विदेशी पुस्तक अथवा समाचार-पत्र को आस्ट्रिया में प्रवेश से रोकने के लिए साहित्यिक नियन्त्रण की घेराबन्दी स्थापित की गयी। पुस्तक अथवा समाचार-पत्र को प्रवेश से पूर्व दो अथवा तीन बार अच्छी तरह देख लिया जाता था कि युग की दूषित भावना के कीटाणु से लेशमात्र भी संक्रमित नहीं वरन् विशुद्ध थी। इसका मूल्य बौद्धिक स्थिरता से चुकाना पड़ा था। इस प्रकार की प्रणाली के क्रियान्वयन से हर क्षण और बिन्दु पर सतर्क रहना पड़ता था। आस्ट्रिया की इस व्यवस्था की सर्वाधिक सुरक्षा इस व्यवस्था के अन्य देशों तक विस्तार में निहित थी। मैटरनिख ने दृढ़तापूर्वक इस व्यवस्था को अपने देश में स्थापित करने के उपरान्त अपने चारों ओर के देशों विशेष रूप से जर्मनी ओर इटली में बड़ी कुशलता के साथ स्थापित करने का प्रयास किया। मैटरनिख को सन् 1820 में अपने इतने कठोर उपायों के उपरान्त स्वीकार करना पड़ा था कि जनमत पूर्णरूप से रोगग्रस्त था। पेरिस, बर्लिन और लन्दन, समस्त जर्मनी और इटली के साथ-साथ रूस और अमेरिका की तरह विएना में भी हमारी विजयों का अनेक अपराधों के रूप में, हमारी अनेक जीतों को अनेक त्रुटियों के रूप में और परियोजनाओं का अनेक भूलों के रूप में मूल्यांकन किया जाता है।"

नैपोलियन बोनापार्ट आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग राजवंश से सम्बन्धित था, परिणामस्वरूप मैटरनिख के लिए उसके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही करना सम्भव नहीं था। इसी प्रकार मैटरनिख रूस का भी पूर्णरूप से पतन नहीं चाहता था। रूस का पतन यूरोप में शक्ति सन्तुलन को अस्त-व्यस्त कर सकता था। सन् 1807 में रूस और नैपोलियन दोनों मित्र बन गये थे। मैटरनिख की दो महान् सम्मोहक बाधाएँ राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के प्रति घृणा एवं रूस का भय था।

सन् 1810 और सन् 1813 के मध्य मैटरनिख ने कूटनीतिज्ञ कुशलता के साथ रूस और नैपोलियन के मध्य परस्पर द्वेष, प्रतिद्वन्द्विता एवं घृणा को प्रोत्साहित किया। जब सन् 1812 में नैपोलियन ने रूस पर आक्रमण किया, मैटरनिख ने नैपोलियन को सैनिक सहायता का वचन दिया था। साथ ही उसने रूस के जार अलेक्जेण्डर प्रथम को आश्वस्त किया कि आस्ट्रिया की सेना का उसके विरुद्ध प्रयोग नहीं किया जायेगा। मैटरनिख ने आस्ट्रिया की राजकुमारी मैरी लूसी का नैपोलियन के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। यह विवाह अप्रैल, 1810 में हुआ था। सन् 1813 में नैपोलियन को आस्ट्रिया साम्राज्य का वंशानुगत राजकुमार बना दिया गया।

नैपोलियन के रूस विजय अभियान में पराजय के बाद जार अलेक्जेण्डर प्रथम का मस्तिष्क अधिकाधिक रहस्यवादी हो गया। जार ने यूरोप के समस्त शासकों को ईसाई धर्म के पवित्र आदर्शों, न्याय और शान्ति के अनुरूप परिवर्तित करने का विचार किया। जार की उच्च स्वर से स्वतन्त्रता और प्रबुद्धता अथवा ज्ञानोदय के प्रति पूर्ण समर्पण की अभिव्यक्ति ने रूढ़िवादियों विशेष रूप से मैटरनिख को भयभीत कर दिया। रूढ़िवादियों को सन्देह हुआ कि अपने प्रभुत्व का समस्त यूरोप तक विस्तार करने के लिए जार षड्यन्त्र रच रहा था। जार पर हर जगह जैकोबिन के साथ षड्यन्त्र रचने का दोषारोपण किया गया। उसका उद्देश्य सर्वशक्तिशाली फ्रान्स के स्थान पर सर्वशक्तिशाली रूस की प्रतिस्थापना करना था। मैटरनिख

को भय था कि समस्त यूरोप पर जार अलेक्जेण्डर प्रथम की सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए जैकोबिन प्रेरित अनेक क्रान्तियाँ हो सकती थीं। इसी आशंका से मैटरनिख ने नैपोलियन की पराजय की स्थिति में बहुत ही उदार एवं सह्रदय शर्तों का प्रस्ताव रखा था और एक समय मैटरनिख नैपोलियन को हैप्सबर्ग राजतन्त्र की सुरक्षा और पूर्ण स्वामित्व के अधीन फ्रान्स के सम्राट के रूप में पुनर्स्थापित करने के लिए तत्पर था।

मैटरनिख एवं विएना काँग्रेस (सम्मेलन)—इस सम्मेलन में मैटरनिख सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति था। उसके कुशल कूटनीतिज्ञ प्रयासों के परिणामस्वरूप यूरोप के नेतृत्व का दायित्व फ्रान्स से आस्ट्रिया स्थानान्तरित हो गया था। उसने सुदूर स्थित नीदरलैण्ड देने के बदले में इटली के अत्यधिक धनी, सम्पन्न एवं सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र प्राप्त किये। उसने हैप्सबर्ग राजवंश के सदस्यों को पर्मा, मोडेना और टस्कैनी के सिंहासनों पर सिंहासनारूढ़ किया। इस प्रकार उसने इटली पर प्रभावशाली नियन्त्रण प्राप्त किया।

मैटरनिख यूरोप में यथास्थिति बनाये रखने का प्रबल समर्थक था। वह विएना में लिए गये निर्णयों को स्थायी बनाना चाहता था। इसी कारण रूस, प्रशा और इंग्लैण्ड के साथ चतुर्गुट अथवा चतुर्मुखी संघ (Quadruple Appliance) का गठन किया। सन् 1820 में ट्रोप्पयू में आयोजित सम्मेलन में मैटरनिख अपनी कूटनीतिज्ञ कुशलता से इंग्लैण्ड के कटु विरोध के उपरान्त ट्रोप्पयू विज्ञप्ति पारित करवाने में सफल हो गया। इस विज्ञप्ति के अनुसार यूरोपीय शक्तियों को अन्य राज्यों के आन्तरिक विषयों में, जहाँ विद्रोह हो गये और उनसे अन्य राज्यों को खतरा है, हस्तक्षेप करने का अधिकार मिल गयाा। विज्ञप्ति ने मैटरनिख को समस्त यूरोप को पुलिसीकृत करने और उदारवाद एवं राष्ट्रवाद, जहाँ कहीं इसने सिर उठाया, का दमन करने में सक्षम बना दिया। इसी नीति का अनुसरण करते हुए मैटरनिख ने नेपल्स और पीडमोन्ट के विद्रोह का दमन किया था। मैटरनिख जो कुछ चाहता था, प्राप्त कर लिया था। हजारों लोग बन्दी बनाये गये अथवा निष्कासित किये गये अथवा मृत्यु दण्ड के शिकार हुए। निकृष्ट कोटि की निरंकुश सरकार स्थापित हो गयी थी। इन परिणामों से मैटरनिख स्वयं प्रसन्न था।

मैटरनिख और जर्मनी—जर्मनी के भविष्य में गठन से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण समस्या विएना काँग्रेस के समक्ष थी। नैपोलियन के विजय अभियान के अन्तर्गत पवित्र रोमन साम्राज्य सन् 1806 में अदृश्य हो गया था। राइन नदीय परिसंघ, जिसका नैपोलियन ने सृजन किया था, भी अपने सृजनकर्ता के साथ विलुप्त हो चुका था। इसके स्थान पर किसी अन्य परिसंघ को पुनर्स्थापित करना था। अत्यधिक विचार-विमर्श के उपरान्त जर्मन परिसंघ स्थापित किया और इसी सरकार ने सन् 1855 से सन् 1866 तक शासन किया। जर्मन देशभक्तों की आकांक्षाओं और प्रयासों के उपरान्त आस्ट्रिया के हित में 38 प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्यों के एक शिथिल जर्मन परिसंघ का गठन किया गया जिसका प्रयोग आस्ट्रिया द्वारा अपने हितों की पूर्ति के लिए किया जा सकता था। मैटरनिख ने छोटे जर्मन राज्यों की प्रशा के विरुद्ध ईर्ष्या और द्वेष का लाभ उठाया था। सरकार का केन्द्रीय अंग डाइट (Diet संसद का एक रूप) था जिसकी बैठकें फ्रैंकफर्ट में आयोजित होनी थी। इसमें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की अपेक्षा प्रभुसत्ता-सम्पन्न शासक द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि होता था और अपने राजा की

इच्छानुसार किसी भी अवधि तक कार्य कर सकता था। डाइट का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं था वरन् स्थायी संस्था थी। राज्य का मनोनीत प्रतिनिधि अपने राज्य के हितों पर केन्द्रित रहता था और राजा के निर्देशानुसार विचार व्यक्त करता था। ये प्रतिनिधि केवल कूटनीतिक प्रतिनिधि थे। इनको किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं था। आस्ट्रिया इस डाइट में अपने 6 प्रतिनिधि भेजने के लिए अधिकृत था। डाइट की बैठकों की अध्यक्षता आस्ट्रिया का चान्सलर करता था। सदस्य राज्य एवं समस्त परिसंघ, अपने किसी साथी सदस्य राज्य के विरुद्ध किसी विदेशी शक्ति से सन्धि नहीं कर सकता था। डाइट के अन्दर प्रक्रिया सम्बन्धी पद्धति अत्यधिक जटिल और कष्टदायक थी, जिसने किसी भी प्रकार की कार्यवाही को कठिन बना दिया और विलम्ब एवं बाधा डालना सहज था। यह परिसंघ कोई राष्ट्र नहीं था वरन् स्वतन्त्र राज्यों का एक शिथिल संघ मात्र था। राज्य परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध नहीं करने के लिए सहमत हो गये थे। यही एक गम्भीर दायित्व राज्यों ने स्वीकार किया था।

यह परिसंघ जनता की अपेक्षा राजाओं का परिसंघ था। प्रत्येक राजा ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिद्वन्द्विता से ग्रस्त था और प्रत्येक को समस्त जर्मनी की समृद्धि और सम्पन्नता की अपेक्षा स्वयं की सत्ता को सुरक्षित रखने की विशेष चिन्ता थी। नैपोलियन के विरुद्ध युद्धों ने जन-समूह में प्रबल राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत की। समस्त अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील विचारकों ने सर्वप्रथम जर्मनी की एकता और शक्तिशाली राष्ट्रीय सरकार की आवश्यकता अनुभव की। मैटरनिख के अनुसार जर्मन एकता एक घृणित उद्देश्य था। राज्यों के शासकों की स्वार्थपरता मैटरनिख की गतिविधियों का समर्थन कर रही थी। उनमें से एक भी राजा अपनी सत्ता का एक भी अंश समर्पित करने के लिए तैयार नहीं था। यथार्थ में जर्मन परिसंघ की समस्त राजनीति पर मैटरनिख का निर्विवाद प्रभुत्व था। उदारवादियों ने एक अन्य निराशा का अनुभव किया। वे जर्मनी की एकता एवं नागरिकों के लिए स्वतन्त्रता चाहते थे। वे प्रत्येक राज्य में अपना संविधान, प्रत्येक में संसद और निरंकुशतावाद का अन्त भी चाहते थे। मैटरनिख शक्तिशाली केन्द्रीकृत सरकार की अपेक्षा स्वतन्त्र राजनीतिक संस्थाओं का कट्टर विरोधी था। वह उस बिन्दु पर सुधारकों का विरोध करने में सफल हुआ। उनको केवल अस्पष्ट एवं सन्देहास्पद वचन देकर टाल दिया गया। कुछ छोटे राज्यों के अतिरिक्त इन दिये गये वचनों को कभी पूरा नहीं किया गया। जर्मन राज्यों ने देशभक्तिपूर्ण युद्ध के समय संविधान देने का वचन दिया था, मैटरनिख के प्रभाव ने उस वचन को मिथ्या सिद्ध कर दिया।

मैटरनिख की योजना आस्ट्रिया में प्रवृत्त सिद्धान्तों के अनुरूप ही जर्मनी में प्रवृत्त करने की थी और बहुत अंशों तक वह अपनी योजना में सफल भी हुआ। इसके लिए वह उस समय की कुछ आकस्मिक घटनाओं का आभारी था, जिन्होंने दमन प्रणाली को प्रयुक्त करने के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान किया। उसकी दृष्टि में विश्व में व्याप्त समस्त रोगों का यही एकमात्र उपचार था। सन् 1817 में मार्टिन लूथर के जीवन से सम्बन्धित वार्टबर्ग के विख्यात महल में देशभक्ति उत्सव आयोजित किया गया। विश्वविद्यालय राजद्रोह के प्रमुख केन्द्र थे। विद्यार्थियों ने अपने प्राध्यापकों से सहायता लेकर राष्ट्रीय एवं लोकतान्त्रिक विचारों को जीवित रखने के लिए बरचन् स्काफ्ट (Burchen Schoft) नाम के समुदाय का गठन किया था। इस उत्सव को जर्मन विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों ने आयोजित किया था। इस उत्सव ने

विद्यार्थियों के उत्साही उदारवाद एवं प्रतिक्रिया और प्रतिक्रियावादियों के प्रति विरक्ति एवं घृणा अभिव्यक्त की। विद्यार्थियों ने यह उत्सव लेपजिग (Leipzig) के युद्ध और सुधारों का गुणगान करने के लिए मनाया था। कुछ काल बाद एक विद्यार्थी ने एक पत्रकार एवं नाटककार कोजेब्यू, जिससे विश्वविद्यालय परिसर में विद्यार्थी रूसी गुप्तचर के रूप में घृणा करते थे, की हत्या कर दी। ये एवं अन्य घटनाएँ मैटरनिख की योजनानुसार हुई थीं। वह जर्मनी में प्रतिक्रियावाद को स्थापित करने का उपयुक्त साधन खोज रहा था। उसने इन घटनाओं का बहुत बढ़ा-चढ़ाकर एक क्रान्तिकारी षड्यन्त्र के रूप में प्रदर्शन किया। उसने अवसर का लाभ उठाकर प्रशा के शासक फ्रेडरिक विलियम तृतीय एवं अन्य जर्मन राजाओं को उदारवाद के क्रान्तिकारी खतरों के विषय में उपदेश दिये और सावधान किया। उसने कार्ल्सवाद के स्थान पर सन् 1819 में चुने हुए जर्मन राजाओं का सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में उदारवादी आन्दोलन के दमन के लिए सहमति व्यक्त की। उसको भयभीत राजाओं द्वारा पारित कार्ल्सवाद आज्ञप्तियों के माध्यम से मार्ग मिल गया। इन आज्ञप्तियों के प्रावधानों ने मैटरनिख को परिसंघ का विजेता बना दिया। ये आज्ञप्तियाँ जर्मन इतिहास में स्वतन्त्रता के दमन की प्रतीक थीं। इन आज्ञप्तियों ने सन् 1848 तक के लिए जर्मनी की राजनीतिक प्रणाली निर्धारित की थी। इन आज्ञप्तियों के प्रावधानों ने प्रेस के कठोर नियन्त्रण की व्यवस्था की और विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों को सरकार के सूक्ष्म निरीक्षण के अधीन कर दिया। समस्त अध्यापकों को, जो हानिकारक सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं अर्थात् जो किसी भी रूप में मैटरनिख की सरकार के विचारों की आलोचना करते हैं, अपने पदों से हटा दिया जाये और जर्मनी में किसी अन्य पद पर नियुक्त नहीं किया जाये। विद्यार्थी संस्थाओं का दमन कर दिया गया और किसी विश्वविद्यालय से निष्कासित विद्यार्थी को किसी अन्य विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं दिया जाये। इन प्रावधानों से आशा की जाती थी कि समस्त शिक्षाविदों का समुदाय प्राध्यापक एवं विद्यार्थी मूक हो जायेंगे। एक अन्य प्रावधान किसी भी रूप में लोकप्रिय संविधान की स्थापना के विरुद्ध था। इस प्रकार स्वतन्त्र संसदों, प्रेस की स्वतन्त्रता, अध्यापन की स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र भाषण को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया।

कार्ल्सवाद की आज्ञप्तियाँ मध्य यूरोप के इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती हैं। उन्होंने मैटरनिख के आस्ट्रिया के साथ-साथ जर्मनी में प्रभुत्व का संकेत दिया। प्रशा ने अपनी समस्त उदारवादी नीतियों को त्यागकर आस्ट्रिया के नेतृत्व का अनुसरण किया। फ्रेडरिक तृतीय ने प्रशा को संविधान प्रदान करने का वचन दिया था। उसने अपने वचन का पालन नहीं किया। दूसरी ओर उसने समस्त उदारवादियों के दुर्गन्धयुक्त एवं घृणित उत्पीड़न का अभियान आरम्भ किया। उत्पीड़न गतिविधियाँ अत्यधिक क्रूर और निरर्थक थीं। प्रशा ने नीरस, उदासीन एवं दमन के युग में प्रवेश किया। मैटरनिख की गतिविधियाँ उसकी प्रतिक्रियां और दमन की नीति की सफलता की विशिष्ट उदाहरण थीं।

मैटरनिख और इटली—मैटरनिख ने इटली का उल्लेख भौगोलिक अभिव्यक्ति के रूप में किया था। उसने इटली के सम्पन्न, धनी एवं समृद्ध लोम्बार्डी और वेनेशिया के क्षेत्र प्राप्त किये। पर्मा, मोडेना और टस्कोनी के सिंहासनों पर हैप्सबर्ग राज्यवंश के सदस्यों को

सिंहासनारूढ़ किया। सन् 1815 में मैटरनिख ने एक गुप्त सन्धि की थी जिसके अनुसार आवश्यकता पड़ने पर नेपल्स और सिसली के शासकों की आस्ट्रिया को सहायता करनी थी। सन् 1820 में नेपल्स में विद्रोह हुआ और नेपल्स के शासक की अपील पर आस्ट्रिया की सेना दमन करने के लिए भेजी गयी। विद्रोह का दमन करके शासक को पुनः निरंकुश शासक बना दिया गया। सन् 1821 में पीडमोन्ट की जनता ने विद्रोह कर दिया। आस्ट्रिया की सेना ने लौटते समय पीडमोन्ट के विद्रोह का दमन कर दिया। हेज ने विचार व्यक्त किया है, "इटली के हाथ और पैर आस्ट्रिया के विजयी प्रतिक्रियावादी रथ के साथ बँधे हुए थे।"

मैटरनिख और स्पेन—फर्डीनेण्ड सप्तम को सन् 1815 में स्पेन के निरंकुश शासक के रूप में पुनर्स्थापित किया था। उसनें प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण करते हुए सन् 1812 के संविधान को निरस्त कर दिया था। सन् 1820 में स्पेन की जनता ने विद्रोह कर दिया और सन् 1812 के संविधान के पुनर्स्थापन की माँग की। उसने जनता के समक्ष उनकी माँगों को स्वीकार करने का बाह्य प्रदर्शन किया लेकिन गुप्त रूप से महान् शक्तियों के साथ पत्र-व्यवहार द्वारा सैन्य शक्ति भेजने का आग्रह किया। यूरोप की प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने इसको भयभीत करने वाली भूत-प्रेत की छाया स्वरूप स्पेन की क्रान्ति को स्वीकार किया। परिणामस्वरूप मैटरनिख के प्रभाव से सन् 1822 में वैरोना में आयोजित चतुर्मुखी संघ के सम्मेलन ने फ्रान्स को आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने के लिए स्वीकृति दी और बोर्बोन शासक को पुनर्स्थापित कर दिया। फ्रान्सीसी सेना द्वारा स्पेन के विद्रोह के दमन और फर्डीनेण्ड के निरंकुश शासक के रूप में पुनर्स्थापन से मैटरनिख अत्यधिक प्रसन्न था।

मैटरनिख और रूस—प्रारम्भ में रूस के जार अलेक्जेण्डर प्रथम के उदारवादी विचार थे। लेकिन सन् 1815 के उपरान्त अलेक्जेण्डर के विचारों में परिवर्तन आया। सन् 1815 में जार के अंगरक्षकों के मध्य क्रान्तिकारी षड्यन्त्र का समाचार मिला। सन् 1819 में कोत्ज़ेब्यू (Kotzebue) जिस पर जर्मनी में रूस के गुप्तचर होने का सन्देह था, की निर्मम हत्या कर दी गयी। सन् 1820 में फ्रान्स के डक दि बैरी (Duc le Berry) की हत्या कर दी गयी। इन समस्त घटनाओं ने जार अलेक्जेण्डर प्रथम को भयभीत कर दिया और उसके दृष्टिकोण में गहन परिवर्तन हो गया। उसका दृढ़ मत हो गया कि उदार विचार खतरनाक थे। ट्रोप्पयू के अधिवेशन के समय उसने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि वह मैटरनिख का अनुसरण करने वाला था। जार ने उसको अपना स्वामी स्वीकार किया और जार ने मैटरनिख से उसको आदेश देने का आग्रह किया। सन् 1820 से 1825 तक जार पूर्णतया मैटरनिख के प्रभाव में रहा। इसी कारण यूनानियों द्वारा तुर्की के निरंकुश शासन एवं क्रूर अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह की स्थिति में जार अलेक्जेण्डर ने हस्तक्षेप नहीं किया।

मैटरनिख और पूर्वी प्रश्न—यूनानियों ने यसीलान्ती (Yhsilanti) के नेतृत्व में निरंकुश तुर्की शासन के विरुद्ध विद्रोह किया और उसको रूस से सहायता मिलने का पूर्ण विश्वास था। रूस तुर्की से घृणा करता था और अपने ईसाई धर्मावलम्बी यूनानियों की सहायता करना चाहता था। जातिगत एवं धर्मगत हितों के उपरान्त भी मैटरनिख ने अलेक्जेण्डर को सहायता करने से रोक दिया और यसीलान्ती को स्वीकार नहीं करने का

आग्रह किया। परिणामस्वरूप तुर्की ने यूनानियों के विद्रोह का दमन कर दिया। यशीलान्ती को सात वर्ष तक आस्ट्रिया के कारागृह में बन्दी बनाकर रखने से मैटरनिख को अत्यधिक आनन्द मिला। सन् 1821 में मोरिया (Morea) और एजियन (Aegean) द्वीपों के यूनानियों ने विद्रोह किया और मैटरनिख ने जार अलेक्जेण्डर प्रथम को उसकी सहायता करने की प्रबल इच्छा के विपरीत सहायता करने से रोक दिया।

मैटरनिख और इंग्लैण्ड—नैपोलियन को ध्वस्त करने के समान उद्देश्य में मैटरनिख ने इंग्लैण्ड के साथ सक्रिय सहयोग किया। नैपोलियन के पतन के बाद कैसरले और मैटरनिख ने विएना काँग्रेस तक सहयोग किया। इंग्लैण्ड यूरोप की चार प्रमुख शक्तियों रूस, आस्ट्रिया एवं प्रशा के साथ चतुर्मुखी संघ (Quadruple Alliance) में सक्रिय सदस्य बन गया। मैटरनिख अन्य राज्यों के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप का प्रबल समर्थक था, जब कि इंग्लैण्ड का विदेशमन्त्री कैसरले उसका कट्टर विरोधी था। यह मतभेद सन् 1818 में एक्स ला शैपेल के सम्मेलन में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो गये। सन् 1820 में ट्रोप्पयू में आयोजित सम्मेलन में कठोर विरोध किया। वैरोना सम्मेलन के समय कैसरले ने सन् 1822 में आत्महत्या कर ली। ग्रेट ब्रिटेन ने स्पेन में फ्रान्स द्वारा हस्तक्षेप करने का कठोर विरोध किया और वैरोना काँग्रेस से सदा के लिए हट गया। परिणामस्वरूप चतुर्मुखी संघ का विघटन हो गया। कैसरले के उत्तराधिकारी लार्ड कैनिंग ने कैसरले के विचारों और नीतियों का समर्थन किया। हस्तक्षेप नहीं करने की नीति के समर्थक अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने इसके अनुरूप सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

मैटरनिख और फ्रान्स—नैपोलियन के पतन के उपरान्त फ्रान्स द्वारा भविष्य में आक्रमणों की सुरक्षा की दृष्टि से मैटरनिख ने फ्रान्स को चारों ओर से लोहे की अगूँठी की तरह घेरने का प्रयास किया। इस उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में बेल्जियम और हालैण्ड को संयुक्त कर दिया गया। राइन नदी घाटी का विशाल भू-भाग प्रशा को दे दिया गया और जेनोआ पीडमोन्ट को दे दिये गये। मैटरनिख को भलीभाँति ज्ञात था कि क्रान्तिकारी विचारों का उद्‌गम फ्रान्स में हुआ था और ये विचार पुनः किसी भी समय मुसीबत कर सकते थे। सन् 1818 में फ्रान्स ने क्षतिपूर्ति के रूप में आरोपित आर्थिक दण्ड का भुगतान कर दिया। परिणामस्वरूप मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को वापिस बुला लिया गया। फ्रान्स को चतुर्गुट अथवा चतुर्मुखी संघ का सदस्य बना लिया गया और यह संघ पंचमुखी संघ अथवा पंचगुट (Quautiple Alliance) में परिवर्तित हो गया। फ्रान्स के सन् 1830 के विद्रोह के समय मैटरनिख बहुत सजग था।

सन् 1848 में कौसुथ (Kossuth) के कुशल नेतृत्व में हंगरी की जनता ने प्रबल माँग की कि कुलीन वर्ग पर कराधान किया जाये, समस्त राष्ट्रीय व्यय पर डाइट का पूर्ण नियन्त्रण हो, प्रेस को पूर्वापेक्षा अधिक स्वतन्त्रता दी जाये, जनता को जनसभाएँ आयोजित करने और समुदाय बनाने का अधिकार दिया जाये। जनसमुदाय ने माँग की कि हंगरी आस्ट्रिया की नीति के अधीन नहीं रहेगा। इस तरह की स्थिति में महान् सुधार की प्रबल आकांक्षा समस्त यूरोप में व्याप्त हो गयी।

3 मार्च, 1848 को कौसुथ ने हंगरी की डाइट (Diet) में आस्ट्रिया की समस्त शासन प्रणाली की कटु निन्दा करते हुए तत्कालीन जनाकांक्षाओं एवं भावनाओं को अभिव्यक्त क्रिया। इस भाषण का हंगरी में ही नहीं वरन् समस्त आस्ट्रिया में तत्काल गम्भीर प्रभाव पड़ा। अनुवादित प्रतियों के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के परिणामस्वरूप समस्त जनसमुदाय उत्तेजित हो गया। 10 दिन बाद विएना में उपद्रव आरम्भ हो गये। इस उपद्रव को विद्यार्थियों एवं श्रमिकों ने संगठित किया था। सैनिकों ने दमन के लिए गोलियाँ चलायीं और भीषण रक्तपात हुआ। विशाल जनसमूह उमड़ पड़ा और शाही महल में पहुँच गया और "मैटरनिख को गिराओ" (Down with Matternich) का उद्घोष करते हुए उस विशाल कक्ष पर आक्रमण कर दिया जहाँ डाइट का अधिवेशन हो रहा था। मैटरनिख जो 39 वर्ष तक आस्ट्रिया के समस्त राज्यों के अध्यक्ष के रूप में रहा था, जो प्रतिक्रिया का स्रोत और उद्गम स्थान, अविचलित, निर्दय, कुशल व्यक्ति था, को त्यागपत्र देने , छद्म वेष में आस्ट्रिया से इंग्लैण्ड भागने, उन समस्त शक्तियों, जिनके प्रति एक युग तक घृणा प्रदर्शित कि थी, के भीषण मार-काट के नीचे अपनी प्रशासनिक संरचना को पूरी तरह ध्वस्त होते देखने के लिए विवश किया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. विएना सम्मेलन की उपलब्धियों की समीक्षा करें।
   Discuss the achievements of the Vienna Congress.
   (पटना, 1994, 97; भागलपुर, 1996; गोरखपुर, 1987, 90, 93, 96, 98, 2000; जबलपुर, 1998; बुन्देलखण्ड, 1992; अवध, 1993; ग्वालियर, 2000)
2. विएना सम्मेलन द्वारा की गई क्षेत्रीय व्यवस्था का विवरण प्रस्तुत करें।
   Give detailed description of the regional arrangement made by the Vienna Congress. (मगध, 1996; मेरठ, 1994, 95; भोपाल, 2000; राँची, 1996, 98; बुन्देलखण्ड, 1993, 94, 95)
3. यूरोपीय व्यवस्था की असफलता के कारणों का विवेचन करें।
   Discuss the causes for the failure of the European arrangement.
   (मगध, 1991, 93, 95 98; कानपुर, 1993, 94, 96, 97, 98, 99, 2000; गढ़वाल, 1994, 95, 98, 2000; रुहेलखण्ड, 1993, 95, 97, 99, 2000; आगरा, 1992, 93, 94, 97, 98, 99; लखनऊ, 1992, 94, 96, 98, 2000; अवध, 1992, 95, 98, 99; पटना, 1995; गोरखपुर, 1994, 95, 99)
4. विएना सम्मेलन पर एक निबन्ध लिखें।
   Write an essay on the Vienna Congress.
   (मगध, 1992, 97, 99; बी. आर. अम्बेदकर, 1999; रुहेलखण्ड, 1998; आगरा, 1995; कानपुर, 1993, 95; मेरठ, 1997)
5. 'यूरोप के कन्सर्ट' पर एक निबन्ध लिखें।
   Write an essay on 'Concert of Europe'.
   (बी. आर. अम्बेदकर, 1997; गढ़वाल, 1999)

6. यूरोपीय व्यवस्था के कार्यों की विवेचना करें। वह असफल क्यों हो गई ?
Discuss the concert of Europe. Why did it fail ?
(भागलपुर एवं गोरखपु, 1997; राँची, रायपुर एवं जबलपुर 1997, 99; मगध, 1996; बुन्देलखण्ड, 1990, 95, 96, 98; गढ़वाल, 1994; रुहेलखण्ड, 1992, 94, 96, 98, 2000; आगरा एवं मेरठ, 1996, 98; लखनऊ, 1993, 95, 97, 99; कानपुर, 1994, 95, 96, 98, 2000; भोपाल, 2000)

7. "मैटरनिख घोर प्रतिक्रियावादी एवं प्रजातन्त्र का शत्रु था।" व्याख्या कीजिये।
"Matternich was utter reactionary and enemy of democracy." Explain the statement. (जबलपुर, 1995; रुहेलखण्ड, 1996, 98, 2000; अवध, 1997; आगरा, 1992; कानपुर, 1997, 99, 2000; ग्वालियर, 2000)

8. "विएना काँग्रेस ने सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार की गलतियाँ कीं।" विवेचना कीजिये।
"Congress of Vienna, committed positive and negative, both types of mistakes." Explain. (जबलपुर, 1996)

9. सन् 1815 से 1848 के बीच यूरोपीय राजनीति में मैटरनिख के योगदान का मूल्यांकन कीजिये।
Evaluate Matternich's contribution to the European politics during 1815 to 1848. (जबलपुर, 2000; रायपुर, 1998; बुन्देलन्खण्ड, 1992, 97; रुहेलखण्ड, 1991; कानपुर, 1996, 98; भोपाल, 2000)

10. मैटरनिख की विदेश नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
Critically examine Matternich's foreign policy.
(गोरखपुर, 1988, 90; मेरठ, 1997; गढ़वाल एवं अवध, 1996; रुहेलखण्ड, 1998)

11. मैटरनिख प्रणाली पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on Matternich system.
(बुन्देलखण्ड, 1992, 99; रुहेलखण्ड, 1993, 97; अवध, 1992, 93, 94, 99; आगरा, 1995, 96; कानपुर, 1993, 94, 95)

12. विएना काँग्रेस में मैटरनिख की भूमिका का मूल्यांकन कीजिये।
Evaluate Matternich's role in the Congress of Vienna.
(बुन्देलखण्ड, 1991; गढ़वाल, 1996)

13. 1815 से 1830 तक फ्रान्स की मुख्य राजनीतिक समस्याओं का आधार क्या था ? बूर्बा उन समस्याओं को सुलझाने में क्यों असफल रहे ?
What were the main political problems at issue in France between 1815 and 1830 ? Why did the Bourbous fail to settle them ?
(रुहेलखण्ड, 1995)

14. चतुर्थ राष्ट्र गुट के क्या उद्देश्य थे ? यह अन्ततः असफल क्यों रहा ?
What were the aims of the Quadriple Alliance ? Why did it eventually fail ?
(लखनऊ, 1991)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. विख्यात वाटरलू का युद्ध 9 जून सन् .... को हुआ था—
(क) 1812 (ख) 1813 (ग) 1814 (घ) 1815

2. जार अलेक्जेण्डर द्वारा प्रस्तावित पवित्र सन्धि का सन् ………… में उसके निधन के साथ निधन हो गया—

(क) 1815 (ख) 1820 (ग) 1825 (घ) 1830

3. यूरोपीय शक्तियों ने पहली काँग्रेस का सन् ……… में एक्स-ला चापेल में आयोजन किया—

(क) 1815 (ख) 1818 (ग) 1820 (घ) 1822

4. सन् ……… में नेपल्स, स्पेन और पुर्तगाल में जनता ने विद्रोह कर दिये—

(क) 1815 (ख) 1818 (ग) 1820 (घ) 1822

5. विद्रोहियों ने स्पेन के सन् ……… के संविधान को स्वीकार करने का आग्रह किया—

(क) 1812 (ख) 1815 (ग) 1818 (घ) 1820

6. सन् ……… में वैरोना में काँग्रेस का आयोजन किया—

(क) 1818 (ख) 1819 (ग) 1821 (घ) 1822

7. लुईस अठारहवें का सन् ……… में देहान्त हो गया—

(क) 1821 (ख) 1822 (ग) 1823 (घ) 1824

8. चार्ल्स दशम ने सन् ………… तक फ्रान्स पर शासन किया—

(क) 1815—1821 (ख) 1820—1826 (ग) 1824—1830 (घ) 1830—36

[उत्तर—1. (घ), 2. (ग), 3. (ख), 4. (ग), 5. (क), 6. (घ), 7. (घ), 8. (ग) ।]





सन् 1830 की क्रान्ति

[THE REVOLUTION OF 1830]

यद्यपि सन् 1814 में नैपोलियन की पराजय के उपरान्त फ्रान्स के सिंहासन पर बोर्बोन वंशीय लुईस सोलहवें के 59 वर्षीय भाई लुईस अठारहवें को पुनर्स्थापित किया गया था, लेकिन नैपोलियन ने एल्बा द्वीप से भागकर पुनः सेना संगठित की और फ्रान्स पर पुनः आधिपत्य स्थापित करने के लिए वाटरलू के स्थान पर अन्तिम एवं निर्णायक युद्ध किया। उस अवधि में लुईस अठारहवें फ्रान्स का शासन छोड़कर पलायन कर गया था। वाटरलू के युद्ध में नैपोलियन की निर्णायक पराजय के वाद लुईस अठारहवें को मित्र राष्ट्रों ने वैधता के सिद्धान्त के आधार पर फ्रान्स के सिंहासन पर पुनर्स्थापित किया। नया शासक सहृदय विचारों का समझदार व्यक्ति था। उसने स्पष्ट रूप से अनुभव कर लिया था कि राजवंश के पुनर्स्थापन का तात्पर्य पुराने निरंकुश शासन का पुनर्स्थापन नहीं था। उसको ज्ञात था कि फ्रान्स में निरंकुश राजतन्त्र का युग सदैव के लिए समाप्त हो गया था। उसका दृढ़ मत था कि राजतन्त्र संवैधानिक होना चाहिए और क्रान्ति की उपलब्धियों की पूर्ण सुरक्षा होनी चाहिए और जन समुदाय की नवोदित लोकतान्त्रिक भावनाओं एवं आकांक्षाओं का यथोचित सम्मान होना चाहिए अन्यथा राजतन्त्र का जीवन अल्पकालीन होगा।

4 जून, 1814 को लुईस अठारहवें ने रूस के जार अलेक्जेण्डर के उदार विचारों से प्रभावित संवैधानिक शास-पत्र (Charter) जारी किया जिसकी प्रस्तावना इस प्रकार थी, "हमारे पूर्वजों, राजाओं के उदाहरणों के अनुसार, प्रबुद्धता की निरन्तर बढ़ती हुई प्रगति के परिणामों, नये सम्बन्धों, जिनका इस प्रगति ने समाज में सूत्रपात किया, अर्द्ध शताब्दी तक जनमत को प्रभावित करने वाले निर्देशन और महत्वपूर्ण परिवर्तन जो घटित हुए हैं, की प्रशंसा करना हमारा कर्तव्य है। हम स्वीकार करते हैं कि संवैधानिक शास-पत्र (Charter) के लिए जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति वास्तविक आवश्यकता थी। लेकिन इस इच्छा के समक्ष समर्पण करने में हमने पूरी सावधानी रखी है कि यह शास-पत्र (Charter) हमारे और जनता जिन पर हमको शासन करना है, के उपयुक्त होना चाहिए।"

इस शास-पत्र (Charter) के अनुसार द्विसदनीय संसद अर्थात् अभिजातों का सदन, जिनको जीवनपर्यन्त के लिए नियुक्त किया गया और सहायकों (Deputies) का सदन, जिसके सदस्य सीमित मतदाताओं द्वारा निर्वाचित होते थे, स्थापित किया गया। अभिजात वर्गीय उच्च सदन के सदस्यों को राजा जीवनपर्यन्त के लिए अथवा वंशानुगत सदस्यों के रूप

में मनोनीत करता था। उसके अधिवेशन गुप्त होते थे और उच्च न्यायालय के रूप में भी कार्य करता था। सहायकों (Deputies) के सदन के सदस्य का निर्वाचन 300 फ्रैंक वार्षिक प्रत्यक्ष कर देने वाला मतदाता ही कर सकता था। मतदाता होने के लिए निश्चित आयु सीमा एवं अचल सम्पत्ति का स्वामित्व भी अनिवार्य था। इन प्रतिबन्धों के कारण फ्रान्स की कुल 2,90,00,000 की जनसंख्या में 1 लाख से कम मतदाता थे और 12,000 सदस्य निर्वाचित होने योग्य थे। सहायकों (Deputies) के सदन का कार्यकाल 5 वर्ष था और हर वर्ष 1/5 सदस्य सेवा-निवृत्त हो जाते थे। इसका अधिवेशन वर्ष में एक बार होता था। यह सदन राजा से किसी विषय पर विधेयक प्रस्तुत करने का आग्रह कर सकता था।

प्रवृत्त शास-पत्र (Charter) में भावी सरकार के गठन के अतिरिक्त एक अन्य अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण प्रावधानों का भाग था, जिसमें फ्रान्सवासियों के नागरिक अधिकारों का व्यापक उल्लेख था। इन प्रावधानों में क्रान्ति और नैपोलियन के विचार एवं भावनाएँ निहित थीं। फ्रान्स की जनता के लिए नागरिक अधिकार एवं स्वतन्त्रताएँ सर्वाधिक मूल्यवान थीं, लेकिन जनता को राजतन्त्र के पुनर्स्थापन से इनके विलुप्त होने का भय था, परन्तु इन प्रावधानों ने जनता को नागरिक अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं के प्रति आश्वस्त किया। प्रावधानों के अनुसार, कानून के समक्ष फ्रान्स का प्रत्येक नागरिक समान था। इस प्रकार क्रान्ति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण समानता के सिद्धान्त को सुरक्षित रखा गया था। अब समस्त नागरिक समान रूप से नागरिक और सैनिक पदों के योग्य थे। अस्तु क्रान्ति से पूर्व के अनुरूप किसी एक वर्ग का एकाधिपत्य नहीं था। अब किसी भी व्यक्ति को कानून की सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त बन्दी नहीं बनाया जा सकता था अथवा मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। निरंकुश रूप से बन्दी बनाने का समय समाप्त हो गया था। यद्यपि रोमन कैथोलिक धर्म को राज्य धर्म घोषित कर दिया गया था, लेकिन प्रत्येक समुदाय एवं अन्य धर्मावलम्बियों को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी थी। राज्य की ओर से समस्त धर्मों एवं धर्मावलम्बियों के प्रति पूर्ण सहिष्णुता का आश्वासन दिया गया था। प्रेस पर लगे नियन्त्रण को समाप्त करके प्रेस की स्वतन्त्रता को पुनर्जीवित किया गया। फ्रान्स के नागरिक, जिन्होंने फ्रान्स की क्रान्ति काल में राजतन्त्र, चर्च और कुलीनों की अधिग्रहीत भूमि/सम्पत्ति को खरीद लिया था, को आश्वस्त किया गया कि उनके भूमि स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार अलंघनीय रहेंगे। समानता, पदों के लिए समान पात्रता एवं धार्मिक सहिष्णुता को मान्यता से स्पष्ट था कि क्रान्तिकालीन एवं नैपोलियन कालीन विचारों, भावनाओं एवं मान्यताओं को समाहित किया गया था। शास-पत्र (Charter) राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त के अनुकूल था। चैत्यूब्रियेन्ड ने विचार व्यक्त किया है, "शास-पत्र (Charter) दो दलों जिसमें फ्रान्स विभाजित है, के मध्य एक सन्धि है, एक सन्धि जिसके द्वारा दोनों दलों ने अपने देश के गौरव के लिए साथ-साथ काम करने के उद्देश्य से अपनी कुछ महत्वाकांक्षाओं को समर्पित कर दिया है।" शास-पत्र प्राचीन एवं नवीन व्यवस्था के मध्य एक समझौता था। इसने एक ऐसा संविधान दिया जो यद्यपि क्रान्ति में उदित आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं था, परन्तु उदारवादी था और फ्रान्स के किसी भी संविधान की अपेक्षा अधिक उदार था।

अत्यधिक चतुर एवं चालाक कुलीनवंशीय चर्च का सदस्य कुरूप एवं भद्दा टैलीरेण्ड फ्रान्स के अब तक के सर्वाधिक चतुर व्यक्तियों में से था। उसने फ्रान्सीसी क्रान्ति, नैपोलियन के शासन काल एवं पुनर्स्थापन के बाद विभिन्न पदों पर कार्य किया। स्वयं को परिस्थितिनुकूल बनाने में पारंगत था। नैपोलियन सदृश जटिल विषयों पर उससे

विचार-विमर्श करता था, लेकिन उसके अन्तिम समय में उसका साथ छोड़ दिया और आस्ट्रिया के साथ मिल गया। विएना काँग्रेस के अवसर पर विचार-विमर्श में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। उसी ने वैधता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उसके चतुर एवं कूटनीतिज्ञ प्रयासों के परिणामस्वरूप फ्रान्स पराजित होने के उपरान्त भी अपने अधिकृत क्षेत्रों से वंचित नहीं हुआ था।

लुईस अठारहवें और अतिराजतन्त्रवादी (Louis XVII and Ultra-Royalists)—सहिष्णु, उदार हृदय, शान्ति प्रिय, भ्रान्तियों एवं प्रतिशोध की संकीर्ण भावनाओं से मुक्त लुईस अठारहवें संघर्षों एवं विवादों से बचते हुए शान्तिपूर्वक सत्ता का उपभोग करना चाहता था। लेकिन उसके सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं। उसको मित्र राष्ट्रों की सेना ने पुनर्स्थापित किया था। सिंहासन पर उसकी उपस्थिति सदैव फ्रान्स के अपमान का स्मरण कराती थी। उसके दरबार में कुलीनों का बाहुल्य था, जिनको क्रान्ति काल में अत्यधिक कष्ट सहन करने पड़े थे। इन कुलीनों को अचल सम्पत्ति से वंचित कर दिया गया था एवं इन्होंने अपने अनेक निकट सम्बन्धियों की नृशंस हत्याओं को देखा था। ये कुलीन वर्ग अपनी पीड़ाओं के लेखकों के प्रति अत्यधिक घृणा, द्वेष एवं प्रतिशोध की भावना से अनुप्राणित थे। ये कुलीनवर्गीय व्यक्ति लुईस अठारहवें से वित्त, राजतन्त्र के पुराने गौरव और गरिमा, कुलीन वर्ग एवं पादरी वर्ग के विशेषाधिकारों, मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठित पदों को पुनर्स्थापित करने के लिए अत्यधिक व्यग्र थे। ये अति राजतन्त्रवादी अथवा अतिवादी थे। ये राजा स्वयं की अपेक्षा अधिक राजतन्त्रवादी होने का दावा करते थे। उन्होंने क्रान्ति काल में स्वयं के साथ अत्यधिक अन्याय एवं अपमान का अनुभव किया था। उन्होंने शास-पत्र (Charter) की स्वीकृति के लिए लुईस अठारहवें की कटु आलोचना की और गुप्त रूप से शास-पंत्र को समाप्त करने का प्रयास किया। साथ ही उदारवादी प्रावधानों को अधिकाधिक निरस्त करने का प्रयास करते रहे। अति राजतन्त्रवादियों का नेतृत्व फ्रान्स के सिंहासन का उत्तराधिकारी और लुईस अठारहवें का भाई काउण्ट आर्टव्यास कर रहा था। लुईस अठारहवें के कोई सन्तान नहीं थी। लुईस अठारहवें अपने शासन काल में बोनापार्टवादियों (नैपोलियन समर्थकों) और गणतन्त्रवादियों, जो राजतन्त्र के पुनर्स्थापन के कटु विरोधी थे, और अति राजतन्त्रवादियों, जिसमें अधिकांश पादरी एवं प्रवासी कुलीन, जो लौटकर फ्रान्स आ गये थे, सम्मिलित थे, के मध्य भीषण वैमनस्य, घृणा, द्वेष एवं संघर्ष से अत्यधिक चिन्तित था।

वाटरलू के युद्ध में नैपोलियन की पराजय का समाचार मिलते ही अति राजतन्त्रवादियों, जिनकी उपेक्षा करते हुए लुईस अठारहवें ने नरमपंथी नीति का अनुसरण किया था, ने आतंक का साम्राज्य, जो श्वेत आतंक के नाम से विदित है, स्थापित कर दिया। अतिं राजतन्त्रवादी समूहों ने बोनापार्ट समर्थकों पर क्रूर अत्याचार किये और कैथोलिक समुदाय ने प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बियों को उत्पीड़ित किया। भीषण रक्तपात, लूट, अत्याचार एवं उत्पीड़न सर्वत्र व्याप्त था।

अतिवादियों की गतिविधियाँ (Activities of the Ultra-Royalists)—सन् 1816 में चुनाव के बाद नरमपंथी सहायकों के सदन (Chamber of Deputies) में बहुमत में आ गये थे और सन् 1820 तक सत्ता में रहे। सन् 1817 में नरमपंथियों के पक्ष में एक नया निर्वाचन कानून पारित किया गया। सन् 1819 में पारित नये प्रेस कानून के द्वारा प्रेस पर नियन्त्रण समाप्त कर दिया गया और प्रेस से सम्बन्धित अपराधों के लिए जूरी द्वारा सुनवाई

की अनुमति दी गयी। इस प्रकार सन् 1820 तक लुईस अठारहवें ने उदारवादियों एवं नरमपंथियों, जिनका संसद में बहुमत था, के प्रबल समर्थन से संसद पर पूर्ण नियन्त्रण रखा और अतिवादियों की समस्त उग्र गतिविधियों पर अंकुश लगाया। अतिवादी संसद और राजा के नरमपंथी दृष्टिकोण एवं गतिविधियों से अत्यधिक उत्तेजित थे। अतिवादी सत्तारूढ़ दल के प्रत्येक कार्य एवं गतिविधि के प्रति सतर्क थे और उपयुक्त अवसर की खोज में थे। अनेक उग्रसुधारवादी संसद के निम्न सदन सहायकों के सदन (Chamber of Deputies) के लिए निर्वाचित हो गये। अतिवादियों ने धुँधले भविष्य का चित्रण करते हुए अपने क्रोधान्माद को अभिव्यक्त किया। फरवरी, 1820 में काउण्ट अर्टव्यास के पुत्र ड्यूक डि बेरी, फ्रान्स के सिंहासन के भावी उत्तराधिकारी की एक धर्मान्ध ने नृशंस हत्या कर दी। यद्यपि हत्या एक एकाकी धर्मान्ध ने की थी, लेकिन अति राजतन्त्रवादियों ने हत्या के लिए नरमपंथी नीतियों को दोषी माना। राजा लुईस अठारहवें एवं संसद के अन्य नरमपंथी सदस्य इस हत्या से इतने भयभीत हो गये कि उन्होंने अतिवादियों का विरोध बहुत कम कर दिया।

सन् 1820 में रिशेल्यू (Richelieu) को पुनः फ्रान्स का प्रधानमन्त्री बना दिया गया और उसने सन् 1821 तक इस पद पर कार्य किया। उसके शासन काल में प्रतिक्रियावादी युग का सूत्रपात हुआ। प्रेस पर नियन्त्रण को पुनर्स्थापित किया गया। निर्वाचन कानून में परिवर्तन किया गया। गुप्त मतदान समाप्त कर दिया गया। मताधिकार को अधिक संकुचित कर दिया गया। भू-स्वामित्व के हितों की सुरक्षा के लिए दो मत देने का प्रावधान किया गया।

रिशेल्यू के उपरान्त विलेले (Villele) एक योग्य और सतर्क लेकिन विदित प्रतिक्रियावादी फ्रान्स का प्रधानमन्त्री हुआ और उसने सन् 1827 तक अपने पद पर कार्य किया। सन् 1822 में प्रेस पर नियन्त्रण को अधिक कठोर कर दिया गया। चर्च को धार्मिक एवं राजतान्त्रिक प्रचार के लिए शिक्षा पर पूर्ण नियन्त्रण दे दिया गया। स्थानीय व्यापारियों एवं उत्पादकों के हितों की सुरक्षा के लिए आयात पर सीमाशुल्क में वृद्धि कर दी गयी। सन् 1823 में स्पेन के गणतान्त्रिक एवं उदारवादी विद्रोह का दमन करने के लिए चतुर्गुट शक्तियों के मध्य बहुत अधिक विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय किया गया कि फ्रान्स का शासक अपने बोर्बोन वंशीय शासक का समर्थन करने और विद्रोह दमन करने के लिए सेना भेजे। विद्रोह का केवल द्रुतगति से दमन ही नहीं कर दिया गया वरन् यह यूरोप के अब तक के इतिहास में सर्वाधिक क्रूर, घृणित, वीभत्स एवं निन्दनीय सशस्त्र हस्तक्षेप था। सैकड़ों समर्पित उदारवादियों का क्रूरतापूर्वक नरसंहार किया गया। इससे अधिक संख्या में उदारवादियों को वन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि स्पेन के शासक के कुछ अत्यधिक क्रूर एवं निर्मम कार्य चतुर्मुखी संघ के नेताओं के प्रत्यक्ष प्रोत्साहन के परिणाम थे। अभिजात वर्गीय सदन में उदारवादी अभिजातों के बहुमत को समाप्त करने के लिए नये प्रतिक्रियावादी अभिजात मनोनीत किये गये। सप्तवर्षीय अधिनियम द्वारा सहायकों के सदन (Chamber of Deputies) का कार्यकाल 5 वर्ष से बढ़ाकर 7 वर्ष कर दिया गया। लुईस अठारहवें ने अतिवादियों के खतरों का पूर्वानुमान कर लिया था और उसने राजतन्त्रवादियों में नरमपंथियों के सक्रिय सहयोग से कार्य करना आरम्भ किया। इन नरमपंथी राजतन्त्रवादियों की मुख्य नीति राजा को राष्ट्रीयकृत करने और फ्रान्स की जनता को राज्यतन्त्रीकृत करने की थी। उसके शासन के अन्तिम वर्षों में अति राजतन्त्रवादियों का पूर्ण नियन्त्रण हो गया था। सन् 1824 में लुईस अठारहवें का देहान्त हो गया और उसका भाई आर्टव्यास का काउन्ट (Count of Artois) चार्ल्स दसवें की उपाधि ग्रहण करके फ्रान्स का नया शासक बना।

चार्ल्स दसवें का शासन (Charles X, 1824-30)

आर्टव्यास (Artois) के दरबार में फ्रान्स के नये शासक ने प्रवासियों का नेतृत्व किया था और लुईस अठारहवें के शासन काल में वह अति राजतन्त्रवादियों का नेता था। प्रवासियों का नेतृत्व करते हुए "उसने कुछ नहीं सीखा था और कुछ नहीं भूला था।" वह सन् 1814 से सन् 1830 तक फ्रान्स के प्रतिक्रियावादियों का एकमात्र नेता था। वह सदैव ही अपने भाई के उदारवाद का कटु विरोधी था। वह पूर्वाग्रहों से ग्रस्त और प्रतिवद्ध व्यक्ति था। उसको इस बात का गर्व था कि वह और लाफायते समय के परिवर्तन के उपरान्त भी किंचित भी बदले नहीं थे। वह चर्च की सर्वोच्चता का प्रबल समर्थक था और वह चर्च के लिए सिंहासन का बलिदान करने के लिए तत्पर था। वैलिंगटन ने विचार व्यक्त किया कि उसने "पादरियों के माध्यम से पादरियों की सरकार और पादरियों के लिए स्थापित किया था।" उसके शासनकाल में उदारवाद के दमन के लिए अनेक प्रतिक्रियावादी कार्य किये। वह अपनी 67 वर्ष की आयु में अपने जीवन भर के सिद्धान्त को त्यागने के लिए तैयार नहीं था। लिप्सन ने कहा, "आर्टव्यास का चार्ल्स की शैली में सिंहासनारूढ़ होने ने स्वाभाविक रूप से प्रतिक्रियावादी आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। प्रथम पुनर्स्थापन के समय से ही उसे अति दक्षिणपंथी के नेता के रूप में स्वीकार किया गया था।"

राज्याभिषेक ने नये शासन के विचारों, भावनाओं एवं प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त कर दिया था। फ्रान्स की जनता का विविध एवं विशद् मध्यकालीन मूकाभिनयों से मनोरंजन किया गया और साथ ही उन व्यक्तियों के प्रति घृणा अभिव्यक्त की गयी जो हास्यास्पद गतिविधियों की प्रशंसा करने में असमर्थ थे। चार्ल्स के शरीर के सात भागों पर पवित्र तेल लगाया गया जिसको, ऐसी दृढ़ भावना थी, क्लोविस (Clovis) के समय से अद्भुत ढंग से सुरक्षित रखा गया था।

अधिकांश राजा द्वारा प्रस्तावित एवं पारित विधेयक इस सरकार के विलम्बित राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों को अभिव्यक्त करते थे। लगभग एक अरब फ्रैंक कुलीनों की भूमि जो क्रान्ति की अवधि में अधिग्रहीत कर ली गयी थी, की क्षतिपूर्ति के रूप में स्वीकृत किये गये। अनेक फ्रान्सवासियों का विचार था कि उन व्यक्तियों के लिए, जो देश छोड़कर चले गये थे और जिन्होंने देश के विरुद्ध युद्ध किया, धन स्वीकृत करने की अपेक्षा अन्य अनेक तात्कालिक आवश्यकताएँ थीं, जिनके लिए धन की स्वीकृति अपेक्षित थी। लेकिन राजा की प्रवासियों के प्रति सहानुभूति थी। अन्य अनेक अलोकप्रिय विधेयक चर्च के पक्ष में थे। अनेक फ्रान्सवासियों को राजनीतिक एवं सामाजिक की अपेक्षा पुरोहिती प्रतिक्रिया की आशंका थी। फ्रान्स की जनता ने राजा को स्वयं धर्माधिकारी की वेश-भूषा पहने हुए दरबारियों के साथ एक धार्मिक जुलूस में एक हाथ में जली हुई मोमबत्ती लेकर पेरिस की सड़कों पर चलते हुए देखा था। पादरियों के अनेक विशेषाधिकारों को पुनर्स्थापित कर दिया एवं प्रेस पर पूर्वापेक्षा अधिक कठोर नियन्त्रण स्थापित किया गया। प्रेस ने राजा की चर्च के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नीति का विरोध किया था। राजा की स्वीकृति के बिना कोई भी समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं किया जा सकता था। समाचार-पत्र की समस्त सामग्री सरकार द्वारा अनुमोदित होनी चाहिए। चर्च से सम्बन्धित आपत्तिजनक लेख अथवा चित्र पर लेखक अथवा चित्रकार को 7 वर्ष के कारावास का दण्ड अथवा अपार धनराशि का आर्थिक दण्ड आरोपित किया जा सकता था। प्रो. शीपीरो ने विचार व्यक्त किया है, "नया राजा पुराने शासन का बच्चा था जिसको फ्रान्स की क्रान्ति ने प्रबुद्धता के बिना कटुता दी थी। वह निर्वासन से एक बुद्धिमान

व्यक्ति की अपेक्षा एक दुःखी व्यक्ति के रूप में लौटा था। अस्तु वह पूर्व के दिनों की भावना और संस्थाओं दोनों को स्थापित करने के लिए कृत संकल्प था।"

फ्रान्स की उत्साही विदेश नीति के कारण प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। अल्जियर्स पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और ब्रिटिश सरकार जिसने तुर्कों के विरुद्ध यूनानियों की सहायता की थी, को सक्रिय सहयोग दिया। सन् 1827 में नैवैरिनो के युद्ध में तुर्की के जलपोत को ध्वस्त करने में फ्रान्स के जलपोत ने सक्रिय भाग लिया था। यद्यपि फ्रान्स यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम से अलग हो गया था, लेकिन उसने बाल्कन क्षेत्र में रूस के प्रभाव को कम करने के लिए ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग किया।

सन् 1827 में राष्ट्रीय सुरक्षा (National Guard) को भंग कर दिया। राजा जब राष्ट्रीय सुरक्षा का निरीक्षण करके लौट रहा था, राष्ट्रीय सुरक्षा के सदस्यों ने "मन्त्रियों को नीचे करो" (Down with the Ministers) और "जैसुइटों को नीचे करो" (Down with the Jesuits) के नारे लगाये। इन नारों से क्रुद्ध होकर ही राष्ट्रीय सुरक्षा को भंग किया गया था लेकिन इस कार्यवाही से फ्रान्स की जनता में अत्यधिक आक्रोश था और उसके परिणाम बहुत घातक सिद्ध हुए।

विलैले (Villele) के उपरान्त जनवरी, 1928 में मार्टिगनैक (Martignac) एक योग्य, नरमपंथी और अनुभवी व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया। उसने समझौते की नीति का अनुसरण किया। उसने पुरोहितों को उनके शिक्षा पर नियन्त्रण से मुक्त कर दिया। प्रेस के ऊपर नियन्त्रण रोक दिया। प्रान्तीय विधान सभाओं में मताधिकार का विस्तार किया गया। स्थानीय लोक प्रशासन के लिए अनेक प्रस्ताव पारित किये गये। इन गतिविधियों से प्रतिक्रियावादी अत्यधिक असन्तुष्ट एवं क्रुद्ध थे। परिणामस्वरूप मार्टिगनैक ने त्याग-पत्र दे दिया।

चार्ल्स दसवें का दृष्टिकोण था कि, "सुविधाओं ने लुईस सोलहवें को ध्वस्त कर दिया" और उसने जनता को किसी प्रकार की सुविधा नहीं देने का निर्णय किया। उसने कहा, "इन लोगों के साथ सद्व्यवहार करने का कोई मार्ग नहीं है, यह समय रुक जाने का है।" एक धर्मान्ध प्रतिक्रियावादी और एक प्रवासी राजकुमार पोलिगनैक (Polignac) को जुलाई, 1829 में प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। इस शासन का वह सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी प्रधानमन्त्री था। पद ग्रहण करते समय उसने घोषणा की कि उसका उद्देश्य "समाज का पुनर्गठन करना, पादरी वर्ग को राज्य में इसके पूर्व प्रभुत्व में पुनर्स्थापित करना, शक्तिशाली कुलीनतन्त्र उत्पन्न करना और इनको चारों ओर से विशेषाधिकारों से आवृत्त करना था।" पौलिगनैक का संसद के निम्न सदन चैम्बर ऑफ डिप्टीज में बहुमत नहीं था। समस्त देश में सरकार की नीतियों और गतिविधियों की कटु आलोचना हो रही थी। चार्ल्स दसवें ने समस्त विरोध का दमन करने के लिए ही अति पादरीवादी एवं अति प्रतिक्रियावादी षड्यन्त्रवादी कूटनीतिज्ञ पोलिगनैक को नियुक्त किया था।

चार्ल्स दसवें और चैम्बर ऑफ डिप्टीज के मध्य संघर्ष (Conflict between Charles X and Chamber of Deputies)—पौलिगनैक की नियुक्ति और उसकी निर्लज्ज एवं उत्तेजित करने वाली घोषणा ने संकट बढ़ा दिया, जिसने शीघ्र ही क्रान्ति का विस्फोट कर दिया। चैम्बर ऑफ डिप्टीज ने राजा से इस अलोकप्रिय मन्त्रि परिषद् को सेवा मुक्त करने का आग्रह किया। राजा ने घोषणा करते हुए उत्तर दिया, "उसके निर्णय अपरिवर्तनीय थे" उसने निर्वाचन द्वारा अपनी इच्छानुकूल चैम्बर आफ डिप्टीज प्राप्त करने की

आशा से चैम्बर आफ डिप्टीज भंग कर दी। मतदाताओं की भिन्न इच्छा थी। चुनाव में राजा और उसकी मन्त्रि परिषद् की भारी पराजय हुई। चार्ल्स ने कहा, वह समर्पण नहीं करेगा। उसने कहा, उसके भाई लुईस सोलहवें ने सुविधाएँ दी थीं उसका दुखान्त हुआ था। चार्ल्स ने सोचा कि उसने इतिहास से स्वयं कुछ सीखा था। यथार्थ में उसने गलत पाठ सीखा था।

जुलाई अध्यादेश (July Ordinances)—अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अन्य पद्धतियों एवं उपायों के असफल हो जाने के बाद चार्ल्स ने दमन करने का निश्चय किया। 26 जुलाई, 1830 को 4 अध्यादेश प्रवृत्त किये। अध्यादेश के अनुसार प्रेस की स्वतन्त्रता निरस्त कर दी गयी, चैम्बर आफ डिप्टीज भंग कर दी गयी, निर्वाचन प्रणाली में परिवर्तन कर दिया गया, मतदाताओं की संख्या 1,00,000 से कम करके 25,000 कर दी गयी और नये चुनाव के आदेश दिये। इस प्रकार राजा सर्वोच्च विधि निर्माता वन गया। शास-पत्र (Charter) भी उसके मार्ग में बाधक नहीं था। इन अध्यादेशों के अनुसार जनता केवल राजा की इच्छानुसार ही स्वतन्त्रताओं का उपभोग कर सकती थी। इन अध्यादेशों का विरोध नहीं करने का अर्थ था कि जनता ने शान्तिपूर्वक सरकार के लुईस चौदहवें के निरंकुश राजतन्त्र में रूपान्तरण को स्वीकार कर लिया।

सन् 1830 को यूरोप के इतिहास में क्रान्ति के वर्ष के रूप में मांना जाता है। इस क्रान्ति में शासकों के रूढ़िवादी नीति के विरोध में जनता के विद्रोह की भावना निहित थी। सन् 1815 से 1830 की अवधि में यूरोप में अधिकांश यथास्थिति समर्थक शासकों का बाहुल्य था। ये शासक रूढ़िवादी सिद्धान्तों को उस युग में प्रवृत्त करना चाहते थे, जब कि बौद्धिक एवं आर्थिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप जाग्रत जनता स्वीकार करने को तैयार नहीं थी।

जुलाई क्रान्ति, 1830 (July Revolution)—ये अध्यादेश जनता के लिए चुनौती थी जिसको जनता ने स्वीकार कर लिया। अध्यादेशों का निहितार्थ स्पष्ट होते ही जनसमुदाय का भीषण आक्रोश अभिव्यक्त होने लगा। सड़कों पर जनसमूह "मन्त्रिपरिषद को नीचे करो" (Down with the Ministry) और "शास-पत्र दीर्घायु हो" (Long live the Charter) के नारे लगाते हुए एकत्रित हो गया। बुधवार 28 जुलाई, 1830 को गृह युद्ध आरम्भ हो गया। विद्रोहियों में मुख्य रूप से पुराने सैनिक, राष्ट्रीय सुरक्षा दल के सैनिक, गणतन्त्रवादियों का समूह एवं श्रमिक सम्मिलित थे।

यह सशस्त्र संघर्ष केवल तीन दिन तक चला। यह इतिहास में गौरवशाली तीन दिन जुलाई क्रान्ति के रूप में विख्यात है। यह संघर्ष सड़कों पर हुआ और पेरिस तक सीमित था। विद्रोहियों की कुल संख्या 10 हजार थी और सरकार के भी पेरिस में केवल 14,000 सैनिक थे। पेरिस की सड़कें संकीर्ण एवं टेढ़ी थीं। ऐसी सड़कों पर तोपखाना भेजना सम्भव नहीं था। विद्रोहियों ने सड़कों पर इस प्रकार बड़े-बड़े पत्थर बिछा दिये थे, जो उनके लिए सुरक्षित दुर्ग का काम कर रहे थे। 27-28 जुलाई की रात्रि में सड़कों को सैकड़ों पत्थरों से बने हुए अवरोधों के द्वारा अवरुद्ध कर दिया था। इसके अतिरिक्त सड़कों पर पेड़, फर्नीचर, बक्स, ड्रम एवं अन्य अनेक वस्तुएँ डाल दी थीं। उस भीषण गर्मी और विद्रोहियों के सुनियोजित व्यवधानों के विरुद्ध सरकारी सैनिकों का संघर्ष करना बहुत कठिन हो गया था। 31 जुलाई, 1830 को चार्ल्स को अपनी पराजय और विद्रोहियों की विजय का अनुभव हो गया। उसने तत्काल अपने 9 वर्षीय पौत्र, बोर्डयूक्स के ड्यूक (Duke of Bordeaux) और बैरी के ड्यूक जिसकी हत्या कर दी गयी थी, के पुत्र के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया और परिवार

के साथ इंग्लैण्ड भाग गया। बाद में वह आस्ट्रिया चला गया जहाँ सन् 1836 में उसका देहान्त हो गया।

लुईस फिलिप (Louis Philippe)—राजतन्त्र और गणतन्त्र के मध्य अन्तिम निर्णय, गणतन्त्रवादियों के वास्तविक नेता लाफायते (Lafayette) के हाथों में था। उसने औरलियेन्स के ड्यूक लुईस फिलिप, बोर्बोन वंश के सहायक शाखा के अध्यक्ष और उदारवाद एवं लोकतान्त्रिक भावनाओं के प्रवल समर्थक का फ्रान्स के भावी राजा के रूप में चयन किया। 7 अगस्त, 1830 को चैम्बर आफ डिप्टीज ने विधिक शासक बोरड्यूक्स के दावे की उपेक्षा करते हुए लुईस फिलिप का आह्वान किया। इस प्रकार एक राजा को अपदस्थ कर दिया गया, अन्य को सिंहासनारूढ़ कर दिया गया और शास-पत्र (Charter) में मामूली संशोधन किया गया। लुईस फिलिप इस प्रस्ताव को स्वीकार करके सिंहासनारूढ़ हो गया। समानता, धार्मिक सहिष्णुता, प्रेस की स्वतन्त्रता और संसदीय प्रणाली स्थापित की गयी। शास- पत्र (Charter) के संशोधन द्वारा जनता को पूर्वापेक्षा अधिक स्वतन्त्रताएँ एवं हितों की सुरक्षा सुनिश्चित की गयी। गणतन्त्रवादियों के विरोध के उपरान्त राजतान्त्रिक व्यवस्था बनाये रखी गयी। राजा को आपातकाल अथवा अन्यथा अध्यादेश जारी करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। कैथोलिक धर्म ही फ्रान्स का राज्य धर्म था। राजा को दैविक अधिकार की अपेक्षा जनता की इच्छा के अनुरूप शासन करना था। सन् 1830 की क्रान्ति, सन् 1789 की क्रान्ति की पूरक थी। वैधता का सिद्धान्त ध्वस्त हो गया। बोर्बोन के स्थान पर औरलियन शासक स्थापित किया गया।

ग्रान्ट एवं ट्रैम्परले के अनुसार जुलाई क्रान्ति लाफायते और टैलीरेण्ड के प्रयास का परिणाम थी। उनकी योजना संवैधानिक राजतन्त्र स्थापित करने की थी। लुईस फिलिप एक उदारवादी संवैधानिक शासक था। जुलाई क्रान्ति ने फ्रान्स में सुदृढ़ संवैधानिक राजतन्त्र स्थापित किया।

जुलाई क्रान्ति का यूरोप पर प्रभाव (Influence of July Revolution on Europe)—यूरोप के समस्त देशों पर जुलाई क्रान्ति का सम्यक् प्रभाव पड़ा। यह व्यापक लोकप्रिय आन्दोलनों के लिए शुभ संकेत और प्रोत्साहन था, जिसने कुछ काल के लिए सन् 1815 में विएना काँग्रेस के अवसर पर निर्मित यूरोप की समस्त संरचना को ध्वस्त करने की गम्भीर चेतावनी दी थी। इसने यूरोप के समस्त शासकों के लिए तत्काल समस्या उत्पन्न कर दी। पेरिसवासियों द्वारा संवैधानिक सरकार प्राप्त करने में सफलता यथार्थ में उदारवाद, जनमत एवं लोकतान्त्रिक विचारों एवं मान्यताओं की विजय थी। लिप्सन ने कहा है, "सन् 1830 की क्रान्ति सन् 1789 की पूरक थी। सन् 1830 की क्रान्ति के परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता, समानता, संवैधानिक शासन धर्म निरपेक्षता आदि क्रान्तिकारी भावनायें सुदृढ़ हो गई।

बेल्जियम की क्रान्ति (Revolution of Belgium)—सन् 1815 में आयोजित विएना काँग्रेस ने फ्रान्स के उत्तर में फ्रान्स के भावी आक्रमणों की आशंका के परिप्रेक्ष्य में अवरोध के रूप में एक शक्तिशाली कृत्रिम राज्य नीदरलैण्ड का सृजन किया गया था। आस्ट्रिया के अधिकृत बेल्जियम का हालैण्ड के साथ विलय करके नीदरलैण्ड का उद्भव हुआ था। दोनों क्षेत्रों को औपचारिक दृष्टि से एक शासक के अधीन संयुक्त रूप से घोषित कर दिया था। लेकिन दोनों क्षेत्रों की जनता में समानताओं की अपेक्षा विभिन्नताएँ अनेक थीं और दोनों के मध्य सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों की कल्पना दिवा-स्वप्न था। दोनों क्षेत्रों, बेल्जियमवासियों और हालैण्डवासियों की भाषाएँ एक-दूसरे से भिन्न थीं। बेल्जियमवासी

कैथोलिक धर्मावलम्बी थे, जबकि हालैण्डवासी प्रोटेस्टेन्ट धर्म के अनुयायी थे। डच कृषि प्रधान एवं वाणिज्यिक थे और उन्मुक्त व्यापार का समर्थन करते थे। बेल्जियमवासी उत्पादक एवं व्यापार की सुरक्षा में विश्वास करते थे।

बेल्जियमवासियों के लिए हालैण्ड के साथ विलय प्रारम्भ से ही दुखद अनुभूति थी। राज्य के समस्त प्रशासनिक एवं सेना के उच्च पदों पर डच जनता का प्रभुत्व था। बेल्जियमवासियों के साथ द्वितीय श्रेणी के नागरिक के अनुरूप व्यवहार होता था और उनको हेय समझा जाता था। यद्यपि जनसंख्या की दृष्टि से बेल्जियमवासियों का बहुमत था। सरकारी कार्य पद्धति में डच भाषा को आरोपित करने का प्रयास किया जा रहा था। बेल्जियम के अस्तित्व एवं पहचान को समाप्त करने के प्रयास हो रहे थे। बेल्जियम में गम्भीर आक्रोश था। आरोपित एकीकरण में प्रारम्भ से असन्तोष एवं तीव्र मतभेद थे। फ्रान्स की तीन दिवसीय क्रान्ति ने बेल्जियमवासियों में सुषुप्त राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत किया और स्वतन्त्र अस्तित्व एवं पहचान के लिए प्रेरित किया। यद्यपि राजा ने दोनों क्षेत्रों की जनता का समन्वय करने का प्रयास किया, लेकिन इससे दोनों में परस्पर कटुता बढ़ गयी। बेल्जियमवासियों ने पृथक् प्रशासन की माँग की जिसका राजा विलियम ने विरोध किया। बेल्जियम की जनता ने पेरिस के जनसमूह का अनुकरण करते हुए विद्रोह कर दिया।

बेल्जियम राज्य का उद्भव (Creation of Belgium)—फ्रान्स की जुलाई क्रान्ति ने बेल्जियम में विद्यमान प्रज्वलनशील सामग्री में चिंगारी का कार्य किया। पेरिस के अनुरूप ही ब्रूसेल्स की सड़कों पर विद्रोहियों एवं राज्य की सेना के मध्य भीषण सशस्त्र संघर्ष हुआ। राज्य के सैनिकों को निकाल दिया गया और बेल्जियम ने 4 अक्टूबर, 1830 को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में घोषणा कर दी। अन्तरिम विधान सभा का आह्वान किया गया। विद्रोह की योजना पोलिगनाओं (Polignao) ने बनायी थी और विदेशी विरोधियों, जिनमें अधिकांश फ्रान्सीसी थे, को उत्तेजित किया। फ्रान्सीसियों की बेल्जियम विद्रोहियों के साथ पूर्ण सहानुभूति थी, क्योंकि बेल्जियन विद्रोह ने अवरोधक राज्य की शक्ति क्षीण कर दी, और बेल्जियम के फ्रान्स के साथ विलय की सम्भावनाओं को बढ़ा दिया। विद्रोह की हिंसा, फ्रान्सीसी दूतों एवं स्वयंसेवकों की गतिविधियों, और डच सैनिकों द्वारा एन्टवर्प पर बम वर्षा ने शान्तिपूर्ण समाधान की समस्त सम्भावनाओं को समाप्त कर दिया। बेल्जियम की स्वतन्त्रता और हालैण्ड से पृथक्कीकरण ने सन् 1818 के शान्ति समझौत को समाप्त कर दिया था।

फ्रान्स के शासक लुईस फिलिप की प्रबल इच्छा शान्ति बनाये रखने की थी, क्योंकि वह भली-भाँति जानता था, कि बेल्जियम के फ्रान्स के साथ विलय का यूरोप की समस्त शक्तियाँ सशस्त्र विरोध करेंगी और ऐसी स्थिति में फ्रान्स के सिंहासन से अपदस्थ होने और स्वयं की हत्या की बहुत सम्भावना थी। टैलीरैण्ड का विश्वास था कि फ्रान्स के लिए मित्र बनाना और अपने एकाकीपन को समाप्त करना अतीव आवश्यक था। टैलीरैण्ड फ्रान्स के राजदूत के रूप में इंगलैण्ड गया और वहाँ उसने वैलिंगटन और विलियम चतुर्थ से विचार-विमर्श करके उनको आश्वस्त किया कि फ्रान्स बेल्जियम में विद्रोह का साम्राज्य विस्तार के लिए उपयोग नहीं करेगा। उसने हस्तक्षेप नहीं करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए इच्छा व्यक्त की यूरोप की समस्त शक्तियों को इस सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। फ्रान्स और इंगलैण्ड में परस्पर सहमति हो गयी। बेल्जियम के प्रश्न पर समस्त यूरोपीय शक्तियों द्वारा फ्रान्स के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की सम्भावनाएँ समाप्त हो गयीं। लन्दन में यूरोपीय शक्तियों का सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें बेल्जियम की स्वतन्त्रता को स्वीकार करने

का प्रस्ताव रखा गया। सन् 1830 के अन्त से पूर्व लन्दन सम्मेलन ने सिद्धान्त रूप में बेल्जियम की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी। जनवरी, 1831 में सीमांकन करने वाली विज्ञप्ति पर यूरोपीय शक्तियों के हस्ताक्षर हो गये। हालैण्ड और बेल्जियम को यूरोपीय शक्तियों द्वारा क्षेत्रीय सीमांकन के लिए सहमति व्यक्त करना शेष था।

बेल्जियम की जनता फ्रान्स के राजा लुईस फिलिप के द्वितीय पुत्र को अपना राजा बनाना चाहती थी, लेकिन यूरोपीय शक्तियाँ उस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं थीं। अन्त में फ्रान्स एवं इंग्लैण्ड के मध्य सहमति के आधार पर सेक्सकोबर्ग के लियोपोल्ड को बेल्जियम का राजा बनाने का निर्णय किया गया। लियोपोल्ड ने इस शर्त के साथ प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि वेल्जियम के हित में सीमाओं के कुछ परिवर्तन किये जायेंगे।

वेल्जियम की सीमा को पुनः सीमांकित करने की समस्या लक्जमवर्ग की ग्रान्ड डची की स्थिति के कारण उत्पन्न हुई थी। सन् 1814 में यह डची हालैण्ड को दे दी गयी थी लेकिन सन् 1830 में इस डची (Duchy) की जनता ने बेल्जियम की विद्रोही जनता के साथ सक्रिय सहयोग किया। परिणामस्वरूप एक दुर्ग के अतिरिक्त अन्य समस्त क्षेत्र बेल्जियम के अधीन चला गया। लन्दन सम्मेलन ने लक्जमबर्ग को हालैण्ड का भाग घोषित कर दिया। लियापोल्ड के इस निर्णय के विरुद्ध निवेदन पर, लक्जमबर्ग के प्रश्न पर भविष्य में विचार-विमर्श करने का निश्चय किया गया। हालैण्ड ने 50,000 सैनिकों की विशाल सेना वेल्जियम के विरुद्ध भेज दी और लियोपोल्ड ने फ्रान्स से सहायता के लिए निवेदन किया। परिणामस्वरूप फ्रान्सीसी सेना तत्काल पहुँच गयी। डच सेना पीछे हट गयी और फ्रान्स की सेना भी वापिस लौट गयी। लन्दन सम्मेलन में पुनः इस प्रश्न पर विचार हुआ और लन्दन सम्मेलन ने लक्जमवर्ग के हालैण्ड और बेल्जियम के मध्य विभाजन की अनुशंसा की। बेल्जियम ने इसको स्वीकार कर लिया, लेकिन हालैण्ड ने अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप वेल्जियम एवं अन्य यूरोपीय शक्तियों के मध्य एक सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। सन् 1832 के प्रारम्भ में समस्त यूरोपीय शक्तियों ने बेल्जियम को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता दे दी और इंग्लैण्ड के पामर्स्टन ने फ्रान्स को वेल्जियम के किसी क्षेत्र पर नियन्त्रण को मना कर दिया।

स्वतन्त्र बेल्जियम के स्थापित होने के उपरान्त भी हालैण्ड के सशस्त्र विरोध की समस्या पूर्ववत थी। डच शासक का एन्टवर्प (Antwerp) के दुर्ग पर नियन्त्रण था और वह इस सन्दर्भ में किसी की सुनने के लिए तैयार नहीं था। फ्रान्स की सेना ने दुर्ग की घेराबन्दी कर दी और ब्रिटिश युद्धपोत ने स्कैल्ट नदी (Scheldt River) मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। भीपण वम वर्षा के बाद दुर्ग का पतन हो गया और शत्रुता समाप्त हो गयी। शान्ति के लिए पुनः वार्ता आरम्भ हो गयी। बेल्जियम को वह सब कुछ मिल चुका था जो वह चाहता था। इसलिए शान्ति वार्ता के लिए कोई जल्दी नहीं थी। हालैण्ड के राजा ने केवल अपनी जिद के कारण संकोच किया। यह स्थिति अनेक वर्षों तक चलती रही। सन् 1839 में लन्दन की सन्धि के द्वारा हालैण्ड सहित समस्त यूरोपीय शक्तियों ने बेल्जियम को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता दे दी और बेल्जियम की अनवरत तटस्थता का आश्वासन दिया गया। तटस्थता के आश्वासन को सन् 1914 में जर्मनी ने भंग किया था और वह इंग्लैण्ड के प्रथम विश्वयुद्ध में प्रवेश का तात्कालिक कारण था।

बेल्जियम की स्वतन्त्रता राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की महत्वपूर्ण विजय थी और विएना समझौते का पहला उल्लंघन और मैटरनिख प्रणाली त्यागने का पहला महत्वपूर्ण उदाहरण था।

पोलैण्ड में क्रान्ति (Revolution in Poland)—मध्यकालीन यूरोप में पोलैण्ड रूस की अपेक्षा अधिक विशाल राज्य था। सन् 1772 से सन् 1795 तक तीन बार पोलैण्ड की सीमाओं में परिवर्तन किया गया। सन् 1763 में पोलैण्ड के शासक आगस्तस तृतीय के निधन के बाद प्रशा के राजा फ्रेडरिक और रूस की रानी कैथरिन ने एक योग्य पोल सरदार स्टेलिस लास को सिंहासनारूढ़ किया। उसने सामन्तों की शक्ति को समाप्त करने का प्रयास किया। रूस, प्रशा एवं आस्ट्रिया ने विरोध करते हुए सन् 1772 में एक सन्धि द्वारा पोलैण्ड का 1/4 भाग ले लिया। रूस को उत्तर पूर्व का भाग तथा ऊपरी नीपर नदी का तटीय भाग मिला। आस्ट्रिया को गैलेशिया का क्षेत्र प्राप्त हुआ और प्रशा को उसके पश्चिम में स्थित क्षेत्र मिला।

दूसरी बार रूस और प्रशा ने आक्रमण करके पराजित किया और रूस ने पूर्व की ओर वहुत बड़े क्षेत्र पर नियन्त्रण किया एवं प्रशा ने पोलैण्ड के पश्चिमी क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित किया।

सन् 1794 में पोलैण्ड में विद्रोह का दमन करने के लिए रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया ने संयुक्त रूप से आक्रमण करके पराजित किया और पोलैण्ड का विभाजन करके स्वतन्त्र पोलैण्ड का अस्तित्व समाप्त कर दिया। पोलैण्डवासियों को पूर्ण आशा थी कि फ्रान्स की क्रान्ति और बाद में नैपोलियन उनके राष्ट्र, जिसका अनियन्त्रित ढंग से विनाश किया गया था, को पुनर्स्थापित कर दिया जायेगा। सन् 1815 में विएना काँग्रेस के अवसर पर रूस के जार सहृदय एवं स्वच्छन्दतावादी भावनाओं से अनुप्राणित अलेक्जेण्डर प्रथम ने प्राचीन पोलैण्ड राज्य को पुनर्स्थापित करने की योजना बनायी। योजनानुसार रूस के साम्राज्य से पूर्णतया विलग पोलैण्ड एक पृथक् राज्य होना चाहिए। वह स्वयं रूस का सम्राट और पोलैण्ड का राजा होगा। दो राज्यों का संघ केवल व्यक्तिगत होगा।

अठारहवीं शताब्दी में अलेक्जेण्डर पोलैण्ड को इसके समस्त अधिकृत क्षेत्र पुनः देना चाहते थे। इसको सम्भव बनाने के लिए प्रशा और आस्ट्रिया को तीन विभाजनों में प्राप्त प्रान्तों को छोड़ना पड़ता। विएना काँग्रेस में पुराने पोलैण्ड का सृजन नहीं हो पाया। यद्यपि प्रशा और आस्ट्रिया ने पोलैण्ड के कुछ क्षेत्रों को वापिस दे दिया था, लेकिन कुछ क्षेत्रों पर अपना नियन्त्रण रखा। सन् 1815 में सृजित नया पोलिश राज्य ऐतिहासिक विशाल पोलैण्ड का एक भाग था। इसमें रूस द्वारा प्राप्त किये हुये समस्त पोलिश क्षेत्र भी सम्मिलित नहीं थे। इस नवगठित पोलैण्ड का जार अलेक्जेण्डर प्रथम को राजा बनना था। अलेक्जेण्डर ने इस राज्य को संविधान स्वीकृत किया और पर्याप्त शक्तियों से सम्पन्न द्विसदनीय संसद स्थापित की। रोमन कैथोलिक धर्म को राज्य धर्म घोषित किया। अन्य धर्मावलम्बियों के साथ सहृदय सहिष्णुता का व्यवहार किया गया। प्रेस की स्वतन्त्रता सुनिश्चित की गयी। पोलिश को सरकारी भाषा बना दिया। सरकार के समस्त उच्च पदों पर रूसवासियों की अपेक्षा पोलैण्ड वासियों को नियुक्त किया गया। अलेक्जेण्डर के शासन काल में पोलैण्ड की अपनी प्रशासनिक व्यवस्था एवं अपनी सेना थी। पोलैण्ड के अतिरिक्त मध्य यूरोप के अन्य किसी राज्य में इतनी अधिक उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक संस्थाएँ नहीं थीं। संवैधानिक राजतन्त्र के रूप में सुखद एवं समृद्ध जीवन आरम्भ होने वाला था। पोलैण्डवासियों ने इससे पूर्व कभी भी इतनी अधिक नागरिक सुविधाओं का उपभोग नहीं किया था। पोलैण्डवासी अपने पुराने सुखद, समृद्ध एवं स्वतन्त्र जीवन को भूले नहीं थे। दुर्भाग्य से उनके लिए इतना पर्याप्त नहीं था। लेकिन इस शासन के समक्ष प्रारम्भ से ही अनेक बाधायें थीं। रूसवासियों ने पुनर्स्थापित पोलैण्ड, विशेष रूप से संवैधानिक पोलैण्ड के विचार का विरोध किया। रूस को संविधान

स्वीकृत नहीं किया गया था। रूसवासियों और पोलैण्डवासियों के मध्य शताब्दियों पुरानी ईर्ष्या, द्वेष, घृणा एवं शत्रुता पूर्ववत चल रही थी। इसके अतिरिक्त पोलैण्ड का सर्वाधिक प्रभावशाली वर्ग, उदारवादी सरकार की अपेक्षा पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता था। अलेक्जेण्डर किसी भी स्थिति में स्वतन्त्रता देने के लिए तैयार नहीं था। उसके उद्देश्य और पोलैण्डवासियों की आकांक्षाएँ परस्पर विरोधी थीं।

पोलैण्ड में असन्तोष की भावना सर्वत्र व्याप्त थी। लेकिन उदार हृदय अलेक्जेण्डर प्रथम के सन् 1825 में देहावसान के बाद उसका भाई निकोलस प्रथम रूस के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। निकोलस प्रथम रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी एवं निरंकुशतावादी था। उसकी प्रशासनिक गतिविधियों के कारण पोलैण्ड की देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित जनता में अत्यधिक अविश्वास, व्यग्रता एवं असन्तोष था। शासक और शासित के मध्य कटुता बहुत बढ़ गयी थी। पोलैण्ड की स्वतन्त्रता प्रिय जनता देश की स्वतन्त्रता के उद्देश्य से सशस्त्र संघर्ष करने के लिए पूरी तरह तैयार थी। वे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में थे। फ्रान्स में सफल जुलाई क्रान्ति के समाचार ने देशभक्त पोलैण्डवासियों को उत्तेजित किया। कुछ उत्साही, साहसी एवं उत्कृष्ट देशभक्त पोलैण्डवासियों के नेतृत्व में जनता ने निकोलस प्रथम के शासन के विरुद्ध वारसा में सशस्त्र विद्रोह कर दिया और देश के समस्त भागों ने राजधानी का अनुसरण किया। ब्रिटेन और फ्रान्स अपने पश्चिमी क्षेत्र की समस्याओं में व्यस्त थे और मौखिक समर्थन के अतिरिक्त सैनिक सहायता नहीं दी। रूस की विशालकाय, सुप्रशिक्षित, अनुशासित, आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेना के समक्ष पोलैण्ड द्वारा अकेले ही अपनी चिर आकांक्षित स्वतन्त्रता प्राप्त करना असम्भव था। पोलैण्ड को विदेशों से समर्थन में सशस्त्र हस्तक्षेप की आशा थी, लेकिन इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी के जनसमुदाय में पोलैण्ड की स्वतन्त्रता के प्रति व्यापक रूप से सहानुभूति एवं प्रबल समर्थन के उपरान्त भी इन देशों की सरकारों ने मौखिक सहानुभूति के अतिरिक्त सक्रिय सहयोग नहीं दिया। पोलैण्ड द्वारा अकेले संघर्ष का परिणाम पहले ही ज्ञात था। पोलैण्डवासियों ने अदम्य साहस, उत्साह एवं शौर्य के साथ युद्ध किया, लेकिन पोलैण्ड की सेना के पास कुशल नेतृत्व, सुसंगठन, आधुनिकतम शास्त्रास्त्रों एवं उच्च सैनिक अधिकारियों के प्रति अधीनता की भावना का अभाव था। विद्रोहियों का सशस्त्र संघर्ष जनवरी, 1831 से सितम्बर, 1831 तक चला। पोलैण्ड की सेना में विद्यमान आन्तरिक मतभेदों ने संघर्ष को दुर्बल कर दिया था। पोलैण्ड की राजधानी वारसा पर रूसी सेना का पूर्ण नियन्त्रण हो गया। पोलैण्ड का एक पृथक् राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया और रूस का एक प्रान्त मात्र रह गया। इसके संविधान को समाप्त कर दिया गया और रूस के जार निकोलस प्रथम ने पोलैण्डवासियों के प्रति अपनी सर्वाधिक कठोरता, क्रूरता, पाशविकता और निरंकुशता का परिचय दिया। पोलैण्ड की जनता पर अनकी मातृभाषा के स्थान पर रूसी भाषा आरोपित की गयी। पोलैण्ड के कैथोलिक धर्म के स्थान पर रूढ़िवादी यूनानी चर्च स्थापित किया गया। विद्रोहियों को पाशविक दण्ड दिये गये। अनेक को मृत्यु दण्ड दिया गया और अनेक को निष्कासित कर साइबेरिया भेज दिया गया। सहस्त्रों पोलिश अधिकारी और सैनिक पश्चिमी यूरोपीय देशों में चले गये और पेरिस, बर्लिन एवं विएना में स्वतन्त्रता के लिए युद्ध करने को सदैव तत्पर क्रान्तिकारी तत्व बन गये। वे हर स्थान पर निरंकुश अत्याचारों के निष्ठावान एवं समर्पित शत्रु थे।

जर्मनी में क्रान्ति (Revolution in Germany)—सन् 1830 की जुलाई क्रान्ति के प्रभाव से जर्मनी वंचित नहीं रह सका। जर्मनी 360 छोटे-छोटे राज्यों का क्षेत्र था। नैपोलियन

बोनापोर्ट ने अनेक छोटे-छोटे राज्यों का गठन करके एक संघ बनाया और जर्मनी में राष्ट्रीय भावना का संचार किया। विएना काँग्रेस ने जर्मनी को 39 राज्यों में विभाजित करके एक संघ बनाया और इसकी संयुक्त संसद (Diet) का अध्यक्ष आस्ट्रिया का चान्सलर मैटरनिख था और प्रशा इस संसद का उपाध्यक्ष था। विएना काँग्रेस के पुनर्गठन से जर्मन जनता की राष्ट्रीय भावनाओं को आघात पहुँचा। जुलाई क्रान्ति का समाचार मिलते ही उत्तर जर्मनी के अनेक छोटे राज्यों जैसे बुंसविक, हनोबर, सैक्सोनी एवं हैस्से में राष्ट्रवादी संविधान के लिए जनता ने विद्रोह कर दिया। इन राज्यों के शासकों ने विद्रोहियों की माँग स्वीकार करते हुए नये उदारवादी संविधान प्रवृत्त किये। दक्षिणी जर्मनी में स्थित बावेरिया, वर्टेम्बर्ग राज्यों ने सन् 1815 में प्रवृत्त उदारवादी संविधानों की पुष्टि कर दी। परिणामस्वरूप जर्मनी के समस्त छोटे राज्यों में संवैधानिक सरकारें स्थापित हो गयीं। लेकिन उनके नेता आस्ट्रिया एवं प्रशा अब भी प्राचीन निरंकुशतावाद के प्रति समर्पित थे। मैटरनिख ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। सन् 1832 में जर्मन परिसंघ की संसद (Diet) का अधिवेशन आयोजित किया गया। इसमें संसद ने सन् 1819 के बाद प्रवृत्त कार्ल्सवाद की आज्ञप्तियों की पुष्टि कर दी। साथ ही मैटरनिख की अध्यक्षता में विएना सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसने प्रेस और विश्वविद्यालयों के विरुद्ध दमनकारी उपाय प्रयुक्त करने और शासक और शासितों के मध्य विवादों का निर्णय करने के उद्देश्य से न्यायालय स्थापित करने का निर्णय किया गया। क्रान्तिकारी गीतों, चिन्हों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, गुप्त समितियों को भंग कर दिया। जनता को स्वीकृत नये संविधानों को समाप्त कर दिया गया। अनेक राष्ट्रवादियों को बन्दी बनाकर कारागृह में बन्द कर दिया गया एवं अनेक को निष्कासित कर दिया। इस प्रकार मैटरनिख ने क्रान्ति का दमन कर दिया। दमन के उपरान्त अखिल जर्मन राष्ट्रीयता का निरन्तर विकास होता गया। अनेक उत्कृष्ट साहित्यकारों एवं दार्शनिकों ने अपनी कृतियों में जर्मन राष्ट्रीयता के गौरव को अभिव्यक्त किया।

इटली में क्रान्ति—सन् 1815 में विजयी राष्ट्रों के विएना काँग्रेस के नाम से इतिहास में विख्यात सम्मेलन के निष्कर्षों के अनुसार इटली अनेक छोटे राज्यों में विभाजित हो गया था और आस्ट्रिया का इन राज्यों पर प्रभुत्व था। विभाजन ने इटली की राष्ट्रीय भावनाओं को आघात पहुँचाया था। परिणामस्वरूप जनता में अत्यधिक असन्तोष एवं आक्रोश था। सन् 1830 की जुलाई क्रान्ति ने इटली में व्याप्त असन्तोष को उत्तेजित किया। पहले से कार्यरत गुप्त समितियाँ सक्रिय हो गयीं। परिणामस्वरूप परमा, मोडेना एवं पोप के साम्राज्य के कुछ राज्यों में विद्रोह आरम्भ हो गये। मोडेना का शासक अपना राज्य छोड़कर कहीं भाग गया। परमा की शासिका मेरिया लुईसा विद्रोहियों से अपनी पराजय स्वीकार करते हुएं अपने पिता के साम्राज्य आस्ट्रिया भाग गयी। आस्ट्रिया अपने सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अधिकृत क्षेत्र लोम्बार्डी से स्थिति पर नजर रखे हुए था। मैटरनिख ने इन राज्यों के आन्तरिक विषयों में सशस्त्र हस्तक्षेप किया और सेना ने विद्रोहों का दमन कर दिया और उनके शासकों को पुनर्स्थापित कर दिया। सन् 1830 के असफल विद्रोह का एकमात्र परिणाम इटलीवासियों की आस्ट्रिया के प्रति घृणा एवं शत्रुता पूर्वापेक्षा अधिक बढ़ गयी। सन् 1831 के उपरान्त यत्र-तत्र छोटी घटनाओं के अतिरिक्त लगभग 17 वर्ष तक इटली में शान्ति ही रही।

स्पेन में क्रान्ति—सन् 1815 में मित्र राष्ट्रों ने स्वेच्छाचारी एवं प्रतिक्रियावादी निरंकुश शासक फर्डीनिण्ड सप्तम को पुनर्स्थापित किया। उसने सिंहासनारूढ़ होते ही संसद भंग कर दी और प्रवृत्त संविधान समाप्त कर दिया। प्रेस, जनसभाओं एवं भाषणों पर कठोर प्रतिबन्ध

लगा दिया। देशभक्तों को बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया। दमनात्मक एवं निकृष्ट प्रतिक्रियावादी गतिविधियों का जनसमूह ने सशस्त्र विद्रोह के माध्यम से विरोध अभिव्यक्त किया। सन् 1820 में फर्डीनेण्ड स्पेन छोड़कर अन्यत्र चला गया। वैरोना में चतुर्मुखी सम्मेलन ने इंग्लैण्ड के विरोध के उपरान्त फ्रान्स को स्पेन के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने के लिए अधिकृत किया। फ्रान्स ने विद्रोह का दमन करके फर्डीनेण्ड सप्तम को पुनर्स्थापित कर दिया। तीव्र असन्तोष एवं आक्रोश सर्वत्र व्याप्त था।

स्पेन में संवैधानिक सरकार के लिए संघर्ष के साथ सिंहासन के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर विवाद मिश्रित हो गया। फर्डीनेण्ड सप्तम के निधन के उपरान्त स्पेन का सिंहासन सम्राट की युवा पुत्री इसाबेल्ला (Isabella) और उसके भाई डान कार्लोस (Don Carlos) के लिए विवाद का कारण बन गया। इसाबेल्ला को अपनी माँ एवं उदारवादियों का समर्थन प्राप्त था। इसाबेल्ला ने संवैधानिक सरकार का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया था। निरंकुशतावादी और पादरी वर्ग डान कार्लोस का समर्थन कर रहा था। तदुपरान्त इसाबेल्ला ने इंग्लैण्ड और फ्रान्स की सहायता से अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और डान कार्लोस को निष्कासित कर दिया।

पुर्तगाल को संवैधानिक शासक की प्राप्ति—सन् 1807 में नैपोलियन ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और पुर्तगाल का शासक जॉन षष्ठम अमेरिका स्थित उपनिवेश ब्राजील चला गया। तदुपरान्त राष्ट्रवादियों का पूर्ण नियन्त्रण हो गया। लेकिन चतुर्मुखी संघ ने जॉन षष्ठम को ब्राजील से बुलाकर पुनर्स्थापित किया। जॉन षष्ठम ने सिंहासनारूढ़ होते ही दमनकारी निरंकुशतावादी शासन आरम्भ कर दिया। प्रतिक्रियावादी शासन के विरुद्ध जनता में व्यापक असन्तोष एवं आक्रोश था। जॉन षष्ठम के देहावसान के उपरान्त उसके पुत्र पेड्रो प्रथम, जो ब्राजील का राज्यपाल था, को पुर्तगाल का शासक बनाया गया, लेकिन वह अपनी पुत्री डोना मारिया को पुर्तगाल का शासन देकर स्वयं ब्राजील चला गया। इस प्रकार स्पेन के अनुरूप सिंहासन पर दावे से सम्बन्धित विवाद डोना मारिया (Donna Maria) एवं पेड्रो प्रथम के भाई डोम मिगयुल (Dom Miguel) के मध्य था। सन् 1828 में डोम मिगयुल डोन मारिया को अपदस्थ करके स्वयं पुर्तगाल का राजा बन गया और उसने डोन मरिया द्वारा प्रवृत्त संविधान को समाप्त कर प्रतिक्रियावादी, निर्मम एवं क्रूर निरंकुशतावादी शासन आरम्भ किया। सर्वत्र जनसमुदाय में व्यापक असन्तोष एवं आक्रोश व्याप्त था। इंग्लैण्ड और फ्रान्स ने इसाबेल्ला के पक्ष का सक्रिय समर्थन किया था और इन दो शक्तियों ने स्पेन एवं पुर्तगाल के साथ मिलकर चतुर्गुट संघ का गठन किया। पुर्तगाल के देशभक्तों ने जुलाई, 1830 की क्रान्ति से प्रेरित होकर सशस्त्र विद्रोह कर दिया और डोम मिगयुल को पराजित करके राज्य छोड़कर पलायन करने के लिए बाध्य कर दिया। तदुपरान्त डोना मारिया ने संवैधानिक शासक के रूप में शासन किया।

ग्रेट ब्रिटेन पर प्रभाव—सन् 1830 में फ्रान्स में सफल जुलाई क्रान्ति के समय इंग्लैण्ड में टोरी दल, जो रूढ़िवादी था, का शासन था और वैलिंगटन का ड्यूक प्रधानमन्त्री एवं मैटरनिख के घनिष्ठ मित्रों में था। उस समय धनी, सम्पन्न, कुलीनों एवं भू-स्वामियों को ही मताधिकार प्राप्त था। जनता में इस सीमित मताधिकार के कारण व्यापक रूप से असन्तोष एवं आक्रोश था। वैलिंगटन ने लोकतान्त्रिक एवं उदारवादी सुधारों का कठोरता के साथ विरोध किया। सन् 1830 में जार्ज चतुर्थ के देहावसान के उपरान्त उदारवादी एवं सहृदय विलियम चतुर्थ सिंहासनारूढ़ हुआ। सन् 1831 के आम चुनावों में ह्विग (Whig उदारवादी) संसद के निम्न सदन में बहुमत में आ गये और उदारवादी लार्ड ग्रे प्रधानमन्त्री बने। निम्न

सदन, हाउस आफ कामन्स ने मताधिकार सम्बन्धित विधेयक पारित कर दिया किन्तु रूढ़िवादी उच्च सदन, हाउस आफ लार्ड्स ने विधेयक को अस्वीकार कर दिया। इसके विरोध में समस्त इंग्लैण्ड में विद्रोह हो गये। अन्ततोगत्वा हाउस आफ लार्ड्स ने भी पहले सुधार विधेयक को पारित कर दिया। इस प्रकार इंग्लैण्ड में मताधिकार का विस्तार हो गया। मैरियट ने विचार व्यक्त किया है कि इस विधेयक के पारित होने से स्पष्ट हो गया कि अब शक्ति सम्राट के हाथ में नहीं है और आवश्यकतानुसार उसे हाउस आफ लार्ड का समर्थन करने की अपेक्षा हाउस आफ कामन्स का समर्थन करना होगा।

अमेरिका पर प्रभाव—सन् 1830 में फ्रान्स की जुलाई क्रान्ति के प्रभाव से संयुक्त राज्य अमेरिका भी वंचित नहीं रहा। इस क्रान्ति से पूर्व अमेरिका का मानव समाज पूँजीपति एवं श्रमिक दो वर्गों में विभाजित था। पूँजीपति वर्ग निरन्तर धनी एवं सम्पन्न हो रहा था। और श्रमिक वर्ग की स्थिति दयनीय हो रही थी। वे दास सदृश्य जीवनयापन कर रहे थे। सफल जुलाई क्रान्ति ने श्रमिकों में नवीन चेतना एवं उत्साह का संचार किया। दास प्रथा विरोधी समितियों का गठन किया गया और इस प्रथा के विरोध में जनसमुदाय ने विभिन्न भागों में विद्रोह किये। अमेरिका के शासकों ने अनेक श्रमिक सुधार सम्बन्धी कानून पारित किये। जुलाई क्रान्ति के परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रचलित दास प्रथा का उन्मूलन हो गया।

जुलाई क्रान्ति का मूल्यांकन—फ्रान्स की जुलाई क्रान्ति समस्त यूरोप के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके परिणामस्वरूप बेल्जियम एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया। फ्रान्स में संवैधानिक सरकार स्थापित हुई और इंग्लैण्ड में संवैधानिक एवं संसदीय सुधार हुए। दूसरे शब्दों में, उदारवाद एवं राष्ट्रीयता के प्रबल विरोधी एवं इनके पूर्णरूप से दमन और उन्मूलन के लिए कृत संकल्प मैटरनिख के उपरान्त उन सिद्धान्तों का सफलतापूर्वक प्रतिपादन हुआ। इसके अतिरिक्त फ्रान्स के सिंहासन पर ओरलिएन्स वंश के व्यक्ति का आरूढ़ होना विएना काँग्रेस में स्वीकृत वैधता के सिद्धान्त को घातक आघात था।

बेल्जियम की स्वतन्त्रता के लिए प्राप्त मान्यता, विएना काँग्रेस में व्यापक रूप से निर्मित कृत्रिम संरचना के ध्वस्त होने का सूत्रपात थी। विएना समझौते में यह पहली बड़ी खाई थी, एक ऐसी खाई जो निरन्तर चौड़ी होती गयी, जब तक समस्त कृत्रिम ढाँचा धराशायी नहीं हो गया! राष्ट्रीयता के सिद्धान्त ने अपनी पहली विजय प्राप्त की थी, और इसने रूपान्तरण भी प्राप्त किये थे। बेल्जियम स्वतन्त्रता का फ्रान्स और इंग्लैण्ड दोनों ने समर्थन किया था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दोनों देशों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों का समर्थन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था और इस प्रकार दोनों देशों ने स्वयं को मैटरनिख की नीति के विरोध में कर लिया था। इसके उपरान्त ब्रिटेन और फ्रान्स दोनों देशों की दलित व्यक्तियों के प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष के प्रबल समर्थकों के रूप में गणना की जा सकती थी। निरंकुशता के कठोर शिकंजे के नीचे छटपटाते यूरोप की यह एक महान् उपलब्धि थी। अस्तु यद्यपि प्रतिक्रियावादियों की इटली जर्मनी और पोलैण्ड जैसे कुछ देशों में विजय हुई, जुलाई क्रान्ति का जनता के हितों के लिए दूरगामी परिणाम हुए। जुलाई क्रान्ति मध्य वर्ग एवं लोकसम्प्रभुता के सिद्धान्त की महान सफलता थी। राजभक्त कुलीन वर्ग के लिए एक आघात थी और उसने उन्हें एक बार पुनः विभाजित कर दिया।

सन् 1830 तक बोर्बो शासन ने कृषक वर्ग को डराया था और मध्य वर्ग को हतोत्साहित किया था। परिणामस्वरूप, सरकार की संकट की स्थिति में जनता निर्विकार होकर सरकार का पतन देखती रही। दुर्भाग्यपूर्ण अन्त के उपरान्त भी पुनर्स्थापन काल को पूर्णतया

असफल नहीं कहा जा सकता। लम्बे युद्धकाल और बाह्य आक्रमण से उत्पन्न अव्यवस्था और तनाव से फ्रान्स मुक्त हो गया था। देश की जनसंख्या सन् 1821 में 3·05 करोड़ से बढ़कर सन् 1831 में 3·26 करोड़ हो गयी थी। सन् 1818 में पेरिस में पहली बचत बैंक स्थापित की गयी थी और इनके कार्य-क्षेत्र की परिधि का विस्तार किया गया था। सड़कों में पर्याप्त सुधार किया गया था। नहर व्यवस्था के क्षेत्र में 921 किलोमीटर की वृद्धि की गयी थी। राज्य संरक्षण के परिणामस्वरूप कृषि और उद्योग में भी पर्याप्त उन्नति हुई। फ्रान्स ने इस अवधि में विदेशी विषयों में शान्ति, देश में स्थिरता, सम्पन्नता और क्रियाशील प्रबुद्धता का अनुभव किया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. यूरोप के विभिन्न देशों पर फ्रान्स की सन् 1830 की क्रान्ति के प्रभावों की विवेचना करें।
   Discuss the effects of the French Revolution of 1830 on the different countries of Europe. (पटना, 1996)
2. फ्रान्स पर 1830 की क्रान्ति के प्रभावों का वर्णन करें।
   Describe the impact of the Revolution of 1830 in France.
   (पटना, 1998; कानपुर, 1994)
3. फ्रान्स की क्रान्ति के कारणों एवं परिणामों का विश्लेषण कीजिए।
   Discuss the causes and effects of the French Revolution of 1830.
   (मगध, 1992, 96, 98; बी. आर. अम्बेदकर, 1999; भागलपुर, 1997; राँची, 1996, 98; आगरा, 1993, 95, 97, 99; गढ़वाल, 1994, 95; रुहेलखण्ड, 1992, 94, 95, 97; अवध, 1996, 98; गोरखपुर, 1991; बुन्देलखण्ड, 1990, 94, 99; लखनऊ, 1992, 94, 96, 98, 2000; भोपाल, 2000)
4. 1830 में फ्रान्स की क्रान्ति पर एक निबन्ध लिखिये।
   Write an essay on the French Revolution of 1830.
   (मगध, 1998; कानपुर, 1997, 99)
5. फ्रान्स में जुलाई क्रान्ति के लिए चार्ल्स दशम् का शासन कहाँ तक उत्तरदायी था ?
   How far Charles X's reign was responsibe for July Revolution in France ?
   (रुहेलखण्ड, 1993)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. 26 जुलाई सन् .... को फ्रान्स के प्रधानमन्त्री पोलिगनैक ने चार अध्यादेश जारी किये—
   (क) 1824 (ख) 1826 (ग) 1828 (घ) 1830
2. सन् .... में बेल्जियम का पृथक् स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया—
   (क) 1830 (ख) 1831 (ग) 1832 (घ) 1834
3. निकोलस प्रथम सन् .... में रूस का शासक बना—
   (क) 1824 (ख) 1825 (ग) 1830 (घ) 1831
4. चार्ल्स दशम् फ्रान्स के शासक ने सन् .... में पद त्याग दिया—
   (क) 1828 (ख) 1829 (ग) 1830 (घ) 1831

[उत्तर—1. (घ), 2. (ख), 3. (ख), 4. (ग)।]

8

सन् 1848 की क्रान्ति

[REVOLUTION OF 1848 A.D.]

लुईस फिलिप (Louis Phillippe) (सन् 1830-1848)

सन् 1830 की जुलाई क्रान्ति के बाद बोर्बो वंश के शासन का अन्त हो गया और जनता की इच्छा से चयनित 57 वर्षीय लुईस फिलिप, कुख्यात फिलिप इगेलाइट, जिसने अपने चचेरे भाई फ्रान्स के तत्कालीन राजा लुईस सोलहवें के विरुद्ध सन् 1789 की फ्रान्स की क्रान्ति काल में षड्यन्त्र रचा था, जिसने कन्वेशन के एक सदस्य के रूप में लुईस सोलहवें को मृत्यु दण्ड देने का समर्थन किया था और जो स्वयं अत्यधिक दयनीय स्थिति में फाँसी के तख्ते पर लटक गया था, का पुत्र था। वह इगेलाइट ओरलिएन्स वंश का था। सन् 1789 में क्रान्ति के समय लुईस फिलिप केवल 16 वर्ष का युवा था और तत्कालीन जैकोबिन क्लब का सदस्य बन गया था। बाद में फ्रान्स की सेना में भर्ती हो गया और वामी (Valmy) जेमेप्स (Jemappes) के स्थानों पर फ्रान्स की गणतान्त्रिक सेना के पक्ष में अपूर्व साहस और शौर्य के साथ युद्ध किया। देशद्रोह के लिए संदेहास्पद दोषी होने के भय से वह सन् 1793 में फ्रान्स से भाग गया और 21 वर्ष तक निर्वासित जीवन व्यतीत किया। उसने अपने निर्वासन काल में स्विट्जरलैण्ड, दक्षिणी यूरोप, सिसली, संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा की और इंग्लैण्ड में ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत पेंशन पर जीवनयापन किया। नैपोलियन के पतन के बाद वह फ्रान्स लौटा और अपनी पैतृक सम्पत्ति का अधिकांश भाग प्राप्त करने में सफल हो गया। पैतृक सम्पत्ति को यद्यपि क्रान्ति काल में अधिग्रहीत कर लिया गया था, लेकिन बेचा नहीं गया था। पुनर्स्थापन काल में वह पेरिस के मध्य में स्थित विख्यात 'पैलायस रायल' (Palais Royal) में रहता था। उसने सुदृढ़, धनी, सम्पन्न एवं मध्यमवर्गीय व्यक्तियों के साथ मधुर एवं सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। वह सहृदय एवं उदारवादी विचारों का व्यक्ति था। वह विनोद-प्रिय था एवं गैर-पारम्परिक जीवन शैली में जीवन व्यतीत करता था। उसको अन्तर्मन में विश्वास था कि उसके परस्पर सम्बन्ध उपयोगी सिद्ध होंगे। वह पेरिस की सड़कों पर अकेले विचरण करता था और श्रमिकों के साथ अत्यधिक अनौपचारिक ढंग से उसने मदिरापान भी किया। वह सहृदय था और कोई भी व्यक्ति सहज ही उससे मिल सकता था, यद्यपि वह बहुत धनी एवं सम्पन्न था। जनता को उसके

लोकतान्त्रिक एवं गणतान्त्रिक विचारों एवं सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा एवं समर्पण में पूर्ण विश्वास था। उसने अपने पुत्रों को शिक्षा के लिए सार्वजनिक विद्यालयों में भेजा जिससे मध्य वर्गीय परिवारों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहे। लेकिन बाह्य रूप से गणतान्त्रिक भावनाओं एवं सरल जीवन के नीचे, एक निरंकुश शासक के स्वभाव के अनुरूप व्यक्तिगत सत्ता के लिए मजबूत महत्वाकांक्षा निहित थी। हेजन ने विचार व्यक्त किया है, "लुईस फिलिप ने षड्यन्त्र रचने, आत्म-संयम एवं शान्त रहने की कला अपनी स्वयं की उन्नति के लिए परिस्थिति का निरन्तर शोषण करने के उद्देश्य से सीख ली थी।" **ग्रान्ट और टेम्परले** ने विचार व्यक्त किया है कि "लुईस फिलिप चतुर, बुद्धिमान एवं विवेकपूर्ण व्यक्ति था लेकिन ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ नहीं था। उसको भली-भाँति ज्ञात था कि वह केवल संवैधानिक राजा था। वह धार्मिक विषयों में सहिष्णु था। वह राजाओं के दैवी अधिकार में विश्वास नहीं करता था। वह स्वयं को फ्रान्स की समस्त ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के उत्तराधिकारी के रूप में प्रस्तुत करने के लिए उत्सुक था। बोर्बोन वंशीय के रूप में वह ऐतिहासिक अतीत का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता था। इगेलाइट के पुत्र एवं जैमेप्पस (Jemmeppes) के सैनिक के रूप में क्रान्ति की गौरवशाली गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने का दावा करता था। उसने तिरंगे ध्वज और राष्ट्रीय सुरक्षा (National Guard) को पुनर्स्थापित किया। उसके शासन काल में ही नैपोलियन का शव सेन्ट हेलेना से राजवंशीय सदस्य द्वारा लाया गया था और इनवैलाइडस (Invalides) के सर्वाधिक भव्य एवं गौरवशाली कब्रिस्तान में दफनाया गया था।" **डि टोक्यो विले** ने विचार व्यक्ति किया है कि उसमें अधिकांश गुण एवं दोष थे, जो विशेष रूप से समाज की अधीनस्थ व्यवस्था के होते हैं। उसकी नियमित आदतें थीं और वैसी ही आदतों वालों को अपने चारों ओर चाहता था। वह अपने आचार-विचार में व्यवस्थित, अपनी आदतों में सरल था, उसकी रुचियाँ संयमित थीं। वह कानून का जन्म से मित्र था, सब प्रकार के अतिक्रमणों का शत्रु था। अपनी इच्छाओं के अतिरिक्त अपने जीवन में सौम्य था। वह संवेदनशील, लालची और कोमल हुए बिना, वह मनुष्य था। उसमें कोई उग्र मनोवेग नहीं था, विनाशकारी दुर्बलता, महत्वपूर्ण दुर्गुण नहीं था और केवल एक राजोचित गुण था। वह अत्यधिक मृदु लेकिन बिना किसी भेदभाव एवं महानता के था। मृदुता एक राजा की अपेक्षा व्यापारी की थी। उसने साहित्य एवं कला की शायद ही कभी प्रशंसा की हो, लेकिन उद्योग को बहुत प्रेम करता था। उसकी स्मरण-शक्ति असाधारण थी। उसका वार्तालाप बहुफलदायक, फैला हुआ, मौलिक ओछे किस्सों से भरा हुआ, चटपटा और महत्वपूर्ण था। वह प्रवुद्ध कुशाग्र बुद्धि, लचीला था क्योंकि वह उसी के लिए खुला था जो उपयोगी था। वह सत्य के प्रति घमण्डी घृणा से पूर्ण था और वह सद्गुण में इतना कम विश्वास करता था कि उसकी दृष्टि अन्धकार मय हो गयी थी।

लुईस फिलिप का विरोध (Opposition of Louis Philip)—लुईस फिलिप के शासन के प्रारम्भिक वर्ष अनेक संकटों से ग्रस्त थे। सिंहासनारूढ़ होने के समय से ही उसने स्वयं को अत्यधिक विकट स्थिति में पाया। वैधतावादियों (Legitimists) के नाम से विख्यात दल चार्ल्स दशम के प्रति निष्ठावान था। वह चार्ल्स दशम एवं उसके वंशजों के फ्रान्स के सिंहासन के प्रति अधिकारों के प्रबल समर्थक थे। वे लुईस फिलिप को सिंहासन को बलपूर्वक छीनने वाला, एक चोर जिसने छलपूर्वक और निर्लज्जता के साथ बोरडियूक्स

(Bordeaux) के युवा ड्यूक का राजमुकुट चुरा लिया मानते थे। यह दल संख्या की दृष्टि से बहुत छोटा था। इस दल के सदस्यों ने कटुतम व्यंगों के माध्यम से अभिजात वर्ग का मनोरंजन किया। उसकी विभिन्न रूपों में निन्दा एवं कटु आलोचना की। इस दल ने केवल एक बार विद्रोह का प्रयास किया था, जिसका सरलता से दमन कर दिया गया। इसके अतिरिक्त इस दल ने लुईस फिलिप को कोई कष्ट नहीं दिया।

लुईस फिलिप को गणतन्त्रवादियों के साथ अपेक्षाकृत अधिक कठोर संघर्ष करना पड़ा। गणतन्त्रवादियों को लाफायते (Lafayette) में पूर्ण विश्वास था और उसके आश्वासन पर ही गणतन्त्रवादियों ने लुईस फिलिप के शासन के प्रति सहमति व्यक्त की थी। उनको आशा थी कि यह शासन सर्वोत्कृष्ट गणतन्त्रों में होगा। राजा पूर्णरूप से लोकतान्त्रिक होगा और लोकप्रिय सिंहासन गणतान्त्रिक संस्थाओं से घिरा होगा। शीघ्र ही लाफायते और गणतन्त्रवादियों का भ्रम दूर हो गया। उनको आशा थी कि नया शासन व्यापक, उदारवादी एवं राष्ट्रीय नीति का अनुसरण करेगा। फ्रान्स की जनता के समस्त वर्गों के हितों की रक्षा करेगा और देश के लोकतान्त्रिक विकास में सक्रिय सहयोग देगा। इसकी अपेक्षा उन्होंने देखा कि लोकतन्त्र और कुलीनतन्त्र दोनों की विरोधी संकीर्णवर्गीय शासन प्रणाली द्रुत गति से स्थापित की गयी। जुलाई राजतन्त्र ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया था कि उसकी नीति स्वर्णिम मध्यम नीति (Policy of golden mean) की थी, न अभिजात वर्गीय, न ही लोकतान्त्रिक वरन् नरमपंथी थी अर्थात् उसकी नीति रूढ़िवाद एवं उग्र सुधारवाद के मध्य की थी। प्रारम्भ में आयु और सम्पत्ति की योग्यताओं को कम करके मताधिकार का विस्तार किया गया। इस प्रकार निर्वाचक मण्डल की संख्या 1 लाख से बढ़कर 2 लाख हो गयी। प्रारम्भ में यह सन्तोषजनक प्रतीत हुई, लेकिन सरकार ने शीघ्र ही स्पष्ट कर दिया कि यह प्रारम्भ ही नहीं वरन् अन्त था। इसका अर्थ था कि फ्रान्स की कुल जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग मताधिकार अर्थात् प्रशासन में सक्रिय भागीदारी अथवा राजनीतिक अधिकारों से वंचित रहेगा।

घटित घटनाओं से गणतन्त्रवादी अत्यधिक निराश एवं क्षुब्ध थे और शीघ्र ही जुलाई राजतन्त्र के कट्टर विरोधी बन गये। उन्होंने अनेक गम्भीर विद्रोहों के प्रयास किये लेकिन सबका दमन कर दिया गया। सरकार ने इस दल का दमन करने के उद्देश्य से, उनके संगठनों को भंग कर दिया, समुदाय बनाने के अधिकार को प्रतिबन्धित कर दिया गया, समाचार-पत्रों के सम्पादकों पर मुकदमे चलाये गये, समाचार-पत्रों पर भारी आर्थिक दण्ड आरोपित करके प्रकाशन बन्द करवा दिया और वर्तमान सरकार की अपेक्षा किसी अन्य प्रकार की सरकार के पक्ष में अथवा समर्थन में अभिव्यक्त विचार अथवा तर्क को अवैध घोषित कर दिया और पतित राजवंश के समर्थक होने की घोषणा करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया।

लुईस फिलिप के तीसरे कट्टर विरोधी बोनापार्टिस्ट थे। वे नैपोलियन बोनापार्ट की गौरवशाली विजयों को स्मरण करते हुए लुईस फिलिप से भी गौरवशाली विदेश नीति एवं गतिविधियों की आशा करते थे। लुईस फिलिप ने विदेश नीति की दृष्टि से शान्ति का अनुसरण किया। यद्यपि फ्रान्स को महिमा मण्डित होने की प्रबल आकांक्षा की वह उपेक्षा नहीं कर सका। उसने इंगलैण्ड के अनुरूप एवं अनुकूल नीति का अनुसरण करने के प्रयास किये। यद्यपि फ्रान्स बेल्जियम में विद्रोह के समय हस्तक्षेप करना चाहता था, लेकिन वह

इंग्लैंड की हस्तक्षेप नहीं करने की नीति से सहमत हो गया। फ्रान्स ने यूनान को अपने उदारवादी राज्य के चयन में सहायता की।

बोनापार्टिस्ट थेयर्स (Thiers) इंग्लैण्ड के अनुरूप स्वतन्त्र उत्साही और सुदृढ़ विदेश नीति का अनुसरण करना चाहता था। सन् 1836 में वह स्पेन में इसाबेल्ला द्वितीय के विरुद्ध विद्रोह का दमन के लिए फ्रान्स की सेना में जाना चाहता था, लेकिन लुईस फिलिप ने उसको प्रधानमन्त्री के पद से मुक्त कर दिया। इसी प्रकार सन् 1840 में थेयर्स के पुनः प्रधानमन्त्री बनने पर फ्रान्स और इंग्लैण्ड के मध्य युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी। थेयर्स (Thiers) मिस्र के पाशा रहमत अली की सहायता करना चाहता था। इंग्लैण्ड का विदेशमन्त्री पामर्स्टन रहमत अली की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति का दमन करने के लिए कृत संकल्प था। वह रहमत अली के विरुद्ध तुर्की की सहायता करने के लिए प्रतिबद्ध था। रूस और आस्ट्रिया भी इंग्लैण्ड की कार्यवाही का समर्थन कर रहे थे। यदि लुईस फिलिप ने थेयर्स के अनुसार कार्य किया होता, इंग्लैण्ड के साथ युद्ध निश्चित था। थेयर्स को प्रधानमन्त्री के पद से हटा दिया और लुईस फिलिप ने गीजो (Guizot) को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। वह भी शान्ति की नीति में विश्वास करता था। परिणामस्वरूप रहमत अली को अदन और सीरिया देने पड़े और उसको मिस्र के वंशानुगत राज्यपाल के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

चार्ल्स दशम के शासन काल में फ्रान्सीसी सेना ने एल्जियर्स पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। लुईस फिलिप एल्जियर्स के सम्बन्ध में अपनी नीति निश्चित नहीं कर सका। सरकार के समक्ष तीन विकल्प थे, पहला समस्त देश पर नियन्त्रण कर लिया, जाये अथवा देश के कुछ भाग पर आधिपत्य किया जाये अथवा देश को बिल्कुल छोड़ दिया जाये। सन् 1834 से सन् 1839 तक एल्जियर्स और उसके कुछ समुद्रतटीय नगरों पर फ्रान्स का आधिपत्य रहा। लुईस फिलिप ने देश के आन्तरिक भागों पर नियन्त्रण करने की अनुमति दे दी। सन् 1839 में अब्द-एल-कादेर नें फ्रान्स के विरुद्ध जेहाद (पवित्र युद्ध) की घोषणा कर दी। लुईस फिलिप ने 1 लाख फ्रान्सीसी सैनिकों की विशाल सेना जनरल ब्युगोद (Bugeaud) के नेतृत्व में अब्द-एल-कादेर (Abd-el-Kader) का दमन करने के लिए भेजी। यह संघर्ष दीर्घकालीन था और इसमें बहुत विनाश हुआ। सन् 1847 में अब्द-एल-कादेर बन्दी बना लिया गया और अल्जीरिया पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित हो गया। लगभग 40,000 फ्रान्सीसी उपनिवेशवादी अल्जीरिया में बस गये। यह फ्रान्सीसी औपनिवेशिक साम्राज्य का सूत्रपात था।

लुईस फिलिप अपने परिवार के हितों को प्रोत्साहित करने के लिए उत्सुक था। उसने अपनी एक पुत्री का विवाह बेल्जियम के शासक लियोपोल्ड प्रथम के साथ किया और दूसरी पुत्री का विवाह वर्टेम्बर्ग के राजा के साथ किया। सन् 1846 में उसने अपने एक पुत्र का विवाह स्पेन की रानी इसाबेल्ला द्वितीय की बहन के साथ किया। बोनापार्टिस्ट समर्थकों की ऐसे राजा के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी जिसकी नीति कायरता और शान्ति की है। उसकी विदेश नीति निष्क्रियता और उदासीनता की थी।

सितम्बर कानून (September Law) (सन् 1835)—इन कानूनों ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को खोखला कर दिया था, इस कारण जुलाई राजतन्त्र की नैतिक स्थिति बहुत दुर्बल हो गयी थी। इन कानूनों ने समस्त विपक्षी दलों को सुरक्षा के लिए पलायन करने के लिए

विवश कर दिया और फ्रान्स पर दीर्घकाल तक धनी और समृद्ध वर्गों, सम्पत्ति वाले कुलीनतन्त्र ने शासन किया। गणतन्त्रवादियों को दीर्घकाल के लिए शान्त कर दिया गया था, लेकिन उनकी शत्रुता इस प्रणाली को समाप्त करने में एक कारण थी।

जुलाई राजतन्त्र (July Monarchy)—सन् 1830 से सन् 1848 तक जुलाई राजतन्त्र को दो भागों में, सन् 1830 से सन् 1840 तक अस्थिरता का दशक, और सन् 1840 से सन् 1848 स्थिर लेकिन रूढ़िवादी शासन के रूप में विभाजित किया जा सकता है। अस्थिरता के दशक में मन्त्रिमण्डलों का औसत कार्यकाल एक वर्ष से कम था। स्थिर काल में प्रशासनिक अधिकारी एवं नीतियाँ भयग्रस्त थी। सन् 1831 से सन् 1834 की अवधि में विद्रोहों, हड़तालों एवं प्रदर्शनों का काल था। गणतन्त्रवादियों में दृढ़ धारणा थी कि उनके साथ धोखा किया गया था। लियोन्स में श्रमिकों की मजदूरी बहुत कम थी और नियोजकों (मालिकों) के साथ न्यूनतम वेतनक्रम के लिए सामूहिक सौदेबाजी होती थी। लियोन्स क्षेत्र में 1,400 उत्पादकों में से 104 ने समझौते के प्रावधानों का पालन करने से मना कर दिया और कारखानों को बन्द करने की धमकी दी। परिणामस्वरूप नवम्बर, 1831 में लियोन्स के रेशम श्रमिकों ने विद्रोह कर दिया। सरकार ने तत्काल कार्यवाही करके विद्रोह का दमन ही नहीं किया वरन् सामूहिक सौदेबाजी को अवैध घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप श्रमिकों की सरकार में आस्था एवं विश्वास समाप्त हो गया और गुप्त गणतान्त्रिक समितियों से सहायता की अपेक्षा करने लगे। इस प्रकार की समितियाँ बहुत बड़ी संख्या में थीं। खुले समुदायों में जैसे सोसाइटी ऑफ दी राइटस ऑफ मैन का गणतन्त्र के लिए मुख्य उद्देश्य, आर्थिक असमानताओं को कम करना होता था। ये समितियाँ समाजवादी अथवा साम्यवादी उद्देश्य वाले फिलिप बुआनरोंटी (Phillipe Buonarroti) अथवा आंगस्ट ब्लैन्की (Auguste Blanqui) से प्रभावित थी।

नैपोलियन कालीन एक अधिकारी के पुत्र आगस्ट ब्लैन्की का जन्म सन् 1805 में हुआ था और वह सर्वोत्कृष्ट क्रान्तिकारियों में एक था जिसने जुलाई राजतन्त्र के अधीन पेरिस को भयाक्रान्त कर दिया था। उसको बुआनरोंटी, जिसका सन् 1837 में देहान्त हो गया था, की भूमिका एवं अनेक विचार विरासत में मिले थे। उसने विद्यार्थी के रूप में कारबोनरी (Carbonari) में प्रवेश ले लिया था। सन् 1830 की जुलाई क्रान्ति में उसकी प्रशंसनीय भूमिका के लिए नई सरकार ने उसको पदक से सम्मानित किया था। उसने अपने जीवन का आधा जीवन 15 कारागृहों में एकाकी व्यतीत किया। अप्रैल, 1834 में सरकार ने कानून बनाकर समुदाय (Association) बनाने का अधिकार प्रतिबन्धित कर दिया। इस नये कानून के विरोध में 5 दिन तक सशस्त्र उपद्रव हुए। सोसाइटी आफ दि राइट्स आफ मैन ने पेरिस के पूर्वी जिलों मे एक अन्य विद्रोह की योजना बनायी जिसका एडोल्फ थेयर्स ने दमन कर दिया। गणतन्त्रवादी थेयर्स रियू ट्रान्सनोनियन (Rue Transnonian) के नरसंहार के लिए उत्तरदायी थेयर्स से घृणा करते थे।

ब्लैन्की ने पुलिस के गुप्तचर विभाग से बचने के लिए पर्याप्त गुप्त लेकिन राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पर्याप्त शक्तिशाली गुप्त समिति का गठन किया। कारबोनरी के सिद्धान्तों पर नवगठित सोसाइटी आफ फेमिलीज का तात्कालिक उद्देश्य सैनिक कार्यवाही था। 6 सदस्यों की एक ईकाई को परिवार (Family) कहा जाता था और एक प्रमुख के

अधीन पाँच या छः परिवारों का एक अनुभाग होता था। दो अथवा तीन अनुभागों (Sections) से मिलकर एक क्वॉटर (Quarter) बनता था। यह इस प्रकार गठित थी कि इसके नेता उस समय तक अज्ञात रहते जब तक कार्यवाही का अवसर नहीं आ जाता और आदेश अज्ञात सदस्यों की केन्द्रीय समिति द्वारा जारी किये जाते थे। सन् 1836 में इसकी कुल संख्या 1,200 थी और इन्होंने पेरिस की सुरक्षा के लिए नियुक्त सैन्य टुकड़ियों में प्रवेश कर लिया था। उसके पास शस्त्रास्त्रों का विशाल भण्डार एवं बारूद बनाने का एक कारखाना था। पुलिस कार्यवाही से बचने के लिए इसको भंग करके तत्काल सोसाइटी ऑफ सीजन्स नाम का नया संगठन स्थापित किया गया। इस समिति के 6 व्यक्तियों का समूह एक सप्ताह (Week) के रूप में जाना जाता था और जुलाई के आदेश के अन्तर्गत 4 सप्ताह (Weeks) एक माह (Month) का गठन करते थे। तीन माह (Months) से एक ऋतु (Season) बनती और उसका नेतृत्व 'बसन्त ऋतु' (Spring) करता था। 4 ऋतुओं (Seasons) को मिलाकर एक वर्ष (Year) बनता था जिसको केन्द्रीय समिति का विशेष प्रतिनिधि निर्देश देता था। इस गुप्त समाज का नेतृत्व ब्लैन्की, मार्टिन बर्नर्ड और अमोन्ट बाबर्न ने किया। इस समाज ने गुप्त समाचार-पत्र प्रकाशित किये और पेरिस लियोन्स और कारकैसोन श्रमिकों का समर्थन संगठित किया। आर्थिक संकट के कारण इस समाज की सदस्य संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई।

12 मई, 1839 को समस्त सदस्यों को कार्यवाही केन्द्र पर बुलाया गया। ऐसी आशा थी कि पुलिस चैम्स डिमार्स में घुड़दौड़ के लिए एकत्रित जनसमूह को नियन्त्रित करने में व्यस्त होगी। षड्यन्त्रकारी पेरिस के सेन्ट डेनिस और सेन्ट मार्टिन स्थित बन्दूक बनाने वालों की दुकानों और शस्त्रास्त्रों के भण्डारों पर एकत्रित हो गये। गोदामों को लूट लिया और अवरोधकों को ध्वस्त कर दिया। इन षड्यन्त्रकारियों ने 'पैलाइस डि जस्टिस' (Palais de Justice) और 'होटल डि विलां' (Hotel de Ville) पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया और गणतन्त्र की घोषणा कर दी। कुछ सैनिकों की हत्या कर दी। राष्ट्रीय और नगरपालिका रक्षकों को बाहर बुला लिया गया। सशस्त्र सेना ने दमनकारी कार्यवाही आरम्भ कर दी। विद्रोहियों को अवरोधकों के पार श्रमिकों के जिलों में खदेड़ दिया गया। रात्रि तक विद्रोहियों का दमन कर दिया गया और अधिकांश नेताओं को बन्दी बना लिया गया। ब्लैन्की ने 5 माह तक भूमिगत जीवन व्यतीत किया। तदुपरान्त वह पकड़ा गया और $8\frac{1}{2}$ वर्ष के लिए कारागृह में बन्द कर दिया गया। सन् 1848 की क्रान्ति में ही मुक्त हुआ।

षड्यन्त्रकारियों को पूर्ण विश्वास था, कि विद्रोह आरम्भ होते ही पेरिस का समस्त जन समुदाय उनका सक्रिय सहयोग और समर्थन करेगा, लेकिन जनसमुदाय पूर्णतया उदासीन रहा और षड्यन्त्रकारियों (गणतन्त्रवादियों) का विद्रोह असफल हो गया। गुप्त समितियों के व्यक्तियों एवं पद्धतियों का विश्वास समाप्त हो गया। परिणामस्वरूप सरकार यद्यपि निरन्तर विद्रोहों से मुक्त हो गयी, लेकिन समस्त प्रकार के विद्रोहियों को कारागृहों में रखा गया था और उनका बन्दी जीवन गणतान्त्रिक एवं समाजवादी विचारों के उद्भव, विकास एवं प्रचार का प्रमुख स्थल बन गया था। लेकिन श्रमिक वर्ग नेतृत्व विहीन था। श्रमिक वर्ग एवं उनके नेताओं के मध्य किसी प्रकार का कोई सम्पर्क नहीं था।

लुईस फिलिप का शासन काल (Louis Philip's Reign) (सन् 1830-1848)

लुईस फिलिप ने 18 वर्ष तक शासन किया और संविधानवादी (Constitutionalistis) उसके प्रबल समर्थक थे और इस कारण लुईस को इस दल के साथ अपनी पहचान बनाने के लिए वाध्य होना पड़ा। इस संविधानवादी दल के अधिकांश सदस्य समृद्ध, सम्पन्न, मध्यवर्ग के जैसे बैंकर, उत्पादक, व्यापारी आदि थे। राजा उनके समर्थन पर निर्भर था, अस्तु ओरलिएनिष्ट राजतन्त्र मध्यवर्ग के लाभ के लिए सीमित मताधिकार पर संचालित मध्यवर्गीय राजतन्त्र बन गया। इससे अन्य दलों के सदस्य अप्रसन्न हो गये और उपहास में लुईस को उपहासपूर्ण उपनाम "नागरिक राजा" (Citizen King) दिया। उसको प्रबल होना था, शासन नहीं करना था। इसने प्राचीन राजतन्त्र के समस्त प्रतीकों को त्याग दिया। राजमुकुट एवं राजदण्ड एक ओर रख दिये गये। वह श्वेत लम्बा हैट और हरे छाते का प्रयोग करता था। वह स्वयं सड़कों से होकर बाजार जाता था। उसने फ्रान्स के राजा की उपाधि की अपेक्षा फ्रान्सवासियों के राजा की उपाधि धारण की। "ईश्वर की कृपा से" (By the Grace of God) के स्थान पर "राष्ट्र की इच्छा से" (By the will of the Nation) प्रयुक्त किया गया। सार्वजनिक पदों से उपाधियों से अलंकृत कुलीनों को हटा दिया गया और उनके स्थान पर सामान्य नागरिकों को नियुक्त किया गया। संसदीय एवं प्रतिनिधात्मक सरकार घोषित कर दी गयी।

लुईस फिलिप के शासन के प्रारम्भ में लफायते (Lafayette) और कैसिमीर पेरियर (Casimir Perier) जैसे औद्योगिक पूँजीपति और आर्थिक उदारवादी सत्ता में थे। उसकी सरकार उदारवादी मध्यमवर्गीय थी। फ्रान्स की सरकार इंगलैण्ड में पहले सुधार अधिनियम सन् 1932 के पारित हो जाने के उपरान्त स्थापित सरकार के अनुरूप थी। उसने विकास की नीति का अनुसरण किया। उसका उद्देश्य देश के विदेश व्यापार का विकास करने और अन्य देशों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का था। कैसिमीर पेरियर की मृत्यु के बाद गीजों (Guizot) और थेयर्स (Thiers) दोनों ही मध्यवर्गीय, महत्वाकांक्षी, उग्र एवं आक्रामक एवं महान् लेखक थे। गीजों, फ्रान्सीसी प्रोटेस्टेन्ट, हयूजिनात (Huguenots) सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में फ्रान्स के प्रोटेस्टेन्ट धर्मानुयायियों की एक शाखा, जो काल्विन (सन् 1509-64) के प्रति आस्थावान थी), सन् 1832 से सन् 1839 तक सार्वजनिक सूचना मन्त्री और सन् 1840 से सन् 1848 तक प्रधानमन्त्री रहा। वह शान्ति की नीति में विश्वास करता था और शान्ति के लिए किसी सीमा तक जा सकता था। गीजों एक प्राध्यापक, इतिहासकार के रूप में विख्यात था और गणितज्ञ के सदृश उसके राजनीति में दृढ़ सिद्धान्त थे। उसने इस तथ्य को अस्वीकार कर दिया कि फ्रान्स की राजनीतिक संस्थाओं में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता थी। सन् 1814 के शास-पत्र (Charter) के सन् 1830 में संशोधित रूप में विश्वास करता था। उसका दृढ़ मत था कि कोई भी सुधार अनावश्यक एवं खतरनाक होगा। गीजों की नीति कठोर, हठी, रूढ़िवाद की थी। उसने मताधिकार के विस्तार एवं श्रमिकों के हित के लिए किसी भी विधेयक का कठोर विरोध किया। समाज में व्याप्त असन्तोष, तुच्छ और बनावटी प्रतीत होता था। उसकी दृष्टि में असन्तोष स्वार्थी व्यक्तियों की अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति हेतु कल्पना-मात्र थी।

थेयर्स एक स्वतन्त्र विचारक एवं अवसरवादी था। उसको विवाह में बहुत अधिक धन मिला था और टैलीरैन्ड ने उसको राजनीति का प्रशिक्षण दिया था। यद्यपि उसने जनसाधारण से ही उन्नति की थी लेकिन वह जनसाधारण का ही अविश्वास करता था। वह 18वीं शताब्दी के उदारवादी दर्शन से सम्बद्ध था। उसने लुईस फिलिप के निरंकुश शासन का विरोध किया। चार्ल्स दशम को जुलाई क्रान्ति के बाद अपदस्थ करने वाले व्यक्तियों में थेयर्स भी था। वह उत्साही विस्तारवादी विदेश नीति में विश्वास करता था। सन् 1832 से सन् 1836 तक वह महत्वपूर्ण मन्त्री रहा। सन् 1840 में वह प्रधानमन्त्री बना लेकिन रहमत अली को सहायता देने के अदूरदर्शितापूर्ण कार्यवाही के प्रति प्रतिबद्धता के कारण उसको पद से मुक्त कर दिया गया।

लुईस फिलिप का शासन मध्यवर्ग द्वारा, मध्य वर्ग के लिए और मध्यवर्ग का था। प्रशासन की समस्त गतिविधियाँ मध्यवर्ग के हितों के लिए और मध्यवर्ग द्वारा सम्पादित थी। इस अवधि को फ्रान्सीसी मध्यवर्ग का काल (La France Bourgeoise) कहा जाता है। सामान्य कारण है कि दीर्घ काल तक फ्रान्स 200 परिवारों के नियन्त्रण में था, जो फ्रान्स की अधिकांश सम्पत्ति के स्वामी थे और वे ही प्रमुख उद्योग चलाते थे। अपना काम करवाने के लिए राजनीतिज्ञों को रिश्वत देते थे। दालादियर (Daladier) ने इसको 'नवीन सामन्तवाद' का नाम दिया था। रोथचाइल्डस, फूल्ड, हाइन और लाजार्ड, बैंक परिवारों से सम्बद्ध थे। धातु शोधन करने वाले श्नाइडर का सम्बन्ध चीनी शोधक लबौडी कैथोलिक प्रकाशक मैन, एक अन्य धातु शोधक वैंडल ब्रिसाक से था। लुईस फिलिप ने इन उद्योगों को प्रोत्साहित किया। इंग्लैण्ड से मशीनों का आयात किया और फ्रान्स में कारखाने स्थापित किये। बहुत बड़ी संख्या में रेल परिवहन की योजनाएँ बनायी गयीं और कुछ का निर्माण भी किया गया। सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं के उत्पादन के लिए निजी उद्यमियों को प्रोत्साहित किया गया। वह निजी उद्यम एवं व्यक्तिगत बचत का प्रबल समर्थक था। लुईस फिलिप ने मध्य वर्गीय परिवार के अनुरूप अपने परिवार की आय को पूँजी और शेयरों में निवेश किया था।

उन्मुक्त व्यापार स्थापित करने के लिए देश में अनेक विरोध प्रदर्शन किये गये। शासन ने अनुभव किया कि फ्रान्स का उद्योग अपने बाल्यकाल में है, और वह विकसित ब्रिटिश उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ नहीं था। अस्तु व्यापार सुरक्षा नीति का अनुसरण किया गया। लेकिन बेस्तियत नाम के एक व्यापारी एवं अर्थशास्त्री ने सन् 1846 में उन्मुक्त व्यापार समुदाय का गठन किया था।

देश में औद्योगिक क्रान्ति के विकास के परिणामस्वरूप उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों की स्थिति निरन्तर दयनीय ही हो रही थी। श्रमिक की स्थिति में सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सन् 1841 में एक कारखाना अधिनियम (Factory Act) पारित किया गया। इसके अनुसार 8 वर्ष से कम आयु के बच्चों के नियोजन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 16 वर्ष तक की आयु के बच्चों के काम के घण्टे 12 घण्टे सीमित कर दिये गये और 12 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा निर्धारित की गयी। व्यावहारिक दृष्टि से इस अधिनियम का कोई महत्व नहीं था क्योंकि इन प्रावधानों के उल्लंघन के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान नहीं था।

सन् 1833 में गीजों के मार्गदर्शन में शिक्षा सम्बन्धी विधेयक पारित किया गया। प्राथमिक विद्यालयों के संचालन का दायित्व चर्च को दिया गया। माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों पर सरकार का नियन्त्रण पूर्वापेक्षा अधिक सुदृढ़ हो गया। समस्त शैक्षणिक संस्थाओं के लिए आन्तरिक एवं सामाजिक दायित्वों की शिक्षा देना आवश्यक था। यद्यपि विद्यालयों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गयी, लेकिन विद्यालयों में उपस्थिति अनिवार्य नहीं की गयी।

धार्मिक विषयों में सरकार ने तटस्थता की नीति का अनुसरण किया। पोप के साथ कानकारडेट (Concordat) किसी विषय के सम्बन्ध में किया गया समझौता चलता रहा। सरकार विशप मनोनीत करती रही और कैथोलिक पादरियों का वेतन सरकार देती थी। सरकार ने समस्त धर्मों के साथ समान व्यवहार किया और सन् 1831 में यहूदी धर्म को ईसाई धर्म के समान स्तर पर कर दिया। सरकार ने प्रोटेस्टेन्ट और कैथोलिक धर्माधिकारियों के अनुरूप ही यहूदी धर्माधिकारियों को वेतन देना आरम्भ कर दिया। फ्रान्स के लिए सन् 1831 का वर्ष बहुत महत्वपूर्ण वर्प था। मध्यवर्ग को विश्वास था कि राजनीतिक शक्ति उसके हाथों में ही रहेगी और इस विश्वास ने ही सरकार की नींव को दुर्बल कर दिया था। औद्योगिक विकास के साथ-साथ छोटे दुकानदारों और कारखाना मालिकों का नया वर्ग मतदान के अधिकार माँगने लगा था।

क्रान्ति की ओर. गीजों की मन्त्रिपरिषद (Towards Revolution Guizot's Ministry)—सन् 1840 में गीजों को लुईस फिलिप ने प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। अनेक वर्षों बाद लुईस फिलिप व्यक्तिगत सत्ता धारण करने की समस्त अभिव्यक्तियों से स्वयं की रक्षा करने के प्रति सतर्क था। समस्त शत्रुओं के दमन के बाद उसने स्वयं के राजा होने का वास्तविक उद्देश्य अभिव्यक्त करना आरम्भ कर दिया। राजतन्त्र के विषय में ब्रिटिश सिद्धान्त का पालन करने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी। गीजों में उसको एक ऐसा व्यक्ति मिल गया जो उसके प्रति सहानुभूति रखता था, और वह राजा को राज्य के मात्र आलंकारिक अध्यक्ष के रूप में नहीं देखना चाहता था। गीजों में लुईस फिलिप को अपने हृदय का निकटतम व्यक्ति मिल गया था। गीजों की नीति कठोर रूढ़िवादी की थी।

उदारवादियों ने गीजों की कठोर रुढ़िवाद की नीति का ही विरोध नहीं किया वरन् सम्पूर्ण सिद्धान्त, जिस पर यह आधारित था, एवं समस्त तत्कालीन आर्थिक प्रणाली पर अपेक्षाकृत अधिक उग्र सुधारवाद ने गम्भीर आक्रमण किये। जनसमूह की दयनीय स्थिति पर विचार-विमर्श आरम्भ हो गया था और अनेक विद्वान लेखक उद्योग के संगठन एवं पूँजी और श्रम के परस्पर सम्बन्धों से सम्बन्धित सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रहे थे। ये ही सिद्धान्त समाजवादी कहलाते थे और लाखों श्रमिकों की निरन्तर बढ़ती हुई सामूहिक शक्ति को प्रभावित कर रहे थे। श्रमिकों का विश्वास था कि समाज उनके प्रति अनुचित ढंग से कठोर था क्योंकि उनके श्रम का किसी भी रूप से आनुपातिक पारिश्रमिक नहीं मिल रहा था। सेन्ट साइमन (Saint Simon) ने सर्वाधिक संख्या वाले वर्ग के हित में समाज के गठन के लिए समाजवादी योजना की घोषणा की। उनका विश्वास था कि उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होना चाहिए और उद्योग का गठन "क्षमता के अनुसार और सेवाओं के अनुरूप

पुरस्कार" (Labour according to Capacity and Reward according to Services) के सिद्धान्त के आधार पर होना चाहिए। सेन्ट साइमन एक सैद्धान्तिक विचारक थे, एक व्यावहारिक व्यक्ति नहीं थे। लुईस ब्लैन्क (Louis Blanc) जिसको भविष्य में जुलाई राजतन्त्र को अपदस्थ करने और गणतन्त्र की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना था, एक कुशल राजनीतिज्ञ एवं कुशल संगठनकर्ता था। दल का सही दिशा में नेतृत्व करने में निपुण था। लुईस ब्लैन्क ने सेन्ट साइमन के सिद्धान्त को व्यवहारिक रूप प्रदान करके व्यापक प्रचार किया। ब्लैन्क ने अपने लेखों के माध्यम से फ्रान्स के लाखों श्रमिकों को फ्रान्स में प्रचलित दयनीय आर्थिक स्थितियों से अवगत कराया। उसने मध्यवर्गीय (Bourgeoisie) सरकार की "धनी की सरकार, धनी द्वारा और धनी के लिए" के रूप में कटु आलोचना की। इस सरकार को समाप्त कर देना चाहिए और राज्य का पूर्णरूप से लोकतान्त्रिक आधार पर गठन करना चाहिए। ब्लैन्क ने घोषणा की कि नियोजन प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है और नियोजन देना राज्य का दायित्व है। यदि राज्य स्वयं उद्योग स्थापित करे, तो वह नियोजन प्रदान कर सकता है। राज्य को अपनी पूँजी से कारखाने स्थापित करने चाहिए और श्रमिकों को स्वयं इसका प्रबन्ध करना चाहिए और लाभांश स्वयं लेना चाहिए। इस प्रकार नियोजकों का वर्ग अर्थात् पूँजीपति वर्ग समाप्त हो जायेगा और श्रमिकों को अपने श्रम का पूर्ण पारिश्रमिक मिलेगा। लुईस ब्लैन्क ने बहुत स्पष्ट एवं जनसाधारण की भाषा में अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और श्रमिकों ने व्यापक रूप से ग्रहण कर लिया। लुईस ब्लैन्क ने विचार व्यक्त किया, "समस्त स्वस्थ व्यक्तियों के लिए काम राज्य का दायित्व है, वृद्ध और विकलांग व्यक्तियों को सहायता और सुरक्षा प्रदान करना राज्य का दायित्व है। यह परिणाम लोकतान्त्रिक शक्ति के अतिरिक्त प्राप्त नहीं किया जा सकता है। एक लोकतान्त्रिक शक्ति वह है जिसमें अपने सिद्धान्त के लिए जनता की प्रभुसत्ता है, अपने उद्भव के लिए सार्वभौम वयस्क मताधिकार और अपने उद्देश्य के लिए सूत्र, "स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व" की प्राप्ति है। लुईस ब्लैन्क की कृति "श्रमिकों का संगठन" (The Organisation of Labour) ने शिल्पकारों के वर्ग के समाजवादी आन्दोलन को एक निश्चित कार्यक्रम दिया। उसने व्यक्तिगत पूँजीवादियों के उन्मूलन का प्रबल समर्थन किया। एक समाजवादी दल का गठन किया गया। यह गणतन्त्र में विश्वास करता था, लेकिन यह अन्य गणतन्त्रों से बिल्कुल भिन्न था। अन्य केवल सरकार के स्वरूप में परिवर्तन चाहते थे जबकि यह समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहता था। प्रोधों (Proudhon) एक उग्र क्रान्तिकारी था। वह निजी सम्पति और अधिनायकतन्त्रीय सरकार को समाप्त करने एवं स्वैच्छिक सहयोग के आधार पर नई व्यवस्था स्थापित करने का प्रबल समर्थक था। प्रोधों के अनुयायियों की संख्या बहुत कम थी, लेकिन वे निर्माण की अपेक्षा ध्वस्त करने के लिए कृत संकल्प थे।

श्रमिकों में सर्वत्र असन्तोष एवं आक्रोश व्याप्त था। सरकार ने उनकी आर्थिक स्थिति एवं काम की शर्तों में सुधार के लिए कुछ नहीं किया था, वरन् सरकार ने श्रमिकों की सार्वजनिक सभाओं का दमन करने के लिए निःसंकोच निर्ममतापूर्वक बल का प्रयोग किया और श्रमिक संगठनों के गठन को रोकने के लिए विधेयक पारित किये। सन् 1848 तक

अधिकांश जनसमुदाय का दृढ़ मत बन चुका था कि राज्य उन्नति का एक माध्यम है और उसका कर्तव्य जनता के जीवन में सुधार करना है। निरंकुश समाजवाद के प्रवर्तक लुईस ब्लैन्क ने विचार व्यक्त किया, कि सर्वहारा वर्ग की मुक्ति राज्य द्वारा ही सम्भव है और इस लक्ष्य की प्राप्ति कुछ व्यक्तिगत प्रयत्नों से सम्भव नहीं है। 19वीं शताब्दी के चौथे और पाँचवें दशकों में सेन्ट साइमन, प्रोधों, काबे, लुईस ब्लैन्क आदि समाजवादी बहुत लोकप्रिय हो गये थे। उद्योगवाद से उद्भूत समाजवाद फ्रान्स में अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा था। श्रम बचाने वाली मशीनों ने कुशल शिल्पियों के वेतन बहुत कम कर दिये थे और अनेक को बेरोजगार कर दिया था। इससे शिल्पकार वर्ग अत्यधिक असन्तुष्ट था। सर्वाधिक प्रभावशाली समाजवादी विद्वान लेखक लुईस ब्लैन्क की कृतियों के माध्यम से अभिव्यक्त सिद्धान्तों एवं समाजवादियों के विचारों एवं सिद्धान्तों के व्यापक प्रचार एवं प्रसार ने असन्तोष एवं आक्रोश को उत्तेजित किया। पूँजीपतियों और श्रमिकों के मध्य संघर्ष में लुईस फिलिप ने सदैव पूँजीपतियों का समर्थन किया। परिणामस्वरूप जनता की निष्ठा एवं भक्ति समाजवादियों के प्रति स्थानान्तरित हो गयी थी। समाजवादियों ने गणतन्त्रवादियों की मताधिकार के विस्तार की माँग का समर्थन किया और उनके साथ मिल गये। समाजवाद सन् 1848 की फ्रान्स की क्रान्ति में एक महत्वपूर्ण अवयव था। इस क्रान्ति ने ओर्लियन राजतन्त्र को अपदस्थ कर दिया था।

कैथोलिक मतावलम्बी प्रोटेस्टेन्ट गीजों की भ्रष्ट राजनीति से अप्रसन्न थे। उन्होंने सरकार की धार्मिक विषयों में उदारवादी नीतियों का भी अनुमोदन नहीं किया। उन्होंने जुलाई राजतन्त्र की अलोकतान्त्रिक प्रवृत्ति की कटु आलोचना की और श्रमिक वर्ग के हितों के लिए विधेयक की माँग की। देशभक्तों ने लुईस फिलिप की दब्बू विदेश नीति की कटु आलोचना की। वे अपनी विदेश नीति को इंग्लैण्ड के अधीन करने के लिए तैयार नहीं थे। वे केवल राष्ट्रीय सम्मान एवं राष्ट्रीय गौरव चाहते थे। उन्होंने थेयर्स को प्रधानमन्त्री पद से हटाने की कटु आलोचना की और थेयर्स देशभक्तों (Patriots) का नेता बन गया।

लुईस फिलिप के शासनकाल में नैपोलियनकालीन आख्यान ने देशभक्तों (Patriots) की सहायता की। नैपोलियन के दोषों को विस्मृत कर दिया गया और उपलब्धियों को महिमा मंडित किया गया। नैपोलियंन को राष्ट्रीय गौरव का साकार रूप माना जाता था। लुईस फिलिप ने नैपोलियन के युद्धों के नाम पर सड़कों के नाम रखे और सेन्ट हेलेना से उसका शव मंगवा कर सम्मानपूर्वक दफनाया। नैपोलियनकालीन आंख्यान को नैपोलियन बोनापार्ट के भतीजे लुईस नैपोलियन की कृतियों के द्वारा अधिक लोकप्रियता मिली। जनता को लुईस फिलिप की उपलब्धियों की नैपोलियन बोनापार्ट की उपलब्धियों से तुलना करने पर बहुत निराशा हुई और लुईस फिलिप की उपलब्धियाँ नगण्य प्रतीत हुईं। परिणामस्वरूप लुईस फिलिप जनता में पूर्वापेक्षा अधिक अलोकप्रिय हो गया।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जुलाई राजतन्त्र की नींव बहुत कमजोर थी। लुईस फिलिप अपने एक दशक के शासन काल में विभिन्न विरोधी तत्वों के आक्रमणों में अपना वास्तविक रूप व्यक्त कर चुका था। सन् 1832 में डचेस-डि-बैरी (Duchesse-de-

Berry) जिसने अपने पुत्र के नाम पर प्रोवेन्स (Provence) और ला वैन्डी (La Vendee) को उत्तेजित करने का प्रयास किया था, से प्रेरित वैधतावादियों (Legitimist) का विद्रोह हुआ था। सन् 1834 में पेरिस में गणतन्त्रवादियों के उपद्रव हुए और औद्योगिक उपद्रव एवं हड़तालें लियोन्स में हुईं। सन् 1835 में राजा की हत्या के असफल प्रयास किये गये। नैपोलियन वोनापार्ट के भजीते लुईस नैपोलियन ने सन् 1835 में स्ट्रासबर्ग में और सन् 1840 में वोलोग्ने (Boulogne) में विद्रोह भड़का कर फ्रान्स का सिंहासन प्राप्त करने के असफल प्रयास किये। यद्यपि ये समस्त प्रयास असफल हो गये थे, लेकिन उन्होंने लुईस फिलिप के चारों ओर विभिन्न शक्तियों के खतरे का संकेत दे दिया था।

थेयर्स बनाम गीजों (Thiers Vs Guijnot)

लुईस फिलिप की प्रशासनिक विषयों में शान्त रूढ़िवाद की नीति के अनुसरण के परिणामस्वरूप गम्भीर संवैधानिक विवाद उत्पन्न हो गये। संसद के निम्न सदन चैम्बर आफ डिप्टीज के दो सर्वाधिक प्रमुख सदस्य थेयर्स और गीजों थे। दोनों प्रतिद्वन्द्वी बन गये और दोनों ही प्रधानमन्त्री बने। दोनों के मध्य विवाद का विषय मताधिकार का विस्तार था। थेयर्स का उदारवादी दृष्टिकोण था और उसने मताधिकार के विस्तार की लोकप्रिय माँग का समर्थन किया। गीजों, जिसकी नीति कठोर रूढ़िवाद की थी, ने किसी भी ऐसी योजना का विरोध किया। राजा ने गीजों के दृष्टिकोण का समर्थन किया और संकट को पूर्वापेक्षा अधिक गम्भीर बना दिया।

फ्रान्स में क्रान्ति के कारण (Causes of Revolution in France)—लुईस फिलिप की सरकार बहुत ही संकीर्ण आधार पर आधारित थी, इस कारण प्रारम्भ से ही बहुत अलोकप्रिय थी। फ्रान्सीसी लेखक लामार्टिन ने कहा कि लुईस फिलिप का पतन हुआ क्योंकि फ्रान्स ऊब गया था। गीजों की गतिहीनता अथवा निष्क्रियता की नीति युवा पीढ़ी के लिए बहुत घृणित थी क्योंकि युवा पीढ़ी परिवर्तनशील समय के अनुरूप नवीन विचारों से ओतप्रोत थी और परिवर्तन चाहती थी। (1) इसने प्रारम्भ से ही स्वयं की पहचान सम्पन्न मध्यवर्ग के हितों के साथ बनायी और समाज के अन्य वर्गों के हितों की पूर्णरूपेण उपेक्षा की। (2) यह एक मध्यवर्गीय राजतन्त्र था। इसकी अत्यधिक रूढ़िवादी नीतियों के कारण गणतन्त्रवादी और समाजवादी दोनों ही घृणा करते थे। गणतन्त्रवादी लुईस फिलिप की सरकार को अलोकतान्त्रिक कहकर आलोचना करते थे, जबकि समाजवादी इसकी पूँजीवादी सरकार कहकर निन्दा करते थे। (3) मध्य वर्ग जो समर्थन करता था, में भी सुधारक थे जिन्होंने, मताधिकार के विस्तार जैसे शान्तिपूर्ण सुधारों की माँग की। लेकिन राजा और उसके प्रधानमन्त्री गीजों ने राजनीतिक संरचना में किसी भी प्रकार के परिवर्तन से मना कर दिया। परिणामस्वरूप संकीर्ण मध्यवर्गीय गुटतन्त्र के अतिरिक्त जनता के समस्त वर्गों में उत्पन्न असन्तोष निरन्तर बढ़ता जा रहा था। युवा वर्ग में व्याप्त घृणा को सरकार के संकीर्ण एवं भ्रष्ट आधार ने तीव्र कर दिया था। प्रशासन, राजा और मध्य- वर्गीय नागरिकों के मध्य भ्रष्ट गठबन्धन पर आधारित था और उद्योग में लिमिटेड कम्पनी के अनुरूप था जो केवल शेयरधारकों के लाभ के लिए काम करता था। एक विशेष वर्ग का यह शासन स्वाभाविक रूप से पुराने कुलीन वर्ग एवं

सर्वहारा वर्ग दोनों के लिए अरुचिकर था। (4) इस असन्तोष को राजा की विदेश नीति जिसको गौरवहीन, महिमाहीन, उत्साहहीन, उदासीन एवं निष्क्रिय माना जाता था, ने पूर्वापेक्षा अधिक बढ़ा दिया था। लुईस फिलिप की विदेश नीति नैपोलियनकालीन शासन की महिमा मंडित उपलब्धियों से भिन्न समन्वय एवं सुविधा (Conciliation and Concession) की थी। इस काल में स्वच्छन्दतावाद नैपोलियनकालीन आख्यान (गौरवशाली उपलब्धियों) को अत्यधिक आकर्षक बना रहा था। इस कारण दोनों के मध्य अन्तर बहुत अधिक प्रतीत हो रहा था। जनता एक ऐसी सरकार जिसकी गृह नीति नकारात्मक थी और विदेश नीति भीरु थी, का समर्थन करते हुए थक चुकी थी। (5) इसके अतिरिक्त गणतन्त्रवाद एक बार पुनः जीवन्त सिद्धान्त बन रहा था। जुलाई क्रान्ति द्वारा आविर्भूत आकांक्षाओं का दमन कर दिया गया था और उग्र सुधारवादी तत्व अपने आदर्शों और समाधानों के लिए फ्रान्स की सन् 1789 की महान् क्रान्ति की ओर देख रहे थे। समाजवादियों ने देखा कि जुलाई क्रान्ति के समस्त लाभ सीमित मध्यवर्ग को प्राप्त हो गये थे। अस्तु समाजवादी, गणतन्त्रवादियों के साथ भावी संघर्ष के लिए मिल गये। दोनों की संयुक्त शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। अत्यधिक निराश समाजवादियों ने गणतन्त्रवादियों के **साथ सक्रिय सहयोग करते हुए मताधिकार के विस्तार की माँग की। यही सन् 1848 की फ्रान्सीसी क्रान्ति का तात्कालिक कारण था।**

इस प्रकार सन् 1848 की क्रान्ति संयुक्त अथवा मिश्रित आन्दोलन था। जनता उस सरकार को बदलना चाहती थी जिसने समस्त परिवर्तनों के विरुद्ध दृढ़ निश्चय कर लिया था। मध्य वर्ग के गुटतान्त्रिक शासन के विरुद्ध गणतान्त्रिक विचारधारा एवं भावना का विकास हो चुका था, और समाजवाद का पहली बार राजनीतिक शक्ति के रूप में आविर्भाव हुआ था। समाजवादियों का उद्देश्य नये आधार पर समाज का पुनर्निर्माण करना था।

निर्वाचन एवं संसदीय सुधार की माँग—क्रान्ति का सूत्रपात (Demand of Election and Parliamentary Reform—Beginning of the Revolution)—डि टोक्याविले (De Tocquaville) ने तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में कहा, फ्रान्स इस समय ज्वालामुखी पर सो रहा था। चैम्बर आफ डिप्टीज में थेयर्स के कुशल नेतृत्व में एक सुधार दल का गठन एवं विकास हो चुका था। सुधारकों ने लुईस फिलिप की सरकार की कटु आलोचना की क्योंकि सरकार ने सुधारकों के साधारण सुधारों जैसे मताधिकार का विस्तार एवं भ्रष्टाचार का उन्मूलन जैसी माँगों को अस्वीकार कर दिया था। गीजों ने दृढ़ता के साथ कहा "कि यह सुधार आन्दोलन कुछ ही व्यक्तियों का काम था और देश की समस्त जनता इसके प्रति पूर्णतया उदासीन थी। जुलाई राजतन्त्र के विरुद्ध निरन्तर बढ़ता हुआ असन्तोष कुछ भी करने में असमर्थ था, क्योंकि मन्त्रि परिषद को चैम्बर आफ डिप्टीज का समर्थन प्राप्त था और चैम्बर आफ डिप्टीज के समस्त सदस्य मात्र 2 लाख मतदाताओं द्वारा निर्वाचित थे। इस स्थिति का न्यायोचित समाधान केवल मताधिकार के विस्तार में निहित था। सीमित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चैम्बर आफ डिप्टीज में थेयर्स के नेतृत्व में सुधारवादियों के दल का आविर्भाव एवं विकास हुआ था और यह दल राजतन्त्र को अपदस्थ नहीं करना चाहता था वरन् चैम्बर आफ डिप्टीज के गठन में परिवर्तन और मताधिकार का विस्तार, संसदीय एवं

निर्वाचक सुधार चाहता था। मताधिकार के विस्तार की माँग ही क्रान्ति का तात्कालिक कारण था और उसने सुलगती हुई ज्वलनशील सामग्री के ढेर में चिंगारी का काम किया। ज्वालामुखी जिस पर फ्रान्स सो रहा था, का विस्फोट हो गया। इस साधारण सी माँग को अस्वीकार करते हुए लुईस फिलिप एवं गीजों ने मात्र "कुछ भी मत करो" की नीति का अनुसरण किया। गीजों के कथन को मिथ्या सिद्ध करते हुए सन् 1847 में विरोधी नेताओं, जो राजतन्त्र के प्रति निष्ठावान थे, लेकिन उसकी नीतियों के विरोधी थे, ने सुधार भोज/दावतों (Reform Banquets) की शृंखला का आयोजन मताधिकार के पक्ष में जनमत तैयार करने के उद्देश्य से किया। इसी प्रकार गणतन्त्रवादियों, जो राजतन्त्र के अस्तित्व के ही कट्टर विरोधी थे, ने सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया। संसदीय सुधार की निरन्तर बढ़ती हुई माँग से भयभीत होकर सरकार ने राजनीतिक भोज एवं सुधार प्रदर्शन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सुधार प्रदर्शन का विरोधियों ने पेरिस में आयोजन किया था। विषय गम्भीर एवं जटिल था, लेकिन इसने फ्रान्स के जनसमुदाय को प्रेरित एवं उत्तेजित किया और जनसमूह "गीजों को हटाओ" (Down Guizot) के नारे लगाते हुए उमड़ पड़ा। अस्तु प्रारम्भ में आन्दोलन संवैधानिक था और मुख्य रूप से अलोकप्रिय प्रधानमन्त्री, जिसने सुधारों का विरोध किया था, के विरुद्ध था। जनता को सन्तुष्ट करने के लिए लुईस फिलिप ने गीजों को सेवा से मुक्त कर दिया।

सुधारवादियों ने 22 फरवरी, 1848 को "विशाल भोज" (Monster Banquet) निश्चित किया, लेकिन सरकार ने इस भोज पर प्रतिबन्ध लगाया और इसने स्थिति को अधिकं जटिल बना दिया। निश्चित तिथि 22 फरवरी, 1848 को पेरिस के मध्य में विद्यार्थियों, श्रमिकों एवं अन्यों का विशाल जनसमूह एकत्रित हो गया। जनसमूह ने नारों के साथ सामूहिक गीत गाये और उत्सवाग्नि जलायी। अराजकता की घटनाओं के अतिरिक्त कोई गम्भीर घटना नहीं हुई। 23 फरवरी, 1848 को राष्ट्रीय रक्षकों (National Guards) को शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने के लिए बुलाया गया। लेकिन राष्ट्रीय रक्षकों ने विद्रोहियों का दमन नहीं किया वरन स्वयं उनके साथ सम्मिलित हो गये। कुछ रक्षकों ने "सुधार दीर्घायु हों" (Long live the Reform) और "गीजों को हटाओ" (Down with Guizot) के नारे लगाये। लुईस फिलिप सुधार स्वीकृत करने के लिए इच्छुक था। गीजों ने सहमति व्यक्त नहीं की और कार्यालय से हट गया। इस समाचार का जनसमुदाय ने अपूर्व उत्साह के साथ स्वागत किया और 23 फरवरी की सायंकाल पेरिस में सर्वत्र रोशनी की गयी। ऐसा प्रतीत हुआ कि विवाद का अन्त हो गया। अब तक विवाद केवल राजतन्त्रवादियों जो गीजों के मन्त्रिपरिषद का समर्थन करते थे और सुधारवादियों जो सुधार चाहते थे, के मध्य था और गीजों का पतन, सुधारवादियों की विजय थी। इसी समय गणतन्त्रवादी घटनास्थल पर आक्रामक मुद्रा में आ गये और जनता को लुईस फिलिप एवं राजतन्त्र के विरुद्ध उत्तेजित करने का दृढ़ निश्चय किया। उन्होंने गीजों के निवास स्थान की ओर कूच किया और गीजों के घर के सामने विरोध प्रदर्शन किया। किसी अज्ञात व्यक्ति ने गीजों के सुरक्षा सैनिक पर गोली चला दी। सुरक्षा सैनिकों ने तत्काल प्रत्युत्तर दिया। इसमें 23 व्यक्तियों का निधन हो गया और 30 व्यक्ति घायल हो गये। प्रदर्शनकारियों ने शवों को एक गाड़ी में रखकर भव्य प्रकाश में पेरिस की

जनता को दिखाकर उत्तेजित किया। इस वीभत्स दृश्य ने सर्वत्र जनता की क्रोधाग्नि को उत्तेजित किया। चारों ओर प्रतिशोध (Vengeance) के नारे लग रहे थे।

लुईस फिलिप का पतन और द्वितीय गणतन्त्र की घोषणा (Fall of Louis Phillippe & Proclamation of Second Republic)

भीषण उपद्रव आरम्भ हो गये थे और इनकी प्रचंडता निरन्तर बढ़ रही थी। सड़कों पर अवरोधक खड़े कर दिये गये थे, घरों को लूटा गया और राजा और उसके समर्थकों को सशस्त्र व्यक्तियों ने चारों ओर से घेर लिया। जनता उच्च स्वर में "गणतन्त्र दीर्घायु" के नारे लगा रही थी। अन्ततोगत्वा 24 फरवरी, 1848 को लुईस फिलिप ने अपने अवयस्क पौत्र पेरिस के काउन्ट के पक्ष में राजसिंहासन त्याग दिया और स्वयं मि. स्मिथ के छद्म नाम से इंग्लैण्ड चला गया। गीजों भी पलायन कर गया। राजा के निर्वासित जीवन का क्लेयरमोन्ट में 2 वर्ष बाद निधन से अन्त हो गया।

लुईस फिलिप के सत्ता त्यागने के उपरान्त गणतन्त्रवादी एवं समाजवादी दोनों ही राजतन्त्र को चलाने की अनुमति नहीं दे सकते थे। अस्तु इन दोनों दलों ने 26 फरवरी, 1848 को द्वितीय गणतन्त्र की घोषणा कर दी। लामार्टिन ने कहा, "राजतन्त्र को समाप्त कर दिया गया है। गणतन्त्र की घोषण कर दी गयी है। जनता अब अपने राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करेगी। राष्ट्रीय कार्यशालाओं को उन व्यक्तियों के लिए, जो बिना काम के हैं, खोल दिया गया है।"

तदुपरान्त दोनों दलों ने विख्यात कवि एवं वक्ता, एक उदारवादी कैथोलिक लामार्टिन के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार का गठन किया। अन्तरिम सरकार के अन्य सदस्य जैकोबिन अनुयायी गणतन्त्रवादी लेड्रू रौलिन (Ledru Rollin) समाजवादी नेता लुईस ब्लैन्क (Louis Blanc) और श्रमिक एल्बर्ट (Albert) थे।

सन् 1830 और सन् 1848 की फ्रान्स की क्रान्तियों का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study of the Revolutions of 1830 and 1848)

सन् 1830 की क्रान्ति अनिवार्य रूप से मध्यवर्गीय क्रान्ति थी। चार्ल्स दशम की नीतियों से मध्यवर्ग ही सर्वाधिक प्रभावित एवं त्रस्त था। सन् 1825 में पारित क्षतिपूर्ति विधेयक (Indemnification Bill) के द्वारा उन आप्रवासियों को, जिनकी भूमि सन् 1789 की फ्रान्स की क्रान्ति काल में अधिग्रहीत कर ली गयी थी, लेकिन बेची नहीं गयी थी, क्षतिपूर्ति करने की व्यवस्था थी। दुर्भाग्य से यह क्षतिपूर्ति मध्यवर्ग के मूल्य पर की गयी थी, क्योंकि राष्ट्रीय ऋण, जिसमें अधिकांश पूँजी मध्यवर्ग की ही निवेशित थी, पर ब्याज दर 5% से कम करके 4% कर दी गयी थी। जनता ने धर्म विरोधी (Socrilege) अधिनियम का भी विरोध किया। इस अधिनियम में दोषी व्यक्ति के लिए क्रूर एवं बर्बर दण्ड का प्रावधान किया गया था। चार्ल्स दशम कट्टर कैथोलिक मतावलम्बी था और अपने धर्म का अधिकाधिक प्रचार और प्रसार करना चाहता था। चार्ल्स दशम के धर्मान्ध चरित्र ने मध्यवर्गीय जनता की निष्ठा

स्थानान्तरित कर दी थी। स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व के उत्कृष्ट उदारवादी सिद्धान्तों से अनुप्राणित फ्रान्स की जनता पर शासन करने के लिए उपयुक्त नहीं था।

चार्ल्स दशम के अनेक प्रशासनिक एवं शैक्षिणक उपायों का भी जनता ने कटु विरोध किया। चार्ल्स दशम ने देश में शिक्षा का समस्त दायित्व ईसाई पादरियों को दे दिया था। जनता अपने बच्चों को धर्म निरपेक्षिक शिक्षा प्रदान करना चाहती थी। प्रेस पर आरोपित कठोर प्रतिबन्ध भी जन विरोधी था। कुछ भी राजा के अनुमोदन के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता था। साथ ही चार्ल्स दशम ने मतदाताओं की मताधिकार के प्रयोग के लिए सम्पत्ति की योग्यता में वृद्धि कर दी। गुप्त मतदान समाप्त कर दिया गया और फ्रान्स में भू-स्वामियों के हितों की सुरक्षा के लिए दोहरे मताधिकार का प्रावधान किया गया। राष्ट्रीय सुरक्षा, जिस पर मध्य वर्ग का पूर्णतया प्रभुत्व था, को सन् 1827 में विघटित कर दिया गया। इस प्रकार चार्ल्स दशम की जनता की भावनाओं एवं आकांक्षाओं की विरोधी गतिविधियों एवं जनहित की उपेक्षाओं ने जनाक्रोश उत्पन्न कर दिया। मध्य वर्ग में व्यापक रूप से असन्तोष कुंठा एवं आक्रोश का ही परिणाम सन् 1830 की क्रान्ति एवं चार्ल्स दशम का सिंहासन परित्याग था। जबकि सन् 1830 की फ्रान्स की क्रान्ति मध्यवर्गीय थी, लेकिन सन् 1848 की फ्रान्स की क्रान्ति समाजवादी एवं गणतन्त्रवादी, राजतन्त्र विरोधी थी। फ्रान्स के राजा लुईस फिलिप को अपदस्थ करने में समाजवादियों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। फ्रान्स में औद्योगिक क्रान्ति के विकास के परिणामस्वरूप वर्गीय चेतना से अभिभूत श्रमिक वर्ग अथवा सर्वहारा वर्ग का आविर्भाव हुआ था। सरकार श्रमिकों के पारिश्रमिक एवं सेवा शर्तों में, जिनके कारण उनकी स्थिति अत्यधिक दयनीय थी, में किंचित भी सुधार करने के लिए तैयार नहीं थी। सेन्ट साइमन, फोरियर (Fourier), प्रोधों (Proudhon) एवं लुईस ब्लैन्क जैसे उत्कृष्ट समाजवादी एवं उदारवादी के दार्शनिक विचारों से प्रभावित समाजवादियों ने विस्फोटक स्थिति का स्वयं के लाभ के लिए शोषण किया। जनान्दोलनों, उपद्रवों एवं विशाल प्रदर्शनों के उपरान्त भी लुईस फिलिप की रूढ़िवादी सरकार अविचलित रही। श्रमिक वर्ग में व्याप्त व्यापक, गहन असन्तोष एवं आक्रोश का परिणाम फरवरी, 1848 की फ्रान्स की क्रान्ति थी और लुईस फिलिप भी राजसिंहासन त्यागकर इंग्लैण्ड चले गये।

दोनों क्रान्तियों के तात्कालिक कारण भिन्न थे। सन् 1830 की जुलाई क्रान्ति का तात्कालिक कारण चार्ल्स दशम द्वारा जारी चार अध्यादेश थे जबकि सन् 1848 की फरवरी क्रान्ति का तात्कालिक कारण मताधिकर का विस्तार 22 फरवरी, 1848 को विशाल भोज एवं प्रदर्शनकारियों पर घातक गोली वर्षा था।

सन् 1830 की क्रान्ति के लिए चार्ल्स दशम का अड़ियल, समन्वय एवं समझौता विरोधी तथा धर्मान्ध चरित्र उत्तरदायी था, लेकिन सन् 1848 की क्रान्ति के लिए लुईस फिलिप की निरन्तर बढ़ती हुई अलोकप्रियता थी। थेयर्स की पदमुक्ति (सेवा से निकाल देना) और गीजों के सन् 1840 से सन् 1848 तक भ्रष्ट प्रशासन ने जनता की आस्था और निष्ठा को विमुख कर दिया था। प्रो. हर्नशा कहते हैं कि "कोई भी उसको चाहता नहीं था। कुछ ही

उसका सम्मान करते थे, केवल बहुत कम मध्यवर्ग जो अल्पमत में थे, उसका समर्थन करते रहे।"

फ्रान्स की महत्वाकांक्षी जनता उत्साही एवं क्रियाशील विदेश नीति चाहती थी। फ्रान्स की सीमाओं को विस्तार की प्रबल जनआकांक्षा थी। चार्ल्स दशम ने सन् 1830 में अल्जियर्स पर नियन्त्रण कर लिया, लेकिन यह सुखद समाचार मिलने तक क्रान्ति का विस्फोट हो गया। फ्रान्स की जनता लुईस फिलिप की निष्क्रिय एवं उदासीन विदेश नीति से अत्यधिक निराश थी। लुईस फिलिप युद्ध करने की अपेक्षा 12 कक्षों (Chambers) को कुचलने के लिए कृत संकल्प था। उसकी विदेश नीति अपने देश की अपेक्षा अपने परिवार के व्यक्तियों के हितों, की ओर उन्मुख थी। उसने उत्तरी इटली अथवा पोलैण्ड की विद्रोही जनता की कोई सहायता नहीं की। गीजों ने निरन्तर शान्तिपूर्ण नीति का अनुसरण किया। उसका आदर्श "सब समय पर समस्त स्थानों पर शान्ति सुरक्षित रखना" था। सन् 1847 में फ्रान्स की संसद के एक सदस्य ने पूछा, "उन्होंने सात वर्ष में क्या किया है ? कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं"।

जुलाई, 1830 की क्रान्ति चार्ल्स दशम की कैथोलिक समर्थक नीति का परिणाम थी जबकि फरवरी, 1848 की क्रान्ति गीजों की कैथोलिक विरोधी नीति का परिणाम थी। प्रोटेस्टेन्ट प्रधानमन्त्री गीजों ने कैथोलिक विरोधी विश्वविद्यालय का समर्थन किया। उसने जनता को धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की लेकिन कैथोलिक अनुयायियों ने उसका विरोध किया।

जुलाई, 1830 की क्रान्ति ने राजतन्त्र को बनाये रखा, लेकिन सन् 1848 की क्रान्ति ने राजतन्त्र समाप्त करके गणतन्त्र की घोषणा की। सन् 1830 में सार्वभौम मताधिकार देने का वचन दिया गया था, लेकिन सन् 1848 में वास्तव में सार्वभौम व्यस्क मताधिकार दे दिया गया। सन् 1830 की क्रान्ति के कारण सामाजिक व्यवस्था में, अल्पकालीन परिवर्तन के अतिरिक्त स्थायी परिवर्तन नहीं किया था, लेकिन फरवरी, 1848 की क्रान्ति के उपरान्त जून सन् 1848 में भीषण नरसंहार हुआ था। सन् 1830 की क्रान्ति ने दैविक अधिकार वाले राजतन्त्र का उन्मूलन कर दिया था, लेकिन सन् 1848 ने मध्यवर्गीय सीमित राजतन्त्र का उन्मूलन कर दिया और गणतन्त्र स्थापित किया गया जिसका जीवन केवल 4 वर्ष था।

प्रो. हेज तुलनात्मक समीक्षा करते हुए कहते हैं कि "सन् 1848 की फरवरी क्रान्ति सन् 1830 की जुलाई क्रान्ति से मूलभूत रूप से भिन्न नहीं थी। दोनों ही क्रान्तियाँ मुख्य रूप से पेरिस के विषयों से सम्बन्धित थीं। दोनों ही अनिवार्य रूप से राजनीतिक थीं, और केवल आकस्मिक रूप से सामाजिक थीं, दोनों प्राथमिक दृष्टि में उदारवादी थीं। एक ने यह सत्य है, प्रतिबन्धित मताधिकार के साथ राजतन्त्र स्थापित किया जबकि अन्य ने सार्वभौम व्यस्क मताधिकार के साथ गणतन्त्र स्थापित किया। लेकिन दोनों ने लोकप्रिय प्रभुसत्ता के सिद्धान्त को मान्यता दी, दोनों ने तिरंगे और मारसेलेस (Marseillaise) को प्रयुक्त किया, और अपेक्षाकृत बहुत अधिक महत्वपूर्ण है, दोनों ही भू-स्वामियों की विजय और नीतियाँ, जो भू-स्वामियों की आकांक्षाओं को प्रतिबन्धित करती थीं, को ग्रहण करने में समान स्तर पर थे।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. 1848 में फ्रान्स की क्रान्ति के क्या कारण थे ?
What were the causes of the French Revolution of 1848 ?
(बी. आर. अम्बेदकर, 1994, 96, 98; मगध, 1991, 95, 97, 99; लखनऊ, 1992, 94, 98, 2000; राँची, 1997, 99; जबलपुर, 1996; रुहेलखण्ड, 1995, 97, 2000; पटना, 1997, 98; गढ़वाल, 1997, 98, 2000; अवध, 1993, 95; भोपाल एवं गोरखपुर, 1997; बुन्देलखण्ड, 1992, 97; मेरठ, कानपुर एवं रायपुर, 1998)

2. लुईस फिलिप की स्वर्णिम मध्यम नीति की व्याख्या कीजिये। क्या यह नीति पतन के लिए उत्तरदायी थी ?
Discuss the Golden Mean Policy of Louis Philip. Was it responsible for his downfall ? (गढ़वाल, 1996, 99; गोरखपुर, 1998; बुन्देलखण्ड एवं रुहेलखण्ड, 1997; मेरठ, 1991, 93; लखनऊ, 1991)

3. 1848 का वर्ष यूरोप में अद्भुत घटनाओं का वर्ष था। व्याख्या कीजिए।
The year of 1848 was the year of miracles in Europe. Discuss.
(गढ़वाल, 1996; रुहेलखण्ड, 1999; अवध, 1998; कानपुर, 1993; 97; गोरखपुर, 1990; बुन्देलखण्ड, 1995; मेरठ, 1994; 96)

4. लुईस फिलिप की गृह और विदेश नीति की विवेचना कीजिये।
Discuss Louis Philip's domestic and foreign policy.
(रुहेलखण्ड, 1992; अवध, 1996; आगरा, 1999; कानपुर, 1995, 96, 99, 2000; बुन्देलखण्ड, 1993; मेरठ, 1995; लखनऊ, 1993, 95; रायपुर एवं जबलपुर, 1997, 99)

5. सन् 1830 एवं सन् 1848 की फ्रान्स की क्रान्तियों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिये।
Make a comparative study of the revolution of 1830 & 1848.
(मेरठ, 1992; लखनऊ, 1993, 97)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. सन् .... में लियोन्स में गणतान्त्रिक उपद्रव हुये—
(क) 1831 (ख) 1832 (ग) 1833 (घ) 1834
2. सन् .... में लुईस फिलिप की हत्या का असफल प्रयास किया गया—
(क) 1834 (ख) 1835 (ग) 1836 (घ) 1837
3. लुईस नैपोलियन ने सन् 1835 एवं सन् .... में विद्रोहों को उत्तेजित करके सत्ता प्राप्त करने का असफल प्रयास किया—
(क) 1836 (ख) 1837 (ग) 1839 (घ) 1840
4. लुईस फिलिप ने सन् .... में अपने पौत्र के पक्ष में पद त्याग दिया और इंग्लैण्ड चला गया—
(क) 1845 (ख) 1847 (ग) 1848 (घ) 1850

5. फ्रान्स में सन् ········ में द्वितीय गणतन्त्र स्थापित किया गया—
(क) 1847 (ख) 1848 (ग) 1850 (घ) 1852
6. 2 दिसम्बर ·········· को लुईस नैपोलियन ने विद्रोह कर दिया—
(क) 1849 (ख) 1850 (ग) 1851 (घ) 1852
7. जनवरी ············ में नैपोलियन ने नया संविधान प्रवर्तित किया—
(क) 1849 (ख) 1850 (ग) 1851 (घ) 1852
8. जनमत संग्रह द्वारा लुईस नैपोलियन सन् ······· में फ्रान्स का सम्राट बन गया—
(क) 1852 (ख) 1853 (ग) 1854 (घ) 1855
9. मैटरनिख ने सन् ··········· में त्याग पत्र देकर पलायन किया—
(क) 1845 (ख) 1848 (ग) 1850 (घ) 1852
10. आस्ट्रिया के सम्राट फर्डीनेण्ड ने सन् ········ में अपने भतीजे जोसेफ प्रथम के पक्ष में पद त्याग दिया—
(क) 1846 (ख) 1847 (ग) 1848 (घ) 1849

[उत्तर—1. (घ), 2. (ख), 3. (घ), 4. (ग), 5. (ख), 6. (ग), 7. (घ), 8. (क), 9. (ख), 10. (ग) ।]



9

पूँजीवाद का अभ्युदय

[RISE OF CAPITALISM]

पूँजीवाद का प्रारम्भ

(BEGINNING OF CAPITALISM)

पूँजीवाद एक संस्था की अपेक्षा स्वभाव अथवा प्रकृति है। अधिकाधिक धन प्राप्त करने की कभी भी तृप्त न होने वाली लिप्सा पूँजीवादी प्रकृति की मूलभूत प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति ही पूँजीवादी व्यवस्था का आदि एवं अन्त है। उत्पादित वस्तुओं पर लाभ के माध्यम से धन अर्जित किया जाता है और लाभ का अनुमान वस्तुओं के मूल्य से होता है। पूँजीवादी, धन अथवा सम्पत्ति अर्जित करते समय धन को ही अपना अन्तिम लक्ष्य मानता है और धन अर्जित करने के साधनों अथवा तरीकों पर ध्यान नहीं देता है। धन अर्जित करने की प्रबल कामना को नैतिक दृष्टि से न्यायोचित मानता है और इसको व्यक्ति का सद्‌गुण कहता है। धन के उचित मूल्यांकन के लिए स्वतन्त्रता, उन्मुक्त बाजार, स्वतन्त्र विश्व आदि अनेक प्रचलित शब्दों का प्रयोग करता है।

इस प्रकृति की जड़ें बहुत गहरी हैं। इसकी अनेक संस्थानात्मक विधाएँ हैं। इस संस्था के एक आयाम का सम्बन्ध मुद्रा, बैंकिंग, ऋण पत्रों, आदान-प्रदान के बिलों, बीमा आदि से था। इसके अन्य आयाम का सम्बन्ध संविदा, कम्पनी हिस्सेदारी, हिस्सों (Shares), संयुक्त शेयर, बाजार, स्वामित्व, न्याय, उत्पादक संघ आदि से है।

पूँजीवाद की प्रकृति तथा संस्थानात्मक संरचना को पूँजी की उपलब्धता, उन्मुक्त तथा व्यापक बाजारों, वस्तुएँ उपलब्ध कराने के सुलभ तथा कुशल साधनों, प्रौद्योगिकी ज्ञान, निजी सम्पत्ति का अधिकार और व्यक्तिगत उद्यमियों की उपस्थिति ने प्रोत्साहित किया। पूँजीवाद को विभिन्न अवयवों से आरम्भ एवं प्रोत्साहित, तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है। सन् 1500-1776 के मध्य पूँजीवादी अवधारणाओं पर संगठित वाणिज्यिक उद्यमों को वाणिज्यिक पूँजीवाद अथवा वाणिज्यवाद कहते हैं। सन् 1776 से सन् 1850 तक पूँजीवाद पर आधारित औद्योगीकरण का है, और सन् 1850 के उपरान्त वित्तीय पूँजीवाद अर्थात् संयुक्त शेयर बाजार (Joint Stock Companies) विदेशों में पूँजी निवेश का युग आरम्भ हुआ।

कुछ विद्वानों ने मत व्यक्त किया है कि पूँजीवाद के अभ्युदय एवं विकास के तीन प्रमुख आधार हैं। पूँजीवाद प्रवृत्ति अथवा भावना का विकास, पूँजी का संचय तथा पूँजीवादी तकनीकों अथवा संस्थाओं का विकास। एक विद्वान ने पूँजीवाद के सम्बन्ध में लिखा है, "पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति अपना धन लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से व्यावहारिक दृष्टि से किसी भी व्यवसाय में लगा सकता है। इस अधिकार को उपक्रम की स्वतन्त्रता की संज्ञा दी जा सकती है।" जे. ई. स्वेन (J. E. Swain) ने अपनी कृति 'विश्व सभ्यता के विकास' में विचार व्यक्त किया है, "आधुनिक अर्थव्यवस्था की विशिष्ट विशेषता पूँजीवाद, वाणिज्यिक क्रान्ति का व्यापक विकसित रूप है।" सामान्यतः पूँजीवाद, धनी, सम्पन्न एवं समृद्धशाली व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह का विशाल स्तर पर व्यापारिक संगठन है। व्यक्ति अथवा समूह अपनी सम्पत्ति से कच्चा माल और औजार प्राप्त कर सकता है और लाभ अर्जित करने के लिए अधिकाधिक वस्तुओं के उत्पादन हेतु पारिश्रमिक पर श्रमिकों को रखता है। पूँजीवाद में लाभ ही मूलभूत तत्व है और समाज में व्यक्ति विशेष के स्थान के आकलन के लिए सम्पत्ति ही मापदण्ड है। वस्तुओं एवं सेवाओं का मूल्यांकन आन्तरिक गुणों की अपेक्षा माँग और पूर्ति पर आधारित है। पूँजीवादी व्यवस्था विशाल औद्योगिक उद्यमों के प्रोत्साहन के लिए सम्पत्ति के कुछ ही व्यक्तियों में केन्द्रीकरण की आवश्यकता पर बल देती है। इसी प्रकार एक विद्वान ने 'The Penguin Atlas of World' में कहा है, "वस्तु-विनिमय से मुद्रा की अर्थव्यवस्था में शनैः शनैः परिवर्तन, धर्मयुद्धों तथा मुद्रा के उत्तरी तथा मध्य इटली से दक्षिणी जर्मनी, फ्रान्स और नीदरलैण्ड होते हुए समस्त यूरोप में प्रसार से आरम्भ हुआ।"

पन्द्रहवीं शताब्दी से यूरोप के अनेक क्षेत्रों में विकास कार्यों ने पूँजीवाद के लिए अनिवार्य प्रकृति के उद्भव तथा इसको साकार रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन विकास कार्यों में सर्वप्रथम वाणिज्यवाद था। पूँजीवादी नीति के समर्थक राष्ट्रों ने व्यक्तिवाद, व्यापार उपनिवेशों पर आधिपत्य तथा सोना-चाँदी प्राप्त करने के महत्व को दर्शाया है। ये समस्त विशिष्ट गुण पूँजीवाद में कुछ परिवर्तित रूप में स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं। व्यक्ति के स्वामित्व अथवा व्यक्ति के अहंभाव (स्वार्थपरता) में व्यक्तिवाद प्रकट होता है। कुछ काल पश्चात व्यक्तिवाद का बुद्धिवादी व्यक्ति के रूप में विकास हुआ। जब व्यक्ति ने अहस्तान्तरणीय अधिकारों का दावा करते हुए तथा राज्य को व्यक्तियों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला मानव युक्ति अथवा आविष्कार समझते हुए स्व-परक एवं अन्य-परक में स्पष्ट भेद करना आरम्भ कर दिया। दूसरे, व्यापार प्रारम्भ में स्वतन्त्र व्यापार के रूप में था, लेकिन बाद में व्यापारिक क्षेत्र में संरक्षणवादी नीति का सूत्रपात हुआ। तदुपरान्त संरक्षणवादी नीति मिश्रित नीति में परिवर्तित हो गयी। इसके अन्तर्गत आंशिक व्यापार मुक्त व्यापार था तथा आंशिक व्यापार संरक्षणवादी था। आयात-निर्यात पूर्वापेक्षा अधिक वस्तुओं की उपलब्धता सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। वाणिज्यवादी युग में बहुमूल्य धातुओं तथा मसालों ने यूरोप के कुछ राष्ट्रों को समृद्धशाली एवं सम्पन्न बनाया। इन राष्ट्रों ने नवोदित मध्यमवर्ग द्वारा समर्थित सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राजतन्त्रों की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया और पूँजीवादी युग में वस्तुओं के विनिमय ने बहुत सहायता की। वित्तीय पूँजी की अवधि में

समाज के उच्च वर्ग की जीवन शैली अत्यधिक वैभवपूर्ण हो गयी और द्रव पूँजी का सुदूर उपनिवेशों में उपनिवेश प्राप्त करने तथा अधिक लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से निर्यात किया गया।

तीसरे वाणिज्यवादी युग में, उपनिवेशों पर आधिपत्य स्थापित करने की प्रक्रिया में यूरोपीय राष्ट्रों ने अनेक सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को समूल नष्ट कर दिया और आक्रमणकारी सैनिकों तथा व्यापारियों ने अधिकाधिक सोना-चाँदी प्राप्त करने के उद्देश्य से विश्व के अनेक भागों को स्वच्छन्दतापूर्वक निर्ममता के साथ लूटा। पूँजीवादी देशों के प्रारम्भिक चरण में उपनिवेशों से आयात पर अनेक प्रतिबन्ध थे। पूँजीवाद के द्वितीय चरण में पूँजीवादी देशों ने औपनिवेशिक क्षेत्रों की सेवा भावना का छद्म प्रदर्शन किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूँजीवादी देशों की नीतियों तथा गतिविधियों को साम्राज्यवादी सिद्धान्तों तथा आदर्शों की संज्ञा दी जाती है। वाणिज्यवाद के अन्तिम चरण में सोना-चाँदी की स्थिति में बहुत अधिक रूपान्तर हुआ। प्रारम्भ में व्यापारिक गतिविधियों में बहुमूल्य धातुओं का स्थान मुद्रा ने ले लिया। जैसे-जैसे व्यापारिक गतिविधियों के रूप-आकार का विकास हुआ और जटिलताओं में वृद्धि हुई, बैंकिंग, बीमा, संयुक्त स्टाक कम्पनियाँ आदि संस्थाओं का मुद्रा के आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करने के लिए आविर्भाव हुआ।

वाणिज्यवाद के उपर्युक्त चार परिणामों के कारण जटिल विकास-क्रम के परिणामस्वरूप पूँजीवाद का अभ्युदय हुआ। पूँजीवाद की आन्तरिक प्रकृति अर्जनशीलता अथवा लाभार्जन की थी। इस प्रेरक प्रवृत्ति के आधार पर बाजार, अर्थव्यवस्था के गुणों, उद्यमी कुशलता की महानता, प्रबन्धात्मक कुशलता, सम्पत्ति संचय के महत्व आदि अनेक सिद्धान्तों एवं आदर्शों को विकसित किया गया।

इसके अतिरिक्त पूँजीवाद के विकास एवं परिपक्वता ने यूरोपीय राष्ट्रों में अनेक विकास कार्यों को प्रभावित किया। सोलहवीं शताब्दी से इन राष्ट्रों ने अनुभव किया कि अतिरिक्त कृषि उत्पादनों को भी मुद्रा (धन) में परिवर्तित किया जा सकता था और उस पूँजी का कृषिगत व्यवसायों में निवेश करके अधिकाधिक लाभ अर्जित किया जा सकता था। औद्योगिक क्षेत्र में सोलहवीं शताब्दी से उद्यमी मध्यमवर्ग ने अनुभव किया कि उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के लिए पूँजी निवेश बहुत लाभदायक था। सोलहवीं शताब्दी से प्रारम्भ प्रक्रिया अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक चरम बिन्दु तक पहुँच गयी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त से पूर्व ही उत्पादक गतिविधियों में उपयोगी परिवर्तनों के लिए विज्ञान का अधिकाधिक प्रयोग करने के सफल प्रयास किये गये। परिणामस्वरूप यूरोपीय राष्ट्रों ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से कुछ दशक पूर्व ही प्रौद्योगिक युग में प्रवेश किया और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही प्रौद्योगिक क्रान्ति घातीय ढंग से आगे बढ़ रही है।

इसी अवधि में कल-कारखानों की स्थापना, शहरी क्षेत्रों के विकास, जनसंख्या वृद्धि, व्यवसायों में क्रान्तिकारी रूपान्तर आदि के कारण लोगों के सामाजिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। विकास कार्यों तथा सामाजिक परिवर्तनों के साथ राज्य की प्रशासनिक संरचना में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। प्रारम्भिक चरण में सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राजतन्त्र

ही प्रशासनिक व्यवस्था के मूलभूत आधार थे, किन्तु अठारहवीं शताब्दी से संवैधानिक (सीमित) राजतन्त्रों अथवा लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली का अभ्युदय हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से ही समस्त विकास प्रक्रियाएँ तथा इनकी जननी पूँजीवाद की समाजवादी विचारकों ने कटु आलोचना करना आरम्भ कर दिया। कार्ल मार्क्स समस्त समाजवादी अलोचकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे।

समाजवादी विचारकों की कटु आलोचनाओं के परिणामस्वरूप, उन्मुक्त बाजार, अर्थव्यवस्था, पूँजीवाद अथवा उदारवाद के प्रबल समर्थकों ने कार्यक्षेत्र तथा नीति में परिवर्तन किये। इस प्रकार इंग्लैण्ड में उदार सामाजिक अधिनियम का शुभारम्भ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में ही जर्मनी के बिस्मार्क की सामाजिक बीमा योजना भी उदार सामाजिक अधिनियम की ही प्रतीक थी। इस प्रकार की विकासशील गतिविधियाँ कल्याणप्रद कार्यों अथवा सामाजिक सुरक्षा उपायों के रूप में विश्व के लगभग समस्त स्वतन्त्र देशों में आज भी दृष्टिगत होती हैं।

विश्व को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने में पूँजीवाद एक महत्वपूर्ण शक्ति एवं अवयव रहा है। मिल्टन फ्रीडमैन तथा शिकागो के विद्यार्थी, चाइल में अपने अल्पकालीन प्रयोग तथा विश्व के विख्यात व्यक्तियों रोनाल्ड रैगन एवं मार्गरेट थैचर का अपने आदर्शों तथा सिद्धान्तों के प्रति समर्थन प्राप्त करने के लिए गर्व का अनुभव करते हैं। समाजवाद के आदर्श एवं सिद्धान्त पूँजीवाद का ही संशोधित एवं परिवर्धित स्वरूप हैं। कट्टर वामपंथी मार्क्सवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं। यद्यपि पूँजीवाद की अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं किन्तु इसका भविष्य अत्यधिक धूमिल है और भावी शताब्दियों में संग्रहालय तक सीमित हो जाने की आशा है।

पूँजीवाद का उद्भव (Origin of Capitalism)

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, सिद्धान्तों तथा आदर्शों के आधार पर यूरोप विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली तथा प्रभुता सम्पन्न महाद्वीप बन गया। पूँजीवाद का सूत्रपात मध्य युग में ही हो चुका था लेकिन अठारहवीं शताब्दी में पूर्ण परिपक्व हो सका। उन्नीसवीं शताब्दी में पूँजीवाद वित्तीय पूँजीवाद में रूपान्तरित हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी से पूँजीवाद अनेक नाम जैसे पूँजीवादी अथवा साम्राज्यवादी युग, संयुक्त स्टाक पूँजीवाद (Joint Stock Capitalism) अज्ञात पूँजीवाद, सामूहिक पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और आधुनिक समय में नव उपनिवेशवाद से विख्यात है।

जे. ई. स्वेन (J. E. Swain) की पूँजीवाद की परिभाषा का पूर्व पृष्ठों में उल्लेख है। इसका विश्लेषण करने से निम्नलिखित आधारभूत तत्व अथवा अवयव ज्ञात होते हैं :

(1) किसी धनी एवं सम्पन्न व्यक्ति अथवा संयुक्त स्टाक पूँजीवाद द्वारा कारखाना पद्धति पर अनेक व्यक्तियों को नियोजित करके विशाल स्तर पर व्यापार करना।

(2) कच्चे माल की पूर्ति का पूर्ण आश्वासन।

(3) आवश्यक मशीनों तथा पारिश्रमिक के आधार पर श्रमिकों की उपलब्धता।

(4) पूँजीपतियों अथवा उद्यमियों के लाभांश में अत्यधिक वृद्धि।

पूँजीवाद के उपर्युक्त समस्त तत्वों का आविर्भाव अठारहवीं शताब्दी में हुआ था। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक व्यावसायिक एवं व्यापारिक संघों (श्रेणियों) का पतन हो चुका था। भूस्वामियों ने अधीन कृषकों तथा किरायेदारों से अपनी आवश्यकतानुसार निःशुल्क सेवा लेना बन्द कर दिया था और स्वतन्त्र किरायेदारों से धन लेना और अपनी भूमि पर कृषि के लिए कृषि श्रमिकों को पारिश्रमिक देकर रखना आरम्भ कर दिया था। आर्थिक लाभ प्राप्त करने की इस प्रवृत्ति का ईसाई धर्माचार्यों ने भी अनुमोदन किया। इस सम्बन्ध में धर्माचार्यों ने विचार व्यक्त किया कि लाभांश, ईसाई धर्म की पवित्र पुस्तक 'बाइबिल' में निन्दनीय एवं पाप, घोषित सूदखोरी नहीं था।

पूँजीवाद एवं पूँजीवादी प्रवृत्ति के विकास में नगरों एवं कस्बों के आविर्भाव ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। नगरों एवं कस्बों के निवासी परम्परानुसार शिल्प संघ अथवा श्रेणी के पदाधिकारी नहीं थे वरन् महत्वाकांक्षी भू-स्वामी, व्यापारी, कुलीन, राज्य और गिरजाघर के पदाधिकारी थे। इन व्यक्तियों ने अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग अधिकाधिक निजी सम्पत्ति का संचय के लिए किया। नगरों के विकास के साथ-साथ नगरों में भूमि के मूल्यों में भी वृद्धि हुई और नगरों में भू-स्वामियों ने अधिक मूल्यों पर भूमि बेचकर बिना किसी उद्यम के अधिक धन एकत्र किया। इटली के नगरों में सर्वप्रथम बैंकिंग प्रणाली का शुभारम्भ हुआ। मैडिसी (Medici) परिवार सर्वाधिक विख्यात बैंकिंग परिवार था। लाल गेंदें तथा सोने के खनिज क्षेत्र मैडिसी का कुल चिन्ह था और यही साहूकारों का सामान्यतः चिन्ह बन गया तथा पूँजीवाद का भी चिन्ह हो गया।

यूरोपीय देशों में सोने-चाँदी की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध नहीं थी। यूरोप के देशों की जनसंख्या भी अधिक नहीं थी। प्राकृतिक स्रोतों का भी अभाव था। यूरोपवासियों ने एशिया, अफ्रीका तथा अमेरिका के देशों से सम्पर्क स्थापित करके इन अभावों की पूर्ति की। पूँजीपतियों ने समस्त अपेक्षित अवयव, सैन्य शक्ति द्वारा, मैक्सिको, पेरु तथा पूर्वी द्वीप समूह की लूटमार करके, भारत, चीन, जापान जैसे सभ्य एवं सुसंस्कृत देशों तथा नये संसार के असभ्य जनजातियों के साथ असन्तुलित व्यापार करके, करारोपण करके, वार्षिक राशि प्राप्त करके तथा स्थानीय लोगों एवं सुदूर उपनिवेशों पर व्यापारिक प्रतिबन्ध लगाकर प्राप्त किये। इस प्रकार प्राप्त लाभ में श्रम प्रणाली द्वारा वृद्धि की। ये श्रम प्रणाली अमेरिका में प्रचलित थी। स्पेन एवं पुर्तगाल के खोजकर्ताओं ने दास-प्रथा का सूत्रपात किया और दास-प्रथा का प्रयोग नये विश्व में खानों से खनिज निकालने तथा विशाल बागानों पर काम करने के लिए किया। स्पेन एवं पुर्तगालवासियों ने पश्चिमी द्वीप समूह, पेरु, ब्राजील तथा मैक्सिको के स्थानीय निवासियों को दास बनाया। शीघ्र ही दास प्रथा का यूरोप के अन्य देशों में प्रसार हो गया। ईसाई धर्माधिकारी (बिशप) ने दास-प्रथा का अनुमोदन किया। इस प्रकार गैर-यूरोपीय तत्वों ने पूँजीवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

गैर-यूरोपीय देशों से प्राप्त बहुमूल्य धातुओं ने मुद्रा, बैंकिंग प्रणाली तथा वित्तीय बाजारों के विकास में सहायता की। लाभदायक वाणिज्य और व्यापार को प्रोत्साहित किया।

व्यक्तियों को नवीन उद्यमों के लिए प्रेरित किया। निर्यात एवं विदेशों में पूँजी निवेश के लिए वाजार बनाये तथा उपनिवेशों का चयन किया। इन समस्त गतिविधियों ने समृद्धशाली एवं सम्पन्न मध्यमवर्ग के उद्भव और विकास में सहयोग दिया। पूँजीपतियों के विशिष्ट गुण सम्पत्ति संचय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार वाणिज्यवाद ने पूँजीवाद के विकास की गति को तीव्र किया।

पूँजीवाद के विकास में योगदान करने वाले उपर्युक्त प्रमुख अवयवों के अतिरिक्त यूरोप में राष्ट्रीय राजतन्त्रों के प्रबल समर्थन, धर्म युद्धों, भौगोलिक खोजों, सामुद्रिक यात्राओं, कुतुबनुमा सूक्ष्मदर्शी यन्त्र, जलयान निर्माण की नई पद्धतियों जैसे वैज्ञानिक आविष्कारों ने, पूँजी के संचय और पूँजीवादी प्रवृत्ति के प्रसार में बहुत सहायता की। नये पूँजीपति राजाओं तथा धर्माधिकारियों के आश्रित थे। कुलीन वर्गों ने उत्पादन प्रक्रिया तथा व्यापारिक गतिविधियों में पूँजी निवेश करना लाभदायक अनुभव किया, यद्यपि इस प्रकार पूँजी निवेश करना उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं था। प्रायः निर्धन कुलीन, धन तथा पत्नी के लोभ में धनी एवं सम्पन्न व्यापारियों की पुत्रियों से विवाह करने का प्रयास करते थे।

उल्लेखनीय है कि स्पेन एवं पुर्तगाल, जिन्होंने सुदूर भौगोलिक खोजों में महत्वपूर्ण कार्य किया, उपनिवेशीकरण किया, व्यापारिक गतिविधियों का सूत्रपात किया तथा दास-प्रथा आरम्भ की, प्रमुख पूँजीवाद देश नहीं बन सके। इन दोनों देशों में अधिकांश जनसमूह कृषि कार्यों में व्यस्त थे और स्वयं की मूलभूत आवश्यकताओं की ही पूर्ति कर पाते थे। इन देशों के निवासियों के पास उपनिवेशों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त धन नहीं था। अस्तु पूर्वी देशों की भोग-विलास की वस्तुओं के क्रय-विक्रय की क्षमता नहीं थी। परिणामस्वरूप सुदूर देशों की यात्रा करने वाले कुछ लोगों ने अपेक्षित पूँजी निवेश के लिए विदेशी महाजनों की सहायता प्राप्त की। इस प्रकार स्पेन और पुर्तगाल की सम्पत्ति प्रारम्भ में इटली के महाजनों तथा बाद में डच और जर्मन महाजनों के पास पहुँच गयी। अतः इन दोनों देशों में आन्तरिक स्थिति के कारण पूँजीवाद का समुचित विकास नहीं हो सका।

लिस्बन तथा सैविले से भौगोलिक खोजों के लिए आरम्भ होने वाले अभियान दल को इटली के महाजनों ने वित्तीय सहायता दी। बाद में जर्मन तथा डचवासियों ने महाजनी के क्षेत्र में प्रमुख स्थान बना लिया। तुर्कों की शत्रुता तथा ओटोमन राज्य की विजय के कारण इटली के महाजनी उद्योग का पतन हो गया। व्यापारिक मार्गों पर असुरक्षा बढ़ जाने के कारण यूरोपीय व्यापारी व्यापारिक गतिविधियों के लिए वेनिस तथा जेनेवा की अपेक्षा लिस्बन और सैविले गये।

विजय अभियान पर अग्रसर ओटोमन के तुर्क, जर्मनी और नीदरलैण्ड के व्यापारियों तथा महाजनों को किसी प्रकार हानि नहीं पहुँचा रहे थे, इसलिए वे लोग रूस, स्कैन्डीनेविया तथा इंग्लैण्ड के साथ अपने परम्परागत व्यापारिक क्रियाकलापों का यथेष्ट विकास कर सके। इसके अतिरिक्त उनके पास लोहे और ताँबे के खनिज स्रोत (खानें) उपलब्ध थे। इन दोनों खनिजों की सहायता से व्यापारियों ने अपने उत्पादनों में सुधार तथा विस्तार किया। वे स्वयं सामुद्रिक व्यापार नहीं करते थे, इसलिए किसी प्रकार की क्षति की भी आशंका नहीं थी।

एन्टवर्प (Antwerp) प्राचीन एवं नवीन मार्गों के चौराहे पर स्थित था। यह स्थिति व्यापारिक गतिविधियों के लिए अत्यधिक लाभदायक थी। प्रारम्भ में आग्सबर्ग (Augsburg) के एक बुनकर परिवार फुगर (Fuggers) ने एन्टवर्प को अपनी व्यापारिक गतिविधियों का मुख्यालय बनाया। सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक एक सहस्त्र से अधिक जर्मनी, स्पेन, पुर्तगाल, इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, तथा इटली के व्यापारी एन्टवर्प में स्थायी रूप से बस गये थे। इसी नगर में आधुनिक पूँजीवाद की अनेक संस्थाओं का विकास हुआ। सन् 1531 में सर्वप्रथम बहुमूल्य धातु सोने-चाँदी के बाजार (Stock Exchange) की स्थापना हुई और यही पर पणक्रिया (betting) का सूत्रपात हुआ। लाटरी के व्यवसाय ने बहुत उन्नति की। जीवन बीमा का शुभारम्भ हुआ। स्थल अथवा समुद्री मार्ग से व्यापार करने वाले व्यापारियों के जलयानों तथा व्यापारिक वस्तुओं का दैविक विपत्तियों अथवा दुर्घटना के विरुद्ध बीमा आरम्भ हो गया। इस प्रकार एन्टवर्प बैंकिंग गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गया।

इंग्लैण्ड में लन्दन नगर वित्तीय गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बन गया। लन्दन में लोम्बार्डी की बैंकिंग पद्धति का आविर्भाव हुआ था, इसी कारण बैंकर्स स्ट्रीट आज भी लोम्बार्ड स्ट्रीट के नाम से विख्यात है। साहूकार यहाँ बैंचों पर बैठकर धन के लेन-देन का कार्य करते थे। यही बाद में बैंकों के नाम से विख्यात हो गयीं। सोलहवीं शताब्दी में लन्दन मुख्य रूप से कपड़े के व्यापार के कारण पूँजीपतियों का केन्द्र बन गया। निर्धन व्यक्ति अपने छोटे घरों (झोपड़ियों) में सूत कातते थे, और नगरों तथा कस्बों में कपड़ा बुना जाता था। समुद्री मार्ग से कपड़ा अन्य देशों को निर्यात किया जाता था। निरन्तर उन्नतिशील कपड़ा व्यापार पर लन्दन ने अपना पूर्ण स्वामित्व स्थापित कर लिया था। लन्दन में तत्कालीन जनजीवन का चित्रण करते हुए एक विद्वान लिखते हैं, "सामान से लदे हुए घोड़ों के लम्बे काफिले, प्रत्येक घोड़े की पीठ पर कपड़ों का बोरा अथवा गाँठ लदी हुई, निरन्तर समस्त इंग्लैण्ड में विचरण करते हुए अंग्रेजों के जीवन में तानाबाना बुन रहे थे। सुदूर क्षेत्र एवं विभिन्न वर्गों के व्यक्ति सुदृढ़ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के आधार थे।"

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यूरोप में पूँजीवाद के अभ्युदय तथा विकास के लिए अनेक शक्तियाँ, अवयव एवं घटनाएँ कार्य कर रही थीं। यूरोप के प्रत्येक देश में समस्त कारण समान रूप से उपस्थित नहीं थे, अतः प्रत्येक देश में पूँजीवाद का विकास विभिन्न स्तरों तथा चरणों में हुआ।

इंग्लैण्ड—इंग्लैण्ड में पूँजीवाद के समस्त अपेक्षित तत्वों एवं अवयवों का परस्पर प्रभाव पड़ा, अतः पूँजीवाद का सहज रूप में विकास हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक विख्यात 'गुलाबों के युद्धों' (War of Roses) में लंकास्टर तथा यार्क के कुलीन परिवारों के मध्य भीषण विनाशकारी युद्ध हुए। सेन्ट एलबन्स के स्थान पर सन् 1455 में प्रथम युद्ध तथा सन् 1485 में बोसवर्थ में अन्तिम युद्ध हुआ। इन विनाशकारी सामन्तों के पारिवारिक संघर्षों ने इंग्लैण्ड को पन्द्रहवीं शताब्दी में निर्जन कर दिया तथा तत्कालीन कुलीन वर्गों की शक्ति को क्षीण कर दिया था। सन् 1485 के ट्यूडर वंश के आगमन से इंग्लैण्ड में सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राजतन्त्र की स्थापना हुई। इस वंश के शासकों ने तत्कालीन वाणिज्यवादियों

की गतिविधियों का पूर्ण समर्थन किया तथा हर सम्भव रूप में प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में शनैःशनैः धन अथवा सम्पत्ति संचय की प्रवृत्ति का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ अतिनैतिकतावादी (कट्टर धार्मिक, Puritans के नाम से विख्यात) व्यक्तियों ने पूँजीवाद को निश्चित स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। सत्रहवीं शताब्दी में आरम्भ प्रोटेस्टेन्ट मतावलम्बियों के तत्कालीन स्टुअर्ट वंश के राजतन्त्र के साथ संघर्ष का अन्त, इसी वंश के शासक चार्ल्स प्रथम की हत्या के साथ हुआ। इसके पश्चात् अतिनैतिकतावादियों (Puritans) ने गणतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना की, लेकिन 11 वर्ष के अल्पकालीन शासन के बाद गणतन्त्रवाद का सदैव के लिए पतन हो गया। उत्तर अतिनैतिकतावादी युग के सन्दर्भ में विचार व्यक्त किया गया है कि इंग्लैण्ड में यदि कोई पंसारी अथवा कसाई ईमानदार था, तो वह अन्य कोई नहीं वरन् अतिनैतिकतावादी युग में क्रोमवेल की सेना से निष्कासित सैनिक ही था। इस दृष्टान्त से केवल एक तथ्य स्पष्ट होता है कि परिपक्व पूँजीवाद के लिए मूलरूप से व्यापारिक गतिविधियों में ईमानदारी अपेक्षित है।

अनेक घटनाओं ने भी इंग्लैण्ड मे पूँजीवाद के विकास को प्रोत्साहित किया। ट्यूडर काल में लन्दन वित्तीय कार्यवाहियों का मुख्य केन्द्र बन गया और सन् 1688 के उपरान्त बैंकिंग अधिनियम पारित किया गया। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड का अनेक उपनिवेशों पर आधिपत्य हो गया। परिणामस्वरूप वाणिज्यवादियों के निर्देशन में व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला। इंग्लैण्ड एक द्वीप है। इसकी भौगोलिक स्थिति सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। यूरोप के अन्य देशों में तीस वर्षीय युद्ध तथा अन्य राष्ट्रवादी युद्ध हुए। अस्तु यूरोपीय देशों की शक्ति एवं सम्पत्ति का युद्धों में विनाश होता रहा, लेकिन इंग्लैण्ड युद्धों से मुक्त रहा। विभिन्न युद्धों ने यूरोपीय देशों में पूँजीवाद के विकास को गहरा आघात पहुँचाया, लेकिन इंग्लैण्ड निर्विघ्न रूप से पूँजीवाद के विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता रहा।

सन् 1588 में एक भीषण झंझावात से स्पेन की नौ-सेना अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो गयी। यह दैविक विपत्ति इंग्लैण्ड के पूँजीवाद के विकास के लिए वरदान सिद्ध हुई। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक वैज्ञानिक एवं कृषि क्षेत्रों में क्रान्ति ने औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। इससे पूँजीवाद के सहज विकास को बहुत सहायता मिली। सोलहवीं शताब्दी में आविर्भूत व्यक्तिवादी सम्पत्ति संचय की प्रवृत्ति ने उत्साही एवं साहसी व्यापारियों अथवा पूँजीपतियों को उद्यमी गतिविधियों के लिए प्रेरित किया। उल्लेखनीय है कि प्रथम कारखाना संगठन का श्रमिकों एवं शिल्पकारों ने सूत्रपात किया था। कुशल एवं योग्य शिल्पकारों तथा कारीगरों ने उत्पादन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। परिणामस्वरूप अनेक यन्त्रों (मशीनों) का आविष्कार हुआ तथा कारखाने स्थापित किये गये। सत्रहवीं शताब्दी में आरम्भ व्यक्तिगत उत्साह, आकांक्षा तथा साहस एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक आविष्कारों की उत्कट कामना ने वैज्ञानिक जगत में अभिनव परिवर्तन किये। इस काल में निरंकुश राजतन्त्र तथा सत्तावादी परम धर्माध्यक्ष के समस्त बन्धनों से मुक्त होने की मनुष्य की निरन्तर बढ़ती हुई प्रबल आकांक्षा ने उद्यम की स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित किया। इसके अतिरिक्त अठारहवीं शताब्दी में कृषि के क्षेत्र में एक नया क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ जिसने उद्योगों की निरन्तर

प्रगति की तीव्र भावना एवं प्रवृत्ति को बनाये रखने में बहुत सहायता की। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक इंग्लैण्ड ने (सन् 1800 से पूर्व) राष्ट्रीय मुद्रा की स्थापना, आर्थिक गतिविधियों पर राजकीय नियन्त्रण (सोलहवीं शताब्दी), बीमा प्रणाली (सत्रहवीं शताब्दी) और अठारहवीं शताब्दी में राष्ट्रीय ऋणों के लिए राष्ट्रीय बैंक, जो सरकार की महाजन बन गयी, आदि विभिन्न तत्वों ने पूँजीवाद के संस्थागत विभिन्न आयामों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी तक इंग्लैण्ड एक पूर्णरूपेण पूँजीवादी राज्य के रूप में विकसित हो चुका था।

विशाल स्तरीय उद्योगों की स्थापना, व्यक्तिगत सम्पत्ति की पवित्रता तथा न्यायसंगतता में आस्था, राज्य की हस्तक्षेप न करने की नीति (Laissez-faire) द्वारा व्यक्तिगत लाभ को प्रोत्साहन, व्यापारियों को विदेशों में व्यापारिक गतिविधियों के लिए बाजार खोजने के निमित्त राज्य सरकार की उन्मुक्त व्यापार की नीति, राज्य सरकार द्वारा बैंकिंग प्रणाली, मिश्रित पूँजी कम्पनियों (Joint Stock Companies) का आविर्भाव, विनिमय बिलों (Bill of Exchange), शेयर बाजार (Stock Exchange) एवं पूँजीवादी प्रणाली के अन्य समस्त तत्वों के पूर्ण विकास के परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड यूरोप का प्रमुख पूँजीवादी राज्य बन चुका था। उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड का पूँजीवाद, वित्तीय पूँजी अथवा पूँजीवादी साम्राज्यवाद के नाम से विख्यात तत्कालीन राजनीति से पूर्णतया सम्वद्ध हो चुका था।

फ्रान्स—यूरोप के अन्य प्रमुख देश फ्रान्स में सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के अतिनैतिकतावादी (Puritans) तथा जर्मनी के कैल्विन मतावलम्बियों (Calvinists) के सदृश उदात्त नैतिक एवं कट्टर धार्मिक भावनाओं, आदर्शों एवं सिद्धान्तों से आप्लावित ह्यूगनाट (Hugenots), (सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में फ्रान्स में प्रोटेस्टेन्ट धर्मानुयायियों की एक शाखा, जो जान काल्विन (सन् 1509-64 ई.) तक के सिद्धान्तों के प्रति आस्थावान थी) को धार्मिक उत्पीड़न के कारण यूरोप के अन्य देशों को पलायन करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त फ्रान्स अनेक महाद्वीपीय संघर्षों में भी व्यस्त रहा। अतः फ्रान्स में इंग्लैण्ड के समान पूँजीवाद का गौरवपूर्ण विकास नहीं हो सका। पूँजीवाद पर आधारित विशाल स्तरीय उद्योगों का सूत्रपात नहीं हो सकता था। शिल्प संघों का अस्तित्व पूर्ववत् बना हुआ था। पुटिंग-आउट प्रणाली (इस प्रणाली के अन्तर्गत व्यक्ति विदेश जाते समय, इस वचन के साथ अपना धन किसी के पास जमा करता था, कि लौटकर आने पर उसको मूलधन की अपेक्षा बहुत अधिक धन मिलेगा और लौटकर न आने की स्थिति में धन पर उसका कोई अधिकार नहीं रहेगा।) अब भी मजबूती से कार्य कर रही थी।

फ्रान्स के श्रमिक, स्वभाव से अपने ग्रामीण जीवन से सन्तुष्ट थे। कारखानों में कार्य करने वाले श्रमिक अत्यधिक हठी एवं अनुशासनहीन थे। उनकी प्रौद्योगिक कुशलता भी साधारण स्तर की थी। लगभग तीन-चौथाई औद्योगिक इकाइयों के श्रमिकों के कृषि से सम्बन्ध बने हुए थे। भू-स्वामित्व की पद्धति के कारण फ्रान्स के श्रमिकों में अपनी भूमि के प्रति विशेष मोह था, अतः वे अपनी भूमि से पूर्णरूप से सम्बन्ध विच्छेद कर केवल श्रमिक का जीवन

व्यतीत करने के लिए तत्पर नहीं थे। भू-स्वामित्व की इसी पद्धति ने औद्योगिक क्षेत्रों की श्रमिक आपूर्ति को स्थिर कर दिया था। इसके अतिरिक्त फ्रान्स ने अपनी प्रचुर खनिज सम्पदा लौह-अयस्क का समुचित उपयोग करने के लिए अपेक्षित रेलवे का व्यापक तथा उपयोगी विकास नहीं किया था। फ्रान्स ने अपने उद्योगों का विकास करते समय आवश्यकतानुसार निर्दिष्ट दिशा में कार्य नहीं किया। उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक कोयले की भी पर्याप्त मात्रा फ्रान्स में नहीं थी।

फ्रान्स में सन् 1789 से सन् 1871 तक राजनीतिक अस्थिरता थी। पूँजी निवेश आर्थिक विकास का मूल आधार था। व्यापारियों में राजनीतिक अस्थिरता के कारण व्याप्त अविश्वास ने पूँजी निवेश पर अंकुश लगा दिया था। इस प्रकार राजनीतिक अस्थिरता फ्रान्स में पूँजीवाद के विकास में बहुत बड़ी बाधा थी।

सन् 1789 से पूर्व दूषित तथा कुरूप करारोपण प्रणाली ने पूँजी संचय की प्रवृत्ति को गहरा आघात पहुँचाया। बैंकिंग प्रणाली भी सुव्यवस्थित नहीं थी। सन् 1847-48 में आर्थिक संकट के कारण बैंकों ने समस्त बट्टा (छूट) तथा भुगतान बन्द कर दिया था। परिणामस्वरूप अनेक व्यापारिक परिवारों का विनाश हो गया। लेकिन पूँजीवाद की संस्थागत संरचना से सम्बन्धित गौण विषयों, जैसे वचन-पत्र (Promissory Notes) और कम्पनियों में निष्क्रिय हिस्सेदारों में फ्रान्स अग्रणी रहा। सार्वजनिक ऋण के क्षेत्र में फ्रान्स प्रारम्भ में अग्रणी देशों में एक था। देशीय (घरेलू) पूँजी निवेश का अधिकांश भाग उन्नीसवीं शताब्दी में मैक्सिको तथा इण्डो-चीन में निवेशित कर दिया गया था। इस प्रकार फ्रान्स में, पूँजीवाद की संस्थानात्मक संरचना भी सन्तोषजनक नहीं थी।

यद्यपि फ्रान्स में पूँजीवाद अव्यवस्थित, दुर्बल तथा छिन्न-भिन्न था और उद्योगों के विकास में बहुत समय व्यतीत हुआ, परन्तु फ्रान्स ने भिन्न-भिन्न प्रकार के परिष्कृत एवं आकर्षक उत्पादनों द्वारा पूँजीवादी औद्योगिक युग में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भिन्न-भिन्न रुचि (किस्मों) तथा नवीनता प्रिय उपभोक्ता फ्रान्स के उत्पादनों के प्रति ही आकर्षित होते थे। श्रेष्ठ फ्रान्सीसी रेशम, ऊनी एवं सूती वस्त्र, महिला परिधानों में अभिनव रुचि के प्रतीक, मोहक विभिन्न कोटि की मदिरा, इत्र, सुगन्धित पदार्थ, तथा परिष्कृत शिल्प कला की वस्तुएँ उल्लेखनीय हैं। फ्रान्स के औद्योगिक उत्पादनों की विशिष्टता फ्रान्सवासियों के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति मोह तथा परिष्कृत रुचि से उद्भूत हैं। उनका आर्थिक परिधि में मूल्यांकन करना न्यायोचित नहीं है। फ्रान्स के आधुनिक वैमानिकीय तथा अणु उद्योगों को देखने से ज्ञात होता है कि फ्रान्स में निःसन्देह, यान्त्रिक आविष्कार क्षमता का अभाव नहीं था। साथ ही विशाल स्तरीय उद्योगों के लिए प्रौद्योगिक गुणों, रुचि तथा कुशलता का भी अभाव नहीं था। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने विशाल स्तर पर बन्दूकों के उत्पादन की कला का ज्ञान फ्रान्स से ही प्राप्त किया। अमेरिका के अभियान्त्रिकी विद्यालयों के लिए पाठ्य पुस्तकें फ्रान्सीसी भाषा में उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों का ही अनुवाद है।

जर्मनी—जर्मनी में पूँजीवाद के विकास की कहानी भी बहुत रोचक है। जर्मनी का राजनीतिक दृष्टि से अनेक भागों में विभाजन पूँजीवाद के विकास में बहुत बड़ी बाधा थी।

पूँजीवाद के अभ्युदय के लिए अपेक्षित प्रवृत्ति अथवा स्वभाव का आविर्भाव कैल्विन मतावलम्बियों (Calvinists) के जर्मनी में आगमन तथा जर्मनी के कुछ राजवंशों से घनिष्ठ सम्पर्क के साथ ही हुआ। तीस वर्षीय युद्ध की अवधि में जर्मनी को निर्ममता तथा निर्दयतापूर्वक ध्वस्त किया गया। युद्ध के पश्चात् आस्ट्रियावासियों का बहुत समय तक जर्मनी पर नियन्त्रण रहा। नैपोलियन द्वारा जर्मनी के विभिन्न क्षेत्रों की विजय ने जर्मनीवासियों में सुषुप्त देशभक्ति की उदात्त भावना को उद्वेलित किया। परिणामस्वरूप सन् 1870 में सीमा-शुल्क संघ (Zollverein) अर्थात् आन्तरिक सीमा शुल्क व्यवधानों (Customs Barriers) के गठन ने जर्मनी के पूँजीवाद के विकास में प्रमुख बाधा को समाप्त करने में बहुत सहायता की।

फ्रान्स में हेनरी चतुर्थ के शासन काल में इन सीमा-शुल्क व्यवधानों को समाप्त कर दिया गया था। उसके पश्चात् सीमा-शुल्क व्यवधानों का आविर्भाव हुआ। परिणामस्वरूप वस्तुओं के सुचारु आवागमन में बाधा पड़ी। सन् 1789 में फ्रान्सीसी क्रान्ति के उपरान्त इस बाधा को सदैव के लिए समाप्त कर दिया गया। इसके विपरीत इंगलैण्ड में ट्यूडर वंश के शासन काल अर्थात् पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त से ही बाधा को समाप्त कर दिया गया था। कपड़ा व्यापार के द्वारा समस्त इंगलैण्ड परस्पर सम्बद्ध था। इसके अन्तर्गत ग्राम, कस्बा, बन्दरगाह तथा लन्दन नगर एक सुव्यवस्थित संगठन के अभिन्न अंग थे और सब तत्कालीन व्यापारिक गतिविधियों को पूर्ण सहयोग दे रहे थे। आगसबर्ग (Augsburg) की बैंकिंग केन्द्र के रूप में कुछ काल तक महत्वपूर्ण भूमिका रही। आगसबर्ग के फुगर (Fugger) परिवार ने जर्मनी में भी बैंकिंग प्रणाली के क्षेत्र में नेतृत्व किया। सन् 1870 में जर्मनी के एकीकरण के उपरान्त औद्योगीकरण के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की। नई जर्मन सरकार ने देश में द्रुतगति से औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। सरकार ने सुरक्षावादी नीति का अनुसरण करते हुए गृह उद्योगों की उन्नति तथा विकास में बहुत सहायता की।

जर्मनी के तीव्र गति से पूँजीवादी औद्योगिक विकास ने पूँजीवादी विकास के विभिन्न चरणों को छोड़ते हुए सीधे पूर्णरूपेण पूँजीवाद स्थापित किया। जर्मनी में पूँजी संचय, लघुस्तर पर पूँजी निवेश और विशाल स्तर पर पूँजी निवेश जैसे विभिन्न चरण कभी रहे ही नहीं। उत्पादक संघों के अभ्युदय के कारण जर्मनी ने सीधे वित्तीय पूँजी को विकसित किया। परिणामस्वरूप अधिकाधिक पूँजी का संचय हुआ। पूँजीवादी गौण संस्थानात्मक संरचना की दृष्टि से अग्नि बीमा का शुभारम्भ करके यूरोपीय देशों का नेतृत्व किया।

इसी प्रकार, स्पेन और पुर्तगाल के अतिरिक्त यूरोप के अन्य देशों में पूँजीवाद मन्द गति से आरम्भ हुआ। अधिकांश देशों में राजनीतिक अस्थिरता, गतिहीन एवं अपर्याप्त वाणिज्यिक एवं व्यापारिक गतिविधियाँ तथा स्वेच्छाचारी राजतन्त्र पूँजीवाद के विकास में सबसे बड़ी बाधा थे। स्पेन एवं पुर्तगाल में पूँजीवाद के उद्भव एवं विकास के लिए अपेक्षित मूलभूत भावना, उत्साह तथा साहस का अभाव था। उन देशों के वासियों में अतिनैतिकतावादियों (Puritans) अथवा कैल्विन मतावलम्बियों के अनुरूप व्यक्ति की ईश्वर की कृपा से भौतिक उद्देश्य की उपलब्धि में आस्था नहीं थी।

पूँजीवाद एवं कृषि क्रान्ति
(CAPITALISM AND AGRICULTURAL REVOLUTION)

पूँजीवाद का आरम्भ सोलहवीं शताब्दी से कृषि क्षेत्र में घटित परिवर्तनों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। पूँजीवादी एवं कृषि क्रान्ति की यात्रा सोलहवीं शताब्दी के साथ-साथ आरम्भ हुई थी और अठारहवीं शताब्दी में दोनों अपनी पूर्णता के चरम बिन्दु पर पहुँच गयीं। सेम और मटर की उपज ने नाइट्रोजन प्रदान करके भूमि की उर्वरता में वृद्धि की। परिणामस्वरूप नकद फसलों का उत्पादन आरम्भ हो गया और आत्मनिर्भर जागीरें शनैःशनैः उत्पादन ईकाई में परिवर्तित होने लगीं। ये ईकाई उपज के विक्रय पर निर्भर रहती थीं। तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों में अतिरिक्त कृषि उत्पादनों को निकटवर्ती नगरों तथा कस्बों में बेचा जाता था। इस प्रकार वाणिज्यिक एवं व्यापारिक गतिविधियों में निरन्तर प्रगति हुई और पूँजी अथवा सम्पत्ति संचय की मनोवृत्ति में विकास हुआ।

कृषि कार्यों में उपयोग में आने वाले औजारों एवं उपकरणों में परिवर्तन किया गया। मानव शक्ति की अपेक्षा वाष्प शक्ति का प्रयोग आरम्भ हो गया। अराल (Crank) तथा गढ़ाई प्रक्रिया के आविष्कारों ने यूरोप के धातुकर्मीय उद्योगों के स्वरूप में परिवर्तन कर दिया। इनका औद्योगिक उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। मुद्रण कला के आविष्कार ने नवीन कृषि तकनीक के द्रुतगति तथा सहज ढंग से प्रचार एवं प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य किया। कृषि कार्यों में कृषि दासों के स्थान पर वेतन भोगी श्रमिकों को रखा गया। स्वामी और दासों के परस्पर सम्बन्ध शिथिल हो गये, और शनैःशनैः मुद्रा अर्थव्यवस्था का प्रसार होने लगा।

चौदहवीं शताब्दी में जनसांख्यिकी में भीषण परिवर्तन हुआ। निरन्तर अनेक वर्षों तक दैविक प्रकोप के कारण फसलें नष्ट हो गयीं। तदुपरान्त भीषण महामारी ने जनसमूहों को काल का ग्रास बनाया। परिणामस्वरूप यूरोप की कुल जनसंख्या का एक-चौथाई भाग समाप्त हो गया। कुछ क्षेत्रों में एक-तिहाई से आधी जनसंख्या काल-कवलित हो गयी। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जनसांख्यिक विनाश के उपरान्त सन् 1358 में फ्रान्स में तथा सन् 1381 में इंगलैण्ड में कृषकों ने हिंसात्मक विद्रोह कर दिया। इन विद्रोहों में भीषण नरसंहार हुआ। परिणामस्वरूप श्रमिकों का अभाव हो गया। चौदहवीं शताब्दी की विनाशकारी घटनाओं ने सोलहवीं शताब्दी में कृषि क्षेत्र में अधिकाधिक परिवर्तनों की आवश्यकता पर बल दिया। बाजारों के विकास तथा परिवहन साधनों में सुधार ने आत्मनिर्भर मध्यकालीन ग्रामों का रूपान्तर कर दिया। अतः सोहलवीं शताब्दी में कृषकों ने बाजारों के लिए अनाज और ऊन, माँस तथा दुग्धशाला (डेरी) उत्पादनों पर बल देना आरम्भ किया।

फसलों से प्राप्त नकद धन ने अनेक भू-स्वामियों को अपनी आय के स्रोत बढ़ाने के लिए प्रेरित किया। कृषि उत्पादनों के मूल्यों में द्रुत गति से वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप भू-स्वामियों को प्राप्त होने वाले करों तथा किराये के आर्थिक मूल्यों में ह्रास हुआ। पूर्वापेक्षा अधिक धन प्राप्त करने की आकांक्षा ने उनको अपनी परम्परागत व्यवस्था को त्यागकर नवीन पद्धति तथा साधनों को ग्रहण करने के लिए विवश किया। श्रमिकों के अभाव के कारण भू-स्वामियों ने चरागाहों की ओर ध्यान दिया। भू-स्वामियों ने सार्वजनिक चरागाहों एवं मुक्त

भूमि (जिस पर किसी का नियन्त्रण नहीं था) पर अपना नियन्त्रण किया। चारों ओर चारदीवारी लगवाकर भेड़ों के चरागाह अथवा विशाल स्तरीय कृषि ईकाई के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसके अतिरिक्त कृषि की संशोधित, परिवर्धित एवं परिष्कृत पद्धतियों को ग्रहण किया। इस प्रकार कृषि के पूँजीवादी स्वरूप का सूत्रपात हुआ।

सर्वप्रथम हालैण्ड में कृषि क्रान्ति का शुभारम्भ हुआ। डच लोगों ने कृषि भूमि की समुचित सिंचाई के लिए कुशल जल निष्कासन मार्गों को विकसित किया जिससे नई फसलों की उपज हो सके तथा चारे की मात्रा में भी पर्याप्त वृद्धि हो। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में हालैण्ड के व्यापारी कृषि भूमि से अधिक लाभांश प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा से कृषि भूमि में पूँजी निवेश के लिए तत्पर थे। इन व्यापारियों ने अतिरिक्त वर्षा के जल को भूमि से निकालने के निमित्त डच भूमि पर पवन चक्कियाँ लगाने के लिए धन दिया। हालैण्ड की इस सिंचाई व्यवस्था ने कृषि पद्धति में अनेक सुधार किये जिससे उत्पादन में वृद्धि हुई और पूर्वपेक्षा अधिक लाभांश मिला। कृषि के लिए अत्यधिक उपयोगी इस सिंचाई प्रणाली को यूरोप के अन्य देशों ने शनैःशनैः ग्रहण कर लिया।

सोलहवीं शताब्दी में कृषि क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन व्यापार, वाणिज्य तथा नगरों के विकास से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे। व्यापारिक तथा वाणिज्यिक गतिविधियों द्वारा समर्थित नवोदित नगरों की माँगों ने कृषक समुदाय को पूँजीवादी कृषि कार्यों के लिए प्रेरित किया। धनी एवं सम्पन्न कृषक, व्यापार एवं वाणिज्य में पूँजी निवेश द्वारा अधिकाधिक धन अर्जित करने के लिए उत्सुक थे। व्यापक मुद्रा प्रचलन तथा द्रुतगति से विकसित बैंकिंग प्रणाली ने कृषि, व्यापार एवं वाणिज्यिक विकास कार्यों को प्रोत्साहित किया।

सोलहवीं शताब्दी के अनुरूप ही अठारहवीं शताब्दी के मध्य में ही एक बार पुनः वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हुई। एक बार पुनः कृषि कार्यों में परिवर्तन हुए। इस बार कृषि परिवर्तनों का सूत्रपात इंग्लैण्ड में हुआ। लार्ड टाउनरोड ने फसलों की क्रमावर्तन पद्धति आरम्भ की। अठारहवीं शताब्दी में अधिकांश कृषकों ने तुल (Tull) की ग्रेनसड्रिल (बालियों में से दाने निकलाने की प्रक्रिया) तथा शीघ्र एवं कुशल कृषि आवृत्ति को ग्रहण कर लिया था। कुशल कृषि आवृत्ति द्वारा अनावश्यक कीड़े-मकोड़े तथा खर-पतवार का विनाश हो जाता था और भूमि की नमी सुरक्षित बनी रहती थी। अधिकांश कृषि सुधारों में धन की अपेक्षा थी। धनी एवं सम्पन्न वर्ग लाभप्रद सफल वाणिज्यिक गतिविधियों से प्रेरित होकर उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के लिए उत्सुक थे। अस्तु व्यापारियों को लाभप्रद कृषि उत्पादनों के लिए पूँजी निवेश करने में तनिक भी संकोच नहीं था।

यूरोप के अन्य देशों ने ब्रिटेन में व्यवहृत कृषि सुधारों तथा विकास कार्यों को ग्रहण कर लिया। यूरोपीय देशों के कृषक विकसित कृषि पद्धति का अध्ययन करने तथा समुचित परामर्श के लिए इंग्लैण्ड आये। यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी में कृषि को रूपान्तरित किया गया। फ्रान्स ने सन् 1789 की क्रान्ति के उपरान्त अनेक कृषि पद्धतियों को ग्रहण किया। इसी प्रकार जर्मनी ने भी उन्नीसवीं शताब्दी में कृषि पद्धति में सुधारों एवं परिवर्तनों को स्वीकार किया।

सन् 1800 के उपरान्त यन्त्रों (मशीन) के समुचित विकास के साथ, परम्परागत पद्धति के स्थान पर तर्कसंगत वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग आरम्भ हो गया। परम्परागत हल-बैल के स्थान पर यन्त्रों द्वारा कृषि तथा रासायनिक उर्वरकों का व्यापक प्रयोग आरम्भ हो गया। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अमेरिका तथा उर्वरकों की दृष्टि से जर्मनी ने नेतृत्व किया।

कृषि क्रान्ति ने बैंकों की कार्य प्रणाली को विकसित किया एवं व्यापक प्रसार को प्रोत्साहित किया। प्राचीन काल में सभ्यता एवं संस्कृति का शुभारम्भ हुआ था, तत्पश्चात सहस्त्रों वर्षों तक व्यापक प्रसार पर अंकुश लगा रहा। कृषि ही ने अनायास सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के लिए प्रणोदक (बारूद) के रूप में कार्य किया। कृषि ने एक शताब्दी अथवा कुछ अधिक समय में दिखा दिया कि कृषि पूर्वापेक्षा कहीं अधिक लोगों का सहज भाव एवं सरलतापूर्वक भरण-पोषण कर सकती है।

औद्योगिक क्रान्ति काल में पर्याप्त जनसंख्या वृद्धि का भरण-पोषण कृषि उत्पादनों में वृद्धि के कारण ही सम्भव हो सका। विधि की विडम्बना ही है कि उन्नीसवीं शताब्दी में ही कृषि की प्राथमिकता में ह्रास आरम्भ हो गया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. आधुनिक यूरोप में पूँजीवाद के उत्थान एवं विकास का वर्णन कीजिये।
   Discuss the rise and development of capitalism in Modern Europe.
   (बी. आर. अम्बेदकर, 1996, 98)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. सन् .... के उपरान्त वित्तीय पूँजीवाद अर्थात् संयुक्त शेयर बाजार, विदेशों में पूँजी निवेश का युग आरम्भ हुआ—
   (क) 1776 (ख) 1800 (ग) 1850 (घ) 1900
2. .... के अन्त तक विख्यात गुलाबों के युद्धों में लैंकास्टर तथा यार्क के कुलीन परिवारों के मध्य भीषण विनाशकारी युद्ध हुये—
   (क) चौदहवीं शताब्दी (ख) पन्द्रहवीं शताब्दी
   (ग) सोलहवीं शताब्दी (घ) सत्रहवीं शताब्दी
3. सन् .... में प्रथम युद्ध तथा सन् 1485 में बोसवर्थ में अन्तिम युद्ध हुआ—
   (क) 1450 (ख) 1455 (ग) 1460 (घ) 1465
4. सन् .... में ट्यूडर वंश के आगमन से इंग्लैण्ड में सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राजतन्त्र की स्थापना हुई—
   (क) 1470 (ख) 1475 (ग) 1480 (घ) 1485
5. सन् .... में एक भीषण झंझावात से स्पेन की नौ-सेना अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो गई—
   (क) 1585 (ख) 1588 (ग) 1590 (घ) 1592
6. फ्रान्स में सन् .... से .... तक राजनीतिक अस्थिरता थी—
   (क) 1783 से 1830 (ख) 1789 से 1850
   (ग) 1789 से 1871 (घ) 1815 से 1871

7. सन् ········· में जर्मनी ने एकीकरण ने उपरान्त औद्योगीकरण के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की—
(क) 1866 (ख) 1870
(ग) 1875 (घ) 1880

8. ········· में जनसांख्यिकी में भीषण परिवर्तन हुआ—
(क) तेरहवीं शताब्दी (ख) चौदहवीं शताब्दी
(ग) पन्द्रहवीं शताब्दी (घ) सोलहवीं शताब्दी

9. ········· में कृषि क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन व्यापार, वाणिज्य तथा नगरों के विकास से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे—
(क) चौदहवीं शताब्दी (ख) पन्द्रहवीं शताब्दी
(ग) सोलहवीं शताब्दी (घ) सत्रहवीं शताब्दी

10. ········· में अधिकांश कृषकों ने तुल की ग्रेनसड्रिल तथा शीघ्र एवं कुशल कृषि आवृत्ति को ग्रहण कर लिया था—
(क) सोलहवीं शताब्दी (ख) सत्रहवीं शताब्दी
(ग) अठारहवीं शताब्दी (घ) उन्नीसवीं शताब्दी

[उत्तर—1. (ग), 2. (ख), 3. (ख), 4. (घ), 5. (ख), 6. (ग), 7. (ख), 8. (ख), 9. (ग), 10. (ग) ।]

10

पश्चिमी यूरोप में उदारवाद एवं लोकतन्त्र का विकास (1815-1914)

[LIBERALISM AND DEVELOPMENT OF DEMOCRACY IN WESTERN EUROPE (1815-1914)]

उदारवादी विचारधारा का निश्चित समय पर उद्भव नहीं हुआ। उदारवाद की मूल भावना यहूदी धर्म प्रवर्तकों तथा सुकरात पूर्व दार्शनिकों के उपदेशों एवं प्रवचन में मिलती है। इन समस्त स्रोतों से मानव के व्यक्तित्व के महत्व की भावना, व्यक्ति को समूह के अन्तर्गत पूर्ण अधीनता से मुक्ति एवं पराम्परागत विधि और सत्ता के कठोर नियन्त्रण में शिथिलता की भावना का आविर्भाव हुआ था। उदारवाद के स्पष्ट सिद्धान्त विचार एवं आदर्श यूरोप में सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दियों में दृष्टिगत होते हैं। सन् 1815 के उपरान्त फ्रान्स की क्रान्ति तथा पुरातन व्यवस्था के मध्य परस्पर विरोधी सिद्धान्तों, विचारों तथा आदर्शों का संघर्ष निरन्तर चलता रहा। भावी युग का इतिहास यथार्थ में इसी संघर्ष का इतिहास है। यूरोप के समस्त देशों में यह संघर्ष किसी न किसी रूप में दृष्टिगत होता है। इंग्लैण्ड, फ्रान्स एवं स्पेन में राष्ट्रीय एकता पहले से ही थी और ये देश स्वतन्त्र थे। जनता केवल निरंकुश राजतन्त्र का अन्त करके व्यक्तिगत अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील थी। इस प्रकार इन देशों में यह आन्दोलन उदारवादी एवं लोकतन्त्रवादी ही था। जर्मनी और इटली विभक्त थे और पोलैण्ड एवं आयरलैण्ड पराधीन देश थे। जर्मनी और इटली विभाजन समाप्त करके एकीकरण चाहते थे एवं पोलैण्ड तथा आयरलैण्ड मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे। वे यूरोप को राष्ट्रीय आधार पर नया रूप देना चाहते थे। उनके राष्ट्रवाद में लोकतन्त्र की भावना समन्वित थी और दोनों जुड़वाँ आन्दोलन थे।

यूरोप के प्रत्येक देश में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार उदारवाद का चरित्र और स्वरूप भिन्न-भिन्न था। निरंकुश राजतन्त्र की शक्ति, कुलीनतन्त्र की स्थिति, औद्योगीकरण की प्रगति और राष्ट्रीय एकीकरण की स्थिति महत्वपूर्ण अवयव थे। फ्रान्स में उदारवाद का स्वरूप कुलीनवर्ग तथा बोर्बो वंश के पतन को प्रतिबिम्बित करता था। दूसरी ओर इंग्लैण्ड में उदारवाद राजा के ऊपर संसद की तथा

परमाधिकार कानून पर सामान्य कानून की विजय को प्रदर्शित करता था। दोनों ही व्यक्ति और उसकी स्वतन्त्रता को तर्कसंगत एवं न्यायोचित सिद्ध करते थे। सैन्यकृत एवं लूथरवादी प्रशा के प्रभुत्व के कारण जर्मनी में उदारवाद असफल हुआ। आस्ट्रिया की सशक्त सेनाओं तथा वेटिकन नगर (कैथोलिक चर्च साम्राज्य का केन्द्र) के विरोध के कारण उदारवाद के अभ्युदय में विलम्ब हुआ। उदारवाद किसी भी रूप में हो, सत्तावाद पर उदारवाद का प्रभाव समस्त यूरोप में प्रतिध्वनित हुआ और हंगरी में कौसुथ (Kossuth) इटली में मैजिनी और दक्षिणी अमेरिका में बोलिवर ने उदारवादी विचारधारा को अभिव्यक्त किया।

सैद्धान्तिक दृष्टि से उदारवाद अठारहवीं शताब्दी के बुद्धिवादी आन्दोलन से प्रेरित था, जिसने प्रचलित असमानता एवं निरंकुश राजतन्त्र की कटु आलोचना की थी। उदारवाद वर्गीय स्वार्थों की रक्षा, सामाजिक सुधारों तथा अधिनायकतन्त्रीय शासन से सुरक्षित रहने के लिए संसदीय प्रणाली एवं विधि के शासन का प्रबल समर्थन करता था। मध्यमवर्गीय व्यक्ति सम्पन्न एवं धनी व्यक्तियों को मताधिकार देने के पक्ष में थे परन्तु निर्धन सम्पत्तिहीन व्यक्तियों को इस अधिकार से वंचित रखा गया। फ्रान्स की क्रान्ति के उग्रतावादी अवधि को छोड़कर वे संवैधानिक राजतन्त्र स्थापित करना चाहते थे, जिससे मध्यमवर्ग के विकास एवं प्रगति में व्यवधान नहीं पड़े। राज्य को वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का रक्षक मानते थे और आर्थिक विषयों को वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का रक्षक मानते थे और आर्थिक विषयों एवं समाज की संरचना में राज्य को अधिकृत नहीं मानते थे।

आर्थिक उदारवाद राजनीतिक उदारवाद का आधार था। फ्रान्स के विद्वानों बैंजामिन कॉन्सेन्ट एवं फ्रासुओ गीजो ने राजनीतिक सिद्धान्तों की चर्चा की जो वियाना की विख्यात सन्धि उपरान्त बहुत लोकप्रिय हुए। बैंजामिन ने निरंकुशता की कटु आलोचना की परन्तु उसने बहुमत द्वारा अल्पसंख्यकों पर शासन का भी विरोध किया। उसने विचार व्यक्त किया, समानता का अर्थ था "प्रत्येक व्यक्ति का अपने पड़ोसी पर अत्याचार" तथा "लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता का नहीं वरन् निरंकुशता का ही एक रूप था।" क्रान्ति के माध्यम से मध्यमवर्ग को सत्ता प्राप्त हुई और इस राजनीतिक सत्ता को सुदृढ़ बनाना अनिवार्य था। फ्रासुओ गीजो ने भी समान विचार व्यक्त किये हैं। उसने विचार व्यक्त किया कि मध्यमवर्ग शिक्षित तथा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था और ये ही लोग प्रशासनिक व्यवस्था के संचालन में सक्षम थे। अस्तु कुलीनवर्ग के पतन के बाद मध्यमवर्ग ही उसका स्थान ले सकता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उदारवाद का निश्चित अर्थ एवं उद्देश्य था। समस्त क्षेत्रों में पूर्ण स्वतन्त्रता, जैसे व्यापार, वाणिज्य एवं व्यवसाय के क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता था तथा प्राचीन शासन के समस्त राजनीतिक अन्यायों से पूर्ण मुक्ति मूल मन्त्र था। इसी प्रकार स्वतन्त्रता की प्रबोधन युग के नेताओं ने भी माँग की थी। फ्रान्स की क्रान्ति के पूर्व एवं क्रान्ति काल में भी इन्हीं स्वतन्त्रताओं की प्रबल माँग थी और मध्यमवर्ग क्रान्ति के उपरान्त भी निरन्तर माँग करता रहा। कालान्तर में इन माँगों को प्राकृतिक नियमों पर आधारित होने का दावा किया। इसके प्रबल समर्थकों ने कहा कि ये माँगें सर्वाधिक समीचीन, तर्कसंगत एवं उपयोगी थीं और अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख-सुविधा का एक साधन थीं।

जर्मी बैन्थम (Jermy Bentham)—इंग्लैण्ड और फ्रान्स में प्रबोधन का गहन प्रभाव था। अतः उस अवधि के दार्शनिक विचार उदात्त उदारवादी सिद्धान्तों तथा आदर्शों से अनुप्राणित थे। जर्मी बैन्थम (सन् 1748-1832) द्वारा प्रवर्तित उपयोगितावाद उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड की प्रमुख राजनीतिक विचारधारा थी। कृशकाय शरीर के बैन्थम ने अपने समस्त जीवन में अद्वितीय अन्तर्निहित बौद्धिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया। तीन वर्ष की अल्पायु में लैटिन भाषा का अध्ययन आरम्भ कर दिया था और पन्द्रह वर्ष की आयु में ही स्नातक की डिग्री प्राप्त कर ली थी। सत्तर वर्ष की आयु में भी वह कारावास सुधार एवं पनामा और स्वेज नहरों से उप-नहरों को काटकर निकालने की योजना बनाता रहा। बैन्थम की सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक विचारों की कृति 'नीति शास्त्र' और 'विधि-विषयक सिद्धान्त' (The Principles of Morals and Legislation) सन् 1789 में प्रकाशित हुई थी। बैन्थम का उपयोगितावाद नाम उसकी मूलभूत शिक्षा, कि सर्वोच्च परीक्षण जिसके प्रत्येक भाग की आस्था और संस्था को अनुकूल होना चाहिए, उपयोगिता अथवा पूर्णरूप से लाभदायक होना है, से उद्धृत है। परीक्षण को परिभाषित करते हुए उसने कहा कि अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख और सुविधा ही परीक्षण है। दूसरे शब्दों में, अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण ही परीक्षण है। कोई भी सिद्धान्त अथवा व्यवहृत परम्परा इस परीक्षण के अनुरूप नहीं है, उसको तत्काल अस्वीकार कर देना चाहिए। किसी सिद्धान्त अथवा परम्परा का कितनी ही प्राचीन एवं अन्य अनेक परम्पराओं से सम्बद्ध होने के उपरान्त भी इस सिद्धान्त के अनुकूल नहीं होने के कारण अस्वीकार करना चाहिए। सामाजिक दृष्टि से उत्कृष्ट होने के उपरान्त भी बैन्थम का सिद्धान्त व्यक्तिवाद का चरमोत्कर्ष था। समाज अथवा समुदाय के हित, अनेक सदस्यों के, जिनसे समाज अथवा समुदाय बना है, हितों का कुल योग है परन्तु उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि व्यक्तियों की प्रवृत्तियाँ विशुद्ध रूप से स्वार्थी हैं। मानव की क्रिया का मुख्य आधार, सुख प्राप्त करने एवं कष्ट और पीड़ा से बचने की प्रबल इच्छा है। इसलिए समाज को अपने प्रत्येक सदस्य को अपने प्रबुद्ध स्वहितों के अनुरूप कार्य करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति किसी अन्य की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानता है कि किस में उसका अपना कल्याण अथवा हित है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने की अधिकतम स्वतन्त्रता प्रदान करके समाज कल्याण को सर्वाधिक प्रोत्साहित किया जा सकता है। बैन्थम पूर्णतया आश्वस्त था कि इस सुविधा को देने का अर्थ प्राचीन असभ्य एवं क्रूर सभ्यता की ओर लौटना नहीं होगा। उसने बल देते हुए कहा कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिकार की आशंका से अपने पड़ोसी के अधिकारों का सम्मान करने के लिए बाध्य था। व्यक्ति केवल इस कारण कानूनों का पालन करेंगे, "आज्ञापालन के सम्भावित दोष अवज्ञा के सम्भावित दोषों की अपेक्षा कम है।" बैन्थम के अनुसार लोकतन्त्रीय सरकार में ही इस सिद्धान्त का साकार रूप निहित है।

जान स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill)—उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे एवं तीसरे दशक के अनेक समाज सुधारक उपयोगितावादियों अथवा बुद्धिवादी दार्शनिकों से प्रभावित थे। जेम्स मिल (सन् 1773-1836) बैन्थम का सर्वाधिक निष्ठावान शिष्य था, परन्तु

उपयोगितावादियों में सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक जॉन स्टुअर्ट मिल (सन् 1806-1873) था। उसके पिता ने विशेष रूप से शिक्षा प्रदान की थी और बौद्धिक प्रतिभा की दृष्टि से वह बैन्थम से भी श्रेष्ठ था। 3 वर्ष की आयु में उसने यूनानी वर्णाक्षर सीख लिए थे और आठ वर्ष की आयु में हेरोडोटस के समस्त साहित्य तथा प्लेटो की मूल कृति का अधिकांश भाग पढ़ चुका था। 13 वर्ष की आयु में इतिहास, तर्कशास्त्र का शास्त्रीय अध्ययन और अरस्तु का दर्शनशास्त्र पढ़ चुका था। "तर्कशास्त्र" (Logic), राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त (Principles of Political Economy), स्वतन्त्रता (Liberty), प्रतिनिधि सरकार (Representative Government) उसकी महानतम कृतियाँ हैं। दार्शनिक के रूप में जान स्टुअर्ट मिल ने इंग्लैण्ड के महान् दार्शनिकों लॉक, ह्यूम एवं बैन्थम के दार्शनिक विचारों के प्रमुख सिद्धान्तों तथा प्रवृत्तियों को संकलित कर लिया था। अन्तिम सत्य के सम्बन्ध में वह सन्देहवादी था और उदार एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण का प्रवर्तक था। लेकिन वह एक मौलिक एवं स्वतन्त्र विचारक था और इस क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण योगदान किये हैं।

जान स्टुअर्ट मिल ने अनुभव को समस्त ज्ञान का मूल आधार मानते हुए, उस पर आधारित तर्कशास्त्र की नवीन प्रणाली की आधारशिला रखी। समस्त स्व-प्रमाणित सत्यों, गणित के अभिग्रहीत (स्वयं सिद्धि) तथ्य, पर्यवेक्षित तथ्यों से निकाले गये निष्कर्ष हैं कि प्रकृति एकरूपीय है और प्रत्येक प्रभाव का कारण है। ज्ञान कभी भी स्वाभाविक विचारों अथवा रहस्यमय अन्तः प्रज्ञा से नहीं प्राप्त होता है। यद्यपि मिल, बैन्थम के सिद्धान्तों के सामान्य उद्देश्य से सहमत था, लेकिन उसने "सुख और आनन्द की प्राप्ति एवं पीड़ा से बचने के लिए प्रयास ही मनुष्य के आचरण को निर्धारित करते हैं", अस्वीकार कर दिया था। मिल के अनुसार व्यक्ति का आचरण केवल अपने और साथियों के साथ एकता की प्रबल इच्छा से प्रभावित रहता है। आगे मिल ने विचार व्यक्त किया कि सुख-सुविधाएँ गुणों की दृष्टि से भिन्न होते हैं,'सन्तुष्ट मूर्ख की अपेक्षा असन्तुष्ट सुकरात' श्रेष्ठ होता है। मिल ने बैन्थम के व्यक्तिवादी विचारों में भी संशोधन किया। समाजवाद में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन हो जाता है। इस आधार पर मिल ने समाजवाद को अस्वीकार कर दिया लेकिन कम भाग्यशाली सदस्यों के लाभ के लिए, उसने कुछ अंशों तक राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन किया। उसने उस समय की कल्पना की, "जब समाज निष्क्रिय एवं परिश्रमी के मध्य विभाजित नहीं होगा, जब कानून होगा कि वे लोग जो काम नहीं करते हैं, खाना नहीं खायेंगे। यह कानून केवल निर्धनों के लिए ही नहीं, सब पर निष्पक्ष रूप से प्रवृत्त होगा।"

अपने निबन्ध 'स्वतन्त्रता' में उसने मूलभूत सिद्धान्त को प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार व्यक्ति और समाज के मध्य एवं नागरिकों और सरकार के मध्य परस्पर सम्बन्धों को नियमित होना चाहिए। मिल ने मत व्यक्त किया कि यह सिद्धान्त मूल लक्ष्य था जिसके लिए मानव समुदाय कार्य की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को, जब तक उसके कार्यों का समाज के साथ टकराव नहीं होता है, जैसे वह उचित समझता है, करने का अधिकार है। इसका उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यवर्गीय उद्योगपतियों एवं व्यापारियों पर गहन प्रभाव पड़ा। वह सरकार सबसे अच्छी है जो न्यूनतम शासन करती है, जिसमें व्यक्ति को अपनी योग्यताओं का विकास करने के लिए मुक्त छोड़ दिया जाता है।

यथार्थ में मध्यम वर्ग के अधिकांश व्यक्तियों ने मिल के लोकतन्त्र से सम्बन्धित विचारों का समर्थन नहीं किया। उसके प्रस्ताव कि सरकार को श्रमिक बच्चों की सुरक्षा के लिए हस्तक्षेप करना चाहिए, और उनके आवास तथा काम करने की शर्तों में सुधार करना चाहिए, पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। विभिन्न असमानताओं तथा विषमताओं से पीड़ित महिलाओं के सम्बन्ध में भी मिल ने चिन्ता व्यक्त की। उसका निबन्ध "महिलाओं की अधीनता" (The subjection of women) पुरुषों के निरर्थक एवं निराधार श्रेष्ठता के अहं को गहरा आघात था और यह महिलाओं के मताधिकार आन्दोलन का मूल मन्त्र बन गया। मिल के सिद्धान्त कि सरकार को व्यक्ति को अधिकाधिक स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए, का मध्यमवर्ग के बहुसंख्यक व्यक्तियों ने प्रबल समर्थन किया।

आगस्ट काम्टे (सन् 1789-1857) (Auguste Comte)—आगस्ट काम्टे का प्रत्यक्षवाद यूरोपीय महाद्वीप में उदारवाद एवं व्यावहारिक दर्शनशास्त्र के सर्वाधिक निकट था। काम्टे के सिद्धान्त से भी प्रत्यक्षवाद (Positivism) शब्द लिया गया है। काम्टे के अनुसार, "सकारात्मक ज्ञान अथवा ज्ञान जो विज्ञानों से मिलता है, उसी ज्ञान का कुछ मूल्य है।" काम्टे के दार्शनिक विचारों को अनुभूति मूलक दार्शनिक विचारों के वर्गीकरण में उपयोगितावाद के साथ रखा जा सकता है। अनुभूति मूलक दार्शनिक विचार समस्त निष्कर्ष, (सत्य) अनुभव अथवा भौतिक विश्व के पर्यवेक्षण से निकलते हैं। काम्टे ने आध्यात्मिक विचारों को पूर्णतया निरर्थक कहकर अस्वीकार कर दिया। कोई व्यक्ति वस्तुओं के गुप्त सार की खोज नहीं कर सकता है। घटनाएँ जो होती हैं, क्यों होती हैं अथवा अस्तित्व का अन्तिम अर्थ और उद्देश्य क्या है ? हम यथार्थ में जानते हैं, घटनाएँ कैसे घटित होती हैं, कानून जो उनके घटित होने को नियन्त्रित करते हैं और उनके मध्य परस्पर सम्बन्धों को भी हम जानते हैं। मनुष्यों में परस्पर सम्बन्धों में सुधार करने के लिए उपयुक्त साधन खोजना ही काम्टे के दार्शनिक विचारों का मुख्य उद्देश्य था। बैन्थम के विचार कि व्यक्तियों के कार्य मुख्य रूप से स्वार्थों (स्व-हित) से ही प्रेरित होते हैं, से काम्टे सहमत नहीं था। उसने दृढ़ विचार व्यक्त किया कि व्यक्ति स्वार्थपरता की भावनाओं के साथ, परार्थवाद की सहृदय भावनाओं अथवा अन्य व्यक्तियों के लिए भावनाओं से भी प्रेरित होते हैं। अहंवाद के ऊपर परार्थवाद (Altruism), इस शब्द का काम्टे ने ही आविष्कार किया था, की सर्वोच्चता को प्रोत्साहित करना ही समस्त समाजशास्त्रों का महान् उद्देश्य होना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति व्यक्तियों में प्रेम और आत्मत्याग की भावनाओं की जागृति द्वारा ही सम्भव हो सकती है। काम्टे ने 'मानवता का धर्म' (Religion of Humanity) का विकास किया। यह धर्म ही समस्त व्यक्तियों को न्याय, उदारता, परोपकारिता एवं सद्भावना के प्रति समान रूप से निष्ठा एवं समर्पण की भावना से प्रेरित करके संगठित कर सकता था। इस धर्म की अलौकिक तत्वों में कोई आस्था नहीं थी। इसने समाज की प्रगति के उद्देश्य के प्रति समर्पित विश्वास निर्माण करने के लिए प्रयत्न का प्रतिनिधित्व अवश्य किया।

तत्कालीन उद्योगपतियों, व्यापारियों एवं महाजनों ने अनुभव किया कि बिना राजनीतिक अधिकारों के आर्थिक स्वतन्त्रता का कोई महत्त्व नहीं था। राजनीतिक अधिकारों की स्वीकृति

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के लिखित संविधान में ही दृष्टिगत होती थी। सन् 1850 तक यूरोपीय महाद्वीप में अनेक लिखित संविधान प्रवृत्त हुए। अधिकांश संविधानों में पूर्ण एवं वास्तविक लोकतन्त्र की अपेक्षा सीमित संवैधानिक राजतन्त्र का प्रावधान था। मध्यमवर्ग के प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए, मतदान तथा सरकारी पदों की पात्रता के लिए सम्पत्ति की निर्धारित योग्यताएँ, समस्त उदारवादी भावनाओं से अनुप्राणित संविधानों की प्रमुख विशेषता थी। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उदारवाद का राजनीतिक आदर्श सीमित लोकतन्त्र था। सामान्यतः कहा जाता है कि धनवानों की सरकार, धनवानों के लिए और धनवानों के द्वारा थी।

उदारवादी सिद्धान्त, आदर्श और विचार आर्थिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में अभिव्यक्त हुए। आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद बाजारों की प्रभुसत्ता तथा स्वार्थों के परस्पर स्वाभाविक मधुर समन्वय पर आधारित थे। इस दृष्टि से व्यक्तियों को स्वहितों (स्वार्थों) एवं श्रम विभाजन पर आधारित विनिमय की अर्थव्यवस्था की प्राप्ति के लिए उन्मुक्त छोड़ दिया जाता है। व्यक्ति द्वारा स्व-हितों की प्राप्ति से समस्त समुदाय का निश्चित रूप से कल्याण होगा। पोप ने इस भावना को व्यक्त किया। इस प्रकार ईश्वर और प्रकृति सामान्य स्वतन्त्रता से सम्बद्ध हो गये और आत्म-प्रेम और सामाजिक प्रेम समान हो गये।"

निष्क्रियता और अर्जनशीलता मानव स्वभाव की सहज स्वाभाविक और अनुन्मूलनीय प्रवृत्तियाँ मानी जाती थीं। अतः आर्थिक उदारवाद के दार्शनिक विचार सम्पत्ति के अधिकार पर केन्द्रित थे। यदि व्यक्ति में प्रेरक तत्वों को नष्ट नहीं करना था और वस्तुओं के उत्पादन को हतोत्साहित नहीं करना था, सम्पत्ति की सुरक्षा को सुरक्षित रखना आवश्यक था। फ्रान्स के क्रान्तिकारियों तथा इंग्लैण्ड के मध्यमवर्गीय भद्र व्यक्तियों, दोनों ने सम्पत्ति की सुरक्षा पर बल दिया। अमेरिका के संविधान तथा फ्रान्स की मानवाधिकार घोषणा, दोनों में ही सम्पत्ति की सुरक्षा सरकार का मुख्य दायित्व बताया गया है।

उदारवाद के आर्थिक सिद्धान्त अठारहवीं शताब्दी में मिलते हैं। सन् 1776 में विख्यात अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने व्यक्तियों को सरकार द्वारा आरोपित अनेक प्रतिबन्धों से मुक्त करने के लिए आर्थिक विषयों में हस्तक्षेप न करने का प्रस्ताव रखा था। आरोपित प्रतिबन्ध वाणिज्यवाद के अन्तर्गत आर्थिक प्रगति में बाधक थे। एक अन्य विख्यात अर्थशास्त्री माल्थस ने एडम स्मिथ का अनुसरण करते हुए विचार व्यक्त किया कि व्यक्तियों को जीवित रखने के लिए खाद्यान्न की आपूर्ति की अपेक्षा जनसंख्या में अधिक द्रुतगति से वृद्धि हो रही थी, अस्तु मानवीय दरिद्रता, पीड़ा एवं कष्ट से बचा नहीं जा सकता है। प्रगति की अपेक्षा दरिद्रता मानव समुदाय की सामान्य स्थिति है। माल्थस के अभिव्यक्त विचार तत्कालीन मध्यवर्ग के अनुरूप थे। अठारहवीं शताब्दी में जो भविष्य अत्यधिक उज्जवल एवं मनोरम प्रतीत होता था, एडम स्मिथ एवं माल्थस को अनायास ही धूमिल एवं कष्टप्रद दृष्टिगत होने लगा। एडम स्मिथ ने सरकार से व्यापारिक गतिविधियों से विलग होने का अनुरोध किया। माल्थस ने सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करने (**Laissez Faire**) के दृष्टिकोण पर बल दिया।

माल्थस का निराशावादी दृष्टिकोण डेविड रिकार्डो की कृतियों में भी मिलता है। रिकार्डो के अनुसार श्रम भी किसी अन्य वस्तु के समान ही है। जब यह बहुतायत में होता है, यह सस्ता होता है। जब इसका अभाव होता है, ये भी महँगा हो जाता है। लाभ को कम करके और श्रमिकों के दैनिक वेतन में वृद्धि करके श्रमिकों के जीवनयापन के स्तर में सुधार के द्वारा जीवन स्तर में उन्नति के लिए प्रयत्न करना निरर्थक होगा क्योंकि इससे श्रमिकों के बच्चों की संख्या में ही केवल वृद्धि होगी और पूँजी की आपूर्ति को सीमित करने से उत्पादन में कटौती हो जायेगी। इस प्रकार रिकार्डो के अनुसार श्रमिकों के वेतन को बाजार की निष्पक्ष एवं उन्मुक्त प्रतिस्पर्धा पर छोड़ देना चाहिए और विधान सभा के हस्तक्षेप से नियन्त्रित नहीं होना चाहिए। इंग्लैण्ड के उदारवादी विचारों, आदर्शों एवं सिद्धान्तों का महाद्वीप के उदारवाद पर गहन प्रभाव पड़ा और यूरोप के देशों में सरकारों द्वारा आरोपित आर्थिक प्रतिबन्धों एवं विभिन्न नियमों की कटु आलोचना करते समय एडम स्मिथ के विचारों एवं सिद्धान्तों के प्रायः व्यापक रूप से उद्धरण दिये जाते थे।

इस प्रकार के आर्थिक परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक जीवन का मूल निदेशक सिद्धान्त सरकार के अधिकारों और शक्तियों को अधिकाधिक सीमित करने पर बल देना ही था। विख्यात विद्वान एवं विचारक स्पेन्सर ने हस्तक्षेप करने की नीति के अन्तर्गत राज्य को फुटपाथ बनवाने, सड़कों एवं सार्वजनिक स्थानों पर प्रकाश की व्यवस्था करने एवं सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छता के दायित्वों से भी मुक्त कर दिया। उसका मत था कि राज्य लूटमार करने वालों का अवशेष है। बैन्थम ने भी राज्य को शान्त रहने का परामर्श दिया था। थामस पेन ने विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि सर्वोत्कृष्ट सरकार भी एक आवश्यक दोष है। अमेरिकावासी पीढ़ियों से सर्वमान्य संस्कारों के रूप में थामस जैफरसन के अभिव्यक्त विचार, कि वह सरकार सर्वोत्कृष्ट है, जो न्यूनतम शासन करती है, की प्रायः पुनरावृत्ति करते हैं। सर्वप्रथम जान स्टुअर्ट मिल ने अपने हस्तक्षेप न करने की नीति का प्रतिपादन करते हुए यही विचार व्यक्त किया था।

सरकार को क्षेत्राधिकार में सीमित करने के उद्देश्य से फ्रान्स के विख्यात राजनीतिक दार्शनिक मान्टेस्क्यू के प्रवर्तित शक्तियों के पृथक्कीकरण सिद्धान्त का संस्थानात्मक उपाय के रूप में उदारवादियों ने प्रबल समर्थन किया। लोकतन्त्रीय प्रणाली को सशक्त बनाने तथा सरकार के अधिकारों और दायित्वों को जनकल्याण की भावनाओं से प्रेरित करने के लिए संघ राज्य की व्यवस्था तथा संसद की द्विसदनात्मक प्रणाली मतदाताओं द्वारा सरकार को अपदस्थ करने की धमकी है। प्रारम्भ में उदारवादियों को निर्वाचक समूह एवं निर्वाचन पद्धति का ही स्पष्ट ज्ञान नहीं था। पूर्णज्ञान होने के उपरान्त व्यापक मताधिकार की प्रबल माँग की। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में मताधिकार सम्पत्ति स्वामियों तक ही सीमित था। फ्रान्स में प्रारम्भ में क्रान्तिकारियों ने मताधिकार देने के लिए प्रयास किये परन्तु कालान्तर में प्रतिक्रियावादियों ने उनके प्रयासों को निष्क्रिय कर दिया। फ्रान्स के नागरिक राजा लुईस फिलिप के शासन काल में 3 करोड़ मतदाता थे। अमेरिका में सन् 1860 के उपरान्त ही अश्वेत वर्णीय पुरुषों को मताधिकार प्रदान किया गया। थामस बैबिगटन मैकाले यद्यपि व्हिग

(उदारवादी) था परन्तु वह भी सरकार के सब स्वरूपों के लिए व्यापक मताधिकार को अनुपयुक्त मानता था। गुइजोट (Guizot) और एडाल्फ देयरस ने व्यापक मताधिकार के सम्बन्ध में सुरक्षित अधिकारों का उल्लेख किया। अनेक उदारवादियों ने लोकतन्त्र में स्वेच्छाचारी निरंकुशता की भावना निहित होने की आशंका व्यक्त की। लोकतन्त्र तथा व्यापक मताधिकार के सम्बन्ध में विभिन्न भ्रान्तियों के उपरान्त थामस पेन, जैफरसन, रूसो, बैन्थम और जान स्टुअर्ट मिल के विचारों और सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार हुआ।

उदारवादी व्यक्ति के अधिकारों का प्रबल समर्थन करते थे। इन अधिकारों के द्वारा व्यक्तियों को व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार मिलता है। इस प्रकार व्यक्ति को निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी रूप से बन्दी बनाने एवं दण्ड के विरुद्ध सुरक्षा मिलती है। लाक ने इन अधिकारों का प्रबल समर्थन करते हुए, इनको अहस्तान्तरणीय और अविभाज्य कहा था। बैन्थम ने अधिकारों को कार्यात्मक कहते हुए समर्थन किया था और बर्क ने परम्परागत मानते हुए, अधिकारों की स्वीकृति पर बल दिया था। उदारवादियों के निरन्तर अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक लगभग प्रत्येक नागरिक को व्यापक मताधिकार एवं अनेक राजनीतिक अधिकार मिल गये थे।

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखने से ज्ञात होता है कि विभिन्न शक्तियों ने अनेक परिवर्तन किये। प्राचीन प्रतिष्ठित उदारवाद की बुद्धिसंगत व्याख्या की। युगों से प्रचलित सामन्तवादी प्रणाली को समाप्त कर दिया। निरंकुश क्रूर स्वेच्छाचारिता का सक्रिय विरोध किया गया और उन्मूलन कर दिया गया। मध्य वर्ग को अपनी अन्तर्निहित शक्तियों को उत्पादन साधनों के व्यापक विकास कार्य में प्रयुक्त करने के लिए उन्मुक्त छोड़ दिया गया। परिणामस्वरूप समाज की सम्पत्ति में पर्याप्त वृद्धि हुई। व्यापक रूप से प्रतिनिधि सरकारें स्थापित हो गयीं। राजतन्त्रीय सत्ता को सीमित करने के साथ उदारवादियों ने व्यक्ति के अधिकारों के सिद्धान्त को विकसित किया। व्यक्ति के अधिकारों में पूजा-उपासना का अधिकार, मुक्त प्रेस का अधिकार, भाषण की स्वतन्त्रता और सभा करने और संगठन बनाने का अधिकार सम्मिलित थे। जान स्टुअर्ट मिल के निबन्ध "स्वतन्त्रता" (Liberty) का नागरिक स्वतन्त्रता के महान् प्रमाण-पत्र के रूप में भव्य स्वागत किया गया।

सामाजिक सुधारों के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि राज्य सरकार के प्रयासों का मध्यमवर्ग ने बहुत कम समर्थन किया। कुछ व्यक्तियों के सक्रिय विरोध एवं आन्दोलन के परिणामस्वरूप ही कुछ सामाजिक सुधार हुए। ये व्यक्ति उदात्त मानवतावाद से प्रेरित थे अथवा उनकी उपयोगितावादी और कुशल बनने की तीव्र इच्छा थी। ब्रिटेन में उग्र दर्शनशास्त्रियों ने सामाजिक सुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अनेक कल्याणकारी कारखाना अधिनियम पारित किये गये। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैण्ड में, खान उद्योग में महिलाओं और बच्चों के नियोजन को अवैध घोषित कर दिया गया। निर्धनों की दयनीय स्थिति के सन्दर्भ में 'नवीन निर्धन विधि अधिनियम, 1834' (New Poor Law Act of 1834) पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा बाह्य राहत की परम्परागत प्रथा को समाप्त कर दिया गया। इस प्रथा के अन्तर्गत सर्वाधिक

निर्धन श्रमिकों को प्राप्त वेतन के अतिरिक्त सार्वजनिक कोष से राहत के रूप में धन दिया जाता था। इस प्रथा के उन्मूलन ने निष्क्रियता एवं आलस्य को हतोत्साहित किया और निर्धनों के राहत कार्य पर व्यय को कम किया और मध्यमवर्ग को प्रसन्न किया। अब निर्धनों को दरिद्रालयों में जाकर राहत प्राप्त करने का आदेश दिया गया। यूरोप महाद्वीप में प्रारम्भिक औद्योगिकवाद के दोषों को सुधारने के लिए बहुत कम काम किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दैनिक काम के घंटों पर प्रतिबन्ध लगाये गये। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक कारखानों में बच्चों का नियोजन निषिद्ध कर दिया गया। जर्मनी में कुछ परिवर्तनों का शुभारम्भ हुआ, लेकिन बेल्जियम में श्रमिकों की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए कुछ भी नहीं किया गया।

शिक्षा के क्षेत्र में उदारवाद ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। फ्रान्स और प्रशा में दीर्घकाल से सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली चली आ रही थी और दोनों ने उन्नीसवीं शताब्दी में भी पैतृक सम्पत्ति स्वरूप प्राप्त परम्परा बनाये रखी। सन् 1833 में ब्रिटेन ने पहली बार शिक्षा के लिए सार्वजनिक कोष की व्यवस्था की। कालान्तर में सार्वजनिक कोष की राशि निरन्तर बढ़ती गयी। इंग्लैण्ड में उदारवादियों के अथक प्रयासों के उपरान्त भी सार्वजनिक शिक्षा की स्थिति दयनीय ही बनी रही। सन् 1839 में सार्वजनिक शिक्षा के लिए आवंटित धन, साम्राज्ञी विक्टोरिया के घोड़ों के लिए व्यय की अपेक्षा बहुत कम था। इंग्लैण्ड में सन् 1870 में पहला सामान्य शिक्षा अधिनियम पारित किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उद्योग के प्रारम्भिक दोषों का समाधान करने के लिए प्रयास किये गये। दोषों के निराकरण हेतु किये गये प्रयास उदारवादी हस्तक्षेप के अभाव में दार्शनिक सिद्धान्त के प्रतिकूल थे।

व्यापक आर्थिक परिवर्तन पहले ब्रिटेन में और कालान्तर में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हुए। इन सब परिवर्तनों का मुख्य आधार उदारवादी आर्थिक सिद्धान्त बाजार अर्थव्यवस्था का आदर्श रूप था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक उदारवादी आर्थिक सिद्धान्त के प्रति मोहभंग हो गया। व्यक्तिगत सम्पत्ति के विभिन्न रूपों को न्यायोचित तथा तर्कसंगत सिद्ध करना कठिन हो गया। पाठ्य पुस्तक लेखकों के आदर्शीकरण की दृष्टि से व्यक्ति की वित्तीय दूरदर्शिता बहुत कम हो गयी। रूढ़िवादी उदार अर्थशास्त्रियों ने भावी पीढ़ियों को बचाने के लिए कालान्तर में योग्यताओं पर बल दिया। परिणामस्वरूप एक अमूर्त विज्ञान का आविर्भाव हुआ। उदारवादियों की नवीन पीढ़ी तथा बहुसंख्यक समाजवादियों ने मत व्यक्त किया कि अमूर्त विज्ञान का वास्तविक जगत से बहुत सीमित सम्बन्ध था। कार्लायल ने अर्थशास्त्र की निराशाजनक शास्त्र कहकर कटु आलोचना की।

लाभ प्रणाली के द्वारा विपुल सम्पत्ति कुछ ही व्यक्तियों में केन्द्रित हो गयी और इसके अनेक भयंकर परिणाम हुए। अधिकांश जनता को दयनीय स्थिति में जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। वे व्यक्ति जो उत्पादन प्रक्रिया का निरन्तर विस्तार कर रहे थे, स्वयं क्रय शक्ति के अभाव से पीड़ित थे। बाजार उत्पादित वस्तुओं से भरे हुए थे। समाज आवर्ती आर्थिक स्थिरता तथा दबाव का अनुभव कर रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी में सरकार लगभग क्षीण हो चुकी थी। व्यापारिक गतिविधियाँ प्रभावशाली ढंग से संगठित थीं और उनमें से कुछ सरकार

को प्रभावित करने एवं नियन्त्रित करने, मूक मतदाताओं को छल, प्रपंच और चतुरता से प्रभावित करने, प्रतियोगिता को सीमित करने तथा वास्तविक महत्वपूर्ण एवं अति आवश्यक सामाजिक सुधारों को अवरुद्ध करने के लिए अपनी अन्तर्निहित शक्ति का प्रयोग कर रही थीं। उनमें से कुछ शक्तियाँ जिन्होंने अतीत में निरंकुश स्वेच्छाचारी शासकों को समाप्त किया था, अब नये निरंकुशतावाद का सक्रिय समर्थन कर रही थीं। तार्किक दृष्टि से बीसवीं शताब्दी में उदारवादियों ने सरकार की सकारात्मक भूमिका का समर्थन किया एवं व्यापारिक और सरकारी परिधि के बाहर सत्ता के केन्द्र स्थापित करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक यूरोप के कुछ ही देशों जैसे ब्रिटेन, फ्रान्स, बेल्जियम, हालैण्ड, लक्समबर्ग, स्विट्ज़रलैण्ड और स्कैन्डीनेविया में ही लोकतान्त्रिक सरकारें थीं। शेष राष्ट्रों में अधिनायक तन्त्र था। मध्य और पूर्वी यूरोप में संसदीय लोकतन्त्र की प्रणाली नयी थी। इसके अतिरिक्त देश की भौगोलिक स्थिति तद्नुरूप खान-पान, आचार-विचार एवं भावनाओं की देश की जनता के चरित्र और प्रवृत्तियों को निश्चित स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सम्भवतः इन्हीं कारणों से अधिनायकतन्त्र की ओर झुकाव था।

इसके अतिरिक्त परस्पर युद्धकालीन वर्षों में आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याएँ असाधारण रूप से जटिल थीं और शीघ्र ही बहुदलीय संसदीय लोकतन्त्र के लिए ये समस्याएँ अत्यधिक विकट हो गयीं। केवल पश्चिमी यूरोप, जहाँ संसदीय लोकतन्त्र का दीर्घकालीन अनुभव था, में औद्योगिक दृष्टि से उन्नत चेकोस्लोवाकिया ही इन समस्याओं के समक्ष अपना अस्तित्व बनाये रख सका। अन्य देशों में इन समस्याओं के कारण अव्यवस्था और अनिर्णयात्मक स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। दरिद्रता तथा निराशा से त्रस्त अनेक देशों ने सुरक्षा और शक्ति के उद्देश्य से एक दलीय एवं एक व्यक्ति के शासन (अधिनायक तन्त्र) को ही लाभप्रद एवं श्रेष्ठ समझा। अधिनायक तन्त्र ने ऐसा प्रतीत होता है, अपेक्षित सुरक्षा और शक्ति का आश्वासन भी दिया।

सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के समय मुसोलिनी इटली में एवं हिटलर जर्मनी में शक्तिशाली अधिनायकों के रूप में सुदृढ़ थे। इन अधिनायकों ने एक संघ का भी गठन किया जिसने समस्त विश्व को आतंकित कर दिया। उनकी सफलताओं ने समस्त यूरोपीय महाद्वीप में अधिनायक तन्त्र समर्थक फांसिस्टवादी संगठनों को प्रोत्साहित किया। फासिस्टवादी तत्वों से अनुप्राणित हंगरी में गोम्बो (Gombo) दल ही सरकार (सन् 1931-1936) का गठन करने में सफल हुआ।

उदारवाद के साथ राष्ट्रवाद, जो उदारवाद का ही अभिन्न अंग है, का फ्रान्स की महान् क्रान्ति के परिणामस्वरूप अभ्युदय हुआ था। राष्ट्रवादियों के दो मुख्य सिद्धान्त थे : (1) फ्रान्स के सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्र का निर्माण जनता की भावनाओं और विचारों पर आधारित होना चाहिए। इस सिद्धान्त के समर्थक सामान्य विधि संहिता के अधीन रहने के लिए सहर्ष तैयार थे। नैपोलियन की विभिन्न विजयों ने इन विचारों को परिपक्व किया था। (2) दूसरा जर्मन सिद्धान्तों पर आधारित था तथा इसे लोकप्रिय बनाने में हर्डर (सन् 1744-1803) के निबन्धों

का विशेष योगदान था। यह राष्ट्रवादी संरचना से विलग भाषा एवं जाति पर आधारित था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तथा पूर्वी यूरोप ने इस सिद्धान्त का द्रुतगति से अनुसरण किया। हर्डर का विचार था कि राज्य को शक्तिशाली बनाना अत्यधिक आवश्यक था। केवल संस्थाओं एवं सार्वजनिक कल्याण से राष्ट्र महान् नहीं बन सकता। इन विचारों पर आधारित राष्ट्रवाद सन् 1848 की क्रान्ति की असफलता के बाद अधिक लोकप्रिय हुआ।

यूरोप के अनेक भागों में उदारवादी महत्वाकांक्षाएँ राष्ट्रवादी महत्वाकांक्षाओं के इतनी अधिक समान थीं कि दोनों की अलग-अलग पहचान करना भी कठिन था, परन्तु जैसे ही उदारवादियों को रूढ़िवादी शक्तियों का सामना करना पड़ा, परिवर्तन की शक्तियों में अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गये। सन् 1815-1848 के मध्य हुए अनेक विद्रोह इन्हीं अन्तर्विरोधी का परिणाम थे।

उदारवाद एवं लोकतन्त्र, धर्म निरपेक्षता के अभाव में अपूर्ण प्रतीत होते हैं। फ्रान्स की क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों में धर्म निरपेक्ष राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो गया। होलिऑक को पश्चिमी यूरोप में धर्म निरपेक्षता का जनक माना जाता है। सन् 1846 के निकट उसने धर्म निरपेक्षता का अभियान आरम्भ किया था। उसने विचार एवं सिद्धान्त अपनी दो कृतियों "धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त" (Principles of Secularism) एवं "धर्म निरपेक्षता का उद्‌भव और स्वभाव" (Origin and Nature of Secularism) में अभिव्यक्त किये हैं। होलिआक लिखता है, "धर्म निरपेक्षता वह सिद्धान्त है, जो जीवन के तत्काल कर्तव्य के रूप में सम्भावित उच्चतम बिन्दु तक मनुष्य के नैतिक और बौद्धिक प्रवृत्ति के विकास की खोज करता है।" धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होने लगी और राष्ट्रवादी विचारों एवं भावनाओं ने रूढ़िवादी शक्तियों को चुनौती देकर उदारवादी सिद्धान्तों एवं आदर्शों को प्रोत्साहित किया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. "ब्रिटेन का उदारवादी युग सुधारवादी युग था।" चर्चा कीजिये।
   "Liberalism age of Britain was reformatalism age." Discuss. (रायपुर, 1996)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. जर्मी बैन्थम द्वारा प्रवर्तित उपयोगितावाद उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में .... की प्रमुख राजनीतिक विचारधारा थी—
   (क) फ्रान्स (ख) इंग्लैण्ड (ग) प्रशा (घ) इटली
2. बैन्थम का जन्म सन् .... में इंग्लैण्ड में हुआ था—
   (क) 1740 (ख) 1748 (ग) 1750 (घ) 1756
3. बैन्थम की सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक विचारों की कृति 'नीतिशास्त्र और विधि-विषयक सिद्धान्त' सन् .... में प्रकाशित हुई थी—
   (क) 1789 (ख) 1790 (ग) 1792 (घ) 1794

4. उपयोगितावादियों में सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक जान स्टुअर्ट मिल का जन्म सन् ………… में हुआ था—
(क) 1800 (ख) 1802 (ग) 1806 (घ) 1810
5. आगस्त काम्टे का जन्म सन् ………… में हुआ था—
(क) 1785 (ख) 1789 (ग) 1793 (घ) 1797
6. निर्धनों की दयनीय स्थिति के सन्दर्भ में नवीन निर्धन विधि अधिनियम सन् ………… में पारित किया गया—
(क) 1830 (ख) 1834 (ग) 1838 (घ) 1842
7. इंग्लैण्ड में सन् ………… में पहला सामान्य शिक्षा अधिनियम पारित किया गया—
(क) 1860 (ख) 1870 (ग) 1875 (घ) 1880

[उत्तर—1. (ख), 2. (ख), 3. (क), 4. (ग), 5. (ख), 6. (ख), 7. (ख)।]

11

यूरोप में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका

[ROLE OF SCIENCE AND TECHNOLOGY IN EUROPE]

विश्व इतिहास में विज्ञान और शिल्पविज्ञान की भूमिका के दो धरातलों पर सुखद अनुभव हुए। सर्वप्रथम यूरोप के बुद्धिजीवियों तथा प्रबुद्ध वर्ग ने वैज्ञानिक विचारधारा का अनुभव किया, तदुपरान्त शेष विश्व ने अनुभव किया, परन्तु मनुष्य के विचारों के आधार पर शिल्पविज्ञान के मूर्त और सुनिश्चित परिणामों का केवल कुछ व्यक्तियों ने अनुभव किया। शिल्पविज्ञान का विज्ञान की अपेक्षा अधिक महत्व था।

द्वितीय धरातल (स्तर) पर शिल्पविज्ञान के परिणामों की साकार अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से औद्योगिक जगत में द्रुतगति से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। यथार्थ में औद्योगीकरण विज्ञान अथवा शिल्पविज्ञान की प्रयुक्ति की ही साकार एवं सुनिश्चित अभिव्यक्ति थी।

विश्व इतिहास के सन्दर्भ में अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी का ज्ञान था। इससे पूर्व मशीन (यन्त्र) के नाम पर हल, कुतुबनुमा, थर्मामीटर वायु-पम्प, छापाखाना (प्रिन्टिंग प्रेस), सूत कातने का चक्र ही मनुष्य को ज्ञात थे। विशुद्ध विज्ञान के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। गैलिलियो के प्रयासों से प्रकाशीय शीशों एवं दूरबीन का आविर्भाव हुआ। सन् 1687 में विश्व को आलोकित करने वाले वैज्ञानिक न्यूटन की विश्वविख्यात एवं बहुचर्चित कृति "प्रिन्सपिया" (Principia) प्रकाशित हुई। ठीक इसी समय एक अन्य वैज्ञानिक बायल ने गैसों से सम्बन्धित नियमों का प्रतिपादन किया और कार्बनिक तत्वों का कार्बनिक यौगिक के मध्य अन्तर स्पष्ट किया। वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य के अनुमानों, सम्भावनाओं एवं कल्पनाओं के साथ उनके उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जीवन को भी प्रभावित किया।

कुतुबनुमा दूरबीन और गणित के क्षेत्र के विकास कार्यों ने यूरोपीय देशों के साहसी तथा उद्यमी नाविकों की बहुत सहायता की। परिणामस्वरूप वाणिज्य एवं व्यापार का विकास हुआ। वाणिज्यिक क्रियाकलापों का मुख्य आधार व्यापारिक जलयान तथा नौ-सेना के

जलयान थे। इन समस्त विकासशील गतिविधियों ने यूरोप को विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापारिक अथवा औपनिवेशिक सम्बन्ध स्थापित करने में अपूर्व योगदान दिया। सर्वप्रथम स्पेन ने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित किया। तदुपरान्त हालैण्ड, पुर्तगाल, इंग्लैण्ड और फ्रान्स ने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित करने की प्रतिस्पर्धात्मक दौड़ में सक्रिय भाग लिया। परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी यूरोपीय राष्ट्रों ने मध्य अमेरिका, अफ्रीका महाद्वीप के पश्चिमी किनारे, भारत और पूर्वी द्वीप समूह में अपने-अपने उपनिवेश स्थापित किये। ये विकास कार्य इसी स्थल पर समाप्त हो जाते परन्तु अठारहवीं शताब्दी में एक अन्य विज्ञान की द्रुत गति से उन्नति के साथ इनका सम्बन्ध स्थापित हो गया। औपनिवेशिक एवं वैज्ञानिक विकास के परस्पर समन्वय के दूरगामी परिणाम हुए।

ब्रिटेन ने जिस समय से औद्योगिक क्रान्ति के क्षेत्र में तीव्र गति से प्रगति की, विज्ञान और शिल्पविज्ञान के व्यापक प्रभाव विश्व इतिहास में दृष्टिगत होते हैं। अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ब्रिटेन के कपड़ा उद्योग में रूपान्तर आरम्भ हो गया। हरग्रीव्ज (Hargreaves) ने सूत कातने को गति प्रदान करने के लिए एक मशीन (यन्त्र) का आविष्कार किया। आर्कराइट ने इन मशीनों को पानी की सहायता से चलाया। क्राम्पटन ने दोनों आविष्कारों का समन्वय करके अन्य देशों की अपेक्षा इंग्लैण्ड में निर्मित श्रेष्ठ और सस्ता कपड़ा बनाया।

इंग्लैण्ड के उद्योगपतियों को एक असुविधा का सामना करना पड़ा। नवीन मशीनों की आवश्यकतानुसार पर्याप्त कपास उपलब्ध नहीं थी। सन् 1783 में व्हिटने ने बिनौले से कपास निकालने की मशीन का आविष्कार करके परिवर्तन की प्रक्रिया को पूर्ण कर दिया। व्हिटने की मशीन बिनौले से कपास हाथ से निकालने की अपेक्षा 300 गुणा अधिक निकालती थी।

सन् 1800 तक इंग्लैण्ड औद्योगीकरण के उच्च शिखर पर था। अठारहवीं शताब्दी का इंग्लैण्ड, अमेरिका और भारत, हालैण्ड और फ्रान्स दोनों से आगे निकल गया था, यद्यपि फ्रान्स उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपने स्थापित उपनिविशों के कारण अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति में सुधार करने में आंशिक रूप से सफल हो गया था। उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन द्वारा विकसित आर्थिक नीति ने इंग्लैण्ड के व्यापारिक एवं औपनिवेशीकरण सम्बन्धित उद्देश्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण सहायता की। इंग्लैण्ड द्वारा अमेरिका स्थित 13 उपनिवेशों का वाणिज्यवादी शोषण अमेरिका के स्वतन्त्रता संघर्ष का प्रमुख कारण था।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक विज्ञान और शिल्पविज्ञान के क्षेत्रों में कुछ और विकास कार्य हुए। इनका औद्योगीकरण पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। लैवोइजर (Lavoiser) जिसको फ्रान्स की क्रान्ति की अवधि में फ्रान्स के कृषकों ने फाँसी पर लटका दिया, कार्बनिक उद्योग का जनक था। विद्युत सम्बन्धी विज्ञान का ज्ञान प्रत्येक प्रयोग के साथ निरन्तर बढ़ रहा था। इस सन्दर्भ में बैंजामिन फ्रैन्कलिन का प्रयोग एक युगान्तकारी घटना थी। सन् 1814 में स्टीवेन्स ने सर्वप्रथम खानों से बन्दरगाह तक कोयला ले जाने के लिए वाष्प इन्जिन का प्रयोग

किया। तदुपरान्त सामान का परिवहन सुलभ, सहज और द्रुतगति से सम्भव हो गया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिजवाटर द्वारा नहरों के निर्माण एवं मैक एडम द्वारा पक्की सड़कों के निर्माण से भी द्रुतगति से माल का परिवहन सम्भव हो गया था।

लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंगलैण्ड और यूरोप के अन्य देश फ्रान्स की क्रान्ति एवं नैपोलियन के युद्धों के कारण औद्योगिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति नहीं कर सके। युद्धों की विभीषिका से मुक्त होने तक विज्ञान और शिल्पविज्ञान के क्षेत्रों में प्रेरणादायक प्रगति हो चुकी थी। सन् 1850 के उपरान्त विज्ञान के ज्ञान को द्रुतगति से आर्थिक क्षेत्र के साथ लोगों के दैनिक जीवन में प्रयुक्त किया गया और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक विज्ञान और शिल्पविज्ञान का प्रभाव चमत्कारिक ढंग से बढ़ गया।

बीसवीं शताब्दी में विज्ञान और शिल्पविज्ञान की भूमिका अत्यधिक प्रेरणादायक रही है। शिल्पविज्ञान ने उत्पादन की प्रक्रियाओं को अत्यधिक रूपान्तरित कर दिया। परिणामस्वरूप औद्योगिक क्रान्ति घातीय वक्ररेखा की स्थिति तक आ गया है। इस प्रौद्योगिक क्रान्ति के उत्पाद जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र व्यक्तिगत, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की आपूर्ति करते हैं। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हमारे समक्ष शिल्पविज्ञान को मनुष्य की समस्त आवश्यकताओं के उपयुक्त बनाने का विशाल दायित्व है। आधुनिक संकेतों से ज्ञात होता है कि मनुष्य स्वयं शिल्पविज्ञान का साधन बन रहा है, जबकि अतीत में शिल्पविज्ञान मनुष्य का साधन था। इसके अतिरिक्त विज्ञान द्वारा प्रोत्साहित स्वभाव अथवा प्रवृत्ति महत्वपूर्ण नहीं है। इसकी अपेक्षा अतीत की अप्रचलित संवेदनाएँ, विचार और दृष्टिकोण मनुष्य के विचारों और कार्यों को प्रभावित करते हैं।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. सन् .... में विश्व को आलोकित करने वाले वैज्ञानिक न्यूटन की कृति 'प्रिन्सपिया' प्रकाशित हुई—
   (क) 1687 (ख) 1688
   (ग) 1689 (घ) 1690
2. वैज्ञानिक न्यूटन की विश्वविख्यात एवं बहुचर्चित कृति .... प्रकाशित हुई—
   (क) प्रिन्स (ख) प्रिन्सपिया
   (ग) रिपब्लिक (घ) लैवायाथन
3. सन् .... में व्हिटने ने बिनौले से कपास निकालने की मशीन का आविष्कार किया—
   (क) 1780 (ख) 1782
   (ग) 1783 (घ) 1784
4. सन् .... तक इंगलैण्ड औद्योगीकरण के उच्च शिखर पर था—
   (क) 1600 (ख) 1700
   (ग) 1800 (घ) 1850

5. .... जिसको फ्रान्स की क्रान्ति की अवधि में फ्रान्स के कृषकों ने फाँसी पर लटका दिया, कार्बनिक उद्योग का जनक था—

(क) बैंजामिन फ्रेन्कलिन (ख) लैवोइजर

(ग) मैकएडम (घ) आर्कराइट

6. सन् .... के उपरान्त विज्ञान के ज्ञान को द्रुतगति से आर्थिक क्षेत्र के साथ दैनिक जीवन में प्रयुक्त किया गया—

(क) 1600 (ख) 1700 (ग) 1800 (घ) 1850

[उत्तर—1. (क), 2. (ख), 3. (ग), 4. (ग), 5. (ख), 6. (घ) ।]

12

औद्योगिक क्रान्ति की वैज्ञानिक एवं शिल्प वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

[SCIENTIFIC AND TECHNOLOGICAL BACKGROUND OF INDUSTRIAL REVOLUTION]

अभियान्त्रिकी (Engineering) का अध्ययन ही प्रौद्योगिकी (शिल्पविज्ञान Technology) है। मनुष्य की आवश्यकतानुसार विज्ञान की प्रयुक्ति मनुष्य को प्रौद्योगिक ज्ञान अर्जित करने में सहायता करने वाली मशीन है। मशीन के प्रयोग का अर्थ है, मनुष्य के शारीरिक श्रम के स्थान पर मशीन के श्रम का प्रयोग करना है। प्रत्येक मशीन मानव अंगों का विकसित रूप है। मशीनों की संख्या में वृद्धि के साथ मनुष्य के अंगों में अनेक गुना वृद्धि हो जाती है और वे अधिकाधिक काम करते हैं। मशीनों के साथ, मानव एवं पशु शक्ति का स्थान पानी, वाष्प और विद्युत ने ले लिया। इस प्रकार मनुष्य के पास उपलब्ध शक्ति चमत्कारिक रूप से बढ़ जाती है।

प्रौद्योगिक अभिनव परिवर्तनों ने मशीनों को मनुष्य की इच्छाधीन कर दिया और मनुष्य ने मशीनों का स्वच्छन्दतापूर्वक अनियमित ढंग से प्रयोग किया। व्यक्ति, जो तत्कालीन मशीनों में प्रौद्योगिक अभिनव परिवर्तनों के सूत्रपात द्वारा उत्पादन की प्रक्रियाओं में परिवर्तन के मूल प्रेरक थे, को विज्ञान का क्रमबद्ध शास्त्र के रूप में किंचित भी ज्ञान नहीं था और उनको अभियान्त्रिकी का भी यथेष्ट प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। उनको मशीनों पर कार्य करने का दीर्घकालीन व्यावहारिक अनुभव था और उसी अनुभव का समुचित प्रयोग किया था। उनमें से अनेक शिल्पकार तथा कुशल श्रमिक थे। उनमें से अनेक ने उत्पादन की श्रेष्ठ पद्धतियों की सफलता के उपरान्त अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धियों की खुशी में हर्षोल्लास से उत्सव मनाया। जब शिल्पकारों ने सूत कातने के पहिये में आमूल परिवर्तन कर दिया, उसको 'स्पिनिंग जैनी' का नाम दिया गया। एक अन्य आविष्कार 'म्यूल' (Mule) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपने कार्य के प्रति निष्ठा एवं आत्मिक सम्बन्ध को दर्शाते हुए विल्किन्सन ने अपनी वसीयत में लिखा कि उसको एक लोहे के बने काफिन में दफनाया जाये।

आर्कराइट नाई था, लेकिन एक प्रोत्साहक, प्रबन्धक अधीक्षक और कृषक था। अधीक्षक के रूप में चार घोड़े की गाड़ी से मिल में अपने श्रमिकों का निरीक्षण करने जाता था। उसकी महान् उपलब्धियों के लिए उसको 'नाइट' (knight) की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

पेण्डुलम वाली घड़ी, कुतुबनुमा, थर्मामीटर, वायु-पम्प, छापाखाना आदि अनेक मशीनों का सन् 1750 से पूर्व प्रयोग होता था। सन् 1750 के उपरान्त यान्त्रिक (मशीनी) आविष्कारों में तेजी आयी। दो शताब्दियों तक गोलाबारी ने खान उत्खनन और धातुकर्मीय कार्य को पूर्वापेक्षा श्रेष्ठ बना दिया था। प्रारम्भ में औद्योगिक परिवर्तन यूरोप के संकलित कार्य-कुशलता तथा परम्परागत व्यवसायों से अर्जित अनुभव और उनके नये क्षेत्रों में व्यापक प्रयोग पर आधारित थे। राइन नदी तटवासियों ने चौदहवीं शताब्दी में ही ढलवाँ लोहा बनाना सीख लिया था और सन् 1600 के उपरान्त बात्या भट्टी (Blast Furnace) के निर्माण में शनैःशनैः सुधार किया। सर्वप्रथम वाष्प इंजिनों का निर्माण लोहारों, छकड़ा बनाने वालों एवं बढ़ई के विविध संकलनों से हुआ था, जबकि अभियन्ताओं ने सामान्यतः काम करने से मना कर दिया था। सन् 1794 में माडले (Maudsley) द्वारा फिसलने वाले दरवाजों (Slide rest) के आविष्कार ने मशीन यन्त्रों को अधिकाधिक पूर्ण एवं परिपक्व कर दिया। परिणामस्वरूप अभियान्त्रिकी उद्योग के क्षेत्र में क्रान्ति हो गयी। दीर्घकाल तक यह प्रक्रिया लापरवाही से चलती रही। अनायास नवीन प्रेरणा से प्रेरित होकर नवीन प्रक्रियाओं पर विचार किया गया।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि अठारहवीं शताब्दी में प्रौद्योगिक कुशलता के क्षेत्र में परिवर्तन विज्ञान पर आधारित थे। जेम्स वाट ने वाष्प इंजिन के सिद्धान्त की खोज करके नवीन युग का सूत्रपात किया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्टीवेन्सन ने वाष्प इंजिन के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में प्रयुक्त किया, जिसके अत्यधिक महत्वपूर्ण, उत्साहवर्धक एवं प्रेरक परिणाम हुए। स्टीवेन्सन ने ही पफिंग बिल्ली (Puffing Billy) में सुधार किया जिससे वह 15 मील प्रति घंटा की गति से चल सके। उस समय तक लोहे की प्रगलन प्रक्रिया में भी सुधार किया जा चुका था, जिससे अधिकाधिक परिष्कृत मशीनों का उत्पादन किया जा सकता था। उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में वाष्प शक्ति एवं विद्युत शक्ति का आविष्कार अत्यधिक उत्साहवर्धक एवं प्रेरणादायक उपलब्धि थी। परिणामस्वरूप अभियान्त्रिकी तथा अभियन्ताओं का जन्म हुआ। सन् 1840 में वैज्ञानिक (Scientist) शब्द का सृजन किया गया।

इस समय से समस्त नवीन प्रौद्योगिक परिवर्तनों में गहन वैज्ञानिक ज्ञान निहित था। इसी अवधि में चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण आविष्कार हुए एवं विभिन्न असाध्य रोगों का उपचार सम्भव हो गया। परिणामस्वरूप मृत्यु दर कम हो गयी। मनुष्य की औसत आयु में अपेक्षाकृत वृद्धि हो गयी। अतः जनसंख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हो गयी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक प्रौद्योगिक क्रान्ति के सुखद परिणाम विद्युत बल्ब, विद्युत घंटी, टेलीफोन, कैमरा आदि के द्वारा घर में भी लोग अनुभव करने लगे। रेलवे, वाष्प नौकाओं, सड़क पर रोशनी और सस्ती साइकिलों से सामाजिक जीवन भी रूपान्तरित होने लगा। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक प्रौद्योगिक क्रान्ति का द्वितीय चरण समाप्त हो गया।

सन् 1750 के उपरान्त बड़े कारखानों में मशीनों के प्रयोग से उत्पादन की मात्रा और उत्पादन की दर में पर्याप्त वृद्धि हुई, अर्थात् कम व्यक्ति कम समय में अधिक उत्पादन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त हाथों द्वारा निर्मित वस्तुएँ कम मात्रा में होती थीं और मशीनों द्वारा कम समय में अधिक उत्पादन होता था, अस्तु उत्पादन मूल्य भी बहुत कम होता था। परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं के लिए उत्पादित वस्तुओं का क्रय मूल्य भी कम होता था। सुसंगठित कारखाना प्रणाली के आविर्भाव के परिणामस्वरूप सामान्य जनता भी उन वस्तुओं का क्रय करने एवं उपभोग करने में समर्थ हो गयी जो अतीत में केवल धनी एवं सम्पन्न व्यक्तियों तक ही सीमित थीं। इसके अतिरिक्त मशीनों की बढ़ती हुई माँग की आपूर्ति के लिए अधिकाधिक कच्चे माल की आवश्यकता होती थी और अपेक्षाकृत अनेक गुना अधिक उत्पादन की खपत एवं विक्रय के लिए अधिकाधिक बाजारों की भी आवश्यकता होती थी। सर्वप्रथम इंग्लैण्ड ने कच्चा माल प्राप्त करने और उत्पादित तैयार माल के विक्रय के लिए बाजारों को खोजने का कार्य आरम्भ किया था, परन्तु कालान्तर में अनेक यूरोपीय राष्ट्रों ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया। परिणामस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों में विश्व के अनेक देशों में अपने उपनिवेश स्थापित करके अपने कारखानों के लिए अधिकाधिक कच्चा माल प्राप्त करने और उत्पादित माल की खपत और विक्रय के लिए अधिकाधिक बाजार प्राप्त करने के लिए परस्पर तीव्र प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो गयी। प्रतिस्पर्धा में पूर्ण नियन्त्रण और आधिपत्य की भावना निहित थी, जिससे उसके नियन्त्रित क्षेत्र से अन्य कोई प्रतियोगी देश लाभान्वित नहीं हो सके।

नवोदित कारखाना प्रणाली में मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग से मानव श्रम की आवश्यकता दिन-प्रतिदिन कम होने लगी, क्योंकि मानव श्रम का स्थान मशीनों ने ले लिया था। परिणामस्वरूप निरन्तर बेकारी बढ़ने लगी। मानव श्रम की माँग की अपेक्षा अधिक आपूर्ति थी, अस्तु माँग और पूर्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुरूप श्रमिकों के दैनिक वेतन दर कम होने लगी और न्यूनतम स्तर पर दैनिक वेतन दर स्थिर हो गयी, लेकिन पूँजीवादियों की स्वार्थी अधिकाधिक लाभ अर्जित करने की प्रवृत्ति के कारण अधिक लाभ अर्जित करने के उपरान्त भी पूँजीपतियों ने अपने श्रमिकों के वेतन में आनुपातिक वृद्धि नहीं की। अपेक्षित जीवन स्तर के लिए अपर्याप्त न्यूनतम वेतन के साथ उनके काम करने के स्थल भी दूषित, स्वास्थ्य के लिए घातक थे। उनके निवास स्थान भी गन्दे, दूषित एवं विभिन्न रोगों के कीटाणुओं से आक्रान्त वातावरण में स्थित थे। मकानों की बनावट भी स्वास्थ्य सिद्धान्तों के दृष्टिकोण से अत्यधिक घातक थी। इन क्षेत्रों में अपेक्षित सार्वजनिक सुविधाओं का सर्वथा अभाव था। श्रमिकों के बच्चों की शिक्षा के लिए आवश्यक शैक्षणिक सुविधाओं का भी अभाव था। श्रमिक वर्ग पूर्णतया उपेक्षित था और आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। राजनीतिक चेतना का प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तविक उपेक्षित एवं दयनीय स्थिति के परिणामस्वरूप विख्यात अर्थशास्त्री कार्ल मार्क्स ने भविष्य में उद्योगों के पूँजीपति स्वामियों के विरुद्ध श्रमिकों के आन्दोलन का पूर्वानुमान कर लिया था।

मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग ने अतीत के सुखद एवं सौहार्द्रपूर्ण सामुदायिक जीवन को अव्यवस्थित कर दिया। मध्यकालीन युग में किसी व्यक्ति का निवास-स्थान ही उत्पादन

एवं उपभोक्ता ईकाई होता था। उत्पादन प्रक्रिया में सुधार के प्रारम्भिक चरण में ग्रामों से दूर उद्यमी पूँजीपतियों ने उत्पादन केन्द्रों का शुभारम्भ किया। इन केन्द्रों को ग्रामवासी ही अपेक्षित कच्चे माल की आपूर्ति करते थे। इन उत्पादन केन्द्रों में काम करने वाले व्यक्तियों को वेतन के रूप में पारिश्रमिक दिया जाता था। यह शीघ्र ही अतीत के गर्भ में तिरोहित होने वाली उत्पादन एवं उपभोक्ता प्रणाली थी। सन् 1750 के बाद गृहिक एवं अप्रचलित प्रणाली का स्थान नवोदित कारखाना व्यवस्था ने ले लिया। इस विकास कार्य के परिणामस्वरूप ग्रामीण जनता एवं सामुदायिक जीवन की पीड़ाओं एवं यातनाओं में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। सामुदायिक जीवन की सुखद सन्तुष्टि समाप्त हो गयी और दैनिक वेतनभोगी श्रमिक पूँजीपति नियोजक अथवा कारखाना स्वामियों पर पूर्णतया आश्रित हो गये। उत्पादन इकाइयाँ, जो अधिकांश प्राचीन प्रचलित औजारों तथा मानव श्रम का प्रयोग करती थीं, अब वाष्प-शक्ति पर अधिकाधिक निर्भर रहने लगीं। इसके अतिरिक्त कारखानों के आविर्भाव से प्राचीन औजार विलुप्त हो गये। परम्परागत उत्पादन प्रक्रिया से कारखाना प्रणाली तक परिवर्तन की प्रक्रिया क्रमिक विकास की प्रक्रिया थी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक वाष्प शक्ति ने परिवहन उद्योग के विकास में सहायता की और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से वाष्प-शक्ति का स्थान विद्युत-शक्ति ने ले लिया।

प्रौद्योगिक क्रान्ति का केन्द्र-बिन्दु कारखाना था। अनेक प्रकार की मशीनों के सामूहिक संकलन के आधार पर कारखाने का निर्माण होता है। प्रत्येक कारखाना लाक्षणिक दृष्टि से सहस्त्रों मानव अंगों का संकलन था और समस्त मशीनें मधुर स्वर संगति के रूप में कार्य करती थीं। यद्यपि 'फैक्टरी' शब्द का सृजन सोलहवीं शताब्दी में हुआ था, लेकिन फैक्टरी (कारखाना) के साकार रूप का आविर्भाव अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटेन में हुआ था। भारत में विशालकाय कारखानों के साक्ष्य प्राचीन एवं मध्यकाल दोनों में समान रूप से मिलते हैं जिनमें हाथ से निर्मित दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में उत्पादन होता था। कारखाने के अभ्युदय ने न केवल उत्पादन की प्रक्रिया में ही रूपान्तर किया वरन् सहस्त्रों सामाजिक प्राणियों के जीवन में भी आमूल परिवर्तन कर दिया। ब्रिटेन के उपरान्त विश्व के समस्त भागों में उत्पादन की नवीन प्रक्रिया कारखाना व्यवस्था का सूत्रपात हो गया। कारखाने का स्वामी आधुनिकतम उपलब्ध मशीनों के सामूहिक संकलन द्वारा न्यूनतम व्यक्तियों द्वारा अधिकतम उत्पादन के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था, जिसमें कारखाना स्वामी को अधिकतम लाभ की सदैव आशा रहती थी। कारखानों में नियोजित श्रमिक अपना शारीरिक श्रम बेचते थे और बदले में पारिश्रमिक स्वरूप वेतन प्राप्त करते थे। प्रारम्भ में पारिश्रमिक अथवा वेतन अपेक्षित जीवनयापन के स्तर के अनुरूप ही मिलता था। परिणामस्वरूप अधिक मदिरापान, वेश्यागमन, व्यभिचार, भयंकर असाध्य रोग एवं अनेक नये प्रकार के अपराधों के रूप में दूषित सामाजिक प्रवृत्तियों का अभ्युदय हो गया।

कारखाना व्यवस्था के अन्तर्गत नियोजित श्रमिकों पर समय, लक्ष्य आदि का कठोर नियन्त्रण रहता था। प्रबन्धक मण्डल श्रमिकों पर नियन्त्रण रखता था और उनको अनुशासित रखता था। कारखाने की पूर्ण उत्पादन प्रक्रिया श्रम विभाजन पर आधारित थी। वस्तु की

उत्पादन प्रक्रिया को अनेक भागों में विभाजित कर दिया जाता था। एक काम के लिए एक मशीन पर एक ही व्यक्ति काम करता था और व्यक्ति को प्रतिदिन के निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति अनिवार्य थी। कारखानों को सुसज्जित करने का अर्थ अधिकाधिक मशीनों का प्रयोग करना था। इसके लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप उद्योगों का नियन्त्रण पूँजीपतियों के समूह के हाथों में स्थानान्तरित हो गया। पूँजीवाद की सर्वाधिक रोचक प्रवृत्ति मितव्ययिता थी। जेम्सवाट, जोसिया वैजवुड और आर्कराइट के आविष्कारों ने बचत अधिक की और व्यय कम किया। इन पूँजीपति नियोजकों ने उद्योगों के अतिरिक्त लाभ के रूप में आय के सामाजिक न्यासी (Social Trustee) के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया और इस धन का अधिक लाभांश अथवा वेतन के रूप में देने की अपेक्षा, नवीन औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने में प्रयोग किया।

सन् 1870 के उपरान्त जर्मनी में भी कारखाना प्रणाली आरम्भ हुई। इस विकास कार्य में उद्यमी एवं साहसी व्यक्ति औद्योगिक उत्पादन में सुधार करने के लिए पर्याप्त पूँजी, लाभप्रद बाजार, पर्याप्त कच्चे माल की उपलब्धता, उपयुक्त कुशल श्रमिकों की पर्याप्त संख्या और उत्पादन की संशोधित एवं परिष्कृत तकनीक आदि कारकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

विकास की दृष्टि से फ्रान्स की स्थिति पूर्णतया भिन्न थी। प्रगति और विकास बहुत मन्द था। सन् 1914 तक फ्रान्स मुख्य रूप से ग्रामीण ही था। गुणात्मकता की दृष्टि से उच्चकोटि की वस्तुओं के उत्पादन पर विशेष बल दिया जाता था। फ्रान्स में उद्योगों के मन्द गति से विकास का यही मुख्य कारण था। ब्रिटेन और जर्मनी ने सार्वजनिक उपभोक्ता वस्तुओं का सर्वाधिक उत्पादन किया परन्तु फ्रान्स ने व्यक्तिगत कुशलता तथा कलात्मक शिल्प पर विशेष बल दिया।

उत्तरी फ्रान्स में कच्चा माल एवं ईंधन के साथ उपयुक्त बाजार भी उपलब्ध थे, अस्तु उद्योगों का मुख्य रूप से उत्तरी फ्रान्स में विकास हुआ। समस्त देश में विशालकाय कोयले की खानें, जिनकी उद्योगों के विकास में सर्वाधिक आवश्यकता थी, स्थित थीं। खनिज कोयले ने वस्त्र उद्योग, प्रोसीलेन एवं अन्य उत्पादनों की अनेक छोटी इकाइयाँ स्थापित करने में बहुत सहायता की।

अन्य देशों के समान फ्रान्स के श्रमिकों ने भी कारखाना व्यवस्था को स्वीकार कर लिया। सन् 1892 एवं सन् 1900 के कारखाना अधिनियमों ने श्रम का भण्डार ही बना दिया। इसका घर पर कुटीर उद्योगों में व्यापक प्रयोग किया जा सकता था। अधिकांश गृह स्थित कुटीर उद्योगों में सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन होता था। इसके बाजार निरन्तर कम-अधिक होते रहते थे और आकार में छोटे थे।

फ्रान्स में औद्योगिक संगठनों में विशिष्ट प्रवृत्ति का विकास हुआ। फ्रान्स के उत्पादक संघों ने औद्योगिक मूल्यों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए प्रयास किये। प्रतिस्पर्द्धा को नियन्त्रित करना अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए आवश्यक था। इन उत्पादक संघों में अतीत की श्रेणियों (Guilds) की भावना एवं चेतना निहित थी। ये उत्पादक संघ,

कलात्मक संघ, कलात्मक उद्यमों की प्राचीन परम्पराओं से सर्वाधिक प्रभावित थे। इन उत्पादक संघों को अपने उत्पादक क्रियाकलापों को, विक्रय एवं व्यापार से सम्बन्धित अन्य अनेक गतिविधियों के माध्यम से विकसित करने के लिए उन्मुक्त छोड़ दिया गया था।

निःसन्देह, स्वभाव से प्रौद्योगिक परिवर्तनों का मनुष्य समाज पर संचित प्रभाव पड़ता है, परन्तु बीसवीं शताब्दी के परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक गतिशील थे। युद्ध की अनिवार्यता ने प्रौद्योगिक परिवर्तनों को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करने में अधिक योगदान दिया। दूसरे और तीसरे दशक में यह गति अत्यधिक तीव्र हो गयी और अब तक अवरुद्ध नहीं हुई है। सामान्य रूप से बीसवीं शताब्दी के परिवर्तनों को प्रौद्योगिक युग का तृतीय चरण माना जा सकता है जिसको अठारहवीं शताब्दी के मध्य में उन्मुक्त छोड़ दिया गया था। इन प्रौद्योगिक परिवर्तनों का विश्व के समस्त भागों में व्यापक प्रचार एवं प्रसार बीसवीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके अनेक अनिवार्य एवं सुनिश्चित परिणाम हुए। इसने मानव जीवन के समस्त स्तरों, संवेदनाओं तथा भावनाओं से लेकर मनुष्य जीवन के वास्तविक तथ्यों तक को प्रभावित किया।

अस्तु श्रमिक भी उत्पाद से विमुख हो गया। धीरे-धीरे श्वेत वस्त्रधारी श्रमिक भी कारखाने की संरचना में दाँता लगाने वाले बन गये। उनको भी उनके द्वारा किये गये कार्यों का समुचित पारिश्रमिक दिया गया। हर समय कारखानों के स्वामियों, प्रबन्धकों एवं नियन्त्रकों की दृष्टि अधिकाधिक लाभ पर केन्द्रित रहती थी। उनकी दृष्टि में कारखानों में कार्यरत मनुष्यों, मशीनों तथा उत्पादों का अपेक्षाकृत कम महत्व था। अस्तु समाज के समस्त वर्ग उत्पादन प्रक्रिया से विमुख हो गये। मनुष्य और मनुष्य को अपना अस्तित्व बनाये रखने एवं सुरक्षा के लिए परम आवश्यकताओं के मध्य वियोजन (विभाजन) के परिणामस्वरूप, मनुष्य अधिकाधिक एकाकी अथवा एकान्तवासी हो गया। कारखाना व्यवस्था के मुख्य आधार के रूप में उद्‌भव के साथ प्रौद्योगिक क्रान्ति का सार रूप में परिणाम मनुष्य का अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु के प्रति पूर्ण विमुखीकरण था।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रसार (Expansion of Science and Technology)

इंग्लैण्ड के अनेक शिल्प-वैज्ञानिक (कुशल शिल्पकार एवं अभियन्ता) विदेशों के आकर्षक वित्तीय लोभ के कारण अन्य देशों में चले गये। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अनेक ब्रिटिश अभियन्ताओं तथा यन्त्रवादियों ने बेल्जियम में मशीन उत्पादन की अपनी दुकानें खोल लीं। तदुपरान्त बेल्जियम से मशीनों को, फ्रान्स, जर्मनी एवं महाद्वीप के अन्य भागों को भेजा। फ्रान्स की क्रान्ति आरम्भ होने से एक दशक पूर्व अनेक मशीनें, उनकी समुचित कार्य पद्धति तथा मशीनों के आकार-चित्र अवैध रूप से इंग्लैण्ड से फ्रान्स ले गये थे। अनेक साहसी एवं उद्यमी फ्रान्सवासी लोहे की प्रगलन पद्धति का अध्ययन करने के लिए इंग्लैण्ड गये और सन् 1781 में विख्यात क्रूजोट वर्क्स (Cruesot Works) स्थापित किया।

इस अवधि में यूरोप के एक अन्य देश बेल्जियम ने इंग्लैण्ड के समान ही विज्ञान और प्रौद्योगिक के क्षेत्र में प्रगति की थी। बेल्जियम में श्रेणी प्रणाली विघटित हो चुकी थी और

देश में लोहा और कोयला प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बेल्जियम ने हालैण्ड, रूस एवं जर्मनी को मशीनें निर्यात कीं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में रूस, स्पेन, इटली तथा स्कैन्डीनेविया क्षेत्र में स्थित देशों में यन्त्रीकरण का सूत्रपात हो चुका था।

जर्मनी में अनेक कारणों से उद्योगों का यन्त्रीकरण विलम्ब से हुआ। जर्मनी अनेक स्वायत्तशसी छोटे-छोटे राज्यों का समूह था। विशाल स्तर पर उद्योगों के उत्पादनों की खपत के लिए जर्मनी के तत्कालीन बाजार पर्याप्त विकसित नहीं थे। उनका आकार बहुत छोटा था। विशाल आकार के बाजारों के लिए अपेक्षित विकसित परिवहन सुविधाओं का अभाव था। जर्मनी में उन्मुक्त पूँजी का भी अभाव था क्योंकि जर्मनी को इंग्लैण्ड के समान लाभप्रद विदेश व्यापार का भी लाभ नहीं मिलता था।

सन् 1820 के उपरान्त जर्मनवासियों ने समस्त देश में रेलवे का निर्माण किया जिससे औद्योगीकरण के क्षेत्र में प्रगति आरम्भ हो गयी। सन् 1870 में जर्मनी को एकीकरण के बाद भौगोलिक लाभ मिला। भौगोलिक दृष्टि से जर्मनी यूरोप के केन्द्र में स्थित है। अस्तु एकीकरण के बाद जर्मनी कच्चे माल एवं बाजारों के लिए समस्त दिशाओं में पहुँच सकता था, जबकि ब्रिटेन, फ्रान्स, इटली, स्पेन और रूस यूरोप महाद्वीप की परिरेखा पर स्थित थे।

उत्कृष्ट शैक्षणिक प्रणाली ने बहुत अंशों तक जर्मन औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। जर्मनी में शिक्षा को केवल अनिवार्य ही नहीं किया गया वरन् पाठ्यक्रम की प्रवृत्ति के अतिरिक्त जर्मनी में सर्वोत्कृष्ट तकनीकी विद्यालय स्थापित किये गये और विज्ञान की उपलब्धियों का समुचित लाभ लेने के लिए सर्वोत्कृष्ट विश्वविद्यालय प्रणाली आरम्भ की गयी।

सीमैन (Siemens) ने डायनिमो का आविष्कार किया था। तदुपरान्त जर्मनी में विद्युतीय उद्योग के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात हुआ। जर्मनवासियों ने सर्वप्रथम सन् 1879 में विद्युत रेलवे का विकास किया एवं अन्य अनेक आविष्कारों में योगदान दिया। इस विद्युतीय उद्योग की संचार व्यवस्था, परिवहन, धातुकर्मीय उद्योग एवं अगणित मशीनों में प्रयुक्त किया गया। समस्त उपकरणों में विद्युत मोटरों का प्रयोग किया गया। यद्यपि ब्रिटेन एवं फ्रान्स के वैज्ञानिकों ने मूलभूत वैज्ञानिक आविष्कार किये थे परन्तु इन आविष्कारों को कुशलतापूर्वक प्रयुक्त करने की अद्भुत क्षमता के परिणामस्वरूप जर्मनी तीन दशक में उल्लेखनीय प्रगति करने में सफल हुआ।

जब जर्मनी के औद्योगीकरण की गति तीव्र हो गयी, ब्रिटेन में प्रचलित हस्तक्षेप न करने की नीति के प्रतिकूल राज्य नियन्त्रण अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुआ। सहस्त्रों प्रशिक्षित रसायनज्ञ बुद्धिवादी श्रमजीवी जर्मनी स्थित विभिन्न उद्योगों के लिए काम कर रहे थे।

अमेरिका ने सन् 1783 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के तत्काल बाद मशीनों का शुभारम्भ किया। सन् 1860 तक वस्त्र, इस्पात एवं जूता उद्योग पूर्णतया स्थापित हो चुके थे। सन् 1870 के उपरान्त अमेरिका में उद्योगों का द्रुतगति से विकास हुआ।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. .... ने अपनी वसीयत में लिखा कि उसको लोहे के बने काफिन में दफनाया जाये—

   (क) विल्किन्सन (ख) आर्कराइट (ग) ग्राहम बेल (घ) जेम्स वाट

2. .... ने ही पफिंग बिल्ली में सुधार किया—

   (क) आर्कराइट (ख) जेम्स वाट (ग) स्टीवेन्सन (घ) माडले

3. सन् .... के उपरान्त बड़े कारखानों में मशीनों के प्रयोग से उत्पादन की मात्रा और उत्पादन की दर में पर्याप्त वृद्धि हुई—

   (क) 1650 (ख) 1700 (ग) 1750 (घ) 1800

4. सन् .... के उपरान्त जर्मनी में भी कारखाना प्रणाली आरम्भ हुई—

   (क) 1825 (ख) 1850 (ग) 1870 (घ) 1890

5. सन् .... तक फ्रान्स मुख्य रूप से ग्रामीण था—

   (क) 1870 (ख) 1900 (ग) 1914 (घ) 1919

6. सन् .... के उपरान्त जर्मनवासियों ने समस्त देश में रेलवे का निर्माण किया—

   (क) 1810 (ख) 1820 (ग) 1830 (घ) 1814

[उत्तर—1. (क), 2. (ग), 3. (ग), 4. (ग), 5. (ग), 6. (ख) ।]

13

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के विभिन्न चरण

[VARIOUS STEPS OF INDUSTRIAL REVOLUTION IN EUROPE]

सोलहवीं शताब्दी से यूरोप में परिवर्तनशील इन्द्रियगोचर परिवर्तन हुए। वाणिज्यवाद, पूँजीवाद, औद्योगीकरण, पुनर्जागरण, धर्म-सुधार एवं भौगोलिक खोजों जैसे कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन थे। इन समस्त परिवर्तनों को किसी निश्चित तिथि से आरम्भ नहीं माना जा सकता है। इनमें से अधिकांश परिवर्तन परस्पर क्रिया स्वरूप हुए थे और इनका सूत्रपात मध्यकालीन युग में दृष्टिगत होता है। अन्य परिवर्तनों के सदृश औद्योगिक क्रान्ति भी किसी निश्चित तिथि एवं निश्चित वर्ष में आरम्भ नहीं हुई। इसके उत्पत्ति ग्रन्थ भी मध्यकालीन युगों में ही निहित थे और इसके विकास को परस्पर क्रियाओं के साथ आधुनिक यूरोप का निर्माण करने वाली शक्तियाँ एवं कारकों ने प्रोत्साहित किया।

यूरोप में घटित परिवर्तनों ने निश्चित रूप से समाज और राजनीति, दोनों व्यवस्थाओं में आलोड़न (विप्लव) किया। ये दोनों ही यूरोप की जनसंख्या के घनत्व को निर्धारित करती थीं। विशेष रूप से यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी से राजनीतिक तनाव एक आवर्ती तथ्य था। निरन्तर तनाव की स्थिति में ही यूरोप की अर्थव्यवस्था का शनैःशनैः कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था से उद्योगप्रधान अर्थव्यवव्था में रूपान्तर हुआ। विद्वान इतिहासकार सामान्यतः ब्रिटेन में अठारहवीं शताब्दी के मध्य से तथा शेष यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी से रूपान्तर मानते हैं।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तत्कालीन कुटीर उद्योग की अवधारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। पिछले अध्याय में हम लिख चुके हैं कि गृहिक उत्पादन प्रक्रिया का स्थान कारखाना प्रणाली ने ले लिया था। मनुष्य ने शक्ति चालित मशीनों का निर्माण आरम्भ कर दिया। व्यापारिक गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इस प्रकार औद्योगिक जीवन में आरम्भ नवीन प्रक्रिया को औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है। विद्वान इतिहासकार जी. डब्ल्यू. साउथगेट अपनी कृति "इंग्लैण्ड का आर्थिक इतिहास" (English Economic History) में लिखते हैं, "औद्योगिक क्रान्ति औद्योगिक प्रणाली में परिवर्तन थी, जिसमें हस्त शिल्प के स्थान पर शक्ति चालित यन्त्रों से काम लिया जाने लगा और औद्योगिक संगठनों

में भी परिवर्तन हुआ। घरों में उद्योग चलाने की अपेक्षा कारखानों में काम होने लगा।" इसी प्रकार समाजशास्त्रों के विश्वकोष में इसकी व्याख्या करते हुए मत व्यक्त किया है, "वह आर्थिक और प्रौद्योगिक विकास, जो अठारहवीं शताब्दी में अधिक सशक्त और तीव्र हो गया था और जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक उद्योगवाद का अभ्युदय हुआ, औद्योगिक क्रान्ति कहलाता है।" इतिहासकार ट्व्यान बी. क्रान्ति शब्द का औचित्य दर्शाते हुए कहते हैं, "अठारहवीं शताब्दी में हुए परिवर्तन इतने पूर्ण थे तथा इतनी शीघ्रता से हुए थे कि उन्हें क्रान्ति की संज्ञा देना उचित है।"

औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने कुछ महत्वहीन देशों को अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित राष्ट्र बना दिया जबकि कुछ प्रतिष्ठित देश, जिनके पास औद्योगीकरण के मूलभूत अनिवार्य अवयवों का अभाव था, महत्वहीन हो गये। सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि औद्योगीकरण ने परम्परागत कठोर सोपानात्मक क्रम में सामाजिक व्यवस्था को विघटित कर दिया और उसके स्थान पर अस्थिर, एवं अनिश्चित और समानतावादी समाज का अभ्युदय हुआ। विद्वान इतिहासकार कैटलबी लिखते हैं, "औद्योगिक क्रान्ति से न तो विशेषाधिकार युक्त वर्ग उत्पन्न हुआ, न इससे निर्धनता आयी और न ही इससे वर्गगत मतभेदों को ही प्रश्रय मिला, किन्तु औद्योगिक क्रान्ति ने निश्चित रूप से ऐसे साधन उत्पन्न कर दिये थे जिनसे कुछ विशेषाधिकार और शक्तियाँ एक वर्ग के हाथों में केन्द्रित हो गयीं। दूसरी ओर ऐसे व्यक्तियों का एक वर्ग था जो धन के लिए अपना श्रम बेचता था, अपने जीविकोपार्जन और दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अथवा पूँजी, आकांक्षाओं, साहस और औद्योगिक प्रशिक्षण के अभाव के कारण अन्य व्यक्तियों की आर्थिक अधीनता में रहने के लिए विवश था।"

यद्यपि ये परिवर्तन इतने अधिक महत्वपूर्ण थे, परन्तु जीवन समस्त जनता के लिए और भविष्य में हर समय के लिए अतीत के जीवन की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं था। धनी और निर्धन के मध्य विषमताएँ पूर्वापेक्षा अधिक स्पष्ट हो गयीं और इनमें अधिक वृद्धि हो गयी। ठीक उस समय जब राष्ट्र और व्यक्ति पूर्वापेक्षा एक-दूसरे पर अधिक आश्रित थे, धन और सम्पत्ति के अधिकाधिक भाग के कारण उत्पन्न प्रतिद्वन्द्विता के परिणामस्वरूप राजनीतिक विप्लव, उपद्रव एवं भीषण रक्तपात हुआ। इसके अतिरिक्त भौतिक सम्पन्नता एवं समृद्धि की प्रबल आकांक्षा ने व्यक्ति को आध्यात्मिक तथा मानव के अन्य अमूर्त एवं अप्रत्यक्ष विषयों से विमुख कर दिया।

आधुनिक काल में औद्योगीकरण शब्द के प्रयोग से हमारा तात्पर्य शक्ति के नवीन स्रोतों (कोयला, पानी, वाष्प, विद्युत, अणुशक्ति, पेट्रोल) से चलित मशीनों द्वारा बहुत अधिक मात्रा में उत्पादन से है। अतीत में ये मशीनें मानव एवं पशुशक्ति से चलती थीं। मध्यकालीन युग में अधिकांश उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन घरों में होता था। भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप निर्यात के उद्देश्य से उत्पादन दर में वृद्धि हुई। अब मध्यकालीन हस्तशिल्प निरन्तर बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते थे। इस स्थिति के परिणामस्वरूप धनी पूँजीपतियों, तथा समृद्ध व्यापारियों का उद्भव हुआ जिन्होंने उत्पादन की समस्त प्रक्रियाओं को अपने हाथ में ले लिया। प्रारम्भ में उन्होंने तत्कालीन प्रचलित साधारण मशीनों

के द्वारा उत्पादन प्रक्रिया से ही काम किया। ये मशीनें मानव अथवा पशु शक्ति अथवा वायु और पानी की प्राकृतिक शक्ति से चलती थीं।

अठारहवीं शताब्दी में इस उत्पादन प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। अनेक यान्त्रिकी आविष्कारों के परिणामस्वरूप विशाल स्तर पर उत्पादन आरम्भ हो गया। वाष्प-शक्ति की प्रयुक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास था। वाष्प शक्ति के माध्यम से कारखानों में विशाल स्तर पर आरम्भ करते हुए परम्परागत घरेलू अथवा लगभग विलुप्त प्रायः पद्धति को समाप्त कर दिया।

इंग्लैण्ड—संयोग से औद्योगीकरण के क्षेत्र में इस विकास का प्रबोधन युग के साथ समन्वय हो गया। प्रबोधन युग की विज्ञान के गहन अध्ययन और द्रुतगति से प्रगति में गहन अभिरुचि थी। विज्ञान सदैव मानव कल्याण तथा चतुर्मुखी प्रगति पर बल देता था। इंग्लैण्ड में औद्योगिक विकास को अनेक तत्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक एवं राजनीतिक अवयवों ने गति प्रदान की।

(1) इंग्लैण्डवासियों का जीवन स्तर यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा ऊँचा था, जिससे उद्योग लाभान्वित हुआ। जनता की क्रय शक्ति अधिक थी और सन् 1750 में कुल जनसंख्या की 15% जनता नगरों में रहती थी और सन् 1800 तक नगर आवासीय जनसंख्या 25% हो गयी थी। परिणामस्वरूप माँग में वृद्धि हुई और इसकी आपूर्ति के लिए उत्पादन वृद्धि पर ध्यान दिया।

(2) ब्रिटेन में खनिज, लौह अयस्क तथा कोयले की खानें आस-पास थीं, अतः इस्पात, मशीनों के निर्माण के लिए अनिवार्य धातु का उत्पादन सुविधापूर्वक हो जाता था।

(3) अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक व्यापक औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित हो चुका था। इन उपनिवेशों से इंग्लैण्ड को कच्चा माल एवं नये बाजार प्राप्त हुए। जी. टी. वाट्स इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "मूलतः हमारे उपनिवेशों ने हमें व्यापक बाजार दिये। हमारी व्यापारिक गतिविधियों पर यूरोपीय देश अथवा उनके उपनिवेश प्रतिबन्ध लगा सकते थे, परन्तु हम अपने उपनिवेशों के साथ इच्छानुसार व्यापार कर सकते थे। यदि हम अन्य देशों के साथ व्यापार नहीं भी करते, केवल अपने उपनिवेशों के साथ ही व्यापार करते तब भी इंग्लैण्ड विश्व का सर्वोच्च व्यापारिक देश होता।"

(4) इंग्लैण्ड का खुले समुद्र पर पूर्ण आधिपत्य था और विश्व के प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर उत्कृष्ट बन्दरगाह थे। परिणामस्वरूप व्यापारिक क्रिया-कलापों को प्रोत्साहन मिला। अन्तोगत्वा उद्योगों का विकास हुआ।

(5) इंग्लैण्ड के निर्यात व्यापार में फ्रान्स के सदृश विलासिता की सामग्री की अपेक्षा जनसामान्य की दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ सम्मिलित थीं। विलासी वस्तुएँ यद्यपि मूल्यवान थीं परन्तु मशीनों द्वारा निर्माण सम्भव नहीं था। विलासी वस्तुओं की माँग और बाजार सीमित होते हैं। इंग्लैण्ड ने जनसामान्य की निरन्तर बढ़ती हुई आवश्यक वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति के लिए अधिकाधिक उत्पादन पर बल दिया।

(6) इंग्लैण्ड में कृषि-दासता तथा श्रेणी व्यवस्था का अन्त हो चुका था और उन्मुक्त समाज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर बल दिया जाता था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उद्योग स्थापित करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र था। इस प्रकार औद्योगिक तथा व्यापारिक गतिविधियों के विकास के लिए वातावरण अनुकूल था।

(7) फ्रान्स की क्रान्ति एवं नैपोलियन के युद्धों ने भी अप्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक क्रान्ति को प्रोत्साहित किया। युद्ध की अवधि में ब्रिटेन को अपनी सेना की ही नहीं वरन् मित्र राष्ट्रों की सेनाओं की आवश्यकताओं की भी आपूर्ति करनी पड़ती थी। अस्तु उत्पादन प्रक्रिया में विकास करके अधिकाधिक उत्पादन किया जाता था। युद्ध की समाप्ति के बाद भी बढ़ती हुई बेकारी की समस्या के निराकरण का एकमात्र उपाय उद्योगों का बहुमुखी विकास ही था।

(8) सन् 1688 की भव्य रक्तहीन क्रान्ति के उपरान्त संसदीय सरकार ने जनभावनाओं को समुचित अभिव्यक्ति प्रदान की एवं आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था पर बल दिया। प्रधानमन्त्री वोलपोल के कुशल प्रशासन से राजनीतिक एवं आर्थिक स्थायित्व में वृद्धि हुई। कोई भी युद्ध इंग्लैण्ड की भूमि पर नहीं हुआ। अस्तु शान्ति और व्यवस्था ने व्यापार एवं उद्योग को प्रोत्साहित किया। विद्वान लेखिका नोवेल लिखती हैं, "ब्रिटेन की राजनीतिक सुरक्षा इतनी अच्छी थी कि पूँजीपति बड़े उद्योगों में पूँजी लगाने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे।"

(9) इंग्लैण्ड में निरन्तर बढ़ते हुए उद्योग एवं व्यापार के अनुरूप अपेक्षित श्रमिकों का अभाव था। सर्वत्र चरितार्थ लोकोक्ति "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" यहाँ भी चरितार्थ होती है। श्रमिकों की माँग की आपूर्ति के लिए नवीन यन्त्रों एवं मशीनों का आविष्कार अति आवश्यक हो गया। परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में आविष्कारों ने उत्पादन प्रक्रिया को गति प्रदान की।

(10) कारखानों में पूँजी निवेश के लिए वाणिज्यवाद के परिणामस्वरूप पर्याप्त संचित सम्पत्ति थी। ब्रिटेन के व्यापारियों ने भारत तथा अन्य उपनिवेशों से व्यापारिक गतिविधियों के द्वारा अत्यधिक लाभांश प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दियों में प्यूरिटन तथा मेथाडिस्ट अनुयायियों ने साधारण जीवन, मितव्ययिता एवं धन संग्रह पर बल दिया था। इस प्रकार संचित धन का उद्योगों में पूँजी निवेश के लिए उपयोग किया गया। नवोचित सम्पन्न व्यापारी तथा महाजन वर्ग उद्योगों तथा वैज्ञानिक अनुसन्धानों में पूँजी निवेश के लिए सहर्ष तत्पर था।

(11) अठारहवीं शताब्दी के अन्त में भयंकर महामारी काली मृत्यु के प्रकोप से लाखों व्यक्ति काल कवलित हो गये। हजारों कृषक जीविकोपार्जन के लिए गाँव छोड़कर नगरों में आ गये। ये लोग अपनी इच्छानुसार विभिन्न व्यवसाय करने लगे। नगरों में श्रेणी प्रणाली शिथिल हो चुकी थी। नवीन प्रशिक्षित शिल्पकारों ने अपने स्वतन्त्र उद्योग स्थापित करना आरम्भ कर दिया।

(12) अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक पूँजीवाद के लिए अनिवार्य समस्त संस्थाएँ ब्रिटिश सरकार स्थापित कर चुकी थी। राष्ट्रीय अधिकृत मुद्रा सन् 1800 से पूर्व ही प्रचलित

थी। सोलहवीं शताब्दी में आर्थिक गतिविधियों पर राज्य का अधीक्षण था। सत्रहवीं शताब्दी में बीमा प्रणाली का शुभारम्भ हो गया था। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में बैंक स्थापित हो चुका था। बैंकिंग प्रणाली के विकास से पूँजीपतियों तथा उद्योगपतियों को ऋण प्राप्त करने तथा धन संचय की सुविधा प्राप्त हो गयी। राष्ट्रीय बैंक राष्ट्रीय ऋणों का प्रवन्ध करती थी और सरकार महाजन के रूप में कार्य करती थी।

(13) ब्रिटिश सरकार की मूलभूत नीति वाणिज्यिक एवं औद्योगिक वर्गों को प्रोत्साहित करने की थी। ब्रिटेन में उद्योगों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से विभिन्न स्थानीय करों तथा सीमा शुल्कों को कम कर दिया था अथवा समाप्त कर दिया गया था। ब्रिटिश सरकार की संरक्षणवादी नीति ने उद्योग और व्यापार दोनों को ही प्रोत्साहित किया।

(14) ब्रिटेन केवल द्वीपों का समूह था, अस्तु यूरोपीय घातक राजनीति से मुक्त था जो उद्योगों के विकास में वरदान सिद्ध हुआ।

कृषि क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति के लिए अपेक्षित श्रमिकों की आपूर्ति की। इसका शुभारम्भ सोलहवीं शताब्दी से हुआ। ब्रिटेन में भूमि की चकवन्दी कर दी गयी। परिणामस्वरूप यत्रतत्र भूमि को एकत्रित कर एक विशाल कृषि क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया गया। परिणामस्वरूप छोटे-छोटे कृषक अपनी भूमि से वंचित हो गये तथा अधिकांश कृषि दासों के पास जीविकोपार्जन का कोई साधन नहीं रहा। इसके अतिरिक्त कारखाना प्रणाली के विकास के कारण नगरों की जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। अतः स्थानीय उपभोक्ताओं की अपेक्षा सामान्य बाजारों की आवश्यकताओं का महत्व बढ़ गया। कृषकों को नगरवासियों की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि करनी पड़ी और कारखानों में अपेक्षित कपास का उत्पादन भी बढ़ाना पड़ा।

अव तक कृषक स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही कृषि करते थे, परन्तु अव कृषि उत्पादन अधिकाधिक लाभ अर्जित करने का स्रोत बन गया था। अस्तु कृषि ने व्यावसायिक एवं वाणिज्यिक स्वरूप ग्रहण कर लिया था। कृषकों ने अधिक लाभार्जन की प्रबल आकांक्षा से प्रेरित होकर कृषि कार्यों में पूँजी निवेश करना आरम्भ कर दिया था। अस्तु अधिकाधिक वैज्ञानिक साधनों एवं उन्नत औजारों का प्रयोग आरम्भ हो गया। कृषि के क्षेत्र में पूँजी निवेश से कृषि के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।

सर्वप्रथम यार्कशायर के धनी जमींदार जेथ्रोटल ने बीज बोने के लिए 'ड्रिल' नाम के यन्त्र का निर्माण किया। इससे उचित मात्रा में तथा निश्चित पंक्तियों में बीज बोने के कार्य को सहज ढंग से किया जा सकता था। एक अन्य सम्पन्न जमींदार टाउनशैण्ड ने कृषकों को परिवर्तनशील फसलों के लाभों की व्याख्या की। गेहूँ, शलजम, जौ और क्लोवर (बनमैथी) को क्रमानुसार बो कर भूमि की उर्वरता बनाये रखने की नवीन पद्धति की खोज की। इस पद्धति से प्रत्येक बार एक-तिहाई भूमि परती छोड़ने की आवश्यकता नहीं रही और प्रति एकड़ उत्पादन भी दुगुना हो गया। इसके अतिरिक्त पशुओं के लिए चारा भी पर्याप्त मात्रा में मिलने लगा।

सन् 1770 के निकट राबर्ट बैकवेल ने पशुपालन को लाभप्रद व्यवसाय बना दिया। उसने भेड़ों तथा गायों की नस्लों में सुधार के लिए अनेक सफल प्रयोग किये। वैज्ञानिक प्रजनन पद्धति के प्रयोग के माध्यम से पूर्वापेक्षा तिगुनी भार की भेड़ें पैदा करने में सफलता अर्जित की। इस प्रकार वह पशुओं को अधिक दूध तथा माँस प्रदान करने वाला तथा भेड़ों को पूर्वापेक्षा अधिक ऊन देने वाली बनाने में सफल रहा। बैकवेल की पद्धति को चार्ल्स कोलिंग ने संशोधित तथा परिष्कृत करके भेड़ों की एक नई नस्ल तैयार की।

सम्पन्न कृषक आर्थर यंग ने अपने देश के अतिरिक्त आयरलैण्ड और फ्रान्स आदि देशों की व्यापारिक यात्रा की और वहाँ प्रचलित कृषि पद्धतियों का गहन अध्ययन किया। उसने नयी खेती के अन्तर्गत छोटी-छोटी कृषि भूमि को सम्मिलित करके दीर्घकाय कृषि क्षेत्र बनाने और उसके लाभों की विस्तृत व्याख्या की। छोटी कृषि भूमि में काफी भूमि बेकार पड़ी रहती थी तथा कृषि यन्त्रों का समुचित प्रयोग भी सम्भव नहीं होता था। उसने अपने विचारों एवं निष्कर्षों के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के लिए अनेक लेख एवं पुस्तकें लिखीं तथा 'कृषि का इतिहास' नामक पत्रिका भी प्रकाशित की।

वैज्ञानिक पद्धति से कृषि के लिए छोटी-छोटी कृषि भूमि को दीर्घकाय कृषि क्षेत्र में परिवर्तित करने तथा उसके चारों ओर बाड़ लगाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सन् 1792 से सन् 1815 की अवधि में 956 बाड़ बन्दी अधिनियम (Enclosure Acts) पारित किये। परिणामस्वरूप एक लाख एकड़ भूमि की बाड़ बन्दी सम्भव हो गयी। बाड़ बन्दी से कृषि उत्पादन में निश्चित रूप से अपेक्षित वृद्धि हुई परन्तु निर्धन कृषकों के लिए बहुत घातक सिद्ध हुई। अनेक छोटे-छोटे कृषक अपनी कृषि भूमि से वंचित होकर श्रमिकों की कोटि में आ गये। निर्धन कृषक भूमि से वंचित होने के उपरान्त जीविकोपार्जन हेतु नगरों में आकर कारखानों में श्रमिक के रूप में काम करने लगे। अस्तु औद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रमिकों का अभाव बहुत अंशों तक समाप्त हो गया।

सन् 1840 तक कृषकों को रासायनिक खाद के विषय में कोई ज्ञान नहीं था और वे परम्परागत खाद का ही कृषि भूमि में प्रयोग करते थे। इसी वर्ष जर्मनी के विख्यात रसायनशास्त्री जस्टन वान लीबिंग ने यथार्थ में कृषि क्षेत्र में क्रान्ति कर दी। उसने विचार व्यक्त किया कि पौधों का आधारभूत भोजन पोटाश, नाइट्रोजन तथा फास्फोरस है। इन तीनों के सम्मिश्रण को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरता में बहुत वृद्धि हो जाती है। तदुपरान्त व्यापक स्तर पर उर्वरकों का प्रयोग होने लगा। परिणामस्वरूप उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

सन् 1750 में इंग्लैण्ड और वेल्स की अनुमानित जनसंख्या 65 लाख थी। जो बढ़कर सन् 1851 में एक करोड़ 80 लाख हो गयी। निरन्तर जनसंख्या में उल्लेखनीय वृद्धि, उद्योगों के लिए अपेक्षित कृषि उत्पादों तथा अधिकाधिक श्रम बचाने की आवश्यकताओं ने कृषि क्षेत्र में मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया। अमेरिका में वेतन भोगी श्रमिकों के अभाव ने भी प्रबुद्ध व्यक्तियों का इस ओर ध्यान आकर्षित किया। सन् 1834 में साइरस एवं मैक कोरमिक ने फसल काटने वाली मशीन का आविष्कार किया। तदुपरान्त एप्पल बाई ने इस मशीन में बटोरने वाले दो बाइण्डर जोड़कर इसे अत्यधिक उपयोगी बना दिया।

कालान्तर में वाष्पशक्ति चालित, विद्युत चालित एवं पेट्रोल चालित मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा।

कृषि उत्पादनों में वृद्धि का औद्योगिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध था। कृषि क्षेत्र में विभिन्न परिवर्तनों से भोजन की पौष्टिकता में वृद्धि हुई। जड़ वाली सब्जियों के उत्पादन से पशुओं को पूरे साल चारा सुलभ हो गया और ताजा माँस भी प्राप्त होने लगा। जन सामान्य के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। श्रमिकों की माँग, पौष्टिक भोजन से स्वास्थ्य में उन्नति, चिकित्सा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति, शिशु मृत्यु दर में ह्रास, महामारियों के प्रकोप में कमी, दुर्भिक्षों की समाप्ति से जनसंख्या में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप माँग बढ़ी जिससे अन्ततोगत्वा उद्योगों को प्रोत्साहन मिला।

अनेक यान्त्रिक आविष्कारों के शुभारम्भ से औद्योगीकरण के प्रथम चरण का सूत्रपात हुआ। सन् 1733 में जॉन के ने फ्लाइंग शटल का आविष्कार किया जिससे एक जुलाहा 10 व्यक्तियों के सूत का कपड़ा बुन सकता था। सन् 1764 में जेम्स हरग्रीव्ज द्वारा आविष्कृत 'स्पिनिंग जैनी' के द्वारा एक साथ सूत के आठ धागे काते जा सकते थे। सन् 1769 में रिचर्ड आर्कराइट ने स्पिनिंग जैनी में संशोधन करके जलशक्ति से चालित 'वाटरफ्रेम' नाम के नये सूत कातने वाले यन्त्र का आविष्कार किया। अनेक विद्वान औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात सन् 1769 से मानते हैं। विख्यात इतिहासकार फिशर लिखते हैं, "आर्कराइट के आविष्कार ने महान् सूती वस्त्र उद्योग की आधारशिला रखी और कारखाना व्यवस्था को जन्म दिया। सैम्युल क्राम्पटन ने स्पिनिंग जैनी एवं वाटरफ्रेम दोनों के प्रौद्योगिक ज्ञान को समन्वित करके सन् 1779 में 'म्यूल' (खच्चर) नाम की नई मशीन का आविष्कार किया। इससे महीन सूत सुगमतापूर्वक काता जा सकता था और सूत कातने की गति में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। सूत कातने की मशीनों में अनेक सुधारों के परिणामस्वरूप कपड़ा बुनने की मशीन में भी सुधार आवश्यक हो गया। इस आवश्यकता से प्रेरित होकर एडमण्ड कार्टराइट ने सन् 1785 में शक्ति चालित करघे का आविष्कार किया। यह करघा जलशक्ति तथा वाष्पशक्ति दोनों से चल सकता था। इस मशीन से निर्मित उत्तम कोटि का कपड़ा अपेक्षाकृत सस्ता हो गया। कालान्तर में समस्त कारखानों में इस मशीन का प्रयोग किया जाने लगा।

इन मशीनों के आविष्कार से कपास की माँग में भी वृद्धि हो गयी। सन् 1793 में अमेरिका के एक शिक्षक ऐली ह्विट्ने ने काटन जिन नाम की कपास ओटाने की मशीन का आविष्कार किया। यह मशीन 50 व्यक्तियों के समान काम करती थी और कपास को बिनौली से बहुत द्रुतगति से अलग करती थी। आविष्कारों का क्रम उन्नीसवीं शताब्दी में निरन्तर चलता रहा। सन् 1825 में रिचर्ड राबर्ट्स ने सर्वप्रथम स्वचालित बुनाई की मशीन का आविष्कार किया। सन् 1846 में अमेरिकावासी एलियास होव ने सिलाई मशीन का आविष्कार किया।

आर्कराइट का वाटरफ्रेम बहुत विशाल एवं व्ययशील था। इसको केवल खुले मैदान में ही लगाया जा सकता था। वाष्पशक्ति चालित सुगम और सहज मशीन के आविष्कार पर निरन्तर काम हो रहा था। ब्रिटिश नागरिक टामसन्योकोमेन ने खानों से पानी निकालने के लिए वाष्प इंजिन का आविष्कार किया था, परन्तु इसमें ईंधन का व्यय बहुत अधिक था।

इसका भार भी बहुत अधिक था, अस्तु इसको सुविधापूर्वक हर स्थान पर लगाया भी नहीं जा सकता था। सन् 1769 में जेम्स वाट ने उपलब्ध इंजिन में समुचित सुधार करके इसके दोषों का निराकरण कर दिया। जेम्स वाट के इंजिन में व्यय बहुत कम था और अन्य की अपेक्षा अधिक उपयोगी था। जेम्स वाट ने एक उद्योगपति के सहयोग से सन् 1775 में इंजिन बनाने का कारखाना स्थापित किया और समस्त सूती कपड़ा कारखानों में इस इंजिन का प्रयोग होने लगा।

प्रारम्भ में वाष्प इंजिन का सम्बन्ध खनिज कोयले और लोहे से था। नई मशीनों के निर्माण के लिए इस्पात की आवश्यकता थी। लौह अयस्क को द्रवित करके इस्पात बनाने की पद्धति अत्यधिक प्राचीन, श्रम साध्य एवं व्ययशील थी। लौह अयस्क को द्रवित करने के लिए लकड़ी के कोयले का प्रयोग किया जाता था, लेकिन लकड़ी के कोयले का सुरक्षित भण्डार दिन-प्रतिदिन कम हो रहा था। सन् 1750 के निकट यह ज्ञात हुआ कि पत्थर के कोयले का प्रयोग अधिक लाभदायक था। इससे लौह अयस्क को द्रवित करके स्वच्छ करना सुगम हो गया। परिणामस्वरूप पत्थर के कोयले के खनन में भी प्रगति हुई। लेकिन कोयले का खनन करते समय खानों में पानी एकत्र होने की विकट समस्या थी। खानों का पानी निकालने के लिए ही न्यूकोमेन ने वाष्प चालित इंजिन का आविष्कार किया था। वाष्प इंजिन में इस्पात एवं कोयले की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती गयी। सन् 1784 में हेनरी कोर्ट ने उत्तम कोटि का शुद्ध इस्पात बनाने की विधि का आविष्कार किया। इस्पात उत्पादन में सुधार के परिणामस्वरूप वाष्प इंजिनों में भी अपेक्षित सुधार हुआ। इस प्रकार की परस्पर क्रिया अब तक चल रही है। इस प्रकार औद्योगिक युग का सूत्रपात हुआ।

व्यापारिक एवं औद्योगिक गतिविधियों के विकास के साथ परिवहन साधनों का विकास भी आवश्यक हो गया था। स्काटलैण्डवासी मकाडम (सन् 1756-1836) ने सड़क निर्माण की नई पद्धति की खोज की। नवीन पद्धति के अनुसार सबसे नीचे भारी पत्थरों की पर्त, उसके ऊपर छोटे पत्थरों की पर्त लगायी जाती थी। तदुपरान्त उस पर तारकोल की पर्त लगायी जाती थी। ये सड़कें भारी वाहनों के लिए अत्यधिक मजबूत एवं उपयोगी सिद्ध हुईं। इसके बाद कनाडा एवं संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में भी इसी पद्धति से सड़कों का निर्माण कार्य हुआ। सड़क निर्माण की इस पद्धति का आज भी प्रयोग हो रहा है।

भारी सामान के परिवहन पर बहुत व्यय होता था। अस्तु ब्रिटिश सरकार ने नहरों के निर्माण का निश्चय किया। ब्रिज वाटर के ड्यूक (एक कोयला खदान स्वामी) ने जेम्स ब्रिन्डले नाम के एक अभियन्ता को नहर निर्माण का दायित्व दिया। सन् 1761 में ब्रिज वाटर नहर के निर्माण के बाद माल परिवहन पर व्यय पूर्वापेक्षा आधा रह गया। कालान्तर में इंगलैण्ड के अनेक प्रमुख नगर नहरों के माध्यम से परस्पर सम्बद्ध कर दिये गये। इससे भारी वस्तुओं का परिवहन सस्ता और सुविधाजनक हो गया। सन् 1869 में फ्रान्स के अभियन्ता फर्डिनेन्ड द लैस्पैस (Ferdinand de Lessepes) ने भूमध्य सागर एवं लाल सागर को जोड़ने वाली स्वेज नहर का निर्माण कार्य पूर्ण कराया। इस नहर के निर्माण से यूरोप और भारत के मध्य दूरी पूर्वापेक्षा एक-तिहाई रह गयी।

सन् 1807 में अमेरिकावासी राबर्ट फुल्टन ने प्रथम वाष्प शक्ति चालित नौका का आविष्कार किया। जब फुल्टन निर्मित प्रथम वाष्पशक्ति चालित नौका "क्लैमोन्ट" ने हडसन नदी में यात्रा आरम्भ की, कुछ व्यक्तियों ने उसका उपहास किया और इस नौका को "शैतान का औजार" की संज्ञा प्रदान की। तदुपरान्त वाष्पशक्ति चालित विशाल मालवाहक जलयानों का निर्माण हुआ। प्रथम वाष्पशक्ति चालित जलयान सिरिअस ने सन् 1838 में 18 दिन में एटलान्टिक महासागर की यात्रा की थी। सन् 1850 के निकट वाष्प चालित नौकाओं में पैडल व्हील के स्थान पर स्क्रू प्रोपलर का प्रयोग किया गया। इससे उनकी गति पर्याप्त तीव्र हो गयी।

सन् 1814 में जार्ज स्टीवेन्सन ने वाष्प चालित रेल इंजिन 'राकेट' का आविष्कार किया। इसके परिणामस्वरूप मेनचेस्टर और लिवरपूल के मध्य प्रथम रेलगाड़ी सन् 1830 में चली। माल से भरे डिब्बों की रेलगाड़ी ने 29 मील प्रति घंटा की गति से यात्रा करके विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। रेलों के माध्यम से कोयला, लोहा एवं अन्य औद्योगिक उत्पादनों का कम समय में और कम व्यय पर परिवहन सहज तथा सुगम हो गया।

सन् 1880 के निकट गैसोलीन अर्थात् पेट्रोल इंजिन के आविष्कार ने परिवहन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। प्रारम्भ में पेट्रोल इंजिन का प्रयोग मोटर लाँच, मोटर बग्घी और साइकिल में किया गया। इसकी सफलता से प्रेरित होकर अमेरिका में अनेक उद्यमी उद्योगपतियों ने मोटर निर्माण के कारखाने स्थापित किये। अमेरिका के विख्यात उद्यमी उद्योगपतियों ने सस्ते मूल्य की मोटरों का निर्माण किया। तदुपरान्त फ्रान्स, जर्मनी और इंग्लैण्ड में भी मोटर निर्माण के कारखाने स्थापित किये गये। सन् 1839 में चार्ल्स गुडइयर ने रबड़ की वल्कनीकरण पद्धति की खोज की जिससे रबड़ कठोर हो जाती है। रबड़ के टायरों से यात्रा सुखद तथा आरामदायक हो गयी।

इंग्लैण्ड में, जन्मान्ध रोलैण्ड हिल ने एक व्यापक व्यवस्था का सूत्रपात किया। इसके अन्तर्गत एक पेंस मूल्य के टिकट के द्वारा कोई भी पत्र ब्रिटेन के किसी भी भाग में भेजा जा सकता था। अन्य देशों ने इस व्यवस्था को शीघ्र ही ग्रहण कर लिया। सन् 1844 में सैम्युल मौर्स ने व्यावहारिक तार-यन्त्र का आविष्कार किया। शीघ्र ही विश्व के महाद्वीपों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तार-यन्त्र के सिद्धान्त का व्यापक प्रयोग किया गया। पैनीगेस्ट के शुभारम्भ ने व्यापारियों तथा व्यक्तियों की समान रूप से सहायता की। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ब्रिटिश चैनल में अन्तर्जलीय तार-यन्त्र (Submarine Cable) बिछाया गया। सन् 1851 में प्रसिद्ध प्रदर्शनी का आयोजन करके ब्रिटेन ने उद्योगों के नेतृत्व का उत्सव मनाया। उत्तरी अमेरिका और यूरोप के मध्य, एटलान्टिक केबल, अन्तर्जलीय तार यन्त्र के अन्तर्गत बिछाया गया। अमेरिकावासी साईरस फील्ड ने सन् 1866 में इसका निर्माण किया था। सन् 1876 में ग्राहम बेल ने टेलीफोन का आविष्कार किया। इसने औद्योगिक क्रान्ति को नवीन शक्ति प्रदान की। इस प्रकार विभिन्न अवयवों ने औद्योगिक क्रान्ति की सफलता में अभूतपूर्व योगदान दिया।

फ्रान्स—नैपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली के अन्तर्गत पूँजीवाद के विकास हेतु उसके समस्त अवयवों जैसे राष्ट्रीय मुद्रा की स्थापना, आर्थिक गतिविधियों पर राज्य का नियन्त्रण,

बीमा योजना, राष्ट्रीय ऋण का प्रबन्ध करने वाले राष्ट्रीय बैंक की स्थापना, एवं बैंक का राज्य के महाजन के रूप में दायित्व आदि विकास कार्य फ्रान्स में पहले ही हो चुके थे। ब्रिटिश उत्पादनों के यूरोप में आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। अस्तु फ्रान्स अपने उद्योगों एवं अपनी प्रौद्योगिकी के विकास के लिए बाध्य था, परन्तु फ्रान्स में पूँजीवादी भावना एवं इसके लिए अपेक्षित संस्थानात्मक संरचना के विकास में विलम्ब हो गया था। इन दुर्बलताओं के अतिरिक्त फ्रान्स ब्रिटेन के सदृश विदेशी हस्तक्षेप से भी मुक्त नहीं था। फ्रान्स में उत्साही, साहसी, निष्ठावान तथा समर्पित उद्यमी मध्यम वर्ग का भी अभाव था। इन तथ्यों के अतिरिक्त फ्रान्स में कुछ स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ थीं, जिनके कारण पूँजीवादी व्यवस्था का अठारहवीं शताब्दी में विकास हो गया, परन्तु पूँजीवाद पर आधारित विशाल स्तरीय उद्योगों का विकास नहीं हो सका। प्राचीन विलुप्त प्राय: औद्योगिक प्रक्रियाओं का अब भी प्रभुत्व था और अतीत की शिल्प श्रेणियाँ कार्य कर रही थीं।

फ्रान्स के श्रमिक वर्ग में औद्योगीकरण के प्रति अभिरुचि एवं उत्साह का अभाव था। सामान्यतः फ्रान्स के श्रमिक स्वभाव से अपने ग्रामीण उन्मुक्त वातावरण एवं सीमित आवश्यकताओं से सन्तुष्ट रहते हैं। अपने ग्रामों से नगरों में स्थित कारखानों में काम करने वाले श्रमिक अत्यधिक हठधर्मी, दुराग्रही एवं अनुशासनहीन थे। उनकी तकनीकी कुशलता भी सामान्य स्तर की थी। औद्योगिक कारखानों में कार्यरत कुल श्रमिकों में 3/4 का अपने ग्रामों से पूर्ववत् घनिष्ठ सम्बन्ध था। फ्रान्स के औद्योगिक श्रमिक अब भी अपने ग्रामों में भू-स्वामी थे। इस प्रचलित भू-स्वामित्व की पद्धति के कारण औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए श्रम आपूर्ति की स्थिति लगभग स्थिर रहती थी। इसके अतिरिक्त फ्रान्स ने अपने विभिन्न उद्योगों का निर्दिष्ट निर्देशों तथा सर्वमान्य स्वीकृति पद्धतियों के अनुरूप विकास नहीं किया। फ्रान्स में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध लौह अयस्क का समुचित प्रयोग करने के लिए अपेक्षित रेलवे का विकास नहीं हुआ था। औद्योगिक विकास के लिए अनिवार्य खनिज कोयले का फ्रान्स में बहुत अभाव था।

फ्रान्स के राजनीतिक तत्व, ब्रिटेन के सदृश पूँजीवादी व्यवस्था के समुचित विकास में सहायक होने की अपेक्षा अवरोधक अधिक थे। फ्रान्स के इतिहास से स्पष्ट ज्ञात होता है कि फ्रान्स में सन 1789 से सन् 1871 तक निरन्तर राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति बनी रही। फ्रान्स चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था और यूरोपीय राष्ट्रों के प्रायः आक्रमण होते रहे। अधिकांश समय भीषण विनाशकारी युद्धों में व्यस्त रहा, जिसमें धन-जन की अपार क्षति हुई। औद्योगिक विकास के लिए आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था तथा पड़ोसी देशों के साथ मधुर सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध अति आवश्यक हैं लेकिन फ्रान्स में दोनों का ही अभाव था। फ्रान्स में आन्तरिक अशान्ति और अराजकता तथा बाह्य आक्रमणों और निरन्तर युद्धों के कारण आर्थिक व्यवस्था अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो चुकी थी। अस्तु पूँजीपतियों को अर्थव्यवस्था के पुनरुद्धार का विश्वास नहीं था और वे आर्थिक विकास के लिए पूँजी निवेश करने में संकोच करते थे।

फ्रान्स में पूँजीवाद के विकास के लिए अपेक्षित तथा सहायक संस्थानात्मक संरचना का भी सन्तोषजनक स्थिति तक विकास नहीं हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी में घरेलू पूँजी निवेश का अधिकांश भाग विदेशों में मैक्सिको तथा इण्डो-चीन के उद्योगों में निवेशित कर

दिया गया था। सन् 1789 से पूर्व विकृत कर प्रणाली ने पूँजी के संचय की प्रवृत्ति को गहरा आघात पहुँचाया था। बैंकिंग प्रणाली भी सुव्यवस्थित, सुगठित तथा अनुशासित नहीं थी।

विभिन्न अवरोधक कारकों के उपरान्त भी फ्रान्स ने विभिन्न कोटि के आकर्षक, मनमोहक, सुरुचिपूर्ण तथा परिष्कृत कलात्मक उत्पादनों के द्वारा पूँजीवादी औद्योगिक युग को महत्वपूर्ण योगदान दिया था। विभिन्न कोटि के सुरुचिपूर्ण आकर्षक तथा परिष्कृत नवीनतम उत्पादनों के लिए अधिमूल्य देने में समर्थ उपभोक्ता प्रायः फ्रान्स के श्रेष्ठ रेशमी, ऊनी एवं सूती परिधानों की ओर ही आकर्षित होते थे। महिला भूषाचार (फैशन), विभिन्न कोटि की मदिरा, सुगन्धित पदार्थों तथा उत्कृष्ट शिल्पकला की वस्तुओं के क्षेत्र में फ्रान्स अग्रणी था। फ्रान्स के औद्योगिक उत्पादनों का अति विशिष्ट गुण फ्रान्सवासियों के अपने विभिन्न उत्कृष्ट सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति पूर्ण समर्पण तथा अगाध स्नेह का प्रतीक है। इसकी आर्थिक परिप्रेक्ष्य में समीचीन व्याख्या करना सम्भव नहीं है। फ्रान्स में औद्योगिक क्षेत्र में तुलनात्मक दृष्टि से पिछड़ेपन अथवा औद्योगिक प्रगति में विलम्ब का कारण यान्त्रिक आविष्कारों के क्षेत्र में क्षमता, तथा रुचि का अभाव अथवा असमर्थता नहीं थी। फ्रान्सवासियों में निःसन्देह विशाल स्तरीय उद्योगों के लिए अपेक्षित तकनीकी ज्ञान एवं दृष्टिकोण का अभाव नहीं था। फ्रान्स की आधुनिक वैमानिकी एवं परमाण्विक उद्योग उपर्युक्त तथ्य के स्पष्ट प्रमाण हैं। अमेरिका ने विशाल स्तर पर बन्दूकों के उत्पादन का ज्ञान फ्रान्स से ही प्राप्त किया था। अमेरिका के प्रारम्भिक अभियान्त्रिकी विद्यालयों की पाठ्य पुस्तकें फ्रेन्च भाषा की पाठ्य पुस्तकों का अनुवाद थीं। फ्रान्स में आर्थिक विकास मन्दगति से हुआ। सन् 1850 में सर्वोत्कृष्ट कोयला खानें बेल्जियम के पास चली गयीं, परन्तु शताब्दी के मध्य में ढलवाँ लोहे में वृद्धि हो गयी, परन्तु ब्रिटेन की तुलना में यह केवल 1/4 था। फ्रान्स की जनसंख्या ने शहरीकरण को स्वीकार नहीं किया। अतः कृषि मुख्य व्यवसाय बना रहा।

जर्मनी—यूरोप के शेष भागों में औद्योगीकरण की प्रक्रिया विलम्ब से आरम्भ हुई। जर्मनी के अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजन ने सन् 1870 में एकीकरण तक आर्थिक विकास को स्थगित रखा। रूस, इटली और आस्ट्रिया पूर्णतया कृषि प्रधान देश थे। सन् 1870 के निकट ही कच्चे माल की उपलब्धता के कारण इटली के उत्तरी भाग में मुख्य रूप से औद्योगीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई।

सन् 1870 में जर्मनी के एकीकरण के उपरान्त देश में द्रुतगति से आर्थिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास हुआ। जर्मनी ने सर्वप्रथम औद्योगिक प्रक्रियाओं के विकास के लिए अर्जित वैज्ञानिक ज्ञान का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया। जर्मनी ने पहली बार अनेक तकनीकी विद्यालय और अभियान्त्रिकी संस्थान स्थापित किये। इन शैक्षणिक संस्थाओं के प्रशिक्षित कुशल व्यक्तियों ने द्रुतगति से औद्योगीकरण अथवा विशाल स्तर पर उत्पादन के लिए जर्मनी को समर्थ एवं सक्षम किया। इसमें बहुत अधिक मात्रा में पूँजी निवेश किया गया।

नवोदित सजग जर्मनी की सरकार ने देश में द्रुतगति से औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। जर्मन सरकार ने उद्योगों के लिए सुरक्षावादी नीति का अनुसरण किया तथा घरेलू उद्योगों के विकास के लिए यथेष्ट सहायता दी।

जर्मनी में पूँजीवादी उद्योग के द्रुतगति से विकास को औद्योगिक विकास के विभिन्न चरणों की कष्टसाध्य यात्रा नहीं करनी पड़ी। जर्मनी में औद्योगिक विकास प्रक्रिया में पूँजी संचय, निम्न स्तर पर पूँजी निवेश तथा अन्ततोगत्वा विशाल स्तर पर पूँजी निवेश की स्थिति कभी नहीं आयी। जर्मनी में प्रथम दो चरणों को छोड़ते हुए सीधे वित्तीय पूँजी का विकास हुआ। जर्मनी में उत्पादक संघों के आविर्भाव से सम्पत्ति का अधिकाधिक संचय हुआ। पूँजीवादी संरचना की गौण संस्था अग्नि बीमा योजना का सर्वप्रथम सूत्रपात करके यूरोपीय देशों का अग्रणी बन गया।

औद्योगिक स्रोतों में जर्मनी धनी और सम्पन्न था। इन स्रोतों ने जर्मनी के द्रुतगति से औद्योगीकरण एवं पूँजीवादी व्यवस्था की परिपक्वता में अपूर्व सहायता की। "रक्त और लोहे पर नहीं वरन् कोयले और लौह पर जर्मन साम्राज्य की आधारशिला रखी गयी थी।"

सन् 1830 में रेलवे के शुभारम्भ ने यूरोप महाद्वीप की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार किया। इस दृष्टि से ब्रिटेन ने यूरोप का नेतृत्व किया। नैपोलियन ने जर्मनी तथा नीदरलैण्ड तक पहुँचने के लिए राजमार्ग बनवाकर परिवहन साधनों में सुधार किया था। पूर्वी यूरोप में पक्की सड़कों का अभाव था।

ब्रिटेन में वाणिज्यिक दृष्टि से प्रथम रेलवे का शुभारम्भ सन् 1825 में हुआ था। फ्रान्स में पहली रेल यात्रा का उद्घाटन सन् 1837 में हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक फ्रान्स में 2,000 मील लम्बी और जर्मनी में 3,000 मील रेल पटरियाँ थीं। आस्ट्रिया में 1,000 मील लम्बी रेल पटरी थी, लेकिन रूस और इटली में छोटे-छोटे टुकड़ों में रेल पटरियाँ थीं।

इस विकास का यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था पर गहन लाभप्रद प्रभाव हुआ। रेल प्रणाली ने सहस्त्रों व्यक्तियों को जीविकोपार्जन का साधन ही नहीं दिया वरन् पूँजी निवेश के अवसर प्रदान किये तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तीव्र किया। रेलवे के अतिरिक्त ब्रिटेन ने नौ-परिवहन उद्योग में भी विश्व का नेतृत्व किया। सन् 1840 में गनरड ने पहली ट्रान्स-अटलान्टिक नौ-परिवहन सेवा का शुभारम्भ किया।

सन् 1850 तक पश्चिमी एवं मध्य यूरोप में औद्योगीकरण की प्रक्रिया लगभग उपेक्षित ही रही। आस्ट्रिया और रूस मुख्य रूप से कृषि प्रधान ही रहे। इन देशों में सामन्तवादी प्रथा अब भी प्रचलित थी। अस्तु उन्मुक्त श्रमिकों की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति सम्भव नहीं थी। यूरोप महाद्वीप के अतिरिक्त केवल अमेरिका में औद्योगीकरण के लक्षण दृष्टिगत होते हैं। सन् 1850 तक इंग्लैण्ड के अधिकांश भागों में विभिन्न उद्योग स्थापित हो चुके थे। अमेरिका स्थित विभिन्न उद्योगों का कुल उत्पादन फ्रान्स और इंग्लैण्ड की अपेक्षा बहुत कम था। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक अमेरिका और जर्मनी दोनों ही विश्व के प्रमुख औद्योगिक देश बन गये।

औद्योगीकरण के व्यापक विस्तार और प्रसार के साथ मानव पीड़ा एवं कष्टों में भी वृद्धि हुई। औसत कार्य दिवस 12 से 16 घण्टों के मध्य होता था। कारखानों और खदानों की कठोर सेवा शर्तों के कारण महिलाएँ एवं बच्चे सर्वाधिक पीड़ित थे। अत्यधिक संशोधित एवं परिष्कृत मशीनों के शुभारम्भ के साथ बेकारी भी बढ़ी और श्रमिकों के कष्टों तथा पीड़ाओं

में भी वृद्धि हुई। ब्रिटेन और यूरोप महाद्वीप में श्रमिकों की दयनीय स्थिति, वेदनाओं तथा पीड़ाओं की हृदयस्पर्शी गाथाओं का कोई अन्त नहीं था।

श्रमिक वर्ग की दयनीय स्थिति के प्रति मध्यमवर्ग का दृष्टिकोण सर्वथा उपेक्षापूर्ण था। आधुनिक औद्योगीकरण के पथ प्रदर्शक एवं नायक अत्यधिक कठोर, हृदयहीन निर्मम एवं पाषाण हृदयी थे। उनकी जीवन शैली ने उनका दृष्टिकोण इस प्रकार का बना दिया था। उद्योग के क्षेत्र में अनेक व्यक्तियों ने प्रयास किया। उनमें से कुछ ही सफल हुए। अन्य अनेक असफल हो गये। देशों के दिवालियेपन ने प्रारम्भिक उद्योगवाद का मार्ग प्रशस्त किया। अर्थव्यवस्था का गरज के साथ विस्फोट हुआ। युद्धों ने बाजार बन्द कर दिये, मशीनें नष्ट हो गयीं अथवा द्रुतगति से अप्रचलित हो गयीं। पुरातन व्यवस्था के कृषक समर्थकों ने मध्यमवर्ग के आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभुत्व के प्रयासों के विरुद्ध दृढ़ता तथा साहस के साथ संघर्ष किया।

ऐसी स्थिति में मध्यमवर्ग ने उदारवादी सिद्धान्तों एवं आदर्शों का विकास किया। इस सिद्धान्त के प्रति आस्था और विश्वास ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सामाजिक सुधारों के समस्त प्रयासों को अवरुद्ध किया। सुधार के अभाव ने श्रमिकों के विभिन्न आन्दोलनों तथा विरोधों को प्रोत्साहित किया। मार्क्सवाद श्रमिक विरोधों में सर्वाधिक प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण था।

अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटेन में आरम्भ औद्योगिक क्रान्ति की प्रक्रिया सन् 1850 तक यूरोप के अन्य देशों बेल्जियम, फ्रान्स, जर्मनी और स्विट्ज़रलैण्ड तक पहुँच चुकी थी और सन् 1900 तक इस प्रक्रिया का रूस, इटली तथा स्वीडन में भी व्यापक प्रसार हो चुका था। सी.एम. सिपोला लिखते हैं, "औद्योगिक क्रान्ति के सदृश इतिहास की अन्य कोई क्रान्ति, इतनी अधिक क्रान्तिकारी नहीं है।"

इस अवधि में कुछ निश्चित नकारात्मक एवं सृजनात्मक प्रेरक तत्वों ने प्रोत्साहित किया था। नकारात्मक तत्वों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समय-समय पर वाणिज्यिक संकट थे। इन संकटों ने अकुशल एवं अलाभकारी उद्यमों में निहित दोषों के निराकरण हेतु समुचित उपाय करने के लिए बाध्य किया और सामान्य सीमा-शुल्क कम किये गये। सीमा-शुल्क में कमी ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित किया और विशिष्टीकरण के लिए सर्वाधिक शक्तिशाली ढंग से प्रेरित किया। चार मुख्य सृजनात्मक प्रेरक तत्व रेलवे का द्रुतगति से विकास, ऊर्जा और कच्चे माल के स्रोतों की अपेक्षाकृत अधिक उपलब्धता, सोने की खोजों द्वारा मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि और कागज की मुद्रा का अपेक्षाकृत अधिक प्रचलन थे। कागज की मुद्रा के प्रचलन के परिणामस्वरूप ब्याज की दर में कमी हुई जिससे अधिक पूँजी निवेश हुआ और बैंकिंग व्यवस्था में महत्वपूर्ण विकास से पुष्ट ऋणों का विस्तार हुआ। बैंकिंग व्यवस्था में विकास के अन्तर्गत (पूँजी) निवेश बैंक आविर्भाव हुआ जिससे सम्पत्ति को सरलतापूर्वक उद्योग में प्रयुक्त किया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इस्पात युग का आविर्भाव हो चुका था। बैम्सैमर कनवर्टर आविष्कार, सीमैन्स-मार्टिन प्रक्रिया एवं गिलक्राइस्ट-थामस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विशाल स्तर पर इस्पात उत्पादन सम्भव हो गया था। गिलक्राइस्ट प्रक्रिया सर्वाधिक महत्वपूर्ण

थी और जर्मनी ने इसका प्रयोग किया। सन् 1860 से सन् 1890 के मध्य की अवधि में अपरिष्कृत इस्पात का वास्तविक मूल्य 90% कम हो गया था। सन् 1870 में इस्पात का उत्पादन 5 लाख टन से कम था, परन्तु सन् 1913 में इस्पात का उत्पादन बढ़कर 3,20,00,000 टन हो गया।

रासायनिक उद्योग में भी महत्वपूर्ण विकास हुआ। इस क्षेत्र में जर्मनी ने अत्यधिक प्रगति की। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट हो गया कि प्रौद्योगिक प्रगति को बनाये रखने के लिए विज्ञान का पूर्णरुपेण प्रयोग अतिआवश्यक था। अस्तु एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता थी जिससे पूर्णरुपेण प्रशिक्षित एवं कुशल वैज्ञानिक प्राप्त हो सकें। विद्युत के क्षेत्र में भी जर्मनी ने उल्लेखनीय प्रगति की। सन् 1913 तक जर्मनी विद्युतीय उत्पादन के क्षेत्र में अग्रणी हो गया था।

कठोर इस्पात मिश्रित धातुओं के प्रयोग द्वारा कारखानों में प्रयुक्त मशीनों में गति तथा स्थायित्व में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुधार हुआ। दो मुख्य परिवर्तनों ने कारखानों की कार्य प्रणाली तथा उसके उत्साहवर्धक परिणामों में क्रान्ति कर दी। प्रत्येक मशीन की निर्माण प्रक्रिया को अनेक छोटे-छोटे सरल भागों में विभाजित कर दिया गया था और प्रत्येक विभाजित भाग का कार्य एक उद्देश्य के लिए निर्मित मशीन करती थी और इस मशीन पर अकुशल श्रमिक काम करते थे। उत्पादन पद्धतियों को भी सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित किया गया और यह पद्धति अत्यधिक स्पष्ट, सरल और संक्षिप्त थी। मशीन के विभिन्न पुर्जों को संकलित करके पूर्ण मशीन का रूप देने की प्रक्रिया नित्यक्रम हो गयी। सन् 1880 तक अमेरिका में इस्पात कारखानों में एक प्रणाली का विकास किया जो वैज्ञानिक प्रबन्ध अथवा समय और गति का अध्ययन (Time and motion study) के रूप में प्रसिद्ध हुई। इस वैज्ञानिक प्रबन्ध ने भावी यन्त्रीकरण, स्वचलन का संकेत दे दिया था।

ब्रिटेन से प्रेरक शक्ति के स्थानान्तरण के कारण (Causes of the Transfer of the Motivating Energy from Britain)

उपर्युक्त तथ्यों तथा उपलब्ध साक्ष्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि सन् 1870 के उपरान्त औद्योगिक क्रान्ति की प्रेरक शक्ति ब्रिटेन से विशेष रूप से जर्मनी और अमेरिका को स्थानान्तरित हो गयी थी परन्तु यह तथ्य तत्कालीन इन देशों के वासियों को स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं था।

स्थानान्तरण के कुछ कारण अब भी अज्ञात हैं परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञात कारण यथार्थ में ब्रिटिश चरित्र, स्वरूप एवं भावनाओं में निहित हैं।

ब्रिटिश समाज स्थायित्व को एक महान् गुण मानता है। कोई भी ब्रिटिश उत्पादक अपनी प्रवृत्ति एवं स्वभाव के अनुसार श्रेष्ठ मशीन के आविष्कार के उपरान्त अपनी सुचारु रूप से काम करती हुई उपयोगी मशीन को हटाकर नवीन आविष्कृत मशीन को नहीं लगाना चाहता है।

भावी अनुसन्धान कार्यों को समुचित वित्तीय सहायता देने के लिए वर्तमान मूल्यों में वृद्धि का सर्वत्र उग्र विरोध किया जाता था।

नवीन आविष्कृत मशीनों द्वारा परिवर्तन अत्यधिक व्ययशील सिद्ध होता था पूँजी निवेशक इस अनावश्यक व्यय का दायित्व लेने के लिए तत्पर नहीं थे।

सन् 1916 के उपरान्त प्रथम विश्वयुद्धकाल के अतिरिक्त कभी भी राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक अनुसन्धान का औद्योगिक उत्पादन के साथ सुखद समन्वय करने का संगठित प्रयास नहीं किया गया।

अभिजातवर्गीय भू-स्वामी ही भद्र तथा सज्जन व्यक्ति हैं, यह एक सर्वमान्य ब्रिटिश आदर्श है। उस काल में यह सर्वोपरि था। सफल औद्योगिक परिवारों ने शीघ्र ही स्वयं को इस आदर्श के अनुरूप परिवर्तित कर लिया था तथा सम्पत्ति के वास्तविक स्रोत अर्थात् जनता से सम्पर्क समाप्त कर लिए।

ब्रिटिश विकास संरचना इस प्रकार की थी, कि औद्योगिक क्रान्ति से राजनीतिज्ञों अथवा असैनिक अधिकारियों को किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं मिला अथवा उनके जीवन स्तर में किसी प्रकार की उन्नति नहीं हुयी।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. औद्योगिक क्रान्ति से आप क्या समझते हैं ? यह क्रान्ति इंग्लैण्ड में ही सर्वप्रथम क्यों हुई ?
What do you understand by Industrial Revolution ? Why did the Industrial Revolution begin in England ? (पटना, 1996, 98)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. सन् 1800 तक इंग्लैण्ड में नगर आवासीय जनसंख्या .... हो गयी थी—
(क) 5% (ख) 10% (ग) 15% (घ) 25%
2. सन् 1792 से 1815 तक की अवधि में .... बाड़बन्दी अधिनियम (Enclosure Acts) पारित किये—
(क) 856 (ख) 956 (ग) 1056 (घ) 1156
3. सन् 1851 में इंग्लैण्ड और वेल्स की अनुमानित जनसंख्या बढ़कर .... हो गयी—
(क) 2 करोड़ 80 लाख (ख) 1 करोड़ 80 लाख
(ग) 1 करोड़ 50 लाख (घ) 1 करोड़ 90 लाख
4. सन् .... में जेम्स हरग्रीव्ज द्वारा आविष्कृत 'स्पिनिंग जैनी' के द्वारा एक साथ सूत के आठ धागे काते जा सकते थे—
(क) 1750 (ख) 1764 (ग) 1770 (घ) 1774
5. सन् .... में अमेरिका के एक शिक्षक ऐली ह्विट्ने ने काटन जिन नाम की कपास ओटाने की मशीन का आविष्कार किया—
(क) 1783 (ख) 1788 (ग) 1793 (घ) 1798
6. सन् .... में रिचर्ड रावर्ट्स ने सर्वप्रथम स्वचालित बुनाई मशीन का आविष्कार किया—
(क) 1805 (ख) 1815 (ग) 1825 (घ) 1835
7. सन् .... में अमेरिकावासी एलियास होव ने सिलाई मशीन का आविष्कार किया—
(क) 1836 (ख) 1846 (ग) 1856 (घ) 1860

8. जेम्स वाट ने एक उद्योगपति के सहयोग से सन् ………. में इंजिन बनाने का कारखाना स्थापित किया—
(क) 1865 (ख) 1870 (ग) 1875 (घ) 1880
9. सन् ………. में जार्ज स्टीवेन्सन ने वाष्प चालित रेल इंजिन का आविष्कार किया—
(क) 1804 (ख) 1809 (ग) 1814 (घ) 1817
10. सन् ………. में ग्राहम बेल ने टेलीफोन का आविष्कार किया—
(क) 1856 (ख) 1866 (ग) 1876 (घ) 1886

[उत्तर—1. (घ), 2. (ख), 3. (ख), 4. (ख), 5. (ग), 6. (ग), 7. (ख), 8. (ग), 9. (ग), 10. (ग) ।]

14

यूरोप में समाजवादी एवं श्रमिक आन्दोलन

[SOCIALIST AND LABOUR MOVEMENTS IN EUROPE]

औद्योगीकरण एवं पूँजीवाद के निरन्तर विकास के परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न स्तरों जैसे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्तरों पर अत्यधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। उत्पादन एवं व्यापार में अद्वितीय प्रगति हुई। भौतिक सम्पन्नता एवं समृद्धि में अत्यधिक वृद्धि हुई, परन्तु इस समृद्धि से समाज के एक वर्ग के सीमित व्यक्ति ही सर्वाधिक लाभान्वित हुए, परन्तु सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में मुख्य रूप से दीनहीन, दरिद्र तथा शोषित श्रमिक वर्ग का अभ्युदय हुआ। औद्योगीकरण के प्रारम्भिक चरण में नवोदित श्रमिक वर्ग की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। अधिकांश श्रमिक नगर की घनी जनसंख्या वाले विशेष क्षेत्रों में स्थित स्वच्छ वायु एवं प्रकाश से वंचित, अनिंवार्य जनसुविधाओं से मुक्त जीर्ण-शीर्ण आवासों में निवास करते थे। समस्त वातावरण दूषित, विषाक्त एवं विभिन्न घातक रोगों से ग्रस्त था। श्रमिकों की दीनहीन स्थिति से आहत, उत्कृष्ट मानवतावादी भावनाओं से आप्लावित कुछ प्रबुद्ध व्यक्तियों ने श्रमिकों की पीड़ाओं एवं वेदनाओं के मानवीय आधार पर निराकरण करने के लिए सक्रिय प्रयास आरम्भ किये। इसके अतिरिक्त पीड़ित श्रमिकों में भी अपनी असहाय स्थिति तथा वेदनाओं एवं कष्टों के प्रति अनुभूतिजन्य चेतना का आविर्भाव हुआ और अपनी समस्याओं को समवेत स्वर में अभिव्यक्त करने के लिए श्रमिक संगठनों का गठन करना आरम्भ कर दिया। सुदृढ़ एवं शक्तिशाली संगठनों के रूप में आविर्भूत होने से पूर्व श्रमिक वर्ग ने विभिन्न रूपों में अपने विरोध को अभिव्यक्त किया था। अनेक श्रमिकों ने महाद्वीप में होने वाली सन् 1830 एवं सन् 1848 की क्रान्तियों में सक्रिय भाग लिया। इंग्लैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशों में श्रमिकों ने कारखानों की मशीनों को तोड़कर पूँजीवादियों के निर्मम व्यवहार तथा शोषण के विरुद्ध आक्रोश को अभिव्यक्त किया। कुछ कुंठाग्रस्त श्रमिक औद्योगिक संस्थानों को त्यागकर अमेरिका चले गये।

श्रमिक सुधार (Labour Reforms)

इंग्लैण्ड में रूढ़िवादी एवं उदारवादी नेताओं ने दलगत नीतियों तथा निहित स्वार्थों से प्रेरित होकर ब्रिटेन में नवीन औद्योगिक प्रणाली के अन्तर्गत खदानों एवं कारखानों में व्याप्त

हृदय विदारक स्थिति की कटु आलोचना की। श्रमिकों की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए ब्रिटिश सरकार ने सक्रिय प्रयास किये। सन् 1833 में कारखाना अधिनियम (Factory Act, 1833) पारित किया गया। इसके अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा कारखानों का निरीक्षण होने लगा। नौ वर्ष से कम आयु के बच्चों के कारखानों में नियोजन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। श्रमिकों के काम के घण्टे सीमित कर दिये गये। 8 जून, 1847 को पारित कारखाना अधिनियम द्वारा स्त्रियों और बच्चों के लिए प्रतिदिन 11 घंटे काम की सीमा निश्चित की गयी, परन्तु 1 मई, 1848 से यह सीमा कम करके 10 घंटे कर दी गयी। खाद्यान्न सम्बन्धी कानून जो श्रमिकों के लिए अत्यधिक कष्टप्रद थे, सन् 1848 में निरस्त कर दिये गये। सन् 1848 में ही सरकार ने आदर्श गृह अधिनियम पारित करके गन्दी श्रमिक बस्तियों में सुधार की योजना आरम्भ की। कारखाना अधिनियमों के अतिरिक्त समाज सुधार के लिए भी अनेक अधिनियम पारित किये गये। सन् 1835 के नगरपालिका निगम अधिनियम द्वारा द्रुतगति से शहरीकरण के कारण उत्पन्न विभिन्न समस्याओं के समुचित निराकरण के लिए नगरपालिकाओं को सक्षम बना दिया गया। सन् 1848 में संसद ने स्थानीय स्वास्थ्य मण्डल प्रणाली स्थापित की।

प्रारम्भ में औद्योगीकरण के विभिन्न दोषों में सुधार के लिए यूरोप में यथार्थ में कुछ भी नहीं किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में फ्रान्स में 8 वर्ष से कम आयु के बच्चों के नियोजन पर प्रतिबन्ध लगाया गया। प्रशा में सन् 1839 में कारखाना कानून पारित किया गया, जिसके अन्तर्गत 9 वर्ष से कम आयु के बच्चों के नियोजन पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा उससे ऊपर की आयु के बच्चों के लिए काम के घंटे सीमित कर दिये गये। फ्रान्स और इंग्लैण्ड दोनों में ही इन कानूनों का कार्यान्वयन बहुत शिथिल था। बेल्जियम में कुछ भी नहीं किया गया।

शीघ्र ही दलित, पीड़ित एवं शोषित श्रमिकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। ये श्रमिक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक शोषण तथा कठोर व्यवहार के प्रति पूर्वापेक्षा अधिक सजग थे। चेतना एवं सजगता ने समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने के उद्देश्य से संगठित होने के लिए प्रेरित किया। मध्यमवर्गीय कृषकों के प्रबल समर्थन प्राप्त श्रमिक विरोधों ने सरकार को उन अधिनियमों को निरस्त करने के लिए विवश कर दिया, जिनके द्वारा श्रमिक संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। परिणामस्वरूप विशाल स्तरीय श्रमिक संगठन का आविर्भाव हुआ। सन् 1859 में इस संगठन की उत्साही गतिविधियों ने ब्रिटिश संसद को श्रमिकों के शान्तिपूर्ण धरना देने (Picketing) के अधिकार को स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया। सन् 1875 तक श्रमिक संघों को विधिक स्तर प्राप्त हो चुका था। इसके अतिरिक्त हड़ताल करने तथा शान्तिपूर्वक धरना देने के अधिकार भी मिल गये थे।

यूरोप महाद्वीप के अन्य देशों में श्रमिकों को आंशिक सफलता मिली थी। बेल्जियम में सन् 1866 तक श्रमिक संघों के गठन पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था। जर्मनी में सन् 1870 तक किसी प्रकार का कोई श्रमिक आन्दोलन नहीं हुआ। फ्रान्स में श्रमिकों को हड़तालें करवाने तथा स्थानीय आन्दोलनों को संचालित करने के उद्देश्य से गुप्त समितियों के रूप में गठित होने का अधिकार नहीं था। प्रायः सरकार ने श्रमिक आन्दोलनों की गतिविधियों का निर्ममता तथा क्रूरतापूर्वक दमन किया। इसकी स्वाभाविक विशेष प्रतिक्रिया हुई। मध्यमवर्गीय उदारवादी दर्शन की व्यापक व्याख्या के लिए इंग्लैण्ड विख्यात था, परन्तु फ्रान्स इसके पूरक श्रमिक वर्गीय समाजवादी दर्शन की विस्तृत व्याख्या के लिए समान रूप से विख्यात था।

सन् 1870 के उपरान्त यूरोप के श्रमिक वर्ग तथा इसके समाजवादी दर्शन के प्रभाव में वृद्धि की प्रवृत्ति प्रमुख थी। इस काल में श्रमिकों को विभिन्न समाजवादी दलों के माध्यम से राजनीतिक सत्ता प्राप्त हो गयी तथा श्रमिक संघों के द्वारा आर्थिक प्रभुत्व मिल गया था। परिणामस्वरूप श्रमिकों की दयनीय स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ। इस दिशा में निरन्तर सक्रिय प्रयासों के परिणामस्वरूप सन् 1914 तक यूरोपीय श्रमिकों के जीवन स्तर में सन् 1870 की तुलना में महत्वपूर्ण सुधार हो गया था।

सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में नवीन आर्थिक व्यवस्था तथा उसके परिणामस्वरूप सामाजिक शोषण की आलोचना की गयी थी। इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम औद्योगीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई थी। इसके अतिरिक्त छोटे कृषकों की भूमि बड़े सम्पन्न तथा समृद्ध जमींदार निरन्तर क्रय कर रहे थे, अस्तु छोटे कृषकों की स्थिति अत्यधिक दीनहीन एवं दयनीय हो रही थी। निर्धन कृषकों की दयनीय स्थिति से द्रवित होकर स्पैन्स ओगिल्वी तथा पेन आदि तत्कालीन प्रबुद्ध विचारकों ने कृषि सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए विचार व्यक्त किया कि भूमि पर कुछ सम्पन्न व्यक्तियों के एकाधिकार की अपेक्षा समाज का नियन्त्रण होना चाहिए। टामस पेन ने अपनी विख्यात कृति 'मनुष्य के अधिकार' (Rights of Man, 1791) के द्वारा भूमि के समाजीकरण, बड़ी जागीरों पर अधिक मृत्यु कर तथा श्रमिकों एवं उनके परिवार वालों के लिए वृद्धावस्था पैंशन तथा प्रसवावकाश के प्रस्ताव रखे। विलियम गोडविन ने अपनी कृति "राजनीतिक न्याय" (Political Justice) में व्यक्तिगत सम्पत्ति की निन्दा की। इसी प्रकार प्रख्यात क्रान्तिकारी तथा स्वच्छन्दतावादी कवि शैली एवं अनेक तत्कालीन पत्रकारों ने भी सरकार की निर्दयता तथा निर्धनों के शोषण की भर्त्सना की। सन् 1818 में स्विट्जरलैण्ड के विद्वान इतिहासकार सिसमोण्डी ने ब्रिटेन के निर्धन वर्ग की दयनीय स्थिति पर खेद व्यक्त किया। सन् 1814 में एक जर्मन विद्वान फ्रेडरिक ऐंगेल्स ने अपनी विख्यात कृति 'इंग्लैण्ड के श्रमिक वर्गों की स्थिति' (The Condition of the English Working Classes) में औद्योगीकरण के घातक परिणामों का हृदय विदारक चित्रण किया।

फ्रान्स के बाहर, विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न ब्रिटिश उद्योगपति एवं सर्वाधिक विख्यात स्वप्नदर्शी समाजवादी राबर्ट ओवन (सन् 1771-1858) का सामाजिक सुधारों विशेष रूप से श्रमिक कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बीस वर्ष की अल्पायु में वह मैनचेस्टर के सर्वाधिक विशाल कारखाने का प्रबन्धक बन गया। तत्पश्चात उसने स्काटलैण्ड स्थित न्यूलनार्क में एक आदर्श कपड़ा मिल स्थापित की। उसके विचार, भावनाएँ एवं दृष्टिकोण अपने सहयोगी उद्योगपतियों से पूर्णतया भिन्न उत्कृष्ट मानवीय सद्भावना से आप्लावित थे। उसने न्यूलनार्क को उद्योगपतियों तथा श्रमिकों के पारस्परिक सद्भाव का केन्द्र बना दिया था। उसने श्रमिकों के लिए स्वच्छ, सुन्दर एवं स्वास्थ्यवर्धक आवास गृहों की व्यवस्था की। आवासीय वातावरण को प्रदूषण मुक्त करने के प्रयास किये। श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार के लिए वेतन में वृद्धि की, और काम के घंटे कम कर दिये। बच्चों के नियोजन तथा श्रमिकों के मद्यपान पर प्रतिबन्ध लगा दिया। आवश्यक वस्तुओं के क्रय के लिए उचित मूल्य की दुकानों की व्यवस्था की। श्रमिकों के घरों में प्रत्येक वर्ष सफेदी की जाती थी। परिणामस्वरूप उत्पादन एवं लाभ दोनों में पर्याप्त वृद्धि हुई। ओवन के विचारों, दृष्टिकोण एवं सुधारों ने कुंठाग्रस्त श्रमिकों को सन्तुष्ट किया और पूर्वापेक्षा श्रेष्ठ कुशल श्रमिक बनने के लिए प्रेरित किया। विदेशी उसके कार्यों एवं भावनाओं से अत्यधिक आकर्षित थे। ओवन ने सन्

1819 में 'समाज का नया दृष्टिकोण' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस कृति में उसने समाज के समस्त वर्गों में परस्पर सहयोग प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने तथा समाज को अनेक छोटे-छोटे आत्मनिर्भर समुदायों में विभाजित करने पर बल दिया। उसके अनुसार 500 से 3,000 व्यक्तियों के समूहों में विभाजित समुदाय श्रेष्ठतम मशीनों की सहायता से व्यवसाय की समुचित प्रगति में सक्षम होंगे। ओवन द्वारा श्रमिकों की स्थिति में सुधार करने तथा बच्चों एवं स्त्रियों के शोषण को समाप्त करने के लिए व्यापक प्रचार के परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने सन् 1819 का कारखाना अधिनियम (Factory Act of 1819) पारित किया। यद्यपि ओवन की योजनाएँ पूर्णरूपेण सफल नहीं हो सकीं परन्तु उसके लेखों और कार्य पद्धति ने ब्रिटेन में समाजवाद एवं धर्म निरपेक्षता की आधारशिला अवश्य रखी। ओवन के अमेरिका स्थित इण्डियाना में इस प्रकार के आदर्श समुदाय स्थापित करने के प्रयास पूर्णतया असफल हो गये।

समाजवाद (Socialism)—उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में आरम्भ आन्दोलन सहकारी समाजवाद था। सन् 1827 में सर्वप्रथम समाजवाद शब्द का प्रयोग हुआ। ओवन के विचारों, भावनाओं एवं दृष्टिकोण से प्रभावित समाजवादी आन्दोलन अहिंसात्मक तथा संवैधानिक साधनों में श्रमिकों की स्थिति में सुधार का प्रबल समर्थन करते थे। संसद में सुधार के लिए आरम्भ आन्दोलन में श्रमिकों ने मध्यमवर्ग के साथ सक्रिय सहयोग किया तथा जमींदारों एवं रूढ़िवादी कुलीनों के सरकार पर प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष किया। श्रमिकों तथा मध्यमवर्ग के परस्पर सहयोग के परिणामस्वरूप सन् 1832 का संसद संशोधन विधेयक पारित हो गया परन्तु इससे मध्यमवर्ग ही लाभान्वित हुआ। अतः कुंठाग्रस्त श्रमिकों में क्रान्तिकारी भावनाओं का आविर्भाव हुआ। श्रमिक वर्ग, वर्ग संघर्ष, हड़ताल एवं चार्टिस्ट आन्दोलन की ओर उन्मुख था।

जीवन की पद्धति के रूप में समाजवाद शब्द नया नहीं था परन्तु समाजवाद का आर्थिक एवं सामाजिक दर्शन के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी में आविर्भाव हुआ था। ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक समाजवाद को पूर्व-मार्क्सकालीन समाजवाद एवं उत्तर मार्क्सकालीन समाजवाद में विभाजित किया जाता है। पूर्व-मार्क्सकालीन समाजवादी स्वप्नदर्शी अव्यावहारिक समाजवादी, वैज्ञानिक समाजवादियों के रूप में प्रसिद्ध थे। अधिकांश स्वप्नदर्शी अव्यावहारिक समाजवादी फ्रान्स के थे। फ्रान्स में अधिकांश श्रमिक वर्ग में शिक्षा का अभाव था और आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक निर्धन थे। अस्तु फ्रान्स में उच्च अथवा मध्यमवर्गों ने समाजवाद का आह्वान किया।

फ्रान्स में समाजवाद का वास्तविक संस्थापक, कुलीन वंशीय युवावस्था से ही समाज सुधार एवं मानव कल्याण की भावनाओं से अनुप्राणित काउण्ट सेण्ट साइमन (सन् 1760-1825) था। फ्रान्स की प्रथम क्रान्ति काल (1789) में वह परम्परागत धार्मिक सिद्धान्तों का विरोधी तथा नवोदित वैज्ञानिक पद्धति का प्रबल समर्थक था। उसने अपनी कृति 'नवीन ईसाई धर्म' (The New Christianity) में समाजवादी विचारों, सिद्धान्तों एवं आदर्शों का प्रतिपादन किया। उसने मत व्यक्त किया कि समाज का वैज्ञानिक पद्धति से पुनर्गठन होना चाहिए, श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार के लिए समुचित प्रयास करने चाहिए। प्रचलित प्रतिस्पर्धा का अन्त होना चाहिए। उत्पादन अनुत्तरदायी एवं असावधान धनी एवं सम्पन्न वर्ग के हाथ में नहीं होना चाहिए। उद्योगों पर सतर्कतापूर्वक नियन्त्रण करना चाहिए जिससे

अधिकाधिक श्रमिक वर्ग लाभान्वित हो सके। उसने मध्यम वर्गीय उदारवाद के विभिन्न दोषों को जनसमुदाय के समक्ष अभिव्यक्त किया। सेण्ट साइमन ने विचार व्यक्त किया कि समस्त मानव समुदाय को परस्पर एक-दूसरे का शोषण करने की अपेक्षा प्राकृतिक तत्वों के शोषण के लिए सामूहिक प्रयास करने चाहिए। उसने भविष्य में कल्याणप्रद योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए व्यापक सिद्धान्तों की व्याख्या की। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता और व्यवसाय के अनुसार मानव कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। सन् 1830 की क्रान्ति के समय साइमन की प्रतिष्ठा में अनायास वृद्धि हुई परन्तु क्रान्ति की असफलता के साथ प्रतिष्ठा समाप्त भी हो गयी।

एक अन्य स्वप्नदर्शी अव्यावहारिक समाजवादी चार्ल्स फूरिए (सन् 1772-1837) ने सेण्ट साइमन की सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा एवं परिकल्पना को संशोधित तथा परिष्कृत किया। वह लियोस में एक व्यापारी के संस्थान में लिपिक के पद पर कार्यरत था, परन्तु उसके समाजवादी विचारों एवं सिद्धान्तों का यूरोपीय चिन्तन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उसने मत व्यक्त किया कि समाज के अधिकांश दोष असंगत तथा विषम सामाजिक तथा वित्तीय वातावरण के परिणामस्वरूप थे, जिस वातावरण में अधिकांश व्यक्ति जीवन व्यतीत करते थे। उसकी प्रस्तावित योजना के अनुसार समाज को 1,600 से 1,800 व्यक्तियों की आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों में विभाजित कर देना चाहिए, जिससे वे सामूहिक रूप से परस्पर वस्तुओं का उपयोग कर सकें और बाजार के आरोह-अवरोह, मुद्रा स्फीति, व्यापार में उत्थान-पतन तथा पूँजीवादी व्यवस्था के अन्य दोषों से मुक्त कर सकें। फूरिए के साम्यवादी समूह की परिकल्पना 'फिलॉसोफेस' (Philosophes) के नाम से विख्यात थी। अमेरिका में विशेष रूप से मैसाचुसेट्स स्थित ब्रुक फार्म में इन साम्यवादी सिद्धान्तों पर गठित समूहों का प्रयोग किया गया, परन्तु विभिन्न आर्थिक असुविधाओं तथा सदस्यों के पारस्परिक विवादों के कारण यह प्रयोग असफल हो गया। सेन्ट साइमन तथा चार्ल्स फूरिए दोनों की मान्यता थी कि श्रमिकों का वास्तविक कल्याण उसी स्थिति में सम्भव है, जब पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा स्थापित नियन्त्रण का अन्त हो जाये। ओवन के सदृश इन दोनों की योजनाएँ भी अव्यावहारिक सिद्ध हुईं। सिसमोण्डी ने सर्वप्रथम फ्रान्स में हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्त के आधार पर पूँजीवादी व्यवस्था की कटु आलोचना की और श्रमिकों को उचित वेतन देने का प्रबल समर्थन किया।

सन् 1840 के उपरान्त फ्रान्स की राजनीति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा अग्रणी स्वप्नदर्शी अव्यावहारिक समाजवादी विचारक लुईस ब्लाक (सन् 1811-1882) था। उसने आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का सक्रिय विरोध किया तथा राज्य से श्रमिकों के काम करने के अधिकार तथा उस अधिकार की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय कारखानों की स्थापना पर बल दिया। उसने मत व्यक्त किया कि क्रान्तिकारी षड्यन्त्र द्वारा सत्ता अधिग्रहीत करने के उपरान्त ही समाजवादी राज्य स्थापित किया जा सकता है। उसके अनुसार श्रमिक स्वयं ही अपने हितों की प्राप्ति के लिए राज्य का संचालन करें। प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीय कारखानों में नियोजित किया जाये तथा निर्धन श्रमिकों को राज्य की ओर से औजार एवं मशीनें दी जायें। उसने विचार व्यक्त किया कि आर्थिक सुधारों से पहले राजनीतिक सुधार करना आवश्यक है। एक बार लोकतन्त्र की स्थापना के बाद राज्य स्वतः ही नवीन औद्योगिक संगठनों का सूत्रपात करेगा। ब्लाक ने इन संगठनों के लिए नीति निर्धारित की। ब्लाक ने अपने विचारों तथा सिद्धान्तों का अपनी कृति "खाता संगठन" (Organisation of

Ledger) में प्रतिपादन किया। सन् 1830 का विजयी मध्यमवर्ग सामाजिक सुधारों के प्रति उदासीन था। लुईस फिलिप के शासन काल में लुईस ब्लाक के विचारों और सिद्धान्तों का तीव्र गति से प्रसार हुआ। फ्रान्स में सन् 1848 की क्रान्ति के समय ब्लाक को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित करके आर्थिक सुधार का दायित्व दिया गया। उसने बेकार व्यक्तियों की सहायता के लिए राष्ट्रीय कारखाने स्थापित किये। सरकार पर मध्यमवर्ग का आधिपत्य था। अस्तु सरकार की स्थिति सुदृढ़ होते ही राष्ट्रीय कारखाने बन्द कर दिये गये। सन् 1848 में जनरल के बेगनेक के नेतृत्व में सैनिकों ने पेरिस की सड़कों पर सहस्त्रों समाजवादी श्रमिकों की क्रूर एवं अमानुषिक हत्या कर दी। सन् 1851 में मध्यमवर्ग के समर्थन से लुईस नैपोलियन के राजद्रोह को वैध घोषित कर दिया और सन् 1852 में उसे सिंहासनारूढ़ कर दिया। इस प्रकार मध्यमवर्ग की प्रभुता पुनः स्थापित हो गयी।

स्वप्नदर्शी तथा अव्यावहारिक समाजवादियों के विभिन्न प्रयासों से एक बात स्पष्ट हो गयी थी, कि अधिकांश व्यक्ति स्वभाव से सहृदय, सद्भावनापूर्ण तथा बुद्धि संगत नहीं थे। स्वप्नदर्शियों की असफलताओं ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि समाज सुधार के लिए आदर्शवाद तथा सर्वोत्कृष्ट भावनाएँ ही पर्याप्त नहीं थीं। अपेक्षाकृत अधिक समाजवादी पद्धति की विशेष आवश्यकता थी। इस चुनौती का उत्तर कार्ल मार्क्स ने दिया।

कार्ल मार्क्स (Karl Marx)

उन्नीसवीं शताब्दी के समाजवाद के सर्वोत्कृष्ट विचारक कार्ल मार्क्स (सन् 1818-1883) ने उस आन्दोलन को पुनर्गठित करने का प्रयत्न किया। सन् 1848 से सन् 1870 की अवधि में उसने समाजवाद के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। कार्ल मार्क्स का जन्म सन् 1818 में जर्मनी के राइन प्रदेश में स्थित ट्रियर (Trier) के यहूदी परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही वह विलक्षण बुद्धि तथा शुष्क स्वभाव का था। यद्यपि वह प्रोटेस्टेन्ट धर्म का अनुयायी था, परन्तु धर्म में उसकी किंचित भी आस्था नहीं थी। बौन विश्वविद्यालय में अपने अध्ययन काल में हीगल के दार्शनिक सिद्धान्तों से सर्वाधिक प्रभावित था। उसने प्राचीन यूनानी दर्शन में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। प्राध्यापक बनने की तीव्र इच्छा थी, परन्तु इसमें असफल होने के उपरान्त उसने राइन प्रदेश के समाचार-पत्र का सम्पादन किया। इसी अवधि में उसने अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया और वह क्रान्तिकारी बन गया। सन् 1843 में अपनी पेरिस यात्रा के समय वह फ्रैडरिक ऐंगेल्स के सम्पर्क में आया और शीघ्र ही दोनों अभिन्न मित्र बन गये। तदुपरान्त वह ऐंगेल्स के पिता के सूती कपड़े के कारखाने में इस उद्योग का अध्ययन करने के लिए मैनचेस्टर गया और तत्कालीन ब्रिटिश उद्योगों का निकट से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया और श्रमिकों की दयनीय स्थिति का अध्ययन किया। सन् 1844 में उसने ब्रिटिश श्रमिकों की दीनहीन दशा पर एक पुस्तक लिखी। सन् 1845 में उसे फ्रान्स से निष्कासित कर दिया गया और वह ब्रुसेल्स चला गया। सन् 1847 में उसने साम्यवादी संघ के लिए घोषणा-पत्र लिखा जो सन् 1848 की क्रान्ति से पूर्व प्रकाशित किया गया था। घोषणा-पत्र के अन्त में उसने श्रमिकों का आह्वान करते हुए लिखा, "श्रमिकों का बेड़ियों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं जायेगा। उन्हें विश्व पर विजय प्राप्त करनी है। संसार के श्रमिकों एक हो।"

जर्मनी से मैटरनिख के पतन के बाद कार्ल मार्क्स ने जर्मनी लौटकर प्रतिक्रियावादियों तथा लोकतन्त्र के समर्थक मध्यम वर्ग के विरुद्ध तीव्र गति से प्रचार किया। इन तत्वों ने

मार्क्स को पुनः जर्मनी से निष्कासित करवा दिया। अन्ततोगत्वा मार्क्स और उसके परिवार ने इंग्लैण्ड में शरण ली। वहाँ उसको अत्यधिक आर्थिक कष्ट में जीवन व्यतीत करना पड़ा परन्तु वह समाजवाद के मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में व्यस्त रहा।

मार्क्स ने समाजवाद के सिद्धान्तों तथा उद्देश्यों, ऐतिहासिक विकास के अन्तर्निहित नियमों के कारण इतिहास के काल-क्रम की क्रूर प्रगति तथा नए समाजवादी समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की। मार्क्स समर्थक श्रमिकों की अन्ततोगत्वा विजय में पूर्ण विश्वास करते थे। मार्क्स ने पूँजीवादी समाज का व्यापक चित्रण किया। ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित मत व्यक्त किया कि पूँजीवादी समाज का विनाश तथा निकट भविष्य में समाजवादी क्रान्ति की सफलता अनिवार्य है। विभिन्न वर्गों का पारस्परिक संघर्ष इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है। पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण भी अनिवार्य है। पूँजीपति वर्ग श्रमिकों के श्रम के अतिरिक्त मूल्य को स्वयं आत्मसात कर लेता है और श्रमिकों को केवल जीवनयापन के लिए ही देता है अर्थात् श्रमिक वर्ग स्वयं अपनी कब्र खोदने वाले यन्त्रों का उत्पादन करता है। मध्यमवर्ग का पतन तथा श्रमिक वर्ग की विजय दोनों ही अनिवार्य हैं। साम्यवाद के आविर्भाव से पूर्व राज्य के पूर्ण रूपान्तर की स्थिति की स्पष्ट व्याख्या नहीं की है। मार्क्स ने मत व्यक्त किया कि पारस्परिक संघर्ष की उत्पत्ति उत्पादन एवं विनिमय के साधनों अर्थात् अपने समय की आर्थिक परिस्थितियों से होती है। ऐतिहासिक प्रक्रिया में प्राचीन समाज का आधार दासता, कुलीन वर्गीय समाज की आधार भूमि तथा मध्यमवर्गीय समाज की आधार पूँजी है। यह मार्क्स द्वारा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या है। मार्क्स ने इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में हीगल के द्वन्द्वात्मवाद का भी प्रयोग किया और समाजवाद की आवश्यकता को अभिव्यक्त किया। यद्यपि हीगल का द्वन्द्वात्मवाद केवल विचारों से सम्बद्ध था, परन्तु मार्क्स ने उसे भौतिक परिस्थितियों से सम्बद्ध कर दिया। उसने मत व्यक्त किया कि समाज की प्रत्येक स्थिति में उसका विरोध सन्निहित रहता है। इन दोनों के परस्पर संघर्ष से नवीन स्थिति का उद्भव होता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर निष्कर्ष व्यक्त किया कि सामन्तवादी कृषक समाज का नगरों के मध्यमवर्ग ने विनाश किया। इस संघर्ष से औद्योगिक पूँजीवाद का अभ्युदय हुआ। इस पूँजीवाद में भी इसके विनाश के तत्व निहित हैं। साहूकारों तथा उद्योगपतियों के पूँजीवादी समाज को श्रमिक समाप्त कर देंगे। अन्ततोगत्वा इस संघर्ष के परिणामस्वरूप वर्गहीन तथा राज्य विहीन सामाजिक व्यवस्था स्थापित हो जायेगी। अस्तु मार्क्स ने श्रमिकों को अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। मार्क्स तथा ऐंगल्स दोनों ने ही मत व्यक्त किया कि परिवर्तन की द्वन्द्वात्मक प्रक्रियां औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में पूर्वापेक्षा अधिक द्रुतगति से परिचालित होगी। मध्य एवं पश्चिमी यूरोप सर्वाधिक अतिसंवेदनशील क्षेत्र प्रतीत होते थे। सन् 1848 में मार्क्स को पूर्वानुभूति हो चुकी थी कि जर्मनी में परिस्थितियाँ क्रान्ति के लिए परिपक्व हो चुकी थीं।

सन् 1859 से सन् 1940 की अवधि में मार्क्स के सिद्धान्तों एवं विचारों का व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ। सन् 1864 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघों (International Working Men's Association) का लन्दन में गठन किया गया। प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स के सर्वाधिक सजग तथा प्रबुद्ध श्रमिकों ने किया था। इंग्लैण्ड के श्रमिक राष्ट्रवादी थे और श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के लिए कानूनों में अपेक्षित सुधारों तथा परिवर्तनों के लिए उदारवादी सरकार पर निर्भर थे। उन्होंने ब्रिटिश उद्योगपतियों द्वारा

विदेशी श्रमिकों के आयात का सक्रिय विरोध किया। उनकी प्रबल इच्छा थी कि उनकी हड़ताल को विफल करने के लिए विदेशी श्रमिकों का प्रयोग नहीं हो। लन्दन श्रमिक परिषद् (London Trades Council) ने यूरोप के श्रमिकों का समर्थन प्राप्त करने के लिए एक सम्मेलन का आयोजन किया। 28 सितम्बर, 1864 को सेन्ट मार्टिन हाल लन्दन में विशाल अधिवेशन हुआ। इसमें ब्रिटिश शासकों के साथ फ्रान्स के श्रमिकों द्वारा निर्वाचित एवं फ्रान्स की सरकार द्वारा अधिकृत 550 प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए। इसके अतिरिक्त पोलैण्ड और जर्मनी के निर्वासितों (स्वयं कार्ल मांर्क्स) तथा हंगरी के लुईस कौसुथ, इटली के मैजिनी, और जर्मनी के लसैल के अनुयायियों ने भी भाग लिया था। इन सबके सामूहिक प्रयासों के परिणामस्वरूप प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय (International) का उद्भव हुआ। प्रारम्भ में केन्द्रीय समिति में 32 सदस्य थे और उनमें कार्ल मार्क्स भी एक थे। मार्क्स ने इस अन्तर्राष्ट्रीय का उद्घाटन, कार्यवाही का संचालन किया तथा संगठन के नियमों के निर्माण में सक्रिय सहयोग दिया। द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन सन् 1869 में पेरिस में हुआ। फ्रान्स के समाजवादियों ने प्रभावशाली मार्क्सवादी समुदाय का विकास किया। विभिन्न श्रमिक आन्दोलनों ने मार्क्स के अनेक विचारों को आत्मसात कर लिया था। लेकिन उस समय कोई भी पूर्वानुमान नहीं लगा सकता था कि मार्क्स के अनुयायी केवल एक ही रूप में अथवा विभिन्न रूपों में उसके सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे।

प्रारम्भ में औद्योगीकृत देशों के श्रमिकों को अनेक कष्टों तथा पीड़ाओं को सहन करना पड़ा था। यह औद्योगिक क्रान्ति का प्रथम चरण था, परन्तु औद्योगीकरण की प्रक्रिया के पूर्णरूप से विकसित हो जाने के उपरान्त श्रमिकों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक यह स्पष्ट हो चुका था कि मार्क्स की भविष्यवाणी को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप समन्वित करने एवं संशोधित करने की अतीव आवश्यकता होगी। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के इस समन्वय को विकासशील समाजवाद (Evolutionary Socialism) अथवा संशोधन की संज्ञा प्रदान की गयी।

जर्मनी का विख्यात समाजवादी ऐडुअर्ड बर्न्सटिन (Eduard Bernstein) संशोधन का प्रमुख सिद्धान्तवादी था। बर्न्सटिन अपने इंग्लैण्ड आवास काल में गैर-मार्क्सवादी समाजवाद के प्रवर्तकों के सम्पर्क में आया। उस अवधि के प्रमुख बुद्धिजीवी सिडनी और बैट्रिस वैब (Beatrice Webb), एच. जी. वैल्स और बर्नार्ड शा नवीन गैर-मार्क्सवादी समाजवादी विचारधारा के प्रमुख समर्थक थे। इन विचारकों का समाजवाद फेबियनवाद के नाम से प्रसिद्ध था। फेबियन समाज ब्रिटिश समाजवादी विचारकों का समाज था। इसकी स्थापना सन् 1883 में इंग्लैण्ड में हुई थी। फेबियन समाज के सदस्यों ने गैर-मार्क्सवादी समाजवाद की विकासवादी एवं लोकतान्त्रिक प्रणाली को विकसित किया था। फेबियन समाज का नाम सतर्क रोमन जनरल क्यू फेबियस मैक्सिमस कन्टेटर (Q. Fabius Maximus Cunctator) के नाम पर रखा गया था। उनका दर्शन मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन की अपेक्षा आदर्शवादी था। फेबियन समाजवादियों की दृढ़ धारणा थी, कि समाजवाद पूँजीवाद और वर्ग संघर्ष की अपेक्षा श्रेष्ठ प्रणाली है, वे उसके व्यापक प्रचार एवं प्रसार में विश्वास करते थे। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में वे मार्क्स की अपेक्षा उदार अर्थशास्त्री रिकार्डो और बैन्थम का अनुसरण करते थे।

सन् 1890 में बर्न्सटिन ने जर्मनी लौटकर आने पर मार्क्सवादी समाजवाद के अपने संशोधित सिद्धान्तों और विचारों का व्यापक प्रचार किया। मार्क्स की वर्ग संघर्ष की अवधारणा को अस्वीकार करना इसकी मुख्य विशेषता थी।

श्रमिक संघवाद (Syndicalism)—उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में उद्भूत उग्र एवं हिंसात्मक विरोध का एक अन्य स्वरूप श्रमिक संघवाद (Syndicatism) था। श्रमिक संघवाद का उद्भव फ्रेन्च शब्द सिन्डीकेट (Syndicate) से हुआ था। इसका अर्थ श्रमिक संघ (Trade Union) है। यह एक क्रान्तिकारी श्रमिक आन्दोलन था। इसमें श्रमिक संघों को सामाजिक क्रान्ति तथा भावी समाज के लिए आधार बनाया गया था। इसका अराजकतावाद से घनिष्ठ सम्बन्ध था, अस्तु अराजकतावादी श्रमिक संघवाद भी कहते हैं। इसका प्रमुख प्रवर्तक फ्रान्सवासी जार्ज सोरल (Georges Sorel) था। श्रमिक संघवादी, बाकुनिन (Bakunin) और सोरल के सिद्धान्तों के प्रबल समर्थक थे और श्रमिक दल (Labour Party) को राजनीतिक दल के रूप में अस्वीकार करते थे। वे समस्त राजनीतिक और संसदीय प्रयासों को अस्वीकार करते थे और इनके स्थान पर शासक वर्ग के विरुद्ध श्रमिकों की प्रत्यक्ष अथवा औद्योगिक कार्यवाही का समर्थन करते थे। हड़ताल उनका मुख्य हथियार है और हड़तालों की विशेष पद्धतियों, जैसे कार्य के समय हड़ताल अथवा मन्दगति से काम करना, को विकसित किया। अन्ततोगत्वा क्रान्ति के लिए हड़तालों का चरमोत्कर्ष सार्वजनिक हड़ताल में होता है। क्रान्ति के उपरान्त कारखानों पर श्रमिक संघों का पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है और श्रमिक संघ ही समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार कारखानों का संचालन करते हैं। इसमें राज्य का उन्मूलन हो जाता है और उनके स्थान पर श्रमिक संघों का विशाल संघ कार्य करता है। इसमें भौगोलिक इकाइयों का कोई प्रतिनिधि नहीं होगा वरन् श्रमिक संघों के प्रतिनिधियों द्वारा समाज के विभिन्न भागों का गठन किया जायेगा। यह बहुलवादी सत्ता तथा व्यावसायिक आर्थिक संगठन होगा।

श्रमिक संघवाद (Syndicalism) अराजकतावाद, मार्क्सवाद और श्रमिक संघवाद (Trade Unionism) का समन्वित स्वरूप है। साम्यवाद ने इसकी क्रान्तिकारी भावना, तकनीक तथा शब्दावली को ग्रहण कर लिया है। श्रमिक संघवाद ने फासिस्टवादी अवधारणा को भी अत्यधिक प्रभावित किया है। श्रमिक संघवाद ने इटली, स्पेन और फ्रान्स में सर्वाधिक उन्नति की। इसने अमेरिका में विश्व के औद्योगिक श्रमिकों (Industrial Workers of the World) को भी बहुत प्रभावित किया।

औद्योगीकरण के युग में सामाजिक-आर्थिक स्थिति से उद्भूत स्वप्नदर्शी अव्यावहारिक समाजवाद तथा मार्क्सवादी समाजवाद के अतिरिक्त श्रमिक वर्ग अपनी विभिन्न सामाजिक आर्थिक समस्याओं के समुचित समाधान के लिए निरन्तर सामूहिक प्रयत्न करता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्रमिक संघों ने ब्रिटेन के अतिरिक्त किसी अन्य यूरोपीय देश में कोई प्रगति नहीं की थी और उनकी गतिविधियाँ भी प्रायः प्रतिबन्धित ही रहीं। सन् 1870 के उपरान्त स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ। सन् 1874 एवं सन् 1875 के विधायी अधिनियमों के अन्तर्गत श्रमिक संघों को हड़ताल करने तथा शान्तिपूर्ण धरना देने की अनुमति दे दी गयी। सन् 1889 में लन्दन में गोदी श्रमिकों की विख्यात विशाल एवं सफल हड़ताल के परिणामस्वरूप ब्रिटेन में संगठित श्रमिकों के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रगति हुई। यह अकुशल श्रमिकों की पहली महत्वपूर्ण हड़ताल थी। इस घटना से श्रमिक संघों की

गतिविधियों का, अतीत में कुशल श्रमिकों तक सीमित क्षेत्र से बाहर विशाल अकुशल श्रमिकों तक व्यापक विस्तार हो गया।

यूरोप महाद्वीप में श्रमिक आन्दोलन ने मन्द गति से प्रगति की। सन् 1870 तक फ्रान्स में श्रमिक संघों ने वस्तुतः कोई प्रगति नहीं की थी। सन् 1871 में फ्रान्स तथा प्रशा के युद्ध में फ्रान्स की अपमानजनक पराजय के बाद 18 मार्च, 1871 को श्रमिकों तथा निम्न वर्गों की सम्मिलित सेना, राष्ट्रीय सुरक्षा सेना (National Guard) ने पेरिस पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। थीयर्स द्वारा संचालित फ्रान्स की मध्यमवर्गीय सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा सेना को निःशस्त्र करने का असफल प्रयास किया। यूजीन बर्लिन ने पेरिस के श्रमिकों को राष्ट्रीय सुरक्षा सेना का सक्रिय समर्थन करने के लिए प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप प्रशासनिक अधिकारी पेरिस छोड़ कर वर्साय चले गये। पेरिसवासियों ने अपने प्रतिनिधियों का चुनाव किया और 28 मार्च, 1971 को अपनी सरकार स्थापित की। इस सरकार को कम्यून (Commune) की संज्ञा प्रदान की गयी। कम्यून विरोधियों ने अपनी शक्ति को पुनर्गठित कर लिया। जर्मनी के बिस्मार्क ने नैपोलियन तृतीय के बन्दी सैनिक थीयर्स को वापिस दे दिये। उन्होंने 21 मई, 1871 को पेरिस पर आक्रमण कर दिया। एक सप्ताह तक दोनों पक्षों में भीषण सशस्त्र संघर्ष हुआ और दोनों पक्षों के सहस्त्रों समर्थक यूद्धभूमि में शहीद हो गये। अन्ततोगत्वा थीयर्स के सैनिकों ने पेरिस पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया। कम्यून के सहस्त्रों सैनिकों को निर्वासित कर दिया गया एवं अनेक को विशेष न्यायालयों द्वारा कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इस प्रकार सन् 1871 की पेरिस कम्यून की रक्तरंजित घटनाओं से श्रमिक गतिविधियों का बोध होता है। सन् 1884 में वाल्डेक-रूसो (Waldeck-Rosseau) कानून के अन्तर्गत श्रमिक संघों को वैध स्तर प्रदान किया गया तथा इन संघों को विशाल स्तर पर संघ (Federation) गठित करने की अनुमति दे दी गयी। सन् 1895 में श्रमिक संघवादी (Syndicalist) पद्धति के आधार पर श्रमिकों के सामान्य संघ (General Confederation of Labour) के गठन से इस दिशा में निर्णायक चरण का सूत्रपात हुआ।

सन् 1870 से पूर्व जर्मनी में भी श्रमिक संघों की गतिविधियों का कोई स्पष्ट संकेत दृष्टिगत नहीं होता। साम्राज्यिक औद्योगिक विधि संहिता के अन्तर्गत जर्मनी के श्रमिकों को यद्यपि हड़ताल करने की अनुमति थी परन्तु अमैत्रीपूर्ण सरकार तथा न्यायालयों ने जब कभी और जहाँ कहीं सम्भव हुआ श्रमिकों की गतिविधियों तथा संगठनात्मक प्रक्रिया पर प्रतिबन्ध लगाये। इसके उपरान्त भी जर्मनी के श्रमिक आन्दोलनों ने सरकार तथा नियोजकों (कारखाना स्वामियों अथवा उद्योगपतियों) पर दबाव डालकर जर्मनी के श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इटली, आस्ट्रिया, हंगरी तथा रूस जैसे अपेक्षाकृत कम औद्योगीकृत देशों में श्रमिकों के संघवाद की भूमिका गौण ही रही। इटली में श्रमिक आन्दोलन अनेक छोटे समुदायों में विभाजित था। इनमें सर्वाधिक विशाल श्रमिकों का समाजवादी सामान्य इटेलियन संघ (The Socialist General Italian, Federation of Labour) था, जिसको 1970 में गठित किया गया था। आस्ट्रिया में भी समाजवादी संघों का प्रभुत्व था, परन्तु कृषि प्रधान हंगरी में कोई संगठित श्रमिक संगठन नहीं था। रूस में सन् 1905 तक कोई वास्तविक श्रमिक संघ नहीं था और नाममात्र के संघों का कोई प्रभाव नहीं था।

यूरोपीय देशों के श्रमिकों के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सुधारों के लिए विरोध प्रदर्शनों तथा आन्दोलनों ने अपनी तत्कालीन सरकारों को निम्नवर्गों की उन्नति एवं कल्याण हेतु सामाजिक विधि निर्माण कार्यक्रम को स्वीकार करने के लिए प्रेरित तथा बाध्य किया। राज्य द्वारा व्यक्ति के व्यक्तिगत विषयों में हस्तक्षेप की प्रक्रिया निश्चित रूप से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हस्तक्षेप न करने के उदारवादी सिद्धान्त से विलग तथा हटकर थी और यह एक क्रान्तिकारी कदम था। राज्य को सदैव अपने नागरिकों की उन्नति एवं कल्याण के प्रति सजग तथा चिन्तित रहना चाहिए। आधुनिक काल में इस विचार से अनुप्राणित राज्य को "कल्याण राज्य" (Welfare state) की संज्ञा देते हैं। इस मानव कल्याण से प्रेरित विचार एवं सद्भावना को इंग्लैण्ड तथा यूरोप महाद्वीप के लगभग समस्त राजनीतिज्ञों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

उदात्त मानवीय भावनाओं से प्रेरित एवं अनुप्राणित ईसाई गिरिजाघरों, विशेष रूप से कैथोलिक गिरिजाघरों ने नियोजकों (उद्योगपतियों) तथा श्रमिकों के मध्य संघर्ष की अपेक्षा परस्पर सौहार्द्रता तथा सहयोग के लिए अनुरोध किया। मार्क्स के भौतिकवादी सिद्धान्तों तथा विचारों ने ईसाई धर्म को गहरा आघात पहुँचाया और श्रमिकों के मध्य ईसाई धर्म के प्रभाव को बहुत कम कर दिया था। इस परिप्रेक्ष्य में ईसाई समाजवाद का, यद्यपि यह कोई नया नहीं था, विशेष महत्व था। सन् 1891 में कैथोलिक धर्माध्यक्ष पोप लियो तेरहवें ने ईसाई धर्म की सामाजिक नीति सम्बन्धी अत्यधिक महत्वपूर्ण घोषणा की थी। इस घोषणा में पोप ने समाजवादियों द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति के हनन तथा उग्र विरोध एवं मार्क्स के वर्ग संघर्ष की अवधारणा की कटु आलोचना की तथा अनुरोध करते हुए विचार व्यक्त किया कि राज्य को अपने निर्धन एवं दीनहीन नागरिकों की समुचित सहायता करनी चाहिए और नियोजकों (उद्योगपतियों) तथा श्रमिकों को परस्पर समस्याओं एवं विवादों का ईसाई भ्रातृत्व की पुनीत भावना से समाधान करना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी में समाजवाद में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। मार्क्स का पूँजीवाद का विशद् विश्लेषण वास्तविकता का पृष्ठावरण था, परन्तु यथार्थ में यह एक गहन संवेदनात्मक (भावात्मक) उत्तर था, जिसको विश्लेषण के नाम पर प्रतिपादित किया था। इस सिद्धान्त से श्रमिक वर्ग भविष्य में विजय एवं समाजवादी, स्वर्ण युग की कामना एवं आशा कर सकता था। अस्तु मार्क्स के सिद्धान्त ने श्रमिकों के लिए धर्म का रूप ग्रहण कर लिया था। यद्यपि प्रथम विश्वयुद्ध काल में विभिन्न समाजवादी दल मार्क्सवादी समाजवाद के प्रति उदासीन रहे परन्तु रूस में बोल्शेविकों (साम्यवाद का एक अन्य नाम है। रूसी भाषा में बहुमत के लिए 'Bolshivstvo' अतः उग्र सुधारवादियों को बोल्शेविकी अर्थात् बहुमत के सदस्य कहा जाता था। नरम (Moderate) समाजवादियों को मैनशेविकी जो Menshivstvo से उद्धृत है, अर्थात् अल्पमत है) की विजय से समाजवाद के इतिहास में नया अध्याय जुड़ गया।

रूस में लेनिन ने अपेक्षाकृत अधिक नरम (Moderates) मैनशेविकों से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। लेनिन ने विचार व्यक्त किया था कि पहली (श्रमिक) क्रान्ति रूस जैसे पिछड़े हुए देश में आरम्भ हुई। यही लेनिन का मार्क्सवाद के प्रति प्रमुख सैद्धान्तिक योगदान था। सामाजिक संरचना की शृंखला में पूँजीवाद सर्वाधिक दुर्बल तथा संवेदनशील था। लेनिन ने विचार व्यक्त किया कि युद्ध ने हर स्थान पर पूँजीवाद के पतन को अभिव्यक्त कर दिया, परन्तु अन्य राजतन्त्रों को अपदस्थ करने की प्रक्रिया रूस में आरम्भ होगी।

रूस में क्रान्ति की तैयारी करते समय लेनिन ने समाजवादी विकास की द्वन्द्वात्मक (तर्क संगत) पद्धति में अटूट आस्था के साथ व्यावहारिकता एवं उपयोगितावाद के सुदृढ़ तत्व को समन्वित किया। उसने सहर्ष स्वीकार किया कि श्रमिक वर्ग की चेतना और संगठन को विकसित करने के लिए कुछ संसदीय अनुभव आवश्यक तथा उपयोगी था। जारवादी शासन को अपदस्थ करने के लिए मध्यमवर्गीय व्यक्तियों का क्रान्ति के साथ सक्रिय सहयोग करना आवश्यक था। इस कार्य से रूस सत्तावादी क्रान्ति के बहुत निकट पहुँच जायेगा।

सन् 1917 में केरेन्सकी की प्रान्तीय सरकार स्थापित हो जाने के बाद लेनिन ने मत व्यक्त किया कि श्रमिक वर्ग (सर्वहारा वर्ग) की पर्याप्त सजगता, चेतना तथा सतर्कता ने इसकी स्थापना में योगदान किया, परन्तु श्रमिक वर्ग को क्रान्ति को गति प्रदान करनी चाहिए। लेनिन ने स्वैच्छिक तथा सहज स्वाभाविक क्रान्ति की सम्भावना को अस्वीकार किया। इसी विचार ने लेनिन को केरेन्सकी की सरकार को अपदस्थ करने हेतु सामरिक नीति निर्धारण के लिए प्रेरित किया। इसी उद्देश्य से लेनिन ने दल की केन्द्रीय समिति के संगठन को सुदृढ़ तथा कठोर कर दिया। लेनिन स्वयं संगठन की सामर्थ्य, शक्ति तथा महिमा को व्यक्त करते हैं, "सत्ता के लिए इस संघर्ष में श्रमिकों के पास संगठन के अतिरिक्त अन्य कोई अस्त्र नहीं है।" बोल्शेविक दल ने षड्यन्त्रात्मक पद्धतियों का अनुकरण किया और अक्टूबर, 1917 में केरेन्सकी की अन्तरिम सरकार को अपदस्थ कर दिया। इस सफलता ने लेनिन की अभिधारणा को न्यायसंगत सिद्ध कर दिया। लेनिन की अभिधारणा थी कि सफलता उन व्यक्तियों को ही मिलती है जब शक्तियों की सर्वाधिक श्रेष्ठता निर्णायक बिन्दु पर तथा निर्णायक समय पर केन्द्रित होती है।

क्रान्ति के तत्काल बाद लेनिन ने सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की परिकल्पना को विकसित किया। एक बार सत्ता प्राप्त हो जाने के बाद रूस में विभिन्न क्षेत्रों में विशेष रूप से लेनिन और ट्रॉटस्की (Trostky) के मध्य परस्पर विरोधी विचार तथा दृष्टिकोण प्रकट होने लगे। लेनिन ने राष्ट्रीय तथा विश्वव्यापी स्तर पर स्थायी क्रान्ति के पक्ष में मत व्यक्त किया, जबकि ट्रॉटस्की ने बल देते हुए कहा कि सन् 1920 के दशक में विश्वव्यापी रूपान्तर अनुपयुक्त, असंगत तथा परिस्थितियों के अनुकूल नहीं था। इसका मूल कारण पाश्चात्य क्रान्ति के उज्जवल तथा सुखद भविष्य के प्रति निरन्तर बढ़ता हुआ सन्देह था। श्वेत सेनाओं ने देश के आन्तरिक विकास में हस्तक्षेप किया था, अस्तु बोल्शेविकों को श्वेत सेनाओं का भी सामना करना पड़ा।

सन् 1919 में, हंगरी तथा जर्मनी में स्वैच्छिक तथा सहज स्वाभाविक क्रान्तियों का दमन कर दिया गया था। इसी कारण स्टालिन ने समाजवाद की अभिधारणा को एक देश में प्रस्तुत एवं प्रयुक्त किया। इस एकमात्र अभिधारणा के आधार पर स्टालिन ने सन् 1953 में अपनी मृत्यु के समय तक अपनी सत्ता का मार्क्सवादी लेनिनवादी पुनः संरचना में प्रयोग किया। उसने दलीय संगठन को निर्ममतापूर्वक केन्द्रीकृत कर दिया और इस प्रक्रिया के लिए उसने जी.पी.यू. [(G.P.U.) सोवियत रूस की गुप्त राजनीतिक पुलिस, इसका मुख्य कार्य साम्यवाद के विरोधियों का पता लगाना तथा उनका विनाश करना था, का गठन किया। इसने विरोधियों का पता लगाने के लिए विशेष पद्धतियों का विकास किया। यह रूस की जनता के व्यवहार तथा विचारों की अभिव्यक्ति पर भी अंकुश रखती थी। इसकी गतिविधियाँ मुख्य रूप से ट्रॉटस्की के समर्थकों के विरुद्ध थीं, तथा एन. के. वी. डी. (N.K.V.D.) दो दमनकारी

संस्थाओं का अपने विरोधियों के विनाश करने के उद्देश्य से व्यापक रूप से प्रयोग किया। अस्तु दल अत्यधिक प्रभावशाली बन गया।

स्टालिन ने सोवियट राज्य की कार्यशक्ति तथा औद्योगिक उत्पादन का व्यापक विस्तार करके रूस को शक्तिशाली बनाने के मूल उद्देश्य से समस्त शक्तियों को केन्द्रित तथा समर्पित किया। स्टालिन ने स्वयं कहा, "हम उन्नत देशों से 50 अथवा 100 वर्ष पीछे हैं। हमको इस दूरी को 10 वर्ष में पूरा कर लेना चाहिए। हम इसे करें अथवा वे हमको कुचल देंगे।" परिणामस्वरूप उसकी क्रियान्वयन पद्धतियाँ निर्दयता, निष्ठुरता तथा निर्ममता की चरम सीमा पर पहुँच गयीं। स्टालिन ने अपनी मृत्यु के समय तक रूस की अधिरचना को अधिनायकतन्त्र के रूप में व्यक्तिगत बना दिया था। स्टालिन का मुख्य उद्देश्य विश्व के साम्यवादियों का मास्को के अधीन अखण्ड संगठन बनाना था। सन् 1940 में यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो ने मास्को की अधीनता को अस्वीकार किया। टीटो को स्टालिन के सर्व शक्तिशाली अधिनायकतन्त्रीय आदेश की अवज्ञा के आरोप में सर्वाधिक शक्तिशाली कामिनफार्म (Cominform) से निष्कासित कर दिया गया। सन् 1956 से रूस की नीतियों में आमूल परिवर्तन हो गया। खुश्चेव ने स्टालिन की नीतियों को त्याग दिया। चीन की साम्यवादी दल के सर्वोच्च माओत्से तुंग ने सोवियट संघ से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

तत्कालीन श्रमिकों की दीनहीन तथा दयनीय स्थिति के परिणामस्वरूप उद्भूत समाजवाद, श्रमिक संघ आन्दोलन, सोवियट रूस में साम्यवाद के अतिरिक्त कुछ अन्य श्रमिकों के कल्याण से प्रेरित आन्दोलनों का भी आविर्भाव हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में विख्यात विचारक प्रोधों (Proudhon) ने विचार व्यक्त किया कि सम्पत्ति एक प्राकृतिक अधिकार नहीं वरन् समाज के हृदय का कैंसर था। पूर्ण समानता के द्वारा इस सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकार को समाप्त कर देना चाहिए। उसने आगे कहा कि श्रमिक संघ नये समाज का आधार होगा, जिसमें बिना सरकार के अथवा अराजकतावाद की स्थिति में जनता स्वयं पर शासन करेगी। सम्पत्ति और सरकार के उन्मूलन से व्यक्ति अपने अन्तर्निहित उत्कृष्ट गुणों के समुचित विकास के लिए स्वतन्त्र होगा।

रूस के ग्रामीण शिष्ट तथा भद्र पुरुष बाकुनिन पर प्रौधों के विचारों का सर्वाधिक प्रभाव था। वह व्यावसायिक क्रान्तिकारी बन गया। वह आस्ट्रिया साम्राज्य का विनाश करना चाहता था तथा स्लैव (Slav) जनता का एक स्वतन्त्र संघ (Federation) बनाना चाहता था। उसका दृढ़ विश्वास था कि राज्य, पूँजीवाद तथा धर्म मानव विकास में बहुत बड़ी बाधा थे। अस्तु उसने इन संस्थाओं के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रौधों और बाकुनिन दोनों ने ही केन्द्रीकृत राज्य की कटु आलोचना की और सर्वाधिक विकेन्द्रीकृत तथा लोकतान्त्रिक राज्य का प्रबल समर्थन किया। बाकुनिन ने मार्क्स की कटु आलोचना करते हुए कहा, "यह यहूदी, एक जर्मन तथा एक हीगल समर्थक तीनों रूपों में राज्य का उपासक था।"

तत्कालीन आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाओं के पूर्ण उन्मूलन के लिए हिंसा की आवश्यकता में बाकुनिन का मार्क्स की अपेक्षा अधिक विश्वास था। हिंसा सामान्य जनता को पुनर्जीवित करेगी। शिक्षित नवयुवकों के समूह को अराजकता तथा अव्यवस्था का सूत्रपात करना चाहिए। यह समूह आतंकवादी तथा क्रान्तिकारी गतिविधियों से जनता को प्रेरित करेगा। मार्क्स एवं बाकुनिन दोनों ही एक-दूसरे के कटु आलोचक थे। मार्क्स ने बाकुनिन की आलोचना करते हुए कहा, "बिना कुरान का मोहम्मद था।"

तत्कालीन श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के परिणामस्वरूप एक अन्य श्रमिक विचारधारा श्रमिक संघवाद का आविर्भाव हुआ। तत्कालीन यूरोपीय समाजवाद नरम तथा शान्तिपूर्ण परिवर्तन की दिशा में उन्मुख हो रहा था। इसके विरोध स्वरूप श्रमिक संघवाद का आविर्भाव हुआ था। श्रमिक संघवादियों (Syndicalists) ने मत व्यक्त किया कि संसदीय कार्यवाही के द्वारा श्रमिकों की मुक्ति सम्भव नहीं होगी। अर्थव्यवस्था को गतिहीन तथा अशक्त करने की प्रत्यक्ष कार्यवाही आवश्यक थी और प्रत्यक्ष कार्यवाही के लिए तोड़फोड़ एवं हड़ताल का आश्रय लेना भी आवश्यक था। उसी स्थिति में श्रमिकों की मुक्ति सम्भव थी। श्रमिक संघवाद के संस्थापक जार्ज सोरेल (Georges Sorel) के कार्यों के परिणामस्वरूप यह आन्दोलन फ्रान्स में लोकप्रिय था। उसने हर स्थान पर पतनोन्मुख स्थिति का अवलोकन किया और उसने यह निष्कर्ष निकाला कि स्वैच्छिक एवं सहज स्वाभाविक आन्दोलनों ने ही इतिहास का निर्माण किया था। जनता में ये आन्दोलन समय समय पर होते रहे। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सोरेल इटली के बुद्धिजीवियों की राजनीतिक गतिविधियों में व्यस्त हो गया। इटली के विभिन्न समूहों ने उसके विचारों तथा भावनाओं का समर्थन किया। श्रमिक संघवाद से प्रभावित फ्रान्स के श्रमिक संघों ने सन् 1906 में सैन्यवादी दृष्टिकोण गहण कर लिया। स्पेन में श्रमिक संघवाद के परिणामस्वरूप अनेक विनाशकारी एवं भीषण हिंसात्मक हड़ताले हुई।

श्रमिक संघवाद के उद्भव एवं विकास के उपरान्त भी अधिकांश समाजवादी आन्दोलनों की प्रमुख शक्ति राजनीतिक क्षेत्र में ही व्यस्त रही। इनका मुख्य उद्देश्य अपनी संसदीय स्थिति को सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाना था। अधिकांश समाजवादी, मार्क्स के विचारों तथा सिद्धान्तों के प्रबल समर्थक थे, परन्तु सिद्धान्त तथा कार्यान्वयन पद्धति के सम्बन्ध में परस्पर कटु विवाद थे। यद्यपि मार्क्स ने शीघ्र ही पूँजीवाद के पतन की भविष्यवाणी की थी, परन्तु अनेक समाजवादी पूँजीवादी व्यवस्था की निरन्तर प्रगति से अत्यधिक चिन्तित थे। बर्न्सटिन को पूर्ण विश्वास था कि भविष्य में पूर्वापेक्षा अधिक सम्पन्नता होगी और सम्पत्ति का अधिक समान रूप से वितरण होगा। उसके विचार तथा भावनाएँ इंग्लैण्ड के फेबियन समर्थकों के लगभग अनुरूप थे। विद्वान इतिहासकार जी.डी.एच. कोल कहते हैं, "पश्चिमी यूरोपीय समाजवादी, यह स्वयं को कुछ भी कहता है, एक क्रान्तिकारी नहीं वरन् सुधारवादी आन्दोलन था।"

कार्यान्वयन पद्धतियों में मतभेदों के उपरान्त भी सन् 1889 में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का शुभारम्भ किया गया। मार्क्स तथा उसके अनुयायियों का दृढ़ विश्वास था कि समाजवादी आन्दोलन का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय होना चाहिए। उन्होंने इतिहास को वर्ग संघर्ष की दृष्टि से देखा था परन्तु यह अब तक विवादास्पद विषय है। उनके विचार से समाजवाद की उन्नति तथा विकास के लिए विभिन्न राष्ट्रों के परस्पर मतभेदों तथा सशस्त्र संघर्षों की अपेक्षा वर्ग विभाजन तथा वर्ग संघर्ष अधिक महत्वपूर्ण है। अस्तु सन् 1889 में एक नवीन समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय (संगठन) स्थापित किया गया। अब यूरोपीय समाजवादी दलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। अस्तु अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद के समर्थकों को आशा एवं विश्वास था कि द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय उनके प्रयासों को संगठित करके उन्हें समान नीतियों एवं कार्यान्वयन पद्धतियों से अवगत करायेगा।

सन् 1900 में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय (Second International) के नाम से विख्यात संस्था का अधिवेशन फ्रान्स की राजधानी पेरिस में हुआ। इस समाजवादी संस्था ने विभिन्न

समाजवादी दलों के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में बहुत सहायता की और समस्त सदस्यों को संयोजित करने के लिए सुगठित प्रशासनिक तन्त्र की व्यवस्था की। एक अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय तथा एक अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी कार्यालय स्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त एक संसदीय समिति का भी गठन किया। सचिवालय का मुख्यालय ब्रुसेल्स में था तथा एमिली बैंडर बेल्डे इसका प्रथम अध्यक्ष था। अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद कार्यालय में प्रत्येक समाजवादी सदस्य दल के दो प्रतिनिधि थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में आयोजित अधिवेशनों में समाजवादी गतिविधियाँ; राजनीतिक गतिविधियाँ होनी चाहिए, सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया।

इस प्रकार द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय ने राजनीतिक गतिविधियों में अविश्वास रखने वाले तथा हिंसात्मक कार्यवाही का समर्थन करने वाले अराजकतावादियों को विलग कर दिया। सन् 1907 में आयोजित द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय के स्टअगार्ड अधिवेशन में समस्त दलों ने लेनिन, मार्टोव तथा रोजा लक्समबर्ग के प्रस्ताव, कि यदि प्रथम विश्वयुद्ध होने की सम्भावना हो तो समस्त श्रमिक एवं उसके संसदीय प्रतिनिधि अपने देश की सरकार को युद्ध की विभीषिका से विलग रखने का प्रयत्न करें, का प्रबल समर्थन किया। अनेक वर्षों तक द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय अपना युद्ध के प्रति विरोध प्रकट करता रहा और युद्ध रोकने का दृढ़ निश्चय व्यक्त करता रहा। समस्त नेताओं के युद्ध के प्रति विरोध के विचार एवं दृष्टिकोण भी पूर्णरूप से समनुरूप नहीं थे। इनमें से कुछ नेताओं ने राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर युद्ध को न्यायोचित कहा। सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हो जाने के समय समाजवादियों ने वर्गगत निष्ठा तथा सुदृढ़ता की अपेक्षा राष्ट्र के प्रति निष्ठा तथा देशभक्ति की उदात्त भावना अभिव्यक्त की। केर हार्डी (Keir Hardie) एवं बर्न्सटिन जैसे कुछ साहसी व्यक्ति इसके अपवाद थे। इस प्रकार लगभग समस्त देशों के समाजवादी दल अन्तर्राष्ट्रीय एकता के सिद्धान्त को विस्मृत कर अपने देशों की सरकारों की युद्ध नीति का समर्थन करने लगे। परिणामस्वरूप अगस्त, 1914 में द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय का पतन हो गया। इससे समाजवाद विलुप्त नहीं हुआ वरन् समाजवादी आन्दोलन में पूर्वापेक्षा अधिक प्रगति हुई परन्तु उसका स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय की अपेक्षा राष्ट्रीय हितों तथा भावनाओं से अधिक प्रभावित हुआ। समाजवाद का, विश्वव्यापी वयस्क मताधिकार तथा औद्योगिक श्रमिकों के विकास के माध्यम से व्यापक प्रचार तथा प्रसार हुआ। श्रमिक शक्तिशाली सार्वजनिक आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो गये। उद्भूत शक्ति ने सरकारों को चेतावनी दी तथा सावधान किया। निरन्तर बढ़ती हुई श्रमिक शक्ति ने श्रमिकों में नवीन आशा का संचार किया कि एक दिन निश्चित रूप से पूर्वापेक्षा अधिक न्यायपूर्ण एवं शान्ति पूर्ण समाज की स्थापना होगी, परन्तु समाजवादी एकरूपता, भौतिक दृष्टि से समानता एवं राज्य विहीन समाज की स्थापना का आदर्श एक दिवास्वप्न बन गया।

बींसवी शताब्दी के मध्य तक समाजवाद का अधिकांश उत्साह एवं उर्जा समाप्त हो चुकी थी। मानव कल्याण विश्व की अधिकांश सरकारों का मुख्य कार्य तथा दायित्व बन गया। सन् 1945 के उपरान्त स्वतन्त्र होने वाले देश सैद्धान्तिक दृष्टि से समाजवाद का व्यापक प्रचार एवं प्रतिपादन कर रहे हैं परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से सरकारों की नीतियाँ तथा उनका कार्यान्वयन समाजवाद की प्राप्ति की अन्तर्निहित आशा को मृगतृष्णा सिद्ध कर रहा है। यूरोप के आधुनिक समाजवादियों ने स्पष्ट रूप से वर्ग संघर्ष तथा समाजवाद की प्राप्ति के लिए क्रान्ति की आवश्यकता को अस्वीकार किया है। कल्याण राज्य, उदारवाद तथा लोकतान्त्रिक समाजवाद के प्रवर्तकों तथा प्रबल समर्थकों के मस्तिष्क में समाजवाद की प्रेरणा तथा उसके रचनात्मक तत्व ही शेष रह गये।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. इंग्लैण्ड में सन् .... में कारखाना अधिनियम पारित किया गया—
   (क) 1831 (ख) 1832 (ग) 1833 (घ) 1834
2. प्रशा में सन् .... में कारखाना कानून पारित किया गया—
   (क) 1838 (ख) 1839 (ग) 1840 (घ) 1841
3. बेल्जियम में सन् .... तक श्रमिक संघों के गठन पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था—
   (क) 1865 (ख) 1866 (ग) 1867 (घ) 1868
4. जर्मनी में सन् .... तक किसी प्रकार का कोई श्रमिक आन्दोलन नहीं हुआ—
   (क) 1868 (ख) 1869 (ग) 1870 (घ) 1871
5. विख्यात कृति 'मनुष्य के अधिकार' के लेखक .... थे—
   (क) फ्रेड्रिक ऐंगेल्स (ख) राबर्ट ओवन (ग) टामस पेन (घ) विलियम गोडविन
6. विख्यात कृति 'इंग्लैण्ड के श्रमिक वर्गों की स्थिति' के लेखक .... थे—
   (क) जेरेमी बैन्थम (ख) जान जेम्स मिल (ग) फ्रेड्रिक ऐंगल्स (घ) मैकियावली
7. सन् .... में सर्वप्रथम 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग हुआ—
   (क) 1826 (ख) 1827 (ग) 1828 (घ) 1829
8. कार्ल मार्क्स का जीवन काल .... था—
   (क) 1815—1885 (ख) 1818—1883
   (ग) 1820—1885 (घ) 1817—1882
9. सन् .... में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघों का लन्दन में गठन किया गया—
   (क) 1864 (ख) 1865 (ग) 1866 (घ) 1868
10. रूस में सन् .... तक कोई वास्तविक श्रमिक संघ नहीं था—
    (क) 1902 (ख) 1903 (ग) 1904 (घ) 1905

[उत्तर—1. (ग), 2. (ख), 3. (ख), 4. (ग), 5. (ग), 6. (ग), 7. (ख), 8. (ख), 9. (क), 10. (घ)।]

15

सन् 1848 की क्रान्ति की यूरोप के अन्य भागों में प्रतिध्वनि

[ECHOES OF THE REVOLUTION OF 1848 IN OTHER PARTS OF EUROPE]

आधुनिक यूरोप के इतिहास में वर्ष 1848 एक महत्वपूर्ण वर्ष था। यह क्रान्तियों का वर्ष था। सन् 1848 के प्रारम्भ में केन्द्रीय यूरोप बेचैन, विचलित और आशान्वित था। हर जगह व्यक्ति पुरानी व्यवस्था से ऊब चुके थे और परिवर्तन माँग रहे थे। फ्रान्स में लोकतान्त्रिक विजय की सम्पूर्णता ने समस्त यूरोप को रोमांचित कर दिया और हर जगह उदारवाद की उत्तेजित भावनाओं ने अपने समस्त अवरोधों को ध्वस्त कर दिया और समस्त महाद्वीप पर अप्रतिरोध्य ढंग से उमड़ पड़ा। पेरिस में क्रान्ति के बाद कुछ सप्ताहों में यूरोप में सरकारों के पतन और स्वतन्त्र हुए व्यक्तियों के हर्षोल्लास की गूँज थी। इस भयंकर उथल-पुथल का सर्वाधिक शक्तिशाली प्रभाव मध्य और पश्चिमी यूरोप में था। विएना से पेरिस तक और बर्लिन से नेपल्स तक चारों तरफ जनता के शक्तिशाली विद्रोह हुए, जिसने क्रान्ति में अन्तर्निहित शक्ति और चेतना को प्रभावित किया। आस्ट्रिया साम्राज्य की नींव हिल गयी। विएना "यूरोपीय प्रतिक्रिया का मुख्यालय" अपूर्व हर्षोल्लास में व्यस्त था और मैटरनिख को त्याग-पत्र देने के लिए विवश कर दिया। मैटरनिख का पतन अत्यधिक महत्वपूर्ण था। यह नये युग की जाग्रत चेतना के समक्ष पुरातन व्यवस्था के पतन की प्रतीक थी। इसका प्रभाव तात्कालिक था। केवल एक सप्ताह में हंगरी, जर्मनी और इटली जन विद्रोह की आग में जल रहे थे और प्रतिक्रियावादी शक्तियों को हर जगह ध्वस्त कर दिया गया। कुछ समय के लिए राष्ट्रवाद और लोकतन्त्र की वैधता के सिद्धान्त और क्रूर निरंकुशता पर विजय हुई। इंग्लैण्ड ने भी इस भूकम्प का झटका अनुभव किया। चार्टिस्ट आन्दोलन (सन् 1837-38 में इंग्लैण्ड के श्रमिकों द्वारा राजनीतिक अधिकारों के लिए किया गया, जिसके द्वारा वे अपनी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। इस आन्दोलन को लोक माँग-पत्र (Peoples Charter) भी कहा गया है, जिसमें श्रमिकों की निम्न माँगों को सम्मिलित किया गया था : (1) वयस्क मताधिकार, (2) गुप्त मतदान, (3) संसद के वार्षिक चुनाव, (4) संसद सदस्यों को वेतन आदि देने की व्यवस्था, (5) समान

निर्वाचन क्षेत्र, (6) निर्वाचन की अर्हताओं में से संक्षिप्त होने की अर्हता की समाप्ति) अपने शीर्ष पर था और आयरलैण्ड में "युवा आयरलैण्ड" दल की गतिविधियाँ सशस्त्र विद्रोह के रूप में चरमोत्कर्ष पर थी। यूरोप ने सम्भवतः इससे पूर्व कभी भी क्रूर निरंकुश अत्याचार से स्वयं को मुक्त करने और अत्यधिक व्यग्रतापूर्वक पूर्णरूप से अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र राजनीतिक जीवन की प्रबल आकांक्षा से अनुप्राणित जनता का उनमत्त उत्साह नहीं देखा था।

आस्ट्रिया साम्राज्य की स्थिति (Condition of the Austrian Empire)—इस समय के विषय में लिखते हुए एक आलोचक ने उचित ही लिखा है, "आस्ट्रिया विशुद्ध रूप से एक काल्पनिक नाम है, सुस्पष्ट रूप से विभाजित जनता के समूह के लिए एक पारम्परिक शीर्षक है।" आस्ट्रिया साम्राज्य अनेक राज्यों का एक संयुक्त रूप था। अनेक भाषाएँ बोलने वाली अनेक जातियाँ थीं और परस्पर एक-दूसरे के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। इस प्रकार आस्ट्रिया में जर्मन, बोहेमिया में जैक, हंगरी में मैग्यार, गैलेशिया में पोल्स, लोम्बार्डी और वेनिस में इटलीवासी थे। आस्ट्रिया के दक्षिण पूर्व में हंगरी के बगल में स्लावों की बहुत बड़ी संख्या थी। इनमें क्रोट सर्वाधिक युद्धप्रिय एवं बुद्धिमान थे लेकिन भौगोलिक दृष्टि से ये समस्त जातियाँ स्पष्ट रूप से एक-दूसरे से विलग नहीं थीं। जर्मन और मैग्यार दो प्रमुख एवं प्रभावशाली जातियाँ थीं, लेकिन स्लावों की जनसंख्या सर्वाधिक थी। आस्ट्रिया की समस्त जनसंख्या जातिगत चेतना एवं सजगता से अन्दर ही अन्दर उत्तेजित थी और साम्राज्य की प्रत्येक जाति की स्वयं की उग्र राष्ट्रीय भावनाएँ थीं। हैप्सबर्ग राजतन्त्र के समक्ष विचित्र समस्या थी। यदि आस्ट्रिया की सरकार ने अपने अधीन विभिन्न राष्ट्रीयताओं को उदारतापूर्वक स्व-शासन दे दिया होता, समस्या का स्वतः ही सन्तोषजनक ढंग से समाधान हो जाता। लेकिन समस्त समस्यायों की 'मूल जड़ मैटरनिख' के कारण सम्भव नहीं था। उसकी नीति यथास्थिति बनाये रखने की थी और उसने साम्राज्य के स्थायित्व को "चीन के निश्चलता के सिद्धान्त" (Chinese Principles of immobility) पर बनाये रखने का प्रयास किया। उसके मार्गदर्शन में सरकार ने निरंकुशतावाद एवं केन्द्रीयकरण के सिद्धान्तों को कार्यान्वित किया था। राजनीतिक स्वतन्त्रता का सर्वथा अभाव था। प्रेस और शिक्षा पर कठोर नियन्त्रण था। पुलिस प्रणाली सक्रिय एवं शक्तिशाली थी। व्यापार मन्द पड़ गया था, कृषि का ह्रास हो गया था। सामन्तों के क्रूर अत्याचारों से जनसमुदाय त्रस्त था। सर्वत्र ठहराव था और देश घुटन महसूस कर रहा था।" "विभाजन करो और शासन करो" की नीति द्वारा अधीन राष्ट्रीयताओं को परस्पर युद्धरत करके अवरुद्ध कर दिया था।

मैटरनिख की प्रणाली कुछ समय के लिए सफल रही। आस्ट्रिया को समस्त विश्व से अलग रखने के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया सन् 1830 की क्रान्ति के प्रभाव से बच गया। लेकिन सन् 1848 में लुईस फिलिप का पतन मात्र एक चिंगारी था, जिसने विश्व को भीषण अग्नि कांड में बदल दिया। सन् 1848 की फ्रान्स की क्रान्ति शताब्दी की सर्वाधिक व्यापक उठा-पटक का संकेत था। बाल्टिक सागर से भू-मध्य सागर एवं फ्रान्स से रूस की सीमाओं तक विद्रोह आरम्भ हो गये। प्रतिक्रिया की समस्त प्रणाली अवर्णनीय अस्त-व्यस्तता में ध्वस्त हो गयी। 'महान् मध्य-शताब्दी' जनता के विद्रोह आरम्भ हो गये और यूरोप में सर्वाधिक व्यापक खलबली हुई। इस खलबली का मुख्य केन्द्र विएना था जो अब तक स्थापित शान्ति और व्यवस्था का तरंग-रोध था। आस्ट्रिया के साम्राज्य में यूरोपीय इतिहास का सर्वाधिक उलझा हुआ अध्याय आरम्भ हुआ। कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि आस्ट्रिया का पूर्ण विनाश हो जायेगा जैसे कि वह एक महान् साम्राज्य के रूप में अदृश्य होने वाला था।

हंगरी में कौसुथ की गतिविधियाँ (Activities of Kossuth in Hungary)—जनता की आकांक्षाओं को शान्त कर दिया लेकिन उनको समाप्त नहीं किया गया था। मैग्यार वंशज अपने राष्ट्रीय दावों को मान्यता देने के लिए निरन्तर आन्दोलन करते रहे और हंगरी की राज भाषा के रूप में लैटिन भाषा के स्थान पर अपनी भाषा को प्रतिष्ठित करवाने में सफलता प्राप्त की। हंगरी की संस्थाएँ मध्यकालीन थीं। समस्त राजनीतिक सत्ता कुलीन वर्ग में निहित थी और वे करों के भुगतान से भी मुक्त थे। लुईस कौसुथ के नेतृत्व में पश्चिमी यूरोप के विचारों से पोषित उदारवादी और लोकतान्त्रिक दल का गठन किया गया। मैग्यार वंशज एवं युवा वकील कौसुथ हंगरी के महान् नायकों में एक था, और फ्रान्सिस डीक (Francis Deak) का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक नहीं था, लेकिन उसकी देश के प्रति सेवाएँ अपेक्षाकृत अधिक ठोस और दीर्घकालीन थीं। कौसुथ ने मैग्यार भाषा में जनता में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से समाचार-पत्र प्रकाशित किया। उसने हंगरी की संसद में विचार-विमर्श का विवरण प्रकाशित करना आरम्भ किया। जब इन विवरणों के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, उसने इन विवरणों को अश्म मुद्रित कर जनता में वितरित किया लेकिन जब सरकार ने अश्म मुद्रण पर प्रतिबन्ध लगा दिया, उसने हस्तलिखित प्रतियाँ जनता को दीं। अन्ततोगत्वा उसको बन्दी बना लिया गया और तीन वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। इस अवधि में उसने अंग्रेजी भाषा का गहन अध्ययन किया। सन् 1840 में उसको मुक्त कर दिया गया और समाचार-पत्र का सम्पादन करने की अनुमति दे दी गयी।

कौसुथ इस युग के महान् लोकतान्त्रिक आदर्शों का साकार रूप था। उसने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार की माँग की। उसने अपने ओजस्वी एवं प्रभावशाली भाषण द्वारा जनमत तैयार किया जिसने परिवर्तन की प्रबल माँग की। उत्साही उदारवादी विरोध निरन्तर उग्र हो रहा था। सन् 1847 में डीक द्वारा निर्मित कार्यक्रम प्रकाशित किया। 3 मार्च, 1848 को हंगरी की संसद में उसने समय एवं जनता की उत्तेजित भावनाओं को अभिव्यक्त किया और आस्ट्रिया की समस्त प्रशासनिक प्रणाली की कटु आलोचना की। इस भाषण का तात्कालिक प्रभाव केवल हंगरी में ही नहीं वरन् आस्ट्रिया में भी हुआ। इस भाषण को जर्मन भाषा में अनुवादित कर प्रकाशित किया गया जिसने विएना की जनता को अत्यधिक उत्तेजित किया।

आस्ट्रिया साम्राज्य में विद्रोह (Revolution in Austrian Empire)—विस्फोटक स्थिति को अपेक्षित चिंगारी सन् 1848 की फ्रान्स की क्रान्ति से मिली। समस्त आस्ट्रिया साम्राज्य में सर्वाधिक व्यापक विद्रोहों के लिए यह संकेत था। मिलान और वेनिस, विएना, बोहेमिया और सर्वाधिक गम्भीर हंगरी में विद्रोह आरम्भ हो गये। आस्ट्रिया साम्राज्य में पाँच मुख्य विद्रोह हुए। अनेक भाषा-भाषी साम्राज्य पूर्ण विनाश की ओर अग्रसर प्रतीत हुआ। हैप्सबर्ग राजतन्त्र जो एक युग से निरंकुशतावाद और विशेषाधिकारों का मुख्य सहारा और तरंग-रोध था, पतन के कगार पर खड़ा था।

विएना में विद्रोह (Revolt in Vienna)—विद्यार्थियों एवं श्रमिकों द्वारा संगठित विद्रोह विएना में आरम्भ हो गया। सैनिकों ने गोलियाँ चलायीं और परिणाम भीषण रक्तपात था। अवरोधक खड़े किये गये। सैनिकों और जनता के मध्य घमासान संघर्ष हुआ। जनसमूह उमड़ पड़ा और शाही महल में पहुँचा। "मैटरनिख को हटाओ" (Down with the Matternich) का नारा लगाते हुए उस विशाल कक्ष, जिसमें संसद का अधिवेशन हो रहा

था, आक्रमण कर दिया। मैटरनिख जो पिछले 39 वर्षों से प्रतिक्रिया, रूढ़िवादिता, निरंकुशता, क्रूर एवं निर्मम दमन, यथास्थिति के समर्थन का मुख्य स्रोत था, को विवश होकर त्याग-पत्र देना पड़ा और छद्म भेष में इंग्लैण्ड पलायन करना पड़ा। वह अपनी प्रशासनिक व्यवस्था की उन शक्तियों द्वारा विनाश का स्वयं साक्षी था, जिन शक्तियों से उसने जीवनपर्यन्त घृणा की। उसके पतन से प्राचीन शासन धराशायी हो गया। उसके पतन का समस्त यूरोप में अब तक अजेय एवं अभेद्य प्रणाली के पतन के रूप में अपूर्व हर्षोल्लास के साथ उत्सव मनाया गया। वाटरलू के उपरान्त यह सर्वाधिक सुखद एवं आश्चर्यजनक समाचार था।

यह आन्दोलन आंशिक रूप से जनता का और आंशिक रूप से बुद्धिवादियों का था और इसका सर्वोपरि उद्देश्य लोकतान्त्रिक था। विएना अब विद्यार्थियों और नागरिकों के हाथ में था। सम्राट फर्डीनेण्ड को उदारवादी संविधान स्वीकृत करने के लिए बाध्य किया गया। राष्ट्रीय विधान सभा का आह्वान करने के लिए सहमत होने के उपरान्त वह इन्सबर्क (Innsburck) भाग गया। विधान सभा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि कृषकों के ऊपर सामन्तों के विविध रूपों में भार की समाप्ति थी। विएना में अनेक उपद्रव हुए। फर्डीनेण्ड ने अपने 18 वर्षीय भतीजे फ्रान्सिस जोसेफ प्रथम के पक्ष में पद-त्याग दिया।

बोहेमिया में विद्रोह (Revolt in Bohemia)—बोहेमिया में जैक (Czechs) समुदाय के व्यक्तियों ने अपनी भाषा और इतिहास के अध्ययन को पुनर्जीवित किया और साम्राज्य की अन्य स्लाव जनता से समान बन्धुता को मान्यता देने का आग्रह किया। कुछ अदूरदर्शी केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय भाषाओं के पुनर्जीवन को इस आशा से प्रोत्साहित किया था कि जनता का ध्यान राजनीति से हट जायेगा, लेकिन भाषाशास्त्रीय समितियाँ राष्ट्रवादी प्रचार का बाह्य रूप थीं। प्रान्तों में कृषक समुदाय ने अत्यधिक कष्टदायक सामन्तवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध विरोध व्यक्त करना आरम्भ कर दिया था। कुलीनतन्त्र अब भी असहाय कृषकों का दमन कर रहा था।

इस आन्दोलन का केन्द्र बोहेमिया की राजधानी प्रेग (Prague) था। यहाँ केवल दो जातियाँ थीं। जर्मन समुदाय के व्यक्ति धनी, सम्पन्न, एवं शिक्षित थे, लेकिन अल्पमत में थे। जैक, महान् स्लाव जाति की एक शाखा के व्यक्ति निर्धन एवं दरिद्र थे, लेकिन उनका बहुमत था। उनकी प्रबल आकांक्षा थी कि बोहेमिया केवल सम्राट के अधीन एक स्वतन्त्र राज्य हो। बोहेमिया की जनता ने कुलीनों पर कर, राष्ट्रीय व्यय पर राष्ट्रीय संसद का नियन्त्रण, प्रेस को पूर्वापेक्षा अधिक स्वतन्त्रता, सार्वजनिक सभा आयोजित करने और समुदाय (Association) बनाने के अधिकार की माँग की। इसके साथ ही जर्मनवासियों के समान अधिकार और अपने राज्य के लिए स्व-शासन की भी माँग की। जनता ने विद्रोह कर दिया। एक नया संविधान बन गया और आस्ट्रिया के सम्राट को जैक (Czech) सरकार को मान्यता देने के लिए बाध्य किया गया। आन्दोलन राष्ट्रवादी एवं स्पष्ट रूप से जर्मन विरोधी था। सन् 1848 में प्रेग में स्लाव काँग्रेस का आह्वान किया गया। इसका उद्देश्य पश्चिमी स्लाव जातियों को संगठित करना था। जैक समुदाय ने बोहेमिया का किसी भी जर्मन प्रभुत्व वाले राज्य के साथ विलय की किसी भी योजना का प्रबल विरोध किया था। आस्ट्रिया के सम्राट ने बोहेमिया की माँगों को स्वीकार कर लिया था।

मिलान और वेनिस में उपद्रव—विएना के पश्चिम में स्थित आस्ट्रिया के कुछ प्रान्तों ने कुछ इसी प्रकार की माँग की। आस्ट्रिया साम्राज्य को प्रभावित करने वाला अन्य सशस्त्र

जनान्दोलन मिलान और वेनिस में हुआ। आस्ट्रिया की सेना को निकाल दिया और शीघ्र ही आस्ट्रिया को सार्डीनिया-पीडमोन्ट के राजा चार्ल्स एल्बर्ट के नेतृत्व में इटली के स्वतन्त्रता संग्राम का सामना करना पड़ा। जहाँ तक आस्ट्रिया का सम्बन्ध था, यह आन्दोलन राष्ट्रीय था। (इसका विस्तृत विवरण इटली में क्रान्ति के अन्तर्गत पढ़ें।)

हंगरी में विद्रोह (Revolt in Hungary)—विएना में विद्रोह की प्रतिक्रिया हंगरी में हुई। अन्तिम जनान्दोलन का मुख्यालय हंगरी में बुडापेस्ट था। यह मैग्यार आन्दोलन था और इसका उद्देश्य राष्ट्रीय स्वायत्तता और संवैधानिक सरकार था। सन् 1847 में डीक द्वारा तैयार और प्रकाशित कार्यक्रम में कुलीनों पर करारोपण, समस्त राष्ट्रीय व्यय पर संसद का नियन्त्रण, अपेक्षाकृत अधिक प्रेस की स्वतन्त्रता और सार्वजनिक सभाएँ आयोजित करने और समुदाय बनाने के अधिकार की माँग की थी। हंगरीवासी पहले से ही विएना की प्रतिक्रियावादी सरकार के विरुद्ध युद्ध की तैयारी कर रहे थे। वे विएना में विद्रोह और मैटरनिख के पतन का समाचार सुनकर अत्यधिक उत्तेजित हो गये। कौसुथ के नेतृत्व में उन्होंने एक अलग संसदीय सरकार एवं उदारवादी सुधारों की माँग की। यथार्थ में वे हंगरी का एक स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक राज्य के रूप में निर्माण करना चाहते थे, जिसका हैप्सबर्ग साम्राज्य के साथ विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत सम्बन्ध होगा। अतीव आवश्यकता ने आस्ट्रिया के सम्राट को विद्रोहियों की माँगों को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। तदुपरान्त हंगरीवासियों ने अपनी संसद में विख्यात 'मार्च कानून' (March Laws) पारित किये। इन कानूनों ने सामन्तवाद और कुलीनों के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया और जूरी द्वारा विवाद की सुनवायी एवं निर्णय, प्रेस की स्वतन्त्रता और धार्मिक स्वतन्त्रता का सूत्रपात किया। लेकिन हंगरी का आन्दोलन गहन राष्ट्रवादी और अनन्य था। कौसुथ एवं उसके मैग्यार सहयोगियों ने उग्र भावावेश में अपने स्वयं के राष्ट्रीय अधिकारों का दावा किया, लेकिन हंगरी की सीमाओं के अन्दर ही सर्ब (Serbs) और क्रोट (Croates) के दावों को मान्यता देने से मना कर दिया। क्रोट और सर्ब में राष्ट्रीय स्व-अभिव्यक्ति की मैग्यार के अनुरूप ही उग्र उत्साह एवं व्यग्रता थी। इन लोगों ने मैग्यार के प्रभुत्व के दावे का दृढ़ता के साथ विरोध किया।

हंगरी में गृह युद्ध (Civil War in Hungary)—कौसुथ ने सर्ब और क्रोट के साथ समझौता करने से मना कर दिया, परिणामस्वरूप पाँचवाँ क्रान्तिकारी आन्दोलन आरम्भ हो गया जो अन्तर्निहित भावनात्मक दृष्टि से हंगरीवासियों के विरुद्ध था, आस्ट्रियावासियों के विरुद्ध नहीं था। इसका केन्द्र इलीरिया (Illyria) में अगराम (Agram) था। इसका मुख्य उद्देश्य क्रोट, स्लोव (Slovenes) और सर्बों को एकता के सूत्र में बाँधना तथा कौसुथ की मैग्यारीकरण की नीति का दृढ़ता के साथ विरोध करना था। क्रोटवासियों की संसद ने नवनियुक्त राज्यपाल बैन जैलाकिक (Ban Jellacic) के नेतृत्व में मैग्यार सरकार के आदशों की अवज्ञा करना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप सर्ब एवं मैग्यार दोनों ही परस्पर सशस्त्र संघर्ष में व्यस्त हो गये जो दोनों के हितों के लिए अत्यधिक घातक सिद्ध हुआ।

सन् 1849 में हंगरी में भीषण युद्ध हुआ। रूस के जार निकोलस प्रथम ने आस्ट्रिया की सहायता के लिए अपनी शक्तिशाली सेना भेजी। आस्ट्रिया ने आक्रमण किया था। स्वतन्त्रता आन्दोलन का दमन कर दिया। दक्षिणपंथी और वामपंथी दोनों की नृशंस हत्याएँ की गईं अथवा बन्दी बना लिया गया। कौसुथ एवं उसके अन्य सहयोगियों को देश से

निष्कासित कर दिया। हंगरी पुनः आस्ट्रिया का एक प्रान्त बन गया और अत्यधिक कठोर ढंग से दमन किया गया। सन् 1849 के विध्वंस से उस देश का पूर्ण विनाश हो गया।

मार्च, 1848 के अन्त तक क्रान्ति हर जगह सफल हुई। विख्यात मार्च के दिनों में युगों से चली आ रही शासन प्रणाली को ध्वस्त कर दिया। समस्त आस्ट्रिया साम्राज्य में क्रान्ति की विजय हुई थी। समस्त क्रान्तिकारी देशों में लोकतान्त्रिक सरकारें स्थापित हो गयी थीं। संविधान बन गये थे। प्रेस पर नियन्त्रण समाप्त हो गया था। जनता को पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गयी थी।

लेकिन क्रान्तिकारी विजय की अवधि बहुत कम थी। सर्वाधिक अपमान के दिनों में आस्ट्रिया ने पुनरुत्थान की शक्ति का परिचय देना आरम्भ कर दिया। उसकी विभिन्न जातियों और उसकी सेना में परस्पर प्रतिद्वन्द्विताओं में ही उसका समाधान निहित था। जून, 1848 में प्रेग में साम्राज्यिक सेना के सेंना नायक विनडिस्कग्राट्ज (Windischgratz) ने नगर पर बम वर्षा करके आधिपत्य स्थापित किया और अधिनायक बन गया। सेना की पहली विजय आस्ट्रिया साम्राज्य की विभिन्न जातियों के मध्य अत्यधिक शत्रुता के कारण प्राप्त हुई थी। 1848 की ग्रीष्म ऋतु के मध्य तक बोहेमिया में आस्ट्रिया का पूर्ण नियन्त्रण हो गया था।

आस्ट्रिया में प्रतिक्रियावादी दल बोहेमिया एवं इटली में सेना की आंशिक सफलताओं से उत्साहित हो गया था और उसने राज्य में अपनी पकड़ मजबूत करने का निश्चय किया। सर्वप्रथम उसने निर्बल सम्राट फर्डिनेण्ड को त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य किया। 2 दिसम्बर, सन् 1848 को उसका 18 वर्षीय भतीजा फ्रान्सिस जोसेफ प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। आस्ट्रिया ने अब हंगरी पर पूर्ण नियन्त्रण करने का निश्चय किया।

प्रो. एल. मुकर्जी कहते हैं, "इस प्रकार आस्ट्रिया साम्राज्य को इसके विभिन्न अधिकृत क्षेत्रों में समानान्तर विद्रोहों के द्वारा पूर्ण विनाश की चेतावनी मिल गयी थी। इन समस्त आन्दोलनों को अस्थायी सफलता मिली। लेकिन सफलता शीघ्र ही विनाश में परिवर्तित हो गयी।" एक अन्य विद्वान ने विचार व्यक्त किया है, "आन्दोलनों के मध्य परस्पर कोई सहयोग नहीं था और उनमें से कुछ परस्पर विरोधी थे।"

आन्दोलनों की असफलता के कारण (Causes of the failure of the Movements)—आस्ट्रिया के सैनिक अत्यधिक संकट की स्थिति में सम्राट के प्रति समर्पित रहे और उनकी निष्ठा ने उसको विकट स्थिति में बचा लिया। इसके अतिरिक्त साम्राज्य की दुर्बलता अब शक्ति का स्रोत सिद्ध हुई। घटक जातियों की बहुलता एवं उनकी विविध आकांक्षाओं ने सामूहिक कार्यवाही को अवरुद्ध किया, और मतभेदों एवं ईर्ष्या को जन्म दिया। सरकार ने "विभाजन करो और शासन करो" की नीति का अनुसरण करके स्थिति का लाभ उठाया। आस्ट्रिया ने अपनी विजय बोहेमिया मे प्राप्त की। यहाँ स्लाव (जैक) का बहुमत था और जर्मन जो अल्पमत में थे, के साथ तीक्ष्ण मतभेद थे। आन्तरिक मतभेदों का लाभ लेते हुए विनडिस्कग्राट्ज (Windischgratz) के नेतृत्व में प्रेग में प्रवेश किया और विद्रोहियों को पराजित किया। तदुपरान्त इटली के विद्रोहों का दमन किया। कुस्टोजा (Custozza) में सार्डीनिया के राजा की पराजय के बाद इटली की स्वतन्त्रता का अपरिपक्व प्रयास धराशायी हो गया। इसी अवधि में विएना में विद्रोहों की पुनरावृत्तियों से विएना डगमगा रहा था। परिणामस्वरूप सम्राट को पद त्यागना पड़ा। लेकिन आन्दोलन स्वतः ही आन्तरिक संघर्षों के कारण कमजोर हो गया था और सेना ने सहज ही दमन कर दिया।

बोहेमिया एवं इटली के विद्रोहों का दमन करने के बाद आस्ट्रिया सरकार ने हंगरी की समस्या पर ध्यान केन्द्रित किया। आस्टिया ने क्रोट सेनाध्यक्ष जैलेकिक (Jellacic) जिसने हंगरी पर आक्रमण किया था, का समर्थन किया और उसके बाद स्वयं हंगरी में प्रवेश किया। हंगरी की जनता ने सम्राट फर्डीनेण्ड द्वारा अपने पद से त्याग देने का अनुमोदन नहीं किया था क्योंकि नया शासक जोसेफ प्रथम प्रारम्भ से ही प्रतिक्रियावादी था। आस्ट्रिया की सरकार ने हंगरी की समस्त स्वतन्त्रताओं को समाप्त करने की घोषणा कर दी। परिणामस्वरूप कौसुथ के नेतृत्व में मैग्यार जनसमूह ने स्वतन्त्रता की घोषणा द्वारा प्रत्युत्तर दिया। युद्ध आरम्भ हो गया और हंगरी की जनता ने अपूर्व शौर्य और साहस के साथ युद्ध किया, अपने अनेक क्षेत्रों को पुनः प्राप्त कर लिया और आस्ट्रिया को आगे बढ़ने से रोक दिया। आस्ट्रिया की लगभग पराजय की स्थिति से रूस का जार निकोलस प्रथम बेचैन हो गया। उसको आशंका थी कि मैग्यार जनता की सफलता से उसकी असन्तुष्ट पोल जनता भी विद्रोह और स्वतन्त्रता के लिए व्यग्र नहीं हो जाये। अस्तु आस्ट्रिया के सम्राट के निवेदन पर आस्ट्रिया की सहायता के लिए रूस की विशाल सेना हंगरी के विरुद्ध भेज दी। अन्ततोगत्वा हंगरीवासी पराजित हो गये। हंगरी में व्याप्त आन्तरिक मतभेदों कलह एवं संघर्षों ने हंगरी की विरोध शक्ति को पंगु कर दिया था जिसने रूस की सेना की सफलता में सहायता की। कौसुथ को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया और वह तुर्की भाग गया। हंगरी के संविधान को समाप्त कर दिया गया और विद्रोही मैग्यार जनता को निर्ममता के साथ कठोर दण्ड दिये गये।

इस प्रकार एक के बाद एक समस्त आन्दोलन असफल हो गये। आस्ट्रिया साम्राज्य जिसका विघटन अनिवार्य प्रतीत होता था, पुनः सुरक्षित था। एक विद्वान ने मत व्यक्त किया है, "आस्ट्रिया एक धुरी था जिस पर इटली, जर्मनी और हंगरी में क्रान्तियाँ घूमती रहीं।" जब वह स्वयं क्रान्तियों के झटके से स्थिर हो गया, अन्य आन्दोलन निस्तेज हो गये। जर्मनी में अपना पुराना प्रभुत्व पुनः प्राप्त कर लिया और ओमुट्ज के सम्मेलन ने प्रशा के समस्त जर्मन राज्यों को एकीकृत करने के प्रयास को ध्वस्त कर दिया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. "यूरोप की 1848 की क्रान्ति में उत्प्रेरक का कार्य पेरिस की फरवरी क्रान्ति ने किया।" विवेचना कीजिये।
   "It was the February Revolution in Paris that acted as the catalyst for the Revolution of 1848 in Europe." Discuss. (लखनऊ, 1998)
2. "1848 का वर्ष यूरोप के इतिहास में क्रान्ति को वर्ष था।" समीक्षा कीजिये।
   "The year of 1848 was the year of Revolution in Europe." Amplify.
   (मेरठ, 1994; बुन्देलखण्ड, 1995, 99; कानपुर, 1993; रुहेलखण्ड, 1991, 93, 99, 2000)
3. "1848 का वर्ष चमत्कारिक वर्ष था।" विवेचना कीजिये।
   "The year of 1848 was a year of miracle." Discuss.
   (रुहेलखण्ड, 1998; गढ़वाल एवं मेरठ, 1996)
4. 1848 की क्रान्ति का यूरोप के विभिन्न देशों पर क्या प्रभाव पड़ा ?
   How did the Revolution of 1848 affect other European countries ?
   (बुन्देलखण्ड, 1992; आगरा, 1998; रुहेलखण्ड, 1997)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. आधुनिक यूरोप के इतिहास में वर्ष ·············· क्रान्तियों का वर्ष था—
   (क) 1830 (ख) 1832 (ग) 1840 (घ) 1848
2. सन् ·············· की फ्रान्स की क्रान्ति शताब्दी की सर्वाधिक उठा-पटक का संकेत था—
   (क) 1848 (ख) 1850 (ग) 1852 (घ) 1854
3. बोहेमिया में ·············· समुदाय के व्यक्तियों ने अपनी भाषा और इतिहास के अध्ययन को पुनर्जीवित किया—
   (क) मैग्यार (ख) जैक (ग) स्लाव (घ) जर्मनवासी
4. सन् ·············· में प्रेग में स्लाव काँग्रेस का आह्वान किया गया—
   (क) 1840 (ख) 1845 (ग) 1848 (घ) 1850
5. सन् ·············· में हंगरी में भीषण युद्ध हुआ—
   (क) 1848 (ख) 1849 (ग) 1850 (घ) 1851
6. जून ·············· में प्रेग में साम्राज्यिक सेना के सेनानायक विनडिस्कग्राटज ने नगर पर बम वर्षा करके आधिपत्य स्थापित किया—
   (क) 1848 (ख) 1849 (ग) 1850 (घ) 1851
7. 2 दिसम्बर सन् ·············· को 18 वर्षीय फ्रान्सिस जोसेफ प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ—
   (क) 1848 (ख) 1849 (ग) 1850 (घ) 1852

[उत्तर—1. (घ), 2. (क), 3. (ख), 4. (ग), 5. (ख), 6. (क), 7. (क) ।]

16

फ्रान्स का द्वितीय गणतन्त्र एवं द्वितीय साम्राज्य की स्थापना

[THE SECOND FRENCH REPUBLIC AND ESTABLISHMENT OF SECOND EMPIRE]

द्वितीय गणतन्त्र—यथार्थ में द्वितीय गणतन्त्र का उद्भव सन् 1848 की फ्रान्स की क्रान्ति से हुआ था और इसने 24 फरवरी, 1848 से 2 दिसम्बर, 1852 तक लगभग 5 वर्ष कार्य किया। व्यावहारिक दृष्टि से इसका अन्त एक वर्ष पूर्व 2 दिसम्बर, 1851 को ही हो गया था। द्वितीय गणतन्त्र का लघु इतिहास अत्यधिक संकटग्रस्त रहा। प्रारम्भ से ही मतों और उद्देश्यों का भीषण संघर्ष था जिसने गणतन्त्र को शीघ्र नष्ट कर दिया।

अन्तरिम सरकार का गठन दो राजनीतिक दलों ने संयुक्त रूप से किया था। संयुक्त सरकार में ला मार्टिन की अध्यक्षता वाले गणतन्त्रवादियों की संख्या अधिक थी। ला मार्टिन गणतन्त्र को स्वयं में एक अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति मानता था। नरमपंथी मध्यवर्गीय सुधारक उग्र समाजवादियों के विरोधी थे। वे गणतन्त्र के रूप में सुधार चाहते थे, लेकिन समाजवादी राज्य नहीं चाहते थे। लेकिन समाजवादी लुईस ब्लैन्क, जो गणतन्त्र में विश्वास करता था लेकिन इसको अन्तिम लक्ष्य, जो सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति था, का मात्र एक साधन मानता था। लुईस ब्लैन्क सर्वप्रथम श्रमिक वर्ग की स्थिति में सुधार करना चाहता था और लुईस फिलिप के शासन के अन्तिम वर्षों में, अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादित समाजवादी सिद्धान्तों और उसके अन्तर्गत कानूनों और संस्थाओं को मूल रूप देना चाहता था। विशेष रूप से वह "नियोजन का अधिकार" (The right to employment) जो सिद्धान्त में प्रतिबिम्बित था, को कार्यान्वित करना चाहता था। वह केवल राजनीतिक परिवर्तन ही नहीं चाहता था, वरन् सर्वाधिक बड़े और सर्वाधिक दुर्बल वर्ग, निर्धन, दैनिक वेतनभोगी के हित में समाज का आमूल पुनर्निर्माण चाहता था।

अन्तरिम सरकार ने संयुक्त सरकार का जोखिम उठाया था। अतः यह सरकार समाजवाद विरोधी और समाजवादी में विभाजित हो गयी और आन्तरिक मतभेदों के कारण नपुंसक बन गयी थी। गणतन्त्र की उद्घोषणा के दिन ही जनमत की दो महान् धाराओं के मध्य संघर्ष आरम्भ हो गया। बहुत बड़ी संख्या में सशस्त्र श्रमिक होटल डि विले (Hotel

de Ville) पहुँचे और माँग की कि अब से फ्रान्स का ध्वज समाजवाद के प्रतीक के साथ लाल होना चाहिए। ला मार्टिन ने इस माँग को अपने एक उत्कृष्ट भाषण में अत्यधिक मार्मिक ढंग से अस्वीकार कर दिया और समाजवादी उसके भाषण से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वयं ही लाल ध्वज को कुचल दिया।

लेकिन सरकार को भाषण द्वारा विजय के उपरान्त भी दो महत्वपूर्ण विषयों में बाध्य होकर समर्पण करना पड़ा। सरकार ने लुईस ब्लैन्क के प्रस्तावित तथाकथित "नियोजन के अधिकार" को मान्यता दे दी। इसने समस्त नागरिकों को काम का वचन दिया और इस लक्ष्य के साधन के रूप में अपनी इच्छाओं के प्रतिकूल, विख्यात राष्ट्रीय कार्यशालाएँ स्थापित कीं। सरकार ने लुईस ब्लैन्क के नेतृत्व में एक श्रम आयोग भी स्थापित किया और अपना कार्य करने के लिए लक्जमबर्ग महल दिया। यह आयोग मात्र वाद-विवाद समिति थी। यह आयोग एक ऐसा संघ था जिसका दायित्व आर्थिक विषयों में पूरी जाँच करना और उसका विवरण सरकार को देना था। यह आयोग अपने निष्कर्षों अथवा अपने विचारों को कार्यान्वित करने के लिए अधिकृत नहीं था। इसके अतिरिक्त सरकार ने लुईस ब्लैन्क को होटल डि विले से पेरिस के दूसरे किनारे पर हटाकर उसके और उसके दल के प्रभाव को बहुत कम कर दिया था। इससे समाजवादी अत्यधिक क्षुब्ध थें।

राष्ट्रीय कार्यशालाएँ (The National Workshops)—वे व्यक्ति, जो राष्ट्रीय कार्यशालाओं को आधुनिक औद्योगिक प्रणाली की जटिल श्रमिक समस्याओं के समाधान के रूप में देखते थे, कार्यशालाओं से अत्यधिक निराश थे। सरकार ने अपनी इच्छा के विरुद्ध ये कार्यशालाएँ स्थापित की थीं, अस्तु सरकार की प्रबल इच्छा थी कि ये कभी भी सफल न हों। इसके विपरीत लुईस ब्लैन्क की प्रबल इच्छा थी कि प्रत्येक व्यक्ति सरकार की सहायता से आरम्भ वास्तविक कारखानों में अपनी इच्छानुसार व्यवसाय (Trade) का कार्य करे। व्यक्तियों को उत्पादक उद्यमों में नियोजित करना चाहिए। साथ ही केवल उच्च चरित्रवान व्यक्तियों को ही इन संमुदायों में सम्मिलित होने की अनुमति होनी चाहिए। इसकी अपेक्षा सरकार ने विविध व्यवसायों के व्यक्तियों जैसे, मोची, बढ़ई, धातुकर्मियों, राजमिस्त्रियों को सार्वजनिक कार्यों के लिए खुदाई जैसे अनुत्पादक कार्यों पर लगा दिया। इन व्यक्तियों को सैनिक शैली में संगठित किया गया और सवकी दैनिक मजदूरी 2 फ्रैंक प्रतिदिन थी। यह केवल बेरोजगार व्यक्तियों को सहायता देने का एक ढंग था। अराजकता की स्थिति के कारण अनेक कारखानों को बन्द करना पड़ा था। परिणामस्वरूप बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक थी। इन कार्यशालाओं में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। मार्च के मध्य में ये संख्या 25,000 थी जो बढ़कर मध्य अप्रैल में 66,000 हो गयी और मई के मध्य तक बेरोजगारों की संख्या 1,00,000 तक पहुँच गयी। समस्त व्यक्तियों के लिए पर्याप्त काम के अभाव में श्रमिकों के लिए कार्यकारी दिनों की संख्या सप्ताह में दो दिन कर दी गयी और प्रत्येक श्रमिक का साप्ताहिक वेतन 8 फ्रैंक निश्चित कर दिया गया। परिणामस्वरूप अधिकांश व्यक्तियों का अधिकांश समय निष्क्रिय था। प्राप्त साप्ताहिक वेतन भी पर्याप्त नहीं था। अत: वे अधिकांश समय अपने सरकार के प्रति शिकवों और शिकायतों पर विचार-विमर्श करते रहते थे। इन श्रमिकों ने संघर्ष के लिए समाजवादी आन्दोलनकारियों को उत्कृष्ट सामग्री दी। इस प्रयोग से जनता का धन बर्बाद हुआ, कुछ भी उपयोगी प्राप्त नहीं हुआ और इसका परिणाम सड़कों पर भयंकर संघर्ष था। यद्यपि ला मार्टिन ने अपनी अद्वितीय कुशलता और कार्य की तत्परता से परस्पर विरोधी गुटों में समन्वय स्थापित करके कुछ समय

के लिए विघटन के संकट को टाल दिया था लेकिन बेरोजगार व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय कार्यशालाओं के प्रयोग ने दोनों दलों के मध्य सम्बन्धों को, जो प्रारम्भ से कठिन थे, असम्भव बना दिया।

पेरिस के इन दो दलों के अतिरिक्त प्रान्तों के कृषक वर्ग भी थे, जिन्होंने फ्रान्स की इस क्रान्ति में कोई भाग नहीं लिया था और समाजवाद के प्रति भी किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं थी, क्योंकि कृषकों को इनसे अपनी भूमि के स्वामित्व के प्रति खतरा था। इसके अतिरिक्त वर्तमान मंच से अलग, भविष्य के गर्भ में निहित, लुईस नैपोलियन का रहस्यमय एवं गूढ़ रूप छिपा हुआ था और अपनी भूमिका का निर्वाह करने के लिए अपने सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। लुईस नैपोलियन अपनी इसी भूमिका के कारण साम्राज्यवादी फ्रान्स का सम्राट बनने वाला था।

संविधान सभा (The Constituent Assembly)—नाम के अनुसार अन्तरिम सरकार अस्थायी थी और संविधान का निर्माण करने के लिए संविधान सभा के लिए सदस्यों के निर्वाचन तक देश के शासन का संचालन करना था। अन्तरिम सरकार ने सार्वभौम वयस्क मताधिकार स्वीकार कर लिया। इससे राजनीतिक सत्ता 2 लाख विशेषाधिकार प्राप्त सम्पन्न एवं समृद्ध व्यक्तियों से 90 लाख व्यक्तियों में स्थानान्तरित हो गयी। राष्ट्रीय संविधान सभा के 900 सदस्यों को चुनने के लिए 23 अप्रैल, 1848 को चुनाव हुए। 900 निर्वाचित सदस्यों में 800 नरमपंथी गणतन्त्रवादी थे और फरवरी की क्रान्ति और उसके बाद महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले समाजवादी लगभग अदृश हो गये। लुईस ब्लैन्क और उसके समाजवादी दल की लज्जाजनक पराजय का मुख्य कारण प्रान्तों के कृषकों द्वारा समाजवादी प्रत्याशियों के विरुद्ध मतदान करना था। संविधान सभा में समाजवादियों ने अपना प्रभाव समाप्त होने की आशंका से सशस्त्र विद्रोह करने की तैयारी आरम्भ कर दी।

4 मई, 1848 को आयोजित संविधान के अधिवेशन में पेरिस के समाजवादियों के प्रति अत्यधिक कटुता, विरोध एवं वैमनस्य व्यक्त किया गया। सरकार ने स्थापित कार्यशालाओं को समाजवाद, खतरनाक अराजकता, निष्क्रियता, भिक्षावृत्ति एवं विद्रोह को जन्म देने एवं पोषण करने वाले स्थल स्वीकार करते हुए, तत्काल बन्द करने की घोषणा कर दी और श्रमिकों को रोजगार का विकल्प देते हुए कहा कि वे सेना में भर्ती हो जायें अथवा ग्रामों में जाकर सार्वजनिक कार्यों पर श्रम करें। पेरिस के बाहर से आये हुए श्रमिकों को वापिस भेज दिया गया। व्यक्तिगत नियोजकों के लिए पंजीकरण कार्यालय खोले गये। समस्त श्रमिकों जिन्होंने व्यक्तिगत नियोजकों के यहाँ काम करने से मनाकर दिया और 18 से 25 वर्ष के आयु वर्ग में जिन श्रमिकों ने सेना में भर्ती होने से मना कर दिया, को तत्काल सेवा मुक्त कर दिया गया। यदि श्रमिक स्वेच्छापूर्वक कार्यशालाओं को नहीं छोड़ते हैं, तब उनको बलपूर्वक छोड़ने के लिए विवश किया जायेगा। 22 जून, 1848 को यह अध्यादेश जारी किया गया और श्रमिकों का विरोध तत्काल आरम्भ हो गया।

निराशा से उत्तेजित श्रमिक विरोध करने के लिए तैयार थे। सरकार को समस्त राष्ट्र के समर्थन का पूर्ण विश्वास था। संविधान सभा को पेरिस के समाजवादियों के भीषण सशस्त्र संघर्ष का अनुमान हो गया था। 15 मई को 1 लाख व्यक्तियों के विशाल जनसमूह ने संविधान सभा पर पहुँच कर नई अन्तरिम सरकार स्थापित की। लेकिन ला मार्टिन और लेड्रू रालिन ने सेना की सहायता से विद्रोहियों का दमन कर दिया और विद्रोहियों को बन्दी बना

लिया। संविधान सभा ने जनरल कावनयाक (Cavaignac) को अधिनायकतन्त्रीय (तानाशाही) अधिकार दे दिये। 23 जून से 26 जून, 1848 (जून माह के 4 दिन) तक पेरिस की सड़कों पर पेरिस के इतिहास में सर्वाधिक भयंकर सशस्त्र संघर्ष हुआ। अन्ततोगत्वा विद्रोहियों का दमन कर दिया गया। 10 हजार विद्रोही हताहत अथवा घायल हो गये। 11 हजार व्यक्तियों को बन्दी बनाकर तत्काल देश से निष्कासित कर दिया। जून के भीषण सशस्त्र संघर्ष ने निर्धनों के ह्रदय में, मध्यवर्ग के प्रति दीर्घकालीन घृणा का भाव छोड़ा था।

नरमपंथी गणतन्त्रवादी निश्चित रूप से विजयी थे। कावनयाक (Cavaignac) का कठोर एवं निरंकुश अधिनायकतन्त्र अक्टूबर, 1848 के अन्त तक चलता रहा। इस प्रकार फरवरी, 1848 को उद्घोषित द्वितीय गणतन्त्र 10 सप्ताह तक संकटों से ग्रस्त अन्तरिम सरकार से अगले चार माह के लिए सैनिक अधिनायकतन्त्र में स्थानान्तरित हो गया। एक व्यक्ति की निरंकुश सत्ता का निरन्तर विकास हो रहा था। समाजवादियों के भीषण सशस्त्र संघर्ष और जून के रक्तरंजित 4 दिनों के परिणाम अत्यधिक दयनीय एवं दूरगामी थे। इस भयंकर नरसंहार से गणतन्त्र अत्यधिक दुर्बल हो गया था। एक संगठित आन्दोलन के रूप में समाजवाद समाप्त हो गया। लुईस ब्लैन्क के विरुद्ध न्यायिक कार्यवाही की धमकी दी गयी, अस्तु वह इंग्लैण्ड पलायन कर गया। प्रौधोन (Proudhon) को बन्दी बना लिया गया। अन्तरिम सरकार ने समाजवाद को समाप्त करके स्वयं को समाप्त कर लिया।

यद्यपि जनरल कावनयाक ने अपनी अधिनायकतन्त्रीय सत्ता समर्पित कर दी, लेकिन संविधान सभा ने उसको परिषद् का अध्यक्ष चुन लिया और दिसम्बर, 1848 में गणतन्त्र के अध्यक्ष के चुनाव तक यथार्थ में वही फ्रान्स का शासक रहा। लेकिन वह गणतन्त्र के प्रति निष्ठावान था और उसने बोनापार्ट समर्थकों, वैधतावादियों और साम्यवादियों से देश की रक्षा करने का प्रयास किया। राष्ट्रीय कार्यशालाओं को समाप्त कर दिया गया। दुष्ट क्लबों को बन्द कर दिया गया। कुछ पत्रिकाओं का दमन कर दिया गया। राष्ट्रीय सुरक्षा का दायित्व चानगार्नियर (Changarnier) को दे दिया गया।

संविधान का निर्माण (Framing of the Constitution)—जून में समाजवादियों के दमन के उपरान्त संविधान सभा ने संविधान निर्माण का कार्य किया। इसने फ्रान्स की निश्चित एवं स्थायी सरकार के रूप में गणतन्त्र की घोषणा की। जनता को सार्वभौम वयस्क मताधिकार प्रदान किया। संविधान में सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित 750 सदस्यीय एक सदनीय विधान सभा का प्रावधान था और इसका कार्यकाल 3 वर्ष था और समयावधि के बाद पुनः निर्वाचन अनिवार्य था। विधेयकों का प्रारूप बनाने के लिए राष्ट्रीय विधान सभा द्वारा चुने गये सदस्यों की विधान परिषद् की भी व्यवस्था थी।

कार्यपालिका के अध्यक्ष के रूप में सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित राष्ट्रपति का प्रावधान था। उसका कार्यकाल 4 वर्ष था। निर्वाचित राष्ट्रपति लगातार दूसरी बार निर्वाचन के लिए अयोग्य था, लेकिन 4 वर्ष के अन्तराल के बाद वही व्यक्ति पुनः निर्वाचित हो सकता था। निर्वाचित होने के उपरान्त राष्ट्रपति अपनी मन्त्रिपरिषद् नियुक्त करने के लिए अधिकृत था। मन्त्रिपरिषद् विधान सभा के प्रति उत्तरदायी थी। राष्ट्रपति और मन्त्रिपरिषद् उच्च न्यायालय के प्रति भी उत्तरदायी थे। राष्ट्रपति को विधेयक पर निषेधाधिकार प्राप्त था। राष्ट्रपति का चयन सार्वभौम वयस्क मताधिकार पर छोड़कर राष्ट्रीय विधान सभा प्रत्यक्ष रूप से सिंहासन के दावेदार के हाथों में खेल रही थी। महान् नैपोलियन

के भतीजे और अपने दावों का विधिक उत्तराधिकारी लुईस नैपोलियन बोनापार्ट का दृढ़ विश्वास था कि अपने जन्म के कारण फ्रान्स पर शासन करने का उसका ही अधिकार था। फरवरी क्रान्ति के समय यह व्यक्ति व्यावहारिक दृष्टि से बिल्कुल प्रभावहीन एवं महत्वहीन था। लेकिन वर्ष 1848 में परिस्थितियों एवं जनमत में इस तीव्र गति से परिवर्तन हुआ कि राष्ट्रपति के चुनाव की पद्धति एवं प्रक्रिया का निर्णय होने तक वह व्यक्ति एक प्रमुख प्रत्याशी बन गया। सार्वभौम मताधिकार के आधार पर राष्ट्रपति के निर्वाचन का निर्णय अपेक्षाकृत अधिक दुःसाहसी सिद्ध हुआ। नये संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति का चुनाव हुआ और लुईस नैपोलियन बोनापार्ट राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। उसको कुल 54,34,226 मत प्राप्त हुए, और उसके अन्य दो प्रतिद्वन्द्वियों कावनयाक (Cavaignac) को 14,48,107 और ला मार्टिन को केवल 17,910 मत प्राप्त हुए। लुईस नैपोलियन के आगमन से फ्रान्स के इतिहास में नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। अधिकांश कृषकों ने इस विश्वास के साथ लुईस नैपोलियन को मतदान किया कि वे महान् नैपोलियन के लिए मतदान कर रहे थे। गणतान्त्रिक प्रत्याशी के ऊपर नैपोलियन की विजय मुख्य रूप से उसके नाम की प्रतिष्ठा के कारण थी। लेकिन चुनाव ने दिखा दिया कि यद्यपि फ्रान्स में गणतान्त्रिक संविधान था लेकिन अधिकांश जनमत राजतान्त्रिक प्रणाली की ओर झुका हुआ था।

लुईस नैपोलियन (Louis Napolean)—नैपोलियन प्रथम के भाई और हालैण्ड के राजा एवं जोसफाइन (Josephine) होर्टेन्स ब्योहार्नायस (Hortense Beauharnois) के पहले विवाह से पुत्री और नैपोलियन प्रथम की सौतेली पुत्री के पुत्र लुईस नैपोलियन बोनापार्ट का जन्म सन् 1808 में हुआ था। जब सन् 1814 में मित्र राष्ट्रों ने फ्रान्स पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, प्रशा का राजा विलियम फ्रेडरिक अपने बच्चों को होर्टेन्स के बच्चों के साथ खेलने के लिए लाया था। यह लुईस नैपोलियन और भावी जर्मन सम्राट की पहली भेंट थी। वाटरलू के युद्ध के बाद होर्टेन्स ने अपने बच्चों के साथ स्विट्‌जरलैण्ड में शरण ली। सन् 1830 की क्रान्ति के समय युवा राजकुमार रोम में थे। लुईस नैपोलियन के बड़े भाई का इटली में निधन हो गया था और जुलाई, 1832 में नैपोलियन प्रथम की पत्नी, आस्ट्रिया की राजकुमारी से पुत्र, नैपोलियन द्वितीय रोम "के राजा" के रूप में विदित, का देहान्त हो गया था। तदुपरान्त लुईस नैपोलियन को ही बोनापार्ट वंशजों के दावों का उत्तराधिकारी माना जाता था। इस प्रकार सन् 1832 में वह बोनापार्ट वंश का मात्र 24 वर्ष की आयु में प्रमुख बन गया। इस शताब्दी के किसी भी अन्य शासक की अपेक्षा लुईस नैपोलियन का जीवन अपेक्षाकृत अधिक आश्चर्यजनक एवं नाटकीय विरोधाभासों का जीवन था।

लुईस नैपोलियन का दृढ़ विश्वास था कि फ्रान्स पर शासन करने का उसका अधिकार था। सन् 1836 में अपने कुछ प्रबल समर्थकों के साथ स्ट्रासबर्ग के दुर्ग पर पहुँचा। इस दुर्ग की फ्रान्स की सेना की सर्वाधिक शक्तिशाली सैनिक रेजीमेण्ट रक्षा कर रही थी। लुईस नैपोलियन ने अपने शासन का प्रबल दावा करते हुए सेना से नैपोलियनकालीन साम्राज्य पुनः स्थापित करने के लिए सहायता माँगी। सेना ने उसको बन्दी बना लिया और लुईस फिलिप ने उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने की अपेक्षा संयुक्त राज्य अमेरिका भेज दिया। वहाँ से वह शीघ्र ही लौट आया। सन् 1840 में वह बोलौन (Boulogne) पहुँचा और घोषणा की कि नैपोलियन प्रथम के अवशेषों को केवल पुनरुज्जीवित फ्रान्स में ही रहना चाहिए। लेकिन उसको बन्दी बना लिया गया और उत्तरी फ्रान्स में स्थित हैम (Ham) के दुर्ग में रखा गया। सन् 1839 तक उसने अपने राजनीतिक विचारों का प्रतिपादन करते हुए "नैपोलियनकालीन

विचार" नामक पुस्तक की रचना की। पुस्तक में विचार व्यक्त किया कि "नैपोलियनकालीन साम्राज्य सन् 1789 के सिद्धान्तों की पूर्ण प्राप्ति थी। यह राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की आधारशिला पर आधारित था। इसने मुख्य नीति को निर्धारित करने के सार्वभौम वयस्क पुरुष मताधिकार को प्रयुक्त किया। विदेश विषयों के क्षेत्र में राष्ट्रीय राज्यों का परिसंघ स्थापित करना लक्ष्य था। कारागार में रहते हुए सन् 1841 में उसने "इतिहास के अंश" (Fragments Historique) नामक कृति की रचना की। सन् 1844 में "कंगाली का विस्तार" (Etension of Pauperism) नामक पुस्तक लिखी। इस कृति में उसने बेरोजगारों की सहायता एवं फ्रान्स की भौतिक समृद्धि के लिए योजना प्रस्तुत की। नये औद्योगिक उद्यमों का शुभारम्भ करने के लिए वह पूँजीवादियों की सहायता करेगा और कृषकों को उन्नत कृषि के लिए प्रोत्साहित करेगा। राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक साम्राज्य में प्रत्येक को पर्याप्त साधन उपलब्ध कराये जायेंगे और निर्धनता पूर्णतया विलुप्त हो जायेगी। उसने विचार व्यक्त किया, "ईसाई धर्म की विजय ने दासता समाप्त कर दी। फ्रान्सीसी क्रान्ति की विजय ने कृषि दासप्रथा समाप्त कर दी। लोकतन्त्र की विजय निर्धनता समाप्त कर देगी।" सन् 1845 में उसने "तोपखाने का इतिहास" (History of Artillery) नामक कृति की रचना की। मई सन् 1846 में वह राजमिस्त्री के छद्मभेष में हैम दुर्ग से भाग गया और इंग्लैण्ड पहुँच गया। सन् 1848 में चार्टिस्ट आन्दोलन के समय उसको ट्राफल्गार चौक (Trafalgar Square) में विशेष पुलिस कर्मी (Constable) नियुक्त किया गया। यह कोई उपलब्धि नहीं थी।

सन् 1848 की क्रान्ति ने उसके लिए सौभाग्य द्वार खोल दिये, और उसने अपने महान् आदर्श के अनुकरण करने का प्रयास किया। वह पेरिस गया और उसने द्वितीय गणतन्त्र को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं जिसको अस्वीकार कर दिया गया और 24 घण्टे में पेरिस छोड़ने का आदेश दिया गया। नैपोलियन के समर्थक उसकी अनुपस्थिति में उसके समर्थन में निरन्तर व्यापक प्रचार और प्रसार कर रहे थे। जून, 1848 में आयोजित उप-चुनावों में अनुपस्थित रहते हुए भी चार क्षेत्रों से निर्वाचित हुआ। लुईस नैपोलियन ने लन्दन से राष्ट्रीय संविधान सभा को लिखा, "मेरा नाम व्यवस्था, राष्ट्रीयता और गौरव का प्रतीक है और यह देखकर मुझको अत्यधिक दुःख होगा कि इसका प्रयोग पीड़ाएँ बढ़ाने के लिए किया जा रहा है जो हमारे देश को उखाड़ रही हैं।" राष्ट्रीय संविधान सभा चिन्तित थी, लेकिन लुईस नैपोलियन ने त्याग-पत्र दे दिया। जून, 1848 की भयंकर रक्तरंजित क्रान्ति के समय वह पेरिस से बाहर था। अस्तु वह इस रक्तरंजित क्रान्ति से सम्बद्ध नहीं था। सितम्बर, 1848 में पुनः चुनाव हुए और लुईस नैपोलियन पाँच निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित हुआ। उसने 26 सितम्बर, 1848 में राष्ट्रीय संविधान सभा में स्थान ग्रहण किया। संविधान सभा में उसका प्रभाव एक सामान्य व्यक्ति का था। लेकिन उसका नाम स्वयं में एक चमत्कार था। यही उसकी पूँजी थी। नैपोलियन शब्द ही कृषकों के मध्य महान् मत प्राप्त करने वाला था। समस्त फ्रान्स में सार्वभौम वयस्क मताधिकार प्रदान कर दिया गया था, अस्तु कृषकों का विशाल बहुमत था। एक कृषक ने मत व्यक्त किया, "मुझे इस सज्जन पुरुष को मत क्यों नहीं देना चाहिए।" राष्ट्रपति पद के लिए लुईस नैपोलियन सबसे शक्तिशाली प्रत्याशी था। उसके लोकतान्त्रिक गणतन्त्र के प्रत्याशी कावनयाक, जिसने फरवरी, 1848 से अधिनायक के रूप में शासन किया था, से श्रमिक वर्ग जून, 1848 की भयंकर रक्तरंजित क्रान्ति के कारण अत्यधिक क्रुद्ध था। परिणामस्वरूप लुईस नैपोलियन विशाल बहुमत से राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित हुआ। 20 दिसम्बर, 1848 को नये राष्ट्रपति ने पद-भार ग्रहण करके राष्ट्रीय विधान सभा के समक्ष

लोकतान्त्रिक गणतन्त्र के प्रति निष्ठावान रहने की शपथ ली और कहा, "मेरा कर्तव्य स्पष्ट है। एक सम्मानित व्यक्ति के रूप में इसको पूरा करूँगा। मैं उन समस्त लोगों को, जो अवैध साधनों से परिवर्तन करने का प्रयास करते हैं, जो फ्रान्स स्थापित कर चुका है, देश के शत्रु के रूप में मानूँगा।"

राष्ट्रपति के रूप में नैपोलियन (सन् 1848-52) (Napolean as President)—फ्रान्स की जनता ने नैपोलियन का आह्वान एवं निर्वाचन स्वयं को समाजवादियों से बचाने के लिए किया था लेकिन स्वयं को एक निरंकुश शासक के हाथों में सौंप दिया था। बोनापार्टवाद गणतन्त्रवाद के बिल्कुल विपरीत था। लुईस नैपोलियन ने यद्यपि संविधान के प्रति निष्ठावान रहने की शपथ ली थी, लेकिन प्रारम्भ से ही उसका उद्देश्य साम्राज्य को पुनजीर्वित करने का था। उसको भलीभाँति ज्ञात था कि द्वितीय गणतन्त्र की नींव कमजोर थी। सन् 1849 में नई विधान सभा के लिए चुनाव हुए। 750 सदस्यों की विधान सभा में 500 सदस्य राजतन्त्रवादी थे। इस प्रकार गणतन्त्रवादियों के विरुद्ध प्रबल बहुमत था और गणतन्त्र विधानसभा में उन व्यक्तियों के हाथों में था, जिनको गणतन्त्र में विश्वास ही नहीं था। गणतन्त्रवादी प्रत्याशी की अपेक्षा नैपोलियन बोनापार्ट का राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव स्वयं में महत्वपूर्ण था। नैपोलियन राष्ट्र की नब्ज निरन्तर देख रहा था। जनता की भावनाओं और प्रवृत्तियों का सावधानीपूर्वक आकलन कर रहा था। सावधानीपूर्वक बढ़ते हुए उसने आधिपत्य के लिए भावी योजनाएँ बनायी।

द्वितीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति के रूप में लुईस नैपोलियन ने फ्रान्स की जनता में अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के उद्देश्य से अनुकूल नीति का अनुसरण किया। उसने श्रमिकों के कार्य की प्रशंसा की और विधान सभा से सन् 1850 में एक विधेयक पारित करवाया जिसमें स्वैच्छिक वृद्धावस्था बीमा योजना का प्रावधान था। उसने फ्रान्स में उद्योगों को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया। कैथोलिक अनुयायियों एवं मध्यवर्गीय को प्रसन्न करने के प्रयास किये। सन् 1849 में पोप को पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य से एक सैन्य अभियान रोम भेजा। सन् 1850 में विधान सभा से पारित एक विधेयक के द्वारा फ्रान्सीसी बच्चों की शिक्षा के विषय, कैथोलिक पादरियों के विशेषाधिकार जो, चार्ल्स दशम के काल में स्वीकृत थे, को पुनर्स्थापित कर दिया गया। लुईस नैपोलियन प्रतिक्रियावादी नीतियों का अनुसरण कर रहा था और विधान सभा उसके हाथों में कठपुतली बन गयी थी। उसने सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबन्ध एवं प्रेस पर नियन्त्रण लगा दिया। विधान सभा के सदस्यों के लिए नियमित वेतन एवं भत्तों का प्रबन्ध किया गया। सन् 1850 में एक विधेयक पारित किया गया जिसके अनुसार एक व्यक्ति, जो एक ही जिले में 3 वर्ष तक नहीं रहा है और उसने उसी जिले में करों का भुगतान नहीं किया, को मताधिकार से वंचित कर दिया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत मतदाताओं की संख्या 90 लाख से 60 लाख रह गयी। श्रमिकों को काम की तलाश में निरन्तर एक जिले से दूसरे जिले जाना पड़ता था। इस प्रकार 30 लाख श्रमिक मताधिकार से वंचित हो गये। इस अधिनियम के विरोध में अनेक नगरों में विशेष रूप से पेरिस में प्रदर्शन हुए। लुईस नैपोलियन ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए घोषणा की कि वह जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में विधान सभा को फ्रान्सवासियों को मताधिकार से वंचित करने से रोकने के लिए अधिकृत था। विधान सभा द्वारा श्रमिकों को वंचित करने का उद्देश्य समाजवादियों के विधान सभा में प्रतिनिधित्व को कम करना था। यह अधिनियम राजतन्त्रवादी प्रवृत्ति का द्योतक था। राष्ट्रपति एवं विधान सभा के मध्य संघर्ष एक वर्ष से अधिक समय

तक चलता रहा। जब विधान सभा ने राष्ट्रपति के विरुद्ध खुले युद्ध की घोषणा कर दी, लुईस नैपोलियन ने राष्ट्रीय सुरक्षा एवं पेरिस की रक्षा टुकड़ी के कमाण्डर चानगार्नियर (Changarnier) को जनवरी, 1851 में सेवामुक्त कर दिया। चानगार्नियर की पदमुक्ति से स्थिति विकट हो गयी। अनेक व्यक्ति राजतन्त्र अथवा अधिनायकतन्त्र स्थापित करने का समर्थन कर रहे थे। विधान सभा ने मन्त्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दिया और त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य किया। राष्ट्रपति ने अन्य मन्त्रिपरिषद् नियुक्त करने से मना कर दिया। विधान सभा ने राष्ट्रपति के भत्ते बढ़ाने से मना कर दिया। संविधान के संशोधन का प्रस्ताव रखा गया लेकिन संविधान संशोधन के लिए अपेक्षित बहुमत नहीं था।

महत्वाकांक्षी लुईस नैपोलियन जीवनपर्यन्त सत्ता में बना रहना चाहता था। लेकिन संविधान के प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रपति का कार्यकाल 4 वर्ष था और कार्यकाल की समाप्ति के वाद राष्ट्रपति पुनः राष्ट्रपति का चुनाव नहीं लड़ सकता था। लुईस नैपोलियन ने नैपोलियन प्रथम की जीवन गाथा से प्रेरणा लेते हुए राज्य विप्लव (Coupd' Etat) को कुशलतापूर्वक कार्यान्वित कर जीवनपर्यन्त सत्ता में रहने की मनोकामना पूर्ण की। फ्रान्स की सेना को उसका गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करने एवं समस्त सुविधाएँ देने का वचन देकर पूर्ण समर्थन पहले ही प्राप्त कर लिया था।

राज्य विप्लव (Coup d' Etat)—नवम्बर, 1851 में राष्ट्रपति लुईस नैपोलियन ने विधान सभा को तत्काल सार्वभौम वयस्क मताधिकार देने की चेतावनी दी लेकिन विधान सभा ने राष्ट्रपति की चेतावनी को अस्वीकार कर दिया। राष्ट्रपति के षड्यन्त्र में सेण्ट आर्नोड (Saint Arnaud), मौपास (Maupas), मोरनी (Morny), परसिगनी (Persigny), फ्लौहोत (Flahaut) और मौक्यूअर्ड (Mocquard) सम्मिलित थे। 2 दिसम्बर की प्रातः फ्रान्स के अनेक गणतन्त्रवादी एवं राजतन्त्रवादी, सैनिक एवं नागरिक नेताओं को जब वे अपने विस्तरों में थे, बन्दी बनाकर कारागृह भेज दिया गया। पैदल सैनिकों की बटालियन विधान सभा भवन के चारों ओर नियुक्त कर दी। पेरिस की समस्त दीवारों पर राष्ट्रपति के उद्देश्यों की व्याख्या करते हुए इश्तहार लगे हुए थे। इसमें नैपोलियन प्रथम के कौन्सुलेट (Consulate) के समय स्थापित प्रणाली की दिशा में संविधान को नया रूप देने का तथ्य भी निहित था।" शताब्दी के प्रारम्भ में प्रथम कौन्सल द्वारा स्थापित, यह प्रणाली फ्रान्स को पहले ही शान्ति और समृद्धि दे चुकी है, यह पुनः उनको उसी का आश्वासन देगी।" जनता का इनका अनुमोदन अथवा इनको अस्वीकार करने के लिए आह्वान किया गया था। इश्तहार में एक आज्ञप्ति (आदेश) भी थी, जिसके अनुसार विधान सभा को भंग कर दिया गया था, सार्वभौम वयस्क मतदान पुनर्स्थापित कर दिया गया। जैसे-जैसे इश्तहारों के निहितार्थ स्पष्ट होने लगे, विरोधियों ने अपना विरोध व्यक्त करना आरम्भ कर दिया। कुछ डिप्टीज (विधान सभा के निम्न सदन के सदस्य) विधान सभा की ओर गये, लेकिन सेना ने प्रवेश से रोक दिया। सेना ने बहुत बड़ी संख्या में सदस्यों को बन्दी बनाकर कारागृह भेज दिया। अब राष्ट्रपति के समक्ष कोई भी संगठित शक्ति नहीं थी। यह कार्य 2 दिसम्बर का था।

बोलवर्ड्स नरसंहार (The Massacre of Boulevards)—समस्त छापेखानों पर पुलिस का पूर्ण नियन्त्रण था। इसी प्रकार समस्त घंटा घरों, जहाँ से क्रान्ति के समय संकट की घंटी बजाकर जनता से विद्रोह में सम्मिलित होने का आह्वान किया जाता था, पर सेना का पूर्ण नियन्त्रण था। 3 दिसम्बर को अवरोध खड़े किये गये और 4 दिसम्बर, 1851 को विख्यात 'बोलवर्ड्स का नरसंहार' हुआ। 150 व्यक्तियों की निर्मम हत्या की गयी और बहुत संख्या में लोग घायल हुए। पेरिस को आतंकित कर दिया गया। इस प्रकार राज्य विप्लव पूर्ण रूप

से सफल हो गया। विद्रोह की किसी भी सम्भावना को समाप्त करने के लिए 32 जिलों में सैनिक शासन की घोषणा कर दी गयी, उन समस्त व्यक्तियों को जो लुईस नैपोलियन को खतरनाक प्रतीत हुए, बन्दी बनाकर कारागार भेज दिया गया अथवा निष्कासित कर दिया। लगभग 1 लाख व्यक्तियों को निरंकुश रूप से बन्दी बनाया गया। इस कठोर नीति का मुख्य उद्देश्य गणतन्त्रवादियों का दमन करना था। समस्त योजना सफलतापूर्वक कार्यान्वित हो गयी।

द्वितीय साम्राज्य की स्थापना (Establishment of the Second Empire)—अधिकृत रूप से गणतन्त्र एक वर्ष और चला लेकिन यथार्थ में वह मृत था। लुईस नैपोलियन अब एक निरंकुश शासक था। यह मात्र औपचारिकता ही थी कि एक वर्ष बाद 21 नवम्बर, 1852 को फ्रान्स की जनता को साम्रज्यिक प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना एवं लुईस नैपोलियन बोनापार्ट को नैपोलियन तृतीय के नाम से सम्राट घोषित करने के प्रश्नों पर जनमत संग्रह करवाया गया। 78,24,189 फ्रान्सवासियों ने इन दोनों प्रश्नों के पक्ष में मतदान किया और 2,43,145 व्यक्तियों ने विरोध में मत दिया। 2 दिसम्बर, 1852 को राज्य विप्लव के वार्षिक अवसर पर नैपोलियन तृतीय को सम्राट घोषित किया गया और द्वितीय साम्राज्य स्थापित किया गया।

नया संविधान (New Constituion)—14 जनवरी, 1852 को राष्ट्रपति ने नया संविधान प्रवृत्त किया था। नये संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति का कार्यकाल बढ़ाकर 10 वर्ष कर दिया गया। समस्त मन्त्री अब केवल उसके प्रति उत्तरदायी होंगे। राष्ट्रपति ही राज्य परिषद् के सदस्यों को मनोनीत करेगा। इस परिषद् को राष्ट्रपति के निर्देशानुसार कानूनों का प्रारूप तैयार करना था। द्वि-सदनात्मक (Bi-Cameral) विधान मण्डल का प्रावधान था। सीनेट (Senate) उच्च सदन के समस्त मार्शल, एडमिरल और कार्डिनल पदेन सदस्य थे। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति 150 सदस्य मनोनीत करने के लिए अधिकृत था। सार्वभौम वयस्क मताधिकार प्रदान किया गया। विधायी दल (Corps Legislatif) की कुल संख्या 261 थी। विधायी दल को निषेधाधिकार प्रदान किया गया था। लेकिन विधायी कार्यों का सूत्रपात करने अथवा संशोधन करने का अधिकार नहीं था। सार्वभौम पुरुष वयस्क मताधिकार का भी प्रावधान था।

यद्यपि लुईस नैपोलियन नाममात्र का राष्ट्रपति था, लेकिन राष्ट्रीय सिक्कों पर अपना चित्र अंकित करवाया था। सेना एवं राष्ट्रीय भवनों को भव्य एवं आकर्षक रूप प्रदान किया। समाज के समस्त वर्गों का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से समस्त देश का व्यापक दौरा किया। नैपोलियन तृतीय ने 2 दिसम्बर, 1852 से सन् 1870 तक सम्राट के रूप में फ्रान्स पर शासन किया। उसका जीवन विचित्र उतार-चढ़ाव से युक्त था। इसमें वह एक घुमक्कड़, एक षड्यन्त्रकर्ता, एक विद्रोही, एक निर्वासित व्यक्ति और एक कान्सटेबिल से अपनी महत्वाकांक्षा के चरमोत्कर्ष, फ्रान्स के सम्राट के रूप में दृष्टिगत होता है।

लुईस नैपोलियन ने सिंहासन तक अपना मार्ग लोकतन्त्र के प्रबल समर्थक के रूप में आरम्भ किया था। लेकिन उसके द्वारा स्थापित साम्राज्यिक सरकार लोकतन्त्र से बहुत दूर थी। गणतान्त्रिक रूपों के झीने पर्दों के नीचे यह निरंकुश राजतन्त्र था। संविधान का संरचनात्मक ढाँचे (अपने चाचा नैपोलियन प्रथम के कौन्सुलेट के अनुरूप) को व्यापक रूप से फ्रान्स की जनता को धोखा देने के लिए तैयार किया गया था। जनता यह सोचती थी कि वे स्वशासन का आनन्द ले रहे थे। स्पष्ट रूप से वयस्क पुरुष मताधिकार का प्रावधान किया गया था लेकिन मतदाताओं के उन्मुक्त चयन के मार्ग में समस्त प्रकार के व्यवधान लगाकर, उसको सम्राट के लिए हानि मुक्त कर दिया था। सीनेट और विधायी संस्था थी, लेकिन संवैधानिक

सरकार के प्रदर्शन के लिए थे क्योंकि उन पर सम्राट का पूर्ण नियन्त्रण था। समस्त कार्यपालिका शक्ति सम्राट में निहित थी। इस प्रकार वह निरंकुश शासक वन गया था। यथार्थ में स्वतन्त्रता फ्रान्स से विलुप्त हो चुकी थी। गणतन्त्रवादियों का पूर्णतया दमन कर दिया था। प्रेस का मुँह बन्द कर दिया गया और कठोर गुप्तचर प्रणाली संगठित की गयी थी।

जनता ने उसको सम्राट क्यों चुना (Why the people elected him Emperor)—नैपोलियन प्रथम के महान् नाम कां ही चमत्कार था, जिसके परिणामस्वरूप लुईस नैपोलियन सम्राट के पद तक पहुँचा। जनता ने उसको राज्य के सर्वोच्च पद तक केवल उसी आशा से उठाया था कि वह देश के लिए वह सब प्राप्त करेगा जिसके कारण नैपोलियन प्रथम इतिहास में अमर है। जनता देश में शान्ति और व्यवस्था एवं जीवन की सुरक्षा और विदेश में देश की प्रतिष्ठा एवं गौरव चाहती थी। वे समाजवाद के विकास के साथ अराजकता के आतंक से आतंकित थे। वे लुईस फिलिप के नीरस, निष्क्रिय एवं गौरवहीन शासन से ऊब चुके थे। अस्तु जनता ने स्वेच्छापूर्वक उस व्यक्ति से आशा की, जिसके साथ नैपोलियन का नाम सम्बद्ध था और जो नैपोलियन के विचारों का प्रतिनिधित्व करता था। सम्राट ने फ्रान्स की जनता की आकांक्षाओं को तुष्ट करने का अथक प्रयास किया। उसने समाजवादी विरोध का क्रूरतापूर्वक दमन करके शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित की। व्यापार और उद्योग को प्रोत्साहित करके जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। सांथ ही साहसी एवं उत्साही विदेश नीति का अनुसरण करते हुए फ्रान्सवांसियों की सर्वाधिक प्रबल प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। वह अपनी स्थिति की दुर्बलता के प्रति पूर्णतया सजग था। अस्तु उसने अपने देशवासियों का ध्यान देश के आन्तरिक विषयों से हटाकर साहसिक उद्यमों, नवीनताओं और विजयों द्वारा उनको चकाचौंध करने का प्रयास किया।

नैपोलियन के विचार एवं उसकी व्याख्या (Napoleonic Idea and its Interpretation)—सन् 1849 में लुईस नैपोलियन ने इन उत्तेजित करने वाले शब्दों में नैपोलियन के विचार के रूप में विख्यात विचार का प्रतिपादन किया था, "नैपोलियन का नाम स्वयं में एक पूर्ण कार्यक्रम है। इसका अर्थ व्यवस्था, सत्ता, धर्म, देश के अन्दर जनता का कल्याण, विदेश में राष्ट्रीय प्रतिष्ठा है।" उस समय समाजवादियों एवं गणतन्त्रवादियों के मध्य भीषण सशस्त्र संघर्ष से फ्रान्सवासी अत्यधिक क्षुब्ध एवं कुंठित थे। अस्तु लुईस नैपोलियन के इन ओजपूर्ण शब्दों का उनके मस्तिष्क पर गम्भीर प्रभाव पड़ा।

नैपोलियन प्रथम 6 वर्ष के सेण्ट हेलेना में निर्वासित जीवन को बोनापार्टिस्ट आख्यान का सृजन करने में व्यस्त रखा। उसने अपने स्वयं के जीवन का उन्नीसवीं शताब्दी के विचारों के अनुरूप पुनर्निर्माण किया था। उसने घोषणा की कि जीवन पर्यन्त उसने स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता, शान्ति और धर्म के वास्तविक अर्थ की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया था। नैपोलियन के इन विचारों ने फ्रान्स की जनता को अत्यधिक प्रभावित किया था। इन विचारों की व्यापक व्याख्या करते हुए लुईस नैपोलियन ने सन् 1839 में प्रकाशित कृति 'नैपोलियन के विचार' (Idees Napoleoniennes) में व्यक्त किया था। लुईस नैपोलियन ने कहा, "नैपोलियन महान् सच्चे हृदय से मानवता का प्रेमी था, जिसने केवल जनता को बन्धनमुक्त, स्वतन्त्र और लोकतान्त्रिक बनाने के लिए संघर्ष किया।" लुईस नैपोलियन ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उसके महान् चाचा का साम्राज्य सन् 1789 की फ्रान्सीसी क्रान्ति के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों अर्थात् स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता और लोकप्रिय प्रभुसत्ता की पूर्ण उपलब्धि था। इसमें उसने स्वयं के कुछ सिद्धान्त जैसे गौरव, कुशलता, व्यवस्था एवं सत्ता जोड़ दिये। सन् 1840 में वास्तविक नैपोलियन के उत्साह और साहस के अनुरूप कहा था, "मैं आपके समक्ष एक सिद्धान्त, एक

कारण, एक पराजय का प्रतिनिधित्व करता हूँ। सिद्धान्त जनता की प्रभुसत्ता का, कारण साम्राज्य का, पराजय वाटर लू की है," इस प्रकार नैपोलियन के विचार ने स्वयं को फ्रान्स की जनता के समक्ष शान्ति, सुरक्षा और गौरव की शपथ के रूप में प्रस्तुत किया। यह लुईस नैपोलियन के समर्थन में प्रचार का एक उपयोगी अभिकरण सिद्ध हुआ। इसने गौरवशाली अतीत की स्मृतियों को सजीव किया। जनता लुईस फिलिप के निष्क्रिय, उदासीन एवं गतिहीन शासन से ऊब चुकी थी। जनता में नवीन आशा का संचार हुआ।

सम्राट के रूप में नैपोलियन तृतीय (सन् 1852 से 1870) (Napoleon III as Emperor)—सम्राट बनने के तत्काल बाद उसने घोषणा की कि फ्रान्स को तत्काल घोर अशान्ति, अव्यवस्था एवं अराजकता के उपरान्त एक प्रबुद्ध एवं उदार हृदय निरंकुश शासक के नेतृत्व में कुशल सरकार की आवश्यकता थी। सन् 1853 में लुईस नैपोलियन तृतीय ने स्पेन की अद्वितीय सुन्दर युवती मेले इयूगेनी डि मौन्टीजो (Mlle Eugenie de Montijo) से प्रेम विवाह किया। उसके शासन काल को दो भागों—असीमित निरंकुशता (सन् 1852 से सन् 1860) और निरन्तर बढ़ता हुआ उदारवाद (सन् 1860 से सन् 1870) में विभाजित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसके प्रशासन की दो शीर्षकों गृहनीति एवं विदेश नीति के अन्तर्गत चर्चा करेंगे।

गृह नीति (Home Policy)—नैपोलियन तृतीय ने एक निरंकुश शासक एवं प्रतिक्रियावादी के रूप में स्वतन्त्रता की हर सम्भव चिंगारी को समाप्त कर दिया। व्याप्त अराजक तत्वों का दमन करके देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित की। हेजन ने विचार व्यक्त किया है, "राजनीति में एक निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी, स्वतन्त्रता की हर सम्भंव चिंगारी को समाप्त करते हुए, नैपोलियन अनेक दृष्टियों से एक प्रगतिशील था। विशेष रूप से उसने देश की सम्पत्ति का विकास करने का प्रयास किया और उसका शासन निरन्तर बढ़ती हुई आर्थिक समृद्धि का था। उत्पादकों, वाणिज्यिकों, बैंकिंग, सबको बहुत अधिक प्रोत्साहित किया गया। यह महान् व्यापारिक उद्यमों का काल था और सम्पत्ति द्रुतगति से और फ्रान्स में अब तक अज्ञात मात्रा में अर्जित की गयी। पेरिस को सर्वाधिक व्यापक स्तर पर आधुनिकीकृत एवं सौन्दर्यीकृत किया गया और पेरिस यूरोप में सर्वाधिक आकर्षक एवं सुखद राजधानी बन गयी।"

यद्यपि नैपोलियन तृतीय नें निरंकुश शासन स्थापित किया था, लेकिन उसके निरंकुशतावाद में पर्याप्त उदारता एवं सहृदयता थी। उसने ईमानदारी से जनता के कल्याण के लिए शासन करने का प्रयास किया। उसने घोषणा की कि राज्य का प्रमुख कार्य आर्थिक था और उसने राष्ट्र के कल्याण को साम्राज्यिक कार्यक्रम में प्राथमिकता दी। फ्रान्स की रेलवे के कार्य को पूर्ण कर दिया। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक रेलवे सुविधा उपलब्ध थी। संचार साधनों में पर्याप्त सुधार किये गये। सड़कों, नहरों और बन्दरगाहों के निर्माण, कृषि, वाणिज्य एवं उद्योग के लिए ऋण की सुविधा प्रदान की गयी। क्रेडिट फोनसियर (Credit Foncier) और क्रेडिट मोबिलायर (Credit Mobilier) नाम की विशाल केन्द्रीय बैंक स्थापित की गयी। पेरिस एवं प्रान्तों में भू-बैंक स्थापित की गयी। परिवहन साधनों के विकास एवं सुधार से कृषकों की समृद्धि में वृद्धि हुई। सरकार ने कृषकों को गेहूँ एवं अंगूर के उत्पादन के लिए प्रोत्साहित किया और अपेक्षित सुविधाएँ उपलब्ध करवायी। कृषि समितियों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई। घोड़ों की नस्ल सुधारने के लिए प्रोत्साहित किया। दलदल भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। शनैः शनैः उन्मुक्त व्यापार का सूत्रपात किया गया।

नैपोलियन तृतीय श्रमिक वर्ग की विविध समस्याओं एवं कठिनाइयों से मुक्त करने की अतीव आवश्यकता के प्रति सजग था। उसने श्रमिकों को सहकारी समितियाँ गठित करने की अनुमति दी। श्रमिक संगठनों एवं उनकी सामूहिक हड़तालों को वैध घोषित कर दिया। निर्धन वर्गों को चिकित्सा एवं वित्तीय सुविधाएँ प्रदान कीं। मृत्यु एवं औद्योगिक दुर्घटनाओं के विरुद्ध स्वैच्छिक बीमा योजना की स्वीकृति दी। श्रमिकों को सस्ती डबलरोटी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से निर्माताओं को आर्थिक सहायता दी। श्रमिकों को अवकाश की सुविधा दी और उनके लिए आवासीय योजनाओं को प्रोत्साहित किया। श्रमिक संगठनों को वित्तीय सहायता दी।

वर्गगत ऊँच-नीच का भेदभाव समाप्त करने एवं फ्रान्स की क्रान्ति के मन्त्र भ्रातृत्व की भावना को पुष्ट करने के उद्देश्य से नैपोलियन तृतीय निःसंकोच श्रमिकों के साथ उठता-बैठता था। वह रेलवे इन्जिन में जाकर कर्मचारियों के साथ वार्ता करता था। सड़क पर राजमिस्त्रियों और श्रमिकों से बात करता था और उनके साथ मदिरा-पान भी कर लेता था। नैपोलियन तृतीय के इन उपायों ने श्रमिकों में व्याप्त असन्तोष को कम किया और श्रमिकों ने भी उसके शासन के साथ समन्वय स्थापित कर लिया। जनता को प्रसन्न करने एवं बेराजगारी कम करने के उद्देश्य से पेरिस को सुन्दर बनाने की वृहत् योजना आरम्भ की।

नैपोलियन तृतीय ने औद्योगिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में उदारवादी नीति का अनुसरण किया। व्यक्तिगत व्यापार पर सरकार का नियन्त्रण निरन्तर कम होता गया। औद्योगिक निगम स्थापित करने और मशीनों के प्रयोग के लिए अपेक्षित सुविधाएँ दी गयीं। बचत बैंक स्थापित किये गये। सीमा-शुल्क कम कर दिये गये। सन् 1860 में फ्रान्स और इंग्लैण्ड के मध्य व्यापारिक सन्धि हुई, जिसके द्वारा व्यापारिक सुविधाओं की व्यवस्था थी। जनता पर देश की भौतिक प्रगति एवं समृद्धि का प्रभाव डालने के लिए सन् 1855 में पेरिस में विशाल अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

नैपोलियन तृतीय ने कैथोलिक मतावलम्बियों, जिनका फ्रान्स में बहुमत था, को सन्तुष्ट करने का अथक प्रयास किया। उसने सन् 1849 में पोप को पुनर्स्थापित करने के लिए फ्रान्स की सेना रोम भेजी। फ्रान्स में स्थित विश्वविद्यालयों एवं सार्वजनिक विद्यालयों पर पादरियों का नियन्त्रण मजबूत कर दिया। साम्राज्ञी यूजेनी (Eugenie) ने उदारतापूर्वक कैथोलिक गिरजाघरों को दान दिया।

सन् 1860 तक नैपोलियन तृतीय व्यावहारिक दृष्टि से फ्रान्स का निरंकुश शासक था। प्रेस पर कठोर नियन्त्रण था। जनता की समस्त गतिविधियों पर नजर रखने के लिए कुशल गुप्तचर सेवा का गठन किया गया था। अधिकृत प्रत्याशियों का समस्त व्यय राजकोष से देकर विधान सभा पर पूर्ण नियन्त्रण रखा। सन् 1858 के पारित अधिनियम में प्रावधान था कि प्रत्येक सदस्य को सम्राट के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी थी। उसी वर्ष पारित एक अन्य अधिनियम में प्रावधान था कि सरकार फ्रान्स अथवा अल्जीरिया में राजनीतिक अपराधियों को बिना किसी मुकदमे के बन्दी बना सकती थी अथवा निर्वासित कर सकती थी।

सन् 1860 के संशोधित संविधान में उदारवादी दृष्टिकोण दृष्टिगत हुआ। सीनेट और विधायी संस्था (चेम्बर ऑफ डिप्टीज) को किसी विधेयक पर विचार-विमर्श करने का अधिकार दिया और सम्राट द्वारा दोनों सदनों को सम्बोधित भाषण पर चर्चा के बाद मतदान का अधिकार प्रदान किया गया। संसदीय गतिविधियों को समाचार-पत्रों में प्रकाशित करने की अनुमति भी दे दी गयी। कार्यपालिका के लिए अपनी समस्त गतिविधियों से संसद को अवगत कराना अनिवार्य हो गया।

सन् 1863 में आयोजित आम चुनावों में गणतन्त्रवादियों ने पेरिस में महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की। ज्यूल्स साइमन (Jules Simon), थेयर्स (Thiers), फैरी (Ferry) और गैम्बेटा (Gambetta) निर्वाचित हो गये। यद्यपि संसद में सरकार का बहुमत था, लेकिन विरोधी दल अपनी मजबूत स्थिति के कारण नैपोलियन तृतीय के लिए सिरदर्द बन गया। सन् 1867 में सम्राट ने "राष्ट्र की इच्छा द्वारा निर्मित विशाल प्रासाद को सर्वोच्च बनाने" की घोषणा की। प्रेस पर नियन्त्रण शिथिल कर दिया गया। सार्वजनिक सभाएँ आयोजित करने का सीमित अधिकार दिया गया। मन्त्रियों को सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देने और विचार-विमर्श में भाग लेने की व्यवस्था की।

सन् 1866 में ओलिवियर (Ollivier) ने उदार साम्राज्य का समर्थन करने के लिए एक राजनीतिक दल का गठन किया। सन् 1869 में आयोजित आम चुनावों के उपरान्त ओलिवियर को मन्त्रिपरिषद् गठन करने को आमन्त्रित किया गया। विधान सभा सदस्यों को सार्वजनिक वित्त पर नियन्त्रण रखने के लिए विचार-विमर्श की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गयी थी और अब वे बिना किसी प्रतिबन्ध के अधिनियम बना सकते थे। ओलिवियर ने विचार व्यक्त किया, "यह सत्य अर्थ में सर्वाधिक उदार संविधान था जो फ्रान्स को सन् 1789 से मिला है।"

29 नवम्बर, 1869 को नैपोलियन तृतीय ने अपने एक भाषण में साम्राज्य पर आक्रमणों का उल्लेख किया और सार्वभौम वयस्क मताधिकार पर आधारित फ्रान्सीसी साम्राज्य का सुदृढ़ता की ओर संकेत किया। उसने घोषणा की कि फ्रांन्स स्पष्ट रूप से स्वतन्त्रता चाहता है लेकिन स्वतन्त्रता व्यवस्था के साथ सम्बद्ध थी। "व्यवस्था के लिए मैं उत्तर दूँगा, स्वतन्त्रता बचाने के लिए, सज्जनो, मेरी सहायता करो।" सम्राट ने सुधार कार्यक्रम की घोषणा की। सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना था। कम्यूनों की परिषद् से ही मेयरों का चयन किया गया था। परिषदों का चुनाव जनता को करना था। कैन्टनों (प्रान्तों) के लिए निर्वाचित परिषदों का प्रावधान था। निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा में सुधार का आश्वासन दिया। कारखानों में बाल श्रमिकों को नियमित करने का वचन दिया। जनता के कल्याण के लिए बचत बैंक स्थापित करने की योजना थी। ये सुधार कार्यक्रम जनता के समक्ष रखे गये और जनता ने भारी बहुमत से इनका अनुमोदन कर दिया । लेकिन सन् 1870 में सैडन (Sedan) के युद्ध में नैपोलियन तृतीय पराजित हुआ और उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इसके परिणामस्वरूप द्वितीय साम्राज्य का अन्त हो गया और सितम्बर, 1870 में तृतीय गणतन्त्र की घोषणा की गयी। प्रो. एल. मुकर्जी ने सार स्वरूप कहा है, "संक्षेप में उसकी गृहनीति प्रबुद्ध निरंकुशतावाद की थी जिसका अर्थ जनता को उसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता के हनन के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में भौतिक लाभों को आश्वस्त करना था।"

विदेश नीति (Foreign Policy)—सम्राट भली-भाँति जानता था कि भौतिक दृष्टि से समृद्धि और सम्पन्नता ही फ्रान्स की जनता को सन्तुष्ट नहीं कर सकती। वह लुईस फिलिप के सदृश घोर शान्ति की नीति का अनुसरण करते हुए स्वयं का पतन नहीं चाहता था। उसको भलीभाँति ज्ञात था कि उसका निर्वाचन उसके नाम के कारण हुआ था और स्वयं को इसके योग्य सिद्ध करना चाहिए। उसको साहसी और उत्साही विदेश नीति द्वारा फ्रान्सवासियों की सैन्य एवं प्रभुत्ववाली प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करना चाहिए। उसको फ्रान्स के विलुप्त गौरव को पुनर्स्थापित करना चाहिए और यूरोप में नेतृत्व पुनः प्राप्त करना चाहिए। यूरोपीय मंच पर नैपोलियन सहायक अथवा गौण भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकता था। इन समस्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में नैपोलियन तृतीय, दिखावटी, आक्रामक नीति के द्वारा, जिससे फ्रान्स यूरोप के भाग्य का निर्णायक बन जायेगा, फ्रान्सवासियों को आश्चर्यचकित करने के लिए कृत संकल्प

था। अस्तु उसने कैथोलिक धर्म एवं तत्कालीन राष्ट्रवाद के प्रबल समर्थक के रूप में, यूरोपीय राजनीति में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय तक फ्रान्स की नीति अभूतपूर्व रूप में सफल प्रतीत हुई और फ्रान्स की प्रतिष्ठा को आश्चर्यजनक ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया। लेकिन अन्त में इस नीति ने नैपोलियन तृतीय को निराशाजनक परेशानी में डाल दिया और फ्रान्स विनाश एवं अपमान से ग्रस्त हो गया।

लुईस नैपोलियन एक राष्ट्रवादी था और उसकी इटली, जर्मनी और पोलैण्ड, जो अपनी स्वतन्त्रता और एकीकरण के लिए संघर्ष कर रहे थे, के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी। फ्रान्स का जनसमुदाय, उसके राष्ट्रवाद के प्रति अत्यधिक आकर्षित था। वह षड्यन्त्रों का भी केन्द्र था और यूरोप की दलित राष्ट्रीयताओं की सक्रिय सहायता के लिए निरन्तर उसको निवेदन मिल रहे थे। यूरोप के देशभक्त उससे सहायता की याचना कर रहे थे। नैपोलियन स्वयं की प्रबल इच्छा थी कि मुआविजे के रूप में कुछ भू-क्षेत्र मिल जाये जिससे राष्ट्र के गौरव और प्रतिष्ठा में वृद्धि हो।

रोम (Rome)—राष्ट्रपति निर्वाचित होने के तत्काल बाद सन् 1849 में ही संकटग्रस्त रोम ने उसको उत्साही एवं साहसी विदेशनीति का अनुसरण करने का अवसर प्रदान किया था। रोम में पोप की सरकार को अपदस्थ कर दिया गया था और मैजिनी (Mazzini) के नेतृत्व में गणतन्त्र स्थापित कर दिया गया था। राजनीतिक एवं व्यक्तिगत कारणों से नैपोलियन तृतीय को पोप के समर्थन में हस्तक्षेप करना आवश्यक प्रतीत हुआ। फ्रान्स के मजबूत पादरी वर्ग के लिए पोप का अपदस्थ होना गहरा आघात था। फ्रान्स में कैथोलिक मतावलम्बियों का बाहुल्य था और वे पोप का पुनर्स्थापन चाहते थे। निश्चित रूप से नैपोलियन का सशस्त्र हस्तक्षेप फ्रान्स के कैथोलिक अनुयायियों की भावनाओं को तुष्ट करता। दूसरे फ्रान्स की जनता इटली में एकमात्र आस्ट्रिया का इस स्थिति में नियन्त्रण नहीं चाहती थी। अस्तु, नैपोलियन तृतीय ने मैजिनी के गणतन्त्र के विरुद्ध शक्तिशाली सेना भेजी। मैजिनी की सेना पराजित हुई और पोप को पुनर्स्थापित कर दिया। इस प्रकार नैपोलियन तृतीय ने अपनी स्थिति सुदृढ़ की और कैथोलिक धर्म के प्रबल समर्थक के रूप में विख्यात हो गया।

क्रीमिया युद्ध (Crimean War)—सन् 1854 में नैपोलियन तृतीय ने क्रीमिया युद्ध में सशस्त्र हस्तक्षेप किया। नैपोलियन तृतीय और रूस के जार निकोलस प्रथम के मध्य शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध थे। नैपोलियन तृतीय सन् 1812 में रूस के हाथों अपमानजनक पराजय का प्रतिशोध लेना चाहता था। फ्रान्स के व्यापारी, कैथोलिक एवं उदारवादी भी रूस से घृणा करते थे। पेलेस्टाइन में कैथोलिकों और रूढ़िवादी भिक्षुकों के मध्य विवाद उत्पन्न हो गये। रूस के जार निकोलस प्रथम ने तुर्की के सुल्तान से तुर्की साम्राज्य के ईसाई धर्मावलम्बियों की रक्षा करने के लिए रूस के अधिकार को मान्यता देने का आग्रह किया। नैपोलियन तृतीय ने तुर्की के सुल्तान को रूस का विरोध करने का आदेश दिया। तुर्की के सुल्तान ने आदेश का पालन किया। तुर्की और रूस के मध्य युद्ध की घोषणा हो गयी। फ्रान्स और इंग्लैण्ड दोनों ने तुर्की साम्राज्य की क्षेत्रीय अखण्डता बनाये रखने के उद्देश्य से संयुक्त रूप से तुर्की का सक्रिय सशस्त्र सहयोग दिया। प्रारम्भ में दोनों देशों की संयुक्त सेनाओं की बहुत क्षति हुई। लेकिन रूस के जार निकोलस प्रथम के देहान्त और सन् 1855 में पामर्स्टन के इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री वनने के बाद स्थिति संयुक्त देशों के पक्ष में वदल गयी। अन्ततोगत्वा रूस पराजित हुआ और सन् 1856 में पेरिस में शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। हेजन ने विचार व्यक्त किया है, "सन् 1856 में नैपोलियन तृतीय अपनी सत्ता के चरमोत्कर्ष पर था। साम्राज्य को यूरोप के अन्य समस्त राज्यों ने मान्यता दी थी। सम्राट ने इंग्लैण्ड और पीडमोन्ट के साथ

मित्रों के रूप में क्रीमिया में रूस के विरुद्ध सफल युद्ध किया। उसके पास यूरोप में सर्वोत्कृष्ट सेना थी और पेरिस का सम्मेलन स्थल (Seat of Congress) के रूप में, जिसने युद्ध के अन्त पर सन्धियाँ तैयार की थीं, चयन करके समस्त विश्व के समक्ष सम्मानित किया गया था।" इस विजय से फ्रान्स को भौतिक लाभ तो कम हुआ, लेकिन प्रतिष्ठा और गौरव बढ़ गया। यही नैपोलियन तृतीय का मुख्य उद्देश्य था। रूस के जार की पराजय से वह यूरोप महाद्वीप का सर्वोत्कृष्ट शासक वन गया और पेरिस पुनः यूरोपीय राजनीति का केन्द्र बन गया।

रूमानिया (Rumania)—उसने स्वयं को राष्ट्रवाद का प्रवल समर्थक अभिव्यक्त किया और वालेशिया (Wallachia) एवं मोलडेविया (Moldavia) का रूमानिया नाम के राज्य के रूप में एकीकरण का समर्थन किया।

इटली (Italy)—इटली के आन्तरिक विषयों में नैपोलियन तृतीय का सशस्त्र हस्तक्षेप उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण सफलता थी। विविध कारणों ने उसको आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में सारडीनिया के राजा की सशस्त्र सक्रिय सहायता के लिए विवश किया। इटलीवासियों की राष्ट्रवादी आकांक्षाओं के साथ उसकी स्वाभाविक सहानुभूति थी। इसके अतिरिक्त इटली की स्थिति में उसको सन् 1815 की सन्धियों को समाप्त करने का सुअवसर दृष्टिगत हुआ। ये सन्धियाँ फ्रान्स एवं नैपोलियन वंश के लज्जाजनक अपमान को निरन्तर स्मरण कराती रहती थीं। उसके अतिरिक्त ये सन्धियाँ उस समय भी इटली की राजनीतिक व्यवस्था का आधार थी। नैपोलियन तृतीय की इन सन्धियों के अस्तित्व को समाप्त करने एवं इटली का इस ढंग से पुनर्निर्माण करने, जिससे इटली पर आस्ट्रिया की अपेक्षा फ्रान्स का प्रभावं हो जायेगा, की प्रवल महत्वाकांक्षा थी।

नैपोलियन तृतीय अपनी युवावस्था में स्वयं कारबोनरी (Carbonari) नाम की गुप्त समिति का सक्रिय सदस्य था। उस समिति का एक मात्र उद्देश्य इटली से आस्ट्रियावासियों को निष्कासित करना तथा इटली का एकीकरण था। बोनापार्ट वंशजों की नसों में इटली का रक्त प्रवाहित हो रहा था। इटली के एकीकरण के लिए आस्ट्रिया के साथ युद्ध का फ्रान्स के उदारवादी भी समर्थन करतें थे।

इन समस्त अनुकूल कारकों के उपरान्त भी नैपोलियन तृतीय ने सशस्त्र हस्तक्षेप करने में संकोच किया। आस्ट्रिया की सैन्य शक्ति एवं उसकी इटली में प्रतिष्ठा के कारण हस्तक्षेप जोखिम का कार्य हो सकता था। इसके अतिरिक्त एकीकृत इटली भू-मध्यसागर में एक शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी बन सकता था। इटली में पोप की विचित्र स्थिति के कारण फ्रान्स के कैथोलिक मतावलम्बियों द्वारा फ्रान्स के हस्तक्षेप और इटली के एकीकरण का विरोध निश्चित था। नैपोलियन अत्यधिक द्विविधा की स्थिति में था। एक देशभक्त इटलीवासी ओरसिनी (Orsini) ने उसकी हत्या का असफल प्रयास किया। इस प्रयास ने संशय की स्थिति समाप्त कर दी और नैपालियन तृतीय ने इटलीवासियों की शिकायतों एवं कष्टों का निवारण करने और फ्रान्स के उदारवादियों की इच्छाओं की पूर्ति करने का निश्चय किया।

नैपोलियन तृतीय और कैवोर (Cavour) में सन् 1858 में परस्पर सहमति के अनुसार नैपोलियन तृतीय को लोम्बार्डी और वेनेशिया से आस्ट्रियावासियों को निकालने के लिए सार्डीनिया-पीडमोन्ट की सशस्त्र सहायता करनी थी। अप्रैल, 1859 में आस्ट्रिया ने सार्डीनिया-पीडमोन्ट (Sardinia-Paiedmont) के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। नैपोलियन तृतीय ने आक्रमणकारी आस्ट्रिया के विरुद्ध सार्डीनिया-पीडमोन्ट की सहायतार्थ शक्तिशाली सेना भेजी। दोनों की संयुक्त सेनाओं ने मेगेन्टा (Magenta) और सोलफेरिनो (Solferino) के युद्धों में आस्ट्रिया को पराजित किया, लेकिन सोलफेरिनो के युद्ध के मध्य

में नैपोलियन तृतीय ने युद्ध रोक दिया और आस्ट्रिया से विलाफ्रान्का (Villafranca) में सन्धि कर ली, जिसकी ज्यूरिख (Zurich) की सन्धि ने पुष्टि कर दी। इस सम्बन्ध में उसने सार्डीनिया के राजा से भी परामर्श नहीं किया था। ज्यूरिख की सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया की सेना ने लोम्बार्डी खाली कर दिया। परमा, मोडेना और टस्कैनी की जनता ने विद्रोह कर दिया और अपने राजाओं को निकाल दिया। साथ ही सीर्डीनिया-पीडमोन्ट के साथ विलय के पक्ष में मतदान किया। ट्यूरिन (Turin) की सन्धि के अनुसार नैपोलियन तृतीय ने टस्कैनी, परमा, मोडेना और लोम्बार्डी के सार्डीनिया-पीडमोन्ट के साथ विलय को मान्यता दे दी और पुरस्कार स्वरूप नाइस (Nice) और सेवॉय (Savoy) के क्षेत्र प्राप्त किये। इस प्रकार नैपोलियन तृतीय इटली के भाग्य का निर्णायक बन गया। अब वह अपनी शक्ति और लोकप्रियता के चरमोत्कर्ष पर था। उसने पुराने शत्रु आस्ट्रिया को पराजित करके और आल्पस पर्वत की ओर फ्रान्स की सीमाओं का विस्तार करके फ्रान्सीसी राष्ट्रीय आकांक्षाओं को सन्तुष्ट किया था। घृणित सन् 1815 की सन्धियों का अस्तित्व समाप्त हो गया और सीमाएँ जिसमें यूरोपीय कूटनीतिज्ञता ने फ्रान्स को सीमित कर दिया था, का अतिक्रमण हो गया।

पोल्स (The Poles)—इटली में नैपोलियन तृतीय का हस्तक्षेप उसके जीवन का उच्च जलांक था, उसके उपरान्त उसने उन्नति नहीं की। सन् 1860 के बाद उसके भाग्य ने उसका साथ छोड़ दिया और उसकी विदेश नीति हस्तक्षेप करने और गड़बड़ कर देने (Meddle and Muddle) की हो गयी। पोल्स रूस के अधीन थे और अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। फ्रान्स के उदारवादी पोलिश स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे। पोल्स कैथोलिक धर्मावलम्बी थे, अस्तु फ्रान्स के कैथोलिक अनुयायियों की इच्छा थी कि नैपोलियन तृतीय पोल्स की सहायता करे। नैपोलियन तृतीय स्वयं भी पोलिश राष्ट्रवाद का प्रबल समर्थक था। सन् 1863 में पोल्स ने रूस के जार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया लेकिन नैपोलियन ने उनकी अपेक्षित सैन्य सहायता नहीं की क्योंकि उसको भय था कि प्रशा और आस्ट्रिया रूस की सहायता करेंगे और ऐसी स्थिति में रूस के साथ युद्ध आत्मघाती होगा। परिणामस्वरूप रूस ने पोल्स विद्रोह का निर्ममतापूर्वक दमन कर दिया। फ्रान्स के उदारवादियों एवं कैथोलिक अनुयायियों को घोर निराशा हुई।

मैक्सिको (Mexico)—मैक्सिको सन् 1823 में स्वतन्त्र हो गया था, लेकिन सन् 1861 तक दुर्भाग्य से कोई स्थायी सरकार नहीं रही। उसी वर्ष ज्यूरेज (Juarez) गणतन्त्र का राष्ट्रपति बन गया। फ्रान्स, स्पेन और इंग्लैण्ड के पूँजीपतियों से ऋण ले रखा था। उसने दो वर्ष के लिए ऋण के ब्याज का भुगतान रोक दिया। ऋणदाताओं ने अपने-अपने देश की सरकारों से सहायता की याचना की। संयुक्त राज्य अमेरिका स्वयं गृहयुद्ध में व्यस्त था। नैपोलियन तृतीय ने उस स्थिति का शोषण करने का निर्णय किया। वह मैक्सिको को कुछ यूरोपीय शक्तियों के नियन्त्रण में रखना चाहता था जिससे मैक्सिको ऐंग्लो-सैक्सन के विरुद्ध तरंगरोध का काम करेगा। ऐंग्लो-सैक्सन लोग आक्रामक थे, यदि इनको रोका नहीं गया, वे समस्त अमेरिका पर नियन्त्रण कर लेंगे और बाद में समस्त विश्व पर नियन्त्रण कर लेगा। यद्यपि इस राज्य पर फ्रान्स का आधिपत्य नहीं होगा, लेकिन मूल्यवान मित्र बनाने में सहायता अवश्य मिलेगी।" इस योजना के अनुसार इंग्लैण्ड, फ्रान्स और स्पेन की नौ-सेना ने मैक्सिको स्थित वेराक्रूज की ओर प्रस्थान किया। इनको आशा थी कि दबाव बनाकर अपेक्षित ब्याज का भुगतान करवा लिया जायेगा। बाद में ज्ञात हुआ कि मैक्सिको पर विजय प्राप्त करना आवश्यक होगा। ग्रेट ब्रिटेन एवं स्पेन दोनों ने किसी न किसी बहाने अपनी सेनाएँ हटा लीं।

फ्रान्स अकेला रह गया। मैक्सिको के कठोर विरोध के उपरान्त सन् 1863 में मैक्सिको नगर पर फ्रान्स का नियन्त्रण हो गया। सन् 1864 में नैपोलियन तृतीय ने आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस जोसफ (Francis Joseph) के उदारवादी, असाधारण वैज्ञानिक एवं पर्यटक भाई मैक्सिमिलियन (Maximilian) को मैक्सिको का शासक बनाया। इस प्रस्ताव के द्वारा फ्रान्स आस्ट्रिया की मैत्री प्राप्त करना चाहता था। मैक्सिमिलियन ने अपने भाई जोसफ और ग्रेट ब्रिटेन की इच्छाओं के विपरीत यह प्रस्ताव स्वीकार किया था। उसकी सहायता के लिए जनरल फोरे (Forey) के नेतृत्व में 23,000 सैनिकों की शक्तिशाली सेना थी। आर्कड्यूक मैक्समिलियन का मैक्सिको में भव्य स्वागत किया गया। दुर्भाग्य से उसके समर्थक विभाजित थे और उसके विरोधी मैक्समिलियन को अपदस्थ करने के लिए कृत संकल्प थे। संयुक्त राज्य अमेरिका ने गृह युद्ध समाप्त होते ही मुनरो सिद्धान्त (आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करने की नीति) को प्रयुक्त करते हुए फ्रान्स से अपनी सेना हटाने और मैक्सिको छोड़ने के लिए दबाव डाला। यह नैपोलियन और फ्रान्स का बहुत अपमान था। नैपोलियन स्वयं भी अपनी इस परियोजना से थक चुका था। इन परिस्थितियों में नैपोलियन तृतीय ने फ़रवरी, 1867 में अपनी सेना मैक्सिको से हटाने का निश्चय किया। जून, 1867 में मैक्सिको की स्थानीय शक्तिशाली सेना ने मैक्समिलियन को बन्दी बना लिया और 17 जून को गोली मार दी। मैक्समिलियन की मृत्यु के कारण आस्ट्रिया फ्रान्स के विरुद्ध हो गया। फ्रान्स की सशस्त्र सेनाओं के मैक्सिको में होने के कारण फ्रान्स आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में प्रभावशाली ढंग से हस्तक्षेप नहीं कर सका।

आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध (Austro-Prussian War)—आस्ट्रिया और प्रशा के मध्य सन् 1866 में केवल 7 सप्ताह का अल्पकालीन युद्ध हुआ। सैडोवा (Sadowa) के युद्ध में आस्ट्रिया की सेना पराजित हो गयी और उसने प्रशा के साथ सन्धि की। प्रशा की द्रुतगति से विजय ने नैपोलियन तृतीय के समस्त कूटनीतिज्ञ आकलनों को अस्त-व्यस्त कर दिया। नैपोलियन तृतीय को आशा थी कि प्रशा पराजित हो जायेगा और जर्मनी अत्यधिक निर्बल हो जायेगा। आस्ट्रिया की पराजय ने फ्रान्स की आकांक्षाओं को ध्वस्त कर दिया। जर्मनी को विभाजित एवं कमजोर रखना फ्रान्स की परम्परागत नीति रही, लेकिन प्रशा की विजय एवं जर्मनी के लगभग एकीकरण ने फ्रान्स के लिए संकट उत्पन्न कर दिया। प्रशा की सैनिक सफलता को फ्रान्स के लिए चुनौती और सुरक्षा के लिए खतरा माना जाता था। इतिहासकारों ने उचित ही कहा, "यह फ्रान्स था, जिसकी सैडोवा में पराजय हुई थी। नैपोलियन तृतीय अब अपनी कूटनीतिक पराजय का प्रतिशोध लेने का प्रयास करेगा। अब फ्रान्स और प्रशा के मध्य युद्ध अनिवार्य हो गया।

फ्रान्स और प्रशा का युद्ध (सन् 1870-71) (Franco-Prussian War)—प्रशा के चान्सलर बिस्मार्क का दृढ़ विश्वास था कि जर्मनी के एकीकरण के लिए फ्रान्स के साथ युद्ध और फ्रान्स की पराजय आवश्यक थी। इस दिशा में वह दिन-रात काम कर रहा था। युद्ध आरम्भ करने के लिए केवल बहाना अथवा तात्कालिक कारण चाहिए था। फ्रान्स में भी प्रशा के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की सामान्य माँग थी। युद्ध अथवा शान्ति का निर्णय करने के लिए मन्त्रिपरिषद् की तीन बैठकें हुईं। ग्रेमोन्ट ने जोर देते हुए कहा, "यदि आप एक बार पुनः काँग्रेस का उल्लेख करते हैं, मैं आपके चरणों में अपना त्याग-पत्र फेंक दूँगा।" परिणामस्वरूप फ्रान्स ने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ग्रेमोण्ट (Gramont) ने कहा, "हम आपके लिए सुनिश्चित आश्वासन (गारण्टी) नहीं ला सकते हैं, लेकिन आपके लिए युद्ध लाये हैं।"

दोनों देशों में युद्ध का स्वागत किया गया। फ्रान्स को आक्रमणकर्ता माना गया। जर्मनी के दक्षिणी राज्य फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध में प्रशा के साथ सम्मिलित हो गये। जर्मनी में हर जगह स्वतन्त्रता के युद्ध के गीत पुनर्जीवित हो गये। बिस्मार्क ने रूस को पहले ही अपने पक्ष में कर लिया था। इटली के प्रशा के साथ मैत्री सम्बन्ध थे, क्योंकि प्रशा ने सन् 1866 में इटली को वेनेशिया (Venetia) दिलवाने में सहायता की थी, इसके अतिरिक्त फ्रान्स की पराजय से इटली को रोम पर आधिपत्य स्थापित करने का अवसर मिल जायेगा। ग्रेट ब्रिटेन ने तटस्थता की नीति का अनुसरण किया। अस्तु कहीं से कोई सहायता नहीं मिली।

जर्मन सेना ने विनाशकारी आक्रमण आरम्भ किया और फ्रान्स की सेना को वेजनबर्ग (Weissenburg), स्पिकहेरन (Spicheren), वर्थ (Worth), ग्रैवोलेट (Gravelotte) और सेडन (Sedan) के युद्धों में पराजित किया। सेडन की विजय निर्णायक थी। तदुपरान्त फ्रान्स की सेना ने आत्म-समर्पण कर दिया और नैपोलियन तृतीय को बन्दी बना लिया गया। इसके परिणामस्वरूप फ्रान्स में द्वितीय साम्राज्य का पतन हो गया और सितम्बर, 1870 में तृतीय गणतन्त्र की घोषणा कर दी गयी। बिस्मार्क इससे सन्तुष्ट नहीं था और पेरिस पर दबाव बनाया, लेकिन कठोर संघर्ष के बाद पेरिस ने आत्मसमर्पण कर दिया। सन् 1871 में फ्रेन्कफर्ट की सन्धि के साथ युद्ध का अन्त हो गया।

औपनिवेशिक क्षेत्र (Colonial Sphere)—नैपोलियन ने अल्जीरिया के समस्त क्षेत्र का फ्रान्स में विलय कर लिया था और यह एक समृद्ध एवं सम्पन्न उपनिवेश बन गया था। उसने फ्रान्स एवं कैथोलिक अनुयायियों के हितों की सुरक्षा के लिए सैन्य अभियान सीरिया भेजा। इंग्लैण्ड के सक्रिय सहयोग से एक सैन्य अभियान चीन भेजा और अनेक बन्दरगाह यूरोपवासियों के व्यापार के लिए खोल दिये गये। सन् 1851 में उसने दण्डात्मक अभियान अन्नाम और कोचिन-चीन भेजे लेकिन सन् 1864 में कोचीन-चीन पर नियन्त्रण के साथ फ्रान्स के औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार किया। लेकिन मैक्सिको में अपमानजनक असफलता ने समस्त उपलब्धियों को धूमिल कर दिया।

नैपोलियन तृतीय का पतन—मैक्सिको नैपोलियन के साम्राज्य का मास्को सिद्ध हुआ। पहला उसके स्वयं के लिए विनाशकारी था जैसे कि दूसरा उसके महान् चाचा नैपोलियन बोनापार्ट के लिए विनाशकारी था। हेजन ने मैक्सिको की नीति के विषय में लिखा है, "नैपोलियन की एक गम्भीर गलती, जो इस समय चरमोत्कर्ष की ओर जा रही थी, उसकी मैक्सिकन नीति, एक सर्वाधिक अनावश्यक, अविवेचित एवं विनाशकारी साहसिक उद्यम था।"

हेजन ने मैक्सिको के असफल प्रयास के घातक एवं दूरगामी परिणामों के सम्बन्ध में लिखा है "फ्रान्स के सम्राट के लिए यह एक सर्वाधिक खर्चीला कार्य था। इसने सन् 1864-66 के बीच मध्य यूरोप में घटित होने वाली निर्णायक घटनाओं जैसे डेनिश (Danish War) और आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध, जिसके परिणाम ने महत्वाकांक्षी, आक्रामक और शक्तिशाली सैनिक राज्य प्रशा के उत्कर्ष द्वारा यूरोप में फ्रान्स के महत्व को इतने गम्भीर रूप से परिवर्तित कर दिया था, में उसको अपनी भूमिका का निर्वाह करने से रोक दिया था। इसने संयुक्त राज्य अमेरिका की धमकियों के सामने उसके सक्रिय सहयोगियों द्वारा विस्मयकारी भाग्य के सहारे छोड़ने ने उसको नैतिक दृष्टि से यूरोप के सामने बहुत हानि पहुँचायी, इसने देश में भी उसकी प्रतिष्ठा को कम किया।" मैक्सिकन असफलता के तत्काल बाद शीर्ष पर सन् 1866 में सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रशा की विजय थी। यदि मैक्सिको अभियान में धन-जन की विपुल क्षति नहीं हुई होती (इस सबके उपरान्त भी असफलता मिली) नैपोलियन ने निश्चित रूप से प्रभावशाली ढंग से जर्मनी के विषय में हस्तक्षेप किया होता। इटली के सदृश जर्मनी

के पुनर्निर्माण में, जैसा बिस्मार्क ने किया, अपनी मौन स्वीकृति के मूल्य के रूप में कुछ प्राप्त कर लिया होता। जर्मनी के पुनर्निर्माण में फ्रान्स की किसी भी रूप में किसी प्रकार की कोई भूमिका नहीं थी। फ्रान्स की पूर्ण उपेक्षा सम्राट के लिए महान् पराजय थी और फ्रान्स की प्रतिष्ठा को बहुत क्षति पहुँचायी।

सन् 1865 में नैपोलियन तृतीय ने बिस्मार्क के साथ साक्षात्कार में बिस्मार्क ने उसको आश्वासन दिया था कि वह राइन की ओर सम्भवतः बेल्जियम अथवा राइनभूमि मुआविजे के रूप में ले सकता था। सन् 1866 के युद्ध के बाद नैपोलियन तृतीय ने फ्रान्स के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का प्रयास किया। उसने निरर्थक एवं असफल बेल्जियम की माँग की। वह राइन नदी का तटीय क्षेत्र प्राप्त करने में असफल हुआ तब उसने लक्जमबर्ग (Luxemburg) खरीदने का विचार किया। हालैण्ड का शासक इसको बेचने के लिए तैयार था, लेकिन बिस्मार्क ने विरोध किया। नैपोलियन तृतीय युद्ध के पक्ष में नहीं था। इस विषय को उन चतुर्गुट, प्रमुख शक्तियों जिन्होंने सन् 1815 में विएना सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे, के पास निर्णय के लिए भेज दिया गया। सन् 1867 में लन्दन में आयोजित प्रमुख शक्तियों के सम्मेलन ने लक्जमबर्ग को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया और समस्त शक्तियों ने इसकी तटस्थता का आश्वासन दिया। नैपोलियन तृतीय लक्जमबर्ग भी प्राप्त करने में असफल रहा।

नैपोलियन तृतीय की विदेश में असफलता ने उसकी देश के अन्दर स्थिति को कमजोर कर दिया था। चारों ओर से उसकी विदेश नीति की कटु आलोचना की गयी। उसका प्रबुद्ध निरंकुशतावाद भी जनता को धोखा नहीं दे सका क्योंकि निरंकुशतावाद, जो नीति का संचालन करता था, में प्रबुद्धता की उपेक्षा की गयी। अस्तु गणतन्त्रवादियों और समाजवादियों ने उसकी निरंकुश शासन प्रणाली के विरुद्ध विरोध व्यक्त किया। सम्राट ने उदारवादियों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया, लेकिन उन्होंने सुधारों की माँग की। नैपोलियन ने समय-समय पर सुविधाएँ दीं। सन् 1860, 1861 और 1867 में जारी आदेशों के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को सरकार की नीति पर संसद में विचार-विमर्श और आलोचना करने और संसद के पटल पर विधेयक प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता दी। सन् 1868 में जनता को सार्वजनिक सभाएँ आयोजित करने की स्वतन्त्रता दी और समाचार-पत्रों पर नियन्त्रण शिथिल किया। अगले वर्ष संविधान में महत्वपूर्ण संशोधन करके मन्त्रियों को संसद के प्रति उत्तरदायी बना दिया। इन सुधारों के उपरान्त विरोध निरन्तर बढ़ता गया। पादरियों, जिनकी सद्भावना प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ दाँव पर लगाया, ने इटली के प्रति फ्रान्स की नीति की कटु आलोचना आरम्भ कर दी। इस नीति ने पोप की भौतिक सत्ता को संकट में डाल दिया।

नैपोलियन ने अनुभव किया कि उसकी पकड़ द्रुतगति से शिथिल हो रही थी। उसने विचार किया कि अभूतपूर्व सफलता द्वारा ही अपने डगमगाते सिंहासन को सुदृढ़ करना सम्भव था। अस्तु एक बार पुनः एक साहसी एवं उत्साहपूर्ण नीति का अनुसरण किया। लेकिन इस नीति से वह बिस्मार्क के हाथों की कठपुतली बन गया। बिस्मार्क ने पूरी तरह से मात दे दी। सन् 1870 में सेडन के युद्ध में वह पूर्णतया पराजित हो गया और उसको बन्दी बना लिया गया। नैपोलियन तृतीय के पतन के साथ साम्राज्य का पतन हो गया और फ्रान्स तृतीय गणतन्त्र में मार्ग खोजने के लिए विवश हो गया। यह दुःखद पतन था, "लेकिन अनुपयुक्त नहीं था और भाग्य जिसने उसको सिहांसन पर बिठाया था, की अपेक्षा अनुचित नहीं था।"

नैपोलियन तृतीय का मूल्यांकन (An Estimate of Napoleon III)—प्रो. एल. मुकर्जी ने नैपोलियन तृतीय के विषय में लिखा है, "असाधारण जीवन में आदि से अन्त तक लुईस नैपोलियन एक रहस्यमय व्यक्ति, फ्रान्स के लिए एक समस्या और यूरोप के लिए एक

पहेली बना रहा।" नैपोलियन का समस्त जीवन विरोधों और असंगतियों से परिपूर्ण है कि उसका उचित मूल्यांकन करना कठिन है। वह एक महान् "साम्राज्यिक रहस्यमय व्यक्ति" फ्रान्स और यूरोप के लिए एक रहस्य था। उसका वर्णन विविध रूपों में, एक मूर्ख, दुष्ट, खलनायक, दुर्जन एवं राजनीतिज्ञ के रूप में किया गया है। उसने फ्रान्स को चकाचौंध किया, उसने यूरोप को परेशान किया, और अन्त में न तो उसका विश्वास किया जाता था और न उसको कोई समझता था। सत्ता तक उसकी उन्नति की परिस्थितियों से वह काला और खतरनाक षड्यन्त्रकर्ता, अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कहीं रूकता प्रतीत नहीं होता है। यदि हम उसके पतन की ओर देखते हैं, वह एक असन्तुलित मस्तिष्क वाला दुर्बल और असंगत व्यक्ति प्रतीत होता है। विक्टर ह्यूगों ने उचित ही उसकी "नैपोलियन छोटा" (Napoleon the little) के रूप में निन्दा की। एक फ्रान्सीसी इतिहासकार कहता है, "उसका आधा भाग मैकियावेली (Machiavelli) एक महान् राजनीतिक दार्शनिक और आधा भाग डान किवक्सोट (Don Quixote) का था।" यह एक सुखद चित्रण है, जो प्रशंसनीय ढंग से उसके विरोधाभासों को संक्षिप्त में प्रस्तुत करता है।

उसकी असंगत नीति के अनेक कारण थे। उसने स्वयं को बहुत भ्रमात्मक स्थिति में पाया। उसको सिंहासनारूढ़ होते ही एक निश्चित कार्यक्रम कार्यान्वित करने का दायित्व मिला लेकिन उसकी क्षमता और सामर्थ्य उसके अनुरूप नहीं थी। नैपोलियन के विचार के प्रवर्तक के रूप में उसने बोनापार्टवाद की चेतना और भावना को उद्वेलित किया लेकिन वह किर्तव्यविमूढ़ था, जब उसकी चेतना ने समुचित उत्तर दिया। इसके अतिरिक्त उसके स्वयं के विचार एवं दृढ़ मान्यताएँ थीं जिन्होंने उसकी उस भूमिका का, जिसका निर्वाह करने के लिए आह्वान किया गया था, विरोध किया। ये सब "उसकी स्थिति की असंगतियों एवं उसकी नीति की असंगतियों के कारण था।" अस्तु उसने घोषणा की थी कि "साम्राज्य शान्ति है"। लेकिन शान्ति गौरव, जिसकी फ्रान्स की जनता उससे आशा करती थी, एक ऐसी जो नैपोलियन के विचार के प्रतिपादन और व्यापक प्रचार द्वारा उद्वेलित की गयी थी, के साथ असंगत थी। इटली के राष्ट्रवाद का समर्थन करने में उसने एक ऐसा कदम उठाया जिसमें पोप का विनाश निहित था और फ्रान्स की कैथोलिक जनता पोप के हितों की रक्षा करने के लिए धर्मान्धिता के कारण बाध्य थी। दूसरी ओर एकीकृत जर्मनी, फ्रान्स की सुरक्षा के लिए बहुत बड़ा खतरा बन सकता था। इस प्रकार जर्मनी एवं इटली के प्रति अपने दृष्टिकोण में वह परस्पर विरोधी शक्तियों, जिनमें वह न तो समन्वय स्थापित कर सका और न ही वह नियन्त्रण कर सका, के कारण द्वन्द्व में पड़ गया।

इटली के आन्तरिक विषयों में नैपोलियन तृतीय का हस्तक्षेप उसकी विचित्र स्थिति, जो मुख्य रूप से उसके असंगत आचरण, व्यवहार एवं गतिविधि के लिए उत्तरदायी थी, की यद्यपि दुखान्त, पर असाधारण व्याख्या है। फ्रान्स के गणतन्त्र के राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचन के बाद वह फ्रान्स में शक्तिशाली पादरी वर्ग का समर्थन प्राप्त करके अपनी स्थिति को अधिक सुदृढ़ करना चाहता था। अस्तु उसने पोप की सत्ता को पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य से सैन्य अभियान रोम भेजा था। लेकिन एक गणतन्त्र के राष्ट्रपति के लिए रोम में समानान्तर गणतन्त्र सरकार का दमन करना अत्यधिक असंगत कार्य था, लेकिन नैपोलियन को यह कार्य अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति तथा फ्रान्सवासियों की गौरव के लिए प्रबल आकांक्षा को तुष्ट करने के लिए करना पड़ा था।

उसकी कालान्तर में इटली के प्रति नीति समान रूप से असंगत एवं विनाशकारी थी। इटली में राष्ट्रवादी आन्दोलन के साथ नैपोलियन तृतीय की वास्तविक सहानुभूति थी और

उसने आस्ट्रियावासियों को निकालने के लिए सार्डीनिया के राजा की सहायतार्थ सशस्त्र सेना भेजी। लेकिन कुछ दूरी तक जाने के बाद वह अनायास रूक गया। परिणाम यह हुआ कि पहले तो उसका मुक्तिदाता के रूप में स्वागत किया गया, लेकिन बाद में उसको इटली के हितों के साथ विश्वासघात करने के कारण श्राप दिया गया। उसने इटलीवासियों का प्रेम, कृतज्ञता, सद्भावना, आभार, विश्वास एवं मित्रता खो दी, साथ ही आस्ट्रिया को शत्रु बना लिया एवं सेवॉय और नाइस का विलय करके इंग्लैण्ड को अप्रसन्न कर दिया। प्रो. हेजन ने नैपोलियन तृतीय की विदेश नीति के सन्दर्भ में लिखा है, "साम्राज्य पहले ही पराकाष्ठा पर पहुँच गया था, यद्यपि यह कुछ समय तक स्पष्ट नहीं था। यदि नैपोलियन ने अपनी गतिविधियों को देश में स्थितियों के सुधार और विकास तक सीमित रखा होता, उसका शासन सफलतापूर्वक एवं लाभदायक ढंग से चलता रहता। लेकिन उसने दिखावटी और जोखिम युक्त विदेश नीति का अनुसरण किया जिसके परिणाम परेशान करने वाले एवं अन्ततोगत्वा विनाशकारी सिद्ध हुए। सन् 1859 के इटली के युद्ध में उसकी भागीदारी नैपोलियन के गम्भीर कष्टों का प्रारम्भ थी।" हेजन आगे लिखते हैं, "द्वितीय साम्राज्य के सन् 1860 से सन् 1870 तक क्रियाकलापों को समझने के लिए, आधुनिक इटली के निर्माण में नैपोलियन तृतीय द्वारा अभिनीत भूमिका का अध्ययन करना चाहिए, जिसके परिणाम उसके लिए इतने आकस्मिक, इतने दूरगामी और अन्त में इतने विनाशकारी थे।" उसने इस प्रकार फ्रान्स की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को घातक ढंग से कमजोर कर दिया था। एक ऐसा तथ्य तो अन्ततोगत्वा उसका पतन लाया।

देश में उसकी इटली के प्रति नीति के विनाशकारी प्रभाव थे। पादरी वर्ग भयभीत था कि पोप की स्थिति के साथ समझौता किया जायेगा, उसको इतनी दूर तक जाने के लिए दोषी मानता था जबकि उदारवादी उसको पर्याप्त दूरी तक नहीं जाने के लिए दोषारोपण करते थे। यह दुर्दशा अधिकांशत: उसकी विचित्र स्थिति का ही परिणाम थी। यदि वह निष्क्रिय दर्शक बना रहता, तब वह नैपोलियनवंशीय परम्पराओं के प्रति झूठा बन जाता और उदारवादियों को पूर्णरूप से अपना विरोधी बना लेता। उसने हस्तक्षेप करके पादरी वर्ग को अप्रसन्न किया। इस प्रकार दो प्रभावशाली वर्गों के मध्य खाई थी और यह निरन्तर चौड़ी होती गयी। सम्राट ने दोनों के ऊपर अपनी पकड़ बनाये रखने का प्रयास किया, परन्तु उसके समस्त प्रयासों का दुखान्त हुआ।

यदि नैपोलियन की इटली के प्रति नीति असंगत थी, उसकी जर्मनी के प्रति नीति हस्तक्षेप करने वाली और असन्तुलित मस्तिष्क वाली थी। उसकी जर्मनवासियों की राष्ट्रवादी आकांक्षाओं के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी। उसने प्रशा को स्कैल्सविग-होल्सटिन (Schleswig-Holstien) विवाद का डचीज (Duchies) को सम्मिलित करके निर्णय करने का परामर्श दिया था और आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में नैपोलियन तटस्थ रहा था। निश्चित रूप से उसको अपनी तटस्थता के मूल्य के रूप में मुआविजे की आशा थी। लेकिन सैडोवा में प्रशा की भीषण शक्ति की अभिव्यक्ति ने उसके समस्त आंकड़े अस्त-व्यस्त कर दिये और फ्रान्स के पड़ोस में शक्तिशाली राज्य की स्थापना ने फ्रान्स की सुरक्षा के लिए भावी खतरे के प्रति सजग कर दिया। फ्रान्स की जनता ने उसकी निर्लज्ज तटस्थता के लिए उसको दोषी घोषित किया और नारा लगाया "यह फ्रान्स था जो पराजित हुआ"। जनमत, जो निरन्तर साम्राज्य और सम्राट के विरुद्ध उग्र हो रहा था, को शान्त करने के उद्देश्य से क्षतिपूर्ति माँगना आरम्भ किया। लेकिन बिस्मार्क ने यहाँ भी उसको विश्व के समक्ष भूमि का बलपूर्वक

अधिग्रहण करने की कभी भी न शान्त होने वाली भूख के साथ आक्रमणकर्ता के रूप में प्रदर्शित करके पराजित किया। साम्राज्य को बचाने के अन्तिम साधन के रूप में उसने प्रशा के विरुद्ध युद्ध का निर्णय किया था। वह सफल युद्ध की बाहरी चकाचौंध में आन्तरिक कठिनाइयों को छिपाना चाहता था। उसने अपना अन्तिम तुरूप का पत्ता डाला था, वह भी निष्फल हो गया।

द्वितीय साम्राज्य के पतन के कारण (Causes of the fall of the Second Empire)—अन्ततोगत्वा फ्रान्स के द्वितीय साम्राज्य का पतन हो गया। सैडन में सैनिक पराजय के बिना भी इसका पतन हो गया होता। यथार्थ में सम्राट गुणवान एवं प्रबुद्ध था। उसमें सत्ता के विशिष्ट गुण के साथ सम्मोहन का असाधारण गुण था। उसने फ्रान्स के ऊपर वास्तविक और लाभकारी चिन्ह छोड़े हैं। उसने देश की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार किया, जनता के कल्याण के लिए अनेक कार्य किये, और फ्रान्स के औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार किया। इन समस्त उपयोगी एवं कल्याणप्रद गतिविधियों के उपरान्त भी वह स्वयं को देश के किसी शक्तिशाली राजनीतिक दल के साथ सम्बद्ध नहीं कर सका। उसने विरोधी हितों के मध्य मध्यस्थ की भूमिका का निर्वाह करने का निश्चय किया, लेकिन उसकी समझौते की नीति प्रतिक्रियावादियों अथवा क्रान्तिकारियों में किसी को भी सन्तुष्ट नहीं कर सकी। पादरियों ने उसकी विदेश नीति की, गणतन्त्रवादियों ने उसकी निरंकुशता की और औद्योगिक एवं वाणिज्यिक वर्गों ने उसकी इंग्लैण्ड के साथ मुक्त व्यापार की कटु आलोचना की। इतने अधिक विरोधी तत्वों के मध्य समन्वय स्थापित करना एक जटिल कार्य था जिसको नैपोलियन महान् की शक्ति को भी चुनौती दी होती। यह "नैपोलियन छोटे" की सामर्थ्य के बाहर था। इन सबके अतिरिक्त द्वितीय साम्राज्य प्रारम्भ से ही एक पुरावशेष था।

यह निरंकुशता के सिद्धान्तों पर आधारित था जिनको शान्ति और व्यवस्था को आश्वस्त करने की आवश्यकता द्वारा न्यायोचित सिद्ध करने का प्रयास किया गया। लेकिन फ्रान्स उन्नीसवीं शताब्दी में निरंकुश शासन से बहुत आगे निकल चुका था। सन् 1830 और सन् 1848 की क्रान्तियों ने स्पष्ट कर दिया था कि फ्रान्स की जनता उत्सुकता से एक ऐसी सरकार की प्रतीक्षा कर रही थी जो लोकप्रिय (जनता) इच्छा की अभिव्यक्ति हो। कुछ समय के लिए साम्राज्य के वैभव, गौरव एवं प्रदर्शन ने, क्योंकि ये देश एवं विदेश में कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियों से समर्थित था, फ्रान्स की जनता को चकाचौंध कर दिया था। जैसे-जैसे समय गुजरता गया, सम्राट और निरंकुशतावादी शासन की अपनी सीमाएँ अधिक स्पष्ट हो गयीं। इसके अतिरिक्त विदेश में असफलताएँ जनता को स्पष्ट हो गयी थीं। परिणामस्वरूप सम्राट और साम्राज्य की आलोचनाएँ पूर्वापेक्षा अधिक तीव्र और शत्रुतापूर्ण हो गयी। नैपोलियन तृतीय ने उदारवादियों को सन्तुष्ट करने और स्वयं संवैधानिक सरकार के पीछे शरण लेने का प्रयास किया, लेकिन सामरिक नीति असफल हो गयी। निम्न सदन, चैम्बर ऑफ डिप्टीज के अन्दर और बाहर निरन्तर बढ़ता हुआ विरोध शत्रुतापूर्ण एवं हठीला हो रहा था। सन् 1851 में घटित राज्य विप्लव की क्रूरता एवं निर्ममता को स्मरण करते हुए बौदिन (Boudin) गणतान्त्रिक विधान सभा सदस्य (डिप्टी) की पेरिस की सड़कों पर भीषण सशस्त्र संघर्ष में क्रूर और पैशाचिक हत्या को भी स्मरण किया। बौदिन अब जनता के लिए शहीद बन गया था। रोचरफोर्ट (Rocherfort) के व्यंगात्मक तथा आलोचनात्मक लेखों एवं गैम्बैटा (Gambetta) नाम के युवा वकील की सारगर्भित तीखी आलोचनाओं ने फ्रान्स की जनता को स्मरण कराया कि नैपोलियन तृतीय अपनी महत्वाकांक्षा के पीड़ितों के शवों को रौंदता

हुआ सिंहासन तक पहुँचा था। इस तथ्य ने सम्राट के ऊपर सनसनीखेज प्रकाश डाला। जनता अब किसी भी स्थिति में एक ऐसी सत्ता के, जिसने कपटपूर्वक अन्धकार में एक ऐसे व्यक्ति, जिसने गणतन्त्र की रक्षा की शपथ ली थी, की पीठ में छुरा घोंपकर अपना साम्राज्यिक जीवन आरम्भ किया था, समर्थन करने के लिए तत्पर नहीं थी। सम्राट का स्वास्थ्य भी निरन्तर खराब हो रहा था और जनता पर पकड़ शिथिल हो रही थी। वह स्वयं एक बीमार व्यक्ति बन गया था और जनता भी उससे ऊब चुकी थी। सन् 1870 तक किसी भी प्रकार का झटका साम्राज्य के लिए खतरनाक हो सकता था। साम्राज्य को समाप्त करने के लिए सैडन जैसे घातक आघात की भी आवश्यकता नहीं थी। युद्ध की सामान्य असफलता ही पर्याप्त होती।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. नैपोलियन तृतीय की विदेश नीति का पुनरीक्षण करें।
   Evaluate the foreign policy of Napolean III.
   (मगध, 1966, 99; कानपुर, 1995, 98; आगरा, 1992, 94, 95, 96, 97, 98, 99; अवध, 1992, 95; रुहेलखण्ड, 1994, 98; लखनऊ, 1993, 2000; बुन्देलखण्ड, 1993, 95, 97; गोरखपुर, 1993, 95, 2000 भागलपुर, 1997; पटना एवं जबलपुर, 1996; रायपुर 1997, 98)
2. नैपोलियन तृतीय के पतन एवं असफलता के क्या कारण थे ?
   What were the causes of downfall and failure of Napolean III ?
   (रायपुर एवं जबलपुर, 1999; मेरठ, 1991, 99; बुन्देलखण्ड, 1992; कानपुर, 1993)
3. नैपोलियन तृतीय की गृहनीति की विवेचना कीजिये।
   Critically examine Napolean III's Home Policy. (जबलपुर, 1995, 98, 2000; बुन्देलखण्ड, 1990; आगरा, 1993, 99, 2000; रुहेलखण्ड, 1995, 99)
4. एक शासक के रूप में नैपोलियन तृतीय के कृत्यों का मूल्यांकन कीजिये।
   Summarise the achievements of Napolean III as a ruler.
   (लखनऊ, 1991; मेरठ, 1998; बुन्देलखण्ड, 1996, 99; गोरखपुर, 1994; कानपुर, 1994, 97; अवध, 1993, 97; रुहेलखण्ड, 1997)
5. नैपोलियन तृतीय का उत्कर्ष कैसे हुआ ?
   How did Napolean III rise to power ? (मेरठ, 1997)
6. "नैपोलियन तृतीय गुण-दोषों का मिश्रण था।" क्या यह कथन उसके चरित्र तथा व्यक्तित्व का उचित मूल्यांकन है ?
   "Napolean III was the mixture of good and eveil." Is this statement correct estimate of the character and personality ? (कानपुर, 2000)
7. नैपोलियन तृतीय के मैक्सिको अभियान का राजनीतिक महत्व स्पष्ट कीजिए।
   Explain political importance of Napolean III's Mexico Compaign.
   (आगरा, 1996; रुहेलखण्ड, 1992)
8. फ्रान्स के द्वितीय गणतन्त्र की क्या समस्याएँ थीं ?
   What were the problems of the Second Republic of France ?
   (आगरा, 2000; रुहेलखण्ड, 1999)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. द्वितीय गणतन्त्र का कार्यकाल .... रहा—
   (क) 24 फरवरी, 1845 से 2 दिसम्बर, 1852
   (ख) 24 फरवरी, 1848 से 2 दिसम्बर, 1852
   (ग) 24 फरवरी, 1848 से 2 दिसम्बर, 1850
   (घ) 24 फरवरी, 1850 से 2 दिसम्बर, 1852
2. सितम्बर 1848 के चुनाव में लुईस नैपोलियन .... स्थानों से निर्वाचित हुआ था—
   (क) 8 (ख) 4 (ग) 5 (घ) 2
3. राष्ट्रपति के रूप में नैपोलियन तृतीय .... तक रहा था—
   (क) 1848 से 1855 (ख) 1848 से 1852
   (ग) 1850 से 1854 (घ) 1849 से 1853
4. लुईस नैपोलियन तृतीय को ....सम्राट घोषित किया गया—
   (क) 2 दिसम्बर, 1850 (ख) 2 दिसम्बर, 1856
   (ग) 2 दिसम्बर, 1852 (घ) 2 दिसम्बर, 1853
5. नैपोलियन तृतीय ने सम्राट के रूप में ....शासन किया—
   (क) 1854 से 1872 (ख) 1852 से 1870
   (ग) 1850 से 1870 (घ) 1848 से 1870
6. नैपोलियन तृतीय ने क्रीमिया युद्ध में ....में सशस्त्र हस्तक्षेप किया था—
   (क) 1852 (ख) 1855 (ग) 1854 (घ) 1856
7. फ्रान्स और प्रशा युद्ध .... में हुआ था—
   (क) 1866-67 (ख) 1869-70 (ग) 1870-71 (घ) 1868-70
8. नैपोलियन तृतीय को सन् ....में सेडन के युद्ध में पराजय के बाद बन्दी बनाया गया था—
   (क) 1871 (ख) 1869 (ग) 1872 (घ) 1870
9. तृतीय गणराज्य की घोषणा ....में की गई—
   (क) सितम्बर 1870 (ख) सितम्बर 1868
   (ग) सितम्बर 1872 (घ) सितम्बर 1869
10. फ्रेन्क फर्ट की सन्धि .... में प्रशा-फ्रान्स युद्ध का अन्त हो गया—
   (क) 1869 (ख) 1870 (ग) 1871 (घ) 1872

[उत्तर—1. (ख), 2. (ग), 3. (ख), 4. (ग), 5. (ख), 6. (ग), 7. (ग), 8. (घ), 9. (क), 10. (ग) ।]

17

रूस (सन् 1815 से सन् 1917 तक)

[RUSSIA SINCE 1815 TO 1917]

नैपोलियन बोनापार्ट के पतन में अभिनीत महत्वपूर्ण भूमिका के परिणामस्वरूप रूस की विएना काँग्रेस के उपरान्त यूरोपीय राजनीति में प्रभावशाली स्थिति हो गयी। इतिहास में पहली बार रूस ने यूरोप का नेतृत्व ग्रहण किया था और यूरोपीय शक्तियाँ विशेष रूप से इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया गम्भीर भय एवं आशंका से ग्रस्त थीं। मैटरनिख के लिए रूस के सक्रिय समर्थन के बिना अपनी नीतियों को क्रियान्वित करना सम्भव नहीं था। अस्तु उसने रूस के जार अलेक्जेण्डर प्रथम को अपने विचारों, नीतियों एवं भावनाओं के अनुकूल बनाने के लिए अथक प्रयास किया। वियना काँग्रेस के समय अलेक्जेण्डर सर्वमान्य महत्वपूर्ण शक्ति था। सन् 1850 तक यूरोप के समस्त विवादों जिसमें शक्तियों के सामूहिक हस्तक्षेप की आवश्यकता होती थी, के समाधान में रूसी प्रभाव एक महत्वपूर्ण तथ्य था। पूर्वी विवाद तो विशेष रूप से पूर्णतया उसके प्रभाव क्षेत्र में ही था। रूस ने बाल्कन क्षेत्र की निरन्तर परिवर्तनशील गतिविधियों एवं समस्याओं में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया।

सामाजिक स्थिति (Social Condition)—यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी में रूस एक महान् यूरोपीय शक्ति बन गया था लेकिन अनेक दृष्टियों से रूस अब भी यूरोप में सर्वाधिक पिछड़ा हुआ देश था। उसका समय की गति के अनुरूप आन्तरिक विकास नहीं हुआ था। उसकी सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का चरित्र एवं स्वरूप पूर्ववत् मध्ययुगीन ही था। पीटर महान् एवं कैथरिन द्वितीय ने रूस को पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप ऊपरी तड़क-भड़क दी थी लेकिन यह भव्यता एवं शान-शौकत सामान्य जनता से बहुत दूर थी। समाज में मुख्य रूप से कुलीनों एवं कृषि दासों के दो वर्ग थे। निःसन्देह पादरी एवं मध्यवर्गीय व्यक्ति थे लेकिन सापेक्षिक दृष्टि से उनकी संख्या बहुत कम थी और एक वर्ग के रूप में वे महत्वहीन थे। सन् 1789 की महान् क्रान्ति से पूर्व फ्रान्स के अनुरूप कुलीन वर्ग ने अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों, जिन्होंने उनको पद एवं प्रतिष्ठा प्रदान की थी, का निर्वाह करना बन्द कर दिया था लेकिन इन पदों से सम्बद्ध विशेषाधिकारों का पूर्ववत् उपयोग कर रहे थे। कृषि दासों की आर्थिक स्थिति अत्यधिक निरीह एवं दयनीय थी। वह जमीन के साथ बँधे हुए थे और

भू-स्वामी उनको कोड़े मार सकता था, बेच सकता था, साइबेरिया के लिए निष्कासित कर सकता था, और बिना किसी बाधा के हत्या कर सकता था। यथार्थ में कृषि दास अपने भू-स्वामियों के पशु धन सदृश माने जाते थे। जार निकोलस प्रथम जैसे प्रतिक्रियावादी शासक भी इस प्रचलित असमानता को मान्यता देता था और कृषकों को दासता से मुक्त करने के लिए कुछ प्रभावहीन उपाय किये। कृषि दास की समस्या रूस की उन्नीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या थी।

रूस की प्रशासनिक व्यवस्था (Administrative System in Russia)—रूस की सामान्य जनता को कोई राजनीतिक अधिकार नहीं थे। कोई लोकतान्त्रिक संस्था नहीं थी। जार निरंकुश शासक था, अपनी इच्छानुसार दैवी अधिकार से प्रेरित होकर शासन करता था। जार स्वयं द्वारा नियुक्त और स्वयं के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिपरिषद् की सहायता से शासन करता था। उकासेस (Ukases), जो जार के व्यक्तिगत आदेश थे, जो उसके मन्त्रियों के परामर्श अथवा बिना उनकी सहमति के दिये गये थे, मात्र मान्य कानून थे। कोई संसद नहीं थी, प्रेस की स्वतन्त्रता नहीं थी, और न्यायाधीश स्वतन्त्र नहीं थे। प्रशासन के लिए अधिकारियों की बहुत बड़ी संख्या थी जो जार पर निर्भर थी और साम्राज्यिक पुलिस की सहायता से प्रान्तों का प्रशासन करते थे।

अलेक्जेण्डर प्रथम (Alexander I, 1801-1825)—अलेक्जेण्डर प्रथम ने स्विस शिक्षक ला हार्पे (La Harpe) से शिक्षा ग्रहण की थी। उसको अपने गुरू से विख्यात फ्रान्स की क्रान्ति के उदारवादी विचार एवं सिद्धान्त प्राप्त हुए थे। वह एक आदर्शवादी और धार्मिक स्वप्न दृष्टा था। एक ऐसा चरित्र, जो विचित्र रूप से असन्तुलित था एवं वह कभी भी अपने उद्देश्य के प्रति आश्वस्त नहीं था। परिणामस्वरूप वह परस्पर विरोधी विचारों एवं दृष्टिकोणों से प्रभावित हो जाता था और उसने अस्थिर एवं असंगत व्यवहार व्यक्त किया। उसका उदारवाद निर्विवाद था, उसके सिद्धान्त महान् थे, वह निष्ठापूर्वक विश्वास करता था कि नैपोलियनकालीन उथल-पुथल के बाद यूरोप में पुनः शान्ति और सद्भावना स्थापित करने का उसका दैविक दायित्व था। इसी उद्देश्य से उसने पवित्र मैत्री सम्बन्ध (Holy Alliance) का गठन किया था। सुधारों में गहन रुचि थी और संविधान की लोकप्रिय माँग के प्रति सहानुभूति थी। उसको उदारवादी विचार, भावनाएँ एवं प्रवृतियाँ पोलैण्ड के लिए स्वीकृत संविधान और फिनलैण्ड, एक प्रान्त जिसका हाल ही में रूस में विलय किया गया था, के संविधान के प्रति अभिव्यक्त सम्मान में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती हैं। उसने रूस के उत्तरी प्रान्तों के कृषि दासों को मुक्त कर दिया और दासता उन्मूलन का प्रबल समर्थन किया। लेकिन उसका उदारवाद उसको साम्राज्यिक नीति का अनुसरण करने से नहीं रोक सका। अलेक्जेण्डर प्रथम ने ही फिनलैण्ड पर विजय प्राप्त की थी और नैपोलियन के साथ मिलकर तुर्कों के विभाजन का प्रयास किया था।

विएना काँग्रेस के समय वह निर्विवाद रूप से एक उदारवादी शक्ति था। लेकिन कालान्तर में वह मैटरनिख के प्रभाव में आ गया। मैटरनिख ने अलेक्जेण्डर के समक्ष भीषण क्रान्ति का दृश्य प्रस्तुत करके भयभीत कर दिया था। अन्ततोगत्वा अपने अनुरूप

प्रतिक्रियावादी बना दिया। उदारवाद का नशा उतर गया और वह नेपल्स, जर्मनी अथवा स्पेन में विद्रोहों का दमन करने के लिए अपने प्रभाव अथवा सेना का आवश्यकतानुसार प्रयोग करने के लिए तैयार हो गया। मैटरनिख के परामर्श पर उसने अलेक्जेण्डर हिपस्लान्टी (Alexander Hypsilanti) के नेतृत्व में यूनानी विद्रोह को समर्थन करने से मना कर दिया, यद्यपि रूस की जनता की उन्मुक्त रूप से विद्रोहियों के साथ पूर्ण सहानुभूति थी। उसके प्रतिक्रियावादी रूप में परिवर्तन से उदारवादी अत्यधिक निराश एवं क्षुब्ध थे और अनेक गुप्त समितियों का गठन किया। सन् 1825 में उसका निधन हो गया। वह विरोधों का विचित्र मिश्रण एवं रहस्यवाद, उदारवाद, साम्राज्यवाद एवं निरंकुशतावाद का यौगिक (एक रासायनिक मिश्रण जिसके अवयवों को किसी भी विधि से अलग नहीं किया जा सकता) था।

निकोलस प्रथम (Nicholas I, सन् 1825-1855)—अलेक्जेण्डर प्रथम के देहान्त के उपरान्त कुछ काल तक देश में उपद्रव होते रहे। सेना के अधिकारियों और गुप्त समितियों ने उस व्यवस्था जिसके द्वारा निकोलस प्रथम को उसके बड़े भाई कान्सटेन्टाइन (Constantine) की अपेक्षा सिंहासन का उत्तराधिकारी बनना था, के विरुद्ध विरोध स्वरूप सशस्त्र आक्रमण किया। वह माह जिसमें यह विद्रोह हुआ था, देसम्बरिस्टस (Decemberists) के नाम से विदित था, विद्रोहियों ने प्रतिक्रिया की लहर को रोकने का प्रयास किया। उन्होंने अपना उद्देश्य 'कान्सटेन्टाइन और कान्सटीट्यूशन' बनाया। रूस में उदारवाद की प्रगति कितनी अल्पज्ञ थी, इस तथ्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि अनेक विद्रोही सैनिकों का विश्वास था कि "कान्सटीट्यूशन कान्सटेन्टाइन की पत्नी थी।" विद्रोह का कठोरतापूर्वक दमन कर दिया गया।

निकोलस प्रथम कट्टर रूढ़िवादी था और देसम्बरिस्टस विद्रोह ने उसके विचारों एवं दृष्टिकोण को पुष्ट किया। उसका दृढ़ मत था, कि रूस को बिना पाश्चात्य उदारवादी सिद्धान्तों एवं विचारों से प्रभावित हुए, अपने अनुसार विकास करना चाहिए। उसने रूसी साहित्य को प्रोत्साहित किया लेकिन विदेशी पुस्तकों एवं खोज पत्रों को अलग कर दिया। वह स्वयं को दैवी शक्ति द्वारा नियुक्त कानून एवं व्यवस्था के प्रबल समर्थक के रूप में मानता था। अस्तु क्रान्तियों का कट्टर विरोधी था। अपने 30 वर्ष के शासन काल में वह सदैव निरंकुशता और रूढ़िवादिता का प्रबल समर्थक रहा। उसने विदेशों में विद्रोहों का दमन करने के लिए रूसी सेना भेजी और देश में उदारवादी विचारों का दमन करने के लिए समस्त प्रकार के उपाय किये। उसने रूसवासियों की यात्रा को प्रतिबन्धित कर दिया, प्रेस की कठोर नियन्त्रण व्यवस्था स्थापित की, विश्वविद्यालयों में कर्मचारी वर्ग एवं पाठ्यक्रम की दृष्टि से पूर्ण नियन्त्रण रखा। देशद्रोह का पता लगाने और दण्ड देने के लिए व्यापक गुप्तचर व्यवस्था स्थापित की। इस प्रकार रूस को उदारवाद के संक्रामक कीटाणुओं से बचाने के लिए चारों ओर से बन्द कर दिया था। उसने सन् 1830 में पोलैण्ड के विद्रोह का कठोरता से दमन किया, अलेक्जेण्डर प्रथम द्वारा स्वीकृत संविधान को समाप्त कर दिया और पोलैण्ड का रूस में विलय कर लिया।

विदेशी विषयों में निकोलस प्रथम ने कैथरीन द्वितीय (Catharine) की विशद् आक्रमणात्मक नीति का, विशेष रूप से तुर्की के विषय में अनुसरण किया। इस दृष्टि से उसने

स्वतन्त्र नीति का पालन किया और मैटरनिख, जिसने उसके भाई अलेक्जेण्डर प्रथम को स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत यूनानियों के नाम पर हस्तक्षेप करने से रोक दिया था, के प्रभाव को पूर्णरूप से समाप्त कर दिया। उसने यूनानियों की स्वतन्त्रता संघर्ष का प्रबल समर्थन किया और तुर्की के साथ सन्धि का प्रस्ताव रखने में इंग्लैण्ड और फ्रान्स के दल में सम्मिलित हो गया। तुर्की ने सन्धि के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। परिणामस्वरूप रूस ने आक्रमण करके सन् 1827 में नैवारिनों (Navarino) में स्थित तुर्की के नौ-सैनिक बेड़े को ध्वस्त कर दिया था। इसके बाद फ्रान्स और इंग्लैण्ड इस विवाद से अलग हट गये लेकिन निकोलस ने स्वयं ही तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और तुर्की को पराजित करके उसको एड्रियानोपिल (Adrianople) की सन्धि के लिए विवश किया। इस सन्धि के प्रावधानों के अन्तर्गत यूनान अन्ततोगत्वा स्वतन्त्र हो गया और इसका श्रेय निकोलस को मिला। कुस्तुनतुनिया पर रूस का प्रभाव सर्वोपरि हो गया। स्थिति में इससे अधिक सुधार हुआ जब तुर्की को, मिस्र के महमत अली के आक्रमणात्मक दवाव के कारण रूस की सैनिक सहायता स्वीकार करनी पड़ी। तुर्की के साथ रूस की अनकेयर स्कैल्सी (Unkiar Skelessi) की सन्धि ने रूस को काला सागर को व्यावहारिक दृष्टि से रूस की झील के रूप में परिवर्तित करने की अनुमति दे दी। यह बाल्कन क्षेत्र में रूस की उत्कृष्ट उपलब्धि थी।

समीपवर्ती पूर्व से निकोलस प्रथम ने पश्चिम की ओर ध्यान दिया। सन् 1833 में क्रान्तिकारी आन्दोलनों के विरुद्ध परस्पर सुधार की दृष्टि से और उदारवाद को कुचलने के उद्देश्य से आस्ट्रिया और प्रशा के साथ घनिष्ठ मैत्री सन्धि की। इस त्रिराष्ट्रीय सन्धि ने अनेक दृष्टियों से पवित्र मैत्री सन्धि (Holy Alliance) को पुनर्जीवित किया और निकोलस को यूरोपीय राजनीति में केन्द्र-बिन्दु बना दिया। रूस की प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई और रूस की सर्वोच्चता निर्विवाद हो गयी।

कुछ वर्षों बाद मिस्र के महमत अली की महत्वाकांक्षी योजनाओं को अवरुद्ध करने एवं यूरोपीय क्रान्तियों के मुख्यालय फ्रान्स को झिड़कने के उद्देश्य से चतुर्राष्ट्रीय सन्धि (Quadruple Alliance) की। सन् 1849 में उसने हंगरी में विद्रोह का दमन करने के लिए आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस जोसेफ की सैन्य सहायता की। इस प्रकार लोकतन्त्र एवं उदारवाद के विरुद्ध निरंकुशता का समर्थन किया। इसी प्रकार उसने जर्मनी में राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध सशस्त्र हस्तक्षेप की धमकी दी थी, और यह निकोलस प्रथम का शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण ही था, जिसके कारण फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को फ्रैन्कफर्ट में उसको प्रस्तावित राज- सिंहासन को अस्वीकार करने का निर्णय करना पड़ा। इस प्रकार अब तक विदेशी विषयों में रूस का प्रभाव सर्वोच्च था।

निकोलस प्रथम की दृष्टि तुर्की की पतनोन्मुख शक्ति पर केन्द्रित थी। अब तक उसकी नीति ओटोमन साम्राज्य का विनाश करने की अपेक्षा उस पर प्रभुत्व स्थापित करने की थी। इसी नीति के अनुरूप उसने स्वयं को सुल्तान के रूप में व्यक्त किया और महमत अली के सशस्त्र आक्रमण के विरुद्ध रक्षा की थी। लेकिन इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री पामर्स्टन (Palmerston) की कूटनीति ने उसकी समस्त योजनाओं को निष्क्रिय कर दिया था, उसने

सुल्तान के अधिकृत क्षेत्रों को टुकड़ों में विभाजित एवं खण्डित करने की रूस की पुरानी नीति का अनुसरण करना आरम्भ कर दिया। निकोलस प्रथम की घोषणा कि "तुर्की एक बीमार व्यक्ति है" के बाद इस प्रकार के दृष्टिकोण ने फ्रान्स और इंग्लैण्ड में भय, आशंका एवं आक्रोश उत्पन्न कर दिया। परिणामस्वरूप क्रीमिया युद्ध (Crimean War) हुआ। इस युद्ध में रूस की पराजय से पीड़ित निकोलस प्रथम का सन् 1855 में देहावसान हो गया।

अलेक्जेण्डर द्वितीय (Alexander II, 1855-1881)—निकोलस प्रथम के देहान्त के बाद उसका पुत्र अलेक्जेण्डर द्वितीय सन् 1855 में सिंहासनारूढ़ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के रूस के इतिहास में अलेक्जेण्डर द्वितीय का शासन काल (सन् 1855-1881) निःसन्देह महान् सुधारों का युग माना जाता है। खेद है कि स्वतन्त्रता देने वाला जार शिक्षा, विचारधारा और स्वभाव से उस भूमिका का निर्वाह करने के उपयुक्त नहीं था, जिसका उसने निर्वाह करने का प्रयास किया। युवावस्था से ही वह उत्तरदायित्वों से बचने का प्रयास करता था और न्यूनतम बाधाओं वाले कार्य करता था। उसकी राजनीतिक विचारधारा के कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं थे। वह अपने पिता की अर्द्ध-तानाशाही वाली प्रशासनिक व्यवस्था और उसके नौकरशाही पर आधारित उपायों का प्रशासक था। अलेक्जेण्डर प्रथम और निकोलस प्रथम के अनुरूप अलेक्जेण्डर द्वितीय में भी उदारवादी और प्रतिक्रियावादी भावनाओं का सम्मिश्रण था। उसके राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारों का असंगत स्वरूप इस तथ्य की पुष्टि करता है।

रूस के लिए क्रीमिया युद्ध केवल पराजय ही नहीं थी वरन् एक मोहभंग भी था। इस असफलता ने निकोलस प्रथम द्वारा निर्मित निरंकुशता प्रणाली को लज्जित किया था। युद्ध काल में अभिव्यक्त सरकारी अकुशलता ने रूस के अधिकारी तन्त्र को कलंकित किया था। सैन्य तन्त्र जिसकी निष्ठा, समर्पण एवं कार्यकुशलता पर निकोलस प्रथम को गर्व एवं अटूट आस्था थी, केवल विनाश और अपमान लाया था। समस्त रूस पराजय से उत्तेजित था और जनता ने सामाजिक एवं राजनीतिक संगठनों में आमूल परिवर्तनों की माँग की। वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था के विरुद्ध सुलगता हुआ असन्तोष विस्फोट के रूप में अभिव्यक्त हुआ। अलेक्जेण्डर द्वितीय ने स्पष्ट अनुभव किया कि हाल में रूस की पराजय आंशिक रूप से निकोलस प्रथम की प्रशासनिक व्यवस्था की असफलता का परिणाम थी। समय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ परिवर्तन अतीव आवश्यक थे। उसने शासन का प्रारम्भ अपने पिता की प्रशासनिक व्यवस्था की कठोरताओं का उन्मूलन करके किया। जीवित दिसम्बरिस्ट निर्वासितों को मुक्त कर दिया गया।

उसने अपने शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किये। समाचार-पत्रों पर नियन्त्रण प्रणाली शिथिल कर दी गयी। दिसम्बर, 1855 में कुख्यात "बुतुइलिन समिति" को समाप्त कर दिया गया एवं समाचार-पत्रों को स्वतन्त्रता दी गयी। सन् 1845 से सन् 1854 की अवधि में केवल 19 पत्रिकाओं एवं 6 समाचार-पत्रों को प्रकाशन की अनुमति दी गयी थी। जबकि सन् 1855 से सन् 1864 की अवधि में इनकी संख्या बढ़कर क्रमशः 156 और 66 हो गयी। समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्धों के हटने से वास्तविक

स्वतन्त्रता मिली। 6 अप्रैल, 1865 के नियन्त्रण सम्बन्धी कानून से जनता सन्तुष्ट नहीं हुई क्योंकि इस कानून ने जनता की आशानुरूप पुराने कानूनों को रद्द नहीं किया था।

सन् 1855 से सन् 1861 की अवधि में विश्वविद्यालयों पर लगे हुए कठोर प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया गया। रूसी विद्वानों को विदेश जाने की अनुमति दी गयी। दर्शनशास्त्र और संवैधानिक कानून के प्राध्यापकों की पुनः नियुक्ति की गयी। सन् 1869 से सन् 1871 की अवधि में मास्को में महिलाओं के लिए कुछ अर्ध-सरकारी संस्थाएँ स्थापित की गयीं। माध्यमिक स्तर पर स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। विद्यार्थियों पर लगे हुए समस्त प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया। तदुपरान्त उसने रूस की आर्थिक स्थिति में सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया। उद्योगों एवं वाणिज्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया और विशद् रेलवे प्रणाली की योजना बनायी।

कृषि दासों की मुक्ति (Emancipation of the Serfs)—अलेक्जेण्डर द्वितीय द्वारा कृषि दासों की समस्या के सफलतापूर्वक निदान ने अपूर्व स्थायी मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठा अर्जित की। रूस की कुल कृषि योग्य भूमि के 9/10 भाग पर शाही वंशजों एवं 1,40,000 कुलीन वंशजों का स्वामित्व था। स्वामित्व छोटे अल्पमत के पास था, लेकिन रूस के 4,50,00,000 कृषि दास इस भूमि पर कृषि करते थे। कृषि दासों की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। कृषि दासों के साथ होने वाला व्यवहार भूमि स्वामियों के स्वभाव एवं चरित्र के अनुसार भिन्न-भिन्न था। सर्वाधिक खराब के अन्तर्गत पाशविक, नृशंस एवं बर्बर पशुओं के सदृश था। सर्वोत्कृष्ट के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से अलग अन्य अनेक दोषों पर ध्यान दिया जाता था। सन् 1828 से सन् 1854 की अवधि में कृषकों के 23 विद्रोह औसत प्रतिवर्ष होते थे। अलेक्जेण्डर द्वितीय ने इस समस्या, कृषि दासों की मुक्ति के निदान के लिए गम्भीरतापूर्वक, उदार एवं सहानुभूति पूर्ण हृदय से विचार किया। सर्वप्रथम उसने सन् 1858 में शाही परिवार की कृषि योग्य भूमि पर कार्यरत 2,30,00,000 कृषि दासों को मुक्त कर दिया। यह सम्राट की भूमि के कृषि दास थे, उनको स्वतन्त्र करने के लिए किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं था। उसने दृढ़ निश्चय एवं सतर्क समझौते के द्वारा स्वार्थी भू-स्वामियों के विरोध को शान्त कर दिया। परिणामस्वरूप सन् 1861 में अपनी विख्यात मुक्ति राजाज्ञा (Edict of Emancipation) जारी की। इस राजाज्ञा द्वारा समस्त रूस साम्राज्य में कृषि दास प्रथा समाप्त हो गयी। लेकिन जीवनयापन का उपयुक्त साधन प्रदान किये बिना स्वतन्त्र करने से मुक्ति द्वारा समस्या के समाधान की अपेक्षा अधिक गम्भीर समस्याओं के उद्भव की पूर्ण सम्भावना थी। इस सम्भावित समस्या का भी कुशलतापूर्वक समाधान किया गया। इस राजाज्ञा के मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे। इस राजाज्ञा ने कृषकों को अपने स्वामियों के बन्धन से मुक्त कर दिया और कुलीन वर्ग का कृषि दासों पर विधिक क्षेत्राधिकार समाप्त कर दिया गया। दूसरे ऐसी व्यवस्था की गयी कि कृषिदास कुलीन भू-स्वामी की जितनी भूमि पर अब तक कृषि कार्य करते थे, उसके आधे भाग पर कृषिदास का स्वामित्व हो जायेगा। यह भूमि राज्य ने भू-स्वामियों से खरीद ली थी और कृषकों को भावी 49 वर्षों में सरल किस्तों में भूमि के मूल्य का भुगतान करना था। यह भूमि कृषकों को व्यक्तिगत रूप से नहीं दी गयी, वरन् मीर (Mir) अथवा ग्राम समुदाय को दी गयी। मीर ही कृषकों के प्रयोग के लिए भूमि आवंटित करता था। मीर को ही ऋणमोचन राशि की वसूली के लिए उत्तरदायी बनाया गया एवं उनको इस उद्देश्य के लिए कराधान के लिए अधिकृत किया गया।

कृषि दासों की मुक्ति के परिणाम (Results of the Emancipation of the Serfs)—यद्यपि ये सुधार प्रबुद्ध भावना से किये गये थे, लेकिन कृषकों को निराशाजनक सिद्ध हुए। कृषकों ने स्वयं को करों के भार से दबा हुआ अनुभव किया और उस भूमि जिसके वे स्वामी बनाये गये थे, के मुआविजे के भुगतान का उन्होंने कठोर विरोध किया। कृषकों को आवंटित भूमि की मात्रा जीवनयापन के लिए पर्याप्त नहीं थी। कृषकों के लिए मीर भू-स्वामियों के अनुरूप ही कठोर, क्रूर एवं निर्मम था। कृषकों ने अनुभव किया कि अलेक्जेण्डर द्वितीय की राजाज्ञा ने उनको भू-स्वामियों से मुक्त करवा दिया लेकिन राज्य का दास बना दिया। स्वाभाविक रूप से कृषकों ने इस प्रश्न का उत्तर माँगा, "तब क्या, क्या यह स्वतन्त्रता है ?" कृषकों की आपत्तियों के उपरान्त भी मुक्ति की राजाज्ञा ने रूस के विधिक एवं सामाजिक संगठन में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये। भू-स्वामियों को अपनी भूमि की क्षति हुई, साथ ही वे कृषकों पर नियन्त्रण से वंचित कर दिये गये। परिणामस्वरूप देश में भू-स्वामियों की प्रतिष्ठा, मान-सम्मान एवं प्रभुत्व में बहुत कमी हुई, लेकिन कृषकों की आर्थिक स्थिति, विचारों, भावनाओं, सामाजिक प्रतिष्ठा, मान-सम्मान एवं गतिविधियों में पर्याप्त सुधार हुआ। अन्य अनेक नये सुधार स्थापित स्थानीय संस्थाओं एवं संशोधित और परिष्कृत विधि प्रणाली में दृष्टिगत होते थे।

अन्य सुधार (Other Reforms)—कृषि दासों की मुक्ति के उपरान्त कुछ अन्य सुधार किये गये जिसके परिणामस्वरूप रूस भी पश्चिम के प्रगतिशील देशों के अनुरूप बन गया। स्थानीय स्व-शासन एवं न्यायिक प्रशासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। प्रत्येक जिले में स्थानीय परिषद् अथवा जेमस्तोवाज (Zemstovas) स्थापित किये गये। इसके सदस्य समाज के समस्त वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित होते थे। इन स्थानीय संस्थाओं को सड़कों और पुलों के निर्माण एवं मरम्मत करने, स्वच्छता की पर्याप्त व्यवस्था करने और प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करने का दायित्व दिया गया था। इनकी शक्तियाँ प्रान्तीय राज्यपालों में निहित निषेधाधिकार द्वारा नियन्त्रित थीं। यद्यपि इन स्थानीय संस्थाओं के अधिकार और दायित्व सीमित थे लेकिन ये परिषदें सार्वजनिक विषयों का कुशल प्रबन्धन का प्रशिक्षण देती थीं, अस्तु बहुत महत्वपूर्ण थीं। सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं स्वशासन की दिशा में सुधारों का यह महत्वपूर्ण कदम था।

न्यायिक सुधार (Judicial Reforms)—न्यायिक प्रणाली में सुधार भी समान रूप से महत्वपूर्ण थे। अब तक न्यायिक प्रशासन, भ्रष्टाचार, असमानता और गुप्त गतिविधियों एवं कार्यवाहियों से दूषित था। अलेक्जेण्डर द्वितीय ने पूर्णरूप से नई एवं परिष्कृत प्रणाली स्थापित की। न्यायिक प्रणाली को पृथक् कर दिया गया और कार्यपालिका से स्वतन्त्र कर दिया गया। न्यायिक प्रशासन अब नियमित प्रशासनिक तन्त्र की सहानुभूति, दया और कृपा पर पूर्वापेक्षा कम निर्भर था। न्यायालय की कार्यवाही को सार्वजनिक कर दिया, कानून के समक्ष समानता का आश्वासन दिया गया और जूरी द्वारा विवाद की सुनवाई का शुभारम्भ किया गया।

सार्वजनिक निर्वाचन द्वारा चयनित शान्ति के न्यायाधीशों के न्यायालय छोटे विवादों की सुनवाई के लिए स्थापित किये गये।

इस प्रकार, कृषि दासों की मुक्ति, निर्वाचित स्थानीय परिषदों अथवा जेमस्तोवाज (Gemstovas) की स्थापना और न्यायालयों का संशोधित एवं परिष्कृत पुनर्गठन अलेक्जेण्डर द्वितीय के प्रमुख सुधार थे। इस प्रकार शासन के प्रथम दशक में अनेक उत्साहवर्धक सुधार हुए और जनता में उदारवाद की आशा का संचार हुआ। रूस में नवीन चेतना, भावना एवं आकांक्षाओं का आविर्भाव हुआ और इनको साहित्य में अभिव्यक्ति मिली। लेकिन शीघ्र ही जनता का मोह भंग हो गया।

प्रतिक्रिया—पोलैण्ड में विद्रोह (Polish Revolt)—सिंहासनारोहण के एक दशक बाद अलेक्जेण्डर द्वितीय का सुधारों के लिए अपूर्व उत्साह क्षीण हो गया। अलेक्जेण्डर द्वितीय अपने अन्तर्मन अथवा हृदय से कभी भी उदारवादी अथवा लोकतान्त्रिक नहीं था। उसके द्वारा किये गये सुधार उदारवादी दृष्टिकोण अथवा विचार का परिणाम नहीं थे वरन् समय की व्यावहारिक आवश्यकता थी। जब उसने अनुभव किया कि आवश्यकता पूरी हो गयी, उसने तत्काल रोक दिया।

अनेक कारण थे, जिन्होंने अलेक्जेण्डर द्वितीय को उदारवादी सुधारों को छोड़ने के लिए बाध्य किया था। उसके सुधारों के तत्काल अपेक्षित परिणाम नहीं मिले, अस्तु वह निराश था। सन् 1863 में पोल समुदाय का विद्रोह जार की नीति में आमूल परिवर्तन के लिए निर्णायक तथ्य था। उसका अब तक पोलैण्ड के साथ समन्वयात्मक व्यवहार रहा था। निकोलस प्रथम की कठोर दमनकारी गतिविधियों एवं उपायों को शिथिल कर दिया गया था। लेकिन पोल समुदाय ने इन सुविधाओं अथवा शिथिलताओं को सरकार की दुर्बलता के रूप में समझा। इटली में राष्ट्रवादी उद्देश्यों की सफलता से उत्तेजित तथा रूस के कृषि दासों की मुक्ति से प्रोत्साहित पोलैण्ड में अति उग्रवादियों ने अपने विरोध बढ़ा दिये और अपने नये दावे किये। वे पोलैण्ड को एक स्वतन्त्र गणतन्त्र के रूप में बनाना चाहते थे और उन्होंने उन समस्त प्रान्तों के, जो सन् 1772 में विभाजन से पूर्व पोलैण्ड के अंग थे, पुनः पोलैण्ड में विलय की माँग की। रूस के जार ने पोल समुदाय के इस निरर्थक प्रचार को रोका। तदुपरान्त पोल समुदाय ने कपट, अनुचित गतिविधियों, षड्यन्त्र एवं हिंसा का आश्रय लिया। अन्ततोगत्वा सन् 1863 में सशस्त्र उन्मुक्त विद्रोह आरम्भ हो गया और फ्रान्स से सशस्त्र सहायता का अनुरोध किया। पोल समुदाय की कोई नियमित सेना नहीं थी। अस्तु वे छोटे समूहों में जंगल में चले गये। जंगलों से ही वे निराश और निर्मम छापामार युद्ध कर रहे थे। शक्तियों विशेष रूप से इंग्लैण्ड और फ्रान्स ने रूस के पोलैण्ड के साथ व्यवहार का कठोर विरोध किया, लेकिन प्रशा के चान्सलर बिस्मार्क स्वयं के अपने अनेक कारणों से रूस के जार के साथ घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था, अस्तु उसने रूस का प्रबल समर्थन किया।

पोल समुदाय अकेला रह गया और सन् 1864 में पोल विद्रोह का क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया गया। वास्तविक प्रतिक्रियावादी गतिविधियाँ आरम्भ हो गयीं।

सरकार ने पोल समुदाय के राष्ट्रीयता के अनिवार्य अवयवों का दमन करके उनके हृदय से राष्ट्रीय चेतना एवं भावना को समाप्त करने का प्रयास किया। पोलैण्ड को समस्त-स्वायत्तता से वंचित कर दिया। समस्त विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पोलिश भाषा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। राज्य के प्रत्येक विभाग से पोल अधिकारियों को हटा दिया और उनके स्थान पर रूसी अधिकारी नियुक्त कर दिये। रोमन कैथोलिकवाद के समस्त विशेषाधिकारों से पोल कैथोलिक धर्मावलम्बियों को वंचित कर दिया। कुलीन वर्ग, जो रूस का कट्टर शत्रु था, का पाशविक ढंग से दमन कर दिया गया। जहाँ तक सम्भव हुआ, उनको कृषक वर्ग से विलग कर दिया गया और कृषक वर्ग के साथ सहानुभूतिपूर्वक सहृदय व्यवहार किया गया। कार्यान्वित नीति "रूसीकरण" की थी, जिसका उद्देश्य पोलैण्ड का रूस के साथ पूर्ण विलय था।

पोल समुदाय के विद्रोह ने रूस की सुधारात्मक प्रवृत्ति को अवरुद्ध करके पीछे की ओर उन्मुख कर दिया। अलेक्जेण्डर द्वितीय उदारवादी नकाब उतारकर पुनः प्रतिक्रियावादी बन गया। प्रेस पर नियन्त्रण पुनः लगा दिया और कुख्यात गुप्त पुलिस को पुनर्जीवित एवं शक्तिशाली बनाया गया। शिक्षा को नियन्त्रित किया गया और विज्ञान के क्षेत्र में समस्त प्रगति को पाठ्यक्रम से अलग कर दिया।

विद्वान प्रायः टिप्पणी करते हैं, "पोलिश क्रान्ति के अवशेषों पर बिस्मार्क की कृति और जारों के साम्राज्य में रूसीकरण की व्यवस्था का अविर्भाव हुआ। जबकि यूरोप की अधिकांश शक्तियों ने पोलिश देशभक्तों के साथ उनके स्वतन्त्रता संग्राम के लिए सहानुभूति अभिव्यक्त की लेकिन बिस्मार्क ने विद्रोह का दमन करने के लिए जार की सहायता की। बिस्मार्क की इस कूटनीतिक चाल का रूस-प्रशा की मजबूत मैत्री सम्बन्धों के रूप में अपेक्षित परिणाम हुआ। परिणामस्वंरूप रूस के जार ने बिस्मार्क को प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण की नीति को क्रियान्वित करने के लिए उन्मुक्त छोड़ दिया। आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध के समय रूस तटस्थ रहा, परिणामस्वरूप आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर निकाल दिया। इस प्रकार बिस्मार्क द्वारा निर्मित जर्मन साम्राज्य रूस की तटस्थता पर आधारित था। दूसरे पोल समुदाय के विद्रोह ने रूस के जार के समक्ष अधीन राष्ट्रीयताओं के प्रति समन्वयात्मक नीति की निरर्थकता स्पष्ट कर दी। अस्तु उसने पोल समुदाय के प्रति कठोर प्रतिक्रियावादी एवं रूसीकरण की नीति को कार्यान्वित किया। इस नीति को उसके पुत्र ने अन्य अधीन राज्यों विशेष रूप से फिनलैण्ड के साथ कार्यान्वित किया था।

विदेश नीति (Foreign Policy)—अलेक्जेण्डर द्वितीय ने अपने पिता की हस्तक्षेप करने की नीति को छोड़ दिया था और जहाँ तक सम्भव हुआ स्वयं को विदेशों की जटिल समस्याओं से अलग रखा। यद्यपि वह फ्रान्स से अलग हो गया था, क्योंकि फ्रान्स के

नैपोलियन तृतीय ने पोल समुदाय के विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की थी। तदुपरान्त उसने प्रशा की ओर दृष्टिपात किया, जहाँ बिस्मार्क अपने मित्रता के हाथ बढ़ाने के लिए उत्सुक था। कालान्तर में रूस-प्रशा पुनर्मेल दोनों देशों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। इसने प्रशा को, आस्ट्रिया को जर्मनी से निष्कासित करने में प्रशा की सहायता की और आस्ट्रिया के अपमान से रूस ने क्रीमिया युद्ध में आस्ट्रिया द्वारा अभिव्यक्त कृतघ्नता का प्रतिशोध ले लिया। प्रशा के सक्रिय सशस्त्र समर्थन से शक्तिशाली रूस ने सन् 1870 में, पेरिस की सन्धि के उन प्रावधानों जिन्होंने काले सागर में रूस के प्रवेश को प्रतिबन्धित कर दिया था, को अस्वीकार करते हुए, क्रीमिया युद्ध में पराजय के कलंक को मिटा दिया।

अलेक्जेण्डर द्वितीय ने बाल्कन क्षेत्र में रूस के प्रभाव को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। सन् 1877 में उसने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और सैन स्टेफनो (San Stefno) की सन्धि द्वारा पर्याप्त लाभ प्राप्त किये। लेकिन बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से रूस का परित्याग कर दिया। अस्तु अलेक्जेण्डर द्वितीय अपनी विजय से पूर्णरूप से लाभान्वित नहीं हो सका।

एशिया में रूस का विस्तार—यद्यपि अलेक्जेण्डर द्वितीय को बाल्कन क्षेत्र में सीमित सफलता मिली लेकिन एशिया महाद्वीप में रूस के प्रभाव का पर्याप्त विस्तार हुआ। मध्य एशिया में बार-बार सैन्य अभियानों के द्वारा अपना अधिकृत क्षेत्र मर्व (Merv) तक बढ़ा लिया था और फारस एवं अफगानिस्तान की सीमाओं तक पूर्ण नियन्त्रण हो गया था। रूस की मध्य एशिया में प्रगति से इंग्लैण्ड अत्यधिक भयभीत एवं चिन्तित था। चीन के साथ ऐगुन (Aigun) की सन्धि के प्रावधानों के अन्तर्गत रूस ने साइबेरिया के बहुत बड़े भू-भाग का रूस में विलय कर लिया। इसी सन्धि के अन्तर्गत व्लादिवोस्तक (Vladivostock) का बन्दरगाह भी मिला जो महान् ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे का अन्तिम स्टेशन है और भूमध्य सागर में रूसी नौ-सैनिक बेड़े का आधार है। दक्षिण में काक्सस पर्वत तक रूस की अधिकृत सीमाओं का विस्तार हो गया था।

क्रान्तिकारी आन्दोलनों का विकास (Growth of Revolutionary Movements)—रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन शेष यूरोप में सामान्य क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्धित था लेकिन यह अपेक्षाकृत अधिक संगठित एवं गहन था। ये क्रान्तिकारी प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से पाश्चात्य यूरोपीय विचार एवं उदाहरणों से प्रभावित एवं प्रेरित थीं। प्रशासन द्वारा आरोपित कठोर प्रतिबन्धों के उपरान्त भी पश्चिम के प्रवर्तित उदारवाद एवं लोकतान्त्रिक विचारों ने बुद्धिजीवियों को सर्वाधिक प्रभावित किया। अलेक्जेण्डर द्वितीय के उदारवादी सुधारों ने बुद्धिजीवियों में नये उत्साह और आशा का संचार किया। जब पोल समुदाय के विद्रोह के परिणामस्वरूप जार पुनः प्रतिक्रियावादी हो गया और रूस की जनता को पुनः पूर्व की निराशा, निरंकुशता तथा दमन का अनुभव किया। जारवादी के विरुद्ध विरोध ने स्वयं को संगठित करना आरम्भ कर दिया। अधिकारी तन्त्र की कुशल, सजग, सतर्क एवं कठोर

प्रशासनिक गतिविधियों ने सरकार पर उन्मुक्त रूप से आक्रमण को असम्भव बना दिया था। परिणामस्वरूप विरोधी तत्व भूमिगत हो गये। लोकतान्त्रिक प्रणाली में जो संवैधानिक दृष्टि से विरोधी दल होते, क्रान्तिकारी गुप्त समितियाँ बन गयीं। इस प्रकार भूमिगत षड्यन्त्रों के लिए रूसी क्रान्तिकारियों ने अपूर्व कुशलता एवं चातुर्य प्रदर्शित किया लेकिन पुलिस अधिकारी उनकी खोज करने में उतने ही कुशल थे। क्रूर एवं बर्बर उत्पीड़न ने क्रान्तिकारियों को पूर्वपेक्षा अधिक हिंसात्मक बना दिया था और उन्होंने आतंकवादी गतिविधियों एवं बम का आश्रय लिया। सरकार ने भी इनका दमन करने के लिए पूर्वपेक्षा अधिक दमनकारी उपायों का प्रयोग किया। इस प्रकार चारों ओर का वातावरण अत्यधिक विषाक्त बन गया।

नाशवाद का विकास (Growth of Nihilism)—रूस में जारवादी शासन के अन्तर्गत विरोधियों के मध्य अनेक प्रकार की विचारधाराएँ एवं अवधारणाएँ थीं। सर्वप्रथम नाशवाद (Nihilism) था जिसका अर्थ उन्मूलन अथवा विनाश था। नाशवादी बुद्धिजीवियों का उग्रसुधारवादी समूह था। इसके अधिकांश सदस्य विश्वविद्यालयों एवं उच्च व्यावसायिक वर्गों के उत्कृष्ट बुद्धिजीवी थे। वे समाज का पूर्ण रूपान्तर चाहते थे। वे पश्चिमी यूरोप के अपेक्षाकृत अधिक उग्र सुधारवादी दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की कृतियों का अध्ययन करते थे और उनको अपने देश की संस्थाओं एवं स्थितियों के आधार में प्रविष्ट कराना चाहते थे। वे सर्वाधिक विनाशकारी आलोचक थे। वे अत्यधिक व्यक्तिवादी थे और प्रत्येक मानव संस्था एवं परम्परा का तर्क की कसौटी पर परीक्षण करते थे। नाशवादी उनकी निन्दा करते थे। उनका दृष्टिकोण प्रारम्भ में बौद्धिक चुनौती का होता था, बाद में समस्त स्थापित व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का होता था। वर्तमान समाज के स्थान पर समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित नये समाज का निर्माण करना चाहते थे। उन्होंने अपने विचारों एवं अवधारणाओं का व्यापक प्रचार किया। उनका मुख्य उद्देश्य "वर्तमान सामाजिक संगठन के अवशेषों पर श्रमिक वर्गों के साम्राज्य को स्थापित करना था।"

तुर्गनेव (Turgeniev) ने नाशवादी की एक व्यक्ति के रूप में व्याख्या की है, "जो किसी सत्ता, के समक्ष झुकता नहीं है और अप्रमाणित किसी भी सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता है।" वह पुराने शासन की हर चीज को नष्ट कर देगा। जार की निरंकुशता राज्य की सत्ता, चर्च की पवित्रता और सत्यता और समाज के दायित्वों को।" इस प्रकार नाशवाद एक विनाशकारी पन्थ, निषेध का सिद्धान्त था। इसका आदर्श वाक्य "जनता के मध्य जाओ" और इसके अनुयायियों ने इसका अक्षरशः पालन किया। उत्साही एवं कट्टर युवक एवं युवतियाँ नाशवाद के उग्र सिद्धान्तों का नगरों एवं ग्रामों के श्रमिकों के मध्य प्रचार करने के लिए जाते थे। प्रारम्भ में यह आन्दोलन शैक्षिक था। लेकिन शनैःशनैः इसका आतंकवादी कोटि के क्रान्तिकारी अराजकतावाद में विकास हो गया। जब सरकार ने इसका दमन करने का प्रयास किया, नाशवादियों ने षड्यन्त्र और उच्चाधिकारियों की हत्या का आश्रय लिया। सरकार के

दमन में वृद्धि के साथ-साथ नाशवादियों की उग्र हिंसात्मक गतिविधियों में वृद्धि हो गयी। अन्ततोगत्वा अलेक्जेण्डर द्वितीय ने समन्वयात्मक नीति का अनुसरण किया। सन् 1881 में उसने राजाज्ञा जारी करके नये सुधारों की सूची तैयार करने के लिए विशेष आयोग की नियुक्ति की। राजाज्ञा पर हस्ताक्षर करने वाले दिन ही उसका नाशवादियों द्वारा फेंके गये बम के विस्फोट से देहान्त हो गया। इस प्रकार 'जार मुक्तिदाता' का अन्त हो गया।

जार के जीवन पर घातक आक्रमण (Fatal attacks on Tsar's Life)—सरकार की क्रूर एवं बर्बर दमनकारी गतिविधियों जैसे नृशंस हत्याएँ, कठोर कारावास एवं साइबेरिया को निर्वासन, से उत्पीड़ित, नाशवादियों ने अन्ततोगत्वा, घृणित, निरंकुश एवं दमनकारी गतिविधियों से मुक्ति के रूप में जार की हत्या करने का निर्णय किया। अप्रैल, 1879 में सोलोवीफ (Solovief) नाम के एक शिक्षक ने अलेक्जेण्डर द्वितीय को निरर्थक पाँच गोलियाँ मारी। उसी वर्ष दिसम्बर में क्रीमिया से आने वाली गाड़ी, ज़िसमें जार के होने की सम्भावना थी, को बारूद से उड़ा दिया। जार उससे पहले की गाड़ी से गुप्त रूप से आ चुका था। फरवरी, 1880 में सेण्ट पीटर्सबर्ग स्थित शीतमहल में आयोजित रात्रिभोज में उसकी हत्या का प्रयास किया गया। डायनामाइट का विनाशकारी विस्फोट हुआ, सब कुछ ध्वस्त हो गया, लेकिन जार बच गया क्योंकि वह भोज में निश्चित समय पर नहीं गया।

यथार्थ में इस समय तक सेन्ट पीटर्सबर्ग पूर्णरूप से आतंकित हो चुका था। अलेक्जेण्डर द्वितीय ने लारिस-मेलिकाफ (Loris Melikoff) को व्यावहारिक दृष्टि से अधिनायक नियुक्त किया। उसने कुछ उदार शासन का सूत्रपात किया। सैकड़ों बन्दियों को मुक्त कर दिया और अनेक मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधियों का दण्ड कम कर दिया। उसने जार से जनता को सरकार में कुछ भागीदारी देने का अनुरोध किथा, जिससे नाशवादी आन्दोलन को शान्त किय जा सके। नाशवादी आन्दोलन सरकार की निरंकुश एवं अराजक प्रणाली के दुरुपयोग के प्रति राष्ट्रीय असन्तोष, कुंठा एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति था। 13 मार्च, 1881 को जार ने राजाज्ञा जारी करके सुधारों का सूत्रपात किया था कि बम विस्फोट द्वारा हत्या कर दी गयी।

अलेक्जेण्डर तृतीय (Alexander III, 1881-1894)—"जार मुक्तिदाता" के रूप में विख्यात अलेक्जेण्डर द्वितीय की बम विस्फोट द्वारा हत्या से रूस के सुधार के प्रयासों को घातक आघात लगा और अलेक्जेण्डर तृतीय (सन् 1881-1894) एवं निकोलस द्वितीय (सन् 1894-1917) के शासन काल में प्रतिक्रियावादी गतिविधियों का बाहुल्य रहा। प्रतिक्रियावाद ने क्रान्तिकारी आन्दोलनों को प्रेरित एवं उत्तेजित किया। परिणामस्वरूप रूस का आन्तरिक इतिहास जारवादी सरकार एवं उदारवादी और क्रान्तिकारी शक्तियों के मध्य संघर्ष की कहानी बन गया। क्रान्तिकारी निरन्तर बम विस्फोट एवं हत्याएँ कर रहे थे और सरकार दमन करने के लिए मृत्यु दण्ड दे रही थी, यातनाएँ दे रही थी और क्रान्तिकारियों को निष्कासित कर रही थी। रूस में जारशाही के पूर्ण विनाश के साथ ही इसका अन्त होना था।

अलेक्जेण्डर द्वितीय के दुखान्त के बाद उसका 36 वर्षीय हृष्ट-पुष्ट, भव्य, एवं आकर्षक पुत्र अलेक्जेण्डर तृतीय सिंहासनारूढ़ हुआ। उसको मुख्य रूप से सैनिक शिक्षा दी गयी थी। उसमें अपने पिता के अनुरूप सहृदयता अथवा सहानुभूति की भावना नहीं थी। उसका दृष्टिकोण अत्यधिक संकीर्ण था और विचार मध्यकालीन थे। उसका निरंकुशतावाद में दृढ़ विश्वास था और वह मजबूत, कठोर, कभी न झुकने वाला, प्रतिक्रियावादी और तत्कालीन नवीन भावनाओं एवं चेतना का अविश्वास करने वाला व्यक्ति था। उसका दृढ़ मत था कि रूस का पुनरुत्थान पश्चिम की संसदीय संस्थाओं एवं उदारवाद की अपेक्षा रूस के महान् प्राचीन सिद्धान्तों, रूढ़िवादिता, निरंकुशता और स्लाव राष्ट्रवाद द्वारा सम्भव था। उसके इस दृष्टिकोण का प्रबल एवं शक्तिशाली समर्थक पोब्येदनॉस्त्सेफ (Pobedonostsev) था। वह रूस का मुख्य सिद्धान्तवादी और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों के प्रतिक्रियावादियों में प्रमुख था। उसको औद्योगिक क्रान्ति एवं नगरों के विकास से घृणा थी। पोब्येदनॉस्त्सेफ पवित्र सिनोद (Synod) का राज्यपाल था। उसने प्रतिक्रियावाद के वास्तविक दर्शन का विकास किया था। उसने विचार व्यक्त किया कि पश्चिमी यूरोप की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएँ स्वयं हीं खराब थीं और रूस की अपनी परम्पराओं और मान्यताओं के अनुरूप नहीं थी, इस कारण उनको प्रयुक्त करना उचित नहीं था। रूस का एकमात्र आदर्श "एक जार, एक चर्च, एक रूस" होना चाहिए। यह आदर्श ही रूस को अराजकता और पश्चिमी यूरोप के संशयवाद और अविश्वास से बचा सकता है। रूस की अधिकांश जनता रूढ़िवादी थी। अस्तु कुछ समय के लिए जार की नीति भी सफल हुई।

अलेक्जेण्डर तृतीय ने सर्वप्रथम देश में अनियन्त्रित एवं अनुशासनहीन उपद्रवी तत्वों की ओर ध्यान दिया। उसके पिता के हत्यारों का पता लगाया गया और कुछ को मृत्युदण्ड एवं अन्य को साइबेरिया से निष्कासित कर दिया गया। अन्य नाशवादियों एवं आतंकवादियों को अपूर्व उत्साह एवं भयानक ढंग से खोज निकाला गया कि कुछ काल के लिए क्रान्तिकारी गतिविधियाँ बिल्कुल शान्त हो गयीं। प्रेस पर कठोर अंकुश लगा दिया, विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों पर कड़ी नजर रखी गयी और जेमस्त्वो (Zemstvos) की शक्तियों को कम कर दिया गया।

रूसीकरण की नीति (Policy of Russification)—अलेक्जेण्डर तृतीय ने रूस की समस्त अधीन जातियों के प्रति रूसीकरण की नीति को कार्यान्वित किया। दूसरे शब्दों में वह समस्त रूस में साम्राज्य की गैर-रूसी जनता (जैसे फिन और पोल Finns and Poles) के विशेषाधिकारों को समाप्त करके एकरूपीय स्थितियाँ बनाना चाहता था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि उसके साम्राज्य के हर भाग में एक भाषा, एक धर्म और एक कानून हो। हर कीमत पर एकरूपता प्रवृत्त होनी चाहिए और भिन्न-भिन्न आस्थाओं और कम महत्वपूर्ण भाषाओं को समाप्त कर देना चाहिए। दक्षिण के प्रोटेस्टेन्ट स्टनडिस्टिस (Protestant Stundists) को निर्ममतापूर्वक समाप्त कर दिया गया, उनके उपदेशों को नियन्त्रित किया गया और हर प्रकार

के विरोध का उत्पीड़न किया गया। पोल, बाल्टिक क्षेत्र के जर्मन और फिन, सबने रूसीकरण की नीति के अन्तर्गत क्रूर एवं बर्बर उत्पीड़न सहन किया।

यहूदियों का उत्पीड़न (Persecution of the Jews)—यहूदियों के अतिरिक्त अन्य किसी जाति अथवा वर्ग ने इतने अधिक कष्ट एवं पीड़ाएँ सहन नहीं कीं। उनको पश्चिम के कुछ नगरों में सीमित कर दिया गया, स्थानीय सरकार से अलग रखा गया, आंशिक रूप से शिक्षा से वंचित किया गया और कृषि कार्य करने अथवा उन नगरों जिसमें उनको सीमित किया गया था, के बाहर अचल सम्पत्ति के स्वामित्व पर कठोर प्रतिबन्ध था। वे संगठित आक्रमणों जिनको पोगरोम्स (Pogroms) कहते थे, के लक्ष्य बनाये गए, उनकी सम्पत्ति को लूटा गया, और उनके घरों को आग लगा दी गयी। अधिकांश आक्रमणों एवं उत्पीड़नों में सरकार की निष्क्रिय सहमति थी। इसी समय बहुत बड़ी संख्या में यहूदियों ने संयुक्त राज्य अमेरिका गमन करना आरम्भ कर दिया था।

रूस में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution in Russia)—आतंक एवं प्रतिक्रिया के उपरान्त अलेक्जेण्डर तृतीय का काल औद्योगिक एवं आर्थिक विकास के शुभारम्भ के लिए विख्यात था। काउण्ट विट्टे (Count Witte) अलेक्जेण्डर तृतीय का एक मन्त्री, असाधारण ऊर्जा वाला एवं दूरदर्शी व्यक्ति था। उसके अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप विदेशियों ने रूस में पूँजी निवेश किया। विदेशी रूस के अशोषित अमूल्य, संसाधनों के प्रति आकर्षित थे। साथ ही कृषि दासों की मुक्ति से बहुत अधिक मात्रा में श्रम सहज ही उपलब्ध था। रूस ने व्यापक रेलवे के निर्माण द्वारा सहज और सुलभ संचार साधनों के अभाव की पूर्ति की। विट्टे के पद ग्रहण से पूर्व रूस में 400 मील से कम प्रतिवर्ष रेलवे का निर्माण हो रहा था लेकिन उसके बाद 1,400 मील प्रतिवर्ष रेलवे का निर्माण होने लगा। यूरोप को भूमध्यसागर से जोड़ने वाली रेल-सड़क विशाल परियोजना सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। यह महान् ट्रान्स-साइबेरियन रेल-सड़क परियोजना थी। इसके लिए रूस ने बहुत अधिक मात्रा में पश्चिमी यूरोप विशेष रूप से फ्रान्स से ऋण लिया था। सन् 1909 में रूस में 41,000 मील रेलवे थी, जिसमें 28,000 मील रेलवे पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण था। खनिज खदानों से खनिजों का निकलना आरम्भ हो गया, उद्योग स्थापित किये गये और बैंकों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। विट्टे ने गृह उद्योगों को प्रोत्साहित एवं विकसित करने के लिए सुरक्षात्मक सीमा-शुल्क नीति का अनुसरण किया। स्मरणीय है कि रूस का भौतिक विकास अधिकांश ऋणों, मुख्य रूप से फ्रान्स से प्राप्त ऋणों से सम्भव हुआ। अलेक्जेण्डर तृतीय ने, फ्रान्स की ऋणों के रूप में अभिव्यक्त उदारता एवं सद्भावना के कारण फ्रान्स के गणतन्त्रवाद के प्रति अपनी घृणा को विस्मृत कर सन् 1894 में विख्यात द्वि-राष्ट्रीय फ्रान्स-रूस मैत्री सन्धि (Franco- Russian Alliance) की।

निकोलस द्वितीय (सन् 1894-1917, Nicholas II)—अलेक्जेण्डर तृतीय के सन् 1894 में देहावसान के बाद उसका 26 वर्षीय पुत्र निकोलस द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। एक

दशक तक उसने अपने पिता की नीति का पूर्वापेक्षा अधिक कठोरता के साथ पालन किया। निरंकुशतावाद में उसकी पूर्ण आस्था थी। दुर्बल और ढुलमुल निकोलस द्वितीय सहज ही जरीना जैसी महिला से अनुत्तरदायी ढंग से प्रभावित हो जाता था। जरीना स्वयं रासपुटिन (Rasputin) नाम के दुष्ट भिक्षुक के संकेतों पर नाचती थी। विधि ने निकोलस को जिस भूमिका को अभिनीत करने का दायित्व दिया था, उसके लिए वह बिल्कुल उपयुक्त नहीं था। उसको प्रतिक्रियावादी दार्शनिक पोब्येदनॉस्त्सेफ (Pobedonostsev) एवं प्रतिक्रियावादी निरंकुशता के साकार रूप प्लेहव (Plchve) में सर्वाधिक विश्वास एवं आस्था थी। परिणामस्वरूप दुर्बल शासक के अधीन प्रशासनिक तन्त्र असाधारण रूप से दमनकारी बन गया। उदारवाद के किसी भी चिन्ह का तत्काल दमन कर दिया गया। यहूदियों के विरुद्ध अधिनियम को कठोरता के साथ प्रवृत्त किया गया और संगठित आक्रमणों (Pogroms) में बहुत वृद्धि हो गयी। बुद्धिजीवियों, जो क्रान्तिकारियों के उद्भव स्रोत थे, का निर्ममतापूर्वक उत्पीड़न किया गया।

फिन्लैण्ड में सन् 1809 में प्रवृत्त संविधान को सन् 1899 में रद्द कर दिया गया और उस देश में रूसीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। सूचना देने के लिए गुप्तचरों की विशाल सेना नियुक्त की। कोई भी व्यक्ति गिरफ़्तारी, कारावास के दण्ड और निर्वासन के विरुद्ध सुरक्षित नहीं था। न्यूनतम बौद्धिक स्वतन्त्रता के लिए उत्सुक व्यक्ति भी अत्यधिक घुटन का अनुभव कर रहा था। व्यावसायिक एवं शिक्षित व्यक्ति असहनीय स्थिति में थे। अनेक उपलब्धियों के लिए प्रतिष्ठित इतिहासकार मिलियोकोव (Milyoukov) को केवल सामान्य अनिष्टकर प्रवृत्तियों के कारण पद से हटा दिया गया। प्रेस पर नियन्त्रण दिन-प्रतिदिन कठोर हो रहा था। विद्यार्थियों के प्रति पुलिस विशेष रूप से सजग और सतर्क रहती थी। युवा, कट्टर राष्ट्रवादी एवं शिक्षित वर्ग ही इस अर्थहीन निरंकुशतावाद से अत्यधिक क्षुब्ध एवं क्रोधावेश में था। मास्को विश्वविद्यालय के 1/5 विद्यार्थियों को निष्कासित करके साइबेरिया भेज दिया अथवा कारावास दे दिया।

दमनकारी शासन के उपरान्त भी भावी भूकम्प, जिसके परिणामस्वरूप जारवादी शासन का पतन होने वाला था, का आंभास होने लगा था। निकोलस के सिंहासनारोहण के समय जेम्स्त्वों (Zemstvos) (नगर परिषदें) ने परस्पर पूर्वापेक्षा अधिक सहयोग करना आरम्भ कर दिया और अधिक स्वतन्त्रता की माँग रखी। इन परिषदों (जेम्सत्वों) ने सरकार के ऊपर इतना दबाव डाला कि विट्टे (Whitte) ने विवश होकर अनेक कृषक समितियाँ आवश्यक सुधारों के लिए अनुशंसा करने के उद्देश्य से स्थापित की। इन समितियों ने लोकतान्त्रिक सरकार, प्रेस की स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं के निश्चित आश्वासन की माँग की। इन समितियों के पर्यवेक्षिक विवरण वर्तमान संस्थाओं के विरुद्ध थे। इसके लिए विट्टे को उत्तरदायी माना गया। परिणामस्वरूप उनको पद से हटा दिया गया। निरंकुशता अब

चरमोत्कर्ष पर थी। प्लेहव (Plehve) उदारवाद एवं उग्र सुधारवादी जनमत के विरुद्ध अथक संघर्ष करता रहा।

रूसी-जापानी युद्ध (Russo-Japanese War, 1904)—आन्तरिक विषयों के मन्त्री प्लेहवे के समर्थन में किशिनयोक में एक गम्भीर कार्यक्रम आयोजित किया गया। इसमें अनेक यहूदियों की नृशंस हत्याएँ की गयीं। फिनलैण्ड एवं आर्मीनिया में रूसीकरण की नीति का क्रूरता एवं बर्बरतापूर्वक क्रियान्वयन चल रहा था। इसके उपरान्त क्रान्ति की भावना निरन्तर प्रबल हो रही थी। उससे ध्यान हटाने के लिए प्लेहवे ने एक छोटा युद्ध आरम्भ करके उसमें विजय प्राप्त करने की योजना बनायी।

सन् 1860 में पीलिंग की सन्धि के उपरान्त रूस 30 वर्ष तक अपनी प्रशान्त सागर तक फैली सीमाओं को सुरक्षित रखकर सन्तुष्ट रहा। लेकिन चीन के विघटन के परिणामस्वरूप रूस की साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी आकांक्षाओं को प्रोत्साहन मिला। रूस की सैन्य स्थिति दुर्बल थी। अस्तु विट्टे का मुख्य उद्देश्य युद्ध से बचने का था। लेकिन चीनवासियों के अधिकाधिक सहयोग से आर्थिक प्रभाव को निरन्तर बढ़ाना चाहता था।

मंचूरिया को उचित ही सुदूर पूर्व का धान्यागार कहा जाता था। कृषि उत्पादों के अतिरिक्त वह लकड़ी और खनिजों की दृष्टि से भी बहुत समृद्ध था और जापान के लिए इसका बहुत महत्व था। सुदूर पूर्व में रूस और जापान स्वाभाविक विरोधी थे। दोनों ही साम्राज्यवादी शक्तियाँ थीं और दोनों एक ही क्षेत्र में विरोधी दिशाओं से अपने अधिकृत क्षेत्रों की सीमाएँ बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील थे। अस्तु दोनों के मध्य टकराव अनिवार्य था। सन् 1894-95 में चीन-जापान (Sino-Japanese War) युद्ध के उपरान्त सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए संघर्ष में रूस ने चीन का मित्र घोषित करते हुए जापान को उसकी सफलता के लाभों से वंचित कर दिया था। उसके अतिरिक्त रूस ने चीन से आर्थर बन्दरगाह सहित लियाओ तुंग प्रायद्वीप पट्टे पर प्राप्त कर लिया। यह क्षेत्र शिमोनोसेकी (Shimonoseki) की सन्धि के अन्तर्गत जापान को मिल गये थे। परिणामस्वरूप जापान अत्यधिक उत्तेजित था। साथ ही रूस ने उत्तरी मंचूरिया से व्लादीवोस्तक तक रेल सड़क मार्ग बनाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। मंचूरिया में इन सुविधाओं ने रूस की स्थिति बहुत सुदृढ़ कर दी और वह कोरिया में जापान के हितों के लिए गम्भीर खतरा बन गया। यथार्थ में रूस ने कोरिया के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया और मालू नदी क्षेत्र में मूल्यवान लकड़ी को प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त कर ली। रूस की गतिविधियों ने जापानवासियों को अत्यधिक पीड़ित एवं व्यग्र किया। उन्होंने अनुभव किया कि रूसी षड्यन्त्र कोरिया में उसके हितों को आघात पहुँचा रहे थे। इन्हीं हितों के लिए जापान ने चीन से युद्ध किया था।

कोरिया में जापान के हितों की सुरक्षा के लिए अतीव आवश्यक था कि रूस का मंचूरिया में प्रभुत्व न हो, लेकिन रूस का मुख्य उद्देश्य मंचूरिया में प्रभुत्व स्थापित करना था। आर्थर बन्दरगाह में बर्फ़ से मुक्त बन्दरगाह प्राप्त कर लिया था। इसके लिए रूस दीर्घकाल

से प्रयत्नशील था और वह सुदूर पूर्व में सर्वाधिक शक्तिशाली नौ-सेना बेड़ा स्थापित करना चाहता था। इसके अतिरिक्त बाक्सर विद्रोह का लाभ उठाते हुए रूस ने रेल-सड़क मार्ग की रक्षा करने एवं अपने नागरिकों की सुरक्षा के लिए अपनी सेना मंचूरिया भेजी। विद्रोह के उपरान्त भी रूस ने अपनी सेना जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका के विरोध के बाद भी वहीं रखी। यथार्थ में रूस की मंचूरिया से सेना हटाने की कोई इच्छा नहीं थी और मंचूरिया विवाद में जापान के हस्तक्षेप करने के अधिकार को भी अस्वीकार कर दिया। रूस ने घोषणा की कि इस विवाद से केवल वह और चीन सम्बन्धित थे और चीन से समझौता करने का प्रयास किया जिसके द्वारा मंचूरिया रूस के लिए सुरक्षित क्षेत्र बन जाये। यह प्रयास संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड और जापान के शक्तिशाली विरोधों के कारण असफल हो गया। मंचूरिया में रूस के हितों की सुरक्षा और कोरिया में जापान की स्थिति को परिभाषित करने के उद्देश्य से जापान ने एक सन्धि का प्रस्ताव रखा। लेकिन रूस का पूर्णरूप से आक्रमणात्मक दृष्टिकोण था, उसने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वह मंचूरिया में जापान के किसी भी अधिकार को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था।

रूस के अड़ियल दृष्टिकोण से जापान को भलीभाँति स्पष्ट हो चुका था कि रूस को मंचूरिया से हटाने के लिए उसके साथ युद्ध करना होगा। भावी सशस्त्र संघर्ष का पूर्वानुमान करते हुए उसने अपनी सेना एवं नौ-सेना को शक्तिशाली बनाना आरम्भ कर दिया और इंग्लैण्ड के साथ मैत्री सन्धि के लिए सम्पर्क आरम्भ किये। रूस के दक्षिण की ओर बढ़ने से पेकिंग पर उसका प्रभुत्व हो जाने की सम्भावना थी। इससे इंग्लैण्ड अधिक चिन्तित एवं व्यग्र था। इसके अतिरिक्त जापान को फ्रान्स के भावी दृष्टिकोण की आशंका से भय था। फ्रान्स द्वि-राष्ट्रीय सन्धि के द्वारा रूस के साथ सम्बद्ध था और दोनों शक्तियाँ यागत्से क्षेत्र के मध्य में पेकिंग से हाँको (Hankow) तक रेलवे परियोजना को प्रोत्साहित कर रही थीं। इस क्षेत्र में इंग्लैण्ड के सर्वोपरि हित थे। दक्षिण में रूस के प्रभाव की सम्भावना ने इंग्लैण्ड को चेतावनी दी और जापान के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध करने के लिए बाध्य किया। परिणामस्वरूप सन् 1902 में विख्यात इंग्लैण्ड और जापान के मध्य मैत्री सन्धि (Anglo-Japanese Alliance) हुई।

इंग्लैण्ड-जापान की यह सन्धि रूस के लिए एक चुनौती थी। रूस ने भावी संकट का पूर्वानुमान करके मंचूरिया की नीति में पर्याप्त संशोधन किया। उसने मंचूरिया खाली करने का चीन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और 6 माह के अन्तराल में तीन चरणों में मंचूरिया छोड़ने के लिए सहमति व्यक्त की। लेकिन प्रस्ताव के प्रत्युत्तर में अपनी कुछ शर्तें एवं प्रावधान भी रखे। इनसे रूस की मंचूरिया से नहीं हटने की निहित इच्छा स्पष्ट होती थी। यथार्थ में अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए अपेक्षित सद्भावना एवं दृढ़ इच्छाशक्ति का अभाव था। उसका मंचूरिया खाली करने का प्रथम चरण मात्र पाखंड था क्योंकि उसने सेना को मंचूरिया के एक भाग से हटाकर अन्य भाग में एकत्रित कर दिया। सेना को हटाने से बचने के लिए एक अन्य धूर्ततापूर्ण चाल का आश्रय लिया। उसने सेना को लकड़ी काटने के बहाने

यूलू नदी के किनारे भेज दिया। यद्यपि लकड़ी काटने की अनुमति-पत्र (Licence) की अवधि समाप्त हो गयी थी लेकिन इस अनुमति-पत्र को पुनर्जीवित करने पर बल दिया। जापान ने कोरिया की सीमा पर रूस की गतिविधियों का विरोध किया और आपत्ति व्यक्त की कि रूस मंचूरिया से हटने का काम नहीं कर रहा था। साथ ही जापान ने प्रस्ताव रखा कि यदि रूस कोरिया में जापान की विशेष स्थिति को मान्यता देता है, तब वह रूस के मंचूरिया में विशेष हितों को स्वीकार कर लेगा। रूस ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से मना कर दिया। तदुपरान्त जापान ने रूस के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध समाप्त कर लिए और फरवरी, 1904 में युद्ध आरम्भ हो गया।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह रूस-जापान युद्ध का केवल एक कारण था। रूस ने मंचूरिया पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था, उस स्थान से वह कोरिया के लिए खतरा बना हुआ था। कोरिया के आन्तरिक विषयों में रूस के हस्तक्षेप एवं चीन में रूस के आक्रमण के विरुद्ध निश्चित आश्वासन नहीं मिलने की स्थिति में जापान ने सशस्त्र संघर्ष के लिए दृढ़ निश्चय कर लिया था। जब रूस ने हठ नहीं छोड़ी और छल-कपट करना आरम्भ कर दिया। जापान ने समस्त सम्बन्ध भंग कर दिये और युद्ध की घोषणा कर दी।

रूस-जापान युद्ध का सूत्रपात (Outbreak of the Russo-Japanese War)—यह युद्ध एशिया की एक शक्ति एवं यूरोप की महान् शक्ति के मध्य पहला महान् सशस्त्र संघर्ष था। साधन, स्रोत एवं आकार की दृष्टि से यह युद्ध एक दानव एवं बौने के मध्य सशस्त्र संघर्ष था। बौना जापान दानव रूस की हत्या करने वाला सिद्ध हुआ। जापान की सेना के कुशल, अनुशासित एवं प्रशिक्षित सैनिकों के संगठन, सामरिक प्रतिभा एवं सैनिकों के अदम्य साहस और शौर्य ने जापान की सफलता को आश्वस्त कर दिया। युद्ध के प्रारम्भ में एडमिरल टोगों ने आर्थर बन्दरगाह में रूसी सैनिक बेड़े को रोक दिया। इस प्रकार समुद्र पर पूर्ण नियन्त्रण हो गया। परिणामस्वरूप जापान अपने सैनिकों और शस्त्रों को बिना किसी बाधा के युद्धभूमि तक पहुँचाने में समर्थ हो गया। रूसी नौ-सैनिक बेड़े ने आर्थर बन्दरगाह से निकलने का प्रयास किया लेकिन पराजित हो गया। ब्लादीवोस्तक से भेजा हुआ एक अन्य नौ-सैनिक बेड़ा भी पराजित हुआ। इसी अवधि में जापान ने आर्थर बन्दरगाह में नियमित सेना नियुक्त कर दी। जापान की मुख्य सेना ने यालू नदी के तट पर स्थित लियाओ-याँग (Liao-Yang) और शा-हो में रूसी सेना को पराजित किया। इसी समय आर्थर बन्दगाह पर भीषण बंम वर्षा चलती रही और दुर्ग के सैनिकों ने 10 माह की घेराबन्दी के बाद आत्मसमर्पण किया। तदुपरान्त जापान के घेराबन्दी में व्यस्त सैनिक अपने दायित्व से मुक्त होकर मंचूरिया की राजधानी मुकदेन में युद्धरत मुख्य सेना का सहयोग करने पहुँच गये। इस युद्ध का सर्वाधिक भीषण संघर्ष 140 मील चौड़े मैदान में हुआ। इसमें दोनों ओर से 3 लाख की विशाल सेना युद्धरत थी और प्रत्येक के लगभग 60,000 सैनिक शहीद हो गये अथवा घायल हो गये। रूस की सेना पराजित हो गयी और मुकदेन खाली करके उत्तर की ओर पीछे हटने के लिए

बाध्य हो गयी। जापान की सेना बहुत थक चुकी थी। रूस ने अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने और विजय की प्रबल कामना से अपने बाल्टिक सागर में स्थित नौ-सेना के बेड़े को सुदूर पूर्व में भेजा। जैसे ही इस बेड़े ने व्लादीवोस्तक के मार्ग पर कोरिया और जापान के मध्य त्सुशीमा जलमडरूमध्य में प्रवेश किया, जापान के एडमिरल टोगों ने रूस के नौ-सैनिक बेड़े कोध्वस्त कर दिया। ट्राफ्लगर (Trafalgar) के बाद ऐसी नौ-सैनिक विजय नहीं हुई थी। प्रशान्त महासागर पर जापान का प्रबल प्रभाव निश्चित हो गया। दोनों देश युद्ध के तनाव से थक चुके थे और शान्ति चाहते थे। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति थ्योडोर रूजवेल्ट (Theodore Roosevelt) की मध्यस्थता से पोर्ट्समाउथ (Portsmouth) की सन्धि हुई। इस सन्धि के द्वारा रूस ने कोरिया में जापान के दावों को मान्यता दे दी, लियांतुग (Liatung) प्रायद्वीप को पट्टा स्थानान्तरित कर दिया, साखलिन (Sakhlin) द्वीप का दक्षिणी अर्द्धभाग दे दिया और मंचूरिया खाली करने के लिए सहमत हो गया।

युद्ध के परिणाम (Results of the War)—जापान की विजय ने सुदूर पूर्व में रूस की प्रगति को रोक दिया और पश्चिम की अपराजेयता को तोड़ दिया। आधुनिक इतिहास में पहली बार एशिया की एक शक्ति ने यूरोप के सर्वाधिक विशाल एवं सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य को पराजित किया था। अर्जित यश एवं प्रतिष्ठा ने जापान को एक विश्वशक्ति बना दिया और सुदूर पूर्व में उसका प्रभुत्व हो गया। इस विजय ने जापान में राष्ट्रीय गौरव को उद्वेलित किया एवं चीन में साम्राज्यवादी विस्तार के लिए प्रेरित किया और प्रथम विश्व युद्ध के अन्त में 21 सूत्रीय माँगों के रूप में साम्राज्यवादी आकांक्षा चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी।

चीन पर प्रभाव (Effects on China)—युद्ध की चीन में शक्तिशाली प्रतिध्वनि हुई। जनता ने अनुभव किया कि यूरोपीय आक्रमण को दूर भगाने के लिए एकमात्र माँग स्वयं को आधुनिकतम आक्रमण के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित करना थी। जापान की विजय ने पाश्चात्य ज्ञान और पाश्चात्य पद्धतियों को आत्मसात करने के लिए चीन में अपूर्व उत्साह का संचार किया। समस्त देश में सुधारों के लिए अपूर्व उत्साह था। युवकों ने जापान, अमेरिका एवं यूरोप के देशों में प्रवेश लेकर पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण की। जापान के प्रशिक्षिकों के नेतृत्व में यूरोपीय आदर्शों के अनुरूप चीन की सेना को प्रशिक्षण दिया गया। अफीम के प्रयोग के विरुद्ध देशव्यापी युद्ध आरम्भ हो गया। इस जनचेतना के परिणामस्वरूप चीन में क्रान्ति के द्वारा मंचू वंशीय शासकों का अन्त हो गया और गणतान्त्रिक शासन स्थापित किया गया।

इस युद्ध के यूरोपीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर बहुत गम्भीर प्रभाव हुए। रूस की अभिव्यक्त दुर्बलता ने सन् 1907 के इंग्लैण्ड-रूस (Anglo-Russian Convention) समझौते के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इसके द्वारा दोनों देशों के मध्य एशिया स्थित हितों के कारण दीर्घकालीन द्वेष, वैमनस्य एवं शत्रुता समाप्त हो गयी। आस्ट्रिया ने रूस की दुर्बलता का लाभ लेते हुए बोस्निया एवं हर्जेगोविना का विलय कर लिया और रूस को पुनः बाल्कन

क्षेत्र समीपवर्ती पूर्वी विषयों में अपना ध्यान केन्द्रित करने के लिए विवश किया। रूस में युद्ध ने रोमनआफ (Romanoff) वंश की स्थिति को बहुत कमजोर कर दिया। उसका पतन लाने में सहायता की। सुलगती हुई क्रान्ति बहुत उग्र हो गयी।

सन् 1905 का क्रान्तिकारी आन्दोलन (The Revolutionary Movement of 1905)—जनता को विस्फोट की उत्सुकता से प्रतीक्षा थी। सन् 1904-1905 के रूस-जापान युद्ध ने जनता को आक्रोश अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान किया। युद्ध संचालन अत्यधिक अकुशल था और देश की जनता अधिकारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं उनकी अयोग्यता की कहानियों से उद्वेलित एवं उत्तेजित थी। रूस की एक के बाद एक अनेक पराजयों के समाचारों से राष्ट्रीय रोष की उद्दीप्त भावनाओं का विस्फोट हो गया। निरंकुश शासन कुख्यात हो चुका था। प्लेहेव (Plehve) और उसके अभिकर्ता की हत्या कर दी गयी। जेम्स्त्वो (Zemstvos) ने उदारवादी सुधारों की माँग प्रस्तुत की और इनके साथ नगरों में श्रमिकों के विरोध भी सम्बद्ध हो गये। मास्को और अन्य औद्योगिक नगरों में श्रमिकों ने हड़तालें कीं, लेकिन जार पूर्ववत् दमन के मार्ग पर चलता रहा। सन् 1905 में पादरी फादर गैपो (Father Gapon) के नेतृत्व में श्रमिकों का विशाल जुलूस अपनी माँगों का ज्ञापन देने जा रहा था कि मार्ग में सैनिकों ने अपूर्व क्रूरता एवं बर्बरता के साथ सैकड़ों हड़ताली श्रमिकों को गोलियों से भून डाला। यह घटना रविवार को हुई थी। इस कारण यह रविवार "रक्तरंजित रविवार" (Bloody Sunday) के रूप में विख्यात है। इस घटना के परिणामस्वरूप समस्त देश में भय, आतंक और आक्रोश था और समस्त रूस में अशान्ति, व्यग्रता एवं अराजकता का वातावरण था। कृषकों ने भू-स्वामियों के घरों को लूटना और पुलिस अधिकारियों की हत्या करना आरम्भ कर दिया। मास्को में जार निकोलस द्वितीय के चाचा ग्रान्ड ड्यूक सर्ज की हत्या कर दी एवं नौ-सेना में भी विद्रोह हो गया। जारवाद की नींव हिलने लगी।

जार ने निरन्तर बढ़ती हुई अव्यवस्था, अशान्ति एवं अराजकता से भयभीत होकर विरोधी शक्तियों के साथ समन्वय करने के प्रयास आरम्भ किये। वह माँगे गये सुधारों के विषय में ड्यूमा अथवा राष्ट्रीय विधान सभा से परामर्श करना चाहता था। अस्तु उसने ड्यूमा के अधिवेशन का आह्वान किया। उसने 'पोब्येदनास्त्सेफ' (Pabedonostev) एवं अन्य प्रतिक्रियावादी मन्त्रियों को पद मुक्त कर दिया। विट्टे (Witte) को पुनः बुलाया और विख्यात 'अक्टूबर' लोक घोषणा, 1905' जारी की। इसमें आत्मा, भाषण और समुदाय बनाने का आश्वासन निहित था। ड्यूमा का व्यापक वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन होना था और ड्यूमा को विधायी शक्तियों से परिपूर्ण करने का वचन दिया गया था।

प्रथम ड्यूमा की असफलता (Failure of First Duma)—मई, 1906 में अत्यधिक उत्तेजना के वातावरण में पहली ड्यूमा (राष्ट्रीय विधान सभा) का अधिवेशन हुआ लेकिन संवैधानिक सरकार स्थापित करने का प्रयोग दुःखद ढंग से असफल हुआ। देश और ड्यूमा दोनों में दलों और उद्देश्यों के भ्रम और उलझनों के कारण यह अधिवेशन असफल हो गया

था। क्रान्तिकारियों में परस्पर मतभेद थे। उन्होंने किसी एक संयुक्त दल का गठन नहीं किया था और वे संवैधानिक विषय पर विभाजित थे। अक्टूबरवादियों के नाम से सर्वविदित, क्रान्तिकारी नरमपंथी उदारवादी थे, जो जार द्वारा घोषित लोक घोषणा में प्रस्तावित सुधारों से सन्तुष्ट थे और स्वीकार करने को तत्पर थे। वे जार की सहमति पर आधारित संवैधानिक सरकार का समर्थन करते थे। इसके अतिरिक्त संवैधानिक लोकतान्त्रिक दल (Constitutional Democratic Party) और कैडेट्स (Cadets) के नाम से सार्वजनिक रूप से विख्यात एवं संगठित अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील समूह ने उत्तरदायी के साथ-साथ प्रतिनिधि सरकार की माँग की। उनका आशय सार्वजनिक प्रभुसत्ता के सिद्धान्त पर आधारित सरकार से था। कुछ समाजवादी दल भी थे। इन विभिन्न समूहों ने दलगत संघर्षों में अपनी ऊर्जा व्यर्थ नष्ट की और सरकार ने अपने आलोचकों में विभाजन का लाभ लिया। सरकार ने प्रस्तावित संसद का दूसरा सदन स्थापित किया। यह इस प्रकार गठित था कि इसमें अधिकांश रूढ़िवादी तत्व थे। उसने मूलभूत कानून (Organic Laws) जारी किये। इन कानूनों ने जार को निरंकुश सत्ता प्रदान की और समस्त विधेयकों के लिए निषेधाधिकार (Veto) दिया। ड्यूमा में किसी प्रकार की कोई शक्ति नहीं थी। जब उसने मन्त्रियों (कार्यपालिका) को नियन्त्रित करने का प्रयास किया, उस पर अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने का आरोप लगाया गया और इसको भंग कर दिया। कटु निराशा के साथ कैडेट्स (Cadets) फिनलैण्ड में विबोर्ग (Viborg) चले गये और रूस की जनता को सम्बोधित करते हुए विबोर्ग घोषणा-पत्र प्रकाशित किये जिसमें जनता से करों का भुगतान करने और ऐसी सरकार को, जिसने अपने दिये गये वचन का उल्लंघन किया था, सैन्य सेवा देने से मना करने का आग्रह किया गया था। लेकिन क्रान्ति की ऊर्जा अब तक समाप्त हो चुकी थी। अस्तु घोषणा-पत्र का यथेष्ट प्रभाव नहीं हुआ। परिणामस्वरूप सरकार का दृष्टिकोण बहुत कठोर हो गया और सरकार ने हस्ताक्षरकर्ताओं एवं अन्य क्रान्तिकारियों को कठोर दण्ड दिया।

मार्च, 1907 में ड्यूमा का दूसरा अधिवेशन हुआ, लेकिन ड्यूमा और मन्त्रिपरिषद् के मध्य उसी प्रकार का गतिरोध था। अस्तु इसको पुनः 4 माह की अवधि में ही भंग कर दिया गया। नवम्बर, 1907 में तीसरी ड्यूमा का अधिवेशन हुआ। इस ड्यूमा का गठन निर्वाचन कानून के मूल सिद्धान्तों में परिवर्तनों के बाद किया गया था। सदस्यों के निर्वाचन के लिए मताधिकार का क्षेत्र भी सीमित कर दिया गया था। परिणामस्वरूप तीसरी ड्यूमा में अधिकांश रूढ़िवादी तत्व थे जो सरकार की नीति के अनुरूप कार्य करते थे। ड्यूमा एक विधायी सभा की अपेक्षा मात्र परामर्शदात्री सभा रह गयी। तीसरी ड्यूमा ने सन् 1912 तक कार्य किया। तदुपरान्त चौथी ड्यूमा का गठन किया गया जिसका राजनीतिक स्वरूप पूर्ववत् ही रहा और पूर्वापेक्षा अधिक आज्ञा परायण थी। ड्यूमा कुछ भी प्राप्त करने में असहाय थी। अन्ततोगत्वा ड्यूमा राष्ट्र की भावनाओं को व्यक्त करने लगा। इन अभिव्यक्त विचारों

में राजनीतिक लोकतन्त्र के कीटाणु निहित थे। सन् 1905 की रूसी क्रान्ति की यही एक उपलब्धि थी।

इस प्रकार रूस में स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष का असफल अन्त हुआ। सन् 1907 से पुनः प्रतिक्रिया और निरंकुशता का सूत्रपात हुआ। स्टोलीपिन (Stolypin) जिसको "रूस का बिस्मार्क" (The Russian Bismarck) कहा जाता था, को सन् 1906 में रूस का प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया था, वह सरकार की नीति निर्धारित एवं कार्यान्वित करता था। वह निरंकुश शासन प्रणाली के साथ-साथ क्रान्ति के केन्द्र-बिन्दु की अपेक्षा सरकार को सहायक के रूप में बनाये रखना चाहता था। उसने कठोरता के साथ अराजकता एवं अशान्ति का दमन किया। साथ ही श्रमिक वर्ग एवं कृषकों के साथ सुधारवादी समन्वयात्मक नीति का अनुसरण किया। उसने कृषकों को मीर अथवा ग्राम समुदाय से स्वयं को विलग करके एवं भूमि जिस पर वे कृषि करते थे, के स्वामी बनने की अनुमति दे दी। उसने श्रम संगठनों को मान्यता देकर विधिक रूप प्रदान किया और श्रमिकों की बीमा योजना का सूत्रपात किया। सन् 1911 में स्टोलीपिन की हत्या कर दी गयी और निरंकुशता के प्रबल समर्थक और प्रमुख संचालक का अन्त हो गया। रूस में पुनः पूर्ववत् सामान्य अशान्ति, अराजकता, अव्यवस्था, कुशासन एवं भ्रष्टाचार का वातावरण हो गया और मन्त्रियों ने भविष्य की तनिक भी चिन्ता नहीं की। भविष्य में एक अन्य भीषण युद्ध हुआ जिसने निरंकुशता को ध्वस्त कर दिया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय के सुधारों का आलोचनात्मक विवेचन करें।
   Critically discuss the reforms of Zar Alexander II.
   (भागलपुर, 1997; मगध, 1998; लखनऊ, 1992, 94, 96, 98, 2000; आगरा, 1999)
2. जार अलेक्जेण्डर द्वितीय को मुक्तिदाता क्यों कहा गया ?
   Why is the Tsar Alexander II called Tsar the Liberator.
   (मगध, 1996; पटना, 1997; बी. आर. अम्बेदकर, 1999; राँची, 1996, 98; भोपाल, 1998; रुहेलखण्ड, 1994, 96, 98, 99, 2000)
3. अपने अध्ययन काल में रूस की स्थिति पर एक निबन्ध लिखिये।
   Write an essay of the condition of Russia during the period of your study.
   (आगरा, 1998; मेरठ, 1994)
4. जार अलेक्जेण्डर द्वितीय की आन्तरिक नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
   Critically discuss internal policy of Isar Alexander II. (जबलपुर 1977)
5. 1905 की रूसी क्रान्ति के लिए कौन-कौन-सी परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं।
   What circumstances were responsible for the Russia Revolution of 1905 ?
   (बिलासपुर 1999; गढ़वाल, 2000; आगरा, 1995; कानपुर एवं जबलपुर, 1998; 2000; मेरठ एवं गोरखपुर, 1992)
6. रूस के इतिहास में अलेक्जेण्डर द्वितीय के शासन की महत्ता का मूल्यांकन कीजिये।
   Evaluate the importance of the Alexander's II rule in the history of Russia.
   (आगरा, 1995; गोरखपुर, 1994, 99)

7. जार निकोलस द्वितीय के समय की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करें।
Discuss the important events of the time of Tsar Nicholas II.
(कानपुर, 1993; गढ़वाल, 2000)

8. निहिलवाद पर एक आलोचनात्मक निवन्ध लिखिये।
Write a critical essay on Nihilism. (कानपुर, 1993, 97)

9. रूस-तुर्की युद्ध के कारणों की विवेचना कीजिये। बर्लिन सम्मेलन इस समस्या को सुलझाने में कहाँ तक सफल रहा ?
Discuss causes of the Russo-Turkish War. How far the Congress of Berlin settled the problem ? (लखनऊ, 1991, 95)

10. 1904-05 के रूस-जापान युद्ध के कारणों एवं परिणमों की विवेचना कीजिये।
Discuss the causes and consequences of the Russo-Japanese war of 1904-05. (गोरखपुर, 1992; गढ़वाल, 1992, 95, 96; मगध, 1991; कानपुर, 1999; रुहेलखण्ड, 1992, 94, 98;)

11. सन् 1848 से सन् 1871 तक की रूस की आन्तरिक एवं विदेश नीति का वर्णन कीजिये।
Discuss Russian Home and Foreign Policy between 1848 & 1871.
(भोपाल, 1994, 97)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. अलेक्जेण्डर प्रथम ने सन् .... से .... तक रूस पर शासन किया—
(क) 1800-1825 (ख) 1801-1825 (ग) 1805-1825 (घ) 1810-1825

2. अलेक्जेण्डर प्रथम के देहान्त के उपरान्त निकोलस प्रथम सन् .... में सिंहासनारूढ़ हुआ—
(क) 1820 (ख) 1822 (ग) 1824 (घ) 1825

3. निकोलस प्रथम ने सन् .... में पौलेण्ड के विद्रोह का कठोरता से दमन किया—
(क) 1820 (ख) 1825 (ग) 1830 (घ) 1835

4. रूस ने आक्रमण करके सन् .... में नैव्वारिनों में स्थित तुर्की के नौ-सैनिक बेड़े को ध्वस्त कर दिया था—
(क) 1825 (ख) 1826 (ग) 1827 (घ) 1828

5. क्रीमिया युद्ध में रूस की पराजय से पीड़ित निकोलस प्रथम का सन् .... में देहावसान हो गया—.
(क) 1850 (ख) 1855 (ग) 1856 (घ) 1857

6. सन् 1828 से 1854 के मध्य कृषकों के .... विद्रोह औसत प्रतिवर्ष होते थे—
(क) 19 (ख) 20 (ग) 21 (घ) 23

7. सन् .... में विख्यात मुक्ति राजाज्ञा जारी की—
(क) 1858 (ख) 1859 (ग) 1860 (घ) 1861

8. सन् .... में रूस के जार ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी—
(क) 1877 (ख) 1878 (ग) 1879 (घ) 1880

9. सन् .... में नाशवादियों द्वारा फेंके गये बम के विस्फोट से अलेक्जेण्डर द्वितीय का देहान्त हो गया—
(क) 1880 (ख) 1881 (ग) 1882 (घ) 1883

10.

10. अलेक्जेण्डर तृतीय ने सन् .... तक रूस पर शासन किया—
(क) 1880-1895 (ख) 1881-1895 (ग) 1881-1894 (घ) 1880-1894

[उत्तर—1. (ग), 2. (ख), 3. (ख), 4. (घ), 5. (ग), 6. (ग), 7. (ख), 8. (ग), 9. (घ) , 10. (ख) ।]

18

ग्रेट ब्रिटेन में सुधार युग

[AN ERA OF REFORM IN GREAT BRITAIN]

फ्रान्सीसी क्रान्ति का प्रभाव (Effect of the French Revolution)—निःसन्देह, फ्रान्स की क्रान्ति में निहित उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक सुधारों की प्रक्रिया से अनेक देशों की जीवन शैली में निश्चित रूप से सुधार हुआ। इंग्लैण्ड में दीर्घकाल से देश की राजनीतिक संस्थाओं एवं नीतियों में आद्योपान्त पुनर्गठन की अतीव आवश्यकता थी। न्याय को प्रारम्भिक अवधारणा के अनुरूप बनाने के लिए संस्थाओं और नीतियों का पुनर्गठन अपेक्षित था। सर्वोत्कृष्ट लेखकों एवं विद्वानों ने स्पष्ट शब्दों में सुधारों का संकेत दिया था और विलियम पिट सदृश राजनीतिज्ञों ने विद्वानों की आलोचनाओं में निहित शक्ति की अनुभूति की थी और जनसमुदाय में नई चेतना का संचार करके राष्ट्रीय जीवन को त्वरित करने का कार्य आरम्भ किया। अपेक्षाकृत अधिक उदारवादियों ने फ्रान्स की क्रान्ति का नवीन और सुखद युग के शुभारम्भ के रूप में अपूर्व हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया। लेकिन रूढ़िवादी जनता सम्पत्ति के अधिकार तथा सामाजिक विषमताओं की फ्रान्सीसी आलोचनाओं से क्रुद्ध थी। विशाल जनसमुदाय परिवर्तन के विचार से ही भयभीत था। बर्क के नेतृत्व में समस्त रूढ़िवादियों ने किसी भी प्रकार के सुधारों का विरोध किया। परिणामस्वरूप सन् 1815 तक सुधार की कोई सम्भावना नहीं थी।

वाटरलू के युद्ध में विजय के उपरान्त भी समस्त सुधारों के प्रति कठोर विरोध का दृष्टिकोण चलता रहा। इस अवधि में ब्रिटिश संसद जो कट्टर रूढ़िवादियों, टोरी दल (Tory Party) द्वारा नियन्त्रित थी, का किसी भी प्रकार के सुधार के प्रति शत्रुतापूर्ण और कभी न झुकने वाला दृष्टिकोण था। फ्रान्स की क्रान्ति ने समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और विशेषाधिकारों, के उन्मूलन का प्रबल समर्थन किया। लेकिन इंग्लैण्ड स्पष्ट रूप से विशेषाधिकारों, सामाजिक वर्गों के मध्य भेदभाव और प्राचीन शासन की भूमि थी। चर्च, राज्य और विद्यालयों में एक सुनिश्चित स्वरूप की असमानता का शासन था।

सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति (Social and Political Condition)—सत्ता कुलीन वर्ग एवं भद्र पुरुषों के संयुक्त स्वरूप कुलीन तन्त्र में निहित थी। विदेशों में इंग्लैण्ड का स्थानीय स्वशासन जनता के द्वारा जनता की सरकार के रूप में बहु प्रशंसित एवं आदर्श रूप में प्रस्तुत, यथार्थ में कहीं नहीं था। काउण्टी सरकारों में अधिकांश महत्वपूर्ण पदों पर स्थानीय कुलीन वर्ग के व्यक्ति नियुक्त थे। बरो अथवा नगर की सरकारों में उनका प्रभाव निर्णायक था। राष्ट्रीय सरकार अर्थात् संसद में कुलीन तन्त्र सुदृढ़ रूप से मोर्चा बाँधे हुए थे। उच्च सदन (हाउस ऑफ लार्ड्स) तो विशेष रूप से बड़े भू-स्वामियों का ही सदन था। यह प्रभावशाली सामाजिक वर्ग का रक्षक था। लेकिन निम्न सदन (हाउस ऑफ कामन्स) उतना ही सुरक्षित सुदृढ़ गढ़ था। इस सदन से इंग्लैण्ड की सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करने की आशा की जाती थी, लेकिन स्थिति पूर्णरूप से भिन्न थी। इसका गठन यथार्थ में असाधारण था।

हाउस ऑफ कामन्स—सन् 1815 में इस सदन की कुल सदस्य संख्या 658 थी। इसमें 489 इंग्लैण्ड, 100 आयरलैण्ड, 45 स्काटलैण्ड और 24 वेल्स के प्रतिनिधि थे। काउण्टी, बरो और दो विश्वविद्यालय, तीन प्रकार के संसदीय क्षेत्र थे। इंग्लैण्ड में प्रत्येक काउण्टी के दो प्रतिनिधि और लगभग समस्त बरो से प्रत्येक के दो प्रतिनिधि होते थे, यद्यपि कुछ बरो थे जिनका प्रत्येक का एक प्रतिनिधि होता था। प्रतिनिधित्व का जनसंख्या के आकार से कोई सम्बन्ध नहीं था। विशाल काउण्टी (County) और छोटी काउण्टी बड़े बरो और छोटे बरो, प्रत्येक के प्रतिनिधियों की संख्या समान रहती थी। इंग्लैण्ड के दक्षिणी क्षेत्र की 10 काउण्टी और उसके अन्तर्गत बरो (Boroughs) के प्रतिनिधियों की संख्या 237 थी, जबकि शेष इंग्लैण्ड की 30 काउण्टी के प्रतिनिधियों की संख्या केवल 252 थी, यद्यपि इस क्षेत्र की जनसंख्या दक्षिणी क्षेत्र की अपेक्षा तीन गुणा थी। समस्त स्काटलैण्ड से 45 प्रतिनिधि आते थे, जबकि कार्नवाल (Cornwall) की एक काउण्टी (इसके बरो सहित) का 44 सदस्य प्रतिनिधित्व करते थे। स्काटलैण्ड की जनसंख्या कार्नवाल की अपेक्षा आठ गुणा अधिक थी।

काउण्टी मताधिकार (The County Suffrage)—समस्त काउण्टी में मताधिकार एकरूपीय था और 40 शिलिंग वार्षिक आय वाली कर मुक्त अचल सम्पत्ति के स्वामियों को ही मताधिकार प्राप्त था। इस निर्धारित सीमा के कारण सीमित व्यक्तियों को ही मताधिकार प्राप्त था। विशाल काउण्टी के भू-क्षेत्रों के भू-स्वामियों एवं उनके आश्रितों को मताधिकार प्राप्त था। बहुत कम मतदाताओं वाली काउण्टी पर धनी, सम्पन्न भू-स्वामी सहज ही नियन्त्रण कर सकते थे। काउण्टी से प्रतिनिधि निर्वाचित होने के लिए 600 पौण्ड वार्षिक आय वाली भू-सम्पत्ति का स्वामित्व अनिवार्य था। यद्यपि स्काटलैण्ड की कुल जनसंख्या लगभग 20 लाख थी लेकिन मतदाताओं की कुल संख्या 3 हजार भी नहीं थी। फाइफ (Fife) में 240 और क्रोमार्टी में 9 मतदाता थे। 14,000 जनसंख्या वाले ब्यूट (Bute) में केवल 21 मतदाता

थे। इनमें से एक मतदाता काउण्टी में रहता था। ऐसे अवसर आते थे, जब वह एकमात्र मतदाता काउण्टी की निर्वाचन सभा में सम्मिलित होता था। वह स्वयं सभा का अध्यक्ष होता, स्वयं को मनोनीत करता, उसी को मतदाताओं की सूची कहा जाता और स्वयं को संसद के लिए निर्वाचित घोषित करता।

बरो मताधिकार (Borough Suffrage)—बरो में भू-स्वामी एवं धनी वर्ग का प्रभाव काउण्टी की अपेक्षा अधिक निर्णायक होता था। बरो भी अनेक प्रकार के थे, जैसे—मनोनयन बरो, जीर्ण-शीर्ण अथवा बन्द बरो, पर्याप्त संख्या में मतदाताओं वाले बरो एवं लगभग लोकतान्त्रिक मतदाताओं वाले बरो भी थे। प्रथम दो वर्गों ने सदन के सुधार के लिए सार्वजनिक माँग में सर्वाधिक योगदान किया। मनोनयन बरो में दो नागरिकों (Burgesses) को चयन करने का अधिकार पूर्णरूप से क्षेत्र के संरक्षक अथवा बहुत बड़े भू-स्वामी में निहित होता था। अनेक ऐसे क्षेत्र थे जिसके समस्त निवासी समाप्त हो चुके थे, लेकिन प्रतिनिधित्व उस जनसंख्या की अपेक्षा भौगोलिक क्षेत्र का विशिष्ट गुण बना हुआ था, ऐसे क्षेत्र दो प्रतिनिधियों के लिए अधिकृत थे। कोर्फे कैसल (Corfe Castle) शराबघर था, पुराना सेरम (Old Serum) एक हरा-भरा टीला था, गैटन (Gatten) एक विशाल उद्यान का एक भाग बन चुका था, जबकि डनविच (Dunwich) समुद्र के गर्भ में विलीन हो चुका था। इन स्थानों पर कोई निवासी नहीं थे, लेकिन इनको दो प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था। यह अनेक शताब्दियों पूर्व निर्णय किया गया था, जब इन क्षेत्रों में पर्याप्त जनसंख्या थी, लेकिन ब्रिटिश संसद ने इन परिवर्तनों पर कोई ध्यान नहीं दिया। ध्वस्त दीवार अथवा हरे-भरे टीले अथवा समुद्र के गर्भ में समाहित भाग के स्वामी को मनोनयन का अधिकार था।

जीर्ण-शीर्ण अथवा बन्द बरो में संसद सदस्य निकाय अर्थात् महापौर और वरिष्ठ सदस्य (Mayor and Aldermen) द्वारा चुने जाते थे। मताधिकार 12 से 50 तक मतदाताओं में सीमित था और वे भी सामान्यतः बहुत निर्धन थे, जिनको धनी-समृद्ध संरक्षक रिश्वत अथवा आतंकित करके प्रभावित कर सकता था। ऐसे मामलों में निर्वाचन मात्र औपचारिकता थे।

पर्याप्त विशाल अथवा लोकतान्त्रिक मतदाताओं वाले कुछ बरो थे। इनमें मतदान 15 दिन तक चलता था। लम्बी अवधि के मतदान की प्रक्रिया ने सहज ही सम्भव धनी व्यक्तियों द्वारा रिश्वत को प्रोत्साहित किया। 75,000 अथवा 1,00,000 अथवा इससे अधिक जनसंख्या वाले मैनचेस्टर, बरमिंघम, लीड्स, शैफील्ड जैसे नगर भी थे, जिनका ब्रिटिश संसद में कोई प्रतिनिधि नहीं था। इस स्थिति पर खेद व्यक्त करते हुए कनिष्ठ पिट (Pyounger Pitt) ने कहा था, "यह सदन ग्रेट ब्रिटेन की जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। यह केवल नाम मात्र के बरो, ध्वस्त और विलुप्त नगरों, कुलीन परिवारों, विदेशी राजाओं के धनी व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता था।" इंग्लैण्ड की सरकार प्रतिनिधात्मक की अपेक्षा कुलीनतन्त्रीय थी।

राज्य के साथ घनिष्ठ रूप से चिन्हित और राज्य के सदृश विशेष विशेषाधिकार के सिद्धान्त से अभिभूत, एक अन्य संस्था इंग्लैण्ड का चर्च था। यद्यपि इंग्लैण्ड में पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता और पुरुष अपनी इच्छानुसार पूजा-उपासना कर सकते थे, आंग्लिक (इंग्लैण्ड के नवीन सुधारवादी चर्च के सदस्य अथवा अनुयायी) चर्च का विशेष प्रतिष्ठित एवं सम्मानित स्थान था। इस चर्च के सदस्यों को ही वास्तविक राजनीतिक शक्ति प्राप्त थी। कोई कैथोलिक धर्मावलम्बी संसद का सदस्य नहीं बन सकता था, अथवा राज्य अथवा नगरपालिका में किसी पद को ग्रहण नहीं कर सकता था। सिद्धान्त रूप से एंग्लिकन चर्च का विरोध करने वाले प्रोटेस्टेण्ट अनुयायियों को भी सरकारी पदों से वंचित रखा जाता था। भिन्न मतावलम्बी की स्थिति भार-स्वरूप एवं अपमानजनक थी। यद्यपि वह इंग्लैण्ड के चर्च का सदस्य नहीं था लेकिन चर्च के रख-रखाव के लिए करों का भुगतान करना पड़ता था। एंग्लिकन चर्च की स्थापित सर्वोच्चता के कारण निजी स्वार्थों से प्रभावित, अथवा राजनीतिक सत्ता के महत्वाकांक्षी अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए उत्सुक अथवा ऑक्सफोर्ड अथवा कैम्ब्रिज शिक्षा के लिए व्यग्र व्यक्ति इस चर्च के सदस्य बन सकते थे।

अस्तु इंग्लैण्ड की महान् संस्थाओं पर धनी व्यक्तियों का धनी व्यक्तियों के हित के लिए पूर्ण नियन्त्रण था। संसद द्वारा पारित अधिनियम भी शक्तिशाली, भू-स्वामियों के कुलीनों और निरन्तर बढ़ते हुए उत्पादकों के धनी वर्ग के हितों की पूर्ति करते थे। इन वर्गों के हित लगभग समान थे। विशाल जनसमुदाय की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। उनके लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। इंग्लैण्ड के तीन-चौथाई बच्चों को किसी प्रकार की शिक्षा नहीं मिली थी। श्रमिकों द्वारा अपनी सेवा शर्तों में सुधार के उद्देश्य से श्रमिक संघों के गठन पर प्रतिबन्ध था। डबलरोटी के आटे पर उत्पाद शुल्क, जो भू-स्वामियों के हित में था, आरोपित करके उनके खाद्य पदार्थों को महँगा कर दिया जाता था। इंग्लैण्ड की महानता और शक्ति एवं सम्पन्नता का दूसरा पक्ष अत्यधिक दयनीय एवं निराशाजनक था। इंग्लैण्ड में सुधारों की तत्काल आवश्यकता थी।

आंशिक सुधार का काल (A Period of Partial Reform)—सन् 1820 में जार्ज तृतीय के 81 वर्ष की आयु में देहान्त के उपरान्त उसका पुत्र जार्ज चतुर्थ सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने सन् 1830 तक शासन किया। उसके शासनकाल में इंग्लैण्ड के राजनीतिक जीवन में शनैः शनैः परिवर्तन आया। विदेशमन्त्री लार्ड कैनिंग ने इंग्लैण्ड की विदेश नीति को पवित्र सन्धि (Holy Alliance) के साथ समस्त सम्बन्धों से मुक्त करवा दिया। हुसकिसन (Huskissan) ने व्यापार संचालन पर लगे प्रतिबन्धों में से कुछ को समाप्त कर दिया और अनेक सीमा-शुल्क कम कर दिये। दण्ड संहिता इंग्लैण्ड के लिए एक कलंक था। इस संहिता में राबर्ट पील ने सुधार किया। लगभग दो सौ अपराधों जैसे—जेब काटने, किसी स्टोर से 5 शिलिंग चुराने अथवा किसी घर से 40 अथवा उससे अधिक शिलिंग चुराने, मछली चुराने, वेस्टमिनिस्टर पुल को चोट पहुँचाने, धमकी भरे पत्र भेजने आदि के लिए मृत्यु दण्ड

दिया जा सकता था। सन् 1823 में लगभग सौ अपराधों के लिए मृत्यु दण्ड समाप्त कर दिया गया।

पूर्वापेक्षा अधिक स्वतन्त्रता की दिशा में एक अन्य सुधार किया गया। सन् 1828 में प्रोटेस्टेण्ट विरोधी मतावलम्बियों के ऊपर आरोपित विभिन्न अयोग्यताओं का उन्मूलन कर दिया गया। अगले वर्ष दीर्घकालीन एवं कटु विचार-विमर्श, जिसने गृह युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी थी, के बाद संसद ने कैथोलिक मुक्ति अधिनियम (Catholic Emancipation Act) पारित करके कैथोलिक धर्मावलम्बियों की दीर्घकालीन शिकायतों एवं आपत्तियों का निराकरण किया। इस अधिनियम द्वारा वे संसद के किसी भी सदन के सदस्य बन सकते थे और कुछ अपवादों के अतिरिक्त नगरपालिका अथवा राष्ट्र के किसी भी पद पर नियुक्ति प्राप्त कर सकते थे। इस अधिनियम ने कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बियों के मध्य समानता स्थापित की। ये समस्त सुधार सत्तारूढ़ टोरी (Tory) रूढ़िवादी दल ने किये थे लेकिन अपेक्षाकृत अधिक मौलिक एवं महत्वपूर्ण संसद स्वयं में सुधार को यह दल स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं था। 26 जून, 1830 को जार्ज चतुर्थ का देहान्त हो गया और उसका भाई विलियम चतुर्थ सिंहासनारूढ़ हुआ। कुछ काल बाद अर्ल ग्रे के नेतृत्व में विग (Whigs) उदारवादी सत्ता में आ गये और टोरी दल का पतन हो गया। विग पिछले 4 दशक से संसदीय सुधार की माँग कर रहे थे।

सन् 1832 का सुधार विधेयक (The Reform Bill of 1832)—1 मार्च, 1831 को लार्ड जान रसैल (Lord John Russel) ने एक सुधार विधेयक संसद के निम्न सदन हाउस ऑफ कामन्स के पटल पर रखा। इस विधेयक का मुख्य उद्देश्य अपेक्षाकृत अधिक न्यायसंगत ढंग से सदन के सदस्यों के स्थानों का पुनर्वितरण करना एवं तत्कालीन मताधिकार से सम्बन्धित विसंगतियों को दूर करके बरो के लिए एकरूपीय मताधिकार स्थापित करना था। सदस्य संख्या का पुनर्वितरण, छोटे और विलुप्त बरो से प्रतिनिधित्व के अधिकार को समाप्त करना और मताधिकार से वंचित विशाल और धनी तथा सम्पन्न नगरों को प्रदान करने के दो सिद्धान्तों पर आधारित था। इस विधेयक पर 1 मार्च, 1831 से 5 जून, 1832 तक असाधारण कटु एवं आक्रोश से अनुप्राणित वातावरण में विचार-विमर्श हुआ। इस अवधि में अनेक संकट के क्षण आये और सार्वजनिक हिंसा भी हुई। एक अवसर पर गृहयुद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। हाउस ऑफ लार्ड्स ही सर्वाधिक गम्भीर व्यवधान था। इसके सदस्य ही वर्तमान मनोनयन प्रणाली एवं भ्रष्ट और अल्प संख्या वाले बरो से मुख्य रूप से लाभान्वित होते थे। वे प्राप्त सत्ता एवं प्रतिष्ठा से वंचित नहीं होने के लिए कृत संकल्प थे। विधेयक पारित करने के लिए एक ही उपाय था कि राजा इतनी बड़ी संख्या में अभिजातों (Peers) का सृजन करे कि हाउस ऑफ लार्ड्स में विधेयक के समर्थकों का बहुमत हो जाये। विलियम चतुर्थ ने अन्ततोगत्वा एक पत्र पर हस्ताक्षर करके अर्ल ग्रे (Earl Grey) प्रधानमन्त्री को विधेयक को पारित करने के लिए अपेक्षित संख्या में अभिजातों का सृजन करने की अनुमति

दे दी। धमकी पर्याप्त थी, किसी भी अभिजात का सृजन नहीं किया गया था। 4 जून, 1832 को हाउस ऑफ लार्ड्स ने विधेयक पारित कर दिया।

विधेयक के प्रावधानों के अनुसार 56 कम जनसंख्या वाले (Rotten Boroughs) जिनकी प्रत्येक की जनसंख्या 2,000 से कम थी, लेकिन अब तक हाउस ऑफ कामन्स के लिए 14 सदस्य भेजते थे, को समाप्त कर दिया गया। इसी प्रकार 4,000 से कम जनसंख्या वाले 32 बरों में दो के स्थान पर एक प्रतिनिधि भेजने के लिए अधिकृत थे। इस प्रकार प्राप्त स्थानों को निम्नलिखित रूप से पुनः वितरित किया गया—(1) 22 विशाल नगरों में प्रत्येक को 2 प्रतिनिधि आबंटित किये गये। (2) 20 अन्य नगरों को एक प्रतिनिधि निर्वाचित करने के लिए अधिकृत किया गया। (3) विशाल काउण्टी में प्रत्येक को एक अतिरिक्त प्रतिनिधि चुनने के लिएं अधिकार दिया गया। इस प्रकार कुल 65 काउण्टी में 65 अतिरिक्त प्रतिनिधि का प्रावधान था। समान निर्वाचक क्षेत्र बनाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया। निर्वाचन क्षेत्रों में जनसंख्या की दृष्टि से अब भी बहुत अन्तर था।

मताधिकार का विस्तार (The Expansion of Suffrage)—सुधार विधेयक में मताधिकार के नियमों में परिवर्तन किया गया जिससे मताधिकार का पर्याप्त विस्तार हो गया। पूर्व में काउण्टी में मताधिकार पूर्णरूप से भूमि के स्वामित्व पर निर्भर था। 40 शिलिंग वार्षिक मूल्य के कर-मुक्त भू-स्वामियों को मताधिकार था। अब 10 पौंड वार्षिक किराया देने वाले पंजीकृत व्यक्तियों को मताधिकार दिया गया। जीवन-पर्यन्त अथवा 60 वर्ष की अवधि के लिए पट्टे पर प्राप्त भूमिधारकों को भी मताधिकार मिल गया। इसके अतिरिक्त 20 वर्ष की अवधि के लिए पट्टे पर प्राप्त भूमिधारकों को अथवा 50 पौंड वार्षिक किराया देने वाले व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त हो गया।

बरो में पुराने मताधिकार के लिए योग्यता नियमों को समाप्त करके नये प्रावधान किये गये। 10 पौंड वार्षिक किराये के आवास स्वामियों अर्थात् उन समस्त व्यक्तियों, जो 10 पौंड वार्षिक अपने मकान अथवा दुकान अथवा किसी अन्य समान किराया मूल्य वाले का किराया देते अथवा किराया प्राप्त करते थे, मताधिकार के लिए अधिकृत थे।

सन् 1832 के सुधार विधेयक ने निम्न सदन हाउस ऑफ कामन्स को यथार्थ में एक प्रतिनिधात्मक सदन बना दिया। इसने उच्च मध्यवर्गीय व्यक्तियों को मताधिकार से अलंकृत किया। इस विधेयक ने इंग्लैण्ड में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये और प्रजातन्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। रैम्जे म्योर विख्यात आलोचक ने इस अधिनियम के महत्व को दर्शाते हुए व्यक्त किया, "हाउस ऑफ कामन्स राष्ट्र का वास्तविक प्रतिनिधि बन गया, राजा की मन्त्रिपरिषद् को प्रभावित करने की शक्ति विलुप्त हो गयी और हाउस ऑफ लार्ड्स को भयंकर आघात लगा।" मतदाताओं की संख्या में, विशेष रूप से मतदाताओं में अपूर्व वृद्धि हुई लेकिन इंग्लैण्ड के श्रमिकों एवं निर्धन निम्न मध्य वर्गों को मताधिकार नहीं था। विशाल जनसमुदाय अब भी मताधिकार से वंचित था।

सन् 1832 के सुधार विधेयक द्वारा मताधिकार का विस्तार किया गया। राजनीतिक शक्ति भू-स्वामियों से मध्यम वर्ग में स्थानान्तरित कर दी। ट्रेवेलियन ने सन् 1832 के अधिनियम को 'आधुनिक मैग्ना कार्टा' (Modern Magna Carta) (इंगलैण्ड में राजा जॉन सन् 1167-1216) द्वारा बैरनों के दबाव में 15 जून, 1215 को सीमीड के स्थान पर हस्तान्तरित महाधिकार-पत्र जिसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक स्वाधीनता का अधिकार-पत्र माना जाता है), की संज्ञा दी है। वे आगे कहते हैं, "इसके कारण इंगलैण्ड में संवैधानिक क्रान्ति हो गयी और राजनीतिक शक्ति कुलीन वर्ग के हाथ से निकलकर मध्यम वर्ग के हाथ में आ गयी, जिसने इंगलैण्ड के लिए लोकतन्त्र का मार्ग प्रशस्त किया। बार्कर, आयविन एवं ओल्ड ने सन् 1832 के सुधार अधिनियम का महत्व दर्शाते हुए विचार व्यक्त किया है, "सन् 1832 के सुधार अधिनियम का महत्व पर्याप्त रूप से स्पष्ट था। इसके प्रसारित हो जाने से इंगलैण्ड में उन राजनीतिक और प्रशासनिक सुधारों की शृंखला का पारित होना सम्भव हो गया, जिन्होंने भविष्य में आधुनिक इंगलैण्ड की नींव डाली।" हाल तथा एल्विन ने सन् 1832 के सुधार अधिनियम एवं फ्रान्स की सन् 1830 की क्रान्ति का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए विचार व्यक्त किये, "इंग्लैण्ड में जनता, इस तरह, एक प्रकार की क्रान्ति ही की थी। यह क्रान्ति फ्रान्स की क्रान्ति की अपेक्षा अधिक यथार्थ में क्रान्ति थी। इस क्रान्ति ने किसी राजवंश को सिंहासन से अपदस्थ नहीं किया, लेकिन इसने इंगलैण्ड के भू-स्वामी वर्ग के सरकार पर एकाधिकार को निश्चित रूप से समाप्त कर दिया। फ्रान्स की समकालीन क्रान्ति ने प्रत्येक 200 व्यक्तियों में एक को मताधिकार दिया जबकि इंग्लैण्ड में इस अधिनियम ने प्रत्येक 40 व्यक्तियों में एक को मताधिकार दिया।"

मैरियट ने लार्ड्स की शक्ति कम हो जाने के सन्दर्भ में कहा, "अधिनियम के द्वारा लार्डस को अपने मृत्यु के अधि-पत्र (Warrant) पर हस्ताक्षर करने पड़े तथा राजा ने भी अपनी सीमित शक्ति का अनुभव किया।"

व्हिग दल स्वयं शिल्पियों को मताधिकार देने के पक्ष में नहीं था। इंगलैण्ड की जनता फ्रान्स के अनुरूप क्रान्ति नहीं चाहती थी, अस्तु व्हिग दल के कुलीनों ने मध्यवर्गीय उदारवादियों के साथ एक समझौता कर लिया था।

चार्ल्स वुड ने इस अधिनियम को अलोकतान्त्रिक एवं भू-स्वामियों के हित में कहा। काउण्टी तथा छोटे बरो में भू-स्वामियों का प्रभुत्व पूर्ववत् बना रहा। विधेयक के निर्माता जॉन रसैल की इच्छा थी कि इस विधेयक को अन्तिम सुधार विधेयक के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इस अधिनियम के उपरान्त संसद के निम्न सदन में धनवानों की संख्या अधिक बनी रही। इस अधिनियम से श्रमिक वर्ग अत्यधिक क्षुब्ध एवं असन्तुष्ट था। व्हिग सुधारवादियों का लोकतन्त्रात्मक भावना की तुष्टि का उद्देश्य नहीं था। उदारवादी दार्शनिक भी इस अधिनियम से अप्रसन्न थे। मैरियट ने व्याख्या करते हुए लिखा है, "यह किसी सिद्धान्त की अपेक्षा उपयोगिता पर आधारित था। उसने रफू किया और अनेक टुकड़ों को जोड़ा था।

यद्यपि उसने अनेक गम्भीर दोषों का उन्मूलन किया था लेकिन अनेक दुविधाओं को पूर्ववत् छोड़ दिया था। इसने लोकतन्त्र के सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना कुलीन तन्त्र के सिद्धान्त को भंग कर दिया। इसमें प्रतिनिधित्व संख्या अथवा धन अथवा शिक्षा पर आधारित नहीं था।"

दासता उन्मूलन (Abolition of Slavery)—सुधार अधिनियम की सफलता से उद्वेलित एवं उत्साहित व्हिग दल अपनी सुधारवादी गतिविधियों को निर्विघ्न रूप से अनेक वर्षों तक चलाता रहा। सन् 1833 में संसद ने दासता उन्मूलन विधेयक पारित कर दिया। ब्रिटिश न्यायालय बहुत पहले निर्णय दे चुके थे कि ब्रिटिश द्वीप पर दासता का कोई अस्तित्व नहीं था, कोई भी दास इंग्लैण्ड की मिट्टी को स्पर्श करते ही मुक्त हो जाता था। मारीशस, दक्षिण अफ्रीका एवं वेस्ट इंडीज के उपनिवेशों में 7,50,000 दास विद्यमान थे। दासों को मुक्त करने का अर्थ इन उपनिवेशों के सम्पत्ति के अधिकार में हस्तक्षेप माना जाता। दास अपने स्वामी की सम्पत्ति थे। इसके उन्मूलन से उपनिवेशों की सम्पन्नता ध्वस्त हो सकती थी। दास-प्रथा के नैतिक दोष के विरुद्ध जनसमुदाय में संवेदनशीलता निरन्तर बढ़ रही थी और इसने दासता विरोधी आन्दोलन की सफलता को आश्वस्त किया। इस आन्दोलन का विलबरफोर्स (Wilberforce) और जचेरी मैकाले (Zachary Macaulay) ने नेतृत्व किया। अगस्त, 1833 में एक विधेयक पारित किया गया जिसमें प्रावधान था कि 1 अगस्त, 1834 में दास प्रथा समाप्त हो जायेगी और दास स्वामियों को क्षतिपूर्ति के रूप में देने के लिए 10 करोड़ डालर की व्यवस्था की गयी थी। यद्यपि दास स्वामी सन्तुष्ट नहीं थे, लेकिन सहमति व्यक्त करने के लिए बाध्य थे।

बाल श्रम (Child Labour)—कारखानों में नारकीय स्थितियों, बच्चों के नियोजन की निर्दयता एवं अनुचित दोष के विरुद्ध जनसामान्य में आक्रोश का आविर्भाव हुआ। आधुनिक कारखाना प्रणाली के परिणामस्वरूप ब्रिटिश उद्योगों में बाल श्रम नियोजन का श्रीगणेश हुआ था। कारखाना स्वामियों ने अनुभव किया कि मशीनों द्वारा किये जाने वाला अधिकांश कार्य बच्चे सहज ही कर सकते थे और बाल श्रम वयस्क श्रम की अपेक्षा सस्ता भी था। कारखानों में अधिक से अधिक संख्या में बच्चों को लगाया गया। विशालकाय एवं अमानवीय दोष का विकास हुआ। ये बच्चे समाज के निर्धनतम वर्ग के थे। कुछ बच्चे अपना दयनीय जीवन 5 अथवा 6 वर्ष की आयु से आरम्भ करते थे और कुछ बच्चे 8 अथवा 9 वर्ष की आयु से कारखानों में काम करना आरम्भ करते थे। इन बच्चों को 12 अथवा 14 घण्टे काम करने के लिए बाध्य किया जाता था। आधे घण्टे के लिए भोजन अवकाश दिया जाता था, इस अवधि में भी उनसे मशीनें साफ करने की आशा की जाती थी। कार्य स्थल पर सो जाने की स्थिति में उनको निर्ममतापूर्वक पीटा जाता था। इस अमानवीय शासन में शिक्षा अथवा मनोरंजन अथवा स्वस्थ विकास के लिए समय अथवा शक्ति इन बच्चों में नहीं रहती थी। बच्चों के कार्यस्थल का नैतिक वातावरण अत्यधिक हानिकारक था।

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के नाम पर, जिसके नाम पर प्रायः अपराध किये जाते हैं, राजनीतिक अर्थशास्त्री, उत्पादक एवं राजनीतिज्ञ इस अमानुषिक प्रणाली का समर्थन करते थे। उत्पादक बिना बाह्य हस्तक्षेप अपनी उत्पादन प्रक्रिया संचालित करने के लिए स्वतन्त्र था। ब्रिटिश संसद, जो जमैका में नीग्रो दासों के साथ अत्याचारों के प्रति संवेदनशील थी। इंग्लिश बच्चों के भाग्य के प्रति उदासीन नहीं रह सकती थी।

सन् 1833 का कारख़ाना अधिनियम (The Factory Act of 1833)—राबर्ट ओवन (Robert Owen), थामस सैडलर (Thomas Sadler), फील्डेन (Fielden), लार्ड ऐशले (Lord Ashley) जैसे इंग्लैण्ड के उत्कृष्ट मानवतावादियों के अथक् प्रयासों से सन् 1833 का कारखाना अधिनियम पारित हुआ। इसके द्वारा 9 वर्ष से कम आयु के बच्चों के स्पिनिंग और वीविंग कारखानों में नियोजन को प्रतिबन्धित कर दिया गया। 9 से 13 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए अधिकतम 8 घण्टे प्रतिदिन और 13 से 18 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए 12 घण्टे प्रतिदिन काम के घण्टे निर्धारित किये गये। यह एक मामूली शुरूआत थी। समाज के हित में श्रमिकों की सेवा शर्तों को नियन्त्रित करने वाले अधिनियमों में पहला था।

साम्राज्ञी विक्टोरिया (Queen Victoria)—20 जून, 1837 को राजा विलियम चतुर्थ का निधन हो गया और उसकी 18 वर्षीय भतीजी, जार्ज तृतीय के चौथे पुत्र कैण्ट के ड्यूक की पुत्री विक्टोरिया सिंहासनारूढ़ हुई। वह संवैधानिक राजतन्त्र की प्रबल समर्थक थी। उसने अपने चचेरे भाई सैक्से-कोबर्ग (Saxe-Coburg) के राजकुमार एल्बर्ट (Prince Albert) के साथ विवाह कर लिया। उसका वैवाहिक जीवन असाधारण ढंग से सुखद एवं आनन्दमय था। दोनों के विचारों एवं भावनाओं में अपूर्व समानता थी।

जनता का घोषणा-पत्र (The People's Charter)—सन् 1832 के सुधार अधिनियम में श्रमिक वर्ग को राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया था, अस्तु उनके द्वारा मताधिकार के विस्तार के लिए आन्दोलन करना स्वाभाविक था। अस्तु श्रमिक वर्ग ने अनेक वर्षों तक उन राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जिसके लिए वे अधिकृत थे, तीव्र आन्दोलन का संचालन किया। लोवैट (Lovett) एक श्रमिक नेता ने 'सड़ा हुआ अथवा भ्रष्ट हाउस ऑफ कॉमन्स' (The Rotten House of Commons) नामक परिपत्र दिसम्बर, 1836 के द्वारा सिद्ध किया कि इंगलैण्ड के 60,23 752 वयस्क पुरुषों में केवल 8,39,519 मतदाता थे। उसने संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों की असमानताओं को भी व्यक्त किया। एक ओर 2,411 मतदाता 20 सदस्यों को चुनते थे और दूसरी ओर 20 सदस्यों को 86,072 मतदाता अपना प्रतिनिधि चुनते थे। उग्र सुधारवादियों ने अपनी तात्कालिक माँगें सन् 1838 में संसद के लिए तैयार निवेदन 'जनता के घोषणा-पत्र' (The People's Charter) अथवा कार्यक्रम में अभिव्यक्त कीं। इस घोषणा-पत्र में निम्नलिखित माँगें प्रस्तुत की गयीं—

1. देश के प्रत्येक वयस्क पुरुष को मताधिकार मिलना चाहिए।

2. मतदान गुप्त एवं परम्परागत मौखिक की अपेक्षा मत-पत्र द्वारा हो जिससे प्रत्येक मतदाता भय और आतंक से मुक्त हो और रिश्वत से प्रभावित होने की सम्भावना कम रहे।
3. सदन की सदस्यता के लिए सम्पत्ति की अनिवार्य योग्यता को समाप्त किया जाये।
4. निर्वाचित सदस्यों को वेतन दिया जाये जिससे निर्धन व्यक्ति श्रमिक स्वयं जो श्रमिकों की विभिन्न समस्याओं को भलीभाँति समझते हों, संसद के लिए निर्वाचित हो सकें।
5. हाउस ऑफ कॉमन्स का कार्यकाल वर्तमान 7 वर्ष की अपेक्षा 1 वर्ष हो। इसका मुख्य उद्देश्य मतदाताओं की आकांक्षाओं के प्रति उदासीन अथवा भ्रष्ट प्रतिनिधियों को रोकना था। वार्षिक चुनाव मतदाताओं को ऐसे प्रतिनिधियों को दण्ड देने का सुअवसर प्रदान करेंगे। ये पाँच माँगें संसद को किसी वर्ग की अपेक्षा जनता का प्रतिनिधि बनायेगी।

सुधारवादियों (Chartist) का संसद में कोई प्रभाव नहीं था, परिणामस्वरूप इस आन्दोलन को संसद के बाहर श्रमिक संघों, प्रेस, लोकप्रिय गीतों और कविताओं, विशाल जन-सभाओं को सम्बोधित भावुक वक्ताओं, अनेक एवं अभूतपूर्व विशाल प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से चलाया गया। सन् 1839 में 12,86,000 व्यक्तियों के हस्ताक्षर वाला विशाल प्रार्थना-पत्र सरकार को दिया गया, जिसको अस्वीकार कर दिया गया। सन 1842 में 30 लाख से अधिक व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से युक्त प्रार्थना-पत्र, पुनः दिया गया। सरकार ने इसको भी अस्वीकार कर दिया। सन् 1848 में एक अन्य प्रार्थना-पत्र जिस पर 57,00,000 व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे, दिया गया। इसको भी सरकार ने अस्वीकार कर दिया। अन्ततोगत्वा सुधारवादी (Chartist) आन्दोलन सार्वजनिक उपहास, आन्तरिक संघर्षों लेकिन विशेष रूप से देश की समृद्धि, के कारण समाप्त हो गया।

मुक्त व्यापार आन्दोलन (Free Trade Movement)—सुधारवादी (Chartist) आन्दोलन के साथ-साथ एक अन्य आन्दोलन चल रहा था। मुक्त व्यापार के सिद्धान्त का क्रियान्वयन ब्रिटिश इतिहास में एक महान् घटना होनी चाहिए और पिछले 40 वर्षों से चल रहे आन्दोलन का चरमोत्कर्ष था। इंगलैण्ड अनेक शताब्दियों से जिस नीति का विश्व के अन्य देशों के साथ अनुकरण कर रहा था, उस नीति में पूर्णरूप से परिवर्तन हो गया था।

अनाज कानून (The Corn Laws)—अनाज शब्द का प्रयोग इंगलैण्ड में सामान्य रूप से गेहूँ एवं डबलरोटी की सामग्री के लिए किया जाता है। इंगलैण्ड दीर्घकाल से सुरक्षा में विश्वास करता था और सैकड़ों उत्पादित एवं कच्चे माल के रूप में वस्तुओं पर इंगलैण्ड में प्रवेश करते ही सीमा-शुल्क लगा दिया जाता था। उन समस्त संरक्षित वस्तुओं में एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण रुचि कृषि उत्पादों में थी। अनाज पर करारोपण करने वाले कानून संरक्षण की ब्रिटिश प्रणाली के मुख्य आधार थे। मुक्त व्यापार के प्रबल समर्थकों ने अनाज कानूनों की कटु आलोचना की। ऐसा विश्वास था कि अनाज कानूनों को समाप्त करने से इंगलैण्ड

का पतन हो जायेगा। दीर्घकाल तक भू-स्वामी वर्ग का राजनीतिक सत्ता पर पूर्ण नियन्त्रण था, इसलिए अनाज कानून अभेद्य थे। इंगलैण्ड के उत्पादक एवं व्यापारी इंगलैण्ड के विदेशी बाजारों के विस्तार की दृष्टि से, जिससे इंगलैण्ड में स्थित कारखाने चलते रहें और बेरोजगार श्रमिकों को जीविकोपार्जन का साधन मिल सके, मुक्त व्यापार के समर्थक थे। विदेशी अपने कृषि उत्पादों, अनाज, इमारती लकड़ी के विनिमय में इंगलैण्ड की वस्तुएँ खरीदना चाहते थे। सन् 1839 में एक सफल, अनेक देशों की यात्रा किये हुए युवा व्यापारी रिचर्ड कौब्देन के नेतृत्व में एक महान् उत्पादन केन्द्र मैनचेस्टर में अनाज कानून विरोधी संघ (Anti-Corn Laws League) का गठन किया गया। शीघ्र ही उसके अनुरूप एक उत्पादक, उन्नीसवीं शताब्दी के महान् लोकप्रिय वक्ताओं में एक 'जॉन ब्राइट' भी उसका सहयोगी बन गया। इस संघ की गतिविधियाँ व्यापारिक गतिविधियों के अनुरूप एवं गहन थीं। इसका अभियान अनुनय-विनय पर आधारित था। बहुत बड़ी संख्या में परिपत्र वितरित किये गये। विशाल जनसभाओं को आयोजित करके मुक्त व्यापार के लाभों की व्याख्या की गयी और देश की समृद्धि एवं सम्पन्नता के लिए मुक्त व्यापार की नीति का अनुसरण किया गया। सन् 1845 में आयरलैण्ड भीषण अकाल से ग्रस्त था। अधिकांश आयरिश जनता का मुख्य भोजन आलू था। आलू की फसल किसी रोग के कारण पूर्णतया खराब हो गयी थी। हजारों व्यक्ति भूख से मर गये। आयरलैण्ड की जनता की रक्षा के लिए अनाज कानून को निरस्त (रद्द) करना ही एकमात्र उपाय था जिससे अनाज का आयात किया जाये। अनाज ही आलू का विकल्प हो सकता था। सन् 1846 में अत्यधिक दबाव के कारण, ब्रिटिश प्रधानमन्त्री राबर्ट पील (Sir Robert Peel) ने कटु विरोध के उपरान्त अनाज कानूनों को निरस्त कर दिया। संरक्षण की समस्त प्रणाली के मुख्य आधार को समाप्त कर दिया गया। अगले दो दशक में शेष संरक्षणात्मक कानूनों को समाप्त कर दिया गया।

श्रम अधिनियम (Labour Law)—अनाज कानूनों को निरस्त करने के बाद दो दशक का काल शान्ति और परिवर्तन का था। कारखानों एवं खदानों में श्रमिकों के नियोजन को नियन्त्रित करने से सम्बन्धित अधिनियम सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। सन् 1833 के कारखाना अधिनियम में सेवा-शर्तों में सुधार किया गया था। अन्य अनेक उद्योगों में श्रमिक असुरक्षित थे और भयंकर अनुचित गतिविधियाँ प्रचलित थीं। खदानों में कार्यरत श्रमिकों की स्थिति का वास्तविक आकलन करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया गया। इस आयोग का विस्तृत विवरण (रिपोर्ट) सन् 1842 में प्रकाशित हुआ और प्रकाशित तथ्यों ने जनता को अत्यधिक उद्वेलित कर दिया। परिणामस्वरूप इस पर तत्काल कार्यवाही की गयी। इस विवरण में उल्लेख था कि 5, 6, अथवा 7 वर्ष के लड़के-लड़कियों को भूमिगत खदानों में नियोजित किया जाता था। पुरुषों एवं महिलाओं को घातक परिस्थितियों में काम करना पड़ता था। प्रतिदिन प्रत्येक श्रमिक को 12 अथवा 14 घण्टे काम करना पड़ता था। वे माल ढोने वाले पशुओं के अनुरूप थे। संकीर्ण एवं नीची छतों वाले मार्गों पर जहाँ सीधा खड़ा होना असम्भव था, गाड़ी खींचते थे। सन् 1842 में एक अधिनियम पारित किया गया जिसमें महिलाओं और

लड़कियों के नियोजन को प्रतिबन्धित कर दिया गया, एवं 10 वर्ष की आयु के लड़कों को सप्ताह में तीन दिन नियोजित करने की अनुमति थी।

आर्थिक दृष्टि से आश्रित वर्गों की पूर्ण सुरक्षा नीति का अनुसरण किया और व्यक्तिगत उद्योगों को नियन्त्रित करने, स्वस्थ, सौहार्द्रपूर्ण एवं मधुर वातावरण बनाने के लिए अनेक अधिनियम बनाये।

मताधिकार के विस्तार की माँग प्रायः होती रही। सन् 1866 में हाउस ऑफ कॉमन्स के नेता ग्लैडस्टोन ने सामान्य मताधिकार विधेयक सदन के पटल पर रखा। इस विधेयक के प्रति जनसमुदाय में अपेक्षित उत्साह का अभाव था। लेकिन सामान्य विधेयक की अस्वीकृति के अनपेक्षित परिणाम हुए। रूढ़िवादियों ने स्वयं अनुभव किया कि सुधार अनिवार्य हो गये थे। रूढ़िवादियों (Conservatives) ने स्वयं एक नया सुधार विधेयक सदंन के पटल पर रखा, जिसको स्वीकृति होने से पूर्व ही अत्यधिक क्रान्तिकारी बना दिया गया।

सन् 1867 का सुधार विधेयक (The Reform Bill of 1867)—अगस्त, 1867 में संसद द्वारा पारित विधेयक ने इंग्लैण्ड में मध्यवर्गीय शासन का अन्त कर दिया और इंग्लैण्ड को लोकतन्त्र बना दिया। बरो में समस्त गृहस्वामियों को मताधिकार दिया। एक वर्ष से रहने वाले एवं 10 पौंड अथवा 1 डालर प्रति सप्ताह किराया देने वाले समस्त किरायेदार भी मताधिकार के लिए अधिकृत थे। काउण्टी में 10 पौंड वार्षिक आय वाली सम्पत्ति की अपेक्षा 5 पौंड वार्षिक आय वाली भू-सम्पत्ति के स्वामियों को मताधिकार दिया गया। इस प्रकार बरो में श्रमिकों में श्रेष्ठ वर्ग के श्रमिक एवं काउण्टी में समस्त किरायेदार कृषक मतदान के अधिकारी हो गये। इस विधेयक के परिणामस्वरूप मतदाताओं की संख्या दुगुनी हो गयी। उल्लेखनीय है कि इस विधेयक पर विचार-विमर्श की अवधि में जॉन स्टुअर्ट मिल ने महिलाओं को मताधिकार देने का प्रबल समर्थन किया था। सदन ने इस प्रस्ताव को हास्यास्पद कहा था।

10 हजार से कम जनसंख्या वाले बरो केवल एक प्रतिनिधि संसद में भेज सकते थे। जनसंख्या पर आधारित प्रतिनिधित्व प्रणाली को स्वीकार कर लिया। 11 छोटे बरो प्रतिनिधि भेजने के लिए अधिकृत नहीं थे। 10 हजार से कम जनसंख्या वाले 35 बरों में प्रत्येक एक प्रतिनिधि चुन सकता था। बर्मिंघम, मैनचेस्टर, ग्लैसगो, लीड्स एवं लिवरपूल प्रत्येक अपने क्षेत्र से 3 प्रतिनिधि भेजने के लिए अधिकृत थे। लन्दन तथा स्काटलैण्ड स्थित विश्वविद्यालय भी प्रत्येक अपना एक प्रतिनिधि भेजने के लिए अधिकृत था। इस विधेयक ने मताधिकार के विस्तार को प्रोत्साहित किया। लोकप्रिय मन्त्रियों एवं मन्त्रिमण्डल की शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि हुई और राजतन्त्र की शक्ति का ह्रास हुआ।

उग्रवादी इस अधिनियम से सन्तुष्ट नहीं थे। कृषक श्रमिक अब भी मताधिकार से वंचित थे। डिजरैली ने स्वयं इस अधिनियम को 'अन्धेरे में छलाँग' (Leap in the Dark) कहा, जो निःसन्देह सफल सिद्ध हुआ। विद्वान लेखक ने सन् 1867 के सुधार विधेयक की

सन् 1832 के सुधार अधिनियम से तुलना करते हुए विचार व्यक्त किया, "सन् 1867 का सुधार अधिनियम सन् 1832 के सुधार विधेयक की अपेक्षा अधिक क्रान्तिकारी था।"

सुधार विधेयक 1884 (Reforms Act of 1884)—इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टन ने अपने द्वितीय प्रधान मन्त्रित्व काल में उन्नीसवीं शताब्दी का तीसरा सुधार विधेयक हाउस ऑफ कॉमन्स में सदन के पटल पर रखा और पारित करवा लिया। यह विधेयक लोकतन्त्र की दिशा में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण कदम था। निःसन्देह सन् 1867 के सुधार विधेयक ने निम्न मध्यवर्ग को मताधिकार प्रदान किया था। लेकिन बरो एवं काउण्टी के मध्य मताधिकार की दृष्टि से बहुत असमानता थी। काउण्टी की अपेक्षा बरो में मताधिकार अधिक व्यापक था। कृषि श्रमिकों को मताधिकार नहीं था। इस सुधार विधेयक का मुख्य उद्देश्य व्याप्त असमानता का उन्मूलन करना था। इस विधेयक में बरो के श्रमिकों के अनुरूप कृषि श्रमिकों को समान रूप से मताधिकार दिया गया। इस प्रकार समस्त श्रमिकों को, बिना ग्रामीण अथवा नगर के निवासी के भेदभाव के मताधिकार प्राप्त था। इस विधेयक के अनुसार ग्रामीण और नगर के 10 पौंड वार्षिक कर देने वाले प्रत्येक पुरुष को मताधिकार था। खानों में कार्यरत श्रमिकों को समान रूप से मताधिकार प्राप्त था। यह विधेयक स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड में समान रूप से प्रवृत्त था।

इस विधेयक के परिणामस्वरूप मतदाताओं की संख्या 30 लाख से बढ़कर 50 लाख हो गयी। कृषि श्रमिकों को मताधिकार प्राप्ति से श्रमिक संघ आन्दोलन शक्तिशाली हुआ। भू-स्वामियों ने भी कृषि श्रमिकों के प्रति उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार अभिव्यक्त किया।

पुनर्वितरण अधिनियम, 1885 (Redistribution Act, 1885)

इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टन ने सन् 1885 में पुनर्वितरण विधेयक ब्रिटिश संसद से पारित करवाया। इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान थे :

(1) 15,000 से कम जनसंख्या वाले बरों (नगरों) को 1 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार समाप्त कर दिया गया और उनको निकटवर्ती काउण्टी (ग्रामीण क्षेत्र) में सम्मिलित कर दिया गया। साथ ही 50,000 से कम जनसंख्या वाले बरो के प्रतिनिधियों की संख्या 2 से कम करके 1 कर दी।

(2) 1,50,000 से 1,65,000 तक जनसंख्या वाले बरो संसद के लिए 2 प्रतिनिधि भेजने के लिए अधिकृत थे।

(3) कामन्स सभा में कुल सदस्यों की संख्या में 12 सदस्यों की वृद्धि से सदस्यों की कुल संख्या 670 हो गयी। स्थानों के पुनर्विभाजन के परिणामस्वरूप बड़े नगरों के प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि हो गयी।

सन् 1911 का संसदीय सुधार अधिनियम (Parliamentary Reform Act of 1911)—सरकार ने सन् 1909 में सेना के व्यय में वृद्धि से सम्बन्धित बजट (विधेयक) निम्न

सदन कामन्स सभा के पटल पर प्रस्तुत किया और सदन ने स्वीकृति प्रदान कर दी। तदुपरान्त विधेयक के अनुमोदनार्थ लार्ड्स सभा (संसद का स्थायी उच्च सदन) भेजा गया। विधेयक से लार्ड्स सभा के धनी एवं सम्पन्न, विशेष रूप से भू-स्वामियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। अस्तु लार्ड्स सभा ने इस वित्त विधेयक को अस्वीकार कर दिया। अस्वीकृति से संवैधानिक विवाद उत्पन्न हो गया और जनता में निहित प्रभुसत्ता एवं लोकतन्त्र ख़तरे में पड़ गया। कामन्स सभा में जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि थे। अस्तु कामन्स सभा ही सर्वशक्तिमान थी। कामन्स सभा ने लार्ड्स सभा की शक्तियों को कम करके संवैधानिक संकट का निराकरण करने का निर्णय किया और संसदीय सुधार विधेयक तैयार किया। एडवर्ड सप्तम के निधन के उपरान्त सिंहासनारूढ़ जार्ज पंचम ने दोनों विरोधी पक्षों के मध्य विवाद समाप्त करने का असफल प्रयास किया। सन् 1910 में पुनः निर्वाचन हुए। श्रमिक दल एवं आयरलैण्ड के सदस्यों के सहयोग से कामन्स सभा ने 'संसदीय सुधार विधेयक' पारित कर दिया। लार्ड्स सभा ने विधेयक का अनुमोदन करने से मना कर दिया। प्रधानमन्त्री एस्किवथ (Asquith) के परामर्श पर सम्राट ने लार्ड्स सभा में सदस्यों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि का संकेत दिया। भयभीत होकर लार्ड्स सभा ने 18 अगस्त, 1911 को विधेयक का अनुमोदन कर दिया। इस विधेयक के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित थे :

(1) विधेयक के चरित्र अर्थात् प्रस्तुत विधेयक वित्त विधेयक है अथवा नहीं है, का निर्णय कामन्स सभा का अध्यक्ष करेगा।

(2) कामन्स सभा द्वारा पारित वित्त विधेयक लार्ड्स सभा के अनुमोदनार्थ भेजा जायेगा। एक माह तक लार्ड्स सभा द्वारा अस्वीकृति की स्थिति में वित्त विधेयक स्वतः पारित माना जायेगा और सम्राट के हस्ताक्षर के लिए भेजा जायेगा।

(3) अन्य विधेयकों को लार्ड्स सभा अधिकतम दो वर्ष तक रोक सकती थी। किसी विधेयक के तीन निरन्तर अधिवेशनों में कामन्स सभा द्वारा पारित हो जाने के उपरान्त स्वतः ही अनुमोदित माना जाता था और सम्राट के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता था। कामन्स सभा में विधेयक के द्वितीय वाचन की तिथि से तीसरी बार कामन्स सभा द्वारा पारित होने के मध्य दो वर्ष का समय व्यतीत होना आवश्यक था।

(4) कामन्स सभा का कार्यकाल 7 वर्ष से कम करके 5 वर्ष कर दिया गया।

(5) कामन्स सभा के सदस्यों का वेतन 400 पौंड वार्षिक सुनिश्चित किया गया।

इस प्रकार लार्ड्स सभा का निषेधाधिकार पूर्णरूप से समाप्त हो गया। पूर्णरूपेण लोकतन्त्र स्थापित हो गया। राष्ट्र की प्रभुसत्ता जनता में निहित थी, यह सुनिश्चित हो गया। संसद अर्थात् कामन्स सभा की सर्वोच्चता स्थापित हो गयी। रैम्जे म्योर ने विचार व्यक्त किया है, "सन् 1911 का संसदीय सुधार अधिनियम ब्रिटिश संविधान के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदानों में एक होना चाहिए।" ट्रेवेलियन ने इस अधिनियम के महत्व पर लिखा है, "ब्रिटेन अब वास्तविक अर्थ में पूर्णरूपेण लोकतन्त्र होने का दावा कर सकता है।"

जनप्रतिनिधि अथवा मताधिकार अधिनियम, 1918 (Representation of People Act or Franchise Act of 1918)—महिलाएँ दीर्घकाल से मताधिकार के लिए आन्दोलन कर रही थीं। प्रथम विश्व युद्ध काल में इन महिलाओं ने राष्ट्र की अमूल्य सेवा की थी। इनकी सेवाओं को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से जनप्रतिनिधि अधिनियम 1918 पारित करके 30 वर्ष की आयु की समस्त महिलाओं को पुरस्कृत किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत सम्पत्ति की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया एवं काउण्टी और बरों के मताधिकार को सम्मिलित कर दिया गया। इससे सीमित बहुल मतदान का सूत्रपात हुआ। विश्वविद्यालयों के संसदीय क्षेत्रों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। 21 वर्ष के प्रत्येक पुरुष को संसदीय मतदाता के रूप में स्वयं को पंजीकृत कराना आवश्यक था। 30 वर्षीय अथवा उससे अधिक की आयु की प्रत्येक महिला को पंजीकृत करवाना अनिवार्य था। महिलाओं की संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक थी। पुरुषों एवं महिलाओं को समान रूप से मताधिकार नहीं था। कामन्स सभा की कुल सदस्य संख्या भी 670 से बढ़कर 707 कर दी गयी। एकल सदस्य संसदीय क्षेत्र की पद्धति चलती रही। इंग्लैण्ड, वेल्स और स्काटलैण्ड में 70,000 की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि और आयरलैण्ड में 43,000 की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि का प्रावधान था। किसी भी व्यक्ति को 2 से अधिक मत का अधिकार नहीं था।

सन् 1928 का सुधार अधिनियम (Reform Act of 1928)—सन् 1928 के सुधार अधिनियम में पुरुषों एवं महिलाओं को समान स्तर पर कर दिया। 21 वर्षीय प्रत्येक महिला को पुरुषों के अनुरूप मताधिकार प्रदान किया। इस अधिनियम ने सार्वभौम वयस्क मताधिकार स्थापित किया और इंग्लैण्ड पूर्णरूप से लोकतान्त्रिक देश बन गया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Types Questions)

1. इंग्लैण्ड में सन् 1867 के सुधार अधिनियम की विवेचना कीजिये।
   Discuss the Reform Act of 1867 in England. (रायपुर, 1998)
2. इंग्लैण्ड में संसदीय सुधार की विवेचना कीजिये।
   Discuss Parliamentary Reforms in England. (अवध, 1991, 94)
3. इंग्लैण्ड में सन् 1832 के सुधार अधिनियम की पृष्ठभूमि और महत्व का वर्णन कीजिये।
   Discuss the background and the importance of Reform Act of 1832 in England. (अवध, 1998)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. सन् .... में हाउस ऑफ कामन्स की कुल सदस्य संख्या 658 थी—
   (क) 1810 (ख) 1812 (ग) 1815 (घ) 1818
2. जार्ज चतुर्थ ने .... तक इंग्लैण्ड में शासन किया—
   (क) 1810—1820 (ख) 1815—1825 (ग) 1820—1830 (घ) 1825—1835

3. सन् ………… में लगभग 100 अपराधों के लिए मृत्यु दण्ड समाप्त कर दिया गया—
(क) 1815 (ख) 1818 (ग) 1820 (घ) 1823
4. 26 जून, ………… को जार्ज चतुर्थ का देहान्त हो गया—
(क) 1825 (ख) 1827 (ग) 1830 (घ) 1835
5. सन् ………… में ब्रिटिश संसद ने दासता उन्मूलन विधेयक पारित कर दिया—
(क) 1832 (ख) 1833 (ग) 1834 (घ) 1835
6. 20 जून, ………… को इंग्लैण्ड के राजा विलियम चतुर्थ का निधन हो गया और उसकी 18 वर्षीय भतीजी विक्टोरिया सिंहासनारूढ़ हुई—
(क) 1837 (ख) 1838 (ग) 1839 (घ) 1840
7. सन् ………… में सुधारवादियों ने 12,86,000 व्यक्तियों के हस्ताक्षर वाला विशाल प्रार्थना-पत्र सरकार को दिया—
(क) 1835 (ख) 1839 (ग) 1842 (घ) 1848
8. सन् ………… का सुधार अधिनियम सन् 1832 के सुधार विधेयक की अपेक्षा अधिक क्रान्तिकारी था—
(क) 1848 (ख) 1867 (ग) 1884 (घ) 1902
9. सन् ………… का संसदीय सुधार अधिनियम ब्रिटिश संविधान के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदानों में एक होना चाहिए—
(क) 1885 (ख) 1892 (ग) 1911 (घ) 1918
10. जनप्रतिनिधि अथवा मताधिकार अधिनियम द्वारा कामन्स सभा की कुल सदस्य संख्या भी 670 से बढ़ाकर ………… कर दी गई—
(क) 680 (ख) 690 (ग) 700 (घ) 707

[उत्तर—1. (ग), 2. (ग), 3. (घ), 4. (ग), 5. (ख), 6. (क), 7. (ख), 8. (ख), 9. (ग), 10. (घ) ।]

19

इंग्लैण्ड की विदेश नीति

(सन् 1815-1870)

[BRITISH FOREIGN POLICY]

एकाकीपन की नीति (Policy of Isolation)—सन् 1815 में वाटरलू के युद्ध में नैपोलियन की घातक पराजय के बाद इंग्लैण्ड ने यूरोपीय राजनीति से पूर्णरूप से विरक्ति की नीति का अनुसरण किया। यूरोप के समस्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए उत्सुक थे। निःसन्देह इंग्लैण्ड के विदेशमन्त्री कैसलरे ने सन् 1815 से सन् 1822 तक यूरोप में शान्ति बनाये रखने के पवित्र उद्देश्य से अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ पूर्ण सहयोग किया। वह यूरोप की विभिन्न समस्याओं का समाधान युद्ध की अपेक्षा यूरोपीय शक्तियों के सम्मेलन द्वारा करना चाहता था। अस्तु उसने रूस, आस्ट्रिया और प्रशा के र ुयोग से चतुर्मुख संघ का गठन किया और सन् 1818 में फ्रान्स आरोपित क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान करने के उपरान्त इस संघ में सम्मिलित हो गया। इस प्रकार पंचमुख संघ (Quinque Partite or Alliance) अथवा नैतिक पंचराज्य (Moral Pentarchy) का आविर्भाव हुआ।

इस संघ पर प्रतिक्रियावादी, निरंकुशता के समर्थकों एवं यथास्थिति बनाये रखने अथवा निरंकुश राजतन्त्र के पुनर्स्थापन एवं लोकतान्त्रिक और उदारवादी प्रवृत्तियों के दमन के लिए प्रतिबद्ध शक्तियों का प्रभुत्व था। कैसलरे के इन चार शक्तियों से भिन्न विचार, अवधारणाएँ सिद्धान्त एवं मान्यताएँ थीं। उसकी उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक प्रवृत्तियों के प्रति सहानुभूति एवं सहृदयता थी। इस कारण वह लोकतान्त्रिक एवं उदारवादी उपद्रवों एवं विद्रोहों का दमन करने का कभी समर्थन नहीं करता था। परिणामस्वरूप उसने किसी देश के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करने की नीति का अनुसरण किया। उसका दृढ़ विश्वास था कि हमको किसी अन्य देश के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वास्तविक खतरे की स्थिति में इंग्लैण्ड उसका सामना करने के लिए तत्पर रहेगा। लेकिन मित्र राष्ट्रों के काल्पनिक खतरे में संघर्ष करने और अत्याचार करने वाले राष्ट्रों के समर्थन में कभी सहायता नहीं करेगा।

पीडमोन्ट, नेपल्स एवं पुर्तगाल में विद्रोहों का दमन करने के उद्देश्य से रूस के जार ने पंचमुख संघ के सम्मेलन का आग्रह किया। सन् 1820 में ट्रोप्पयू (Troppau) में सम्मेलन

हुआ। इसमें रूस, प्रशा एवं आस्ट्रिया ने घोषणा की कि "वे जनता के ऐसे सिद्धान्त को जो उनके राजा की शक्ति को कम करता हो, कभी मान्यता नहीं देंगे।" कैसलरे ने इस निष्कर्ष को अस्वीकार कर दिया और इसको विवेकहीनता का द्योतक कहा।

यूनान की समस्या (Problem of Greece)—रूस इंग्लैण्ड के हितों के प्रतिकूल भू-मध्यसागर पर पूर्ण नियन्त्रण करना चाहता था। तुर्की में अशान्ति एवं अव्यवस्था का साम्राज्य था। रूस, तुर्की की शक्ति को ध्वस्त कर देना चाहता था जबकि इंग्लैण्ड तुर्की को विनाश से बचाना चाहता था। तुर्की के ईसाई समुदाय के विरुद्ध दमन एवं अत्याचार निरन्तर बढ़ रहे थे। ईसाई समुदाय में अत्यधिक आक्रोश था। रूस और इंग्लैण्ड दोनों ही यूनान के ईसाई समुदाय की सशस्त्र सहायता करना चाहता थे, लेकिन पंचमुख संघ केवल रूस को ही अधिकृत करना चाहता था। सन् 1821 में यूनानवासियों ने तुर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। बाल्कन क्षेत्र में रूस, आस्ट्रिया का प्रतिद्वन्द्वी था, अस्तु आस्ट्रिया का मैटरनिख यूनान के विषय में रूस के हस्तक्षेप रोकने के लिए प्रतिबद्ध था। उसको कैसलरे का पूर्ण समर्थन मिला। अस्तु रूस को हस्तक्षेप करने से रोक दिया। तुर्की नें विद्रोह का दमन कर दिया। सन् 1822 में कैसलरे का देहान्त हो गया और लार्ड कैनिंग नया विदेशमन्त्री नियुक्त किया गया।

लार्ड केनिंग (Lord Canning)—कैनिंग एक उत्कृष्ट देशभक्त था। अपने देश का अधिकाधिक हित करना चाहता था। वह इंग्लैण्ड को एक गौरवशाली राष्ट्र के रूप में देखना चाहता था। वह इंग्लैण्ड को महाद्वीपीय विवादों से अलग रखना चाहता था और प्रबल इच्छा थी कि इंग्लैण्ड यूरोप का नेतृत्व करे। उसके विषय में एक विद्वान ने विचार व्यक्त किया है, "वह यूरोपीय की अपेक्षा द्वीपीय (अनुदार) अधिक था।"

कैसलरे के अनुरूप यह भी अन्य देशों के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की नीति का विरोधी था। मैरियट ने कहा है, "उसकी विदेश नीति अन्तर्राष्ट्रीय की अपेक्षा राष्ट्रीय अधिक थी और हस्तक्षेप नहीं करने के सिद्धान्त पर आधारित थी।" वुडवर्ड ने विचार व्यक्त किया है, "कैसलरे और कैनिंग दोनों का उद्देश्य समान था लेकिन उसको प्राप्त करने के लिए मार्ग जिनका उन्होंने अनुसरण किया, भिन्न-भिन्न थे।" वह सम्मेलनों (काँग्रेस) द्वारा शासन का आलोचक था, और पवित्र मैत्री संघ से उसको बहुत घृणा थी। उसका दृढ़ मत था कि पवित्र मैत्री संघ (Holy Alliance) से यूरोप में संवैधानिक शासन का अन्त हो जायेगा। वह चतुर्मुखी संघ (Concert of Europe) को यूरोप को जंजीरों से बाँधने वाला निरंकुश शासकों का संघ मानता था। आन्तरिक विषयों में राष्ट्र की स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थक एवं अन्य देश द्वारा हस्तक्षेप का कटु विरोधी था।

यूरोप में शक्ति सन्तुलन बनाये रखने के समर्थक कैनिंग का विचार था कि यह सदैव एक स्तर पर स्थिर नहीं रह सकता। परिस्थितिनुसार उसमें परिवर्तन आना स्वाभाविक है। यूरोप ने अपनी क्षतिपूर्ति के लिए अमेरिका का सहयोग प्राप्त करके सन्तुलन बनाये रखा। उसने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा, "मैंने पुराने विश्व के सन्तुलन का समाधान करके नये विश्व का आविर्भाव किया। वह अपनी नीति को जनसमुदाय के समक्ष अभिव्यक्त कर देता था। यद्यपि कैनिंग अनुदार दल का था, लेकिन प्रबुद्ध अनुदार एवं राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थक था, परन्तु कैसलरे के अनुरूप स्वतन्त्र विचारों वाला नहीं था।"

सन् 1823 में स्पेन की जनता ने अपने निरंकुश एवं अत्याचारी परन्तु निर्बल शासक फर्डीनेण्ड सप्तम के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर दिया और शासक ने यूरोपीय शक्तियों से सशस्त्र सहायता के लिए निवेदन किया। रूस, फ्रान्स एवं आस्ट्रिया फर्डीनेण्ड की सहायता करना चाहते थे। पंचमुख संघ के वेरोना में आयोजित अधिवेशन में इंग्लैण्ड की ओर से कैनिंग के प्रतिनिधि के रूप में वैलिंगटन ने भाग लिया। उसने विचार व्यक्त किया था, "इंग्लैण्ड की स्पेन की विद्रोही जनता के साथ कोई सहानुभूति नहीं थी। इंग्लैण्ड, क्रान्तिकारियों और जैकोबिन्स के मध्य कोई नहीं होगा। इंग्लैण्ड का दृढ़ विचार था, कि यूरोपीय देशों की जनता को सरकार के किसी भी रूप को , जिसको वे सर्वोत्कृष्ट समझते थे, स्वयं के लिए स्थापित करना चाहता था।" वैलिंगटन के विरोध के परिणामस्वरूप यूरोपीय शक्तियाँ संयुक्त रूप से सहायता नहीं कर सकीं, लेकिन फ्रान्स ने स्वयं ही फर्डीनेण्ड को पुनः सिंहासनारूढ़ कर दिया। कैनिंग फ्रान्स से अत्यधिक क्रुद्ध था और वह फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करना चाहता था, लेकिन समस्त यूरोप में अशान्ति के भय से शान्त हो गया। ट्रेविलियन ने विचार व्यक्त किया है, "यथार्थ में इस युद्ध के विनाशकारी परिणाम हुये होते।"

कैनिंग स्पेन में फ्रान्स के हस्तक्षेप को रोकने में असफलता से क्षुब्ध था और मैरियट के अनुसार, "पुराने स्पेन में असफल हुआ, कैनिंग ने नये की ओर ध्यान दिया और एक अन्य गोलार्द्ध में क्षतिपूर्ति की सामग्री की खोज की। दक्षिण अमेरिका स्थित स्पेन अधिकृत उपनिवेशों के साथ व्यापारिक गतिविधियों पर भी स्पेन का ही एकाधिकार था, लेकिन जनता के विद्रोह के कारण स्पेन का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त हो गया। इंग्लैण्ड ने परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए स्पेन अधिकृत दक्षिण अमेरिका स्थित उपनिवेशों के साथ अपनी व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार किया।

कैनिंग ने फ्रान्स को अपमानित करने के उद्देश्य से कूटनीतिज्ञ कुशलता से कार्य किया। उसने फ्रान्स के विदेशमन्त्री पोलिगनेक (Polignac) को इंग्लैण्ड बुलवाकर उससे दृढ़ निश्चय करवाया कि वह भविष्य में फ्रान्स को दक्षिण अमेरिका स्थित उपनिवेशों में किसी प्रकार की रुचि नहीं लेने देगा, इसके अतिरिक्त अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो को अपने विख्यात सिद्धान्त "अमेरिका अमेरिकावासियों के लिए है। हम दक्षिण अथवा उत्तरी अमेरिका में किसी यूरोपीय शक्ति का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकते हैं" की घोषणा करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया।

दक्षिण अमेरिका स्थित स्पेन के तथाकथित उपनिवेशों ने धीरे-धीरे स्वयं को स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर दिया था। मैक्सिको, कोलम्बिया एवं वोयनस एटीज के स्वतन्त्र होते ही सन् 1824 में इंग्लैण्ड ने सर्वप्रथम इनको स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता दे दी। इसी प्रकार सन् 1825 में इंग्लैण्ड ने पेरू, चिली एवं बोलेविया को भी स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता दे दी। इस प्रकार कैनिंग ने स्पेन के सन्दर्भ में अपनी असफलता का प्रतिशोध ले लिया था और स्पेन को दक्षिण अमेरिका स्थित अधिकृत उपनिवेशों से वंचित कर दिया था। भीषण युद्ध की आशंका से फ्रान्स और स्पेन इंग्लैण्ड के विरुद्ध कोई कार्यवाही करने में असमर्थ थे।

सन् 1807 में पुर्तगाल का युवराज नैपोलियन से भयभीत होकर पुर्तगाल अधिकृत उपनिवेश ब्राजील पलायन कर गया था। सन् 1816 में यही युवराज जान षष्टम् के नाम से

ब्राजील का शासक बन गया। वह ब्राजील से ही पुर्तगाल पर शासन करना चाहता था। सन् 1821 में पुर्तगाल में विद्रोह हो गया, जान षष्टम् को पुर्तगाल आना पड़ा और ब्राजील का शासन अपने पुत्र डान पेड्रो (Don Pedro) को दे दिया। सन् 1822 के अन्त में उसने ब्राजील को स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित करते हुए स्वयं को वैधानिक शासक घोषित कर दिया। डान पेड्रो के छोटे भाई डान मिगयुल (Don Miguel) ने फ्रान्स की सहायता करने का प्रयास किया लेकिन डान पेड्रो ने इंग्लैण्ड से सहायता की प्रार्थना की। सन् 1825 में ब्रिटेन ने ब्राजील को एक राष्ट्र के रूप में मान्यता दे दी।

सन् 1825 में पुर्तगाल के शासक जान षष्टम् का देहान्त हो गया। तब उसके पुत्र ब्राजील के शासक डान पेड्रो ने पुर्तगाल का शासन अपने हाथ में ले लिया लेकिन उसके छोटे भाई डान मिगयुल (Don Miguel) ने पुर्तगाल पर शासन करने का दावा किया। डान पेड्रो ने पुर्तगाल का शासन अपनी पुत्री डान मारिया (Donn Maria) के पक्ष में छोड़ दिया। डान मारिया ने पुर्तगाल को संविधान एवं वैधानिक शासन प्रदान किया। प्रतिक्रियावादी डान मिगयुल ने स्पेन की सहायता से सत्ता पर स्वयं अधिकार कर लिया लेकिन पुर्तगाल की जनता, इंगलैण्ड और फ्रान्स डान मारिया का समर्थन कर रहे थे। स्पेन की सैनिक सहायता के विरुद्ध लार्ड कैनिंग ने नौ-सैनिक बेड़ा लिस्बन भेज दिया। डान मिगयुल पराजित हो गया। डान मारिया पुनः सिंहासनारूढ़ हो गयी, और उसने संवैधानिक शासक के रूप में शासन किया। मैरियट ने विचार व्यक्त किया है, "कैनिंग के लिए हस्तक्षेप किसी अन्य द्वारा हस्तक्षेप को रोकना था।"

राबर्ट पील की विदेश नीति—राबर्ट पील द्वारा प्रधानमन्त्री का दायित्व ग्रहण करते समय इंगलैण्ड चीन के साथ युद्ध में व्यस्त था। रूस का अफगानिस्तान पर प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा था। इस कारण भारत स्थित ब्रिटिश साम्राज्य के लिए खतरा बढ़ रहा था। फ्रान्स के साथ भी ब्रिटेन के सम्बन्ध सामान्य नहीं थे। ब्रिटेन का अमेरिका के साथ सीमा विवाद युद्ध की स्थिति तक पहुँच गया था।

राबर्ट पील ने आक्रामक नीति की अपेक्षा मैत्री स्थापित करने की नीति का अनुसरण किया। सन् 1842 में चीन के साथ नानकिन (Nankin) की सन्धि द्वारा राबर्ट पील ने विवाद को समाप्त किया। अफगानिस्तान के साथ प्रथम भीषण युद्ध के उपरान्त अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मोहम्मद को मान्यता प्रदान करके दीर्घकालीन शान्ति स्थापित की। सन् 1842 में अमेरिका के साथ अशबर्टन (Ashburten) की सन्धि द्वारा मेन (Maine) की सीमा से सम्बन्धित दीर्घकालीन विवाद का समाधान किया। पश्चिम में कनाडा और अमेरिका के मध्य एक अन्य सीमा सम्बन्धी विवाद चल रहा था। सन् 1818 में यह निर्णय किया गया कि 49वीं समानान्तर रेखा (49th Parallel Line) को सीमा स्वीकार किया जाये। अमेरिका प्रशान्त महासागर के तट तक अपने नियन्त्रण का दावा करता था जबकि इंगलैण्ड कोलम्बिया नदी को सीमा बनाना चाहता था। सन् 1840 में अमेरिका ने अपनी माँग की अस्वीकृति की स्थिति में इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की चेतावनी दी। सन् 1846 में 'ओरेगन की सन्धि' (Treaty of Oregon) द्वारा 49वीं समानान्तर रेखा को सीमा स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार 30 हजार मील लम्बी सीमा का निर्णय हो गया।

प्रधानमन्त्री राबर्ट पील ने शान्तिप्रिय नीति में आस्था रखने वाले अपने सहयोगी विदेशमन्त्री एबर्डीन के सक्रिय सहयोग से शान्तिपूर्ण विदेशनीति का अनुसरण किया। मैरियट ने विचार व्यक्त किया है, "सर राबर्ट पील वालपोल के अनुरूप इंग्लैण्ड के सर्वाधिक महान् विधि मन्त्रियों में एक था।"

लार्ड जॉन रसेल (Lord John Rusell)—रसेल तटस्थता (Neutrality) की नीति का प्रबल समर्थक था। इटली ने नेपल्स एवं सिसली पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया लेकिन रसेल ने इसका कोई विरोध नहीं किया। निःसन्देह रसेल को डेनमार्क और पोलैण्ड के साथ सहानुभूति थी, लेकिन अपनी तटस्थता की नीति के कारण अपेक्षित सहायता नहीं दी।

सन् 1855 में इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि के रूप में विएना सम्मेलन में भाग लेकर रूस को काला सागर में नौ-सैनिक बेड़ा रखने के लिए सहमति व्यक्त कर दी लेकिन साथ में एक शर्त थी कि रूस द्वारा सैन्य-शक्ति की वृद्धि की स्थिति में फ्रान्स, आस्ट्रिया एवं इंग्लैण्ड, रूस के विरुद्ध संयुक्त कार्यवाही करेंगे। रूस द्वारा सेवेस्टोल के घेरा उठाने की अनुमति देकर रसेल ने गम्भीर भूल की थी। इसकी कामन्स सभा एवं मन्त्रिमण्डल ने कटु आलोचना की। परिणामस्वरूप उसने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया।

हेनरी जान टेम्पल विस्काउण्ट पामर्स्टन (Henry John Temple Viscount Palmerston)—उत्कृष्ट देशभक्त एवं राजनीतिज्ञ, गृहनीति में अनुदार लेकिन विदेश नीति में उग्रवादी पामर्स्टन राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि मानता था। विश्व शान्ति और यूरोप में शक्ति सन्तुलन का प्रबल समर्थक था। यद्यपि वह पवित्र गठबन्धन का कट्टर विरोधी था, लेकिन संवैधानिक रूप से स्वतन्त्रता प्राप्ति के इच्छुक नवोदित राष्ट्रों का सक्रिय सहयोगी था। अन्य राष्ट्रों में उदारवादी प्रवृत्तियों एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए विद्रोहों का दमन करने के उद्देश्य से अन्य राष्ट्रों द्वारा हस्तक्षेप का विरोधी था। रूढ़िवादी एवं प्रतिक्रियावादी मैटरनिख के साथ उसके सम्बन्ध कटु थे।

कैनिंग का अनुसरण करते हुए वह अपनी विदेश नीति के अपेक्षित तथ्यों को प्रस्तुत करके जनसमर्थन प्राप्त करता था। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में हस्तक्षेप करने एवं विवादों को राष्ट्रीय हितों के अनुरूप बनाने की विशिष्ट प्रवृत्ति थी। अत्याचार एवं निरंकुशता के विरुद्ध जनान्दोलनों एवं वैधानिक शासन की स्थापना का सक्रिय सहयोग एवं समर्थन करता था। निरंकुश शासकों के अत्याचारों का प्रबल विरोध करता था और उसने अनेक अवसरों पर महान् निरंकुश एवं क्रूर सम्राटों का अपमान भी किया। एक विद्वान ने विचार व्यक्त किया है, "यदि शैतान के कोई पुत्र है, वह निश्चित रूप से पामर्स्टन है।"

अपने अत्यधिक झगड़ालू स्वभाव के उपरान्त भी पामर्स्टन इंग्लैण्ड में लोकप्रिय था। वह देश के प्रत्येक व्यक्ति के अपमान को स्वयं का अपमान मानता था और उसका समुचित प्रतिशोध लेता था। साम्राज्ञी विक्टोरिया भी उसके स्वेच्छाचारी ढंग से कार्य करने की पद्धति से अत्यधिक अप्रसन्न थी। नीति निर्धारण के सम्बन्ध में साम्राज्ञी अथवा सहयोगियों से परामर्श नहीं लेता था। रैम्जे म्योर ने विचार व्यक्त किया है, "उसके मस्तिष्क की स्वतन्त्रता सर्वोच्च महत्व की थी। प्रायः वह बिना साम्राज्ञी अथवा अपने सहयोगियों के परामर्श के अपनी इच्छानुसार कार्य करता था।"

सन् 1855 में ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने त्याग-पत्र दे दिया और साम्राज्ञी विक्टोरिया ने पामर्स्टन को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। उसने सन् 1855 से सन् 1858 तक और सन् 1859 से सन् 1865 में निधन तक इस पद पर कार्य किया। यूनानी एवं रोमन कैथोलिक मतावलम्बी पवित्र धार्मिक स्थलों पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। फ्रान्स रोमन कैथोलिक अनुयायियों एवं रूस यूनानी कैथोलिक मतावलम्बियों का समर्थक था। तुर्की, फ्रान्स से सहायता के लिए निवेदन कर रहा था। रूस ने तुर्की के विभाजन पर इंग्लैण्ड के साथ सन्धि का असफल प्रयास किया। रूस ने तुर्की पर आक्रमण कर दिया। फ्रान्स, इंग्लैण्ड एवं आस्ट्रिया ने तुर्की को सशस्त्र सहायता की। सन् 1855 में पामर्स्टन के प्रधानमन्त्री बनने के उपरान्त मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेनाओं ने रूस को पराजित किया और पेरिस की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। पामर्स्टन एवं इंग्लैण्ड की यूरोप में प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ गयी।

पोलैण्ड की जनता रूस के निरंकुश, क्रूर एवं अमानवीय अत्याचारों से अत्यधिक त्रस्त थी। सन् 1863 में पोलैण्ड की जनता ने रूस के निरंकुश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। पामर्स्टन की पोलैण्ड के साथ पूर्ण सहानुभूति थी। प्रशा के चान्सलर बिस्मार्क ने रूस को सैन्य सहायता दी और रूस ने पोलेण्ड के विद्रोह का दमन कर दिया। तदुपरान्त बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को डेनमार्क के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित किया। पामर्स्टन ने केवल सहानुभूति व्यक्त की। प्रशा और आस्ट्रिया की संयुक्त सेनाओं ने डेनमार्क को पराजित किया। स्कैल्सिविग एवं होल्सटिन क्षेत्रों के अतिरिक्त डेनमार्क को विपुल धनराशि युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में देनी पड़ी।

चीन समुद्री डाकुओं के आतंक से त्रस्त था। सन् 1856 में चीन ने ब्रिटिश समुद्री डाकुओं से युक्त ब्रिटिश जलयान 'लोर्चा एरो' पकड़ लिया। पामर्स्टन ने चीन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और चीन को पराजित किया। चीन ने 40 लाख पौण्ड युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में दिये तथा भारत से अफीम खरीदने का वचन दिया। लेकिन कालान्तर में चीन ने इस सन्धि के प्रावधानों को मानने से इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड और फ्रान्स के नौ-सैनाध्यक्षों ने चीन में स्थित टाकू किले पर 25 जून, 1859 को आक्रमण कर दिया और 21 अगस्त, 1860 को आधिपत्य स्थापित कर लिया। सन्धि के लिए वार्ता का प्रस्ताव रखा गया लेकिन वार्ता के लिए प्रेपित चार ब्रिटिश नागरिकों की चीन ने धूर्ततापूर्वक हत्या कर दी। परिणामस्वरूप युद्ध की स्थिति से उत्तेजित ब्रिटिश सेना ने चीन के सम्राट के ग्रीष्मकालीन महल को जलाकर ध्वस्त कर दिया। अन्ततोगत्वा पेकिंग में सन्धि हुई, जिसमें पूर्व की सन्धि के प्रावधानों की पुष्टि की गयी।

चीन के अनुरूप जापान में भी व्यापार में वृद्धि और उसके संरक्षण हेतु इंग्लैण्ड तत्पर था। सन् 1862 में एक ब्रिटिश नागरिक की जापान में हत्या हो गयी। ब्रिटेन ने अपना नौ-सैनिक बेड़ा जापान भेजा। जापान ने क्षतिपूर्ति एवं जापान के बन्दरगाहों को व्यापार के लिए खोलने के आग्रह को स्वीकार कर लिया।

उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के मध्य दीर्घकालीन आन्तरिक विवादों के कारण अप्रैल, 1861 में सशस्त्र संघर्ष आरम्भ हो गया। फ्रान्स का शासक नैपोलियन तृतीय अमेरिका के

गृह युद्ध से प्रसन्न था। इंग्लैण्ड के कुछ व्यापारी व्यापारिक हितों के कारण अमेरिका को अपमानित करने के पक्ष में थे, लेकिन इंग्लैण्ड और अमेरिका के मध्य मधुर सम्बन्ध थे। इसी अवधि में दक्षिण अमेरिका के दो प्रतिनिधियों मैसन और स्लिडेल (Mason and Slidell) ने दक्षिणी राज्यों के संघ को इंग्लैण्ड और फ्रान्स से मान्यता प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रस्थान किया। लेकिन मार्ग में उत्तरी अमेरिका के राज्यों के कप्तान विल्कस ने इंग्लैण्ड के ट्रेन्ट जलयान से यात्रा कर रहे, उन दोनों प्रतिनिधियों को बन्दी बना लिया। इस घटना की इंग्लैण्ड के व्यापारी, सामन्त एवं शासक वर्ग एवं रूस तथा फ्रान्स ने कटु निन्दा की और बन्दी प्रतिनिधियों को मुक्त करने के लिए दबाव डाला। राष्ट्रपति लिंकन ने उन दोनों प्रतिनिधियों को मुक्त करके भावी युद्ध की सम्भावनाओं को समाप्त किया।

दक्षिणी अमेरिका राज्य संघ ने इंग्लैण्ड के बरकैनहुड स्थित 'लेयर्ड जलपोत निर्माण कम्पनी' से अपनी नौ-सेना में वृद्धि के उद्देश्य से, अलबामा (Albama) नाम के सशस्त्र जलपोत का निर्माण करवाया। इस जलयान ने दो वर्ष की अवधि में उत्तरी अमेरिका राज्य संघों के 76 जलपोतों को पकड़ा। अन्त में, उत्तरी अमेरिका का जलयान कियरसेज (Kearsage) ने 19 जून, 1864 को अलबामा को नष्ट कर दिया। उत्तरी अमेरिका ने इंगलैण्ड से अलाबामा द्वारा की गयी हानि की क्षतिपूर्ति की माँग की। पामर्स्टन के परामर्श पर विवाद पंच निर्णय को सौंप दिया। पंच निर्णय के अनुसार इंग्लैण्ड को 30 लाख पौण्ड का भुगतान क्षतिपूर्ति के रूप में करना पड़ा। लेकिन इंग्लैण्ड भीषण युद्ध से बच गया।वस्तुनिष्ठ प्रश्न सन् 1870 से 1914 तक—इस अवधि तक ब्रिटेन ने यूरोपीय विषयों के प्रति पूर्णरूप से एकाकीपन (Isolation) की नीति का अनुसरण किया। इस नीति को इंग्लैण्ड के सर्वोत्कृष्ट हित में माना जाता था। जब उद्देश्यों की प्राप्ति अवसरिक हस्तक्षेप से हो सकती है, सदैव यूरोपीय राजनीति में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन 19वीं शताब्दी के अन्त में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को भलीभाँति ज्ञात हो गया था कि गौरवशाली एकाकीपन की नीति का अनुसरण करना असम्भव हो गया था। सन् 1870 के उपरान्त यूरोपीय राजनीति में द्रुतगति से परिवर्तनों ने अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक नीति को अनिवार्य कर दिया था।

बिस्मार्क यूरोप में जर्मनी का नेतृत्व स्थापित कर चुका था। सन् 1871 से सन् 1890 तक बिस्मार्क यूरोपीय राजनीति का सर्वाधिक प्रबल व्यक्तित्व था। फ्रान्स को पराजित करके उसने फ्रान्स के लोहा एवं कोयला खनिजों के सर्वाधिक समृद्ध क्षेत्रों अलजैक एवं लौरेन के क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अस्तु उसको प्रतिशोधात्मक युद्ध (War of Revanche) की सदैव आशंका रहती थी। उसको ज्ञात था कि फ्रान्स निश्चित रूप से अपने क्षेत्र अलजैक एवं लौरेन वापस लेने का हर सम्भव प्रयास करेगा। परिणामस्वरूप उसने फ्रान्स को यूरोप की अन्य शक्तियों से अलग रखने का प्रयास किया। सन् 1872 में बिस्मार्क ने रूस, जर्मनी एवं आस्ट्रिया-हंगरी के तीन सम्राटों के संघ का गठन किया, जो सन् 1878 तक निरन्तर चलता रहा। सन् 1878 में बर्लिन काँग्रेस के अवसर पर, यह संघ रूस और आस्ट्रिया-हंगरी के मध्य मतभेदों के कारण विघटित हो गया। सन् 1878-79 में रूस और जर्मनी के मध्य सम्बन्ध कटु हो गये। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया और जर्मनी के मध्य सन् 1879

में द्वि-राष्ट्र सन्धि हुई। प्रारम्भ में इस सन्धि की अवधि 5 वर्ष थी, लेकिन हर पाँच वर्ष बाद सन् 1914 तक नवीनीकरण होता रहा। इस सन्धि का मुख्य प्रावधान था कि दोनों राष्ट्र रूस द्वारा किसी एक राष्ट्र के ऊपर आक्रमण की स्थिति में अन्य राष्ट्र उसकी सैन्य सहायता करेगा। सन् 1882 में इटली भी इस द्वि-राष्ट्र सन्धि में सम्मिलित हो गया और इसका स्वरूप त्रि-राष्ट्र सन्धि का हो गया।

इस अवधि में बिस्मार्क ने रूस के साथ मधुर एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखे। सन् 1881 में उसने तीन सम्राटों के संघ को पुनर्जीवित किया जो सन् 1887 तक चलता रहा। सन् 1887 में बुल्गारिया विवाद पर रूस और आस्ट्रिया के मध्य सम्बन्ध अत्यधिक कटु हो गये। अस्तु बिस्मार्क ने रूस के साथ सन् 1887 में पुनर्बीमा सन्धि (Reinsurance Treaty) की जो सन् 1890 तक चलती रही। सन् 1890 में बिस्मार्क के पद मुक्त होने के उपरान्त जर्मनी के सम्राट विलियम द्वितीय के आपत्तिजनक दृष्टिकोण के कारण पुनर्बीमा सन्धि विलुप्त हो गयी। सन् 1894 में रूस और फ्रान्स के परस्पर हितों के परिप्रेक्ष्य में फ्रान्स और रूस की सन्धि हुई। इस प्रकार आस्ट्रिया, जर्मनी और इटली एक ओर थे और रूस और फ्रान्स दूसरी ओर थे।

इस समय इंग्लैण्ड ने अनुभव किया कि यूरोपीय राजनीति में वह पूर्णरूप से एकाकी है। युद्ध की स्थिति में ब्रिटेन अत्यधिक विपत्तियों से ग्रस्त होगा। उसने जर्मनी के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय किया। साम्राज्ञी विक्टोरिया विलियम द्वितीय की नानी थी। यह भी चर्चा थी कि अंग्रेज जर्मनी से आये थे।अस्तु दोनों बहुत निकट थे। इसके अतिरिक्त अफ्रीका में इंग्लैण्ड और फ्रान्स के मध्य तीव्र प्रतिस्पर्द्धा के कारण अन्य कोई विकल्प नहीं था, लेकिन जर्मनी की ओर से अपेक्षित उत्तर नहीं मिला।

फशोदा काण्ड (Fashoda Incident)—सन् 1898 में फ्रान्स की सरकार ने मारचन्द (Marchand) को मध्य अफ्रीका पर नियन्त्रण करके पूर्वी तट तक पहुँचने के लिए भेजा था। उस समय अंग्रेज सूडान में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर रहे थे। नील नदी के तट पर स्थित फशोदा के स्थान पर मारचन्द ने फ्रान्स का ध्वजारोहण किया। ब्रिटिश अधिकारी किचनर को जब इस तथ्य की सूचना मिली, वह तत्काल उस स्थान पर गया और मारचन्द से वह स्थान छोड़ने का आग्रह किया। उसने किचनर के आग्रह को अस्वीकार कर दिया। विवाद बढ़ गया लेकिन दोनों में सद्बुद्धि आ गयी और दोनों ने इस विवाद का निर्णय अपनी-अपनी सरकारों पर छोड़ दिया। फ्रान्स के विदेश मन्त्री डेलकेसे (Delcasse) का ब्रिटिश समर्थक दृष्टिकोण था और ब्रिटिश प्रधानमन्त्री सैल्सबरी का समन्वयात्मक दृष्टिकोण था। अस्तु फशोदा विवाद का निर्णय सौहार्द्रपूर्ण ढंग से हो गया। सन् 1899 में फ्रान्स ने दोनों देशों के मध्य अन्य विवादों का शान्तिपूर्ण ढंग से समाधान करने के लिए आग्रह किया लेकिन इंग्लैण्ड ने कोई उत्सुकता नहीं व्यक्त की।

ब्रिटेन और जर्मनी (Britain and Germany)—इस समय चैम्बरलेन ब्रिटिश विदेश मन्त्री जर्मनी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहा था। सन् 1901 में साम्राज्ञी विक्टोरिया के निधन पर जर्मनी का सम्राट विलियम द्वितीय इंग्लैण्ड गया

और अनेक दिन ठहरा। विक्टोरिया के निधन पर गहन संवेदना व्यक्त की। उसने इंग्लैण्ड के जर्मनी के साथ परस्पर सम्बन्धों पर गर्वोक्ति व्यक्त की। परिणामस्वरूप उसको बहुत अधिक सम्मान दिया गया। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने मैत्री सन्धि का प्रस्ताव रखा लेकिन विलियम द्वितीय ने उत्तर दिया, "बर्लिन के लिए मार्ग वियाना के माध्यम से है।" परिणामस्वरूप जर्मनी के साथ मैत्री सम्बन्धों के लिए असफल प्रयासों के उपरान्त अन्य दिशाओं में मित्र खोजने के लिए प्रयास आरम्भ किये गये।

ब्रिटेन और जापान मैत्री सन्धि, 1902 (Anglo-Japanese Alliance)—जापान को निरन्तर स्पष्ट हो रहा था कि रूस को मंचूरिया से अपदस्थ करने के लिए सशस्त्र संघर्ष करना होगा। भावी संघर्ष का पूर्वानुमान करते हुए उसने अपनी सेना और नौ-सेना को शक्तिशाली बनाना आरम्भ कर दिया। जापान ने ब्रिटेन के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से सम्पर्क किया। रूस की दक्षिण दिशा में निरन्तर प्रगति से पेकिंग पर उसके प्रभुत्व स्थापित हो जाने की पूर्ण सम्भावना थी। इससे ब्रिटेन चिन्तित था। फ्रान्स द्वि-राष्ट्र मैत्री सन्धि के द्वारा रूस के साथ सम्बद्ध था। दोनों शक्तियाँ पेकिंग से यांग्त्से क्षेत्र में स्थित हांको तक रेलवे परियोजना पर कार्य कर रही थीं। इस क्षेत्र में ब्रिटेन के प्रबल हित निहित थे। अस्तु ब्रिटेन, फ्रान्स के सम्भावित दृष्टिकोण से भी भयभीत था। दक्षिण में रूस के प्रभाव के विस्तार की सम्भावनाओं ने इंग्लैण्ड को जापान के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिए विवश किया। इनका परिणाम सन् 1902 की ब्रिटेन-जापान मैत्री सन्धि था।

इस प्रकार इस सन्धि के द्वारा गौरवशाली एकाकीपन की नीति का उल्लंघन हुआ। यह मैत्री सन्धि सुदूर पूर्व के विषयों तक सीमित थी और इसका मुख्य उद्देश्य चीन और कोरिया की स्वतन्त्रता एवं क्षेत्रीय अखण्डता को सुरक्षित रखते हुए यथास्थिति बनाये रखना था। इस सन्धि में ब्रिटेन के चीन और जापान के चीन और कोरिया में विशेष हितों को मान्यता दी गयी थी। इसमें प्रावधान था कि यदि सन्धिकर्ता राष्ट्रों में एक इन निहित हितों की सुरक्षा में किसी अन्य शक्ति के साथ सशस्त्र युद्ध में व्यस्त था, अन्य सन्धिकर्ता राष्ट्र तटस्थ रहेगा और अपने प्रभाव का प्रयोग अन्य शक्तियों को अपने मित्र पर आक्रमण करने से रोकने के लिए करेगा। यदि दोनों मित्र राष्ट्रों में से एक पर एक से अधिक शक्तियाँ संयुक्त रूप से आक्रमण करती हैं, अन्य मित्र राष्ट्र तत्काल अपने युद्धग्रस्त मित्र की सशस्त्र सहायता करेगा। दोनों मित्र राष्ट्र संयुक्त रूप से युद्ध और शान्ति करेंगे। इस मैत्री सन्धि का प्रभावी काल 5 वर्ष था। इस सन्धि से जापान के हित एवं स्थिति सुरक्षित हो गयी। जापान के रूस के साथ युद्ध की स्थिति में अन्य कोई शक्ति इंग्लैण्ड के साथ युद्ध की सम्भावना से रूस के साथ सक्रिय सहयोग नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त जापान की विश्व में प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई, क्योंकि जापान के पहली बार समान स्तर पर विश्व की प्रमुख नौ-सैन्य एवं वाणिज्यिक शक्ति के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए थे। यह सन्धि रूस के लिए चुनौती थी।

मैत्रीपूर्ण सन्धि, 1904 (The Entente Cordiale)—इंग्लैण्ड केवल जापान के साथ सन्धि से सन्तुष्ट नहीं था। जर्मनी की ओर से खतरा निरन्तर बढ़ रहा था। अस्तु इंग्लैण्ड ने मित्रों की खोज के लिए प्रयास बढ़ा दिये। इंग्लैण्ड का सम्राट एडवर्ड सप्तम् का फ्रान्स के

प्रति अपूर्व स्नेह था, और जर्मनी से घृणा करता था। जर्मनी के सम्राट विलियम द्वितीय एडवर्ड सप्तम् को बूढ़ा मोर कहता था। सन् 1903 में एडवर्ड सप्तम् फ्रान्स गया और उसका हर स्थान पर भव्य स्वागत किया गया। वह फ्रान्स में स्वागत एवं सम्मान से बहुत प्रभावित था। बाद में फ्रान्स के राष्ट्रपति लौबेट एवं विदेशमन्त्री देलकैसे (Loubet and Delcasse) ने भी इंग्लैण्ड की यात्रा की। दोनों देशों के राजनीतिज्ञों के मध्य दीर्घकाल से लम्बित विवादों पर विचार-विमर्श हुआ। इन समस्त गतिविधियों के परिणामस्वरूप मैत्रीपूर्ण सन्धि के लिए सुखद एवं अनुकूल वातावरण बन गया था। सन् 1904 की दोनों देशों के मध्य मैत्रीपूर्ण सन्धि हो गयी, जो मात्र सन्धि ही नहीं थी, वरन् इसने दोनों देंशों के मध्य विवादों के मूल आधार को सदैव के लिए समाप्त कर दिया और भविष्य में दोनों देशों के मध्य सक्रिय सहयोग एवं अन्य राष्ट्रों के विरुद्ध विवादों में भी परस्पर एक-दूसरे का सक्रिय सहयोग और समर्थन बढ़ता रहा। दोनों ने एक-दूसरे के अन्य देशों में हितों को पूर्ण मान्यता दी और लम्बित विवादों का परस्पर वार्ता द्वारा समाधान कर लिया। समय के साथ-साथ दोनों देशों के मध्य परस्पर सम्बन्ध निरन्तर सुदृढ़ एवं प्रगाढ़ होते गये।

ब्रिटेन और रूस सम्मेलन, 1907 (Anglo-Russian Convention)—फ्रान्स की स्वयं के हितों के कारण प्रबल इच्छा थी कि रूस और इंग्लैण्ड के मध्य परस्पर समन्वय स्थापित हो जाये। फ्रान्स के विदेशमन्त्री ने इस दिशा में अथक प्रयास किया। सर एडवर्ड ग्रे सन् 1905 में तत्कालीन विदेशमन्त्री लार्ड लैण्ड्सडाउन (Lord Landsdowne) के त्याग-पत्र देने के बाद इंग्लैण्ड के नये विदेशमन्त्री बने। लार्ड ग्रे के विदेश मन्त्री बनने के समय देश जटिल काल से गुजर रहा था। उसने जटिल स्थितियों का अत्यधिक बुद्धिमत्ता, चातुर्य एवं कुशलता के साथ सामना किया। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड प्रथम विश्वयुद्ध में विजयी रहा। उसने इंग्लैण्ड और रूस के मध्य दीर्घकालीन लम्बित विवादों एवं समस्याओं का निराकरण एवं समाधान करके दोनों देशों के मध्य सौहार्द्रपूर्ण एवं मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अनवरत प्रयास किया। रूस और फ्रान्स के मध्य परस्पर सुखद मैत्री सम्बन्ध थे। सन् 1907 में इंग्लैण्ड और रूस के मध्य समझौता हुआ।

इस समझौते के द्वारा दोनों देशों ने अफगानिस्तान, तिब्बत एवं फारस से दीर्घकालीन लम्बित विवादों का निराकरण कर दिया। दोनों देशों ने तिब्बत के ऊपर चीन के आधिराज्य को स्वीकार कर लिया और दोनों देशों ने तिब्बत के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करने के प्रति अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त किया। रूस ब्रिटिश सरकार के माध्यम से अफगानिस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए सहमत हो गया। रूस ने अफगानिस्तान के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया। समझौते के प्रावधानों के विषय में अफगानिस्तान सरकार से कोई परामर्श नहीं किया गया था, अस्तु वह उस समझौते से अप्रसन्न था। इसी प्रकार रूस को फारस का उसका प्रभावी उत्तरी क्षेत्र दे दिया गया और रूस ने फारस के दक्षिणी भाग में इंग्लैण्ड के हितों को मान्यता दे दी। फारस के मध्य भाग पर वहाँ की स्थानीय सरकार का पूर्ण नियन्त्रण था। लार्ड ग्रे के प्रयासों से सन् 1904 की मैत्रीपूर्ण सन्धि (The Entente

Cordiale) सन् 1907 की त्रि-राष्ट्र मैत्रीपूर्ण सन्धि (The Triple Entente) में परिवर्तित हो गयी। ब्रिटेन और रूस के समझौते के विषय में आलोचना करते हुए विद्वानों ने कहा था कि फारस में इंग्लैण्ड ने अपने हितों का बलिदान करके रूस को लाभप्रद प्रावधान स्वीकार किये। ट्रेवेलियन ने इस समझौते के विषय में विचार व्यक्त किया है, "समझौता ही अपनी स्वयं की सुरक्षा की दृष्टि से एकमात्र युक्तिसंगत उपाय था।"

लार्ड ग्रे ने कोई निश्चित विदेश नीति निर्धारित नहीं की थी। वह तीन राष्ट्रों की सन्धि (Triple Alliance) का भी विरोधी नहीं था। वह तीन राष्ट्रों की सन्धि के देशों (Triple Alliance) और त्रि-राष्ट्र मैत्रीपूर्ण सन्धि के देशों के मध्य सामंजस्य चाहता था। उसका एक निश्चित उद्देश्य था जो उसकी समस्त भावी गतिविधियों में स्पष्ट दृष्टिगत होता है। वह इंग्लैण्ड के लिए मित्र प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध था। वह एकाकीपन की नीति का अनुयायी नहीं था। वह युद्ध नहीं चाहता था लेकिन उसकी नीति थी कि युद्ध की स्थिति में इंग्लैण्ड एकाकी नहीं रह जाये। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने निरन्तर कार्य किया।

रूस एवं फ्रान्स के प्रति लार्ड ग्रे के दृष्टिकोण की व्याख्या एवं मूल्यांकन की आवश्यकता है। दोनों देशों ने शिकायत की, यद्यपि इंग्लैण्ड उनके मित्र और सहयोगी होने का दावा करता है लेकिन जब कभी कोई अन्य शक्ति उन पर आक्रमण करती है, तब इंग्लैण्ड उनकी सहायतार्थ आने में आनाकानी करता है। लेकिन लार्ड ग्रे की नीति का बहुत बड़ा लाभ था और उसकी नीति यूरोप में शान्ति बनाये रखने के उद्देश्य से थी। उसने अपने राष्ट्र की सुरक्षा के लिए आवश्यकतानुसार नीति का अनुसरण करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रखा। इसका रूस और फ्रान्स पर अच्छा प्रभाव पड़ा। यदि ग्रे ने रूस और फ्रान्स को, जब कभी उनमें से किसी एक पर किसी अन्य देश का आक्रमण होता, सैन्य सहायता देने की वचनबद्धता व्यक्त की होती, तब दोनों देशों को जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी के साथ किसी भी नगण्य विवाद पर सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रोत्साहन मिलता। सन् 1914 की घटनाओं से यह तथ्य स्पष्ट है। पहले रूस और फ्रान्स दोनों ने सर्बिया का समर्थन करने में संकोच किया लेकिन जब उनको स्पष्ट रूप से ज्ञात हो गया कि इंग्लैण्ड उनकी सहायता के लिए आयेगा, रूस ने तत्काल सर्बिया के समर्थन की घोषणा कर दी और इस प्रकार सन् 1914 का प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। ग्रे के संकोचशील एवं अनिश्चित दृष्टिकोण ने एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति की अन्यथा विश्वयुद्ध बहुत पहले आरम्भ हो गया होता।

लार्ड ग्रे एवं मोरक्को संकट (Grey and Morocco Crisis)—सन् 1905-06, 1908 और 1911 में मोरक्को समस्या के प्रति लार्ड ग्रे के दृष्टिकोण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह जर्मनी के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के लिए कृत संकल्प था और वह किसी भी स्थिति में फ्रान्स को पराजित नहीं होने देगा। मोरक्को में फ्रान्स अपनी गतिविधियों का संचालन करने के लिए पूर्णरूप से स्वतन्त्र था, इस तथ्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता इंग्लैण्ड पहले ही व्यक्त कर चुका था। सन् 1905 में टैनगियर में विलियम द्वितीय ने घोषणा की कि मोरक्को

में जर्मनी की गहन रुचि थी। लार्ड ग्रे के समक्ष विकट समस्या थी। द्वि-राष्ट्र मैत्री सन्धि के प्रावधानों के अनुसार इंग्लैण्ड का मोरक्को विवाद में फ्रान्स की अपेक्षित सहायता करने में संकोच करना न्यायोचित नहीं था। जर्मनी ने फ्रान्स से अपने विदेशमन्त्री डेलकैसे (Delcasse) को सेवा मुक्त करने का निर्देश दिया और डेलकैसे को पद मुक्त कर दिया गया। जर्मनी ने मोरक्को विवाद को एक सम्मेलन को भेजने की माँग की, जिसको फ्रान्स ने स्वीकार कर लिया। फ्रान्स को इंग्लैण्ड से अपेक्षित सैन्य सहायता की कोई आशा नहीं थी, अस्तु उसने जर्मनी के समक्ष समर्पण किया था।

अब तक इंग्लैण्ड के दृष्टिकोण ने फ्रान्स में कुछ सन्देह उत्पन्न कर दिया था, लेकिन जब फ्रान्स के राजदूत ने ग्रे के समक्ष जर्मनी द्वारा अकारण फ्रान्स पर आक्रमण की सम्भावना को व्यक्त किया, ग्रे ने ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की सहमति से फ्रान्स और ब्रिटिश सैन्य अधिकारियों के मध्य "सैन्य वार्तालाप" (Military Conversation) आयोजित करने का प्रस्ताव रखा। ग्रे की इस कार्यवाही की उसके विरोधियों ने कटु आलोचना की। यह कहा जाता था कि सैन्य अधिकारियों की वार्ता से सैनिक सन्धि और बाद में भीषण युद्ध के लिए मार्ग प्रशस्त होगा। यह विचार भी व्यक्त किया गया, कि ग्रे ने फ्रान्स को किसी प्रकार की सैन्य सहायता देने का स्पष्ट आश्वासन नहीं दिया लेकिन उसकी गतिविधियों से स्पष्ट ज्ञात होता था कि जर्मनी द्वारा फ्रान्स पर आक्रमण की स्थिति में इंग्लैण्ड फ्रान्स की सहायता करने के लिए कृत संकल्प था। ग्रे ने घोषणा की कि कोई भी सरकार "सैन्य अधिकारियों की वार्ता" (Staff Talks) द्वारा किसी विशेष नीति का पालन करने के लिए बाध्य नहीं थी यदि इंग्लैण्ड के हितों की ऐसी अपेक्षा है, तब इंग्लैण्ड किसी वचन अथवा नीति से बाध्य नहीं था।

जनवरी, 1906 में "सैन्य अधिकारियों की वार्ता" हुई। मोरक्को विवाद का निर्णय करने के लिए जब एल्जिर्स (Algeeiras) में सम्मेलन हुआ, ग्रे ने फ्रान्स का समर्थन किया। सम्मेलन के अवसर पर ग्रे के दृष्टिकोण के महत्व को ट्रेवेलियन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है, "जर्मनी ने सन् 1904 में इंग्लैण्ड और फ्रान्स के विवादों के लैन्सडाउन द्वारा समझौते का विरोध किया था और फ्रान्स को यह दिखाना चाहता था कि वह इंग्लैण्ड पर निर्भर नहीं रह सकता, ग्रे ने उसको दर्शाया कि वह उस पर निर्भर रह सकता था। यह मैत्री सन्धि के परीक्षण का समय था।" यद्यपि इंग्लैण्ड ने फ्रान्स का समर्थन किया, ग्रे ने ऐसा प्रभाव डालने का प्रयास किया कि इंग्लैण्ड बाध्य नहीं था। लेकिन जर्मनी ने ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया था कि इंग्लैण्ड फ्रान्स पर उसके कठिन समय में आक्रमण करेगा।

सन् 1908 में कैसाबियान्का (Casabianca) घटना में ग्रे ने जर्मनी के विरुद्ध फ्रान्स का समर्थन किया था। सन् 1911 में मोरक्को में फ्रान्स के हस्तक्षेप का जर्मनी ने विरोध किया था। मोरक्को का सुल्तान एक नये दावेदार के उद्भव के कारण अपनी सुरक्षा के लिए भयभीत था। फैज में यूरोपवासियों की सुरक्षा करने के नाम पर फ्रान्स ने अपनी सशस्त्र सेना मोरक्को की राजधानी भेजी। जर्मनी के विदेशमन्त्री ने फ्रान्स की इस कार्यवाही का विरोध किया।

पेरिस पर दबाव बनाते हुए उसने जर्मन तोप वाली नाव पैन्थर (The Panther) भेज दी। जर्मनी ने जब तक उसके हितों की पूर्ण सुरक्षा नहीं हो जाती, अपने जलयान को वापस बुलाने से मना कर दिया। सर एडवर्ड ग्रे जर्मनी के दृष्टिकोण से अत्यधिक क्षुब्ध था। उसने पैन्थर नौ-सैनिक जलयान के गमन को यथास्थिति पर अकारण आक्रमण की संज्ञा दी। ग्रे ने घोषणा की, "हमारा मत था कि जर्मन जलयान अगादिर भेजने से नई स्थिति उत्पन्न हो गयी। भावी विकास, जितना ब्रिटिश हितों को अब तक प्रभावित किया, उसकी अपेक्षा अधिक प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकते हैं। हम किसी नई व्यवस्था को, जो हमारे बिना हो सकती है, मान्यता नहीं दे सकते हैं।" उसने फ्रान्स के राजदूत से कहा, "ब्रिटिश सरकार जर्मनी, फ्रान्स, स्पेन और इंगलैण्ड के मध्य विचार-विमर्श आवश्यक समझती है।" यद्यपि जर्मनी का व्यवहार उत्तेजनात्मक था लेकिन सन् 1911 में मैन्शन हाउस में लायड जार्ज (Llyod George) के भाषण ने जर्मनी को स्पष्ट कर दिया था कि इंगलैण्ड सशस्त्र संघर्ष करेगा यदि उसके हितों एवं सम्मान पर आक्रमण किया गया। इन परिस्थितियों में जर्मनी ने न्यायोचित व्यवहार करना आरम्भ कर दिया।

ग्रे और जर्मनी (Grey and Germany)—ग्रे की किसी भी दृष्टि से जर्मनी के साथ शत्रुता थी, यह कहना अनुचित है। 3 अगस्त, 1914 को हाउस ऑफ कॉमन्स में उच्च स्वर से घोषणा, "मैं युद्ध से घृणा करता हूँ, मैं युद्ध से घृणा करता हूँ, मैं युद्ध से घृणा करता हूँ"। उसकी मानसिक स्थिति एवं भावनाओं को अभिव्यक्त करती है। जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की उसकी लेश मात्र भी इच्छा नहीं थी। वह किन्हीं दो देशों के मध्य विवादों के मूल कारणों को तत्काल समाप्त करने के लिए तत्पर रहता था। जर्मनी के सन् 1912 से सन् 1914 तक राजदूत लिकनोव्सिकी (Lichnowsky) ने ग्रे की विदेश नीति की सर्वोत्कृष्ट व्याख्या की है, "हमको पृथक् करने का उसका कभी भी उद्देश्य नहीं था, वरन् वह अपनी सर्वोच्च शक्ति के साथ वर्तमान समुदाय में हमको भागीदार बनाना चाहता था। दोनों विरोधी दलों को निकट लाने के उद्देश्य से वह जर्मनी के साथ मैत्रीपूर्ण पुनर्मेल एवं अनुकूल वातावरण बनाना चाहता था।" फ्रान्स और रूस मैत्री सन्धि के देशों एवं त्रि-राष्ट्र सन्धि के मध्य मतभेदों एवं विवादों को सदैव बनाये रखने के लिए ही ग्रे ने जीवनपर्यन्त कार्य किया। यह दुर्भाग्य ही था कि विलियम द्वितीय ने अपने राजदूतों की भावनाओं, विचारों एवं परामर्शों को सदैव अस्वीकार किया और सेना और नौ-सेना विशेषज्ञों के परामर्शों के अनुरूप कार्य किया।

एडवर्ड ग्रे ने सन् 1906 के उपरान्त जर्मनी और इंगलैण्ड के मध्य विवादों के समस्त कारणों को समाप्त करने का हर सम्भव प्रयास किया। उसने जर्मन सरकार को स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटेन की नौ-सेना की सर्वोच्चता हर कीमत पर बनाये रखी जायेगी, लेकिन वह जर्मनी के साथ दोनों देशों की नौ-सेना में आनुपातिक कमी करने के उद्देश्य से समझौता करने के लिए तत्पर था। दुर्भाग्य से जर्मनी का सम्राट विलियम द्वितीय ब्रिटेन के प्रत्येक प्रस्ताव को उसकी दुर्बलता मानता था। जर्मनी अपने प्रतिद्वन्द्वियों को भयभीत एवं आतंकित करके शान्ति

बनाये रखने में विश्वास करता था। जर्मनी का विश्वास था कि वह इंग्लैण्ड को आत्मसमर्पण करने के लिए आतंकित कर सकता था। यह उसका भ्रम एवं भूल थी। निःसन्देह इंग्लैण्ड शान्ति बनाये रखने का प्रबल समर्थक था, लेकिन अपनी सुरक्षा और स्वाभिमान के मूल्य पर शान्ति बनाये रखने के लिए तत्पर नहीं था।

जब तक ब्रिटेन, फ्रान्स और जर्मनी के मध्य युद्ध की स्थिति में तटस्थ रहने का वचन नहीं देता, नौ-सेना में किसी भी प्रकार की सुविधा देने से विलियम द्वितीय ने स्पष्ट मना कर दिया। बिना स्पष्ट आश्वासन के वह अपनी नौ-सेना को कम करने के लिए तत्पर नहीं था। विलियम द्वितीय ने विचार व्यक्त किया था कि वह नौ-सैनिक बेड़े के मूल्य पर मधुर सम्बन्ध नहीं रखना चाहता था। सन् 1912 में इन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में वार्ता भंग हो गयी। ग्रे जर्मनी के साथ स्वस्थ एवं मधुर सम्बन्ध रखने के उद्देश्य से फ्रान्स का बलिदान करने के लिए तत्पर नहीं था।

सन् 1912 में नौ-सैनिक बेड़े के सन्दर्भ में वार्ता के विफल हो जाने के बाद भी ग्रे हतोत्साहित नहीं हुआ और इंग्लैण्ड एवं जर्मनी के मध्य उपयुक्त समझौते के लिए प्रयास करता रहा। जून, 1914 में बर्लिन-बगदाद रेलवे और पुर्तगाल के उपनिवेशों, यदि पुर्तगाल उनको छोड़ता है, के भाग्य के सम्बन्ध में मैत्रीपूर्ण समझौता हो गया। समझौते से संघर्ष टल गया और दोनों देश निकट आ गये।

ग्रे और बाल्कन युद्ध, 1912-13 (Grey and the Balkan War)—ग्रे ने बाल्कन क्षेत्र स्थित विवाद को सीमित करने के लिए अथक प्रयास किया। ग्रे की अध्यक्षता में लन्दन में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया और वह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की दिशा में प्रयोग की सफलता से बहुत प्रसन्न था। लेकिन उसने स्थिति के साथ बहुत सहृदयतापूर्वक व्यवहार किया, परिणामस्वरूप विद्वानों का विश्वास है कि विवाद यूरोप के अन्य भागों तक फैल गया। यह यूरोप के हित में नहीं था, क्योंकि यूरोप उस समय बारूद के ढेर पर खड़ा था।

सन् 1914 में साराजेवो में आस्ट्रिया-हंगरी के उत्तराधिकारी आर्कड्यूक फ्रान्सिस फर्डीनेण्ड (Archduke Francis Ferdinand) की हत्या के उपरान्त ग्रे ने विवाद के समाधान के लिए एक सम्मेलन आयोजित करने का परामर्श दिया था। यदि विलियम द्वितीय स्पष्ट रूप से मना करने की अपेक्षा, ग्रे के परामर्श से सहमत हो गया होता, विश्वास किया जाता है, महान् युद्ध टल सकता था। विलियम द्वितीय की असहमति के गम्भीर परिणाम हुए।

निःसन्देह ग्रे की विदेश नीति ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में इंग्लैण्ड की स्थिति को अत्यधिक सुदृढ़ किया था। अब इंग्लैण्ड के विश्वसनीय मित्र थे। ग्रे की विदेश नीति के कारण युद्ध कुछ समय के लिए टल गया था। दुर्भाग्य से शक्तिशाली शक्तियाँ उसके विरुद्ध कार्य कर रही थीं। परिणामस्वरूप सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया और लार्ड ग्रे के अथक प्रयासों के उपरान्त भी इंग्लैण्ड युद्ध में फँस गया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. 1907 के इंग्लैण्ड-रूस समझौते के उद्‌गम, स्वरूप एवं महत्व का विवरण लिखिये।
Discuss origin, character and importance of the Anglo-Russian Pact of 1907.
(बिलासपुर, 1997)
2. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिये जिनके फलस्वरूप 1902 की आंग्ल-जापानी सन्धि सम्पन्न हुई।
Discuss the circumstances leading to the conclusion of the Anglo-Japanese Alliance of 1902. (बिलासपुर, 2000)
3. 1904 के आंग्ल-फ्रान्सीसी समझौते के कारण और स्वरूप को रेखांकित कीजिये और इसके महत्व पर प्रकाश डालिये।
Discuss the causes and character of Anglo-France Alliance of 1904.
(गोरखपुर, 1989)
4. 1901 से 1914 के मध्य ब्रिटिश नीति की विवेचना कीजिये।
Discuss British Foreign Policy between 1901 to 1914. (गोरखपुर, 1995, 97)
5. त्रिपक्षीय समझौता से आप क्या समझते हैं ? उसने बिस्मार्क की विदेश नीति की उपलब्धियों को कैसे ध्वस्त कर दिया ?
What do you understand by Triple Entente ? How did it ruin the achievements of policy of Bismark ? (मेरठ, 1993; कानपुर, 1994, 2000)
6. इंग्लैण्ड की शानदार पृथकत्व की नीति से आप क्या समझते हैं ? उसे क्यों और कैसे छोड़ना पड़ा ?
What do you understand by the British Policy of Isolatian ? Why and how it was given up ? (मेरठ, 1994)
7. 1890-1914 के मध्य अंग्रेज-जर्मन सम्बन्धों का विबरण दीजिये।
Give an account of the Ango-German relations from 1890-1914.
(गढ़वाल, 1999)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. इंग्लैण्ड के विदेश मन्त्री कैसलरे ने सन् ………… तक यूरोप में शान्ति बनाये रखने के उद्देश्य से अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ पूर्ण सहयोग किया—
(क) 1810—1820 (ख) 1815—1820 (ग) 1815—1822 (घ) 1820—1830
2. सन् ………… में कैसलरे के देहान्त के बाद लार्ड कैनिंग इंग्लैण्ड का विदेश मन्त्री बना—
(क) 1820 (ख) 1821 (ग) 1822 (घ) 1823
3. सन् ………… में ब्रिटेन ने ब्राजील को एक राष्ट्र के रूप में मान्यता दे दी—
(क) 1820 (ख) 1825 (ग) 1830 (घ) 1835
4. सन् ………… में चीन के साथ नानकिन की सन्धि द्वारा राबर्ट पील ने विवाद को समाप्त किया—
(क) 1840 (ख) 1841 (ग) 1842 (घ) 1843
5. सन् ………… में ओरेगन की सन्धि द्वारा 49वीं समानान्तर रेखा को सीमा स्वीकार कर लिया—
(क) 1845 (ख) 1846 (ग) 1847 (घ) 1848

6. साम्राज्ञी विक्टोरिया ने सन् ………… में पामर्स्टन को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया—
(क) 1854 (ख) 1855 (ग) 1856 (घ) 1857
7. विख्यात ब्रिटेन-जापान मैत्री सन्धि सन् ………… में हुई—
(क) 1900 (ख) 1901 (ग) 1902 (घ) 1904
8. सन् ………… में ब्रिटेन और फ्रान्स के मध्य मैत्रीपूर्ण सन्धि हुई—
(क) 1904 (ख) 1905 (ग) 1906 (घ) 1907
9. सन् ………… में इंग्लैण्ड और रूस के मध्य समझौता हुआ—
(क) 1905 (ख) 1906 (ग) 1907 (घ) 1908
10. सन् ………… में कैसाबियान्का घटना में ग्रे ने जर्मनी के विरुद्ध फ्रान्स का समर्थन किया था—
(क) 1906 (ख) 1907 (ग) 1908 (घ) 1909

[उत्तर—1. (ग), 2. (ग). 3. (ख), 4. (ग), 5. (ख). 6. (ख), 7. (ग), 8. (क). 9. (ग), 10. (ग)।]

20

यूरोपीय शक्तियाँ एवं ओटोमन साम्राज्य

(सन् 1815-1914)

[EUROPEAN POWERS AND OTTOMAN EMPIRE]

ओटोमन साम्राज्य से विशाल तुर्की साम्राज्य का बोध होता है। इसकी स्थापना औथमैन (Othman) अथवा ओस्मान (Osman) नामक एक तुर्क ने की थी। उन्नीसवीं शताब्दी में तुर्की साम्राज्य में यूरोप का समस्त बाल्कन प्रायद्वीप सम्मिलित था। तुर्क अपने सत्ता के चरमोत्कर्ष काल में समस्त बाल्कन क्षेत्र एशिया माइनर, सीरिया, मैसोपोटामिया, अरब, मिस्त्र और अफ्रीका के समस्त उत्तरी तट पर शासन करते थे। सन् 1699 की कार्लोविट्ज (Karlowitz) की सन्धि के द्वारा ओटोमन साम्राज्य के विघटन का उचित ढंग से वर्णन किया जा सकता है। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया, जो अगली दो शताब्दियों तक चलती रही, का प्रारम्भिक चरण था। इस सन्धि से हंगरी तुर्की साम्राज्य से निकल गया था। बाल्कन तुर्की भाषा का एक.शब्द है और इसका अर्थ पर्वत शृंखला है और राजनीतिक भूगोल की दृष्टि से इस शब्द का प्रयोग डैन्यूब नदी और एजियन सागर के मध्य स्थित समस्त पहाड़ी क्षेत्र के लिए होता था। पूर्व ऐतिहासिक काल से यह क्षेत्र विभिन्न जातियों का संगम स्थल था। इस क्षेत्र में यूनानी, सर्ब, बुल्गुर और अल्बेनियावासी थे। रूमानिया यद्यपि डैन्यूब नदी के उत्तर में स्थित है, परन्तु इसे बाल्कन राज्यों में सम्मिलित करना अधिक सुविधाजनक है। बाल्कन राज्यों के अधिकांश निवासी ईसाई थे। अनेक शताब्दियों तक मुस्लिम शासकों ने ईसाई जनसंख्या पर शासन किया। मुसलमानों ने जिन जातियों पर विजय प्राप्त की थी, उनके प्रति अपूर्व घृणा थी। तुर्कों ने कभी भी विभिन्न जातियों को परस्पर सम्मिश्रित करने अथवा एक ईकाई में परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया। ये ईसाई धर्मावलम्बी अनेक शताब्दियों तक तुर्कों के क्रूर, पाशविक एवं बर्बर शासन के अधीन नारकीय जीवन व्यतीत करते रहे। उन्होंने असहाय स्थिति का अनुभव किया और उनके मन में अत्यधिक घृणा एवं दुर्भावना थी। उन्होंने कभी भी अपनी इस स्थिति के प्रति सहमति व्यक्त नहीं की और केवल मुक्ति के क्षणों की

उत्सुकता से प्रतीक्षा की। यद्यपि तुर्की शासन धार्मिक दृष्टि से असहिष्णु नहीं था, परन्तु यह शासन पूर्णतया अयोग्य एवं प्रगतिहीन था और प्रायः यह शासन निरंकुश एवं बर्बर हो जाता था।

उन्नीसवीं शताब्दी की यूरोपीय समस्याओं में सम्भवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या पूर्वी समस्या थी। सारांश में यह समस्या तुर्की के क्रमिक पतन, रूस के विस्तारवादी कार्यक्रमों, आस्ट्रिया द्वारा स्वयं को बचाने के अन्तिम प्रयासों तथा इंग्लैण्ड द्वारा अपने उपनिवेशों की ओर जाने वालों मार्गों को बन्द करने के प्रयासों, सर्व स्लाववाद (Pan Slavism) और सर्व-जर्मनवाद (Pan Germanism) के निरन्तर संघर्षों का सम्मिलित परिणाम थी। मिलर के शब्दों में, "पूर्वी समस्या को यूरोप से तुर्की साम्राज्य के क्रमशः विलोपन द्वारा रिक्तता को भरने की समस्या के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।" मध्यकालीन युग में जब इस्लाम धर्म अपने प्रसार की चरम सीमा पर था, तुर्की के शासकों ने पूर्वी यूरोप के विशाल भू-भाग, बाल्कन के नाम से विदित समस्त क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। यह क्षेत्र अत्यधिक पिछड़ा हुआ था और इसके निवासी रूढ़िवादी चर्च के अनुयायी निर्धन कृषक थे। आरम्भ में तुर्की शासन बहुत उदार एवं सहिष्णु था। परिणामस्वरूप 200 वर्षों तक इस क्षेत्र में कोई समस्या नहीं हुई। स्थानीय जनता और शासक वर्ग के संयुक्त प्रयासों से इस क्षेत्र में असाधारण कृषि उत्पादन हुआ। विश्व भर में इस्लाम का पतन आरम्भ हो गया था। कुछ राजनीतिक कारणों (फ्रान्स की क्रान्ति का मुख्य योगदान था) तथा कुछ तुर्की के जागीरदार शासकों (जिनको पाशा कहा जाता था) के दमनकारी प्रयासों के विरोध में स्थानीय रूढ़िवादी ईसाई अनुयायी विद्रोह करने लगे।

उन्नीसवीं शताब्दी में ओटोमन साम्राज्य एक पुरावशेष था। इसका कोई भी लक्षण आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों के अनुरूप नहीं था। तत्कालीन समय में इसकी उपयोगिता तथा उद्देश्य समाप्त हो चुके थे। उन्नीसवीं शताब्दी में इसका पतन तथा प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने तक इसका विश्व के मानचित्र से अदृश्य होना सुनिश्चित था। ओटोमन साम्राज्य के पतन से विलुप्त होने तक यूरोपीय राष्ट्रों के राष्ट्रीय हितों के प्रवेश के कारण विश्व के समस्त देशों की ओटोमन साम्राज्य के प्रति जिज्ञासा रहती थी और अनेक संकट भी उत्पन्न हुए। समय-समय पर संकट की स्थिति में संकट के निदान के लिए कोई भी समाधान प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। प्रायः विद्वानों एवं इतिहासकारों ने ओटोमन साम्राज्य को "यूरोप के रोगी व्यक्ति" की संज्ञा दी है। लेकिन यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। यथार्थ में यह कथन ही भ्रमात्मक तथा दोषपूर्ण है और प्रस्तावित समाधानों ने रोग को पूर्वापेक्षा अधिक बढ़ा दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी की प्रचलित यूरोपीय राज्य प्रणाली में बहुभाषी साम्राज्य का अस्तित्व एक स्पष्ट चुनौती थी। यथार्थ में इस बहुभाषी साम्राज्य को मध्य युग में होना चाहिए था। पश्चिम एशिया के यत्र-तत्र बिखरे भू-क्षेत्रों मिस्र और कुछ द्वीपों के अतिरिक्त पूर्वी यूरोप

का बहुत बड़ा क्षेत्र इस साम्राज्य के अन्तर्गत था। उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रवाद, स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व की पवित्र भावनाओं का समस्त यूरोप में व्यापक प्रसार हो चुका था। राष्ट्रवाद एवं स्वतन्त्रता की उद्वेलित भावनाओं का ओटोमन साम्राज्य के अधिकांश यूरोपीय भागों में आविर्भाव हो चुका था।

ओटोमन साम्राज्य बिना सशस्त्र संघर्ष के अपने साम्राज्य के किसी भी भाग को किसी अन्य देश को देने के लिए तत्पर नहीं था। "पीटर महान् के समय से सन् 1914 के युद्ध तक तुर्की की कीमत पर रूस की महत्वाकांक्षा पूर्वी विवाद में लगातार एक महत्वपूर्ण तथ्य रही।" रूस बाल्कन क्षेत्र की धार्मिक तथा जातिगत भावनाओं से सम्बद्ध था और रूस के शासक ने तुर्की कुशासन से बाल्कन लोगों की रक्षा का दावा किया। जार की सहानुभूति उसकी महत्वाकांक्षा के अनुरूप थी और उसकी सहृदय भावना में सामरिक एवं राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमध्य सागर तक सुगम मार्ग प्राप्त करने की प्रबल इच्छा निहित थी। समीपवर्ती पूर्व में रूस की नीति के दो प्रमुख उद्देश्य तुर्की साम्राज्य को विघटित करना तथा पुरस्कार स्वरूप कुस्तुनतुनिया पर अधिकार करना था। यदि यह सम्भव न हो सके तब तुर्की के सुल्तान को अनेक असमान सन्धियों के लिए बाध्य करना था, जिससे तुर्की रूस के स्वामित्व में एक अधीनस्थ राज्य के रूप में रहे। इससे पूर्व कटचुक, कैनार्डजी एवं बुकारेस्ट जैसी अनेक सन्धियाँ पहले ही हो चुकी थीं जिसके अन्तर्गत रूस के जार को तुर्की के आन्तरिक प्रशासन के कुछ विषयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार पहले ही प्राप्त हो चुका था।

आस्ट्रिया का दृष्टिकोण (Attitude of Austria)—बाल्कन में आस्ट्रिया के राष्ट्रीय हित, रूस तथा ब्रिटेन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण थे। आस्ट्रिया का अधिकांश-क्षेत्र भू-भागीय था। केवल एड्रियाटिक सागर के शीर्ष का छोटा समुद्र तट था। यहाँ उसकी स्थिति अत्यधिक जटिल थी। अस्तु आस्ट्रिया को समुद्री मार्ग की अतीव आवश्यकता थी। आर्थिक दृष्टि से विशाल समुद्री क्षेत्र के लिए सुरक्षित मार्ग अनिवार्य था। अस्तु दक्षिण-पूर्व दिशा में विस्तार अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त अच्छे बन्दरगाहों की अनुपस्थिति में उसकी अधिकांश वाणिज्यिक गतिविधियाँ डैन्यूब घाटी से होकर संचालित होती थीं। डैन्यूब नदी के मुहाने पर रूस के प्रभुत्व की स्थापना को रोकना आस्ट्रिया के हित में था। इस प्रकार बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया रूस का प्रतिद्वन्द्वी था।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में समीपवर्ती पूर्व में आस्ट्रिया ने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया, लेकिन रूस की गतिविधियों के प्रति सतर्क और सजग रहा। मैटरनिख ने रूस की महत्वाकांक्षा का वैध राजवंशों के पुनर्स्थापन के सिद्धान्त द्वारा विरोध किया। लेकिन इटली और जर्मनी से आस्ट्रिया के निष्कासन के बाद तुर्की के मूल्य पर क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त करने के उद्देश्य से दक्षिण-पूर्व की ओर ध्यान केन्द्रित किया। इसके अतिरिक्त बाल्कन क्षेत्र में सर्व-स्लाव आन्दोलन, जिसको रूस प्रोत्साहित कर रहा था, और जो स्लावों की जातिगत जागरूकता को उद्वेलित कर रहा था, के विकसित होने का भय था। आस्ट्रिया बहुत निराश

था कि आन्दोलन उसके स्वयं के दक्षिणी क्षेत्रों में स्वयं की स्लाव जनता की निष्ठा को परिवर्तित न कर दे। अस्तु बाल्कन क्षेत्र में प्रमुख स्लाव राज्य अर्थात् सर्बिया, जिसका बढ़ता हुआ राष्ट्रवाद आस्ट्रिया साम्राज्य की अखण्डता के लिए खतरा था, को पंगु और सीमित रखने की नीति थी।

फ्रान्स का दृष्टिकोण (Attitude of France)—पूर्वी विवाद में फ्रान्स के राजनीतिक स्वार्थ की अपेक्षा वाणिज्यिक एवं धार्मिक स्वार्थ निहित थे। फ्रान्स, तुर्की का परम्परागत मित्र था और अठारहवीं शताब्दी में अनेक बार मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये थे। परिणामस्वरूप फ्रान्स को अनेक व्यापारिक विशेषाधिकार प्राप्त थे और अपनी व्यापारिक गतिविधियों का सीरिया तथा मिस्र में विस्तार करने में गहन रुचि थी। इसके अतिरिक्त वह पूर्व में रोमन कैथोलिक मतावलम्बियों का रक्षक भी था। परम्परागत मैत्री सम्बन्धों के उपरान्त भी फ्रान्स कभी भी तुर्की का लगातार उत्साही समर्थक नहीं रहा। अस्तु फ्रान्स का पूर्वी विवाद में भूमध्यसागरीय नौ-सेनिक तथा वाणिज्यिक गतिविधियों तक ही मुख्य सम्बन्ध था। फ्रान्स किसी भी स्थिति में मिस्र में अपने राजनीतिक प्रभुत्व को क्षतिग्रस्त नहीं होने देना चाहता था।

जर्मनी का दृष्टिकोण (Attitude of Germany)—समीपवर्ती पूर्व के विवाद ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम 25 वर्षों तक जर्मनी को आकर्षित नहीं किया। बाल्कन की जटिल समस्याओं से बिस्मार्क ने स्वयं को विलग रखा और टिप्पणी की, "समस्त पूर्वी विवाद पूर्णरूप से निरर्थक एवं अनुपयुक्त है।" लेकिन सन् 1878 में बर्लिन सम्मेलन के समय "एक ईमानदार दलाल" के रूप में कार्य किया और रूस के आस्ट्रिया को मित्र बनाने के प्रयास को अवरुद्ध करना था। तदुपरान्त जर्मनी ने पूर्व में महान् कूटनीतिक गतिविधियों के विकास करने, तुर्की के साथ भ्रातृत्व भाव बढ़ाने, उसकी सेना को प्रशिक्षण देने और बगदाद रेलवे का निर्माण करने के लिए जर्मनी के पूँजीवादियों को अनुमति प्राप्त करने का कार्य आरम्भ किया।

इंग्लैण्ड का दृष्टिकोण (Attitude of England)—समीपवर्ती पूर्व में रूसी भालू की निरन्तर बढ़ती हुई छाया ब्रिटिश शेर के लिए विशेष चिन्ताजनक थी। तुर्की के प्रति रूस की महत्वाकांक्षी योजनाओं के प्रति सन्देह ब्रिटिश नीति का मुख्य आधार था। ब्रिटिश मन्त्रियों ने अनुभव किया कि रूस का विस्तार पूर्व में ब्रिटिश हितों के लिए बहुत घातक हो सकता था। ब्रिटिश सरकार को आशंका थी कि कुस्तुनतुनिया पर रूस के नियन्त्रण से ब्रिटिश सरकार की भारतीय आधिपत्य में स्थिति अत्यधिक निर्बल हो जायेगी। अस्तु ये रूस की प्रत्येक गतिविधि के प्रति बहुत सतर्क रहते थे। उनको रूस की गतिविधियों में एशिया में ब्रिटिश हितों को आघात पहुँचाने की आशंका रहती थी। अस्तु पूर्वी विवाद के सन्दर्भ में रूस तथा ब्रिटेन के मध्य परम्परागत शत्रुता का विकास हो गया। ब्रिटेन के पूर्वी भूमध्य सागर में वाणिज्यिक हित थे तथा रूस की विकासवादी योजना एवं कार्यक्रम था। ब्रिटिश सरकार अतः निष्क्रिय भी नहीं रह सकती थी। उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड रूस के साम्राज्यवादी आक्रमण के विरुद्ध तुर्की का सक्रिय संरक्षक बना रहा। रूस के सैनिक अभियान को अवरुद्ध करके

ओटोमन साम्राज्य की एकता तथा अखण्डता को बनाये रखना ही ब्रिटिश सरकार अर्थात् पामर्स्टन की मूल नीति थी। तुर्की के सम्भावित पुनरुत्थान में उसका विश्वास था और उसकी प्रबल इच्छा थी कि तुर्की को अनुकूल अवसर प्रदान किये जायें जिससे वह एक महत्वपूर्ण शक्ति बन जाये। निःसन्देह इंग्लैण्ड रूस के विस्तार को रोकने में सफल रहा, परन्तु ओटोमन साम्राज्य के विघटन को नहीं रोक सका। यह विडम्बना ही थी कि इंग्लैण्ड, जो स्वयं को तुर्की का संरक्षक घोषित करता था, ने तुर्की साम्राज्य के विघटन का सर्वाधिक लाभ लिया।

यूरोपीय शक्तियों के परिवर्तित दृष्टिकोण के साथ पूर्वी प्रश्न के नये विकास घटित होना आरम्भ हो गये जिसका यूरोप ने नये पक्षों के साथ सामना किया। तुर्की की दुर्बलता ने विदेशी आक्रमणों को आमन्त्रित करने के साथ अधीन जातियों एवं शक्तिशाली जागीरदारों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास के लिए प्रोत्साहित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के राष्ट्रत्व के आदर्श ने बाल्कन प्रायद्वीप को भी प्रभावित किया और तुर्की शासन के अधीन ईसाई राष्ट्र उसकी प्रेरणा से अधीर हो गये। उन्होंने स्वयं को तुर्की शासन से मुक्त होने के प्रयास आरम्भ किये, परिणामस्वरूप युद्ध यातनाएँ एवं पीड़ाएँ, बाल्कन क्षेत्र में लगभग स्थायी तत्व बन गये। इस प्रकार ओटोमन साम्राज्य को आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमण और विघटन एवं रूस तथा स्वयं की ईसाई जनता से खतरा था, समस्या के ये दो पक्ष एवं उसके परिणामस्वरूप परस्पर हितों के संघर्ष ने पूर्वी प्रश्न में नये अवयवों का सूत्रपात किया। यह प्रश्न मिश्रित था। आंशिक रूप से बाल्कन क्षेत्र की जनता के मध्य राष्ट्रत्व की भावना के उद्‌भव का परिणाम था और आंशिक रूप से ह्रासोन्मुख तुर्की साम्राज्य और निकट पूर्व में यूरोपीय शक्तियों के विविध हितों की समस्या थी। इस समस्या ने विभिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण किये लेकिन तुर्कों के मूल्य पर रूस की महत्वाकांक्षा एक अनवरत तथ्य बना रहा। यूरोप से तुर्की के विलुप्त होने की स्थिति में तुर्की का स्थान किसको लेना था ? पूर्वी प्रश्न की यह एक मुख्य केन्द्रीय समस्या थी।

इनके अतिरिक्त बाल्कन क्षेत्र की अन्य अनेक जटिल समस्याएँ थीं। दक्षिणी स्लाव बहुमत में थे, परन्तु डैन्यूब नदी घाटी के नीचे की ओर रोमवासियों की लैटिन जाति थी। एड्रियाटिक तट पर अधिकांश अल्बेनियावासी इस्लाम धर्म के अनुयायी थे। बुल्गर सन् 1000 के विशाल साम्राज्य को साकार करने के स्वप्न देख रहे थे। सर्ब और क्रोट दोनों एक ही भाषाभाषी थे परन्तु दोनों की लिपि तथा धर्म भिन्न थे। क्रोट कैथोलिक मतावलम्बी थे और सर्ब यूनानी रूढ़िवादी चर्च के सदस्य थे। बोसियावासी तुर्कों की अपेक्षा अधिक तुर्की थे।

इन समस्त प्रतिद्वन्द्विताओं के परिणामस्वरूप पूर्वी प्रश्न अत्यधिक जटिल हो गया था। सन् 1815 से पूर्व ही तुर्की सुल्तान की दुर्बलता स्पष्ट हो चुकी थी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक ओटोमन सत्ता का पतन आरम्भ हो चुका था। सन् 1699 में कार्लोविट्ज की सन्धि के अन्तर्गत हंगरी तुर्की साम्राज्य से विलग हो चुका था। रूस अनेक बार युद्धों में तुर्की को पराजित कर चुका था। सन् 1812 की बुकारेस्ट की सन्धि के द्वारा बैसरेबिया (Bessrabia) प्राप्त कर लिया। रूस ने काला सागर के पश्चिम की ओर प्रुथ (Pruth) नदी के तट तक

अपनी सीमाओं का विस्तार कर लिया। पतनोन्मुख तुर्की तथा रूस की दक्षिण की ओर प्रगति से उत्पन्न रुचि ने सामान्य यूरोपीय कूटनीति को आकृष्ट नहीं किया। निकटतम पड़ोसी रूस एवं आस्ट्रिया ही सर्वाधिक चिन्तित थे। नैपोलियन ने यूरोप की दृष्टि को पूर्व की ओर उन्मुख किया था। उसने मिस्र और सीरिया पर आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया। वह प्रायः कहता था कि कुस्तुनतुनिया का अर्थ विश्व का साम्राज्य था। इसी कथन ने यूरोपीय राजनीतिज्ञों को विवाद के महत्व से अवगत कराया। साथ ही सामान्य भय था कि शक्ति सन्तुलन पूर्णरूप से अस्त-व्यस्त हो जायगा, यदि तुर्की की निरन्तर बढ़ती हुई दुर्बलता के कारण रूस की विस्तारवादी शक्ति ने तुर्की को पूर्णरूप से आत्मसात कर लिया।

रूसी जनता बाल्कन क्षेत्र के बिल्कुल बगल में थी। वे उसी स्लाव जाति के थे, जिसकी अधिकांश तुर्की की जनता थी और वे उसी रूढ़िवादी यूनानी चर्च के सदस्य थे जिसकी तुर्की की अधिकांश ईसाई जनता सदस्य थी। इन तथ्यों के अतिरिक्त काला सागर और जलडमरूमध्य पर पूर्ण प्रभुत्व की रूस की सर्वविदित प्रबल महत्वाकांक्षा थी, जिससे भूमध्य सागर तक मार्ग पर उसका पूर्ण नियन्त्रण हो जाये। रूस के सम्भावित खतरे ने यूरोपीय शक्तियों को निकट पूर्व के विषयों में पूर्वापेक्षा अधिक ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार पूर्वी विवाद अथवा प्रश्न का एक महत्वपूर्ण पक्ष तुर्की के मूल्य पर रूस के सशस्त्र आक्रमण का भय था। साम्राज्य की बाह्य सीमाओं पर स्थित स्थानीय पाशा अथवा प्रान्तीय राज्यपाल सुल्तान की सत्ता की अवज्ञा कर रहे थे। सन् 1799 में बाल्कन क्षेत्र में स्थित मौनटेनेग्रो राज्य ने सर्वप्रथम अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। इसके शासक पीटर प्रथम ने तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तथा पूर्ण विजय प्राप्त की। तुर्कों को विवश होकर मौनटेनेग्रो की स्वतन्त्रता को मान्यता देनी पड़ी।

पूर्वी विवाद का विकास—तुर्की साम्राज्य के विघटन का प्रारम्भ (Development of the Eastern Question Beginning of the Dismemberment of the Turkish Empire)—स्थानीय पाशा भी साहसी तथा निर्भीक थे। सर्बों ने कारा जार्ज के नेतृत्व में सन् 1804 में सुल्तान की अपेक्षा स्थानीय पाशाओं के विरुद्ध विद्रोह किया। जब सुल्तान ने कारा जार्ज की स्वशासन की माँग को अस्वीकार कर दिया, उसने स्वतन्त्रता संग्राम की घोषणा कर दी। प्रारम्भ में कारा जार्ज को अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त हुई, परन्तु अन्ततोगत्वा आन्तरिक वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष तथा मतभेदों एवं रूसी सहायता के रुकने के कारण वह पराजित हुआ। तुर्कों ने प्रतिशोध स्वरूप अमानुषिक एवं बर्बर अत्याचार किये, परिणामस्वरूप सर्बों ने सन् 1815 में पुनः सशस्त्र विद्रोह किया। सन् 1817 में, मिलोश ओब्रेनोविच (Milosh Obrenovitch) के नेतृत्व में विरोधी दल ने कारा जार्ज की हत्या कर दी। अनेक वर्षों तक युद्ध तथा विचार-विमर्श के बाद मिलोश ने रूस के प्रबल समर्थन से तुर्की से सर्बिया के लिए स्वायत्त शासन का अधिकार तथा स्वयं के लिए सर्बों के वंशानुगत राजा का अधिकार प्राप्त कर लिया। कुछ समय बाद वह छोटा राज्य रूस के संरक्षण में आ गया। इस प्रकार सर्बिया के राष्ट्रवाद का शुभारम्भ हुआ और यही कालान्तर में यूगोस्लाविया के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तुर्की और यूनान (Turkey and Greece)—ओटोमन साम्राज्य के विघटन में दूसरा महत्वपूर्ण चरण यूनानवासियों का सशस्त्र विद्रोह था। पोर्ट (Porte) की जनता में यूनानवासियों के साथ सहृदय तथा सहिष्णुता का व्यवहार होता था। यूनानी व्यक्तियों को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया गया था और व्यापार एवं वाणिज्य के अधिकांश भाग पर उनका नियन्त्रण था। द्वीपों तथा एजियन सागर के तट पर व्यावहारिक दृष्टि से यूनानियों का पूर्ण स्वशासन था। उनकी धार्मिक भावनाओं एवं संस्कारों का सम्मान किया जाता था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में बौद्धिक पुनर्जागरण ने यूनानियों की राष्ट्रीय चेतना को उद्वेलित किया। बुद्धिजीवियों ने प्राचीन हेल्लास के ऐश्वर्य, वैभव एवं गौरव का स्मरण कराया। इस उर्वर भूमि में फ्रान्स की क्रान्ति ने नवीन विचारों, भावनाओं तथा सिद्धान्तों का बीजारोपण किया, जिसने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की उदात्त आकांक्षा को प्रोत्साहित तथा उत्तेजित किया। सन् 1814 में एक गुप्त समिति की स्थापना द्वारा नवोदित भावना एवं चेतना को साकार रूप प्रदान किया गया। यह गुप्त समिति 'फिल्के हेतेरिया' (Philke Hetairia) के नाम से विख्यात थी। राष्ट्रवादी विचारों एवं सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार एवं प्रसार करना, तुर्कों को यूरोप से निष्कासित करना तथा पूर्व में स्थित प्राचीन यूनानी साम्राज्य को पुनर्जीवित करना, इस समिति का मुख्य उद्देश्य था। यूनानी और रूसी, ईसाई धर्म के एक ही समुदाय के अनुयायी थे और तुर्की के पतन से रूस के विस्तारवादी अभियान में बहुत योगदान मिलेगा, इन कारणों से इस गुप्त समिति को रूस के प्रबल सक्रिय समर्थन की पूर्ण आशा थी। रूस के समर्थन से आश्वस्त तथा सर्बिया की सफलता से प्रेरित, इस गुप्त समिति ने शीघ्रातिशीघ्र सशस्त्र विद्रोह के लिए गतिविधियाँ आरम्भ कर दीं।

यूनान का स्वतन्त्रता संघर्ष (The War of Greek Independence)—सन् 1821 में जनीना के तुर्की राज्यपाल अली पाशा ने तुर्की के सुल्तान से संघर्ष कर लिया और युद्ध की घोषणा कर दी। यह विद्रोह का संकेत था। उसी समय मोलडेविया के शासक हिपसिलान्टी के नेतृत्व में मोलडेविया तथा मोरिया (दक्षिणी यूनान) में विद्रोह आरम्भ हो गया। हिपसिलान्टी को रूस की सहायता की पूर्ण आशा थी, लेकिन वह यह भूल गया कि जार अलेक्जेण्डर पवित्र सन्धि का संस्थापक था, इसलिए वह क्रान्ति का समर्थन नहीं करेगा। तुर्कों ने हिपसिलान्टी को पराजित कर दिया और आन्दोलन विफल हो गया।

लेकिन मोरिया तथा एजियन द्वीप में विद्रोह ने विकराल रूप धारण कर लिया। यूनानियों ने तुर्कों की विशाल स्तर पर नृशंस हत्याओं के द्वारा युद्ध आरम्भ कर दिया। तुर्कों ने भी क्रूरता तथा बर्बरता का उत्तर उसी रूप में दिया। युद्ध का उद्देश्य परस्पर पूर्ण विनाश था। 6 वर्षों तक भीषण युद्ध चलता रहा (सन् 1821-27)। यूरोपीय शक्तियों ने हस्तक्षेप नहीं किया और यूनानी बिना किसी सहायता के युद्ध करते रहे। यूरोपीय शक्तियों को यूनानियों की अपेक्षा रूस की विशेष चिन्ता थी। रूस अपने हितों के लिए स्थिति का शोषण कर सकता था। आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री को वैध सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की आशंका थी, इसलिए वह यूनानियों को केवल विद्रोही मानता था और उसकी इच्छा थी कि यूनानियों को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाये और किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाये। वह

चाहता था कि इस विद्रोह को सभ्यता के पूर्ण विनाश की स्थिति तक ध्वस्त होने दिया जाये। मैटरनिख ने प्रशा के राजा तथा रूस के जार को अपने विचारों तथा भावनाओं के अनुरूप बना लिया था। ब्रिटेन की हस्तक्षेप न करने की नीति थी, तथा तुर्की की अखण्डता तथा एकता के प्रति सम्मान की भावना थी। इसलिए ब्रिटेन की निष्क्रियता की नीति थी, परन्तु सन् 1827 तक परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ने विदेशी शक्तियों का सक्रिय हस्तक्षेप अनिवार्य कर दिया।

तुर्की के सुल्तान ने अपने अधीनस्थ शासक मिस्र के महमत अली का सशस्त्र सहायता के लिए आह्वान किया। महमत अली का पुत्र इब्राहिम मोरिया आया और उसने सब कुछ ध्वस्त कर दिया। सन् 1826 में मिस्सोलोंगही का पतन हो गया तथा अगले वर्ष एथेन्स पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। यूनानियों की शक्ति नष्ट हो गयी और स्वतन्त्रता का स्वप्न भी धूमिल हो गया। सर्वाधिक सम्पन्न एवं समृद्धशाली सांस्कृतिक धरोहर के लोगों के लिए समस्त यूरोप में व्यापक रूप से सहानुभूति का संचार हो गया। यूरोपीय सभ्यता तथा संस्कृति के उद्‌गम देश के बर्बर एवं अमानुषिक विनाश के विरुद्ध यूरोपीय जनता ने तीव्र विरोध किया। शासकों की आशंकाओं ने जनता की सहानुभूति को बल प्रदान किया। यूरोपीय शक्तियों को भय था कि रूस स्वयं ही कार्यवाही कर सकता था। अस्थिर एवं चंचल जार अलेक्जेण्डर का सन् 1825 में निधन हो चुका था और दृढ़ इच्छा-शक्ति वाला चतुर एवं बुद्धिमान भाई निकोलस प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने स्वयं को पवित्र सन्धि के प्रावधानों से मुक्त कर लिया। ब्रिटिश विदेशमन्त्री कैनिंग विदेशों में स्वतन्त्रता का प्रबल समर्थक था। वह तुर्की का विरोध किये बिना यूनान की सहायता करना चाहता था। रूस की स्वतन्त्र कार्यवाही को रोकने के लिए उसने फ्रान्स तथा जार निकोलस प्रथम से इंग्लैण्ड के साथ सहयोग करने का आग्रह किया। वह चाहता था कि तुर्की को पोर्ट (Porte) के लिए संयुक्त रूप से विराम-सन्धि के लिए बाध्य किया जाये और संयुक्त हस्तक्षेप के लिए विवश किया जाये। इस योजना के अनुसार तुर्की को संयुक्त रूप से पत्र प्रेषित किया गया परन्तु तुर्की ने विराम सन्धि के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। तदुपरान्त ब्रिटेन और फ्रान्स मित्र राष्ट्रों की नौ-सेना ने सन् 1827 के बाद नावारिनों के संघर्ष में तुर्की की नौ-सेना को नष्ट कर दिया। मित्र राष्ट्रों की विजय ने यूनानियों को प्रोत्साहित किया। अन्ततोगत्वा उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। इसके अतिरिक्त संयुक्त हस्तक्षेप से रूस सर्वाधिक लाभान्वित हुआ।

कैनिंग का निधन हो गया और वैलिंगटन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री हुआ। उसने कैनिंग की नीतियों का परित्याग कर दिया। अधिकृत रूप से ब्रिटेन के तुर्की के साथ शान्ति सम्बन्ध थे, वैलिंगटन ने पोर्ट (Porte) जाकर क्षमा याचना की और नावारिनों की घटना को एक अप्रिय एवं अनुचित घटना कहा। उसने यूनान के विवाद से ब्रिटेन को विलग करके रूस को उन्मुक्त छोड़ दिया। परिणामस्वरूप कैनिंग ने जिस स्थिति से बचने का अथक प्रयास किया था, वही स्थिति पुनः हो गयी। यूनान का विवाद यथार्थ में रूस की परिधि में आ गया। रूस ने स्वयं ही तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और विजेता की सन्धि प्रस्तावों को स्वीकार करने

के लिए बाध्य किया। सन् 1829 में एड्रियानोपिल (Adrianople) की सन्धि के माध्यम से रूस, इंग्लैण्ड और फ्रान्स ने संयुक्त रूप से तुर्की को यूनान की स्वतन्त्रता को मान्यता देने के लिए बाध्य किया। इस सन्धि के अन्तर्गत वालेशिया (Wallachia) तथा मोलडेविया (Moldavia) को व्यावहारिक रूप से स्वायत्त शासन प्रदान किया गया। एशिया में रूस के क्षेत्राधिकार में वृद्धि के साथ रूस के वाणिज्यिक तथा राजनीतिक अधिकारों में भी वृद्धि हो गयी। यूनान द्वारा प्रज्वलित स्वतन्त्रता की ज्योति भावी वर्षों में धूमिल नहीं हुई। सन् 1832 के लन्दन सम्मेलन द्वारा नवोदित यूनान राज्य को शक्तियों के संयुक्त संरक्षण में रखा गया।

यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम का बहुत व्यापक महत्व था। इसने समीपवर्ती पूर्व के विवाद में यूरोपीय शक्तियों की अभिरुचि और ईसाई राज्यों के पुनर्स्थापन की व्यावहारिक सम्भावनाओं को अभिव्यक्त किया। रूस को स्वयं अपने हितों की उन्नति तथा यूनान एवं अन्य ईसाई धर्मावलम्बियों के नाम पर कार्यवाही करने से रोकने की ब्रिटेन की नीति असफल हो गयी। यूनान के स्वतन्त्रता संघर्ष के अन्तिम चरण में ब्रिटेन ने स्वयं को सक्रिय कार्यवाही से विलग कर लिया था। इस कारण यह विजय अस्थायी सिद्ध हुई। इंग्लैण्ड की इस त्रुटि से रूस को अभूतपूर्व कूटनीतिक विजय प्राप्त हुई। सन्धि के प्रावधानों द्वारा ओटोमन साम्राज्य ने अनेक अन्य सुविधाएँ भी दीं। इस सन्धि में रूस की प्रमुख भूमिका थी। यूनान के स्वतन्त्रता संघर्ष के व्यापक आयाम ने रूस की पूर्वी यूरोप, काला सागर और पूर्वी भूमध्य सागर में विस्तारवादी योजनाओं के प्रति ब्रिटेन तथा फ्रान्स की आशंकाओं की पुष्टि कर दी। शीघ्र ही रूस को संकटग्रस्त बाल्कन क्षेत्र में समुचित लाभ अर्जित करने के सुअवसर प्राप्त हो गये।

एड्रियानोपिल की सन्धि रूस की नीति की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इससे रूस के क्षेत्राधिकारों तथा विशेषाधिकारों में वृद्धि हुई और रूस की इच्छानुसार तुर्की साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया का सूत्रपात हुआ। रूस ने ही अपने संरक्षण में यूनान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित करवाया था। इससे रूस के मान-सम्मान, गौरव तथा प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके विपरीत इंग्लैण्ड की नीति अस्पष्ट, अस्थिर, अदूरदर्शी एवं असंयत थी। तुर्की की एकता और अखण्डता को बनाये रखते हुए, यूनान की स्वतन्त्रता का समर्थन करने की नीति परस्पर विरोधी थी। नावारिनों के बाद इंग्लैण्ड ने रूस को लाभ एवं यश अर्जित करने के लिए उन्मुक्त छोड़ दिया।

यूनान का विवाद अत्यधिक महत्वपूर्ण है। विएना सम्मेलन के बाद से राष्ट्रवाद की विजय का पहला अवसर दिया और मैटरनिख की व्यवस्था को आघात पहुँचाया। साथ ही इसने समीपवर्ती पूर्व में शक्तियों के समान हितों को अभिव्यक्त किया। इसके अतिरिक्त ईसाई राज्यों के पुनरुज्जीवन की व्यावहारिक सम्भावनाओं को व्यक्त किया। महमत अली से सहायता की याचना एवं रूस से पराजय ने तुर्की की विश्व के समक्ष दुर्बलता को स्पष्ट कर दिया। इसके परिणामस्वरूप पूर्वी विवाद का नया विकास हुआ।

मिस्र का महमत अली (Mahmat Ali of Egypt)—मिस्र के पाशा महमत अली की महत्वाकांक्षा से पूर्वी विवाद के नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। उसने तुर्की की दुर्बलता का लाभ उठाने का प्रयत्न किया। ओटोमन साम्राज्य की शक्ति निःसन्देह खोखली थी। संकट के समय तुर्की सुल्तान ने अपने अधीनस्थ मिस्र के शासक महमत अली से सैनिक सहायता का आग्रह किया था। इस महत्वाकांक्षी ने तुर्की सुल्तान से अधिक की माँग की। परिणामस्वरूप समीपवर्ती पूर्व में दोनों में शत्रुता हो गयी। वह तुर्की की दुर्बलता का लाभ उठाना चाहता था। उसने यूनानियों के विरुद्ध तुर्की सुल्तान की अमूल्य सैनिक सेवा की थी। पुरस्कार स्वरूप उसको क्रेट का राज्यपाल बनाया गया था, परन्तु योग्य एवं महत्वाकांक्षी महमत अली इस पुरस्कार को अपर्याप्त मानता था। अस्तु सन् 1831 में सीरिया को तुर्की साम्राज्य से विलग करने के लिए कूच किया। महमत अली की सेना ने सीरिया पर नियन्त्रण करने के उपरान्त कुस्तुनतुनिया की ओर कूच करने की चेतावनी दी। सुल्तान ने यूरोपीय शक्तियों से सहायता की याचना की परन्तु रूस के अतिरिक्त अन्य किसी देश ने सहायता का आश्वासन नहीं दिया। डूबते हुए को तिनके के सहारे के रूप में सुल्तान ने अनिच्छापूर्वक रूस की सहायता को स्वीकार किया। रूस की सेना के सन् 1833 में तुर्की साम्राज्य के बास्फोरस में व्यापक प्रसार एवं नियन्त्रण से पश्चिमी शक्तियाँ चिन्तित थीं। इसलिए इंग्लैण्ड, फ्रान्स और आस्ट्रिया ने तुर्की सुल्तान पर दबाव डाला कि वह सीरिया महमत अली को देकर उससे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करे जिससे रूस की सैनिक सहायता अनावश्यक हो जाये, परन्तु रूस भी सहज ही अपनी विस्तारवादी नीति को त्यागने वाला नहीं था। उसने सन् 1833 की अनकेयर स्कैलसी (Unkier Skelessi) की सन्धि के माध्यम से अपना मूल्य प्राप्त कर लिया। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार तुर्की जलडमरूमध्य में रूस के युद्धपोतों के उन्मुक्त आवागमन के लिए तथा युद्ध काल में रूस के अतिरिक्त अन्य समस्त देशों के युद्धपोतों का डारडेनेल्स (Dardanelles) प्रवेश अवरुद्ध करने के लिए सहमत हो गया। पोर्ट (Porte) इस सन्धि के अनुसार रूस के सैनिक संरक्षण में आ गया, जबकि काला सागर रूस की झील के रूप में परिवर्तित हो गया। ब्रिटेन तथा फ्रान्स इतने अधिक भयभीत थे कि उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र इस सन्धि को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। यह सन्धि कुस्तुनतुनिया पर रूस के प्रभाव का चरमोत्कर्ष थी।

अनकेयर स्कैलसी की सन्धि ने इंग्लैण्ड की समस्त आशंकाओं को उत्तेजित किया। पामर्स्टन पूर्व में रूस के प्रभुत्व का कटु शत्रु तथा रूस की विस्तारवादी योजनाओं के प्रति सजग एवं चिन्तित, इस सन्धि के प्रावधानों को समाप्त करने के लिए कृत संकल्प था। तुर्की का सुल्तान, अपने अधीनस्थ मिस्र के महमत अली से पुनः सीरिया प्राप्त करने के सैनिक प्रयास में पराजित हुआ। पामर्स्टन के लिए यह सुअवसर था। यूरोपीय शक्तियों ने हस्तक्षेप किया। फ्रान्स महमत अली का समर्थन करना चाहता था और मिस्र एवं सीरिया में अपने हितों को विकसित करने की आशा से उसने महमत अली को गुप्त रूप से सहायता दी। फ्रान्स भूमध्यसागर में ब्रिटिश प्रभाव को दुर्बल करना चाहता था। ऐसी स्थिति में पामर्स्टन ने मिस्र में फ्रान्स के प्रभुत्व की सम्भावना का अनुभव किया। रूस ने भी स्वयं को भ्रमात्मक

स्थिति में अनुभव किया। रूस ने अनुमान लगाया कि महमत अली की सफलता से कुस्तुनतुनिया पर एक दुर्बल शासक के स्थान पर एक शक्तिशाली शासक होगा और ऐसी स्थिति में उसको पूर्व में महत्वाकांक्षी योजनाओं का परित्याग करना होगा। दूसरी ओर यदि रूस तुर्की के साथ उसके शक्तिशाली अधीन शासक के विरुद्ध मैत्री सम्बन्ध स्थापित करे, उसको इंग्लैण्ड तथा यूरोपीय शक्तियों के सहयोग से ही मैत्री करनी होगी। ऐसी स्थिति में अनकेयर स्कैलसी की सन्धि के माध्यम से प्राप्त समस्त लाभ समाप्त हो जायेंगे। फ्रान्स तथा महमत अली की भावी योजनाओं से भयभीत होकर, रूस ने इंग्लैण्ड के निकट आने का प्रयास किया और अपनी विशेष स्थिति का परित्याग करने तथा सामूहिक हस्तक्षेप के लिए सहमति का प्रस्ताव रखा। परिणामस्वरूप सन् 1832 में 'लन्दन का समझौता' (Convention of London) हुआ। इसके अन्तर्गत इंग्लैण्ड, रूस, आस्ट्रिया एवं प्रशा, फ्रान्स को सूचित किये बिना महमत अली पर कठोर प्रावधानों का दबाव डालने के लिए सहमत हो गये। ब्रिटेन महमत अली की निरन्तर बढ़ती हुई नौ-सैनिक शक्ति को रोकने के लिए उत्सुक था और उसके साथ नौ-सैनिक युद्ध करना चाहता था। ब्रिटेन की सक्रियता के परिणामस्वरूप वह स्वयं मिस्र के संकट में ग्रस्त हो गया। फ्रान्स उपेक्षा से अत्यधिक क्रुद्ध था, और इंग्लैण्ड के साथ युद्ध की चेतावनी दी परन्तु फ्रान्स ने कोई युद्ध नहीं किया। फ्रान्स स्वयं को महमत अली के नेतृत्व में मिस्र का धर्मपिता मानता था। महमत अली कभी निष्क्रिय नहीं रह सकता था। तुर्की का सुल्तान अपनी क्षतिग्रस्त प्रतिष्ठा तथा विजित क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। सन् 1839 में सुल्तान ने अपनी सेना को महमत अली के विरुद्ध प्रस्थान करने का आदेश दिया। सुल्तान महमत अली के पुत्र से पराजित हुआ परन्तु उसकी (महमत अली के पुत्र) नौ-सेना ने असहयोग कर दिया।

मित्र राष्ट्रों की सफल नौ-सैनिक कार्यवाही ने महमत अली को समर्पण करने तथा सन् 1814 की लन्दन सन्धि को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। फ्रान्स और इंग्लैण्ड दोनों ही तुर्की पर रूस के नियन्त्रण का विरोध कर रहे थे। रूस, ब्रिटेन तथा अन्य अनेक यूरोपीय शक्तियों के साथ युद्ध करने से डरता था। अस्तु ब्रिटेन के चतुर्देशीय सन्धि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया। इस सन्धि पर रूस, ब्रिटेन आस्ट्रिया और प्रशा ने हस्ताक्षर किये। इन शक्तियों ने तुर्की के सुल्तान तथा महमत अली दोनों को ही इस सन्धि के प्रावधानों को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। तुर्की के सुल्तान को सीरिया, क्रेट तथा अरबिया पुनः प्राप्त हो गये। तुर्की को केवल रूस की अपेक्षा यूरोपीय शक्तियों का संरक्षण प्रदान किया गया। इस प्रकार यूरोप की चार शक्तियाँ तुर्की की सामूहिक संरक्षक बन गयीं। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार महमत अली सीरिया पर अपने आधिपत्य के दावे को त्यागने के लिए सहमत हो गया, परन्तु इस सन्धि में तुर्की के सुल्तान के अधीन मिस्र के पाशा के रूप में सर्वोच्च प्रशासनिक पद के लिए वंशानुगत अधिकार की पुष्टि कर दी गयी। युद्ध काल में डारडेनेल्स में समस्त राष्ट्रों के जलपोतों के आवागमन पर पूर्ण प्रतिबन्ध की व्यवस्था थी। इस प्रावधान ने अनकेयर स्कैलसी के सम्बन्धित प्रावधान को समाप्त कर दिया और इसने तुर्की को रूस पर घातक निर्भरता से बचा लिया। लन्दन की सन्धि पामर्स्टन की महान् विजय थी।

फ्रान्स के लिए यह सन्धि पराजय और रूस के लिए निरोध थी। इससे स्पष्ट हो गया कि इंग्लैण्ड तुर्की के ऊपर रूस के संरक्षण तथा मिस्र के ऊपर फ्रान्स के संरक्षण को स्वीकार नहीं करेगा। इसने ओटोमन साम्राज्य की एकता तथा अखण्डता को भी सुरक्षित रखा। ब्रिटेन और फ्रान्स के हितों के मध्य संघर्ष के परिणामस्वरूप मिस्र पर संयुक्त संरक्षण की घोषणा की गयी और कालान्तर में सन् 1882 में ब्रिटेन ही एकमात्र मिस्र का संरक्षक रह गया। लन्दन की सन्धि ने पूर्वी विवाद का एक अध्याय समाप्त कर दिया। एक दशक में विवाद पुनः आरम्भ हो गया।

समीपवर्ती पूर्व तथा यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम ने स्पष्ट कर दिया कि यूरोप की प्रमुख शक्तियाँ इस संकट के सन्तोषजनक समाधान में असफल रहीं। उत्तर-नैपोलियनकाल में प्रतिक्रियावादी आस्ट्रिया एक प्रमुख राष्ट्र था। आस्ट्रिया के प्रतिक्रियावादी चान्सलर मैटरनिख ने मत व्यक्त किया कि यूनानी विद्रोह को पूर्णतया ध्वस्त कर देना चाहिए। यह एक अपरिष्कृत प्रतिक्रिया थी। इससे स्पष्ट संकेत मिलता था कि मैटरनिख को भावी घटनाओं के स्वरूप का दूरगामी पूर्वाभास नहीं था। यह भी पूर्वानुमान था कि आस्ट्रिया व्यवस्था के कुछ ही दिन शेष रह गये थे। यूरोप में आस्ट्रिया का नेतृत्व समाप्त हो रहा था और उत्पन्न शून्यता की पूर्ति प्रशा ने की। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रशा यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली देश बन गया।

यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम से भलीभाँति ज्ञात हो गया कि राष्ट्रों के अन्य राष्ट्रों से परस्पर सम्बन्ध निर्धारण में जनता के विचारों तथा भावनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। विख्यात ब्रिटिश कवि बायरन ने केवल यूनानी भाषा में ही काव्य रचना नहीं कि वरन् यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम के लिए धन एकत्र करने तथा यूनान के संघर्षरत विरोधी नेताओं को संगठित करने के लिए अथक प्रयास भी किया। बायरन का सन् 1824 में एक गम्भीर रोग से मिसोलिंघी (Missolinghi) में देहावसान हो गया। विशेष रूप से ब्रिटेन तथा फ्रान्स के उदारवादी नवयुवकों ने व्यक्तिगत रूप से सक्रिय भाग लिया।

यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद रूस को विजय प्राप्त हुई। ब्रिटेन बेल्जियम की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर पहले से ही व्यस्त था। फ्रान्स ने मिस्र के महमत अली का समर्थन किया। महत्वाकांक्षी महमत अली तुर्की साम्राज्य के मूल्य पर अपने प्रभुत्व तथा शक्ति को बढ़ाने के लिए उत्सुक था। इसी के परिणामस्वरूप अनकेयर स्कैलसी की सन्धि हुई थी।

लार्ड मोरले पूर्वी विवाद की व्याख्या करते हुए कहते हैं, "विरोधी हितों, विरोधी व्यक्तियों तथा विरोधी आस्थाओं एवं धर्मों के दुर्दमनीय एवं एक-दूसरे से अभिन्न रूप से गुथा हुआ, (अन्तर्ग्रथित गुत्थी) विवाद था।" यह अत्यधिक जटिल विवाद था। आंशिक रूप से बाल्कन क्षेत्र में आविर्भूत राष्ट्रीय भावनाओं का परिणाम था। आंशिक रूप से तुर्की साम्राज्य के पतन से उत्पन्न परिस्थिति तथा समीपवर्ती पूर्व में यूरोप की महान् शक्तियों के परस्पर विरोधी हितों का परिणाम था। इस समस्या ने भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न स्वरूप ग्रहण किया परन्तु तुर्की के मूल्य पर रूस की महत्वाकांक्षा इस विवाद का अभिन्न अंग थी।

क्रीमिया युद्ध (सन् 1854-1856)
(CRIMEAN WAR)

क्रीमिया युद्ध का महत्व (Importance of Crimean War)

क्रीमिया युद्ध ओटोमन साम्राज्य के विघटन के अगले चरण के रूप में था। उन्नीसवीं शताब्दी में क्रीमिया युद्ध यूरोप की एक महत्वपूर्ण घटना है और इससे पूर्वी विवाद का एक नया अध्याय आरम्भ हो गया। इसने वियाना की काँग्रेस द्वारा स्थापित राज्य प्रणाली को विचलित कर दिया। एक विद्वान इतिहासकार ने मत व्यक्त किया है, "क्रीमिया युद्ध सामान्य रूप से यूरोपीय इतिहास का जल-विभाजक (Water-shed) था।"

अपने तटों से ऊपर बढ़ती हुई और समस्त क्षेत्रों को उर्वर बनाती हुई, विशाल नदी के सदृश क्रीमिया युद्ध ने उन समस्त तत्वों को उन्मुक्त छोड़ दिया जिनके कारण यूरोप में उदारवाद एवं राष्ट्रवाद की विजय हुई। इसने मैटरनिख की यथास्थिति बनाये रखने की नीति को समाप्त कर दिया तथा उपलब्धि एवं निर्माण के नये युग का सूत्रपात किया। इटली का एकीकरण इसकी प्रथम उपलब्धि थी। रूस स्वयं को मध्यकालीन युग की स्थिरता से निकाल कर लोकतन्त्र के मार्ग पर अग्रसर हुआ। इसने यूरोपीय शक्तियों के पुनर्गठन को प्रेरित किया जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी का एकीकरण सम्भव हुआ। आलोचकों ने इस युद्ध को "एक पूर्णरूप से निरर्थक आधुनिक युद्ध, जो लड़ा गया है" की संज्ञा प्रदान की। विद्वानों ने मत व्यक्त किया है कि इस युद्ध तथा डिजरैली की भावी नीति के परिणामस्वरूप ही बाल्कन क्षेत्र में स्थित राज्य अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके। यदि यह युद्ध नहीं होता तो समस्त बाल्कन राज्यों को अपेक्षित स्वतन्त्रता नहीं मिलती और रूस ने अब तक कुस्तुनतुनिया पर आधिपत्य स्थापित कर लिया होता। क्रीमिया युद्ध के महत्व का आकलन तात्कालिक ठोस एवं वास्तविक परिणामों से करना उचित नहीं है वरन् इस युद्ध का सर्वाधिक महत्व का राजनीतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना उचित होगा जिसकी यह पृष्ठभूमि था।

लन्दन सम्मेलन के उपरान्त एक दशक तक तुर्की साम्राज्य में पूर्ण शान्ति रही। लैटिन भिक्षुकों और यूनानी भिक्षुकों के मध्य जेरूसलम स्थित पवित्र स्थलों पर नियन्त्रण के लिए विवाद ने शान्ति भंग कर दी। रोमन कैथोलिक मतावलम्बियों तथा यूनानी रूढ़िवादी चर्च के भिक्षुकों के मध्य बेथेलहम (Bethelham) में स्थित नेटिविटी चर्च की कुंजियों के ऊपर मामूली झगड़ा ही क्रीमिया युद्ध का तात्कालिक कारण था। प्रश्न चर्च में सामने के द्वार से अथवा पीछे के द्वार से प्रवेश करने का था। निःसन्देह विवाद नगण्य था, परन्तु इसके भीषण परिणाम हुए जिसने पूर्वी विवाद के इतिहास में नया अध्याय आरम्भ किया। इस युद्ध के कारणों के विषय में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। ब्रिटेन की साम्राज्ञी विक्टोरिया रूस के जार निकोलस को युद्ध का कारण मानती थी, जबकि किंग्सलेक (Kingslake) के अनुसार, फ्रान्स का सम्राट नैपोलियन तृतीय युद्ध का कारण था। एल. सी. बी. सीमेन के अनुसार, इस युद्ध का मुख्य कारण इंगलैण्ड के उदारवाद और रूस के निरंकुशतावाद के मध्य बढ़ता हुआ

संघर्ष था। उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में यूरोप के अनेक महान् व्यक्तियों को युद्ध की आवश्यकता थी। नगण्य कारण जैसे कि जेरूसलम के धार्मिक स्थलों पर नियन्त्रण को लेकर युद्ध हुआ, जो एकमात्र बहाना था। जे. पी. टेलर विश्लेषण करते हुए लिखते हैं, "निकोलस प्रथम को एक आश्रित तुर्कों की आवश्यकता थी क्योंकि आश्रित तुर्की के द्वारा ही रूस के हितों की काला सागर क्षेत्र में सुरक्षा हो सकती थी। नैपोलियन तृतीय को अपने पद को सुरक्षित रखने के लिए युद्ध में सफलता प्राप्त करने की आवश्यकता थी। इंग्लैण्ड को अपनी सामरिक सुरक्षा के लिए भूमध्यसागर में स्वतन्त्र तुर्की की आवश्यकता थी। वस्तुतः एक देश के दूसरे देश पर आक्रमण ने वरन् आशंका एवं अविश्वास ने क्रीमिया के युद्ध को जन्म दिया।"

सन् 1740 में फ्रान्स के साथ सन्धि के परिणामस्वरूप जेरूसलम के धार्मिक स्थलों का नियन्त्रण लातीनी भिक्षु के रूप में विदित फ्रान्सीसी ईसाई भिक्षुकों को मिल गया। कुछ काल बाद लातीनी भिक्षुओं द्वारा अपने दायित्व का सन्तोषजनक रूप से निर्वाह नहीं करने के कारण इन स्थलों का नियन्त्रण रूस के सक्रिय समर्थन से यूनानी भिक्षुओं के हाथों में चला गया। सन् 1850 में फ्रान्स के पादरी वर्ग को प्रसन्न करने के लिए नैपोलियन तृतीय ने नियन्त्रण को पुनः लातीनी भिक्षुओं के हाथों में लाने का प्रयास किया। आस्ट्रिया के कैथोलिक अनुयायियों ने फ्रान्स का समर्थन किया। नैपोलियन को प्रतीत हुआ कि इसके द्वारा वह लोकप्रियता मिल सकती जिसकी उसको तलाश थी।

तुर्की ने एक पुरानी सन्धि के प्रावधानों के अनुसार अपने अधिकृत क्षेत्रों में रोमन कैथोलिक धर्मावलम्बियों की सुरक्षा का अधिकार फ्रान्स को दे दिया। इन भिक्षुकों को पवित्र स्थानों के पूर्ण संरक्षण के अधिकार के साथ कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त थे, परन्तु फ्रान्स की क्रान्ति काल में फ्रान्स द्वारा नियन्त्रण करने से पूर्व यूनानी चर्च के भिक्षुकों ने बलपूर्वक रोमन कैथोलिक मतावलम्बियों के अधिकृत क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। रूस यूनानी रूढ़िवादी ईसाई धर्मावलम्बियों के हितों का प्रबल समर्थक तथा संरक्षक था। फ्रान्स धर्म युद्धों के समय से एक प्रमुख कैथोलिक मतावलम्बी देश था। इस कारण भी वह स्वयं को रोमन कैथोलिक धर्मावलम्बियों का प्रबल समर्थक तथा संरक्षक मानता था। यह दोनों यूरोपीय शक्तियाँ ओटोमन साम्राज्य के विषय में उलझ गयीं। तत्कालीन फ्रान्स के शासक नैपोलियन तृतीय ने फ्रान्स की प्रतिष्ठा तथा गौरव की दृष्टि से तथा फ्रान्स के कैथोलिक मतावलम्बियों का समर्थन एवं निष्ठा प्राप्त करने के उद्देश्य से रोमन कैथोलिक धर्मावलम्बियों के समस्त अधिकारों की पूर्णरूपेण पुनर्स्थापना एवं जेरुसलम और फिलिस्तीन (Palestine) में स्थित पवित्र धार्मिक स्थानों पर पूर्ण नियन्त्रण की माँग की। तुर्की के सुल्तान ने अनिच्छा से इन माँगों को स्वीकार कर लिया। आशानुरूप उसने रूस के जार निकोलस प्रथम को अप्रसन्न एवं उत्तेजित किया। जार निकोलस ने घृणा व्यक्त करते हुए नैपोलियन तृतीय को दम्भी तथा निरंकुश बोनापार्ट कहा। जार समीपवर्ती पूर्व में फ्रान्स के विश्वासघात के द्वारा अपनी शक्ति को क्षीण अथवा समाप्त नहीं करवाना चाहता था। इसलिए उसने तुर्की सुल्तान से स्वीकृत माँगों को वापिस लेने के लिए दबाव डाला।

नैपोलियन तृतीय ने बलपूर्वक फ्रान्स की सत्ता प्राप्त की थी। जन समर्थन का अभाव था। इस कारण वह अपनी दुर्बलता से भलीभाँति अवगत था। अस्तु नैपोलियन तृतीय सशक्त विदेश. नीति के द्वारा अपने सिंहासनारोहण को न्यायोचित सिद्ध करना चाहता था, जिससे फ्रान्स की जनता उसके शासन के साथ समन्वय स्थापित कर ले। रोमन कैथोलिक भिक्षुकों के समर्थकों में रूस के साथ युद्ध उसके उद्देश्य के अनुकूल था। मास्को से अपमान का प्रतिशोध लेने के माध्यम से फ्रान्स के राष्ट्रीय अहं की भी तुष्टि होगी। यह पुराना नैपोलियन कालीन व्यवहार होगा, जिससे उसका अस्थिर शासन भी स्थिर तथा सुदृढ़ होगा। नैपोलियन तृतीय का रूस के जार निकोलस प्रथम के विरुद्ध व्यक्तिगत द्वेष भी था। निकोलस प्रथम ने राजाओं के मध्य नैपोलियन तृतीय को शिष्ट भाषा में सम्बोधित करने से मना करके अपमानित किया था।

धार्मिक स्थानों के सन्दर्भ में फ्रान्स के साथ विवाद ने जार निकोलस प्रथम की महत्वाकांक्षाओं को उद्वेलित किया था। वह तुर्की को यूरोप का रोगी व्यक्ति मानता था और निकट भविष्य में तुर्की साम्राज्य के विघटन के प्रति आश्वस्त था। सन् 1853 में सेन्ट पीटर्सबर्ग में ब्रिटिश राजदूत के साथ विचार-विमर्श के समय इंग्लैण्ड के साथ परस्पर हित में सौहार्द्रपूर्ण व्यवस्था की तीव्र इच्छा व्यक्त की। इस विचार-विमर्श में निकोलस प्रथम ने रोगी व्यक्ति की मृत्यु से पूर्व विभाजन का प्रस्ताव रखा था। उसने मत व्यक्त किया कि इंग्लैण्ड, मिस्र तथा क्रेट पर अपना आधिपत्य स्थापित कर ले और रूस को कुस्तुनतुनिया तथा डारडेनल्स पर नियन्त्रण का अधिकार दिया जाये, परन्तु इन क्षेत्रों पर रूस का स्वामित्व नहीं होगा। ये प्रस्ताव ब्रिटेन को विचलित करने के लिए पर्याप्त थे, परन्तु इंग्लैण्ड को जार की निष्ठा एवं ईमानदारी में सन्देह था। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड ने ओटोमन साम्राज्य के तत्काल विघटन के तथ्य को अथवा विभाजन की किसी योजना में एक सक्रिय सदस्य होने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। ब्रिटेन तुर्की के पुनरुत्थान में विश्वास करता था, तथा रूस के आक्रमण के विरुद्ध निरोध स्वरूप ओटोमन साम्राज्य की एकता तथा अखण्डता को बनाये रखने की नीति थी।

निकोलस प्रथम आक्रमणात्मक नीति के लिए कृत संकल्प था। उसने एक राजदूत कुस्तुनतुनिया भेजा और उसके माध्यम से पवित्र स्थानों पर नियन्त्रण की ही माँग नहीं की वरन् सुल्तान के अधिकृत क्षेत्र में समस्त यूनानी चर्च के ईसाई धर्मावलम्बियों के संरक्षक के रूप में रूस की मान्यता की भी माँग की। रूस का दावा कट्चुक-कैनार्डजी की सन्धि के प्रावधानों पर आधारित था। रूस की दूसरी माँग की स्वीकृति से रूस को तुर्की के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिल जाता और तुर्की साम्राज्य की अधिकांश जनता की निष्ठा सुल्तान से रूस के जार को स्थानान्तरित होने की प्रबल सम्भावना थी। सुल्तान ने ब्रिटिश राजदूत स्ट्रेटफोर्ड डी रैडक्लिफ के परामर्श पर दोनो प्रश्नों पर अलग-अलग विचार किया। सुल्तान ने पवित्र स्थानों से सम्बन्धित माँग को स्वीकार कर लिया परन्तु यूनानी रूढ़िवादी ईसाई मतावलम्बियों के संरक्षक के रूप में मान्यता के प्रश्न को अस्वीकार कर दिया। रूस ने कुस्तुनतुनिया स्थित अपने राजदूत को वापिस बुला लिया और रूस की सेना ने डैन्यूब नदी क्षेत्र में स्थित वैलेशिया तथा मोलडेविया प्रदेशों में बिना युद्ध की घोषणा किये

प्रवेश किया। रूस अपनी माँगों की स्वीकृति के लिए तुर्की पर दबाव डालना चाहता था। रूस सर्वप्रथम तुर्की साम्राज्य का विघटन चाहता था, यदि वह सम्भव नहीं हो, तब रूढ़िवादी ईसाई धर्मावलम्बियों की सुरक्षा के नाम पर ओटोमन साम्राज्य के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करके पूर्ण नियन्त्रण करना चाहता था।

रूस के आचरण से समस्त यूरोपीय देश अत्यधिक चिन्तित थे। ब्रिटेन, फ्रान्स, आस्ट्रिया और प्रशा ने संयुक्त रूप से वियाना टिप्पणी के नाम से एक प्रस्ताव रूस और तुर्की को भेजा। इस प्रस्ताव में कैनार्डजी और एड्रियानोपिल सन्धियों के प्रावधानों की पुष्टि की गयी थी और पोर्ट (Porte) के ईसाई धर्मावलम्बियों की सुरक्षा की आवश्यकता पर बल दिया गया था। रूस ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसका आशय था कि "जार द्वारा सुरक्षा" को व्यक्त किया गया था जबकि तुर्की ने ब्रिटिश राजदूत लार्ड स्ट्रेटफोर्ड दि रैडक्लिफ (Lord Stratford de Redcliffe) ने व्याख्या की कि "पोर्ट द्वारा सुरक्षा" की चर्चा थी। इस भ्रान्ति का निराकरण हो सकता था। ब्रिटिश राजदूत रैडकिल्फ, रूस से स्पष्ट रूप से अपने दावे का परित्याग करवाना चाहता था। उसने कठोर दृष्टिकोण रखा। "यथार्थ में उसने अपनी सरकार सहित चार शक्तियों के निर्णय को अस्वीकार कर दिया।" रूस द्वारा वियाना प्रस्ताव को स्वीकार करने के उपरान्त तुर्की से अस्वीकार करवा दिया। उसके इस आचरण से इंग्लैण्ड को, विवाद के शान्तिपूर्ण समाधान को रोकने का दोषी माना गया। रूस के विस्तारवाद की आशंका से ब्रिटेन और फ्रान्स संयुक्त रूप से अपने नौ-सैनिक दस्ते डारडेनल्स भेज चुके थे और रूस को संयम बनाये रखने की चेतावनी दे चुके थे।

युद्ध का आरम्भ (Outbreak of War)—कूटनीतिक प्रयासों के असफल हो जाने पर विवाद का शक्ति द्वारा ही समाधान हो सकता था। वियाना प्रस्ताव को अस्वीकार करने के बाद तुर्की ने रूस से अपने अधिकृत क्षेत्रों को खाली करने का आग्रह किया। रूस ने इस आग्रह को अस्वीकार कर दिया। अस्तु तुर्की ने सन् 1853 में ब्रिटेन और फ्रान्स के सक्रिय सहयोग की आशा से रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तथा तुर्की की नौ-सेना ने डैन्यूब क्षेत्र में आक्रमण कर दिया। तदुपरान्त रूस की नौ-सेना ने प्रत्युत्तर में कार्यवाही करते हुए सिनोप में तुर्की नौ-सेना के दस्ते को पूर्णरूप से ध्वस्त कर दिया। ब्रिटेन और फ्रान्स की संयुक्त नौ-सेना कुस्तुनतुनिया के निकट पहुँच गयी। सिनोप के नृशंस हत्याकांड ने इंग्लैण्ड में जनमत को उत्तेजित किया। फ्रान्स पहले ही तैयार था। तुर्की के अधिकृत क्षेत्रों को खाली करने की माँग करते हुए ब्रिटेन और फ्रान्स ने संयुक्त रूप से अन्तिम निर्णय की चेतावनी रूस को प्रेषित की। ब्रिटेन और फ्रान्स के समाचार-पत्रों ने रूस की भयाक्रान्त करने वाली गतिविधियों के विरुद्ध व्यापक प्रचार अभियान आरम्भ कर दिया। ब्रिटेन और फ्रान्स की सरकारों ने संयुक्त रूप से माँग की कि रूस को डैन्यूबीय क्षेत्रों को तत्काल खाली कर देना चाहिए। रूस द्वारा संयुक्त माँग को अस्वीकार करने पर, ब्रिटेन और फ्रान्स ने तुर्की के साथ मैत्री सन्धि की और सन् 1854 में रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अगले वर्ष सार्डीनिया-पीडमोन्ट की सेना भी, फ्रान्स जैसी महान् शक्ति की मित्रता प्राप्त करने की आशा से युद्ध में सक्रिय रूप से सम्मिलित हो गयी। सार्डीनिया-पीडमोन्ट इटली प्रायद्वीप में अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उत्सुक था।

आस्ट्रिया ने भी रूस को चेतावनी दी कि यदि वह डैन्यूबीय क्षेत्र खाली नहीं करेगा, आस्ट्रिया की सेना मित्र राष्ट्रों की सेना में सम्मिलित होकर रूस के विरुद्ध युद्ध में सक्रिय भाग लेगी। एक समय ऐसा प्रतीत हुआ कि समस्या का शान्तिपूर्वक समाधान हो जायेगा। लेकिन नैपोलियन तृतीय अपनी सत्ता को स्थायी एवं सुदृढ़ करने के लिए सैनिक अभियान की जनसमुदाय द्वारा प्रशंसा के लिए उत्सुक था। अस्तु वह रूस को अपमानित करके सन् 1812 की कटु स्मृतियों को समाप्त कर देना चाहता था। ब्रिटेन की भी प्रबल इच्छा थी कि रूस को पराजित कर अपमानित करना चाहिए, जिससे भविष्य में रूस तुर्की तथा ब्रिटेन के समीपवर्ती पूर्व (Near East) में हितों के लिए कोई संकट नहीं बन सके। अतः ब्रिटेन और फ्रान्स ने अपनी नौ-सेना काले सागर में भेज दी।

युद्ध का मूलभूत उद्देश्य रूस को डैन्यूबीय क्षेत्र से निष्कासित करना था और इस उद्देश्य की शीघ्र ही प्राप्ति हो गयी। तुर्की ने अत्यधिक शौर्य एवं पराक्रम से सिलिस्ट्रिया की रक्षा करके जार निकोलस प्रथम की सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया तथा आस्ट्रिया के युद्ध के अनुकूल दृष्टिकोण एवं कार्यवाही ने जार निकोलस प्रथम को डैन्यूबीय क्षेत्र खाली करने के लिए विवश कर दिया। लेकिन मित्र राष्ट्रों ने रूस की शक्ति को पंगु करने का निश्चय किया, जिससे वह तुर्की को पुनः आक्रमण की धमकी नहीं दे सके। प्रारम्भ में युद्ध क्रीमिया तक ही सीमित था। मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने क्रीमिया के बाद अपने मुख्य लक्ष्य सैबस्टोपोल (Sebastopol) की ओर प्रस्थान किया। सैबस्टोपोल यथार्थ में पूर्व में रूस की शक्ति का हृदय के सदृश मुख्य केन्द्र था। अलमा नदी के तट पर युद्ध में तथा इन्करमान के युद्ध में निर्णय नहीं हो सका था। दैविक विपत्तियों जैसे तूफान, हिमझंझावात, हैजा, पेचिश और मलेरिया ज्वर के कारण मित्र राष्ट्रों के सैनिक बहुत बड़ी संख्या में मर चुके थे। संयुक्त सेना में कुशल नेतृत्व तथा कुशल आपूर्ति व्यवस्था का अभाव था। सन् 1855 में सार्डीनिया-पीडमोन्ट भी मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध में सम्मिलित हो गया। रूस की सेना भी समान रूप से अव्यवस्थित तथा असंगठित थी। मित्र राष्ट्रों की सेना ने सैबस्टोपोल की घेराबन्दी कर दी और शेष युद्ध इसी घेराबन्दी पर ही केन्द्रित रहा। रूस की सेना ने इस घेराबन्दी को समाप्त करने का अथक प्रयास किया। रूस का ब्रिटिश आपूर्ति केन्द्र बालाकलावा पर आक्रमण विफल हो गया। बालाकलावा का युद्ध विख्यात लाइट ब्रिगेड के अद्वितीय शौर्य एवं पराक्रम की दृष्टि से, यद्यपि यह निरर्थक सिद्ध हुआ, स्मरणीय है। सैबस्टोपोल की घेराबन्दी समाप्त करने के लिए रूस ने इन्करमान के युद्ध के रूप में एक अन्य प्रयास किया, परन्तु रूस की सेना यहाँ भी पराजित हुई। घेराबन्दी समाप्त करने के लिए रूस के अन्तिम प्रयास को टेकरनाया (Techernaya) नदी के तट पर सार्डीनिया की सेना ने अदम्य साहस एवं वीरता से विफल कर दिया। इसी समय रूस के जार निकोलस प्रथम के निधन के परिणामस्वरूप शान्ति वार्ता प्रारम्भ हुई और व्यावहारिक दृष्टि से युद्ध समाप्त हो गया।

पेरिस की शान्ति सन्धि (Peace Treaty of Paris—30th March, 1856)

पेरिस की शान्ति सन्धि जिस पर 30 मार्च, 1856 को हस्ताक्षर हुए थे, के प्रावधानों के अनुसार, यूरोपीय शक्तियों ने तुर्की की स्वतन्त्रता, एकता एवं अखण्डता का पूर्ण आश्वासन दिया और तुर्की को यूरोप के सार्वजनिक विधि अथवा यूरोपीय संघ (Concert of

Europe) का सदस्य बना दिया गया। तुर्की के सुल्तान ने भी अपनी ईसाई धर्मावलम्बी जनता की स्थिति में सुधार के लिए वचन दिया।

(2) रूस का मोलडेविया तथा वैलेशिया (Wallachia) पर नियन्त्रण समाप्त हो गया। ये दोनों तुर्की के अधिराज्य के अन्तर्गत स्व-शासित राज्य बना दिया गये और यूरोपीय शक्तियों ने सामूहिक सुरक्षा का आश्वासन दिया। रूस ने तुर्की साम्राज्य के समस्त रूढ़िवादी ईसाई धर्मावलम्बियों के संरक्षण का दावा त्याग दिया। बैसरबिया का क्षेत्र पुनः तुर्की साम्राज्य को प्राप्त हो गया, इससे रूस की सीमा डैन्यूब नदी से बहुत पीछे स्वीकृत की गयी।

(3) कालासागर को तटस्थ घोषित क़र दिया गया। रूस अथवा अन्य कोई यूरोपीय शक्ति कालासागर के तटीय क्षेत्र में युद्धपोत अथवा शस्त्रागार नहीं रख सकती थी। डैन्यूब नदी को अन्तर्राष्ट्रीय जल मार्ग घोषित कर दिया गया और समस्त देश इस जल मार्ग के प्रयोग के लिए स्वतन्त्र थे।

(4) समुद्री युद्ध से सम्बन्धित समस्त नियमों पर सहमति थी। निजी अथवा गैर-सरकारी युद्धपोतों का आवागमन समाप्त कर दिया गया। तटस्थ जलयानों के सामान के पकड़ने पर अब प्रतिबन्ध था, जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाये कि यह युद्ध के लिए प्रतिबन्धित सामान था।

क्रीमिया युद्ध के परिणाम (Results of the Cremean War)—पेरिस की सन्धि अल्पकालीन समाधानों के रहस्यों से पूर्ण थी। इस सन्धि के वास्तविक उद्देश्यों की कभी पूर्ति नहीं हुई परन्तु इस सन्धि के अप्रत्यक्ष परिणाम अत्यधिक महत्वपूर्ण थे और कुछ ने अनैच्छिक लाभदायक विकास कार्यक्रमों का सूत्रपात किया। पेरिस की शान्ति सन्धि ने कुछ काल के लिए तुर्की साम्राज्य में रूस की विस्तारवादी नीति के कार्यान्वयन को रोक दिया। तुर्की के रूढ़िवादी ईसाई धर्मावलम्बियों के संरक्षण का दावा रूस ने त्याग दिया। इससे उसका प्रभुत्व समाप्त हो गया। इसके अतिरिक्त बैसरबिया के मोलडेविया में विलय एवं काले सागर को तटस्थ क्षेत्र घोषित करने से रूस को डैन्यूबीय क्षेत्र से पीछे हटा दिया गया। वैलेशिया तथा मोलडेविया, तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत, दो स्वायत्तशासी राज्यों के अभ्युदय से रूस और तुर्की के मध्य बहुत बड़ा अवरोध उत्पन्न हो गया। इसने रूस की विस्तारवादी नीति के कार्यान्वयन को रोक दिया।

एक प्रकार से तुर्की क्रीमिया युद्ध से सर्वाधिक लाभान्वित हुआ। तुर्की को मित्र राष्ट्रों के संयुक्त संरक्षण में नया जीवन मिला। क्षेत्रीय एकता एवं अखण्डता सुनिश्चित हो गयी। इस प्रकार तुर्की को अपनी आन्तरिक व्यवस्था और शक्ति के विकास के लिए अवसर मिल गया। इस दृष्टिकोण से देखने से ज्ञात होता है कि पेरिस की शान्ति सन्धि पूर्वी विवाद का सन्तोषजनक समाधान थी। रूस को अवरुद्ध कर दिया और रोगी व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़ा होने का अवसर मिल गया। ओटोमन साम्राज्य के विघटन को रोकने तथा रूस को यूरोपीय मंच से दूर रखना, इस शान्ति सन्धि के दो प्रमुख उद्देश्य थे। लेकिन युद्ध के उपरान्त प्राप्त परिणामों, जो भारी बलिदानों के बाद अनुपयुक्त थे, के प्रति अत्यधिक असन्तोष की भावना थी। साथ ही जो कुछ थोड़ा बहुत प्राप्त हुआ था, उसके दीर्घकाल तक चलने की कोई सम्भावना नहीं थी। भावी घटनाओं ने पूर्वाभास को न्यायोचित सिद्ध कर दिया और इस

दृष्टिकोण की पुष्टि की कि क्रीमिया युद्ध उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वाधिक निरर्थक युद्ध था। रूस ने सन् 1871 में इस सन्धि के कालासागर को तटस्थ बनाये रखने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और सन् 1878 में बैसबेरिया को पुनः प्राप्त करके क्रीमिया युद्ध के कारण अपमान को पूर्णरूप से समाप्त कर दिया।

रूस के जार अलेक्जेण्डर द्वितीय ने देश में अनेक सुधार किये। कृषि दासों की मुक्ति इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। रूस के विस्तारवाद को नया दृष्टिकोण एवं नई दिशा दी। यूरोप में विस्तार अभियान के अवरुद्ध होने के बाद रूस ने इस कार्यक्रम को मध्य एशिया में स्थानान्तरित कर दिया जो भारत में ब्रिटिश सत्ता के लिए एक चेतावनी सिद्ध हुआ। 21 वर्ष की अवधि में रूस ने अपनी सेना को पुनः सुसंगठित तथा प्रशिक्षित किया, तुर्की से युद्ध किया और सैन स्टैफनों की सन्धि के लिए तुर्की को बाध्य किया। समीपवर्ती यूरोप में पुनः युद्ध की स्थिति हो गयी। इस सन्धि ने रूस की कुस्तुनतुनिया के विरुद्ध प्रगति को केवल स्थगित कर दिया था, लेकिन रूस की महत्वाकांक्षाओं को समाप्त नहीं किया था। ओटोमन साम्राज्य में सुधार की आशा भी निराशा में परिवर्तित हो गयी। सुल्तान ने अपने वचन का पालन नहीं किया। यथार्थ में पेरिस शान्ति सन्धि के एक प्रावधान ने अन्य शक्तियों को सुल्तान की अपनी जनता के साथ परस्पर सम्बन्धों के विषय में सामूहिक अथवा पृथक् हस्तक्षेप करने के अधिकार से वंचित कर दिया था। इस प्रकार पूर्वी विवाद के समाधान के रूप में पेरिस की सन्धि असफल रही।

अप्रत्यक्ष परिणाम (Indirect Result)—निःसन्देह पेरिस शान्ति सन्धि के दो मुख्य उद्देश्यों की कभी पूर्ति नहीं हुई परन्तु इसके अकल्पित अप्रत्यक्ष परिणाम अत्यधिक महत्वपूर्ण थे। क्रीमिया युद्ध के राजनीतिक महत्व के सम्बन्ध में विद्वानों एवं इतिहासकारों के भिन्न-भिन्न मत हैं, परन्तु सर्वसम्मति से एक विचार है कि "यह युद्ध पूर्वी विवाद का एक महत्वपूर्ण अध्याय एवं उन्नीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक विकास का पूर्वाभास था।" क्रीमिया युद्ध के अप्रत्यक्ष परिणाम अत्यधिक दूरगामी थे। "क्रीमिया की कीचड़ से नवीन इटली का और कम स्पष्ट रूप से नवीन जर्मनी का निर्माण हुआ।" सार्डीनिया-पीड़मोन्ट को, मित्र राष्ट्रों के साथ सम्मिलित होने के कारण शान्ति सन्धि में सम्मिलित किया गया। सार्डीनिया के मन्त्री कैवोर (Cavour) ने एकत्रित राजनयिकों के समक्ष इटली की समस्या एवं अपने पक्ष को प्रस्तुत किया, यूरोपीय शक्तियों की सहानुभूति और इटली की स्वतन्त्रता के लिए नैपोलियन तृतीय का सक्रिय समर्थन प्राप्त किया। इस प्रकार इटली स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया। इस युद्ध ने वियाना काँग्रेस के निर्णयों के अनुसार स्थापित यूरोपीय स्थिति को उसी के अनुरूप बनाये रखने के परम्परागत प्रबल समर्थक एवं संरक्षक दो राज्यों, रूस और आस्ट्रिया की शक्ति को अत्यधिक क्षीण कर दिया।

दूसरे, युद्ध के आस्ट्रिया के भविष्य पर दूरगामी प्रभाव पड़े थे। आस्ट्रिया की शत्रुतापूर्ण तटस्थता के दृष्टिकोण ने रूस, जिसने सन् 1848-49 में हंगरी के विद्रोह काल में आस्ट्रिया को विघटन से बचाया था, को अप्रसन्न तथा उत्तेजित कर दिया। परिणामस्वरूप, मैटरनिख की नीति का मूल आधार तथा आस्ट्रिया साम्राज्य को विनाश से बचाने वाली तीन निरंकुश शक्तियों रूस, आस्ट्रिया और प्रशा की पुरानी मैत्री सन्धि समाप्त हो गयी। रूस ने आस्ट्रिया

की कृतघ्नता की कटु आलोचना करते हुए प्रशा की मैत्री पूर्ण तटस्थता की प्रशंसा की। इस स्थिति ने संशोधनवादी उद्देश्यों और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शक्ति का निःसंकोच प्रयोग करने के लिए उत्साही नई पीढ़ी के राजनीतिज्ञों, नैपोलियन तृतीय, कैवोर और बिस्मार्क को अपूर्व सुअवसर प्रदान किया। शक्तियों का नये ढंग से पुनर्गठन हुआ, जिसके महत्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम हुए। बिस्मार्क ने रूस के आस्ट्रिया के साथ कटु सम्बन्धों का लाभ लेते हुये आस्ट्रिया को जर्मनी की भूमि से निष्कासित करने की योजना को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से, रूस के जार के साथ घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप भावी आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में आस्ट्रिया अन्य यूरोपीय शक्तियों से अलग हो गया, और रूस की तटस्थता के कारण प्रशा से पराजित हुआ। इस प्रकार रूस की तटस्थता पर आधारित विशाल साम्राज्य स्थापित हुआ। इंगलैण्ड क्रीमिया युद्ध में अपनी सैनिक अयोग्यता तथा दुर्बलता को समझते हुए महाद्वीपीय विवादों से विलग हो गया और आस्ट्रिया, इटली और जर्मन राष्ट्रवाद की दया पर निर्भर हो गया।

इस युद्ध ने यूरोपीय राजनीति में ब्रिटेन की एक सैनिक शक्ति के रूप में दुर्बलता एवं अयोग्यता को व्यक्त कर दिया। इस युद्ध से सिद्ध हो गया कि ब्रिटिश आर्थिक तथा राजनीतिक विकास के अनुरूप सैन्य शक्ति का विकास नहीं हुआ था। अस्तु ब्रिटेन यूरोप के युद्धों में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं था। महाद्वीपीय राजनीतिज्ञ अपने भूमिगत युद्धों को सफलतापूर्वक संचालित करने में पूर्वापेक्षा अधिक शक्ति और चेतना का अनुभव करने लगे।

इस युद्ध से रूस और फ्रान्स को सर्वाधिक कष्ट एवं पीड़ा हुई। रूस के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हो गया, और उसने फ्रान्स को अलग छोड़कर प्रशा के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप सन् 1870 में प्रशा-फ्रान्स युद्ध में फ्रान्स की अपमानजनक पराजय हुई।

इन राजनीतिक परिणामों के अतिरिक्त युद्ध में सम्मिलित देशों के लगभग 5 लाख योद्धा युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त हुए। सन् 1854 से 1856 के मध्य सर्वाधिक व्यक्ति हताहत हुए। यह युद्ध नवीन आदर्शों एवं सिद्धान्तों पर हुआ था। पेरिस में युद्ध में सम्मिलित देश नौ-सैनिक युद्ध के नियमों पर सहमत हो गये। तदुपरान्त हेग सम्मेलन (Hague Convention) में भूमिगत युद्ध, नौ-सैनिक युद्ध तथा युद्धवन्दियों से सम्बन्धित नियम एवं सिद्धान्त वनाये गये। वियाना सम्मेलन में सर्वसम्मति से कूटनीति सम्बन्धी नियम एवं सिद्धान्त बनाये गये।

फ्लोरेन्स नाइटिन्गेल के नेतृत्व में चिकित्सालय एवं चिकित्सा सुविधाओं में पर्याप्त सुधारों का सूत्रपात हुआ। लगभग 5 लाख सैनिक युद्ध काल में निमोनिया, हैजा, टायफायड आदि रोगों से काल कवलित हो गये। इसी समय विख्यात ब्रिटिश नर्स फ्लोरेन्स नाइटिन्गेल ने सैनिक शिविरों में सैनिकों की सेवा-सुश्रूषा तथा चिकित्सा सुविधा प्रदान करने का पवित्र कार्य आरम्भ किया। प्रारम्भ में उसका बहुत विरोध किया गया परन्तु कालान्तर में उसकी उल्लेखनीय मानवीय सेवाओं को 'लेडी विद दि लैम्प' (Lady with the Lamp) की

उपाधि से सम्मानित किया गया। उसकी चिकित्सा सम्बन्धी कार्य पद्धति को विश्व के समस्त देशों ने स्वीकार किया और समयानुकूल विकसित किया। इसी पुनीत मानवीय भावना की प्रेरणा से सन् 1864 में आयोजित जेनेवा सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास की स्थापना हुई। इस युद्ध के अप्रत्यक्ष तथा आकस्मिक परिणाम यूरोप एवं विश्व के इतिहास में अत्यधिक रचनात्मक सिद्ध हुए। इस प्रकार क्रीमिया युद्ध का यूरोप में प्रभाव बहुत प्रभाव था।

नैपोलियन तथा उसके सैनिकों ने अपने मिस्र के असफल सैनिक अभियान की अवधि में नवीन चेतना तथा जागृति का बीजारोपण कर दिया था। इसके अतिरिक्त नैपोलियन युग की समाप्ति पर तुर्की साम्राज्य में कुछ नवीन समस्याओं का आविर्भाव हुआ। तुर्की की सैनिक दुर्बलता ने विदेशी आक्रमणों को आमन्त्रित करने के अतिरिक्त साम्राज्य की विभिन्न राष्ट्रीयताओं की जनता तथा अधीन शक्तिशाली शासकों को अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहित किया। उन्नीसवीं शताब्दी का राष्ट्रीयता के आदर्श का बाल्कन प्रायद्वीप में प्रचार और प्रसार आरम्भ हो गया और राष्ट्रीयता की भावना तथा चेतना से प्रेरित तुर्की शासन के अन्तर्गत ईसाई धर्मावलम्बी राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता के लिए व्यग्र थे। वे शीघ्रातिशीघ तुर्की शासन से मुक्त होना चाहते थे। परिणामस्वरूप युद्ध तथा भीषण अत्याचार बाल्कन क्षेत्र के स्थायी अवयव बन गये। इस प्रकार ओटोमन साम्राज्य को ईसाई धर्मावलम्बी जनता के कारण आन्तरिक विघटन तथा रूस की विस्तारवादी नीति के कारण बाह्य आक्रमण का संकट था। इस द्विपक्षीय समस्या तथा उसके परिणामस्वरूप परस्पर विरोधी हितों ने पूर्वी विवाद में नये तथ्यों का सूत्रपात किया था। लार्ड मोरले ने पूर्वी विवाद की सीमित शब्दों में व्याख्या करते हुए कहा है, "परस्पर विरोधी हितों प्रतिद्वन्द्वी व्यक्तियों तथा परस्पर विरोधी आस्थाओं के स्थानान्तरणीय, दुर्दमनीय ताने-बाने के रूप में परस्पर सम्बद्ध विवाद था।"

तुर्की का शासक महमूद द्वितीय (Mahmud II Ruler of Turkey)—महमूद द्वितीय ओटोमन साम्राज्य का शासक था। उसके समक्ष अनेक आन्तरिक एवं बाह्य समस्याएँ थीं। मिस्र के महमत अली ने अपने स्वतन्त्र राज्य की घोषणा कर दी थी। सर्ब लोग विद्रोह कर रहे थे। सीरिया के स्थानीय राज्यपाल स्वतन्त्र शासक के अनुरूप ही थे। इराक की केवल मौखिक सहानुभूति थी। विभिन्न जटिल समस्याओं के उपरान्त महमूद द्वितीय ने आन्तरिक सुधारों में निरन्तर प्रगति की। जानिससारियों के रूप में विख्यात परम्परागत सैनिकों का दमन करते हुए उसने आधुनिक पद्धति पर सेना का गठन किया। सामन्त प्रथा के उन्मूलन के साथ अतीत की सामाजिक व्यवस्था समाप्त हो गयी। सेना के पुनर्गठन के लिए उसने यूरोपीय शक्तियों की सहायता ली तथा सेना की कुशलता, अनुशासन एवं आधुनिकीकरण के लिए सुल्तान ने उच्च शिक्षा, कर प्रणाली तथा प्रशासनिक व्यवस्था को आधुनिक स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार अतीत की न्यूनतम प्रशासनिक व्यवस्था के स्थान पर शक्तिशाली केन्द्रीकृत सत्ता का आविर्भाव हुआ। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उसने उल्मा तथा अन्य लोकप्रिय धार्मिक संगठनों के प्रभाव को अस्वीकार कर दिया।

सुसंगठित एवं प्रशिक्षित आधुनिक सेना तथा कुशल प्रशासन की सहायता से सुल्तान महमूद द्वितीय ने अर्द्ध स्वतन्त्र राज्यपालों, स्थानीय शासकों एवं अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों पर अपनी सत्ता का विस्तार किया। अपने साम्राज्य के समस्त भागों में अपनी राजनीतिक शक्ति

को सुदृढ़ किया। मिस्र का शासक महमत अली ही सुल्तान के आधिपत्य को अस्वीकार करता था। अन्ततोगत्वा ओटोमन साम्राज्य ने यूरोपीय शक्तियों की सहायता एवं सन् 1840 की लन्दन की सन्धि के माध्यम से सीरिया पुनः प्राप्त कर लिया, जबकि महमत अली को मिस्र के वंशानुगत शासक के रूप में मान्यता प्रदान की गयी। यूनान तथा सर्बिया पर सुल्तान के नियन्त्रण के प्रयास असफल हो गये। रूस ने यूरोपीय विरोध के विरुद्ध उनका समर्थन किया।

महमूद द्वितीय के देहावसान के बाद ओटोमन साम्राज्य पूर्वपेक्षा अधिक शक्तिशाली एवं सुदृढ़ था, परन्तु यूरोपीय प्रभाव ने साम्राज्य के आधुनिकीकरण में सहायता करने की अपेक्षा स्थिति को अत्यधिक दयनीय बना दिया। रूस ने पृथकतावादी आन्दोलनों का प्रबल समर्थन किया, जबकि ब्रिटेन ने उनका विरोध किया।

विकट समस्याओं के उपरान्त भी ओटोमन साम्राज्य का उपचार आरम्भ हो चुका था। परिवर्तन के प्रति आदर एवं सम्मान की भावना महमूद द्वितीय स्थापित कर चुका था। सन् 1828 में पगड़ी के स्थान पर फैज टोपी का प्रयोग आरम्भ हो चुका था। महमूद द्वितीय के पुत्रों के शासन काल (सन् 1839-76), जो तन्जीमत (Tanzimat) युग के नाम से विख्यात था, में अनेक सुधार कार्यक्रम आरम्भ किये गये। आधुनिक इतिहासकारों ने मत व्यक्त किया है कि ये सुधार मुख्य रूप से ओटोमन साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए थे। प्रशा की सफल अनिवार्य सैन्य भर्ती प्रणाली पर आधारित सेना में महत्वपूर्ण सुधार किये गये। इसके साथ प्रशासनिक व्यवस्था, शिक्षा पद्धति तथा न्याय प्रणाली में अनेक उल्लेखनीय सुधारों का सूत्रपात किया गया। प्रशासनिक सेवाओं में प्रशिक्षण के लिए एक विद्यालय स्थापित किया गयां जो सन् 1915 में अंकारा विश्वविद्यालय का एक भाग बन गया। सन् 1846 में राज्य शिक्षा की व्यापक एवं विस्तृत योजना बनायी गयी। एक अलग शिक्षा मन्त्रालय बनाया गया। प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा से विश्वविद्यालय स्तर तक की व्यापक रूपरेखा इस योजना में सम्मिलित थी। प्रचलित संकीर्ण, पुरातन पंथी, परम्परावादी एवं रूढ़िवादी शिक्षा पद्धति को गहरा आघात पहुँचा।

विधि एवं न्याय प्रणाली के क्षेत्र में तन्जीमत सुधारकों ने अनेक विधि संहिताओं के विधि संकलन एवं निर्माण में उल्लेखनीय कार्य किया। ये सुधारक नैपोलियन द्वारा निर्मित विभिन्न संहिताओं से अत्यधिक प्रभावित थे। न्यायालयों पर उल्माओं का नियन्त्रण समाप्त हो गया और विवादों का निर्णय नई विधि संहिताओं के अनुसार किया जाता था। तन्जीमत सुधारकों का रूढ़िवादियों तथा परम्परावादियों ने कटु विरोध किया। धन एवं योग्य और कुशल व्यक्तियों का भी अभाव था। इन कारणों से इन सुधारकों ने आधुनिकीकरण एवं केन्द्रीकरण की दिशा में मंद गति से प्रगति की। इसके अतिरिक्त यूरोपीय हस्तक्षेप के कारण केन्द्रीकरण की प्रक्रिया मन्द हो गयी। इसी कारण बोसनिया और मोन्टेनोग्रो में पुनः सत्ता स्थापित करने के प्रयास विफल हो गये।

तन्जीमत सुधारकों की अपूर्व सफलता ने तुर्की सुल्तान के लिए नयी समस्याएँ उत्पन्न कर दीं। समस्त निरोधों के समाप्त हो जाने के बाद सुल्तान की शक्ति अनियन्त्रित एवं

असीमित हो गयी। परिणामस्वरूप निराश एवं कुंठाग्रस्त तत्व सुल्तान की अनियन्त्रित सत्ता का सक्रिय विरोध करने के लिए एकत्रित हो गये। बाल्कन क्षेत्र में व्याप्त असन्तोष को राष्ट्रवादी विरोध तथा स्लैब संगठनों ने उत्तेजित किया।)

पेरिस की सन्धि से बर्लिन की सन्धि तक (From the Treaty of Paris to Treaty of Berlin)—पेरिस की शान्ति सन्धि के समय यूरोपीय राजनीतिज्ञ यूरोप में तुर्की साम्राज्य के पतन का अनुमान लगाने में असमर्थ रहे थे। विनाश एवं विघटन के पथ पर अग्रसर तुर्की साम्राज्य को यूरोपीय शक्तियों विशेष रूप से इंगलैण्ड ने सहयोग एवं सहायता के अनेक प्रयास किये, परन्तु समस्त प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए। उन्नीसवीं शताब्दी का विख्यात राष्ट्रीयता के आदर्श मन्त्र का बाल्कन प्रायद्वीप में व्यापक प्रचार एवं प्रसार हो चुका था और इस भावना से प्रेरित तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत ईसाई मतावलम्बी राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता के लिए व्यग्र थे। परिणामस्वरूप स्पष्ट रूप से यूरोपीय संरक्षण के उपरान्त भी विघटन आरम्भ हो गया था। यूरोपीय शक्तियों के समक्ष साक्षात् घटित तथ्यों को अनिच्छापूर्वक स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। अस्तु सन् 1856 से सन् 1878 की अवधि में अनेक बार पेरिस शान्ति सन्धि के प्रावधानों का स्पष्ट रूप से उल्लंघन हुआ, परन्तु यूरोपीय शक्तियों ने सदैव उपेक्षा की।

रूमानिया का आविर्भाव (Emergence of Rumania)—सर्वप्रथम वालेशिया (Wallachia) और मोलडेविया (Moldavia) का रूमानिया राज्य के रूप में विलय हुआ। इन दोनों क्षेत्रों के निवासी एक ही जाति के थे। दोनों की भाषा एक थी और स्वयं के लिए रूमानियावासी शब्द का प्रयोग करते थे। तत्कालीन राष्ट्रीय भावना से उद्वेलित एवं उत्तेजित दोनों क्षेत्रों की जनता एक राष्ट्रीय सरकार के अधीन दोनों राज्यों की एकता के लिए उत्सुक थी। पेरिस शान्ति सन्धि के अनुसार दोनों प्रान्तों को स्वायत्तशासी क्षेत्र घोषित किया गया था और पृथक् अस्तित्व की व्यवस्था थी। सन् 1859 में दोनों क्षेत्रों की जनता ने अलेक्जेण्डर कौजा (Alexander Couza) को अपना होपस्दार (Hopsdar) अथवा शासक चुनकर पृथकता को चुनौती दी। यह निःसन्देह पेरिस सन्धि का अतिक्रमण था। इंगलैण्ड, आस्ट्रिया तथा तुर्की ने इस एकता का विरोध किया, परन्तु फ्रान्स के नैपोलियन तृतीय ने रूमानियावासियों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति एवं समर्थन व्यक्त किया। सन् 1861 में यूरोपीय शक्तियों के समक्ष इस एकता को घटित तथ्य के रूप में मान्यता देने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। इस प्रकार रूमानिया राष्ट्र का उदय हुआ।

बाल्कन क्षेत्र में रूस के हस्तक्षेप की पुनरावृत्ति (Revival of Russian Intervention in the Balkans)—सन् 1867 में सर्बिया ने आस्ट्रिया और इंगलैण्ड की सहायता से अपने दुर्गों को तुर्की सेना के नियन्त्रण से मुक्त करवा लिया। इस प्रकार सर्बिया व्यावहारिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो गया। रूस ने अपनी शक्ति पुनः अर्जित करने के बाद ओटोमन साम्राज्य के विषयों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। सन् 1865 में रूस ने क्रेट के विद्रोहियों को प्रोत्साहित किया। बाल्कन प्रायद्वीप के ईसाई मतावलम्बी बुल्गार तुर्की दमन से मुक्ति के लिए अत्यधिक व्यग्र थे। राजनीतिक स्वतन्त्रता की माँग से पूर्व उनका राष्ट्रीय एवं

सांस्कृतिक पुनर्जागरण हो चुका था। बुल्गारों ने एक ही समय में यूनानी धर्माध्यक्षों तथा तुर्की कर-समाहर्ताओं के कठोर नियन्त्रण से मुक्ति के लिए संघर्ष किया और रूस ने बुल्गारों की सहायता की। सन् 1870 में तुर्की सुल्तान ने बुल्गारों को अपना राष्ट्रीय चर्च स्थापित करने की अनुमति दे दी। अगले वर्ष फ्रान्स-जर्मन युद्ध के समय बिस्मार्क ने पेरिस सन्धि के काला सागर से सम्बन्धित प्रावधानों का अतिक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार रूस ने सैबस्टोपीत दुर्ग को पुनः अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित करने तथा काला सागर पर अपना नौ-सैनिक बेड़ा रखने का अधिकार पुनः प्राप्त कर लिया। ब्रिटेन का विरोध निरर्थक रहा। अन्ततोगत्वा उसने तुर्की के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया।

रूस-तुर्की युद्ध (सन् 1877-78) (The Russio-Turkish War)—सन् 1875 में पूर्वी विवाद ने एक अन्य जटिल युग में प्रवेश किया। बाल्कन क्षेत्र में दो तथ्य स्पष्ट हो चुके थे। निरन्तर बढ़ती हुई राष्ट्रवादी आकांक्षाओं तथा जातिगत चेतना के परिणामस्वरूप तुर्की के अधीन राज्यों में व्यग्रता बढ़ रही थी। सर्बों, यूनानियों एवं रूमानियावासियों की आंशिक अथवा पूर्ण मुक्ति ने बाल्कन क्षेत्र के गैर-तुर्कीवासियों को अपनी मुक्ति के लिए अनुरूप आन्दोलन के माध्यम से प्रयास करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। बाल्कन क्षेत्र के विभिन्न स्लाव (Slav) समुदायों में यह भावना अत्यधिक बलवती थी और वे रूस, पोलैण्ड तथा आस्ट्रिया राज्य के स्लाव लोगों के साथ भावनात्मक तथा जातिगत दृष्टि से सम्बन्धित मानते थे। स्लाव समर्थक अन्तरंग भावनाओं को रूस ने प्रोत्साहित किया और उसके प्रतिनिधियों ने बाल्कन क्षेत्र के स्लाव जनसमुदायों में जातिगत चेतना तथा राष्ट्रीय भावनाओं को उद्वेलित करने के लिए अथक प्रचार एवं प्रसार किया। इस प्रकार राष्ट्रवाद, जातिवाद के साथ सम्बद्ध हो गया। सर्बिया समस्त सर्बों तथा उसके निकट सम्बन्धियों क्रेट को अपने शासन के अन्तर्गत लाने के लिए प्रयत्न कर रहा था। इसी कारण सर्बिया दक्षिण स्लाव विद्रोह का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए उत्सुक था।

प्रबल सर्व-स्लाववाद तथा राष्ट्रीय भावनाओं के विकास के साथ तुर्की पुनर्जागरण और सुधारों के प्रति असन्तोष एवं निराशा ने बाल्कन क्षेत्र की स्थिति को अत्यधिक जटिल बना दिया था। तुर्की के सुल्तान ने अपनी ईसाई जनता को सुधार करने का वचन दिया था, जिसको उसने पूरा नहीं किया था। इसके अतिरिक्त सुल्तान की अयोग्यता तथा अत्यधिक निरुद्देश्य व्ययशीलता ने करों के भार को असहनीय कर दिया था। बुल्गारिया यथार्थ में बाल्कन क्षेत्र का सर्वाधिक उर्वर भाग था और यह क्षेत्र यूरोप के सर्वाधिक समृद्ध क्षेत्रों में से एक था। महमूद द्वितीय जैसे सुल्तानों ने अनेक सुधार भी किये थे। रिसटिक जैसे स्थानीय राजनीतिक चिन्तक तथा राजनयिक सर्बिया के राजकुमार मिलन ने इस समस्त क्षेत्र में राष्ट्रीय चेतना का व्यापक प्रचार किया। इस चेतना के परिणामस्वरूप जनता सुल्तान एवं पाशाओं के शासन के उन्मूलन के लिए कृत संकल्प थी। सर्बिया के अतिरिक्त मोन्टेनेग्रो के शासक राजकुमार निकोलस ने भी बाल्कन क्षेत्र में राजनीतिक गतिविधियाँ तीव्र कर दीं और राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न करने का प्रयास किया। मिलन एवं निकोलस सम्भवतः इटली के एकीकरण

जैसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करना चाहते थे। इन परिस्थितियों में बोसनिया-हर्जेगोविना के कृषक विद्रोह के लिए प्रेरित हुए थे। कर-समाहर्ताओं के लोभ तथा निर्ममतापूर्वक कर वसूली के विरुद्ध बोसनिया तथा हर्जेगोविना के कृषकों ने जुलाई, 1875 में सशस्त्र विद्रोह कर दिया। मोन्टेनोग्रो तथा सर्बिया के साथी सर्बों ने उनके साथ प्रबल समर्थन व्यक्त किया एवं पूर्ण सहायता की। यह यूरोप की मुख्य घटना बन गई, आस्ट्रिया के ड्डेन्यूब नदी तट की, फ्रान्स की रेलों का जाल बिछाने के लिए निवेशित पूँजी एवं इंग्लैण्ड को मिस्र एवं भारत की सुरक्षा की चिन्ता थी। यूरोप की शक्तियों में जर्मनी ही स्थायी समाधान एवं शान्ति चाहता था, जिससे अलजैक एवं लारेन का प्रश्न दबा रहे।इस आन्दोलन का व्यापक प्रसार हो रहा था और इसको सीमित करने के लिए यूरोपीय शक्तियों ने एन्ड्रैसी नोट (आस्ट्रिया के प्रधानमन्त्री अथवा चान्सलर काउण्ट एन्ड्रैसी) के नाम से प्रसिद्ध तुर्की कुशासन के विरुद्ध विरोध-पत्र पोर्ट में दिया। सुल्तान ने विरोध-पत्र को स्वीकार करते हुए सुधार का आश्वासन दिया, परन्तु विद्रोहियों ने भ्रमात्मक वायदों की अपेक्षा ठोस आश्वासनों की माँग की। इसी अवधि में यह विद्रोह बुल्गारिया में भी फैल गया और भीषण विनाश तथा रक्तपात को रोकने के लिए यूरोपीय शक्तियों ने बर्लिन ज्ञापन दिया। इसमें पोर्ट में स्थित तुर्की सरकार से तत्काल ठोस सुधार की माँग की अन्यथा सशस्त्र हस्तक्षेप की चेतावनी दी। इंग्लैण्ड ने तुर्की के विरुद्ध किसी भी सैनिक कार्यवाही में सम्मिलित होने से मना कर दिया, इससे सुल्तान को यूरोप के विरोध की उपेक्षा करने के लिए प्रोत्साहन मिला। बुल्गारिया के सशस्त्र विद्रोह में कुस्तुनतुनिया के निकट तुर्की शासन के लिए गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया। तुर्की शासन ने भयावह निर्ममता, क्रूरता तथा बर्बरता के साथ विद्रोह का दमन कर दिया। तुर्की के अनियमित सैनिकों के द्वारा पाशविक नरसंहार ने समस्त यूरोप को भयाक्रान्त कर दिया। इंग्लैण्ड में कट्टर ईसाई मतावलम्बी ग्लैडस्टोन ने तुर्की के विरुद्ध अत्यधिक आवेश में घोषणा की कि उनको उन प्रान्तों से, जिनको उन्होंने निर्जन तथा अपवित्र किया था, अपने समस्त सामान के साथ निकाल देना चाहिए, परन्तु इस समय यहूदी डिजरैली प्रधानमन्त्री था। वह बुल्गारिया के पीड़ित एवं दलित ईसाई धर्मावलम्बियों की अपेक्षा बाल्कन क्षेत्र में रूस की सम्भावित कार्यवाही के प्रति अधिक चिन्तित था। अस्तु डिजरैली के दृष्टिकोण से संयुक्त कार्यवाही असम्भव हो गयी। रूस ने बुल्गारिया के पाशविक नरसंहार का विरोध करने तथा ईसाई धर्मावलम्बियों के रक्षक के रूप में 24 अप्रैल, 1877 को तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। वह अपने सह-धर्मावलम्बियों और साथी स्लावों की मर्मान्तक पीड़ाओं की उपेक्षा नहीं कर सका।

रूस की सेना ने डैन्यूब नदी के दूसरी ओर तुर्की साम्राज्य के यूरोपीय तथा एशियाई क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। इस अभियान की प्रमुख विशेषता विख्यात प्लवना दुर्ग की सशस्त्र घेराबन्दी थी। तुर्कों ने ओस्मान पाशा के नेतृत्व में अदम्य साहस और शौर्य के साथ दुर्ग की रक्षा की थी। समस्त विश्व ने तुर्कों के शौर्य की प्रशंसा की थी। प्लेवना के पतन से तुर्की सेना पूर्णतया हताश हो गयी। रूस की सेना ने कुस्तुनतुनिया की ओर कूच किया। ब्रिटिश सरकार ने नौ-सैनिक दस्ता बोस्फोरस भेजा और बाल्कन क्षेत्र में रूस की गतिविधियों

को रोकने के लिए आस्ट्रिया ने भी अपनी सेना भेजी। इन शक्तियों के साथ सशस्त्र संघर्ष से बचने तथा अब तक की उपलब्धियों को सुरक्षित करने के लिए रूस के जार ने सन् 1877 में तुर्की के सुल्तान के साथ सैन स्टेफ्नों (San Stefano) में सन्धि करके सन्धि के कठोर प्रावधानों को स्वीकार करने के लिए सुल्तान को विवश किया।

सैन स्टेफ्नों की सन्धि (Treaty of San Stefano)—इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार सुल्तान ने सर्बिया तथा मोन्टेनेग्रो को पूर्वापेक्षा अधिक क्षेत्रों के साथ स्वतन्त्र राज्यों के रूप में मान्यता दे दी। बोसनिया तथा हर्जेगोविना में सुधारों के सूत्रपात का आंश्वासन दिया गया। रूस को एशिया स्थित बाटुम तथा कार के क्षेत्र एवं यूरोप में स्थित बैसरबिया का क्षेत्र प्राप्त हुआ। रूमानिया को भी स्वतन्त्र राज्य के रूप में मान्यता तथा बैसरबिया की हानि की क्षतिपूर्ति के रूप में दोबरूदजा क्षेत्र मिलने की व्यवस्था थी। विशाल बुल्गारिया की उत्पत्ति इस सन्धि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश था। विशाल बुल्गारिया तुर्की को वार्षिक कर देने वाला स्वायत्तशासी राज्य था और इसकी सीमाएँ डैन्यूब नदी से एजियन सागर तक तथा काला सागर से अल्बानिया तक थीं। सैन स्टेफनों की सन्धि रूस की महान् विजय थी और इसने क्रीमिया युद्ध के अपमान को समाप्त कर दिया था और बाल्कन क्षेत्र में रूस के पुनः प्रभुत्व का आश्वासन दिया था। रूस अपनी उत्पत्ति के समय से बुल्गारिया पर पूर्ण नियन्त्रण की आशा करता था।

इंग्लैण्ड की प्रतिक्रिया (Reaction of England)—बाल्कन क्षेत्र में रूस के प्रभाव का विस्तार इंग्लैण्ड के हितों के लिए घातक था और उसने यूरोपीय शक्तियों के सम्मेलन द्वारा सैन स्टेफनों की सन्धि में पर्याप्त संशोधनों की माँग की। आस्ट्रिया भी बाल्कन क्षेत्र में अपने क्षेत्राधिकार का विस्तार करने का इच्छुक था। अस्तु बाल्कन क्षेत्र में शक्तिशाली विशाल बुल्गारिया राज्य की उत्पत्ति अथवा बाल्कन प्रायद्वीप में रूस के प्रभाव के विस्तार से असन्तुष्ट था। इस प्रकार ब्रिटेन और आस्ट्रिया दोनों ही इस समाधान से असन्तुष्ट थे। आस्ट्रिया ने भी इंग्लैण्ड की माँग का समर्थन करते हुए सन्धि के प्रावधानों में संशोधनों के लिए सामूहिक निर्णय की माँग की। इंग्लैण्ड के शत्रुतापूर्ण कठोर दृष्टिकोण ने तुर्की विवाद को यूरोपीय शक्तियों के सामूहिक सम्मेलन द्वारा निर्णय के लिए भेजने के प्रश्न पर रूस को सहमति के लिए बाध्य किया।

बर्लिन काँग्रेस, 1878 (Congress of Berlin)—यूरोपीय राजनयिकों के सम्मेलन के लिए बर्लिन चुना गया। बिस्मार्क ने घोषणा की कि समीपवर्ती पूर्व में जर्मनी का प्रत्यक्ष रूप से कोई हित अथवा स्वार्थ निहित नहीं था। इसलिए वह सर्वोत्कृष्ट निर्णायक हो सकता था। बिस्मार्क ने एक 'ईमानदार दलाल' (Honest Broker) की भूमिका का निर्वाह करने का प्रस्ताव रखा। ईमानदार दलाल तो केवल अपने मुवक्किलों के हितों में समन्वय करना चाहता है। 13 जून, 1978 को बिस्मार्क ने सैन स्टेफ्नों की सन्धि पर पुनः विचार करने के लिए सभी पक्षों को बर्लिन काँग्रेस का निमन्त्रण भेजा और समस्त राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण काँग्रेस आरम्भ हुई। ब्रिटिश प्रतिनिधि

मण्डल का नेतृत्व प्रधानमन्त्री डिजरैली ने किया। इसके अन्य सदस्य सेल्सवरी और ओडो रसैल थे। यद्यपि रूस के प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व गौरचैकोव कर रहा था लेकिन वास्तविक शक्ति इगनेटिव में निहित थी। आस्ट्रिया का मुख्य प्रतिनिधि जूल्स अन्द्रासी, फ्रान्स का प्रतिनिधि एम. वैडिंगटन एवं इटली का प्रतिनिधि कोर्टी था। कार्थोडराय पाशा पराजित तुर्की का प्रतिनिधित्व कर रहा था।

यूरोप के अधिकांश शासक यूरोप को ही महत्वपूर्ण कूटनीतिक सम्मेलन के लिए उपयुक्त मानते थे। यूरोपीय शक्तियाँ विनाशोन्मुख भीषण युद्ध के कगार पर खड़ी थीं। निःसन्देह रूस को तुर्कों से पर्याप्त लाभ मिल चुके थे। ब्रिटिश जनता किसी समझौते के विरुद्ध थी और लन्दन के विशाल संगीत कक्षों में श्रोतागण आक्रमणकारियों के स्वर में गा रहे थे, "हम लड़ना नहीं चाहते हैं परन्तु हम उद्धत राष्ट्रवादी हैं, यदि हमको लड़ना पड़ता है, तो हमारे पास जलपोत हैं, हमारे पास मनुष्य हैं और हमारे पास धन भी है।"

इस विश्वासपूर्ण एवं आक्रमणात्मक उद्धत राष्ट्रवादी भावनाओं ने विवाद के न्यायोचित समाधान को अत्यधिक कठिन बना दिया था, सर्वाधिक कठिन समस्या बुल्गारिया की थी। इसके आविर्भाव से शक्ति सन्तुलन बिगड़ गया था, और आस्ट्रिया एवं इटली की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो सकता था। दूसरी कठिन समस्या बोस्निया-हर्जेगोविना की थी। गौरचैकोव का पहला प्रयास सैन स्टैफ्नों द्वारा स्थापित बुल्गारिया की रक्षा करना था। इसके सम्भव न होने की स्थिति में इसको दो भागों में विभक्त करवाना था जिससे एक भाग रूस के प्रभाव क्षेत्र में आ जाये। लेकिन बेंजामिन डिजरैली और सैल्सवरी बुल्गारिया को एजियन सागर से दूर रखकर उसे तीन भागों में विभाजित करना चाहते थे। अन्त में वे अपनी योजना में सफल भी हो गये। निःसन्देह, इस काँग्रेस में डिजरैली पूर्णरूप से सफल हुआ और रूस की पराजय हुई थी। जुलाई, 1878 में बर्लिन काँग्रेस के प्रमुख ब्रिटिश प्रतिनिधि लार्ड बेकनस फील्ड (बेंजामिन डिजरैली) ने घोषणा की कि वह सम्मान के साथ शान्ति लेकर आया था और ब्रिटिश उद्धत राष्ट्रवादियों (Fingoists) ने अपने प्रधानमन्त्री तथा उसकी कटूनीति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। तदुपरान्त उसके सहयोगी सैल्सबरी ने स्वीकार करते हुए कहा कि उन्होंने बर्लिन में गलत घोड़े का समर्थन किया था। ब्रिटेन ने रूस को अवरुद्ध करने के लिए सैन स्टेफ्नों की सन्धि में निहित बाल्कन विवाद के सम्भावित समाधान को विफल करने में ही सहायता नहीं की वरन् बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया की प्रगति तथा विस्तार को भी प्रोत्साहित किया था। बर्लिन काँग्रेस के तीन दशक बाद जर्मनी द्वारा समर्थित आस्ट्रिया के विकास को रोकने के लिए ब्रिटेन को स्वयं रूस के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने पड़े।

डिजरैली ने निःसन्देह रूस के व्यक्तिगत हस्तक्षेप के दावे को अस्वीकार कर दिया था और रूस की शक्तियों की सामूहिक सत्ता को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था। इंगलैण्ड और आस्ट्रिया के हितों में रूस की विस्तारवादी नीति को अवरुद्ध किया गया था और तुर्की को सैन स्टेफ्नों की सन्धि में खोये हुए क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने का अवसर मिल गया था। इस सन्धि के दूरगामी परिणामों का विश्लेषण करने से ज्ञात होगा कि वह विजय बाह्य मात्र थी। रूस की क्रीमिया युद्ध की समस्त क्षतियों की पूर्ति हो चुकी थी। बैसरबिया पर उसका

आधिपत्य था और कालासागर अब उसके युद्धपोतों के लिए बन्द नहीं था। इसके अतिरिक्त रूस के भालू की छाया यदि बाल्कन क्षेत्र में कम हो गयी थी, रूस ने मध्य एशिया में भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा तक अपना प्रभुत्व बढ़ाना आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार ब्रिटिश हितों को रूस का संकट यूरोप से एशिया में स्थानान्तरित हो गया था। इस सन्धि का मुख्य उद्देश्य, रूस को दुर्बल करके तुर्की को शक्तिशाली बनाने का कार्य पूर्ण नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त डिजरैली का दावा कि यह सन्धि इंग्लैण्ड के लिए सम्माननीय थी, भी विचारणीय है। इस व्यवस्था ने तुर्की की दुर्बलता का लाभ उठाते हुए ओटोमन साम्राज्य की एकता एवं अखण्डता की प्रबल समर्थक शक्तियों ने ही तुर्की को साइप्रस द्वीप, बोस्निया एवं हर्जेगोविना से वंचित कर दिया। यह यूरोपीय शक्तियों की दिन दहाड़े डकैती थी।

इन समस्त परिवर्तनों के सामाजिक प्रभाव बहुत सीमित थे। अरब के अधिकांश मध्यमवर्गीय, व्यापारी तथा बुद्धिजीवी अल्पसंख्यक जातियों के थे। उनका सामाजिक स्तर निम्न था और उनको अरब के सामाजिक जगत से अलग कर दिया गया था, इसलिए अरब सामाजिक जगत में उनकी भूमिका नगण्य ही थी; परन्तु वह अरबी भाषा में ही बोलते और लिखते थे। ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं में शिक्षित सीरिया के ईसाई धर्मावलम्बियों ने मिस्र और सीरिया दोनों में समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं का सूत्रपात किया। अरब जगत की अधिकाधिक जनसंख्या आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित हो रही थी, इस कारण समाचार-पत्र अधिकाधिक लोगों तक पहुँच रहे थे। इस वातावरण में अरब राष्ट्रवाद का उदय हुआ और अरबवासी प्रगति की दौड़ में आगे निकल गये।

बिस्मार्क की अध्यक्षता में बर्लिन काँग्रेस, 1878 में बर्लिन सन्धि के मुख्य प्रावधान अग्रलिखित थे :

(1) मोन्टेनोग्रो, सर्बिया, रूमानिया को तुर्की से मुक्त स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया।

(2) सैनस्टैफ्नों की सन्धि के अनुसार विशाल बुल्गारिया को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। इसका एक भाग तुर्की को वार्षिक कर देने वाला स्वशासी क्षेत्र घोषित किया गया तथा अन्य भाग (दक्षिणी भाग) पूर्वी रोमेलिया प्रान्त था। इसका शासक ईसाई मतावलम्बी राज्यपाल था। प्रशासकीय दृष्टि से यद्यपि वह स्वतन्त्र था, लेकिन तुर्की साम्राज्य के क्षेत्राधिकार में था। मैसीडोनिया क्षेत्र का पर्याप्त भाग जो विशाल बुल्गारिया में सम्मिलित था, पुनः तुर्की को दे दिया गया।

(3) बोस्निया तथा हर्जेगोविना के क्षेत्रों पर आस्ट्रिया का आधिपत्य स्थापित हो गया। प्रशासनिक व्यवस्था आस्ट्रिया के नियन्त्रण में थी परन्तु नाममात्र के लिए तुर्की के अधीन था।

(4) इस सन्धि के अनुसार बैसरबिया एवं एशिया के अनेक क्षेत्र रूस को दे दिये गये। इसमें डैन्यूब नदी का डेल्टा, आर्मीनिया के कारस अर्धान और बेतुम जिले सम्मिलित थे।

(5) इंग्लैण्ड ने तुर्की के साथ एक पृथक् सन्धि द्वारा साइप्रस द्वीप पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर लिया। तुर्की पर आक्रमण की स्थिति में इंग्लैण्ड ने सहायता का वचन दिया था।

इस प्रकार बर्लिन की सन्धि ने तुर्की साम्राज्य के विघटन की पुष्टि कर दी। बाल्कन क्षेत्र के तीन राज्य सर्बिया, रूमानिया और मोन्टेनोग्रो को तुर्की से मुक्त कर दिया गया जबकि बुल्गारिया के नये राज्य का, जो नाममात्र के लिए तुर्की के अधीन था, उद्भव हुआ। इसके अतिरिक्त तुर्की साम्राज्य की अखण्डता तथा एकता के समर्थक ब्रिटेन और आस्ट्रिया ने इस विघटन के अन्तर्गत अधिकांश भाग पर आधिपत्य स्थापित करके सर्वाधिक लाभ लिया। इस प्रकार बर्लिन की सन्धि तुर्की साम्राज्य की अखण्डता तथा एकता के प्रति सहानुभूति रखने वाली शक्तियों की निष्ठा, सद्भावना तथा समर्थन की व्यंगात्मक अभिव्यक्ति थी। बर्लिन में राजनयिकों ने न्याय तथा समानता के हितों की अपेक्षा ब्रिटेन तथा आस्ट्रिया के हितों में सैन स्टैफ्नों की सन्धि में संशोधन कियां। इन राजनयिकों ने बाल्कन क्षेत्र के लोगों के हितों, भावनाओं तथा संवेदनाओं की सर्वथा उपेक्षा की। उन्होंने केवल सन्तुलन तथा समझौते की नीति द्वारा ब्रिटेन, रूस तथा आस्ट्रिया के परस्पर विरोधी हितों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इसी कारण आस्ट्रिया को बोस्निया एवं हर्जेगोविना और इंग्लैण्ड को साइप्रस पर आधिपत्य स्थापित करने की अनुमति दी गयी। यह व्यवस्था पूर्णतया स्वार्थपरता के सिद्धान्तों पर आधारित थी, अस्तु बाल्कन क्षेत्र के निवासियों की भावनाओं तथा राष्ट्रीय हितों की सर्वथा उपेक्षा हुई। इसी तरह बैसरबिया पर, जिसमें रूसवासियों की अपेक्षा रूमानियावासियों का आधिपत्य था, नियन्त्रण से रूमानिया को गहरा आघात पहुँचा। बोस्निया एवं हर्जेगोविना की स्लाव जनता, सर्बिया की स्लाव जनता के साथ एकता के लिए उत्सुक थी परन्तु इन दोनों क्षेत्रों के आस्ट्रिया के नियन्त्रण में देने के प्रावधान से स्लाव जनता की भावनाओं की उपेक्षा ही नहीं हुई, वरन् राष्ट्रीय हितों को गहरा आघात पहुँचा।

'विशाल बुल्गारिया' का विभाजन बुल्गारों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं पर निर्मम प्रहार था। आस्ट्रिया को भय था कि विशाल बुल्गारिया रूस की मैत्री से आस्ट्रिया के एजियन सागर की ओर विस्तार को रोक देगा। अस्तु विशाल बुल्गारिया का विभाजन केवल आस्ट्रिया को प्रसन्न करने के लिए किया गया था।

मैसीडोनिया के ईसाई मतावलम्बियों को तुर्की के सुल्तान की दया पर छोड़ दिया गया, यद्यपि बुल्गारिया के अत्याचारों ने स्पष्ट कर दिया था कि इन ईसाई मतावलम्बियों के साथ भविष्य में किस प्रकार का व्यवहार हो सकता था। यद्यपि तुर्की साम्राज्य इस सीमा तक निघटित हो चुका था कि भविष्य में पुनः संगठित होने की कोई सम्भावना नहीं थी परन्तु तुर्की साम्राज्य को शक्ति प्रदान करने के लिए यह व्यवस्था की गयी थी। इसने विघटन की प्रक्रिया को दीर्घकालीन किया था और विनाश की पीड़ाओं को बहुत बढ़ा दिया था। मैसीडोनिया का प्रश्न भविष्य में संघर्ष तथा अशान्ति का स्रोत बना रहा। इस व्यवस्था में बाल्कन क्षेत्र की जनता की भावनाओं एवं राष्ट्रीय आकांक्षाओं की सर्वथा उपेक्षा हुई थी, अस्तु इस सन्धि को पूर्वी विवाद का सन्तोषजनक समाधान नहीं कहा जा सकता है। बाल्कन राज्यों के भावी

इतिहास और तुर्की के परिप्रेक्ष्य में बर्लिन सन्धि के निर्माताओं को कुशल राजनीतिज्ञता का श्रेय नहीं दिया जा सकता है।

निःसन्देह रूस को कुछ क्षेत्र देकर कुछ काल के लिए शान्ति स्थापित कर दी। 'परस्पर क्षतिपूर्ति' के रूप में विख्यात कटूनीतिक व्यवस्था द्वारा ब्रिटेन तथा आस्ट्रिया को शान्त कर दिया गया। यूनानियों को यद्यपि छोटे प्रायद्वीपीय राज्य में थैसले क्षेत्र को सम्मिलित करने की अनुमति दे दी गयी थी, और उनको राजनयिकों के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए था परन्तु वे भी असन्तुष्ट थे।

बर्लिन सन्धि के राजनयिकों में दूरदर्शिता का सर्वथा अभाव था। बर्लिन सन्धि में घातक विकास का स्वयं बीजारोपण हो चुका था। बाल्कन क्षेत्र में एंक शक्ति ने रूस को अवरुद्ध करके, अन्य शक्ति आस्ट्रिया को अपनी विस्तारवादी नीति को कार्यान्वित करने के लिए मुक्त छोड़ दिया था। आस्ट्रिया अब बाल्कन क्षेत्र में रूस तथा सर्बिया की राष्ट्रीय भावनाओं के स्पष्ट विरोध में अधिकाधिक क्षेत्र प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र था। आस्ट्रिया द्वारा बोस्निया और हर्जेगोविना पर आधिपत्य से रूस तथा सर्बिया के साथ सम्बन्ध अत्यधिक शत्रुतापूर्ण हो गये थे, जिसके परिणामस्वरूप प्रथम विश्व युद्ध हुआ।

यद्यपि विस्मार्क ने स्वयं को एक 'ईमानदार दलाल' घोषित किया परन्तु इस संकट में उसको रूस एवं आस्ट्रिया में किसी एक का पक्ष लेना था। उसने दोनों में आस्ट्रिया को उचित समझा और रूस को अपना शुत्र बना लिया। परिणामस्वरूप रूस और फ्रान्स के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये और जर्मनी के साथ रूस की शत्रुता निरन्तर बढ़ती गयी। यूरोप दो विरोधी खेमों में विभाजित हो गया। फ्रान्स और रूस की द्विराष्ट्रीय सन्धि तथा बिस्मार्क की त्रिराष्ट्रीय सन्धि इसी सन्धि का परिणाम थी। इस अवधि में यूरोप की राजनीतिक स्थिति के परिणामस्वरूप कालान्तर में प्रथम विश्व युद्ध हुआ। मैसीडोनिया समस्या के परिणामस्वरूप ही सन् 1912-13 के बाल्कन युद्ध हुए।

इस प्रकार बर्लिन की सन्धि समीपवर्ती पूर्वी विवाद के समाधान, ईसाई अल्पसंख्यकों की सुरक्षा (वे अब भी ओटोमन साम्राज्य के अधीन थे) तथा अपेक्षित सुधारों को आश्वस्त करने में पूर्णतया असफल रही। यह कहा जा सकता है कि इस विवाद में अनेक जटिल समस्याएँ निहित थीं कि उनका समाधान कठिन था, परन्तु यथार्थ में राजनयिक अपने-अपने देशों के साम्राज्यवादी हितों तथा नीतियों से इतना अधिक ग्रस्त थे कि वे समस्याओं के निरपेक्ष अध्ययन करने में समर्थ नहीं थे। इसी कारण राजनयिकों में ईमानदारी से समस्याओं के समाधान की किंचित भी भावना नहीं थी। बाल्कन क्षेत्र में उद्वेलित राष्ट्रीय भावनाओं के परिणामस्वरूप यह क्षेत्र अशान्ति, परस्पर शत्रुता और षड्यन्त्रों का भविष्य में भी प्रमुख केन्द्र वना रहा। अन्ततोगत्वा सन् 1914 का प्रथम विश्व युद्ध हुआ।

बर्लिन सन्धि के बाद पूर्वी विवाद (Eastern Question after Treaty of Berlin)

यद्यपि ओटोमन साम्राज्य को राजनीतिक क्षेत्र में गहरा आघात पहुँचा था, परन्तु उसका अपना संविधान सन् 1876 में बन चुका था। किसी भी मुस्लिम राज्य में यह पहला संविधान

था। तुर्की साम्राज्य के सुल्तान की इच्छा इस संविधान का मुख्य स्रोत थी। संविधान के अनुसार सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति सुल्तान में निहित थी। मन्त्री व्यक्तिगत रूप से सुल्तान के प्रति उत्तरदायी थे। विधि निर्माण में सुल्तान की सहायता के लिए द्विसदनीय संसद की व्यवस्था थी। निम्न सदन के सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते थे, और उच्च सदन के सदस्यों को सुल्तान स्वयं मनोनीत करता था। इस शासन व्यवस्था को क्षीण एकतन्त्रीय निरंकुश शासन व्यवस्था की संज्ञा प्रदान करना ही उचित है। इस संविधान के अन्तर्गत संसद का आह्वान किया गया परन्तु एक वर्ष से कम समय में ही संसद को भंग कर दिया गया। तदुपरान्त सन् 1908 तक संसद का आह्वान नहीं किया गया। उदारवादियों को निष्कासित कर दिया गया तथा नेताओं में से एक की हत्या करवा दी गयी।

सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय (Sultan Abdul Hamid II)—सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय ने सन् 1896 से सन् 1909 तक ओटोमन साम्राज्य पर शासन किया। उसने सेना और प्रशासनिक व्यवस्था को विकसित किया। उसके काल में संचार साधनों (रेलवे और तार) का पर्याप्त विकास हुआ। गुप्तचर विभाग के व्यापक संगठन ने सुल्तान को सत्ता पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने तथा विरोधियों का दमन करने में बहुत सहायता की। सन् 1894-98 की अवधि में आर्मीनियावासियों के क्रूर एवं बर्बर दमन के कारण, वह यूरोपीय जगत में 'लाल सुल्तान' के नाम से कुख्यात था।

शिक्षा के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हुई। सन् 1900 में इस्तामबुल विश्वविद्यालय स्थापित किया गया। एशिया माइनर तथा सीरिया में रेलवे के निर्माण ने आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। अन्तर्राष्ट्रीय मुस्लिम समुदायों की आर्थिक सहायता से दमिश्क से मदीना तक रेलवे का निर्माण किया गया।

इन विकास कार्यक्रमों के उपरान्त भी इस अवधि में अखिल इस्लामवाद का अभ्युदय हुआ। सन् 1874 में रूस के साथ सन्धि के बाद तुर्की सुल्तान ने अपने साम्राज्य के बाहर समस्त मुस्लिम जगत पर सर्वोच्च धार्मिक सत्ता का दावा किया। यह दावा किया जाता था कि ओटोमनवासी अब्बासी खलीफा के वंशानुक्रम में थे। मुस्लिम जनमत निर्माण के लिए परिपत्र एवं प्रकाशित सामग्री मुस्लिम समुदायों में वितरित की गयी।

सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय ने अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखा। पूर्व रोमेलिया के अतिरिक्त अन्य किसी क्षेत्र का सन् 1908 तक क्षय नहीं हुआ, परन्तु इस अवधि में सुल्तान के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्रों की रचना हुई। सैनिक अधिकारियों ने षड्यन्त्र रचे तथा सुल्ताम के विरुद्ध विद्रोह किया। जब तक सेना सुल्तान के प्रति निष्ठावान थी, सुल्तान का अपदस्थ होना असम्भव था। मैसीडोनिया में स्थित सेना के एक कर्मचारी ने विद्रोह का नेतृत्व किया, तदुपरान्त अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयीं। सेना के अधिकारी केवल संविधान को पूर्ण रूप से प्रवृत्त करना चाहते थे। संविधान सन् 1877-78 से अप्रभावी हो गया था। उनका अन्य कोई कार्यक्रम नहीं था। वे स्थापित अधिकारी तन्त्र द्वारा प्रशासनिक व्यवस्था से ही सन्तुष्ट थे।

यथार्थ में बर्लिन की सन्धि ने आविर्भूत आशाओं एवं आकांक्षाओं को कुंठित किया था और इसके प्रावधानों का पालन करने की अपेक्षा उल्लंघन करके सम्मान किया गया था। बाल्कन क्षेत्र का भावी इतिहास बर्लिन समझौते के निरन्तर अतिक्रमणों एवं उसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय जटिलताओं की गाथा है। बाल्कन क्षेत्र राष्ट्रों ने सन्धि को चुटकियों में उड़ा दिया। शक्तियाँ इसके प्रावधानों का निष्ठापूर्वक पालन करने के लिए उत्सुक नहीं थीं। आस्ट्रिया ने उन्मुक्त रूप से उल्लंघन किया। यूरोपीय शक्तियों को बाल्कन क्षेत्र में परस्पर विरोधी महत्वाकांक्षाएँ थीं। अस्तु पूर्वी विवाद के समाधान के लिए कोई सर्वमान्य नीति नहीं थी। परिणामस्वरूप बाल्कन क्षेत्र यूरोप का भीषण राजनीतिक तूफान का केन्द्र बना रहा और इन तूफानों के थपेड़े, जो परिधि के समस्त बिन्दुओं से चलने आरम्भ हो गये थे, तुर्की के यूरोपीय भाग को विलुप्ति की स्थिति तक ले आये।

बर्लिन सन्धि के उपरान्त पूर्वी विवाद की नई स्थितियाँ अभिव्यक्त होने लगीं। स्वतन्त्र बाल्कन राज्य अपनी स्वतन्त्रता से सन्तुष्ट होने की अपेक्षा अपनी राष्ट्रीयता के उन व्यक्तियों को, जो अभी भी तुर्की शासन के अन्तर्गत बने हुए थे, अपने राष्ट्रों में सम्मिलित करने के लिए व्यग्र थे। उनके दावे प्रायः परस्पर विरोधी थे, परिणामस्वरूप बाल्कन क्षेत्र, निरन्तर बढ़ती हुई, अशान्ति, लगातार युद्धों और बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं का व्यापक क्षेत्र बन गया था। दूसरे, तुर्की भी प्रवाहित राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित था और उसके पुनरुज्जीवन के लिए गम्भीर प्रयास किया। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन कभी सफल नहीं हुआ। तुर्की के मूल्य पर "युवा तुर्क" क्रान्ति ने स्वयं की प्रशंसा और तुर्की को अन्तर्राष्ट्रीय जटिलताओं में फँसाकर बाल्कन राज्यों और अन्य शक्तियों को लाभ लेने का अवसर प्रदान किया। तीसरे, बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया के अनधिकृत प्रवेश ने नई जटिल समस्याएँ उत्पन्न कर दीं। जर्मनी के समर्थन से आस्ट्रिया ने ऐसी गतिविधियाँ आरम्भ कर दीं जिसने रूस और सर्बिया को शत्रु बना दिया और शीघ्र ही प्रथम विश्व युद्ध की स्थितियाँ उत्पन्न कर दीं। अन्त में, समीपवर्ती युवा विवाद में जर्मनी का आगमन हुआ। उसने आर्थिक एवं राजनीतिक हितों के कारण विस्तार का प्रश्न किया। विलियम द्वितीय के नेतृत्व में जर्मनी ने 90 के दशक में तुर्की के सुल्तान के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये, तुर्की की सेना को प्रशिक्षण दिया, समस्त विश्व में मुसलमानों के संरक्षक के रूप में घोषित किया और जर्मनी के तत्वाधान में बर्लिन-बगदाद रेलवे की योजना बनायी।

युवा तुर्क आन्दोलन (Young Turk Movement)—सन् 1908 में पूर्वी विवाद ने एक नये चरण में प्रवेश किया। पश्चिमी देशों में शिक्षित अधिकांश तुर्कों ने ओटोमन साम्राज्य में एक सुधारवादी दल का गठन कर लिया था। वे तुर्की साम्राज्य का आधुनिकीकरण, विदेशी शक्तियों के संरक्षण से तुर्की की मुक्ति तथा राष्ट्रवादी नीति को कठोरता के साथ कार्यान्वित करना चाहते थे। इन युवा तुर्कों ने रक्तहीन क्रान्ति की और तुर्की सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय को संविधान प्रवृत्त करने के लिए बाध्य किया। संसद का आह्वान किया गया और अनेक उदारवादी सुधारों को प्रवृत्त किया गया, परन्तु अब्दुल हमीद द्वितीय ने इन सुधारों के विरोध में विद्रोह करने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप अब्दुल हमीद द्वितीय को अपदस्थ करके उसके भाई मोहम्मद पंचम् को सन् 1909 में सिंहासनारूढ़ किया गया। उसने सन् 1909 से

1918 तक शासन किया। इस अवधि में आन्तरिक विषयों में सत्ता तथा प्रशासन का पूर्वापेक्षा अधिक केन्द्रीकरण हुआ। युवा तर्क तुर्की साम्राज्य में औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने वाले पहले सुधारक थे। शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। प्राथमिक शिक्षा से उपेक्षित क्षेत्रों में शिक्षा के विकास पर बल दिया गया। प्रशासनिक गतिविधियों के विकास से प्रशासकीय भाषा का भी विकास हुआ।

युवा तुर्क नीति (The Policy of Young Turks)—यद्यपि युवा तुर्क संवैधानिक सिद्धान्तों के प्रबल समर्थक थे, परन्तु उन्होंने जन आकांक्षाओं को निराश ही किया। उनकी नीति मुख्य रूप से तुर्कीकरण की थी। यथार्थ में वे विशाल ओटोमन साम्राज्य की विभिन्न धर्मावलम्बी जनता पर तुर्कों का अनियन्त्रित प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। अन्य धर्मावलम्बी जनता का क्रूरता एवं निर्ममतापूर्वक उत्पीड़न किया गया। मैसीडोनिया तथा अल्बानियावासियों के साथ उनका व्यवहार अत्यधिक क्रूर एवं बर्बरता पूर्ण था। उत्पीड़न की नीति के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप सर्वत्र असन्तोष एवं क्रोध की भावना व्याप्त थी, जो तुर्की साम्राज्य के पूर्ण विघटन का कारण बनी।

तुर्की साम्राज्य की उन्नति, प्रगति, समृद्धि एवं पुनरुत्थान से यूरोपीय शक्तियाँ भी चिन्तित थीं। अस्तु बर्लिन सन्धि के विस्मयकारी अतिक्रमण आरम्भ हो गये। बुल्गारिया ने तुर्की से पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। सन् 1908 में आस्ट्रिया ने बोस्निया सवं हर्जेगोविना प्रान्तों का अपने साम्राज्य में विलय कर लिया। बर्लिन सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया केवल आधिपत्य एवं प्रशासन के लिए अधिकृत था। तदुपरान्त आस्ट्रिया ने एजियन सागर के निकट तक अपनी सीमाओं का विस्तार कर लिया। जर्मनी से निष्कासित होने के बाद से आस्ट्रिया निरन्तर समुद्री मार्ग प्राप्त करने के लिए उत्सुक था। रूस ने आस्ट्रिया के आचरण का तीव्र विरोध किया, परन्तु जापान के साथ युद्ध के कारण रूस की शक्ति क्षीण हो गयी थी और वह पुनः युद्ध करने की स्थिति में नहीं था। बर्लिन की सन्धि का उन्मुक्त रूप से उल्लंघन किया गया। इंग्लैण्ड, रूस और फ्रान्स शान्ति बनाये रखने के उद्देश्य से इस अपमान को पी गये। इन गतिविधियों से सर्बिया सर्वाधिक पीड़ित हुआ था। बोस्निया और हर्जेगोविना में अधिकांश निवासी सर्बियावासियों की जाति के ही थे और सर्बियावासियों की दीर्घकाल से इन दोनों प्रान्तों का सर्बिया में विलय करने की प्रबल आकांक्षा थी। आस्ट्रिया द्वारा इन दोनों प्रान्तों के विलय ने सर्बियावासियों की आकांक्षाओं को ही ध्वस्त नहीं किया था वरन् समुद्र तक विस्तार को भी अवरुद्ध कर दिया था। इस प्रकार आस्ट्रिया ने सर्बियावासियों को प्रबल शत्रु बना लिया। यह भविष्य के लिए अशुभ संकेत था।

इटली दीर्घकाल से अफ्रीका के उत्तरी समुद्र तट विस्तार की योजना बना रहा था। और त्रिपोली का तुर्की की पराजय में लूट के माल के रूप में चयन कर लिया था। अस्तु इटली ने अनायास सुल्तान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इटली ने सन् 1911 में त्रिपोली पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और एजियन द्वीपों को भी अपने नियन्त्रण में ले लिया। कालान्तर में ये द्वीप वापिस कर दिये।

पूर्वी रोमेलिया और बुल्गारिया का विलय (Union of Eastern Roumalia with Bulgaria)

सर्वप्रथम बुल्गारिया ने बर्लिन सन्धि के प्रावधानों को चुनौती दी। बर्लिन सन्धि द्वारा प्रस्तावित बुल्गारिया तथा पूर्वी रोमेलिया का पृथक्करण निरंकुश तथा कृत्रिम था। यह दोनों क्षेत्रों की जातिगत भावनाओं एवं संवेदनाओं के अनुरूप नहीं था। सैनस्टेफ्नों की सन्धि के अन्तर्गत रूस द्वारा सृजित विशाल बुल्गारिया यूरोपीय शक्तियों के लिए भावी संकट का द्योतक था। इसी कारण बुल्गारिया का निरंकुश तथा कृत्रिम विभाजन किया गया था, परन्तु जातिगत परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध सन्धियों के प्रावधानों की अपेक्षा सुदृढ़ होते हैं। सन् 1885 में पूर्वी रोमेलिया की जनता ने रक्तहीन क्रान्ति द्वारा बुल्गारिया के अपने वंशजों के साथ राजनीतिक एकता की घोषणा कर दी। बुल्गारिया के राजा बैटनवर्ग के अलेक्जैण्डर ने जनता की भावनाओं का सम्मान करते हुए स्वयं को संयुक्त बुल्गारिया का शासक घोषित कर दिया। तुर्की के सुल्तान ने बर्लिन के प्रावधानों के अतिक्रमण का विरोध किया। रूस के जार ने क्रोधावेश में बुल्गारिया की सेना में रूस के सैनिक अधिकारियों को वापिस बुला लिया परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस एकता का अनुमोदन किया। यूरोपीय शक्तियों ने सम्पादित तथ्य के रूप में स्वीकार कर लिया। सर्बिया ने सक्रिय रूप से एकता का विरोध किया और ईर्ष्या तथा द्वेष की भावना से प्रेरित होकर घोषणा की, कि बुल्गारिया के विवर्धन से बाल्कन क्षेत्र में शक्तियों के सन्तुलन को संकट उत्पन्न हो गया। सर्बिया ने बुल्गारिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में सर्बिया पराजित हुआ और आस्ट्रिया नें हस्तक्षेप करते हुए बुल्गारिया के विजय अभियान को रोककर युद्धग्रस्त बुल्गारिया तथा सर्बिया को यथास्थिति बनाये रखने की सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

बुल्गारिया के प्रति यूरोपीय शक्तियों के दृष्टिकोण में विचित्र परिवर्तन उल्लेखनीय हैं। बर्लिन काँग्रेस में इंग्लैण्ड ने सेनस्टैफ्नों सन्धि के अन्तर्गत रूस की उत्पत्ति विशाल बुल्गारिया का सर्वाधिक विरोध किया था और उसी के अत्यधिक बल देने पर बुल्गारिया का विभाजन किया गया था। अब इंग्लैण्ड ने बर्लिन सन्धि के प्रावधानों के अतिक्रमण की उपेक्षा की और बुल्गारिया के पूर्वी रोमेलिया के साथ विलय का अनुमोदन किया, जबकि रूस ने स्वयं की उत्पत्ति विशाल बुल्गारिया का सैनस्टैफ्नों में समर्थन किया था, परन्तु इन दोनों देशों की एकता का विरोध किया। दृष्टिकोण में परिवर्तन का मुख्य कारण यह था कि बर्लिन सन्धि के अनुसार पूर्वानुमान था कि बुल्गारिया रूस के शतरंज के मोहरे के रूप में रहेगा परन्तु बुल्गारिया ने स्वयं को अपने संरक्षक रूस से पूर्णतया मुक्त व्यक्त किया था। इंग्लैण्ड ने अनुभव किया कि शत्रुतापूर्ण शक्तिशाली बुल्गारिया, दो निर्बल बुल्गारिया की अपेक्षा, रूस के विस्तारवाद के विरुद्ध निश्चित रूप से अवरोध सिद्ध होगा। यद्यपि इंग्लैण्ड के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया था, किन्तु रूस के प्रभुत्व तथा विस्तार को रोकना ही उसका मुख्य उद्देश्य था।

आर्मीनिया विवाद (The Armenian Dispute)

तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत आर्मीनिया की जनता उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक बार अपने तुर्क शासकों के विरुद्ध विद्रोह कर चुकी थी। आर्मीनिया ब्रिटेन पर आश्रित था। बर्लिन सन्धि तथा इंग्लैण्ड और तुर्की के मध्य साइप्रस द्वीप के सन्दर्भ में पृथक् सन्धि में ब्रिटेन तुर्की सुल्तान से आर्मीनियावासियों के साथ सद्व्यवहार का आश्वासन ले चुका था, परन्तु तुर्की सुल्तान ने कभी भी अपने वचन का पालन नहीं किया। तुर्कों को भय था कि इंग्लैण्ड, रूस के सदृश, आर्मीनिया में एक अन्य स्वतन्त्र बुल्गारिया स्थापित कर देगा। इस कारण तुर्कों ने आर्मीनियावासियों को समाप्त करने का निश्चय कर लिया था। तुर्कों ने सन् 1894 एवं 95 में सहस्रों आर्मीनियावासियों का अमानुषिक नरसंहार किया। भीषण रक्तपात के दृश्य अवर्णनीय थे। सन् 1896 में यह भीषण विनाश लीला कुस्तुनतुनिया स्थानान्तरित हो गयी जहाँ केवल एक दिन में 6,000 आर्मीनियावासियों की पाशविक हत्या कर दी। निःसन्देह ये समस्त नरसंहार तुर्की सरकार की प्रेरणा से हुए थे अथवा तुर्की सरकार ने इनकी उपेक्षा की थी। अब स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि पूर्वी विवाद में सामूहिक दायित्व का उद्घोष करने वाली यूरोपीय शक्तियाँ क्या कर रही थीं। रूस आर्मीनिया में एक अन्य कृतघ्य बुल्गारिया स्थापित नहीं करना चाहता था, और वह ब्रिटेन, जिसने बुल्गारिया के प्रश्न पर विरोध किया था, से प्रतिशोध लेना चाहता था। इस कारण रूस ने इस पाशविक नरसंहार की उपेक्षा की। डिजरैली ने बुल्गारिया के क्रूर एवं बर्बर अत्याचारों की उपेक्षा की थी, उसी प्रकार रूस ने आर्मीनियावासियों के नरसंहार की उपेक्षा की। जर्मनी, तुर्की के साथ घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उत्सुक था, अस्तु उसने पाशविक गतिविधियों का विरोध करने की अपेक्षा सुल्तान के प्रति सद्भावना व्यक्त की। आस्ट्रिया ने जर्मनी का अनुसरण किया। एक मात्र इंग्लैण्ड ने विरोध किया और चेतावनी भी दी परन्तु वह सार्थक सिद्ध नहीं हुई। इंग्लैण्ड ने तुर्की साम्राज्य का अब तक समर्थन करने की अपनी त्रुटि का अनुभव किया। लार्ड सैल्सबरी ने विचार व्यक्त किया कि ओटोमन साम्राज्य की एकता तथा अखण्डता बनाये रखने के प्रयास में इंग्लैण्ड ने गलत घोड़े पर धन व्यय किया।

यूनानी-तुर्की युद्ध, 1897 (Graeco-Turkish War, 1897)

बर्लिन काँग्रेस में यूनान को अपनी सीमाओं में संशोधन की प्रबल आशा थी, परन्तु बर्लिन काँग्रेस में इस दिशा में कुछ भी नहीं किया गया। अस्तु, यूनान ने तुर्की को युद्ध की धमकी दी, परन्तु यूरोपीय शक्तियाँ एक अन्य बाल्कन युद्ध नहीं चाहती थी, इस कारण यूनान को युद्ध से रोके रखा। सन् 1881 में इंग्लैण्ड ने तुर्की सुल्तान पर दबाव डालकर थैसले तथा एपिरस का कुछ भाग यूनान को दिलवा दिया।

तदुपरान्त यूनान ने क्रेट द्वीप प्राप्त करने के लिए अपने प्रयास आरम्भ कर दिये। इस द्वीप के अधिकांश निवासी यूनानी थे और वे तुर्की सत्ता को समाप्त करके यूनान के साथ विलय चाहते थे। यूनान के साथ विलय की प्रबल भावना निरन्तर शक्तिशाली हो रही थी और तुर्की शासन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह सामान्य हो गये। इन विद्रोहों का तुर्की शासन से

सुधार के मिथ्या आश्वासनों के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं हुआ। सन् 1896 में पूर्वापेक्षा अधिक भीषण विद्रोह आरम्भ हो गया और वेनिजेलोस (Venizelos) के नेतृत्व में क्रेट के विद्रोहियों ने यूनान के साथ विलय की घोषणा कर दी। इस समय क्रेट की जनता की उत्कट भावनाओं एवं आकांक्षाओं का सम्मान करते हुए यूनान ने क्रेट विद्रोहियों की सहायता के लिए सेना भेज दी। तदुपरान्त तुर्की ने यूनान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, यूनान को पराजित किया और यूनान को क्रेट के विलय की योजना का परित्याग करने तथा थैसले के एक भाग को छोड़ने के लिए विवश किया। यूरोपीय शक्तियों में परस्पर दीर्घकालीन विचार-विमर्श के उपरान्त निश्चय किया गया कि क्रेट तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत एक स्वायत्तशासी द्वीप हो। इस द्वीप को चार शक्तियों के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के नियन्त्रण में कर दिया गया, और यूनान के राजा के पुत्र जार्ज को राज्यपाल नियुक्त किया गया। इस व्यवस्था से क्रेटवासी सन्तुष्ट नहीं थे और यूनान के साथ विलय के लिए अनेक प्रयास किये परन्तु यूरोपीय शक्तियों ने उनके प्रयास विफल कर दिये। सन् 1912 के बाल्कन युद्ध के बाद सन् 1913 में क्रेट का यूनान के साथ विलय हो गया।

मोरक्को क्षेत्र के वितरण एवं नियन्त्रण के लिए फ्रान्स और जर्मनी में संघर्ष हो रहा था। रूस और आस्ट्रिया बाल्कन क्षेत्र में पीड़ाकारी परस्पर शत्रुता में व्यस्त थे। बिस्मार्क ने घोषणा की थी कि जर्मनी की पूर्वी विवाद में कोई रुचि नहीं थी। उसमें उसके उपयोगी एवं लाभदायक स्वार्थ निहित नहीं थे, परन्तु उसके उत्तराधिकारियों ने इस दृष्टिकोण में पर्याप्त संशोधन कर दिया था। जर्मनी में उद्योगों तथा परिवहन साधनों का पर्याप्त विकास हो चुका था, अस्तु तुर्की साम्राज्य के महत्वपूर्ण वाणिज्यिक क्षेत्र के रूप में शोषण की सम्भावनाओं में वृद्धि हो गयी। सन् 1902 में जर्मनी को कुस्तुनतुनिया से बगदाद तक तदुपरान्त फारस की खाड़ी पर स्थित बसरा तक रेलवे के निर्माण की सुविधा तुर्की सरकार से मिल गयी। इसके निर्माण से जर्मनी तथा आस्ट्रिया की रेलवे सम्बद्ध होती थीं और इससे पूर्व में महत्वपूर्ण व्यापारिक गतिविधियों के विकास की बहुत आशा थी। भारतीय सागर तक नवीन भूमिगत मार्ग, स्वेज नहर के माध्यम से ब्रिटिश अथवा फ्रान्स के सामुद्रिक मार्ग की अपेक्षा बहुत कम था।

बगदाद रेलवे के जर्मन निदेशक इस योजना को अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप देने तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूँजी निवेश एवं नियन्त्रण के लिए उत्सुक थे, परन्तु इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स ने सहयोग करने से मना कर दिया। सन् 1902 तक ब्रिटिश व्यापारी वर्ग में जर्मनी के पूर्व में विस्तार अभियान की आशंका निरन्तर बढ़ रही थी। कुस्तुनतुनिया पर जर्मनी का कूटनीतिज्ञ प्रभाव सर्वोपरि हो गया था। जर्मन सैनिक अधिकारी तुर्की की सेना को सैनिक प्रशिक्षण दे रहे थे और एशिया माइनर क्षेत्र में स्थित बाजारों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए जर्मन उत्पादक अधिमान्य सीमा-शुल्क की माँग कर रहे थे। ब्रिटिश उद्धत राष्ट्रवादियों, जिन्होंने दो दशक पूर्व उद्घोषणा की थी कि कुस्तुनतुनिया पर रूस का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए, अनुभव किया कि उस नगर पर जर्मनी का नियन्त्रण तथा काला सागर में प्रवेश पूर्वापेक्षा अधिक गम्भीर खतरा हो गया था। ब्रिटिश शेर तथा रूसी भालू ने प्रशा के बाज की छाया

तथा आस्ट्रिया के द्विमुखीय बाज के डारडेनल्स की ओर विजय अभियान के प्रति सतर्क रहने के लिए अपनी पुरानी शत्रुता तथा प्रतिद्वन्द्विता को विस्मृत कर दिया।

समीपवर्ती पूर्व में जर्मन प्रभाव का वर्चस्व पूर्णतया राजनीतिक वास्तविकताओं के अनुरूप नहीं था। बर्लिन, वियाना तथा कुस्तुनतुनिया के मध्य प्रत्यक्ष संचार व्यवस्था बाल्कन राज्यों विशेष रूप से सर्बिया तथा बुल्गारिया के दृष्टिकोण पर निर्भर थी। स्लाव जातीय अधिकांश सर्ब जनता रूस से बड़े स्लाव भाई के रूप में सहानुभूति तथा प्रबल समर्थन की आशा करती थी, और सर्ब देशभक्त बाल्कन क्षेत्र में विशाल राज्य के निर्माण का स्वप्न देख रहे थे। उनकी कल्पना के अनुसार आस्ट्रिया द्वारा प्रशासित बोस्निया तथा हर्जेगोविना में स्लाव जातीय सर्ब भी सम्मिलित होंगे। इस प्रकार की योजना की सफलता से हैप्सबर्ग साम्राज्य की अखण्डता तथा एकता को खतरा हो जायेगा, इस प्रकार वियाना में इसका प्रबल विरोध किया गया। सर्बवासियों की क्षेत्रीय सीमाओं के विस्तार अथवा संकुचन के किसी भी प्रयास से रूस तथा मध्य यूरोपीय शक्तियों के मध्य प्रतिष्ठा के प्रश्न पर सशस्त्र संघर्ष निश्चित था। बाल्कन क्षेत्र की जनता व्यग्र तथा सक्रिय थी, अस्तु किसी भी समय संघर्ष की सम्भावना थी।

बाल्कन क्षेत्र की उद्वेलित राष्ट्रवादी चेतना का तुर्की में प्रचार एवं प्रसार हो चुका था। तुर्की के देशभक्त तुर्की साम्राज्य के पतनोन्मुख संकेतों तथा विघटन से अत्यधिक निराश एवं चिन्तित थे। सन् 1908 में युवा तुर्कों ने "एकता तथा प्रगति" के मूल लक्ष्य को ग्रहण करते हुए क्रान्तिकारी आन्दोलन का गठन किया और प्रतिक्रियावादी सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय को मूल रूप से सन् 1876 में स्वीकृत संविधान को प्रवृत करने के लिए बाध्य किया।

तुर्की में क्रान्ति ने आस्ट्रिया सरकार को बोस्निया तथा हर्जेगोविना को आस्ट्रिया साम्राज्य में सम्मिलित करने की चिर प्रतीक्षित महत्वाकांक्षा की उपलब्धि का अवसर प्रदान किया। सन् 1908 में आस्ट्रिया द्वारा इन दोनों प्रान्तों के विलय ने तुर्कों को क्रुद्ध तथा सर्बों को उत्तेजित किया। बोस्निया तथा हर्जेगोविना की अधिकांश जनता सर्ब जाति की थी, अस्तु सर्बिया की जनता इन दोनों प्रान्तों का सर्बिया में विलय करके, विशाल सर्बिया के निर्माण के लिए अत्यधिक व्यग्र थी परन्तु आस्ट्रिया की इन दोनों प्रान्तों के विलय की कार्यवाही ने सर्बियावासियों की आकांक्षाओं को ध्वस्त ही नहीं किया वरन् सर्बिया के समुद्र की ओर विस्तार को भी अवरुद्ध कर दिया। सर्बिया को रूस की सैनिक सहायता की पूर्ण आशा थी, अस्तु सशस्त्र संघर्ष के लिए तैयारी की परन्तु रूस जापान के साथ युद्ध की क्षतिग्रस्त शक्ति को पुनः प्राप्त नहीं कर सका था। फ्रान्स तथा इंगलैण्ड ने सर्बिया की विस्तार वादी माँग की शान्ति बनाये रखने के लिए उपेक्षा की। जर्मनी ने आस्ट्रिया का पूर्ण सैनिक समर्थन किया। कैसर विलियम द्वितीय ने सार्वजनिक रूप से गर्व के साथ समर्थन की घोषणा की और प्रत्येक उत्तेजक भावना से बचने का परामर्श दिया जिससे सशस्त्र संघर्ष की सम्भावना हो सकती थी। सर्बों ने अपनी दुर्बलता तथा असमर्थता का अनुभव करते हुए जर्मनी के परामर्श को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार संकट कुछ समय के लिए टल गया।

सन् 1911-12 के तुर्की-इटली युद्ध के परिणामस्वरूप गम्भीर तनाव की स्थिति का विकास हुआ। इटली अफ्रीका के उत्तरी किनारे की ओर विस्तार के लिए प्रयत्न कर रहा था और तुर्की सरकार से पुरस्कार स्वरूप ट्रिपोली को अपना लक्ष्य निश्चित कर लिया था। तुर्की में राष्ट्रवादी चेतना के पुनर्जीवित हो जाने से इटली को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा प्रतीत हुई। अस्तु उसने तत्काल तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और तुर्की के सुल्तान को ट्रिपोली देने के लिए विवश किया। इटली की ट्रिपोली पर नियन्त्रण करने की सफलता ने विश्व के समक्ष स्पष्ट कर दिया कि तुर्की अब भी निर्बल था और कोई भी निर्भय होकर तुर्की पर आक्रमण कर सकता था। युद्धग्रस्त दोनों ही देश तुर्की और इटली नाममात्र के लिए जर्मनी तथा आस्ट्रिया के मित्र थे। त्रिदेशीय सन्धि देशों में मतभेद ने त्रिगुट (Triple Entente) सरकारों को आन्तरिक सन्तोष प्रदान किया। उत्तरी अफ्रीका में तुर्की की पराजय की निश्चित भावी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा करते हुए यूरोपीय कूटनीतिज्ञों ने समीपवर्ती पूर्व की समस्याओं एवं विवादों का पुनर्वीक्षण आरम्भ कर दिया।

प्रथम बाल्कन युद्ध, 1912 (The First Balkan War, 1912)

प्रतिक्रियाएँ अभिव्यक्त हो गयीं और बाल्कन संकट उत्पन्न हो गया। मैसीडोनिया में आन्तरिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी। तुर्की शासन के अन्तर्गत मैसीडोनिया के ईसाई धर्मावलम्बियों की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी और यूरोपीय शक्तियों ने इनके कष्टों तथा पीड़ाओं के निवारण के लिए प्रायः हस्तक्षेप किया। युवा तुर्कों ने अनुभव किया कि तुर्की साम्राज्य का अन्तिम अवशेष शनैः शनैः विदेशी शक्तियों के नियन्त्रण में जा रहा था। अस्तु, युवा तुर्कों ने मैसीडोनिया के तुर्कीकरण की नीति को कठोरता से कार्यान्वित किया। ओटोमन शासन को पूर्वापेक्षा अधिक सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाने के प्रयासों के परिणामस्वरूप ईसाई मतावलम्बियों के कष्टों, यातनाओं तथा पीड़ाओं में अत्यधिक वृद्धि हो गयी, और इन प्रयासों ने बाल्कन क्षेत्र के जाति भाइयों तथा ईसाई धर्मावलम्बियों की भावनाओं को उत्तेजित किया। अस्तु वे मैसीडोनिया को तुर्की शासन से मुक्त कराना चाहते थे तथा समस्त क्षेत्र को आपस में विभाजित करना चाहते थे। पुनर्गठित तथा पुनर्जीवित शक्तिशाली तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध बाल्कन क्षेत्र स्थित राज्यों का इस प्रकार का प्रयास सम्भव नहीं था और वे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में थे।

इटली के साथ विनाशकारी युद्ध से तुर्की शासन अत्यधिक निर्बल हो गया था। इससे प्रोत्साहित होकर बाल्कन क्षेत्र स्थित चार राज्यों सर्बिया, बुल्गारिया, यूनान तथा मोण्टेनोग्रो ने अपने समस्त मतभेदों को विस्मृत कर तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध संयुक्त अभियान आरम्भ करने के लिए एक संघ का गठन किया। इन राज्यों ने संयुक्त रूप से मैसीडोनिया में समुचित सुधार के लिए आग्रह किया परन्तु तुर्की साम्राज्य ने इन माँगों को अस्वीकार कर दिया। अस्तु बाल्कन राज्यों ने तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यूरोपीय शक्तियों ने बाल्कन राज्यों को चेतावनी देते हुए घोषणा की कि वे तुर्की साम्राज्य की क्षेत्रीय अखण्डता

में किसी प्रकार के संशोधन की अनुमति नहीं देंगे। यह चेतावनी निरर्थक रही। बाल्कन क्षेत्र के चारों सम्बद्ध राज्यों ने चारों ओर से तुर्की साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। इन चारों राज्यों का परस्पर सहयोग अभूतपूर्व था। परिणामस्वरूप इन राज्यों को निरन्तर अपूर्व विजय प्राप्त हुई और कुछ ही माह में संयुक्त सेनाओं ने तुर्कों को यूरोप से निष्कासित कर दिया और तुर्की साम्राज्य कुस्तुनतुनिया तक सीमित रह गया। चारों ओर विनाश से त्रस्त एवं पीड़ित तुर्की साम्राज्य ने यूरोपीय शक्तियों से निवेदन किया। उन्होंने युद्ध विराम करवा दिया और लन्दन में शान्ति सम्मेलन का आयोजन किया परन्तु शान्ति वार्ता असफल हो गयी।

तुर्की साम्राज्य पर कुछ निश्चित क्षेत्र देने के लए दबाव डाला गया। एड्रियानोपिल के प्रस्तावित समर्पण ने युवा तुर्कों को उत्तेजित कर दिया और उन्होंने सशस्त्र संघर्ष द्वारा तुर्की सुल्तान एवं प्रशासनिक तन्त्र को समर्पण को स्वीकार करने से पूर्व ही अपदस्थ कर दिया। पुनः युद्ध आरम्भ हो गया और तुर्की पुनः पराजित हुआ। सर्बिया तथा बुल्गारिया ने एड्रिनोपिल तथा मोनटेनोग्रिन स्कटरी (Montenogrins Scutari) पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। स्कटरी के पतन ने भावी विश्वयुद्ध के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण किया। आस्ट्रिया तथा इटली की प्रबल इच्छा थी कि स्कटरी पर मोण्टेनोग्रो का नियन्त्रण नहीं हो वरन् इसको अल्बानिया में सम्मिलित कर दिया जाये और इसको वे स्वायत्तशासी राज्य बनाना चाहते थे। उन्होंने सर्बिया को एड्रियाटिक (Adriatic) सागर पर स्थित डूरैज्जो (Durazzo) बन्दरगाह से हटने के लिए भी बाध्य किया। रूस ने स्लाव वंशजों के हित में मोण्टेनोग्रो तथा सर्बिया के दावों का समर्थन किया। आस्ट्रिया तथा रूस के मध्य युद्ध निश्चित प्रतीत हो रहा था परन्तु स्थगित हो गया।

लन्दन की सन्धि (Treaty of London)—सन् 1913 की लन्दन की सन्धि से युद्ध समाप्त हो गया और विजयी बाल्कन राज्यों ने तुर्की को सन्धि के प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार तुर्की साम्राज्य के पास कुस्तुनतुनिया के अतिरिक्त थ्रेस का पर्याप्त क्षेत्र शेष रह गया। क्रेट यूनान को दे दिया। इस सन्धि से स्वायत्तशासी अल्बानिया का उद्भव हुआ। आस्ट्रिया, सर्बिया को एड्रियाटिक सागर तक पहुँचने से रोकने के लिए कटिबद्ध था, अस्तु स्वायत्तशासी अल्बानिया की उत्पत्ति मुख्य रूप से आस्ट्रिया की माँग पर ही थी। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया तथा सर्बिया के मध्य शत्रुता बहुत बढ़ गयी।

बाल्कन राज्यों के मध्य संघर्ष (Quarrel among Balkan States)—विजित क्षेत्रों के विभाजन के प्रश्न पर बाल्कन क्षेत्रीय संघ भंग हो गया। विजयी राज्यों के मध्य मैसीडोनिया का विभाजन अत्यधिक जटिल प्रश्न था। अल्बानिया से विलग होने तथा एड्रियाटिक सागर में अपनी आकांक्षाओं के ध्वस्त हो जाने के उपरान्त सर्बिया ने मैसीडोनिया में क्षतिपूर्ति की माँग की। इसके अतिरिक्त बुल्गारिया भी प्राप्त लाभांश से सन्तुष्ट नहीं था। उसने सर्बिया की माँग का भी विरोध किया था। अस्तु बुल्गारिया ने अनायास सर्बिया पर आक्रमण कर

दिया। बुल्गारिया की इस कार्यवाही से अन्य राज्य भी उत्तेजित हो गये। यूनान तथा रूमानिया जो अब तक तटस्थ थे, ने बुल्गारिया के विरुद्ध सर्बिया का सक्रिया समर्थन किया। तुर्की, लन्दन की सन्धि के अन्तर्गत खोये हुए क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने की आशा से मित्र राज्यों के साथ सम्मिलित हो गया। चारों ओर से बुल्गारिया पर आक्रमण हुआ और बुल्गारिया निराशाजनक ढंग से पराजित हुआ। अन्ततोगत्वा शान्ति के लिए बाध्य हो गया।

बुकारेस्ट की सन्धि, 1913 (Treaty of Bucharest)—सन् 1913 की बुकारेस्ट की सन्धि के अनुसार बुल्गारिया को लन्दन की सन्धि में प्राप्त अधिकांश लाभांश से वंचित होना पड़ा। मैसीडोनिया का बहुत बड़ा भाग जिस पर बुल्गारिया ने दावा दिया था, यूनान और सर्बिया को देना पड़ा। बुल्गारिया राज्य की एक क्षेत्रीय पट्टी रूमानिया को प्राप्त हुई जबकि तुर्की को एड्रियानोपिल तथा थ्रेस का कुछ भाग पुनः मिल गया।

बाल्कन युद्धों के परिणाम (Results of the Balkan Wars)—दो बाल्कन युद्धों के क्षेत्रीय दृष्टि से अन्तिम परिणाम, यूरोप में व्यावहारिक दृष्टि से तुर्की साम्राज्य की समाप्ति एवं बाल्कन प्रायद्वीप में ईसाई राज्यों का विस्तार था।" सर्बिया और यूनान को सर्वाधिक लाभ हुआ और बुल्गारिया को सर्वाधिक हानि हुई। तुर्की का 4/5 यूरोपीय क्षेत्र साम्राज्य से विलग हो गया और प्रायद्वीप के दक्षिण पूर्व तक सीमित रह गया।

समस्त सन्धि वार्ता काल में यूरोप की महान् शक्तियों ने अपनी सक्रिय भूमिका पर बल दिया था। आस्ट्रिया, सर्बिया के क्षेत्रीय विस्तार को पूर्ण रूप से रोकने के लिए कटिबद्ध था। आस्ट्रिया ने तुर्की साम्राज्य से मुक्त अल्बानिया को स्वतन्त्र पृथक् राज्य के रूप में गठित करने पर बल दिया और आस्ट्रिया के राजनयिकों ने इटली के समर्थन से सर्बिया के एड्रियाटिक सागर तक विस्तार को रोक दिया।

बाल्कन युद्धों से बाल्कन समस्याओं का निदान नहीं हुआ। द्वितीय युद्ध भ्रातृहन्ता युद्ध था और इसने बाल्कन स्थित राज्यों में राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विताओं को उद्वेलित कर दिया। बुल्गारिया में तीव्र आंक्रोश था, अस्तु वह विश्वयुद्ध के समय मध्य शक्तियों के साथ सम्मिलित हो गया। "रूस पुनः बाल्कन राज्यों के संरक्षक के रूप में प्रगट हुआ, जबकि वह तुर्की के विरुद्ध नहीं था, वरन् आस्ट्रिया के विरुद्ध था।" वियाना में रूस के प्रबल समर्थन से बाल्कन क्षेत्र के स्लाव जाति की जनता के आक्रोश एवं असन्तोष को भविष्य में भीषण संकट की चेतावनी माना जा रहा था। आस्ट्रिया-हंगरी की सरकार हैप्सबर्ग साम्राज्य को विघटन से सुरक्षित रखने के लिए संघर्ष कर रही थी। यदि आस्ट्रिया के स्लाव जाति के लोगों को विलग होने की अनुमति दे दी गयी, तब आस्ट्रिया हंगरी की अन्य अल्पसंख्यक जातियाँ भी इसी प्रकार की माँग करेंगी। जर्मनी अपने एक मात्र सुदृढ़ मित्र आस्ट्रिया की मित्रता से वंचित नहीं होना चाहता था, इसलिए वह आस्ट्रिया की नीतियों का समर्थन करने के लिए बाध्य था। फ्रान्स और ब्रिटेन समीपवर्ती पूर्व में वर्तमान शक्ति सन्तुलन को बनाये रखने के लिए उत्सुक थे और आस्ट्रिया, जर्मनी अथवा रूस के प्रभुत्व को रोकने के लिए प्रयत्नशील थे।

स्मरणीय है कि सर्बिया तथा यूनान की विजय तथा मैसीडोनिया तथा सैलोनिका में उनके लाभों ने एजियन सागर में आस्ट्रिया के प्रवेश को अवरुद्ध कर दिया था। सर्बिया की शक्ति और प्रतिष्ठा में पर्याप्त वृद्धि ने सर्बों तथा यूगोस्लावों को प्रोत्साहित किया। उनके उत्साह से आस्ट्रिया चिन्तित था। आस्ट्रिया शासन के अन्तर्गत स्लाव जनता उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी, जब सर्बिया के जाति भाई उनको घृणित आस्ट्रिया के शासन से मुक्त करायेंगे। व्यापक स्लाव आन्दोलन से आस्ट्रिया अत्यधिक चिन्तित था और सर्बिया को स्लाव जनता के मध्य विद्रोह का प्रचारक तथा प्रोत्साहक मानता था। इस प्रकार वह सर्बिया का दमन करने के लिए उपयुक्त अवसर की खोज में था। इसके विपरीत सर्बिया के बाल्कन क्षेत्र में विस्तारवादी प्रयासों को आस्ट्रिया द्वारा निरन्तर विफल करने के कारण अत्यधिक क्रुद्ध तथा असन्तुष्ट था। सर्बिया आस्ट्रिया विरोधी प्रचार को तीव्र करके तथा आस्ट्रिया स्थित स्लाव जनता के साथ षड्यन्त्र रचकर प्रतिशोध लेना चाहता था। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व आस्ट्रिया और सर्बिया के मध्य अत्यधिक कटु सम्बन्ध थे।

बाल्कन युद्धों के परिणामों ने भयानक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विताओं को प्रोत्साहित किया। तुर्की और बुल्गारिया निर्बल हो चुके थे, परन्तु तुर्की, जर्मनी के तथा बुल्गारिया, आस्ट्रिया के संरक्षण में थे। रूस के संरक्षण में सर्बिया बाल्कन क्षेत्र का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया था। अस्तु बाल्कन विवाद पर एक ओर रूस तथा दूसरी ओर जर्मनी एवं आस्ट्रिया के मध्य सम्बन्ध अत्यधिक कटु हो गये थे। स्थिति अत्यधिक विस्फोटक थी।

इस छोटे-से क्षेत्र में परस्पर संघर्षरत अनेक शक्तियाँ अपने निहित स्वार्थों तथा हितों की उपलब्धियों के लिए केन्द्रित थीं और समस्त महान् शक्तियाँ स्थानीय प्रतिद्वन्द्विताओं एवं षड्यन्त्रों का अपनी चिर प्रतीक्षित महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु प्रयोग करने के लिए तत्पर थीं। इसी कारण विद्वान इतिहासकारों ने बाल्कन क्षेत्र को "यूरोप का बारूद का ढेर" कहा था। निकट भविष्य में अनायास किसी स्फुलिंग द्वारा विस्फोट की सम्भावना थी जिससे यूरोप की पुरानी व्यवस्था युद्ध की विभीषिका में धराशायी हो जायेगी।

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ में ओटोमन साम्राज्य तटस्थ रहा, परन्तु कालान्तर में त्रिसन्धि (Triple Entente) देशों, (रूस, फ्रान्स एवं ब्रिटेन) के साथ तीव्र मतभेद हो गये। ओटोमन साम्राज्य ने जर्मन युद्धपोतों को आश्रय दिया। रूस ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए कालासागर स्थित बन्दरगाहों पर भीषण बमबारी की। परिणामस्वरूप त्रिसन्धि देशों ने ओटोमन साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कुछ काल तक ओटोमन साम्राज्य ने कुशलतापूर्वक युद्ध किया, परन्तु सन् 1916 के प्रारम्भ से बहुत बड़ी संख्या में सैनिकों ने सेना से पलायन करना आरम्भ कर दिया और दबाव भी बहुत बढ़ गया। सेवर्स (Severes) की सन्धि के प्रावधानों से ओटोमन साम्राज्य के पास इस्तानबुल तथा थ्रेस का कुछ भाग ही शेष रह गया परन्तु एशिया माइनर का विशाल क्षेत्र तथा अरब प्रान्त निकल गये। इसके अतिरिक्त कुछ द्वीप यूनान को देने पड़े। जलडमरूमध्य का अन्तर्राष्ट्रीयकृत कर दिया गया, जबकि

ओटोमन साम्राज्य की वित्त व्यवस्था पर यूरोपीय शक्तियों का कठोर नियन्त्रण स्थापित हो गया। कालान्तर से अतातुर्क मुस्तफा कमाल पाशा ने इस सन्धि का तीव्र विरोध किया और लुइसाना की सन्धि द्वारा इस सन्धि के प्रावधानों को समाप्त कर दिया गया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. क्रीमिया युद्ध के कारणों एवं परिणामों का परीक्षण करें।
   Discuss the causes and effects of the Crimean War.
   (बी. आर. अम्बेदकर, 1999; राँची, 1997, 99; गोरखपुर, 1990, 92; लखनऊ, 1993, 95, 97, 99; कानपुर, 1993, 96; आगरा, 1994, 96, 98, 99; मगध, 1992, 97; अवध, 1992, 96, 98; गढ़वाल, भागलपुर एवं कानपुर, 1996; जबलपुर, 1996, 98, 2000; बुन्देलखण्ड, 1990, 95; रायपुर, 1997; भोपाल, 1994, 97, 98; रुहेलखण्ड, 1993, 94, 95, 98, 2000; पटना एवं रायपुर, 1997)
2. क्या क्रीमिया का युद्ध आधुनिक काल में लड़ा गया एक अति अनुपयोगी युद्ध था ?
   Was the Crimean War fought in the modern era an useless war ?
   (रायपुर, 1999; आगरा, 1992, 93; ग्वालियर, 2000; पटना, 1997, 98; बुन्देलखण्ड, 1992; रुहेलखण्ड, 1996, 2000)
3. सन् 1856 से सन् 1870 के बीच पूर्व की समस्या की घटनाओं का वर्णन कीजिये।
   Describe the events occurred during 1856 to 1870 related to Eastern Question. (रायपुर, 1999; राजस्थान, 2000)
4. पूर्वी समस्या की परिभाषा दीजिये। 1815 से 1870 तक इससे सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन कीजिये।
   Define Eastern Question. Describe events related to this during 1815 to 1870. (रायपुर, 1998; ग्वालियर, 2000; अवध, 1991, 95; मेरठ, 1998; आगरा, 1997; जबलपुर, 1995, 96)
5. पूर्वी समस्या से आप क्या समझते हैं ? यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
   What do you understand by Eastern Question ? Critically examine Greek War of independence. (रायपुर, 1997; बुन्देलखण्ड, 1994; रुहेलखण्ड, 1992, 94, 99; आगरा एवं जबलपुर, 1995
6. यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम पर एक लघु निबन्ध लिखिये।
   Write a short essay on Greek War of independence.
   (रायपुर, 1996; गढ़वाल, 1997, 98; लखनऊ, 1997)
7. यूनान के स्वतन्त्रता युद्ध के कारणों की व्याख्या कीजिये और यूनानियों की सफलता का कारण बताइये।
   Discuss the causes of Greek War of independence and causes of Greek success. (जबलपुर, 1995, 97, 99; लखनऊ, 1999; आगरा, 1997, 98, 99; मगध, 1995; बुन्देलखण्ड, 1991, 93, 97, 98; भोपाल, 1994, 97, 98)

8. बताइये कि बर्लिन काँग्रेस (1878) ने कहाँ तक पूर्वी एवं यूरोपीय समस्याओं को सुलझाया ?
Show how far the Berlin Congress (1878) solved the eastern and other European problems.
(गढ़वाल, 1992; रुहेलखण्ड, 1995, 97; गोरखपुर, 1991; कानपुर, 1995, 98 आगरा, 1993, 94, 95, 96, 97, 99, 2000 बिलासपुर एवं राजस्थान, 2000; जबलपुर, 1997, 98, 99, 2000; भोपाल, 1995, 96, 97; पटना एवं भागलपुर, 1997; राँची, 1998; मगध, 1993, 95)

9. बाल्कन युद्धों के कारणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये और उसके परिणामों की सूक्ष्म विवेचना कीजिये।
Briefly discuss the causes of the Balkon Wars and critically assess its results. (रुहेलखण्ड, 1992; गढ़वाल 1992, 94; लखनऊ, 1992, 94, 96, 98; कानपुर, 2000; आगरा, 1995, 96, 98, 99, 2000; बिलासपुर, 2000; जबलपुर, 1995, 97, 99; भोपाल, 1996)

10. सन् 1911 के मोरक्को संकटों ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को किस प्रकार प्रभावित किया ?
How did the Moroccan Crisis affect International Relations before 1911 ?
(गढ़वाल, 1997; रुहेलखण्ड 1996; बिलासपुर, 2000; जबलपुर, 1996, 99)

11. 1878 से 1914 के मध्य पूर्वी समस्या के इतिहास को रेखांकित कीजिये।
Trace the history of Eastern Problem from 1878 to 1914.
(गढ़वाल, 1998, 2000)

12. 1908 के युवा तुर्क आन्दोलन पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
Write a short essay on Young Turk's Movement of 1908.
(कानपुर, 1997, 99, 2000; बिलासपुर, 1998, 2000; जबलपुर, 1996, 98, 2000; भोपाल, 1997; आगरा, 1992, 95, 96, 98, 2000)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. ओटोमन साम्राज्य का अर्थ .... है—
(क) जर्मन साम्राज्य (ख) आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य
(ग) तुर्की साम्राज्य (घ) ब्रिटिश साम्राज्य
2. कार्लो विटज् की सन्धि सन् .... में हुई—
(क) 1815 (ख) 1699 (ग) 1750 (घ) 1850
3. महमत अली .... था—
(क) तुर्की का सुल्तान (ख) मिस्र का पाशा
(ग) रूस का जार (घ) आस्ट्रिया का सम्राट
4. क्रीमिया युद्ध .... हुआ—
(क) सन् 1830 (ख) सन् 1815-1817
(ग) सन् 1854-1856 (घ) सन् 1881-1883
5. पेरिस की शान्ति सन्धि .... को हुई—
(क) 30 मार्च, 1856 (ख) 30 मार्च, 1876
(ग) 30 मार्च, 1848 (घ) 30 मार्च, 1865

6. महमूद द्वितीय .... था—
(क) मिस्र का पाशा (ख) तुर्की का सुल्तान (शासक)
(ग) रूस का जार (घ) सीरिया का राज्यपाल
7. रूसी-तुर्की युद्ध .... में हुआ—
(क) 1848-1849 (ख) 1861-1862
(ग) 1877-1878 (घ) 1895-1896
8. बर्लिन सन्धि .... में हुई—
(क) सन् 1871 (ख) सन् 1861
(ग) सन् 1891 (घ) सन् 1878
9. युवा तुर्क आन्दोलन किस वर्ष .... में हुआ—
(क) सन् 1908 (ख) सन् 1891 (ग) सन् 1912 (घ) सन् 1924
10. प्रथम बाल्कन युद्ध .... में हुआ—
(क) सन् 1897 (ख) सन् 1912 (ग) सन् 1908 (घ) सन् 1891

[उत्तर—1. (ग), 2. (ख), 3. (ख), 4. (ग), 5. (क), 6. (ख), 7. (ग), 8. (घ), 9. (क), 10. (ख) ।]

21

राष्ट्रवाद

[NATIONALISM]

आधुनिक काल के शुभारम्भ के साथ पश्चिमी यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों का अभ्युदय हुआ। राष्ट्रीय राज्यों के अभ्युदय काल में राष्ट्रीय राज्यों की पहचान प्रायः जाति, भाषा, ऐतिहासिक तथ्यों तथा धार्मिक सम्बन्धों से होती थी, जबकि अतीत में राज्यों की पहचान विशेष भौगोलिक क्षेत्रों से होती थी। नितान्त सत्य है कि इनमें से किसी एक का अभाव राष्ट्रीय राज्यों के अभ्युदय में कभी बाधक नहीं था।

जबकि यूरोप के विशेष भौगोलिक क्षेत्र की जनता में समान राष्ट्रीय भावनाओं का प्रादुर्भाव तथा विकास हुआ, व्यापार एवं वाणिज्य की निरन्तर बढ़ती हुई आवश्यकताओं, उपनिवेशों पर आधिपत्य स्थापित करने की प्रबल आकांक्षाओं, उदीयमान मध्यम वर्गों की आवश्यकताओं तथा तत्कालीन शासकों द्वारा अधिकाधिक सत्ता प्राप्त करने की महत्वाकांक्षाओं ने प्रबल समर्थन किया। विभिन्न तथ्यों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय राज्यों के अभ्युदय में राष्ट्रीय भावना सर्वोपरि थी। एक निश्चित भू-भाग में परस्पर सौहार्द्र तथा सहयोग अन्तर्निहित आन्तरिक मूलभूत भावना ही राष्ट्रवाद है।

सोलहवीं शताब्दी में ब्रिटेन, फ्रान्स तथा स्पेन राष्ट्रीय राज्यों का अभ्युदय हुआ था। सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों में फ्रान्स की राष्ट्रवादी भावनाएँ पूर्वापेक्षा अधिक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली हो गयी थीं। इस अवधि में हॉलैण्ड तथा बेल्जियम दो राष्ट्रीय राज्यों का अभ्युदय हुआ। नैपोलियन के शासनकाल में राष्ट्रत्व की प्रबल उदात्त भावना का व्यापक प्रसार हुआ। यथार्थ में नैपोलियन की सेना फ्रान्स के सामान्य नागरिकों की राष्ट्रीय भावनाओं एवं हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली राष्ट्रीय सेना थी। राष्ट्रीन सेना में राष्ट्र के प्रति निष्ठा, समर्पण एवं उत्सर्ग की अन्तर्निहित भावनाओं का यूरोप के अन्य देशों ने अनुभव किया और इसी पवित्र भावना ने मध्य यूरोपीय देशों की जनता को राष्ट्रीय राज्य स्थापित करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इटली और जर्मनी दो शक्तिशाली राज्यों का अभ्युदय हुआ तथा विशाल हैप्सबर्गवंशीय शासकों द्वारा शासित आस्ट्रिया साम्राज्य का विघटन हो गया।

उस समय तक राष्ट्रवाद की पवित्र भावना का समस्त पूर्वी यूरोप के देशों में भी व्यापक प्रचार एवं प्रसार हो चुका था। रूस ने राष्ट्रीय राज्य के मूलभूत लक्षणों तथा तत्वों को ग्रहण कर लिया था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही राष्ट्रत्व की प्रबल आकांक्षा पूर्वी यूरोप में बलवती हुई। परिणामस्वरूप पूर्वी यूरोप के देशों में तत्कालीन ओटोमन साम्राज्य के विरुद्ध भीषण विद्रोह हुए। जब पूर्वी यूरोप में हिंसक उपद्रव तथा भीषण रक्तपात हो रहे थे, यूरोप के अन्य नवोदित राष्ट्रीय राज्यों के मध्य परस्पर वैमनस्य तथा प्रतिद्वन्द्विता में वृद्धि हो रही थी तथा समस्याएँ अत्यधिक जटिल एवं विकट होती जा रही थीं। उन्हीं विवादों के परिणामस्वरूप प्रथम विश्वयुद्ध का सूत्रपात हुआ। अस्तु प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पूर्वी यूरोप में अनेक नवोदित राष्ट्रीय राज्यों का अभ्युदय हुआ और विशाल ओटोमन साम्राज्य तुर्की राष्ट्रीय राज्य तक ही सीमित रह गया। इस भावना, विचार एवं प्रभाव का ओटोमन साम्राज्य के अरब जगत में भी प्रसार हुआ। एशिया स्थित देशों में राष्ट्रीय भावना पहले से ही थी।

यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों के अभ्युदय की प्रमुख विशेषता यह थी, कि प्रायः विभिन्न मौलिक समुदायों ने राष्ट्रीय राज्यों के रूप में आविर्भूत होने में 2 से 4 शताब्दियों का समय लिया। समस्त राष्ट्रों, जैसे ब्रिटेन, स्पेन, फ्रान्स, हालैण्ड और बेल्जियम जिन्होंने राष्ट्रीय राज्य का स्वरूप ग्रहण करने में कम समय लिया था, में अपेक्षाकृत अधिक शान्तिपूर्ण स्थिति रही परन्तु अनेक समुदायों ने राष्ट्रत्व प्राप्त करने के लिए दीर्घकाल तक निराशा तथा कुंठा का अनुभव किया। अन्ततोगत्वा इन समुदायों को भीषण रक्तपात के माध्यम से ही राष्ट्रत्व की प्राप्ति हुई, परन्तु प्राप्त राष्ट्रत्व में कभी भी स्थायित्व नहीं रहा। इसके अतिरिक्त समस्त राष्ट्रीय राज्यों, जिन्होंने शान्तिपूर्ण ढंग से राष्ट्रत्व प्राप्त किया था, में आज भी लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। वे राष्ट्रीय राज्य एवं समुदाय जिन्होंने राष्ट्रत्व प्राप्त करने के लिए अव्यवस्था, अशान्ति एवं भीषण रक्तपात का अनुभव किया, कठोर अधिनायकतन्त्रीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत रहे।

इटली एवं जर्मनी ने अनेक कष्टों, पीड़ाओं तथा युद्धों के उपरान्त राष्ट्रीय राज्य का स्वरूप प्राप्त किया था। जर्मनी को राष्ट्रवाद की वास्तविक प्रेरणा एवं प्रोत्साहन नैपोलियन के शासन काल में नैपोलियन की अश्वारोही सेना के घोड़ों की विनाशकारी टापों से मिला था। तार्किक दृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सन् 1870 में जर्मनी के एकीकरण के उपरान्त आविर्भूत राष्ट्रीय राज्य जर्मनी में सत्तावादी शासन की समस्त विशेषताएँ निहित थीं। निःसन्देह नैपोलियन ने इटली पर आक्रमण किया और कुछ काल तक शासन भी किया परन्तु वह इटली की महान् सांस्कृतिक निधि का प्रशंसक रहा और अनेक अवसरों पर मुक्तकंठ से प्रशंसा भी की। परिणामस्वरूप इटली के राष्ट्रवादियों ने प्रेरित एवं प्रोत्साहित होकर गणतन्त्रवाद तथा उदारवाद के सिद्धान्तों तथा आदर्शों का अनुसरण किया परन्तु वे भविष्य में आदर्श गणराज्य स्थापित करने में असफल ही हुए। सन् 1871 में नवोदित एकीकृत राष्ट्रीय इटली ने उदारवादी विशिष्ट तत्वों को बनाये रखने के लिए कठोर संघर्ष किया और कुछ काल तक इटली की

प्रशासनिक व्यवस्था उदारवादी सिद्धान्तों तथा आदर्शों के अनुरूप रही, परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के उपरान्त तत्कालीन विभिन्न जटिल आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं के कारण अधिनायक तन्त्र स्थापित हो गया। दूसरी ओर भीषण हिंसा तथा कठोर नीतियों से उद्भूत ज़र्मन राष्ट्रवाद ने सन् 1890 में विख्यात जर्मन चान्सलर बिस्मार्क की पद-मुक्ति के उपरान्त सत्तावादी विशिष्ट अवयवों तथा तत्वों का पूर्वापेक्षा अधिक उग्ररूप से विरोध किया। जर्मनी को महत्वाकांक्षी सम्राट विशाल जर्मन साम्राज्य स्थापित करने की प्रबल आकांक्षा से प्रमुख औपनिवेशिक शक्तियों के साथ संघर्ष के पथ पर अग्रसर हुआ। जर्मनी की महत्वाकांक्षी आक्रमणात्मक नीतियों तथा गतिविधियों के परिणामस्वरूप भीषण विध्वंसात्मक विश्व युद्ध हुआ। इस युद्ध में जर्मनी की पराजय हुई और यूरोप के साथ समस्त विश्व में विक्षुब्धता, अशान्ति तथा अस्त-व्यस्तता की स्थिति हो गयी। राष्ट्रवादी तथा समाजवादी सम्मिश्रण, नाजी के नाम से विख्यात, का शासन स्थापित हुआ। नाजी राष्ट्रीय समाजवादियों का संक्षिप्त नाम है। नाजी दल ने 'आर्य' सिद्धान्त के आधार पर उग्र राष्ट्रवाद तथा जातिवाद पर विशेष बल दिया। नाजी शासन के परिणामस्वरूप सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध हुआ।

जर्मनी तथा इटली के सन्दर्भ में उदात्त राष्ट्रीय भावना को उद्वेलित करने वाली सर्वोपरि प्रबल शक्ति स्वच्छन्दतावाद की विशिष्ट चेतना थी। स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक एवं प्रबल समर्थक रूसो ने विचार व्यक्त किया है, "एक विचारशील मनुष्य एक भ्रष्ट पशु है।" यह कथन अत्यधिक सारगर्भित है। स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख विशेषता अनुभूति अथवा संवेदना है, जो अन्ततोगत्वा परिस्थित्यानुसार राज्य के प्रति अपूर्व आस्था, सम्बन्ध तथा सम्मान की चेतना जाग्रत करती है। स्वच्छन्दतावादी चेतना ने जर्मनी एवं इटली की राष्ट्रवादी भावनाओं को सुदृढ़ तथा पुष्ट किया। इस कार्य में, गोथे (Goethe), स्किलर (Schiller), कान्ट, हीगल और बीथोविन ने जर्मनी में एवं मैजिनी ने इटली में अपूर्व योगदान दिया। जर्मनी के राष्ट्रवाद में स्वच्छन्द स्वरूप इटली की अपेक्षा अधिक था। कालान्तर में हीगल, ट्रीटस्के (Trietschke), स्कोपहैमर (Schopenhamer) और नीत्शे (Nietzsche) के अभिव्यक्त विचारों तथा लेखों ने वास्तविकता तथा सत्य के प्रति अबौद्धिक दृष्टिकोण में पर्याप्त वृद्धि की। इटली का स्वच्छन्द राष्ट्रवाद ऊपरी धरातल तक ही सीमित था। इटली की राष्ट्रीय भावना प्रायः यत्रतत्र बिखरी हुई, भावनावाद एवं संवेदनावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई। इटलीवासियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति अथवा उनके राष्ट्रीय चरित्र के साथ उत्तरी एवं दक्षिणी इटली के मध्य आर्थिक असन्तुलन के कारण मुसोलिनी के शासन काल में भी गहन एवं उदात्त राष्ट्रीय भावना का आविर्भाव नहीं हो सका।

फ्रान्स की क्रान्ति के परिणामस्वरूप उद्भूत अनेक प्रवृत्तियों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वोपरि थी। रूसो ने मत व्यक्त किया है, "यह जनता ही होती है, जिससे यथार्थ में राज्य का निर्माण होता है।" नैपोलियन के आक्रमणों ने यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना के व्यापक

प्रचार एवं प्रसार में अपूर्व योगदान दिया। यूरोप के अनेक देशों में नैपोलियन द्वारा ही नवयुग का संदेश पहुँचा। जर्मनी में नैपोलियन के आक्रमणों के परिणामस्वरूप ही उदात्त राष्ट्रीय भावना का आविर्भाव हुआ था, और प्रारम्भ से ही राष्ट्रवाद ने उग्ररूप ग्रहण कर लिया था। विदेशियों की अनधिकृत लूटमार तथा निर्मम एवं अमानुषिक आधिपत्य के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप जर्मन राष्ट्रवादियों ने स्थानीय संस्थाओं, स्थानीय रीति-रिवाजों, परम्परागत संस्कृति तथा राष्ट्रीय भाषा को सर्वाधिक महत्व दिया। फ्रान्स का राष्ट्रवाद सर्वदेशीय, सर्वमुक्तिवादी तथा राष्ट्रवाद विरोधी था। ठीक इसके विपरीत जर्मन राष्ट्रवाद स्वच्छन्द और विशेषाधिकारवादी था। इसका स्वरूप अन्य से भिन्न विशिष्ट था। सन् 1806 में जेना के विनाश के तत्काल बाद स्कारहोर्स्ट (Scharhorst) ने जर्मन सेना का पुनर्गठन किया था। सन् 1807 में जर्मनी के एक नागरिक ने प्रशा के राजा को लिखा था, "जो कुछ फ्रान्स ने नीचे से किया था, हमको ऊपर से करना चाहिए। प्रशा के देशभक्त, राष्ट्र की अविकसित तथा अन्तर्निहित सुषुप्त अनन्त शक्ति से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। उन्होंने एक सुदृढ़ केन्द्रीय सत्ता के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया। सत्य अर्थों में राष्ट्रीय सेना का गठन किया। जर्मनी की प्राचीन सांस्कृतिक निधि के प्रति अपूर्व देशभक्तिपूर्ण श्रद्धा तथा निष्ठा जाग्रत करने एवं जर्मन राष्ट्रवाद की उदात्त भावना को उद्वेलित करने के उद्देश्य से नवीन राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का शुभारम्भ किया।

इटली ने दीर्घकाल तक फ्रान्स के आधिपत्य को सहज भाव से स्वीकार कर लिया था। नगरों में मध्यम वर्गों ने पूर्वापेक्षा अधिक कुशलता तथा छोटे राजाओं एवं धर्माध्यक्ष पोप की सत्ता के विनाश के परिणामस्वरूप धार्मिक बन्धनों की शिथिलता का स्वागत किया था। इटली के राष्ट्रवाद का प्रमुख प्रवर्तक मैजिनी एक आदर्शवादी तथा विशुद्ध बुद्धिजीवी था। उसने अपनी समस्त आशाएँ देश के साहसी, निर्भीक एवं वीर नवयुवकों पर केन्द्रित की थीं। उसने कहा था, "विद्रोही जनता के नेतृत्व के लिए नवयुवक को नियुक्त करो।" स्वतन्त्रता और एकता के बिचार का यूरोप के अन्य देशों में व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ। परिणामस्वरूप युवा इटली की समिति के अनुरूप, युवा जर्मनी, युवा पोलैण्ड, युवा स्विट्ज़रलैण्ड समितियों का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त मैजिनी राष्ट्र को स्वयं में अन्तिम लक्ष्य नहीं मानता था। मैजिनी के अभिव्यक्त मतानुसार राष्ट्रवाद, जाति के कल्याण तथा मानवता की व्यापक सेवा के लिए ईश्वर प्रदत्त एक साधन है। इटली के राष्ट्रवाद का स्वरूप एवं प्रवृत्ति इस प्रकार की थी। यह नवीन यूरोप की भावनाओं एवं विचारों का निष्कर्ष था। जर्मनी का राष्ट्रवाद पूर्णतया भिन्न था और यूरोप के लिए एक संकट बन गया था।

जर्मनी एवं इटली के स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में एकीकरण की प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप ही दोनों के राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति और स्वभाव में इतनी अधिक विषमता थी। रक्त और कठोरता के साथ कोयला एवं लोहे ने जर्मनी के राष्ट्रवाद के भाग्य का निर्णय किया था। मैक्यिावली के प्रवर्तित सिद्धान्तों के अनुरूप अनेक युद्धों के उपरान्त प्रशा ने जर्मनी को एकता के सूत्र में

बाँधा था। इस प्रकार के एकीकरण ने जर्मनी के राष्ट्रवाद पर प्रशा की विशिष्ट छाप छोड़ी थी। प्रशा सदैव सत्तावाद का प्रबल समर्थक रहा। प्रशा का संस्थापक फ्रेडरिक महान् सड़कों पर जनता के मध्य निशानेबाजी का अभ्यास करता था। जंकर (Juncker) परम्परा अर्थात् प्रशा के धनी तथा सम्पन्न भू-स्वामियों की सत्तावादी परम्परा, प्रशा की एक अन्य विशेषता थी। फ्रान्स की क्रान्ति से आविर्भूत स्वच्छन्दतावादी प्रेरणा के साथ समन्वित सत्तावाद ने जर्मन राष्ट्र को आक्रमणात्मक, उग्र राष्ट्रवादी तथा अन्ततोगत्वा सैन्यवादी बना दिया।

इटली का राष्ट्रवाद भी प्रशा की सत्तावादी परम्परा के मन्द स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक अवसर पर इटली के राजनीतिज्ञों ने इटली के अनेक राज्यों के एकीकरण करने के उद्देश्य से यूरोपीय संकटों का समुचित शोषण किया। इटली के एकीकरण में अस्त्र-शस्त्रों की अपेक्षा राष्ट्रवाद की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका थी। तार्किक दृष्टि से इटली का राष्ट्रवाद अन्तर्विराम के साथ आक्रमणात्मक तथा सैन्यवादी था, परन्तु कभी भी जर्मनी के सदृश सुदृढ़ तथा शक्तिशाली नहीं रहा।

जर्मनी और इटली में वाणिज्यवादी तथा कालान्तर में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास ने राष्ट्रवाद के विकास, प्रचार एवं प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। व्यापारिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र का इटली से एन्टवर्प तथा एटलाण्टिक महासागर के तट पर स्थित देशों में स्थानान्तरित हो जाने के उपरान्त इटली का प्रभुत्व तथा महत्व समाप्त हो गया था। उसी काल में फुगर परिवार ने बैंक, बीमा कम्पनियाँ और स्टाक बाजार एन्टवर्प में स्थापित किये। जर्मनी के एकीकरण के प्रत्येक चरण में जर्मन राज्यों की परस्पर आर्थिक निर्भरता ने देश के एकीकरण के लिए भौतिक उत्तोलक (उठाने वाला) का कार्य किया था। जर्मनी के एकीकरण के उपरान्त, जर्मनी में आर्थिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप लाभों को जौलवेरिन (Zollverin) सीमा-शुल्क संघ) कहा जाता था। जर्मन राष्ट्रवाद ने आक्रमणात्मक आर्थिक राष्ट्रवाद का विशिष्ट स्वरूप ग्रहण कर लिया था। विशेष उल्लेखनीय है कि जर्मनवासियों को स्वयं के कॉफी के लिए शक्कर की अनुपलब्धता के कारण उत्पन्न असन्तोष ने उनको नैपोलियन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रेरित किया था। प्रशा की नागरिक सेना ने नैपोलियन की नागरिक सेना के विरुद्ध लिपजिंग (Leipizig) के स्थान पर युद्ध किया था। यह युद्ध राष्ट्रों के युद्ध के नाम से विख्यात है। शीघ्र ही जर्मन राष्ट्रवादियों ने पूँजीवाद की कंकाल संरचना प्राप्त कर ली। जर्मनी को अपेक्षाकृत अधिक बाजारों तथा नवीन वस्तुओं के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता थी। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्य तक आर्थिक नेतृत्व के अभाव तथा जर्मनी की पंगु अर्थव्यवस्था ने देश को हिटलरवाद स्वीकार करने के लिए विवश किया।

इटली का दक्षिणी भाग मुख्य रूप से कृषि प्रधान था और लगभग समस्त उद्योग इटली के उत्तरी क्षेत्र में स्थित थे। अस्तु आधुनिक इटली के उद्‌भव काल में जर्मनी के अनुरूप विकट आर्थिक तत्व विद्यमान नहीं थे। इसके उपरान्त इटली का औद्योगीकरण जर्मनी के सदृश

कभी नहीं पहुँच सका। जर्मनी के औद्योगीकरण ने इसकी विदेश नीति के प्रेरक के रूप में कार्य किया।

जर्मनी और इटली दोनों के राष्ट्रवाद की तीन प्रमुख विशेषताएँ थीं :

(1) स्वच्छन्दतावाद जिसके परिणामस्वरूप आस्था और विश्वास का आविर्भाव हुआ।

(2) आक्रमणात्मक चेतना एवं प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप सैन्यवाद का विकास हुआ।

(3) आर्थिक विकास की तार्किकता के परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं का उद्भव एवं विकास हुआ। इटली का राष्ट्रवाद जर्मनी के राष्ट्रवाद की तुलना में निर्बल एवं कृशकाय था। इटली के एकीकरण में कूटनीति की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका थी और देश जर्मनी के अनुरूप पूँजीवाद तथा औद्योगीकरण के आधार पर कभी भी एकता के सूत्र में भी नहीं बँधा।

सन् 1848 की क्रान्ति तथा फ्रैंकफर्ट की संसद (Revolution of 1848 and Frankfort Parliament)

यूरोप के इतिहास में सन् 1815 के बाद का काल अत्यधिक अशान्ति, अस्थिरता, तथा अस्त-व्यस्तता का काल था। वाटरलू के युद्ध में नैपोलियन की पराजय के उपरान्त विजयी शक्तियों ने उन समस्त तत्वों, विचारों एवं भावनाओं पर अंकुश लगाया जिनको नैपोलियन ने उन्मुक्त छोड़ दिया था। लेकिन फ्रान्स की क्रान्ति ने जिस आस्था को प्रस्तुत किया था, उसका नैपोलियन की पराजय ने समाधान नहीं किया था। नैपालियन के पतन से उन विचारों और सिद्धान्तों का पतन नहीं हुआ था, जिन्होंने फ्रान्स की क्रान्ति को प्रेरित किया था तथा नैपोलियनकालीन युग ने समस्त यूरोप में व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया था। ये विचार और सिद्धान्त नवोदित यूरोप की अवश्यम्भावी शक्ति और अवयव थे। यूरोप के प्रत्येक व्यक्ति ने फ्रान्सवासियों से लोकप्रिय प्रभुसत्ता, व्यक्ति के अधिकारों तथा राष्ट्रीय देशभक्ति को किसी न किसी रूप में सीख लिया था। वे इन विचारों को समाज तथा राजनीति में आधारभूत सिद्धान्त मानते थे, अथवा सामाजिक एवं राजनीतिक पुनर्रचना की योजना में अनिवार्य तत्व स्वीकार करते थे। अस्तु यूरोप की जनता के लिए फ्रान्स की क्रान्ति के सिद्धान्त धर्म के नये सिद्धान्तों के अनुरूप थे और धार्मिक उत्साह, निष्ठा एवं समर्पण की भावना से इन सिद्धान्तों को मूर्तरूप प्रदान के लिए व्यग्र थे, परन्तु यूरोपीय राष्ट्रों के निरंकुश शासक फ्रान्स की क्रान्ति को वैधसत्ता के विरुद्ध विद्रोह मानते थे, वे इसको अस्त-व्यस्त करने वाली शक्ति मानते थे, जिसके स्पर्श से अनेक सिंहासन एवं वेदियाँ ध्वस्त हो गयीं और अशान्ति, अस्त-व्यस्तता एवं अस्थिरता व्याप्त हो गयी। समस्त यूरोप भीषण रक्तपात, शत्रुता, क्रूर एवं अमानुषिक हत्याओं में व्यस्त था। यूरोपीय शासकों का दृढ़ संकल्प था कि यूरोप की शान्ति के हित में समस्त क्रान्तिकारी सिद्धान्तों तथा आदर्शों का उन्मूलन करना आवश्यक था। क्रान्ति की भयावह घटनाओं ने शासकों को कठोर प्रतिक्रियावादी तथा आन्दोलनों में अन्तर्निहित अपेक्षाकृत श्रेष्ठ यूरोप तथा न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था की प्रबल आकांक्षा के प्रति नेत्रहीन बना दिया।

उदार एवं राष्ट्रवादी विचारों के समर्थक निरंकुशता तथा वैधता के सिद्धान्त का सक्रिय विरोध कर रहे थे, जबकि निरंकुश शासक यूरोप में प्राचीन शासन स्थापित करने के लिए सक्रिय थे। परिणामस्वरूप सन् 1815 के उपरान्त दो परस्पर विरोधी शक्तियों के मध्य दीर्घकालीन संघर्ष आरम्भ हो गया। एक ओर फ्रान्स की क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा भावनाओं के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी और लोकतान्त्रिक तथा राष्ट्रवादी आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने का दृढ़ संकल्प था। इस प्रकार रूढ़िवाद तथा उदारवाद दो विरोधी शक्तियों के मध्य संघर्ष उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय इतिहास की प्रमुख विशेषता है। फ्रान्स की क्रान्ति ने अगोचर चिन्हं छोड़े थे, जिनको शासक संक्रामक कहते थे और जनता प्रेरणा की संज्ञा देती थी।

फ्रान्स की क्रान्ति द्वारा उद्वेलित मानवीय आकांक्षाएँ, दो आन्दोलनों, लोकतान्त्रिक तथा राष्ट्रवादी आन्दोलनों के रूप में अभिव्यक्त हुईं। फ्रान्स, स्पेन एवं इंग्लैण्ड, जहाँ राष्ट्रीय एकता स्थापित हो चुकी थी और स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी थी, में जनता लोकतन्त्र की स्थापना के लिए आन्दोलन कर रही थी। वे एक ऐसी सरकार का गठन करना चाहते थे जिसमें जनता की इच्छाओं एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति हो। सन् 1815 में किसी भी देश में लोकप्रिय सरकार नहीं थी। संसदीय सरकार की जननी ब्रिटेन में भी सार्वजनिक विषयों पर जनता का पर्याप्त नियन्त्रण नहीं था। जर्मनी तथा इटली जैसे देशों में जनता जातिगत रूप से एक थी परन्तु राजनीतिक दृष्टि से विभाजित थी। पोलैण्ड तथा आयरलैण्ड जैसे देशों को निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी ढंग से विदेशियों ने पराधीन बना लिया था। इन देशों की पीड़ित तथा व्यग्र जनता की मूलभूत राष्ट्रवादी आकाक्षाएँ थीं और देश की एकता अथवा स्वतन्त्रता के लिए उत्सुक थीं। वे राष्ट्रीय आधार पर यूरोप के मानचित्र को नया रूप-आकार देना चाहते थे। उनके राष्ट्रवाद में सशक्त लोकतन्त्रीय सिद्धान्त निहित थे।

फ्रान्स की क्रान्ति के अतिरिक्त, स्वभाव तथा प्रवृत्ति में सर्वथा भिन्न एक अन्य औद्योगिक क्रान्ति ने उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय इतिहास की घटनाओं को अत्यधिक प्रभावित किया। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ था और शनैःशनैः समस्त यूरोप में प्रसार हुआ। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक तथा राजनीतिक, दोनों क्षेत्रों में दूरगामी परिणाम हुए। विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों ने उत्पादन प्रक्रिया को गति प्रदान की तथा शारीरिक श्रम का स्थान मशीनों ने ले लिया। उन्नत परिवहन सुविधाओं ने स्थानों की दूरी को नगण्य कर दिया तथा समय की पूर्वापेक्षा बचत की। सम्पत्ति तथा जनसंख्या दोनों की अत्यधिक वृद्धि हुई। इन परिवर्तनों में प्रत्येक ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्साही विकास कार्यक्रम के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। इनमें समाजवाद तथा साम्राज्यवाद दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। सम्पत्ति की असाधारण वृद्धि सन्तुलित नहीं थी। उत्पादन के विभिन्न अवयवों के मध्य समान वितरण की योजना द्वारा सन्तुलित करने की न्यायोचित व्यवस्था नहीं थी। परिणामस्वरूप धनी एवं निर्धन के मध्य अन्तर अत्यधिक बढ़ गया। पूँजीवादी सुख-सुविधा सम्पन्न थे और विलासितापूर्ण जीवनयापन कर रहे थे जबकि निर्धन

श्रमिक वर्ग दयनीय स्थिति से पीड़ित था। इस विषमता के परिणामस्वरूप श्रमिकों तथा पूँजीवादियों के मध्य अनेक विवादों का आविर्भाव हुआ। इनमें से अनेक सर्वाधिक कठिन एवं आवश्यक समस्याएँ आज भी पूर्ववत् चल रही हैं। समाजवाद एक आन्दोलन है जो समस्याओं का समाधान करना चाहता है। दूसरी ओर कच्चेमाल की अधिकाधिक प्राप्ति तथा उत्पादित वस्तुओं के लिए नये बाजारों की खोज के लिए यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य भीषण संघर्ष ने विश्व को यूरोपीय राष्ट्रों के उपनिवेशों तथा प्रभाव क्षेत्रों में परिवर्तित कर दिया। साम्राज्यवाद अनेक घातक परिणामों तथा घृणास्पद पद्धतियों के उपरान्त भी प्रत्येक महत्वाकांक्षी राष्ट्र का प्रेरणास्रोत था।

इस युग में लोकप्रिय सरकार तथा उद्योगों के क्षेत्र में क्रान्ति से सम्बन्धित अनेक उल्लेखनीय सामाजिक परिवर्तन हुए। "फ्रान्स की क्रान्ति द्वारा प्रस्तुत उदाहरण संक्रामक था। उच्च एवं कुलीन वर्गों के विशेषाधिकार समाप्त हो गये। जनता के हितों को अधिकाधिक मान्यता मिलने लगी। राज्यों ने पुरानी हस्तक्षेप न करने की नीति का परित्याग कर दिया, और पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों के जीवन एवं श्रमिक स्थितियों को नियन्त्रित करने के लिए जाग्रत सामाजिक चेतना को प्रोत्साहित किया। महिलाओं की स्थिति में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ। महिलाओं को समस्त नागरिक अधिकार प्रदान किये गये तथा महिलाओं की उच्च पदों, जो केवल पुरुषों के लिए सुरक्षित माने जाते थे, पर नियुक्तियाँ आरम्भ हो गयीं।

मैटरनिख तथा यूरोपीय शक्तियों की युद्धों में पर्याप्त शक्ति क्षीण हो जाने के कारण कुछ काल तक शान्ति बनी रही, परन्तु इसी अवधि में व्यापार, वाणिज्य, पूँजीवाद तथा औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप यूरोप का सामाजिक एवं आर्थिक रूपान्तर आरम्भ हो गया था। इन सबसे यूरोप के सामाजिक स्तर विन्यास में परिवर्तन हुआ। इस रूपान्तर में व्यावसायिक तथा मध्यमवर्गों का अभ्युदय महत्वपूर्ण था। दोनों ने तत्कालीन निरंकुश राजतन्त्रों का प्रबल विरोध किया। उनका स्पष्ट असन्तोष राजनीतिक था। प्रत्येक प्रमुख यूरोपीय देश में दोनों वर्गों को सत्ता से वंचित रखा गया था। फ्रान्स के मध्यमवर्गीय राजा के शासन काल में भी सम्पत्ति की अनिवार्य योग्यता ने मतदाताओं की कुल संख्या 2,40,000 तक सीमित कर दी थी। भू-स्वामियों (अधिकांश कुलीन) का राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ववत् प्रभुत्व बना रहा। अस्तु सन् 1848 में मध्यवर्गीय नेताओं का तात्कालिक उद्देश्य व्यापक प्रतिनिधि सरकार ही था। इसके पीछे अनेक सामाजिक और आर्थिक असन्तोष की भावनाएँ निहित थीं। गतिशीलता की उज्जवल आशाएँ, अधिकारी तन्त्र में विशेष रूप से अवरुद्ध हो गयी थीं। उच्च शिक्षित वकीलों तथा नवयुवकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी, परन्तु उन के लिए उपयुक्त उच्च पदों का सर्वथा अभाव था।

विएना के निष्कर्ष जर्मन उदारवादियों के लिए पूर्णतया निराशाजनक थे। इसने एकता की आकांक्षा रखने वालों अथवा संवैधानिक सरकार चाहने वालों में से किसी को भी सन्तुष्ट नहीं किया था। फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने प्रशा के लिए संविधान का वचन दिया था लेकिन

वह कभी भी पूरा नहीं किया। परिसंघ के अनुच्छेदों में प्रत्येक राज्य में प्रतिनिधि सभा स्थापित करने का प्रावधान था, लेकिन दक्षिण जर्मन के कुछ राज्यों के अतिरिक्त कहीं भी इसका पालन नहीं किया गया। परिणामस्वरूप उदारवादियों के मध्य गहन निराशा की भावना थी, जिसको वांर्टबर्ग में विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों द्वारा आयोजित प्रदर्शनं में अभिव्यक्ति मिली।

असन्तुष्टों के इस समूह के अतिरिक्त प्राध्यापकों एवं अध्यापकों ने एक अन्य असन्तुष्ट दल का गठन कर लिया था। रूढ़िवादी एवं प्रतिक्रियावादी और उदारवाद एवं लोकतन्त्र के प्रबल शत्रु मैटरनिख ने जर्मनी में भी प्रतिक्रिया एवं दमन की नीति का अनुकरण किया था। स्वतन्त्रता संग्राम (War of Liberation) के समय उद्भूत उग्र राष्ट्रवादी भावनाओं को वियाना समझौते के प्रावधानों से सन्तोष नहीं हुआ था। अस्तु उदारवादी अत्यधिक निराश थे। विश्वविद्यालय असन्तोष एवं राजद्रोह के प्रमुख केन्द्र थे। विद्यार्थियों ने प्राध्यापकों की सहायता से राष्ट्रवादी तथा लोकतान्त्रिक विचारों एवं सिद्धान्तों को जीवित बनाये रखने के उद्देश्य से एक समुदाय का गठन किया। लिपजिग युद्ध में विजय तथा सुधारों की खुशी में उन्होंने वार्टबर्ग में एक उत्सव का आयोजन किया। कुछ दिन बाद कोटजेबू (Kotzebue) नाम के पत्रकार की हत्या कर दी गयी। उस पर रूस के गुप्तचर होने का सन्देह था। इन घटनाओं को मैटरनिख ने क्रान्तिकारी षड्यन्त्र घोषित किया और प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय तथा जर्मन राजकुमारों को उदारवाद के माध्यम से भावी संकटों के विरुद्ध उपदेश दिये। तदुपरान्त सन् 1819 में उसने जर्मन राजाओं का सम्मेलन कार्ल्सबाद (Carlsbad) में आयोजित किया। इसमें उदारवादी आन्दोलनों के दमन के लिए सहमति व्यक्त की गयी। प्रेस पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये। विश्वविद्यालयों पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण हो गया और विद्यार्थी समितियों का दमन किया गया। इस प्रकार कार्ल्सबाद के निर्णयों ने जर्मनी में मैटरनिख के प्रभुत्व को पुष्ट किया और उसकी प्रतिक्रियावादी नीतियों की सफलता का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया।

इससे पूर्व मैटरनिख इटली एवं स्पेन में उदारवादी आन्दोलनों के प्रति सजग तथा सतर्क था और उसने उदारवादी गतिविधियों के दमन के लिए हर सम्भव प्रयास किया था। मैटरनिख आस्ट्रिया को राष्ट्रवादी तथा लोकतान्त्रिक शक्तियों के विरुद्ध अभेद्य तथा अप्रभावित बनाना चाहता था। प्रतिक्रियावादी नीति इसी भावना का व्यापक विस्तृत स्वरूप था। मैटरनिख के रूढ़िवादी दृष्टिकोण के अनेक कारण थे। वह एक ऐसे राज्य का मन्त्री था जिसमें जर्मन मैग्यारवासी, विभिन्न कोटि के स्लाव जाति के लोग, रूमानियावासी, इटलीवासी तथा यहूदी रहते थे। इनमें से अधिकांश जातिगत विशेषताओं तथा श्रेष्ठता के प्रति सजग थे। इनका दृष्टिकोण एवं भावनाएँ जाति की परिधि में सीमित थीं। यदि उग्रराष्ट्रवादी सिद्धान्तों को विनाशकारी प्रभाव के लिए उन्मुक्त छोड़ दिया जाता, तब विभिन्न जातियों वाले विशाल साम्राज्य का विघटन निश्चित था। एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र की गतिविधियों का प्रतिरोध करने के लिए नियुक्त किया और विदेशों से क्रान्तिकारी विचारों के आस्ट्रिया साम्राज्य में प्रचार

एवं प्रसार पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये। इस प्रकार के कठोर उपायों से ही आस्ट्रिया साम्राज्य को सुरक्षित रखा जा सकता था। अस्तु मैटरनिख ने हंगरी की सेना और अधिकारियों को इटली में नियुक्त किया। इटली की सेनाओं ने आस्ट्रिया अधिकृत पोलैण्ड की रक्षा की तथा आस्ट्रियावासियों तथा दक्षिणी स्लाव व्यक्तियों ने हंगरी में उदारवादी एवं राष्ट्रवादी आन्दोलनों का दमन किया। इसके अतिरिक्त उदारवादी विचारों तथा सिद्धान्तों को रोकने के लिए उसने सीमा-शुल्कों तथा अनेक प्रतिबन्धों की मजबूत दीवार बना दी थी। देश के अन्दर प्रारम्भिक उदारवादी संकटों के विरुद्ध व्यापक गुप्तचर प्रणाली तथा प्रेस पर सतर्क प्रतिबन्धों की व्यवस्था की। विश्वविद्यालयों में कठोर नियम प्रवृत्त किये तथा सरकार ने स्वयं विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम निर्धारित किये। इस प्रकार आस्ट्रिया को यूरोप के उदारवादी सिद्धान्तों तथा विचारों के विरुद्ध सुरक्षित कर दिया।

यूरोप में निरन्तर बढ़ता हुआ असन्तोष क्रान्तिकारी हो गया था। सन् 1840 में सर्वत्र आर्थिक मन्दी थी। सन् 1845 में आलू की फसल नष्ट हो गयी थी और सन् 1846 एवं 1847 में भी बहुत धूमिल आशा थी। सन् 1850 के उपरान्त प्राचीन शासन की पुनर्स्थापना से सर्वत्र मोहभंग की व्यापक भावना व्याप्त थी। एक ही प्रश्न समस्त यूरोपवासियों के मस्तिष्क में था, क्या नैपोलियन को अपदस्थ करने से यूरोपीय बहुसंख्यक लाभान्वित हुआ था ? इस प्रश्न का उत्तर मैटरनिख स्वयं था। उन्नीसवीं शताब्दी के उदारवादियों तथा लोकतन्त्रवादियों के लिए मैटरनिख यूरोप की प्रतिक्रियावादी प्रतिभा था। तत्कालीन उदारवादियों ने आरोप लगाते हुए मत व्यक्त किया, "उसमें युग की आवश्यकताओं के प्रति अकूटनीतिज्ञ सदृश मन्द तथा कुंठित दृष्टिकोण था और जनता की आकांक्षाओं के प्रति अक्षम्य शत्रुता थी।" निःसन्देह सन् 1815 से सन् 1848 की अवधि में मैटरनिख ने स्वयं को उदारवाद का सर्वाधिक कट्टर शत्रु अभिव्यक्त किया। उसने राष्ट्रवादी तथा संविधानवादी आन्दोलनों को रोकने के लिए पुलिस के सदृश सतर्कता तथा निगरानी रखी, और प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने की नीति का अनुकरण किया। कार्ल्सबाद सम्मेलन के निर्णय तथा ट्रोप्पयू (Troppou) विज्ञप्ति उसकी प्रतिक्रियावादी नीति के स्पष्ट प्रमाण हैं। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि फ्रान्स की क्रान्ति के नवीन विचारों ने दो दशकों में समस्त यूरोप को आलोड़ित (उद्वेलित) कर दिया था तथा युद्ध की विभीषिका, रक्तपात तथा अनिष्ट से अवगत करा दिया था। व्यक्ति जिसने फ्रान्स की क्रान्ति काल में अराजकता के साम्राज्य को निकट से देखा था, किसी भी जनान्दोलन को अबाधित एवं अयोग्य दोष मानता था और एक अन्य यूरोपीय विनाश, कष्टों एवं पीड़ाओं को रोकने के लिए उपाय करना चाहता था। सन् 1815 में यूरोपवासियों की प्रबल आकांक्षा शान्ति की थी। इस सन्दर्भ में मैटरनिख का कथन "यूरोप के लोग क्या चाहते हैं, स्वतन्त्रता नहीं वरन् शान्ति चाहते हैं" कुछ अंशों तक न्यायोचित प्रतीत होता है। शान्ति तथा यथास्थिति बनाये रखने के लिए उसने अपना जीवन समर्पित कर दिया। निःसन्देह लगभग 40 वर्षों तक यूरोप में शान्ति बनाये रखने का श्रेय उसको ही है।

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि मैटरनिख आस्ट्रिया साम्राज्य का मन्त्री था। अस्तु आस्ट्रिया के निहित स्वार्थ ही उसकी नीति निर्धारित करते थे। आस्ट्रिया साम्राज्य विभिन्न राज्यों तथा राष्ट्रीय भावनाओं का विचित्र परन्तु जटिल समूह था। एक राजा के प्रति समान रूप से निष्ठा ही संयोजित किये हुए थी। इतने अस्थिर एवं दुर्बल साम्राज्य में राष्ट्रवादी चेतना निश्चित रूप से विनाशकारी सिद्ध हो सकती थी। मैटरनिख ने इस तथ्य का अनुभवं कर लिया था, अस्तु उसने संक्रामक राष्ट्रवादी भावनाओं तथा चेतना के आस्ट्रिया के अधीन देशों में प्रसार को रोकने के लिए प्रत्येक स्थान पर राष्ट्रवादी आन्दोलनों के विरुद्ध कठोर संघर्ष किया तथा प्रतिक्रियावादी नीति में सुरक्षा का सिद्धान्त अर्थात् आस्ट्रिया साम्राज्य को सुरक्षित रखने की प्रबल आकांक्षा निहित थीं। वह यूरोप पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहता था, जिससे आस्ट्रिया साम्राज्य का राजनीतिक सन्तुलन अस्त-व्यस्त न हो जाये। उसकी नीति पर्याप्त सफल हुई। अनेक विद्वानों ने सर्वसम्मत मत व्यक्त किया है, "आस्ट्रिया जिसने उसकी नीति का परित्याग कर दिया, अब ध्वस्त तथा अपने सर्वाधिक विशाल प्रान्तों से वंचित पड़ा है।"

सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है कि मैटरनिख की नीति में महान् कूटनीतिज्ञ का आभास नहीं मिलता है। उसकी नीति अवसरवादी तथा नकारात्मक थी। उसने अपनी क्षमता तथा योग्यता को निर्माण की अपेक्षा दमन में प्रदर्शित किया। उसकी यथास्थिति बनाये रखने की नीति यथार्थ में गतिहीनता तथा स्थिरता बनाये रखने की नीति थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उसको स्वयं अनुभव हो गया था, वह पराजय के लिए संघर्ष कर रहा था। वह अपने युग की अगोचर शक्तियों को समझने में पूर्णतया असमर्थ रहा। वह क्रान्तिकारियों को बन्दी बना सका परन्तु क्रान्तिकारी विचारों तथा भावनाओं को बन्दी नहीं बना सका। "थकी हुई और भीरु पीढ़ी के लिए वह एक अनिवार्य व्यक्ति था और यह उसका दुर्भाग्य था कि वह अपनी उपयोगिता से अधिक जीवित रहा और इस तथ्य को समझने में असफल रहा कि वह स्वयं वृद्ध और दुर्बल हो रहा था, विश्व युवा भावनाओं का पुनरुद्धार कर रहा था।"

मध्य यूरोप में इटली और जर्मनी दोनों की राष्ट्रीय एकीकरण की प्रबल आकांक्षा को आस्ट्रिया के हैप्सबर्गीय साम्राज्य ने विफल कर दिया था। यथार्थ में मैटरनिख ने भावी कष्टों का पूर्वानुमान लगा लिया था। सन् 1840 की अवधि में अपेक्षाकृत शान्ति थी। अनेक शासकों ने अनुमान लगाया कि सब कुछ स्वतः ही ठीक हो जायेगा। समस्त शासक आत्मसन्तोष की भावना से प्रभावित थे। अस्तु वे निष्क्रिय एवं पंगु हो गये थे। इस काल के सर्वाधिक चतुर एवं बुद्धिमान राजनीतिज्ञ मैटरनिख ने विचार व्यक्त किया कि राजतन्त्रों का स्वयं का आत्मविश्वास समाप्त हो चुका था, जबकि मैटरनिख ने तत्काल सैनिक कार्यवाही का आग्रह किया। सम्राट फर्डीनेण्ड द्वितीय ने इसकी अपेक्षा कुछ सुविधाएँ स्वीकृत कीं और मैटरनिख को पदच्युत कर दिया। वियाना में विद्रोह हो गया। इसी प्रकार प्रशा के शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ से जब सेना को बर्लिन की सीमा में प्रवेश करने की अनुमति देने के लिए आग्रह किया गया, उसने कहा, "हाँ, परन्तु गोली मत चलाना"। तदुपरान्त उसने गहन

आत्मीय भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहा, "मेरे प्यारे बर्लिनवासी"। स्पष्ट आदर्शों के अभाव के परिणामस्वरूप पश्चिमी एवं मध्य यूरोप की प्रमुख राजधानियों में सेनाओं तथा अर्द्धसैनिक सुरक्षा बलों का मनोबल ध्वस्त हो गया।

सन् 1848 में फ्रान्स की घटनाओं ने लगभग समस्त यूरोप में क्रान्तिकारी भावनाओं एवं आकांक्षाओं को उद्वेलित किया। फ्रान्स में लुईस फिलिप (Louis Phillipe) के राज्य त्याग के तीन दिन बाद जनता ने राइन भूमि में विशाल प्रदर्शन किये। तदुपरान्त समस्त जर्मनी में उपद्रव हुए। जर्मनी में छोटे उदारवादी राज्य जैसे बैडन वर्टम्बर्ग, सैक्सोनी और बावेरिया ने भी इन विद्रोहों का समर्थन किया। जार शासित रूस और ब्रिटेन को छोड़कर समस्त यूरोप में विद्रोह आरम्भ हो गये। यूनान, बेल्जियम और स्विट्जरलैण्ड के अतिरिक्त समस्त यूरोप में विद्रोह असफल हो गये। कुछ नेताओं और जनता में सामाजिक वास्तविकताओं, आशाओं तथा आदर्शों के सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ तथा मतभेद इन विद्रोहों की विफलता के मूलभूत कारण थे। विभिन्न राष्ट्रों की जनता में परस्पर सहयोग की भावना की खोज करना विफलता का एक अन्य कारण था। जर्मनवासियों, इटलीवासियों तथा स्लाव जाति के लोगों में परस्पर आन्तरिक संघर्ष आरम्भ हो गये। फ्रैंकफर्ट स्थित संसद दो दलों में विभाजित हो गयी। अखिल जर्मनवादी दल समस्त जर्मनभाषी यूरोप को एक नया राष्ट्रीय राज्य बनाना चाहता था। दूसरा दल प्रशा के प्रस्ताव के साथ जर्मन संघ के छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर नवीन राष्ट्रीय राज्य की स्थापना करना चाहता था। संसद में प्रशा ने प्रस्ताव रखा था कि एकीकृत जर्मनी का राजा प्रशा का तत्कालीन शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ होगा। फ्रैंकफर्ट संसद ने नये राज्य की सीमाओं का निर्धारण करने में बहुत अधिक समय लिया। जब प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ से एकीकृत जर्मनी का नेतृत्व करने का आग्रह किया, उसने आस्ट्रिया से युद्ध की सम्भावना तथा क्रान्तिकारी सभा द्वारा प्रस्तावित नेतृत्व से घृणा व्यक्त करते हुए प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। क्रान्तिकारी चेतना पहले ही समाप्त हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त क्रान्तिकारियों द्वारा राजमुकुट स्वीकार करने के प्रस्ताव को विलियम फ्रेडरिक अपमानजनक मानता था। उसने इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया कि वह जर्मनी के राजमुकुट को नाली से नहीं उठाना चाहता।

इटली की एकीकरण की प्रबल आकांक्षा का भी यही परिणाम हुआ। चार्ल्स एल्बर्ट सेवाय (Savoy) की सीमाओं का विस्तार करना चाहता था, जबकि दक्षिण सिसली मुख्य भूमि नेपल्स से पृथक् होना चाहता था। स्लाव जाति के लोग समान संवैधानिक कार्यक्रम की प्राप्ति असम्भव मानते थे। स्लोवक जाति के लोग चैक (Czechs) जाति के लोगों से भयभीत थे जबकि सर्ब (Serbs) जाति के लोगों तथा क्रोट (Croats) जाति के लोगों में परस्पर गम्भीर धार्मिक तथा सांस्कृतिक मतभेद थे।

फ्रान्स ने पुनः शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए नैपोलियन बोनापार्ट की नीतियों का अनुसरण किया और उसके पथ पर अग्रसर हुआ। इससे मध्य यूरोप के शासकों

को भी पुनः आत्मविश्वास प्राप्त करने में सहायता मिली, जबकि विभिन्न जातियों तथा देशों के मध्य मतभेद पूर्वापेक्षा अधिक बढ़ गये। विद्रोहों के दमन में सेना ने अपेक्षित सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। आस्ट्रिया की सेना के कमान्डर्स विद्रोहों के विरुद्ध अभियान में प्रायः सम्राट तथा उसकी मन्त्रिपरिषद् से आगे कार्य करते थे। वियाना तथा बर्लिन की सरकारों ने अपनी खोई हुई शक्ति एवं आत्मविश्वास को पुनः प्राप्त करके पूर्वापेक्षा अधिक सुव्यवस्थित नीति को कार्यान्वित किया। उन्होंने उग्र सुधारवादियों के विरुद्ध मध्यमवर्गों तथा कृषकों को समय-समय पर स्वीकृत सुविधाओं तथा सैनिक सेवाओं को सुनियोजित ढंग से समन्वित किया। इस प्रकार शासकों की अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने की प्रक्रिया समाप्त हो गयी।

उल्लेखनीय है कि एक ही शासक ने सन् 1848 के प्रभाव को आत्मसात् करके स्वयं को अत्यधिक शक्तिशाली बनाया। प्रशा ने मैटरनिख की नीतियों एवं कार्यक्रमों को त्याग दिया और सर्वोच्च सत्ता और उसकी कार्यकारिणी तथा व्यापक प्रतिनिधित्व पर आधारित विधान मण्डल के मध्य परस्पर सहयोग और सहमति की नीति का समर्थन किया। संसदीय प्रणाली की प्रतिच्छाया सन् 1871 के साम्राज्यिक संविधान में स्पष्ट दृष्टिगत होती है। इसके अतिरिक्त प्रशा के प्रशासन तन्त्र ने जर्मन राष्ट्रवाद को ग्रहण कर लिया। प्रशा ने उदार लोकतन्त्र से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और रूढ़िवादी नीतियों एवं सैन्यवाद के बहुत निकट आ गया। बिस्मार्क ने विचार व्यक्त किया, "जर्मन राष्ट्रवाद को नैतिक शक्ति बनाना चाहिए जिसके माध्यम से होहेनजोलोर्ज (Hoheuzollerns) राजतन्त्र की शक्ति का विस्तार हो सके एवं वह सुदृढ़ हो सके।"

जर्मनी में क्रान्ति (Revolution in Germany)—जर्मन राज्यों के विशिष्टतावाद ने प्रशा और आस्ट्रिया द्वारा अनेक विद्रोहों को रोकने की प्रक्रिया को असम्भव कर दिया। प्रशा की सरकार द्वारा उदारवादी विद्रोहों के विरुद्ध दमन की कार्यवाही में संकोच के परिणामस्वरूप मार्च, 1848 में बर्लिन में हिंसात्मक उपद्रव हुए। राजा श्रमिकों तथा विद्यार्थियों के समूहों का दमन करने में असफल रहा, परन्तु कालान्तर में मोर्चाबन्दी तथा सड़कों पर संघर्षों ने हृदय परिवर्तन कर दिया। राजा ने उदारवादी मन्त्रिपरिषद् नियुक्त की, संविधान सभा का आह्वान किया तथा काले, हरे और स्वर्णिम क्रान्तिकारी रंगों के स्कार्फ पहनकर राजधानी की सड़कों पर विचरण किया। जनसमुदाय की भावनाओं से अनुप्राणित प्रशा के राजा ने रूस के क्रुद्ध जार निकोलस प्रथम को गौरवमय जर्मन क्रान्ति के सम्बन्ध में लिखा।

अप्रैल, 1848 में जनता की माँगों तथा अनेक जर्मन राज्यों की नई सरकारों के निर्देशों को कार्यान्वित करने के लिए, फ्रैंकफर्ट स्थित जर्मन संघ की संसद (Diet) ने सार्वजनिक चुनाव के लिए अधिकृत किया, जिससे जर्मन राष्ट्रीय सभा का गठन हो जाये और समस्त जर्मनी के लिए नवीन संघीय सरकार बन सके। निश्चित समय पर चुनाव हुये, और उदारवादियों को विशाल बहुमत मिला।

चुनाव प्रक्रिया समाप्त होने के बाद पूर्व जर्मन संघ की संसद ने कार्य करना बन्द कर दिया। नवीन फ्रैंकफर्ट सभा अथवा अन्तरिम संसद में, आस्ट्रिया सहित जर्मन संघ के समस्त राज्यों के वयस्क पुरुष मताधिकार द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि थे। राष्ट्रीय सभा के अधिकांश सदस्य विश्वविद्यालय के प्राध्यापक और व्यापारी, वकील और न्यायाधीश, असैनिक अधिकारी एवं पादरी थे। कुल 831 सदस्यों में 600 एक ही विचारधारा के वकील अथवा प्राध्यापक थे। इन्हें अतीत में राजनीतिक उत्तरदायित्व का अनुभव था। इन सदस्यों का दृष्टिकोण अत्यंधिक सहृदय, विधिसंगत तथा निष्ठावान था और वे हिंसा तथा सामाजिक क्रान्ति के विरुद्ध थे। वे जर्मनी को उदारवादी, संवैधानिक, संगठित एवं संघ राज्य बनाना चाहते थे। संगठित जर्मनी के लिए नवीन संविधान का प्रारूप तैयार करना इसका मुख्य कार्य था।

समस्त जर्मनी की सामाजिक वास्तविकताएँ उस समय भी वही थीं जो अतीत में थीं। उनमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। अस्तु राष्ट्रीय सभा के लिए निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकी। राष्ट्रीय सभा का मूल कार्य ही अत्यधिक विशद, विशालकाय एवं जटिल था। फ्रैंकफर्ट स्थित संसद को अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कानूनों तथा परिस्थितियों का निर्माण करना था। शताब्दियों से चली आ रही ऐतिहासिक प्रक्रिया को समाप्त करना था। जर्मनी के 39 राज्यों के राजाओं के लिए क्षतिपूर्ति की योजना बनाने के साथ इनके विशिष्टतावाद (Particularism) पर विजय प्राप्त करनी थी। आस्ट्रिया ने अपनी सर्वोच्चता बनाये रखने के उद्देश्य से विशिष्टतावाद को प्रोत्साहित किया था। प्रशा की अत्यधिक विकसित पहचान को समाप्त करना था और आस्ट्रिया को उसके गैर-जर्मन प्रान्तों के साथ अथवा उनके अतिरिक्त जर्मनी में मिलाना था। हंगरी ने इसी समय पुनः अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। चैक जाति के सदस्यों ने फ्रैंकफर्ट में अखिल जर्मनवाद के विराध में अखिल स्लाव काँग्रेस का आह्वान किया और इटली के प्रान्तों ने समुचित निर्देशों के लिए दक्षिण की ओर दृष्टिपात किया।

राष्ट्रीय सभा की कोई कार्यपालिका सत्ता नहीं थी और कार्यपालिका शक्तियाँ भी निहित नहीं थीं। यह राष्ट्रीय सभा की तात्कालिक कठिनाई थी। राष्ट्रीय सभा अविकसित (भ्रूणीय) जर्मन राष्ट्र की ध्वनि थी। बुद्धिजीवी तथा व्यावसायिक वर्गों के अभिव्यक्त विचार एवं भावनाएँ मात्र थीं। प्रतिनिधि विभिन्न विषयों पर दीर्घकालीन विशद् विचार-विमर्श करते थे परन्तु वहाँ ऐसा कोई नहीं था जिसको वें आदेश दे सकते। अनेक राज्य सरकारों ने स्वतन्त्रतापूर्वक प्रशासन करने का निश्चय किया परन्तु पृथक् राज्य सरकारों को रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता था।

शीघ्र ही फ्रैंकफर्ट सभा के लिए प्रतिनिधि अनेक विषयों पर विभिन्न दलों में विभाजित हो गये। राष्ट्रीय चर्च विषय पर विचार-विमर्श ने प्रतिनिधियों के गम्भीर धार्मिक मतभेदों को व्यक्त किया। स्केल्सविग-होल्सटिन (Schleswig-Holstein) प्रश्न पर प्रतिनिधि विभाजित

हो गये। दक्षिणपंथी तथा वामपंथी विचारधाराओं के प्रतिनिधियों में समन्वय की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त अनेक तात्कालिक अनिवार्य आर्थिक समस्याओं का समाधान करना था और सामाजिक क्रान्ति को पराजित करना था। राष्ट्रीय सभा ने अपना अत्यधिक समय, किसको मताधिकार मिलना चाहिए, क्या जर्मनी को राजाओं को रखना चाहिए अथवा गणतन्त्र की घोषणा करनी चाहिए, आदि गौण विषयों पर विचार-विमर्श में नष्ट कर दिया। विभिन्न दोषों, अभावों एवं असुविधाओं के अतिरिक्त राष्ट्रीय सभा ने जर्मन जनता के मौलिक अधिकारों के सैद्धान्तिक स्वरूप को निर्धारित करने के प्रयास द्वारा अपनी कठिनाइयों को संयोजित कर लिया। यह फ्रान्स की प्रारम्भिक क्रान्तिकारी सभा की भूलों की पुनरावृत्ति थी। ओजस्वी भाषणों की बाढ़ आ गयी। इन भाषणों ने राष्ट्रीय सभा में विभिन्न दलों एवं वर्गों के सिद्धान्तों पर कटु मतभेदों को प्रदर्शित किया। इस विचार-विमर्श में बहुमूल्य समय नष्ट हो गया जिसका यथार्थ में प्रतिक्रियावादी तत्वों के सक्रिय होने से पूर्व तथा उदारवादियों के निराश एवं क्षुब्ध होने से पूर्व पूर्ण सदुपयोग होना चाहिए था। उदारवादियों का राष्ट्रीय सभा की निरर्थकताओं से धैर्य समाप्त हो गया। राष्ट्रीय सभा ने एक स्वर्णिम अवसर को हाथ से निकल जाने दिया। इसी अवसर के लिए अनेक देशभक्तों को अनेक आशाएँ थीं। इसी के लिए देशभक्तों ने संघर्ष किया था एवं शहीद हो गये थे। जबकि राष्ट्रीय सभा में निरर्थक विचार-विमर्श में अमूल्य समय नष्ट हो रहा था। आस्ट्रिया के नेतृत्व में लोकतन्त्र विरोधी शक्तियाँ अपनी शक्ति पुनः अर्जित कर रही थीं और पूर्वापेक्षा अधिक सुदृढ़ हो रही थीं।

सीमा-शुल्क संघ (Zollverein)—यद्यपि मैटरनिख ने जर्मनी के राजनीतिक विकास को रोक दिया था लेकिन दो आन्दोलनों का आविर्भाव हुआ, जिनके कारण मैटरनिख की गणना अस्त-व्यस्त हो गयी। पहला प्रशा के सीमा-शुल्क नीति में संशोधन का था। सन् 1818 में प्रशा की, पहल पर सीमा-शुल्क संघ स्थापित किया गया। इसके द्वारा प्रशा और पड़ोसी राज्यों को मुक्त व्यापार पर आधारित आर्थिक प्रणाली में सम्मिलित कर लिया गया। सन् 1850 तक आस्ट्रिया के अतिरिक्त जर्मनी के समस्त राज्य इसके सदस्य बन गये थे, और प्रशा व्यापक आर्थिक संघ का अध्यक्ष बन गया था। इस संघ के सदस्यों ने अपनी सीमा-शुल्कों की दीवारों को समाप्त करके परस्पर उन्मुक्त व्यापार सम्बन्ध स्थापित किये। जर्मन राज्यों के आर्थिक हितों की सुदृढ़ता का राजनीतिक मूल्य बहुत अधिक था। इससे समस्त यूरोप की दृष्टि आस्ट्रिया से प्रशा की ओर घूम गयी और यह प्रशा के नेतृत्व में जर्मन एकता की वास्तविक तैयारी थी। वाणिज्यिक संघ ने राजनीतिक एकीकरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया। दूसरे जर्मनी में साहित्यिक गतिविधियों ने नैपोलियन के युद्धों का अनुसरण किया था। कवियों, दार्शनिकों एवं इतिहासकारों ने जर्मन एकता के विचार एवं जर्मन जाति की ऐतिहासिक भूमिका की बहुत प्रशंसा की थी। इस प्रकार राष्ट्रवाद ने राजनीति के क्षेत्र में विरोध के उपरान्त विचारों के क्षेत्र में बहुत प्रगति की। फिसेट (Fichte) और हीगल (Hegel) इस बौद्धिक पुनर्जागरण के दो महान् नेता थे। इन दोनों महान् विद्वानों ने अखिल

जर्मनवाद के आदर्श का उपदेश दिया था और जर्मन जनता को संकीर्ण प्रान्तीय दृष्टिकोण से निकालकर व्यापक जर्मन राष्ट्रवाद की ओर उन्मुख किया था।

राष्ट्रीय सभा का आधार ही अस्थिर एवं चंचल था। पहले नगरों के प्रतिनिधियों ने उदारवादी विचारों एवं सिद्धान्तों से प्रेरित विचार उच्च स्वर में व्यक्त किये। तदुपरान्त ग्रामीण प्रतिनिधियों ने अपेक्षाकृत कम उच्च स्वर में विचार व्यक्त किये, परन्तु उनके विचारों में बल और भार था। ग्रामीण प्रतिनिधि अमूर्त स्वतन्त्रता की अपेक्षा परम्परागत रीति-रिवाजों तथा मान्यताओं के प्रति अधिक समर्पित थे। जर्मनी की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण समुदायों में रहती थी, कृषि भूमि पर कार्य करती थी, नगरों के निवासियों के प्रति अविश्वास की भावना थी और भू-स्वामी तथा सरकारी कर्मचारियों के प्रति सम्मान, श्रद्धा और निष्ठा की भावना थी। अधिकांश भू-स्वामी एवं धर्माधिकारी (पादरी) क्रान्तिकारी परिवर्तनों के विरुद्ध थे। सरकारी कर्मचारी तथा अधिकारी, जिनकी संख्या तथा कुशलता में निरन्तर वृद्धि हो रही थी एवं नियमित सेना के अधिकारी, अस्थिर संसदीय मन्त्रिपरिषद् के अभ्यस्त नहीं थे। नगरों की जनता ने क्रान्ति को सामूहिक तथा सतत् समर्थन नहीं दिया। इसके अतिरिक्त देशभक्ति जिस पर उदारवादियों ने सर्वाधिक बल दिया, एक भावना एवं चेतना थी। रूढ़िवादियों ने इस भावना का, शहर एवं ग्राम, दोनों के जनसमुदायों को क्रान्ति से विलग रखने के लिए सर्वाधिक उपयोग किया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सरकार में रूढ़िवादी समाज के अधिकांश सतम्भ (जिनको अपदस्थ कर दिया गया था) अपने पुराने परम्परागत स्थानों पर पुनः प्रतिष्ठित हो गये।

राष्ट्रीय सभा में मौलिक अधिकारों पर विचार-विमर्श में एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया। इस अवधि में प्रतिक्रियावादी तत्व समस्त जर्मनी में पुनः सक्रिय हो गये। सन् 1848 की ग्रीष्म ऋतु तक रूढ़िवादी जर्मनवासियों में अपने काम करने की क्षमता और योग्यता के सम्बन्ध में विश्वास का आविर्भाव हो चुका था। उनको पूर्ण विश्वास था कि वे आस्ट्रिया में अपने अनुरूप पदाधिकारियों के समान काम करने में समर्थ एवं सक्षम थे। परिणामस्वरूप उदारवादियों का उत्साह, लोकप्रियता तथा प्रभुत्व कम हो गया। आस्ट्रिया, इटली और हंगरी में उदारवादी तथा राष्ट्रवादी विद्रोहों का दमन कर चुका था और वह जर्मनी में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा राजनीतिक गतिविधियों के प्रति सजग तथा सतर्क था। जर्मन संसद द्वारा निर्मित संविधान में समस्त जर्मनी पर शासन के लिए वंशानुगत सम्राट तथा द्विसदनीय संसद का प्रावधान था।

जर्मनी में द्रुतगति से राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के सन्दर्भ में मैटरनिख का कथन स्मरणीय है, "जब फ्रान्स पर शीत का प्रकोप होता है, समस्त यूरोप छींकता है।" सन् 1848 की फ्रान्स की क्रान्ति समस्त जर्मनी में शक्तिशाली ढंग से प्रतिध्वनित हुई। समस्त देश में अपूर्व उत्साह एवं उत्तेजना थी और जनता ने अपने शासकों को संवैधानिक सुधारों को स्वीकार करने के लिए विवश किया। जर्मनी में संवैधानिक स्वतन्त्रता के साथ राष्ट्रीय एकता

का प्रश्न सम्बद्ध था। बेडन (Baden) में जनान्दोलन आरम्भ हुआ और उसका समस्त देश में व्यापक प्रसार हुआ। हर स्थान पर उदारवादियों ने असैनिक अधिकारों, प्रेस की स्वतन्त्रता तथा संवैधानिक सरकार की माँग की। सैक्सोनी, हैनोवर, बवेरिया तथा प्रशा के अतिरिक्त अन्य समस्त जर्मन राज्यों ने इन माँगों को स्वीकार कर लिया था, परन्तु इसी समय वियाना में विद्रोह हो गया और बर्लिन इस संक्रामक भावना से प्रभावित हुआ। प्रशा के शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने भयभीत होकर उदारवादियों की संविधान की माँग को स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त सैक्सोनी, हैनोवर एवं बवेरिया के शासकों ने भी उदारवादियों की माँगें स्वीकार कर लीं। इस प्रकार समस्त जर्मनी में उदारवाद की विजय हुई।

मार्च, 1848 से प्रशा की सरकार पर उदारवादियों का पूर्ण नियन्त्रण था और उनके प्रभुत्व के परिणामस्वरूप उस समय उदारवादियों के संयुक्त जर्मनी के नेतृत्व के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया था। राष्ट्रीय एकता के लिए प्रशा के राजा द्वारा निष्ठा एवं समर्पण ने जर्मन उदारवादियों में नवीन उत्साह, राष्ट्रीय चेतना तथा साहस का संचार किया था। परन्तु अब राजनीतिक परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन हो चुका था। अस्तु उसने उदारवादियों द्वारा प्रस्तावित जर्मनी के राजमुकुट को अस्वीकार कर दिया था। इसको स्वीकार करने से आस्ट्रिया के साथ युद्ध की अधिक सम्भावना थी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय सभा द्वारा प्रस्तावित राजमुकुट की स्वीकृति का विचार ही उसकी भावनाओं एवं सिद्धान्तों के विरुद्ध था। साथ ही राष्ट्रीय सभा द्वारा राजमुकुट देने का अधिकार भी संदेहास्पद था। फ्रेडरिक चतुर्थ स्वाभिमानी कट्टर निरंकुश शासक था, अस्तु वह प्रस्तावित राजमुकुट को लज्जा का प्रतीक मानता था। उसकी दृष्टि में सामाजिक क्षेत्र में निम्न स्तर की क्रान्तिकारी सभा द्वारा यह एक उपहार अथवा भेंट थी। जर्मन राज्यों द्वारा प्रस्तावित राजमुकुट वह निःसंकोच स्वीकार कर लेता। इस प्रकार उदारवादियों की एक शासक के अधीन लोकतान्त्रिक आधार पर जर्मनी के एकीकरण की प्रबल आकांक्षा ध्वस्त हो गयी।

इसके अतिरिक्त फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने डेनमार्क के साथ युद्ध समाप्त कर दिया। उसने यह युद्ध फ्रैंकफर्ट सभा के अनुरोध पर बाध्य होकर आरम्भ किया था। इस युद्ध को समाप्त करने के लिए अब प्रशा के रूढ़िवादियों का भी दबाव पड़ रहा था। सन् 1848 की ग्रीष्म ऋतु तक राजा ने रूढ़िवादियों की मन्त्रिपरिषद् का गठन किया और राष्ट्रीय सभा तथा बर्लिन में जनता को भयभीत करने के लिए डेनमार्क से सेना को वापिस बुला लिया। जर्मनी के अनेक राज्यों ने राष्ट्रीय सभा द्वारा निर्मित संविधान को अस्वीकार कर दिया। उदारवादियों के उग्रवर्ग ने विद्रोहों को उत्तेजित किया परन्तु प्रशा की शक्तिशाली सेना ने विद्रोहों का दमन कर दिया। फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने आस्ट्रिया में प्रतिक्रियावादियों की विजय से प्रोत्साहित होकर राष्ट्रीय सभा को भंग कर दिया और स्वयं ही जनता को संविधान प्रदान किया। यह संविधान यद्यपि लोकतान्त्रिक नहीं था परन्तु सरकार में जनता की भागीदारी का आश्वासन अवश्य था।

यद्यपि फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने प्रस्तावित संयुक्त जर्मनी के राजमुकुट को अस्वीकार कर दिया था, परन्तु वह जर्मन एकता का प्रबल समर्थक था। उसने विशुद्ध जर्मन राज्यों के एक शक्तिशाली संघ और एरफर्ट में संघीय संसद स्थापित करने का प्रस्ताव रखा। संघीय संसद का वह स्वयं अध्यक्ष होगा। इस प्रस्ताव में आस्ट्रिया को संयुक्त जर्मनी से विलग रखा गया था। 17 छोटे राज्यों ने फ्रेडरिक विलियम के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और सन् 1850 में नई संसद का एरफर्ट में अधिवेशन हुआ।

इस समय तक आस्ट्रिया क्रान्तिकारियों के आघातों से मुक्त हो चुका था और रूढ़िवाद का पुनः प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। आस्ट्रिया ने जर्मनी से सम्बन्ध रखने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया तथा बलपूर्वक जर्मनी पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। आस्ट्रिया ने माँग की कि सन् 1848 से पूर्व स्थित जर्मन संघ को तत्काल पुनर्जीवित करना चाहिए। फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने अनुभव किया कि दक्षिणी जर्मन राज्य आस्ट्रिया में सम्मिलित हो जायेंगे और यह भी आशंका थी कि रूस भी इसी प्रकार कर सकता था। अस्तु फ्रेडरिक विलियम ने आस्ट्रिया के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और नवम्बर, 1850 में ओल्मुट्ज के सम्मेलन (Convention of Olimutz) में एक अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि के द्वारा फ्रेडिरिक विलियम ने प्रस्तावित योजना को त्याग दिया। आस्ट्रिया ने सन् 1815 के पुराने जर्मन संघ (Old German Confederation of 1815, the Bundestag) को पुनर्जीवित किया। इस प्रकार जर्मन एकता की समस्त योजनाओं को स्थगित किया। इस प्रकार ओल्मुट्ज सम्मेलन प्रशा की अपमानजनक स्थिति तथा जर्मनी में आस्ट्रिया के प्रभुत्व की पुनर्स्थापना का प्रतीक था।

क्रान्ति विरोधी प्रमुख शक्तियों में 'भाग्य' को भी सम्मिलित करना चाहिए। सन् 1848 में सहस्त्रों व्यक्तियों की हैजा से मृत्यु हो गयी। इसका सर्वाधिक प्रभाव, क्रान्ति के केन्द्र नगरों पर पड़ा। इससे अपूर्व जनहानि के अतिरिक्त सामाजिक अव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। जीवित व्यक्तियों की शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति ने किसी प्रकार के दीर्घकालीन प्रयासों को असम्भव कर दिया।

सन् 1849 में, फ्रैंकफर्ट की राष्ट्रीय सभा सहित सांसदों की असफलता का मूल कारण अनुपयुक्त समय पर क्रान्ति का सूत्रपात था। निःसन्देह यह क्रान्ति समस्त जर्मन राज्यों की जनता की स्वतन्त्रता तथा एक राष्ट्र की प्रबल आकांक्षा से प्रेरित थी। इस समय आर्थिक तथा सामाजिक संरचना में प्राचीन शासन के तत्व तथा स्वरूप विद्यमान थे। ये तत्व वंचित वर्गों को धनवान एवं समृद्ध वर्गों के विरुद्ध सामान्य जनता के हितों के लिए विद्रोह करने की अनुमति नहीं दे सकते थे।

फ्रैंकफर्ट की राष्ट्रीय सभा में उदारवादी बहुमत विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों से क्षुब्ध तथा चिन्तित था। उदारवादियों को धूमिल आशा थी कि फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की उत्कट राष्ट्रवादी भावनाएँ उसकी उदारवाद के प्रतिकूल भावनाओं और विचारों को निष्क्रिय कर देंगी। अस्तु उन्होंने सन् 1849 की ग्रीष्म ऋतु में स्वीकृत संविधान में प्रावधान

किया कि संयुक्त जर्मनी का सर्वोच्च अधिकारी वंशानुगत सम्राट होना चाहिए और वह भी प्रशा के राजा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं होना चाहिए। फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को इस संविधान के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। संविधान में प्रावधान के अनुसार, साम्राज्यिक उपाधि धारण करने के सम्बन्ध में उसका स्वयं का अनुमान था कि इससे बवेरिया, सैक्सोनी, वर्टम्बर्ग व हैनोबर तथा आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग सम्राट की ईर्ष्या, द्वेष तथा सक्रिय विरोध बढ़ जायेगा। उसको रूस के ज़ार निकोलस से भी गम्भीर प्रतिवाद तथा आपत्तियाँ प्राप्त हुई थीं। फ्रेडरिक विलियम ने संविधान तथा साम्राज्यिक राजमुकुट को अस्वीकार करके अनिश्चितता की स्थिति समाप्त कर दी। राष्ट्रवादियों की अन्तिम आशा भी ध्वस्त हो गयी। स्वतन्त्रता की देवी को साधारण महिला के समान नाली में मृत्यु का वरण करने के लिए छोड़ दिया गया। इसके साथ ही जर्मन समस्या का उदारवादी समाधान का प्रयास विफल हो गया। जर्मन संसदीय राजतन्त्र का स्वप्न अव्यावहारिक हो गया। साम्राज्य की कल्पना दिवा स्वप्न बन गयी। साम्राज्य पुनः प्रशा की सैन्य शक्ति पर आधारित हो गया।

मई, 1849 में पूर्णतया निराश उग्रवादी समूहों ने छोटे-छोटे राज्यों के राजाओं को अपदस्थ करके जर्मनी के विभिन्न भागों में गणतन्त्र स्थापित करने का प्रयास किया। प्रशा की सेना ने द्रुतगति से कठोरता के साथ इन विद्रोहों का दमन कर दिया। शेष जर्मन गणतन्त्रवादियों एवं उग्रवादियों को कारावास का दण्ड दिया गया अथवा निष्कासित कर दिया गया। अनेक उग्रवादियों ने अमेरिका में शरण ली। इस प्रकार जर्मनी की क्रान्ति का अन्त हो गया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. "यह जनता ही होती है, जिससे यथार्थ में राज्य का निर्माण होता है।" यह मत .... व्यक्त किया है—
   (क) जेरेमी बैन्थम (ख) हीगल (ग) रूसो (घ) लॉक
2. "राष्ट्रवाद, जाति के कल्याण तथा मानवता की सेवा के लिए ईश्वर प्रदत्त एक साधन है।" यह कथन ....का है—
   (क) कैवोर (ख) मैजिनी (ग) गारीबाल्दी (घ) मुसोलिनी
3. सन् .... में सर्वत्र मन्दी थी—
   (क) *1836* (ख) *1840* (ग) *1845* (घ) *1846*
4. मार्च .... से प्रशा की सरकार पर उदारवादियों का पूर्ण नियन्त्रण था—
   (क) *1845* (ख) *1846* (ग) *1847* (घ) *1848*
5. नवम्बर .... में ओल्मुट्ज के सम्मेलन में एक अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर किये—
   (क) *1848* (ख) *1849* (ग) *1850* (घ) *1851*
6. सोलहवीं शताब्दी में ....राष्ट्रीय राज्यों का अभ्युदय हुआ—
   (क) रूस, फ्रान्स एवं स्पेन (ख) आस्ट्रिया, जर्मनी एवं स्पेन
   (ग) ब्रिटेन, फ्रान्स एवं स्पेन (घ) ब्रिटेन, फ्रान्स एवं रूस

7. यूरोप के इतिहास में सन् ....के बाद का काल अत्यधिक अशान्ति, अस्थिरता तथा अस्त-व्यस्तता का काल था—
   (क) *1812* (ख) *1815* (ग) *1818* (घ) *1821*
8. सन् ....में यूरोपवासियों की प्रबल आकांक्षा शान्ति की थी—
   (क) *1810* (ख) *1812* (ग) *1815* (घ) *1820*
9. सन् ....में फ्रान्स की घटनाओं ने लगभग समस्त यूरोप में क्रान्तिकारी भावनाओं एवं आकांक्षाओं को उद्वेलित किया—
   (क) *1845* (ख) *1846* (ग) *1847* (घ) *1848*
10. सन् ....में फ्रैंकफर्ट की राष्ट्रीय सभा सहित सांसदों की असफलता का मूल कारण अनुपयुक्त समय पर क्रान्ति का सूत्रपात था—
   (क) *1848* (ख) *1849* (ग) *1850* (घ) *1851*

[उत्तर—*1*. (ग), *2*. (ख), *3*. (ख), *4*. (घ), *5*. (ग), *6*. (ग), *7*. (ख), *8*. (ग), *9*. (घ), *10*. (ख) ।]

22

इटली की स्वतन्त्रता एवं एकीकरण

[LIBERATION AND UNIFICATION OF ITALY]

यह उचित ही कहा जाता है कि "समर्पित देशभक्ति के नेताओं में इसकी अपेक्षा अन्य कोई सौभाग्यशाली उद्देश्य नहीं था और इटली के पुनर्गठन की अपेक्षा यद्यपि असमान माँगों के उपरान्त भी उत्कृष्ट उद्देश्य था।" इटली की मुक्ति में महान् त्रिमूर्ति मैजिनी, गारीबाल्दी और कैवोर अग्रणी थे।

उन्नीसवीं शताब्दी में इटली का एकीकरण उदारवाद तथा राष्ट्रवाद में परस्पर वैवाहिक सम्बन्धों सदृश घनिष्ठ सम्बन्धों का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस युग की स्वच्छन्द चेतना तथा भावना ने घनिष्ठ सम्बन्धों को प्रेरित किया था। शक्ति इसकी घनिष्ठ सहयोगी थी। सन् 1871 में उद्‌भूत इटली राष्ट्र में इसके स्वभाव की चार प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट दृष्टिगत होती हैं।

सन् 1815 में राजनीतिक मंच पर यवनिका उठने पर नैपोलियन युग की समाप्ति तथा इटली में नवयुग के सूत्रपात का संकेत मिलता है। निःसन्देह नैपोलियन के आक्रमण ने इटली में एक नये अध्याय का शुभारम्भ किया था। उसने समस्त देश में सुसंगठित तथा एकरूपीय प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की थी, जिसके परिणामस्वरूप इटली में राष्ट्रीय चेतना का जन समुदाय में संचार हुआ था। सन् 1815 का इटली वह नहीं था जो पहले था। सन् 1815 में नैपोलियन के सेनाध्यक्ष मुरट (Murat) ने नेपल्स पर शासन करते हुए सर्वप्रथम इटली के एकीकरण की घोषणा की थी। शीघ्र ही वह पराजित हो गया तथा उसकी गोली मारकर हत्या कर दी गयी, परन्तु इटली के देशभक्त उस के नाटकीय निवेदन को विस्मृत नहीं कर सके। संयुक्त इटली के विचार का आविर्भाव हो चुका था। इसके साथ ही नैपोलियन की सेनाओं द्वारा सिंचित स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के विचारों एवं भावनाओं का भी गम्भीर प्रभाव था। इटली की इन आकांक्षाओं को यूरोप के विभिन्न भागों में सन् 1815 से सन् 1848 की अवधि के मध्य विद्रोहों से पर्याप्त प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला।

इटली में वियाना के कूटनीतिज्ञों को अपने प्रिय वैधता सिद्धान्त तथा शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्तों को प्रयुक्त करने का सर्वाधिक व्यापक क्षेत्र मिला। इटली राजतन्त्रीय शासकों द्वारा शासित 8 राज्यों में विभाजित था। इन कूटनीतिज्ञों ने उत्तर पूर्व में स्थित लोम्बार्डी तथा वेनिस दो सर्वाधिक सम्पन्न एवं समृद्ध प्रान्त, फ्रान्स के सम्भावित आक्रमण के विरुद्ध इटली की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से आस्ट्रिया को दे दिये थे। इन पर आस्ट्रिया का

पूर्ण नियन्त्रण था। फ्रान्स के लिए समुद्रतटीय मार्ग को अवरुद्ध करने के उद्देश्य से जेनोआ (Zenoa) को उत्तर-पश्चिम में पीडमोन्ट (Piedmont) के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। दक्षिण में स्थित नेपल्स तथा सिसली में बोर्बोन वंश के शासक फर्डीनेण्ड प्रथम को शासक बनाया गया। कैथोलिक धर्माध्यक्ष पोप को अधिकृत राज्य में पुनर्स्थापित कर दिया गया। परमा, मोडेना और टस्कैनी में हैप्सबर्ग वंशीय निरंकुश शासकों को प्रतिष्ठित किया गया। इस प्रकार वेनिस और जेनोआ गणतन्त्रों के अतिरिक्त समस्त इटली का क्रान्ति से पूर्व के आधार पर पुनर्गठन किया गया। शक्ति सन्तुलन के लिए वेनिस और जेनोआ गणतन्त्रों को समाप्त करना अनिवार्य था। प्रत्येक राज्य में पुनर्स्थापित शासकों ने फ्रान्स की क्रान्ति की चुनौती की पूर्णतया उपेक्षा करते हुए प्राचीन शासन के आदर्शों एवं सिद्धान्तों को कार्यान्वित किया।

इस प्रकार वियाना की काँग्रेस ने इटली का पुनर्गठन किया। मैटरनिख ने कहा, "इटली एक भौगोलिक अभिव्यक्ति मात्र रह गया।" इटली का राजनीतिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं था। इटली अनेक छोटे-छोटे राज्यों का एक संकलन मात्र था। राजनीतिक स्थितियाँ एक-दूसरे से बहुत भिन्न थीं। उद्देश्यों की एकता तथा हितों की सुदृढ़ता का सर्वथा अभाव था। अत्यधिक प्रान्तवाद ने राष्ट्रीयता की भावना को नष्ट कर दिया था। इटली के आठ राज्यों में केवल एक सार्डीनिया-पीडमोन्ट में इटलीवासी विक्टर इमेनुअल प्रथम (Victor Emmanuel-I) निरंकुश राजतन्त्रीय शासक था। वह भी प्राचीन शासन का प्रबल समर्थक था। उसने फ्रान्स के कानूनों तथा संस्थाओं को समाप्त कर दिया था। पुनर्स्थापित पोप पियस (Pius) सातवें भी रूढ़िवादी तथा प्राचीन शासन समर्थक था। उत्तर-मध्य में स्थित डचीज में परमा में नैपोलियन की पत्नी मैरी लूसी का शासन सर्वश्रेष्ठ था। टस्कैनी में सहृदय परन्तु प्रोत्साहक सरकार थी। मोडेना का शासक अत्यधिक क्रूर, अत्याचारी एवं निर्मम था। वह फ्रान्स की हर वस्तु से पीडमोन्ट के राजा की अपेक्षा अधिक घृणा करता था। नेपल्स की प्रशासनिक व्यवस्था सर्वाधिक निकृष्ट थी।

इटली की अनेकता और विभिन्नता के लिए आस्ट्रिया का प्रभुत्व घातक श्राप था। इटली की राजनीतिक स्थिति का यह एक प्रमुख तथ्य था। इटली के विवाद का समाधान करने के लिए विएना के कूटनीतिज्ञों ने आस्ट्रिया के हितों को सर्वाधिक महत्व दिया। लोम्बार्डी और वेनेशिया दो सर्वाधिक धनी और सम्पन्न राज्यों पर आस्ट्रिया का प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण था। ये दोनों प्रान्त नैपोलियनकालीन भयंकर दोषों से मुक्त थे। वहाँ प्रशासन ईमानदार एवं कुशल था लेकिन विएना से निर्देश लेता था। यह यद्यपि विदेशी शासन था, लेकिन इसका लक्ष्य जनता के राजनीतिक जीवन का आस्ट्रियीकरण करना तथा उनकी राष्ट्रीय आकांक्षाओं को समाप्त करना था। परमा, मोडेना तथा टस्कैनी में आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग राजवंश से सम्बन्धित शासकों को प्रतिष्ठित किया गया। ये शासक आस्ट्रिया से निर्देश प्राप्त करते थे तथा आस्ट्रिया की नीतियों को ही कार्यान्वित करते थे। नेपल्स भी आस्ट्रिया की प्रशासनिक व्यवस्था का उपग्रह ही था। नेपल्स के राजा फर्डिनेण्ड ने एक सन्धि के द्वारा वचन दिया था कि वह कोई भी ऐसा प्रशासनिक कार्य नहीं करेगा जो आस्ट्रिया को मान्य नहीं हो। इसके अतिरिक्त इटली के राज्य इतने छोटे थे कि आत्मनिर्भर तो हो ही नहीं सकते थे। अतः आन्तरिक अथवा बाह्य कठिनाई में वे आस्ट्रिया से ही सहायता की याचना करते थे। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया का इटली पर पूर्ण प्रभुत्व था और 50 वर्षों तक आस्ट्रिया ने राज्यों के परस्पर विवादों में निर्णायक की भूमिका का निर्वाह किया।

विद्वान इतिहासकार कैटलबी लिखते हैं, "सन् 1815 से सन् 1850 तक इटली का इतिहास फूट, विदेशी आधिपत्य और प्रत्यक्ष रूप से निरर्थक संघर्ष का इतिहास था।" यद्यपि विएना की काँग्रेस ने इटली को अतीत की विघटन, फूट तथा विदेशी आधिपत्य की स्थिति में डाल दिया था परन्तु फ्रान्स की क्रान्ति द्वारा उद्भूत, चेतना, भावनाओं, विचारों तथा सिद्धान्तों का उन्मूलन नहीं कर सकी। फ्रान्स के विचार फ्रान्स के सैनिकों के साथ आल्पस पर्वत पार करके इटली में पहुँच गये थे और नैपोलियन के शासन ने शक्तिविहीन इटली में नवीन शक्ति, स्फूर्ति तथा चेतना का संचार किया था। उस अवधि में इटली की राष्ट्रीय सेना ने कुछ काल के लिए पृथकतावाद का उन्मूलन कर दिया था और सेना में मैत्री एवं साहचर्य के दृष्टिकोण ने एकता की भावना को पुष्ट किया था। अस्तु, इटलीवासियों ने कुछ समय के लिए राष्ट्रीय एकता का अनुभव किया था, परन्तु विएना की काँग्रेस ने उनको पुनः प्राचीन विघटन, फूट और विदेशी शासन में डाल दिया था। इटलीवासी अपनी स्थिति से अत्यधिक निराश एवं क्षुब्ध थे।

पुनर्स्थापित इटली के राजाओं ने कठोर प्रतिक्रियावादी युग का सूत्रपात किया। प्रत्येक राज्य में उदारवाद पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया। लोकतान्त्रिक एवं राष्ट्रवादी विचारों के प्रचार एवं प्रसार को रोक दिया गया। निराश इटलीवासियों को प्रतिक्रियावादी गतिविधियों ने पूर्वापेक्षा अधिक उत्तेजित किया। नैपोलियन के शासन काल में एवं उसके उपरान्त समस्त इटली में गुप्त समितियों के गठन का कार्य प्रारम्भ हो चुका था। इन गुप्त समितियों में प्रबल उदारवाद के सिद्धान्त एवं आदर्श अन्तर्निहित थे। निःसन्देह अधिकांश कृषक उदारवाद के प्रति उदासीन थे, परन्तु शिक्षित मध्यम वर्गों, व्यावसायिक तथा व्यापारी वर्गों में संवैधानिक सरकार और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की माँग निरन्तर प्रबल हो रही थी। अनेक अन्य देशों के समान इटली के उदारवादियों ने भी भूमिगत विरोध साधनों को नियोजित किया और कारबोनरी (चारकोल जलाने वाले Carbonari) और गुप्त सांसदों जैसी गुप्त समितियों ने क्रान्तिकारी भावनाओं, विचारों एवं सिद्धान्तों का अत्यधिक प्रचार किया। नेपल्स एवं सिसली में कारबोनरी की सदस्य संख्या सहस्रों में थी। यह एक केन्द्र-बिन्दु था, जिसके चारों ओर समस्त असन्तुष्ट एवं राजद्रोही तत्व एकत्र हो गये थे। विदेशियों को निष्कासित करना एवं संवैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना इसका निश्चित उद्देश्य था। इन इटलीवासियों की उदारवादी एवं राष्ट्रवादी आकांक्षाओं के विरुद्ध मैटरनिख ने आस्ट्रिया की पुलिस और सेना का प्रयोग किया था। मैटरनिख द्वारा इटली पर आधिपत्य का इतिहास यथार्थ में कुछ नहीं था वरन् सार्वजनिक उपद्रवों एवं सैनिक दमन का इतिहास था। कारबोनरी के सदस्य समस्त इटली में गुप्त रूप से विद्रोह के लिए उत्तेजित करते थे। स्पेन में क्रान्ति से प्रोत्साहित होकर कारबोनरी ने सन् 1820 में नेपल्स में विद्रोह को उत्तेजित किया और इसके राजा को संविधान स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। उदारवादी विचारों के वेनिस तथा लोम्बार्डी में प्रचार होने से पूर्व ही आस्ट्रिया सजग और सावधान हो गया था। इसलिए उसने नेपल्स में सेना भेज दी जिसने क्रान्तिकारी आन्दोलन का दमन कर दिया तथा राजा फर्डिनेण्ड को पुनः प्रतिष्ठित करके निरंकुश शासक बना दिया। आन्दोलन का पूर्णरूप से दमन करने से पूर्व ही पीडमोन्ट में विद्रोह हो गया और लोम्बार्डी में विद्रोह की चिंगारी सुलग रही थी लेकिन आस्ट्रिया नें पुनः हस्तक्षेप किया और आन्दोलन शान्त हो गये।

तदुपरान्त दस वर्ष तक इंटली आस्ट्रिया की कष्टदायक अधीनता में रहा। जनता के उद्वेलित असन्तोष की चिंगारी को सन् 1830 में फ्रान्स की क्रान्ति के समाचार ने आग की विनाशकारी लपटों में परिवर्तित होने के लिए हवा देने का कार्य किया। इस समय क्रान्ति के केन्द्र धार्मिक राज्य थे। यहाँ से क्रान्ति का सम्बद्ध राज्यों परमा और मोडेना में प्रसार हुआ। आस्ट्रिया ने पुनः हस्तक्षेप किया और क्रान्ति की लपटों को शान्त कर दिया और अनेक क्रान्तिकारियों को मृत्युदण्ड दिया गया। ये विद्रोह नवयुग के स्पष्ट चिन्हों की अपेक्षा तत्कालीन परिस्थितियों के विरुद्ध विरोध थे। ये विद्रोह स्थानीय थे और यत्रतत्र फैले हुए थे। इनके विरुद्ध राज्य की सेना अत्यधिक शक्तिशाली थी। "एकता, जिसके बिना सफलता लगभग असम्भव थी, कुछ नेताओं की ही माँग थी, और जनसमुदाय का धर्म नहीं बना था।" जनता अभी विद्रोह के लिए पूर्णतया परिपक्व नहीं थी। इसकी असफलता के उपरान्त भी सन् 1831 का लोकतान्त्रिक आन्दोलन महत्वपूर्ण था। प्रतिक्रियावादी तत्व विजयी हुए, परन्तु उनकी दुर्बलता स्पष्ट व्यक्त हो गयी थी। यह स्पष्ट हो चुका था कि प्रतिक्रयावादी शासक केवल विदेशी हस्तक्षेप के द्वारा अपने निरंकुश शासन को सुरक्षित रख सकते थे। विदेशी शक्ति पर निर्भर होना किसी भी दृष्टि से सुरक्षित, न्यायोचित एवं तर्कसंगत नहीं माना जा सकता है।

पृथक्-पृथक् विद्रोही प्रयासों की बार-बार असफलता से स्पष्ट हो गया कि कारबोनरी की पुरानी अप्रचलित पद्धतियों से राष्ट्रीय मुक्ति की समस्या का समाधान नहीं होगा। अपेक्षाकृत अधिक विशाल सहृदय तथा उत्साही धर्म की उदात्त भावना की अतीव आवश्यकता थी। उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रवाद के सर्वाधिक प्रबल एवं उत्साही प्रवर्तक मैजिनी (Mazzini) ने इस आवश्यकता की पूर्ति की। बहुत कम आयु में ही मैजिनी के हृदय में स्वतन्त्र एवं संयुक्त इटली का विचार था। अस्तु वह कारबोनरी का सक्रिय सदस्य बन गया। सन् 1830 में पीडमोन्ट की सरकार ने मैजिनी को कारावास का दण्ड दिया तथा देश से निष्कासित कर दिया। कारबोनरी आन्दोलन की दुर्बलताओं का अनुभव करते हुए मैजिनी ने "युवा इटली" (Young Italy) नाम की राष्ट्रवादी संस्था की स्थापना की। इसका मूल मन्त्र "ईश्वर और जनसमुदाय" था। गणतान्त्रिक एवं राष्ट्रवादी विचारों का व्यापक प्रचार एवं प्रसार करना इसका मुख्य उद्देश्य था और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा और विद्रोह इसकी मुख्य पद्धति थी। क्रान्ति की सफलता के लिए पुनर्जागरण अनिवार्य होना चाहिए। "युवा इटली" को किसी भी स्थिति में केवल षड्यन्त्रकारियों का संगठन नहीं होना चाहिए। कर्तव्य के सिद्धान्त पर नवीन इटली राष्ट्र की स्थापना के लिए इसे एक शैक्षणिक संगठन होना चाहिए। शीघ्र ही "युवा इटली" कारबोनरी की अपेक्षा राष्ट्रवादी आन्दोलनों का केन्द्र बन गया। इसके सदस्यों ने राष्ट्रीयता के विचारों एवं सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार किया और इस संस्था के माध्यम से मैजिनी ने इटली के विभिन्न भागों में विद्रोह के अनेक प्रयत्न किये। समस्त प्रयास विफल हो गये और अनेक व्यक्ति इन आन्दोलनों में वीरगति को प्राप्त हुए। मैजिनी, जो कुछ करने में असफल रहा, उससे उसकी देश के प्रति सेवाओं का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए। उसकी राष्ट्र के प्रति अनन्य सेवाएँ, विचारों एवं प्रेरणा में निहित थीं। उसने जनता विशेष रूप से नवयुवकों में उत्साह, देशभक्ति, वीरता, शौर्य तथा चेतना का संचार किया और विद्रोह की भावना को जीवित रखा। इटली की राष्ट्रीयता के विचार को निश्चित रूप-आकार देना तथा स्वतन्त्र और एकीकृत इटली के लिए जनान्दोलन को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना, मैजिनी का

"युवा इटली" की महान् उपलब्धियाँ थीं। इस प्रकार मैजिनी ने इटली की स्वतन्त्रता एवं एकता के लिए संघर्ष को नई दिशा दी और शौर्यपूर्ण आदर्शवाद को गौरव एवं गरिमा प्रदान की जिसने उसे उन्नीसवीं शताब्दी की "महान् गाथा" बना दिया। मैजिनी क्रान्तिकारी था। इटली के लिए स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक गणतन्त्र उसका आदर्श था। लेकिन अन्य लोगों से अपेक्षाकृत उसके अधिक नरम विचार थे। उन्होंने इटली की एकता के लिए कभी कुछ नहीं किया। इनमें सर्वाधिक प्रमुख गियोबेर्टी (Gioberti) था जिसने एकता के प्रश्न का समाधान पोप की अध्यक्षता में इटली के अनेक राज्यों का परिसंघ बनाकर, करने का प्रबल समर्थन किया। इसके अतिरिक्त एक अन्य विचारधारा भी थी जो संवैधानिक राजतन्त्र का समर्थन करती थी और पीडमोन्ट के राजा से इटली की मुक्ति की अपेक्षा करती थी।

इटली में क्रान्ति, 1848 (Revolution in Italy)—मैजिनी द्वारा आरम्भ युवा इटली आन्दोलन के परिणामस्वरूप सन् 1840 के दशक में समस्त इटली में अपूर्व उत्तेजना एवं विक्षुब्धता थी। युवा इटली आन्दोलन ने चतुरतापूर्वक कारबोनरी का स्थान ले लिया था। सन् 1846 में सुधारवादी पोप पियस नवम् का धार्मिक राज्य के सर्वोच्च पद के लिए चुनाव से जनसमुदाय में उच्च आकांक्षाओं का संचार हुआ। नवनिर्वाचित पोप तत्कालीन उदारवादी विचारों एवं सिद्धान्तों से प्रभावित था और उसने अपना शासन राजनीतिक अपराधियों को क्षमादान से आरम्भ किया। पोप पियस नवम् ने 700 राजनीतिक बन्दियों को कारागृहों तथा निष्कासन से मुक्त किया। उसने इस लोकप्रिय कार्यवाही के अतिरिक्त अन्य अनेक सुधार किये। उसने प्रेस पर प्रतिबन्धों को शिथिल किया। निर्वाचित परिषद् स्थापित की तथा धार्मिक राज्यों में कुछ पदों पर सामान्य जनता के व्यक्तियों को नियुक्त किया। सुधारवादी पोप के जनकल्याण की भावनाओं से अनुप्राणित भव्य प्रदर्शन ने स्वेच्छाचारी शासकों को सावधान एवं सजग किया। मैटरनिख ने घोषणा की कि उदारवादी पोप एक स्वाभाविक असम्भवता थी। वह अत्यधिक अशान्त तथा विचलित था। उसने फरेरा (Ferrara) पर आधिपत्य स्थापित करके पोप पियस नवम् पर दबाव डालने का प्रयास किया। इसका पोप ने उग्र विरोध किया तथा समस्त इटली की जनता में क्रोध तथा रोष की भावना का व्यापक प्रसार हुआ। जनता ने प्रत्येक स्थान पर पोप का हार्दिक स्वागत किया और उसके द्वारा आरम्भ सुधार आन्दोलन का धार्मिक राज्यों की सीमाओं के बाहर टस्कैनी तथा पीडमोन्ट में व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ। सन् 1847 में आस्ट्रिया विरोधी रोष के साथ लोकतान्त्रिक उत्तेजना का समस्त देश में व्यापक प्रभाव था। वर्ष 1848 समस्त यूरोप में क्रान्ति का वर्ष था। इटली में भी क्रान्ति आरम्भ हो गयी।

सिसली में आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। जनता ने तत्कालीन सिसली सरकार से स्वायत्त शासन तथा संवैधानिक सुधारों की माँग की। तदुपरान्त नेपल्स भी आन्दोलन से प्रभावित हो गया। भयभीत फर्डिनेण्ड द्वितीय ने सिसली और नेपल्स दोनों को ही संविधान की स्वीकृत दे दी। फर्डिनेण्ड द्वितीय का अनुकरण करते हुए सार्डीनिया-पीडमोन्ट के राजा चार्ल्स एल्बर्ट ने उत्तरदायी मन्त्रिपरिषद् के साथ संविधान की स्वीकृति दे दी। उसने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को भी मान्यता दे दी। प्रशासनिक दुर्बलता की अभिव्यक्ति ने समस्त इटली में जनान्दोलन को प्रोत्साहित किया। नेपल्स एवं सिसली में, जनान्दोलन, पेरिस में क्रान्ति आरम्भ होने से पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। प्रत्येक स्थान पर सुधारों की माँग की गयी तथा संविधान के समर्थन में विशाल प्रदर्शन किये गये। पीडमोन्ट, टस्कैनी तथा धार्मिक राज्यों (Papal

States) में शासकों को विवश होकर संविधान तथा संसदीय सरकार को स्वीकृति देनी पड़ी। अब तक आन्दोलन लोकतान्त्रिक था और अस्थायी सफलता मिली थी। आस्ट्रिया के अधीन राज्यों को छोड़कर समस्त इटली में संवैधानिक सरकारें स्थापित हो गयीं।

आस्ट्रिया के विरुद्ध राष्ट्रीय संघर्ष (National War against Austria)—शीघ्र ही लोकतान्त्रिक आन्दोलन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष में विकसित हो गया। पेरिस में क्रान्ति के समाचार के बाद विएना में विद्रोह तथा मैटरनिख के पलायन के समाचार ने समस्त इटली में उत्साह, उमंग और आशा का संचार किया। आस्ट्रिया के घृणित शासन के विरुद्ध विद्रोह हो गया और पाँच दिन तक निरन्तर सड़कों पर भीषण संघर्ष के बाद विद्रोहियों ने रेडेन्जकी (Radenzky) के नेतृत्व में आस्ट्रिया की सेना को नगर से हटने के लिए बाध्य कर दिया। वेनिस में भी इसी प्रकार का आन्दोलन हुआ और विद्रोही नेता मान (Mann) ने आस्ट्रिया की सेना को निकाल कर गणतन्त्र की घोषणा कर दी। सर्वव्यापी विचार एवं भावनाओं ने समस्त इटली को उद्वेलित किया। आस्ट्रिया के विरुद्ध संघर्ष में भाग लेने के लिए देश के समस्त भागों से स्वयं सेवक लोम्बार्डी में आये और आस्ट्रिया के आधिपत्य को समाप्त करने के लिए सशस्त्र संघर्ष की माँग की। रिसोरजिमेन्टो (Risorgimento) के युवा सम्पादक कैवोर (Cavour) ने सार्डीनिया-पीडमोन्ट के राजा चार्ल्स एल्बर्ट को उत्तेजनात्मक शब्दों में लिखा "सार्डीनिया के राजतन्त्र का सर्वोच्च समय आ गया है। राष्ट्र और राजा के लिए एक ही मार्ग खुला है—तत्काल युद्ध"। अपने देश की जनता तथा लोम्बार्डी की जनता के सशक्त आग्रह पर चार्ल्स एल्बर्ट ने सन् 1848 में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। टस्कैनी के लियोपोल्ड ने चार्ल्स एल्बर्ट का अनुकरण किया, जब कि पोप और नेपल्स के फर्डिनैण्ड को उन राज्यों की जनता ने समर्थन करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार सिसली, धार्मिक राज्यों टस्कैनी और लोम्बार्डी की सेनाएँ सार्डीनिया की सेना के साथ सम्मिलित हो गयीं और इटली के स्वतन्त्रता संघर्ष ने नये चरण में प्रवेश किया। संघर्ष केवल विद्रोह तक सीमित नहीं रह गया था, वरन् इटली के राजा के नेतृत्व में, राष्ट्रीय युद्ध का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। इस युद्ध में समस्त इटली के राज्यों ने पूर्ण समर्थन दिया था, परन्तु यह एकता की भावना अधिक समय तक नहीं रही। इटलीवासी परस्पर ईर्ष्याओं एवं मतभेदों के कारण पुनः शीघ्र ही बिखर गये। परस्पर विरोधी भावनाओं से त्रस्त पोप ने कैथोलिक शक्ति के साथ युद्ध का विरोध करने की घोषणा की। फर्डिनैण्ड ने अपनी राजधानी में विद्रोह का दमन करने के लिए अपनी सेना वापिस बुला ली। इन दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के विरुद्ध परमा, मोडेना, वेनिस, और लोम्बार्डी ने पीडमोन्ट के साथ विलय स्वीकार कर लिया। सैनिक सफलता ही दृढ़ निश्चय को साकार रूप प्रदान कर सकती थी, परन्तु चार्ल्स एल्बर्ट दुर्भाग्य से इस महान् दायित्व के लिए अनुपयुक्त था। उसकी विलम्बकारिता के साथ पोप एवं फर्डिनैण्ड के असहयोग ने युद्ध का निर्णय कर दिया। रेडेटज्की 60 वर्ष तक आस्ट्रिया की सेवा कर चुका था और प्रत्येक युद्ध में सक्रिय भाग लिया था। इस समय उसकी आयु 82 वर्ष थी। रेडेटज्की (Redetzky) के नेतृत्व में आस्ट्रिया की सेना ने कस्टोजा (Custozza) के स्थान पर 25 जुलाई, 1848 को चार्ल्स एल्बर्ट को पराजित किया और सन्धि पर हस्ताक्षर करने तथा लोम्बार्डी से हटने के लिए विवश किया। इस प्रकार इटली की क्रान्ति को निर्णायक आघात पहुँचा।

रोम में गणतान्त्रिक आन्दोलन (Republican Movement in Rome)—कस्टोजा में पराजय तथा सार्डीनिया के राजा के राष्ट्रीय संघर्ष से हटने के कारण राजतन्त्रों के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो गया, परन्तु इन घटनाओं ने गणतान्त्रिक आन्दोलन को प्रेरित एवं

प्रोत्साहित किया। इटली की स्वतन्त्रता तथा एकता को आघात ने इटली के उग्रवादियों को उत्तेजित किया। चार्ल्स एल्बर्ट ने स्वयं को अयोग्य सिद्ध कर दिया था और पोप पियस भी ढुल-मुल था। अब जनता की दृष्टि नेतृत्व के लिए मैजिनी पर केन्द्रित थी। "राजाओं का युद्ध समाप्त हो गया और जनता का युद्ध आरम्भ हुआ। रोम में पोप को जनता से अनेक आवेदन-पत्र एवं निन्दा-पत्र प्राप्त हुए। उसने सुधार की माँगों को स्वीकार कर लिया था लेकिन आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध करने से मना कर दिया। इस असंगत दृष्टिकोण ने जनता की निष्ठा को स्थानान्तरित कर दिया और जनता की भावनाएँ अत्यधिक उग्र हो गयीं, जब उन्होंने नेपल्स में शाही विश्वासघात की ताजा घटना देखी।" सिसली में फर्डिनैण्ड ने अपने अतीत में स्वीकृत संविधान को निरस्त करके पुनः निरंकुश शासन स्थापित किया और उसी के अनुरूप नीतियों को कार्यान्वित किया। उसने मैसिना पर बमों की वर्षा करवायी। अस्तु वह 'राजा बम्बा' के नाम से कुख्यात हुआ। प्रतिक्रियावादियों की सफलता ने रोम की जनता को अत्यधिक उत्तेजित किया। प्रबल गणतन्त्रवादियों, मैजिनी एवं गारीबाल्दी के सक्रिय नेतृत्व ने जनता को प्रोत्साहित किया और उन्होंने रोम में फरवरी, 1849 में गणतन्त्र की घोषणा कर दी। रोम में एक उदारवादी मन्त्री की हत्या कर दी गयी तथा पोप पियस नवन् पलायन कर गया और उसने आस्ट्रिया से सहायता के लिए निवेदन किया। धार्मिक राज्य के लौकिक (भौतिक) शासन को समाप्त कर दिया गया। उग्र गणतन्त्रवादियों का फ्लोरेन्स तथा नेपल्स में वर्चस्व था और उन्होंने टस्कैनी और सिसली को अधिनायकतन्त्रीय गणतन्त्रों में परिवर्तित कर दिया। सार्डीनिया राज्य में भी विपत्ति आरम्भ हो गयी। इटली के भाग्य का निर्णय पीडमोन्ट के राजा चार्ल्स एल्बर्ट के दृष्टिकोण पर निर्भर था। जनता की भावनाओं का सम्मान करते हुए उसने पुनः इटली को स्वतन्त्र कराने का दायित्व ले लिया।

चार्ल्स एल्बर्ट ने आस्ट्रिया के साथ सन्धि को अस्वीकार कर दिया और मिलन में सशस्त्र संघर्ष के लिए सीमाओं को पार किया, परन्तु नोवरा (Novara) के स्थान पर 23 मार्च, 1849 को आस्ट्रिया की सेना ने उसको पूर्णतया पराजित किया। गणतन्त्रवादी न तो सहायता करने में सक्षम थे और न सहायता करना चाहते थे। इटलीवासी इस विकट स्थिति में परस्पर विभाजित थे। उसको पीडमोन्ट के दक्षिण में स्थित राज्यों से कोई सहायता नहीं मिली। वह स्वयं युद्धभूमि में शहीद हो जाना चाहता था। उसने अपने वंश एवं इटली की महान् सेवा की। उसने इटलीवासियों को दिखा दिया कि इटली में एकमात्र वही था जिसने राष्ट्रीय हितों के लिए सहर्ष हर प्रकार का जोखिम लिया। पीडमोन्ट की सरकार और सेवॉय वंश में इटलीवासियों की अपूर्व आस्था और निष्ठा थी। उसको राष्ट्रीय हित में शहीद माना जाता था। विक्षुब्ध एवं पीड़ित चार्ल्स एल्बर्ट ने अपने पुत्र इमान्युल द्वितीय (Emmanuell II) के पक्ष में राज्य त्याग दिया और अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने की अपेक्षा पुर्तगाल के मठ में सम्मिलित हो गया। वहीं कुछ माह बाद उसका देहान्त हो गया। नोवरा की पराजय ने इटलीवासियों की समस्त आशाओं एवं आकांक्षाओं को ध्वस्त कर दिया और प्रतिक्रियावादी युग का सूत्रपात हुआ।

रोम से पोप पियस नवम् के पलायन ने समस्त रोमन कैथोलिक जगत को उत्तेजित कर दिया। फ्रान्स के गणतन्त्र के नवनिर्वाचित राष्ट्रपति नैपोलियन तृतीय इटली में आस्ट्रिया की शक्ति के विरुद्ध प्रत्युत्तर स्वरूप प्रदर्शन करना चाहता था। अस्तु उसने पोप का समर्थन किया। फ्रान्स में शक्तिशाली कैथोलिक दल भी पोप की धार्मिक सरकार को अपदस्थ करने

से अत्यधिक क्रुद्ध एवं उत्तेजित था। इसलिए लुईस नैपोलियन कैथोलिक़ दल का पूर्ण समर्थन चाहता था। नैपोलियन ने मैजिनी के गणतन्त्र के विरुद्ध रोम में फ्रान्स की सेना भेजी। गारीबाल्दी ने दो माह तक वीरता और शौर्य के साथ संघर्ष किया। अन्ततोगत्वा उसने फ्रान्स की सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार लुईस नैपोलियन ने रोम में सर्वोच्च धार्मिक सत्ता को पुनः प्रतिष्ठित करने का गौरव प्राप्त किया। पियस नवम् वेटिकन वापिस आ गया।

इस प्रकार इटली की स्वतन्त्रता के लिए अपरिपक्व संघर्ष का अन्त हो गया। आस्ट्रिया ने लोम्बार्डी तथा वेनेशिया में पुनः अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। पीडमोन्ट के अतिरिक्त इटली के अन्य राज्यों में निरंकुशतावाद को पुनः स्थापित कर दिया गया। पीडमोन्ट में विक्टर एमान्युल द्वितीय अपने पिता के द्वारा स्वीकृत संविधान के प्रति निष्ठावान रहा। विक्टर एमान्युल द्वितीय एक वीर सैनिक, निष्ठावान देशभक्त तथा ईमानदार राजा था। सौभाग्य से कैवोर (Cavour) के रूप में उसको एक महान् मन्त्री मिल गया। कैवोर की नीतियों पर उसकी दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रभुत्व था। वह आस्ट्रिया से इटली की मुक्ति के लिए कृत संकल्प था। उसने दृढ़ निश्चय किया था कि उसे आस्ट्रिया की अस्पष्ट आन्तरिक राजनीति में से इटली की एकता को निश्चित रूप से निकालना चाहिए। इसको समस्त यूरोप का प्रश्न बनना चाहिए जिस पर शक्तियों को युद्ध करना चाहिए।

स्पष्ट उद्देश्यों, प्रयासों में समुचित समन्वय तथा कुशल नेतृत्व के अभाव के कारण राष्ट्रवादी आन्दोलन असफल हुआ। आन्दोलन को सही दिशा में संचालित करने के लिए कोई कुशल नेता नहीं था। मैजिनी प्रेरित कर सकता था, गारीबाल्दी युद्ध कर सकता था परन्तु दोनों में कुशल राजनीतिज्ञता का अभाव था। यह राजनीतिज्ञता ही तत्कालीन शक्तियों का अपने लाभ के लिएं प्रयोग कर सकती थी।

सन् 1848 की इटली की क्रान्ति का महत्व (Significance of the Italian Revolution of 1848)—इटली का संघर्ष यद्यपि असफल हुआ परन्तु निरर्थक नहीं था। पहली बार इटलीवासी समान उद्देश्य के लिए एकता के सूत्र में बँध गये। इटली के राष्ट्रवाद के नाम पर "नैपोलियनवादियों ने वेनिस के लिए, लोम्बार्डी के निवासियों ने रोम के लिए और पीडमोन्टवासियों ने समस्त इटली के लिए अपना रक्त बहाया था।" कुछ काल के लिए उन्होंने अपनी संकीर्ण प्रान्तीयता को विस्मृत कर दिया और राष्ट्रीय आन्दोलन को व्यापक दृष्टिकोण से देखा। पीडमोन्ट के राजा ने राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए अपने राजसिंहासन को भी संकट में डाल दिया और एकमात्र सम्भावित नेता के रूप में इटली के राजनीतिक मंच पर सामने आया। यह एक महान् उपलब्धि थी। सन् 1848 के प्रयासों ने इटली में राष्ट्रीय चेतना का ही संचार नहीं किया वरन् भावी पीढ़ियों के लिए राष्ट्रीय उद्देश्य "राजवंश प्रतिनिधित्व करने के लिए था और जनता रक्षा करने के लिए थी" भी दिया।

एकता के लिए प्रयासों की असफलता के कारण (Causes of the Failure of the attempts at Unity)—सन् 1848-49 में इटली के देशभक्तों के समस्त प्रयासों का दुखान्त हो चुका था परन्तु अतीत के असफल प्रयासों ने बहुत अंशों में वातावरण स्वच्छ कर दिया था और भावी प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था। अब तक के इटली के देशभक्तों के प्रयासों को विभिन्न दृष्टिकोणों तथा विचारों ने निष्प्रभावी कर दिया। अब तक इटली के देशभक्तों के समस्त प्रयासों को, जो अपनी समान आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए

सर्वोत्कृष्ट पद्धति थी, विरोधी विचारों ने रद्द कर दिया था। राष्ट्रीयता की चेतना और स्वतन्त्रता की भावना को कहीं कोई मान्यता नहीं थी। राष्ट्रवादियों के समक्ष अपने उद्देश्य एवं कार्यक्रम के रूप में स्वीकार करने के लिए तीन परस्पर विरोधी योजनाएँ रखी गयीं। मैजिनी गणतन्त्र की स्थापना करना चाहता था। गियोबर्टी (Gioberti) पोप की अध्यक्षता में इटली के राज्यों का संघ राज्य बनाना चाहता था, जबकि तीसरा वर्ग पीडमोन्ट के राजा के अन्तर्गत इटली को एकीकृत करना चाहता था। सन् 1848-49 की घटनाओं के बाद संघवाद तथा गणतन्त्रवाद, इटली के प्रश्न के सम्भावित समाधान के रूप में विलीन हो गये। सुधारवादी पोप पियस नवम् प्रतिक्रियावादी हो गया और वह इटली के राजनीतिक एकीकरण के विरुद्ध था। उसको आशंका थी कि शक्तिशाली धर्मनिरपेक्षिक सरकार की स्थापना से उसका आध्यात्मिक प्रभाव कम हो जायेगा तथा इटली के अतिरिक्त अन्य देशों की दृष्टि में उसको अपनी स्थिति के साथ समन्वय करना होगा। सन् 1849 के उपरान्त वह राष्ट्रीय हितों का कट्टर शत्रु बन गया और इटली की एकता के समस्त प्रयासों का तीव्र विरोध किया। इसी प्रकार गणतन्त्रवाद में जनता की आस्था एवं विश्वास समाप्त हो चुका था। यह इतना अधिक उग्र प्रवृत्ति का था कि जनता के समर्थन की कोई आशा नहीं थी। रोम में मैजिनी के प्रयास निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। यथार्थ में जहाँ कहीं यह प्रकट हुए इनको समाप्त करने का प्रयास किया गया। अब तक ये प्रयास सफल हुआ था। इन तत्वों का शीघ्र ही विघटन होने वाला था और सुधार आन्दोलन प्रायद्वीप में विजयी होने वाला था, जिससे इटली के पूर्णरूप से रूपान्तर और समृद्ध होने की आशा थी। इस प्रकार दो परस्पर विरोधी योजनाओं का अन्त हो चुका था। अब प्रश्न बहुत सरल हो गया था। सार्डीनिया-पीडमोन्ट के राजा के नेतृत्व में संवैधानिक राज्य का निर्माण एक सम्भावित समाधान था। ऐसी आशा थी कि अधिकांश राष्ट्रवादी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगे।

राष्ट्रवादी आशाओं का केन्द्र पीडमोन्ट (Piedmont, the Centre of Nationalist Hopes)—इटली के राष्ट्रवादियों की पीडमोन्ट पर भावी इटली के केंन्द्र के रूप में दृष्टि थी। पीडमोन्ट ही एकमात्र ऐसा राज्य था, जिस पर कभी भी आस्टिया का नियन्त्रण नहीं रहा और इसका शासक भी इटली के राजवंश का ही था। इसके अतिरिक्त पीडमोन्ट ने ही सन् 1848-49 में पूर्ण सामर्थ्य एवं शक्ति के साथ आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध किया और उसका राज परिवार सदैव राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति समर्पित था। विजयी आस्ट्रिया के भारी दबाव के उपरान्त विक्टर एमान्युल द्वितीय अपने पिता द्वारा स्वीकृत संविधान के प्रति निष्ठावान रहा। इस प्रकार पीडमोन्ट एक मात्र संविधान वाला राज्य, निरंकुशतावाद के रेगिस्तान में उदारवादी मरुद्वीप बन गया। वह स्वतन्त्रता की मशाल बन गया और प्रत्येक स्थान पर राष्ट्रवादियों को आकर्षित किया। अपने अस्तित्व को संकट में डालने की विभिन्न घटनाओं तथा उसके द्वारा किये गये बलिदानों को ध्यान में रखते हुए, पीडमोन्ट को सर्वसम्मति से राष्ट्रीय आन्दोलन का नेता स्वीकार किया गया। प्रत्येक राष्ट्रवादी ने सत्य को स्वीकार करना आरम्भ कर दिया था कि सेवाय वंश के नेतृत्व में संवैधानिक राजतन्त्र के द्वारा इटली का निर्माण हो सकता था।

कैवोर की नीति (Cavour's Policy)—सर्वोत्कृष्ट कूटनीतिज्ञ एवं देशभक्त कैवोर (Cavour) सन् 1850 में पीडमोन्ट की मन्त्रिपरिषद् में एक मन्त्री के रूप में सम्मिलित हुआ था और सन् 1852 में वह प्रधानमन्त्री बना। सन् 1861 में मृत्यु तक, संक्षिप्त अन्तराल के अतिरिक्त अपने पद पर बना रहा। कैवोर के प्रधानमन्त्री नियुक्त होने के साथ ही इटली के प्रश्न ने विकास के नये चरण में प्रवेश किया। अब तक समस्त राष्ट्रवादी आन्दोलनों की

धारणा थी कि इटली स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान कर सकता था। सन् 1848 का आदर्श वाक्य था, "इटली अपना प्रबन्ध स्वयं करेगा" (Italia fara da se) लेकिन उस वर्ष की एवं भावी घटनाओं से स्पष्ट हो चुका था कि जब तक आस्ट्रिया और फ्रान्स जैसी महान् शक्तियाँ इटली की एकता को रोकने के लिए हस्तक्षेप करती रहेंगी, इटली का एकीकरण सम्भव नहीं हो सकता है। कैवोर ने सर्वप्रथम इस तथ्य को भलीभाँति समझा था। षड्यन्त्रों एवं विद्रोह की पुरानी पद्धतियों को त्याग कर नयी पद्धतियों एवं दाँव-पेच की योजना बनाना, कैवोर की महान् उपलब्धि थी।

कैवोर का लक्ष्य इटली को आस्ट्रिया के प्रभुत्व से मुक्त कराना एवं सेवाय वंश के नेतृत्व में इटली को एकीकृत करना था। आस्ट्रिया के प्रभुत्व को समाप्त करने के बाद इटली का एकीकरण सम्भव था। पीडमोन्ट-सार्डीनिया जैसे छोटे राज्य एवं इटली के अन्य भागों से प्राप्त थोड़ी बहुत सहायता के द्वारा अकेले आस्ट्रिया की विशाल एवं शक्तिशाली सेना का सामना करना बहुत कठिन था। अस्तु इटली को स्वतन्त्र कराने के लिए किसी महान् सैन्य-शक्ति का सक्रिय समर्थन प्राप्त करना अनिवार्य रूप से आवश्यक था।

इसके अतिरिक्त इटली के प्रश्न में अन्य छोटे राजाओं के निहित हित एवं पोप की स्थिति जैसे जटिल विवाद भी सम्मिलित थे। इन समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध, जैसा विएना काँग्रेस ने इटली के लिए किया था, का पूर्ण रूप से संशोधन आवश्यक होगा और यह संशोधन बिना अन्तर्राष्ट्रीय सक्रिय सहयोग के सम्भव नहीं हो सकता था। अस्तु कैवोर इटली की स्वतन्त्रता एवं एकीकरण के प्रश्न को आस्ट्रिया की गृहनीति के अन्धकार से बाहर निकालकर यूरोपीय चिन्ता का विषय बनाना चाहता था। यह कैवोर की नीति का मुख्य लक्ष्य था।

दूसरे कैवोर इटली को आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाना चाहता था। उसका विचार था, कि इटली का एकीकरण सेवाय वंश के नेतृत्व में होना चाहिए। इस कारण पींडमोन्ट को एक आदर्श राज्य बनना चाहिए। पीडमोन्ट को पर्याप्त शक्तिशाली और उदार होना चाहिए जिससे इटली के अन्य राज्य पीडमोन्ट का नेतृत्व स्वीकार करने के लिए प्रेरित हों। अन्दर से सुधारों से युक्त एवं पुनरुजीवित पीडमोन्ट इटली के समस्त भागों के देशभक्तों को निश्चित रूप से सक्रिय सहयोग और समर्थन के लिए आकर्षित करेगा, क्योंकि इटली के अन्य छोटे राज्यों की जनता आस्ट्रिया समर्थित भयंकर दमन से पीड़ित थी। कैवोर ने कहा था, "यह इटली की समस्त जीवन्त शक्तियों को एकत्रित करेगा और ऊँचे नियति, जिसके लिए उसका आह्वान किया जाता है, के लिए नेतृत्व करने की स्थिति में होगा।"

इस प्रकार कैवोर के कार्य ने स्वयं को दो भागों में विभाजित कर लिया था। प्रथम भाग में कैवोर ने देश की आर्थिक प्रगति को प्रोत्साहित किया और इसकी संसदीय सरकार का विकास किया। उसने कृषि एवं अन्य उद्योगों को प्रोत्साहित किया और अपनी उन्मुक्त व्यापार की नीति द्वारा व्यापार एवं वाणिज्य का विस्तार किया। उसने सड़कों, नहरों और रेलवे का निर्माण करवाया, बजट का पुनर्गठन किया और देश को समृद्ध और सम्पन्न बनाने के लिए करों में वृद्धि की। उसने गिरजाघरों के बहुत अधिक अधिकारों को कम कर दिया और बहुत बड़ी संख्या में मठों को समाप्त कर दिया। धर्म को राजनीति से अलग करने के उद्देश्य से ऐसा किया था। पादरी वर्ग सार्डीनिया के नेतृत्व में इटली के एकीकरण के विरुद्ध था। 'स्वतन्त्र राज्य में स्वतन्त्र गिरजाघर के सिद्धान्त' का प्रबल समर्थक था। संसद राष्ट्र की राजनीति का मुख्य केन्द्र बन गयी थी। उसने समस्त कार्य संसद के माध्यम से किया था। इन आन्तरिक

सुधारों के साथ जनरल ला मारमोरा (La Marmora) के नेतृत्व में सेना का पुनर्गठन किया। उसने सेना को प्रशिक्षित किया। पीडमोन्ट अब पूर्णतया लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सुसज्जित एवं तैयार था, जिसके लिए उसका आह्वान किया गया था। कैवोर के नेतृत्व में पीडमोन्ट इटली का सर्वोच्च राज्य बन गया था।

कैवोर और क्रीमिया युद्ध (Cavour and the Crimean War)—अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम के दूसरे भाग की पृष्ठभूमि के रूप में कैवोर ने अनेक सुधार किये थे। उसका दृढ़ विश्वास था कि विदेशी सहायता के बिना लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव नहीं थी। कैवोर ने अपनी आन्तरिक नीति के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये थे। ये सुधार उसके कार्यक्रम के दूसरे भाग सेवाय वंश के नेतृत्व में इटली के एकीकरण की प्रस्तावना थे। उसका विश्वास था कि इटली का एकीकरण विदेशी सहायता से हो सकता था। अस्तु अनिवार्य युद्ध के लिए सर्वाधिक तैयारी के उद्देश्य से पीडमोन्ट के विभिन्न स्रोतों का समुचित विकास करते हुए उसने यूरोप में मित्र राष्ट्रों की खोज आरम्भ की। फ्रान्स के पास यूरोप में सर्वाधिक शक्तिशाली सेना थी और फ्रान्स का सम्राट नैपोलियन तृतीय एक महत्वाकांक्षी और साहसिक उद्यमी व्यक्ति था। **कैवोर** ने कहा था, "चाहे हम इसे पसन्द करें अथवा नहीं" आगे कहा, "हमारा भविष्य फ्रान्स पर निर्भर है।" वह स्वयं नैपोलियन का कृपा-पात्र बनना चाहता था। इसी प्रकार क्रीमिया युद्ध (Crimean war) आरम्भ हो गया और यह कैवोर के लिए दैविक सुअवसर था। पूर्वी राष्ट्रों के विवाद में पीडमोन्ट की कोई रुचि नहीं थी और रूस से भी कोई शत्रुता नहीं थी, परन्तु कैवोर ने रूस के विरुद्ध इंग्लैण्ड और फ्रान्स के दल में सम्मिलित होने के सुअवसर का लाभ उठाया। उसका विश्वास था कि इन महान् शक्तियों के साथ घनिष्ठ सम्बन्धों से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पीडमोन्ट की स्थिति में सुधार होगा तथा ये शक्तियाँ नैतिक बन्धन के अन्तर्गत भविष्य में उपयोगी सिद्ध होंगी। यह राजनीति में साहसी दाँव था और अत्यधिक चतुर नीति थी। कूटनीति के इतिहास में यह कैवोर का सर्वाधिक साहसी कदम था। वह इंग्लैण्ड-फ्रान्स गठबन्धन में एक सहायक की अपेक्षा समान स्तरीय स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में सन् 1855 में सम्मिलित हुआ था। उसने इंग्लैण्ड की प्रस्तावित आर्थिक सहायता को भी गर्व के साथ अस्वीकार कर दिया था। पीडमोन्ट की सेना ने उत्कृष्ट शौर्य एवं साहस के साथ युद्ध किया और गौरव के साथ लौटी। सन् 1856 में सन्धि के प्रावधानों पर विचार-विमर्श के लिए पेरिस में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में पीडमोन्ट को एक सम्मानित सदस्य देश के रूप में आमन्त्रित किया गया। यह युद्ध में सक्रिय भाग लेने का तात्कालिक लाभ था। पेरिस काँग्रेस में कैवोर ने, आस्ट्रिया के कठोर विरोध के उपरान्त, एकत्रित कूटनीतिज्ञों के समक्ष इटली की समस्या को प्रस्तुत किया और आस्ट्रिया शासन की घातक नीतियों एवं उनके भीषण परिणामों को चित्रित किया था। इटली की समस्या पर क्रान्तिकारियों के अतिरिक्त महान् शक्तियों के सम्मानित प्रतिनिधियों ने भी व्यापक विचार-विमर्श किया। इस प्रकार इटली की समस्या समस्त यूरोप की चिन्ता का विषय बन गयी। इससे पीडमोन्ट की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई तथा यूरोप की सहानुभूति प्राप्त हुई। लाभ यद्यपि नैतिक था परन्तु अत्यधिक था। कालान्तर में घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि कैवोर का कथन कि "वह क्रीमिया की कीचड़ से इटली का सृजन करेगा", सत्य था।

कैवोर की नीति का अगला कदम फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन तृतीय का समर्थन और सहानुभूति प्राप्त करना था। फ्रान्स का सम्राट उस देश के प्रति सहानुभूति और सहृदयता के लिए विख्यात था, जहाँ उसने सन् 1831 में कारबोनरी के सदस्य के रूप में संघर्ष किया था।

कैवोर ने उत्कृष्ट राष्ट्रवादी आकांक्षाओं के साथ बुद्धिमता एवं चतुरतापूर्वक नैपोलियन की सहानुभूति एवं समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रयास आरम्भ किये। एक आकस्मिक घटना ने उसके प्रयासों का समर्थन किया। ओरसिनी नाम के एक इटलीवासी ने सम्राट नैपोलियन तृतीय की हत्या का असफल प्रयास किया। यह आकस्मिक घटना कुछ काल के लिए कैवोर की आकांक्षाओं पर घातक प्रहार प्रतीत हुई। घटना अत्यधिक विनाशकारी हो सकती थी, परन्तु चतुर तथा बुद्धिमान कैवोर ने स्थिति पर नियन्त्रण कर लिया। कैवोर ने विचार व्यक्त किया कि इस प्रकार के घृणित क्रान्तिकारी अपराध, आस्ट्रिया तथा इटली के निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासकों के दमनकारी शासन से त्रस्त, निराश एवं कुंठाग्रस्त प्रबल राष्ट्रवादियों के पथभ्रष्ट हो जाने के परिणाम थे। मृत्यु के समय ओरसिनी ने सम्राट नैपोलियन से नम्र निवेदन किया कि "इटली को मुक्त करवा दो"। इस निवेदन ने कैवोर के व्यक्त विचार की पुष्टि की। नैपोलियन के हृदय पर गम्भीर प्रभाव पड़ा और वह तत्काल आवश्यक कार्यवाही करने के लिए उत्तेजित हो गया।

21 जुलाई, 1858 को एक अपरिचित आगन्तुक ने कहा कि फ्रान्स का सम्राट नैपोलियन तृतीय प्लाम्बियर्स (Plambieres) के स्वास्थ्य केन्द्र में व्यतीत करेगा। कैवोर ने बिना किसी औपचारिक निमन्त्रण के जाने का निश्चय किया और प्लाम्बियर्स पहुँच गया। वहाँ फ्रान्स के सम्राट के साथ गुप्त बैठक में आस्ट्रिया के साथ युद्ध तथा इटली की मुक्ति की योजना का निर्णय हुआ। प्लाम्बियर्स के संविदा (Compact of Plambieres) के अनुसार आस्ट्रिया के साथ युद्ध की स्थिति में नैपोलियन तृतीय सार्डीनिया-पीडमोन्ट की ओर से युद्ध में सम्मिलित होगा और इटली को आल्पस पर्वत से एड्रियाटिक तक मुक्त करेगा। इस योजना में आस्ट्रिया को उसके अधिकृत क्षेत्रों लोम्बार्डी तथा वेनेशिया से निकालकर पीडमोन्ट में विलय करने का प्रावधान था। नेपल्स तथा रोम अप्रभावित रहने थे और शेष इटली को एकीकृत करके पृथक् स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना थी। नैपोलियन की सहायता के मूल्य के रूप में उसको नाइस तथा सेवाय प्राप्त होने थे। फ्रान्स और सार्डीनिया की सन्धि को पुष्ट करने के लिए विक्टर एमान्युअल द्वितीय की पुत्री और सम्राट नैपोलियन के चचेरे भाई राजकुमार जैरोम बोनापार्ट के साथ वैवाहिक सम्बंन्ध का भी प्रस्ताव था। नैपोलियन तृतीय को प्रभावित करने वाले अभिप्रेरक यद्यपि उसके स्वयं के लिए क्षणिक थे, लेकिन इटली के लिए अनेक थे। राष्ट्रीयता का सिद्धान्त जिसको वह दृढ़ता के साथ मानता था और जिसने उसके समस्त शासन की विदेश नीति को निर्धारित किया एवं इस दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया, वह सिद्धान्त था कि एक ही जाति एवं भाषा के लोगों को यदि वे चाहते हैं, तो उनको राजनीतिक दृष्टि से एकीकृत होने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त सन् 1815 की सन्धियाँ जिनके कारण नैपोलियन के वंश का बहुत अपमान हुआ था, को समाप्त करने की प्रबल महत्वाकांक्षा थी। इटली की राजनीतिक प्रणाली का आधार अब भी ये सन्धियाँ थीं। इसके साथ ही राज्य के गौरव प्राप्ति करने का प्रलोभन और क्षेत्र प्राप्त करने का अवसर था।

प्लाम्बियर्स की सन्धि तथा वास्तविक युद्ध के मध्य व्यतीत नौ माह का समय कैवोर के लिए अत्यधिक कष्टप्रद एवं मानसिक तनाव का था। वह किसी प्रकार आस्ट्रिया को इटली पर आक्रमण करने के लिए बाध्य करना चाहता था और नैपोलियन से योजना के अनुसार सहायता के लिए अनुरोध करना चाहता था। कैवोर का विचार था कि युद्ध शीघ्रातिशीघ्र

आरम्भ होना चाहिए अन्यथा नैपोलियन के विचार एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन हो सकता था अथवा अन्य किसी आकस्मिक घटना से योजना असफल हो सकती थी। कैवोर ने व्यापक सैनिक तैयारियाँ आरम्भ कर दीं और शत्रुतापूर्ण सीमा शुल्क, प्रेस के माध्यम से कटु आलोचना तथा लोम्बार्डी और वेनेशिया में विद्रोह को प्रोत्साहित करके आस्ट्रिया को आक्रमण करने के लिए उत्तेजित करने का प्रयास किया। विक्टर एमान्युअल ने संसद को सम्बोधित करते हुए कहा, "पीड़ाओं के सामाचार जो इटली के अनेक भागों से हमारे पास आते है, के प्रति हम उदासीन नहीं हैं।" नैपोलियन पहले ही घोषणा कर चुका था। "उसके आस्ट्रिया के साथ सम्बन्ध इतने अच्छे नहीं थे जैसे पहले थे।" ये राजनीतिक गतिविधियाँ आस्ट्रिया तथा यूरोप में भावी विनाशकारी संकट के प्रति गम्भीर चेतावनी थीं। नैपोलियन के नवीन अभियान से आतंकित होकर इंग्लैण्ड ने युद्ध से बचने के लिए यूरोपीय देशों के सम्मेलन का प्रस्ताव रखा। नैपोलियन को भलीभाँति ज्ञात था कि उसके देश की जनता युद्ध नहीं चाहती। नैपोलियन ने पर्याप्त मनन एवं विचार-विमर्श के बाद इंग्लैण्ड के युद्ध की सम्भावनाओं में सम्मिलित तीन देशों के लिए सामान्य निरस्त्रीकरण के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कैवोर अपनी आशाओं तथा आकांक्षाओं के ध्वस्त होने से अत्यधिक निराश था और आत्महत्या का विचार करने लगा, परन्तु अन्ततोगत्वा सार्डीनिया के सैन्य विघटन के लिए तैयार हो गया। पीडमोन्ट के दृष्टिकोण को आस्ट्रिया ने बहुत सहन किया परन्तु सहिष्णुता की सीमा के उपरान्त आस्ट्रिया ने तत्काल निरस्त्रीकरण अथवा युद्ध का अन्तिम निर्णय पीडमोन्ट भेजा। इस प्रकार आस्ट्रिया आक्रामक हो गया और कैवोर की चतुर कूटनीति में फँस गया। कैवोर ने आस्ट्रिया के अन्तिम निर्णय को अस्वीकार करते हुए, नैपोलियन तृतीय से अनुरोध किया और यूरोपीय शक्तियों के समक्ष पीडमोन्ट को आक्रामक की अपेक्षा आत्म-रक्षक सिद्ध किया। नैपोलियन ने आक्रामक के रूप में युद्ध में संकोच किया था, परन्तु उसकी आशंका को दूर कर दिया गया और कैवोर ने उत्साह के साथ घोषणा की, "पासा पड़ गया है, हमने इतिहास बना दिया है। युद्ध आरम्भ हो गया"।

फ्रान्स-सार्डीनिया-आस्ट्रिया युद्ध, 1859 (The Franco-Sardinian-Austrian War, 1859)—गारीबाल्दी और कोहोर्टस (Cohorts) के नेतृत्व में समस्त भागों के स्वयं सेवकों की सेनाओं के साथ फ्रान्स और सार्डीनिया की सेनाओं ने लोम्बार्डी में प्रवेश किया और आस्ट्रिया की शक्तिशाली सेना को 4 जून, 1859 में मेगेन्टा के युद्ध में पराजित किया। इससे मिलन के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया और सोलफेरिनो (Solferino) के युद्ध में 24 जून को पुनः आस्ट्रिया को पराजित किया। लोम्बार्डी आस्ट्रिया के आधिपत्य से मुक्त हो गया तथा आस्ट्रिया की सेना वेनेशिया स्थित सुदृढ़ दुर्गों में पीछे हट गयी। ठीक उस समय जब वेनिस पर पूर्ण आधिपत्य की सम्भावना थी और आस्ट्रिया का निष्कासन निश्चित था, नैपोलियन तृतीय ने अनायास युद्ध विराम का आह्वान किया।

यथार्थ में इन सफलताओं ने इटली के राष्ट्रवादियों की उदात्त भावनाओं को अत्यधिक उद्वेलित किया। जनता ने धार्मिक राज्यों सहित मध्य इटली स्थित समस्त राज्यों को सार्डीनिया राज्य में विलय की प्रबल माँग की। नैपोलियन तृतीय जनता की इस माँग को स्वीकार नहीं कर सका। इसी अवधि में फ्रान्स के कैथोलिक धर्मावलम्बियों ने अपने सम्राट की इटली में धर्म विरोधी हस्तक्षेप के लिए कटु आलोचना की। फ्रान्स के एक धर्माधिकारी (बिशप) ने नैपोलियन को 'आधुनिक विश्वासघाती इसकारियट' (Modern Judas Iscariot) की संज्ञा प्रदान की। सम्राट नैपोलियन तृतीय अन्य तथ्यों से भी चिन्तित था। युद्धभूमि के भयंकर

दृश्य से बहुत परेशान था। उसने देखा कि आस्ट्रिया की विजय की पूर्णता का अर्थ जीवन का बहुत बड़ा बलिदान था। प्रशा की सेना आक्रमण के लिए आगे बढ़ रही थी, जबकि आस्ट्रिया की सेना को पुनः सुसज्जित और पुनर्गठित किया जा रहा था। इन परिस्थितियों में विवश होकर, कैवोर को बिना सूचित किये, नैपोलियन तृतीय ने 4 जुलाई, 1859 को विलाफ्रान्का (Villafranca) में आस्ट्रिया के साथ सन्धि के अनुसार लोम्बार्डी पीडमोन्ट को दे दिया और वेनेशिया पूर्ववत् आस्ट्रिया के नियन्त्रण में रहा। टस्कैनी, परमा और मोडेना, मध्य इटली स्थित राज्यों के शासकों को युद्ध आरम्भ होने के समय वहाँ की जनता ने निष्कासित कर दिया था। इन शासकों को पुनः प्रतिष्ठित करने की व्यवस्था थी। इस सन्धि में पोप की अध्यक्षता में इटली संघ राज्य की स्थापना का भी प्रावधान था। सन्धि के इन प्रावधानों का ज्यूरिक की वैध सन्धि द्वारा अनुमोदन किया गया। नैपोलियन ने नाइस तथा सेवाय पर अपने दावे के ऊपर बल नहीं दिया। इटली के देशभक्तों तथा फ्रान्स के विद्रोहियों ने नैपोलियन की देशद्रोही कहकर कटु आलोचना की। पीडमोन्ट के राजा विक्टर एमान्युअल ने बाध्य होकर सन्धि के प्रावधानों को स्वीकार कर लिया परन्तु कैवोर ने इस सन्धि को अस्वीकार करते हुए अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया।

नैपोलियन तृतीय द्वारा, अनेक महत्वपूर्ण सफलताओं के उपरान्त अनायास युद्ध विराम के अनेक सैनिक एवं राजनीतिक कारण थे : (1) फ्रान्स की धन-जन की अपार क्षति हो चुकी थी और आस्ट्रिया की सेना वेनेशिया में अत्यधिक सुदृढ़ थी। इसके अतिरिक्त सेना को पुनः अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित एवं पुनर्गठित किया गया था। (2) प्रशा ने आस्ट्रिया के समर्थन में हस्तक्षेप करने की चेतावनी दी थी। फ्रान्स की निर्णायक विजय जर्मनी की सुरक्षा की दृष्टि से घातक हो सकती थी। (3) फ्रान्स में आन्तरिक स्थिति गम्भीर हो रही थी। फ्रान्स में सदैव युद्ध विरोधी कैथोलिक मतावलम्बी पीडमोन्ट के लाभ के लिए धार्मिक राज्यों को क्षति से अत्यधिक क्रुद्ध थे। (4) आस्ट्रिया की पराजय ने इटली के उत्तर-मध्य राज्यों के राष्ट्रवादियों को इतना उद्वेलित किया कि उन्होंने इन राज्यों के शासकों को निष्कासित करके पीडमोन्ट के साथ विलय की प्रबल माँग की। यह माँग नैपोलियन द्वारा स्वीकृत प्रावधानों से बहुत अधिक थी। फ्रान्स में पुनर्गठन और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी। फ्रान्स के नेतृत्व में विभाजित इटली की अपेक्षा एकीकृत इटली फ्रान्स के लिए अधिक खतरनाक हो सकता था। नैपोलियन की चिन्ता का विषय इटली की एकता की अपेक्षा इटली की स्वतन्त्रता थी। इस प्रकार नैपोलियन का अनायास युद्ध विराम का निर्णय परिस्थितियों के अनुकूल तथा न्यायोचित था।

कैवोर का त्याग-पत्र (Cavour's Resignation)—पीडमोन्ट द्वारा लोम्बार्डी की प्राप्ति इटली के एकीकरण में पहला कदम था। नैपोलियन यद्यपि अपनी योजनानुसार इटली के लिए वह सब कुछ नहीं कर सका, लेकिन लोम्बार्डी इटली को दिलवाना इटली की सेवा थी। यह विएना की सन्धि का महत्वपूर्ण उल्लंघन था और विएना की सन्धि में सम्मिलित शक्तियों का अपमान था, परन्तु विलाफ्रान्का (Villafranca) की सन्धि इटलीवासियों के लिए निर्मम निराशा थी। इस सन्धि ने राष्ट्रवादियों की आशाओं एवं आकांक्षाओं पर उस समय तुषारापात किया, जबकि निकट भविष्य में इटली की पूर्ण स्वतन्त्रता की सम्भावना थी। नैपोलियन की कृतघ्नता से कैवोर बहुत क्रुद्ध था। उसने राजा से इस विश्वासघाती सन्धि को अस्वीकार करने का आग्रह किया परन्तु राजा ने उसके आग्रह की उपेक्षा की। परिणामस्वरूप कैवोर ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया था, परन्तु इस विकट स्थिति में विक्टर एमान्युअल का निर्णय कैवोर के परामर्श की अपेक्षा अधिक तर्कसंगत तथा राष्ट्रहित में था। विक्टर का

विचार था कि भावावेश में सब कुछ खतरे में डालने की अपेक्षा जो कुछ मिलता है, उसे ले लो और भविष्य के लिए प्रयत्न करो। इसके अतिरिक्त उसने अनुभव किया कि अब इटली के भविष्य का निर्णय कूटनीतिज्ञों की अपेक्षा जनता के हाथों में पहुँच गया था। तदुपरान्त घटनाओं ने उसके धैर्य तथा सद्बुद्धि को न्यायोचित सिद्ध किया। विक्टर एमान्युअल का स्वतन्त्र निर्णय यथार्थ में इटली की अपूर्व स्मरणीय सेवा था।

पीडमोन्ट का विस्तार (Expansion of Piedmont)—विलाफ्रान्का की सन्धि इटली की स्वतन्त्रता तथा एकीकरण के लिए उतनी घातक नहीं थी जितनी प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगत होती थी। नैपोलियन तृतीय ने भी इटली की जनता के अन्तर्निहित दृढ़ संकल्प का वास्तविक मूल्यांकन नहीं किया था। सर्वविदित था कि इटली के देशभक्त इस पराजय को स्वीकार नहीं करेंगे। आस्ट्रिया द्वारा लोम्बार्डी खाली करने का समाचार मध्य इटली के धार्मिक राज्यों में जनभावनाओं के विस्फोट का संकेत था। उग्र गणतन्त्रवादी नेताओं द्वारा निर्देशित तथा सार्डीनिया सरकार की सहमति तथा सहयोग से इटली के मध्य में स्थित परमा, मोडेना और टस्कैनी राज्यों की जनता ने इन राज्यों के पूर्व शासकों के पुनर्स्थापन के विरोध में विद्रोह कर दिया। इटली के सुदूर उत्तर में स्थित रोमाग्ना (Romagna) धार्मिक राज्य की जनता ने पोप की भौतिक प्रभुसत्ता का उग्र विरोध किया। उन सब राज्यों में राष्ट्रवादियों ने अन्तरिम सरकारें स्थापित कीं तथा पीडमोन्ट के साथ विलय के लिए सर्व सम्मति से मत व्यक्त किया। नैपोलियन तृतीय ने जनमत संग्रह की अभिव्यक्ति को अस्वीकार कर दिया। नैपोलियन तृतीय के लिए जनता की अभिव्यक्त उग्र भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में इन राज्यों के पूर्व शासकों को पुनः स्थापित करना अत्यधिक कठिन हो गया। इंग्लैण्ड के मन्त्रियों पामर्स्टन तथा रसैल द्वारा निर्देशित इंग्लैण्ड की नीति इटलीवासियों की आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थी। ये मन्त्री हस्तक्षेप न करने की नीति के प्रबल समर्थक थे और घोषणा की कि इटलीवासियों को अपने विवादों तथा समस्याओं का स्वयं समाधान करने का अवसर देना चाहिए। ऐसी स्थिति में दमनकारी गतिविधियाँ असम्भव हो गयी थीं। इंग्लैण्ड के कूटनीतिक समर्थन से इटली के मध्य स्थित राज्यों में जनान्दोलन को इटली की मुक्ति तथा एकीकरण के लिए अत्यधिक सहायता मिली।

यह इंग्लैण्ड की इटलीवासियों की बहुत बड़ी सेवा थी। **लार्ड पामर्स्टन** ने कहा, "डचीज की जनता को अपने शासकों को बदलने का उतना ही अधिकार है जितना ब्रिटिश अथवा फ्रान्स अथवा बेल्जियम अथवा स्वीडेन की जनता को है। डचीज का पीडमोन्ट में विलय इटली के लिए अथाह लाभ होगा।" इन राज्यों की जनता ने सर्वसम्मति से विलय के पक्ष में मतदान किया। 2 अप्रैल, 1860 को विस्तृत राज्य की संसद का पहला अधिवेशन ट्यूरिन में हुआ। 50,00,000 जनसंख्या वाला राज्य एक वर्ष में 1,10,00,000 जनसंख्या वाला विशाल राज्य बन गया। सन् 1815 के उपरान्त यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन था। विएना काँग्रेस के अनुसार जो केवल भौगोलिक अभिव्यक्ति था, अब निर्माण की प्रक्रिया में एक राष्ट्र था। यह दो विजयी सिद्धान्तों, जिनका निरंकुश शासक कठोर विरोध करते थे, क्रान्ति का अधिकार और जनता का स्वयं के लिए अपने भाग्य का निर्धारण करने के अधिकार, की उपलब्धि थी, क्योंकि ये विलय युद्ध और जनमत संग्रह के परिणाम थे।

आस्ट्रिया किसी भी संयोजनवादी (Annexationist) आन्दोलन का विरोध कर रहा था। उसको आशंका थी कि सार्डीनिया राज्य का बहुत विस्तार हो जायेगा अथवा धार्मिक

राज्यों की शक्ति कम हो जायेगी। अस्तु सब कुछ फ्रान्स के दृष्टिकोण पर निर्भर था। नैपोलियन धर्म संकट में था। वह ज्यूरिक की सन्धि के प्रावधानों का अतिक्रमण करते हुए संयोजनवादी आन्दोलन को प्रोत्साहित करने का साहस नहीं कर सकता था, और ब्रिटिश मन्त्रियों के सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण के कारण सशस्त्र विरोध भी नहीं कर सकता था। कैवोर संकट की गम्भीरता का अनुभव करते हुए अपने स्वाभिमान को भूलकर अपने प्रधानमन्त्री के पद पर लौट आया और नैपोलियन को पुनः नाइस और सेवाय देने का प्रस्ताव रखा। सन् 1860 में ट्यूरिन की सन्धि के अन्तर्गत सार्डीनिया ने नाइस और सेवाय फ्रान्स को दे दिये (जैसे नैपोलियन ने इटली को आल्पस से एड्रियाटिक तक मुक्त कराने का आश्वासन पूर्ण कर दिया था, और सार्डीनिया ने मध्य इटली स्थित राज्यों के सार्डीनिया के साथ विलय के लिए नैपोलियन की सहमति प्राप्त कर ली थी)। मध्य इटली स्थित टस्कैनी, परमा, मोडेना और रोमाग्ना राज्यों में जनमत संग्रह हुआ और इन राज्यों ने सार्डीनिया-पीडमोन्ट के साथ विलय के पक्ष में मतदान किया। वेनेशिया के अतिरिक्त इटली का समस्त उत्तरी भाग एकीकृत हो गया था और विदेशी नियन्त्रण से मुक्त हो गया था। इटली के एकीकरण की दिशा में यह दूसरा महान् कदम था।

नाइस एवं सेवाय के समर्पण के लिए कैवोर की उग्र आलोचना की गयी। इंग्लैण्ड में भी फ्रान्स के क्षेत्राधिकार में वृद्धि के विरुद्ध आक्रोश था। गारीबाल्दी का जन्म नाइस में हुआ था, अस्तु वह कैवोर से अत्यधिक रुष्ट था। वह अपनी ही जन्मभूमि में विदेशी हो गया था। परन्तु कैवोर उच्च राजनीतिक आकांक्षाओं से प्रेरित था। यदि कैवोर ने यह सौदा नहीं किया होता, तब फ्रान्स-आस्ट्रिया के गठबन्धन द्वारा हस्तक्षेप की बहुत सम्भावना थी और मध्य इटली की जनता को प्राचीन शासन की प्रतिक्रियावादी नीतियों के कष्टप्रद परिणाम सहन करने पड़ते। इंग्लैण्ड विरोध कर सकता था परन्तु सशस्त्र हस्तक्षेप द्वारा विरोध की बहुत कम सम्भावना थी। कैवोर ने नाइस एवं सेवाय के समर्पण द्वारा अपनी भावी योजनाओं के परिप्रेक्ष्य में, इटली की स्वतन्त्रता के लिए कुछ इनाम देकर नैपोलियन तृतीय के हाथ बाँध दिये थे। यह एक उत्कृष्ट कूटनीतिज्ञ प्रयास था।

नेपल्स की विजय (Conquest of Naples)—उत्तरी इटली के राष्ट्रवादी आन्दोलन के अनुरूप इटली के दक्षिणी भाग में भी विद्रोह आरम्भ हो गया। दो सिसली (नेपल्स एवं सिसली) की जनता अपने बोर्बो वंशीय निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन से अत्यधिक त्रस्त थी। नेपल्स में सर्वत्र असन्तोष की भावना व्याप्त थी, जबकि सिसली में गुप्त समितियों का जाल बिछा हुआ था। गारीबाल्दी ने सिसली की जनता की सहायता के लिए अनुरोध पर सहायता देने का आश्वासन दिया और कहा कि सिसली की जनता को इटली तथा विक्टर एमान्युअल के नाम पर स्वयं आन्दोलन आरम्भ करना चाहिए। मैजिनी ने भी सिसलीवासियों को प्रेरित एवं उत्तेजित किया। इस प्रकार गारीबाल्दी की सहायता के आश्वासन एवं मैजिनी की प्रेरणा से प्रेरित सिसलीवादियों ने राजतन्त्र के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर दिया। गारीबाल्दी ने जेनोआ में अपनी स्वयंसेवी सेना, विख्यात 'लाल कमीज' (Red shirts) सिसली के विद्रोहियों के समर्थन में लूटमार अभियान के लिए एकत्रित की। कैवोर की इस अभियान के उद्देश्य के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी, परन्तु वह विकट स्थिति में था। पीडमोन्ट की सरकार के नेपल्स की सरकार के साथ सैद्धान्तिक दृष्टि से मधुर तथा सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध थे। पीडमोन्ट के उत्तरदायी मन्त्री के रूप में कैवोर का दायित्व था कि वह जेनोआ बन्दरगाह का आक्रमण

के लिए प्रयोग नहीं होंने दे। पड़ोसी राज्य, जिसके साथ अपनी सरकार की युद्ध की स्थिति नहीं थी, पर आक्रमण को प्रोत्साहित करना, यूरोप के सार्वजनिक कानून का गम्भीर अतिक्रमण होगा। ऐसी स्थिति में यूरोप की महान् शक्तियाँ पीडमोन्ट पर प्रतिबन्ध लगा सकती थीं और हस्तक्षेप कर सकती थीं। तकनीकी दृष्टि से गारीबाल्दी को सहायता देने का अर्थ लूटमार की गतिविधियों को स्पष्ट रूप से सहायता देना होगा। अस्तु कैवोर ने गारीबाल्दी के साथ अनधिकृत एवं स्वतन्त्र, साहसिक के रूप में व्यवहार करने तथा बाह्य रूप से कठोर तटस्थता बनाये रखने की नीति का अनुसरण किया। कैवोर ने उपेक्षा की, उसको हर सम्भव गुप्त सहायता दी तथा यूरोपीय शक्तियों द्वारा इस अभियान के प्रस्थान के समाचार के विरुद्ध अभिव्यक्त विरोध का अपूर्व कूटनीतिज्ञ कुशलता के साथ सामना किया। कैवोर भलीभाँति जानता था कि वह नैपोलियन तृतीय पर निर्भर नहीं रह सकता। अस्तु उसने राजाओं और विदेशी शक्तियों की अपेक्षा मैजिनी, गारीबाल्दी और राष्ट्रीय भावनाओं से अनुप्राणित विद्रोही प्रवृत्तियों की ओर ध्यान दिया था। यूरोप के कूटनीति के इतिहास में कैवोर ने सर्वाधिक कूटनीतिक सावधानी तथा प्रवीणता के साथ सर्वोत्कृष्ट कूटनीतिक प्रयास किया था। पर्दे के पीछे ये समस्त गतिविधियाँ हुई थीं, लेकिन इन सब का एकमात्र उद्देश्य अपने देश को लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ाना था।

अप्रैल, 1860 में विद्रोह हो गया परन्तु नेपल्स के राजा ने विद्रोह का दमन कर दिया। इसके उपरान्त भी गारीबाल्दी आगे बढ़ता गया। कैवोर विचित्र दुविधा में था। वह स्पष्ट सरकारी प्रोत्साहन नहीं दे सकता था और जनता की आकांक्षाओं की उपेक्षा भी नहीं कर सकता था। इस दुविधा के समाधान के लिए कैवोर ने दोहरी नीति का अनुसरण किया। विदेशी शक्तियों के राजदूतों के समक्ष इस विषय में पूर्ण अनभिज्ञता व्यक्त की और गुप्त रूप से युद्ध की स्थिति बनाये रखने की अनुमति दी, परन्तु विक्टर एमान्युअल ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि सार्डीनिया की सेना के अधिकारियों को विद्रोही सेना में सम्मिलित नहीं किया जायेगा तथा विद्रोहियों द्वारा अस्त्र-शस्त्र एकत्रित करने की कार्यवाही की उपेक्षा की। जेनोआ बन्दरगाह अधिकारियों ने गारीबाल्दी के अभियान दल को तट पर उतरने की मौन सहमति दी।

सहस्र का अभियान (Expedition of the Thousands)—5 मई, 1860 को इतिहास में 'सहस्र के अभियान' के नाम से विख्यात गारीबाल्दी अभियान का नेतृत्व करते हुए सिसली में मरसला पर उतरा। यह क्षेत्र व्यावहारिक रूप से ब्रिटिश नौ-सैनिक दस्ते के संरक्षण में था। इंगलैण्ड के सहृदय अर्ध-कूटनीतिक हस्तक्षेप ने अभियान को बचा लिया। यह इटली के देशभक्तों को इंगलैण्ड का महत्वपूर्ण योगदान था। गारीबाल्दी ने सिसली की सेना को कैलाटाफिमी (Calatafimi) के स्थान पर पराजित किया और युद्ध करता हुआ राजधानी पलेरमो (Palermo) पहुँचा। तीन माह की अवधि में पूरे द्वीप पर गारीबाल्दी का पूर्ण आधिपत्य हो गया और उसने स्वयं को विक्टर एमान्युअल द्वितीय के नाम पर सिसली का निरंकुश शासक घोषित किया। केवल मुट्ठी भर व्यक्तियों (थोड़े व्यक्तियों) के साथ इतनी द्रुतगति से विजय इतिहास के पृष्ठों में इससे पूर्व अज्ञात थी। गारीबाल्दी ने तत्काल सिसली के पीडमोन्ट राज्य में विलय की अनुमति देने से मना कर दिया। उसके मस्तिष्क में भावी सैनिक अभियान की अपनी योजना थी और इन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए वह अधीर था। उसको कैवोर की सावधान कूटनीतिक नीति के प्रति भी अविश्वास था। वह

अपनी सेना के साथ नेपल्स की भूमि पर पहुँचा। नेपल्स का राजा फ्रान्सिस द्वितीय गारीबाल्दी के आने पर गेयटा (Gaeta) पलायन कर गया और गारीबाल्दी ने विजेता के रूप में नेपल्स में प्रवेश किया। नेपल्स की जनता ने गारीबाल्दी का मुक्तिकर्ता के रूप में भव्य स्वागत किया। पाँच माह से कम समय में 1,10,00,000 जनसंख्या वाले विशाल राज्य पर विजय प्राप्त की थी। यह विजय बिना रक्तपात किये प्राप्त हुई थी, लेकिन राज्य में व्याप्त देशद्रोह, विश्वासघात, भ्रष्टाचार एवं विलग होने का परिणाम थी। साथ ही यह विजय आधुनिक यूरोप के इतिहास में असाधारण उपलब्धि थी।

गारीबाल्दी की रोम पर आक्रमण की योजना (Garibaldi's Plans to attack Rome)—गारीबाल्दी की उत्कृष्ट सफलताओं ने कैवोर के समक्ष अति आवश्यक तथा अत्यधिक जटिल चिन्ताजनक समस्या उत्पन्न कर दी। विजय से उत्साहित एवं गणतन्त्रवादियों द्वारा प्रोत्साहित गारीबाल्दी ने रोम पर आधिपत्य स्थापित करने का विचार किया। रोम की सुरक्षा के लिए फ्रान्स की सेना थी। अस्तु रोम विजय का अर्थ फ्रान्स के साथ युद्ध था। गारीबाल्दी स्वयं गणतन्त्रवादी था। अतः सदैव यह सम्भावना रहती थी कि उग्र गणतन्त्रवादी इस आन्दोलन को गणतान्त्रिक स्वरूप देने के लिए उसको बाध्य करेंगे। इस प्रकार की पृथकतावादी गतिविधियों का परिणाम असैनिक युद्ध होगा। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय हितों तथा उद्देश्यों का पतन निश्चित था। अतः कैवोर ने अनुभव किया कि सार्डीनिया सरकार के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों को गारीबाल्दी से मुक्त करके, दिशा निर्देश देने का समय आ गया। उसने घोषणा की, "इटली को विदेशियों, दूषित सिद्धान्तों तथा पागल व्यक्तियों से बचाना चाहिए।" राष्ट्रीय हितों एवं उद्देश्यों को किसी प्रकार संकट में नहीं डालना चाहिए। कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जो विदेशी हस्तक्षेप को उत्तेजित करे अथवा विरोधी सिद्धान्त स्थापित करे। सेवाय वंश के अन्तर्गत संवैधानिक राजतन्त्र के विरोध में गणतन्त्रवादी सिद्धान्त स्थापित नहीं करने चाहिए। अस्तु कैवोर ने साहसी कदम उठाने का निश्चय किया। उसको पूर्ण विश्वास था कि जब तक रोम का सम्मान किया जायेगा, नैपोलियन तृतीय हस्तक्षेप नहीं करेगा। इसी प्रकार के विचारों से नैपोलियन तृतीय को भी अवगत कराया। फ्रान्स का सम्राट अब स्वयं को अपने ही विदेश कार्यालय से विलग रखने का अभ्यस्त हो गया था। उसने गारीबाल्दी को रोकने के लिए विक्टर एमान्युअल के नेतृत्व में शाही सेना भेजी।

विक्टर एमान्युअल का आक्रमण—पोप की कुछ शत्रुतापूर्ण गतिविधियों का पृष्ठभूमि स्वरूप प्रयोग करते हुए विक्टर एमान्युअल द्वितीय ने धार्मिक राज्यों पर आक्रमण कर दिया, धार्मिक राज्यों की सेना को कैस्टलफिडरडो (Castelfidardo) की युद्धभूमि में 18 सितम्बर, 1860 को पराजित किया और उमब्रिया (Umbria) और मार्चज (Marches) पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। तदुपरान्त विक्टर एमान्युअल ने दक्षिण में लाल कमीज (Red shirt) के विरुद्ध नेपल्स की ओर प्रस्थान किया। कापुआ (Capua) में गारीबाल्दी का नेपल्स की सेना ने कठोर प्रतिरोध किया। अतः गारीबाल्दी आगे बढ़ने में असमर्थ रहा। इसी अवधि में, सिसली, नेपल्स, उमब्रिया तथा मार्चज में जनमत संग्रह किया गया और जनता ने सार्डीनिया-पीडमोन्ट राज्य के साथ विलय के पक्ष में मतदान किया। इस तथ्य से अवगत होते ही गारीबाल्दी ने एमान्युअल द्वितीय के समक्ष अपनी समस्त सत्ता का समर्पण कर दिया और राजा के प्रति अपनी अपूर्व निष्ठा एवं स्वामिभक्ति व्यक्त की। अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं तथा कैवोर के प्रति अविश्वास का दमन कर दिया। नेपल्स के राजमहल में विक्टर एमान्युअल को सिसली और नेपल्स के राजा के पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

गारीबाल्दी ने समस्त सम्मान तथा पुरस्कार अस्वीकार कर दिये और सेवा निवृत्त होकर अपने घर कैपरेरा द्वीप चला गया।

विक्टर एमान्युअल ने विजय अभियान पूर्ण किया। इस कार्य को इससे पूर्व गारीबाल्दी ने अकेले ही किया था। कापुआ पर एमान्युअल द्वितीय का आधिपत्य हो गया और सन् 1861 में नेपल्स के राजा फ्रान्सिस द्वितीय ने गेयटा में आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार सैनिक कार्यवाहियों का अन्त हो गया। सन् 1861 में इटली की प्रथम संसद का ट्यूरिन (Turin) में अधिवेशन हुआ। इसमें रोम एवं वेंनेशिया के अतिरिक्त इटली के समस्त भागों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया एवं विक्टर एमान्युअल को इटली का राजा घोषित किया। विक्टर एमान्युअल को "ईश्वर की कृपा और राष्ट्र की इच्छा से इटली का राज़ा" घोषित किया गया। इस प्रकार विलाफ्रान्का की अपमानजनक सन्धि के बाद दो वर्ष की अवधि में पीडमोन्ट के देशभक्त राजा के नेतृत्व में समस्त इटलीवासी राजनीतिक दृष्टि से एकता के सूत्र में बँध गये। पीडमोन्ट की कुल जनसंख्या 50,00,000 थी और एकीकृत इटली की कुल जनसंख्या 2,20,00,000 थी। मार्च, 1861 में सार्डीनिया-पीडमोन्ट की संसद इटली की संसद में परिवर्तित हो गयी।

इटली के पूर्ण एकीकरण में दो राज्यों, रोम एवं वेनेशिया का अभाव था। वेनेशिया पर आस्ट्रिया का नियन्त्रण था और रोम पर फ्रान्स की सेना की सहायता से पोप का आधिपत्य था। कुछ काल तक विक्टर एमान्युअल ने प्रतीक्षा की नीति का अनुसरण किया। सन् 1866 में प्रशा तथा आस्ट्रिया के मध्य युद्ध आरम्भ हो गया। विक्टर एमान्युअल ने प्रशा से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किये और प्रशा के समर्थन में सीधे आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दिया। कस्टोजा (Custozza) में इटली की सेना तथा लिस्सा (Lissa) में इटली की नौ-सेना पराजित हुई परन्तु सैडोआ (Sadowa) में प्रशा की सेना की महान् विजय ने इटली की क्षतिपूर्ति कर दी। प्रशा ने आस्ट्रिया के सम्राट को वेनेशिया इटली के राजा एमान्युअल को देने के लिए विवश किया।

केवल रोम पर ही विजय प्राप्त करना शेष रह गया था। सन् 1867 में गारीबाल्दी ने रोम पर आधिपत्य स्थापित करने का असफल प्रयास किया, परन्तु मेनटोन के स्थान पर वह पराजित हुआ। इस आघात के उपरान्त सन् 1870 में फ्रान्स और प्रशा के मध्य युद्ध ने इटलीवासियों को अपनी एकीकरण की प्रक्रिया पूर्ण करने तथा स्वयं को सुदृढ़ करने का अवसर प्रदान किया। सेडन के युद्ध के समय नैपोलियन तृतीय ने स्वयं को अत्यधिक निराशाजनक स्थिति में पाया। नैपोलियन तृतीय ने रोम से अपनी सेना का प्रशा के विरुद्ध प्रयोग किया। पोप पियस नवम् के पास भौतिक शासन के लिए उसके व्यक्तिगत अंगरक्षक तथा कुछ विदेशी स्वयं सेवकों की शक्ति ही शेष रह गयी। इस राजनीतिक विकास से प्रोत्साहित होकर विक्टर एमान्युअल ने सेना को रोम पर आक्रमण करने तथा रोम पर पूर्ण नियन्त्रण करने का आदेश दिया। जुलाई, 1871 में इटली के राजा विक्टर एमान्युअल ने गौरव के साथ रोम में प्रवेश किया। बारह शताब्दियों से अधिक समय से धार्मिक राज्य की भौतिक शक्तियों का केन्द्र रोम अब एकीकृत इटली की राजधानी बन गया।

रोम में नवीन इटली की संसद के सत्र के प्रारम्भ के साथ नवम्बर, 1871 में रिसऔरगीमेन्टो (Risorgimento) अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। यह संस्था 50 वर्ष पुरानी थी। इसने अनेक शौर्यपूर्ण आत्म-बलिदानों तथा असीमित उत्साह को आकर्षित किया

था। आंशिक रूप से यह आश्चर्यजनक दृढ़ता तथा निर्भीक साहस के परिणामस्वरूप ही विजयी हुई थी, परन्तु इसने मैकियावली के प्रतिपादित शक्ति और धोखा के समन्वित स्वरूप पर आधारित युद्ध और छल के द्वारा ही विजय प्राप्त की। इसकी विजय कटु एवं मधुर दोनों थी और 50 वर्ष उपरान्त मुसोलिनी का फासिज्म इसके प्रतिशोध का व्यापक स्वरूप था।

रिसऔरगीमेन्टो (Risorgimento)—तत्कालीन परिस्थितियों के विरुद्ध इटली में अनेक विद्रोह हुए। इन विद्रोहों में सहस्रों व्यक्तियों को कारावास का दण्ड दिया गया अथवा निष्कासित किया गया। उन्होंने गहन विचारों तथा भावनाओं को व्यापक रूप से इटली के इतिहास में उद्वेलित किया। ये विचार तथा भावनाएँ इतने महत्वपूर्ण थे कि इनको रिसऔरगीमेन्टो की संज्ञा प्रदान की गयी। इसका अर्थ पुनर्जीवन अथवा पुनरुत्थान था। यह आन्दोलन प्रारम्भ में नैतिक था, स्वतन्त्र एवं एकीकृत इटली के आदर्श पर आधारित था। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन से शक्ति मिली, और इसने इटलीवासियों को उनकी अतीत में महानता का स्मरण कराया। यह देशभक्ति एवं राष्ट्रीय भावनाओं से अनुप्राणित था। इसका मुख्य उद्देश्य आस्ट्रिया के आधिपत्य से मुक्त होना तथा इटली को मुक्त कराना था। यह उदार एवं लोकतान्त्रिक था। इसकी प्रमुख माँगें संसदीय सरकार तथा गणतन्त्र की स्थापना, प्रेस की स्वतन्त्रता तथा चर्च की शक्तियों में कमी करना था। इसने मध्यम वर्गों के आर्थिक विकास के लिए उसकी आकांक्षाओं को प्रस्तुत किया।

जोसेफ मैजिनी और इटली का एकीकरण (Joseph Mazzini and Unification of Italy)

इटली के एकीकरण में जोसेफ मैजिनी (Joseph Mazzini), काउन्ट कैवोर तथा गारीबाल्दी तीन महान् विभूतियों ने सर्वाधिक योगदान दिया। मैजिनी स्वयं में सिद्धान्त तथा विचारधारा था। कैवोर रचनात्मक राजनीतिज्ञ था तथा गारीबाल्दी स्वच्छन्दतावादी नायक एवं वीर था। हेजन ने विचार व्यक्त किया कि "इटलीवासियों की गहनतम आकांक्षाओं को मैजिनी के व्यक्तित्व में स्पष्ट, साहसी और पूर्णतया रोमांचक आवाज मिली। मैजिनी इटली के रिसऔरगीमेन्टो अथवा पुनरुत्थान की आध्यात्मिक शक्ति था। राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में रिसऔरगीमेन्टो कहा जाता था। राज्य का पैगम्बर, जो अभी नहीं था लेकिन होने वाला था, युवावस्था से ही वह ईश्वर द्वारा असाधारण तीव्रता के साथ पवित्र लक्ष्य. आरोपित मानता था।" प्रो. एल. मुकर्जी कहते हैं, "मैजिनी इटली की एकता का पैगम्बर और देवदूत था। गारीबाल्दी उसकी तलवार और कैवोर उसका राजनीतिज्ञ था। यद्यपि वह एक अव्यावहारिक आदर्शवादी था, यह मैजिनी ही था जिसने इटलीवासियों के उत्साह को उद्वेलित करने और राष्ट्रवाद की पवित्र लौ को जलाये रखने के लिए किसी अन्य की अपेक्षा अधिक कार्य किया। उसने जनता की कल्पना को प्रदीप्त किया, लक्ष्य के लिए एक आदर्श दिया, और इटली के आन्दोलन को मजबूत नैतिक उत्साह के साथ प्रेरित किया। यह वह था जिसने भूमि तैयार की थी, जिस पर अन्यों ने पूर्वापेक्षा अधिक सफलता के साथ काम किया।"

गुसैप मैजिनी (Giuseppe Mazzini) का जन्म सन् 1805 में एक चिकित्सक परिवार में जेनोआ में हुआ था तथा उसका पालन पोषण राष्ट्रवादी एवं लोकतान्त्रिक आन्दोलन के वातावरण में हुआ था। सन् 1815 में जेनोआ पर पीडमोन्ट का आधिपत्य हो गया। मैजिनी उस समय केवल 10 वर्ष का था। सन् 1820 के दशक में मैजिनी ने इटली, फ्रान्स, ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनी के स्वच्छन्दतावादी लेखकों की कृतियों का अध्ययन किया। दान्ते, शैक्सपियर,

बायस, गोथे, स्क्लिर, स्काट, ह्यूगो आदि उसके प्रिय लेखक थे। वह अपने देश की पीड़ाओं से सर्वाधिक द्रवित था। उसने अपनी भावनाओं तथा प्रवृत्तियों को व्यक्त करते हुए लिखा, "अपने चारों ओर विद्यार्थियों के कोलाहलपूर्ण उपद्रवी जीवन के मध्य मैं उदार और व्यस्त था और अनायास वृद्ध प्रतीत होता था। मैंने मूर्खतापूर्वक अपने देश के लिए स्वयं को शोकाकुल प्रदर्शित करने के उद्देश्य से सदैव काले वस्त्र पहनने का निश्चय किया था।" सन् 1815 में जेनोआ पर पीडमोन्ट के नियन्त्रण का जेनोआ ने अपनी गणतान्त्रिक स्वतन्त्रता के हनन के लिए विरोध किया था। जब सन् 1820-21 में कारबोनरी उपद्रवों का निर्ममतापूर्वक दमन कर दिया गया था, जेनोआ नगर पीडमोन्ट के पराजित उदारवादियों का शरण स्थल बन गया था। उनकी दयनीय स्थिति का मैजिनी के मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव था। प्रारम्भ से ही मैजिनी क्रान्तिकारी आन्दोलनों के प्रति स्वच्छन्दतावादी उत्साह से अनुप्राणित था। उसका जीवन स्वच्छन्दतावाद तथा क्रान्ति के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों को अभिव्यक्त करता है।

साहित्यिक जीवन के प्रति मैजिनी में विशेष अभिरुचि थी। उसने लिखा है, "मेरे मानसिक नेत्रों के समक्ष सहस्त्रों ऐतिहासिक नाटकों तथा प्रणय कथाओं के दृश्य विचरण करते रहते थे।" परन्तु अपने देश के लिए संघर्ष करने के विचार से साहित्यिक विचार त्याग दिये। उसने इसे "पहला महान् त्याग" कहा। अपने पत्रकारितावादी लेखों में उदारवाद विरोधी दृष्टिगत होता है। केवल उत्साह के आवेश में वह कारबोनरी का सदस्य बन गया। उसने इसकी पद्धतियों का कभी भी अनुमोदन नहीं किया वरन् वह एक क्रान्तिकारी संगठन था। सन् 1830 में मैजिनी को उसकी विद्रोही गतिविधियों के आरोप में सेवोना के किले में कारावास का दण्ड दिया गया। यहाँ वह आकाश और समुद्र प्रकृति की दो सर्वाधिक सुन्दर वस्तुएँ, आल्पस के अतिरिक्त, देख सकता था। 6 माह बाद उसको मुक्त कर दिया गया लेकिन देश छोड़ने के लिए विवश कर दिया गया। उसने जीवन के 40 वर्ष फ्रान्स, स्विट्जरलैण्ड और मुख्य रूप से इंग्लैण्ड में जो उसका दूसरा घर बन गया था, कठोर निर्वासित जीवन व्यतीत किया।

कारबोनरी के सदस्य के रूप में अपने अनुभवों के आधार पर उसने अपने स्वयं के नये आन्दोलन का विचार बनाया। सन् 1831 में 'युवा इटली' (Young Italy) नाम के नये संगठन का गठन किया। 40 वर्ष से कम आयु के बुद्धिजीवी ही इसके सदस्य थे। गणतन्त्रवादी तथा राष्ट्रवादी विचारों का व्यापक प्रचार करना इस संस्था का उद्देश्य था और जनता के लिए एक आदर्श वाक्य था। प्रत्येक सदस्य को शपथ लेनी पड़ती थी, "मुक्त, स्वतन्त्र तथा गणतान्त्रिक इटली के महान् कार्य के लिए मैं स्वयं को पूर्णतया तथा सदैव के लिए समर्पित करता हूँ।" शीघ्र ही यह संस्था कारबोनरी की अपेक्षा राष्ट्रवादी क्रान्ति का केन्द्र बन गयी। मैजिनी ने विश्वास व्यक्त किया कि इटली के नवयुवक, यदि उनको अपने उद्देश्य में विश्वास है, इटली के एकीकरण के स्वप्न को मूर्तरूप दे सकते हैं। युवा शक्ति के सन्दर्भ में वह लिखता है, "विद्रोही जनसमूह के नेतृत्व के लिए नवयुवक को नियुक्त करो। तुम उन युवा हृदयों में अन्तर्निहित शक्ति के रहस्य को अथवा युवा के स्वर के जनसमुदाय पर चमत्कारिक प्रभाव को तुम नहीं जानते। नवयुवकों में तुम नये धर्म के अनेक दूत पाओगे।" मैजिनी का विश्वास था कि "युवा इटली" को केवल षड्यन्त्रकारियों का संगठन नहीं होना चाहिए। इसका मुख्य उद्देश्य, इटलीवासियों में आत्म-बलिदान तथा देश के लिए मरने की पवित्र भावना को जाग्रत करना था। इसका पीडमोन्ट से समस्त इटली में व्यापक प्रचार और

प्रसार हुआ। नवयुवकों की ये समितियाँ, शपथ से आबद्ध राष्ट्रीय गणतन्त्र की उपलब्धि के लिए समर्पित, अपने निष्कासित संस्थापक के ओजस्वी भाषणों से परिपूर्ण, पवित्र इटली के महान् उद्देश्य के लिए शहीदों के प्रति श्रद्धा भाव से सज्जित थीं। मैजिनी ने अपने जीवन का अधिकांश समय इंग्लैण्ड अथवा फ्रान्स में निर्वासित के रूप में व्यतीत किया था। मैजिनी ने देशभक्तों से इटली की एकता तथा स्वतन्त्रता के लिए अनुरोध किया। उसने देशभक्तों को "अपनी महानता तथा अधोगति की भावना का स्मरण कराया और लज्जारुणिमा, जो इटलीवासियों के नेत्रों में दृष्टिगत होती है, जब वह दूसरे देशों के नागरिकों के समक्ष खड़ा होता है, वह जानता है कि उसकी कोई नागरिकता नहीं है, कोई देश नहीं है, कोई राष्ट्रीय ध्वज नहीं है" की ओर ध्यान आकर्षित किया। ईश्वर, जनता और इटली समाज की प्रबल माँग थी। शिक्षा, साहित्यिक प्रचार और यदि आवश्यक हो तो विद्रोह इसकी मुख्य पद्धतियाँ थीं। इस विचार को जनभावना में परिवर्तित करना ही इसकी उपलब्धि थी।

मैजिनी ने विचार व्यक्त किया कि उदारवाद और राष्ट्रवादी एक-दूसरे के पूरक थे, अस्तु दोनों का समन्वय किया जा सकता था। अस्तु व्यक्ति एवं राष्ट्रीय राज्य दोनों ही पवित्र थे। वह इटली की स्वतन्त्रता तथा एकता को एक धर्म मानता था। वह एक निर्भीक एवं साहसी नेता था। लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के साथ उदात्त धार्मिक चेतना के सक्रिय कार्यान्वयन का आह्वान किया। वह मानव विकास एवं प्रगति के लिए इसको सर्वोत्कृष्ट साधन मानता था। धर्म समाज को संगठित रखता है जिसमें व्यक्ति दो स्वतन्त्रताओं व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय समुदाय की स्वतन्त्रता का उपभोग करेगा। मैजिनी ने जनता को उपदेश देते हुए कहा कि समस्त व्यक्तियों को, जो राष्ट्रीयता चाहते हैं, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति का पवित्र अधिकार है। यह ईश्वर का उद्देश्य एवं प्रबल इच्छा है। उसका विचार था कि जब जनता को पूर्ण स्वतन्त्रता है और उनकी इच्छाओं पर कोई बन्धन नहीं है, वे परस्पर सौहार्द्रपूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे। प्रत्येक व्यक्ति मानवता के व्यापक विकास और प्रगति के लिए विशिष्ट योगदान करेगा। इस प्रकार मैजिनी केवल इटली राष्ट्र की उत्कृष्ट नियति में विश्वास नहीं करता था वरन्, उसने स्लाव जाति के व्यक्तियों, हंगरीवासियों, पोल जाति के व्यक्तियों और प्रत्येक जन समूह जिसने राष्ट्रीय पहचान बनाने की इच्छा व्यक्त की, को राष्ट्रीय हितों तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने का उपदेश दिया।

स्वयं के विचारों एवं भावनाओं से प्रेरित मैजिनी ने गारीबाल्दी जैसे उदात्त देशभक्ति की भावनाओं से अनुप्राणित उत्तेजित जन-समूह को अपना प्रबल समर्थक बना लिया। सन् 1834 तक मैजिनी के संगठन "युवा इटली" के 60,000 सदस्य बन गये। इटली के इन नवयुवकों ने इटली की जनता में स्वतन्त्रता तथा एकता के विचारों के व्यापक प्रचार तथा प्रसार में अत्यधिक कार्य किया। नवयुवकों को इस आन्दोलन ने (रिसऔरगीमेन्टो) सर्वाधिक प्रोत्साहित किया। नाटककारों, कवियों तथा उपन्यासकारों के दल ने अपनी कृतियों में केवल इन विचारों एवं भावनाओं को ही अभिव्यक्त नहीं किया वरन् इटली के साहित्यिक पुनरुत्थान में अपूर्व योगदान दिया और इटली के शिक्षित वर्ग में उत्कट देशभक्ति की भावनाओं का व्यापक प्रचार किया।

व्यावहारिक विषयों के सम्बन्ध में मैजिनी का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट था। उसने विचार व्यक्त किया कि इटली प्रायद्वीप से सर्वप्रथम आस्ट्रिया को निष्कासित करना चाहिए। इसके अभाव में इटली का एकीकरण कभी सम्भव नहीं होगा। इस कार्य को इटलीवासियों को बिना विदेशी सहायता के स्वयं करना चाहिए। यदि इटलीवासी एकता के सूत्र में बँधे

होंगे और अपेक्षित उत्साह, निर्भीकता तथा साहस होगा, इस कार्य को निश्चित रूप से किया जा सकता था। आत्मनिर्भरता उसका आदर्श वाक्य था। विदेशियों के निष्कासन से आस्ट्रिया द्वारा समर्थित छोटे राज्यों की दुर्बल सरकारों का स्वतः ही पतन हो जायेगा। इस प्रकार इटली में गणतन्त्र की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त होगा।

उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि सन् 1833 में मैजिनी को पीडमोन्ट की सेना और नौ-सेना को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करने के असफल प्रयास के आरोप में अनुपस्थिति में मृत्युदण्ड दिया गया था। सन् 1849 में मैजिनी रोम के दुर्भाग्यपूर्ण गणतान्त्रिक शासन का एक महत्वपूर्ण सदस्य था। कस्टोजा तथा नोवरा स्थानों पर पीडमोन्ट शासक चार्ल्स एल्बर्ट की पराजयों ने उसे आस्ट्रिया के साथ सन्धि तथा लोम्बार्डी पर आस्ट्रिया के पुनः नियन्त्रण को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था। मैजिनी ने कहा, "चार्ल्स एल्बर्ट निर्बल था और पोप पियस नवम् अस्थिर सिद्ध हुआ। राजाओं द्वारा स्वतन्त्रता युद्ध समाप्त किया जा चुका था। अब जनता द्वारा स्वतन्त्रता संघर्ष आरम्भ करना शेष था।" इटली की एकता और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए इस आघात ने इटली के उग्र समर्थकों को अत्यधिक संकटापन्न कार्यों को करने के लिए उत्तेजित किया। उग्र गणतन्त्रवादियों का फ्लोरेस, नेपल्स, टस्कैनी तथा सिसली पर प्रभुत्व हो गया। पोप पियस नवम् पलायन कर गया। इसी समय मैजिनी के नेतृत्व में गणतन्त्र की घोषणा की गयी। इसके अतिरिक्त धार्मिक राज्यों में पोप की भौतिक सत्ता को समाप्त करने की भी घोषणा की गयी। रोम और टस्कैनी के गणतन्त्रों ने संविधान सभा के निर्वाचन के लिए एकीकृत होने का निश्चय किया। इस संविधान सभा को समस्त इटली की सरकार के गठन के लिए प्रयत्न करना चाहिए। कुछ ही समय में गणतन्त्रवादियों का पतन हो गया। फ्रान्स, आस्ट्रिया, स्पेन और नेपल्स की सेनाओं ने रोम पर आक्रमण कर दिया। प्रथम युद्ध में गारीबाल्दी विजयी हुआ। तदुपरान्त वह पराजित हो गया और टस्कैनी पलायन कर गया। गणतन्त्रवादियों के अन्तिम राज्य वेनिस पर फ्रान्स की सेना का नियन्त्रण हो गया। इटली को गणतान्त्रिक समाधान की असफलता ने संवैधानिक राजतन्त्र में आस्था को पुनर्जीवित किया। तत्कालीन परिस्थितियों में यही एक स्वीकार्य समाधान था। मैजिनी के भ्रातृत्व भाव से अनुप्राणित क्रान्तियों के स्वप्न ध्वस्त हो गये और विक्षिप्त, निराश, कुंठाग्रस्त एवं शक्तिहीन मैजिनी लन्दन पलायन कर गया।

विद्रोह के व्यावहारिक नेता के रूप में मैजिनी असफल सिद्ध हुआ। क्रान्तिकारी साहित्य के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के द्वारा इटली को राष्ट्रवादी दिशा देने में मैजिनी सफल हुआ। सन् 1860 के उपरान्त उसके विचारों एवं आदर्शों ने इटलीवासियों में नवीन चेतना, शक्ति और स्फूर्ति का संचार किया। गारीबाल्दी ने अपने सहस्त्र अभियान और जनसमर्थन द्वारा जो कुछ प्राप्त किया, मूलरूप से मैजिनी के समर्थकों से प्रेरित था।

एक समय था, जब समस्त बाधाएँ अलंघ्य प्रतीत होती थीं, लेकिन जब कुछ ही व्यक्ति एकता का स्वप्न देखते थे। मैजिनी ने घोषणा की कि यह एक व्यावहारिक आदर्श था, जो स्पष्ट रूप से असम्भव प्रतीत होने वाला सहज ही सम्भव हो सकता था, यदि इटलीवासी अपनी शक्ति प्रदर्शित करने का साहस करेंगे। उसका इटली के इतिहास में महान् महत्व है कि उसने अपना प्रबल विश्वास लाखों व्यक्तियों को प्रदान करने में सफलता प्राप्त की। मैजिनी एक गणतान्त्रिक था और वह एकीकरण के बाद अपने देश को गणतन्त्र बनाना चाहता था। वह कहता था, "कभी भी इटली और समस्त इटली के अतिरिक्त किसी अन्य नाम पर मत उठो।"

यद्यपि इटली वैसा नहीं बनाया गया जैसा वह बनाना चाहता था, फिर भी वह इटली के महान् निर्माताओं में एक है। वह और उसका समाज, जो उसने स्थापित किया, के विचारों के क्षेत्र में परिवर्तन करने वाली उत्तेजक शक्ति थे। उनके चारों ओर देश के लिए देशभक्ति की भावना का विकास हुआ जो आज तक कल्पना में विद्यमान था।

गारीबाल्दी (सन् 1807-1882) (Garibaldi)

गारीबाल्दी का जन्म सन् 1807 में इटली के नाइस नगर में हुआ था। वह इटली के राजनीतिक मंच पर उन्नीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक विचित्र, आश्चर्यजनक एवं भयप्रद चरित्र के रूप में बार-बार प्रकट हुआ। उसके पिता ने अपने अल्प साधनों के उपरान्त भी उच्च शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया परन्तु उसने तत्कालीन उच्च औपचारिक शिक्षा ग्रहण नहीं की। स्वभाव से वह स्वतन्त्रता प्रेमी, स्वच्छन्दतावादी एवं कवि हृदय था। उसने विशद् तथा व्यापक दृष्टिकोण और गम्भीर तथा प्रभाव डालने के लिए पर्याप्त अध्ययन नहीं किया था। उसने 10 वर्ष तक तटीय व्यापार में काम करके भू-मध्य सागर का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। तीन बार वह समुद्री डाकुओं द्वारा पकड़ा गया। इसी अवधि में उसने इटली के निर्वासित देशभक्तों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किये। इन देशभक्तों ने इटली की स्वतन्त्रता के लिए उसमें अपूर्व उत्साह तथा अदम्य साहस का संचार किया। यह प्रेरणा ही उसके जीवन की सर्वोपरि प्रेरक शक्ति थी। वह इटली में उसी प्रकार आस्था रखता था जैसे सन्त ईश्वर में आस्था रखते हैं।

गारीबाल्दी का मैजिनी के साथ परिचय हुआ और वह मैजिनी के 'युवा इटली', संस्था का सक्रिय सदस्य बन गया। उसने मैजिनी के सम्बन्ध में अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा है, "जब मैं एक नवयुवक था, केवल सुख (कल्याण) के प्रति ही आकांक्षाएँ थीं। मैं एक ऐसे व्यक्ति की खोज में था, जो मेरे युवा वर्षों में पथ-प्रदर्शक तथा परामर्शदाता के रूप में कार्य कर सके। मैं एक ऐसे पथ-प्रदर्शक की खोज में था, जो तृषित था और जल स्रोत की खोज करता है। मुझे यह व्यक्ति मिल गया। जब चारों ओर सब सोते थे, वह देखता रहता था। उसने अकेले ही मशाल को सामग्री दी और जलाये रखा।" सन् 1833 में मैजिनी के अनेक षड्यन्त्रों में एक सक्रिय सदस्य था। इसमें उसका कार्य सार्डीनिया की नौ-सेना के नाविकों को प्रलोभन देकर उनकी सहायता और सहयोग प्राप्त करना था। यह षड्यन्त्र असफल हो गया और गारीबाल्दी को पलायन करना पड़ा। सार्डीनिया सरकार को पहली बार उसके विषय में सूचना मिली और विद्रोह के आरोप में, उसकी अनुपस्थिति में, मृत्यु दण्ड दिया गया।

गारीबाल्दी ने सन् 1836 से 1845 तक का समय निरुद्देश्य विचरण करते हुए दक्षिण अमेरिका में व्यतीत किया और स्थानीय युद्धों में सक्रिय भाग लेकर साहस, शौर्य तथा पराक्रम का परिचय दिया। गारीबाल्दी को दक्षिण अमेरिका में साहसिक कार्यों के माध्यम से छापामार युद्ध पद्धति का अनुभव प्राप्त हुआ जो इटली में राष्ट्रीय युद्धों के समय बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। इटली लौटकर गारीबाल्दी ने अपने 3,000 निजी अनुयायियों की स्वयंसेवी सेना (जो लाल कमीज के नाम से विख्यात है) का सन् 1848 में सार्डीनिया के पक्ष में आस्ट्रिया के विरुद्ध नेतृत्व किया। कस्टोजा के युद्ध में पराजय के बाद मैजिनी ने फ्रान्स की सेना के विरुद्ध रोम गणराज्य की रक्षा के लिए गारीबाल्दी का आह्वान किया। वीरता एवं शौर्य के साथ रक्षा करते हुए, अन्ततोगत्वा गारीबाल्दी पीछे हट गया। इस युद्ध में उसके अधिकांश समर्थक

वीरगति को प्राप्त हुए। उसकी पत्नी का देहावसान हो चुका था। गारीबाल्दी ने पहले टस्कैनी पलायन किया और वहाँ से वह अमेरिका चला गया।

गारीबाल्दी ने आरम्भ में न्यूयार्क में मोमबत्ती निर्माता के रूप में कार्य किया। तदुपरान्त उसने एक व्यापारिक जलयान पर कप्तान के रूप में कार्य किया। इस अवधि में गारीबाल्दी ने कुछ धन एकत्रित कर लिया। सन् 1854 में वह पुनः इटली लौटकर आया और राष्ट्रीय एकता तथा स्वतन्त्रता के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा, अपने संचित धन से उसने सार्डीनिया के निकट कैपरेरा द्वीप खरीद लिया और वहीं उसने अपने आवासगृह का निर्माण करवाया।

सन् 1856 में गारीबाल्दी कैवोर से मिला और वह सार्डीनिया के राजतन्त्र का प्रबल समर्थक बन गया, यद्यपि हृदय से वह गणतन्त्रवादी सिद्धान्तों एवं विचारों का समर्थक था। उसने अत्यधिक दबाव के अन्तर्गत विक्टर एमान्युअल द्वितीय की अन्त तक निष्ठापूर्वक सेवा की। गारीबाल्दी तथा विक्टर एमान्युअल द्वितीय के मध्य परस्पर सम्बन्ध उस समय बहुत लाभदायक सिद्ध हुए, जब गारीबाल्दी और कैवोर के मध्य परस्पर सम्बन्ध अत्यधिक कटु तथा शत्रुतापूर्ण हो गये थे। गारीबाल्दी द्वारा राजतन्त्र के समर्थन के निर्णय के परिणामस्वरूप अनेक देशभक्तों ने सन् 1859 में फ्रान्स के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को स्वीकार कर लिया। यह अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण तथ्य था। गारीबाल्दी ने सफलतापूर्वक सार्डीनिया की सेना का नेतृत्व किया परन्तु विलाफ्रान्का की सन्धि ने सफलता के परिणामों को कम कर दिया।

इसके उपरान्त सन् 1859 की ग्रीष्म ऋतु में सिसली के षड्यन्त्रकारियों ने गारीबाल्दी से सहायता का अनुरोध किया। उसने इस निमन्त्रण को इटली तथा विक्टर एमान्युअल के नाम पर स्वीकार किया। इस अवसर पर कैवोर ने चतुर कूटनीतिक खेल खेला। गारीबाल्दी की सहायता करते समय कैवोर ने विचार किया कि विद्रोहों की भी अपनी उपयोगिता हो सकती है। सन् 1860 में जब विद्रोह आरम्भ हो गये, गारीबाल्दी ने कैवोर एवं राजा विक्टर एमान्युअल से अधिकृत तथा यथोचित सहायता देने का अनुरोध किया। कैवोर दुविधा की स्थिति में था। गारीबाल्दी जनता में सर्वाधिक लोकप्रिय था। बाह्य रूप से कैवोर ने यूरोपीय शक्तियों के राजदूतों के समक्ष इस घटना की अनभिज्ञता का प्रदर्शन किया परन्तु गारीबाल्दी को गुप्त रूप से अस्त्र-शस्त्र एकत्रित करने तथा स्वयं सेवक संगठित करने की अनुमति दे दी। सार्डीनिया की नौ-सेना के एडमिरल को गुप्त रूप से गारीबाल्दी के जलयानों की रक्षा करने का निर्देश दिया।

मई, 1860 में गारीबाल्दी सिसली की भूमि पर उतरा और ब्रिटिश नौ-सेना के छोटे दस्ते (Squadron) ने सुरक्षा प्रदान की। वह केवल 100 व्यक्तियों की सेना के साथ स्वयं राजधानी पलेरमों की ओर बढ़ा, जबकि शत्रु सेना की संख्या 20,000 थी। दोनों की सैन्य शक्ति में अत्यधिक विषमता के उपरान्त भी गारीबाल्दी अपनी सैन्य कुशलता, बुद्धिचातुर्य तथा शौर्य से विजयी हुआ। शीघ्र ही गारीबाल्दी ने पलेरमों में प्रवेश किया और स्वयं को सिसली का अधिनायक घोषित कर दिया। गारीबाल्दी की उत्कृष्ट सफलता ने कैवोर के लिए समस्या उत्पन्न कर दी। यह निश्चित था कि गारीबाल्दी मुख्य भूमि में प्रवेश करेगा। प्रत्येक विजय के साथ गारीबाल्दी पूर्वापेक्षा अधिक स्वतन्त्र तथा अधीर हो रहा था। उसमें कैवोर तथा उसकी सावधान एवं सतर्क पद्धतियों के प्रति अविश्वास की भावना में वृद्धि हो रही थी। मैजिनी भी इटली में था। धार्मिक राज्यों पर आक्रमण करने की उत्कट आकांक्षा से प्रेरित

होकर स्वयं सेवी सेना में निरन्तर वृद्धि की जा रही थी। कैवोर की हार्दिक इच्छा थी कि गारीबाल्दी, इटली राज्य के हितों तथा उद्देश्यों के लिए निष्ठापूर्वक कार्य करे परन्तु उसको रोम पर आक्रमण करके यूरोपीय शक्तियों के हस्तक्षेप अथवा शत्रुता को आमन्त्रित नहीं करना चाहिए।

कैवोर, गारीबाल्दी को सिसली राज्य में ही ठहरने के लिए बाध्य नहीं कर सका। परिणामस्वरूप कैवोर ने स्वच्छन्दतावादी शूरवीर की महत्वाकांक्षाओं का प्रतिरोध करने के लिए समुचित उपाय किये। कैवोर के प्रतिनिधियों ने राजतान्त्रिक एकता के पक्ष में नेपल्स राज्य में षड्यन्त्र की रचना की और सार्डीनिया की नौ-सेना के एडमिरल को शत्रु की नौ-सेना पर विजय प्राप्त करने का आदेश दिया गया, परन्तु गारीबाल्दी अपने विजय अभियान में नहीं रुका और उसने इटली की मुख्य भूमि में प्रवेश किया। फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन तृतीय ने इंग्लैण्ड से गारीबाल्दी को रोकने के लिए अपनी नौ-सेना का प्रयोग करने का आग्रह किया परन्तु ब्रिटेन ने हस्तक्षेप न करने की नीति के आधार पर नैपोलियन तृतीय के आग्रह को अस्वीकार कर दिया। गारीबाल्दी ने नेपल्स की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया और निरन्तर प्रगति महान् विजय अभियान बन गयी। नेपल्स की जनता ने द्वितीय ईसामसीह के रूप में उसका भव्य स्वागत किया। सर्वाधिक आश्चर्यजनक यह था कि उसने अपनी सेना के आगे जाते हुए अकेले ही गाड़ी से नेपल्स की राजधानी में प्रवेश किया था। उसकी घोड़ा गाड़ी नेपल्स नगर के मध्य से होकर निकल गयी और नेपल्स के बन्दूकें भरे हुए सैनिक देखते रहे। गारीबाल्दी खड़ा हुआ, अपने शस्त्रों को रख दिया तथा सीधे उनकी मुखाकृति देखता रहा। कुछ ने उसका सैनिक अभिवादन किया परन्तु किसी ने गोली चलाने का साहस नहीं किया। इस प्रकार गारीबाल्दी ने बिना एक भी गोली चलाये नेपल्स पर नियन्त्रण कर लिया।

कैवोर के अतिरिक्त फ्रान्स को भी चिन्ता हो गयी। क्रान्तिकारी विचारों, सिद्धान्तों, आदर्शों तथा भावनाओं का धार्मिक राज्यों में भी प्रचार और प्रसार आरम्भ हो गया था। अब कैवोर ने हस्तक्षेप करने का निश्चय किया। उसने विचार व्यक्त किया, "इटली को विदेशियों, दूषित सिद्धान्तों तथा पागल व्यक्तियों से निश्चित रूप से बचाना चाहिए।" नैपोलियन को वस्तु-स्थिति से अवगत कराने के लिए कैवोर ने अपने प्रतिनिधि भेजे। सम्राट नैपोलियन तृतीय ने आशानुकूल टिप्पणी की "इसे शीघ्रता से करो"। कैवोर ने इससे अधिक कुछ भी नहीं पूछा। आक्रमण करने का समुचित कारण मिलते ही, कैवोर ने धार्मिक राज्यों पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। अब गारीबाल्दी और राजतन्त्रीय सेना के मध्य दौड़ आरम्भ हो गयी। इसी समय सिसली और नेपल्स में जनमत संग्रह किया गया और जनता ने सार्डीनिया के साथ विलय के पक्ष में मतदान किया। दुर्भाग्य से गारीबाल्दी गेयटा और कापुआ के दुर्गों में रोक दिया गया। राजा विक्टर एमान्युअल द्वितीय ने सेना के साथ स्वयं रोम में प्रवेश किया। अक्टूबर में कैवोर ने कूटनीतिक दृष्टि से गारीबाल्दी को पराजित किया, परन्तु विक्टर एमान्युअल के प्रति निष्ठावान गारीबाल्दी ने राजा के समक्ष अपनी सेना के साथ पूर्ण सत्ता समर्पित कर दी। 9 नवम्बर, 1860 को नेपल्स में आयोजित एक भव्य समारोह में विक्टर एमान्युअल को सिसली और नेपल्स का राजा घोषित किया गया।

दूसरे दिन गारीबाल्दी लूट के माल के रूप में अनाज के बीजों की एक बोरी अपने खेतों के लिए लेकर अपने निवास स्थान कैपरेरा लौट गया। अपने द्वीप में उसको राजनीतिक जगत तथा उसकी दूषित कूटनीतिक षड्यन्त्रों की अपेक्षा अधिक मानसिक शान्ति मिली।

भावी दो दशक में अनेक बार राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के सम्बन्ध में राजनीतिक मंच पर प्रगट हुआ। आस्ट्रिया के साथ युद्ध के समय पूर्ण सहायता दी तथा सन् 1870 में फ्रान्स की सेवा में एक स्वयंसेवक के रूप में कार्य किया।

गारीबाल्दी ने इतिहास को एक युग के रूप में तथा राजनीति को रोमांचकारी घटनाओं के रूप में परिवर्तित कर दिया। सन् 1880 तक का समय गारीबाल्दी ने अपनी गायों को उनके अलग-अलग नाम से बुलाते हुए तथा बकरियों को चट्टानों तथा पथरीली भूमि में चराते हुए व्यतीत कर दिया। इटली के एकीकरण में गारीबाल्दी की भूमिका के सन्दर्भ में स्मरणीय है, कि जब कैवोर की कूटनीति गतिहीन, स्थिर तथा असफल हो गयी, गारीबाल्दी ने अपने शौर्य तथा तलवार की सहायता से मार्ग प्रशस्त किया, परन्तु इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बिना कैवोर के मैजिनी और गारीबाल्दी दोनों ही बंज़र आशाओं पर शहीद हो गये होते। **प्रो. एल. मुकर्जी** ने गारीबाल्दी के निहित गुणों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए लिखा है "जबकि मैजिनी एक विचारक और ऋषि था, गारीबाल्दी क्रियाशील व्यक्ति था। वह इटली का स्वतन्त्रता का शूरवीर था। उसने निःसंकोच भाव से अपनी सेवाएँ देश के चरणों में अर्पित कर दीं और कभी भी उसकी स्वतन्त्रता के लिए घातक आघात मारने का अवसर नहीं छोड़ा। उसने इटली को मुक्त कराने की लिए तलवार की ओर ही देखा, परस्पर समझ और समझौता अथवा राजनीतिक आवश्यकताओं को समझने की चिन्ता नहीं की। वह चोट मारेगा, लग जाये अथवा बच जाये।" उसके उतावलेपन के कारण एक समकालीन व्यक्ति ने कहा था—"हृदय तो शेर का है और मस्तिष्क बैल का है।" निश्चित रूप से उसका मस्तिष्क उसके हृदय से हेय था और कभी-कभी उसकी जल्दबाजी कैवोर के लिए बहुत परेशानी का कारण बन जाती थी। लेकिन उल्लेखनीय है कि यह वह ही था जिसने अपनी तलवार से मार्ग बनाया, जब कैवोर की कूटनीति अवरुद्ध हो गयी थी और दुर्लभ स्वविलोपन के साथ अपनी विजय के लाभ विक्टर एमान्युअल द्वितीय को सौंप दिये। वह अपने सिद्धान्तों की अपेक्षा अपने देश से अधिक प्रेम करता था।

निःसन्देह गारीबाल्दी शालीनता तथा गौरव के साथ इटली के राजनीतिक मंच से हट गया परन्तु अन्तिम असफलता पर उसको अत्यधिक पीड़ा, वेदना एवं मानसिक व्यथा थी। वह प्रायः नेपल्स के समर्पण की अरुचिकर घटना को स्मरण करता था। हमने बोर्बों को निकाल दिया और दूसरे को ले लिया, एक मृत प्राणी को अपदस्थ किया और उसके बीमार भाई को प्रतिष्ठित कर दिया।

उसने अन्तर्मन की व्यथा व्यक्त करते हुए प्रायः कहा कि इटली राज्य भ्रष्ट, पिछड़ा हुआ तथा विघटित था। जीवन के अन्तिम वर्षों में उसने युवावस्था के उदात्त गणतन्त्रवाद में आस्था की पुष्टि की। सन् 1872 में उसने घोषणा की, "मैं एक गणतन्त्रवादी हूँ, क्योंकि मेरा विश्वास है, ईमानदार व्यक्तियों के लिए यह सर्वोत्कृष्ट सरकार है। एक ऐसी सरकार है जिसको सामान्यतः सर्वाधिक लोग चाहते हैं और हिंसा अथवा बेईमानी न्यूनतम पर निर्भर है।"

कैवोर (Cavour)

कैवोर ने अपनी उपलब्धि के कारण तत्कालीन युग और सम्भवतः उन्नीसवीं शताब्दी के सर्वोत्कृष्ट राजनीतिज्ञ का स्थान अर्जित किया। केवल बिस्मार्क को ही उसका प्रतिद्वन्द्वी माना जा सकता है, और परिणामों के आधार पर निर्णय करने से ज्ञात होता है कि कैवोर के काम बिस्मार्क की अपेक्षा अधिक स्थायी सिद्ध हुए। लार्ड पामर्स्टन (Palmerston) कैवोर

के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखता है, "कैवोर ने एक नाम छोड़ा है जो नीति वचन का बोध कराता है और एक कहानी को अलंकृत करता है। नीति वचन था कि एक उत्कृष्ट अन्तर्निहित गुणों, अदम्य परिश्रमी, अनिर्वाप्य (अद्वितीय) देशभक्ति का व्यक्ति कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सका जो अलंघ्य प्रतीत होती थीं और अपने देश को सर्वाधिक महान्, सर्वाधिक अमूल्य लाभ दिये। कहानी, जिसके साथ उसकी स्मृति संलग्न रहेगी, विश्व के इतिहास में सर्वाधिक असाधारण सर्वाधिक स्वच्छन्दतावादी थी। जनता में जो मृत प्रतीत होते थे, उनकी शान्ति को भंग करते हुए, जनता को बाँध रखा था। उसने नवीन और उत्साही जीवन का संचार किया और स्वयं को नवीन एवं अभूतपूर्व नियति के लिए प्रदर्शित किया।" इतिहास में कैवोर का स्थान इटली के सृजन में उसकी भूमिका के ऊपर आधारित है।

प्रो. एल. मुकर्जी ने विचार व्यक्त किया है, "गारीबाल्दी की अपेक्षा कम लोकप्रिय लेकिन इटली के एकीकरण में सहज ही एकमात्र सर्वाधिक शक्तिशाली अवयव काउन्ट कैमिल्लो दि कैवोर (Count Camillo di Cavour) था। लेकिन उसके सन्तुलित मस्तिष्क एवं सफल कूटनीति के अभाव में मैजिनी के आदर्शवाद और कुमार्गदर्शित गारीबाल्दी के उत्साह ने विस्फोटिल आशाओं और असफल संघर्षों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया होता।"

नैपोलियन महान् के समय से ही केवल भौगोलिक अभिव्यक्ति से इटली के एकीकृत राज्य के रूप में स्वर्णिम सुखद विचार का आविर्भाव हुआ था। इटली में नैपोलियन के प्रतिनिधि मुरट ने ही सर्वप्रथम एकीकृत इटली के रूप में विचार किया था। इस आकांक्षा के गर्भ में स्वच्छन्दतावादी विचार निहित था, जिसका नैपोलियन के यूरोप के व्यापक विजय अभियान काल में समस्त यूरोप में प्रचार एवं प्रसार हुआ था। "फ्रान्स के क्रान्तिकारियों ने स्वेच्छा से उदारवाद का प्रचार किया परन्तु असावधानी से राष्ट्रवाद का अभ्युदय हो गया।"

देश का विभाजित स्वरूप और समस्त प्रायद्वीप पर आस्ट्रिया का लगभग पूर्ण आधिपत्य इटली के एकीकरण में सर्वाधिक बाधा थी। सन् 1820, 1830 एवं 1848 में यूरोप में उदारवादी तथा स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन हो रहे थे, इटली जनान्दोलनों की दृष्टि से अपवाद नहीं था। उदार संविधानवादियों की सर्वाधिक अपमानजनक पराजय सन् 1848 में हुई। पीडमोन्ट का राजा चार्ल्स एलबर्ट कस्टोजा तथा नोवरा में आस्ट्रिया से पराजित हुआ था। अत्यधिक निराश एवं विक्षुब्ध चार्ल्स ने अपने पुत्र एमान्युअल द्वितीय के पक्ष में राज्य त्याग दिया था और पुर्तगाल के मठ में सम्मिलित हो गया था। आस्ट्रिया के निरन्तर विरोध के उपरान्त भी विक्टर एमान्युअल ने अपने पिता द्वारा सन् 1848 में स्वीकृत संविधान को बनाये रखा। इस घटना से वह समस्त देशभक्तों में अत्यधिक लोकप्रिय हो गया।

इसी समय कैवोर ने राजनीतिक मंच पर प्रवेश किया। राजा तथा प्रधानमन्त्री कैवोर ने इटली के एकीकरण के कार्य को लगभग अन्तिम स्थिति तक सम्पन्न किया। कैवोर का जन्म पीडमोन्ट के एक कुलीन परिवार में सन् 1810 में हुआ था। अपनी युवावस्था में उसने सार्डीनिया की सेना में सेवा की और उदार विचारों को आत्मसात किया। उसने उदारवादी एवं स्वच्छन्दतावादी ब्रिटिश लेखकों की महान् कृतियों का गहन अध्ययन किया और ब्रिटेन की व्यापक यात्रा की। परिणामस्वरूप उसके विचार एवं दृष्टिकोण स्पष्ट एवं व्यापक थे।

सन् 1850 में कैवोर पीडमोन्ट की मन्त्रिपरिषद् का सदस्य बना और सन् 1852 में प्रधानमन्त्री तथा विदेश मन्त्री बन गया और कुछ अन्तराल के अतिरिक्त सन् 1861 में मृत्युपर्यन्त अपने पद पर आसीन रहा। कैवोर ने तत्कालीन ब्रिटिश उदारवाद को आत्मसात कर लिया था। व्यक्तिवाद, भौतिक प्रगति, संवैधानिक राजा, आध्यात्मिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित करने वाले शिक्षित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली संसद का मूलभूत सिद्धान्त एवं आदर्श ब्रिटिश उदारवाद था। प्रधानमन्त्री के रूप में वह ब्रिटिश उदारवादी आदर्श स्वरूप के अनुरूप अपने राज्य में भौतिक कल्याण को प्रोत्साहित करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा। उसने सीमा-शुल्क कम कर दिया। कारखानों के निर्माण कार्य तथा मशीनों के आयात को प्रोत्साहित किया। सड़कों में सुधार करवाया तथा रेलवे का निर्माण करवाया। राज्य के आय-व्ययक (बजट) का पुनर्गठन किया। यद्यपि करों में वृद्धि की, परन्तु करों का पूर्वापेक्षा अधिक समानता के सिद्धान्त पर वितरण किया। उसी समय कैवोर ने गिरजाघरों के विशेषाधिकारों को प्रतिबन्धित करके, उनके प्रभाव को कम करने का प्रयास किया। उसने जैसुइट सदस्यों को देश से निष्कासित कर दिया और अनेक मठों का दमन किया। उसने विचार व्यक्त किया कि उसका आदर्श स्वतन्त्र राज्य में स्वतन्त्र गिरजाघर था परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से गिरजाघर को राज्य की सत्ता के अधीन कर दिया था।

राज्य में सुधार कार्य तो केवल कैवोर की अपेक्षाकृत विशद् एवं व्यापक महत्वाकांक्षी योजना, विक्टर एमान्युअल द्वितीय के नेतृत्व में इटली प्रायद्वीप के राजनीतिक एकीकरण की पृष्ठभूमि थे। **प्रो. एल मुकर्जी** इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "इस कार्य की उपलब्धि के लिए उसने अनेक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की जो दुर्लंघ्य प्रतीत होती थीं और एक व्यावहारिक एवं रचनात्मक राजनीतिज्ञ के दुर्लभ गुणों को अभिव्यक्त किया। उसमें एक महान् उद्देश्य पर विचार करने की केवल क्षमता ही नहीं थी वरन् बनाये रखने की दृढ़ता भी थी। प्रत्येक अवयव को इसकी प्राप्ति के लिए परिवर्तित करने की कुशलता, सामना करने का साहस, जब सामना करने की आवश्यकता हो, और किसी निश्चित समय पर क्या सम्भव था और क्या असम्भव था, पहचानने की योग्यता थी। इटली की समस्या को समस्त दृष्टिकोणों और उसके प्रभावों का अध्ययन करने वाला तथा इस समस्या में निहित जटिलताओं का दूरदर्शितापूर्ण आकलन करने वाला वह पहला राजनीतिज्ञ था।" इस लक्ष्य की प्राप्ति में जितनी अधिक बाधाएँ आती गयी, उतना ही कैवोर का निश्चय दृढ़ होता गया। उसने सेना के पुनर्गठन तथा सेना में अनुशासनात्मक सुधार के कार्य में राजा विक्टर एमान्युअल द्वितीय के साथ सक्रिय सहयोग किया। उचित समय पर उसने गारीबाल्दी के साथ रहस्यमय एवं गुप्त विचार-विमर्श किया। इटली की गुप्त समितियों, जिनका उद्देश्य समितियों के यत्र-तत्र बिखरे हुए तत्वों को समन्वित करना तथा समस्त इटली में आस्ट्रिया के नियन्त्रण का सशक्त विरोध करना था, को संरक्षण प्रदान किया। इन सबसे अधिक उसने सार्डीनिया-पीडमोन्ट राज्य के लिए विदेशी सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने अन्तर्निहित कूटनीतिक गुणों का सर्वाधिक प्रयोग किया।

इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कैवोर ने उत्साही एवं न्यायोचित साहित्यिक प्रचार माध्यम से पश्चिमी देशों के उदारवादियों के समर्थन एवं सहानुभूति को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसने ट्यूरिन में निर्वासित बुद्धिजीवी लेखकों को एक उत्कृष्ट सेना में परिवर्तित कर दिया और इन लेखकों ने 'दि मार्निंग पोस्ट', 'दि टाइम्स', 'ला मोटिन' और 'ला इन्डिपेन्ड्स' आदि पत्रों में इटली की स्वतन्त्रता तथा एकीकरण के सम्बन्ध में लेख लिखे। ब्रिटिश सरकार

के साथ मैत्री सम्बन्ध थे और उसने ट्यूरिन में अपना राजदूत भेजा। फ्रान्स में पादरियों के दल के उपरान्त, सम्राट की सहानुभूति इटली के उद्देश्यों के साथ थी और उसने इटली को गुप्त कूटनीतिक प्रोत्साहन भी दिया।

इन प्रयासों में कैवोर, बिस्मार्क के सदृश वास्तविक पोलिटिक (Real Politik) अर्थात् सरकार तथा राज्य की नीतियों को नैतिक सिद्धान्तों से विलग रखना चाहिए और सत्ता की आवश्यकताओं से निर्देशित होना चाहिए एवं सफलता तथा असफलता के आधार पर उनका मूल्यांकन करना चाहिए, का प्रबल प्रवर्तक तथा समर्थक था। सन् 1855 में क्रीमिया युद्ध के समय छोटे-से राज्य सार्डीनिया-पीडमोन्ट राज्य का रूस के विरुद्ध यूरोप की महान् शक्तियों ब्रिटेन और फ्रान्स के साथ एक मित्र राष्ट्र के रूप में सम्मिलित होना, विदेश नीति के क्षेत्र में कैवोर का पहला महत्वपूर्ण कदम था। कैवोर को पूर्ण आशा थी कि आस्ट्रिया रूस का समर्थन और सहायता करेगा और फ्रान्स एवं ब्रिटेन के दल में मित्र राष्ट्र के रूप में सम्मिलित होने से, इटली में आस्ट्रिया के शासन के विरुद्ध इन देशों का पूर्ण समर्थन मिलेगा। इस युद्ध में आस्ट्रिया की निरन्तर तटस्थता ने कैवोर की योजना के इस भाग को असफल कर दिया परन्तु कैवोर को अन्य पूर्वानुमानित लाभ प्राप्त करने का पूर्ण सन्तोष था। सार्डीनिया को समस्त पश्चिमी यूरोप के उदारवादियों की सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त हुआ और कैवोर को सन् 1856 में पेरिस में आयोजित शान्ति सम्मेलन (Paris Peace Congress) में समान स्तरीय राष्ट्र के रूप में भाग लेने का सुअवसर मिला। इस सम्मेलन में कैवोर ने आस्ट्रिया शासन की कटु आलोचना की। सार्डीनिया की ओटोमन साम्राज्य से सम्बन्धित पूर्वी विषय में कोई रुचि नहीं थी। कैवोर की सीधी सरल एवं स्पष्ट साहसिक कार्य की नीति थी और इस प्रबल आकांक्षा एवं आशा के साथ कि सार्डीनिया यूरोप के अन्य राज्यों के समान स्तर पर आ जाये, इस नीति को निश्चित रूप से कुशलतापूर्वक कार्यान्वित किया। कैवोर की प्रबल इच्छा थी कि इटली की समस्या यूरोप की महान् शक्तियों के राजनयिकों के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत की जाये और इससे कम से कम किसी एक शक्ति का तो समर्थन मिलेगा। यह नैपोलियन की राजनीतिक चेतना के प्रति एक दाँव था। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड और फ्रान्स के प्रति नैतिक दायित्व का दोष था। यह एक ऐसा दाँव था जिसमें कुछ भी सुनिश्चित नहीं था। इस दाँव की पहले से कोई शर्त नहीं थी। इस शान्ति सम्मेलन से कैवोर लार्ड क्लैएरेन्डन (Lord Clarendon) के सहानुभूतिपूर्ण भाषण की स्मृतियाँ लेकर आया और इसी से उसको आत्म-सन्तोष मिला। इसके अतिरिक्त सम्राट नैपोलियन के अशुभ द्वैतक अभिव्यक्त मत "मेरा अपना विचार है कि वास्तविक शान्ति दीर्घकालीन नहीं होगी" की स्मृति भी अंकित थी।

इस उपलब्धि के उपरान्त कैवोर ने इटली के एकीकरण के लिए नयी योजना बनाना आरम्भ कर दिया। कैवोर को ज्ञात हुआ कि फ्रान्स का सम्राट नैपोलियन तृतीय प्लाम्बियर्स में अवकाश के लिए आया हुआ था। कैवोर भी सम्राट से मिलने गया और परस्पर गुप्त वार्ता में आस्ट्रिया के साथ युद्ध की योजना बनी और युद्ध में प्राप्त फ्रान्स की सहायता के लिए फ्रान्स को सेवाय तथा नाइस देने का वचन दिया। भावी नौ माह तक कैवोर संदेहास्पद स्थिति में रहा। आस्ट्रिया को उत्तेजित करने के उद्देश्य से कैवोर ने एक के बाद एक अनेक प्रयास किये। कैवोर को आशंका थी कि सम्राट नैपोलियन तृतीय के विचार और दृष्टिकोण में परिवर्तन न हो जाये। उसने सैनिक तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। उसने शत्रुतापूर्ण सीमा-शुल्क की प्रेस के माध्यम से कटु आलोचनाओं तथा लोम्बार्डी और वेनेशिया में जनान्दोलनों को

प्रोत्साहन द्वारा आस्ट्रिया को युद्ध के लिए उत्तेजित किया। नैपोलियन ने भी घोषणा की कि उसके आस्ट्रिया के साथ अतीत की भाँति अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। भावी घटनाओं के लिए ये पर्याप्त चेतावनी थी।

इंग्लैण्ड ने युद्ध रोकने के लिए यूरोपीय देशों का सम्मेलन आयोजित किया। कैवोर अत्यधिक निराश था और उसने आत्महत्या करने का विचार किया। यद्यपि यूरोपीय सम्मेलन में सम्भावित युद्ध में सम्मिलित तीन राज्यों के सामान्य निःशस्त्रीकरण पर सहमति हो गयी थी, आस्ट्रिया ने मूर्खतापूर्वक युद्ध की प्रक्रिया आरम्भ कर दी। पीडमोन्ट के व्यवहार से उत्तेजित आस्ट्रिया ने तत्काल निःशस्त्रीकरण अथवा युद्ध की अन्तिम चेतावनी भेजी। यूरोपीय राजनीतिज्ञों की दृष्टि में आस्ट्रिया आक्रामक देश प्रतीत होता था। कैवोर को अपने कूटनीतिक प्रयास में मनोवांछित सफलता मिली। अल्पकालीन युद्ध में आस्ट्रिया पराजित हुआ और विलाफ्रान्का की सन्धि के अनुसार लोम्बार्डी पीडमोन्ट को मिल गया और आस्ट्रिया को वेनेशिया रखने के लिए अधिकृत किया गया। कैवोर ने एमान्युअल द्वितीय से इस अपमानजनक सन्धि को अस्वीकार करने का आग्रह किया परन्तु राजा ने कैवोर के आग्रह की उपेक्षा की। परिणामस्वरूप कैवोर ने सार्वजनिक जीवन से संन्यास ले लिया।

कुछ अन्तराल के बाद सन् 1860 में पुनः अपने पद पर लौटने के पूर्व ही कैवोर ने विदेशी सहायता के माध्यम से इटली की समस्या के समाधान की नीति को त्याग दिया था। ज्यूरिख की सन्धि ने विलाफ्रान्का की सन्धि के प्रावधानों की पुष्टि की थी। इससे स्पष्ट संकेत था कि इटली के समस्त उदार एवं गणतान्त्रिक दलों को स्वयं ही कार्यवाही करनी चाहिए। आस्ट्रिया द्वारा लोम्बार्डी खाली करने के समाचार ने इटली के मध्य में स्थित राज्यों में जनता को विद्रोह के लिए प्रेरित किया। परमा, मोडेना तथा टस्कैनी में विद्रोह हो गया और जनता ने अपने शासकों को निष्कासित कर दिया। इटली के सुदूर उत्तर में स्थित धार्मिक राज्य रोमग्ना में जनता ने पोप की प्रभुसत्ता को अस्वीकार कर दिया। इन समस्त राज्यों ने सर्व सम्मति से पीडमोन्ट के साथ विलय के लिए मत व्यक्त किया। ऐसी स्थिति में नैपोलियन तृतीय दो परस्पर विरोधी विचारों के मध्य दुविधा में पड़ गया। एक ओर ज्यूरिख की सन्धि के प्रावधानों की पवित्रता को बनाये रखने की समस्या थी, दूसरी ओर इटली के राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति अभिव्यक्त सहानुभूति की समस्या थी। राष्ट्रीय आन्दोलनों का दमन करना भी असम्भव था। ब्रिटिश सरकार की नीति इटलीवासियों के प्रति अत्यधिक सहानुभूतिपूर्ण थी। आस्ट्रिया सार्डीनिया राज्य द्वारा किसी भी भाग के विलय और धार्मिक राज्यों की सत्ता को कम करने के प्रयास का विरोध कर रहा था।

इस विकट स्थिति में कैवोर ने समाधान खोज लिया। उसने प्लाम्बियर्स में परस्पर वार्ता में निश्चय के अनुसार सेवाय और नाइस फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन को देकर इटली के मध्य में स्थित धार्मिक राज्यों के सार्डीनिया में विलय के लिए सम्राट की सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव के परिणामस्वरूप टस्कैनी, परमा, मोडेना और रोमग्ना राज्यों में जनमत संग्रह हुआ और जनता ने पीडमोन्ट के साथ विलय के पक्ष में मतदान किया। वेनेशिया के अतिरिक्त इटली के उत्तरी भाग का एकीकरण हो चुका था और विदेशी शासन के नियन्त्रण से मुक्त हो चुका था। नाइस और सेवाय फ्रान्स को देने के लिए राष्ट्रवादियों ने कैवोर की कटु आलोचना की। फ्रान्स की भूमिका से ब्रिटेन अत्यधिक उत्तेजित था। नाइस गारीबाल्दी का जन्म स्थान था। अस्तु उसने आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा कि कैवोर ने उसको अपनी ही मातृभूमि पर विदेशी बना दिया।

कैवोर ने अपनी नीतियों का पुनः निर्धारण आरम्भ कर दिया। उसने अनुभव किया कि परिस्थितियों के अनुसार स्थानीय विद्रोहों का इटली के मूलोद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रयोग करने में ही बुद्धिमता थी। राजाओं तथा विदेशी सहायता की अपेक्षा कैवोर ने मैजिनी तथा गारीबाल्दी एवं जनता की विद्रोही प्रवृत्तियों एवं भावनाओं का समुचित लाभ उठाने का प्रयास किया। इटली के एकीकरण के इतिहास में कैवोर ने सर्वाधिक कूटनीतिक सहयोग तथा कुशलता के साथ सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहसिक कार्य किया। कैवोर ने यूरोप के सार्वजनिक कानून के प्रति उपेक्षा का भाव व्यक्त करते हुए विक्टर एमान्युअल के नाम पर विद्रोहों में अन्तर्निहित राजनीतिक गुणों, शक्तियों, सामर्थ्य एवं क्षमता में विश्वास व्यक्त किया।

अप्रैल, 1860 में जनता ने सिसली में विद्रोह कर दिया। गारीबाल्दी को भावी घटनाओं के सम्बन्ध में सिसली के विद्रोहियों से पहले ही सूचना मिल चुकी थी। गारीबाल्दी इस विद्रोह में शूरवीर की भूमिका का निर्वाह करने के लिए उत्सुक था। उसने कैवोर तथा पीडमोन्ट के राजा, दोनों से सहायता तथा अधिकृत करने का अनुरोध किया। कैवोर यद्यपि दुविधा में था परन्तु वह पहले ही निश्चय कर चुका था और उसी के अनुरूप उसने अपना कूटनीतिक खेल खेला। उसने अन्य यूरोपीय शक्तियों के समक्ष इस विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शित की और गारीबाल्दी एवं अन्य विद्रोहियों को अस्त्र-शस्त्र एकत्रित करने तथा स्वयं सेवी सेना संगठित करने की गुप्त रूप से अनुमति दे दी और जेनोआ बन्दरगाह के नौ-सेना अधिकारियों को उपेक्षा करने के गुप्त निर्देश दिये। उसने सार्डीनिया के नौ-सेना एडमिरल को गारीबाल्दी के जलयानों की सुरक्षा करने का भी निर्देश दिया।

सिसली पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद गारीबाल्दी सफलता के मद में उन्मत हो गया। उसने मुख्य भूमि तथा धार्मिक राज्य रोम पर आक्रमण करने की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। कैवोर के समक्ष एक अन्य चिन्ताजनक समस्या थी। कैवोर ने अनुरोध किया कि गारीबाल्दी पीडमोन्ट को अपने दिये गये वचन को विस्मृत कर अपनी प्रत्येक विजय के साथ अपने समर्थकों में उग्र गणतन्त्रवादियों के प्रति अधिकाधिक सहृदय तथा दयालु हो रहा था। कैवोर ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि गारीबाल्दी की प्रत्येक सफलता पीडमोन्ट राज्य के नाम पर इटली के एकीकरण के लिए होनी चाहिए। वह अत्यधिक चिन्तित तथा व्यग्र था कि उस समय रोम पर आक्रमण करके फ्रान्स और आस्ट्रिया को उत्तेजित नहीं करना चाहिए।

गारीबाल्दी ने कैवोर के परामर्श तथा निर्देश की उपेक्षा की। अस्तु कैवोर ने गारीबाल्दी का प्रतिरोध करने का निश्चय किया। उसने गुप्त रूप से नेपल्स, जिस पर गारीबाल्दी पहले ही आक्रमण कर चुका था, के साथ सम्पर्क स्थापित किया। सार्डीनिया की नौ-सेना के एडमिरल को नेपल्स की नौ-सेना पर विजय प्राप्त करने का निर्देश दिया। अन्ततोगत्वा उसने अपने पुराने मित्र नैपोलियन तृतीय को परिस्थितियों से अवगत कराया तथा उचित परामर्श के लिए अनुरोध किया। नैपोलियन तृतीय को भी कैवोर के सदृश विभिन्न कारणों से आशंका थी। नैपोलियन तृतीय को परामर्श दिया गया कि उसको पीडमोन्ट द्वारा उम्ब्रिया और मार्चेज पर आधिपत्य को स्वीकार कर लेना चाहिए। उसने उपेक्षापूर्वक उत्तर दिया, "इसे शीघ्र करो"।

गारीबाल्दी की सैनिक गतिविधियों के पूर्वानुमान के आधार पर पीडमोन्ट की सेना ने धार्मिक राज्यों पर आक्रमण कर दिया। गारीबाल्दी तथा राजतन्त्रीय सेनाओं के मध्य यह एक दौड़ थी। कैवोर के प्रतिनिधियों ने पहले ही धार्मिक राज्यों में पीडमोन्ट की सेना के लिए प्रारम्भिक कार्य पूर्ण कर लिया था। अस्तु पीडमोन्ट की सेना ने धार्मिक राज्यों पर पूर्ण नियन्त्रण

कर लिया। पीडमोन्ट की सेना ने धार्मिक राज्यों की शक्ति को ध्वस्त किया। यह सेना तदुपरान्त गारीबाल्दी की प्रगति को रोकने के लिए नेपल्स गयी। अक्टूबर में उम्ब्रिया तथा मार्चेज में जनमत संग्रह के बाद, इन राज्यों का पीडमोन्ट में विलय कर लिया गया। उसी माह में विक्टर एमान्युअल तथा कैवोर नेपल्स गये और जनमत संग्रह के बाद पीडमोन्ट में मिला लिया। इसी अवसर पर कैवोर ने अपनी नीतियों तथा गतिविधियों को न्यायोचित सिद्ध करते हुए कहा, "इटली की विदेशियों, कुत्सित सिद्धान्तों तथा पागल व्यक्तियों से निश्चित रूप से रक्षा करनी चाहिए।"

गारीबाल्दी ने अपने सरल और निःस्वार्थ भाव से कृतज्ञतापूर्वक अपने समस्त विजित क्षेत्र राजा विक्टर एमान्युअल द्वितीय को समर्पित कर दिये और अपने समर्थकों से अपने समस्त मतभेदों को विस्मृति के गर्भ में समाहित करने का आग्रह किया। फरवरी, 1861 में संसद का पहला अधिवेशन ट्यूरिन में हुआ और विक्टर एमान्युअल द्वितीय को रोम साम्राज्य के पतन के बाद पहली बार वेनिस तथा रोम के अतिरिक्त समस्त इटली का राजा घोषित किया गया। कैवोर ने मृत्यु के समय कहा, "इटली को बना दिया गया है, सब सुरक्षित है।" इस प्रकार कैवोर ने इटलीवासियों के इटली का सृजन किया। प्रो. एल. मुकर्जी लिखते हैं, "कुशलता, चतुरता और साहस, जिसकी सहायता से उसने इन समस्त शक्तियों को गतिशील किया और एक समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उनको समन्वित किया, उसको अपने युग का दक्ष राजनयिक बनाते हैं।"

कैवोर की कूटनीतिज्ञ के रूप में सफलता ने उसकी प्रशासक के रूप में कार्य कुशलता एवं विशिष्टता को धूमिल कर दिया है। लेकिन उसके मार्गदर्शन में पीडमोन्ट यूरोप में मुक्त व्यापार का अग्रणी बन गया। उसके आन्तकि सुधार उसकी प्रबुद्ध चेतना एवं भावना के परिणाम थे और पीडमोन्ट को संवैधानिक सरकार के साथ एक आदर्श राज्य बना दिया। उसने विचार किया कि आर्थिक सुधार अपेक्षाकृत अधिक अच्छी सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का आधार होना चाहिए और सुधारों से युक्त पीडमोन्ट को वह इटली की एकता और पुनरुत्थान के रूप में देखता था। अस्तु पीडमोन्ट का आर्थिक विकास करने के लिए महान् सफलता के साथ सर्वोत्कृष्ट किया जिससे वह उस महान् उद्देश्य के उपयुक्त बन सके जिसके लिए उसका आह्वान किया गया था।

6 जून, 1861 में मृत्यु तक कैवोर निःसन्देह इटली की राजनीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति था। यही वह व्यक्ति था जिसने मैजिनी और गारीबाल्दी द्वारा आरम्भ किये कार्य को फलीभूत (सफल) किया और वह उसने बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता से किया, जो दोनों में नहीं थी। मैजिनी इसका उदात्त उत्साही, यद्यपि अव्यावहारिक देवदूत था और गारीबाल्दी इसका सैनिक शूरवीर था, बिना कैवोर, इटली की एकता के वास्तविक और उत्पत्तिकर्ता के बंजर आकांक्षाओं के ऊपर शहीद हो गये होते। एक विद्वान इतिहासकार ने मत व्यक्त किया है, "उसका दक्ष मस्तिष्क था जिसने मैजिनी की प्रेरणा को कूटनीतिक शक्ति के रूप में गतिशील किया, और गारीबाल्दी की सर्वोत्कृष्ट तलवार को राष्ट्रीय अस्त्र में परिवर्तित किया।" एक अन्य विद्वान ने विचार व्यक्त किया है, "यूरोप का विश्वास, सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त करने के लिए कैवोर नहीं होता, यदि उसको एक ऐसे व्यक्ति के रूप में मान्यता नहीं मिलती, जिसकी बुद्धि समस्त आपत्तिकालीन स्थितियों में न्यायोचित थी, मैजिनी के प्रयल प्रश्नवाचक विद्रोहों में निरर्थक हो गये होते और गारीबाल्दी के अस्त्रों के असाधारण कार्यों ने अनुत्पादक देशभक्ति के इतिहास में एक अतिरिक्त अध्याय जोड़ दिया होता।" एलिसन फिलिप्स लिखता है, "एक

राष्ट्र के रूप में इटली कैवोर की देन है।" एक अन्य विद्वान लिखता है, "दीर्घ संघर्ष के उपरान्त मैजिनी के नैतिक बल, गारीबाल्दी की तलवार, कैवोर की कूटनीति, विक्टर एमान्युअल की समझदारी तथा व्यावहारिक बुद्धि तथा असंख्य देशभक्तों के बलिदान से इटली का एकीकरण सम्भव हुआ।" कैवोर की उपलब्धियाँ उसको अपने समय का और सम्भवतः उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वाधिक योग्य राजनीतिज्ञ बनाती हैं।

यद्यपि कैवोर के कार्यों का विशद् विवरण अत्यधिक आकर्षक था, परन्तु यथार्थ में दोषमुक्त नहीं था। इस तथ्य को विक्टर एमान्युअल के लिए गोपनीय स्मरण-पत्र में व्यक्त किया गया है। इसमें प्लाम्बियर्स में गुप्त समझौते की व्याख्या की गयी है। मैजिनी कैवोर की अत्यधिक सावधान तथा सजग नीति को भलीभाँति समझता था। उसने कैवोर के सम्बन्ध में लिखा, "वह एक मन्त्रिपदीय मुक्तिदाता था जो अपने स्वामी को शिक्षा देता था कि इटली की एकता को कैसे रोका जाये।" गारीबाल्दी के प्रति गुप्त घृणा की भावना कैवोर का सर्वाधिक गम्भीर दोष था। इटली के उज्जवल भविष्य बनाने का श्रेय गारीबाल्दी को जाता है क्योंकि इटली को एकता के सूत्र में बाँधने का विचार उसके लिए घृणास्पद था। कैवोर ने टिप्पणी करते हुए कहा था, "राजा गारीबाल्दी के हाथ से इटली का राजमुकुट स्वीकार नहीं कर सकता है। अस्तु कैवोर ने गारीबाल्दी के विरुद्ध बहुत शान्त खेल खेला। कैवोर ने गणतन्त्रवाद का उग्र सुधारवाद के खतरनाक स्वरूप के रूप में विरोध किया और संवैधानिक राजतन्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी चीज को अस्वीकार किया। उसमें जनता की भागीदारी का अन्तर्निहित सन्देह था। इतिहास में कैवोर का स्थान इटली के सृजन में उसकी अभिनीत भूमिका पर आधारित है। इटली जो अनेक शताब्दियों तक मात्र भौगोलिक अभिव्यक्ति बना रहा था, उसके कुशल मार्गदर्शन में एक राजनीतिक इकाई और एक राष्ट्रीय राज्य बन गया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. "एक राष्ट्र के रूप में इटली कैवोर की देन है, उसका जीवन रक्त है।" विवेचन करें।
   "As a nation, Italy is the gift of Covour, he is the life-blood." Discuss.
   (बी. आर. अम्बेदकर, *1997;* रुहेलखण्ड, *1999*)
2. *1848* से *1871* के बीच इटली का एकीकरण कैसे हुआ ?
   How Italy was unified during the years 1848 to 1871 ?
   (बी. आर. अम्बेदकर, *1999;* आगरा, *1992, 94;* मगध, *1993;* रुहेलखण्ड, *1992*)
3. इटली के एकीकरण में कैवोर की भूमिका का विवेचन करें।
   Discuss the role of Cavour in the unification of Italy.
   (भागलपुर, *1996;* बुन्देलखण्ड, *1991, 99;* गोरखपुर, *1996, 2000;* मेरठ, *1991;* राँची एवं पटना, *1998;* गढ़वाल, *1999*)
4. इटली के एकीकरण के विभिन्न चरणों का उल्लेख करें।
   Point out the different stages in the unification of Italy.
   (मगध एवं जबलपुर, *1998, 99;* लखनऊ, *1993, 95;* कानपुर, *1995, 2000;* आगरा, *1995;* पटना, भोपाल एवं रायपुर, *1997;* मगध, *1995, 97;* गोरखपुर, *1993, 94, 98;* अवध, *1993, 99;* बुन्देलखण्ड, *1995, 96*)

5. कैवोर के योगदान के बिना इटली का एकीकरण असम्भव था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?
"Unification of Italy was impossible without Cavour's contribution." Do you agree with this statement ? (जबलपुर, *1995, 97*; आगरा, *1997, 98*; राजस्थान एवं ग्वालियर, *2000*; मगध, *1991*; रुहेलखण्ड, *1999*)
6. इटली के एकीकरण में मैजिनी-गारीबाल्दी और कैवोर के योगदान का मूल्यांकन कीजिये।
Estimate the contribution of Mazzini and Garibaldi in the unification of Italy. (रायपुर, *1999*)
7. इटली के एकीकरण पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an essay on the unification of Italy.
(रुहेलखण्ड, *1992, 93*; कानपुर एवं मेरठ, *1998*, गोरखपुर, *1991*)
8. इटली के एकीकरण में मैजिनी, गारीबाल्दी और कैवोर के योगदान का मूल्यांकन कीजिये।
Assess the contribution of Mazzini, Garibaldi and Cavour in the unification of Italy. (रुहेलखण्ड, *1995, 96, 2000*; बुन्देलखण्ड, *1992*; अवध, *1991*; कानपुर, *1996, 99*; मेरठ, *1995. 97*; आगरा, *1999*)
9. कैवोर की विदेश नीति का उल्लेख कीजिये।
Describe the foreign policy of Cavour.
(रुहेलखण्ड, *1998, 2000*; आगरा, *1993*)
10. इटली के एकीकरण में मैजिनी और कैवोर के योगदान की समीक्षा कीजिये।
Discuss the contribution of Mazzini and Cavour in the unification of Italy.
(गढ़वाल, *1994, 95*; अवध, *1994*)
11. इटली के एकीकरण में कैवोर और गारीबाल्दी की भूमिका की समीक्षा कीजिये।
Assess the role played by Cavour and Garibaldi in the unification of Italy.
(गढ़वाल *1997*; लखनऊ, *1991, 97, 99*; भोपाल, *1994. 98*)
12. इटली के एकीकरण में मैजिनी के योगदान की समीक्षा कीजिये।
Assess the role of Mazzini in the unification of Italy.
(बुन्देलखण्ड, *1990*; अवध एवं मेरठ, *1992*; आगरा, *1996*)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. इटली की मुक्ति में महान् त्रिमूर्ति ………… अग्रणी थे—
(क) नैपोलियन तृतीय, गारीबाल्दी और मैजनी
(ख) मुरट, कैवोर और मैजिनी
(ग) मैजिनी, गारीबाल्दी और कैवोर
(घ) मैजिनी, कैवोर एवं विक्टर एमान्युअल
2. नैपोलियन के सेनाध्यक्ष मुरट ने सन् ………… में नेपल्स पर शासन करते हुए इटली के एकीकरण की घोषणा की थी—
(क) *1812* (ख) *1814* (ग) *1815* (घ) *1820*
3. कैटलबी लिखते हैं, "………… तक इटली का इतिहास फूट, विदेशी आधिपत्य और प्रत्यक्ष रूप से निरर्थक संघर्ष का इतिहास था"—
(क) *1815* से *1850* (ख) *1815* से *1835*
(ग) *1820* से *1848* (घ) *1815* से *1848*

4. ………… ने 'युवा इटली' नाम की राष्ट्रवादी संस्था की स्थापना की—
(क) गारीबाल्दी (ख) कैवोर
(ग) मैजिनी (घ) विक्टर एमान्युअल
5. इटली राजतन्त्रीय शासकों द्वारा शासित ………… राज्यों में विभाजित था—
(क) 6 (ख) 12 (ग) 8 (घ) 10
6. कैवोर सन् 1850 में पीडमोण्ट की मन्त्रिपरिषद् में एक मन्त्री के रूप में सम्मिलित हुआ और सन् ………… में वह प्रधानमन्त्री बना—
(क) 1851 (ख) 1852 (ग) 1853 (घ) 1854
7. सन् ………… का आदर्श वाक्य था—"इटली अपना प्रबन्ध स्वयं करेगा"—
(क) 1845 (ख) 1847 (ग) 1848 (घ) 1849
8. फ्रान्स और सार्डीनिया की सेनाओं ने लोम्बार्डी में प्रवेश किया और आस्ट्रिया की शक्तिशाली सेना को ………… मेगेन्टा में पराजित किया—
(क) 4 जून, 1855 (ख) 4 जून, 1858
(ग) 4 जून, 1859 (घ) 4 जून, 1861
9. ………… विस्तृत राज्य की संसद का पहला अधिवेशन ट्यूरिन में हुआ—
(क) 2 अप्रैल, 1858 (ख) 2 अप्रैल, 1860
(ग) 2 अप्रैल, 1862 (घ) 2 अप्रैल, 1864
10. ………… में मृत्यु तक कैवोर निःसन्देह इटली की राजनीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति था—
(क) 6 जून, 1859 (ख) 6 जून, 1860
(ग) 6 जून, 1861 (घ) 6 जून, 1862

[उत्तर—1. (ग), 2. (ग), 3. (क), 4. (ग), 5. (ग), 6. (ख), 7. (ग), 8. (ग), 9. (ख), 10. (ग) ।]

23

जर्मनी का एकीकरण

[UNIFICATION OF GERMANY]

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में यथार्थ में जर्मनी 200 से भी अधिक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। सन् 1789 की फ्रान्स की क्रान्ति ने इन राज्यों की जनता को एकीकृत जर्मनी एवं एक राष्ट्रीय राज्य स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। भाग्य की विडम्बना कि नैपोलियन ने जर्मनी की शक्ति को ध्वस्त करने का अथक प्रयास किया, परन्तु नैपोलियन के प्रयास जर्मनी के लिए वरदान सिद्ध हुए और जर्मनी के एकीकरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया। नैपोलियन बोनापार्ट ने ही 200 छोटे राज्यों को 39 राज्यों के परिसंघ में परिवर्तित किया था। सन् 1815 की वियाना काँग्रेस के प्रावधानों के अनुसार जर्मनी को 39 राज्यों का एक शिथिल परिसंघ वनाया गया।

यूरोप के इतिहास में नैपोलियन युग की समाप्ति के बाद का काल अत्यधिक महत्वपूर्ण था। फ्रान्स की क्रान्ति तथा नैपोलियन युग ने व्यापक रूप से आधुनिकता का बीजारोपण कर दिया था। विभिन्न शक्तियों, तत्वों तथा व्यक्तियों ने जर्मनी के एकीकरण को सुगम तथा सहज किया। फ्रान्स के आदर्शों का प्रभाव तथा फ्रान्स की विजय इनकी उत्प्रेरक रहीं। जर्मनी का सांस्कृतिक पुनर्जागरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति था। पुनर्जागरण काल में अनेक विख्यात संगीतज्ञ, बुद्धिजीवी एवं दार्शनिक हुए। रूसो के प्रभाव में जर्मन संस्कृति ने पूर्वापेक्षा अधिक क्षेत्रीय पहचान बनायी। जर्मन स्वच्छन्दतावादियों ने अठारहवीं शताब्दी के सर्व-मुक्तिवाद को अस्वीकार किया। हर्डर तथा जॉन ने जर्मन जाति अथवा वाक (volk) की व्यापक अवधारणा में इसका विकास किया। जॉन ने गोथे के विश्वव्यापी दृष्टिकोण से अलग हटने की मान्यता तथा विचारधारा की पुष्टि की। हर्डर ने वाकजेइस्ट (Volkgeist) के रूप में सामूहिक सृजनात्मकता की अवधारणा का शुभारम्भ किया। हर्डर (सन् 1744-1803) की मानव स्वतन्त्रता में पूर्ण आस्था थी। उसने जनता के आदर्श के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करके जर्मनी के राष्ट्रवाद के समक्ष उज्जवल आदर्श प्रस्तुत किया। व्यक्तिगत लेखकों तथा चित्रकारों की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ समस्त जनता की अन्तर्निहित प्रतिभा की अभिव्यक्ति के साधन थे। दुर्भाग्य से जर्मन जनता का एक राष्ट्रीयता के रूप में विकास नहीं हुआ था और फिशेट (Fichte) ने अपने समस्त प्रयास जर्मन राजनीतिक पुनरुत्थान को प्रोत्साहित करने के कार्य

पर केन्द्रित किये और नैपोलियन की पराजय में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हीगल, विख्यात राजनीतिक विचारक, ने इस विचारधारा में विकास करते हुए, इस तथ्य पर बल दिया कि राजनीतिक पुनरुत्थान की प्राप्ति राज्य की शक्ति में अत्यधिक विस्तार द्वारा ही सम्भव हो सकती है। सार्वजनिक विचारधारा का सर्वोत्कृष्ट रूप राष्ट्र है। अस्तु राष्ट्र सर्वोपरि है और राष्ट्र की सत्ता उससे ऊपर होनी चाहिए। कालान्तर में बिस्मार्क ने हीगल के इसी सिद्धान्त को कार्यान्वित करके प्रशा की सत्ता और शक्ति को सर्वोपरि करके जर्मनी के एकीकरण के कार्य को पूरा किया।

अठारहवीं शताब्दी में फ्रान्स ने बौद्धिक क्षेत्र में नेतृत्व किया, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी फ्रान्स से आगे निकल गया। विद्वानों, कवियों तथा प्राध्यापकों ने अखिल जर्मनवाद को सुस्पष्ट तथा परस्पर सम्बद्ध किया और जर्मनी को प्रान्तीयता से सुरक्षित रखा। तत्कालीन प्रचलित प्रान्तीयता जर्मनी की राष्ट्रीयता तथा एकता के लिए अत्यधिक घातक थी। सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न था कि राष्ट्रीय भावना राजनीतिक संरचना का स्वरूप किस प्रकार ग्रहण कर सकती है। जॉन ने विचार व्यक्त किया, **"जनता के बिना एक राज्य कुछ नहीं है, आत्माविहीन कृत्रिम शरीर, लेकिन समान रूप से राज्य के बिना जनता कुछ नहीं है, केवल शरीरविहीन छाया मात्र है।"**

विख्यात राजनीतिक दार्शनिकों हर्डर तथा फिशेट ने जर्मनवासियों को विशिष्ट राष्ट्रीय चरित्र अथवा वाकजेइस्ट की प्राप्ति एवं उसके प्रति अपूर्व श्रद्धा की शिक्षा दी। विशिष्ट राष्ट्रीय चरित्र ही समस्त सद् संस्कृति और सभ्यता का स्रोत है। हीगल और फिशेट दोनों ने ही राज्य को महिमामंडित किया। प्रशा के पुनरुत्थान तथा जर्मनी में राष्ट्रवाद का प्रबल बुद्धिवादी समर्थन विश्वविद्यालयों विशेष रूप से बर्लिन विश्वविद्यालय ने किया। विद्यार्थियों ने गुप्त समितियों का गठन किया और कोलाहलपूर्ण प्रदर्शन किये। परिणामस्वरूप बर्लिन और वियाना दोनों में ही चिन्ता और भय का वातावरण बन गया। बर्लिन में हीगल राजनीतिक दर्शन का प्रमुख प्रवर्तक था। उसके सत्ता तथा राज्य शक्ति के नवीन दार्शनिक सिद्धान्तों ने जर्मनी सहित तत्कालीन यूरोप के समस्त बुद्धिजीवियों को सर्वाधिक प्रभावित किया।

इस राजनीतिक विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में फ्रान्स की क्रान्ति तथा नैपोलियन युग के झंझावातों द्वारा उद्वेलित मुक्ति (स्वतन्त्रता) की भावना निहित थी। जर्मनीवासियों के विचारों में इस परिवर्तन ने तत्कालीन राजनीतिज्ञों तथा कूटनीतिज्ञों को प्रभावित किया। सन् 1806 में जेना की युद्धभूमि में प्रशा की नैपोलियन के आक्रमण के विरुद्ध गम्भीर पराजय हुई। इस पराजय ने प्रशावासियों में नई शक्ति, स्फूर्ति एवं चेतना का संचार किया और प्रशा ने स्कार्नहोर्स्ट (Scharnhorst) के कुशल नेतृत्व में सेना का आमूल पुनर्गठन किया। स्टेन तथा हार्डेनबर्ग ने सरकारी तन्त्र का व्यापक पुनर्गठन किया। हार्डेनबर्ग ने प्रशा के राजा को लिखा, "जो कुछ फ्रान्सवासियों ने ऊपर से किया है। हमको नीचे से करना चाहिए।" सन् 1813 में लिपजिग (Leipzig) में प्रशा की गौरवपूर्ण विजय ने जर्मन जनसमुदाय में सुषुप्त राष्ट्रवादी भावनाओं को जाग्रत, प्रेरित तथा उत्तेजित किया। ये सब जर्मन राष्ट्रवादियों के सतत् प्रयासों तथा सुधारकों की प्रशा को पुनर्जीवित करने की गतिविधियों का सुखद परिणाम था। यद्यपि यह मित्र राष्ट्रों की एक विजय थी, परन्तु यह देशभक्तिपूर्ण लोकप्रिय कथा बन गयी।

प्रारम्भ में जर्मन राष्ट्रवाद ने उदारवाद के साथ पूर्ण सहयोग किया, परन्तु सन् 1848 की क्रान्ति ने जर्मनी के एकीकरण के लिए भिन्न दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल दिया।

फ्रैन्कफर्ट की संसद की असफलता ने उदारवादी सिद्धान्तों एवं आदर्शों के अनुरूप एकीकरण की सम्भावनाओं को समाप्त कर दिया। प्रशा की आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुका था और उसने राज्य शक्ति तथा औद्योगिक शक्ति दोनों ही का आदर्श रूप प्रस्तुत किया।" एक जर्मन इतिहासकार लिखता है कि "प्रशा ने जर्मनी के प्रयासों को नई दिशा प्रदान की, परिणामस्वरूप हमने लगभग द्वितीय चमत्कार का अनुभव किया।"

भावी 5 दशकों की अवधि में संगीतज्ञों, कवियों, दार्शनिकों तथा इतिहासकारों ने इस चमत्कार का पूर्णरूप से शोषण किया। उदाहरणार्थ, वैग्नर (Wagner) ने अपने गीति-नाट्यों में जर्मन जनता की रहस्यवादी भावनाओं एवं प्रवृत्तियों को अत्यधिक सजीव एवं मर्मस्पर्शी ढंग से अभिव्यक्त किया। ट्रीस्के (Treitchke) और रांके (Ranke) एवं अन्य साहित्यकारों ने बिस्मार्क के भावी दूसरे जर्मन राज्य (Reich) का प्रारूप प्रस्तुत किया। तर्कवादी कैसर ने यथार्थ में अतीत के जर्मन इतिहास के भावी परिणामों के निश्चित स्वरूप को अभिव्यक्त किया। इस प्रकार जर्मन स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों एवं भावनाओं का प्रशा के सैन्यवाद में पूर्ण समन्वय हो गया। अब पूर्वापेक्षा अधिक दृढ़ निश्चय के साथ जर्मन शक्ति को प्रदर्शित करने के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया था। ट्रीस्के ने गर्व के साथ कहा था, "अब से जर्मन नीति कोई गम्भीर त्रुटि नहीं कर सकती है। अब जर्मन राष्ट्रवाद ने अभूतपूर्व आत्म-विश्वास का प्रदर्शन किया।

जैकाव ग्रीम (सन् 1785-1863) और विल्हेम ग्रीम (सन् 1786-1859) ने जर्मन भाषा विज्ञान, जर्मन इतिहास और जर्मन कानूनों का अध्ययन किया और विचार-विमर्श किया। अपनी विख्यात परियों की कहानियों को प्रकाशित करवाया। इस प्रकार जर्मनी के जनसमुदाय को उनके एक ही मूल के होने का बोध कराया। सांस्कृतिक एकता का बन्धन पूर्वापेक्षा अधिक सुदृढ़ हो गया। इसके अतिरिक्त जैकाव और विल्हेम ने जर्मनवासियों को उनकी मूलभूत विशेषताओं, प्रवृत्तियों तथा स्वभाव से अवगत कराया। इस प्रकार जर्मनवासियों में सुषुप्त मौलिक तत्वों को उद्वेलित किया।

जर्मनी का सांस्कृतिक जागरण फ्रान्स अथवा रोम से किसी प्रकार प्रभावित नहीं था। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन ने केवल उदारवादियों को ही प्रेरित नहीं किया वरन् प्रतिक्रियावादियों को अपने प्राचीन सिद्धान्तों, आदर्शों, मान्यताओं एवं परम्पराओं की रक्षा करने के लिए प्रोत्साहित किया। जर्मनी की इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि में जर्मनी के संघर्ष का शुभारम्भ हुआ, परिणामस्वरूप नैपोलियन का पतन हुआ।

जौलवेरिन (Zollverin)—आर्थिक तत्व ने जर्मनी के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। फ्रान्स के युद्धों और नैपोलियन के अभियानों के कारण प्रशा को अत्यधिक क्षतिपूर्ति करनी पड़ी थी। अस्तु प्रशा के ऊपर पर्याप्त ऋण का भार भी था। इस परिस्थिति में प्रशा के लिए आर्थिक पुनर्गठन की अतीव आवश्यकता थी। परिणामस्वरूप जौलवेरिन (Zollerin) नामक सीमा-शुल्क संघ स्थापित किया गया। जर्मनी के विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न सीमा-शुल्क प्रणालियाँ प्रचलित थीं। भिन्न-भिन्न सीमा-शुल्क पद्धतियाँ, औद्योगिक, शिल्प, व्यापारिक एवं वाणिज्यिक विकास में बाधक थीं। सोआबियावासी राष्ट्रवादी फ्रेडरिक लिस्ट (सन् 1789-1848) ने आर्थिक नीति को नई दिशा प्रदान की। उसने मत व्यक्त किया कि समस्त जर्मनी में एकरूपीय आर्थिक नीति प्रचलित होनी चाहिए। उसने मुक्त वाणिज्य नीति का समर्थन किया। उसने जर्मनी के उद्योगों की रक्षा के लिए संरक्षण

मूलक सीमा-शुल्क की व्यवस्था पर बल दिया। लिस्ट ने जर्मनी में रेल मार्ग के विस्तार का आग्रह किया। इसी कारण लिस्ट को "जर्मन रेलमार्ग का जनक" तक कहा जाता है। प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने अधिकांश जर्मन राज्यों के सीमा-शुल्क संघ (जौलवेरिन) की स्थापना में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह किया था। सन् 1818 में उसने प्रशा के विभिन्न प्रान्तों में स्थित सीमा-शुल्क चौकियों को समाप्त कर दिया। सन् 1833 तक उसने अनेक जर्मन शासकों के साथ परस्पर राज्यों के बीच सीमा-शुल्क समाप्त करने के समझौते किये। लिस्ट जौलवेरिन को जर्मन राष्ट्रीयता का प्रमुख तत्व मानता था। कैटलबी लिखता है, "जौलवेरिन के गठन ने भविष्य में प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया।"

सीमा-शुल्क संघ ने रेलवे, उद्योगों तथा बैंकिंग के विकास में अपूर्व योगदान दिया। परिणामस्वरूप प्रशा की अर्थव्यवस्था में पर्याप्त सुधार हुआ। सन् 1864 में डेनमार्क के विरुद्ध प्रशा के आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित सैन्य तन्त्र एवं युद्ध नीति के परिणामस्वरूप नाटकीय विजय हुई। सन् 1866 में हंगरी-आस्ट्रिया के विरुद्ध विजय तथा सन् 1870 में फ्रान्स के विरुद्ध विजय ने समस्त यूरोप को दिखा दिया कि विज्ञान ने युद्ध की प्रवृत्ति एवं प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर दिया था। रेल ने सेना व अस्त्र-शस्त्रों का द्रुतगति से तथा सहज ढंग से परिवहन किया और दूर तक मार करने वाले तोपखाने की पूर्वापेक्षा अधिक दूरी तक मार करने, निशाने तथा द्रुत गति से गोले दागने की क्षमता ही प्रशा की विजयों का प्रमुख कारण था। फ्रान्स की सेना का आकलन प्रशा की अतीत की शक्ति पर आधारित था, परिणामस्वरूप फ्रान्स की पराजय हुई।

प्रशा के फ्रेडरिक विलियम तृतीय का शासन प्रतिक्रियावादी था। 39 राज्यों का संघ अत्यधिक शिथिल था। संघ राज्य के लिए एक संसद की व्यवस्था थी। समस्त राज्यों के शासकों के मनोनीत व्यक्ति ही संसद के सदस्य थे। आस्ट्रिया इस संसद के अधिवेशनों की अध्यक्षता करता था। सदस्य राज्यों को किसी भी विदेशी शक्ति के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। केवल जर्मनी स्थित राज्यों की सुरक्षा को ध्यान में रखना आवश्यक था और यूरोपीय शक्तियों को भी सुरक्षा का आश्वासन देना पड़ता था। यथार्थ में आस्ट्रिया का प्रतिक्रियावादी प्रधानमन्त्री मैटरनिख ही आस्ट्रिया के हितों की सुरक्षा करते हुए इन राज्यों के विदेश सम्बन्धों को सुनिश्चित करता था। मैटरनिख सदैव छोटे राज्यों के समर्थन एवं सहयोग के लिए प्रयत्नशील रहता था। छोटे राज्य प्रारम्भ से ही प्रशा से ईर्ष्या एवं द्वेष रखते थे। यद्यपि इस संघ ने सदस्य राज्यों को अपने राज्य में प्रतिनिधि सरकार के गठन का वचन दिया था, परन्तु मैटरनिख ने इन राज्यों की प्रतिनिधि सरकार की आकांक्षा की पूर्ति के प्रयास को कुशलतापूर्वक असफल कर दिया। लगभग समस्त राज्यों के प्रेस तथा संसद पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे, जबकि पुलिस पूर्णतया निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थी। फ्रेडरिक विलियम तृतीय अपने राज्य की जनता को कुछ सुविधाएँ एवं अधिकार देना चाहता था परन्तु स्वभाव से इतना भीरू एवं निर्बल था कि मैटरनिख की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने का साहस नहीं था और मैटरनिख के श्रेष्ठ निर्णय तथा आस्ट्रिया के सम्राट की भावनाओं का सम्मान करना अपना सौभाग्य समझता था। बिस्मार्क ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि प्रशा की नीति वियाना में निर्धारित होती थी तथा सन् 1815 से 1850 के मध्य प्रशा से सम्बन्धित शायद ही कोई ऐसा विषय होगा, जिस पर आस्ट्रिया ने निर्णय नहीं किया हो।

इस अवधि में राष्ट्रीय और उदारवादी भावनाओं एवं सिद्धान्तों की चिंगारी अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी। सन् 1849 तक परिवर्तन आरम्भ हो गये थे। समस्त मध्य यूरोप में उदारवादी आकांक्षाओं को स्पष्ट तथा व्यापक रूप से अभिव्यक्त किया गया। प्रशा में राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ, जो सन् 1840 में अपने पिता फ्रेडरिक विलियम तृतीय की मृत्यु के उपरान्त सिंहासनारूढ़ हुआ था, अपने समस्त राज्य के लिए विभिन्न स्तरीय स्थानीय संसदों को एक संयुक्त संसद के रूप में सुदृढ़ कर रहा था। बेडन, वर्टनबर्ग, सैक्सोनी और वेरिया जैसे अनेक राज्य थे, जहाँ सरकारों का स्वरूप उदारवादी सिद्धान्तों, विचारों तथा आदर्शों के अनुरूप था। इन राज्यों में उदारवादी विचारधारा के व्यक्तियों को सरकार में मन्त्री पदों पर नियुक्त किया जा रहा था और प्रेस को पूर्वापेक्षा अधिक स्वतन्त्रता दे दी गयी थी। यत्र-तत्र बिखरे हुए अनेक विद्रोहों को रोकना, प्रशा तथा आस्ट्रिया दोनों के लिए असम्भव हो गया था। बर्लिन में उपद्रव हो गये। बर्लिन के उपद्रव ने विद्रोहों को उग्र रूप धारण करने से रोकने के लिए राजा को पर्याप्त सामाजिक एवं राजनीतिक सुविधाएँ देने के लिए बाध्य किया। उसने तत्कालीन संघ राज्य के स्थान पर संघीय जर्मन राज्य के पक्ष में मत व्यक्त किया और निर्वाचित संसद ने जर्मन राज्य के पक्ष में मत व्यक्त किया और निर्वाचित संसद ने प्रेस की स्वतन्त्रता, एक राष्ट्रीय नागरिकता तथा राष्ट्रीय सेना का आश्वासन दिया। इसके उपरान्त भी सड़कों पर उपद्रव आरम्भ हो गये और बर्लिन में अनेक स्थानों पर अवरोध स्थापित किये गये। इन घटनाओं ने राजा को उदारवादी सरकार के गठन के लिए बाध्य किया।

इस प्रकार तत्कालीन राज्य सरकारों की अवहेलना करते हुए निर्वाचित सदस्यों की नई राष्ट्रीय सभा का गठन किया गया। मई, 1848 में राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन फ्रैन्कफर्ट में आरम्भ हुआ। राष्ट्रीय सभा ने जर्मन संघ का संविधान बनाने का कार्य आरम्भ किया। राष्ट्रीय सभा के सदस्य लगभग एक वर्ष तक विचार-विमर्श करते रहे, परन्तु किसी एक योजना पर सहमति नहीं हुई। यह समय मूल अधिकारों के विषय पर ही व्यतीत हो गया। जब संविधान के प्रारूप को अन्तिम रूप दिया जा रहा था, तब राष्ट्रवादियों तथा उदारवादियों के विरुद्ध प्रतिक्रियावादी तत्व सक्रिय हो गये। सन् 1848 की ग्रीष्म ऋतु में प्रतिक्रियावादी तत्वों की भावनाओं के अनुरूप कार्य करना आरम्भ कर दिया। उदारवादी मन्त्रिपरिषद् के स्थान पर कट्टर रूढ़िवादी मन्त्रिपरिषद् का गठन किया गया। प्रशा एवं आस्ट्रिया में प्रतिक्रियावादी तत्वों की विजय ने फ्रैन्कफर्ट में राष्ट्रीय सभा में उदारवादी बहुमत की हास्यास्पद स्थिति कर दी। मार्च, 1849 में राष्ट्रीय सभा ने जर्मन राज्य का एक संघ बना लिया और प्रशा के राजा को एकीकृत जर्मन राज्य का सम्राट बनाने का निश्चय किया, परन्तु फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने प्रस्तावित राजमुकुट अस्वीकार कर दिया। **कैटलबी** उसकी मानसिक स्थिति का चित्रण करते हुए लिखता है, "वह एक सनकी व्यक्ति था। वह कभी भी एक विचार पर दृढ़ नहीं रह सकता था। यथार्थ में वह सद्विवेक वाला व्यक्ति था, परन्तु वह भीरू तथा शक्तिहीन था।" उसने निःसन्देह घोषणा की थी कि वह किसी कलंकित चर्मपत्र (संविधान) को लेकर स्वर्ग और अपने पवित्र देश के मध्य ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होने देगा जिससे उसके और प्रजा के मध्य सौहार्द्रपूर्ण मधुर सम्बन्धों का अन्त हो जाये।" इसी समय रूस के जार ने उसको कुछ चेतावनी भेजी। सन् 1849 में राजा ने फ्रैन्कफर्ट में निर्मित संविधान तथा सामाजिक राजमुकुट को अस्वीकार करके अनिश्चितता की स्थिति को समाप्त कर दिया। निःसन्देह उसके विचार उदारवादी थे और राष्ट्रवादियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थे। वह क्रान्ति से घृणा करता था, परन्तु

प्रशा को दिये गये आश्वासनों को कार्यान्वित करने की प्रबल इच्छा थी। इस घटना ने उदारवादियों तथा राष्ट्रवादियों की आकांक्षाओं को ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार जर्मनी में 1848 का उदारवादी आन्दोलन असफल हो गया।

यद्यपि फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ उदारवाद का कट्टर शत्रु बन गया, परन्तु प्रशा के नेतृत्व में जर्मन संघ राज्य बनाने का स्वप्न उसके मस्तिष्क में विद्यमान था। गणतन्त्रवादी विप्लवों का दमन करने के बाद अपनी अध्यक्षता में नवीन एवं परस्पर घनिष्ठ केन्द्रीय राज्य के गठन के लिए आस्ट्रिया के अतिरिक्त अन्य समस्त राज्यों को आमन्त्रित किया। 17 राजाओं ने उसके निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। प्रस्तावित जर्मन संघ राज्य की संसद का अधिवेशन मार्च, 1850 में एरफर्ट में आरम्भ हुआ। इस समय तक आस्ट्रिया देश के अन्दर रूढ़िवादी तत्वों की विजय को सक्रिय रूप से कार्यान्वित करने में सक्षम हो गया। आस्ट्रिया ने प्रशा से प्रस्तावित जर्मन संघ राज्य के विचार को त्यागने तथा सन् 1848 से पूर्व की स्थिति को पुनर्स्थापित करने का आग्रह किया। फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को भलीभाँति ज्ञात था कि जर्मनी के दक्षिण में स्थित राज्य, आस्ट्रिया में सम्मिलित हो जायेंगे। उसको रूस के हस्तक्षेप का भी भय था। इस प्रकार प्रशा ने आस्ट्रिया के आदेशों के अनुरूप कार्य करना स्वीकार कर लिया और नवम्बर, 1850 में ओल्मुट्ज (Olmutz) के स्थान पर एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि में प्रस्तावित जर्मन संघ को समाप्त करने तथा अतीत के जर्मन संघ राज्य (German Federation) को पुनर्स्थापित करने का प्रावधान था। इस प्रकार जर्मनी ने प्रतिक्रियावाद के समक्ष पराजय स्वीकार कर ली और स्वतन्त्रता और एकता के महान् आदर्श सदैव के लिए समाप्त प्रतीत हुए। आस्ट्रिया ने एक बार पुनः अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और परिसंघ के स्थान पर संघीय संसद को पुनर्स्थापित करके जर्मन एकता की समस्त योजनाओं को स्थगित कर दिया। इस प्रकार प्रशा ने रूस और आस्ट्रिया के समक्ष अपमानजनक रूप से आत्म-समर्पण कर दिया। कुछ समय के लिए प्रशा का आन्तरिक तथा यूरोपीय विषयों में प्रभाव बहुत कम हो गया।

यद्यपि राष्ट्रवादियों के प्रयास असफल हो गये थे, परन्तु अपनी असफलताओं से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की थीं। प्रशावासियों ने अनेक भ्रान्तियों तथा दिवास्वप्नों को समाप्त कर दिया और पूर्वपेक्षा अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण तथा गतिविधियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इस समय तक स्पष्ट हो चुका था कि संघीय संसद, जिसमें आस्ट्रिया का प्रभुत्व था, के माध्यम से किसी सुधार की अपेक्षा करना मात्र दिवास्वप्न है। यह भी निश्चित था कि अपने अधीन अनेक राज्यों वाला आस्ट्रिया कभी भी जर्मनी में राष्ट्रवाद का समर्थन नहीं कर सकता था। यह भी भलीभाँति विदित था कि वे कभी भी ऐसे आन्दोलन का समर्थन नहीं कर सकते थे जिससे उनका अस्तित्व संकट में पड़ने की बहुत सम्भावना थी। फ्रैन्कफर्ट संसद की असफलता से यह भी स्पष्ट हो चुका था कि राजाओं के नेतृत्व में जनान्दोलन द्वारा नवीन जर्मनी का निर्माण सम्भव नहीं था। इस प्रकार जर्मनी के एकीकरण के लिए अपेक्षित अति आवश्यक तत्व ज्ञात हो चुके थे। अस्तु पूर्व अनुभवों के आधार पर जर्मन संघ को भंग करना अनिवार्य हो गया था। जर्मनी के आन्तरिक विषयों में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप रोकना अति आवश्यक था। जर्मनी के एकीकरण से पूर्व जर्मनी स्थित अन्य राज्यों के साथ परस्पर सम्बन्धों में नये ढंग से समन्वय अनिवार्य था।

प्रशा का नेतृत्व (Leadership of Prussia)—इस महान् कार्य के लिए जर्मन राज्यों में प्रशा ही सर्वाधिक उपयुक्त था और अपनी असफलताओं के उपरान्त भी जर्मन एकता का

स्वाभाविक नेता माना जाता था। प्रशा अतीत में अपनी अनेक महान् उपलब्धियों के लिए विख्यात था। उसने नैपोलियन महान् के विरुद्ध राष्ट्रीय विरोध को उद्वेलित किया था और स्वतन्त्रता संघर्ष में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका ने उसको गौरवान्वित तथा राष्ट्रीय विजय के साथ सम्बद्ध किया था। सन् 1815 में राइन नदी के क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित करने के कारण प्रशा को वंशानुगत शत्रु फ्रान्स के विरुद्ध जर्मनी का संरक्षक माना जाता था। आस्ट्रिया अपने गैर-जर्मन अधीन क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं से अत्यधिक ग्रस्त था। अस्तु उसने विवश होकर निश्चित रूप से जर्मनी की समस्याओं की उपेक्षा करना आरम्भ कर दिया था। इसी प्रकार प्रशा जौलवेरिन (Zollverin) को प्रवृत्त करके आर्थिक एकीकरण के महत्वपूर्ण उपाय कर चुका था। इस दृष्टि से सफलता अर्जित कर चुका था, जबकि आस्ट्रिया के प्रयास विफल हो गये थे। जौलवेरिन के अन्तर्गत व्यापक सीमा-शुल्क संघ जर्मनी में प्रशा के आर्थिक नेतृत्व को स्थापित कर चुका था। प्रशा देश के लिए संविधान स्वीकृत कर चुका था तथा संसद स्थापित हो चुकी थी। इस प्रकार उदारवादियों की आकांक्षाओं को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला। इस दिशा में आस्ट्रिया से कोई आशा नहीं थी।

प्रशा ने अपनी आन्तरिक स्थिति को व्यवस्थित करने पर विशेष बल दिया। उदारवादी आन्दोलनों के दमन के उपरान्त जर्मनवासी आश्वस्त थे कि भविष्य में प्रशा ही जर्मन एकता के लिए उपयुक्त हो सकता था। उदारवादियों का ही नहीं वरन् रूढ़िवादियों का भी यही दृढ़ विश्वास था। रूढ़िवादियों ने उदारवादियों के राजनीतिक एवं आर्थिक सिद्धान्तों का विरोध करते हुए, उनकी देशभक्ति की उदात्त भावनाओं तथा उत्साह को स्वीकार किया था तथा आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रयुक्त किया था। जर्मनवासियों के स्वभाव, प्रवृत्तियों तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन सम्भवतः सन् 1848 की असफलताओं का सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक परिणाम था। यथार्थवाद एवं शक्ति पर पूर्वापेक्षा अधिक विश्वास था। सन् 1848 में इटली की अपेक्षा उदारवाद तथा संसदीय प्रणाली की असफलता पूर्ण थी। अस्तु जर्मनी में उदारवाद एवं संसदीय प्रणाली में अविश्वास के साथ इनको जनता अपशकुन मानती थी, परन्तु प्रशा को नवीन जर्मनी की स्पष्ट रूप से एक महत्वपूर्ण शक्ति बनने के लिए पुनर्गठन करने की अतीव आवश्यकता थी।

उल्लेखनीय है कि सन् 1848-50 की घटनाओं में संसदीय प्रणाली की अपेक्षा सेना को अन्ततोगत्वा विजय मिली थी, जब उत्साही मध्यमवर्गीय प्रतिनिधियों की सभाओं ने विचार-विमर्श समाप्त कर लिया था। रूस, प्रशा एवं आस्ट्रिया की व्यावसायिक सेनाओं ने अपने व्यावसायिक जनरलों के नेतृत्व में यूरोप के भाग्य का निर्णय किया था। यह स्पष्ट हो गया था कि भविष्य में सरकार अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनी संगठित सैन्य शक्ति पर पूर्वापेक्षा अधिक विश्वास करेगी। बिस्मार्क का विश्वविख्यात रक्त और लोहे (तलवार) का युग आरम्भ हो गया था। इन समस्त कारणों से क्रान्ति के युग के निरन्तर में सत्ता और यथार्थवाद तथा कूटनीति और युद्ध का युग आरम्भ हो गया था। इन्हीं परिस्थितियों में अन्ततोगत्वा इटली और जर्मनी का एकीकरण हुआ।

प्रशा में नवयुग (A New Age in Prussia)—यद्यपि जर्मनी में प्रतिक्रियावादी विजयी हुए थे। सन् 1850 के अन्त के पूर्व ही आकाश में प्रातःकालीन अरुणिमा का संकेत मिलने लगा था। यूरोप की बाह्य स्थिति जर्मनी के पक्ष में हो रही थी। क्रीमिया युद्ध ने यूरोप में निरंकुशतावाद के प्रबल समर्थक रूस की शक्ति को क्षीण कर दिया था। रूस एवं आस्ट्रिया

के परस्पर सम्बन्ध अत्यधिक कटु तथा शत्रुतापूर्ण हो गये थे। अस्तु आस्ट्रिया जर्मनी की एकता का विरोध करने के लिए रूस के समर्थन पर निर्भर नहीं रह सकता था। प्रशा ने रूस और आस्ट्रिया के शत्रुतापूर्ण सम्बन्धों का सर्वाधिक कूटनीतिक लाभ लिया और आस्ट्रिया के विरुद्ध अपनी योजनाओं के प्रतिं रूस की तटस्थता का आश्वासन प्राप्त कर लिया था। नवोदित बोनापार्टवाद (नैपोलियन तृतीय का शासन) राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति अधिक सहृदय तथा मित्रवत् था। राष्ट्रीय उद्देश्यों की सफलता के लिए सर्वविदित नैपोलियन तृतीय की सहानुभूति का प्रशा ने अपने लाभ के लिए पूर्णरूप से शोषण किया।

प्रशा में आन्तरिक परिवर्तन भी समान रूप से महत्वपूर्ण था। प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की भीरुता, दुर्बलता, अस्थिर तथा चंचल नीति के परिणामस्वरूप प्रशा की अपमानजनक स्थिति हुई थी। उसमें दृढ़ इच्छाशक्ति तथा दृढ़ निश्चय का सर्वथा अभाव था और अपने स्वच्छन्दतावादी तथा कल्पनाशील प्रवृत्ति एवं स्वभाव में भी वह होहेनजोलर्न (Hohenzollern) शासकों के अनुरूप नहीं था। वह पागल हो गया और उसका भाई विलियम सन् 1858 में प्रशा का संरक्षक बना और सन् 1861 में राजा बन गया।

विलियम प्रथम के सिंहासनारोहण से प्रशा के इतिहास में नये युग का शुभारम्भ हुआ। सन् 1861 में सिंहासनारोहण के समय 64 वर्षीय विलियम का जन्म सन् 1797 में विख्यात रानी लूसी के पुत्र के रूप में हुआ था। उसने सन् 1814 में नैपोलियन के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया था। उसका समस्त जीवन सेना में व्यतीत हुआ था और वह अपने सैन्य जीवन से अत्यधिक प्रेम करता था। सैन्य विषयों में उसका परिपक्व ज्ञान एवं क्षमता सर्वमान्य एवं सर्वविदित थी। उसकी स्वयं की स्थिर एवं सन्तुलित बुद्धि थी। सैनिक के सदृश उसने प्रशिक्षण लिया था, अस्तु उसमें सैनिकों के अनुरूप प्रत्यक्ष कार्यवाहियों, पद्धतियों, व्यावहारिक विषयों तथा दृढ़ निश्चयों में पूर्ण आस्था एवं विश्वास था। उसका शक्तिशाली निरंकुशता में प्रबल विश्वास था और राजा के विशेषाधिकारों को बनाये रखने के लिए वचनबद्ध था। प्रशा के समस्त विशिष्ट गुण उसमें विद्यमान थे और देश के भाग्य तथा लक्ष्य में पूर्ण आस्था थी। उसके निर्णयों में कभी त्रुटि अथवा भूल की सम्भावना नहीं होती थी। राज्य के लिए निष्ठावान, कर्तव्यपरायण, चतुर एवं परिश्रमी कर्मचारी चुनने में निपुण था और बुद्धिमत्तापूर्वक उनका पूर्ण विश्वास करता था और उन्हीं की सहायता से अपने भाई फ्रेडरिक की अपेक्षा अधिक महान् विजय प्राप्त करने में सफल हुआ। उसके आगमन से प्रशा की आन्तरिक तथा विदेश नीति में नई शक्ति तथा उत्साह का आविर्भाव हुआ।

सेना का पुनर्गठन (Reorganisation of the Army)—विलियम प्रथम अपने विश्वासों तथा आस्थाओं की दृष्टि से सत्य अर्थ में होहेनजोलर्न वंशीय शासक था। प्रशा का भाग्य उसकी सेना पर निर्भर था। अस्तु वह राज्य की सैन्य शक्ति को सुसंगठित, प्रशिक्षित, सुसज्जित तथा अनुशासित करने के लिए कृत संकल्प था। ओल्मुट्ज के अपमान ने सैनिक तैयारियों की आवश्यकता का बोध कराया था। उसको भलीभाँति ज्ञात था कि जर्मनी में नेतृत्व के लिए सुदृढ़ सैन्य-शक्ति अति आवश्यक थी। उसने सन् 1849 में लिखा था, "जो कोई जर्मनी पर शासन करना चाहता है, उस पर विजय प्राप्त करना चाहिए और वह कहावतों से नहीं किया जा सकता है।" विलियम प्रथम एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वान सुबेल (Von Subel) लिखता है, "उसमें ईश्वर प्रदत्त अद्भुत प्रतिभा थी जिसके कारण उसको ज्ञात हो जाता था कि क्या प्राप्त किया जा सकता है और क्या असम्भव है। उसके विचारों में पूर्ण

स्पष्टता थी। परिणामस्वरूप वह श्रेष्ठ व्यक्तियों का विचित्र पारखी था।" अब जर्मनी के एकीकरण में व्यक्तियों की विशिष्ट भूमिका का सूत्रपात हुआ। उसने प्रतिभा सम्पन्न वोन मोटके (Von Moltke) को सर्वोच्च सेनाध्यक्ष नियुक्त किया। उसने कालान्तर में अपने समय के सर्वोत्कृष्ट युद्धनीतिज्ञ के रूप में ख्याति अर्जित की। इसके बाद उसने वोन रून (Von Roon) को अपने युद्धमन्त्री के पद पर नियुक्त किया। उसमें संगठनकर्ता की उत्कृष्ट योग्यता थी। दोनों ही, विशेष रूप से वोन रून, राजनीति में कट्टर रूढ़िवादी थे और दोनों ने विलियम प्रथम की निरंकुशता तथा सैन्यवाद की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। बिस्मार्क के साथ इन दोनों प्रतिभाओं को प्रशा को यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बनाने का श्रेय दिया जाता है।

प्रशा की सेना का सन् 1814 के उपरान्त पुनर्गठन नहीं हुआ था। प्रशा की कुल जनसंख्या उस समय से दुगुनी हो गयी थीं, परन्तु वार्षिक सैनिकों की भर्ती की संख्या पूर्ववत् थी। विलियम प्रथम ने सेना में क्रान्तिकारी सुधार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। वह अपनी सैन्य शक्ति को दुगुना करना चाहता था। उसकी सैनिक योजनाओं में करों की वृद्धि तथा सैन्य व्यय में वृद्धि का प्रावधान था। उदारवादी, जिनका प्रशा की संसद में प्रभुत्व था, सैन्य सुधारों से पूर्व संवैधानिक सुधारों के लिए दृढ़ निश्चय कर चुके थे। अस्तु विलियम प्रथम के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। संसद के उदारवादी सदस्य संवैधानिक राजतन्त्र के साथ उत्तरदायी संसदीय सरकार के गठन के लिए उत्सुक थे। उनका विश्वास था कि सैन्य सुधारों के लिए वित्तीय स्वीकृति को रोककर, अपनी इच्छानुसार संविधान में परिवर्तन करने के लिए विलियम प्रथम को विवश कर सकते थे। राजा और उसके मन्त्रियों को परेशान करने के उद्देश्य से नरम दल (Moderates) के लोग गणतन्त्रवादी उदारवादियों के साथ सम्मिलित हो गये। संसद ने सैनिक आय-व्ययक (बजट) को स्वीकार करने से मना कर दिया। विलियम प्रथम ने संसद को भंग कर दिया और नये चुनाव करवाये, परन्तु विलियम प्रथम की आशा के प्रतिकूल संसद में उदारवादियों का पूर्वापेक्षा अधिक बहुमत हो गया। संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया और सन् 1862 में संसद में उदारवादियों ने पूर्वापेक्षा अधिक बहुमत से सेना के लिए आवश्यक धन की माँग को अस्वीकार कर दिया। अतः संकट अत्यधिक गम्भीर हो गया। यह संकट सर्वाधिक विकट संवैधानिक संघर्ष में विकसित हो गया। इस संघर्ष में मूल प्रश्न था कि राज्य में सर्वोच्च सत्ता राजा अथवा संसद किस व्यक्ति अथवा संस्था में निहित हो। राजा का अपने निर्णयों के अनुसार कार्य करने के लिए दृढ़ निश्चय था। उसने विचार व्यक्त किया कि वह अपने चिर-आकांक्षित सुधारों को त्यागने की अपेक्षा राजतन्त्र त्याग देगा। उसने पद त्यागने का पत्र लिख दिया और हस्ताक्षर करके मेज पर रख दिया। ऐसी स्थिति में वोन रून ने विलियम प्रथम को बिस्मार्क, जो इस समय फ्रान्स में प्रशा का राजदूत था, को अपना प्रधानमन्त्री (चान्सलर) नियुक्त करने का परामर्श दिया। विलियम प्रथम हृदय से बिस्मार्क के पक्ष में नहीं था, परन्तु इस विकट स्थिति में संसद के विरुद्ध राजा की भावनाओं एवं विचारों का समर्थन करने की एकमात्र बिस्मार्क में ही योग्यता एवं क्षमता थी। विलियम प्रथम ने तार देकर बिस्मार्क को पेरिस से बुलाया और 23 सितम्बर, 1862 को अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। बिस्मार्क ने राजा को आश्वासन दिया कि "श्रीमान के साथ नष्ट हो जाऊँगा परन्तु संसद के साथ संघर्ष में आपका परित्याग नहीं करूँगा।" उसकी साहसिक दृढ़ता से प्रसन्न होकर पद त्याग देने का पत्र फाड़कर फेंक दिया। राजतन्त्र के प्रबल समर्थक होने के कारण उसको मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। विलियम प्रथम के

अब तक के समस्त निष्कर्षों में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। बिस्मार्क ने पद स्वीकार करते हुए राजा की नीतियों को कार्यान्वित करने की प्रतिज्ञा की। अन्ततोगत्वा बिस्मार्क के मार्गदर्शन में जर्मनी की चरम उपलब्धि एकीकरण हुआ।

बिस्मार्क और जर्मनी का एकीकरण
(BISMARCK AND UNIFICATION OF GERMANY)

अब यूरोपीय राजनीति के मंच पर अवतरित होने वाला व्यक्ति सर्वाधिक मौलिक एवं इस शताब्दी का अद्वितीय चरित्र था। सन् 1862 से सन् 1870 तक की अवधि में बिस्मार्क समस्त यूरोपीय कूटनीतिक तथा राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र-बिन्दु था। यूरोप की राजनीति उसके चारों ओर घूम रही थी। उसकी कूटनीतिक गतिविधियों ने गति से विभिन्न युद्धों में पहली बार वास्तविक राजनीति के विभिन्न पक्षों, सुनियोजित कार्यवाही, प्रशासनिक व्यवस्था में बुद्धि संगत तथा सुनिश्चित निर्णयों, राजनीतिक विषयों में अपेक्षित कुशलता, बुद्धिमत्ता, स्पष्टता तथा चतुरता को व्यावहारिक रूप प्रदान किया था। यथार्थ में बिस्मार्क की व्यावहारिक राजनीतिक शासन कला तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों की उत्पत्ति थी। सन् 1815 से सन् 1848 तक के विभिन्न विद्रोहों ने उदारवाद की रिक्तता (खोखलेपन) तथा राष्ट्रवाद की अन्तर्निहित दुर्बलता को अभिव्यक्त कर दिया था। तत्कालीन परिस्थितियों का यही वास्तविक स्वरूप था।

ओटो एडवर्ड लियोपोल्ड वोन बिस्मार्क (Otto Edward Leopold Von Bismarck) का जन्म 1 अप्रैल, 1815 को बर्लिन के पश्चिम में 40 मील दूर स्थित ब्रेडनबर्ग (Brandenburg) के एक पुराने कुलीन परिवार में हुआ था। उसके जन्म के तत्काल बाद उसके परिवार ने प्रशा राज्य के पोमेरेनिया प्रान्त में स्थित नीपहाफ (Kniephof) में रहना आरम्भ कर दिया था। यहाँ प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। निशानेबाजी, घुड़सवारी तथा तैराकी में विशेष अभिरुचि थी। उसके प्रारम्भिक जीवन से उसकी भावी महानता का कोई संकेत नहीं मिलता है। गोटिजन तथा बर्लिन विश्वविद्यालयों में उसने तीन वर्ष तक अध्ययन किया, परन्तु किसी विशेष प्रतिभा का परिचय नहीं दिया। वह उपद्रव, कोलाहल, मदिरापान, अशिष्टता तथा अनुशासनहीनता के लिए विद्यार्थी जीवन में कुख्यात था। शिक्षा समाप्ति के उपरान्त उसने प्रशा के न्याय विभाग में न्यायिक पद से जीवन आरम्भ किया। न्यायिक सेवा के शुष्क एवं नीरस जीवन से क्षुब्ध होकर अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। अपने अल्पकालीन सेवाकाल में अपने अनुभवों से अपनी बुद्धि को कुशाग्र किया था। लम्बी चोटी तथा बालों की चोटी जैसे महत्वहीन विषयों से सम्बन्धित जटिल विवाह प्रक्रिया ने सेवा के प्रति विरक्ति उत्पन्न कर दी थी। सन् 1839 में अपनी जागीर नीपहाफ़ में जाकर भूमि की व्यवस्था में व्यस्त हो गया। इस सम्बन्ध में उसने मत व्यक्त किया, "मेरा विचार है कि कृषि कार्य में सफलता अर्जित करने के उपरान्त जीवनपर्यन्त ग्रामीण जीवन व्यतीत करूँ और ग्राम में ही मृत्यु का वरण करूँ और युद्ध की स्थिति में युद्धभूमि में शहीद हो जाऊँ।" उसने आठ वर्ष तक कृषि सम्बन्धी ज्ञानार्जन किया, विदेशों की व्यापक यात्रा की और प्रशा की सक्रिय राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया। प्रारम्भ में वह गणतान्त्रिक विचारों, सिद्धान्तों एवं आदर्शों का प्रबल समर्थक था परन्तु ट्रीगलाफ (Trieglaft) समिति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध के परिणामस्वरूप उसके विचारों एवं दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ और वह कट्टर रूढ़िवादी हो गया। बिस्मार्क जन्म से प्रशा के सर्वाधिक प्रभावशाली-

सामाजिक वर्ग का था। उसके पूर्वजों का अनेक शताब्दियों का समय अपनी जागीर की व्यवस्था तथा होहेनजोलर्न राजवंश की सेवा में ही व्यतीत हुआ था। अस्तु बिस्मार्क का व्यक्तित्व अपनी वर्गगत कुलीन तन्त्रीय आस्थाओं, सिद्धान्तों, एवं परम्पराओं तथा नैपोलियन के शासन से मुक्ति प्रयासों के लिए प्रशा के प्रशासनिक तन्त्र द्वारा उद्वेलित उत्साही देशभक्ति की पवित्र भावनाओं का अद्भुत सम्मिश्रण था।

सन् 1847 में बिस्मार्क का जोहानो पुट्टकेमर (Johanno Puttkamer) के साथ विवाह हुआ और इसी के साथ उसने प्रशा की राजनीति में प्रवेश किया। वह प्रशा की संयुक्त संसद का सदस्य बन गया। सन् 1847 से सन् 1851 का समय यथार्थ में प्रशा के इतिहास निर्माण का समय था। संसद की संकटकालीन स्थिति में वह सदैव क्रान्ति विरोधी रहा और अपनी कटु, ओजस्वी एवं तीव्र प्रतिक्रियावादी आलोचनाओं के लिए विख्यात था। उसने लोकतन्त्र तथा उदारवाद की कटु आलोचना की और प्रशा के राजतन्त्र के हितों का प्रबल समर्थन किया। उसने प्रश.. के जर्मनी में विलय तथा प्रशा के राजतन्त्र द्वारा लोकतन्त्र अथवा संविधानवाद के साथ समझौते की किसी भी योजना का सदैव तीव्र विरोध किया। अस्तु उसने फ्रैन्कफर्ट संसद द्वारा संवैधानिक आधार पर जर्मनी के एकीकरण के प्रयासों का उपहास किया। फ्रैन्कफर्ट की संसद द्वारा प्रस्तावित राजमुकुट की फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ द्वारा अस्वीकृति का बिस्मार्क ने प्रबल समर्थन किया था, विशुद्ध जर्मन संघ राज्य की एरफर्ट संसद की असफलता पर प्रसन्नता व्यक्त की और ओल्मुट्ज़ में आस्ट्रिया की विजय का अनुमोदन किया था। सन् 1850 में जब प्रशा के राजा ने प्रशा के लिए संविधान स्वीकृत किया था, बिस्मार्क अत्यधिक क्रुद्ध हो गया था। कैवोर, इंगलैण्ड के संसदीय शासन को अपना आदर्श मानता था। बिस्मार्क कहता था, "इंगलैण्ड का उल्लेख करना हमारा दुर्भाग्य है।" बिस्मार्क के राजनीतिक विचार प्रशा के राजतन्त्र में कट्टर निष्ठा में केन्द्रित थे। यह प्रशा के राजा थे, प्रशा की जनता नहीं जिन्होंने प्रशा को महान् बनाया। बिस्मार्क जैसे संसद एवं संविधान से घृणा करता था, उसी प्रकार लोकतन्त्र से घृणा करता था। बिस्मार्क कहता था, "मैं प्रशा का सम्मान लोकतन्त्र के साथ लज्जाजनक मिलन से लेकर समस्त चीजों से पहले प्रशा के संयम में देखता हूँ।" उसकी कट्टर राजतन्त्र समर्थक नीति के लिए उसको सन् 1851 में फ्रैन्कफर्ट संसद के लिए प्रशा के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्ति द्वारा पुरस्कृत किया गया था।

यथार्थ में बिस्मार्क एक ओजस्वी वक्ता, कटु आलोचक, निर्भीक, साहसी, लोकतन्त्र तथा उदारवाद का कट्टर विरोधी तथा अनुदार नीतियों एवं रूढ़िवाद का प्रबल समर्थक था। उसने तत्कालीन परिस्थिति पर कटाक्ष करते हुए कहा था, "मैं इस युग की उस भावुकता से भयभीत हूँ जिसमें प्रत्येक उत्साही और उपद्रवी विद्रोही को सच्चा देशभक्त समझा जाता है। क्रान्तिकारियों की चाटुकारी करना अथवा उनको सुविधाएँ देना घोर पाप है और मैं उसे लज्जाजनक कायरता मानता हूँ।"

बिस्मार्क ने फ्रैन्कफर्ट की संसद में सन् 1851 से आठ वर्ष तक प्रशा का प्रतिनिधित्व किया और यह अवधि यथार्थ में उसके राजनीतिक जीवन के निर्माण की अवधि थी। इसी काल में उसने कूटनीति के सिद्धान्तों का गहन अध्ययन किया और उनको सफलतापूर्वक कार्यान्वित करना सीखा। इसी कला के माध्यम से उसने भविष्य में अनेक महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं। उसने जर्मन राजनीति का विशद ज्ञान प्राप्त किया। इससे उसको प्रशा की विभिन्न समस्याओं को वृहत परिप्रेक्ष्य तथा व्यापक दृष्टिकोण से समझने में सहायता मिली। वह अपने

विचारों में आस्ट्रिया विरोधी बन गया। सन् 1853 में उसने कहा था कि जर्मनी में प्रशा और आस्ट्रिया दोनों के लिए स्थान नहीं था, किसी एक को झुकना चाहिए।

फ्रैन्कफर्ट में संसद सदस्य के रूप में वह अस्तित्व को बनाये रखने तथा व्यक्तित्व की छाप छोड़ने की कला में पारंगत था। उसको ज्ञात हो चुका था कि प्रशा के हित जर्मनी की शक्ति के साथ सम्बद्ध थे और आस्ट्रिया के हित जर्मनी की निर्बलता में सुरक्षित थे। उसने विचार व्यक्त किया कि आस्ट्रिया की तथाकथित श्रेष्ठता को सिगार जलाने के समान चुनौती दी जा सकती थी और हैप्सबर्ग वंश की कोट बदलने की तरह अवहेलना की जा सकती थी। फ्रैन्कफर्ट में उसने अनुभव किया कि प्रशा को किसी भी अन्य जर्मन की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ नहीं समझा जाता है और आस्ट्रिया की भी प्रशा के साथ समान स्तर पर व्यवहार करने की वास्तविक इच्छा नहीं थी। यहीं उसको ज्ञात हुआ कि जर्मनी के अधिकांश छोटे-छोटे राज्य पूर्णतया आस्ट्रिया के समर्थन पर निर्भर थे और सदैव उसका अधिकाधिक समर्थन प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते थे, जबकि आस्ट्रिया की नीति इन राज्यों की यथास्थिति बनाये रखने की थी। ये छोटे-छोटे राज्य अपना व्यक्तिगत अस्तित्व बनाये रखने के लिए कटिबद्ध थे और प्रशा, जो संयुक्त जर्मन की भावना को कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्नशील था, के प्रति अत्यधिक सन्देह, शंका तथा भय था। उनको पूर्ण आशंका थी कि संयुक्त जर्मनी में उनका अस्तित्व सदैव के लिए विलीन हो जायेगा। अस्तु बिस्मार्क ने फ्रैन्कफर्ट में आस्ट्रिया विरोधी भावनाओं को विकसित किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि "आस्ट्रिया और प्रशा के लिए जर्मनी अत्यधिक संकीर्ण है।" जर्मनी के एकीकरण के मार्ग में मूल समस्या आस्ट्रिया के निष्कासन की थी और दूसरी प्रमुख समस्या जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों के संकीर्ण, सीमित एवं स्वार्थी दृष्टिकोण की थी। अतः फ्रैन्कफर्ट में संसद सदस्य के रूप में जीवन के आरम्भ से उसने प्रशा को समान स्तर प्रदान करने के लिए अथक प्रयास किया तथा उसका दृष्टिकोण एवं गतिविधियाँ सदैव आस्ट्रिया को उत्तेजित करने वाली थीं। प्रारम्भ में बिस्मार्क प्रशा और आस्ट्रिया के परस्पर सहयोग से जर्मनी में क्रान्ति का उन्मूलन करना चाहता था, परन्तु फ्रैन्कफर्ट में ही उसे ज्ञात हुआ था कि आस्ट्रिया, प्रशा को समान स्तर नहीं देना चाहता और जर्मनी में प्रशा के प्रभाव को रोकने के लिए कटिबद्ध था। परिणामस्वरूप बिस्मार्क के दृष्टिकोण और नीतियों में आमूल परिवर्तन हुआ था।

उसने फ्रैन्कफर्ट संसद की भीषण पीड़ाओं और कष्टों के प्रति घृणा व्यक्त की थी। उसने दावा किया था कि जर्मनी दक्षिण जर्मन अराजकता की दुर्गन्धित खमीर में डूबा हुआ था और आशंका व्यक्त की कि पूर्वजों का प्रशावाद संकरजातीय (दोगले) जर्मन एकता में घुल जायेगा। उसने मत व्यक्त किया, "प्रशा का सम्मान (प्रतिष्ठा) प्रशा द्वारा समस्त जर्मनी में रोगग्रस्त जनोत्तेजकों के लाभ के लिए डान क्विजोट (Don Quixote) के खेल में निहित नहीं है। जनोत्तेजक अपने संविधान को संकट में समझते हैं।" सन् 1848-49 की क्रान्ति काल में बिस्मार्क ने प्रशा राज्य की उदारवादियों के विरुद्ध निरन्तर रक्षा की थी। तत्कालीन महान् प्रश्नों का निर्णय भाषणों अथवा बहुमत से नहीं हो सकता, वरन् रक्त और लोहे (तलवार) से हो सकता है। यह सन् 1848-49 की क्रान्ति की भयंकर भूल थी, किन्तु अब हम उसकी पुनरावृत्ति नहीं करेंगे। उसके यथार्थवाद और सफलता का यही सार अथवा मूलमन्त्र था।

सर्वविदित है कि प्रशा के इतिहास में सर्वाधिक संकटकालीन स्थिति में बिस्मार्क को मार्गदर्शन के लिए बुलाया गया था। राजा और संसद के मध्य क्रोधावेश में गतिरोध हो गया था और दबंग निरंकुशतावादी बिस्मार्क का स्वेच्छाचारी संसद पर अंकुश लगाने के लिए ही

आह्वान किया गया था। बिस्मार्क उस समय तक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका था कि जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रशा में एक शक्तिशाली सेना का होना आवश्यक है। अस्तु वह हृदय से विलियम प्रथम की सैनिक नीति का समर्थन करता था। वह प्रशा में संवैधानिक संघर्ष को विशाल समस्या, जिसका समाधान प्रशा के बाहर युद्ध तथा कूटनीति के माध्यम से होना था, का एक अंग मानता था। उसने अनुभव किया कि संसद की विजय उसके निर्धारित लक्ष्य के लिए घातक सिद्ध होगी। प्रगतिशील, जो उदारवादियों के रूप में लोकप्रिय थे, उसकी महत्वाकांक्षी योजनाओं और साहसिक गतिविधियों का समर्थन नहीं करेंगे। अस्तु उसने सैन्य सुधार की योजनाओं को कार्यान्वित करने के दृढ़ निश्चय के साथ संसद के संघर्ष में सक्रिय भाग लिया और जर्मनी में उदारवाद की अपेक्षा 'सत्ता और शक्ति की नीति' की घोषणा की। प्रधानमन्त्री पद ग्रहण करते समय बिस्मार्क का विचार और दृष्टिकोण स्पष्ट था तथा सुनिश्चित लक्ष्य था। प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण होना चाहिए। उसके लिए संयुक्त जर्मनी का अर्थ प्रशा की सभ्यता एवं संस्कृति के पूर्ण प्रभुत्व वाले जर्मनी से था। जब तक आस्ट्रिया प्रशा की योजनाओं तथा प्रयासों का विरोध करता रहेगा, जर्मनी में प्रशा के नेतृत्व की सम्भावना नहीं थी। अस्तु आस्ट्रिया का निष्कासन आवश्यक था। आस्ट्रिया स्वेच्छा से जर्मनी पर अपने प्रभुत्व का परित्याग करने के लिए तत्पर नहीं था। परिणामस्वरूप युद्ध ही अनिवार्य था। प्रशा के राजतन्त्र के प्रति निष्ठावान प्रधानमन्त्री बिस्मार्क का यह दृढ़ मत था और इसी के अनुरूप उसको अपनी नीतियों का निर्धारण करना था और उनको सफलतापूर्वक कार्यान्वित करना था।

यद्यपि बिस्मार्क की उदारवादियों तथा लोकतन्त्रवादियों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी, परन्तु वह उत्कट देशभक्त था और राजतन्त्र में गहन आस्था थी। इस चेतना एवं भावना के साथ उसने सर्वप्रथम प्रशा राज्य की आन्तरिक स्थिति तथा जर्मनवासियों की अन्तर्निहित उद्दीप्त देशभक्ति की भावनाओं पर विशेष ध्यान दिया। विचित्र विरोधाभास था कि राष्ट्रीयता का लक्ष्य प्रान्तीयता के माध्यम से ही सम्भव था और केवल एकमात्र राज्य प्रशा के शक्तिशाली होने के उपरान्त जर्मनी के अन्य राज्य स्वतः ही प्रशा में विलीन हो गये और जर्मनी का एकीकरण हो गया। जर्मनी का अस्तित्व प्रशा में निहित था। इस प्रकार जर्मनी का प्रशा में विलय हुआ था, प्रशा का जर्मनी में विलय नहीं हुआ था। जर्मनी प्रशा की राजधानी बर्लिन की ओर गया जबकि इटली में सार्डीनिया रोम की ओर गया।

बिस्मार्क ने जर्मनी में सीमा-शुल्क संघ जौलवेरिन में आस्ट्रिया के प्रवेश को भी रोका तथा क्रीमिया युद्ध के समय प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की आस्ट्रिया समर्थक नीति का विरोध किया। यथार्थ में आस्ट्रिया अपने महत्व को बनाये रखने के लिए जौलवेरिन में प्रवेश करना चाहता था अथवा इसको नष्ट कर देना चाहता था। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के प्रयास को प्रभावशाली ढंग से विफल कर दिया और प्रशा की आस्ट्रिया समर्थक नीति को भी रोकने में बहुत अंशों तक सफल हुआ। बिस्मार्क का दृष्टिकोण अत्यधिक साहसी, निर्भीक, स्वतन्त्र एवं आस्ट्रिया विरोधी था, जबकि फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ आस्ट्रिया के साथ, मधुर एवं सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध रखना चाहता था। अस्तु प्रशा के राजा ने जनवरी, 1859 में बिस्मार्क को रूस में प्रशा के राजनयिक नियुक्त करके सेन्ट पीटर्सबर्ग स्थानान्तरित कर दिया। बिस्मार्क ने रूस में जार अलेक्जेण्डर द्वितीय के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित किये और राजनयिक की भूमिका में उसने रूस और प्रशा के सम्बन्ध स्थापित किये और रूस और प्रशा के सम्बन्धों को अत्यधिक सुदृढ़ किया जो भविष्य में अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुए। तदुपरान्त बिस्मार्क

को कुछ काल के लिए फ्रान्स में राजनयिक नियुक्त किया गया। यहाँ उसे फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन तृतीय के व्यक्तित्व के विविध रूपों की जटिलताओं का गहन एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन करने तथा उनका वस्तुस्थिति के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

मिथ्या तथा अर्द्धमिथ्या का चतुर खेल खेलते हुए अर्जित ज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण था "कालान्तर में जनमत की निष्ठा, समाचार-पत्रों, पत्रकारिता, जिसको खरीदा जा सकता था, अधिकृत प्रेस ब्यूरो के समस्त काले जादू, मिथ्याओं के प्रचार द्वारा कूटनीतिक सर्वेक्षणों प्रतिबद्ध स्वतन्त्र पत्रिकाओं में लिखाये हुए गद्य खण्डों को सम्मिलित करके जन भावनाओं की कटु आलोचनाओं के प्रति उल्लेखनीय घृणा थी। यह सब उसके फ्रैन्कफर्ट काल में मिल सकता है।" राजा के संसद के साथ संघर्ष के विकट समय में बिस्मार्क ने फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की रक्षा करने के लिए बर्लिन से कृषक लाने का प्रस्ताव रखा था, और राजा ने प्रशा को संविधान स्वीकार करने का वचन दिया। बिस्मार्क ने दो मतों के अल्पमत में विरोध किया।

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि बिस्मार्क, जो प्रशा को चरमोत्कर्ष पर ले गया, अब वह नहीं था जो सन् 1850 तक था। प्रशा ने आत्म-विश्वास के अतिरिक्त अन्य समस्त क्षेत्रों में सन् 1850 के उपरान्त पर्याप्त उन्नति की थी। सन् 1850 तक स्टेन (Stain) और स्कार्नहोर्स्ट के कार्य ने प्रशा की आन्तरिक अर्थव्यवस्था को असैनिक तथा सैनिक आधार पर व्यवस्थित किया था। वोन रून के परामर्श पर विलियम प्रथम ने बिस्मार्क का आह्वान किया था। विलियम प्रथम हृदय से अपनी समस्त योजनाओं, कार्यक्रमों और नीतियों को बिस्मार्क जैसे दूरदर्शी व्यापक दृष्टिकोण, स्वतन्त्र विचारों वाले शक्तिशाली, साहसी, निर्भीक तथा कठोर निर्णायक व्यक्ति के हाथों में नहीं देना चाहता था, परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में अन्य कोई विकल्प नहीं था। रानी भी उसके विरुद्ध थी, परन्तु परिस्थितियों के अनुकूल कार्य करने में दक्ष एवं कुशल व्यक्ति की सेवाओं को लेना ही समय की आवश्यकता थी। तत्कालीन निराशाजनक स्थिति में बिस्मार्क ही एकमात्र उपचार, समस्याओं का सम्भव समाधान था। संसद के विरुद्ध राजा के समर्थन में खड़ा होने वाला, योग्य, कुशल तथा दृढ़ इच्छाशक्ति वाला बिस्मार्क ही एकमात्र व्यक्ति था। उसने स्वयं कहा, "उसके साथ नष्ट होने का विचार मेरे जीवन का स्वाभाविक तथा अनुकूल निष्कर्ष प्रतीत हुआ।"

बिस्मार्क के प्रशा के प्रधानमन्त्री (चान्सलर) बनने के साथ ही राजा और संसद के मध्य सम्बन्ध-विच्छेद पूर्ण हो गया। राजा के मन्त्रियों ने तथाकथित 'मुहावरों के घर' (House of Phrases) अर्थात् संसद के अधिवेशनों में भाग नहीं लिया। विलियम प्रथम की व्यक्तिगत भावनाएँ इतनी अधिक बिस्मार्क के विरोध में थीं, कि उसके मित्रों ने उसको अपनी सम्पत्ति अपने भाई के नाम स्थानान्तरित करने का परामर्श दिया। उसके सर्वाधिक शक्तिशाली विरोधियों में एक ने उसको द्वन्द्व-युद्ध के लिए चुनौती दी थी जिसको उसने अस्वीकार कर दिया। स्वयं के प्रति घृणा तथा विरोध का उल्लेख करते हुए बिस्मार्क ने कहा, "लोग उस स्थान पर थूकते थे, जिन सड़कों पर वह चलता था। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते थे कि मुझे राज्य और सम्राट के लाभ के लिए कारागृह जाना पड़ेगा और वहाँ रस्सी बटनी पड़ेगी।

शब्द, जो आदर्श बन गये हैं, में बिस्मार्क ने घोषणा की कि "जर्मनी प्रशा के उदारवाद की ओर नहीं देख रहा था वरन् उसकी शक्ति की ओर देख रहा था। भाषणों और बहुमत

के प्रस्तावों से आज के प्रश्नों का निर्णय नहीं होना था बल्कि "खून और लोहे" (Blood & Iron) द्वारा निर्णय होना था।" बिस्मार्क ने स्पष्ट विचारों एवं दृष्टिकोण तथा निश्चित उद्देश्य के साथ प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण किया था। जर्मनी का एकीकरण केवल प्रशा के प्रभावशाली नेतृत्व में होना चाहिए। उसके लिए एकीकृत जर्मनी का अर्थ प्रशा की सभ्यता एवं संस्कृति से रंगा हुआ जर्मनी होना चाहिए। लेकिन प्रशा को जर्मनी का नेतृत्व उस समय तक नहीं मिल सकेगा जब तक आस्ट्रिया उसकी परियोजनाओं का विरोध करने के लिए विद्यमान था। अस्तु आस्ट्रिया का हटना आवश्यक था, लेकिन वह स्वेच्छा से हटने के लिए तत्पर नहीं था। युद्ध अनिवार्य था। प्रशा के निष्ठावान प्रधानमन्त्री का यह दृढ़ मत था और इसके आधार पर उसको कार्य करना था।

चार वर्ष तक बिस्मार्क संसद तथा जनता से संघर्ष करता हुआ अडिग खड़ा रहा। बिस्मार्क अपने दृढ़ निश्चय से कभी विचलित नहीं हुआ और संवैधानिक कठिनाइयों का साहस, धैर्य और समर्पण के भाव से वीरतापूर्वक सामना किया। वह बिना संसद की स्वीकृति के करारोपण और करों का संकलन करता रहा और विलियम प्रथम की आकांक्षाओं के अनुरूप समुचित सैनिक सुधार किये। उसके अधिनायकतन्त्रीय, स्वेच्छाचारी तथा असंवैधानिक कार्यों के लिए उदारवादी उसकी कटु आलोचना करते थे एवं अत्यधिक घृणा करते थे परन्तु बिस्मार्क अपमानों, घृणा और व्यापक अलोकप्रियता की उपेक्षा करते हुए, निष्ठा तथा पूर्ण समर्पण की भावना से काम करता रहा। उसको भविष्य में अपनी सामान्य नीति की सफलता का पूर्ण विश्वास था। वह जानता था कि भविष्य में सफलता ही उसकी नीतियों तथा आचरण की न्यायोचितता का निर्णय करेगी। उसकी शक्ति तथा सत्ता का स्रोत राजा विलियम प्रथम का समर्थन तथा एकमात्र मित्र रून की सहानुभूति थी। बिना संसद द्वारा पारित आय-व्ययक (Budget) के प्रशासन का कुशल संचालन तथा सैनिक सुधार करता रहा।

बिस्मार्क के कूटनीतिक प्रयास (Bismark's Diplomatic Efforts)

अपनी स्पष्ट योजनाओं तथा नीतियों को कार्यान्वित करने से पूर्व बिस्मार्क आस्ट्रिया के समर्थन में यूरोपीय शक्तियों के सम्भावित हस्तक्षेप के विरुद्ध पूर्ण आश्वस्त होना चाहता था। ब्रिटेन से किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आशंका नहीं थी। ब्रिटेन ने आस्ट्रिया की सुरक्षावादी व्यापारिक नीति के विरोध में प्रशा की जौलवेरिन के माध्यम से कार्यान्वित उन्मुक्त व्यापार नीति का समर्थन किया था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश उदारवादियों का किसी भी महाद्वीपीय साम्राज्यवादी एवं प्रतिक्रियावादी शक्ति के विरुद्ध विद्वेष था। क्रीमिया युद्ध के समय आस्ट्रिया ने रूस को किसी प्रकार की सहायता देने से मना कर दिया था। इसी कारण रूस का जार आस्ट्रिया से अत्यधिक अप्रसन्न था। इन परिस्थितियों में रूस के द्वारा प्रशा के विरुद्ध आस्ट्रिया के समर्थन में हस्तक्षेप करने की सम्भावना नहीं थी। कठिन आन्तरिक समस्याओं का साहस के साथ समाधान करते हुए बिस्मार्क धैर्य, विश्वास और कुशलता के साथ अपनी महान् कूटनीतिक योजनाओं को भी कार्यान्वित कर रहा था। वह भलीभाँति जानता था कि आस्ट्रिया को जर्मन संघ से निष्कासित करने की सुनियोजित योजना की सफलता के लिए पड़ोसी शक्तियों के साथ घनिष्ठ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने अति आवश्यक है। आस्ट्रिया के साथ युद्ध की स्थिति में विजय प्राप्त करने के लिए आस्ट्रिया को कूटनीतिक चतुरता से यूरोप महाद्वीप की महान् शक्तियों से बिल्कुल विलग रखना भी आवश्यक था। बिस्मार्क ने फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन तृतीय जो हाल ही में आस्ट्रिया का

शत्रु बन गया था, के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से सक्रिय प्रयास आरम्भ किये और फ्रान्स के साथ व्यापारिक सन्धि की और फ्रान्स को कुछ सुविधाएँ प्रदान कीं।

सन् 1863 में पोलैण्डवासियों (पोल जाति) का विद्रोह विदेश नीति में प्रमुख कूटनीतिक खेलों से पूर्व बिस्मार्क का पहला कूटनीतिक खेल था। इस विद्रोह के माध्यम से बिस्मार्क रूस के जार की सद्भावना, सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त करना चाहता था। इंग्लैण्ड, फ्रान्स, और आस्ट्रिया जैसी महान् शक्तियों की सहानुभूति रूस अधिकृत पोलैण्डवासियों के साथ थी और इन शक्तियों ने पोल जाति के व्यक्तियों के अधिकारों के अतिक्रमण के विरुद्ध रूस को चेतावनी दे दी थी। जर्मनी में उदारवादी पोल जाति के व्यक्तियों के अधिकारों का प्रबल समर्थन कर रहे थे। इस सन्दर्भ में बिस्मार्क का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न था। पोल विद्रोह का सक्रिय विरोध करते हुए, उसने मत व्यक्त किया कि प्रशा में भी पोल जाति के व्यक्ति थे। पोल विद्रोह की सफलता से प्रशा के पोल जाति के व्यक्तियों पर गहन प्रभाव पड़ने की पूर्ण सम्भावना थी। उसने स्वयं कहा, "विदेशी राष्ट्रों के व्यक्तियों के लिए अपनी मातृभूमि (पितृ भूमि) की उपेक्षा करते हुए बलिदान करने की प्रवृति एक राजनीतिक रोग है जो जर्मनी के लिए विचित्र थी।" बिस्मार्क ने वारसा से बार्सीलोना तक फैली क्रान्तिकारी समितियों को समर्थन देने से मना करके तथा अपने देशवासियों की भावनाओं को आहत करते हुए, पोल जाति के विद्रोह के दमन के लिए सैनिक सहायता का प्रस्ताव रूस के जार के समक्ष रखा। क्रान्तिकारी समितियों ने उसकी अनुपस्थिति (in absence) में बिस्मार्क को मृत्युदण्ड दिया और प्रशा के उदारवादियों ने राष्ट्रीय भावनाओं की उपेक्षा एवं अपमान का दोषी सिद्ध किया। यह बिस्मार्क का कुशल तथा सफल कूटनीतिक खेल था। इसके माध्यम से प्रशा को रूस की मित्रता, सहानुभूति, सद्भावना एवं समर्थन प्राप्त हुआ, जबकि आस्ट्रिया ने पोल समर्थित नीति एवं दृष्टिकोण से रूस को अपना विरोधी बना लिया। यथार्थ में रूस, प्रशा के प्रति कृतज्ञ अनुभव करता था।

केवल फ्रान्स की भावनाएँ एवं दृष्टिकोण बिस्मार्क के लिए एक जटिल समस्या थी। फ्रान्स का जनमत राइन नदी क्षेत्र में एकीकृत तथा शक्तिशाली जर्मनी के आधिपत्य का प्रबल विरोधी था, परन्तु चतुर, दूरदर्शी एवं कुशाग्र बुद्धि वाला बिस्मार्क, नैपोलियन के भीरू एवं डरपोक स्वभाव तथा दक्षिण अमेरिका स्थित फ्रान्स के उपनिवेश मैक्सिको में फ्रान्स के सम्राट की भीषण कठिनाइयों और फ्रान्स की सेना की अव्यवस्थित तथा दुर्बल स्थिति से भी भलीभाँति अवगत था। फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन तृतीय की भावनाओं को शान्त तथा तुष्ट करने एवं जर्मनी के प्रति उसकी सहानुभूति एवं समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से बिस्मार्क नैपोलियन तृतीय से मिलने बियारिट्ज (Biaritz) गया। अपनी भेंट में उसने फ्रान्स के सम्राट को जर्मनी के विषयों में पूर्णरूप से हस्तक्षेप न करने तथा स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए फ्रान्स को क्षतिपूर्ति करने का वचन दिया। बिस्मार्क फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन तृतीय के राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के साथ स्वच्छन्दतावादी घनिष्ठ सम्बन्धों, उसके व्यक्तिगत अहं एवं गर्वोक्ति तथा फ्रान्स एवं उसके राजवंश को गौरवान्वित और महिमामंडित करने वाले किसी भी अवसर में सक्रिय भूमिका के लिए उत्कट आकांक्षा तथा उत्सुकता से भलीभाँति परिचित था और उनके अनुरूप कूटनीतिक दृष्टि से व्यवहार करने में निपुण था।

अन्य देशों के विवादों में व्यस्त रहने के उपरान्त भी बिस्मार्क आस्ट्रिया के साथ सम्बन्ध-विच्छेद करने की तैयारी कर रहा था। सन् 1863 में आस्ट्रिया ने जर्मन संघ में सुधार

के लिए विभिन्न प्रस्तावों पर विचारार्थ जर्मनी स्थित राजाओं के सम्मेलन का आह्वान किया। बिस्मार्क ने बल देते हुए कहा कि प्रशा के राजा विलियम प्रथम को इस सम्मेलन (काँग्रेस) में भाग नहीं लेना चाहिए। बिस्मार्क को भय था कि आस्ट्रिया द्वारा प्रस्तावित जर्मन संघ में सुधारों से जर्मनी में आस्ट्रिया की स्थिति पूर्वापेक्षा अधिक सुदृढ़ हो सकती थी। बिस्मार्क के परामर्श तथा आग्रह पर विलियम प्रथम ने आस्ट्रिया द्वारा आयोजित सम्मेलन में भाग नहीं लिया। इस प्रकार बिस्मार्क के कठोर, स्पष्ट एवं देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित दृष्टिकोण ने आस्ट्रिया की जर्मनी में अपने नेतृत्व को सुदृढ़ करने की आशाओं को ध्वस्त कर दिया। आस्ट्रिया का अन्तिम प्रयास असफल हुआ। आस्ट्रिया के साथ पूर्णरूप से सम्बन्ध-विच्छेद करने का समय अभी नहीं आया था। जब तक आस्ट्रिया प्रशा के अन्तिम लक्ष्यों की प्राप्ति में उपयोगी था, बिस्मार्क सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करना चाहता था। "दोनों ओर से कार्यवाही सशस्त्र संघर्ष के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण कर सकती थी और सन् 1863 में ही स्कैल्सविग-होल्सटिन (Schleswig-Holstein) विवाद ने अपेक्षित सुअवसर प्रदान किया।

स्कैल्सविग-होल्सटिन विवाद (The Schleswig-Holstein Dispute)

स्कैल्सविग-होल्सटिन की घटना जर्मनी एवं यूरोप की घटनाओं का पूर्वाभास थी। डेनमार्क तथा जर्मनी के बीच तथा जूटलैण्ड प्रायद्वीप के दक्षिण में स्थित अर्द्ध भाग स्कैल्सविग-होल्सटिन डचियाँ (ड्यूक के क्षेत्राधिकारी ड्यूक कुलीन तन्त्र के सोपानात्मक क्रम में राजा के बाद दूसरे क्रम में होता है) यूरोपीय शक्तियों के लिए एक जटिल समस्या बना हुआ था। दसवीं शताब्दी से ही इन दोनों डचियों पर डेनमार्क के राजा का पूर्ण आधिपत्य था, परन्तु ये डचियाँ डेनमार्क का अंग नहीं थीं। होल्सटिन में अधिकांश जनसंख्या जर्मन मूल की थी, जबकि स्कैल्सविग में जर्मन तथा डेन जातियों की जनसंख्या समान थी। होल्सटिन में डेनमार्क के राजा की प्रशासनिक व्यवस्था थी परन्तु वह जर्मन संघ का सदस्य था। पन्द्रहवीं शताब्दी की एक राजाज्ञा द्वारा दोनों डचियों को एक ही प्रदेश माना जाता था, परन्तु इन दोनों डचियों की पृथक् विधि व्यवस्था, संस्थाएँ तथा परम्पराएँ थीं, जिनको डेनमार्क का राजा निष्ठापूर्वक कार्यान्वित करता था। स्कैल्सविग डेनमार्क की एक जागीर थी किन्तु होल्सटिन सन् 1815 तक पवित्र रोमन साम्राज्य की जागीर थी और सन् 1815 के बाद जर्मन संघ में मिला दिया गया था। इन डचियों में प्रचलित विधि व्यवस्था के अनुसार कोई स्त्री शासन करने के लिए अधिकृत नहीं थी, परन्तु डेनमार्क में यह कानून प्रचलित नहीं था। डेनमार्क एवं जर्मनी में आविर्भूत एवं विकासशील उत्कट राष्ट्रवादी भावनाओं के परिणामस्वरूप जटिल समस्या का आविर्भाव हुआ। डेन जाति के लोग इन दोनों डचियों का डेनमार्क के साथ पूर्ण विलय चाहते थे, जबकि जर्मन जाति के लोग जर्मन संघ में सम्मिलित करना चाहते थे। सन् 1848 में डेनमार्क के शासक फ्रेडरिक सप्तम ने डेन जाति के लोगों के प्रभाव में दोनों डचियों की विभिन्न स्थानीय संस्थाओं को मुख्य डेनमार्क की संस्थाओं के साथ सम्मिलित कर दिया और एकीकृत संविधान प्रवृत्त किया। समस्त जर्मनी में राष्ट्रीय भावनाओं से अनुप्राणित जर्मनवासियों ने डेनमार्क के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर दिया। अतीत की एक सन्धि के अनुसार आगस्टनबर्ग का ड्यूक भी इन दोनो डचियों पर अपने आधिपत्य का दावा करता था। अस्तु उसने डेनमार्क के राजा द्वारा इन दोनों डचियों के विलय का तीव्र विरोध किया और उसके नेतृत्व में एक अन्तरिम सरकार का गठन हुआ। जर्मनी के अन्य राज्यों ने समर्थन किया और प्रशा ने अपनी सशस्त्र सेना जर्मन मूल के विद्रोहियों की सहायतार्थ भेज दी, परन्तु इंगलैण्ड

रूस एवं आस्ट्रिया जैसी यूरोप की महान् शक्तियों ने डेनमार्क का नैतिक समर्थन किया। परिणामस्वरूप प्रशा को बाध्य होकर सैनिक कार्यवाही बन्द करनी पड़ी। डेनमार्क की इस जटिल समस्या में यूरोप की महान् शक्तियों के सक्रिय हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप सन् 1852 में लन्दन में एक सन्धि हुई जिस पर इंगलैण्ड, फ्रान्स, आस्ट्रिया, प्रशा, रूस, नार्वे तथा स्वीडेन ने हस्ताक्षर किये, परन्तु जर्मन संघ का कोई प्रतिनिधि नहीं था। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार डेनमार्क की सम्पूर्णता को स्वीकार किया गया परन्तु इन डचियों पर डेनमार्क राज्य में पूर्ण विलय पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। डेनमार्क ने भी इन डचियों के जर्मन नागरिकों के हितों और उनकी भावनाओं के प्रति सहानुभूति रखने का आश्वासन दिया था। आगस्टनबर्ग के ड्यूक ने इन डचियों पर अपने अधिकार का दावा न करने का वचन दिया।

लन्दन की सन्धि के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में एक दशक तक शान्ति रही। 15 नवम्बर 1863 को डेनमार्क के राजा फ्रेडरिक सप्तम का देहान्त हो गया और क्रिश्चियन नवम् सिंहासनारूढ़ हुआ। डेन राष्ट्रवादियों के अत्यधिक दबाव के समक्ष समर्पण करते हुए उसने एक नये संविधान की घोषणा की जिसके अन्तर्गत स्कैल्सविग को डेनमार्क में एक अंग के रूप में मिला लिया गया तथा होल्सटिन के साथ पूर्वापेक्षा अधिक प्रशासनिक सम्बन्ध स्थापित किये। यह लन्दन सन्धि तथा दोनों डचियों की अघुलनशीलता के सिद्धान्तों का स्पष्ट अतिक्रमण था। दोनों डचियों तथा समस्त जर्मनी में डेनमार्क के विरुद्ध तीव्र आक्रोश उत्पन्न हो गया। आगस्टनबर्ग के ड्यूक ने इन दोनों डचियों पर अपने अधिकार के दावे को पुनर्जीवित किया और डेनमार्क के विरुद्ध सशस्त्र सेना के नेतृत्व का प्रस्ताव रखा। जर्मन संघ की संसद ने डेनमार्क से अपने नवीन प्रवृत्त संविधान को निरस्त करने की माँग की, परन्तु डेनमार्क ने अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार स्कैल्सविग-होल्सटिन विवाद पुनः आरम्भ हो गया और बिस्मार्क को इस अशान्त जल में लाभार्जन का अपूर्व सुअवसर प्राप्त हुआ।

बिस्मार्क विभिन्न शक्तियों द्वारा विवाद में तटस्थ रहने का आश्वासन पहले ही प्राप्त कर चुका था, अस्तु स्कैल्सविग-होल्सटिन विवाद में आस्ट्रिया को सम्मिलित करने का निश्चय किया। बिस्मार्क दूरदर्शी तथा यथार्थवादी था, अस्तु उसको इस बात का लेश मात्र भी भ्रम नहीं था कि समझौते अथवा विचार-विमर्श के माध्यम से प्रशा के लिए विजय प्राप्त की जा सकती थी। प्रशा की संसद को स्थगन की स्थिति में रखकर, प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाकर और सेना के पुनर्गठन के लिए राजकोष से असंवैधानिक ढंग से धन लेकर बिस्मार्क अपनी सुनिश्चित योजनाओं के क्रियान्वयन में व्यस्त था। वह डेनमार्क अधिकृत स्कैल्सविग-होल्सटिन डचियों के विवाद के सन्दर्भ में अपनी सैन्य-शक्ति के परीक्षण के लिए अत्यधिक उत्सुक था। यथार्थ में ये डची डेनमार्क के राजवंश के क्षेत्राधिकृत थे और आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग परिवार के क्षेत्रों के सदृश ही डेनमार्क के साथ सम्बन्ध थे। बहुत समय पूर्व प्रशा ने इन डचियों पर जर्मन क्षेत्रों के रूप में दावा किया था। सन् 1852 में लन्दन की सन्धि द्वारा इन डचियों पर डेनमार्क की प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लिया गया था और सन् 1863 में क्रिश्चियन नवम् ने संविधान प्रवृत्त कर स्कैल्सविग का डेनमार्क में विलय कर लिया था और जर्मन संसद की संविधान निरस्त करने की माँग को अस्वीकार कर दिया था। डेनमार्क के राजा को इंगलैण्ड के राजा से सहायता मिलने की पूर्ण आशा थी। कुछ ही समय पूर्व इंगलैण्ड के वेल्स के राजकुमार का डेनमार्क की राजकुमारी के साथ विवाह हुआ था। परिणामस्वरूप पामर्स्टन ने घोषणा की थी, "यदि किसी देश ने दुस्साहस करके डेनमार्क के ऊपर आक्रमण किया और उसकी स्वतन्त्रता को चुनौती दी, हम ऐसे देश को चेतावनी देते हैं कि उसे केवल

डेनमार्क से ही युद्ध नहीं करना पड़ेगा।" पामर्स्टन ने कहा कि केवल तीन व्यक्ति इंगलैण्ड कन्सर्ट के राजकुमार, जिनकी मृत्यु हो गयी थी, एक जर्मन प्राध्यापक जो पागल हो गया था तथा वह स्वयं, सत्य से पूर्णतया अवगत थे। लेकिन वह स्वयं कुछ भूल चुका था।

प्रशा और आस्ट्रिया दोनों ने ही क्रिश्चियन नवम् की इस कार्यवाही का तीव्र विरोध किया और जर्मनी की समस्याओं के सन्दर्भ में नेतृत्व के लिए दोनों में ही तीव्र प्रतिद्वन्द्विता थी और आगे निकलने के लिए उत्सुक थे। बिस्मार्क को ऐसी स्थिति में प्रशा की शक्ति के पर्याप्त विवर्धन की सम्भावना तथा आस्ट्रिया के साथ सशस्त्र संघर्ष के अवसर दृष्टिगत हुए। उसने इस विषय पर अपने मूलोद्देश्य को गुप्त रखते हुए अपूर्व सावधानी, दूरदर्शिता, स्पष्टता तथा कुशलतापूर्वक कार्य किया। बिस्मार्क की उत्कट इच्छा थी कि ये डची डेनमार्क अथवा आगस्टनबर्ग के ड्यूक की अपेक्षा प्रशा को मिलने चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आस्ट्रिया को कूटनीतिक चाल से धोखा देना आवश्यक था तथा यूरोपीय शक्तियों और अपने राजा को अपने विचारों तथा नीतियों के अनुरूप बनाना अनिवार्य था। बिंस्मार्क को आशंका थी कि प्रशा का राजा विलियम प्रथम उसकी योजना का विरोध कर सकता था, क्योंकि इससे लन्दन की सन्धि, जिसमें प्रशा स्वयं एक हस्ताक्षरकर्ता था, का अतिक्रमण होता था।

डेनमार्क के विरुद्ध संयुक्त कार्यवाही के लिए बिस्मार्क आस्ट्रिया का मित्र राष्ट्र के रूप में प्रयोग करना चाहता था। इस विवाद में हस्तक्षेप के द्वारा बिस्मार्क प्रशा की सैन्य-शक्ति की कुशलता का परीक्षण करना चाहता था। दूसरे वह यूरोपीय जनमत का अनुमान लगाना चाहता था तथा यह जानना चाहता था कि किस सीमा तक यूरोपीय शक्तियों को विलग रखा जा सकता था। तीसरे विजय प्राप्त होने की स्थिति में प्रशा में उसके विरोधी शान्त हो जायेंगे। चौथे, आस्ट्रिया-प्रशा की डेनमार्क के विरुद्ध संयुक्त कार्यवाही से जर्मन संघ के अस्तित्व का विचार समाप्त हो जायेगा क्योंकि वैधानिक दृष्टि से बिना जर्मन संघ की संसद की वैध अनुमति के आस्ट्रिया और प्रशा को युद्ध की घोषणा का कोई अधिकार नहीं था। पाँचवे, उसको इन डचियों को प्राप्त करने का लोभ था। अन्तिम उसने पूर्वानुमान लगा लिया था कि विजय के उपरान्त डचियों के नियन्त्रण तथा व्यवस्था के प्रश्न पर आस्ट्रिया और प्रशा के मध्य गम्भीर मतभेद होंगे जिससे उसके भविष्य में आस्ट्रिया को जर्मनी से निष्कासित करने का सुअवसर मिलेगा।

इसके अतिरिक्त स्वयं डेनमार्क के विरुद्ध कार्यवाही करने की स्थिति में जर्मन संघ की संसद, जिसका आस्ट्रिया अध्यक्ष था, के तीव्र विरोध की सम्भावना थी। अस्तु आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक था और वह इस योजना में सफल भी हुआ। यह बिस्मार्क की महान् विजय तथा उपलब्धि थी। सर्व विदित है कि दोनो देशों के मध्य परस्पर कटु एवं शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध थे। बिस्मार्क और आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री काउण्ट रेकबर्ग (Count Rechberg) पुराने घनिष्ठ मित्र थे। दोनों ने संयुक्त रूप से डचियों की समस्या के सन्दर्भ में गुप्त समझौता किया। इस समझौते के अनुसार आस्ट्रिया और प्रशा की संयुक्त सेना, बिना जर्मन संघ की संसद के हस्तक्षेप के, डेनमार्क पर आक्रमण करके इस समस्या का अन्तिम रूप से समाधान करेगी। परिणामस्वरूप दोनों ने संयुक्त रूप से, क्रिश्चियन नवम् द्वारा सन् 1852 की लन्दन की सन्धि के प्रावधानों के अतिक्रमण करने का कठोर शब्दों में विरोध किया और नवीन प्रवृत्त संविधान को तत्काल 48 घण्टे की अवधि में निरस्त करने की माँग करते हुए अन्तिम चेतावनी दी। डेनमार्क के राजा क्रिश्चियन नवम् ने इस माँग को अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया और प्रशा की संयुक्त सेनाओं ने डेनमार्क के

विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और इंग्लैण्ड में इस विषय पर विचार-विमर्श होने से पूर्व डेनमार्क संयुक्त सेनाओं से पराजित हो गया। 30 अक्टूबर, 1864 को वियाना की सन्धि के अनुसार क्रिश्चियन नवम् ने स्कैल्सविग तथा होल्सटिन दोनों डचियों पर प्रशा और आस्ट्रिया के संयुक्त नियन्त्रण को भविष्य में निर्णय के लिए छोड़ दिया तथा उनके द्वारा किये जाने वाली व्यवस्था पर सहमति व्यक्त करने का आश्वासन दिया।

गेस्टिन समझौता (Gastein Settlement)

बिस्मार्क के पूर्वानुमानों के अनुरूप ही डेनमार्क के साथ युद्ध के परिणाम हुए। विजयी देश विजित क्षेत्रों की व्यवस्था के सम्बन्ध में किसी भी निर्णय पर सहमत नहीं हो सके। प्रशा की इन डचियों पर पूर्ण नियन्त्रण में रुचि थी, आस्ट्रिया की यद्यपि रुचि नहीं थी, परन्तु वह उसे आगस्टनबर्ग के ड्यूक के नियन्त्रण में देना चाहता था। आस्ट्रिया ने प्रस्ताव रखा कि इन डचियों को आगस्टनबर्ग के ड्यूकों को दे देना चाहिए परन्तु बिस्मार्क इस प्रस्ताव पर किसी भी रूप में सहमत नहीं था। दोनों देशों के मध्य सशस्त्र संघर्ष अनिवार्य प्रतीत होने लगा और बिस्मार्क यही चाहता था। उसको भली-भाँति ज्ञात था कि आस्ट्रिया डचियों पर प्रशा के नियन्त्रण को कभी स्वीकार नहीं करेगा। अस्तु युद्ध आवश्यक था। लेकिन अब तक बिस्मार्क की कूटनीतिक तैयारी पूरी नहीं हुई थी, अस्तु उसने सन् 1865 में गेस्टिन समझौते के द्वारा अस्थायी व्यवस्था का प्रस्ताव रखा। 14 अगस्त, 1865 को आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस जोसेफ तथा प्रशा के राजा विलियम प्रथम, ने गेस्टिन (Gastein) नामक स्थान पर एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। परस्पर सहमति के आधार पर प्रावधानों के अनुसार, अन्तिम निर्णय होने तक होल्सटिन पर आस्ट्रिया का तथा स्कैल्सविग पर प्रशा का पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण रहेगा। एक छोटी डची लागेनबर्ग पर प्रशा को पूर्ण नियन्त्रण का अधिकार दे दिया गया और बदले में प्रशा को क्षतिपूर्ति के रूप में निश्चित धनराशि आस्ट्रिया को देने की व्यवस्था थी। दोनों में परस्पर इस बात पर भी सहमति थी कि डचियों के प्रश्न को संसद के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जायेगा। कील के बन्दरगाह पर आस्ट्रिया और प्रशा का संयुक्त अधिकार रहा परन्तु प्रशा को दुर्ग निर्माण एवं समुद्र तक नहर निर्माण का अधिकार प्रदान किया गया।

गेस्टिन का समझौता बिस्मार्क की एक महान् कूटनीतिक विजय थी। इसके माध्यम से आगस्टनबर्ग के ड्यूक के दावे को, जिसका आस्ट्रिया ने समर्थन किया था, अस्वीकार कर दिया गया। इसके अतिरिक्त होल्सटिन, जिस पर पूर्ण नियन्त्रण का अधिकार आस्ट्रिया को दिया गया था, प्रशा के अधिकृत क्षेत्रों से आवृत था। इसने आस्ट्रिया के शासन के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया। **प्रोफेसर केटलबी** ने इस समझौते के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया है, "गैस्टिन समझौता बिस्मार्क की एक महान् कूटनीतिक विजय थी। दोनों डचियों पर आस्ट्रिया और प्रशा का संयुक्त नियन्त्रण बना रहा परन्तु वास्तविक लाभ प्रशा को ही हुआ। होल्सटिन आस्ट्रिया से बहुत दूर था, अस्तु अधिक समय तक आस्ट्रिया द्वारा अपना प्रभुत्व रखना सम्भव नहीं था। स्कैल्सविग पर तो प्रशा का पूर्ण नियन्त्रण था। होल्सटिन में स्थित कील बन्दरगाह पर प्रशा का अधिकार था।" इस समझौते में सशस्त्र संघर्ष की पर्याप्त सम्भावना थी। बिस्मार्क ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा था, "मुझे विश्वास नहीं था कि आस्ट्रिया का कोई ऐसा भी राजनीतिज्ञ होगा जो इस प्रकार के समझौते पर हस्ताक्षर कर सके।" यद्यपि आस्ट्रिया और प्रशा के मध्य युद्ध की सम्भावना कुछ समय के लिए कम हो गयी थी। बिस्मार्क ने समझौते की वस्तु-स्थिति को व्यर्थ करते हुए कहा था, "दरार को

कागज से ढक दिया है।" गेस्टिन समझौता आस्ट्रिया के लिए अत्यधिक हानिकारक था, अस्तु इसके चलने की कोई सम्भावना नहीं थी।

आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध (सन् 1866) (The Austro-Prussian War, 1866)

यथार्थ में गेस्टिन समझौते में सशस्त्र संघर्ष के अनेक कारण विद्यमान थे। बिस्मार्क की प्रबल इच्छा थी कि आस्ट्रिया और प्रशा के मध्य परस्पर विवादों का स्थायी रूप से सन्तोषजनक निराकरण नहीं होना चाहिए। प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण के मूलोद्देश्य की प्राप्ति के लिए आस्ट्रिया के साथ युद्ध अनिवार्य था। गेस्टिन समझौते में निहित अनेक कारणों का बिस्मार्क ने स्वयं ही युद्ध की स्थिति का निर्माण करने के लिए समुचित प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया ने स्वयं बिस्मार्क को अपेक्षित अवसर प्रदान किया। प्रशा के अधिकृत क्षेत्रों से आवृत तथा आस्ट्रिया से सुदूर स्थित होल्सटिन में आस्ट्रिया की कोई रुचि नहीं थी। अस्तु आस्ट्रिया ने होल्सटिन पर आगस्टनबर्ग के ड्यूक के दावे को प्रोत्साहित करना आरम्भ कर दिया और दोनों डचियों के विवाद को संघीय संसद में प्रस्तुत करने की प्रबल इच्छा की घोषणा की। इस प्रकार आस्ट्रिया जर्मनी में लोकप्रियता अर्जित करना चाहता था परन्तु आस्ट्रिया की अभिव्यक्त इच्छा निश्चित रूप से गेस्टिन समझौते के प्रावधानों का स्पष्ट उल्लंघन थी और बिस्मार्क को अविश्वास एवं दुर्भावना का दोषारोपण करने के लिए अवसर प्रदान किया। इस प्रकार सुनिश्चित युद्ध के लिए भव्य पृष्ठभूमि तैयार थी।

इसके उपरान्त बिस्मार्क ने गेस्टिन समझौते में निहित विभिन्न दोषों एवं विषाक्त स्थितियों का युद्ध की भावना को उत्तेजित करने के लिए अधिकतम शोषण करना आरम्भ किया। आस्ट्रिया के साथ युद्ध को उत्तेजित करने से पूर्व बिस्मार्क ने सर्वप्रथम प्रशा को विदेशी शक्तियों के सक्रिय हस्तक्षेप के विरुद्ध सुरक्षित रखने अर्थात् आस्ट्रिया को विदेशी शक्तियों से विलग रखने की ओर ध्यान दिया। उसको भली-भाँति विदित था कि जर्मन संघ का मुख्य निर्माता आस्ट्रिया ही था और जर्मन संघ का अभ्युदय यूरोप की महान् शक्तियों के संरक्षण और पूर्ण आश्वासन के परिणामस्वरूप ही हुआ था। अंस्तु बिस्मार्क ने सावधानीपूर्वक यूरोपीय शक्तियों के विचारों एवं दृष्टिकोण का पूर्वानुमान लगाया। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि आस्ट्रिया के जर्मनी से निष्कासन तथा जर्मनी के पुनर्गठन का अर्थ वियाना सन्धि के हस्ताक्षरकर्ता देश जर्मनी के राजनीतिक स्वरूप में किसी प्रकार के परिवर्तन को रोकने के लिए वैध रूप से हस्तक्षेप कर सकते थे। इस परिप्रेक्ष्य में विचार करने से बिस्मार्क का अनुमान था कि ब्रिटिश जनमत सदैव प्रशा के प्रति सहृदय तथा सहानुभूतिपूर्ण रहा है, अस्तु इंग्लैण्ड से किसी प्रकार के विरोध अथवा हस्तक्षेप की आशा नहीं थी। क्रीमिया युद्ध में आस्ट्रिया ने रूस को सहायता एवं सक्रिय समर्थन देने से मना कर दिया था। इसके अतिरिक्त रूस के विरुद्ध पोल जाति के सशस्त्र विद्रोह के समय सन् 1863 में विद्रोह का दमन करने के लिए प्रशा ने सैन्य सहायता दी। इस कारण रूस प्रशा के प्रति कृतज्ञ था। रूस से किसी प्रकार की शत्रुतापूर्ण कार्यवाही की लेशमात्र भी आशा नहीं थी। इटली आस्ट्रिया अधिकृत इटली के एक भाग वेनेशिया को प्राप्त करने के लिए उत्सुक था। इटली ने बिस्मार्क के प्रस्ताव का उत्साहवर्धक उत्तर दिया था। अस्तु प्रशा को इटली से तटस्थता की अपेक्षा सक्रिय समर्थन एवं सहयोग की आशा थी। बिस्मार्क ने इटली के साथ मित्रता की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार यदि प्रशा तीन माह की अवधि में आस्ट्रिया के साथ युद्ध करता है, इटली आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रशा के साथ सहयोग करेगा और सहायता के पुरस्कार स्वरूप, वेनेशिया प्राप्त करेगा। फ्रान्स की ही एक मात्र समस्या थी और फ्रान्स का दृष्टिकोण निश्चित

रूप से प्रशा के विरुद्ध था। फ्रान्स टाउन नदी क्षेत्र पर शक्तिशाली जर्मनी की उपस्थिति के पक्ष में नहीं था। बिस्मार्क नैपोलियन तृतीय के स्वभाव, विचारों, दृष्टिकोण एवं भावनाओं से भलीभाँति परिचित था। बिस्मार्क ने नैपोलियन तृतीय की भीरुता एवं निर्बलता का लाभ उठाने का प्रयास किया। बिस्मार्क, नैपोलियन तृतीय की सहानुभूति, सद्भावना एवं समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से, नैपोलियन से मिलने ब्यारिट्स (Biairrtz) गया। बिस्मार्क ने प्रशा की ओर से कुछ क्षतिपूर्ति का भी आश्वासन दिया। बिस्मार्क और नैपोलियन के मध्य गुप्त वार्ता थी। नीरो नाम के कुत्ते के अतिरिक्त अन्य कोई साक्षी नहीं था। अस्तु गुप्त वार्ता के निर्णयों का किसी को कुछ भी ज्ञात नहीं था। उपलब्ध अल्प एवं आंशिक विवरणों से केवल इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बिस्मार्क ने उन्मुक्त रूप से उस सबका प्रस्ताव रखा जो उसका नहीं भी था। उसने परामर्श दिया कि फ्रान्स को दक्षिण पूर्वी बेल्जियम के फ्रेन्च भाषी क्षेत्रों के माध्यम से कुछ समझौता करना चाहिए।

कूटनीतिक दृष्टि से आस्ट्रिया को समस्त यूरोपीय शक्तियों से विलग करने के उपरान्त बिस्मार्क ने प्रशा के राजा विलियम प्रथम के विरोधी दृष्टिकोण में परिवर्तन करने का प्रयास किया। आस्ट्रिया प्रशा का परम्परागत मित्र देश था और प्रशा का राजा विलियम प्रथम आस्ट्रिया के साथ युद्ध को भ्रातृहन्ता युद्ध मानता था। बिस्मार्क अत्यधिक चतुर, कुशल तथा बुद्धिमान व्यक्ति था। बिस्मार्क ने विलियम प्रथम को अपने सुनिश्चित उद्देश्य तथा उसकी प्राप्ति के लिए भावी योजनाओं तथा नीतियों के सन्दर्भ में अनिवार्य युद्ध के विषय में सूचित किया और सहमति प्राप्त कर ली।

अब आस्ट्रिया को युद्ध के लिए उत्तेजित करना ही शेष था। बिस्मार्क ने होल्सटिन में आस्ट्रिया की प्रशासनिक व्यवस्था के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। आस्ट्रिया ने जब डचियों के विवादास्पद प्रश्न को जर्मन संघ की संसद में प्रस्तुत करने की माँग की, प्रशा जर्मन संघ से इस आधार पर अलग हो गया कि आस्ट्रिया और अन्य जर्मन राज्य संयुक्त रूप से प्रशा के अधिकारों में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहे थे। बिस्मार्क ने विश्व के राष्ट्रों के समक्ष घोषणा की कि प्रशा, जर्मनी की राष्ट्रीय एकता के लिए आस्ट्रिया और उसके जर्मन मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध आत्म-रक्षात्मक युद्ध करेगा। बिस्मार्क ने इस सब कार्य को इतनी चतुरता से किया कि विदेशों में जनमत ने विश्वास किया कि आस्ट्रिया ही यथार्थ में आक्रमणकर्ता था। डचियों के प्रश्न को फ्रैन्कफर्ट स्थित जर्मन संघ की संसद में उठाने की माँग के सन्दर्भ में बिस्मार्क ने कहा कि आस्ट्रिया ने गेस्टिन की सन्धि के प्रावधानों का उल्लंघन किया था और होल्सटिन में अपनी सेना भेज दी और आस्ट्रिया के प्रशासनिक अधिकारियों को होल्सटिन से निकाल दिया। प्रशा द्वारा उत्तेजित आस्ट्रिया ने जर्मन राज्यों की सेनाओं को कूच करने का आग्रह किया जिससे वे प्रशा को आस्ट्रिया के अधिकारों में हस्तक्षेप करने से रोक सकें। जर्मन संघ की संसद ने आस्ट्रिया के प्रति सहानुभूति व्यक्त की तथा प्रतिनिधियों ने उसी के अनुरूप मतदान किया। बिस्मार्क ने उस कार्यवाही को अन्य जर्मन राज्यों द्वारा संयुक्त रूप से प्रशा के ऊपर आक्रमण की कार्यवाही कहा। आस्ट्रिया को युद्ध के लिए उत्तेजित करना ही बिस्मार्क के लिए पर्याप्त नहीं था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि युद्ध के कारणों में समस्त जर्मन प्रश्न सम्मिलित होना चाहिए। परिणामस्वरूप 9 अप्रैल, 1866 को प्रशा के प्रतिनिधि ने व्यापक मताधिकार के आधार पर, आस्ट्रिया को अलग करते हुए जर्मन संघ में सुधार का प्रस्ताव रखा। बिस्मार्क इस सुधार योजना के द्वारा समस्त जर्मनी के उदारवादियों का समर्थन प्राप्त करना चाहता था तथा आस्ट्रिया को युद्ध के लिए उत्तेजित भी करना चाहता था। इस

प्रकार उसने विश्व को यह प्रदर्शित किया कि प्रशा स्कैल्सविग- होल्सटिन प्रश्न पर केवल पीड़ित देश ही नहीं था, वरन् राष्ट्रीय एकीकरण का प्रबल समर्थक भी था। विवाद के आधार को स्थानान्तरित करके उसने यूरोपीय शक्तियों को भ्रमित किया और उनके सम्भावित हस्तक्षेप से बच गया। आस्ट्रिया ने प्रशा के संसद में सुधार के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और संसद में सदस्य देशों की सेनाओं से होल्सटिन में आस्ट्रिया के अधिकारों का दमन करने के दोषी प्रशा को दण्ड देने का आग्रह किया। तदुपरान्त प्रशा ने जर्मन संघ से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और आत्म-रक्षा में सशस्त्र संघर्ष के रूप में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

1 जून, 1866 को आस्ट्रिया ने जर्मन संघ की संसद का आह्वान किया और स्कैल्सविग-होल्सटिन विषय पर निर्णय करने का आग्रह किया। आस्ट्रिया की भावनाओं के अनुरूप जर्मन संघीय संसद ने स्कैल्सविग-होल्सटिन तथा लियानबर्ग, आगस्टनबर्ग के ड्यूक को देने का निर्णय किया। बिस्मार्क ने विरोध करते हुए कहा कि आस्ट्रिया ने गेस्टिन समझौते का अतिक्रमण किया था, अस्तु वह भी उस समझौते से मुक्त था। 6 जून, 1866 को प्रशा ने होल्सटिन पर आक्रमण कर दिया और आस्ट्रिया की सेना पीछे हट गयी। 11 जून को आस्ट्रिया ने जर्मन संघीय संसद में समस्त सदस्य देशों द्वारा प्रशा के विरुद्ध सेना भेजने का प्रस्ताव रखा और 14 जून को संसद ने आस्ट्रिया के प्रस्ताव को पारित कर दिया। बिस्मार्क ने जर्मन संघीय संसद के निर्णय को अवैध घोषित करते हुए, जर्मन संघ को समाप्त करने की घोषणा कर दी। 16 जून, 1866 को प्रशा की सेना ने सैक्सनी में प्रवेश किया। 20 जून, 1866 को इटली ने भी आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मनी के अधिकांश राज्यों ने जैसे बावेरिया, हेनोवर, सैक्सोनी और हेस-कैसल ने भी प्रशा के विरुद्ध अपनी सेनाएँ भेज दीं।

आस्ट्रिया और प्रशा के मध्य युद्ध केवल 7 सप्ताह में समाप्त हो गया। इसी कारण यह युद्ध इतिहास में "सात सप्ताह का युद्ध" (Seven Weeks War) के नाम से प्रसिद्ध है। मुख्य युद्ध 16 जून, 1866 को आरम्भ हुआ और 3 जुलाई को समाप्त हो गया। प्रारम्भ में प्रशा ने हेनोबर, हेस-कैसल तथा ड्रेस्डेन् पर केवल 10 दिन में आधिपत्य स्थापित कर लिया। राजकुमार फ्रेडरिक के नेतृत्व में प्रशा की सेना ने साइलेशिया की ओर से आस्ट्रिया में प्रवेश किया। प्रशा के अन्य दो सैनिक दस्ते सैक्सोनी होते हुए बोहेमिया की ओर बढ़ रहे थे। प्रशा के सेनाध्यक्ष मोल्तक (Moltak) की इच्छा थी कि प्रशा के सब सैनिक दस्ते बोहेमिया में मिल जायें और आस्ट्रिया पर आक्रमण कर दें। प्रशा को निश्चित रूप से श्रेष्ठ सैन्य संगठन, सैनिकों के अदम्य साहस, और शौर्य का लाभ मिला। केवल दो सप्ताह की अवधि में जर्मन राज्यों की सैन्य शक्ति को ध्वस्त कर दिया। आस्ट्रिया ने 24 जून, 1866 को कस्टोजा की युद्धभूमि में इटली की सेना को पराजित किया। तदुपरान्त 3 जुलाई, 1866 को बोहेमिया स्थित सेडोवा युद्धभूमि में प्रशा तथा आस्ट्रिया के मध्य भीषण निर्णायक युद्ध हुआ। इस युद्ध में आस्ट्रिया की सेना पूर्णरूप से पराजित हो गयी। आस्ट्रिया की सेना का पूर्णरूप से विनाश हो चुका था। अस्तु प्रशा के राजा विलियम प्रथम की आस्ट्रिया की राजधानी वियाना पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने की प्रबल इच्छा थी, परन्तु बिस्मार्क ने यूरोपीय शक्तियों के सक्रिय हस्तक्षेप की सम्भावना को दृष्टि में रखते हुए विलियम प्रथम की उपेक्षा की और शीघ्र ही आस्ट्रिया के साथ सन्धि का प्रस्ताव रखा। वीरोचित गुणों से अनुप्राणित विलियम प्रथम न्यायोचित प्रशा का आक्रामक आस्ट्रिया के विरुद्ध धर्मयुद्ध मानता था और उसका मत था

कि ईश्वर ने होहेनजोलर्न शासक को दण्ड देने के लिए भेजा था परन्तु बिस्मार्क ने विलि का विरोध करते हुए अहिंसात्मक युद्ध किया। उसने पूर्वानुमान लगा लिया था कि आस्ट्रि के साथ मित्रता उसकी भावी योजनाओं की सफलता के लिए बहुत सहायक सिद्ध होग बुद्धिमत्तापूर्वक उसने युद्ध को अधिक समय तक आगे नहीं बढ़ाया वरन् सैडोवा की विज का दूरगामी एवं कूटनीतिक लाभ लिया। निःसन्देह सैडोवा के युद्ध ने यूरोप की मह शक्तियों को शक्तिशाली जर्मनी का पूर्वाभास करा दिया था और इस विजय को स्वयं लिए एक चेतावनी माना था। बिस्मार्क ने कहा था, "युद्ध का निर्णय हो गया, अब हमें पु आस्ट्रिया के साथ उदारतापूर्ण सम्बन्ध बनाने होंगे।" बिस्मार्क का विचार था कि युद्ध आवश्यक उद्देश्यों, शक्तिशाली प्रशा के अधीन जर्मनी के निर्माण तथा जर्मनी के किसी भाग से आस्ट्रिया के निष्कासन की प्राप्ति हो चुकी थी। उसने मत व्यक्त किया, "प्रशा आस्ट्रिया के प्रति प्रतिद्वन्द्विता की अपेक्षा आस्ट्रिया की प्रशा के प्रति प्रतिद्वन्द्विता अब निन्द नहीं है। हमारा उद्देश्य प्रशा के राजा के नेतृत्व में जर्मन राष्ट्रीय एकता स्थापित करना है। भावी घटनाओं ने बिस्मार्क के पूर्वानुमानों को न्यायोचित सिद्ध कर दिया।

7 जुलाई, 1866 को नैपोलियन तृतीय ने अपने राजदूत बेनेदेती (Benedetti) यह जानने के लिए बिस्मार्क के पास भेजा कि वह फ्रान्स की मध्यस्थता स्वीकार करेगा नैपोलियन के इस आशय से बिस्मार्क क्रुद्ध हुआ परन्तु मानसिक सन्तुलन बनाये रखा। जानता था कि प्रशा में अभी इतनी शक्ति नहीं थी कि वह फ्रान्स के सम्राट का अपमान सके। अस्तु उसने बेनेदेती से कहा कि आस्ट्रिया के साथ सन्धि के प्रावधानों पर फ्रान्स सम्राट की स्वीकृति ले ली जायेगी। तदुपरान्त 26 जुलाई को नैपोलियन तृतीय द्वारा स्वीकृ प्रावधानों के आधार पर प्रशा और आस्ट्रिया के मध्य निकोल्सबर्ग (Nicholsburg) अस्थायी सन्धि हो गयी। इस सन्धि के अन्तर्गत फ्रान्स को कोई लाभ नहीं हुआ और फ्रान्स ने बिस्मार्क से क्षतिपूर्ति की माँग की तो उसने कुछ देने से मना कर दिया। यथार्थ बिस्मार्क की कूटनीतिक चतुरता से नैपोलियन तृतीय पराजित हो गया था।

प्राग की सन्धि (Treaty of Prague)—निकोल्सबर्ग की अस्थायी सन्धि के उपरा 23 अगस्त, 1866 को प्राग की स्थायी सन्धि हुई। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुस आस्ट्रिया ने जर्मन संघ को विघटित करने की अनुमति दे दी और 30 लाख पौंड युद्ध क्षतिपूर्ति देने के लिए भी सहमत हो गया। स्कैल्सविग, होल्सटिन, हेनोबर, हेस-कैसल, नसा हेस डर्मस्याट (Hess Darmsiadt) के उत्तरी क्षेत्र तथा फ्रैन्कफर्ट नगर प्रशा में सम्मिलि कर लिए गये। आस्ट्रिया को अलग करते हुए प्रशा के नेतृत्व में, मेन नदी के उत्तर में स्थि जर्मन राज्यों का उत्तरी जर्मन संघ के गठन की स्वीकृति थी। वेनेशिया इटली को दे दि गया। मेन नदी के दक्षिण में स्थित बेदन, बर्टेम्बर्ग तथा बवेरिया राज्यों को स्वतन्त्र राज्यों रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

इस सन्धि के महत्वपूर्ण परिणामों पर विचार व्यक्त करते हुए **राबर्टसन** लिखते हैं, "प्रा की सन्धि से प्रशा, जर्मनी, आस्ट्रिया यूरोप के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ जर्मनी में आस्ट्रिया का नेतृत्व समाप्त हो गया और प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन संघ क स्थापना हुई। अब प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हो गया। इस यु के पश्चात् बिस्मार्क को यूरोप का सबसे प्रभावशाली राजनीतिज्ञ समझा जाने लगा।" इस आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा को गम्भीर आघात पहुँचा। आस्ट्रिया साम्राज्य से वेनेशिया के निक जाने तथा जर्मनी में उसके प्रभुत्व की समाप्ति से हंगरी के मेग्यार (Magyers) जाति

व्यक्तियों का प्रभाव बढ़ने लगा। सन् 1867 में आस्ट्रिया के सम्राट को हंगरी के साथ बाध्य होकर समझौता करना पड़ा। परिणामस्वरूप आस्टिया-हंगरी दो अलग-अलग राज्य हो गये। फ्रान्स की राजनीति पर भी गम्भीर प्रभाव पड़ा। नैपोलियन तृतीय बिस्मार्क की कूटनीतिक चालों से पराजित हो चुका था। यह आस्ट्रिया की अपेक्षा फ्रान्स की पराजय हुई। सेडोवा में प्रशा की इस विजय ने संकटमय, कष्टप्रद एवं दुःखद भविष्य का संकेत दे दिया था। इतिहासकार ट्रीटस्के ने (Treitsehke) अपना समस्त जीवन तथा कार्य कुशलता एक अभिधारणा को प्रदर्शित करने में व्यतीत कर दी थी। यह अभिधारणा अब कार्यान्वित होती प्रतीत हो रही थी। प्रशा जर्मन जाति तथा ट्यूटैनिक (Teutanic जर्मनी की प्राचीन जनजाति) सभ्यता का सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोच्च उत्पादन था। लेकिन प्रशा की विजय हुई, उसके साथ प्रशावाद (प्रशावासी, Prussic acid एक घातक विष, एक क्षार जो प्रशियन ब्लू से प्राप्त होता है और प्रशियन ब्लू पोटेशियम और लोहे का साइनाइड होता है) की विजय हुई थी और बिस्मार्क की विजयों के लिए जर्मनी और यूरोप ने वह मूल्य दिया था।

आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध के परिणाम (Results of Austro-Prussian War)—प्राग सन्धि के परिणामस्वरूप प्रशा की सीमाओं का अत्यधिक विस्तार हो गया। आस्ट्रिया के समर्थक जर्मन राज्यों का प्रशा में विलय कर लिया गया। अब प्रशा का क्षेत्राधिकार राइन नदी से बाल्टिक सागर तक था।

बिस्मार्क ने जर्मनी के दक्षिण में स्थित चार राज्यों के अतिरिक्त मेन नदी के उत्तर में स्थित 21 राज्यों को मिलाकर प्रशा के राजा विलियम प्रथम के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन संघ का गठन किया। सेडोवा में विजय के उपरान्त बिस्मार्क ने अपनी लोकप्रियता से उन्मत्त होकर संसद से प्रतिशोध लेने की अपेक्षा प्रशा की संसद को पुनः सक्रिय किया। इसके पूर्व बिस्मार्क का, राजा विलियम प्रथम तथा कट्टरपंथियों के साथ कटु विचार-विमर्श भी हुआ परन्तु बिस्मार्क ने संसद से अत्यधिक शिष्टता एवं शालीनता के साथ अपने चार वर्ष के कार्यकाल में संविधान तथा संसद की अवज्ञा एवं अवहेलना के लिए (समस्त तथा कथित दोषारोपण जिनके लिए वह पिछले चार वर्ष के कार्य काल में दोषी माना जाता था) क्षमा याचना की। संसद सदस्यों ने उसको दोषों से मुक्त करने के प्रस्ताव पर पूर्ण उत्साह के साथ मतदान करके प्रस्ताव पारित कर दिया। उसी वर्ष उसने उत्तरी जर्मन संघ के नये संविधान में एक द्विसदनीय संसद की व्यवस्था की। इसके निम्न सदन रिशटेग (Reishstang) के सदस्य अखिल वयस्क पुरुष प्रत्यक्ष मतदान द्वारा निर्वाचित होने चाहिए। कुछ रूढ़िवादी प्रशावासियों ने उसका तीव्र विरोध किया परन्तु बिस्मार्क ने उनको आश्वासन दिया कि जर्मन जनता मध्यम वर्ग की अपेक्षा अधिक रूढ़िवादी तथा शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार को बनाये रखने के प्रति उत्कट देशभक्ति की भावना से अधिक समर्पित होगी। इसके अतिरिक्त उच्च सदन, संघीय परिषद् अथवा बुन्देसराट (Bundesrath) में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि सदस्य होते थे। संघीय परिषद् की कुल सदस्य संख्या 43 थी और इसमें 17 सदस्य प्रशा के थे। प्रशा का राजा वंशानुगत संघ का अध्यक्ष था और संविधान में प्रावधान था कि संघ का प्रथम चान्सलर अर्थात् प्रधानमन्त्री बिस्मार्क ही होगा। संघीय परिषद् का अध्यक्ष चान्सलर होता था परन्तु वह संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं था। इस प्रकार संघ के गठन से उत्तरी जर्मनी का एकीकरण हो गया।

संविधान में लोकप्रिय लोकतान्त्रिक प्रावधानों के परिणामस्वरूप एक नये राजनीतिक दल, "राष्ट्रीय उदार दल का अभ्युदय हुआ। इसके अधिकांश सदस्य मध्यम वर्ग तथा पुराने उदारवादी थे। बिस्मार्क ने तत्कालीन समस्त राजनीतिक दलों को विघटित कर दिया था, इसलिए उसने समस्त सिद्धान्तों का समन्वय कर दिया था।

कुछ उग्र सुधारवादी पूर्ववत् कट्टर एवं दुराग्रही बने रहे, परन्तु राजनीतिक गतिविधियों की मुख्यधारा विलीन हो गयी और 'राष्ट्रीय उदारवादी' नाम के नये दल का अभ्युदय हुआ। भावी 12 वर्षों तक इस दल की मुख्य नीति न प्रशा के उदारवाद की थी और न ही जर्मन राष्ट्रवाद की थी, वरन् देशभक्ति के साकार रूप बिस्मार्कवाद की थी। आस्ट्रिया के साथ युद्ध से प्रशा की आन्तरिक राजनीति भी प्रभावित थी। युद्ध की सफलता ने सैन्य सुधार के सन्दर्भ में संवैधानिक संघर्ष को समाप्त कर दिया था और प्रशा के उदारवाद को गहन आघात पहुँचाया। परिणामस्वरूप जर्मनी में उदारवाद कभी भी पुनर्जीवित नहीं हो सकता। सफलता ने सैन्यवाद को न्यायोचित सिद्ध कर दिया था और सरकार के प्रति उदारवादियों ने अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप जर्मनी में विशाल स्तरीय राजनीतिक एकता तथा जर्मन विषयों में प्रशा के नेतृत्व के लिए अपने स्व-शासन के दावे को त्याग दिया था। इन तत्वों ने ही राष्ट्रीय उदार दल के गठन में अपूर्व सहायता की थी। राष्ट्रीय हितों की पूर्ण सुरक्षा के लिए बिस्मार्क घृणित" व्यक्ति बिस्मार्क विजय के उपरान्त "सर्वाधिक लोकप्रिय" व्यक्ति बन गया।

युद्ध के उपरान्त प्रशा का एक अत्यधिक सुदृढ़ तथा यूरोप की महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में आविर्भाव हुआ था। जर्मनी से आस्ट्रिया के निष्कासन के बाद मध्य यूरोप में प्रशा सर्वोच्च शक्ति बन गया। प्रशा द्वारा उत्तरी जर्मन संघ के गठन ने प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया। उत्तरी जर्मनी के विभिन्न क्षेत्रों के प्रशा में विलय से उसका प्रभुत्व बढ़ गया तथा यत्रतत्र बिखरे हुए क्षेत्र परस्पर सम्बद्ध हो गये। इससे प्रशा को कील (Kiel) में नौ-सेना के आधार का निर्माण करने के लिए अभूतपूर्व स्थान मिल गया। अनायास ही प्रशा का एक महान् सैन्य शक्ति के रूप में आविर्भाव हुआ और उसकी आश्चर्यजनक विजय ने ऐतिहासिक शक्ति-सन्तुलन में गम्भीर परिवर्तन कर दिये। यूरोप का नेतृत्व उसको अपनी पहुँच में प्रतीत होता था।

इटली पर प्रभाव (Effect of Italy)—जर्मनी के बाहर इस युद्ध के दूरगामी परिणाम हुए। प्राग की सन्धि के प्रावधानों के अनुसार वेनेशिया इटली को मिल गया और इटली के एकीकरण में एकमात्र लक्ष्य रोम शेष रह गया और उसकी प्राप्ति भी निकट भविष्य में सम्भव प्रतीत हो रही थी। इसके अतिरिक्त इटली अपने कट्टर शत्रु आस्ट्रिया से मुक्त हो गया।

आस्ट्रिया साम्राज्य पर प्रभाव (Effect on Austrian Empire)—आस्ट्रिया में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। आस्ट्रिया के सम्राट फ्रान्सिस जोसेफ ने केन्द्रीकरण की नीति को त्यागकर द्वैतवाद (Dualism) की नीति को प्रवृत्त किया अर्थात् सम्राट को हंगरी में मैग्यार जाति के राष्ट्रवाद को मान्यता देनी पड़ी और सर्वोच्च सत्ता में समान स्तरीय भागीदारी देनी पड़ी। हंगरी में मैग्यार जाति का प्रभुत्व था। इटली एवं जर्मनी से आस्ट्रिया के निष्कासन के बाद सम्राट ने अनुभव किया कि मैग्यार जाति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की अतीव आवश्यकता थी। अब आस्ट्रिया का विदेशों में प्रभुत्व तथा प्रभाव कम हो रहा था, इसलिए सम्राट को अपनी शक्ति में वृद्धि करना अति आवश्यक हो गया। परिणामस्वरूप आस्ट्रिया के सम्राट ने कहा मैग्यार राजनीतिज्ञ डीक (Deak) की योजनानुसार आस्ट्रिया के अधीन समस्त क्षेत्र को दो स्पष्ट राज्यों आस्ट्रिया तथा हंगरी में विभाजित कर दिया। ये दोनों राज्य युद्ध कूटनीति के अतिरिक्त अन्य समस्त विषयों में पूर्णतया स्वतन्त्र थे। आस्ट्रिया की राजधानी वियाना थी और हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट थी, परन्तु दोनों राज्यों का शासक एक ही था। आस्ट्रिया में उसको सम्राट के रूप में सम्बोधित किया जाता था और हंगरी में उसको

राजा कहा जाता था। प्रत्येक राज्य का पृथक् संविधान, विधान सभा तथा प्रशासन और प्रत्येक का अपने आन्तरिक विषयों में पूर्ण नियन्त्रण था। कोई भी एक-दूसरे के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करता था। विदेश, युद्ध तथा वित्त विभाग के लिए संयुक्त मन्त्रालय था। दोनों राज्यों के चुने हुए संसद सदस्यों का संयुक्त प्रतिनिधि मण्डल, साम्राज्यिक विषयों का निर्णय तथा संयुक्त मन्त्रालय के कार्य का पुनरीक्षण करता था। इस व्यवस्था को समझौता अथवा आस्लैक (Ausgleich) कहा जाता है और यह आस्ट्रिया-हंगरी के द्वैत राजतन्त्र का आधार था। जब प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर आस्ट्रिया साम्राज्य अनेक भागों में विभाजित हो गया, उसी समय इस व्यवस्था का अन्त हुआ। आस्ट्रिया के जर्मन तथा हंगरी के मैग्यार दोनों ही इस समझौते से सन्तुष्ट थे, परन्तु अन्य अधीन जातियों, विशेष रूप से स्लाव जाति ने इस व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया और हंगरीवासियों के सदृश विशेषाधिकारों की माँग की। वे द्वैत राज्य व्यवस्था की अपेक्षा संघीय राज्य चाहते थे।

निःसन्देह कुछ जर्मन राज्य नये जर्मन संघ से विलग रहे। बवेरिया के अतिरिक्त अधिकांश राज्यों का प्रशा के प्रति सन्देह था। बिस्मार्क ने समन्वयात्मक नीति का अनुसरण किया परन्तु बिस्मार्क ने प्रत्येक अनुकूल अवसर पर फ्रान्स के सम्भावित आक्रमण से भयभीत किया। यथार्थ में उसने बर्टम्बर्ग तथा बेदन और मैस-डार्मस्टेट की महान् डचियों के साथ सुरक्षा के लिए गुप्त सन्धियाँ करके उनको विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित रखने का दायित्व ले लिया था।

फ्रान्स-प्रशा युद्ध (सन् 1870-71) (Franco-Prussian War)

बिस्मार्क का दृष्टिकोण (Bismarck's Attitude)—आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध ने बिस्मार्क की रक्त और तलवार (लोहे) की नीति को न्यायोचित सिद्ध कर दिया था और प्रशा की यूरोप में एक महत्वपूर्ण सैन्य शक्ति के रूप में प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी थी तथा जर्मनी का अधिकांश भाग प्रशा के शक्तिशाली नियन्त्रण में था। जर्मनी के आंशिक एकीकरण के उपरान्त बिस्मार्क ने पूर्ण एकीकरण के लिए प्रयास आरम्भ कर दिये। उसको भलीभाँति ज्ञात था कि फ्रान्स उसके मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी। दो शताब्दियों से अधिक समय से अनेक भागों में विभाजित जर्मनी, फ्रान्स के राजनीतिज्ञों का मूलभूत सिद्धान्त था। इसी कारण फ्रान्स के राजनीतिज्ञों ने जर्मनी को विघटित रखने के लिए निरन्तर कूटनीतिक प्रयास किये। बिस्मार्क ने अपने संस्मरणों में लिखा है, "फ्रान्स के साथ युद्ध इतिहास के तर्क में निहित है।" जर्मनी और फ्रान्स के मध्य अतीत में परस्पर सम्बन्धों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि फ्रान्स बिना युद्ध के जर्मनी को कभी भी एकीकृत नहीं होने देगा। दूसरे जर्मनी के दक्षिण में स्थित बवेरिया, बर्टम्बर्ग तथा हेस-डार्मस्टाट राज्य को एक समान संकट के अभाव में जर्मन संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सकता था। फ्रान्स के साथ युद्ध एक समान प्रयास था, जिसमें समस्त जर्मनी अपने मतभेदों को विस्मृत कर सम्मिलित होगा। जर्मनी के वंशानुगत शत्रु फ्रान्स के साथ युद्ध, आवश्यक एकीकृत करने की शक्ति प्रदान करेगा और समान उद्देश्य के लिए समान शत्रु के विरुद्ध रक्तपात एकीकरण की भावना को पुष्ट एवं सुदृढ़ करेगा। प्रशा की सैन्य शक्ति में असाधारण विकास निःसन्देह फ्रान्स के लिए स्वाभाविक चुनौती थी। प्रशा की आस्ट्रिया के विरुद्ध विजय फ्रान्स की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और सम्भवतः उसकी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक खतरा था। प्रशा ने फ्रान्स की अप्रत्यक्ष शंका का विरोध किया।

फ्रान्स को पृथक् रखने के प्रयास (Efforts to Isolate France)—फ्रान्स के साथ अनिवार्य युद्ध से आश्वस्त होकर बिस्मार्क ने फ्रान्स को कूटनीतिक चाल से विलग रखने के प्रयास आरम्भ किये, जिससे फ्रान्स को किसी अन्य देश से सहायता नहीं मिल सके। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बिस्मार्क की योजना के अनुकूल थी और बिस्मार्क ने उसका सर्वाधिक लाभ लेने का प्रयास किया। रूस, नैपोलियन तृतीय की क्रीमिया युद्ध में उसकी भूमिका तथा विद्रोही पोल जाति के व्यक्तियों के समर्थन में उसके प्रयासों तथा गतिविधियों को भूला नहीं था। इसके साथ रूस को पोल विद्रोह के समय बिस्मार्क का उत्साहवर्धक सहायता का प्रस्ताव भी कृतज्ञता के साथ स्मरण था। इस प्रकार रूस प्रशा का मित्र तथा फ्रान्स का शत्रु था। बिस्मार्क ने तुर्की के विरुद्ध रूस की महत्वाकांक्षाओं तथा योजनाओं को प्रोत्साहित करके तथा सन् 1856 की पेरिस सन्धि में निहित काले सागर से सम्बन्धित प्रावधानों को अस्वीकार करने के रूस के प्रस्ताव के प्रति सहमति व्यक्त करके, रूस के साथ सुखद तथा सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध पूर्वापेक्षा अधिक सुदृढ़ किया। सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की पराजय के बाद आस्ट्रिया की सद्भावना प्राप्त करने के उद्देश्य से अत्यधिक उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया। बिस्मार्क ने 'आज का शत्रु भविष्य में सहृदय मित्र भी हो सकता है' सिद्धान्त को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया। अस्तु बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को उसके अधिकृत क्षेत्रों से वंचित करके दण्ड देने का कोई प्रयास नहीं किया और प्रशा के राजा विलियम प्रथम को आस्ट्रिया की राजधानी वियाना में प्रवेश करने से रोककर, सम्भावित अपमान से बचाया था।

रोम में ईसाई धर्म के सर्वोच्च धर्माधिकारी पोप का पूर्ण नियन्त्रण था और फ्रान्स की सेना उस क्षेत्र में रोम की सुरक्षा के लिए थी। इटली को रोम प्राप्त करने का उज्जवल भविष्य का आश्वासन देकर उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रहा। सम्भावित युद्ध में फ्रान्स अपनी पराजय के परिणामस्वरूप रोम में स्थित अपनी सेना को निश्चित रूप से बुला लेगा। इस प्रकार बिस्मार्क अपने पड़ोसी देशों की सहानुभूति एवं समर्थन प्राप्त करके, फ्रान्स के साथ युद्ध करने का तात्कालिक कारण खोजने लगा। फ्रान्स कें दृष्टिकोण ने अपेक्षित पृष्ठभूमि एवं कारण प्रदान किया।

सैडोवा के युद्ध का फ्रान्स पर प्रभाव (Effect of the Battle of Sadowa on France)—सैडोवा में आस्ट्रिया की पराजय से नैपोलियन तृतीय को सर्वाधिक आघात पहुँचा। प्रशा की द्रुतगति से पूर्ण विजय ने फ्रान्स के सम्राट के समस्त अनुमानों को अस्त-व्यस्त कर दिया। उसको पूर्ण आशा थी कि युद्ध दीर्घकालीन होगा और दोनों शक्तियों की क्षमता एवं सामर्थ्य समान होगी। ऐसी स्थिति में उसको निश्चित रूप से हस्तक्षेप करना पड़ेगा और सम्भावित पराजय से ग्रस्त देश से फ्रान्स को क्षेत्राधिकार का लाभ मिल जायेगा। उसको प्रशा के पराजय की पूर्ण आशा थी, जिससे प्रशा की शक्ति सदैव के लिए निराशाजनक तथा क्षीण हो जायेगी और जर्मनी पूर्व की भाँति विभाजित ही रहेगा। लेकिन सैडोवा की पराजय ने फ्रान्स की आशाओं को ध्वस्त कर दिया। विद्वान इतिहासकार प्राय: कहते हैं, "यह फ्रान्स था जिसकी सैडोवा में पराजय हुई थी"। जर्मनी को दुर्बल तथा विभाजित रखना फ्रान्स की परम्परागत नीति थी, परन्तु प्रशा ने फ्रान्स की इस नीति को असफल कर दिया था। प्रशा ने अभूतपूर्व सैन्य शक्ति का प्रदर्शन करके जर्मनी के अधिकांश भाग को एकीकृत कर दिया था। फ्रान्स की जनता नैपोलियन तृतीय की दुर्बल एवं अस्थिर नीति से अत्यधिक क्रुद्ध थी। यह नीति ही फ्रान्स की तटस्थता के लिए उत्तरदायी थी, जिसने प्रशा की सफलता में महत्वपूर्ण

योगदान दिया था। युग की महान् राजनीतिक घटना घटित हो गयी और उसके परिणामस्वरूप जर्मनी में दूरगामी परिवर्तन हुए परन्तु इन सब में फ्रान्स का कोई भाग नहीं था। फ्रान्सवासी स्वभाव से अपने देश के गौरव एवं प्रतिष्ठा के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। अस्तु फ्रान्सवासियों को फ्रान्स की निष्क्रियता तथा उदासीनता से अत्यधिक मानसिक पीड़ा हुई। उन्होंने अनुभव किया कि यूरोप में फ्रान्स की सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थिति को गहरा आघात पहुँचा। उन्होंने प्रशा की सैन्य सफलता को निर्विवादित रूप से फ्रान्स के लिए चुनौती और फ्रान्स की सुरक्षा के लिए खतरा स्वीकार किया।

नैपोलियन ने देश में व्याप्त जनाक्रोश को अनुभव किया। सन् 1863 में पोल जाति के रूस के विरुद्ध विद्रोह के समय फ्रान्स की योजनाओं की असफलता ने फ्रान्स की जनता में असन्तोष का संचार किया। मैक्सिको में उसकी योजनाओं की विफलता ने देश में उसको संकट में डाल दिया और फ्रान्स की कूटनीति की दुर्बलता की अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति थी। जर्मनी की घटनाओं का फ्रान्स के लाभार्थ शोषण करने में फ्रान्स की असफलता ने जनभावनाओं को अत्यधिक उत्तेजित कर दिया था। परिणामस्वरूप नैपोलियन तृतीय की अपने देश की जनता के मध्य लोकप्रियता बहुत कम हो गयी थी तथा प्रशासनिक स्थिति भी निर्बल हो गयी थी। नैपोलियन तृतीय ने अपने संकटग्रस्त सिंहासन को सदृढ़ तथा स्थिर करने, फ्रान्स के आहत गौरव और प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने तथा जनता में अपनी धूमिल छवि में सुधार करने के उद्देश्य से कुछ करने का निश्चय किया। उसके मन्त्रियों ने नैपोलियन तृतीय को पर्याप्त उत्तेजित किया और प्रशा की विकासशील शक्ति को अवरुद्ध करने के लिए, आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध से पूर्व बिस्मार्क द्वारा अपनी बियारिट्ज (Biarrityz) में गुप्त वार्ता के समय फ्रान्स को क्षतिपूर्ति के रूप में कुछ क्षेत्र देने के आश्वासन के सन्दर्भ में नैपोलियन तृतीय ने कुछ क्षेत्रों की माँग की। उसको स्वयं निश्चित रूप से ज्ञात नहीं था कि यथार्थ में वह बिस्मार्क से क्या चाहता था। उसने एक के बाद एक अनेक प्रस्ताव रखे। पहले नैपोलियन ने राइन नदी के बायें तट पर स्थित मेन्ज (Mainz) और ववेरिया अधिकृत प्लाटीनाटा के क्षेत्रों का प्रस्ताव रखा। आस्ट्रिया के साथ सन्धि हो चुकी थी, अतः बिस्मार्क ने जर्मन क्षेत्र की एक इंच भूमि देने से स्पष्ट मना कर दिया। तदुपरान्त नैपोलियन तृतीय ने बेल्जियम के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखा। इस सम्बन्ध में फ्रान्स के राजदूत का हस्तलिखित महत्वपूर्ण तथा खतरनाक दस्तावेज बिस्मार्क को मिल गया। बिस्मार्क ने कुछ समय तक टालमटोल की और अन्ततोगत्वा प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। तदुपरान्त नैपोलियन तृतीय ने हालैण्ड के राजा से लक्जमबर्ग (Luxemburg) खरीदने की इच्छा व्यक्त करके अन्तिम प्रयास किया। लक्जमबर्ग पर हालैण्ड के राजा का शासन था और सन् 1866 में जर्मन संघ के विघटन तक वह उसका सदस्य था। वह जौलवेरिन का भी सदस्य था। लक्जमबर्ग में प्रशा की सेना उसकी रक्षा के लिए थी। हालैण्ड का राजा इसको बेचना चाहता था, यदि प्रशा का राजा इसकी अनुमति दे दे। फ्रान्स ने प्रशा की सेना को हटाने की भी माँग की। लक्जमबर्ग की विचित्र अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति थी। बिस्मार्क ने इस सम्बन्ध में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की लेकिन लक्जमबर्ग को फ्रान्स को स्थानान्तरित करने की सम्भावना के समाचार मात्र से जर्मनी में जनसमुदाय उत्तेजित हो गया। जर्मनवासियों ने रोष व्यक्त करते हुए कहा कि वह भूमि जो निश्चित रूप से जर्मनी की थी, किसी भी स्थिति में वंशानुगत शत्रुओं को नहीं देना चाहिए। उत्तेजित फ्रान्सवासियों ने आग्रह किया कि अब जर्मनी का इससे अधिक एकीकरण

नहीं होना चाहिए। हालैण्ड के राजा ने लक्जमबर्ग को बेचने से मना कर दिया। नैपोलियन तृतीय ने मत व्यक्त किया कि बिस्मार्क ने उसके साथ छल-कपट किया था। जब यूरोपीय शक्तियों को इस विवाद की सूचना मिली, वे फ्रान्स के छल-कपट, प्रवंचना से अत्यधिक दुःखी हुए। प्रशा ने यूरोपीय देशों के एक सम्मेलन का परामर्श दिया। इस सम्मेलन में यूरोपीय राष्ट्रों ने लक्जमबर्ग को एक तटस्थ राज्य घोषित कर दिया। पेरिस में इसको फ्रान्स की विजय कहा गया और बर्लिन में जर्मनी की विजय की घोषणा की गयी। यद्यपि बिना युद्ध के संकट का कुछ काल के लिए समाधान हो गया परन्तु नैपोलियन तृतीय ने अनुभव किया कि अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए युद्ध ही एकमात्र विकल्प था। उस समय फ्रान्स तथा प्रशा की परस्पर शत्रुता अत्यधिक बढ़ गयी। फ्रान्सवासी सैडोवा का प्रतिशोध लेने की चर्चा करते थे और प्रशावासियों ने फ्रान्सवासियों के इस दृष्टिकोण एवं भावना का विरोध किया तथा फ्रान्स की क्षतिपूर्ति की माँग को जर्मनी के राष्ट्रीय अधिकारों में अनधिकृत हस्तक्षेप की संज्ञा दी। इस प्रकार दोनों देशों की जनता युद्ध चाहती थी। फ्रान्सवासी अपनी प्रतिष्ठा एवं प्रभुत्व को पुनः स्थापित करना चाहते थे और प्रशावासी जर्मनी में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को पूर्ण करना चाहते थे। जब दोनों देश अत्यधिक उत्तेजित थे, एक छोटा-सा कारण विस्फोट के लिए पर्याप्त था।

युद्ध के तात्कालिक कारण (Immediate Causes of War)—सन् 1868 में स्पेनवासी अपनी बोर्बोवंशीय कामुक एवं दुराचारी रानी इजाबेला (Isabella) के शासन से त्रस्त थे, उन्होंने विद्रोह कर दिया तथा रानी को स्पेन से निकाल दिया। प्रशा के राजा के एक सम्बन्धी होहेनजोलर्नवंशी (Hohenzollern) राजकुमार लियोपोल्ड को स्पेन का राज्य देने का प्रस्ताव किया गया। इस प्रस्ताव के प्रति पेरिस की जनता में अत्यधिक आक्रोश था। अस्तु लियोपोल्ड ने स्पेन राज्य की स्वीकृति को वापिस ले लिया। नैपोलियन तृतीय इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ और प्रशा के राजा विलियम प्रथम से स्पष्ट शब्दों में माँग की कि वह भविष्य में कभी भी लियोपोल्ड या होहेनजोलर्न राजवंश के किसी भी व्यक्ति को स्पेन के उत्तराधिकार के लिए प्रत्याशी बनने की अनुमति नहीं देगा। प्रशा का राजा विलियम प्रथम शान्तिपूर्ण समाधान चाहता था, यद्यपि उसने फ्रान्सवासियों के शत्रुतापूर्ण भाषणों का कठोर विरोध किया। विलियम प्रथम ने अपने प्रत्याशी को हटा लेने का भी परामर्श दिया। नैपोलियन तृतीय ने विचार किया कि युद्ध का खतरा समाप्त हो गया। एक बार पुनः फ्रान्स के राजदूत को प्रशा के राजा के पास उस माँग के साथ भेजा गया कि विलियम प्रथम कभी भी होहेनजोलर्न वंश के व्यक्ति को स्पेन के उत्तराधिकारी के लिए प्रत्याशी नहीं बनायेगा। वह विलियम प्रथम से क्षमा-पत्र पर भी हस्ताक्षर करवाना चाहता था। यह प्रशा और राजा दोनों का ही महान् अपमान था। विलियम प्रथम ने फ्रान्स के राजदूत के साथ साक्षात्कार समाप्त कर दिया। जब बिस्मार्क को प्रत्याशी को वापिस लेने का समाचार मिला, वह अत्यधिक निराश हुआ। मोल्टके (Moltke) और रून, दोनों ही उसके साथ थे। बिस्मार्क तत्काल अपने पद से त्याग-पत्र देना चाहता था, परन्तु दोनों उत्कृष्ट सैनिकों ने अपनी व्यावसायिक अयोग्यता को स्वीकार किया। प्रशा के राजा ने इस माँग को अस्वीकार कर दिया तथा बिस्मार्क ने इस घटना का अनैतिक प्रयोग किया। उसको प्रशा के राजा विलियम प्रथम का एम्स (Ems), जहाँ राजा उस समय था, से एक तार मिला जिसमें फ्रान्स के राजदूत बेनेदेत्ती (Benedetti) के साथ साक्षात्कार का पूर्ण विवरण था। जैसे ही बिस्मार्क ने तार पढ़ा दोनों अतिथि इतने अधिक निराश थे, कि

उन्होंने भोजन भी नहीं किया। उसी समय बिस्मार्क के मस्तिष्क में विचार आया। उसने मोल्टके से कुछ प्रश्न पूछने के बाद, तार को संक्षिप्त रूप से प्रकाशित करने का निश्चय किया। उसने तार में कुछ परिवर्तन करके प्रकाशित किया, जिससे ऐसा आभास होता था कि प्रशा के राजा ने फ्रान्स के राजदूत का अपमान किया था। फ्रान्स की सेना तथा बिस्मार्क और उसकी सेना परस्पर युद्ध के लिए व्यग्र थे। बिस्मार्क भलीभाँति जानता था कि युद्ध अनिवार्य था और जर्मनी के लिए आवश्यक भी था। तीनों को भलीभाँति विदित था कि तार को पढ़ते ही फ्रान्स की जनता उत्तेजित हो जायेगी। पूर्ण आशा एवं विश्वास के साथ तीनों ने खाया-पिया। तार के प्रकाशन का वही परिणाम हुआ, जिसका बिस्मार्क ने पूर्वानुमान लगाया था।

यूरोपीय जनमत को फ्रान्स के विरुद्ध करना (European Opinion against France)—वास्तविक युद्ध के आरम्भ होने से पूर्व ही बिस्मार्क ने फ्रान्स को यूरोप की महान् शक्तियों की सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त करने से रोकने के लिए कूटनीतिक प्रयासों से फ्रान्स की छवि को क्षतिग्रस्त कर दिया था। उसने नैपोलियन तृतीय के क्षतिपूर्ति के लिए माँगों के लिखित प्रस्तावों को प्रकाशित कर दिया जिससे यूरोपीय देशों को विश्वास हो जाये कि फ्रान्स का आक्रमण युग आरम्भ हो गया। परिणामस्वरूप यूरोपीय देश फ्रान्स को अतोषणीय भू-क्षेत्रों की भूख वाले आक्रामक के रूप में देखने लगे। अखिल यूरोप का जनमत फ्रान्स विरोधी हो गया। ब्रिटेनवासियों को जब यह ज्ञात हुआ कि नैपोलियन तृतीय बेल्जियम प्राप्त करना चाहता था, जब कि इंगलैण्ड की नीति बेल्जियम की प्रभुसत्ता तथा अखण्डता को बनाये रखने की थी, वे फ्रान्स से अत्यधिक क्रुद्ध हो गये। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति भी फ्रान्स साम्राज्य के पक्ष में नहीं थी। बेल्जियम की घटना से उत्तेजित यूरोपीय देशों ने अपनी तटस्थता की घोषणा कर दी। नैपोलियन तृतीय को पूर्ण आशा थी कि आस्ट्रिया और इटली सक्रिय सहयोग देंगे। रूस सन् 1863 में पोल जाति के विद्रोह के समय विद्रोहियों के साथ सक्रिय समर्थन में फ्रान्स की शत्रुतापूर्ण कार्यवाही को भूला नहीं था। अस्तु रूस ने आस्ट्रिया के ऊपर दबाव डालकर फ्रान्स और आस्ट्रिया के परस्पर मैत्री सम्बन्धों की सम्भावना को समाप्त कर दिया। पोप अधिकृत रोम पर फ्रान्स का आधिपत्य था। इटली अपनी एकीकरण की प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए रोम प्राप्त करना चाहता था और बिस्मार्क पहले ही इटली को रोम पर आधिपत्य का आश्वासन दे चुका था, इसलिए इटली ने प्रशा का सक्रिय समर्थन किया।

नैपोलियन तृतीय का अनुमान था कि दक्षिण जर्मन के राज्य, जो प्रशा की महत्वाकांक्षा के विरुद्ध थे, निश्चित रूप से फ्रान्स के साथ प्रशा के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होंगे। दक्षिण जर्मन राज्यों को जब ज्ञात हुआ कि फ्रान्स जर्मन क्षेत्रों के द्वारा क्षतिपूर्ति चाहता था, वे उसके विरुद्ध हो गये। दक्षिण जर्मन राज्य फ्रान्स को जर्मन स्वतन्त्रता का आक्रामक शत्रु मानते थे और उनकी सहानुभूति प्रशा के प्रति थी, जो राष्ट्रीय शत्रु को दण्ड देना चाहता था। अन्ततोगत्वा जर्मन राष्ट्र एकीकृत हो गया था। अनेक शताब्दियों में पहली बार संयुक्त जर्मनी वंशानुगत शत्रु के विरुद्ध युद्ध के लिए निकल पड़ा।

प्रशा के कुशल एवं चतुर राजनीतिज्ञ बिस्मार्क के पूर्वानुमानों के अनुसार, समस्त जर्मनी में उत्कृष्ट राष्ट्रीय भावना तथा देशभक्ति का आविर्भाव हो चुका था और दक्षिण जर्मन राज्य अपनी तुच्छ ईर्ष्या, द्वेष एवं वैमनस्य को राष्ट्रीय हित के लिए विस्मृत कर (एकीकृत जर्मनी की

सेना ने) वंशानुगत शत्रु फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध में सक्रिय भाग लिया। 15 जुलाई, 1870 को उत्तेजित फ्रान्स ने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

प्रमुख घटनाएँ (Chief Events)—फ्रान्स को अकेले ही एकीकृत जर्मनी की शक्तिशाली सेना के साथ युद्ध करना पड़ा। जर्मनी की सेना ने तीन ओर से फ्रान्स पर आक्रमण किया। अगस्त के आरम्भ में जर्मनी की सेना ने वर्थ के युद्ध में मार्शल मैकमोहन को पराजित किया। जर्मनी की सेना एल्सेस तक पहुँच गयी। राजकुमार फ्रेडरिक चार्ल्स के नेतृत्व में जर्मनी की एक अन्य सेना ने फ्रान्स की मुख्य सेना को पराजित किया और मार्शल वेजेन को मट्ज के किले में शरण लेनी पड़ी। फ्रान्स के सम्राट नैपोलियन तृतीय तथा मार्शल मैकमोहन, मार्शल वेजेज की सहायता के लिए मट्ज पहुँचे परन्तु जर्मनी की सेना ने सेडन में उसकी घेराबन्दी कर दी। पहली सितम्बर, 1870 को फ्रान्स की सेना पराजित हो गयी और नैपोलियन तृतीय ने अपने 83 हजार सैनिकों के साथ वोन मोल्टके (Von Moltke) के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। नैपोलियन तृतीय को बन्दी बना लिया गया। इस प्रकार फ्रान्स के द्वितीय साम्राज्य का पतन हो गया।

सेडन में नैपोलियन की पराजय का समाचार मिलते ही पेरिस में जन क्रान्ति हो गयी और 4 सितम्बर, 1870 को फ्रान्स में गणतन्त्र की स्थापना की गयी। पेरिस के सैनिक राज्यपाल जनरल त्रोश (Trochu) ने फ्रान्स में अन्तरिम राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार का गठन किया। फ्रान्स की अन्तरिम सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध जारी रखने का निश्चय किया। जर्मनी की सेना निरन्तर आगे बढ़ रही थी। 27 सितम्बर, 1870 को स्ट्रासबर्ग पर जर्मनी का नियन्त्रण हो गया और 28 सितम्बर, 1870 को मेट्ज के दुर्ग पर जर्मनी ने आधिपत्य स्थापित कर लिया। तदुपरान्त विजयी जर्मन सेना ने पेरिस की घेराबन्दी कर दी। नगर ने साहस और वीरता के साथ विरोध किया। अन्ततोगत्वा पेरिस की सेना भी पराजित हो गयी। फ्रान्स ने बिस्मार्क की माँगों को स्वीकार कर लिया और फ्रैन्कफर्ट की विख्यात सन्धि हुई। इस प्रकार 28 जनवरी, 1871 को पेरिस के पतन के बाद फ्रान्स-प्रशा का युद्ध समाप्त हो गया।

नवम्बर, 1870 में युद्ध अभी चल ही रहा था, बिस्मार्क ने दक्षिण जर्मनी स्थित राज्यों की सरकारों के साथ जर्मनी के एकीकरण की सन्धियाँ कीं। इन सन्धियों की राज्य के शासकों तथा संसदों ने पुष्टि की। इस प्रकार उत्तरी जर्मन संघ का समस्त जर्मनी में विस्तार हो गया और इसका नाम वदल कर "जर्मन साम्राज्य" कर दिया गया। प्रशा का राजा विलियम प्रथम "संघ के राष्ट्रपति" की अपेक्षा अब जर्मन सम्राट हो गया। विधि की विचित्र विडम्बना ही थी कि एकीकृत जर्मनी का उद्घाटन समारोह तथा प्रशा के राजा का जर्मनी के सम्राट के रूप में राज्याभिषेक 18 जनवरी, 1871 को वर्साय में हुआ। ठीक 170 वर्ष पूर्व होहेनजोलर्न वंश के शासक ने प्रशा के राजा के रूप में पदभार ग्रहण किया था। जर्मन सेना पेरिस की घेराबन्दी किये हुए थी। विलियम प्रथम के राज्याभिषेक का उत्सव लुईस चौदहवें के वर्साय स्थित विशाल राजमहल के शीशों के कक्ष में हुआ था। अधिकृत विवरण देते हुए लिखा है, "विरोधी शक्ति के प्राचीन केन्द्र ने शताब्दियों से जर्मनी को विभाजित करने तथा अपमानित करने के निरन्तर प्रयास किए। इस उत्सव के लिए वर्साय का चुनाव दुर्भाग्यपूर्ण था। फ्रान्सवासियों ने जनरल दि गाल (De Gaulle) तथा एडिनौर (Adenauer) के समय तक जर्मनवासियों को क्षमा नहीं किया।

फ्रैन्कफर्ट की सन्धि (Treaty of Frankfurt)

28 जनवरी, 1871 को शान्ति सन्धि के आरम्भिक प्रावधानों पर हस्ताक्षार हुए और 10 मई को फ्रैन्कफर्ट सन्धि के रूप में दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार मट्स तथा स्ट्रासबर्ग के साथ लोहे और कोयले से सम्पन्न अलजेक तथा लारेन (Alsace and Lorraine) के क्षेत्र भी जर्मनी को प्राप्त हो गये। फ्रान्स ने युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में 20 करोड़ पौण्ड जर्मनी को देने का वचन दिया। क्षतिपूर्ति की अवधि तक जर्मनी की सेना को फ्रान्स में रहने की भी व्यवस्था थी।

इस युद्ध के भावी परिणामों के सम्बन्ध में हार्नेश लिखते हैं, "संसार के इतिहास में वहुत कम ऐसी घटनाएँ हुईं, जिनके तात्कालिक परिणाम सेडन युद्ध में फ्रान्स की पराजय के उपरान्त हुए।"

जर्मनी का पूर्ण एकीकरण तथा शक्तिशाली जर्मनी साम्राज्य का उद्भव इस युद्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम था। जर्मनी, जो यूरोप का सर्वाधिक निर्बल देश समझा जाता था, इस युद्ध के उपरान्त यूरोप महाद्वीप का सर्वाधिक शक्तिशाली तथा राजनीतिक शक्ति बन गया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप इटली का भी पूर्ण एकीकरण हो गया। फ्रान्स की सेना रोम में पोप की रक्षा कर रही थी, परन्तु इस युद्ध ने फ्रान्स को अपनी सेना रोम से हटाने के लिए विवश किया और पीडमोन्ट के राजा विक्टर एमान्युअल ने सरलता से रोम पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। पोप की प्रशासनिक सत्ता का अन्त हो गया और रोम एकीकृत इटली की राजधानी बन गया।

इस युद्ध के परिणामस्वरूप फ्रान्स में गणतन्त्र का अभ्युदय हुआ। फ्रैन्कफर्ट की सन्धि के उपरान्त कुछ माह तक फ्रान्स में भीषण संकट की स्थिति रही। पेरिस में साम्यवादी दल तथा कुछ अराजक तत्वों ने, कम्यून के नाम से प्रसिद्ध अपनी सरकार बनाने का प्रयास किया। उन्होंने पेरिस पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और दो माह तक फ्रान्स को अत्यधिक क्षति पहुँचाई। उसके बाद उनका दमन कर दिया गया। तदुपरान्त अपराधियों को दण्ड देने के युग का सूत्रपात हुआ। उसके बाद फ्रान्स में स्थायी शान्ति हुई। फ्रान्स में तृतीय गणतन्त्र सफल हुआ और स्थायी सरकार का गठन हुआ।

रूस ने इस युद्ध का लाभ लेते हुए पेरिस सन्धि के उन प्रावधानों का अतिक्रमण करना आरम्भ कर दिया, जिसके अन्तर्गत काले सागर को तटस्थ क्षेत्र घोषित कर दिया गया था। सेबेस्टोपोल में सुदृढ़ दुर्ग बनाना आरम्भ कर दिया। लन्दन में यूरोपीय शक्तियों का सम्मेलन हुआ, जिसमें रूस की इस कार्यवाही को सन्धि के प्रावधानों का उल्लंघन कहा गया।

भावी घटनाओं ने स्पष्ट किया कि बिस्मार्क ने फ्रान्स से अलजेक और लारेन लेकर अपेक्षाकृत अधिक काम किया था। यही प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध का मूल कारण था। यथार्थ में फ्रैन्कफर्ट सन्धि के प्रावधानों ने प्रथम विश्व युद्ध का बीजारोपण किया था। बिस्मार्क ने ये दोनों क्षेत्र देशभक्ति की उदात्त भावना तथा सैनिक कारणों से लिये थे। उसके सैनिक परामर्शदाताओं ने संकेत दिया कि भविष्य में फ्रान्स के साथ युद्ध के समय राइन नदी की पुरानी सीमाओं की अपेक्षा वोस्ज्स (Vosges) पर्वत शृंखला की नवीन सीमाएँ जर्मनी की सुरक्षा के लिए अधिक सुगम एवं लाभदायक होंगी और स्ट्रासबर्ग तथा मेन्ज के दुर्ग जर्मनी को अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करेंगे। इसके अतिरिक्त बिस्मार्क ने जर्मनी के उत्कृष्ट देशभक्तों के विचारों पर ध्यान दिया। उन्होंने मत व्यक्त किया कि अलजेक और लारेन प्रान्त

मध्यकालीन जर्मन साम्राज्य के ही भाग थे और इन प्रान्तों के जर्मनी में पुनः विलय से जर्मन साम्राज्य अत्यधिक शक्तिशाली हो जायेगा। सन् 1871 में अलजेक और लारेन की अधिकांश जनसंख्या ने स्वयं को जर्मन राष्ट्र की अपेक्षा फ्रान्सवासी ही व्यक्त किया। उनके निर्वाचित सदस्यों ने उन प्रान्तों के अनिवार्य रूप से विलय का तीव्र विरोध किया। सन् 1870 के उपरान्त फ्रान्स की प्रतिशोध की भावना से प्रेरित नीति के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप प्रथम विश्व युद्ध हुआ।

जर्मनी के एकीकरण में लोहे और कोयले की भूमिका (Role of Iron and Coal in the Unification of Germany)

सर्वविदित है कि आधुनिक युग में कोयला और लोहा दो खनिज आर्थिक शक्ति का मूल आधार है। नैपोलियन युग की समाप्ति के बाद, जर्मन अर्थव्यवस्था के परोक्ष तथा द्रुत गति से विकास ने जर्मनी के एकीकरण के आधारभूत तत्वों तथा शक्तियों के उद्भव में महत्वपूर्ण योगदान दिया। राजनीतिक दृष्टि से जर्मन एकीकरण की प्रक्रिया दीर्घकालीन, तथा मेकियावली की कूटनीति एवं युद्ध के सिद्धान्तों से अनुप्राणित थी। इसका नेतृत्व एक राज्य प्रशा में केन्द्रित था और एक राजा विलियम प्रथम तथा उसके योग्य, कुशल तथा प्रतिभाशाली प्रधानमन्त्री बिस्मार्क की व्यक्तिगत विजय थी। इन दोनों ने अनेक कूटनीतिक तथा सैनिक विजय प्राप्त की थी। आर्थिक शक्ति का योगदान महत्वपूर्ण आधार था, जिस पर उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक भव्य एवं गौरवशाली राजनीतिक घटनाएँ घटित हुई थीं और इन घटनाओं का नेतृत्व विलियम प्रथम तथा बिस्मार्क ने किया था।

नैपोलियन प्रथम द्वारा प्रशा की पराजय के परिणामस्वरूप, स्टेन (Stein) तथा हार्डेनबर्ग (Hardenberg) जैसे उत्साही, कर्तव्यपरायण, कुशल एवं देशभक्त मन्त्रियों ने वित्तीय व्यवस्था का पुनरुद्धार किया था और कृषि दास-प्रथा का उन्मूलन करके सामाजिक संरचना को परिष्कृत किया था। समयानुकूल सुधारों ने निजी उद्यमों को विशेष प्रोत्साहन दिया, जो आस्ट्रिया में अपरिवर्तित अर्थव्यवस्था के परिणामस्वरूप रुके हुए थे।

सन् 1815 के वियाना सम्मेलन (Vienna Congress) के निर्णयों ने पोल जाति के विभिन्न क्षेत्रों के रूस में विलय की क्षतिपूर्ति के रूप में राइन नदी के कोयला और लोहे के खनिज भण्डारों के क्षेत्र प्रशा को दे दिये थे। राइन नदी क्षेत्र में स्थित खनिज पदार्थों की दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न रूर (Ruhr) और सार (Saar) क्षेत्रों ने प्राकृतिक स्रोतों की दृष्टि से सामान्य प्रशा को मध्य एवं पश्चिमी यूरोप में सर्वाधिक धनी तथा सम्पन्न खनिज क्षेत्रों के रूप में रूपान्तरित कर दिया।

सन् 1834 से प्रशा का, जौलवेरिन (सीमा-शुल्क संघ) के माध्यम से, जर्मन क्षेत्र में स्थित अन्य राज्यों पर प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा था। इन राज्यों के मध्यमवर्गीय उदारवादियों ने जौलवेरिन के माध्यम से प्राप्त सुअवसरों का अत्यधिक उत्साह के साथ अधिकाधिक लाभ उठाया तथा वृहत् बाजारों को सुरक्षित रखने एवं जर्मनी के पूर्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली आर्थिक सत्ता के विकास के लिए प्रशा के साथ राजनीतिक एकता को एक साधन के रूप में विचार करना आरम्भ कर दिया था।

सामान्यतः सन् 1840 का दशक राजनीतिक दृष्टि से शुष्क तथा नीरस ही था। इस अवधि में सन् 1848 में उदारवादियों ने एक असफल प्रयास किया था अन्यथा यह दशक

आर्थिक इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। राजनीतिक क्षेत्र में निराशा एवं कुंठाग्रस्त राष्ट्रीय शक्ति एवं ऊर्जा का भौतिक प्रगति के लिए सदुपयोग किया गया। तत्कालीन प्रतिक्रियावादी शक्तियों की विजय ने आर्थिक विकास में अत्यधिक सहायता की। वस्तुस्थिति यह थी कि व्यापारिक समुदाय ने सामूहिक हिंसा तथा सामाजिक अस्थिरता तथा अशान्ति से किसी प्रकार के व्यवधान का अनुभव नहीं किया। अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया से स्वर्ण के आगमन से मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति का आविर्भाव हुआ और इस प्रवृत्ति ने अनुमानित व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। इस दशक में, जौलवेरिन प्रणाली के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादन तथा विदेश व्यापार पूर्वापेक्षा दुगुने से भी अधिक हो गया। संयुक्त बाजार (Joint Stock) सिद्धान्त पर आधारित नवीन पूँजी निवेश करने वाले बैंकों ने कारखानों तथा रेलवे के विकास के लिए अपेक्षित पूँजी की व्यवस्था की। यथार्थ में सन् 1857 के वित्तीय विनाश ने आर्थिक विकास को गहरा आघात पहुँचाया परन्तु औद्योगिक क्षेत्र ने इस आघात को सहन कर लिया। सन् 1871 के उपरान्त जर्मन राज्य की बैंक ने जर्मनी में स्थित बैंकों को एक शक्तिशाली वित्तीय शक्ति के रूप में संगठित कर दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी में 40 के दशक के अन्त तक जर्मनी की अर्थव्यवस्था पूर्व के औद्योगिक एवं औद्योगिक स्वरूपों के मध्य सीमा रेखा से आगे निकल चुकी थीं। इसका राजनीति की दिशा पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। सम्पत्ति का कृषि भूमि से उत्पादन क्षेत्रों, गाँवों से नगरों और कुलीन वर्ग से मध्यवर्ग की ओर पलायन हो रहा था। राजनीतिक सत्ता के पुन-र्वितरण के लिए दबाव निरन्तर बढ़ रहा था। दशक के अन्त तक उदारवादी तथा रूढ़िवादी शक्तियों के मध्य संघर्ष स्पष्ट हो चुका था। फ्रैन्कफर्ट राष्ट्रीय सभा की उत्पत्ति में यह संघर्ष की प्रवृत्ति निहित थी। यहाँ इतिहास ने विचित्र मोड़ लिया। औद्योगीकरण की अवधि में उद्भूत उदार लोकतान्त्रिक शक्तियों का सन् 1849 तक पर्याप्त पतन हो चुका था। नवीन सामाजिक शक्तियों की सफलता का रूढ़िवादी शक्तियों (जिसका विलियंम प्रथम तथा बिस्मार्क ने प्रतिनिधित्व किया) ने, लोकतान्त्रिक तथा उदारवादी साधनों की अपेक्षा, कूटनीति तथा युद्ध के माध्यम से जर्मनी के एकीकरण के लिए सर्वाधिक उपयोग किया। इस सन्दर्भ में स्मरणीय है कि आर्थिक शक्ति, सैनिक शक्ति के समुचित विकास के लिए अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुई। सैन्य शक्ति के विकास तथा सैनिक अभियानों को रूढ़िवादियों ने ही प्रोत्साहित किया था। उसी के परिणामस्वरूप जर्मनी का एकीकरण सम्भव हुआ।

रेलवे के विकास के सन्दर्भ में यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो जाता है। सन् 1850 तक प्रशा में, फ्रान्स के समान रेलवे का जाल बिछ गया था। रेलवे के विकास ने जर्मनी को अपनी कोयले और लिगनाइट की अपार खनिज सम्पदा का समुचित शोषण करने के लिए सक्षम बनाया और इन दो खनिजों का वार्षिक उत्पादन फ्रान्स और बेल्जियम के कुल उत्पादन से भी अधिक हो गया। सन् 1860 से 1870 के दशक में लौह अयस्क के उत्पादन में द्रुतगति से वृद्धि हुई।

राइन नदी के पूर्व में रेलवे का विकास विभिन्न चरणों में तथा मन्द गति से हुआ। अतः उत्पादन प्रक्रिया में प्रगति भी शनैः शनैः हुई। अमेरिका से आये अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट (Fridrick List) ने सामान्य जर्मन रेलवे प्रणाली के विकास के लिए आग्रह किया। यह कार्य सर्वप्रथम सैक्सोनी प्रान्त में लिपजिग से ड्रेसडेन तक रेलवे लाइन का निर्माण हुआ। यह कार्य सन् 1839 में आरम्भ हुआ था। प्रथम वर्ष में कुल 4,12,000 व्यक्तियों ने यात्रा की और

कुछ महिला यात्री अपने मुख में सुई दबाकर चलती थीं जिससे कि एकमात्र अन्धकारमय गुफा में किसी प्रकार के भय अथवा असामाजिक तत्वों के आक्रमण से स्वयं को बचा सकें। लिस्ट के उत्साही व्यापक प्रचार ने अनेक सन्देहों, संकोचों तथा तत्कालीन जर्मनी में अनेक व्यक्तियों की शत्रुता को समाप्त कर दिया। प्रशा का भावी राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ भी शीघ्र ही प्रबल समर्थक बन गया।

जर्मन जीवन के कुछ क्षेत्रों में, ब्रिटेन और बेल्जियम जैसे जर्मनी से अधिक औद्योगीकृत देशों की अपेक्षा रेलवे का अधिक क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा। सड़कों का यद्यपि पूर्णरूप से विकास नहीं हुआ था, परन्तु रेलवे के विकास के परिणामस्वरूप परिवर्तन पूर्वापेक्षा अधिक स्पष्ट तथा आश्चर्यजनक थे। ग्रामवासियों के परम्परागत सीमित तथा संकीर्ण दृष्टिकोण तथा आदतों में अनायास महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। जर्मनी परिवहन तथा वितरण की महाद्वीपीय प्रणाली का मुख्य केन्द्र बन गया। उसकी कभी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। जर्मनी की प्राकृतिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक शक्तियाँ विपरीत दिशा में कार्य कर रही थीं। सीमित तथा संकुचित समुद्र तट में नौ-परिवहन के विकास की सम्भावना नहीं थी। जर्मनी की अधिकांश नदियाँ बाल्टिक सागर की ओर बहती थीं। शीत ऋतु में जर्मनी की अधिकांश नहरों का पानी जम जाता था। सड़कों का भी समुचित विकास नहीं हुआ था। इन समस्त प्राकृतिक एवं भौगोलिक स्थितियों ने परिवहन की समस्या को विकट तथा जटिल बना दिया था। इसके अतिरिक्त आन्तरिक सीमा एवं चुंगी शुल्क ने परिवहन को अत्यधिक व्ययशील बना दिया था। लोहे की रेलवे लाइनों ने जर्मनी के सुदूर एवं अज्ञात ग्रामीण क्षेत्रों में आवागमन सुगम कर दिया। इसी प्रकार अमेरिका में रेलवे लाइनों ने देश के आन्तरिक भागों से सम्पर्क स्थापित किया था। जर्मनी में रेलवे ने आन्तरिक भागों को नवोदित शक्तियों, तत्वों एवं भावनाओं से अवगत करवाया। व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया तथा व्यापार के प्रत्येक क्षेत्र में उत्साही एवं साहसी उद्यमियों को नये अवसर प्रदान किये। जैसे जौलवेरिन ने कृत्रिम व्यवधानों को समाप्त किया था, इसी प्रकार रेलवे ने जर्मनी की एकता तथा सम्पन्नता के प्रबल शत्रु प्राकृतिक व्यवधानों का अन्त किया था। रेलवे ने सन् 1850 के उपरान्त जर्मनी की अर्थव्यवस्था के द्रुतगति से विकास को सम्भव किया तथा जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया। रेलवे के कारण यूरोप में जर्मनी का महत्व बढ़ गया तथा मध्य यूरोप की सर्वोत्कृष्ट शक्ति बन गया और उस युग में प्रशा की आस्ट्रिया के विरुद्ध भावी नेतृत्व तथा प्रभुत्व के लिए सर्वाधिक लाभकारी स्थिति थी।

प्रशा में रेलवे तथा उद्योगों का अधिकांश विकास कार्य प्रशा तथा अन्य राज्यों की व्यक्तिगत पूँजी से हुआ था। प्रशा की सरकार ने युद्ध काल में रेलवे का सर्वाधिक उपयोग किया। मोल्टके (Moltke) के मार्गदर्शन में सैनिक सामरिक नीति को इस प्रकार निर्धारित किया गया कि सैनिकों के परिवहन तथा रसद की आपूर्ति में रेलवे का सर्वाधिक प्रयोग किया गया। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप भारी तोपों के उत्पादन ने युद्ध के क्षेत्र का ही रूपान्तर कर दिया। अस्तु आर्थिक विकास के अभाव में जर्मन राष्ट्रवाद अत्यधिक दुर्बल शक्ति होता। निःसन्देह विलियम प्रथम तथा बिस्मार्क के कारण इसकी विजय अवश्य होती परन्तु एक राष्ट्रवादी आन्दोलन के रूप में समस्त जर्मनी के सर्वाधिक प्रगतिशील वर्ग के जनमत का संकट काल में अपेक्षाकृत कम समर्थन मिलता।

आर्थिक क्षेत्र में द्रुतगति से विकास ने जनसमुदाय के मानसिक दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया था और इस परिवर्तन ने विलियम प्रथम तथा बिस्मार्क के कार्य को सहज तथा सरल बना दिया था। उनको उदार दृष्टिकोण वाले उद्यमियों के निरन्तर बढ़ते हुए वर्ग की स्वाभाविक आकांक्षाओं से शक्ति एवं बल मिला। ये उदार उद्यमी प्राचीन पद्धति पर आधारित प्रशासनिक तथा विधायी व्यवस्था का उन्मूलन करना चाहते थे, उन्मुक्त श्रमिकों की नवीन आपूर्ति तथा विशाल उन्मुक्त व्यापार बाजार चाहते थे और उदार एवं संसदीय पद्धतियों से अधिकाधिक राजनीतिक सत्ता का दावा करते थे।

आर्थिक क्षेत्र में इन समस्त विकास कार्यों के पीछे जौलवेरिन प्रणाली थी। प्रशा ने सन् 1818 में, एडम स्मिथ के आर्थिक सिद्धान्तों तथा विचारों के अनुरूप वित्तीय सुधारों का शुभारम्भ किया था। यहीं से जौलवेरिन का प्रारम्भ हुआ। प्रशा के यत्रतत्र बिखरे हुए प्रान्तों को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए प्रशा की सरकार ने नवीन सीमा-शुल्क प्रणाली का सूत्रपात किया। इसके अन्तर्गत समस्त सीमा-शुल्क समाप्त कर दिये और प्रशा के समस्त क्षेत्राधिकार में मुक्त व्यापार की सुविधा प्रदान की गयी। विदेशी आयात के क्षेत्र में केवल उत्पादित वस्तुओं पर सामान्य सीमा-शुल्क लगाया गया। कच्चे माल पर किसी प्रकार का कोई सीमा-शुल्क नहीं था। दूसरी ओर प्रशा के क्षेत्र से जाने वाली वस्तुओं पर परिवहन शुल्क (अधिभार) में अत्यधिक वृद्धि हो गयी। इस वृद्धि का मूलोद्देश्य जर्मनी स्थित अन्य राज्यों को जौलवेरिन प्रणाली का सदस्य बनाने के लिए बाध्य करना था।

यह नीति छोटे राज्यों की स्वतन्त्रता के लिए अत्यधिक घातक थी। यदि वे प्रशा की जौलवेरिन प्रणाली से विलग रहने का प्रयास करते तब उनके समक्ष आर्थिक विनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाती। प्रशा के यत्र-तत्र बिखरे हुए अधिकृत क्षेत्र जर्मनी स्थित अनेक छोटे राज्यों को ही केवल आच्छादित नहीं किये हुए थे वरन् उन्हीं क्षेत्रों से जर्मनी के प्रमुख व्यापारिक मार्ग भी थे। प्रशा ने उसके विरुद्ध विद्रोही विचारों एवं भावनाओं पर किंचित भी ध्यान नहीं दिया, परन्तु आस्ट्रिया इसमें सम्मिलित विभिन्न समस्याओं एवं विवादों का न्यायसंगत ढंग से निराकरण करने में असमर्थ था। अस्तु जौलवेरिन के प्रति उदासीन रहा। किसी भी वाणिज्यिक संघ का गठन नहीं किया गया। प्रशा ने सन् 1825 के उपरान्त अनेक उदारवादी प्रावधानों की व्यवस्था की। परिणामस्वरूप समस्त विरोध शान्त हो गया और जर्मनी में स्थित अनेक राज्य एक के बाद एक उस जौलवेरिन (सीमा-शुल्क संघ) के सक्रिय सदस्य बन गये। दक्षिण जर्मनी के महत्वपूर्ण राज्य बवेरिया, बर्टम्बर्ग और सैक्सोनी सन् 1834 में जौलवेरिन में सम्मिलित हो गये और इस प्रणाली का तदुपरान्त समस्त जर्मनी में विस्तार हो गया।

जौलवेरिन अर्थात् सीमा-शुल्क संघ के व्यापक प्रसार के जर्मनी के ऊपर अनेक महत्वपूर्ण प्रभाव हुए।

1. जौलवेरिन परस्पर अनुबन्ध पर आधारित था। यह कोई सन्धि नहीं थी, जिसका सम्बन्ध मुख्य रूप से अतीत की घटनाओं से होता था। यह एक नितान्त वास्तविकता थी और प्रत्येक सदस्य के दिन-प्रतिदिन के जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती थी। इस प्रकार अप्रत्यक्ष परन्तु निश्चित रूप से सदस्य राज्यों के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गये। इसके अतिरिक्त रेलवे, नहरों तथा सड़कों के निर्माण ने परिवहन को सहज और सुगम कर दिया था। इससे परस्पर घनिष्ठता निरन्तर सुदृढ़ तथा पुष्ट होती गयी।

2. आस्ट्रिया के अतिरिक्त समस्त जर्मन क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से एकता के सूत्र में बँध गये। इस प्रकार जौलवेरिन के माध्यम से आर्थिक एकता ने समस्त राजनीतिक व्यवधानों को

समाप्त कर दिया तथा जर्मनी की राजनीतिक एकता तथा जर्मन नागरिकों की भौतिक ए... के लिए मार्ग प्रशस्त किया, राष्ट्रीय भावनाओं के विकास को प्रोत्साहित किया तथा रा... चेतना को सुदृढ़ तथा पुष्ट किया।

3. जर्मनी के उद्योगपति, व्यापारी, खदान स्वामी, इस्पात तथा रेलवे निर्माता ... शक्तिशाली अवयव बन गये। ये सब राष्ट्रीय एकता के लिए निरन्तर अथक परिश्रम कर... थे। वे कानूनों, करों, सीमा-शुल्कों, डाक सेवा, मुद्रा, माप और तौल की एकरूपता चाहते... जिससे निकट भविष्य में राजनीतिक एकता सम्भव हो सके। वे विदेशों में पूर्वापेक्षा अ... समर्थन तथा सुरक्षा चाहते थे, जो केवल शक्तिशाली सरकार ही दे सकती थी। सन् 18... में जर्मनी में क्रान्ति को उच्च मध्यम वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का असफल प्र... कहा जा सकता है। जौलवेरिन के उद्‌भव एवं आर्थिक स्थिति ने उच्च मध्यम वर्ग ... राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया था।

4. जर्मनी में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए जौलवेरिन प्रशा के राजनीतिक सं... का एक महत्वपूर्ण आर्थिक अस्त्र था। प्रशा आस्ट्रिया के साथ सैनिक संघर्ष में पूर्व की भाँ... शक्तिहीन तथा निर्बल बना रहता जैसा कि ओल्मुट्ज के युद्ध में पहले स्पष्ट हो चुका ... परन्तु प्रशा आर्थिक दृष्टि से प्रत्येक वर्ष शक्तिशाली होता गया और इसी शक्ति के माध्... से जर्मनी के अन्य छोटे राज्यों को आस्ट्रिया से अधिक सुरक्षावादी प्रभाव से विलग क... कर, उनका सक्रिय सहयोग तथा समर्थन प्राप्त कर सका। जर्मन राज्यों के लिए प्रशा के स... घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध आर्थिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण थे। ये राज्य जौलवेरिन प्रणा... के बाहर नहीं रह सकते थे। जौलवेरिन के सदस्य राज्यों के मध्य स्वस्थ व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वि... में उनकी विशेष रुचि थी। जौलवेरिन ने जर्मन राज्यों तथा जनता को परस्पर सहयोग ... व्यापक तथा दीर्घगामी भौतिक सुखों एवं लाभों से अवगत कराया तथा प्रशा के नेतृत्व ... लाभों का भी बोध कराया। अस्तु उन्होंने प्रशा के नेतृत्व तथा आदर्श स्वरूप के अनु... राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का प्रबल समर्थन किया।

5. नये प्रकार की बन्दूकों से सज्जित प्रशा की विशालकाय सैन्य व्यवस्था ... 18,30,000 प्रशिक्षित तथा अनुशासित कुशल सैन्य संगठन स्वयं प्रशा के औद्योगीकरण ... परिवहन क्रान्ति विशेष रूप से रेलवे के ही सुखद तथा उत्साहवर्धक परिणाम ... औद्योगीकरण तथा परिवहन क्रान्ति में लोहे और कोयले की मुख्य भूमिका थी। स्मरणीय ... कि इतनी विशाल सेना के नियमित एवं सुरक्षित सैनिकों का जर्मन बैंकों के माध्यम से केव... 18 दिन में गठन किया गया था तथा 46,200 सशस्त्र सैनिकों का पश्चिमी सीमा पर परिवह... किया गया था। जबकि फ्रान्स में, जर्मनी में सैन्य संगठन की प्रक्रिया के आरम्भ से 23 दि... बाद लगभग दुगुनी सैन्य शक्ति का गठन किया गया। अधिकांश सुरक्षित सैनिक बिना सैनि... वर्दी तथा अपेक्षित अस्त्र-शस्त्रों के सैनिक दस्तों के मुख्यालयों पर निष्क्रिय समय व्यतीत क... रहे थे।

निःसन्देह लोहे और कोयले का जर्मनी के एकीकरण के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं ... परन्तु आधुनिक युग में किसी देश के आर्थिक विकास, समृद्धि एवं सम्पन्नता में इन दो खनि... की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। इन दोनों खनिजों के अभाव में किसी देश ... औद्योगीकरण, सामाजिक एवं आर्थिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती... उल्लेखनीय है कि यह दोनों खनिज ही बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक विनाशकारी प्रथम त... द्वितीय विश्व युद्धों के मूल कारण थे। जर्मनी के एकीकरण में आर्थिक क्रान्ति के प्रत्यक्ष त... परोक्ष प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क ने क्या भूमिका निभाई ?
What role Bismark played in the unification of Germany ?
(मगध, 1996, 98; राँची एवं रायपुर, 1998; पटना, 1996; भागलपुर एवं भोपाल, 1997; जबलपुर एवं ग्वालियर, 2000; लखनऊ, 1992, 94; अवध, 1992, 93, 96, 97, 99; कानपुर, 1993, 94, 96, 99; आगरा, 1993, 95, 98, 99; गोरखपुर, 1990, 97; मेरठ, 1992, 94, 99; गढ़वाल, 1997, 2000; बुन्देलखण्ड, 1991, 94, 95, 99; रुहेलखण्ड, 1996, 97, 2000)

2. बिस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण किस प्रकार किया ?
How Bismark achieved unification of Germany ?
(बी. आर. अम्बेदकर, 1996, 98; मगध, 1992; अवध, 1998; आगरा, 2000; गोरखपुर, 1992, 95; मेरठ, 1996; लखनऊ, 1996, 2000; गढ़वाल 1999)

3. जर्मनी के एकीकरणों के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिये।
Discuss various stages of unification of Germany.
(जबलपुर एवं रायपुर, 1996; भोपाल, 1998; रुहेलखण्ड, 1995)

4. आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध के कारणों एवं परिणामों की विवेचना कीजिये।
Discuss causes and effects of Austro-Prussia War.
(जबलपुर, 1997, 99, 2000; आगरा, 1996; मेरठ, 1993; गढ़वाल, 1994; कानपुर, 1998)

5. चान्सलर के रूप में बिस्मार्क ने कैथोलिक एवं समाजवादियों से कैसे निपटारा किया ?
How did Bismark tackle the Catholics and socialists as Chancellor ?
(रुहेलखण्ड, 1992, 94, 96)

6. 1870 के फ्रान्स और प्रशा के युद्ध के कारणों एवं परिणामों की समीक्षा कीजिये।
Criticise the causes and results of Franco-Prussian War of 1870.
(रुहेलखण्ड, 1993)

7. जर्मनी के एकीकरण पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on the unification of Germany.
(गढ़वाल एवं लखनऊ, 1998; बुन्देलखण्ड, 1993, 96; अवध, 1991, 94)

8. "सेडन का युद्ध जर्मनी के एकीकरण की पूर्ति था।" इस मत की समीक्षा कीजिये।
"War of Sedan was the completion of unification of Germany." Criticise this statement.
(बुन्देलखण्ड, 1990)

9. बिस्मार्क की 'रक्त एवं लौह' नीति पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिये।
Write a critical note on Bismark's policy of 'Blood and Iron'.
(कानपुर, 1995, 97)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. नैपोलियन बोनापार्ट ने ही 200 छोटे राज्यों को .... राज्यों के परिसंघ में परिवर्तित किया था—
(क) 50 (ख) 40 (ग) 39 (घ) 37

2. सन् .... में जेना की युद्धभूमि में प्रशा की नैपोलियन के आक्रमण के विरुद्ध गम्भीर पराजय हुई—
(क) *1800* (ख) *1804* (ग) *1805* (घ) *1806*
3. सन् .... के मध्य प्रशा से सम्बन्धित शायद ही कोई ऐसा विषय होगा जिस पर आस्ट्रिया ने निर्णय नहीं किया हो—
(क) *1800* से *1815* (ख) *1815* से *1835* (ग) *1815* से *1850* (घ) *1825* से *1860*
4. सन् *1861* में सिंहासनारोहण के समय *64* वर्षीय विलियम का जन्म सन् .... में विलियम रानी लूसी के पुत्र के रूप में हुआ था—
(क) *1792* (ख) *1795* (ग) *1797* (घ) *1799*
5. सन् .... तक की अवधि में बिस्मार्क समस्त यूरोपीय कूटनीतिक तथा राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु था—
(क) *1850—1860* (ख) *1856—1862* (ग) *1862—1870* (घ) *1864—1871*
6. बिस्मार्क का जन्म *1* अप्रैल, ... को ब्रेडनबर्ग के एक कुलीन परिवार में हुआ था—
(क) *1810* (ख) *1815* (ग) *1820* (घ) *1825*
7. बिस्मार्क ने फ्रैन्कफर्ट की संसद में सन् .... आठ वर्ष तक प्रशा का प्रतिनिधित्व किया—
(क) *1848* (ख) *1849* (ग) *1850* (घ) *1851*
8. *14* अगस्त, ... को आस्ट्रिया के सम्राट फ़्रान्सिस जोसेफ तथा प्रशा के राजा विलियम प्रथम ने गेस्टिन नामक स्थान पर हस्ताक्षर किये—
(क) *1856* (ख) *1860* (ग) *1865* (घ) *1868*
9. आस्ट्रिया और प्रशा के मध्य युद्ध केवल .... में समाप्त हो गया—
(क) *10* सप्ताह (ख) *7* सप्ताह (ग) *5* सप्ताह (घ) *3* सप्ताह
10. आस्ट्रिया ने .... को कस्टोजा की युद्धभूमि में इटली की सेना को पराजित किया—
(क) *24* जून, *1862* (ख) *20* जून, *1866* (ग) *24* जून, *1866* (घ) *24* जून, *1868*

[उत्तर—*1.* (ग), *2.* (घ), *3.* (ग), *4.* (ग), *5.* (ग), *6.* (ख), *7.* (घ), *8.* (ग), *9.* (घ), *10.* (ग) ।]

24

सन् 1870 से सन् 1914 तक फ्रान्स एवं इटली

[FRANCE AND ITALY SINCE 1870 TO 1914]

सैडन के उपरान्त फ्रान्स की स्थिति (Condition of France after Sedan)—सैडन के विनाश के बाद फ्रान्स की स्थिति यथार्थ में अत्यधिक दयनीय थी। उसको घातक आघात लगा था, जिससे यूरोप में फ्रान्स की प्रतिष्ठा बहुत कम हो गयी थी। लोहा एवं कोयला के विशाल भण्डारों वाले दो प्रान्त छीन लिये गये थे, उसकी सशस्त्र सेनाएँ एवं आर्थिक जीवन अत्यधिक अस्त-व्यस्त हो गया था और उसके ऊपर युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में विशाल धनराशि के भुगतान का दायित्व था। फ्रान्स का राजनीतिक भविष्य भी अन्धकारमय था। द्वितीय साम्राज्य के पतन के बाद पुराने राजवंशों की आकांक्षाएँ पुनर्जीवित हो गयी थीं। देश में सरकार के स्वरूप के विषय पर आन्तरिक संघर्ष की सम्भावनाएँ प्रबल थीं। सौभाग्य से फ्रान्स के पास थेयर्स (Thiers) के रूप में एक चतुर, बुद्धिमान एवं कुशल राजनीतिज्ञ था जिसने अपने देश का विकट परिस्थितियों एवं समस्याओं के मध्य सुरक्षित रूप से मार्गदर्शन किया।

सैडन में पराजय का समाचार पेरिस पहुँचते ही अन्तरिम गणतन्त्र की घोषणा कर दी गयी और युद्ध के संचालन के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा (National Defence) की सरकार स्थापित की गयी। जब सन् 1871 में पेरिस ने आत्म-समर्पण कर दिया, इस सरकार का अन्त हो गया। जर्मनी के साथ सन्धि के प्रावधानों का अनुमोदन करने के लिए राष्ट्रीय विधान सभा (National Assembly) का चुनाव किया गया। राष्ट्रीय सभा ने सरकार के निश्चित स्वरूप के राष्ट्र के निर्णय के लम्बित रहने तक थेयर्स (Thiers) को कार्यपालिका के प्रमुख (Chief of the Executive) के रूप में चुना। थेयर्स ने फ्रेन्कफर्ट की सन्धि द्वारा जर्मनी के साथ शान्ति सुनिश्चित की। इस सन्धि के अन्तर्गत फ्रान्स ने अलजैक और लौरैन के विशाल भू-भाग देने के साथ युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में विशाल धनराशि देने का वचन दिया। क्षतिपूर्ति की राशि के पूर्ण भुगतान होने तक जर्मनी की सेना का फ्रान्स के उत्तर-पूर्वी भाग पर नियन्त्रण रहेगा और इस सेना के भोजन एवं आवास का समस्त व्यय फ्रान्स वहन करेगा।

समुदाय (The Commune) (सन् 1871)—पराजय के तत्काल बाद भीषण गृह युद्ध ने फ्रान्स की विकट समस्यायों में वृद्धि की। राष्ट्रीय सभा के रूप में सरकार और पेरिस की जनता के मध्य गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गये, परिणामस्वरूप तत्काल कम्यून का गृह युद्ध

आरम्भ हो गया। राष्ट्रीय सभा में गणतन्त्र के कुख्यात रूप से विरोधी गुप्त राजतन्त्रवादियों (Gyto-Royalists) का बहुमत था। पेरिसवासी सशक्त गणतन्त्रवादी एवं विचारों से साम्यवादी थे और उनको स्वाभाविक रूप से आशंका थी कि राष्ट्रीय सभा (National Assembly) राजतन्त्रीय प्रणाली को पुनर्स्थापित करेगी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय सभा ने राजधानी पेरिस की अपेक्षा बोरड्यूक्स (Bordeaux) से वर्साय स्थानान्तरित करके पेरिसवासियों को उत्तेजित ही नहीं किया वरन् उनका अविश्वास भी किया। पेरिसवासियों ने अनुभव किया कि राजधानी का अपमान किया गया था। वे इस विचार से अत्यधिक उत्तेजित हो गये कि पेरिस, जिसने हाल ही में युद्ध की विभीषिकाओं को सहन किया था और स्वयं के बलिदान द्वारा फ्रान्स के सम्मान, गौरव एवं प्रतिष्ठा को बनाये रखा था, को राजधानी के गौरव से वंचित कर दिया जाये और उस पर राजधानी की अपेक्षा प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करने वाली राष्ट्रीय सभा (National Assembly) द्वारा प्रान्तीय नगर के अनुरूप बाहर से शासन किया जाये। उनकी शिकायत की इस भावना को पेरिसवासियों की वित्तीय समस्याओं के प्रति सरकार की उदासीनता ने अत्यधिक उत्तेजित किया। पेरिस, विघटित सैनिकों, बेरोजगार श्रमिकों, समाजवादियों एवं अराजकतावादियों जैसे विस्फोटक तत्वों से पूर्ण था और विस्फोट के लिए केवल एक चिंगारी की आवश्यकता थी। सरकार के राजधानी से तोपों को हटाने के प्रयास ने अपेक्षित चिंगारी प्रदान की। पेरिस में विद्रोह हो गया और विद्रोहियों ने पेरिस के लिए स्व-शासन और प्रान्तों में इसी प्रकार के कम्यून स्थापित करने की माँग करते हुए कम्यून स्थापित किया। समस्त फ्रान्स को साम्यवादी सिद्धान्तों एवं विचारों के अनुरूप संगठित करना था। थेयर्स ने कठोर नीति का अनुसरण किया और नगर के विद्रोह को बलपूर्वक कम करने की दिशा में कार्य किया। फ्रांसवासियों ने ही राजधानी में फ्रान्सवासियों की जर्मन विजेता सैनिकों, जो निकटवर्ती पहाड़ियों पर खेमों में रह रहे थे, के समक्ष 6 सप्ताह तक घेराबन्दी की। अन्ततोगत्वा वर्साय से सरकारी सैनिकों ने पेरिस में प्रवेश किया और नगर पर पूर्ण नियन्त्रण होने तक पेरिस की सड़कों पर संघर्ष किया। संघर्ष रक्तरंजित एवं अमानुषिक था। जीवन और सम्पत्ति की अपूर्व क्षति हुई। सरकार ने कम्यूनार्डों (Communards, पेरिस के सन् 1871 के कम्यून समर्थक) के विरुद्ध भीषण प्रतिशोध लिया। अनेक को उसी स्थान पर गोली मार दी गयी और अनेक को कारावास का कठोर दण्ड दिया गया। पेरिस पराजित हो गया और समाजवाद को शताब्दी के अन्त तक के लिए समाप्त कर दिया गया।

पुनर्निर्माण कार्य (Reconstruction Work)—कम्यून का दमन करने के उपरान्त थेयर्स ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य आरम्भ किया। सर्वाधिक अनिवार्य कार्य आरोपित क्षतिपूर्ति के रूप में विशाल धनराशि का भुगतान करना और जर्मन सैनिकों को फ्रान्स से बाहर निकालना था। थेयर्स ने यह कार्य अपूर्व ऊर्जा एवं शीघ्रता से किया। उसने जनता से विशाल मात्रा में ऋण लिया और मात्र दो वर्ष में क्षतिपूर्ति की विपुल राशि का भुगतान कर दिया। फ्रान्स निर्धारित अवधि से बहुत पहले जर्मन सैनिकों के नियन्त्रण से मुक्त हो गया और उसकी इस महान् उपलब्धि का 'क्षेत्र के मुक्तिदाता' (Liberator of the territory) के रूप में गुणगान किया गया। प्रशा के आदर्श उदाहरण के अनुरूप सेना का पुनर्गठन करके सेना में सुधार करना उसकी अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। सन् 1872 में पारित अधिनियम द्वारा सैन्य सेवा अनिवार्य कर दी गयी। तदुपरान्त उसने देश के संविधान के स्वरूप पर ध्यान दिया। राष्ट्रीय सभा में राजतन्त्रवादियों का बहुमत था और देश में भी राजतन्त्रीय भावना प्रबल थी।

थेयर्स स्वयं भी ओरलिएनिस्ट (Orleanist) वंश के प्रबल समर्थक होने के कारण राजतन्त्रवादी ही था। लेकिन राजतन्त्रवादी एक दल के रूप में स्वयं विभाजित थे। थेयर्स ने स्वयं कहा था कि फ्रान्स के सिंहासन के तीन राजवंशों के तीन प्रमुख दावेदार थे। चार्ल्स दशम् का पौत्र काम्पटे डि चैमबोर्ड (Compte de Chambord) बोर्बोन वंश का प्रतिनिधित्व करता था। लुईस फिलिप का पौत्र काम्पटे डि पेरिस (Compte de Paris) ओरलिएनिस्ट वंश का प्रतिनिधि था और नैपोलियन तृतीय का पुत्र शाही राजकुमार बोनापार्ट वंश का प्रतिनिधि था। राजतन्त्रवादियों के विभिन्न समूह भिन्न-भिन्न राजा चाहते थे। राजत वादियों में तीव्र मतभेदों के कारण थेयर्स ने साहसपूर्वक व्यावहारिक आधार पर गणतन्त्र की घोषणा की क्योंकि यह हमको न्यूनतम विभाजित करता था। तदुपरान्त राजतन्त्रवादियों ने संगठित होकर थेयर्स को त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य किया। उन्होंने राजतन्त्र के पुनर्स्थापन के लिए मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से मार्शल मैक मोहन (Marshal Mac Mohan) को अध्यक्ष निर्वाचित किया।

फ्रान्स थेयर्स का बहुत ऋणी था। सैडन के भीषण विनाश के बाद थेयर्स ने ही फ्रान्स को अपने पैरों पर खड़ा किया था। उसने कम्यून का दमन किया, युद्ध की क्षतिपूर्ति का भुगतान किया, सेना का पुनर्गठन किया, और ऐसे समय जब राजतन्त्रवादियों को देश में प्रबल समर्थन प्राप्त था, उसने अपूर्व साहस के साथ गणतन्त्र की घोषणा की थी। इस प्रकार उसके सार्वजनिक जीवन का देशभक्ति पूर्ण सेवा में अन्त हुआ।

गणतन्त्रवाद की विजय (Victory of Republicanism)—थेयर्स का उत्तराधिकारी मार्शल मैक मोहन राजतन्त्र का प्रबल समर्थक था और राष्ट्रीय सभा में राजतन्त्रवादियों ने अपनी शक्तियों को संयुक्त करके राजतन्त्र के पुनर्स्थापन के लिए मजबूत एवं निश्चित प्रयास किया। बोर्बोन और ओरलिएनिस्ट वंशीय दावेदारों के मध्य एक समझौता हुआ और इसके अनुसार यह निर्णय किया गया कि निःसन्तान काम्टे डि चैमबोर्ड हेनरी पंचम् की उपाधि के साथ फ्रान्स का सम्राट बने और उसके प्रतिद्वन्द्वी दावेदार काम्टे डि पेरिस को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार किया जाये। इस प्रकार राजतन्त्र का पुनर्स्थापन तत्काल सम्भव प्रतीत हुआ लेकिन चैमबोर्ड के अड़ियल बोर्बोनवाद के कारण प्रयास विफल हो गया। उसने क्रान्ति के तिरंगे ध्वज को राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में स्वीकार करने से मना कर दिया और बोर्बोनवंशीय सफेद ध्वज को पुनर्स्थापित करने पर बल दिया। उसने घोषणा की कि "हेनरी पंचम्, हेनरी चतुर्थ के सफेद ध्वज को कभी नहीं छोड़ सकता।" इस अड़ियल एवं हठी दृष्टिकोण ने राजतन्त्रीय पुनर्स्थापन की मृत्यु की घंटी बजा दी। फ्रान्स के लिए तिरंगा ध्वज अविस्मरणीय स्मृतियों और निर्विवाद लाभों का प्रतीक बन चुका था। अस्तु, फ्रान्स किसी भी मूल्य पर तिरंगे ध्वज को नहीं छोड़ सकता था। इस प्रकार चैमबोर्ड की हठ एवं जिद्द ने राजतन्त्र की प्रबल भावना को केवल पेरिस में ही नहीं वरन् ग्रामीण क्षेत्रों में भी ध्वस्त कर दिया। उग्र गणतन्त्रवादी गैम्बैट्टा ने देश के समस्त ग्रामीण क्षेत्रों की यात्रा करके गणतन्त्रवाद के सिद्धान्तों एवं अवधारणाओं का व्यापक प्रचार और प्रसार किया। परिणामस्वरूप राजतन्त्रवादी राष्ट्रीय सभा ने राजतन्त्रवादी अध्यक्ष के नेतृत्व में सन् 1875 में केवल एक मत के बहुमत से गणतन्त्र की घोषणा की।

तृतीय गणतन्त्र का संविधान (The Constitution of the Third Republic)—सन् 1875 में निर्मित औपचारिक संविधान में विधान सभा द्वारा सात वर्ष के कार्यकाल के

लिए निर्वाचित गणतन्त्र के राष्ट्रपति का प्रावधान था। द्वि-सदनीय विधान मण्डल, सीनेट एवं चैम्बर आफ डिप्टीज का प्रावधान था। दोनों सदनों को संयुक्त रूप से राष्ट्रपति चुनना था। मन्त्रिपरिषद् विधान मण्डल के प्रति उत्तदायी थी। चैम्बर आफ डिप्टीज के प्रतिनिधि जनता द्वारा सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होने थे, जबकि सीनेट के सदस्यों का अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव होता था। इस प्रकार तीसरी बार दीर्घकाल के लिए फ्रान्स में गणतन्त्र स्थापित हो गया।

राजतन्त्रवादियों ने राज्य विद्रोह द्वारा राजतन्त्र को पुनर्स्थापित करने का असफल प्रयास किया। सन् 1879 में मैक मोहन ने त्याग-पत्र दे दिया। गैम्बैट्टा का प्रतिनिधि ज्यूल्स ग्रेवी (Jules Grevy) की, पूर्णरूप से गणतान्त्रिक मन्त्रिपरिषद् एवं विधान मण्डल के साथ प्रधानमन्त्री बना। गणतन्त्र के प्रमुख शिल्पकार गैम्बैट्टा (Gambetta) के सन् 1882 में निधन तक फ्रान्स स्थायित्व के प्रति आश्वस्त हो चुका था।

तृतीय गणतन्त्र के लिए संकट (Dangers to the Third Republic)—फ्रान्स में गणतन्त्र एक सर्वमान्य तथ्य था, लेकिन गणतन्त्र को अनेक खतरों का सामना करना पड़ा। दलगत उद्गार उच्च स्तर पर थे। अनेक व्यक्ति गणतन्त्रवाद से घृणा करते थे और उनका दृढ़ विश्वास था कि शीघ्र ही इस गणतन्त्र का पूर्व गणतन्त्रों के अनुरूप ही पतन हो जायेगा। इन राजद्रोही तत्वों को एक कुशल एवं योग्य सेनाधिकारी जनरल बोलंगर (General Boulanger) के रूप में योग्य नेता मिल गया। सन् 1886 में वह युद्धमन्त्री भी बना। उसने सैनिकों की सुख-सुविधाओं में पर्याप्त वृद्धि करके और जर्मनी के विरुद्ध प्रतिशोधात्मक युद्ध की उग्र राष्ट्रवादी भाषा में घोषणा द्वारा जनसमुदाय का ध्यान आकर्षित किया। राजतन्त्रवादियों, बोनापार्टवादियों एवं रूढ़िवादी कैथोलिक अनुयायियों ने बोलंगर को सक्रिय सहयोग का आश्वासन दिया और उससे संसदीय शासन को अपदस्थ करने और बोलंगवादी अधिनायकतन्त्र स्थापित करने के लिए अपने प्रभाव एवं लोकप्रियता का उपयोग करने का आग्रह किया। राष्ट्रपति ग्रेवी (Grevy) के दामाद द्वारा उपाधि बेचने से सम्बन्धित राजनीतिक बुराई ने खतरे को बहुत बढ़ा दिया था। इस कलंक ने गणतन्त्र को बहुत आघात पहुँचाया था। बोलंगर केवल शेखी बघारने वाला था और उचित समय पर चोट मारने में असफल रहा। अस्तु, यह आन्दोलन विफल हो गया। उसको बन्दी बनाने का आदेश दिया गया, लेकिन वह बेल्जियम भाग गया, जहाँ उसने आत्महत्या कर ली। बोलंगर, जो अन्ततोगत्वा एक निरर्थक उद्यमी सिद्ध हुआ, का गणतन्त्र विरोधियों, अर्थात् राजतन्त्रवादियों एवं रूढ़िवादियों ने उन्मुक्त रूप से समर्थन किया था। इन विरोधियों को केवल अपयश मिला और गणतन्त्र को शक्ति मिली।

पनामा नहर कम्पनी के निदेशकों द्वारा कपटपूर्ण सौदे से सम्बन्धित एक अन्य अपयश ने गणतन्त्र को अधिक अलोकप्रिय किया। कुछ मन्त्रियों एवं विधान मण्डल के कुछ सदस्यों को भ्रष्टाचार का दोषी पाया गया था। गणतन्त्र के विरोधियों ने उस सरकार, जिसके प्रबल समर्थक ही अपराधी थे, ने कटु आलोचना एवं निन्दा की।

ड्रेफस काण्ड (Dreyfus Case)—निर्दय सांघातिकता गणतन्त्र का पीछा करती हुई प्रतीत हुई। गणतन्त्र को एक के बाद एक घातक आघात लग रहे थे। सन् 1894 में घटित घटना ने गणतन्त्र की स्थिति को गम्भीर रूस से खतरे में डाल दिया। सन् 1894 में एक यहूदी एवं सेना में कप्तान अल्फ्रेड ड्रेफस (Alfred Dreyfus) को सेना के कुछ गोपनीय

दस्तावेज विदेशी शक्ति सम्भवतः जर्मनी को देने के कारण सेना के साथ विश्वासघात एवं देशद्रोह के आरोप में बन्दी बना लिया गया। उस पर सेना न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। उसको दोषी पाया गया। सार्वजनिक रूप से अपमानित किया गया और आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया और दक्षिण अमेरिका स्थित फ्रान्स गियाना के अधिकृत गन्दे डेविल (Devils) द्वीप भेज दिया गया। अनेक व्यक्तियों को सेना न्यायालय के न्याय पर सन्देह था। सन् 1896 में कर्नल पिकार्ट (Colonel Picquart) जिसको गुप्तचर विभाग का प्रमुख नियुक्त किया गया था, को ज्ञात हुआ कि अभिशंसी (अभियोग लगाने वाले) दस्तावेज, जिनके आधार पर ड्रेफस पर मुकदमा चलाया गया और आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया, जाली थे। यह जालसाजी सेना के दुराचारी मेजर ईस्टरहेजी (Major Easterhazy) ने की थी। सेना की प्रतिष्ठा बनाये रखने के उद्देश्य से सरकार और युद्ध कार्यालय इस विवाद को दबा देना चाहते थे। अस्तु, पिकार्ट को विदेश सेवा में भेज दिया और उसके स्थान पर कर्नल हेनरी को नियुक्त किया। तदुपरान्त विशाल जनान्दोलन हुआ जिसने फ्रान्स को आलोड़ित कर दिया और फ्रान्स की जनता को दो परस्पर विरोधी समूहों में विभाजित कर दिया। ड्रेफस के पक्ष में इमाइल जोला (Emile Zola), अनातोले फ्रान्स (Anatole France) और क्लीमेनसियू (Clemenceau) जैसे शिथिल समर्थक थे, जबकि उसके विरोध में जनसमूह चर्च, सेना और राजतन्त्रवादी थे। यह विवाद सामाजिक, राजनीतिक एवं संवैधानिक संघर्ष का केन्द्र-बिन्दु बन गया। "क्या एक निर्दोष व्यक्ति को गलत ढंग से दंड दिया था", की अपेक्षा विवाद का प्रश्न अधिक गहन था। यह रूढ़िवाद और प्रगति, सत्ता की चेतना और स्वतन्त्रता और राज्य के असैनिक एवं सैनिक नियन्त्रण के मध्य संघर्ष बन गया था।

ड्रेफस के समर्थकों ने पुनः मुकदमे की माँग करते हुए शक्तिशाली आन्दोलन किया। उतना ही शक्तिशाली आन्दोलन माँग के विरोध में विरोधियों ने किया। सन् 1898 में पिकार्ट के स्थान पर नियुक्त कर्नल हेनरी ने स्वयं स्वीकार किया कि उसने स्वयं एक दस्तावेज जाली बताया था और स्वयं आत्महत्या कर ली। अब सरकार पुनः मुकदमे के लिए बाध्य थी। पुनः मुकदमे में ड्रेफस को दोषी पाया गया लेकिन "लघुकारी परिस्थितियों में" दोषी था। अस्तु, उसका आजन्म कारावास का दण्ड कम करके दस वर्ष कर दिया गया। यह निर्णय निरर्थक था। राष्ट्रपति लौबेट (Loubet) ने निहित क्षमादान की शक्ति का प्रयोग करते हुए उसको क्षमा कर दिया। ड्रेफस के समर्थक उसके निर्दोष होने की स्पष्ट पुष्टि प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध थे। सन् 1906 में मुकदमे की एक बार पुनः सुनवाई हुई। इसमें ड्रेफस को पूर्णरूप से अपराध मुक्त कर दिया गया और भूल सुधार के रूप में सेना में उच्च पद पर पदोन्नति कर दिया गया। इस विवाद का महत्व इस तथ्य में निहित है कि ड्रेफस प्रतिद्वन्द्वी सिद्धान्तों का प्रतीक बन गया था। प्रतिद्वन्द्वी समूह, उसके अपराधी अथवा निर्दोष होने के सन्दर्भ के बिना समर्थन अथवा कटु आलोचना कर रहे थे। अधिकांश प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बी, यहूदी, उग्र सुधारवादी एवं समाजवादी उसका समर्थन कर रहे थे जबकि सेना और रूढ़िवादी गुट विशेष रूप से गणतन्त्र विरोधी भावनाओं से अनुप्राणित व्यक्ति विरोध कर रहे थे। इस संघर्ष का गणतन्त्र के पक्ष में संघर्ष के रूप में विकास हो गया। ड्रेफस को निर्दोष घोषित करने का अर्थ गणतन्त्र विरोधी शक्तियों की स्पष्ट पराजय थी। इसका अर्थ सेना पर असैनिक सत्ता की विजय भी था। इस प्रकार सैन्यवाद और रूढ़िवाद को गहरा आघात पहुँचा।

गणतन्त्र और चर्च (The Republic and the Church)—सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषयों में जैसे चर्च और राज्य के मध्य सम्बन्धों के विषय में तृतीय गणतन्त्र को उचित व्यवहार करना था। यह विषय विशुद्ध रूप से धार्मिक नहीं था। अधिकांश रूढ़िवादी कैथोलिक मतावलम्बी राजतन्त्रवादी थे। अस्तु इस विषय में कुछ राजनीतिक प्रश्न भी सम्मिलित हो गये थे। सन् 1877 में ही गेमबैट्टा ने घोषणा की थी कि रूढ़िवादी कैथोलिक धर्मावलम्बी गणतन्त्र के कट्टर शत्रु थे। भावी घटनाओं से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह टिप्पणी निराधार नहीं थी। रूढ़िवादी कैथोलिक बोलंगवादी आन्दोलन के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे और उन्होंने ड्रेफस के विरुद्ध विरोध अभियान में अपूर्व उत्साह के साथ सक्रिय भाग लिया। गणतन्त्र के समर्थकों की मिथ्या भाषी के रूप में भीषण निन्दा की। इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण कारण शिक्षा था। गणतन्त्रवादियों को शिक्षा बहुत प्रिय थी, जबकि शिक्षा का दायित्व चर्च का था। गणतन्त्रवादियों की प्रबल इच्छा थी कि देश के युवकों की शिक्षा ऐसे वातावरण में नहीं होनी चाहिए जहाँ राजतन्त्रवादी भावनाएँ एवं विचार बहुत प्रबल थे।

पोप लियो तेरहवें के चतुर एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण ने राज्य और राज्य के मध्य संघर्ष को कुछ काल के लिए रोक दिया था। लेकिन ड्रेफस विवाद ने व्याप्त सद्भावनापूर्ण वातावरण को भंग कर दिया था। रूढ़िवादी कैथोलिक मतावलम्बियों ने ड्रेफस की कटु आलोचना की थी और गणतन्त्र को बदनाम करने का अथक प्रयास किया था। राजतन्त्रवादियों के आक्रमण को सशक्त प्रतिरोध द्वारा निष्क्रिय करने के उपरान्त गणतन्त्रवादियों ने प्रतिशोधात्मक कार्यवाही करना आरम्भ कर दिया। सन् 1901 में वेल्डेक-रूसो (Waldeck-Rosseau) मन्त्रिपरिषद् ने समुदायों का कानून (Law of Associations) पारित किया जिसमें प्रावधान था कि समस्त समुदायों को चाहे वे राजनीतिक हों अथवा धार्मिक हो, सरकार का अनुमोदन प्राप्त करना अनिवार्य था। अधिकांश धार्मिक संस्थाओं ने सरकार का अनुमोदन प्राप्त नहीं किया था। पारित अधिनियम के परिणामस्वरूप लगभग 3,000 धार्मिक संस्थाओं को अपनी गतिविधियों को बन्द करना पड़ा। अनधिकृत संस्था के सदस्यों द्वारा किसी विद्यालय में शिक्षण कार्य प्रतिबन्धित था। परिणामस्वरूप अधिकांश शिक्षा का दायित्व कैथोलिक पादरी वर्ग के हाथों से निकल गया। सन् 1904 में एक अन्य पारित अधिनियम ने अधिकृत संस्थाओं के सदस्यों को शिक्षण कार्य से प्रतिबन्धित करके शिक्षा को धर्म निरपेक्षिक बनाया। शिक्षा आध्यात्मिक नियन्त्रण से मुक्त हो गयी। अन्ततोगत्वा सन् 1905 में निर्णायक पृथक्कीकरण अधिनियम पारित हुआ, जिसने नैपोलियन की धर्म सन्धि का अन्त कर दिया और चर्च को राज्य से पृथक् कर दिया। पारित अधिनियम के शब्दानुसार "गणतन्त्र किसी धर्म को न मान्यता देता है और न किसी प्रकार की आर्थिक सहायता देता है।" समस्त सामाजिक संस्थाओं की सम्पत्ति, नवीन उपासना समुदायों (Associations of Worship) को स्थानान्तरित कर दी गयीं। प्रत्येक जिले में उपासना समुदाय, जिनका आकार जनसमुदाय की जनसंख्या के अनुसार भिन्न-भिन्न था, स्थापित किये गये। चर्च में यह निर्णय करने के लिए कि उसकी सम्पत्ति यथार्थ में किसकी थी, एक औपचारिक "सम्पत्ति सूची" बनायी गयी।

औपनिवेशिक विस्तार (Colonial Expansion)—तृतीय गणतन्त्र की अवधि में फ्रान्स ने उत्साही औपनिवेशिक नीति का अनुसरण किया। सन् 1881 एवं सन् 1883 से सन् 1885 तक फ्रान्स का प्रधानमन्त्री ज्यूल्स फैरी (Jules Ferry) समुद्रपारीय विस्तार की नीति

का प्रमुख प्रवर्तक था। उसके कुशल एवं चतुर प्रभाव के कारण गणतन्त्र ने विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य, जो ग्रेट ब्रिटेन के बाद दूसरे नम्बर पर था, स्थापित किया था। फ्रान्स लुईस फिलिप के शासन काल में पहले ही अल्जीरिया में अपना आधिपत्य स्थापित कर चुका था और अब उत्तरी-पश्चिमी अफ्रीका के पड़ोसी राज्यों पर अपना नियन्त्रण करने की प्रबल आकांक्षा थी। सन् 1881 में फैरी की मन्त्रिपरिषद् ने ट्यूनिस के लिए एक सैन्य अभियान भेजा और इसके शासक को फ्रान्स के संरक्षित राज्य के रूप में स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। लेकिन इटली की टयूनिस में गहन रुचि थी और उसने फ्रान्स का संरक्षित राज्य स्थापित करने का प्रबल विरोध किया। उसने आस्ट्रिया और जर्मनी के साथ त्रि-राष्ट्र सन्धि में सम्मिलित होकर अपने आवेश को व्यक्त किया।

इण्डो-चीन में उपनिवेश (Colonies in Indo-China)—नैपोलियन तृतीय के शासन काल में फ्रान्स ने इण्डो-चीन में अनेक क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। फ्रान्स ने कम्बोडिया पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया था और कोचीन का विलय कर लिया था। फैरी के काल में टोन्किन की विजय एवं अन्नाम के ऊपर संरक्षित राज्य की स्थापना से इण्डो-चीन के पूर्ण नियन्त्रण की प्रक्रिया पूरी हो गयी थी।

फैरी ने फ्रान्सीसी कांगो स्थापित किया और मेडागास्कर के लिए सैन्य अभियान भेजा। उसके द्वारा आरम्भ कार्य भविष्य में चलता रहा। सन् 1896 में मेडागास्कर का फ्रान्स के साम्राज्य में विलय कर लिया गया और सन् 1904 में मोरक्को पर फ्रान्स का प्रभुत्व स्थापित हो गया। पश्चिमी अफ्रीका में फ्रान्स ने सेनेगल, गियाना, दाहोमें, आइवरी कोस्ट और नाइजर नदी क्षेत्र का व्यापक रूप से फ्रेन्च साम्राज्य में विलय किया। जर्मनी के विरोध के उपरान्त भी सन् 1912 में मोरक्को का व्यावहारिक दृष्टि से फ्रेन्च औपनिवेशिक साम्राज्य में विलय कर लिया था। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्रान्स विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य का स्वामी था। लेकिन इसका अधिकांश भाग, उत्तरी-पश्चिमी अफ्रीका का क्षेत्र था। सहारा रेगिस्तान जैसे क्षेत्र, जो अलाभकारी थे, सम्मिलित थे। अल्जीरिया और ट्यूनिस जैसे सर्वाधिक मूल्यवान फ्रान्स अधिकृत क्षेत्र थे। अल्जीरिया को उपनिवेश नहीं माना जाता था वरन् वह फ्रान्स का अभिन्न अंग था। इस क्षेत्र का फ्रान्स की संसद के दोनों सदनों में समुचित प्रतिनिधित्व था।

फ्रान्स का एकाकीपन (French of Isolation)—सन् 1870 के बाद फ्रान्स की स्थिति अत्यधिक जटिल थी। बिस्मार्क की नीति ने फ्रान्स को पूर्णरूप से एकाकी बना दिया और उसका विश्व में कोई मित्र नहीं था। फ्रान्स की लम्बी पूर्वी सीमा पर शक्तिशाली जर्मनी स्थित था। जर्मनी पूर्णरूप से फ्रान्स के प्रति शंकाओं से युक्त था और शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण था। फ्रान्स के पुनः शक्तिशाली बनने के संकेत मात्र पर जर्मनी फ्रान्स को कुचलने के लिए तत्पर था। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड के साथ भी सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण नहीं थे मिस्र एवं पश्चिमी अफ्रीका में दोनों देशों में परस्पर हितों के कारण प्रायः संघर्ष रहता था।

फ्रान्स को सुरक्षापूर्ण सन्धि देने के लिए केवल रूस एक शक्तिशाली देश था। सन् 1890 में बिस्मार्क के पतन के बाद युवा कैसर विलियम द्वितीय ने रूस और जर्मनी के मध्य पुनर्बीमा सन्धि (Reinsurancc Treaty) को विलुप्त हो जाने दिया। रूस अब सन्धि के बन्धनों से मुक्त था और यह फ्रान्स के लिए सुखद अवसर था। रूस यद्यपि शक्तिशाली था लेकिन एकाकी नहीं रह सकता था। बाल्कन क्षेत्र में रूस एवं आस्ट्रिया के हितों में संघर्ष

था। जर्मनी त्रि-राष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) द्वारा आस्ट्रिया का अबाधित समर्थन करने के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध कर चुका था। यह रूस के लिए बहुत बड़ा खतरा था। इसके अतिरिक्त रूस अपने आन्तरिक स्रोतों का विकास करने के लिए ऋण लेना चाहता था। फ्रान्स रूस को ऋण के रूप में धन देने के लिए तैयार था, लेकिन जर्मनी ने ऋण देने से मना कर दिया था। रूस के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से फ्रान्स की मित्रता बहुत उपयोगी थी। अस्तु,रूस ने फ्रान्स के गणतन्त्रवाद के प्रति घृणा के कड़वे घूँट को निगल कर फ्रान्स के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये। इसके परिणामस्वरूप सन् 1894 में रूस और फ्रान्स के मध्य निश्चित मैत्री सन्धि हुई। सन्धि के प्रावधानों के अनुसार जर्मनी अथवा जर्मनी के समर्थन से इटली द्वारा फ्रान्स पर आक्रमण की स्थिति में रूस को अपने समस्त उपलब्ध सैन्य संसाधनों के साथ फ्रान्स की सहायतार्थ आना था। फ्रान्स भी इस प्रकार के दायित्व से बँधा हुआ था यदि रूस पर जर्मनी अथवा जर्मनी के समर्थन से आस्ट्रिया आक्रमण करे, फ्रान्स को रूस की सशस्त्र सहायता करनी थी। इस प्रकार विख्यात द्वि-राष्ट्र मैत्री सन्धि (Dual Alliance) द्वारा शक्तिशाली संघ का गठन हुआ जो बिस्मार्क की त्रि-राष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) का अनुकूल उत्तर एवं प्रतिरोधक था। फ्रान्स अब एकाकी नहीं था।

इंग्लैण्ड-फ्रान्स सन्धि (Anglo-French Convention)—द्वि-राष्ट्र सन्धि द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के उपरान्त फ्रान्स ने ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध सुधारने का प्रयास किया। दोनों शक्तियों के मध्य उत्तेजना के अनेक स्रोत थे। सन् 1882 में इंग्लैण्ड ने मिस्र पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। फ्रान्स इससे अत्यधिक अप्रसन्न था। इसी प्रकार मध्य अफ्रीका में फ्रान्स और ब्रिटेन के हितों के मध्य प्रतिद्वन्द्विता थी। सन् 1898 में मारचन्द के नेतृत्व में फ्रान्स के सैन्य अभियान ने ब्रिटिश अधिकृत नील नदी के ऊपरी भाग में स्थित फशोदा पर नियन्त्रण कर लिया। इंग्लैण्ड ने कठोर रूप से प्रतिरोध किया और फ्रान्स ने अपनी सेना हटा ली। इससे फ्रान्स अत्यधिक उत्तेजित था। दोनों को जर्मनी द्वारा आक्रमणात्मक साम्राज्यवाद की आशंका थी। दोनों ने परस्पर सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। फ्रान्स का विदेशमन्त्री डेलकैसे (Delcasse) ब्रिटेन के साथ सद्भावना एवं मधुर सम्बन्धों के लिए उत्सुक था और उसके प्रयासों को ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड सप्तम् की सद्भावना और चतुरता से बल मिला। परिणामस्वरूप सन् 1904 में फ्रान्स और ब्रिटेन के मध्य मैत्रीपूर्ण सन्धि (Entente Cordiale) हुई। इस सन्धि के द्वारा न्यूफाउण्डलैण्ड मत्स्य, स्याम, मेडागास्कर, पश्चिम अफ्रीका एवं मिस्र से सम्बन्धित दीर्घकालीन लम्बित विवादों का सौहार्द्रपूर्ण समाधान हो गया। फ्रान्स ने मिस्र में इंग्लैण्ड की सर्वोच्चता को मान्यता दी जबकि इंग्लैण्ड ने मोरक्को में फ्रान्स के सर्वोच्च हितों को स्वीकार किया। सन् 1907 में द्वि-राष्ट्र सन्धि का रूस तक विस्तार किया गया। इंग्लैण्ड ने रूस के साथ फारस, अफगानिस्तान एवं तिब्बत से सम्बन्धित विवादों का निराकरण करके सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस प्रकार त्रि-राष्ट्र मैत्री सन्धि (Triple Entente) के रूप में सर्वविदित नये कूटनीतिक समूह का गठन हुआ। यह कोई सन्धि (Alliance) नहीं थी लेकिन इसमें अपूर्व शक्ति निहित थी।

मोरक्को संकट, 1905 (Morocco Crisis)—सन् 1904 में मैत्रीपूर्ण सन्धि (Entente Cordiale) द्वारा मोरक्को में सर्वोच्च हितों की स्वीकृति को जर्मनी ने चुनौती दी। सन् 1905 में कैसर विलियम द्वितीय ने टेनगियर (Tangier) की यात्रा की और घोषणा की कि मोरक्को में जर्मनी के वाणिज्यिक हितों की सुरक्षा के लिए वह सब कुछ करेगा।

उसके असहिष्णु एवं हठी दृष्टिकोण ने अन्तर्राष्ट्रीय संकट को गहन कर दिया। परिणामस्वरूप सन् 1906 में अल्गेसिरास (Algeciras) का सम्मेलन हुआ। मोरक्को में जर्मनी एवं अन्य शक्तियों के हितों को अनुकूलित करते हुए, संन्धि पर हस्ताक्षर किये गये। इसमें फ्रान्स और स्पेन द्वारा इस क्षेत्र के नियन्त्रण का प्रावधान था। फ्रान्स की स्थिति यथावत थी, और स्थिति को निरन्तर सुदृढ़ करता रहा। सन् 1911 में जर्मनी ने अगादीर तोप नौका भेजकर एक बार पुनः चुनौती दी। जर्मनी यह प्रदर्शित करना चाहता था कि फ्रान्स मोरक्को का निर्विवाद स्वामी नहीं था। फ्रान्स को इंगलैण्ड का पूर्ण समर्थन प्राप्त था, अस्तु, जर्मनी ने फ्रान्स के साथ समझौता किया। जर्मनी ने मोरक्को में फ्रान्स की विशेष स्थिति को मान्यता दी और फ्रान्स ने जर्मनी को फ्रान्स अधिकृत काँगो का बहुत बड़ा भू-भाग दे दिया।

एकीकरण के बाद इटली (सन् 1870-1914) (Italy after Unification)—सन् 1870 में इटली के इतिहास के वीरोचित युग का अन्त हो गया। यह युग उच्च आदर्शों एवं उद्देश्य के लिए उल्लेखनीय था। यह युग मैजिनी, गारीबाल्दी एवं कैवोर की महान् गौरवशाली उपलब्धियों से पूर्ण था। इटली विदेशी शासन से मुक्त हो चुका था, एकीकृत हो चुका था, और संसदीय संविधान द्वारा लोकतान्त्रिक सरकार स्थापित हो चुकी थी। लेकिन सन् 1870 में पूर्णतया भिन्न समस्यायों का आविर्भाव हुआ। इनमें से कुछ तत्कालीन राज्यों में समान समस्याएँ थीं। कुछ राज्यों में स्वयं की विचित्र समस्याएँ थीं। ये हाल ही में पूर्ण हुये एकीकरण से उत्पन्न थीं।

सबसे पहली समस्या एकीकृत इटली को सुदृढ़ करने की थी। एक पर्यवेक्षक आलोचक ने टिप्पणी की थी, "हमने इटली बनाया है, हमको इटलीवासियों को अब भी बनाना है।" प्राप्त बाह्य एकता को राजनीतिक एवं सामाजिक हितों के समुदाय पर आधारित वास्तविक आध्यात्मिक एकता द्वारा पुष्ट करने की अतीव आवश्यकता थी। शताब्दियों से एक-दूसरे के विरुद्ध विभाजित जनसमुदाय ने अनायास इटली की एकता प्राप्त कर ली थी। राजनीतिक प्रगति और आर्थिक विकास की दृष्टि से उत्तरी और दक्षिणी इटली के मध्य बहुत विषमता थी। उत्तर में स्थित सम्पन्न एवं समृद्ध पीडमोन्ट राज्य में संवैधानिक सरकार थी और दक्षिणी इटली में स्थित सिसली एवं नेपल्स राज्यों के मध्य कोई समानता नहीं थी। दक्षिणी राज्यों ने दीर्घकाल से बोर्बोनवंशीय शासकों के अंगघात करने वाले निरंकुशतावाद की भयावह पीड़ाओं को सहन किया था। परिणामस्वरूप जनसमुदाय को स्व-शासन एवं नागरिक दायित्वों के निर्वाह का कोई अनुभव नहीं था। अस्तु, वर्तमान सरकार के समक्ष देश के विभिन्न क्षेत्रों की राजनीतिक प्रगति एवं आर्थिक समृद्धि को एक समान स्तर तक लाने का सर्वाधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण कार्य था। राजनीतिक एकीकरण को सफल होने के लिए सांस्कृतिक एकता एवं आर्थिक सुदृढ़ता अतीव आवश्यक थी। इटलीवासियों का समान रूप से राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन का पृष्ठभूमि से शनैः-शनैः विकास हो सकता था। पृष्ठभूमि पृथक् परम्पराओं और पृथक् इतिहासों पर आधारित मुख्य रूप से स्थानीय होती थी।

सरकार ने समस्त प्रायद्वीप में एकरूपीय स्थितियों का सूत्रपात करने के लिए पूर्ण समर्पण भाव से ध्यान दिया। सरकार ने प्रशासनिक एवं न्यायिक प्रणालियों को केन्द्रीकृत कर दिया और फ्रान्सीसी अधिकारीतन्त्र के अनुरूप स्थानीय सरकार की इकाइयाँ स्थापित कीं। रेलवे का राष्ट्रीयकरण कर दिया और अनिवार्य सैन्य सेवा के आधार पर सेना और नौ-सेना का पुनर्गठन किया। राजजनी और गुप्तचर समितियाँ; जिनका दक्षिण इटली में बाहुल्य था,

का दमन कर दिया और दक्षिणी जिलों, जो मुख्य रूप से कृषि प्रधान थे, में कारखाना प्रणाली को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया। सन् 1877 में पारित एक अधिनियम द्वारा अनिवार्य शिक्षा का शुभारम्भ किया गया लेकिन अपर्याप्त धनराशि के कारण इसका क्रियान्वयन प्रभावहीन हो गया।

पोप एवं राज्य के मध्य सम्बन्ध (Relation between the Papacy and the State)—कैथोलिक समुदाय के सर्वोच्च धर्माध्यक्ष पोप एवं राज्य के मध्य सम्वन्ध की समस्या सर्वाधिक जटिल समस्यायों में एक थी। इसका आविर्भाव इटली के एकीकरण के बाद हुआ था। इटली की सरकार ने बलपूर्वक रोम पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और इटली की राजधानी बनाया। इस नगर पर पोप ने पिछले 1 हजार वर्ष से निर्विवाद रूप से शासन किया था। रोम समस्त कैथोलिक धर्मावलम्बियों की राजधानी था। अस्तु, इसकी स्थिति अन्य नगरों की अपेक्षा पूर्णतया भिन्न थी। पोप की सत्ता में किसी भी हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप पोप की लौकिक शक्ति को पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य से विदेशी शक्तियों का हस्तक्षेप हो सकता था। एक ही नगर में दो शासक एक लौकिक एवं अन्य आध्यात्मिक थे। स्थिति निःसन्देह विचित्र लेकिन बहुत कोमल थी। पोप ने उस सरकार को मान्यता देने से मना कर दिया जिसने उसको उसकी भूमि और उसकी वास्तविक स्वतन्त्रता से वंचित कर दिया। किसी प्रकार के समझौते की कोई सम्भावना नहीं थी। अस्तु, सरकार ने कैवोर के सिद्धान्त "स्वतन्त्र राज्य में स्वतन्त्र चर्च" को समाहित करते हुए "पोप आश्वासन अधिनियम" (Law of Papal Guarantees) पारित करके जटिल समस्या का समाधान किया। इटली के शासक के अनुरूप पोप को भी उसकी व्यक्तिगत अलंघनीयता (परम पावन), विदेशों में राजदूत भेजने एवं उनको स्वीकार करने, और शासन करने वाले शासक को स्वीकृत समस्त मान-सम्मान प्रदान किये गये। पोप की लौकिक सम्पत्ति की क्षति के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में विशाल धनराशि वार्षिक अनुदान के रूप में देने का प्रावधान था। कुछ निश्चित स्थान पूर्ण रूप से उसकी प्रभुसत्ता के अधीन कर दिये गये। इन क्षेत्रों में पोप अपनी आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन एवं दायित्वों को सम्पन्न करने के लिए पूर्णरूप से स्वतन्त्र था। पोप पियस नवम् ने इस अधिनियम की कटु आलोचना की, क्षतिपूर्ति भत्ता लेने से मना कर दिया और स्वयं को "बन्दी" की तरह वैटिकन नगर में बन्द कर लिया। उसने सार्वभौम गैर-सामयिक (The Encyclical War-expedit) परिपत्र समस्त कैथोलिक मतावलम्बियों के लिए जारी किया जिसमें उसने कैथोलिक समुदाय से संसदीय चुनाव में मतदान नहीं करने और इटली सरकार में कोई पद ग्रहण करने से मना किया। पोप पियस नवम् के उत्तराधिकारी लियो (Leo) तेरहवें (सन् 1878-1903) ने पूर्ववत् 'शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण' बनाये रखा और वह स्वयं को 'डाकू राजा' (Robber King) का बन्दी समझता था।

पोप के दृष्टिकोण ने नये राज्य के आन्तरिक एवं विदेश सम्बन्धों को गम्भीर रूप से परेशान किया। इसने निष्ठावान देशभक्तों एवं समर्पित कैथोलिक धर्मावलम्बियों को विभाजित करके राज्य की सुदृढ़ता को दुर्बल किया था, और अनेक योग्य एवं कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों को देश की राजनीति से विलग कर दिया था। इसके अतिरिक्त सरकार को कुछ समय के लिए पोप के समर्थन में कैथोलिक शक्तियों के हस्तक्षेप की आशंका थी। लेकिन बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से पोप और इटली के शासक के मध्य कटुता धीरे-धीरे कम होने लगी। चर्च और राज्य दोनों के लिए था और इस खतरे से लड़ने के लिए पुरोहित वर्ग को

अनुमति दी गयी और रूढ़िवादियों के साथ सक्रिय सहयोग के लिए प्रोत्साहित किया। कैथोलिक मतावलम्बियों ने राजनीति में लौटना आरम्भ कर दिया और सन् 1905 में पियस दसवें ने राजनीति अथवा चुनावों में भाग लेने पर लगे प्रतिबन्ध को भी हटा लिया। शनैःशनैः दोनों शक्तियाँ साथ-साथ रहने और कार्य करने की अपेक्षाकृत अधिक अभ्यस्त हो गयीं। सन् 1919 में पोप बेनेडिक्ट पन्द्रहवें ने सार्वभौम गैर-सामयिक (Encyclical Non-expedit) को निरस्त कर दिया। इस प्रकार सामंजस्य की दिशा में प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

आर्थिक समस्याएँ (Economic Problems)—1870 के बाद नये राज्य की सर्वाधिक स्पष्ट आर्थिक समस्याएँ थी। राज्य को विशालकाय राष्ट्रीय ऋण उत्तराधिकार में मिला था। सरकार को सेना, सार्वजनिक कार्यों एवं आन्तरिक सुधारों विशेष रूप से रेलवे के निर्माण कार्य पर विशाल धनराशि खर्च करनी थी। रेलवे का विकास देश के आर्थिक विकास एवं समान राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिए अतीव आवश्यक था। नवोदित राज्य पुनर्गठन एवं प्रशासनिक दृष्टि से अत्यधिक व्ययशील हो गया। करों में निरन्तर वृद्धि होती गयी और प्रति व्यक्ति कर अन्य समकालीन देशों की अपेक्षा बहुत अधिक हो गये। देश कृषि एवं उद्योग में पिछड़ा हुआ था, अस्तु देश निर्धन था और जनसमुदाय की स्थिति दयनीय थी। प्रायद्वीप के दक्षिणी अर्द्धभाग की स्थिति विशेषरूप से खराब थी। तुलनात्मक दृष्टि से उद्योग बहुत कम थे और दयनीय कृषक वर्ग मलेरिया ज्वर से त्रस्त, अनियन्त्रित जलस्रोतों द्वारा ध्वस्त अथवा समय-समय पर भूकम्पों एवं ज्वालामुखी के विस्फोटों से नष्ट भूमि पर कठोर परिश्रम करते थे। इन परिस्थितियों में सरकार निरन्तर दिवालियेपन के कगार पर जा रही थी और भावी मन्त्री अत्यधिक कठिनाई के साथ बजट को सन्तुलित कर सके और देश की अर्थव्यवस्था में सुधार कर सके।

इटली की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या ने देश की आर्थिक समस्या को अधिक विकट बना दिया था। इटली की जनसंख्या वृद्धि अन्य यूरोपीय देशों की वार्षिक वृद्धि से अधिक थी। विश्व युद्ध से पूर्व लगभग 10 लाख व्यक्ति पड़ोसी देशों विशेष रूप से उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के देशों में चले गये। इससे देश की स्थिति में कुछ सुधार हुआ।

समाजवाद (Socialism)—देश आर्थिक दृष्टि से अविकसित था और देश की जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही थी। श्रमिक वर्गों की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। सरकार की महत्वाकांक्षी औपनिवेशिक परियोजना के कारण करों का भार बढ़ रहा था और वस्तुओं के मूल्य अत्यधिक बढ़ रहे थे। परिणामस्वरूप श्रमिकों की पीड़ाएँ बढ़ रही थीं। जनसमुदाय में अपूर्व निराशा थी जो राजा के प्रति असन्तोष एवं गणतान्त्रिक और समाजवादी दलों के विकास के रूप में अभिव्यक्त हुई। सन् 1889 में ट्यूरिन, रोम और मिलन में उपद्रव हुए और सन् 1893 में सिसली में गम्भीर श्रमिक विद्रोह हुए। सन् 1898 में इटली के विभिन्न मार्गों में रक्तरंजित विद्रोह हुए। यह भयावह स्थिति का चरमोत्कर्ष था। आन्दोलन सामान्य था, लेकिन मिलन में यह अत्यधिक रक्तरंजित था। दक्षिणी और मध्य इटली में इसने "रोटी उपद्रव" (Bread Riots) का रूप ले लिया था, लेकिन उत्तर में यह स्पष्ट रूप से क्रान्तिकारी था। सरकार ने अपूर्व क्रूरता तथा निर्ममता के साथ उपद्रवों को कुचल दिया था। सन् 1900 में इटली के सम्राट हम्बर्ट की एक अराजकतावादी द्वारा हत्या में जनसमुदाय का असन्तोष एवं राजद्रोह अभिव्यक्त हुआ था।

इटली की राजनीति (सन् 1870-1914) (Italian Politics)—ब्रिटेन के संसदीय आदर्श के अनुरूप इटली में संसदीय सरकार स्थापित की गयी थी। सन् 1870 में मताधिकार

बहुत सीमित था। मतदाताओं के लिए सम्पत्ति एवं शैक्षणिक योग्यताएँ अनिवार्य थीं। प्रतिबन्ध इतना कठोर था कि 2,80,00,000 की जनसंख्या में केवल 5 लाख व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त था, लेकिन इस प्रकार का सीमित मताधिकार नई एकता की भावना, चेतना एवं निहित प्रावधानों के प्रतिकूल था। अस्तु मताधिकार का विस्तार अनिवार्य था। सन् 1882 में मताधिकार का विस्तार किया गया और मतदाताओं की संख्या बढ़कर चार गुना हो गयी। सन् 1912 में महान् निर्वाचकीय सुधारों के अन्तर्गत समस्त पुरुषों के लिए लगभग सार्वभौम वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की गयी। 30 वर्ष से कम आयु के उन व्यक्तियों को जिन्होंने सैन्य सेवा नहीं की थी, और जो पढ़ना अथवा लिखना नहीं जानते थे, को मताधिकार नहीं था।

उल्लेखनीय है कि मताधिकार के ये विस्तार साक्षरता की प्रगति से बहुत आगे थे। परिणामस्वरूप निर्वाचक संसदीय लोकतन्त्र को सफल बनाने के लिए पर्याप्त प्रबुद्ध नहीं थे। इसके अतिरिक्त प्रचलित प्रबल क्षेत्रीय भावना के कारण स्वस्थ दलीय जीवन का विकास नहीं हुआ। फ्रान्स के अनुरूप व्यक्तियों ने स्वयं समूहों का गठन कर लिया था और प्रत्येक समूह में फूट डालने की प्रवृत्ति थी। इस प्रवृत्ति ने भ्रष्टाचार के साथ मिलकर इटली के सार्वजनिक जीवन को नष्ट कर दिया। राजनीतिज्ञों को मानव दुर्बलताओं का अनुचित लाभ उठाने के लिए अवसर दिया और राजनीति को धूर्तता, चतुरता एवं छल-कपट में परिवर्तित कर दिया।

सन् 1876 तक सरकार पर "दक्षिण पंथी" (Right), एक समूह का पूर्ण नियन्त्रण था और उनकी प्रमुख निर्वाचक शक्ति उत्तर में निहित थी। तब एक दशक के लिए डेप्रेटिस (Depretis, 1876-87) के नेतृत्व में वामपंथी (Left) सर्वोच्च बन गये। डेप्रेटिस उत्तरी इटलीवासियों के मूल्य पर सिसलीवासियों एवं नैपोलियन समर्थकों का पक्ष लेता था। उसके नेतृत्व में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए एक अधिनियम पारित किया गया। रेलवे का निर्माण कार्य पूर्ण हो गया, मताधिकार का विस्तार किया गया, औपनिवेशिक नीति का श्री गणेश हुआ और जर्मनी एवं आस्ट्रिया के साथ त्रि-राष्ट्र सन्धि सम्पन्न हुई। निःसन्देह ये उपलब्धियाँ सन्तोषजनक थीं, लेकिन उसने व्यापक स्तर पर राजनीतिक भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करके और घटकों एवं वर्गीय हितों द्वारा सरकार के संचालन का सूत्रपात करके इटली की राजनीति को कलंकित किया था।

क्रिस्पी (Crispi, 1887-96)—डेप्रेटिस के निधन के बाद गारीबाल्दी का पुराना सैनिक सहयोगी क्रिस्पी (सन् 1817-96) प्रशासन का अध्यक्ष बन गया। कैवोर के बाद वह इटली का सर्वाधिक शक्तिशाली मन्त्री था। उसने अपने पूर्वाधिकारी द्वारा आरम्भ औपनिवेशिक उद्यम को अपूर्व उत्साह एवं साहस के साथ आगे बढ़ाया और पूर्वी अफ्रीका में इटली के औपनिवेशिक दावों का विस्तार किया। सोमालीलैण्ड को अपना संरक्षित राज्य बना लिया। उसकी महत्वाकांक्षी परियोजना के कारण जनता पर अतिरिक्त कर आरोपित किये गये। जनता पर पहले से ही बहुत अधिक कर थे। परिणामस्वरूप जनता में अत्यधिक असन्तोष था और सन् 1889 में समस्त देश में उपद्रव आरम्भ हो गये। क्रिस्पी ने कठोर दमनकारी नीति का अनुसरण किया और कुछ काल के लिए शान्ति स्थापित की। सन् 1891 में उसको पदमुक्त कर दिया गया, लेकिन सन् 1893 में उसका पुनः आह्वान किया गया। उसके बाद उसने सन् 1896 तक व्यावहारिक दृष्टि से समस्त देश पर वास्तविक अधिनायक के रूप में शासन किया। अपनी वर्तमान शासन प्रणाली का क्रूरतापूर्वक दमन करने की अपनी पूर्व की नीति का ही अनुसरण किया। इटली ने अपनी औपनिवेशिक नीति का अनुसरण करते

हुए अपना सैन्य अभियान अबीसीनिया भेजा और इटली की सेना को सैडोवा के स्थान पर अबीसीनिया ने सन् 1896 में पराजित किया। परिणामस्वरूप क्रिस्पी का भी पतन हो गया।

इस समय तक पुराने दक्षिणीपंथी एवं वामपंथी दलों का विघटन हो गया था। सरकार अस्थिर हो गयी थी। समूहों के मध्य उपायों और टालमटोल करने की नीति विश्व युद्ध के पूर्व तक गियोलिट्टी (Giolitti) के नाम से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रही। परिणामस्वरूप संसदीय एवं लोकतान्त्रिक सरकार अलोकप्रिय हो गयी। जनसमुदाय की दृष्टि से लोकतन्त्र इटली के लिए अनुपयुक्त एवं इटली की परम्पराओं के अनुकूल नहीं था। इस दृष्टिकोण ने सन् 1914-18 के प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त फासिस्टवाद के आविर्भाव एवं विकास में अपूर्व सहायता की।

इस प्रकार एकीकरण के बांद तीन दशक तक इटली राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से कुसंगठित एवं कुअनुकूलित देश था। क्षेत्रीय चेतना एवं वर्गीय भावना का राजनीति पर प्रभुत्व था। इससे स्पष्ट है कि केवल बाह्य एकता प्राप्त हुई थी और जनसमुदाय में राष्ट्रीय चेतना का सर्वथा अभाव था। राजनीतिक जीवन षड्यन्त्रों, भ्रष्टाचार एवं अनियमितताओं से विषाक्त था। अधिकारीतान्त्रिक केन्द्रीकरणं ने स्थानीय ऊर्जा स्रोतों को समाप्त कर दिया था। अधिकांश जनता अशिक्षित थी और अत्यधिक निर्धनता से ग्रस्त थी। कैथोलिक धर्मावलम्बी सरकार के विरुद्ध थे और दक्षिण इटली आर्थिक दृष्टि से अविकसित था। द्रुत गति से जनसंख्या वृद्धि ने जनता की निर्धनता को बहुत बढ़ा दिया था एवं आर्थिक समस्यायों में वृद्धि की थी।

सन् 1900 में इटली के सम्राट हम्बर्ट की नृशंस हत्या के बाद, उसका पुत्र एमान्युअल तृतीय सिंहासनारूढ़ हुआ और इटली की स्थिति में द्रुतगति से सुधार हुआ। नया राजा उच्च आदर्शों वाला व्यक्ति एवं बहुत विद्वान था। वह सौम्य, प्रबुद्ध एवं लोकतान्त्रिक विचारों का व्यक्ति था। उसके अधीन अपेक्षाकृत अधिक उदार नीति का अनुसरण किया गया और श्रमिक वर्गों के साथ सहानुभूति पूर्वक व्यवहार किया जाता था। व्यापारिक गतिविधियों को पुनर्जीवित किया, व्यापारिक जहाजी बेड़े का विस्तार किया गया। रेशम के उत्पादन एवं बुनियादी उद्योगों में द्रुतगति से वृद्धि हुई। राष्ट्रीय वित्तीय स्थिति का मितव्ययिता के साथ प्रबन्ध किया। इटली एक औद्योगिक राज्य बन रहा था और इस प्रक्रिया में हाइड्रो विद्युत शक्ति ने एक प्रेरक शक्ति के रूप में सहायता की। इटली कोयला खनिज सम्पदा से वंचित था, लेकिन प्रकृति ने आल्पस पर्वत से एपेनाइन्स तक द्रुतगति से बहने वाले झरनों के रूप में विपुल जलशक्ति दी थी।

आर्थिक विकास के उपरान्त समाजवादी सक्रिय थे और श्रम विवाद सामान्य हो गये थे। फ्रान्स के प्रभाव में इटली में समाजवाद मार्क्सवाद की अपेक्षा श्रमिक संघवाद में परिवर्तित हो गया था। श्रमिक हड़तालें सामान्य बात थी लेकिन सन् 1904 में जनसमुदाय की हड़ताल में कुछ उपद्रवी तत्वों ने सम्पत्ति को नष्ट किया एवं रेलपटरियों को काट दिया। सन् 1914 में पुनः जनसामान्य की हड़ताल हुई। इस हड़ताल में समाजवादी पत्र 'अवन्ति' (Forward) का सम्पादक बेनिटो मुसोलिनी प्रमुख व्यक्तित्व था।

विदेश नीति (Foreign Policy)—प्रारम्भ में इटली की अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में भूमिका नगण्य ही थी लेकिन एकीकरण के उपरान्त इटली यूरोप की प्रमुख शक्तियों में एक बन गया था, यद्यपि यथार्थ में इतना शक्तिशाली नहीं था। उसका कोई मित्र नहीं था। एकीकरण के बाद आविर्भाव के समय अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कुशल एवं चतुर कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क का पूर्ण

प्रभुत्व था। प्रारम्भ में इटली की विदेश नीति बहुत अंशों तक पोप के शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण से निर्धारित होती थी। उसको सदैव आशंका रहती थी कि "वैटिकन के बन्दी" का आह्वान फ्रान्स और आस्ट्रिया जैसे कैथोलिक धर्मावलम्बी देशों को इटली के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित करेगा। फ्रान्स से वह अधिक आशंकित था। फ्रान्स में गणतन्त्र के प्रारम्भ में कैथोलिक भावना बहुत शक्तिशाली थी और पोप के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी और नवोदित लैटिन का इटली के प्रति शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण था। फ्रान्स ने ट्यूनिस पर निकट होने के कारण एवं औपनिवेशिक विस्तार की दृष्टि से नियन्त्रण कर लिया था। इससे सन्देह क्रोध में परिवर्तित हो गया था। परिणामस्वरूप इटली के फ्रान्स के साथ सम्बन्ध अत्यधिक कटु हो गये और परिस्थितियों से बाध्य होकर उसने आस्ट्रिया और जर्मनी के सहयोग से सन् 1882 में त्रि-राष्ट्र सन्धि की। इसी अवसर पर इटली ने बिस्मार्क से वचन लिया कि रोम का विवाद नहीं उठेगा, लेकिन जैसे ही रोम का विवाद धूमिल पड़ने लगा, इटली ने त्रि-राष्ट्र सन्धि की समीक्षा की और अनुभव किया कि इस सन्धि के लाभ सन्देहास्पद हैं। साथ ही आस्ट्रिया के साथ सन्धि इर्रीडेन्टिज्म (किसी अन्य देश में जातीय अथवा ऐतिहासिक दृष्टि से स्थित क्षेत्र का विलय करने की दिशा में एक सिद्धान्त अथवा नीति) के राष्ट्रीय विचार की प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा था। इटली अपने उत्तर अथवा उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, जहाँ अधिकांश जनसंख्या इटली के मूल निवासियों की थी, का विलय करना चाहता था। ये क्षेत्र एकीकरण के समय इटली राज्य में सम्मिलित नहीं थे। इटेलिया इर्रीडेन्टा (Italia Irredenta) अथवा अपूरित इटली में ट्रेन्ट, ट्रीस्टे और आरडियाटिक (Ardiatic) का पूर्वी तट सम्मिलित थे लेकिन इन क्षेत्रों पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था। विश्व युद्ध के पूर्व के दशक में इटली का राष्ट्रवाद सक्रिय हो गया था, और विलयवादियों ने विलय के लिए व्यापक प्रचार किया। जब तक इटली का आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध था, इटली को उसके अन्य भागों अपूरित इटली (Unredeemed Italy) को प्राप्त करने के प्रयास से अलग रखा गया था। विश्व युद्ध आरम्भ होते ही इटली को शुभ अवसर मिला। सन् 1915 में, इटली ने आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध समाप्त करके त्रि-राष्ट्र मैत्री संघ (Entente) में, अपनी राष्ट्रीय आकांक्षाओं को आस्ट्रिया-हंगरी में प्राप्त करने के उद्देश्य से, सम्मिलित हो गया।

महत्वाकांक्षी औपनिवेशिक नीति (Ambitious Colonial Policy)—सन् 1870 के बाद यूरोप के औपनिवेशिक विस्तार, विशेष रूप से अफ्रीका में सक्रिय भाग लेने के लिए इटली एकीकृत हो गया। इटली प्राचीन रोम के गौरव एवं साम्राज्य को पुनर्जीवित करके महान यूरोपीय शक्ति की भूमिका के पवित्र विचार से अभिभूत था। विदेशी परियोजनाओं के लिए धनाभाव के कारण अपनी आकांक्षाओं की प्राप्ति असम्भव थी। यथार्थ में इटली ने अपनी वास्तविक शक्ति पर औपनिवेशिक विस्तार के प्रयास में अधिक भार डाल दिया था। अस्तु, इटली की औपनिवेशिक नीति को गहरा आघात लगा। सर्वप्रथम इटली को फ्रान्स ने ट्यूनिस में पहले ही रोक दिया था। ट्यूनिस की ओर से निराश होकर उसने अन्यत्र क्षतिपूर्ति करने का प्रयास किया। लाल सागर क्षेत्र में स्थित प्रदेश पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद सन् 1885 में अबीसीनिया के बन्दरगाह मसोवा (Massowa) पर नियन्त्रण किया। प्रधानमन्त्री क्रिस्पी ने अपने कार्यकाल में उत्साह से औपनिवेशिक नीति का अनुसरण किया था। पूर्वी अफ्रीका के क्षेत्र में स्थित सोमालीलैण्ड पर इटली का संरक्षण स्थापित किया था। उसने लाल सागर तट पर स्थित बस्तियों को एरीट्रिया (Eritrea) नाम दिया और अबीसीनिया में इटली की सत्ता का विस्तार करने का असफल प्रयास किया। सन् 1896 में अबीसीनिया की शक्तिशाली सेना ने इटली के जनरल बैराटियेरी (General Baraticri) के नेतृत्व में सैन्य

अभियान को एडोवा में पराजित किया। परिणामस्वरूप इटली को अपने उग्र साम्राज्यवाद के प्रयोग को त्यागना पड़ा। तुर्की के साथ युद्ध के बाद इटली ने प्रारम्भिक असफलताओं की अपेक्षा सन् 1912 में त्रिपोली (Tripoli) और साइरेन्सिया (Cyrencia) पर आधिपत्य स्थापित किया। लीबिया में ये ही दो उपनिवेश थे।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. फ्रान्स के तृतीय गणराज्य के समक्ष कौन-सी समस्याएँ थीं ? उनका निराकरण किस प्रकार किया गया ?
   What were the main problems before the Third Republic of France ? How those were resolved ? (बिलासपुर, 1997, 99; कानपुर, 1993, 95, 98; रुहेलखण्ड, 1995, 99; मेरठ, 1993; आगरा, 1994, 97, 98, 2000; राजस्थान, 2000; भोपाल, 1997)
2. उन परिस्थितियों की विवेचना कीजिये जिनके कारण सन् 1904 में आंग्ल-फ्रान्सीसी मैत्री हुई। इसके क्या परिणाम हुये ?
   Discuss the circumstances which led to Anglo-French Alliance of 1904 ? What were its effects ?
   (ग्वालियर, 2000; रुहेलखण्ड, 1992; जबलपुर, 1995, 98)
3. फ्रान्स में तृतीय गणतन्त्र के शासनकाल में चर्च और राज्य की प्रतिद्वन्द्विता का वर्णन कीजिये ?
   Discuss rivalry between Church and Administration during Third Republic of France ? (जबलपुर 1997; भोपाल 1996; रुहेलखण्ड 1992, 97)
4. एकीकरण के पश्चात् इटली की विदेश नीति की व्याख्या कीजिये ?
   Discuss foreign policy of Italy after unification ? (जबलपुर, 1997)
5. उन परिस्थितियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये जिनके परिणामस्वरूप सन् 1894 में फ्रैन्को-रूसी मैत्री सन्धि फलीभूत हुई ?
   Critically examine the circumstances which led to Franco-Russian Alliance in 1894 ? (रायपुर, जबलपुर एवं रुहेलखण्ड, 1997)
6. तृतीय फ्रान्सीसी गणतन्त्र की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये ?
   Estimate the achievements of the Third Republic of France ?
   (रायपुर, 1997)
7. सन् 1890-1914 के युग में तृतीय फ्रान्सीसी गणतन्त्र की वैदेशिक नीतिगत उपलब्धियों की समीक्षा कीजिये ?
   Discuss the achievements of foreign policy between 1890-1914 of the Third French Republic ? (रायपुर, 2000)
8. ड्रेफस अभियोग के राजनीतिक महत्व की परीक्षा कीजिये ?
   Discuss the political significance of the Dreyfus incident ?
   (बिलासपुर, 1997; ग्वालियर, 2000; रुहेलखण्ड, 1993, 96, 2000; आगरा, 1999; कानपुर, 1994, 97, 2000)
9. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिपणियाँ लिखिये—
   (अ) राज्य और चर्च का पार्थक्य (ब) फशोदा कांड

Write short notes as the following :
(a) Seperation of State and Church (b) Fashoda Incident. (भोपाल, 1995)

10. 1871 के पश्चात् इटली की आन्तरिक समस्यों का विश्लेषण कीजिये ?
Analyse internal problems of Italy after 1871 ?
(आगरा, 1996, 2000; कानपुर, 1996, 98, 2000; मेरठ, 1992, 94, 99)

11. 1871 से 1914 तक तृतीय फ्रान्सीसी गणतन्त्र की विदेश नीति का विवरण दीजिये ?
Discuss foreign policy of the Third Republic of France from 1871 to 1914 ?
(आगरा, 1996)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. जब सन् .... में पेरिस ने आत्म समर्पण कर दिया, इस सरकार का अन्त हो गया—
(क) 1866 (ख) 1870 (ग) 1871 (घ) 1872
2. .... की इस महान् उपलब्धि का क्षेत्र के मुक्तिदाता के रूप में गुणगान किया था—
(क) नैपोलियन तृतीय (ख) थेयर्स (ग) मार्शल मैकमोहन (घ) काम्पटेडि चैमबोर्ड
3. सन् .... में पारित अधिनियम द्वारा सैन्य सेवा अनिवार्य कर दी गई—
(क) 1870 (ख) 1871 (ग) 1872 (घ) 1873
4. सन् .... में निर्मित औपचारिक संविधान में विधान सभा द्वारा सात वर्ष के कार्यकाल के लिए गणतन्त्र के राष्ट्रपति का प्रावधान था—
(क) 1870 (ख) 1872 (ग) 1874 (घ) 1875
5. सन् 1875 में निर्मित संविधान में गणतन्त्र के राष्ट्रपति के .... कार्यकाल का प्रावधान था—
(क) 3 वर्ष (ख) 5 वर्ष (ग) 7 वर्ष (घ) 9 वर्ष
6. सन् .... में एक यहूदी एवं सेना में कप्तान अल्फ्रेड ड्रेफस को देशद्रोह के आरोप में बन्दी बना लिया गया—
(क) 1891 (ख) 1892 (ग) 1893 (घ) 1894
7. फ्रान्स सन् .... तक एकाकी रहा।
(क) 1866 से 1886 (ख) 1870 से 1890
(ग) 1874 से 1894 (घ) 1878 से 1904
8. सन् .... में रूस और फ्रान्स के मध्य निश्चित मैत्री सन्धि हुई।
(क) 1890 (ख) 1892 (ग) 1894 (घ) 1896
9. सन् .... मे पियस दसवें ने राजनीति अथवा चुनावों में भाग लेने पर लगे प्रतिबन्ध को भी हटा लिया—
(क) 1899 (ख) 1901 (ग) 1903 (घ) 1905
10. इटली की सेना को सैडोवा के स्थान पर अबीसीनिया ने सन् .... में पराजित किया—
(क) 1894 (ख) 1895 (ग) 1896 (घ) 1897

[उत्तर—1. (ग), 2. (ख), 3. (ग), 4. (घ), 5. (ग), 6. (घ), 7. (ख), 8. (ग), 9. (घ), 10 (ग) ।]

25

जर्मन साम्राज्य (सन् 1871–1914)

[GERMAN EMPIRE, 1871–1914]

बिस्मार्क (Bismarck)

काउन्टवीन बिस्मार्क जर्मन साम्राज्य और सम्राट के पद का जनक था और वह स्वयं पहला संघीय तथा साम्राज्यिक चान्सलर था। सन् 1890 तक वह जर्मनी का वास्तविक शासक रहा। उसका जन्म एक कुलीन परिवार में 1 अप्रैल, 1815 को हुआ तथा गौटिनजेन तथा बर्लिन विश्वविद्यालयों में उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की, जबकि वह प्रायः द्वन्द्व युद्धों तथा बियर (एक प्रकार की जौ से निर्मित मदिरा) में व्यस्त रहा, परन्तु कभी अपमानित नहीं हुआ और सरकारी असैनिक सेवा को एक नीरस, निष्क्रिय तथा अनुत्साही मानता था इसलिए त्याग-पत्र दे दिया। उसके पड़ोसी उसको पागल तथा 'जंगली' कहते थे। वह अत्यधिक भावुक, सरलता से अश्रुओं से द्रवित होने वाला, प्रखर बुद्धिवाला और असहिष्णु था। निःसन्देह शान्ति और युद्ध दोनों स्थितियों में एक महान् प्रतिभा था।

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप के मानचित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने वाले महान् व्यक्तियों में बिस्मार्क का स्थान सबसे पहले है। विद्वान इतिहासकार कहते हैं, "वह उस युग का सर्वाधिक महान् व्यक्ति था, अपनी शक्तियों की राजनीतिक अभिव्यक्ति तथा अपनी उपलब्धियों के माध्यम से विश्व के इतिहास को प्रभावित करने वाला सर्वोत्कृष्ट था।" एक देश, जो शताब्दियों से विभाजित था तथा विवादों तथा समस्याओं का प्रमुख क्षेत्र था, को 9 वर्ष की अल्पावधि में एकीकृत किया और एकीकरण की प्रक्रिया में वह यूरोप की राजनीति में सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया। बिस्मार्क अपनी महान् रचनात्मक उपलब्धियों के कारण स्मरणीय रहेगा। जर्मनी के एकीकरण के साथ, एक प्रकार से बिस्मार्क के जीवन का सर्वाधिक महान् कार्य पूर्ण हो गया। जर्मनी एक परितृप्त देश था। जर्मन साम्राज्य के उद्भव के उपरान्त 2 दशक तक समस्त सत्ता बिस्मार्क में ही निहित रही। उस अवधि की उसकी महान् उपलब्धियाँ तुलनात्मक दृष्टि से कम उल्लेखनीय नहीं हैं। जर्मनी के सम्राट विलियम प्रथम को बिस्मार्क अपनी इच्छानुसार नियन्त्रित तथा भयाभिभूत रखता था, परन्तु सम्राट के लिए वह अनिवार्य था।

साम्राज्यिक चान्सलर (Imperial Chancellor)—नवोदित एवं एकीकृत जर्मनी के सन् 1871 में बिस्मार्क को पहला साम्राज्यिक चान्सलर नियुक्त किया गया। अगले दो दश तक वह जर्मन इतिहास का केन्द्र-बिन्दु बना रहा। प्रशासन की समस्त डोरियाँ उसके हाथों थीं और राज्य के समस्त विषयों का अधिनायक के रूप में प्रबन्ध करता था। यद्यपि परिस्थि अनुसार कभी-कभी उसने कैथोलिक मतावलम्बियों की माँगों को स्वीकार भी किया। अन्त वह एक कुशल निरंकुश शासक बना रहा। राजनीतिक एवं व्यक्तिगत विरोधों के विरु मजबूती से अडिग बना रहा और अपनी स्वयं की नीति निर्धारित की। एक सर्वाधिक महत्त्व तथ्य उसके पक्ष में था। जर्मनी के सम्राट का पूर्ण समर्थन था।

विदेश नीति में बिस्मार्क, राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ के रूप में सदैव ही एक सर्वो कलाकार बना रहा। बिस्मार्क की विदेश नीति के दो मुख्य उद्देश्य थे : 1. शान्ति तथा यथ स्थिति बनाये रखना अर्थात् जर्मनी को जो कुछ प्राप्त हो चुका था, उसको सुरक्षित रखना 2. फ्रान्स को कूटनीतिक दृष्टि से अन्य शक्तियों से पृथक् रखना था, जिससे वह कभी जर्मनी से प्रतिशोध लेने का प्रयास नहीं कर सके। उसने अपनी "खून और लोहे" (Blood and Iron) की नीति द्वारा देश के लिए राष्ट्रीय एकता एवं यूरोप का नेतृत्व प्राप्त किया था लेकिन निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सैन्यवाद ही एकमात्र साधन था। उस उद्देश्य की प्राप्ति के बाद उसकी नीति शान्ति और यथास्थिति बनाये रखने की थी। उसने घोषणा की कि जर्मनी एक परितृप्त देश था। जर्मनी को अपनी प्राप्त प्रभावशाली स्थिति से सन्तुष्ट रहना चाहिए और ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे जर्मन साम्राज्य की आन्तरिक सुदृढ़ता, जो राजनीतिक एकता के विकास के लिए आवश्यक थी, को खतरा हो। भली-भाँति ज्ञात था कि उसने फ्रान्स को घातक रूप से आहत किया था और उसको एक अशाम्य शत्रु बना दिया था। उसने अपनी समस्त कूटनीतिक कुशलता को फ्रान्सीसी शत्रुता के पुनर्नवीनीकरण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने की दिशा में केन्द्रित किया। उसको ज्ञात था कि फ्रान्स अपने अलजेक-लारेन (Alsace-Lorraine) की क्षति को भूल नहीं सकता और राष्ट्रीय अपमान का प्रतिशोध लेने और क्षेत्रीय हानि को पूरा करने के लिए उपयुक्त अवसर की तलाश में रहेगा। अस्तु, बिस्मार्क फ्रान्स को पूर्णतया पृथक् करके उसके द्वारा किसी भी प्रतिशोधात्मक युद्ध को निराशामय एवं असम्भव बना देना चाहता था। कूटनीतिक दृष्टि से फ्रान्स को पृथक् करने के लिए जर्मनी की सन्धियों के द्वारा व्यापक मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना और साथ ही स्वयं के विरोध में प्रति-मैत्री संघों के गठन को रोकना आवश्यक था। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पूर्ववत् कूटनीतिक एवं राजनीतिक कुशलता प्रदर्शित की। बिस्मार्क के सम्बन्ध में विद्वानों ने मत व्यक्त किया है कि वह ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति था, जो एक ही समय में 5 गेंदों अर्थात् आस्ट्रिया, फ्रान्स, रूस, इंग्लैण्ड तथा इटली से चमत्कारिक ढंग से खेल सकता था और इन 5 गेंदों में दो सदैव हवा में रहती थीं। वैदेशिक विषयों में उसने जो कुछ किया उसका विस्तृत वर्णन अत्यधिक शुष्क तथा नीरस प्रतीत होता है।

जर्मन साम्राज्य की विधिवत स्थापना के बाद जर्मनी यूरोप की प्रमुख सैनिक शक्ति बन गया और बिस्मार्क ने प्रथम चान्सलर के रूप में होहेनजोलर्न साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए न्यायोचित साधनों को कार्यान्वित किया। जर्मनी के शिल्पकार के रूप में साम्राज्य को सुदृढ़ तथा सुगठित रखना बिस्मार्क का मुख्य उद्देश्य था।

प्रशा की सैन्य संगठन प्रणाली को जर्मनी के अन्य राज्यों में प्रवृत किया। जर्मन साम्राज्य की उत्पत्ति में सैन्यवाद ही मुख्य कारक था और साम्राज्य की यथास्थिति बनाये रखने के लिए यही एकमात्र तरंगरोध था। अस्तु, उसने सन् 1871 में ही समस्त साम्राज्य में अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण का सूत्रपात किया। बिस्मार्क ने आग्रह किया था कि सेना के लिए अपेक्षित वित्तीय व्यवस्था को स्थायी स्वरूप प्रदान करना चाहिए। वह सेना के आकार को भी स्थायी बनाना चाहता था। इस विषय पर संसद के निम्न सदन रिशटैग (Reichtag) ने उसका विरोध किया परन्तु उसने एक अनुबन्ध को स्वीकार कर लिया। इस अनुबन्ध के अनुसार सैन्य संगठन के लिए वित्तीय व्यवस्था को सात वर्षों के लिए अनुमति दे दी। इस व्यवस्था को सप्तवर्षीय (Septennale) कहते थे। सरकार अपनी सैनिक नीति संसद में विचार-विमर्श के लिए सदन के पटल पर रखने के लिए बाध्य थी, परन्तु विस्मार्क अत्यधिक कुशाग्र बुद्धि, चतुर एवं चालाक था। इस प्रकार के विचार-विमर्श के समय भविष्य में युद्ध की सम्भावनाओं को व्यक्त करके अपनी इच्छानुसार संसद से वित्तीय व्यवस्थाओं को पारित करवा लेता था।

विदेश नीति (Foreign Policy)—सन् 1871 से सन् 1890 तक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति निरन्तर बिस्मार्क के विचारों, भावनाओं एवं सिद्धान्तों के अनुकूल रही और उसने इस स्थिति का जर्मनी के राष्ट्रीय हितों को प्रोत्साहित करने के लिए सर्वाधिक प्रयोग किया। सन् 1866 में शान्ति सन्धि के प्रावधानों की रूपरेखा बिस्मार्क ने विभिन्न कूटनीतिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोणों से बनायी थी, अस्तु, उसने आस्ट्रिया एवं हंगरी के प्रति उदार एवं समन्वयात्मक नीति का अनुसरण किया। आस्ट्रिया एवं हंगरी की पुनः वर्गीकरण की आन्तरिक समस्याएँ थीं और बाल्कन क्षेत्र में विस्तारवादी नीति को कार्यान्वित करने के लिए प्रयास कर रहे थे, इसलिए दोनों ही जर्मनी की शक्तिशाली सेना का सक्रिय समर्थन चाहते थे। बिस्मार्क के इटली के साथ भी सौहार्द्रपूर्ण मैत्री सम्बन्ध थे। इटली को भली-भाँति स्मरण था कि वह बिस्मार्क के जर्मनी के साथ घनिष्ठ मैत्री सम्बन्धों के कारण ही सन् 1866 में आस्ट्रिया से वेनेशिया प्राप्त करने में असफल रहा था। सन् 1870 में इटली तथा जर्मनी दोनों का कैथोलिक धार्मिक राज्य के साथ तीव्र विवाद चल रहा था।

बिस्मार्क इंगलैण्ड के प्रति अत्यधिक सावधान था और किसी प्रकार का विवाद नहीं चाहता था। सन् 1870-71 के युद्ध काल में वह बेल्जियम द्वारा तटस्थता बनाए रखने के प्रति अत्यधिक सावधान तथा सजग रहा। यह ब्रिटिश विदेश नीति का प्रमुख लक्ष्य था। बिस्मार्क को विदित था कि अनेक ब्रिटिश बुद्धिजीवी जर्मन जनता तथा ट्यूटानिक जाति की अत्यधिक प्रशंसा करते थे। जर्मनी का यूरोप महाद्वीप की राजनीति पर प्रभुत्व था और ब्रिटेन का समुद्रों पर पूर्ण नियन्त्रण था। बिस्मार्क को भली-भाँति ज्ञात था कि ब्रिटेन अपनी नौ-सैनिक सर्वोच्चता को किसी प्रकार का आघात पहुँचाने की आशंका से महाद्वीप में विवादास्पद मैत्री सम्बन्धों से सदैव दूर रहने का प्रयास करता था। बिस्मार्क का निश्चित मत था कि जर्मनी को ब्रिटेन तथा फ्रान्स के परस्पर मैत्री सम्बन्धों से भयभीत नहीं होना चाहिए।

तीन सम्राटों का संघ (League of Three Emperors)—आस्ट्रिया के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बिस्मार्क की विदेश नीति का मुख्य आधार था। इसी कारण सैडन के बाद वह आस्ट्रिया की मैत्री प्राप्त करने के उद्देश्य से गया था। यह कठिन के साथ-साथ बहुत कोमल था, क्योंकि आस्ट्रिया हाल में पराजित हो चुका था। लेकिन बिस्मार्क ने सैडोवा में आस्ट्रिया की पराजय के बाद उसके साथ अपने उदार व्यवहार द्वारा पुनर्मेल के लिए मार्ग

प्रशस्त कर दिया था। रूस की स्थिति कुछ भिन्न थी। रूस की भी आस्ट्रिया हंगरी के अनुरूप बाल्कन क्षेत्र में विस्तारवादी योजनाएँ थीं। बिस्मार्क की योजना के अनुसार, आस्ट्रिया की मित्रता पर्याप्त नहीं थी। वह अपने कूटनीतिक दल में अन्य शक्तियों को भी सम्मिलित करना चाहता था। बिस्मार्क ने अतीत में रूस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिए थे और भविष्य में बनाए रखना चाहता था। यदि रूस के साथ सक्रिय सहयोग सन्धि सम्भव नहीं हो तो वह रूस के साथ सौहार्द्रपूर्ण मैत्री सम्बन्ध रखना चाहता था। रूस का परस्पर हितों के सन्दर्भ में जर्मनी के साथ कोई विवाद भी नहीं था, अस्तु, सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध रखना कठिन भी नहीं था। रूस का दृष्टिकोण फ्रान्स के पक्ष में प्रतीत हुआ। जर्मनी को फ्रान्स के आक्रमण की आशंका थी। ऐसी स्थिति में बिस्मार्क ने रूस और फ्रान्स में परस्पर सम्भावित सन्धि को रोकने के लिए अपने कूटनीतिक प्रयास तेज कर दिये। रूस की गणतान्त्रिक सरकार की अपेक्षा राजतन्त्रीय सरकार के प्रति अधिक सहानुभूति थी। इसके अतिरिक्त रूस ने प्रशा-फ्रान्स युद्ध का लाभ उठाते हुए पेरिस सन्धि के काले सागर से सम्बन्धित प्रावधानों का अतिक्रमण कर दिया था और उस स्थिति में बिस्मार्क ने रूस का समर्थन किया था। बिस्मार्क ने सन् 1871 में रूस के काले सागर में युद्धपोत रखने के अधिकार को स्वीकार कर लिया। रूस को बाल्कन अथवा एशिया में विस्तार के लिए ब्रिटिश विरोध के विरुद्ध जर्मन समर्थन की आवश्यकता थी। इन तथ्यों के आधार पर बिस्मार्क ने तीन सम्राटों के संघ, जिसमें रूस, जर्मनी एवं आस्ट्रिया-हंगरी के सम्राट सम्मिलित थे, का ड्राईकैसरबन्द (Dreikaiserbund) के स्थान पर गठन किया था। यह कोई परस्पर सक्रिय सहयोग एवं समर्थन की सन्धि नहीं थी वरन् तीन शक्तियों के मध्य परस्पर घनिष्ठ तथा सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों की घोषणा मात्र था। स्पष्ट रूप से इसका मुख्य उद्देश्य तीनों सम्राटों के समान हितों पर बल देना था। राजतान्त्रिक सिद्धान्त को सुदृढ़ करना तथा समाजवाद की प्रगति और विकास को रोकना ही तीनों सम्राटों के समान उद्देश्य थे, परन्तु तीनों सम्राटों के संघ का राजनीतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व था। इसका अर्थ था कि आस्ट्रिया ने अपने निष्कासन को स्वीकार कर लिया था तथा प्रशा के प्रति प्रतिशोध की कोई दुर्भावना नहीं थी।

तीन सम्राटों के संघ का गठन निःसन्देह बिस्मार्क की महान् कूटनीतिक उपलब्धि थी परन्तु सुखद एवं मधुर सम्बन्ध बनाए रखना बहुत कठिन सिद्ध हुआ। सन् 1875 में जर्मनी और फ्रान्स के मध्य युद्ध की आशंका से यह संघ ध्वस्त हो गया। इस समय रूस के जार ने जर्मनी को फ्रान्स पर आक्रमण करने से रोकने के लिए हस्तक्षेप किया था। बिस्मार्क ने कहा कि रूस की आशंका निराधार थी। बिस्मार्क ने अनुभव किया कि रूस विश्वसनीय एवं स्थायी मित्र नहीं हो सकता, अतः आस्ट्रिया के साथ पूर्वापेक्षा अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। रूस तथा टर्की के मध्य युद्ध आरम्भ हो जाने के कारण बाल्कन क्षेत्र में अशान्ति तथा अराजकता का वातावरण हो गया। बाल्कन क्षेत्र में रूस तथा आस्ट्रिया के हितों में परस्पर संघर्ष था और दोनों के मध्य किसी सन्तोषजनक समझौते की कोई सम्भावना नहीं थी। सन् 1878 में बर्लिन में आयोजित सम्मेलन (Congress of Berlin) में बिस्मार्क को अपने दो साम्राज्यिक मित्रों में एक की मित्रता का चुनाव करना था। बिस्मार्क ने पूर्वी प्रश्न (Eastern Question) पर आस्ट्रिया के दृष्टिकोण को स्वीकार किया और आस्ट्रिया की माँग का समर्थन किया कि सैन स्टैफनों की सन्धि के प्रावधानों को यूरोपीय सम्मेलन के समक्ष संशोधन के लिए रखना चाहिए। बिस्मार्क के आस्ट्रिया समर्थक दृष्टिकोण से रूस का जार क्रुद्ध हो गया तथा ड्राईकैसरबन्द अर्थात् तीन सम्राटों के संघ से विलग हो गया।

द्वि-राष्ट्र सन्धि, 1879 (Dual Alliance)—सन् 1877-78 में रूस-टर्की युद्ध में रूस की सफलता से आस्ट्रिया और ब्रिटेन दोनों ही चिन्तित थे। सन् 1878 में बर्लिन काँग्रेस में बिस्मार्क ने टर्की के विजित क्षेत्रों के विभाजन के विषय में ईमानदार दलाल की भूमिका का निर्वाह किया था। उसने अपनी इस भूमिका में आस्ट्रिया की आकांक्षाओं को सन्तुष्ट कर दिया तथा रूस को अप्रसन्न कर दिया। परिणामस्वरूप बिस्मार्क ने सन् 1879 में आस्ट्रिया के साथ सम्बन्धों को पुष्ट करने के लिए सुरक्षा सन्धि की। इस सन्धि में दोनों में से किसी एक पर रूस अथवा किसी अन्य शक्ति अर्थात् रूस समर्थित फ्रान्स द्वारा आक्रमण की स्थिति में परस्पर सैनिक सहायता का प्रावधान था। इस प्रकार यह सन्धि प्रत्यक्ष रूप से रूस के विरुद्ध थी, लेकिन कुछ अंशों में फ्रान्स के विरुद्ध भी थी।

त्रि-राष्ट्र सन्धि, 1882 (Triple Alliance)—रूस के सम्भावित आक्रमण को निष्प्रभावित करने के लिए बिस्मार्क ने आस्ट्रिया-जर्मनी सन्धि में इटली को भी सम्मिलित करने के लिए प्रयास आरम्भ किया। फ्रान्स में कैथोलिक मतावलम्बियों का प्रभुत्व था। अस्तु, इटली को आशंका थी कि फ्रान्स पोप की सत्ता को पुनर्स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर सकता था। बिस्मार्क ने उत्तरी अफ्रीका में ट्यूनिस के विषय पर फ्रान्स और इटली के मध्य शत्रुता को उत्तेजित किया। उसने फ्रान्स को ट्यूनिस पर नियन्त्रण करने के लिए प्रोत्साहित किया। इटली भी ट्यूनिस पर आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। बिस्मार्क का मुख्य उद्देश्य, फ्रान्स का एक कट्टर शत्रु बनाना तथा इटली को आस्ट्रिया-जर्मनी सन्धि में सम्मिलित करना था। सन् 1881 में फ्रान्स ने ट्यूनिस पर आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा इटली की भावनाओं को आघात पहुँचाया। इटली ने अपने आक्रोश को, बिस्मार्क के निमन्त्रण को स्वीकार करते हुए द्विराष्ट्र सन्धि में सम्मिलित होकर अभिव्यक्त किया। इस प्रकार सन् 1882 में विख्यात त्रिदेशीय मैत्री दल (Triple Alliance) का गठन हुआ। यह बिस्मार्क की कूटनीतिक चातुर्य तथा कुशलता का उत्कृष्ट उदाहरण था। कटु ऐतिहासिक स्मृतियों को मिटाना और दो ऐसी शक्तियों को, जो अतीत में परम्परागत शत्रु थे और जिनके मध्य अनेक महत्वपूर्ण विवाद थे, को मैत्री सम्बन्धों में बाँधना कोई साधारण उपलब्धि नहीं थी। प्रारम्भ में यह सन्धि पाँच वर्ष के लिए थी। सन् 1887 में इस त्रिदेशीय सन्धि का पुनर्नवीनीकरण हुआ।

तीन सम्राटों के संघ का पुनर्जीवन (Revival of League of Three Emperors)—बिस्मार्क के सौभाग्य से रूस के जार की हत्या कर दी गयी और उसका उत्तराधिकारी अत्यधिक प्रतिक्रियावादी था। अस्तु, निरंकुश रूस तथा लोकतान्त्रिक फ्रान्स के मध्य किसी प्रकार के समन्वय की कोई सम्भावना नहीं थी। रूस का जार भी जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ पुनः मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उत्सुक था। जर्मनी के लिए सुरक्षा प्रदान करने के उपरान्त बिस्मार्क इस सुरक्षा व्यवस्था को सुनिश्चित करना चाहता था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि रूस के किसी अन्य देश, विशेष रूप से फ्रान्स के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सके और वह स्वयं रूस के साथ पूर्व की भाँति मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उत्सुक था। उसने घोषणा की कि उसे सेन्टपीटर्सबर्ग के साथ व्यक्तिगत तार खुले रखने चाहिए, यद्यपि सार्वजनिक तार टूट चुके थे। रूस की भावुकता को हास्य विनोद की भावना से ग्रहण करते हुए बिस्मार्क पुराने तीन सम्राटों के संघ को पुनर्जीवित करने में सफल हुआ। सन् 1884 में रूस, जर्मनी तथा आस्ट्रिया के तीनों सम्राटों ने एक गुप्त सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार तीनों सम्राटों ने किसी चौथी शक्ति के साथ युद्ध की स्थिति

में सहृदय तटस्थता का वचन दिया। बाल्कन क्षेत्र के सम्बन्ध में रूस और आस्ट्रिया के मध्य पुनः विवाद आरम्भ हो गया। अस्तु, रूस और आस्ट्रिया के परस्पर मधुर एवं सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध असम्भव हो गये। बिस्मार्क संरक्षण की नीति का प्रबल समर्थक था। उसने आयातित माल पर भारी करारोपण किया। रूस के माल के महँगे होने के कारण जर्मनी के बाजार बन्द हो गए। रूस से आयातित खाद्यान्न की भी यही स्थिति थी। अस्तु, रूस एवं जर्मनी के मध्य राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से शत्रुता बढ़ गयी। फ्रान्स में बुलांजे के आविर्भाव से फ्रान्स एवं जर्मनी के मध्य प्रतिशोधात्मक युद्ध की सम्भावनाएँ बढ़ गयीं। बिस्मार्क ने रूस के दृष्टिकोण को जानने का प्रयास किया। रूस ने स्पष्ट घोषणा की कि तीन युद्धों में रूस तटस्थ रहा, यद्यपि तटस्थता का त्याग करने के लिए स्पष्ट रूप से हित ही होते। आज रूस को पूर्वापेक्षा अधिक अंशों में अपने स्वयं के हितों के साथ सम्पर्क करना चाहिए और निश्चित रूप से प्रशा की सहायता नहीं कर सकता है, जो आस्ट्रिया सम्राट फ्रान्सिस जोसेफ का मित्र है।

पुनःआश्वासन सन्धि, 1887 (Reinsurance Treaty)—बिस्मार्क रूस के साथ अपने सम्बन्धों को बहुत महत्व देता था, इसलिए सन् 1887 में उसने रूस के साथ पुनः आश्वासन सन्धि (Reinsurance Treaty) की। बिस्मार्क ने स्वयं इस सन्धि को "नई बोतलों में पुरानी शराब" (Old wine in new bottles) कहा था। इस सन्धि की अवधि तीन वर्ष थी। तुर्की साम्राज्य के सम्बन्ध में किसी भी निर्णय के लिए तीनों राष्ट्रों (रूस, जर्मनी एवं आस्ट्रिया) की सहमति आवश्यक थी। रूस ने बर्लिन सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया के हितों को मान्यता दे दी। इन तीनों राष्ट्रों में एक के साथ किसी अन्य राज्य के साथ युद्ध की स्थिति में शेष राष्ट्र परस्पर हितों का ध्यान रखते हुए तटस्थता की नीति का पालन करेंगे। इसके अतिरिक्त युद्ध काल में तुर्की द्वारा वास्फोरस एवं डार्डेनैलीज जल अन्तरीपों को खोलने का तीनों राष्ट्र विरोध करेंगे। इस सन्धि के द्वारा रूस और आस्ट्रिया के मध्य युद्ध की सम्भावनाएँ समाप्त हो गयीं। साथ ही फ्रान्स यूरोप में एकाकी ही बना रहा। यूरोप की शान्ति बिस्मार्कीय प्रणाली पर आधारित थी।

त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance)—उसी समय फ्रान्स में जनता जर्मनी के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रबल माँग कर रही थी। जनता जर्मनी से प्रतिशोध के लिए व्यग्र थी। फ्रान्स से भावी संकट के प्रति सजग बिस्मार्क ने तत्काल असाधारण उपाय किये। उसने सन् 1887 में आस्ट्रिया-हंगरी तथा इटली के साथ त्रिदेशीय सन्धि (Triple Alliance) का पुनर्नवीनीकरण तथा पुष्ट किया। उसने रूस के साथ सन् 1887 में एक गुप्त समझौते के द्वारा पुनःआश्वासन सन्धि की और इस सन्धि के अन्तर्गत जर्मनी ने रूस के बुल्गारिया में प्रभुत्व स्थापित करने तथा कुस्तुनतुनिया पर आधिपत्य स्थापित करने की स्थिति में कूटनीतिक समर्थन का वचन दिया और रूस ने फ्रान्स द्वारा जर्मनी पर आक्रमण करने की स्थिति में सहृदय तटस्थता का आश्वासन दिया। बिस्मार्क के कूटनीतिक प्रयासों का यहीं अन्त नहीं हुआ। रूस को बाल्कन क्षेत्र में अत्यधिक आक्रामक होने से रोकने के लिए तथा फ्रान्स को अपने देश की सीमाओं तक सीमित रखने के लिए बिस्मार्क ने ब्रिटेन, आस्ट्रिया तथा इटली के साथ एक विशेष अनुबन्ध किया। इस अनुबन्ध में मुख्य रूप से भूमध्यसागरीय क्षेत्र तथा निकटवर्ती पूर्वी क्षेत्र में यथास्थिति सुरक्षित रखने का विशेष रूप से प्रावधान था। उसने ब्रिटेन के साथ सक्रिय सहयोग सन्धि करने का भी असफल प्रयास किया।

इस प्रकार सन् 1871 से सन् 1890 तक बिस्मार्क ने अनेक उल्लेखनीय जटिल मैत्री सन्धियों की श्रृंखला के द्वारा जर्मनी की पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था की तथा फ्रान्स को यूरोप की अन्य शक्तियों से पूर्णतया विलग रखने का अभूतपूर्व कार्य किया। जर्मनी की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सर्वाधिक शक्तिशाली सेना का गठन किया। इस जटिल मैत्री सम्बन्ध की प्रणाली में अनेक दोष भी थे। बिस्मार्क ने स्वयं कहा था, "सहमिलन का विचार ही मुझको दुःस्वप्न देता है।" लेकिन यह बिस्मार्क ही था जिसने इस प्रकार के सहमिलनों (Coalitions) की आधारशिला रखी और इस प्रकार उसने उसी चीज को प्रोत्साहित किया जिससे वह बचना चाहता था। उसकी मैत्री सम्बन्धों की प्रणाली ने प्रतिकारात्मक मैत्री सम्बन्धों को उद्वेलित किया और यूरोप को सशस्त्र दलों में विभाजित कर दिया। अस्तु, शान्ति जिसको बनाए रखने की उसकी नीति थी, यथार्थ में सशस्त्र शान्ति थी, जो तलवारों की खनक पर आधारित थी, उस शान्ति और जर्मनी की सुरक्षा को मैत्री सम्बन्धों की कुशल जादूगरी से आश्वस्त किया था। उसकी यह व्यवस्था इतनी कोमल तथा इतनी जटिल थी कि इसको कुशलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए उसके जैसा कुशल, चतुर एवं निपुण जादूगर चाहिए था। जब तक उसने स्वयं राज्य के पोत का संचालन किया, सब कुछ व्यवस्थित ढंग से चलता रहा। उसकी नीति के तात्कालिक परिणाम बहुत सफल हुए परन्तु जैसे ही विलियम द्वितीय ने इस यान चालक को अलग किया, जलयान को रेत तथा चट्टानों से सुरक्षित रखना कठिन हो गया और अन्ततोगत्वा जलयान डूब गया। "प्रतिभा काले को कुछ समय के लिए श्वेत की तरह दिखा सकती है लेकिन सदैव के लिए नहीं दिखा सकती।" रूस ने शीघ्र ही अनुभव किया कि महान् कूटनीतिक कलाकार ने उसके साथ चालाकी की थी।

पद ग्रहण करते समय प्रशा की स्थिति यूरोपीय राजनीति में नगण्य थी। जर्मनी में उसको आस्ट्रिया ने भयभीत किया हुआ था और यूरोप में उसके साथ संरक्षक की कृपालुता के पात्र के रूप में व्यवहार किया जाता था। प्रशा राज्य को उसने एक साम्राज्य दिया और जर्मनवासियों को राष्ट्रीय एकता एवं हितों की सुदृढ़ता प्रदान की। जब तक वह पद पर रहा, वह जर्मनी की अन्तर्राष्ट्रीय सर्वोच्चता बनाए रहा और बर्लिन को यूरोप की राजनीतिक राजधानी बनाये रहा। उसने राजनीतिक शक्तियों में नई व्यवस्था का सृजन किया जिसका सन्तुलन जर्मनी के हाथों में था और यूरोप की शान्ति इसी पर निर्भर थी।

जर्मन साम्राज्य का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी की अद्वितीय घटना थी। इसके सृजन में बिस्मार्क ने अपने राजनीतिक एवं कूटनीति के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान का परिचय दिया था। उसने यूरोप के विरोध को हटाया, यद्यपि इस कार्य के लिए उसको यूरोपीय शक्तियों की सामूहिक सत्ता द्वारा लिए गये निर्णय एवं समझौतों का अतिक्रमण करना पड़ा। उसने कुशलता के साथ जनमत की प्रवृत्ति और यूरोप में घटनाओं का आकलन किया था और मित्र बनाने एवं शत्रुओं को निःशस्त्र करने में असाधारण कुशलता एवं क्षमता प्रदर्शित की। उसने अपनी "रक्त और लोहे" की नीति का विशाल वाष्पचालित हथौड़े के कुशलतापूर्वक आकलित नियन्त्रण के साथ प्रयोग किया, जिसका भार उस समय उपलब्ध था, जब उसकी आवश्यकता थी, लेकिन उसको अपेक्षित बिन्दु पर ही रोका और नियन्त्रित किया जा सकता था। उसने युद्ध का प्रयोग नीति के एक उपकरण के रूप में किया। वह राजनीतिज्ञता, जो सैन्य विजयों को चतुर और दीर्घकालीन राजनीतिक उपलब्धि में रूपान्तरित कर सकती है, के सर्वोत्कृष्ट गुणों से सम्पन्न था।

यथार्थ में बिस्मार्क की मैत्री सम्बन्ध प्रणाली में स्पष्ट दोष थे। थोड़ा-सा गोलमाल इस व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर देता। उसने आस्ट्रिया और इटली को जर्मनी के विश्वसनीय साथियों के रूप में चुना था, परन्तु यह व्यवस्था जोखिम से युक्त छल प्रपंच मात्र थी और परस्पर समन्वय तथा साहचर्य का अभाव था। उसने केवल रूस को ही विमुख नहीं किया वरन् आस्ट्रिया के लिए रूस के साथ युद्ध की सम्भावना का सृजन किया। बाल्कन क्षेत्र के विवाद के सन्दर्भ में रूस और आस्ट्रिया कट्टर शत्रु थे। दोनों देशों में युद्ध की स्थिति में जर्मनी स्वतः युद्ध में ग्रस्त हो सकता था। इटली के मैत्री सम्बन्ध कभी भी ठोस तथा स्थायी नहीं हो सकते थे। इटली की आस्ट्रिया के साथ पुराने संघर्ष की कटु स्मृतियाँ थीं। फ्रान्स की शत्रुता को समाप्त करने में उसकी असफलता बिस्मार्क की व्यवस्था का एक उल्लेखनीय दोष था। अलजेक और लारेन की हानि के कारण वह फ्रान्स के साथ समन्वय नहीं कर सका। परिणामस्वरूप फ्रान्स प्रतिशोध के लिए उत्सुक रहा। इसके अतिरिक्त बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया-हंगरी की महत्वाकांक्षा सन् 1914 में प्रथम विंश्व युद्ध का कारण बनी और बिस्मार्क का कूटनीतिक परिणाम त्रिदेशीय मैत्री सन्धि (Triple Alliance) ध्वस्त हो गयी।

बिस्मार्क के राजनीतिक विचार (Political Views of Bismarck)—संक्षेप में बिस्मार्क में सशक्त ओजस्विता और प्रबलता सर्वाधिक थी। उसके स्वयं के दृढ़ मत विचार एवं सिद्धान्त थे और उनको मूर्तरूप प्रदान करने के लिए अपूर्व साहस, निर्भीकता एवं निर्दयता से निरन्तर अथक परिश्रम किया और मार्ग के समस्त व्यवधानों को समाप्त करते हुए अपने गन्तव्य की ओर जीवनपर्यन्त आगे बढ़ता रहा और कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपने कार्यों पर कभी प्रायश्चित नहीं किया। उसका दृढ़ विश्वास था कि जर्मनी के एकीकरण के लिए सैन्यवाद ही सर्वोत्कृष्ट साधन था। उसने घोषणा करते हुए कहा था कि तत्कालीन महान् प्रश्नों का समाधान भाषणों और बहुमत द्वारा पारित प्रस्तावों की अपेक्षा "रक्त और लोहे (तलवार)" अर्थात् शक्ति और कठोरता से ही हो सकता था। (2) वह पूर्णरूप से निरंकुश तथा राजतन्त्रवादी था। लोकतन्त्र तथा उदारवाद की समस्त अभिव्यक्तियों से घृणा करता था। एक शक्तिशाली निरंकुशतावादी के रूप में उसने कभी संसदीय विरोधों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया। (3) उसको प्रशा पर अपूर्व गर्व था और प्रशा में अटूट विश्वास था। उसने कहा था, "हम लोग प्रशावासी हैं और सदैव प्रशावासी ही रहेंगे।" जर्मनी में प्रशा के नेतृत्व के प्रश्न पर कभी कोई समझौता नहीं किया। वह प्रशा के जर्मनी में विलय की अपेक्षा जर्मनी का प्रशा में विलय चाहता था। निःसन्देह वह एकता चाहता था परन्तु यह एकता प्रशा के राजा द्वारा प्रशा की सेना की सहायता से और जर्मनी में प्रशा के प्रभुत्व पर आधारित होनी चाहिए। वह अपने काल का अद्वितीय देशभक्त था।

बिस्मार्क कूटनीतिज्ञ के रूप में (Bismarck as a Diplomat)—कूटनीति के क्षेत्र में बिस्मार्क अद्वितीय था। उसमें यूरोप की घटनाओं की प्रवृत्ति तथा दिशा के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्निहित रहस्यों को समझने की विलक्षण क्षमता थी। अस्तु, उसने प्रत्येक अनुकूल परिस्थिति का सर्वाधिक लाभ लिया। उसने सुअवसरों से लाभान्वित होने के लिए दुर्लभ कुशलता, असीमित साधन-सम्पन्नता तथा चतुरता का प्रदर्शन किया और "अनैतिकता, चरित्रहीनता, अवसरवाद तथा दूरदर्शिता का कुशल समन्वय ही उसकी नीति थी।" स्कैल्सविग एवं होल्सटिन (Schleswig-Holstein) विवाद का साहसिक एवं पूर्ण दक्षता के साथ शोषण करके आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की स्थिति तक लाया और फ्रान्स को युद्ध के लिए उत्तेजित

करने के उद्देश्य से एमस (Emes) के तार का बेईमानी से प्रयोग किया। ये दोनों घटनाएँ उसको अपने युग का कुशल कूटनीतिज्ञ सिद्ध करती हैं। इन दोनों घटनाओं में उसने इस प्रकार व्यवस्था की कि ऐसा प्रतीत हो कि वह स्वयं रक्षा करने के लिए तत्पर था जबकि शत्रु आक्रामक था। इन दोनों विषयों में समस्त कार्यवाही, असाधारण दक्षता एवं कुशलता के साथ सम्पन्न की जिससे उसको समस्त यूरोप की सद्भावना मिली एवं शत्रु नैतिक एवं कूटनीतिज्ञ दोनों दृष्टियों से एकाकी बना रहा। राजनीति में वह एक कलाकार था। उसने उपलब्ध सामग्री का कुशल पूर्वानुमानों के साथ अपनी योजनाओं के अनुरूप चयन किया और रूप-आकार प्रदान किया। जर्मनी के एकीकरण की महान् उपलब्धि के उपरान्त, फ्रान्स को यूरोप की अन्य शक्तियों से पृथक् रखना ही अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया था और लक्ष्य की प्राप्ति उल्लेखनीय सफलता के साथ की। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने कुशलता तथा चतुरता के साथ मतभेदों का बीजारोपण किया, घृणा का पोषण किया, छल-प्रपंच से सन्देहों को प्रोत्साहित किया और समस्त महाद्वीप को कान पकड़कर नचाया। समस्त यूरोप महाद्वीप उसका कूटनीतिक क्षेत्र था और समस्त महाशक्तियाँ उससे प्रभावित थीं। "वह निःसन्देह एक चमत्कारिक जादूगर था जो पाँच गेंदों से एक साथ जादूगरी करता था और दो गेंदों को सदैव हवा में रखता था।" ये गेंदें आस्ट्रिया, फ्रान्स, इटली, इंग्लैण्ड और रूस थीं। इटली और आस्ट्रिया, दो को अपनी मैत्री सन्धि व्यवस्था में सम्मिलित किया, जब कि रूस के साथ मधुर एवं सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाए रहा। यदि जर्मनी और आस्ट्रिया एवं आस्ट्रिया और इटली के मध्य अतीत के सम्बन्धों पर ध्यान दिया जाता, इनको एक व्यापक सन्धि प्रणाली के द्वारा साथ-साथ रखना सरल नहीं था। वह फ्रान्स को अनुकूल बना लेने में असफल रहा, लेकिन उसने उसको व्याकुल रखा। उसने फ्रान्स की औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं को प्रोत्साहित किया जिससे वह अन्य औपनिवेशिक शक्तियों विशेष रूप से इंग्लैण्ड के साथ उलझा रहे। उसने इंग्लैण्ड और फ्रान्स के मध्य मिस्र के विवाद में दुर्भावना को पुष्ट किया, जिससे इंग्लैण्ड महाद्वीपीय सन्धियों में सम्मिलित नहीं हो सके। इस प्रकार जिन शक्तियों पर वह प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण नहीं कर सका, उनको उसने एकाकी एवं चिन्तित रखा। यथार्थ में जब तक वह अपने पद पर रहा वह यूरोप के भाग्य का निर्विवाद निर्णायक बना रहा।

आन्तरिक विषयों में बिस्मार्क कलाकार की अपेक्षा अधिनायक अधिक था। जर्मन साम्राज्य जिसका वह शिल्पकार था, को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाना उसका मुख्य उद्देश्य था। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने निःसकोच निर्दयतापूर्वक शत्रुओं, वे कोई भी हों, का दमन किया। उसने जर्मन संघ के कार्यक्षेत्र तथा सरकार के सामाजिक कार्यों का व्यापक विस्तार किया। जर्मनी के समस्त राज्यों को एकता के सूत्र में बाँधना उस समय की प्रमुख आवश्यकता थी। राज्यों की स्थानीय पृथकतावादी भावनाओं का उन्मूलन करने तथा समस्त साम्राज्य में राष्ट्रीय जीवन के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में एकरूपीय परिस्थितियों का सृजन करने के लिए बिस्मार्क ने साम्राज्यिक संस्थाओं का निर्माण कार्य आरम्भ किया। राज्यों में प्रचलित विविध तथा जटिल विधि प्रणालियों को समाप्त करके समान साम्राज्यिक विधि संहिता को प्रवृत्त किया और शनैः-शनैः विधि प्रक्रिया को भी समस्त साम्राज्य में एकरूपीय बना दिया। सन् 1876 में साम्राज्यिक बैंक स्थापित किये और समान एकरूपीय साम्राज्यिक सिक्के प्रचलित किए। समान माप-तौल की प्रणाली का शुभारम्भ किया। साम्राज्य की आर्थिक सम्पन्नता में पर्याप्त सुधार हुआ और वित्तीय एकरूपता स्थापित हुई। अधिकांश रेलवे पर

राज्यों का स्वामित्व था। इनको साम्राज्यिक नियन्त्रण मण्डल के अधीन कर दिया और रेलवे के, सेना तथा साम्राज्य के डाक विभाग के साथ सम्बन्धों को सावधानी के साथ नियन्त्रित किया।

साम्राज्य को सुदृढ़ करने में सबसे बड़ा व्यवधान गैर-जर्मन राष्ट्रीयताओं का असन्तोष था। साम्राज्य की सीमाओं पर विभिन्न जातियों की विजित जनता थी जो जर्मन शासन से घृणा करती थी। बिस्मार्क ने अल्पमत में विभिन्न जातियों के जर्मनीकरण की नीति का अनुसरण किया। साम्राज्य में 35,00,000 पोल, 1,50,000 डेन तथा अलजेक तथा लारेन प्रान्तों के 20,00,000 फ्रान्सवासी थे। अल्पमतीय जातियों को साम्राज्य के आर्थिक, शैक्षणिक तथा वैज्ञानिक विकास तथा प्रगति से निश्चित रूप से लाभ हुआ, परन्तु ये जातियाँ भावनात्मक दृष्टि से प्रथम विश्व युद्ध तक विदेशी ही बनी रहीं। यथार्थ में बिस्मार्क के जर्मनीकरण के प्रयासों ने इन अल्पमतीय जातियों की राष्ट्रीय चेतना का ही पोषण किया। बिस्मार्क एवं उसके उत्तराधिकारियों की सामान्य नीति बलपूर्वक सम्मिश्रित करने अथवा जर्मनीकरण की थी। लेकिन राष्ट्रीयता की भावना उन्नीसवीं शताब्दी की प्रबल शक्तियों में थी और राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित गैर-जर्मन जनता में सरकार के विरुद्ध गहन आक्रोश एवं असन्तोष था। अलजैक और लारेन फ्रेन्च भाषी जनता ने सदैव इन प्रान्तों के जर्मन साम्राज्य में विलय को अस्वीकार किया एवं अनिवार्य रूप से जर्मनीकरण का कठोर विरोध किया। पोल जनसमुदाय को नियन्त्रित करना बहुत कठिन था। पोल क्षेत्रों में जर्मन कृषकों को बसाकर और सार्वजनिक विद्यालयों में जर्मन भाषा प्रयुक्त करके पोल बहुसंख्यक जिलों का जर्मनीकरण करने का प्रयास किया। पोल जनसमुदाय ने अदम्य साहस और शौर्य के साथ अपनी भाषा एवं भूमि के लिए संघर्ष किया। अस्तु, बिस्मार्क का प्रयास विफल हो गया।

कैथोलिक मतावलम्बियों तथा समाजवादियों की समस्या सर्वाधिक गम्भीर थी। इनमें से प्रत्येक जर्मन भावनाओं, विचारों, सिद्धान्तों तथा आकांक्षाओं का विरोधी था। बिस्मार्क ने कट्टरपंथियों का निर्दयता, कठोरता तथा निर्ममता के साथ दमन करना आरम्भ किया।

कुल्वरकैम्फ (Kultur Kampf)—रोमन कैथोलिक चर्च के साथ दीर्घकालीन संघर्ष बिस्मार्क की सर्वाधिक गम्भीर समस्या थी। चर्च और राज्य के मध्य संघर्ष को कुल्वरकैम्फ (Kulturkampf) अथवा सभ्यता के लिए संघर्ष की संज्ञा दी जाती है। कैथोलिक मतावलम्बी एक सशक्त राजनीतिक दल के रूप में संगठित थे और नवीन जर्मन साम्राज्य, जिसमें प्रोटेस्टेन्ट प्रशा सर्वोच्च था, के विरोधी थे। इसके अतिरिक्त वे धार्मिक राज्य पोप की भौतिक सत्ता, जिसका इटली के एकीकरण के उपरान्त अन्त हो गया था, को पुनर्स्थापित करने के लिए व्यग्र थे। कैथोलिक मतावलम्बियों का दृष्टिकोण नवोदित जर्मन साम्राज्य को दुर्बल करने वाला तथा जर्मनी एवं इटली के मध्य विवाद को उत्तेजित करके जर्मनी के विदेश सम्बन्धों में व्यवधान डालने वाला था। सन् 1870 में वैटिकन परिषद् ने 'धार्मिक अव्याभिचारिता आज्ञप्ति' (Decree of Papalix fallibility) को स्वीकार कर लिया। कुछ जर्मन कैथोलिक मतावलम्बियों ने इस आज्ञप्ति को अस्वीकार किया और वे पुराने कैथोलिक कहलाते थे। अन्य कैथोलिक मतावलम्बियों ने पोप की आज्ञप्ति का प्रबल समर्थन किया। आज्ञप्ति समर्थकों तथा विरोधियों के मध्य भीषण सशस्त्र संघर्ष हुआ। पोप ने पुराने कैथोलिक मतावलम्बियों की कटु आलोचना की और उनसे विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अपने पदों से तत्काल त्यागपत्र देने का आह्वान किया। दक्षिण जर्मनी में आज्ञप्ति समर्थकों का वर्चस्व था, परन्तु

प्रशा में बिस्मार्क ने पुराने कैथोलिक मतावलम्बियों का समर्थन किया तथा कुल्चरकैम्फ का सूत्रपात किया।

सन् 1866 में रोमन कैथोलिक आस्ट्रिया के प्रबल समर्थक तथा प्रोटेस्टेन्टवंशीय प्रशा के विरोधी थे। जर्मनी में पोप का अत्यधिक प्रभुत्व था तथा जनसाधारण पर नियन्त्रण था। कैथोलिक समुदाय जर्मन साम्राज्य की अपेक्षा धार्मिक राज्य के आदेशों की प्रतीक्षा करता था। धार्मिक अव्याभिचारिता के सिद्धान्त के अनुसार कोई भी राजा शासक नहीं था, यदि उसके राज्य में कैथोलिक जनता रहती थी। बिस्मार्क ने पोप की आज्ञप्ति के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा था, "पोप जर्मन कानूनों को अमान्य तथा शून्य घोषित करता है, करारोपण करता है और प्रशा में इस विदेशी के समान कोई इतना शक्तिशाली नहीं है।" बिस्मार्क पोप की अव्याभिचारिता की आज्ञप्ति को राज्य के क्षेत्राधिकार में चर्च के अतिक्रमण के रूप में मानता था। इससे रोमन कैथोलिक अनुयायियों की राज्य के प्रति निष्ठा समाप्त हो जायेगी और मार्गदर्शन के लिए विदेशी सत्ता पर निर्भर रहेंगे। अस्तु, उसने चर्च को अधीन करने का निश्चय कर लिया था और रोमन कैथोलिक विरोधी कठोर नीति को कार्यान्वित किया। उसने अपने धार्मिक राज्य के साथ संघर्ष में राजनीतिक दृष्टिकोण पर बल दिया। संसद के निम्न सदन रिशटैग (Riechtag) में कैथोलिक मतावलम्बी सदस्य यद्यपि अल्पमत में थे, परन्तु विरोधियों के अनुशासित दल के रूप में थे और चर्च के समर्थन में संघर्ष के लिए कृत संकल्प थे। सन् 1872 में एक कानून के माध्यम से बिस्मार्क ने जैसुइटों तथा उनसे सम्बन्धित धर्माधिकारियों को निष्कासित कर दिया और धार्मिक मंच से राजनीतिक विषयों पर चर्चा को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया। वैटिकन नगर राज्य से प्रशा के कूटनीतिक सम्बन्ध समाप्त कर दिये। तदुपरान्त सन् 1873 में विख्यात 'मे कानून' (May Laws) के अन्तर्गत समस्त कैथोलिक मतावलम्बियों के लिए अनिवार्य असैनिक (Civil) विवाह प्रवृत्त किया। पादरियों के प्रशिक्षण के लिए शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण किया और राज्य की सत्ता को पादरियों तथा बिशपों की नियुक्ति तथा सेवानिवृत्त करने के लिए अधिकृत किया। दो वर्ष बाद राज्य में प्रवृत्त धार्मिक कानूनों को समाप्त कर दिया।

पोप पियस नवम् ने समस्त कानूनों को अमान्य तथा शून्य घोषित कर दिया और कैथोलिक अनुयायियों को इन कानूनों का पालन करने से मना किया। बिस्मार्क कुछ समय तक अविचलित रहा और घोषणा की कि वह कैनासा नहीं जायेगा अर्थात् उसने जो निश्चय कर लिया था, उससे पीछे नहीं हटेगा और पोप के समक्ष अपमानित नहीं होगा। उसके कानूनों की कठोरता ने उसके उद्देश्य को पराजित कर दिया। कैथोलिक मतावलम्बी धर्म के नाम पर शहीद होने लगे, अपने संगठन में सुधार किया तथा श्रमिक वर्ग तथा कुछ रूढ़िवादियों की सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त कर लिया। परिणामस्वरूप संसद के निम्न सदन में कैथोलिक प्रतिनिधियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गयी। बिस्मार्क ने अनुभव किया कि कैथोलिक अनुयायियों का दमन करना उसके लिए सम्भव नहीं था और उसको कैथोलिकवाद तथा समाजवाद में परस्पर सम्बन्धों की भी आशंका थी। वह समाजवादियों को कैथोलिक मतावलम्बियों की अपेक्षा अधिक घातक समझता था। उसको समाजवाद के निरन्तर बढ़ते हुए संकट से संघर्ष करने के लिए कैथोलिक अनुयायियों के समर्थन की आवश्यकता थी। सन् 1878 में पोप पियस नवम् का देहान्त हो गया। नया पोप लियो तेरहवें पूर्वापेक्षा अधिक कूटनीतिक तथा नरम स्वभाव का था और वह स्वयं बिस्मार्क से मिलने के लिए उत्सुक था।

बिस्मार्क को कैनोसा जाना पड़ा, यद्यपि लियो तेरहवें के कूटनीतिक तथा समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण उसकी यात्रा पर्याप्त शान्त एवं सुखद रही। तदुपरान्त बिस्मार्क ने कठोर पीड़ाकारी कैथोलिक विरोधी कानूनों को विस्मृति के गर्भ में समाहित होने की अनुमति दे दी। पोप के साथ पुनः कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये और धर्माधिकारियों को जर्मनी लौटने की आज्ञा दे दी। पोप ने कैथोलिक प्रतिनिधियों को संसद में साम्राज्य के सेना सम्बन्धी विधेयक का समर्थन करने का आदेश दिया। बिस्मार्क का जर्मन राष्ट्रीय चर्च की स्थापना का दीर्घकालीन स्वप्न साकार नहीं हो सका।

समाजवाद के साथ संघर्ष (Struggle with Socialism)—समाजवाद (लाल अन्तर्राष्ट्रीय) के उद्‌भव एवं विकास ने बिस्मार्क को कैथोलिक अनुयायियों (काले अन्तर्राष्ट्रीय) के साथ संघर्ष को समाप्त करने के लिए बाध्य किया था। आधुनिक समाजवाद अधिकतर जर्मन मूल का था। जर्मनी से निष्कासित कार्ल मार्क्स ने ही समाजवाद के सिद्धान्तों का सृजन किया था और इसकी कार्यान्वयन पद्धति निर्धारित की थी। मार्क्स के विचारों के प्रबल समर्थक, जर्मनी में ही थे। समाजवादी देश में पहले से ही विभाजित थे। अनेक समाजवादियों की मार्क्सवाद की क्रान्तिकारी तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में रुचि नहीं थी और एक अन्य प्रमुख समाजवादी लेखक फर्डिनेण्ड लासले (Ferdinand Lassale) के अनुयायी बन गये। वह अन्तर्राष्ट्रीयवादी नहीं था और अपेक्षाकृत कम क्रान्तिकारी था। सन् 1875 में मार्क्स तथा लासले के समर्थकों ने संयुक्त रूप से 'समाजवादी लोकतान्त्रिक दल' (Socialist Democratic Party) का गठन किया। यह दल जर्मनी में सर्वाधिक सुसंगठित था। समाजवादी, राजतन्त्र विरोधी, साम्राज्यवाद विरोधी और साम्राज्य के शत्रु थे। कैथोलिक मतावलम्बियों के समान वे भी बिना देश के व्यक्ति थे। इस दल ने राजनीतिक लोकतन्त्र, क्रान्तिकारी सामाजिक-सुधार अधिनियम तथा सैन्यवाद विरोधी व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया। इस प्रकार समाजवादियों के विचार एवं सिद्धान्त बिस्मार्क के प्रतिकूल थे। बिस्मार्क के अनुसार समाजवादी सिद्धान्त उसके द्वारा निर्मित साम्राज्य को ध्वस्त करना चाहते थे। अस्तु, उसने उनके विरुद्ध निर्मम संघर्ष आरम्भ कर दिया। सन् 1878 में जर्मन सम्राट की हत्या के दो असफल प्रयास किये गये। इससे जनता अत्यधिक उत्तेजित थी। इसका लाभ उठाते हुए बिस्मार्क ने हर प्रकार के समाजवादी संगठन का दमन करने के लिए रिशटैग (Riechstag) (संसद) के द्वारा असाधारण कठोर अधिनियम पारित करवाये। समाजवादियों के संगठन, सभाओं एवं प्रकाशनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उनके कोष को जब्त कर लिया तथा नेताओं को बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया। किसी भी संदेहास्पद व्यक्ति को बन्दी बनाने और देश से निष्कासित करने के व्यापक अधिकार पुलिस को दे दिये। उनके प्रकाशनों के सम्पादकों को कारावास का दण्ड दिया गया और सभा भवनों के स्वामियों को समाजवादी सभाओं के लिए सभा भवन किराये पर देने से रोक दिया गया। ये अधिनियम अत्यधिक कठोरता के साथ प्रवृत्त किये गये। दमन समाजवाद का उन्मूलन नहीं कर सका, वरन् उनको भूमिगत कर दिया। समाजवादियों ने गुप्त रूप से पड़ोसी राज्यों से समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार किया। गुप्त समितियों का आविर्भाव हुआ और चुनाव में सामाजिक लोकतान्त्रिकों ने पूर्वापेक्षा अधिक स्थान प्राप्त किए। सन् 1890 में संसद के निम्न सदन रिशटैग में समाजवादियों की संख्या तिगुनी हो गयी और बिस्मार्क के पतन के बाद इन असाधारण कठोर अधिनियमों का पुनर्नवीनीकरण नहीं किया गया।

समाजवादियों और उनके संगठनों का क्रूरतापूर्वक दमन करने के साथ बिस्मार्क श्रमिक वर्ग को आश्वस्त करना चाहता था कि सरकार उनकी कठिनाइयों के प्रति उदासीन नहीं थी। वह श्रमिकों की सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए अधिनियम पारित करवाकर उनको समाजवादी दल में सम्मिलित होने से रोकना चाहता था। वह यह भी प्रदर्शित करना चाहता था कि साम्राज्य की श्रमिकों के कल्याण में विशेष रुचि थी। उसने जीवन की विभिन्न दैविक विपत्तियों जैसे दुर्घटना, रुग्णता तथा वृद्धावस्था के विरुद्ध व्यापक अनिवार्य बीमा योजना का अधिनियम पारित करवाया। इन सुधारों पर अनुमानित व्यय को नियोजकों, श्रमिकों तथा राज्य में विभाजित किया गया। बिस्मार्क की यह नीति 'राज्य समाजवाद' के नाम से विख्यात है और तत्कालीन सामाजिक समस्याओं के निदान में यह प्रमुख योगदान था। उसके विचारों का व्यापक रूप से अध्ययन किया गया और उसके प्रयोग फ्रान्स और ब्रिटेन में सामाजिक अधिनियमों के लिए आदर्श बन गये। सन् 1911 में बीमे की व्यापक व्यवस्था का स्वरूप प्रदान किया गया। यह श्रमिकों के कल्याण के लिए सर्वोत्कृष्ट योजना थी, परन्तु बीमा योजना समाजवादी लोकतान्त्रिकों की प्रगति को रोकने में असफल रही।

आर्थिक नीति—बिस्मार्क, समस्त यूरोप में सामान्य रूप से प्रचलित हस्तक्षेप नहीं करने (*Laissez-Faire*) की नीति को छोड़ने एवं उच्च सीमा-शुल्क पर आधारित संरक्षण की नीति को ग्रहण करने वाला पहला यूरोपीय राजनीतिज्ञ था। उसके मुख्य दो उद्देश्य थे। वह अपने देश को एक महान् औद्योगिक देश बनाना चाहता था। अस्तु वह जर्मनी के नवोदित उद्योगों की प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध रक्षा करना चाहता था। दूसरे वह साम्राज्य के राजस्व में पर्याप्त वृद्धि करना चाहता था जिससे साम्राज्यिक सरकार को अन्य छोटे-छोटे राज्यों से धन नहीं माँगना पड़े, जिसका वे विरोध करें। बिस्मार्क की सीमा-शुल्क नीति ने केन्द्र सरकार को मजबूत एवं शक्तिशाली बनाया और साम्राज्य के परस्पर सम्बन्धों को सुदृढ़ किया। उसकी वित्तीय नीति ने औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया। उदारवादी, जिनके समर्थन पर वह निर्भर था, नाराज हो गये। अस्तु, वह कैथोलिक धर्मावलम्बियों का समर्थन और सहयोग लेने के लिए वाध्य था।

औपनिवेशिक साम्राज्य का सूत्रपात (Beginning of Colonial Empire)—बिस्मार्क के काल में ही जर्मनी के औपनिवेशिक साम्राज्य की नींव रखी गयी थी। स्मरणीय है कि प्रारम्भ में बिस्मार्क का उपनिवेशों में कोई विश्वास नहीं था। सन् 1871 में उसने अलजैक-लारेन के बदले में कुछ उपनिवेश देने के फ्रान्सीसी प्रस्ताव का उपहास किया था। उसका दृढ़ विश्वास था कि जर्मनी को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए समस्त प्रयास करने चाहिए और उसको आशंका थी कि औपनिवेशिक प्रयासों में अन्य देशों के साथ शत्रुता का जोखिम निहित था और ब्रिटेन की अतिसंवेदनशीलता को आघात पहुँचेगा। लेकिन वित्तीय नीति के रूप में संरक्षण प्रणाली को स्वीकार करने के बाद उसको अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना पड़ा। अपने निरन्तर विस्तारशील उद्योगों के लिए कच्चे माल और बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए बाजार के रूप में उपनिवेशों की आवश्यकता की अनुभूति की। इन आर्थिक कारणों के अतिरिक्त जर्मनी को एक महान् विश्व-शक्ति के रूप में देखने की प्रबल देशभक्ति पूर्ण आकांक्षा थी। इसी प्रकार देश की जनता की समुद्रपारीय साम्राज्य विस्तार की प्रबल माँग थी। व्यापारियों एवं धर्माधिकारियों ने जनसमूह की आकांक्षाओं का नेतृत्व किया। व्यापारिक संस्थानों का गठन किया गया। इन संस्थानों ने स्वीकृति एवं सुविधाएं प्राप्त करके अफ्रीका के टोगोलैण्ड, कैमरून आदि में व्यापारिक संस्थान स्थापित किए। बिस्मार्क को अपने पूर्वाग्रहों

को विस्मृत करके राष्ट्रीय जनमत की चेतना का अनुसरण करना पड़ा। वह सन् 1884 में अफ्रीका के विभाजन के लिए यूरोपीय होड़ में सम्मिलित हो गया और टोगोलैण्ड, कैमरून और दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका और पूर्वी अफ्रीका के बहुत बड़े भागों पर संरक्षित राज्य स्थापित किया।

विलियम प्रथम (William I)—सन् 1888 में सम्राट विलियम प्रथम का अल्पकालीन अस्वस्थता के बाद निधन हो गया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी फ्रेडरिक तृतीय उदारवादी सिद्धान्तों का व्यक्ति था। यदि वह जीवित रहता, उसने निरंकुश शासन को समाप्त करके इंगलैण्ड के सदृश संसदीय लोकतन्त्र का सूत्रपात किया होता परन्तु वह सिंहासनारूढ़ होते समय गम्भीर रूप से अस्वस्थ था। तीन माह के अल्पकालीन शासन के बाद उसका देहावसान हो गया और उसका पुत्र विलियम द्वितीय जर्मनी का सम्राट बना।

विलियम द्वितीय (सन् 1888-1918) (William II)—कैसर विलियम द्वितीय के सन् 1888 में सिंहासनारोहण से जर्मनी को एक नया स्वामी मिला और अपने इतिहास में एक नया पृष्ठ खोला। नये सम्राट में अनेक विशिष्ट गुण थे जिन्होंने उसको एक महान् शासक बनाया। उसका मस्तिष्क अत्यधिक क्रियाशील था, उसमें उर्वर कल्पना-शक्ति थी, विविध रुचियों का धनी था, उसमें कठोर श्रम की क्षमता थी और अपने दायित्वों तथा कर्तव्यों के प्रति सजग था। लेकिन वह हठधर्मी, अतिसंवेदनशील, प्रेरक नवयुवक, महत्वाकांक्षी, अधीर तथा होहेनजोलर्न वंश की दैविक अधिकार की भावना से अभिभूत था। मनुष्यों एवं जनता के विषय में निर्णय करते समय अहंवाद और अभिमान से अभिभूत रहता था और इनके कारण वह प्रायः मूर्ख भी बनता था। परिणामस्वरूप अपने विवेकहीन कथन के द्वारा भी मन्त्रियों तक को अपमानित कर देता था। उसके भाषण स्वयं के महत्व सम्बन्धित अतिशयोक्तियों से पूर्ण होते थे और इन भाषणों का आशय जनता को यह बताना था कि वह प्रतिस्पर्द्धा अथवा कोई विरोध सहन नहीं करेगा। फ्रेडरिक के उपरान्त वह होहेनजोलर्न वंश का सबसे योग्य शासक था। लेकिन उस महत्वाकांक्षी भूमिका, जिसका वह निर्वाह करना चाहता था, के बिल्कुल अनुपयुक्त था। वह यथार्थ में समस्त सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विषयों में विश्व निर्णायक की भूमिका का निर्वाह करना चाहता था। बिस्मार्क द्वारा अर्जित एवं एकत्रित निरंकुश सत्ता को वह सहन नहीं कर सकता था। अपनी मन्त्रिपरिषद् की बैठकों में उसने अनुभव किया कि वह बिल्कुल शक्तिहीन एवं सत्ताविहीन था। यह स्थिति उसके लिए अत्यधिक अपमानजनक थी। कैसर विलियम द्वितीय तथा बिस्मार्क के मध्य गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गये। बिस्मार्क के विरोधियों ने भी नये सम्राट को बिस्मार्क के विरुद्ध उत्तेजित किया। बिस्मार्क केवल राजा के समर्थन से ही अपने पद पर बना हुआ था। राजा की राजनीतिक गतिविधियों को नियन्त्रित करने का बिस्मार्क का दावा निराधार तथा निरर्थक था। विलियम द्वितीय ने समाजवादियों के विरुद्ध दमनकारी अधिनियम के नवीनीकरण के बिस्मार्क के प्रस्ताव को स्वीकृति देने से मना कर दिया। साथ ही विदेश एवं औपनिवेशिक विषयों के सन्दर्भ में उसके भिन्न विचार थे। वह इच्छा का स्वामी था। वह यथार्थ में शासन करना चाहता था। नाममात्र का शासक रहना उसके स्वभाव के प्रतिकूल था। उसने मन्त्रियों के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्धों पर बल दिया, जबकि बिस्मार्क ने प्रबल विरोध किया। बिस्मार्क ने कहा कि परम्परानुसार प्रधानमन्त्री ही सम्राट और मन्त्रियों के मध्य संचार का माध्यम होता है। दो अभिमानी एवं निरंकुश व्यक्तियों के मध्य सत्ता और सर्वोच्चता के

लिए संघर्ष था। समझौते की कोई सम्भावना नहीं थी। सन् 1890 में दोनों के मध्य गम्भीर मतभेद हो गये। इस विकट स्थिति में सम्राट कैसर विलियम द्वितीय ने बिस्मार्क से त्यागपत्र देकर घर जाने का आदेश दे दिया। सन् 1898 में बिस्मार्क की मृत्यु तक बिस्मार्क और विलियम द्वितीय के मध्य मतभेदों का निराकरण नहीं हो सका।

पुराने सम्राट विलियम प्रथम, रून और मोल्टके (Moltke) का निधन हो चुका था। समय बदल चुका था, नये व्यक्ति थे, सब कुछ नया था। प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने तक चार व्यक्ति क्रमानुसार बिस्मार्क के चान्सलर के पद के उत्तराधिकारी बने। सन् 1890 से 1894 तक भूतपूर्व सेना अधिकारी कैपरिवी (Caprivi) ने उस पद पर कार्य किया। उसका कट्टर सैन्यवादी दृष्टिकोण था। तदुपरान्त राजकुमार होहेनलो (Hohenloe) एक उदारवादी कैथोलिक (सन् 1894-1900) जर्मनी का चान्सलर रहा। उससे पूर्व वह पेरिस में राजनयिक तथा अलजेक तथा लारेन प्रान्तों का राज्यपाल रह चुका था। वह बहुत वृद्ध था, अस्तु, साम्राज्य के आन्तरिक तथा बाह्य विषयों में मार्गदर्शन की अपेक्षित क्षमता नहीं थी। राजकुमार होहेनलो का उत्तराधिकारी एक कुशल कूटनीतिज्ञ तथा साहसिक नीति का प्रबल समर्थक राजकुमार वोन बुलो (Von Bulow सन् 1900-1909) था। बैथमैन होलवेग (Bethmann Hollwegg सन् 1909-1917) एक अनुभवी अधिकारी, परन्तु विदेश नीति से पूर्णतया अनभिज्ञ विलियम द्वितीय के काल में अन्तिम चान्सलर था। इनमें से किसी में भी बिस्मार्क के अनुरूप स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की अपेक्षित बुद्धि, चातुर्य एवं कुशलता नहीं थी। सब सम्राट विलियम द्वितीय से मार्गदर्शन की अपेक्षा करते थे। सम्राट की दृढ़ इच्छा-शक्ति तथा व्यक्तित्व का पूर्ण प्रभुत्व था। विलियम द्वितीय स्वयं ही चान्सलर था। वह अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अनुसार अधिकृत था।

महत्वाकांक्षी नौ-सेना नीति (Ambitious Naval Policy)—इस अवधि में नौ-सेना को नवीन रणनीति के अनुसार गठित तथा प्रशिक्षित किया गया। सन् 1871 में विशाल जर्मन साम्राज्य के उद्भव के समय साम्राज्यिक नौ-सेना नाम की कोई चीज नहीं थी। उपनिवेशों के विकास और जर्मन व्यापार के व्यापक विस्तार के साथ-साथ यह अनुभव किया गया कि विशाल विदेश व्यापार एवं निवेश की सुरक्षा के लिए शक्तिशाली नौ-सेना की अतीव आवश्यकता थी। विलियम द्वितीय नौ-सेना के विकास के विषय में बहुत व्यग्र था। सिंहासनारोहण के तत्काल बाद नौ-सेना के महत्व पर बल देते हुए उद्घोषणा की कि 'हमारा भविष्य पानी पर निर्भर है'। जर्मन इतिहास का नया अध्याय आरम्भ हुआ। विश्व की सर्वाधिक महान् सेना के बाद भी वह सन्तुष्ट नहीं था और नौ-सेना के आकार एवं शस्त्रों की दृष्टि से ब्रिटेन के साथ प्रतिस्पर्द्धा के लिए उत्सुक था। निःसन्देह द्रुतगति से वाणिज्य के विकास एवं व्यापारी बेड़े की उन्नति के परिप्रेक्ष्य में नौ-सेना की वृद्धि न्यायोचित थी। लेकिन इसका मुख्य उद्देश्य विश्व राजनीति में जर्मनी को मुख्य भूमिका का निर्वाह करने के योग्य बनाना था। अपनी नीति के क्रियान्वयन स्वरूप उसने सन् 1890 में हैलिगोलैण्ड (Heligoland) पर आधिपत्य कर लिया और शक्तिशाली नौ-सेनिक बेड़ा स्थापित किया। सन् 1896 में कील (Kiel) नहर पूर्ण हो जाने के बाद, उत्तरी सागर और बाल्टिक सागर के मध्य महत्वपूर्ण सामरिक सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर मिला। सन् 1897 में एडमिरल वोन टिरपिट्ज (Von Tirpiz) के साम्राज्यिक नौ-सेना के सचिव पद पर नियुक्ति के उपरान्त ही द्रुतगति से विकास सम्भव हुआ। सन् 1898 और सन् 1900 के नौ-सेना अधिनियमों ने

नौ-सेना निर्माण के अतिविशाल कार्यक्रम का शुभारम्भ किया और सन् 1906 में जर्मन नौ-सेना आकार और शक्ति की दृष्टि से ब्रिटेन के बाद दूसरे नम्बर पर पहुँच गयी। इस असाधारण वृद्धि से इंग्लैण्ड सर्वाधिक चिन्तित था। सामुद्रिक प्रभुत्व के लिए असीमित पूँजी निवेश की आवश्यकता थी। ब्रिटेन का सामान्य नियम था कि ब्रिटेन की नौ-सेना को किन्हीं अन्य दो शक्तियों की संयुक्त नौ-सेना से अधिक विशाल रखना था। अस्तु, जर्मनी द्वारा निर्मित एक युद्धपोत के लिए ब्रिटेन को दो युद्धपोतों का निर्माण करना पड़ता था। ब्रिटिश सरकार ने बार-बार वृहत् आकार में पूँजी निवेश के प्रति चेतावनी दी, लेकिन जर्मनी अपने कार्यक्रम के अनुसार नौ-सेना में निरन्तर वृद्धि करता रहा। इस महत्वाकांक्षी नीति ने ब्रिटेन को शत्रु बना दिया और उसको अपने पारम्परिक शत्रु फ्रान्स के साथ विवादों का समाधान करने के लिए बाध्य किया। परिणामस्वरूप सन् 1904 में विख्यात 'एंग्लो-फ्रेन्च सन्धि' (Anglo-French Entente) हुई जो कालान्तर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई।

समाजवादियों द्वारा निरंकुशता का विरोध (Opposition to Autocracy by Socialists)—अधिकांश विरोध समाजवादियों का ही था। सामाजिक लोकतान्त्रिक दल (Social Democratic Party) का उद्भव जर्मनी के राजनीतिक जीवन में एक महत्वपूर्ण तथ्य था। सामाजिक लोकतान्त्रिक केवल आर्थिक क्षेत्र में ही क्रान्ति नहीं चाहते थे वरन् सरकार की निरंकुश शासन प्रणाली में भी परिवर्तन चाहते थे। उनको मध्यवर्गीय उग्र सुधारवादियों का समर्थन मिलता था, जो यद्यपि समाजवाद के आर्थिक सिद्धान्तों के प्रति उत्साही नहीं थे, लेकिन यह अनुभव करते थे कि इसका विकास साम्राज्यिक संस्थाओं को उदार बनाने के लिए सर्वाधिक विश्वसनीय साधन था। इस प्रकार यह दल सुधारवादी एवं विरोधी दल था और इसके विचार अन्य देशों में समान संगठनों की अपेक्षा कम राष्ट्र विरोधी थे, इसलिए यह बहुत लोकप्रिय था।

विलियम द्वितीय ने समाजवादियों के प्रति प्रारम्भ में समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखा। उसने समाजवाद विरोधी कानूनों को बिस्मार्क की इन कानूनों को पूर्वापेक्षा अधिक कठोर प्रावधानों के साथ पुनर्नवीनीकरण की प्रबल इच्छा की उपेक्षा करते हुए, समाप्त हो जाने दिया। वह दयालुता के साथ समाजवाद की हत्या करना चाहता था, लेकिन उसको केवल असफलता मिली। समाजवादियों ने अपने संगठन में सुधार किये और प्रत्येक चुनाव में अपने प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि की। सन् 1912 के निर्वाचन में सदन के निम्न सदन रिशटैग में 110 स्थान प्राप्त किये। सम्राट निराशापूर्वक सामाजिक लोकतान्त्रिक दल के विकास को देखता रहा और प्रशामक उपायों की निरर्थकता का अनुभव करते हुए दमन को पुनर्जीवित करने का निश्चय किया। सन् 1895 में रिशटैग (Reichtag) (संसद) के निम्न सदन ने प्रस्तावित दमनकारी प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया था और सम्राट को भाषणों द्वारा विरोध करके सन्तुष्ट होना पड़ा था। समाजवादियों ने व्यक्तिगत शासन प्रणाली पर आघात किया और सेना एवं नौ-सेना पर निरन्तर बढ़ते हुए व्यय का कठोर विरोध किया। सन् 1913 में समाजवादी साम्राज्यिक सरकार के प्रति रिशटैग में अविश्वास प्रस्ताव पारित करवाने में पर्याप्त शक्तिशाली थे।

सैन्य शक्ति में वृद्धि—जर्मन साम्राज्य का निर्माण सेना ने किया था। अस्तु, सैन्यवाद नये शासन की एक प्रमुख विशेषता थी। सम्राट ने सर्वप्रथम सेना को ही सम्बोधित किया था। कैपरीव (Caprive) के चान्सलर के काल में सन् 1890 में और सन् 1893 में सेना में वृद्धि की थी। उसका प्रशासन हैलिगोलैण्ड की प्राप्ति और बिस्मार्क द्वारा स्थापित संरक्षणात्मक

सीमा-शुल्क में संशोधन के लिए विख्यात था। उसने आस्ट्रिया, इटली, बेल्जियम और रूस के साथ पारस्परिकता के सिद्धान्त पर वाणिज्यिक सन्धियाँ कीं। इन सन्धियों के द्वारा जर्मन निर्यात के प्रति अनुकूल व्यवहार के बदले में खाद्यान्न पर आयात शुल्क कम कर दिया गया। जर्मन कृषकों ने इस व्यवस्था की कटु आलोचना की और भू-स्वामी कृषकों ने (उग्र प्रशावासी रूढ़िवादियों) कठोर शब्दों में, विशेष रूप से रूस के साथ सन्धि की आलोचना की। उन्होंने प्रधानमन्त्री कैपरीव को पद से हटाने की माँग की और सम्राट ने उसको हटा दिया। नये चान्सलर वॉन बुलो (Von Bulow) ने वाणिज्यिक पारस्परिकता की नीति को त्याग दिया। सन् 1902 में उसने अनाज और माँस पर भारी संरक्षणात्मक करों को पुनः आरोपित करते हुए नई सीमाशुल्क नीति का शुभारम्भ किया। 'जर्मनी एक विश्व शक्ति हो', सम्राट के विचार से वह सहमत था। अस्तु उसने उत्साही विदेश एवं औपनिवेशिक नीति का पालन किया।

आर्थिक विकास (Economic Development)—विलियम द्वितीय के शासन की सबसे विशिष्ट विशेषता जर्मन उद्योग और वाणिज्य का असाधारण विस्तार था। जर्मनी एक निर्धन देश था। मुख्य रूप से कृषि प्रधान था, लेकिन अब औद्योगिक राज्य में रूपान्तरित हो गया था, जिसमें जनता का समस्त आर्थिक जीवन सम्पत्ति के उत्पादन के लिए वैज्ञानिक दृष्टि से नियन्त्रित एवं निर्देशित था। बिस्मार्क की संरक्षण की नीति ने आर्थिक विकास को बहुत अधिक प्रोत्साहित किया था, लेकिन ये विलियम द्वितीय के काल की अभूतपूर्व उपलब्धियाँ थीं। आधुनिक उद्योगवाद अधिकांश कोयले और लोहे पर आधारित है और जर्मनी इन दोनों खनिजों की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति की दृष्टि से भाग्यवान है। रूर (Ruhr), सिलेसिया (Silesia) और सार (Saar) की कोयला खदानों का विकास करके वह विश्व के महान् कोयला उत्पादक देशों में एक बन गया। नवविजित लारेन का समस्त क्षेत्र विश्व के सर्वाधिक लौह-अयस्क भण्डारों में एक था, और जर्मनी ने इन लौह खदानों का देश के औद्योगिक विकास के लिए सर्वाधिक प्रयोग किया। जर्मनी का लौह-अयस्क और स्टील का उत्पादन सन् 1910 तक इंगलैण्ड की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया और सन् 1914 तक विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दूसरे नम्बर पर था। जर्मनी ने उद्योग में तकनीकी तथा वैज्ञानिक ज्ञान को प्रयुक्त करने में जिस कुशलता को प्रदर्शित किया, उसने उनको कोयले के सह-उत्पादनों पर आधारित नये उद्योगों के विकास के योग्य बनाया। परिणामस्वरूप सैक्रीन (Saccharin) और एस्प्रिन (Aspirin) जैसे औषधीय उत्पादनों की अत्यधिक उन्नति हुई। लेकिन उस सबमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पादन एनिलीन (Aniline) रंगों का था। इस क्षेत्र में जर्मनी केवल अग्रणी ही नहीं बना वरन् व्यावहारिक दृष्टि से एकाधिकार हो गया। जर्मनी अपने रसायनशास्त्रियों के उत्कृष्ट आविष्कारों के लिए उनका ऋणी था। उसके उत्पादकों की वृद्धि के साथ-साथ उसके विदेश व्यापार में अपूर्व वृद्धि हुई और व्यापारी नौ-परिवहन का यथेष्ट विकास हुआ। इससे हैम्बर्ग विश्व के महान् बन्दरगाहों में एक बन गया। हैम्बर्ग-अमेरिका मार्ग व्यक्तिगत दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा मार्ग था। विलियम द्वितीय के अन्तर्गत जर्मनी विश्व की सर्वाधिक व्यस्त कार्यशालाओं में एक बन गया।

जनसंख्या वृद्धि (Increase of Population)—जर्मनी के आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई। जनसंख्या सन् 1817 में 4,10,00,000 से बढ़कर सन् 1910 में 6,50,00,000 हो गयी और अधिकांश वृद्धि ग्रामों की अपेक्षा नगरों में हुई। जर्मनी के विस्तारवादी उद्योग बहुत समृद्ध और सम्पन्न थे और बढ़ती हुई जनसंख्या के पालन-पोषण

के लिए पर्याप्त थे। उद्योगों ने विदेशी श्रमिकों को आकर्षित किया। जर्मनी उत्प्रवासन की भूमि से आप्रवासन का देश बन गया। अतिरिक्त श्रम आपूर्ति के लिए पड़ोसी देशों के श्रमिकों को आकर्षित किया। सीमा-शुल्क से रक्षित कृषि उत्पादनों में भी बहुत वृद्धि हुई और देश बहुत अंशों तक खाद्यान्न की दृष्टि से आत्म-निर्भर बन गया।

विदेश नीति—विलियम द्वितीय बिस्मार्क के एक सन्तुष्ट साम्राज्य के विचार को अस्वीकार कर चुका था। उसने मत व्यक्त किया कि जर्मनी की साहसिक तथा उत्साही ट्यूटानिक जाति (Teutonic race) की जनता असीमित विस्तार के लिए सक्षम थी। सन् 1870 के प्रशा-फ्रान्स युद्ध के सफल समापन के बाद सन् 1871 में स्थापित विशाल जर्मन साम्राज्य ने नये जीवन का संचार किया और देश को युवावस्था की समस्त उत्साह एवं साहसिकता से अभिभूत कर दिया। उसने व्यापार एवं उद्योगों के क्षेत्र में असाधारण प्रगति की थी और विस्तार एवं प्रभुत्व के लिए नये क्षेत्रों की खोज आरम्भ कर दी थी। इस नवीन राष्ट्रीय भावना के साथ विलियम द्वितीय ने स्वयं की पहचान की और इसका सर्वाधिक प्रभावी लेकिन विवेकहीन प्रवक्ता बन गया। वह जर्मनी को यूरोप की महान् शक्ति की अपेक्षा विश्व की महान् शक्ति बनाना चाहता था। उसका विचार था कि जर्मनी को विश्व की महान् शक्ति के रूप में अपनी विशेष भूमिका पर बल देना चाहिए और विश्व की राजनीति में प्रमुख एवं सक्रिय भाग लेना चाहिए। कैसर विलियम द्वितीय की विदेश नीति 'वेल्टपालिटिक' (Weltpolitik) के नाम से विख्यात है। यह दृष्टिकोण कैसर विलियम द्वितीय के कथन "विश्व में कहीं भी कुछ भी नहीं होना चाहिए जिसमें जर्मनी सक्रिय भाग नहीं लेता है" से यह स्पष्ट दृष्टिगत होता है। इस भूमिका के निर्वाह के लिए जर्मनी के पास कुशल नौ-सेना होना चाहिए और उसे नये उपनिवेश एवं प्रभाव क्षेत्र प्राप्त करने चाहिए। इस प्रकार "विश्व राजनीति, विस्तार और नौ-सेना" कैसर की विदेश नीति के तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व बन गये।

विलियम द्वितीय की महत्वाकांक्षी नीति में, बिस्मार्क की सन्धि प्रणाली का पूर्णरूपेण अन्त निहित था और इसके परिणामस्वरूप कूटनीतिक विकास जर्मनी के लिए अत्यधिक पूर्वाग्रही थे। बिस्मार्क की नीति का मुख्य उद्देश्य फ्रान्स को एकाकी तथा रूस को सद्भावपूर्ण रखना था। लेकिन विलियम द्वितीय रूस के मैत्री सम्बन्धों के मूल्य पर आस्ट्रिया के साथ मैत्री सन्धि को सुदृढ़ करना चाहता था। रूस के बाल्कन क्षेत्र में सर्वोपरि हित थे, इस तथ्य की उपेक्षा करते हुए समीपवर्ती पूर्व में आस्ट्रिया के हितों को प्रोत्साहित करने की नीति के प्रति जर्मनी की वचनबद्धता व्यक्त की और स्वयं तुर्की में प्रभाव के लिए रूस के साथ प्रतिस्पर्द्धा में प्रवेश किया। उसने बिस्मार्क की रूस के साथ "पुनःआश्वासन सन्धियों" को इस आधार पर, कि इन सन्धियों में आस्ट्रिया के विरुद्ध चेतावनी निहित थी, रद्द होने दिया। इस भयंकर भूलयुक्त नीति के परिणामस्वरूप रूस एवं फ्रान्स के मध्य विख्यात द्वि-राष्ट्र सन्धि (Dual Alliance, सन् 1891-93) सम्पन्न हुई। फ्रान्स अब एकाकी नहीं रहा। रूस उसका समर्थक मित्र बन गया।

बिस्मार्क की नीति से विलग विलियम द्वितीय ने नौ-सेना एवं उपनिवेश विस्तार की योजना का सूत्रपात किया। यद्यपि जर्मनी ने बिस्मार्क के काल में उपनिवेश प्राप्त करना आरम्भ कर दिया था, लेकिन वह मूलरूप से महाद्वीपवादी ही था। औपनिवेशिक साम्राज्य के क्षेत्र में एक नये प्रत्याशी के प्रवेश से इंगलैण्ड का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था, लेकिन बिस्मार्क

इंगलैण्ड की उत्तेजना एवं अशान्ति को कूटनीतिक कुशलता के साथ शान्त करने में समर्थ था। लेकिन कैसर एक उत्साही साम्राज्यवादी था और उसके विख्यात शब्दों "हमारा भविष्य पानी पर निर्भर है" ने इंग्लैण्ड की सामुद्रिक सर्वोच्चता को कठोर चुनौती दी। जर्मनी की महत्वाकांक्षी नौ-सेना नीति के उपरान्त भी इंग्लैण्ड जर्मनी के साथ मैत्री सम्बन्ध रखने के लिए उत्सुक था। इंग्लैण्ड के फ्रान्स और रूस के साथ वैमनस्य एवं शत्रुता के अनेक विवाद बहुत समय से लम्बित थे। द्वि-राष्ट्र सन्धि भी सन्देहास्पद थी। अस्तु इंग्लैण्ड ने जर्मनी के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना आरम्भ किया। वह जंजीवार के बदले में हैलिगोलैण्ड जर्मनी को देने के कैसर के प्रस्ताव से सहमत हो गया, मध्य अफ्रीका में जर्मन औपनिवेशक उद्यमों को प्रोत्साहित किया और एंग्लो-जर्मन (Anglo-German) सन्धि का प्रस्ताव रखा। विलियम द्वितीय ने ग्रेट ब्रिटेन के साथ मैत्री सन्धि के अनेक अवसरों का लाभ नहीं उठाया और अन्ततोगत्वा इंग्लैण्ड को अपना शत्रु बना लिया। इस शत्रुता की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति बोर युद्ध (Boer War) के समय हुई जब विलियम द्वितीय ने इंग्लैण्ड विरोधी दृष्टिकोण व्यक्त किया। जर्मनी के तत्वाधान में निर्माणाधीन बगदाद रेलवे के प्रति भी ग्रेट ब्रिटेन बहुत सजग एवं सतर्क था क्योंकि इस परियोजना के द्वारा पूर्व में ब्रिटिश हितों को बहुत खतरा निहित था। इटली ने भी त्रि-राष्ट्र सन्धि के पालन करने में पर्याप्त दुर्बलता को अभिव्यक्त किया था। इस प्रकार विलियम द्वितीय विदेशी विषयों को कुशलतापूर्वक निपटाने में असफल रहा, परिणामस्वरूप उसने अपने सुरक्षा कवचों को खोना प्रारम्भ कर दिया जो बिस्मार्क ने जर्मन साम्राज्य की सुरक्षा के लिए दिये थे।

विश्व शक्ति के रूप में जर्मनी (Germany as a World Power)—विलियम द्वितीय ने बिस्मार्क की सजग महाद्वीपवाद की नीति को त्यागकर आक्रमणात्मक साम्राज्यवाद की नीति का अनुसरण किया। उसने विश्व-शक्ति के रूप में जर्मनी की स्थिति को व्यक्त करना आरम्भ किया। सन् 1895 में जापान पर, चीन की मुख्य भूमि पर विजित क्षेत्रों पर अपना नियन्त्रण छोड़ने के लिए, दबाव बनाने के उद्देश्य से फ्रान्स और रूस के साथ सम्मिलित हो गया। सन् 1897 में दो जर्मन धर्म-प्रचारकों की हत्या का लाभ उठाते हुए चीन को किया-चाओ (Kia-Chao) क्षेत्र जर्मनी को पट्टे पर देने के लिए बाध्य किया।

सन् 1900 में चीन में बोक्सर (Boxer) विद्रोह का दमन करने के लिए अन्य शक्तियों के साथ जर्मन सेनाओं ने सक्रिय सहयोग दिया और इन शक्तियों ने पैकिन (Pekin) की ओर कूच करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के अध्यक्ष के रूप में जर्मन अधिकारी नियुक्त करने की सहमति व्यक्त की। सन् 1899 में स्पेन से कैरोलिन द्वीप खरीदकर भूमध्यसागर में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। समीपवर्ती पूर्व में उसने तुर्की पर जर्मनी की आर्थिक पकड़ को मजबूत किया और ऐसे समय जब समस्त यूरोप अरमेनिया में तुर्की के पाशविक एवं बर्बर अत्याचारों से विचलित एवं क्षुब्ध था, अपने मैत्री-भाव अभिव्यक्त करके तुर्की के सुल्तान की सद्भावना एवं सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया। सन् 1898 में उसने सीरिया की भव्य एवं प्रभावशाली यात्रा कर स्वयं को इस्लाम धर्म का रक्षक व्यक्त किया और कुस्तुनतुनिया से बंगदाद और बाद में फ्रान्स की खाड़ी तक रेलवे का निर्माण करने वाली जर्मन कम्पनी के लिए अनेक सुविधाएँ प्राप्त कीं। इसने पूर्व में वाणिज्यिक प्रभाव एवं जर्मनी के राजनीतिक प्रभुत्व के लिए मार्ग प्रशस्त किया। तुर्की से, जर्मन प्रभाव ने, रूस और इंग्लैण्ड दोनों को ही निकालने का प्रयास आरम्भ कर दिया। सन् 1908 में उसने बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया के

आक्रमण को स्वीकार करने के लिए रूस को बाध्य किया अर्थात् आस्ट्रिया को बोस्निया एवं हर्जेगोविना, जिन पर बर्लिन की सन्धि द्वारा जर्मनी को आधिपत्य करने का अधिकार दिया गया था, को विलय करने की अनुमति दी। उसने मोरक्को में फ्रान्स की सैन्य प्रगति को रोकने का प्रयास किया। उल्लासपूर्ण अभिव्यक्तियों के साथ विलियम द्वितीय के ये आक्रमण यूरोप में सैन्यवादी सर्वोच्चता स्थापित करके धमकाने वाले प्रयास प्रतीत होते थे। इस प्रकार के दृष्टिकोण ने रूस, फ्रान्स और ग्रेट ब्रिटेन को सजग एवं सतर्क किया। परिणामस्वरूप कूटनीतिक समूहों (त्रिराष्ट्रीय सन्धि Triple Entente, एंग्लो-रूस सम्मेलन Anglo-Russian Convention) का गठन हुआ जिसने त्रिराष्ट्रीय सन्धि, जिस पर बिस्मार्क ने जर्मनी की सुरक्षा के लिए विश्वास किया था, को निष्प्रभावित कर दिया था।

उत्साही औपनिवेशिक नीति (Vigorous Colonial Policy)—यद्यपि जर्मनी ने बिस्मार्क के कार्यकाल में ही उपनिवेश प्राप्त कर लिए थे लेकिन उसमें औपनिवेशिक उद्यमों के लिए सीमित उत्साह था। लेकिन विलियम द्वितीय ने उत्साही औपनिवेशिक नीति का अनुसरण किया। उसने बिस्मार्क द्वारा निर्मित औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। सर्वप्रथम उसने उत्तर सागर में स्थित हैलिगोलैण्ड, जंजीवार के बदले में इंग्लैण्ड से प्राप्त किया। सन् 1897 में सुदूर पूर्व में चीन से दो जर्मन धर्म-प्रचारकों की हत्या की क्षतिपूर्ति के रूप में किया-चाओ (Kia-Chao) प्राप्त किया था। स्पेन-अमेरिका युद्धकाल में स्पेन को धन की बहुत आवश्यकता थी, अस्तु, जर्मनी ने सन् 1899 में पश्चिमी भूमध्य सागर में स्थित कैरोलिन द्वीप (Caroline Island) खरीद लिया। सन् 1900 में जर्मनी ने इंग्लैण्ड और अमेरिका के साथ एक समझौते के अन्तर्गत सामों द्वीपों (Samoan Islands) के सर्वाधिक विशाल क्षेत्र उलपूलू और सेवाय (Ulpolu and Sewai) प्राप्त कर लिए। जर्मन विस्तार की आत्मघाती विशेषता अपने पड़ोसियों के अधिकृत क्षेत्रों पर लोभी दृष्टि डालने की थी। सन् 1911 में, मोरक्को में फ्रान्स के हितों को मान्यता देने के मूल्य के रूप में काँगों में विशाल रबड़ उत्पादन क्षेत्र प्राप्त किया।

जर्मनी के औपनिवेशिक उद्यम निराशाजनक सिद्ध हुए। अफ्रीका में जर्मन उपनिवेश आकार में जर्मनी स्वयं की अपेक्षा बहुत विशालकाय थे। जर्मन उद्योगों एवं वाणिज्य, कच्चे माल की आपूर्ति की दृष्टि से बहुत मूल्यवान थे, लेकिन उत्प्रवासन के लिए आमन्त्रित करने वाले क्षेत्र के रूप में नहीं थे। इसके अतिरिक्त जर्मन अधिकारियों की उदण्डता एवं अयोग्यता तथा जर्मन व्यापारियों के लोभ ने स्थानीय जनजातियों के साथ सम्बन्ध मधुर एवं सौहार्द्रपूर्ण असम्भव कर दिये थे। दक्षिण अफ्रीका एवं कैमरून में स्थानीय जनजातियाँ प्रायः विद्रोह करती थीं जिनके दमन करने में अत्यधिक धन एवं जन की हानि होती थी। दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका के हैरेरोज (Hereros) जर्मनवासियों को बिल्कुल निकाल देना चाहते थे। उनका विद्रोह सर्वाधिक घातक था। यह विद्रोह सन् 1903 से सन् 1907 तक चला और असाधारण निर्ममता के साथ दमन कर दिया गया। जनजाति का अस्तित्व ही लगभग समाप्त हो गया। इस स्थिति ने जर्मनवासियों को उपनिवेशों के मूल्य की दृष्टि से निराशावादी बना दिया। सन् 1906 में डर्नबर्ग (Dernberg) की नये औपनिवेशिक सचिव के रूप में नियुक्ति से नई औपनिवेशिक नीति का सूत्रपात हुआ। उसने औपनिवेशिक प्रशासन पद्धति में सुधार किया। स्थानीय जनजातियों के साथ अपेक्षाकृत अधिक मानवीय व्यवहार का शुभारम्भ किया और जर्मनी की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. बर्लिन काँग्रेस उपलब्धियों की विवेचना कीजिये।
   Critically examine the achivements of the Berlin Congress.
   (अम्बेदकर, 1996, 98; मगध, 1993)
2. विस्मार्क की विदेश नीति का मूल्यांकन करें।
   Evaluate the foreign policy of Bismark.
   (भागलपुर एवं जबलपुर 1996; रायपुर, 1996, 98; बिलासपुर, 1997; मगध, 1993, 95; कानपुर, 1994, 97, 99, 2000; गोरखपुर, 1992, 95, 97, 99; लखनऊ, 1991, 93, 94, 95, 97, 99; मेरठ, 1995, 97; आगरा, 1992, 94, 97, 99; भोपाल, 1995; रुहेलखण्ड, 1993, 95, 97, 99)
3. बर्लिन काँग्रेस के कार्यों की आलोचनात्मक समीक्षा करें।
   Give a critical estimate of the work of the Berlin Congress.
   (भागलपुर एवं पटना, 1997; बिलासपुर, 2000; भोपाल, 1998)
4. क्या आप सहमत हैं कि विस्मार्क 1871 ई. से 1890 ई. तक यूरोपीय राजनीति का मुख्य मध्यस्थ था ?
   Do you agree that Bismark had been main mediator of the European Politics from 1871 to 1890 ? (पटना, 1998; मगध, 1993; राजस्थान, 2000; मेरठ, 1996)
5. कैथोलिक चर्च एवं समाजवादियों के प्रति बिस्मार्क की नीतियों का विवेचनात्मक परीक्षण कीजिये। इसमें वह कहाँ तक सफल रहा ?
   Critically examine Bismarks policies towards Catholic Church and Socialists. How far did he succeed in his efforts ?
   (रायपुर, 1997; जबलपुर, 1995; रुहेलखण्ड, 1996; भोपाल, 1999)
6. जर्मनी के एकीकरण के बाद यूरोप में नये युग (1871) की प्रमुख विषेषताओं की चर्चा संक्षेप में कीजिये।
   Discuss in brief the main characteristics of the new era (1871) after unification of Germany. (रायपुर, 1996, 98)
7. बर्लिन काँग्रेस एक पूर्व नियोजित राजनीतिक परिहास थी।
   The Berlin Congress was a pre-planned mockery. (रायपुर, 1998)
8. बिस्मार्क की गृहनीति का संक्षेप में विवेचन कीजिये। क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि उसकी नीति जर्मनी की जनता के लिए हितकर थी ?
   Discuss in brief Bismark's Home Policy. Do you agree with the statement that his policy was beneficial to the German people ?
   (रायपुर एवं बिलासपुर, 1999; जबलपुर, 1998, 2000; कानपुर, 1996; गोरखपुर, 1991, 93, 96, 98; आगरा, 1994, 96, 98)
9. सन् 1882 के त्रिगुट निर्माण हेतु मुख्य प्रेरक कारणों, धाराओं तथा परिणामों का संक्षिप्त विवेचन कीजिये।
   Discuss in brief the motives, provisions and results of the Triple Alliance.
   (रायपुर, 1999; रुहेलखण्ड, 1994)
10. कुल्तुर कैम्प (सभ्यता के रक्षार्थ संघर्ष) एवं राज्य समाजवाद के प्रति बिस्मार्क की नीतियों एवं उपलब्धियों की समीक्षा कीजिये।

Examine Bismarks policies and achievements to the Kulturkemp (struggle for the protection of civilisation) and State Socialism.

(कानपुर, 1994, 95; ग्वालियर एवं रायपुर 2000)

11. बर्लिन काँग्रेस के निर्णयों का विशिष्ट परिणाम यह निकला कि उससे प्रत्येक राज्य पहले की अपेक्षा अधिक असन्तुष्ट और चिन्तित हो गया।—थाम्पसन।

Results of the decisions of the Berlin Congress caused great dis-satisfaction and concern to each state.—*Thompson.* (रायपुर, 1999, 2000)

12. कैसर विलियम द्वितीय की विश्व राजनीति के प्रमुख उद्देश्यों और उनके क्रियान्वयन प्रभावों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये।

Critically examine Kaisar William II's main objectives and effects of their implementation in world politics.

(रायपुर, 1996, 2000; बिलासपुर, 1998, 99; जबलपुर, 1995, 96, 98, 2000; गोरखपुर, 1994; रुहेलखण्ड, 1992; ग्वालियर, 2000; कानपुर, 1993, 95, 97, 2000; लखनऊ, 1992, 94, 96, 99; आगरा, 1993, 95, 98; भोपाल, 1996)

13. "मैं शान्ति के साथ सम्मान लेकर आया हूँ।" बर्लिन काँग्रेस के सन्दर्भ में बिस्मार्क के इस कथन की समीक्षात्मक परीक्षा कीजिये।

"I have brought peace with honour." Examine this statement of Bismark in context with the Berlin Congress. (रायपुर, 1996)

14. 1871 से 1914 ई. के मध्य इंलैण्ड और जर्मनी के मध्य आपसी सम्बन्धों का ववरण दीजिये।

Discuss relations between England & Germany during the years 1871 to 1914. (ग्वालियर, 2000; भोपाल, 1995, 98; आगरा, 1997)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. काउन्टवीन बिस्मार्क का जन्म .... हुआ था—
   (क) 1 अप्रैल, 1801 (ख) 1 अप्रैल, 1815
   (ग) 30 अप्रैल, 1815 (घ) 15 अप्रैल, 1815
2. बिस्मार्क .... तक जर्मन साम्राज्य का चान्सलर रहा—
   (क) 1878 (ख) 1881 (ग) 1880 (घ) 1890
3. बिस्मार्क की नीति .... थी—
   (क) विभाजन करो और शासन करो (ख) खून और लोहा
   (ग) यथा स्थिति बनाये रखना (घ) उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक
4. अलजेक-लारेन .... के भाग थे—
   (क) इंग्लैण्ड (ख) फ्रान्स (ग) जर्मनी (घ) आस्ट्रिया
5. प्रशा-फ्रान्स सशस्त्र संघर्ष .... में आरम्भ हुआ था—
   (क) 1866 (ख) 1874 (ग) 1870 (घ) 1865
6. तीन सम्राटों के संघ में .... सम्मिलित थे—
   (क) इंगलैण्ड, फ्रान्स और रूस (ख) रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी
   (ग) जर्मनी, रूस और इंगलैण्ड (घ) रूस, आस्ट्रिया-हंगरी और फ्रान्स
7. बर्लिन काँग्रेस .... में हुई—
   (क) 1880 (ख) 1871 (ग) 1878 (घ) 1873

8. द्वि-राष्ट्र सन्धि ………. में हुई ?
(क) 1885 (ख) 1879 (ग) 1873 (घ) 1882
9. विलियम द्वितीय का शासन काल ………. रहा।
(क) 1880-1910 (ख) 1885-1915 (ग) 1888-1918 (घ) 1890-1920
10. वैथमैन होलवेग ………. जर्मनी का चान्सलर रहा।
(क) 1909–1917 (ख) 1907–1916 (ग) 1991–1919 (घ) 1905–1915

[उत्तर—1. (ख), 2. (घ), 3. (ख), 4. (ख), 5. (ग), 6. (ख), : 7. (ग), 8. (ख), 9. (ग), 10 (क) ।]

26

उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में एशिया एवं अफ्रीका में उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद

[COLONIALISM AND IMPERIALISM IN ASIA AND AFRICA IN NINETEENTH AND TWENTIETH CENTURIES]

किसी निश्चित भू-भाग में रहने वाले जनसमुदाय पर राजनीतिक शासन का अर्थ किसी राज्य अथवा निश्चित भू-भाग पर शासन करना ही होता है, परन्तु जब कभी किसी निश्चित भू-भाग अथवा राज्य की शासन प्रणाली अपनी राजनीतिक सत्ता अथवा नियन्त्रण का अन्य क्षेत्र में रहने वाले जनसमुदाय एवं उस भू-भाग की राजनीतिक सत्ता पर सशस्त्र युद्ध के द्वारा विस्तार करती है, उस समय राज्य का स्वरूप साम्रांज्य का हो जाता है और इस प्रकार के राज्य विस्तार के समर्थन में विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन अथवा विस्तार को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए तर्क प्रस्तुत करना ही साम्राज्यवाद है। अनेक विद्वानों ने साम्राज्यवाद शब्द की व्याख्या भिन्न-भिन्न रूप में की है। इतिहास के सन्दर्भ में सर्वमान्य स्वीकृत व्याख्या इस प्रकार है, "भिन्न प्रजाति वाले देश पर किसी अन्य देश के राजनीतिक अथवा आर्थिक नियन्त्रण (आधिपत्य) की व्यवस्था को साम्राज्यवाद कहते हैं।" विजय अभियान द्वारा विशाल साम्राज्य की सामान्य प्रवृत्ति साम्राज्यवाद में निहित रहती है।

साम्राज्य स्थापित करने तथा इस प्रक्रिया को न्यायोचित सिद्ध करने अथवा इसके समर्थन में सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने की परम्परा बहुत प्राचीन है। इतिहास में रोम, मिस्र, बाइजैन्टाइन, अलेक्जेण्डर के अतिरिक्त हूणों तथा तुर्कों के ओटोमन साम्राज्य विख्यात हैं। विद्वान इतिहासकार आधुनिक साम्राज्यवाद का प्रारम्भ सन् 1880 के दशक से मानते हैं और प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्यवादों में परस्पर संघर्ष ही प्रथम विश्वयुद्ध सन् 1914-18 का मूल कारण था। स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड, फ्रान्स और ब्रिटेन जैसी साम्राज्यिक शक्तियाँ सोलहवीं शताब्दी में भी थीं। इन्होंने अपने औपनिवेशिक साम्राज्य की नींव डाली थी इस अवधि का अधिकांश

इतिहास औपनिवेशिक एवं साम्राज्यिक विस्तार के लिए यूरोपीय शक्तियों के मध्य प्रतिद्वन्द्विताओं से युक्त है। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में औपनिवेशिक आन्दोलन का उत्साह क्षीण हो गया था। यूरोपीय शक्तियों द्वारा निर्मित औपनिवेशिक साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहे थे।

सोलहवीं शताब्दी से पूँजीवाद एवं इसके अन्य सहयोगी अवयवों के उद्भव एवं विकास ने उन्नीसवीं शताब्दी में साम्राज्यवादी पद्धतियों, व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं को सहज एवं सुगम कर दिया था, अस्तु, इस साम्राज्यवाद का स्वरूप, प्रवृत्ति एवं स्वभाव पूर्वापेक्षा भिन्न था। इसके अतिरिक्त उन्नीसवीं शताब्दी की साम्राज्यिक शक्तियों की दो अन्य विशेषताएं थीं : (1) अपने देश की जनता के सुख, समृद्धि एवं सम्पन्नता के लिए साम्राज्यिक शक्तियां अधिकृत उपनिवेशों के आर्थिक स्रोतों का अधिकाधिक शोषण करती थीं तथा इस प्रक्रिया में साम्राज्यिक शक्तियों ने आधुनिक आविष्कारों तथा परिष्कृत साधनों का समुचित प्रयोग किया।

औपनिवेशिक शक्तियों की आर्थिक एवं प्रशासनिक नीतियाँ, परम्पराएँ, व्यावहारिक क्रिया-कलाप एवं मान्यताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती थीं, परन्तु औपनिवेशिक शक्तियों में अनेक मूलभूत समानताएँ थीं। समस्त शक्तियों को अपने उद्देश्य की शुद्धता तथा न्यायसंगतता (औचित्य, सदाचारिता) में पूर्ण विश्वास था। सब शक्तियों का दृढ़ मत था कि औपनिवेशिक शासन ऐतिहासिक घटनाचक्र तथा आनुवांशिकी ने उन पर थोपा था, अर्थात् वे स्वयं उत्सुक नहीं थे। औपनिवेशिक प्रणाली के अन्तर्गत उपनिवेशों की जनता को सामान्यतः उनके उज्ज्वल भविष्य, उनके कल्याण तथा उनके व्यक्तिगत हितों की सुरक्षा का आश्वासन दिया जाता था। विदेशी प्रतिद्वन्द्वियों अथवा आन्तरिक विरोधियों से अपने अधिकृत उपनिवेशों की सुरक्षा के लिए उनका दृढ़ निश्चय शक्तिशाली तथा कठोर था। उन्नीसवीं शताब्दी में उपनिवेशवाद ने साम्राज्यवाद का रूप ग्रहण कर लिया था। उन्नीसवीं शताब्दी की एक असाधारण विशेषता यूरोपीय शक्तियों द्वारा गैर-यूरोपीय क्षेत्रों पर उत्साही एवं साहसी विस्तार का प्रयास था। इस शताब्दी में श्वेतवर्णीय जातियों ने पृथ्वी के उन भागों, जो अस्वामिक अथवा स्वामीहीन थे अथवा अपनी सुरक्षा करने में बहुत कमजोर थे, पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। बहुत बड़े भू-भाग की पिछड़ी जनता आधुनिक सभ्यता के आधुनिकतम घातक शस्त्रास्त्रों का प्रभावशाली विरोध करने में असमर्थ थी। ऐसे क्षेत्रों पर यूरोपीय शक्तियों ने नियन्त्रण कर लिया। प्राचीन सभ्यताओं के क्षेत्र भी यूरोपीय शक्तियों की लोलुप दृष्टि से नहीं बचे। उपनिवेशों एवं अपने प्रभाव क्षेत्र के लिए चीख-पुकार को "अफ्रीका की छीना-झपटी" (Scramble for Africa) और चीन के विभाजन के लिए प्रयास के रूप में उद्धृत किया गया है। इसने यूरोपीय राष्ट्रों की प्रतिद्वन्द्विता को यूरोप से विश्व के अन्य भागों विशेष रूप से अफ्रीका और एशिया में स्थानान्तरित कर दिया, यूरोप अब इतिहास का मंच नहीं रहा। विदेश नीति अधिकाधिक विश्वनीति बन गयी और समस्त विश्व अब सक्रिय राजनीति का क्षेत्र बन गया। यूरोपीय शक्तियों के लिए सुदूर प्रदेशों की चिन्ता सर्वोच्च चिन्ता का विषय बन गयी। विश्व राजनीति के युग का अभ्युदय हुआ, विश्व यूरोपीयकरण की प्रक्रिया में था।

यूरोप का विस्तार नई बात नहीं थी। यूरोप ने पन्द्रहवीं शताब्दी से गैर-यूरोपीय क्षेत्रों की ओर ध्यान दिया। सन् 1763 से सन् 1825 के मध्य कोई भी ऐसा साम्राज्य नहीं था जिसकी गम्भीर क्षति नहीं हुई। इंग्लैण्ड को छोड़कर अन्य सबका विनाश हो गया। सन् 1783 में अमेरिका के स्वतन्त्रता आन्दोलन के बाद 13 उपनिवेश इंग्लैण्ड के हाथ से निकल गये। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्पेन के अमेरिका स्थित उपनिवेशों ने विद्रोह किया और सन् 1822 में ब्राजील पुर्तगाल के हाथों से निकलकर स्वतन्त्र हो गया। उपनिवेशों की क्षति से यूरोप के राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क में बढ़ती हुई दृढ़ भावना की पुष्टि हो गयी कि साम्राज्य निर्माण पर इतना अधिक कष्ट उठाने और धन व्यय करने का कोई औचित्य नहीं। उदासीनता एवं हतोत्साह की प्रचलित प्रवृत्ति को डिजरैली ने अभिव्यक्त किया था, "ये तुच्छ उपनिवेश कुछ ही वर्षों में स्वतन्त्र हो जायेंगे और हमारी गर्दनों में मिल के पत्थर की तरह हैं।" अन्त में वाणिज्य के सिद्धान्त, कि उपनिवेश मूल देश के लिए लाभप्रद एवं आवश्यक थे, का प्रभाव हस्तक्षेप नहीं करने के आर्थिक सिद्धान्त के प्रबल समर्थकों टुरगोट (Turgot) एवं एडम स्मिथ की कटु आलोचनाओं के कारण निरन्तर कम हो रहा था।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में 'औपनिवेशक उदासीनता' दृष्टिगत होती है। इस अवधि में मुक्त व्यापार तथा हस्तक्षेप नहीं करने की नीति के कारण उपनिवेश स्थापित नहीं हुए, परन्तु सन् 1870 के उपरान्त साम्राज्यवाद की भावना प्रबल होने लगी। सन् 1870 से सन् 1900 के मध्य यूरोपीय राज्यों ने अपने साम्राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। 1 करोड़ वर्ग मील क्षेत्र तथा 15 करोड़ व्यक्ति साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत थे। बिस्मार्क ने कटुता तथा घृणा व्यक्त करते हुए इनको "क्रीड़ामय युद्धों" (Sporting Wars) की संज्ञा दी थी। भूमि के प्रत्येक भाग को विलय के योग्य माना जाता था। सिसिल रोड्स ने विचार व्यक्त किया था, "विस्तार ही सब कुछ है। मैं नक्षत्रों को भी विलय कर लेता यदि कर सकता।" सन् 1875 में यूरोपीय शक्तियों ने अफ्रीका महाद्वीप के केवल 1/10 भाग का ही अपने साम्राज्य में विलय किया था, परन्तु दो दशक की अवधि में केवल 1/10 भाग ही विलय के लिए शेष रह गया था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक विभिन्न साम्राज्यिक शक्तियों के निजी हितों तथा स्वार्थों पर आधारित परस्पर विवादों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तनाव अत्यधिक बढ़ चुका था।

सन् 1870 के उपरान्त आधुनिक साम्राज्यवाद के द्रुत गति से विकास में अनेक अवयवों ने अपूर्व योगदान किया। इस साम्राज्यवाद का पुनर्जीवन (नव-साम्राज्यवाद जैसा कहा जाता है) नवीन आर्थिक स्थितियों का परिणाम था। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप परिवहन साधनों में पर्याप्त विकास हुआ। वाष्पचालित जलयानों के निर्माण से सुदूरवर्ती देशों से व्यापार करना सुगम हो गया। रेलवे, डाक, तार, दूरभाष आदि के आविष्कार से मनुष्य ने देश एवं काल पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की। टेलिग्राफ तथा केबिल के माध्यम से प्रत्येक सुदूर स्थित उपनिवेश से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना सहज तथा सरल हो गया। ये आधुनिक विज्ञान एवं अभियान्त्रिकी के उत्कृष्ट आविष्कारों का परिणाम थे।

आर्थिक उद्देश्य (Economic Motives)—औद्योगिक क्रान्ति के कारण, कम मूल्य पर अधिक उत्पादन ने यूरोपीय देशों में धन संचय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया और एक ऐसे पूँजीपति वर्ग का आविर्भाव हुआ, जो अधिक ब्याज की भावना से प्रेरित होकर, यूरोप की अपेक्षा उपनिवेशों में पूँजी निवेश के लिए उत्सुक थे। उपनिवेशों में पूँजी निवेश द्वारा अधिक लाभार्जन की सम्भावनाएँ अधिक थीं। अस्तु, पूँजीपतियों ने अपने देश की सरकारों को पूँजीनिवेश के लिए उपयुक्त क्षेत्र प्राप्त करने के उद्देश्य से उपनिवेशों की स्थापना के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। स्थापित उपनिवेशों में भी विकास की गति को तीव्र करने के लिए रेलवे, बाँधों तथा सड़कों के निर्माण की अतीव आवश्यकता थी। इनके लिए विदेशी पूँजीपतियों को पूँजीनिवेश के उपयुक्त अवसर प्राप्त हुए। इस प्रकार के आर्थिक प्रवेश ने राजनीतिक नियन्त्रण के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

औद्योगिक देशों में निरन्तर बढ़ती हुई कच्चे माल की आवश्यकता तथा उत्पादित वस्तुओं के नये उपभोक्ता बाजारों की आवश्यकता ने नये उपनिवेशों की स्थापना तथा साम्राज्यवाद के विकास को प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया। अस्तु, अधिकांश औद्योगिक देशों ने कम मूल्य पर कच्चे माल की प्राप्ति एवं अपने औद्योगिक उत्पादनों के निर्यात के लिए उपनिवेश स्थापित किये। इसके अतिरिक्त औद्योगिक देशों में खाद्यान्नों का भी अभाव था। उपनिवेशों से खाद्यान्नों के आयात द्वारा आपूर्ति सम्भव हो गयी। तेल, कॉफी, चाय, चीनी आदि उपभोक्ता वस्तुओं का बहुत बड़ी मात्रा में आयात होता था। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम 25 वर्षों में इंग्लैण्ड के अतिरिक्त समस्त औद्योगिक देशों ने सुरक्षात्मक सीमा-शुल्क नीति का अनुसरण किया। परिणामस्वरूप उत्पादित वस्तुओं के लिए बाजारों के विस्तार की अपेक्षा तीव्र गति से संकुचन की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। सुरक्षावादी सिद्धान्त का उद्देश्य आत्म- निर्भरता है। लेकिन अविकसित उष्ण-कटिबन्धी क्षेत्रों, जहाँ कुछ अनिवार्य कच्चे माल का उत्पादन होता है, पर पूर्ण नियन्त्रण किये बिना औद्योगीकरण यूरोप के लिए असम्भव था। अस्तु, सुरक्षा की आर्थिक नीति ने साम्राज्यवाद को प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया। उल्लेखनीय है कि इसी अवधि में सुरक्षात्मक सीमा-शुल्क के उपरान्त भी तीव्रगति से औपनिवेशिक विस्तार हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई। सन् 1800 में ब्रिटेन की कुल जनसंख्या 1,60,00,000 थी और यह सन् 1900 में बढ़कर 4,10,00,000 हो गयी। इसी प्रकार फ्रान्स में एक शताब्दी की अवधि में जनसंख्या 2,10,00,000 से बढ़कर 5,60,00,000 हो गयी और इटली की जनसंख्या 2,30,00,000 से बढ़कर 4,00,00,000 हो गयी। निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के नियोजन, खाद्यान्न तथा आवास की समस्याएँ उग्ररूप ग्रहण कर रही थीं। दयनीय आर्थिक स्थिति एवं निरन्तर बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण लाखों यूरोपवासी जीविकोपार्जन के उपयुक्त साधनों एवं सुखद जीवन की खोज में अन्य देशों में चले गये। कट्टर राष्ट्रवादियों के लिए राष्ट्र के पौरुष की हानि अत्यधिक निराशाजनक थी।

इसके अतिरिक्त तीव्र गति से औद्योगीकरण के कारण वातावरण दूषित हो रहा था। विभिन्न सामाजिक समस्याओं में भी वृद्धि हो रही थी। जनसंख्या वृद्धि तथा औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न समस्याओं के समुचित समाधान के लिए उपनिवेशों की स्थापना आवश्यक हो गयी थी। यूरोपीय देशों के सैनिक, प्रशासनिक अधिकारी तथा उद्योगपति एशिया एवं अफ्रीका के उपनिवेशों में गये।

उल्लेखनीय है कि नवीन साम्राज्यवाद से पूर्व तथा साम्राज्यवाद के वास्तविक कार्यान्वयन काल में अनेक बुद्धिजीवियों तथा राजनीतिज्ञों ने अपने सद्गुणों के पर्याप्त विकास की सम्भावनाओं के प्रति आशंका व्यक्त की थी। सन् 1877 में ग्लैडस्टोन ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि मिस्र में ब्रिटिश हस्तक्षेप से अफ्रीका महाद्वीप के उत्तरी उपनिवेश की प्रशासनिक एवं सैनिक सुरक्षा का भार ब्रिटिश सरकार पर आ जायेगा। फ्रान्स द्वारा अल्जियर्स पर आधिपत्य स्थापित करने के उपरान्त अनेक फ्रान्सवासियों ने अल्जियर्स का नियन्त्रण त्याग देने की प्रबल इच्छा व्यक्त की थी। फ्रान्स में जूलियस फैरी के प्रत्येक साम्राज्यवादी प्रयास से उसकी लोकप्रियता में ह्रास हुआ तथा उसके पदच्युत होने की स्थिति उत्पन्न कर दी। सन् 1886 तक बिस्मार्क जर्मनी के पूर्ण सन्तुष्ट देश होने का दावा करता था और समुद्रपारीय क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित करने के विरुद्ध था।

आधुनिक काल में साम्राज्यवाद का उद्भव तथा विकास मुख्य रूप से पूँजीवाद व्यवस्था के प्रबल समर्थन तथा विषम औद्योगिक एवं सामाजिक समस्याओं के न्यायसंगत समाधान के प्रस्तावों के कारण ही हुआ, परन्तु आधुनिक काल में साम्राज्यिक संरचना का सूक्ष्म विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि साम्राज्यवाद के उद्भव का उपलब्ध कोई भी कारण सन्तोषजनक नहीं है, अर्थात् साम्राज्यवाद का कोई भी सिद्धान्त एवं विचार, बुद्धिजीवियों तथा विचारकों की आशाओं, आकांक्षाओं तथा भावनाओं के अनुरूप साम्राज्यिक संरचना का विश्लेषण करने में सहायता नहीं कर सकता।

राजनीतिक कारण (Political Causes)—यद्यपि आर्थिक तत्व सर्वाधिक शक्तिशाली एवं मूलभूत था लेकिन आधुनिक साम्राज्यवाद का एकमात्र कारण नहीं था। कुछ राजनीतिक कारण भी थे, जो साम्राज्यिक विस्तार के लिए शक्तिशाली प्रलोभन देते थे। राष्ट्र जो पहले ही सुदूर तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर चुके थे, ने नौ-सैनिक बेड़े के आधार और कोयला आपूर्ति केन्द्रों की अतीव आवश्यकता अनुभव की। दूसरे युग की प्रवृत्ति निरन्तर सैन्यवादी हो रही थी। यूरोपीय राष्ट्रों ने अनुभव किया कि उपनिवेशों का सैनिक मूल्य हो सकता है। ज्ञातव्य है कि हजारों युवा जीविकोपार्जन के साधन की खोज में अन्य देशों में चले गये। इसका स्पष्ट अर्थ था कि देश के नागरिकों की निष्ठाएँ अन्य देशों को स्थानान्तरित हो गयीं और देश के सैनिक पुरुषत्व की क्षति हो गयी। अस्तु, उपनिवेशों की आवश्यकता को अनुभव किया गया, जहाँ प्रवासी देश के प्रति निष्ठावान रहकर जीवनयापन कर सकते थे। इस विचार ने जर्मनी और इटली को सर्वाधिक प्रभावित किया। इन देशों के लाखों

व्यक्ति अन्य देशों को गमन कर रहे थे। इसके साथ ही विजित जनता की तुलनात्मक दृष्टि से पिछड़ी जातियों को विजेता शक्ति के प्रयोग के लिए उपलब्ध कुशल सैन्य शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता था। फ्रान्स की जनसंख्या स्थिर थी, यह अत्यधिक दुःखद था। जबकि जर्मनी की जनसंख्या में द्रुतगति से वृद्धि हुई थी। अस्तु, इस प्रेरक भावना ने फ्रान्स को बहुत प्रभावित किया।

राष्ट्रीय गौरव की भावना एवं प्रतिष्ठा की क्षुधा ने औपनिवेशिक विस्तार के लिए प्रेरित किया। एकीकृत एवं नवोदित जर्मनी और इटली राज्यों में यह भावना बहुत प्रबल थी। देशभक्तिपूर्ण गौरव के उल्लास में वे अपनी प्रतिष्ठा विश्वशक्ति के रूप में स्थापित करना चाहते थे। ब्रिटेन के विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य ने एक मानदण्ड स्थापित कर दिया था। यह विचार प्रबल हो रहा था कि उपनिवेशों का स्वामित्व एक महान् शक्ति के उचित मूल्यांकन का एक भाग है। अन्यथा वे दानवों के समक्ष बौने प्रतीत होंगे। इन दो देशों के, प्रवेश से उपनिवेशों पर स्वामित्व की प्रतिस्पर्द्धा पूर्वापेक्षा अधिक तीव्र हो गयी। हर देश में राष्ट्रवाद आक्रमणात्मक हो गया और "देश-प्रेम से विकसित देश भक्ति अधिक देशों के प्रेम में परिवर्तित हो गयी।"

साम्राज्यवाद के आर्थिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों के अतिरिक्त धार्मिक एवं मानवीय कारण भी थे। समस्त युगों में ईसाई धर्म के व्यापक प्रसार की प्रबल इच्छा ईसाई चर्च की प्रमुख विशेषता रही है। अनेक विषयों में धर्म प्रचारक आधिकारिक प्रवेश के अग्रणी बन गये। इन धर्म प्रचारकों ने स्वयं सरकारी सुरक्षा प्रदान करने के लिए निवेदन किया। अफ्रीका और दक्षिणी सागर में स्थित द्वीपों में धर्म प्रचारकों ने व्यापारियों एवं सेना के लिए मार्ग प्रशस्त किया। निःसन्देह पिछड़ी जातियों को उच्च स्तर का सभ्य बनाने और उनको स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के सिद्धान्तों की शिक्षा देने की अतीव आवश्यकता थी। दुर्भाग्य से सभ्य बनाने के प्रचार को यूरोपीय अधिकारियों एवं व्यापारियों द्वारा उपनिवेश की जनता के साथ परस्पर व्यवहार में प्रदर्शित निर्लज्ज अनैतिकता एवं क्रूर अत्याचारों ने समाप्त कर दिया। धर्म प्रचारक प्रचार कार्य ने साम्राज्य के विकास में बहुत योगदान किया।

- परम्परानुसार साम्राज्यवाद के तीन सिद्धान्त अथवा विचारधाराएँ हैं :

(1) मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार, पूँजीवाद समाज को अपने देश की सीमाओं में अपने उत्पादनों के लिए पर्याप्त बाजार मिलना तथा अपनी अतिरिक्त पूँजी के निवेश के लिए पर्याप्त अवसर मिलना असम्भव हो जाता है। पूँजीवादियों के समक्ष अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति रहती है। उनके समक्ष दो विकल्प थे, इनमें एक का चुनाव करना था। वे अधिक वेतन देकर अपनी पूँजी का परित्याग कर दें अथवा पूँजीवादी उत्पादन की समस्त प्रक्रिया का परित्याग कर दें। पूँजीवादी देशों की सरकारों द्वारा नियन्त्रित उपनिवेशों ने पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। पूँजीवादियों को अपने उत्पादनों के उपभोग के लिए तैयार बाजार तथा अतिरिक्त पूँजी निवेश के लिए सुअवसर मिल जाते हैं। लेनिन,

बाकुनिन तथा अन्य समाजवादी साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद को एक ही मानते थे। लेनिन ने विचार व्यक्त किया, "साम्राज्यवाद विकास के उस चरण में पूँजीवाद है, जिसमें स्वामित्व अथवा वित्तीय पूँजीवाद ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है, जिसमें पूँजी के निर्यात का अत्यधिक महत्व होता है, जिसमें विश्व का बड़े अन्तर्राष्ट्रीय न्यासों के मध्य विभाजन आरम्भ हो गया है, जिसमें समस्त भू-भाग का महान् पूँजीवादी शक्तियों के मध्य विभाजन पूर्ण हो चुका है।" लेनिन के अनुसार साम्राज्यवाद के अन्तर्गत उन्मुक्त बाजार अतीत की वस्तु थे जो पूँजीवाद के स्वामित्व का चरण था। यूरोपीय शक्तियों द्वारा अपने पूँजीनिवेश की सुरक्षा के लिए विश्व के परस्पर विभाजन सम्बन्धी गतिविधियों ने तनाव को बढ़ाया और परिणामस्वरूप अनिवार्य विश्वयुद्ध हुआ। संक्षेप में, पूँजीवाद किसी भी कृतित्व का दुर्जन अथवा दुष्ट रूप है जबकि साम्राज्यवाद इसकी अनिवार्य रूप से कपटपूर्ण व्याख्या है।

कम वेतन पर श्रमिकों, कच्चे माल तथा कार्य करने के लिए सुअवसरों की उपलब्धता, अनुकूल व्यापारिक शर्तों की प्रवृत्तता तथा भूमि के समुचित शोषण अथवा स्थायी बस्तियाँ स्थापित करने के लिए भूमि की अनुकूलता जैसे आकर्षणों ने पूँजीवादियों को अपने देश के अतिरिक्त विदेशों अर्थात् उपनिवेशों में पूँजीनिवेश के लिए प्रलोभन दिया था, परन्तु अनेक विद्वान लेखक प्रथम विश्वयुद्ध के लिए आर्थिक कारणों को अस्वीकार करते हैं। अस्तु, सन् 1870 के उपरान्त यूरोपीय विस्तार अथवा साम्राज्यवादी नीति के सक्रिय कार्यान्वयन के लिए आर्थिक दृष्टि से अनुकूल एवं उपयोगी आकर्षणों को भी अस्वीकार करते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व नार्मन एन्जिल ने युद्ध की अनुपयोगिता, निरर्थकता तथा अलाभ कर स्थिति का उल्लेख किया था। एक अन्य लेखक ने विचार व्यक्त किया है कि सन् 1820 से सन् 1929 के मध्य हुए समस्त युद्धों के 20% युद्धों के लिए आर्थिक तत्व ही मुख्य कारण हो सकते हैं। इसी प्रकार के अनेक तथ्य उपलब्ध हैं। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन ने सन् 1875 से विदेशों में, सन् 1875 तक की अपेक्षा, जब साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति अपने चरमोत्कर्ष पर थी, अधिक पूँजी निवेश किया। सन् 1913 में ब्रिटेन की किसी उपनिवेश की अपेक्षा संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिक पूँजी निवेशित थी। ब्रिटेन की अधिकांश पूँजी का कनाडा, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया जैसे श्वेत स्वतन्त्र स्वायत्तशासी उपनिवेशों, फ्रान्स, रूस एवं अन्य यूरोपीय देशों को निर्यात हो चुका था। सन् 1913 में जर्मनी की कुल निवेशित पूँजी का 3 प्रतिशत भाग ही एशिया तथा अफ्रीका में निवेशित था। रूस, इटली तथा जापान में स्वयं की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त पूँजी का अभाव था, अतः विदेशों में पूँजी निवेश का प्रश्न ही नहीं उठता था। लेनिन ने अपनी अभिव्यक्त अवधारणा में कुछ अप्रिय तथ्यों की सर्वथा उपेक्षा की। यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों ने अपने औपनिवेशिक क्षेत्रों की अपेक्षा अधिकांश पूँजीनिवेश दक्षिण अमेरिका तथा रूस में किया था। इसके अतिरिक्त डेनमार्क तथा स्वीडेन जैसे देशों के अपने कोई उपनिवेश नहीं थे, परन्तु इन देशों के श्रमिकों का जीवन स्तर, औपनिवेशिक देशों जैसे फ्रान्स एवं बेल्जियम, जिनके नियन्त्रण में विशाल औपनिवेशिक क्षेत्र

थे, की अपेक्षा श्रेष्ठ था। तथाकथित पूँजी का आधिक्य जिसके विषय में लेनिन ने विस्तृत चर्चा की, वित्तीय पूँजी के आविर्भाव के शताब्दियों पूर्व था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साम्राज्यवादी विस्तार तर्कसंगत, न्यायोचित अथवा लाभदायक नहीं था। स्वीडेन तथा स्विट्ज़रलैण्ड के किसी भी महाद्वीप में अपने कोई उपनिवेश नहीं थे, परन्तु दोनों ही देश राजनीतिक परिपक्वता तथा आर्थिक सम्पन्नता एवं समृद्धि के उच्च स्तर तक पहुँच गये थे। जापान एक औपनिवेशिक साम्राज्य था, परन्तु उसके औपनिवेशिक क्षेत्रों की हानि से उसकी आर्थिक स्थिति ध्वस्त नहीं हुई। उपलब्ध तथ्यों से ज्ञात होता है कि अनेक साम्राज्यवादी देशों का प्रशासनिक नीति निर्धारण तथा उपनिवेशों की सुरक्षा व्यवस्था का व्यय उपनिवेशों से प्राप्त होने वाले लाभ से अधिक था। यदि प्रथम विश्व युद्ध के रूप में देखते हैं, तब स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि उपनिवेशवाद से अपेक्षित लाभ नहीं हुआ। वियतनाम से प्राप्त होने वाले लाभ, व्यय की अपेक्षा अत्यधिक नगण्य थे।

कुछ विद्वान लेखक सोवियट रूस के सफल विस्तावारवादी अभियानों के सन्दर्भ में पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद की नीतियों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध को निरर्थक मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान यूरोप की विस्तारवादी नीति को मूलरूप.से विवेकहीन तथा अनुचित मानते हैं।

(2) दूसरा सिद्धान्त हाब्सन का है। यह उदारवादी विचारधारा से सम्बद्ध था। उदारवादी इस दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं कि वित्तीय पूँजी ने पूँजीवाद को धर्म संकट से निकालने के लिए उपाय खोज लिया था। उसके अनुसार अपनिवेश उत्पादनों के लिए बाजार तथा पूँजी निवेश के लिए उपयुक्त क्षेत्र थे। इस तथ्य की परिधि में हाब्सन मार्क्सवादियों का समर्थक है, परन्तु हाब्सन ने मत व्यक्त किया है कि इस प्रकार का साम्राज्यवादी विकास पूँजीवाद का तर्कसंगत तथा न्यायोचित विकास नहीं है। इससे बचा जा सकता है। पूँजीवादी व्यवस्था का औपनिवेशिक विकास है। साम्राज्यवादी विकास कदापि अनिवार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त पूँजीवादी समाज में अतिरिक्त पूँजी एवं उत्पादनों के उपभोग के लिए साम्राज्यवाद सर्वाधिक तर्कसंगत तथा न्यायोचित पद्धति नहीं है। क्रयशक्ति की अव्यवस्था के परिणामस्वरूप ही अतिरिक्त उत्पादन एवं पूँजी होती है। आर्थिक सुधारों के माध्यम से देश के अन्दर ही बाजार के विस्तार में ही पूँजी एवं उत्पादन के अतिरिक्त की समस्या का समाधान निहित है। आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत क्रय शक्ति में वृद्धि और अतिरिक्त बचत का उन्मूलन आवश्यक है।

उदारवादियों के इस दृष्टिकोण की कालान्तर में अधिक व्यापक व्याख्या की गयी है। बाद के उदारवादियों जैसे नार्मन एन्जिल ने मत व्यक्त किया कि उन्मुक्त व्यापार आधुनिक समाज के समस्त दोषों की रामबाण (अचूक) औषधि है। जब कभी उत्पादनों के देश की सीमाओं के बाहर अन्य देशों में उन्मुक्त रूप से आवागमन की अनुमति होती है, प्रत्येक देश उन उद्योगों का विकास करेगा जिसमें उसे अन्य देशों की अपेक्षा अधिक लाभ होगा। दूसरी ओर उद्योगों की सुरक्षा उत्पादन की अकुशल पद्धतियों को प्रोत्साहित करती है। जब विश्व

के समस्त देश उन्मुक्त व्यापार नीति से सहमत होते हैं, किसी प्रकार की शिकायत का कोई अवसर नहीं रहता है। प्रत्येक देश अपने उपलब्ध प्राकृतिक साधनों की सम्पदा के अनुरूप ही न्यायसंगत भूमिका का निर्वाह करेगा। प्रत्येक देश की प्राकृतिक साधनों की सम्पदा अन्य देशों से भिन्न होती है, अस्तु, कोई भी देश अन्य देशों के शोषण की शिकायत नहीं करेगा।

(3) साम्राज्यवाद का तीसरा सिद्धान्त 'नरकदूत सिद्धान्त' (Devil Theory) के नाम से प्रसिद्ध है। संयुक्त राज्य अमेरिका की 'नाई समिति' (Nye Committee) ने सन् 1934-36 की अवधि में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा प्रथम विश्व युद्ध में हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप वित्तीय एवं औद्योगिक हितों पर प्रभाव का अध्ययन किया था। इस समिति ने कुछ दलों का उल्लेख किया था, जो युद्ध से लाभान्वित हुए थे। इन दलों में युद्ध सामग्री के उत्पादनकर्ता, अन्तर्राष्ट्रीय बैंकर्स तथा कुछ अन्य सम्मिलित थे। समाज के इस प्रकार के व्यक्ति युद्ध से लाभान्वित हुए थे, अस्तु, उनकी निरन्तर सशस्त्र युद्धों में विशेष रुचि होनी चाहिए। इस समिति ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष व्यक्त करते हुए लिखा था कि युद्ध से लाभान्वित होने वाले व्यक्ति शैतान अथवा नरपिशाच (युद्धोत्तेजक) में परिवर्तित हो गये। ऐसे व्यक्ति स्वयं अधिकाधिक धनी एवं सम्पन्न होने के लिए निरन्तर युद्धों की योजना बनाते थे।

सन् 1870 के उपरान्त साम्राज्यवाद की विश्लेषणात्मक व्याख्या करने वाले तीन प्रमुख सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ अन्य सहयोगी सिद्धान्त भी थे। साम्राज्यवाद के नये चरण को तर्कसंगत एवं न्यायोचित सिद्ध करने तथा प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए प्रजातिवाद, आर्थिक उदारवाद, मानवतावाद, नैतिक उत्थानवाद, जिन्गोवाद (जिन्गो शब्द से ब्रिटिश उग्र राष्ट्रीयता का बोध होता है। यह शब्द सन् 1878 में संगीत कक्ष में गाये गये एक गीत से उद्धृत है। इसने रूस के विरुद्ध चेतावनी दी थी।), प्रजातिकेन्द्रवाद (ethuocentrism) सामाजिक डार्विनवाद एवं अन्य अनेक सिद्धान्तों के विषय में विचार-विमर्श होता था। गोबीन्यू (Gobineau) ने प्रजातिवाद के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए, यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया था कि अश्वेत (काले) व्यक्तियों की पशु प्रवृत्ति एवं स्वभाव होता है और उनके द्वारा किसी समय समाज की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

सामाजिक डार्विनवाद के प्रतिपादकों के अनुसार डार्विन के विकास के सिद्धान्त को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी प्रयुक्त करना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्यों के मध्य अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए निरन्तर सशस्त्र संघर्ष का सम्बन्ध है। इस संघर्ष में केवल सर्वाधिक शक्तिशाली ही जीवित रह सकता। सामाजिक डार्विनवादियों ने दावा किया कि पाश्चात्य देशों की भौतिक सम्पत्ति तथा शेष संसार की निर्धनता श्वेत व्यक्तियों की श्रेष्ठता का स्पष्ट प्रमाण था। साम्राज्यवादी सेनाओं की निरन्तर विजय बन्दूकों तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रों की अपेक्षा आनुवांशिक गुणों तथा प्रतिभा का परिणाम थी।

साम्राज्यवाद के कुछ समर्थकों ने पराधीन व्यक्तियों की तथाकथित हीनता के आधार पर इसे न्यायोचित सिद्ध करने का प्रयास किया है। औपनिवेशिक शक्तियाँ प्रायः उपनिवेशों

की जनता की हीन एवं दलित कहकर आलोचना करती थीं। अनेक उपनिवेशों की जनता के लिए अत्यधिक घृणास्पद शब्दों का प्रयोग करते थे। कैसर विल्हम (Kaiser Wilhelm) ने उपनिवेशवासियों के लिए घृणात्मक भाव से 'पीला संकट' (Yellow Peril) शब्द का प्रयोग किया था। किपलिंग ने सर्वाधिक सहृदय तथा सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में उपनिवेशीय व्यक्तियों को "अर्द्ध शैतान तथा अर्द्ध शिशु" कहा था।

जबकि अनेक घमण्डी सिद्धान्तों का उन्मुक्त रूप से प्रतिपादन किया जा रहा था, उपनिवेशवाद के कुछ अग्रदूतों ने अव्यवस्थित रूप से परोपकारिता की चर्चा की। रैफल्स जैसे व्यक्तियों ने विचार व्यक्त किया कि विदेशियों को अधीन करने का अर्थ उनको मुक्त करना था। पाश्चात्य अहं को यह अवधारणा रुचिकर प्रतीत हुई। इन परोपकारी शोषकों के साथ ईसाई धर्म प्रचारकों ने कहा कि वे उपनिवेशीय जनता को अज्ञानता से मुक्त करा रहे थे। उपनिवेशीय जनता ने एक बार पतलून पहनकर पाश्चात्य औपनिवेशिक देशों के सदाचारी श्रमिक वर्ग की तरह विनीत एवं निष्ठावान जीवन व्यतीत किया ईश्वर एवं औपनिवेशिक सत्ता दोनों ही प्रसन्न हो जायेंगे।

प्रायः साम्राज्यवादी शक्तियों ने नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ होने का भी दावा किया। वे गर्व के साथ कहते थे कि वे प्रगति का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। राष्ट्रपति मैकनले (Mekinley) ने फिलिपाइन द्वीप समूह के विलय के समय साम्राज्यवादियों के विचारों, भावनाओं तथा प्रवृत्तियों की उत्कृष्ट व्याख्या करते हुए कहा था, "हर रात व्हाइट हाउस के फर्श पर चलता था— और एक की अपेक्षा अनेक रात सर्वशक्तिमान ईश्वर से आलोक तथा मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना की और एक रात देर से यह मेरे पास आया, मैं नहीं जानता यह कैसे हुआ, लेकिन यह आया अवश्य (1) हम उन्हें स्पेन को वापिस नहीं दे सकते, यह कायरतापूर्ण तथा अपमानजनक होगा। (2) हम उनको फ्रान्स अथवा जर्मनी को नहीं दे सकते, दोनों ही पूर्व में वाणिज्यिक प्रतिद्वन्द्वी थे, यह खराब व्यापार होगा (पूर्वी देशों के साथ व्यापारिक गतिविधियाँ प्रभावित होंगी) और अविश्वसनीयता बढ़ेगी। (3) हम उनको उनके स्वयं के ऊपर भी नहीं छोड़ सकते, वे स्वशासन के अयोग्य थे और उनके लिए स्पेन के शासन की अपेक्षा अधिक अराजकता तथा कुशासन होगा। (4) उन सबको ले लेने और फिलीपाइन द्वीप समूह को शिक्षित करने, और उनका उत्थान करने और सभ्य बनाने और उनको ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प हमारे पास शेष नहीं था और ईश्वर की कृपा से सर्वोत्कृष्ट करते हम उनके लिए हमारे साथियों के रूप में जिसके लिए ईसा मर गये, कर सकते थे, और तब मैं अपने बिस्तर पर गया और सो गया और गहरी नींद सोया।"

उपर्युक्त समस्त सिद्धान्त पढ़ने में बहुत रोचक तथा आकर्षक हैं, परन्तु सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनमें कोई भी सिद्धान्त साम्राज्य निर्माण और विश्व की विभिन्न शक्तियों के साम्राज्यवादी विस्तार की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं कर सकता है। सिकन्दर महान् के समस्त विस्तारवादी युद्ध आर्थिक कारणों से प्रेरित थे अथवा युद्ध सामग्री निर्माताओं की

गतिविधियों का परिणाम थे। सन् 1866 तथा सन् 1870 के आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध एवं फ्रान्स-जर्मन युद्धों में किसी प्रकार का आर्थिक स्वार्थ निहित नहीं था, वरन् ये युद्ध उदात्त राष्ट्रीय भावना एवं इससे अधिक महत्वपूर्ण विश्व के एक अत्यधिक शक्तिशाली देश बनने की उत्कट आकांक्षा से प्रेरित थे। जर्मनी प्रशा के नेतृत्व में विश्व के राजनीतिक मंच, पर विशेष रूप से यूरोप की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका के लिए उत्सुक था। बिस्मार्क एवं उसके सहयोगी जनरल कभी भी आर्थिक कारणों से प्रेरित नहीं थे।

मुख्य रूप से राजनीतिज्ञ ही साम्राज्यवादी विस्तार के प्रवर्तक थे और नया साम्राज्यवाद राष्ट्रवादी तथ्य था। फ्रान्स विदेशों में अपनी प्रतिष्ठा एवं गौरव के लिए प्रयलशील था। ब्रिटेन की भारत के लिए मार्ग की सुरक्षा में अधिक रुचि थी। साम्राज्यवाद ने स्वयं ही इसकी गतिविधियों को गति प्रदान की, और यह प्रक्रिया साम्राज्यवाद के भविष्य के प्रति आश्वस्त होने तक निरन्तर चलती रही। साम्राज्यवादी सरकारों ने सामान्यतः स्वीकार किया था कि यह प्रक्रिया अनिवार्य ही थी। गेम्बेट्टा ने कहा था, "एक महान् राष्ट्र बने रहने अथवा बनने के लिए तुम्हें उपनिवेश अवश्य चाहिए।" जूलियस फैरी कहते हैं, "यह भावी सन्तति की धरोहर है।" साम्राज्यिक संघर्ष एक उन्माद था।

पश्चिमी यूरोप में साम्राज्यवाद एवं लोकतन्त्र के मध्य भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। राजनीतिज्ञ जनमत की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। निःसन्देह सन् 1885 से सन् 1905 तक उदारवादी दल सत्ता में नहीं रहा और साम्राज्यवाद का प्रबल समर्थक रूढ़िवादी दल सत्ता में सुरक्षित बना रहा। ब्रिटेन की जनता ने रूढ़िवादी दल की साम्राज्यवादी नीतियों तथा गतिविधियों की पूर्ण उत्साह के साथ प्रशंसा की तथा सदैव समर्थन किया। बोर युद्ध के समय मैफकिंग को अपने पद से मुक्त कर दिया गया, लन्दन की जनता क्रोधावेश में पागल हो गयी। इटली की जनता ने अफ्रीका में सरकार की साम्राज्यवादी नीति तथा गतिविधियों का पूर्ण समर्थन किया था। इसी के परिणामस्वरूप इटली के राष्ट्रीय जीवन में सुख, समृद्धि एवं सम्पन्नता का आविर्भाव हुआ था।

औपनिवेशिक विस्तार का मुख्य काल, जिसको आर्थिक सिद्धान्तों के प्रबल समर्थक साम्राज्यवाद के साथ सम्बद्ध करते हैं, यथार्थ में वित्तीय पूँजीवाद के युग से पूर्व का समय था। अस्तु, पतनोन्मुख पूँजीवादी व्यवस्था के आन्तरिक विरोधों के परिणामस्वरूप साम्राज्यवाद के उद्भव को स्वीकार करना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता है। ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट होता है कि सोलहवीं, सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों की औपनिवेशिक उपलब्धियों की तुलना में उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों की औपनिवेशिक उपलब्धियाँ बहुत कम थीं। ऐतिहासिक तथ्यों से यह भी संकेत मिलते हैं कि पूँजीवाद के अन्तिम चरण में साम्राज्य समाप्त हो गये। ब्रिटेन, फ्रान्स एवं नीदरलैण्ड अपने एशिया एवं अफ्रीका के औपनिवेशिक क्षेत्रों से वापिस आ गये थे और उपनिवेशों को स्वतन्त्र कर दिया था। यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा अपने नये उपनिवेशों में पूँजीनिवेश का तथ्य भी उपलब्ध तथ्यों के आधार पर उचित

प्रतीत नहीं होता। सन् 1870 के उपरान्त यूरोपीय पूँजी निवेश का अधिकांश भाग उपनिवेशों की अपेक्षा यूरोप के नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों में निवेशित था। ब्रिटिश पूँजी का अधिकांश भाग उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका में निवेशित था। ब्रिटेन तथा फ्रान्स का औपनिवेशिक देशों के साथ व्यापार कुल विदेश व्यापार का एक बहुत छोटा भाग था और इटली, जापान एवं जर्मनी के साथ इन देशों का विदेश व्यापार बहुत कम था। जर्मनी की औपनिवेशिक विजय देश के अन्दर उत्पादक संघों के आविर्भाव से पूर्व की थी। इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स में साम्राज्यवादी विस्तार की अवधि में एकाधिकारों का अभाव था। प्रायः राजनीतिक हितों ने ही अन्य कारणों की अपेक्षा विदेशों में पूँजी निवेश को प्रोत्साहित किया था।

आधुनिक इतिहासकार यूरोपीय विस्तार का मुख्य स्रोत औद्योगिक अर्थव्यवस्था की अपेक्षा विश्व की सामरिक नीतियों, आदर्शों एवं सिद्धान्तों के राजनीतिक क्षेत्र को ही मानते हैं। जर्मनी तथा इटली के एकीकरण के परिणामस्वरूप दोनों देशों में उग्र राष्ट्रवाद का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ। सन् 1870 में प्रशा के साथ युद्ध एवं उसमें पराजय के उपरान्त फ्रान्स ने अपनी क्षतिग्रस्त प्रतिष्ठा, गौरव तथा गरिमा को पुनः प्राप्त करने, अपने सैनिकों को युद्धकला में कुशल तथा अनुभवी बनाने तथा सम्भावित प्रतिशोध के लिए मानव शक्ति का विकास करने के मुख्य उद्देश्यों से ही औपनिवेशिक अभियान आरम्भ किया था।

अन्तर्राष्ट्रीय तनावों के अतिरिक्त प्रौद्योगिकी तथा खोज कार्यों ने साम्राज्यवाद के विकास में बहुत सहायता की थी। स्टेनले, लिविंग्स्टोन तथा सिसिल रोड्स अत्यधिक लोकप्रिय थे। यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों के पास औपनिवेशिक जनता की अपेक्षा अधिक परिष्कृत एवं श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्र थे। अतः औपनिवेशिक जनता साम्राज्यवादी विस्तार को रोकने में असमर्थ थी।

साम्राज्यवाद के नरकदूत सिद्धान्त (Devil Theory) तथा आर्थिक सिद्धान्त का मूल अभिप्राय यह था कि देश के पूँजीवादियों ने अपने देश की सरकारों को साम्राज्यवादी नीतियों के सक्रिय कार्यान्वयन के लिए आग्रह किया, परन्तु इस मत के समर्थन में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। सामान्यतः सरकारों ने स्वयं साम्राज्यवादी नीतियाँ निर्धारित कीं और बाद में इन नीतियों का सक्रिय समर्थन प्राप्त करने के लिए पूँजीवादियों का आह्वान किया। एक विद्वान इतिहासकार लिखते हैं, "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर पूँजीपतियों के प्रभुत्व की बात समाचार-पत्रों में परियों की कहानी है, जो उपलब्ध तथ्यों से पूर्णतया भिन्न है। साम्राज्यवादी योजनाओं को प्रेरित करना तो दूर पूँजीवादी वर्ग में साम्राज्यवादी नीतियों के प्रति कोई उत्साह नहीं था। वे पूर्णतया उदासीन एवं निष्क्रिय थे। व्यापारी तथा उत्पादक वर्गों ने सदैव अपने देश की ऐसी विदेश नीति का सक्रिय विरोध किया, जिससे भविष्य में युद्ध की सम्भावना होती थी। पूँजीवाद के हितों की सुरक्षा के लिए युद्ध की अपेक्षा शान्ति की आवश्यकता होती है। युद्ध में सदैव पाशविकता, बर्बरता, निर्दयता तथा विनाश के तत्व निहित रहते हैं, जो पूँजीवाद की मूलभूत प्रवृत्ति के प्रतिकूल हैं। नैपोलियन प्रथम अपनी व्यक्तिगत साम्राज्यवादी

महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए उत्सुक था, अन्यथा कोई भी उद्योगपति कभी भी आर्थिक आवश्यकता अथवा व्यक्तिगत लोभ के कारण साम्राज्यवादी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अपनी सरकार से आग्रह नहीं करता है। साम्राज्यवादी विस्तार के माध्यम से व्यक्तिगत लाभ एवं आर्थिक समस्याओं के समाधान की भावना प्रारम्भ में बहुत सुखद प्रतीत होती थी, परन्तु कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप भीषण विनाश से मोहभंग हो जाता है। साम्राज्यवादी कभी भी व्यक्तिगत लाभ अथवा आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए साम्राज्यवाद के विस्तार का समर्थन नहीं करते थे।

इस प्रकार साम्राज्यवाद के आर्थिक सिद्धान्त प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्णतया भिन्न है। ऐसी स्थिति में आर्थिक सिद्धान्त जनता को प्रभावित नहीं कर सकते थे, परन्तु आर्थिक सिद्धान्त के समर्थकों ने विचार व्यक्त किया है कि पाश्चात्य जगत में जनमत आर्थिक सिद्धान्त के अनुकूल था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही राजनीतिक समस्याओं को आर्थिक समस्याओं में परिवर्तित करने की सामान्य प्रवृत्ति हो गयी थी। पूँजीवादी तथा उनके आलोचक दोनों ही इस मूलभूत त्रुटि के लिए समान रूप से दोषी थे। पूँजीवादियों ने स्वयं को पूर्व-पूँजीवादी युग की सामान्य प्रवृत्तियों, विचारों तथा सिद्धान्तों से मुक्त करने के उपरान्त विश्वास कर लिया था कि सामान्य समृद्धि, सम्पन्नता तथा शान्ति का युग आरम्भ होगा। पूँजीवादियों के आलोचकों का भी दृढ़ विश्वास था कि आर्थिक सुधारों अथवा पूँजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन द्वारा ही सामान्य सुख, शान्ति, समृद्धि एवं सम्पन्नता सम्भव हो सकती थी। अस्तु, पूँजीवादी तथा उनके आलोचक दोनों ही राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए आर्थिक समस्याओं का निराकरण आवश्यक समझते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इंगलैण्ड के विख्यात उदारवादी राजनीतिक विचारक एवं दार्शनिक बैन्थम ने साम्राज्यवादी संघर्षों तथा उनके परिणामस्वरूप सशस्त्र विनाशकारी युद्धों से मुक्ति के लिए उपनिवेशों के समर्पण को ही एकमात्र सहज और सुलभ साधन कहा था। प्रोधन (Proudhan), कोब्देन और उनके निष्ठावान अनुयायियों ने विचार व्यक्त किया कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों का मूल स्रोत विभिन्न देशों के भिन्न-भिन्न सीमा-शुल्क की दरें थीं और उन्मुक्त व्यापार के व्यापक विस्तार में ही स्थायी शान्ति तथा समृद्धि एवं सम्पन्नता निहित थी। आर्थिक मत की लोकप्रियता का अन्य कारण इसकी विश्वसनीयता में ही निहित है। साम्राज्यवाद जैसी इतनी अधिक भयाक्रान्त करने वाली तथा विनाशकारी ऐतिहासिक शक्ति के रहस्य से चकित विश्लेषकों ने पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्निहित प्रभाव तथा दबाव को ही शान्ति का मुख्य विनाशकारी शत्रु स्वीकार किया, अर्थात् साम्राज्यवाद के तथ्य की जटिलता की व्याख्या करने में असमर्थ व्यक्तियों ने इस दृष्टिकोण को सहर्ष स्वीकार कर लिया कि पूँजीवाद के आन्तरिक विकास के कारण ही आर्थिक साम्राज्यवाद का विस्तार हुआ था।

औपनिवेशिक एवं साम्राज्यिक विस्तार का स्वरूप, प्रवृत्ति एवं स्वभाव, व्यापारिक गतिविधियों, ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के अभियान और साहसिक क्रिया-कलापों, शोषण,

राष्ट्रीय गौरव और विजय अभियानों का विचित्र सम्मिश्रण है। हैप्सबर्ग तथा ओटोमन साम्राज्यों ने नौ-सैनिक शक्तियों से भिन्न केवल निकटवर्ती भूमिगत राज्यों तक ही अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। संयुक्त राज्य अमेरिका ने नये गोलार्द्ध में अपने क्षेत्राधिकार का विस्तार किया था। इसी प्रकार रूस ने उन्नीसवीं शताब्दी में दक्षिणी तथा मध्य एशिया में अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। इसी प्रकार की औपनिवेशिक विस्तार की गतिविधियाँ उन्नीसवीं शताब्दी में भी चलती रहीं और सन् 1870 से सन् 1914 के मध्य साम्राज्यवादी गतिविधियों को नये साम्राज्यवाद की संज्ञा प्रदान की गयी है।

सन् 1870 से पूर्व अधिकांश यूरोपीय शक्तियाँ उपनिवेशों के विरुद्ध थीं। सन् 1820 तक कुछ यूरोपीय शक्तियों के उपनिवेशों की क्षति हो चुकी थी, परन्तु इसके कारण उनको किसी गम्भीर आर्थिक समस्या एवं संकट का सामना नहीं करना पड़ा। फ्रान्स के अमेरिका स्थित उपनिवेश उसके नियन्त्रण से निकल गये थे। स्पेन का दक्षिण अमेरिका स्थित क्षेत्रों पर एकाधिकार समाप्त हो गया था और अमेरिका की क्रान्ति के उपरान्त अमेरिका के 13 उपनिवेशों पर ब्रिटेन का प्रभुत्व समाप्त हो गया था। उस समय अनेक विचारकों एवं दार्शनिकों ने उपनिवेशवाद की समाप्ति का स्वागत किया था। बैन्थम ने फ्रान्स से अपने उपनिवेशों को स्वतन्त्र करने का आग्रह किया था। कोब्देन ने उन्मुक्त व्यापार का व्यापक प्रचार किया। सन् 1861 में फ्रान्स ने अपने समस्त उपनिवेशों के द्वार विश्व के राष्ट्रों के लिए खोल दिये थे। ग्लैडस्टोन ने विश्वास व्यक्त किया कि समस्त साम्राज्य का स्वतः ही विघटन हो जायेगा। रूढ़िवादी डिजरैली ने उपनिवेशों की तुलना ब्रिटिश गर्दन के चारों ओर चक्की के पाटों से की थी। सन् 1868 में बिस्मार्क ने कहा था कि औपनिवेशिक नियन्त्रण से प्राप्त होने वाले लाभ भ्रान्तिमूलक एवं काल्पनिक थे।

औपनिवेशिक विस्तार के विरुद्ध विभिन्न विचारों एवं दृष्टिकोणों के उपरान्त भी सन 1879 के बाद विभिन्न औपनिवेशिक शक्तियों में उपनिवेशों के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया। फ्रान्स यद्यपि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में सबसे कम था, परन्तु सन् 1850 से सन 1870 के मध्य उसने अपने औपनिवेशिक क्षेत्र दुगुने कर लिये थे। अल्जीरिया, सेनेगल तथा इण्डो-चीन फ्रान्स शासित उपनिवेश थे। सन् 1870 के उपरान्त फैरी एवं गेम्बेट्टा जैसे गणतान्त्रिक नेताओं ने ट्यूनीशिया तथा टोनकिन को फ्रान्स शासित उपनिवेश बताया। इस अवधि में फ्रान्स के जनमत ने औपनिवेशिक विस्तार का तीव्र विरोध किया। आर्थिक सिद्धान्त के ठीक विपरीत जर्मनी ने यद्यपि औपनिवेशिक विस्तार नहीं किया, परन्तु पूर्वी यूरोप, बाल्कन क्षेत्र तथा ओटोमन साम्राज्य क्षेत्र में अनेक आर्थिक लाभ प्राप्त किए।

सन् 1870 के बाद औपनिवेशिक विस्तार के गैर-आर्थिक स्वरूप के अतिरिक्त, साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपनी साम्राज्यवादी गतिविधियों को अफ्रीका एवं एशिया महाद्वीपों में केन्द्रित किया। यूरोपीय शक्तियों के इन दो महाद्वीपों की ओर विस्तार के साथ, यूरोपीय देशों में परस्पर बढ़ते हुए तनावों का टकराव हो गया। यूरोपीय शक्तियों के औपनिवेशिक

विस्तार में अतीत के उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के निर्दयता के अवगुण विद्यमान हैं। नये उपनिवेशवाद की नग्न शक्ति की राजनीति, वित्तीय पूँजीवाद की अन्तर्निहित आवश्यकताओं की अपेक्षा यूरोप के अन्तर्राज्यीय द्वेषों, मतभेदों एवं प्रतिद्वन्द्विताओं का परिणाम थी। इसके अतिरिक्त यूरोप की बढ़ती हुई जनसंख्या को संयुक्त राज्य अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में निकासी का मार्ग मिल गया। निःसन्देह यूरोपवासियों के लिए अफ्रीका तथा एशिया में अपनी स्थायी बस्तियाँ स्थापित करने के लिए जलवायु एवं वातावरण की दृष्टि से कोई प्रलोभन नहीं था।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. इतिहासकार साम्राज्यवाद का प्रारम्भ .... से मानते हैं—
   (क) 1870 (ख) 1875 (ग) 1880 (घ) 1885
2. अमेरिका स्थित इंग्लैण्ड के 13 उपनिवेश सन् .... में इंग्लैण्ड के हाथों से निकल गये—
   (क) 1765 (ख) 1780 (ग) 1783 (घ) 1785
3. ब्राजील पुर्तगाल के हाथों से निकलकर सन् .... में स्वतन्त्र हो गया—
   (क) 1815 (ख) 1817 (ग) 1822 (घ) 1825
4. यूरोपीय राज्यों ने अपने साम्राज्य का विस्तार .... के मध्य आरम्भ किया—
   (क) 1860 से 1890 (ख) 1870 से 1900
   (ग) 1880 से 1910 (घ) 1890 से 1920
5. सन् 1875 में अफ्रीका महीद्वीप का केवल .... भाग का विलय किया गया—
   (क) 1/10 भाग (ख) 3/10 भाग (ग) 7/10 भाग (घ) 9/10 भाग
6. साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत सन् 1900 में .... वर्गमील क्षेत्र था—
   (क) 2 करोड़ (ख) 1 करोड़ (ग) 3 करोड़ (घ) 5 करोड़
7. साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत .... व्यक्ति थे—
   (क) 10 करोड़ (ख) 20 करोड़ (ग) 15 करोड़ (घ) 25 करोड़
8. सन् 1900 में अफ्रीका महाद्वीप के .... भाग का विलय हो चुका था—
   (क) 3/10 भाग (ख) 7/10 भाग (ग) 9/10 भाग (घ) 1/10 भाग
9. सन् 1900 में ब्रिटेन की जनसंख्या बढ़कर .... हो गई—
   (क) 4,10,00,000 (ख) 6,10,00,000
   (ग) 3,25,00,000 (घ) 5,20,00,000
10. सन् 1800 में फ्रान्स की जनसंख्या .... थी—
   (क) 3,25,00,000 (ख) 2,10,00,000
   (ग) 2,50,00,000 (घ) 4,10,00,000

[उत्तर—1. (ग), 2. (ग), 3. (ग), 4. (ख), 5. (क), 6. (ख), 7. (ग), 8. (ग), 9. (क), 10. (ख)।]

27

एशिया में साम्राज्यवाद

[IMPERIALISM IN ASIA]

सोलहवीं शताब्दी के उपरान्त यूरोप के निरन्तर परिवर्तनशील दृष्टिकोणों, प्रवृत्तियों, विचारों एवं भावनाओं में ही पाश्चात्य शक्तियों द्वारा शेष विश्व में उपनिवेश स्थापित करने तथा साम्राज्यवाद के कारण निहित थे। अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के अनुरूप एशिया में भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का सूत्रपात नहीं हुआ था। सोलहवीं शताब्दी के उपरान्त एशिया महाद्वीप ने भी संयुक्त राज्य अमेरिका के अतिरिक्त अन्य पाश्चात्य देशों के प्रभाव को किसी न किसी रूप में अवश्य अनुभव किया था। एशिया और अफ्रीका विश्व के दो क्षेत्र यूरोपीय शक्तियों के शोषण के सर्वाधिक शिकार हुए। एशिया में यूरोपीय शक्तियों का हर दिशा में अत्यधिक प्रभाव था। उत्तर में रूस ने यूराल (Urals) से प्रशान्त महासागर तक विशाल साम्राज्य बना लिया था, जबकि ब्रिटेन ने दक्षिण में बर्मा और भारत तक, साम्राज्य का विस्तार किया और फ्रान्स ने इण्डो-चीन पर नियन्त्रण कर लिया था। यूरोपीय विस्तार की इस लहर को जापान ने रोका। जापान की रूस पर विजय के कारण एशिया का प्रमुख राज्य बन गया और एशिया में राष्ट्रवादी भावनाओं को उद्वेलित किया। फारस और मध्य एशिया यूरोपीय प्रभाव क्षेत्र थे और एशिया स्थित ओटोमन साम्राज्य यूरोपीय शक्तियों के लिए खुला हुआ था।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में व्यापारिक दृष्टिकोण तथा ईसाई धर्म प्रचार की उदात्त भावनाओं से प्रेरित पुर्तगालवासी भारत के पश्चिमी तट गोआ में आये और वहीं कुछ काल बाद अपनी स्थायी बस्तियाँ स्थापित कर लीं। तदुपरान्त हालैण्ड, फ्रान्स तथा ब्रिटेन के व्यापारिक वर्गों ने अपने व्यापारिक संस्थान स्थापित किये। डच व्यक्तियों को ही जापान एवं शेष पश्चिमी जगत के साथ जोड़ने वाली कड़ी के रूप में काम करने की अनुमति थी। उन्होंने सन् 1623 में इण्डोनेशिया स्थित अम्बोयाना में अपने व्यापारियों के हृदय द्रावक नरसंहार के बाद ब्रिटिश व्यापारियों को इण्डोनेशिया से निकाल दिया था। उस समय तक फ्रान्सवासी भी व्यापारी के रूप में भारत में प्रवेश कर चुके थे और शीघ्र ही भारतभूमि पर स्थायी रूप से

अपना आधिपत्य स्थापित करने के प्रयास आरम्भ कर दिये। इन प्रयासों में फ्रान्स असफल हुआ और इंग्लैण्ड विजयी रहा। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक स्पेन ने सर्वोच्च ईसाई धर्मतन्त्र की सहृदय स्वीकृति से फिलिपाइन द्वीप समूह पर नियन्त्रण कर लिया था। शनैः-शनैः अंग्रेजों ने भारत में तथा डचों ने इण्डोनेशिया में अपने राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभुत्व को सुदृढ़ किया और इसका व्यापक विस्तार किया।

एशिया में रूस का विस्तार (Russian Expansion in Asia)—रूस दीर्घकाल से समुद्र के साथ सम्पर्क की खोज कर रहा था। क्रीमिया युद्ध में पराजय के उपरान्त यूरोप में समुद्र प्राप्त करने में असफलता के कारण बर्फ मुक्त चिर प्रतीक्षित निकास प्राप्त करने के उद्देश्य से एशिया की ओर ध्यान दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से दक्षिण में फारस और अफगानिस्तान और पूर्व में चीन की ओर प्रयास आरम्भ किये। दक्षिण की ओर कैस्पियन पारीय क्षेत्र पर विजय प्राप्त करके भारत की सीमाओं के निकट पहुँच गया। मध्य एशिया में सन् 1864 में ताशकन्द, सन् 1866 में समरकन्द और सन् 1873 में खीव पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया था। बर्लिन की सन्धि तक अफगानिस्तान की सीमा पर पहुँच गया। इस विस्तार से ब्रिटेन और अफगान्रिस्तान दोनों ही चिन्तित थे। परिणामस्वरूप ब्रिटेन-अफगानिस्तान युद्ध सन् 1871-79, तक होते रहे। ब्रिटिश शासन ने ब्रिटिश सरकार के साथ मित्रवत अमीर को अफगानिस्तान का शासक बनाया। इस क्षेत्र में अवरुद्ध होने के बाद सन् 1881 में रूस ने तुर्किस्तान की विजय पूर्ण की। सन् 1884 में मेर्व पर आधिपत्य किया और अफगानिस्तान के सीमावर्ती जिले पुंजदेह पर नियन्त्रण किया। सन् 1907 में इंग्लैण्ड-रूस मैत्री सन्धि के बाद दोनों देशों के मध्य एशिया में विस्तार से सम्बन्धित शत्रुता समाप्त हो गयी।

लेकिन पूर्व में रूस ने सहज ही प्रशान्त महासागर तक विस्तार किया। 19वीं शताब्दी के 50 के दशक में चीन गम्भीर संकटों में था। ताईपिंग (T'ai Ping) विद्रोह के नाम से विदित गृह युद्ध से चीन त्रस्त था और दूसरी ओर फ्रान्स और ब्रिटेन के साथ शत्रुता में व्यस्त था। चीन की विपत्तियों का लाभ उठाते हुए सन् 1858 से रूस ने चीन को एगुन (Aigun) की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। इस सन्धि के द्वारा रूस को अमूर नदी के किनारे पर्याप्त क्षेत्र प्राप्त हुआ। दो वर्ष उपरान्त रूस ने दक्षिण की ओर प्रशान्त महासागर का बहुत बड़ा भाग प्राप्त किया और सुदूर दक्षिणी तट पर नौ-सैनिक बेड़े के आधार शिविर के रूप में प्रयोग के लिए व्लादीवोस्तक (Vladivostak) अर्थात् "पूर्व का शासक" बन्दरगाह का निर्माण करवाया। इन प्राप्तियों से रूस की सीमा कोरिया को स्पर्श करते हुए मंचूरिया के आधे भाग को घेरते हुए हो गयी। वर्ष के कुछ माह में व्लादीवोस्तक बर्फ से ढँका रहता है अतः रूस को बर्फ मुक्त और अधिक दक्षिण में बन्दरगाह की आवश्यकता थी। इसका अर्थ मंचूरिया में भीतर तक प्रवेश था और रूस द्वारा इस दिशा में प्रयास के परिणामस्वरूप जापान के साथ संघर्ष हुआ। इस प्रकार मन्चूरिया सुदूर पूर्व के बढ़ते हुए विवादों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयवों में से एक अवयव बन गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से, विशेष रूप से सन् 1870 के बाद नवीन साम्राज्यवाद काल में द्रुत गति से अनेक परिवर्तन हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही ब्रिटेन व्यापारिक गतिविधियों के सन्दर्भ में चीन के समुद्र तट तक पहुँच गया। परिणामस्वरूप अनेक सशस्त्र संघर्ष हुए और यूरोपीय शक्तियों ने चीन में अधिकाधिक सुविधाओं एवं राजनीतिक विशेषाधिकारों की माँग की। संयुक्त राज्य अमेरिका भी पीछे नहीं रहा। उसने अपनी 'मुक्तद्वार नीति' (Open Door Policy) के अन्तर्गत चीन में प्रवेश किया। यथार्थ में, संयुक्त राज्य अमेरिका ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम लगभग तीन दशकों की अवधि में जापान को विदेशी व्यापारियों के जापान में प्रवेश के लिए अपने द्वार खोलने के लिए विवश किया। उल्लेखनीय है कि चीन साम्राज्य यूरोपीय शोषण के लिए सर्वाधिक आकर्षक क्षेत्र रहा। यह बहुत विशाल था, लेकिन सुगठित नहीं था और सरकार भी अकुशल थी। साथ ही प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से चीन बहुत समृद्ध एवं सम्पन्न था। इन समस्त तथ्यों ने संयुक्त रूप से साम्राज्यवाद के विकराल खेल में चीन को एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण राज्य बना दिया और सुदूर पूर्व सर्वाधिक प्रतिस्पर्द्धा का क्षेत्र बन गया।

जापान ने संयुक्त राज्य अमेरिका की अन्तर्निहित भावनाओं एवं आकांक्षाओं से भिन्न प्रत्युत्तर दिया। जापान ने भली-भाँति अनुभव कर लिया था कि आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों के अभाव में शक्ति एवं सत्ता सम्भव नहीं थी। इसका मुख्य आधार आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्र ही थे। अस्तु जापान ने द्रुतगति से स्वयं को औद्योगीकृत किया और सन् 1894-95 में चीन-जापान युद्ध के समय कोरिया पर विनाशकारी आक्रमण करके तथा सन् 1904-5 में रूस-जापान युद्ध के समय अपनी उत्कृष्ट सैन्य शक्ति का परिचय देकर पाश्चात्य साम्राज्यवादी शक्तियों को दिखा दिया कि जापान किसी भी दृष्टि से पाश्चात्य शक्तियों से हेय नहीं था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में पाश्चात्य देशों ने जापान का अपने आश्रित के रूप में उत्साहपूर्वक स्वागत किया था। पाश्चात्य शक्तियों के सहृदय संरक्षण और सक्रिय सहायता के परिणामस्वरूप जापान ने अल्पावधि में अभूतपूर्व प्रगति की और अन्ततोगत्वा अनेक अवसरों पर अपने साम्राज्य की विस्तारवादी गतिविधियों को अवरुद्ध करने के आरोप में अपने शुभचिन्तकों की केवल उपेक्षा ही नहीं की वरन् उनकी भावनाओं एवं आकांक्षाओं का स्पष्ट उल्लंघन भी किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अपने शुभचिन्तकों के विरुद्ध यूरोप के धुरी राष्ट्रों के दल में सम्मिलित होकर युद्ध में सक्रिय भाग लिया एवं पर्ल हार्बर में स्थित संयुक्त राज्य अमेरिका के नौ-सैनिक बेड़े पर आक्रमण करके अपनी साम्राज्यवादी योजनाओं तथा आकांक्षाओं को अभिव्यक्त कर दिया।

उस समय तक जापान चीन के विशाल भू-भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर चुका था और जब ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, जापान ने पाश्चात्य औपनिवेशिक देशों के उपनिवेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का अभूतपूर्व प्रयास किया और इस दिशा में जापान को उल्लेखनीय सफलता भी

मिली, परन्तु 6 अगस्त एवं 9 अगस्त, 1945 को संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा जापान के दो महत्वपूर्ण नगरों हिरोशिमा तथा नागासाकी पर विध्वंसक अणुबम वर्षा से स्थिति में नाटकीय परिवर्तन हुआ।

शेष एशिया का इतिहास पूर्णतया भिन्न था। सन् 1857 में सैनिक विद्रोह द्वारा भारत में भी अंग्रेजों को भारतभूमि से निष्कासित करने का एक असफल प्रयास किया गया था। प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत हुआ कि ब्रिटिश शासन ध्वस्त हो जायेगा, परन्तु ब्रिटिश सेना ने कुशल एवं चतुर कूटनीति, सामरिक नीति एवं श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्रों की सहायता से स्थिति में सुधार कर लिया। सन् 1857 में सैनिक विद्रोह के दमन के बाद ब्रिटिश सरकार ने कूटनीतिज्ञता एवं बुद्धि चातुर्य से भारत पर शासन किया। ब्रिटिश सरकार ने 'विभाजन करो और शासन करो' (Divide and Rule) की नीति को कुशलतापूर्वक कार्यान्वित किया। इस नीति के अन्तर्गत ब्रिटिश शासकों ने समुदायों, जातियों, धनी एवं निर्धनों राजाओं द्वारा शासित राज्यों तथा ब्रिटिश शासित राज्यों में परस्पर विभिन्न मतभेद उत्पन्न करके संघर्षरत कर दिया। इसी अवधि में भारत के शिक्षित मध्यवर्ग ने पश्चिम के आधुनिक विचारों को आत्मसात् कर लिया और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम का शुभारम्भ किया जिसका चरमोत्कर्ष 15 अगस्त, 1947 को भारत की स्वतन्त्रता में हुआ।

भारत में ब्रिटिश शासन के सुदृढ़ीकरण काल में ही ब्रिटिश सरकार ने भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर अन्य क्षेत्रों में भी अपने साम्राज्य का विस्तार किया। सन् 1826 में पान्दव की सन्धि द्वारा ब्रिटिश सरकार ने समस्त बर्मा क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इस प्रकार भारत का समस्त उत्तर-पूर्वी क्षेत्र भी ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। मध्य पूर्व में फारस और समीपवर्ती पूर्व में एशिया स्थित तुर्की के भाग में यूरोपीय साम्राज्यवाद का दबाव बढ़ रहा था। एशिया में रूस ब्रिटेन का सर्वाधिक विरोधी था। फारस में रूस के विस्तार ने ब्रिटेन के हितों को चुनौती दी। ब्रिटेन की फारस की खाड़ी पर शत्रु के पूर्ण नियन्त्रण को रोकने में गहन रुचि थी क्योंकि वह भारत पर ब्रिटिश नियन्त्रण के लिए गम्भीर खतरा था। परिणामस्वरूप वह दक्षिणी फारस (आधुनिक ईरान) में सक्रिय हो गया और अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सन् 1905 में रूस, जापान युद्ध में जापान द्वारा रूस की पराजय से एशिया में रूस की विस्तारवादी नीति के कार्यान्वयन की सम्भावना कुछ काल के लिए समाप्त हो गयी। ब्रिटिश सरकार को भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा की ओर से रूस के आक्रमण की सदैव आशंका रहती थी। युद्ध में रूस की पराजय का ब्रिटिश सरकार ने स्वागत किया। रूस के आक्रमण की आशंका से ही ब्रिटिश सरकार को उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान के साथ अनेक निरर्थक युद्ध करने पड़े और इन युद्धों का समस्त व्यय भारत को वहन करना पड़ा। इन युद्धों के परिणामस्वरूप अन्ततोगत्वा सन् 1907 में ब्रिटिश-रूस सम्मेलन (Anglo-Russian Convention) हुआ। आधुनिक ईरान दो प्रभाव क्षेत्रों में विभाजित हो गया। दक्षिणी ईरान पर ब्रिटिश सरकार का प्रभुत्व था तथा उत्तरी ईरान रूस के

अधिकार क्षेत्र में था। दोनों क्षेत्रों के मध्य एक तटस्थ क्षेत्र था। यह आर्थिक विभाजन फारस से बिना परामर्श किये हुये किया गया था और अभागे देश ने स्वयं को लोभी साम्राज्यवाद के दो पाटों के मध्य अनुभव किया। सन् 1906 में राष्ट्रवादी विद्रोह हुआ और शाह को विवश होकर मजलिस (Mejlis) अथवा संसद की स्वीकृति देनी पड़ी। दो वर्ष बाद पुनः क्रान्ति हुई जिसने शाह को सिंहासन से हटा दिया और इसके युवा पुत्र को सिंहासनारूढ़ किया। सुधार का कार्य पूर्ण उत्साह के साथ आरम्भ किया, लेकिन रूस और ब्रिटेन के स्वार्थों ने किसी प्रकार की सफलता प्राप्त करना असम्भव कर दिया था।

भारत के अनुरूप ही हिन्देशियावासियों ने भी डच औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष किया। प्रारम्भिक चरणों में परम्परावादियों एवं रूढ़ियों का संघर्ष असफल रहा। कालान्तर में सुकार्नो ने हिन्देशिया के स्वतन्त्रता संग्राम का मार्गदर्शन किया एवं नई दिशा दी। अन्ततोगत्वा डच सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ के दबाव से हिन्देशिया को स्वतन्त्रता दे दी। भारत की स्वतन्त्रता के बाद ब्रिटिश सरकार ने बर्मा एवं श्रीलंका को भी औपनिवेशिक शासन से मुक्त कर दिया।

केवल एक क्षेत्र में औपनिवेशिक शासन से मुक्ति संग्राम दीर्घ काल तक चलता रहा। एशिया में फ्रान्सीसी साम्राज्यवाद ने नैपोलियन तृतीय के शासन काल में ही सक्रिय हुआ और सन् 1868 तक सिंगापुर तथा मलेशिया के अतिरिक्त समस्त दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र, विशेष रूप से वियतनाम, लाओस एवं कम्बोडिया पर फ्रान्स सरकार का पूर्ण नियन्त्रण हो गया था। यह क्षेत्र फ्रान्स का औपनिवेशिक क्षेत्र था और इस क्षेत्र में भी राष्ट्रवादी चेतना का अभ्युदय एवं विकास हो चुका था। सन् 1885 में चीन के साथ अल्पकालीन युद्ध के उपरान्त फ्रान्स ने अन्नाम एवं टोन्किन संरक्षित राज्य स्थापित किये। सन् 1898 में क्वांग चो वैन (Kwangcho Wan) प्राप्त कर लिया। इस प्रकार फ्रान्स ने स्वयं फ्रान्स की अपेक्षा बहुत बड़े क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। वियतनाम के प्रारम्भ के राष्ट्रवादियों ने अपने मुक्ति संग्राम के लिए चीन की राष्ट्रवादी सरकार से यथोचित सहायता प्राप्त की और कालान्तर में वियतनाम के स्वतन्त्रता संग्राम का वियतनाम के साम्यवादी दल ने नेतृत्व किया और चीन के साम्यवादी दल के सिद्धान्तों, विचारों, नीतियों तथा कार्यक्रमों से प्रेरणा ग्रहण की। अन्ततोगत्वा सन् 1955 में फ्रान्स ने अपने इस क्षेत्र में स्थित उपनिवेशों को मुक्त कर दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी अपने उपनिवेश फिलीपाइन को स्वतन्त्र कर दिया।

इस प्रकार एशिया महाद्वीप के लगभग समस्त देशों ने उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का अनुभव किया। औपनिवेशिक शक्तियों को एशिया महाद्वीप के उपनिवेशों से अनेक लाभ हुए। ये लाभ उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के प्रारम्भिक चरण के अनुरूप थे, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में पाश्चात्य देशों की स्वयं की औपनिवेशिक एवं साम्राज्यिक स्थिति अधिकाधिक कष्टदायक प्रतीत होने लगी। एशिया महाद्वीप के अधिकांश क्षेत्रों का निर्दयतापूर्वक आर्थिक शोषण केवल अर्द्ध सत्य है।

एशिया महाद्वीप के देशों की मौलिक भावनाओं, चेतना एवं प्रवृत्तियों को औपनिवेशिक एवं साम्राज्यिक विस्तार से गहरा आघात पहुँचा। उनकी स्वयं की गौरवशाली सांस्कृतिक परम्पराएँ तथा मान्यताएँ आधुनिकीकरण के तीव्र वेग में समाहित हो गयीं। निःसन्देह, चीन और जापान इस दृष्टि से अपवाद हैं। जापान अपने सम्पन्न अन्तर्निहित सांस्कृतिक मूल्यों एवं मानदण्डों को बनाये रखते हुए पाश्चात्य देशों के आधारभूत तत्वों के अनुरूप निरन्तर प्रगति करता रहा। चीन ने भिन्न मार्ग का अनुसरण किया। चीन ने रूस के आदर्श साम्यवाद के साथ अपनी अतीत की गौरवशाली परम्पराओं का किसी सीमा तक समन्वय किया, इस तथ्य का न्यायोचित मूल्यांकन करना इस समय सम्भव प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार का परस्पर संघर्ष भारत में भी अपेक्षाकृत अधिक अस्त-व्यस्त एवं अव्यवस्थित रूप में चल रहा है। पश्चिम एशिया के इस्लाम धर्म की रूढ़िवादिता ने विभिन्न संस्कृतियों के परस्पर विवादों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया। पाश्चात्य देशों का एशिया महाद्वीप पर कितना प्रभाव पड़ा, इस सन्दर्भ में निश्चित रूप से आज भी कुछ कहना सम्भव नहीं है।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. नवीन साम्राज्यवाद से आप क्या समझते हैं ? अपने अध्ययन काल में यूरोपीय साम्राज्यवाद के उत्तरी अफ्रीका में विस्तार का वर्णन कीजिये।
   What do you understand by new Imperialism ? Discuss expansion of European Imperialism in North Africa during the course of year study.
   (भोपाल, 1999)
2. आर्थिक साम्राज्यवाद के परिणामों का विश्लेषण कीजिये।
   Examine the effects of economic imperialism. (आगरा, 1995, 96, 98, 99)
3. एशिया और अफ्रीका में यूरोप के देशों की कच्चे माल के लिए प्रतिस्पर्द्धापूर्ण दौड़ की व्याख्या कीजिये।
   Discuss competitive race of the European countries for raw material in Asia and Africa.
   (आगरा, 2000)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. ब्रिटेन-अफगानिस्तान युद्ध सन् —— तक चलते रहे—
   (क) 1870–1878 (ख) 1868–1877
   (ग) 1871–1879 (घ) 1875–1883
2. रूस ने चीन को एंगुन की सन्धि सन् —— में हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया—
   (क) 1870 (ख) 1865 (ग) 1858 (घ) 1860
3. चीन-जापान युद्ध सन् —— में हुआ—
   (क) 1891-92 (ख) 1894-95 (ग) 1893-94 (घ) 1895-96
4. "विभाजन करो और शासन करो" की नीति —— की थी—
   (क) फ्रान्स (ख) जर्मनी (ग) इंग्लैण्ड (घ) पुर्तगाल

5. ब्रिटिश-रूस सम्मेलन सन् —— में हुआ—
(क) 1905 (ख) 1907 (ग) 1909 (घ) 1911
6. फारस (आधुनिक इरान) में राष्ट्रवादी विद्रोह सन् —— हुआ—
(क) 1906 (ख) 1905 (ग) 1907 (घ) 1908

[उत्तर—1. (ग), 2. (ग), 3. (ख), 4. (ग), 5. (ख), 6. (क) ।]

28

अफ्रीका में साम्राज्यवाद

[IMPERIALISM IN AFRICA]

प्रारम्भिक शताब्दियों में अफ्रीका महाद्वीप के साथ दास व्यापार ही मुख्य था, अतः पश्चिमी देशों का अफ्रीका के समुद्र तटों तक ही सम्पर्क सीमित था। इन सम्पर्कों में बहुमूल्य धातु सोना-चाँदी अथवा हीरे जवाहरात का कोई स्थान नहीं था। अफ्रीका महाद्वीप के देशों के राजा एवं सरदार अफ्रीका की सीमा में प्रवेश करने वाले प्रत्येक श्वेत व्यक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। अफ्रीका महाद्वीप में उस समय मलेरिया, पीला ज्वर तथा सोने की बीमारी का कोई उपचार नहीं था। अतः ईसाई धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से आने वाले अनेक धर्म प्रचारकों का देहान्त हो गया। समुद्र तट के कुछ भागों में दास दुर्ग तथा व्यापारिक नाके स्थापित किये गये थे। स्थायी रूप से बसने वाले यूरोपवासी अफ्रीकावासियों की अनुमति से भयाक्रान्त रहते थे।

अधिकांश यूरोपीय देशों द्वारा अटलाण्टिक दास व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने के बाद यूरोपीय राज्यों का अफ्रीका के उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों के प्रति नया दृष्टिकोण हो गया। नौ-सैनिक गश्ती दल विशेष रूप से ब्रिटिश गश्ती दल अवैध दास व्यापारियों को परेशान करते थे। ईसाई धर्म प्रचारक गतिविधियों में अत्यधिक वृद्धि हो गयी। समुद्रतटीय क्षेत्रों के सरदारों से नौ-सैनिक गश्ती दलों की सुरक्षा स्वीकार करने के लिए अनुरोध किया गया और अफ्रीका के सुदूर भीतरी भागों का क्रमबद्ध ढंग से खोज कार्य आरम्भ किया गया। शीघ्र ही अफ्रीका के अनेक भागों विशेष रूप से नाइजर नदी डेल्टा क्षेत्र में खजूर के तेल का उत्पादन होने लगा और अन्य देशों को निर्यात होने लगा। कपास तथा मूँगफली उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रयास किये गये। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के इतने निकट होने के उपरान्त भी अफ्रीका विश्व के न्यूनतम ज्ञात भागों में था। इसके महान् आन्तरिक भाग उन्नीसवीं शताब्दी तक अज्ञात रहे। कुछ यूरोपीय राष्ट्रों के पूर्वी और पश्चिमी तटों पर तटीय केन्द्र थे लेकिन वे सब "अविकसित बर्बरता की सीमाओं पर सभ्यता के बिन्दुओं" सदृश थे।

ये विकास कार्य कालान्तर में साम्राज्यिक प्रतिस्पर्द्धा के लिए मुख्य आधार बन गये। पश्चिमी अफ्रीका में वाणिज्यिक प्रभाव क्षेत्र तथा अनौपचारिक साम्राज्य क्षेत्रों का आविर्भाव हुआ। नाइजर नदी के नीचे के तटीय क्षेत्र को ब्रिटिश सरकार अपना ही मानती थी और सन् 1811 में लागोस उपनिवेश का अभ्युदय हुआ। सन् 1830 में फ्रान्स ने अल्जीयर्स पर अपना

पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया। यह विजय अभियान मुख्य रूप से गौरव एवं प्रतिष्ठा के लिए आरम्भ हुआ था। फ्रान्स की सेना तथा स्थानीय बर्बरों (बारबरी पर्वतीय क्षेत्र तथा विशाल रेगिस्तान के उत्तरी भाग के हेमेटिक जनजाति के निवासी) के मध्य दीर्घकाल तक युद्ध चलता रहा। फ्रान्स ने शीघ्र ही अल्जीरिया को अपनी स्थायी बस्तियाँ स्थापित करने के लिए उपनिवेश में परिवर्तित कर दिया। अल्जीरिया और फ्रान्स के परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क थे। तदुपरान्त फ्रान्स का ट्यूनीशिया तथा मिस्र में भी प्रभुत्व स्थापित हो गया।

सन् 1814 में हालैण्ड ने दक्षिण अफ्रीका स्थित केप कालोनी ब्रिटेन को दे दी थी और इस क्षेत्र में बोअर के नाम से प्रसिद्ध डच कृषकों का बाहुल्य था। इनकी अपने रीति-रिवाजों, आचार-विचारों, भाषा, मूल्यों तथा परम्पराओं के प्रति अपूर्व निष्ठा थी। केप कालोनी का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय के उपरान्त ब्रिटिश सभ्यता तथा संस्कृति को आरोपित करने का प्रयास किया गया। बोअर जनता ने ब्रिटिश सरकार की गतिविधियों का तीव्र विरोध किया। बोअर सन् 1836 में केप कालोनी छोड़कर नेटाल में स्थायी रूप से बस गये। सन् 1843 में ब्रिटेन का नेटाल पर पूर्ण आधिपत्य हो गया। तदुपरान्त बोअर जनता ट्रान्सवाल तथा ओरेन्ज फ्रीस्टेट में जाकर स्थायी रूप से बस गयी और अपने स्वतन्त्र गणतन्त्र स्थापित किये। ब्रिटिश सरकार ने भी बोअर जनता की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया। इन परिवर्तनों ने सुदूर उत्तरी एवं सुदूर दक्षिणी उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों की स्थिति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं किया, परन्तु अफ्रीका महाद्वीप के भीतरी भागों में प्रवेश के लिए प्रयत्नशील यूरोपीय शक्तियों के समक्ष तीव्र आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता के परिणामस्वरूप उत्पन्न अनेक सामरिक तथा सुरक्षा सम्बन्धी समस्याएँ थीं। इन सबके उपरान्त भी अफ्रीका एक "अज्ञात महाद्वीप" एक अज्ञात देश था। अफ्रीका के विषय में यूरोप के अल्प ज्ञान और उपेक्षाजन्य अधिकांश भौतिक कारण थे। अफ्रीका के समुद्र तट अधिकांश समय असत्कारशील हैं। इसके आन्तरिक भाग में लगभग हर जगह रेगिस्तानी भूमि की पट्टियाँ अथवा समुद्रतट के दलदल, मलेरियायुक्त क्षेत्र से बन्द पठार हैं। नदियों के देश के अन्दर सुविधाजनक जलमार्ग नहीं हैं। इसके अतिरिक्त अफ्रीका के निवासी बहुत पिछड़े हुए थे, उनकी आवश्यकताएँ बहुत साधारण थीं। उनके साथ व्यापार बहुत लाभदायक नहीं था। तटीय क्षेत्र की कुछ यूरोपीय बस्तियाँ, जितना व्यापार था, उसकी दृष्टि से पर्याप्त थीं। अस्तु, उन्नीसवीं शताव्दी के अन्तिम दो दशकों तक अफ्रीका में यूरोपीय प्रभाव का विस्तार नगण्य था।

लेकिन अनेक घटनाओं ने इस अज्ञात, घृणास्पद महाद्वीप के साथ यूरोपीय सम्पर्क में परिवर्तन का पूर्वाभास दे दिया था। नैपोलियन की मिस्र की विजय और कालान्तर में ब्रिटेन द्वारा फ्रान्स के निष्कासन ने उस देश के सामरिक महत्व को व्यक्त किया और यूरोपीय शक्तियों को आकर्षित किया। सन् 1807 में दास-व्यापार के उन्मूलन और कालान्तर में ब्रिटेन द्वारा इसके उन्मूलन के विश्वव्यापी अभियान ने अफ्रीका में बढ़ी हुई रुचि को उद्वेलित किया। धर्म प्रचारकों ने भी अपूर्व उत्साह के साथ दास व्यापार के विरुद्ध संघर्ष को महाद्वीप के सर्वाधिक अन्धकारमय क्षेत्रों तक पहुँचाया और नीग्रों को ईसाई धर्म में परिवर्तित किया। इसके अतिरिक्त विख्यात मुनरो सिद्धान्त ने यूरोपीय शक्तियों को दक्षिणी अमेरिका से निकाल दिया। परिणामस्वरूप यूरोपीय शक्तियों ने मानव उपयोगी वस्तुओं की अपेक्षा उष्णकटिबन्धीय उत्पादों के लिए ध्यान दिया। औद्योगिक क्रान्ति ने इन उत्पादों की माँग बहुत बढ़ा दी थी।

सन् 1877 में ब्रिटेन ने ट्रान्सवाल के ब्रिटिश साम्राज्य में विलय की घोषणा की और बोअर जनता ने पाल क्रुगर के नेतृत्व में इस घोषणा का सक्रिय विरोध किया। सन् 1880 में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ग्लैडस्टन ने बोअर जनता से समझौते के लिए वार्ता आरम्भ की परन्तु बोअर जनता ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया और मजूबाहिल में ब्रिटिश सेना को पराजित किया। तदुपरान्त ग्लैडस्टन ने ट्रान्सवाल को पुनः स्वतन्त्र कर दिया। सन् 1884 में ब्रिटिश सरकार तथा बोअर जनता के मध्य सन्धि हो गयी।

सन् 1886 में ट्रान्सवाल में बहुत बड़ी संख्या में सोने की खदानों का पता लगा और सहस्त्रों की संख्या में अंग्रेज खदान श्रमिक ट्रान्सवाल पहुँचने लगे। परिणामस्वरूप अंग्रेजों की कुल संख्या बोअर जनता की अपेक्षा अधिक हो गयी। दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के देवदूत तथा केप कालोनी के प्रतिष्ठित पूँजीपति सिसल रोड्स की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका थी। उसने दक्षिण अफ्रीका स्थिति सोने की खदानों में काम करके अपार सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी। उसने केप कालोनी से काहिरा तक विशाल ब्रिटिश साम्राज्य की कल्पना की थी। उसकी प्रबल इच्छा थी कि अंग्रेज एवं बोअर दोनों ही ब्रिटिश शासन में साथ-साथ रहें। उसने ही बोअर गणतन्त्रों के सीमा विस्तार के अनेक प्रयासों को विफल किया था। उसके प्रयास से ही बैकुआनालैण्ड पर ब्रिटिश सरकार का अधिकार हो गया और वह क्षेत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम उसको सम्मानित करने के उद्देश्य से रोडेशिया रखा गया। सन् 1890 में वह केप कालोनी का प्रधानमन्त्री चुना गया। वह ट्रान्सवाल तथा आरेन्ज-फ्री-स्टेट पर ब्रिटिश आधिपत्य के लिए उत्सुक था। सन् 1899 के द्वितीय बोअर युद्ध के लिए सिसल रोड्स ही उत्तरदायी था। उसकी प्रेरणा से ही डॉ. जेम्सन ने ट्रान्सवाल पर आक्रमण किया और बोअर जनता ने ब्रिटिश सेना को पराजित किया। इससे अंग्रेजों तथा ट्रान्सवाल की बोअर जनता के मध्य कटुता अत्यधिक बढ़ गयी। जर्मनी के सम्राट कैसर विलियम ने बोअर जनता की सफलता पर बधाई संदेश भेजा था, अतः ब्रिटिश सरकार तथा जर्मनी के मध्य परस्पर सम्बन्ध कटु हो गये।

सन् 1899 में दोनों गणराज्यों (ट्रान्सवाल एवं आरेन्ज-फ्री-स्टेट) की बोअर जनता तथा ब्रिटिश सरकार के मध्य युद्ध आरम्भ हो गये। बोअर जनता ने शौर्य, पराक्रम तथा साहस के साथ भीषण युद्ध किया और अनेक स्थानों पर ब्रिटिश सेना को पराजित किया, परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य की विशाल सैन्य शक्ति के समक्ष अन्ततोगत्वा बोअर जनता को आत्मसमर्पण करना पड़ा और मई, 1902 में वेरीनिगिंग (Vereeniging) के स्थान पर सन्धि हुई। इसके अनुसार बोअर जनता ने ब्रिटेन के स्वामित्व को स्वीकार कर लिया। डच शालाओं तथा न्यायालयों में डच भाषा के प्रयोग की अनुमति थी, परन्तु प्रशासनिक विषयों में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग की व्यवस्था थी। ट्रान्सवाल तथा आरेन्ज-फ्री-स्टेट को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। ब्रिटिश सरकार ने कालान्तर में स्वायत्तशासी क्षेत्र बनाने का आश्वासन दिया।

मिस्र में ब्रिटिश प्रभाव की वृद्धि (Increase of British Influence in Egypt)—मिस्र पर इंगलैण्ड का नियन्त्रण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फ्रान्स ने मिस्र को बहुत पहले से अपनी सुरक्षित सम्पत्ति मान लिया था लेकिन अन्ततोगत्वा फ्रान्स ने अपनी सम्पत्ति खो दी और इंगलैण्ड का प्रभुत्व बढ़ गया। मिस्र से नैपोलियन के हट जाने के उपरान्त भी फ्रान्स की मिस्र में रुचि पूर्ववत् बनी रही। फ्रान्स ने मिस्र के महाराज्यपाल महमत अली द्वारा स्वयं की स्वतन्त्रता की घोषणा का समर्थन किया था और मिस्र में पर्याप्त राजनीतिक

प्रभाव स्थापित कर लिया था। फ्रान्स के मिस्र में व्यापारिक एवं वित्तीय हित भी निहित थे। मिस्र में सन् 1869 में स्वेज नहर बन जाने के उपरान्त ब्रिटिश साम्राज्य की एशिया स्थित भारत प्रायद्वीप के लिए दूरी बहुत कम हो गयी। अस्तु, ब्रिटेन की मिस्र तथा स्वेज नहर पर नियन्त्रण में गहन रुचि थी। फ्रान्स, नैपोलियन के समय से ही मिस्र पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने के लिए उत्सुक था। सन् 1869 में फ्रान्स के अभियन्ता दे-लैस्सय के प्रयास से स्वेज नहर का निर्माण हुआ था और इसकी प्रशासनिक व्यवस्था के लिए एक कम्पनी का गठन किया गया था। इसके निर्माण से भारत के लिए समुद्री मार्ग से दूरी बहुत कम हो गयी थी। ब्रिटेन के लिए सामरिक महत्व बढ़ गया। इस कम्पनी में अधिकांश शेयर मिस्र के खदीव (शासक) तथा फ्रान्स के थे। खदीव के अपव्यय के कारण देश की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी थी। सन् 1875 में मिस्र के खदीव व इस्माइल पाशा ने देश की आर्थिक स्थिति में सुधार के उद्देश्य से 40 लाख पौण्ड मूल्य के शेयर इंग्लैण्ड को बेच दिये। सन् 1876 में इस्माइल ने विदेशी ऋणों का भुगतान बन्द कर दिया। अस्तु, इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स ने संयुक्त रूप से मिस्र के आय-व्यय पर नियन्त्रण के लिए एक सर्वोच्च वित्तीय संस्था का गठन किया, परन्तु इस्माइल पाशा ने इस संयुक्त वित्तीय नियन्त्रण का विरोध किया। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स ने इस्माइल को पदच्युत करके तोफीक को मिस्र का खदीव बनाया।

इस द्वैध शासन से मिस्र की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गयी। करों की दरों में असहनीय वृद्धि हुई तथा 1,400 यूरोपवासियों को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया गया। इससे मिस्र के मूल निवासियों में अत्यधिक असन्तोष था। सन् 1882 में मिस्रवासियों ने "मिस्र मिस्रवासियों के लिए" की प्रबल माँग को लेकर यूरोपवासियों के विरुद्ध अराबी-के नेतृत्व में सशस्त्र विद्रोह कर दिया। इंगलैण्ड की सेना ने इन विद्रोहियों का दमन कर दिया और काहिरा पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार मिस्र पर इंग्लैण्ड का पूर्ण नियन्त्रण हो गया। यथार्थ में ब्रिटेन मिस्र में शान्ति स्थापित करने के उपरान्त 'मिस्र से हट जाना' चाहता था लेकिन देश में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने, देश की ध्वस्त अर्थव्यवस्था को पुनः सुचारु रूप से व्यवस्थित करने तथा सूडान में विद्रोह के कारण उत्पन्न स्थिति के परिणामस्वरूप मिस्र से हटने का कार्यक्रम अनिश्चित काल तक बढ़ता गया। अस्तु, ब्रिटेन, मिस्र में खदीव की नाममात्र की सत्ता के अधीन वास्तविक सत्ता का उपभोग करता रहा। प्रथम विश्व युद्ध के सन्दर्भ में सन् 1915 में मिस्र के ऊपर आरक्षित राज्य स्थापित करके अपनी स्थिति नियन्त्रित कर ली। तुर्की, मिस्र का नाम मात्र का स्वामी, युद्ध में ब्रिटेन और उसके मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध मध्य शक्तियों के साथ सम्मिलित हो गया था।

मिस्र पर ब्रिटेन का नियन्त्रण सदैव फ्रान्स और ब्रिटेन के मध्य संघर्ष का कारण रहा। मिस्र के विवाद, नाइजर क्षेत्र, स्याम और मेडागास्कर ने अन्य क्षेत्रों में दोनों देशों के मध्य वैमनस्य, शत्रुता और प्रतिद्वन्द्विता बहुत बढ़ा दी थी। फ्रान्स ने ब्रिटेन द्वारा मिस्र पर आधिपत्य का विरोध किया, परन्तु बिस्मार्क ने ब्रिटेन का समर्थन किया। सन् 1904 में फ्रान्स ने भी अन्ततोगत्वा ब्रिटिश सरकार द्वारा आधिपत्य को मान्यता दे दी और सन् 1919 तक मिस्र ब्रिटेन का उपनिवेश रहा।

सूडान मिस्र का प्रारम्भ से ही अधीनस्थ राज्य था, और सूडानवासी मिस्र का विरोध करते थे। फ्रान्स, ब्रिटेन द्वारा साम्राज्यवादी विस्तार से अत्यधिक अप्रसन्न था और उसने

अफ्रीका में पूर्व से पश्चिम तक विशाल साम्राज्य स्थापित करने के लिए उत्सुक था, जबकि ब्रिटेन उत्तर से दक्षिण तक अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था। सूडान वासी भी मिस्रवासियों के अनुरूप विदेशियों से घृणा करते थे। सूडानवासियों ने मोहम्मद अहमद मसीहा, दरवेश सम्प्रदाय का नेता, जो स्वयं को मेंहदी (देवदूत) कहता था, के नेतृत्व में सशस्त्र विद्रोह कर दिया और मिस्र के खदीव ने जनरल गोर्डन के नेतृत्व में विद्रोह का दमन करने के लिए सेना भेजी। वह खारतूम तक पहुँच गया, परन्तु मेंहदी ने खारतूम को चारों ओर से घेर लिया, और फरवरी, 1885 में गोर्डन की हत्या करके सूडान पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया।

ब्रिटेन सूडान पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए व्यग्र था। सन् 1896 में ब्रिटिश सरकार ने किचनर के नेतृत्व में सेना भेजी और उसी समय फ्रान्स ने कप्तान मार्चेन्द के नेतृत्व में नीलनदी के ऊपरी भाग पर नियन्त्रण करने के लिए सेना भेजी। सितम्बर, 1898 में किचनर ने खारतूम पर अधिकार कर लिया। सूडान पर ब्रिटेन और मिस्र का संयुक्त नियन्त्रण रहा। 25 सितम्बर को ही मार्चेन्द ने फसोदा पर फ्रान्स का ध्वजारोहण किया। ब्रिटेन तथा फ्रान्स में युद्ध की सम्भावना बढ़ गयी, परन्तु सन् 1899 में फ्रान्स पीछे हट गया एवं ब्रिटेन से समझौता कर लिया। इसके अनुसार फ्रान्स ने नील नदी के ऊपरी भाग पर ब्रिटेन के नियन्त्रण को स्वीकार कर लिया। सन् 1904 की सन्धि के अनुसार फ्रान्स ने मिस्र तथा सूडान पर ब्रिटेन के नियन्त्रण को स्वीकार कर लिया और इंग्लैण्ड ने मोरक्को पर फ्रान्स के आधिपत्य को मान्यता दे दी। इस प्रकार पश्चिमी यूरोप की इन दो प्रमुख साम्राज्यवादी शक्तियों ने अफ्रीका महाद्वीप के अधिकांश भाग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया।

फ्रान्स की साम्राज्यिक गतिविधियाँ (French Imperialist Activities in Africa)—फ्रान्स का अल्जीरिया पर पहले से ही नियन्त्रण था। सन् 1882 में ट्यूनिस का विलय कर लिया। सन् 1912 में मोरक्को फ्रान्स का संरक्षित राज्य बन गया। उत्तरी तट पर इन अधिकृत क्षेत्रों के बाद समस्त सहारा क्षेत्र पर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। साथ ही सेनेगल के पूर्व की ओर नाइजर नदी के ऊपर की ओर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया। बेल्जियम ने समस्त विषुवत्‌रेखीय अफ्रीका पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया था, इससे क्षुब्ध फ्रान्स ने सन् 1884 में फ्रान्स के साहसी अन्वेषक डि ब्राज्जा (De Brazza) द्वारा अन्वेषित पश्चिमी तट पर स्थित विशाल भू-भाग पर नियन्त्रण कर लिया। यह क्षेत्र कांगों में किनारे-किनारे स्थित है। फ्रान्सीसी कांगों नाम के इस नये उपनिवेश से चाड झील तक अधिकार कर लिया और भूमध्य सागर के लिए फ्रान्स ने अधिकृत मार्ग बना लिया। इस प्रकार फ्रान्स ने अज्ञात एवं अन्धेरे महाद्वीप के उत्तर-पश्चिम के विशाल भू-भाग पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया और अफ्रीका की सर्वाधिक महान् शक्ति बन गया। सन् 1896 में फ्रान्स ने ब्रिटेन की इच्छाओं के प्रतिकूल अफ्रीका के पूर्वी तट पर स्थित मेडागास्कर द्वीप पर नियन्त्रण कर लिया।

अफ्रीका में जर्मनी की गतिविधियाँ (Activities of Germany in Africa)—प्रारम्भ से ही बिस्मार्क की उपनिवेश स्थापित करने में कोई रुचि नहीं थी। वह जर्मनी को एक सन्तुष्ट (Satiated) राष्ट्र मानता था। सन् 1873 में उसने मत व्यक्त किया था, "उपनिवेश जर्मनी के लिए दुर्बलता का एक कारण बन जायेंगे। उपनिवेशों की सुरक्षा एक शक्तिशाली नौ-सैनिक बेड़े द्वारा ही सम्भव हो सकेगी, परन्तु जर्मनी की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि उसके

लिए प्रथम श्रेणी की समुद्री शक्ति बनना आवश्यक नहीं है। मुझको अनेक उपनिवेश भेंट किये जा चुके हैं, परन्तु मैंने स्वीकार नहीं किया।" यथार्थ में जर्मनी, इंग्लैण्ड का प्रतिद्वन्द्वी नहीं बनना चाहता था। सन् 1870 के उपरान्त औद्योगिक विकास के कारण व्यापारियों तथा उत्पादकों ने उपनिवेश स्थापित करने के लिए बिस्मार्क से आग्रह किया। इसके अतिरिक्त बढ़ती हुई जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याओं के निराकरण तथा राष्ट्रीय गौरव में वृद्धि के दृष्टिकोण से प्रेरित होकर बिस्मार्क ने साम्राज्यवादी नीति का अनुकरण किया। विद्वान इतिहासकार गूच लिखते हैं, "विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अफ्रीका महाद्वीप के विभाजन की प्रक्रिया ने जर्मनी की क्षुधा में वृद्धि की और अन्ततोगत्वा बिस्मार्क को उपनिवेश स्थापित करके क्षुधा शान्त करनी पड़ी।" सन् 1882 में जर्मनी की सरकार ने ल्यूडरिट्ज नाम के व्यापारी को दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका में भू-भाग प्राप्त करने में समुचित सहायता देने का आश्वासन दिया। ल्यूडरिट्ज ने एंग्रा पेक्वेना क्षेत्र में कुछ भूमि प्राप्त करके जर्मनी का झंडोत्तोलन किया। इसी समय बिस्मार्क ने डॉ. नाक्टिगल (Dr. Nachtigal) के नेतृत्व में अफ्रीका के भू-मध्य रेखीय क्षेत्र में सेना भेजी। डॉ. नाक्टिगल ने केमरुन तथा टोगोलैण्ड पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और ब्रिटेन ने इसको स्वीकार कर लिया।

सन् 1884 में कार्लपीटर्स ने ब्रिटेन के दबाव के कारण जंजीबार के सुल्तान से 60,000 वर्गमील क्षेत्र प्राप्त कर लिया तथा जर्मन ईस्ट अफ्रीका की ओर से निकटवर्ती क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। इसमें सोमालीलैण्ड के कुछ भाग भी सम्मिलित थे। जर्मनी ने निकट पूर्व तथा मध्य पूर्व से ही अपने साम्राज्य का विस्तार किया था और इस विस्तार को रोकने के लिए ब्रिटेन और रूस का प्रतिरोध ही प्रथम विश्वयुद्ध का मुख्य कारण था। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की पराजय के उपरान्त समस्त उपनिवेशों से नियन्त्रण समाप्त हो गया।

इटली की गतिविधियाँ (Italian Activities in Africa)—साम्राज्य विस्तार के क्षेत्र में इटली ने विलम्ब से प्रवेश किया। प्रारम्भ में असफल रहने के उपरान्त सन् 1883 में इटली ने लाल सागर पर स्थित एरीट्रिया (Eritrea) पर नियन्त्रण किया। सन् 1885 में इंग्लैण्ड के प्रोत्साहन से मसोवा (Massowah) तथा इसके निकटवर्ती क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। तदुपरान्त इटली सोमालीलैण्ड के पूर्वी भाग पर नियन्त्रण करने के लिए उत्सुक था, परन्तु उसके मार्ग में अबीसीनिया का स्वतन्त्र राष्ट्र था। अतः सन् 1896 में इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया, परन्तु एडोवा के युद्ध में इटली की सेना पराजित हो गयी। सन् 1911-12 में तुर्की के विरुद्ध युद्ध द्वारा इटली ने ट्रिपोली तथा साइरीनिका (आधुनिक लीबिया) पर आधिपत्य स्थापित किया। इटली को अपने उपनिवेशों से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध में पराजय के उपरान्त इटली का अपने समस्त उपनिवेशों से नियन्त्रण समाप्त हो गया।

पुर्तगाल—पुर्तगाल ने भी अफ्रीका के विभाजन में आंशिक रूप से भाग लिया। पुर्तगाल ने अफ्रीका के पश्चिमी तट पर स्थित बेल्जियम के कांगो प्रदेश के दक्षिण में अंगोला पर नियन्त्रण कर लिया तथा पश्चिमी तट पर स्थित मोजाम्बिक के नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र में अपना उपनिवेश स्थापित किया। उसने अपने पूर्वी एवं पश्चिमी अधिकृत क्षेत्रों को जोड़ने का प्रयास किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अफ्रीका के पूर्व से पश्चिम तक एक पट्टी प्राप्त करने का प्रयत्न किया, लेकिन ब्रिटिश प्रतिद्वन्द्विता ने पुर्तगाल को ऐसा करने से रोक दिया।

स्पेन—स्पेन को अफ्रीका के उत्तरी पश्चिमी तट पर कुछ प्रदेश प्राप्त हो गये। सन् 1906 में स्पेन ने जिब्राल्टर के सामने समुद्री तट पर अधिकार कर लिया था। फ्रान्स तथा पुर्तगाल के नियन्त्रण में ही सर्वाधिक भू-भाग था। जर्मनी तथा बेल्जियम के प्रवेश से पूर्व यूरोपीय शक्तियों के मध्य किसी प्रकार का तनाव नहीं था। तदुपरान्त अफ्रीका विभाजन की प्रक्रिया आरम्भ हुई थी, और तीन दशक की अवधि में अधिकाधिक भू-क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित करने की तीव्र प्रतिस्पर्द्धा चलती रही। इथोपिया तथा लायबेरिया के अतिरिक्त अफ्रीका महाद्वीप के समस्त क्षेत्र किसी न किसी यूरोपीय शक्ति के अधीन हो गये थे।

इस साम्राज्यिक विकास के मूल कारण के विषय में प्रबल जिज्ञासा थी। विद्वानों का अभिव्यक्त विचार कि वित्तीय पूँजी निवेश इस परिवर्तन का मूल कारण था, न्यायोचित तथा तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है। यथार्थ में बहुत कम मात्रा में पूँजी निवेश हुआ था। साम्राज्यवादी यूरोपीय शक्तियों के लिए कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमेरिका तथा अन्य गैर-अफ्रीकी क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद थे। यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियाँ अफ्रीका महाद्वीप को उपयोगी तथा लाभप्रद मानते थे, इस कारण विभाजन अनिवार्य प्रतीत होता था। इन शक्तियों की भविष्य के लिए स्थान प्राप्त करने में विशेष रुचि थी। कुछ फ्रान्सवासी अठारहवीं शताब्दी में भारत में हुई क्षति की अफ्रीका में पूर्ति करने के लिए उत्सुक थे। पेरिस स्थित फ्रान्स की सरकार ने कभी भी सूडान तथा सहारा पर आधिपत्य स्थापित करने में रुचि व्यक्त नहीं की वरन् फ्रान्स के सैनिक अधिकारी उत्सुक थे। समस्त साम्राज्यिक शक्तियाँ सीमाओं पर अशान्त, एवं उपद्रव ग्रस्त स्थिति से अधिक प्रभावित थी। साम्राज्यों के विस्तार का स्वयं का विशेष ढंग था। साम्राज्य से सम्बद्ध क्षेत्रों में व्यापारियों तथा वाणिज्यिकों की प्रगति तथा समृद्धि को आश्वस्त करने, धर्म प्रचारकों की जीवन सुरक्षा को सुनिश्चित करने तथा अपने साम्राज्य की प्रभुसत्ता को सुरक्षित एवं आश्वस्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। इस प्रकार के समस्त विलय तथा सीमा विस्तार को साम्राज्य की गृह सरकार अधिकृत स्वरूप दे देती थी। यथार्थ में साम्राज्य की गृह सरकार की साम्राज्य विस्तार में अधिक रुचि नहीं थी, परन्तु अपने स्थानीय प्रतिनिधियों की विस्तारवादी गतिविधियों को अस्वीकार करने तथा उनको वापिस बुलाने से साम्राज्य के गौरव तथा प्रतिष्ठा को आघात पहुँचने तथा अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीतिज्ञ जगत में अशोभनीय स्थिति उत्पन्न होने की विकट समस्या थी। अस्तु, गृह सरकार के समक्ष विलय तथा विस्तार को अधिकृत स्वरूप देने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था।

अफ्रीका के लिए प्रारम्भिक गतिविधियाँ (Initial Activities for Africa)—उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वैज्ञानिक अन्वेषणों की असाधारण शृंखला का शुभारम्भ हुआ, जिसने अफ्रीका के हृदय को खोल दिया और विश्व के समक्ष इसके प्राकृतिक संसाधनों एवं अन्तर्निहित शक्तियों को उद्घाटित किया। यद्यपि अन्वेषण के कार्य में विभिन्न राष्ट्रों के साहसी व्यक्तियों ने भाग लिया था। लेकिन ब्रिटिश नागरिकों ने इस महाद्वीप को उद्घाटित करने में सर्वाधिक योगदान दिया। अफ्रीका के ब्रिटिश अन्वेषकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण डेविड लिविंगस्टन (David Livingstone) है। उसने ऊपरी जैम्बैसी घाटी (Zambesi Valley) के ऊपर समस्त अफ्रीका की विशद् यात्रा की। उसने सर्वप्रथम विश्व के समक्ष मध्य अफ्रीका की विशेषताओं को अभिव्यक्त किया। उसके अन्वेषण के कार्य को स्टेनले (Stanley) ने

आगे बढ़ाया। उसने कांगों नदी के मार्ग और महाद्वीप के मध्य में स्थित विशाल झीलों की खोज की। उसकी प्रकाशित पुस्तक 'अन्धेरे महाद्वीप के अन्दर' (Through the Dark Continent) जिसमें उसकी साहसिक यात्राओं का रोमांचक विवरण था, ने गहन रुचि उत्पन्न की। यूरोपीय जनता ने वाणिज्यिक उद्यमों के लिए उपयुक्त क्षेत्र के रूप में अफ्रीका के मूल्य को अनुभव किया। इसी प्रकार फ्रान्स और जर्मनी के अन्वेषक उत्तर एवं उत्तर-पश्चिम के आन्तरिक मार्गों तथा सहारा रेगिस्तान के बाद खोज करने में व्यस्त थे। अफ्रीका की खोज के कार्य के पूर्ण होते ही यूरोपीय शक्तियों के मध्य अफ्रीका के विभाजन के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया।

अफ्रीका के विभाजन के सन्दर्भ में दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। सर्वप्रथम, यह कार्य बिना किसी यूरोपीय युद्ध के पूर्ण कर लिया गया। यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य उत्साही प्रतिद्वन्द्विताएं थीं जिनके कारण अन्तर्राष्ट्रीय संकट की स्थितियाँ उत्पन्न हुईं लेकिन सबका कूटनीति से निराकरण कर लिया गया। दूसरे, विभाजन अन्य महाद्वीपों की तरह मन्द एवं क्रमिक प्रक्रिया में नहीं था वरन् असाधारण द्रुतगति से हुआ। यह 80 के दशक में आरम्भ हुआ, और प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व पूर्ण हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में जर्मनी और इटली के महाशक्तियों में सम्मिलित हो जाने के कारण असाधारण द्रुतगति से विभाजन सम्भव हुआ। यूरोपीय शक्तियाँ अपने राष्ट्रीय गौरव एवं प्रतिष्ठा के लिए साम्राज्य विस्तार करना चाहती थीं। एशिया के अधिकांश भागों पर अधिकार हो चुका था और मुनरो सिद्धान्त ने अमेरिका के द्वार बन्द कर दिये थे। जर्मनी और इटली के साम्राज्य विस्तार के लिए अफ्रीका ही शेष था। इन दोनों देशों के इस क्षेत्र में प्रवेश ने फ्रान्स और ब्रिटेन की गतिविधियों को उद्वेलित किया। परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता एवं शत्रुता में वृद्धि हुई और इसने विभाजन की प्रक्रिया को तीव्र किया।

सन् 1877 में स्टेनले ने कांगों के नीचे के क्षेत्र से लौटने के बाद साम्राज्यवादी विस्तार के लिए अपनी सुखद खोजों का पूर्ण विवरण ब्रिटिश सरकार को दिया, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इन क्षेत्रों में कोई रुचि व्यक्त नहीं की। बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड ने इस स्वर्णिम अवसर का समुचित लाभ उठाने के उद्देश्य से स्टेनले को तत्काल राज्य की सेवा में नियुक्ति दे दी। एक अन्य खोजकर्ता डि ब्राज्जा (De Brazza) बेल्जियम राज्य के निकटवर्ती कांगों नदी के उत्तरी तट पर स्थित क्षेत्रों के सरदारों तथा शासकों के साथ सन्धि करने के लिए गया। बेल्जियम के राजा ने स्टेनले को, डि ब्राज्जा के प्रयासों को विफल करने के लिए अधिकाधिक सरदारों के साथ सन्धि पत्रों पर हस्ताक्षर करने का निर्देश दिया। परिणामस्वरूप उपनिवेशिक शक्तियों ने स्थानीय शासकों तथा सरदारों के साथ सन्धि पत्रों पर हस्ताक्षर करना आरम्भ कर दिया। सन् 1876 में बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय ने व्यापार और उद्योग के लिए अफ्रीका के आन्तरिक भागों को खोलने की सम्भावना पर विचार करने के उद्देश्य से बुसेल्स में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आह्वान किया। इस सम्मेलन के उपरान्त "मध्य अफ्रीका के अन्वेषण एवं सभ्यता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय" (International Association for the Exploration and Civilization of Central Africa) का आविर्भाव हुआ। बेल्जियम का राजा इसका अध्यक्ष था। यह अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय शीघ्र ही बेल्जियम की संस्था बन गयी। इस समुदाय को प्रत्येक देश में समान उद्देश्य के लिए धन संचय करने के लिए समितियों का गठन करना था। लेकिन शाखा समितियों ने अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के आवरण

को उतार दिया और विशुद्ध रूप से स्वार्थी उद्देश्यों के लिए अर्थात् स्वयं के देश के लिए क्षेत्र प्राप्त करने के उद्देश्य से अनेक राष्ट्रीय संगठनों में परिवर्तित हो गयी। केन्द्रीय समुदाय समस्त लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के लिए एक बेल्जियन संस्था बन गयी, और कांगों के तटीय क्षेत्र में बेल्जियम सम्राट के संरक्षण में तटस्थ क्षेत्र बनाने के उद्देश्य से स्टेनले के नेतृत्व में इस संस्था को काम करना था।

साम्राज्य विस्तार अभियान में जर्मनी के प्रवेश ने फ्रान्स तथा ब्रिटेन के मध्य परस्पर मतभेद उत्पन्न करने की दृष्टि से स्थिति में परिवर्तन कर दिया। अफ्रीका महाद्वीप के समुद्रतटीय चार क्षेत्रों पर बिस्मार्क ने जर्मनी के संरक्षण की घोषणा कर दी। इन क्षेत्रों पर किसी भी अन्य औपनिवेशिक शक्ति ने दावा नहीं किया था।

पुर्तगाल अपेक्षाकृत एक निर्बल देश था। इस स्थिति पर विचार करते हुए, अफ्रीका महाद्वीप के क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित करने से सम्बन्धित सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करने का प्रस्ताव रखा। इस विचार के प्रति बिस्मार्क ने सहमति व्यक्त की। पश्चिमी अफ्रीका के सम्बन्ध में एक सम्मेलन सन् 1884 में बर्लिन में हुआ। इस सम्मेलन में समस्त यूरोपीय राज्यों के अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ओटोमन साम्राज्य ने सक्रिय भाग लिया। इस सम्मेलन में कांगों पर बेल्जियम के आधिपत्य को मान्यता दी गयी तथा कांगों एवं नाइजर नदियों को उन्मुक्त व्यापार क्षेत्र घोषित किया गया। इस सम्मेलन में यह भी निर्णय किया गया कि प्रत्येक साम्राज्यिक शक्ति को किसी भी नये क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित करने की औपचारिक घोषणा करनी होगी तथा इस घोषणा को उस समय तक मान्यता नहीं दी जायेगी जब तक आधिपत्य स्थापित करने का दावा करने वाली शक्ति अपने पूर्ण एवं प्रभावशाली नियन्त्रण को सिद्ध नहीं कर देती।

इस क्षेत्र में समस्त राष्ट्र उन्मुक्त रूप से व्यापारिक गतिविधियाँ संचालित कर सकते थे और नदियों में नौ-यात्रा सब देशों के लिए मुक्त रहेगी। लेकिन प्रावधानों का पालन नहीं किया गया और नया राज्य व्यावहारिक दृष्टि से बेल्जियम का संरक्षक राज्य बन गया। यूरोप के सबसे छोटे देश बेल्जियम ने स्वयं के आकार का दस गुना बड़े आकार का साम्राज्य स्थापित किया और कांगों क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ 'रबर देश' पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया। बेल्जियम शासन ने कांगों मुक्त राज्य में यूरोपीय साम्राज्यवाद के निकृष्ट रूप को व्यक्त किया। स्थानीय व्यक्तियों को सभ्य बनाने के पुनीत कार्य करने का दृढ़ निश्चय श्रमिकों के निर्मम शोषण में परिवर्तित हो गया। उन पर रबर का दमनकारी कर आरोपित किया और गैर-भुगतान के लिए दण्ड के रूप में अंगच्छेद करना था। बेल्जियम सरकार के निरन्तर अविश्वसनीय अत्याचारों की भयावह कहानियों ने यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों की आत्मा को झकझोर दिया। देश और विदेश में कटु आलोचना इतनी तीव्र हो गयी कि सन् 1908 में लियोपोल्ड को अपनी निजी अचल सम्पत्ति उदार क्षतिपूर्ति के बदले में बेल्जियम सरकार को देने के लिए बाध्य किया। अब तक जो एक अन्तर्राष्ट्रीय राज्य था, कांगों मुक्त राज्य पहले बेल्जियम के राजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गया था और बाद में बेल्जियम की संसद के अधीन बेल्जियम के उपनिवेश में परिवर्तित कर दिया गया।

बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय की कांगों घाटी में साम्राज्य निर्माण में सफलता ने अन्य यूरोपीय राज्यों की महत्वाकांक्षा को प्रोत्साहित किया और अफ्रीका के समस्त क्षेत्रों को उपनिवेश बनाने की भयंकर मारामारी होने लगी।

बर्लिन सम्मेलन के इन निर्णयों ने अफ्रीका के विभाजन में नये चरण का सूत्रपात किया। प्रभावशाली नियन्त्रण के सिद्धान्त ने अत्यावश्यकता के नये तत्वों का शुभारम्भ किया। ब्रिटेन ने व्यापक रूप से सन्धि करने का अभियान आरम्भ किया। ब्रिटेन तथा जर्मनी के मध्य परस्पर अनेक समझौते हुए। इन समझौतों के अन्तर्गत जंजीबार, युगाण्डा और केन्या को ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रों तथा टंगयानिका को जर्मन अधिकृत क्षेत्र के रूप में मान्यता दे दी गयी। इस अवधि में सिसिल रोड्स ने दक्षिणी रोडेशिया पर नियन्त्रण कर लिया। इसके तत्काल बाद ब्रिटिश सरकार ने न्यासलैण्ड तथा उत्तरी रोडेशिया को अपने संरक्षण में ले लिया।

अफ्रीका के विभाजन की प्रक्रिया द्रुत गति से चल ही रही थी कि अफ्रीकावासियों ने साम्राज्यवादियों का कठोर सशस्त्र विरोध आरम्भ कर दिया। अनेक यूरोपवासियों ने अफ्रीका में स्थायी बस्तियाँ वना ली थीं। अनेक सरदारों ने विलय के विरोध में सशस्त्र संघर्ष किया। साम्राज्यवादियों का स्वयं का अशिष्ट, अभद्र एवं घृणित व्यवहार अफ्रीकावासियों के विरोध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था। यूरोपीय शक्तियों के औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी विस्तार के लिए बहुत अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता थी। कुछ समय तक साम्राज्यिक शक्तियों की सरकारों ने अनुदान दिये। साम्राज्यवाद कोई परोपकारी कार्य नहीं था। समस्त नये उपनिवेशों से स्वयं ही धन के भुगतान की आशा की जाती थी। औपनिवेशिक सरकारों ने प्रत्यक्ष कराधान द्वारा धन प्राप्त करने के प्रयास किये। झोपड़ी तथा पोल करों (Hut and Pole Taxes) ने अनेक अफ्रीकावासियों को करों के भुगतान करने के लिए धन अर्जित करने के उद्देश्य से श्रम करने अथवा नकद फसलों का उत्पादन करने के लिए विवश किया। करों का भुगतान करने में असमर्थ व्यक्तियों को करों के स्थान पर पारिश्रमिक मुक्त श्रम करने के लिए बाध्य किया जाता था। प्रारम्भ में औपनिवेशिक अफ्रीका में बाध्य श्रम व्यापक रूप से प्रचलित था। रेल तथा सड़कों के निर्माण कार्य, बागानों में काम करने, तथा वनों के उत्पादनों को एकत्रित करने के लिए विशाल स्तर पर विवश एवं बाध्य श्रमिकों को भर्ती किया गया। अफ्रीकावासियों में इस प्रणाली के विरुद्ध तीव्र असन्तोष तथा आक्रोश था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में अफ्रीका के अधिकांश युद्ध दीर्घकालीन, विनाशकारी तथा अत्यधिक कटुतापूर्ण थे। फ्रान्स को दहोमी तथा मेडागास्कर पर अपना स्वामित्व स्थापित करने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा। टंगयानिका के लिए जर्मनी ने बर्बर एवं वीभत्स युद्ध किये। ब्रिटिश सरकार ने रोडेशिया तथा सियाराल्योन में उपद्रवों का क्रूरतापूर्वक दमन किया। साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने श्रेष्ठ आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रों, विशेष रूप से मशीनगनों और अपने सुव्यवस्थित आपूर्ति साधनों के कारण समस्त सशस्त्र संघर्षों में विजयी रहीं। केवल इटली ही इथोपिया में असफल हुआ।

अफ्रीका महाद्वीप का विभाजन विश्व इतिहास की एक अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना थी। समस्त अफ्रीका महाद्वीप का विभाजन बिना किसी भीषण युद्ध के ही हो गया। निःसन्देह अफ्रीका के विभाजन के सन्दर्भ में विभिन्न साम्राज्यवादी शक्तियों के मध्य तनाव उत्पन्न हुआ और युद्ध की सम्भावनाएँ प्रतीत होती थी, परन्तु कोई युद्ध नहीं हुआ। अफ्रीका महाद्वीप का विभाजन केवल तीन दशक में हो गया। सम्भवतः ब्रिटेन तथा फ्रान्स दो प्रमुख साम्राज्यवादी देश जर्मनी तथा इटली को अपना मुख्य प्रतिद्वन्द्वी मानते थे, अस्तु, इन दोनों देशों ने अधिकाधिक प्रदेश पर आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया। अफ्रीका महाद्वीप के विभिन्न स्थानीय शासकों अथवा सरदारों ने अपेक्षित विरोध नहीं किया। अतः यूरोपीय साम्राज्यवादी देशों ने सहज ही अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए।

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त साम्राज्यवाद

सन् 1905 के उपरान्त विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संकटों के कारण साम्राज्यवादी साहसिक गतिविधियों के प्रति उत्साह कम होने लगा। सन् 1898 में स्पेन को संयुक्त राज्य अमेरिका से पराजित होने के बाद फिलिपाइन तथा क्यूबा द्वीप संयुक्त राज्य अमेरिका को देने पड़े थें। निःसन्देह ब्रिटेन सूडान में विजयी हुआ था, परन्तु सन् 1899 में अत्यधिक व्ययशील बोअर युद्ध के आरम्भ होने से ब्रिटेन के गौरव एवं गरिमा को आघात पहुँचा था। अबीसीनिया में इटली की सेना की पराजय तथा सन् 1904-5 में रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय ने साम्राज्यिक शक्तियों के अजेयता के विश्वास को भंग कर दिया था। इसके अतिरिक्त साम्राज्यों के प्रशासनिक व्यय, प्राप्त आर्थिक लाभों की अपेक्षा बहुत अधिक थे। उपनिवेशों में राजनीतिक अधिकारों तथा स्वतन्त्रता की माँगें निरन्तर बढ़ रही थीं। एक विद्वान इतिहासकार ने मत व्यक्त किया है, "यूरोपवासी अपने साथ लूट का माल ले गये जो अन्ततोगत्वा उनको अपने देश भेज देगा, स्व-शासन के अतिरिक्त अन्य कोई दासता का स्वरूप नहीं है।"

औपनिवेशिक शक्तियों तथा उपनिवेशों की जनता के मध्य परस्पर सम्बन्ध, राजनीतिक निर्भरता, प्रचलित जातिगत असमानता तथा आर्थिक अधीनता जैसे निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित थे। प्रत्येक साम्राज्य के अपने उपनिवेशों के साथ सम्बन्ध अन्य यूरोपीय उपनिवेश के साम्राज्य के साथ सम्बन्धों से भिन्न थे। ब्रिटिश सरकार की भारत में स्थानीय शासकों को बनाये रखने अथवा नाइजीरिया में अप्रत्यक्ष शासन में रुचि थी। बेल्जियम की सरकार कांगों में जनजातीय समुदायों को बनाये रखना चाहती थी। फ्रान्स की सरकार उत्तरी अफ्रीका के जनजातीय नेताओं तथा सरदारों के साथ सन्धि पत्रों पर हस्ताक्षर करने की पद्धति का अनुसरण कर रही थी। साम्राज्यिक नियन्त्रण बनाये रखने के लिए इन संशोधनों की अतीव आवश्यकता थी।

दूसरी ओर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही उपनिवेशों की भावनाओं, विचारों तथा मान्यताओं में रूपान्तर हो रहा था। उपनिवेशों की जनता में राष्ट्रीय भावना का उद्भव हो रहा था और राष्ट्रवादियों ने समस्त असमानताओं को समाप्त करने की माँग आरम्भ कर दी थी। आधुनिकीकरण के व्यापक प्रचार-प्रसार के परिणामस्वरूप ही राष्ट्रीय भावनाओं का उद्भव एवं विकास हुआ था। उपनिवेशों में पाश्चात्य शिक्षा के व्यापक प्रसार तथा

औद्योगीकरण के द्रुतगति से विकास ने उदारवाद के स्वतन्त्रता, समानता तथा स्व-शासन के सिद्धान्तों को पुष्ट किया। बीसवीं शताब्दी में औपनिवेशिक क्रान्तियों में औपनिवेशिक शक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। औपनिवेशिक शक्तियों की स्वयं की नीतियों, दृष्टिकोणों तथा परिस्थितियों में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। परिणामस्वरूप साम्राज्यिक शक्तियों की पुरानी पद्धति पर आधारित सम्बन्धों को बनाये रखने की प्रबल प्रवृत्ति समाप्त हो चुकी थी, और ये शक्तियाँ (Trusts) साझेदारी अथवा मैत्री सम्बन्धों पर आधारित सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बाध्य हो गयी थीं।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने, अपने 14 सूत्रीय शान्ति प्रस्तावों में साम्राज्यवाद विरोधी, राष्ट्रवाद, लोकतन्त्र एवं स्वतन्त्रता से सम्बन्धित अवधारणाओं के अतिरिक्त राष्ट्रों के सामान्य समुदाय अथवा संघ को सामूहिक सुरक्षा प्रदान करने के विचार पर विशेष बल दिया था। इस संघ से आशय था कि समस्त सम्बद्ध राज्य किसी देश, जिस पर किसी अन्य राष्ट्र द्वारा आक्रमण किया गया, के हितों एवं जनकल्याण की सामूहिक रूप से सुरक्षा करेंगे, जो आक्रमण को निरर्थक ही नहीं बना देगा, वरन् आक्रमणकारी देश के लिए गम्भीर खतरा सिद्ध होगा। नवम्बर, 1918 में ब्रिटेन एवं फ्रान्स ने वुडरो विल्सन के 14 सूत्रीय शान्ति प्रस्ताव के व्यापक सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया था। इसी प्रकार जर्मनी एवं आस्ट्रिया ने भी अपनी सहमति व्यक्त की।

अधिदेश प्राप्त सत्ता (Mandatory System)—राष्ट्र संघ (Leage of Nations) में अधिदेश प्राप्त सत्ता प्रणाली का श्रीगणेश किया गया था। इसके अन्तर्गत जर्मनी और तुर्की के यूरोप के बाहर औपनिवेशिक क्षेत्र मित्र राष्ट्रों के कुछ देशों को स्वामियों की अपेक्षा विश्वसनीय शासकों के रूप में दे दिये गये थे। अधिदेशाधीन क्षेत्र (Mandated territory) का शासन ग्रहण करने वाली शक्ति शासितों के हितों में प्रशासनिक व्यवस्था संचालित करने और संघ की परिषद् को वार्षिक विवरण प्रेषित करने के लिए बाध्य थी। इन अधिदेशों के अन्तर्गत ब्रिटेन को फिलिस्तीन, मेसोपोटामिया, जर्मन, पूर्वी अफ्रीका; टोगोलैण्ड और कैमरून के कुछ भाग प्राप्त हुए। फ्रान्स को सीरिया एवं अफ्रीका में जर्मन उपनिवेशों के कुछ भाग दिये गये। जर्मनी अधिकृत अफ्रीका के दक्षिण-पश्चिमी भाग दक्षिण अफ्रीका संघ को आवंटित किये गये। चीन में शांगतुंग क्षेत्र जापान को प्रदान किये गये। प्रशान्त महासागर में स्थित जर्मनी अधिकृत द्वीप जापान, आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड के मध्य बाँट दिये गये।

ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक सरकारों तथा राष्ट्रमण्डलीय देशों की सरकारों ने महत्वपूर्ण प्रगति की। सन् 1931 में स्वतन्त्र उपनिवेश के रूप में औपचारिक मान्यता देने का अर्थ अधीनता की अपेक्षा समान भागेदारी के विचार को प्रोत्साहन देना था। इसके अतिरिक्त उपनिवेशवाद के भौतिक आधार में परिवर्तन हो गया था। राष्ट्र संघ समिति ने सन् 1937 में लिखा कि उपनिवेशों में उपलब्ध विश्व के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कच्चे माल विश्व के कुल उत्पादन के 3 प्रतिशत थे, परन्तु टिन और रबड़ इसके अपवाद थे। सन् 1938 में ब्रिटेन का अपने उपनिवेशीय क्षेत्रों से आयात कुल आयातित सामग्री का $18\frac{1}{2}\%$ था और उपनिवेशों को कुल निर्यातित वस्तुओं का $12\frac{1}{4}\%$ ही निर्यात होता था।

फ्रान्स, बेल्जियम, नीदरलैण्ड तथा पुर्तगाल जैसी अन्य औपनिवेशिक शक्तियों के आर्थिक सम्बन्धों में अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व फ्रान्स ने समीकरण की नीति का अनुसरण किया, अर्थात् फ्रान्स ने उपनिवेशों की जनता को फ्रान्सवासियों के अनुरूप बनाने के उद्देश्य से फ्रान्स की सभ्यता एवं संस्कृति का व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया, परन्तु विश्व युद्ध के बाद फ्रान्स ने समीकरण की नीति से साहचर्य, संयोजन तथा साझेदारी की नीति में परिवर्तन किया। फ्रान्स ने उपनिवेशों की स्थानीय परम्पराओं, मान्यताओं तथा प्रचलित जीवन पद्धति के प्रति पूर्वापेक्षा अधिक आदर एवं सम्मान प्रदर्शित किया। इसके साथ फ्रान्स ने महानगरों के साथ उपनिवेशों के आर्थिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों को पुष्ट किया। फ्रान्स की औपनिवेशिक नीति में यह परिवर्तन व्यावहारिक तथा यथार्थ की अपेक्षा सैद्धान्तिक अधिक था। सन् 1938 तक फ्रान्स का अपने उपनिवेशों से आयात-निर्यात कुल व्यापार का एक-तिहाई था। इससे सन् 1945 के उपरान्त उपनिवेशों द्वारा सशस्त्र एवं हिंसात्मक विरोध के अन्तर्निहित कारणों का संकेत मिलता है।

बेल्जियम, नीदरलैण्ड तथा पुर्तगाल यद्यपि छोटी साम्राज्यवादी तथा औपनिवेशिक शक्तियाँ थीं, परन्तु इनका विभिन्न प्राकृतिक स्त्रोतों से सम्पन्न एवं समृद्ध विशाल औपनिवेशिक क्षेत्रों पर नियन्त्रण था। बेल्जियम सरकार ने अपने उपनिवेशों पर साझेदारी, उत्तरदायित्व अथवा कालान्तर में स्वशासन की भावनाओं से मुक्त प्रगतिशील सामाजिक तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से पितृसत्तात्मक नीति एवं सिद्धान्त के अनुरूप शासन किया। सन् 1939 तक बेल्जियम अधिकृत कांगों अपना 80% निर्यात बेल्जियम को करता था और कांगों बेल्जियम के कुल निर्यात का 50% आयात करता था।

डच नीति भी कठोर तथा पितृ सत्तात्मक थी, परन्तु डच सरकार स्वीकार करती थी कि उपनिवेशों की शासित जनता के प्रति उनका नैतिक दायित्व भी था। डच सरकार की पितृ सत्तात्मक नीति बाह्य प्रदर्शन एवं खोखली थी। इण्डोनेशिया में कोई मध्यम वर्ग नहीं था, परन्तु इण्डोनेशियावासी अपमानजनक, निन्दनीय एवं घृणित जातिगत भेदभाव का तीव्र विरोध करते थे। परिणामस्वरूप सन् 1908 में इण्डोनेशिया में राष्ट्रवादी आन्दोलन आरम्भ हो गया। इसके अतिरिक्त असन्तुष्ट तथा कुंठाग्रस्त इण्डोनेशियावासियों की भावनाओं को सन्तुष्ट करने में डच सरकार की कोई रुचि नहीं थी। अस्तु, शासकों एवं शासितों के मध्य सम्बन्ध कटुता की चरम सीमा पर पहुँच गये। इस विस्फोटक स्थिति के कारण हिंसात्मक उपद्रव सामान्य हो गये। परिणामस्वरूप डच सरकार का इण्डोनेशिया पर नियन्त्रण शिथिल हो गया।

पुर्तगाल के साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद की कहानी भी लगभग इसी के अनुरूप थी। सन् 1933 के औपनिवेशिक अधिनियम के अनुसार समस्त औपनिवेशिक सत्ता पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन में केन्द्रित थी। अधिकांश व्यापारिक गतिविधियों पर पुर्तगाल सरकार का नियन्त्रण था। सन् 1931 में उपनिवेशों को समुद्रपारीय प्रान्तों में परिवर्तित कर दिया गया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि में फ्रान्स में अन्य अनेक परिवर्तन हुए। सन् 1944 में आयोजित ब्राज्जविले (Brazzaville) सम्मेलन की अध्यक्षता जनरल दि गाल ने की थी। इस सम्मेलन ने उपनिवेशों के जनमत की अभिव्यक्ति के लिए स्थानीय विधान सभाओं के विकास, सार्वजनिक सेवाओं में स्थानीय जनता के नियोजन तथा फ्रान्स की संसद में उपनिवेशों की जनता के प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व के लिए अनुशंसा की थी। सन् 1956 में फ्रान्स की संविधान सभा ने फ्रान्स अधिकृत समुद्रपारीय उपनिवेशों की अधीन जनता तथा फ्रान्स के नागरिकों के मध्य अन्तर को समाप्त कर दिया। उसी वर्ष फिलाडेल्फिया में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का अधिवेशन भी समानता और स्वतन्त्रता की दिशा में महत्वपूर्ण घटना थी। इस सम्मेलन की घोषणा में विश्वव्यापी अधिकारों तथा स्तरीय समानता की भावना निहित थी।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अधिकांश उपनिवेशों को स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया। सामान्यतः विश्व की दो सर्वोच्च शक्तियाँ, रूस तथा संयुक्त राज्य अमेरिका उपनिवेशवाद का तीव्र विरोध करती थीं और शीघ्रातिशीघ्र उपनिवेशों की जनता साम्राज्यवादी एवं औपनिवेशिक शक्तियों से मुक्ति चाहती थीं। इसके अतिरिक्त औपनिवेशिक शक्तियों के प्रभाव तथा दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हो गया था। दो विश्व युद्धों में धन-जन की विपुल क्षति के कारण यूरोपीय राज्यों की दमनकारी प्रवृत्तियाँ एवं शक्ति समाप्त हो गयी थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोपीय राज्यों के लिए देश के पुनर्निर्माण का विषय सर्वोच्च महत्व का था। औपनिवेशिक शक्तियों के लिए उपनिवेशों को बनाये रखना भी असम्भव हो गया था। विभिन्न साम्राज्यों की जनता भी उपनिवेशों में सशस्त्र संघर्ष करते-करते थक चुकी थी। यूरोपीय देशों के जनमत ने भी स्वीकार किया कि उपनिवेशों की जनता को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। युद्धकाल में श्वेत जातियों पर एशिया महाद्वीप में जापान की विजयों के पाश्चात्य उपनिवेशवाद के लिए गम्भीर एवं घातक परिणाम हुए। उन्नीसवीं शताब्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रशासनिक एवं राजनीतिक संरचना, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के समापन, द्वितीय विश्व युद्ध के सर्वाधिक दूरगामी एवं ऐतिहासिक परिणाम थे। द्रुतगति से उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की समाप्ति बीसवीं शताब्दी का सर्वाधिक उल्लेखनीय परिवर्तन था। सन् 1939 में यूरोपवासी, एशिया तथा अफ्रीका के 50 करोड़ व्यक्तियों पर शासन करते थे, परन्तु सन् 1970 में शासित व्यक्तियों की संख्या केवल 2,10,00,000 (दो करोड़ दस लाख) रह गयी। औपनिवेशिक साम्राज्यों का द्रुतगति से पतन स्वतः विश्व में यूरोपीय राज्यों की परिवर्तित स्थिति को अभिव्यक्त करता है। अनेक यूरोपीय राज्य केवल द्वितीय अथवा तृतीय श्रेणी की शक्ति रह गये थे और स्वेज नहर विवाद ने अनेक यूरोपीय शक्तियों को अपने राज्यों की सीमाओं में सीमित कर दिया था। स्वेज नहर विवाद को ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अन्तिम साम्राज्यवादी गतिविधि माना जा सकता है।

आलोचकों ने विचार व्यक्त किया है कि आर्थिक सहायता, प्रौद्योगिक स्थानान्तरण एवं सार्वभौम तथा क्षेत्रीय गुटों के गठन के रूप में नये उपनिवेशवाद का अविर्भाव हुआ है। नये

उपनिवेशवाद के पीछे विकसित देशों के बहुराष्ट्रीय पूँजीपतियों की शक्ति है। नये उपनिवेशवाद के विभिन्न अवयव जैसे आर्थिक सहायता, प्रौद्योगिकी के स्थानान्तरण एवं सार्वभौम एवं क्षेत्रीय गुटों के संगठन बहुराष्ट्रीय व्यक्तियों के माध्यम से किस सीमा तक विकासशील देशों का शोषण कर रहे हैं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है।

यूरोपीय साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद काल में विभिन्न उपनिवेशों के विभिन्न दृष्टिकोणों से हानि-लाभ का विस्तृत विवरण तैयार करना कठिन प्रतीत होता है। यूरोपीय देशों के शासन काल में अनेक उपनिवेशों के जीवन स्तर में उल्लेखनीय विकास हुआ। इसी अवधि में एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीपों की जनता को समानता तथा स्वतन्त्रता के यूरोपीय महान् आदर्शों का ज्ञान हुआ। यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों ने अधिकांश शासितों को दीर्घकाल तक राजनीतिक स्थिरता, शान्ति और व्यवस्था प्रदान की।

यथार्थ में साम्राज्यिक शासन के दुःखद चिन्ह शेष रहे गये। साम्राज्यिक शासन ने प्राचीन सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं को ध्वस्त कर दिया और उपनिवेशों के मानव समाजों में खतरनाक रिक्तता छोड़ दी। यह शासन उपनिवेशों को स्वतन्त्रता के लिए पर्याप्त शिक्षा प्रदान करने में असफल रहा। अनेक उपनिवेशों ने अपने देश में संसदीय लोकतान्त्रिक सरकारों की असफलता से पीड़ित होकर अधिनायकतन्त्रीय शासन व्यवस्था को स्वीकार कर लिया है।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. 19वीं शताब्दी में यूरोपीय शक्तियों के मध्य विभाजन का वर्णन कीजिये।
   Describe the partition among the European powers in the 19th century.
   (मेरठ, 1995)
2. अफ्रीका के विभाजन को रेखांकित कीजिये।
   Examine partition of Africa. (मगध एवं भोपाल, 1997)
3. 1914 तक अफ्रीका में यूरोपीय प्रसार के चरणों का संक्षेप में विवरण दें।
   Describe briefly expansion of European powers in Africa till 1914.
   (बी. आर अम्बेदकर, 1997)
4. यूरोपीय राष्ट्रों ने अफ्रीका के विभाजन की समस्या का समाधान किस प्रकार किया ? हम कह सकते हैं कि वे अपनी समस्याओं के समाधान में असफल रहे थे। क्या यह कथन सत्य है?
   How did European Nations solve the problem of partition of Africa ? We can say that they did not succeed in resolving their problems. Is it true or false. (रायपुर, 1999)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Quesitons)

1. विख्यात मुनरो सिद्धान्त किसने .... प्रवर्तित किया था—
   (क) रूस के जार (ख) इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री
   (ग) अमेरिका के राष्ट्रपति (घ) जर्मनी के चान्सलर
2. .... अज्ञात महाद्वीप कहलाता था—
   (क) एंशिया (ख) अमेरिका (ग) अफ्रीका (घ) यूरोप

3. सहारा रेगिस्तान .... महाद्वीप में स्थित है—

(क) यूरोप (ख) अफ्रीका (ग) एशिया (घ) आस्ट्रेलिया

4. सन् .... में ट्रान्सवाल में बहुत बड़ी संख्या में सोने की खदानों का पता लगा—

(क) 1885 (ख) 1888 (ग) 1886 (घ) 1887

5. सन् .... द्वितीय बोअर युद्ध के लिए सिसिल रोड्स ही उत्तरदायी था—

(क) 1899 (ख) 1888 (ग) 1890 (घ) 1895

6. सन् .... फ्रान्स के अभियन्ता दे-लैस्सय के प्रयास से स्वेज नहर का निर्माण हुआ था—

(क) 1868 (ख) 1869 (ग) 1870 (घ) 1871

7. मिस्र सन् .... तक ब्रिटेन का उपनिवेश रहा—

(क) 1920 (ख) 1921 (ग) 1919 (घ) 1922

8. .... को मारचन्द ने फ्रान्स का ध्वजारोहण किया—

(क) 27 सितम्बर (ख) 25 सितम्बर (ग) 28 सितम्बर (घ) 30 सितम्बर

9. "अन्धेरे महाद्वीप के अन्दर" .... महाद्वीप के लिए प्रयुक्त हुआ है—

(क) एशिया (ख) यूरोप (ग) अफ्रीका (घ) अमेरिका

10. .... ब्रिटेन एवं फ्रान्स ने वुडरो विल्पन के 14 सूत्रीय शान्ति प्रस्ताव के व्यापक सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया—

(क) 18 नवम्बर, 1918 (ख) 18 नवम्बर, 1920
(ग) 18 नवम्बर, 1919 (घ) 18 नवम्बर, 1921

[उत्तर—1. (ग), 2. (ग), 3. (ख), 4. (ग), 5. (क), 6. (ख), 7. (ग), 8. (ख), 9. (ग), 10. (क) ।]

29

प्रथम विश्व युद्ध

[FIRST WORLD WAR]

सन् 1914 में आरम्भ युद्ध इतिहास में सर्वाधिक असाधारण युद्धों में एक था। यद्यपि यह यथार्थ में प्रथम विश्व युद्ध नहीं था क्योंकि इससे पूर्व नैपोलियन युद्ध एवं सप्तवर्षीय युद्ध हो चुके थे, जो विस्तार की दृष्टि से बहुत व्यापक थे लेकिन इस युद्ध का प्रभाव उन युद्धों की अपेक्षा बहुत अधिक था। शीघ्र ही यह 'जनता का युद्ध' (People's War) बन गया जिसमें नागरिकों के साथ-साथ सशस्त्र सैनिकों ने शत्रु के उन्मूलन के लिए सक्रिय भाग लिया। इसके परिणाम क्रान्तियों के संक्रामक के रूप में हुए और इसने भविष्य में नये एवं अपेक्षाकृत अधिक विषांक्त संघर्षों के लिए परदार सर्प के दंश चुभो दिये।

इस प्रकार इस युद्ध ने हिंसा के युग का प्रतिमान स्थापित किया जो बीसवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में चलता रहा। प्रथम विश्व युद्ध ने शान्ति युग का अन्त कर दिया। सन् 1815 में नैपोलियन के पतन के बाद लगभग एक शताब्दी तक यूरोप में कोई भीषण सशस्त्र संघर्ष नहीं हुआ। निःसन्देह क्रीमिया युद्ध (सन् 1854-56), फ्रान्स-प्रशा युद्ध (सन् 870-71), रूस-तुर्की युद्ध (सन् 1878-79) एवं रूस-जापान युद्ध (सन् 1904) हुए, लेकिन प्रथम विश्व युद्ध की तुलना में नगण्य थे। सन् 1914 तक किसी भी भीषण संग्राम के नहीं होने का कारण सन् 1818 में ब्रिटेन द्वारा आस्ट्रिया, प्रशा एवं फ्रान्स के सहयोग से स्थापित शक्ति सन्तुलन था। यह पूर्णरूप से ब्रिटेन की आर्थिक सर्वोच्चता एवं ब्रिटेन की नौ-सेना की शक्ति पर निर्भर था। अस्तु, मुख्य रूप से शक्ति सन्तुलन ब्रिटिश नियन्त्रित था। जब कभी यूरोप में युद्ध हुआ अथवा युद्ध की परिस्थितियों का निर्माण हुआ, इंगलैण्ड ने सदैव दुर्बल देश के पक्ष में सक्रिय सहयोग दिया, जिससे सन्तुलन पुनर्स्थापित हो जाये।

सत्ता राजनीति एवं सत्ता सन्तुलन की विफलता को विश्व युद्ध का सर्वोच्च अन्तर्निहित कारण माना जा सकता है। इन कारणों में राष्ट्रवाद भी प्रमुख था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक राष्ट्रवाद ने विभिन्न बहुत खतरनाक रूप ग्रहण कर लिए थे। इनमें सर्वाधिक प्रमुख विशाल सर्बिया योजना, रूस में सर्व स्लाव आन्दोलन, फ्रान्स में प्रतिशोध आन्दोलन और सर्व जर्मन आन्दोलन थे, इनमें प्रथम दोनों परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे।

विश्व के इतिहास में बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक सर्वाधिक विनाशकारी प्रथम विश्व युद्ध कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। नैपोलियन युग के बाद आधुनिक यूरोप की

विभिन्न विकास प्रक्रियाओं, ईर्ष्या, द्वेष, मनोमालिन्य, प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिशोध की सहज मानवीय वृत्तियों एवं बर्बर, हिंसात्मक गतिविधियों के कारण वातावरण अत्यधिक तनावयुक्त हो गया था तथा यूरोपीय राष्ट्र उस युग की विभिन्न दूषित एवं विषाक्त चुनौतियों का शान्तिपूर्ण ढंग से सामना करने में असफल रहे। परिणामस्वरूप वे निरन्तर विनाशकारी युद्ध की दिशा में आगे बढ़ते गये। इस विनाशकारी युद्ध के लिए किसी एक देश को दोषी अथवा उत्तरदायी कहना न्यायोचित एवं तर्कसंगत नहीं है। कोई भी विद्वान इतिहासकार, 28 जून, 1914 को साराजिवों में आस्ट्रिया के युवराज आर्क ड्यूक फ्रान्सिस फर्डीनेण्ड की नृशंस हत्या को विनाशकारी युद्ध का मूल कारण स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं है। यथार्थ में अगस्त, 1914 में आरम्भ महान् युद्ध एक अथवा अधिक पीढ़ियों की विभिन्न घटनाओं का चरमोत्कर्ष था।

प्रथम विश्व युद्ध के प्रमुख कारण

(MAIN CAUSES OF THE FIRST WORLD WAR)

उग्र राष्ट्रवाद (Extremist Nationalism)—विद्वान इतिहासकार कहते हैं, "युद्ध के अन्तर्निहित प्रमुख कारणों में राष्ट्रवाद एक होना चाहिए।" फ्रान्स की क्रान्ति की अनेक पैतृक निधियों में से एक राष्ट्रवाद की शक्ति प्रथम विश्व युद्ध के अनेक मौलिक कारणों में थी। इटली एवं जर्मनी के एकीकरण के रूप में राष्ट्रवाद की अभूतपूर्व विजय थी और उन विजयों ने विश्व के देशों में नई शक्ति, चेतना, साहस, उत्साह एवं कर्मण्यता का व्यापक संचार किया था और राजनीति में उसको एक महत्वपूर्ण शक्ति बना दिया था। उसने जनसमुदाय में जातीय गौरव एवं गरिमा को उद्वेलित किया और अपने पड़ोसियों के प्रति उनका दृष्टिकोण घमण्डी हो गया। लार्ड एक्टन ने राष्ट्रवाद को एक निरर्थक एवं अपराधी प्रवृत्ति का सिद्धान्त कहा था। राष्ट्रवाद की अधिकता ने ही यूरोपीय देशों, जैसे इंगलैण्ड तथा जर्मनी की प्रतिद्वन्द्विता को अत्यधिक कटु बनाया, तथा उनको सैनिक एवं नौ-सैनिक प्रतिस्पर्धा के लिए प्रोत्साहित किया। उग्र राष्ट्रवाद के परिणामस्वरूप एशिया, अफ्रीका तथा बाल्कन क्षेत्र में यूरोपीय शक्तियों के मध्य अपने-अपने हितों के लिए परस्पर अनेक सशस्त्र संघर्ष हुए। फ्रान्स की जनता के अपमानित राष्ट्रवाद ने अपने सम्पन्न खनिज क्षेत्रों अलजेक-लारेन की हानि की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिशोध की तीव्र भावना को सदैव सजीव रखा और इसी चेतना ने फ्रान्स को जर्मनी का सर्वाधिक कटु शत्रु बना दिया था। इटलीवासियों का उच्च स्वर में आह्वान 'इटैलिया इर्रिडेन्टा' (Italia Irredenta) अर्थात् अनुद्धरित इटली (Unredeemed Italy) आस्ट्रिया से इटली की भाषा-भाषी ट्रियेस्ट (Trieste) तथा ट्रेनटिनों जिले प्राप्त करने के लिए इटली की राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति थी। बाल्कन क्षेत्र की जनता की असन्तुष्ट आकांक्षाओं ने बाल्कन क्षेत्र को वास्तविक सोख्तादान बना दिया था। बाल्कन क्षेत्र ने बहुत पहले ही समस्त यूरोप को युद्ध की विभीषिका में झोंक दिया था। यथार्थ में अधिकांश विनाशकारी घटनाओं में उग्र राष्ट्रवाद ही मूल कारण था, और उसी के परिणामस्वरूप प्रथम विश्व युद्ध हुआ। राष्ट्रों के निरन्तर बढ़ते हुए उग्र राष्ट्रवाद के साथ कुंठाग्रस्त अनेक राष्ट्रीयताएं थीं, जिनका अतीत की बर्बर एवं अमानुषिक पद्धतियों से अनेक बार दमन किया गया था। विश्व की महान् यूरोपीय शक्तियों की निरन्तर बढ़ती हुई साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक प्रवृत्ति को आर्थिक शक्ति के रूप में द्रुत गति से औद्योगीकरण ने पुष्ट किया था। पूँजीवाद द्वारा निर्देशित औद्योगीकरण भविष्य के गर्भ में निहित भीषण विभीषिकाओं एवं विषमताओं का यथार्थवादी पूर्वानुमान करने में असमर्थ रहा था। औद्योगीकरण की कार्यान्वयन प्रणाली

में अनेक अपेक्षित संशोधनों तथा सुधारों की आवश्यकता थी। यूरोपीय राष्ट्रों की निरन्तर बढ़ती हुई आर्थिक शक्ति के परिणामों में एक उपनिवेशों का विभाजन था। परिणामस्वरूप यूरोपीय राष्ट्रों के समक्ष अनेक संकट आये। सन् 1914 में विश्व राजनीति के प्रमुख राजनीतिज्ञों की असफलता को प्रथम विश्व युद्ध के सूत्रपात का एक प्रमुख कारण माना जा सकता है।

आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता एवं साम्राज्यवाद (Economic Rivalry and Imperialism)—पुनर्जागरण के प्रारम्भ से सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ तक यूरोपीय संस्कृति एवं प्रौद्योगिकी ने चीन एवं जापान जैसे अपेक्षाकृत अधिक एकाकी देशों के अतिरिक्त पूर्व एवं पश्चिम के अधिकांश देशों के लिए मानक स्थापित कर दिये थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में यूरोप के बाहर विश्व पर नियन्त्रण के लिए पश्चिमी यूरोपीय शक्तियों के मध्य सशस्त्र संघर्ष आरम्भ हो गया। शीघ्र ही उनको संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान एवं रूस जैसे शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वियों का सामना करना पड़ा। बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक इतिहास एशिया, अफ्रीका एवं प्रशान्त महासागर स्थित महाद्वीपों के लाखों, करोड़ों व्यक्तियों पर स्वामित्व के लिए सशस्त्र संघर्ष एवं प्रतिस्पर्द्धा से पूर्ण है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से विश्व की दो दिशाओं में प्रगति हुई थी। धनवान देशों में जैसे इंग्लैण्ड, अमेरिका एवं जर्मनी में द्रुत गति से औद्योगीकरण हुआ। इन देशों में अपनी उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए विश्व के अन्य देशों में बाजार प्राप्त करने तथा अधिकाधिक धनोपार्जन की प्रबल इच्छा थी।

आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता एवं साम्राज्यवाद विश्व युद्ध का एक अन्य सहयोगी कारण था। विश्व इतिहास की उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक तथा बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए बाजारों, उद्यमों के लिए कच्चे माल के स्रोतों, अतिरिक्त पूँजी निवेश के क्षेत्रों तथा बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए स्थायी बस्तियाँ स्थापित करने के उद्देश्य से परस्पर संघर्षों के लिए विख्यात था। औद्योगिक तथा वाणिज्यिक प्रतिस्पर्द्धा की दृष्टि से जर्मनी निरन्तर प्रगति कर रहा था और इंग्लैण्ड को आशंका हुई, कि जर्मनी विश्व वाणिज्य एवं व्यापार के क्षेत्र में उससे आगे नहीं निकल जाये। यथार्थ में इंग्लैण्ड वास्तविक जर्मनी में निहित ईर्ष्या, द्वेष एवं दुर्भावना से पीड़ित था, जो यूरोपीय शान्ति के लिए एक अपशकुन था।

इसी आर्थिक प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप राष्ट्रों के मध्य परस्पर ईर्ष्या, द्वेष एवं मनोमालिन्य का आविर्भाव हुआ और एक राष्ट्र के व्यक्ति अन्य राष्ट्र के व्यक्तियों को अपना कट्टर शत्रु मानते थे। आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता के परिणामस्वरूप साम्राज्यवाद एवं उपनिवेश का आविर्भाव हुआ। फ्रान्स तथा इटली अभी कृषि तथा उद्योगों के सन्तुलन की स्थिति में थे। एशिया, अफ्रीका तथा पूर्वी यूरोप में औद्योगिक विकास नहीं हुआ था। अतः ये देश उन क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। अविकसित देशों पर नियन्त्रण करने की प्रबल इच्छा एवं पूँजी निवेश तथा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए अविकसित देशों की प्रबल आकांक्षा के परिणामस्वरूप औपनिवेशिक एवं साम्राज्यवादी सशस्त्र संघर्षों का सतत् क्रम आरम्भ हुआ। विद्वान इतिहासकार लेंगसम कहते हैं, "साम्राज्यवाद एवं आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता विश्व युद्ध का प्रमुख कारण है।" यूरोपीय शक्तियों के मध्य साम्राज्यवाद निरन्तर संघर्ष एवं वैमनस्य का प्रमुख स्रोत था। इस युग के साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के कारण यूरोपीय राष्ट्रों की महानता का आकलन उस देश की भौगोलिक क्षेत्र,

खनिज सम्पदा, औद्योगिक उत्पादनों तथा पूँजी की अपेक्षा देश के गैर-यूरोपीय अधिकृत क्षेत्रों के कुल क्षेत्रफल तथा उसके मूल्य के आधार पर होता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक अफ्रीका के अधिकांश भागों पर यूरोपीय राष्ट्रों विशेष रूप से इंगलैण्ड तथा फ्रान्स ने आधिपत्य स्थापित कर लिया था। जर्मनी ने उपनिवेशवाद के क्षेत्र में विलम्ब से प्रवेश किया था, अस्तु, उसको अपेक्षाकृत बहुत कम क्षेत्र प्राप्त हुआ था और वह असन्तुष्ट था। जर्मनी का अधिकृत गैर-यूरोपीय क्षेत्र न्यूनतम तथा उसके वास्तविक स्तर के अनुपात में बहुत कम था। उसने हर दिशा में साम्राज्यवाद के विकास के लिए अथक असफल प्रयास किये, उसके प्रतिद्वन्द्वियों इंग्लैण्ड, फ्रान्स तथा रूस के पास सर्वाधिक लाभप्रद क्षेत्र थे। निःसन्देह अफ्रीका के विभाजन के लिए यूरोपीय शक्तियों में परस्पर कोई सशस्त्र संघर्ष नहीं हुआ था, परन्तु परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, मनोमालिन्य एवं तनाव में वृद्धि अवश्य हुई थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मनी तथा इंगलैण्ड में व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता इस सीमा तक बढ़ गयी कि दोनों देशों के उद्योगपति एवं राजनीतिज्ञ एक-दूसरे को अपमानित करने के लिए प्रयास करने लगे। यथार्थ में जर्मनी की असन्तुष्ट साम्राज्यवादी महात्वाकांक्षा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और संकटों का मुख्य स्रोत थी, जिसने महान् विश्वयुद्ध की भविष्यवाणी कर दी थी।

मनोवैज्ञानिक तथ्य (Psychological Factors)—विनाशकारी विश्व युद्ध की स्थिति के लिए अनेक युद्धों की क्रमिक शृंखला में फ्रान्स एवं जर्मनी के मध्य सन् 1870 का युद्ध सर्वाधिक घातक सिद्ध हुआ। इस सन्दर्भ में दो तथ्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं—(1) प्रत्येक राष्ट्र का अन्य कोई राष्ट्र स्थायी मित्र अथवा शत्रु नहीं होता, केवल राष्ट्रीय हित ही स्थायी एवं सर्वोपरि होते हैं। राष्ट्रीय हित राष्ट्रों के परस्पर कटु अथवा मधुर सम्बन्धों को निर्धारित करते हैं। (2) राष्ट्र व्यक्ति का विशाल स्वरूप है। व्यक्ति की स्वाभाविक ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, मनोमालिन्य, प्रतिशोध, निजी स्वार्थ की प्रतिक्रिया के अनुरूप ही राष्ट्र की भी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ एवं भावनाएँ होती हैं। सन् 1870 में जर्मनी के एकीकरण के लिए युद्ध में प्रशा ने फ्रान्स को केवल पराजित ही नहीं किया, वरन् फ्रान्स को दीन-हीन एवं अपमानित भी किया। प्रशावासियों ने वर्साय के महल से जर्मन साम्राज्य की घोषणा की थी। उसके अतिरिक्त फ्रान्स के लौह-अयस्क एवं कोयला से सर्वाधिक धनी एवं सम्पन्न अलजैक एवं लारेन क्षेत्रों का जर्मनी में विलय करके फ्रान्स को गहरा आघात पहुँचाया था। उसने प्रतिशोध की प्रबल भावना का बीजारोपण किया। प्रतिशोध की क्रिया-प्रतिक्रिया ही यथार्थ में प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध का मूल कारण थी। फ्रान्स ने जर्मनी द्वारा अपमान का प्रतिशोध लेने का दृढ़ निश्चय किया। विश्व की समस्त भावी, उग्र राष्ट्रवादी, साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी घटनाएँ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उस प्रतिशोध की प्रबल भावना से सम्बन्धित हैं। जर्मनी अपनी जनसंख्या और कोयले एवं इस्पात उत्पादन के कारण निःसन्देह फ्रान्स से श्रेष्ठ था और फ्रान्स जर्मनी से भयभीत भी था।

यूरोप की सशस्त्र शान्ति (Armed Peace of Europe)—सन् 1914 से पूर्व सैन्यवाद का विकास सत्ता राजनीति की वास्तविकताओं की सर्वाधिक स्पष्ट अभिव्यक्तियों में एक था। विश्व के राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता की स्थिति में जीवन व्यतीत कर रहे थे, उनकी आशंकाओं एवं सन्देहों के परिणामस्वरूप शस्त्रास्त्रों की प्रतिस्पर्धा होना अनिवार्य था। यूरोप विशेष रूप से सशस्त्र खेमा बन गया। सन् 1870 के बाद ब्रिटेन के अतिरिक्त अन्य समस्त प्रमुख शक्तियों ने अनिवार्य सैन्य भर्ती एवं सार्वभौम सैन्य प्रशिक्षण की नीति का अनुसरण

किया। इन शक्तियों का दृढ़ विश्वास था कि राष्ट्रीय सुरक्षा सेना एवं नौ-सेना की तैयारी पर निर्भर थी। सन् 1914 तक प्रत्येक युद्ध की विभीषिका के वाद सेनाओं और नौ-सेनाओं में वृद्धि की गयी। परिणामस्वरूप समस्त महाशक्तियों एवं छोटे राष्ट्र ऐसे भार से त्रस्त थे जो स्वस्थ एवं सन्तुलित विश्व में असहनीय था। अनेक मानवतावादी एवं बुद्धिमान व्यक्ति इस तथ्य को स्वीकार करते थे, और उन्होंने सदैव युद्ध के संकट को टालने का प्रयास किया। साथ ही अनेक बुद्धिजीवियों ने संकट की उपस्थिति को केवल अस्वीकार ही नहीं किया, वरन् दृढ़ता के साथ कहा कि सैन्यवाद का सकारात्मक लाभ था। थियोडोर रूजवेल्ट ने विचार व्यक्त किया कि राष्ट्र में पुरुषोचित एवं उद्यमशील गुणों को सुरक्षित रखने के लिए युद्ध आवश्यक था। फील्ड मार्शल मोल्टके एवं ट्रीटस्के (Treitschke) मानव जाति के लिए सैन्य संघर्ष को विश्व के दैविक तत्वों में एक और 'एक भीषण औषधि' मानते थे। फ्रान्सीसी दार्शनिक अर्नेस्ट रैनन ने प्रगति बनाए रखने के लिए युद्ध को न्यायोचित कहा और विचार व्यक्त किया, "डंक जो देश को सोने जाने से रोकता है।" जो लोग शस्त्रास्त्रों में विश्वास करते थे, और युद्ध को राष्ट्र की समस्याओं के समाधान की सर्वोत्कृष्ट पद्धति मानते थे, उनको उपर्युक्त विचारों से बल मिला।

सन् 1914 से पूर्व राष्ट्रवाद के रूप में सर्व जर्मनवाद के प्रभाव का आकलन करना कठिन था। सन् 1895 में स्थापित सर्व-जर्मन संघ (Pan-German League) के विचारों के सन्दर्भ में इस प्रकार के आन्दोलन का नाम लिया जाता है। विशेष रूप से संघ ने मध्य यूरोप के समस्त ट्यूटानिक जनसमुदाय को सम्मिलित करने के उद्देश्य से उस सीमा तक जर्मनी के विस्तार का विचार व्यक्त किया। संघ के अनुसार जर्मनी को डेनमार्क, नीदरलैण्ड, लक्जमबर्ग, स्विट्जरलैण्ड, आस्ट्रिया और पौलेण्ड सुदूर पूर्व में व्रारसा तक अपनी सीमाओं का विस्तार करना चाहिए। कुछ नेता इससे भी सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने विशाल साम्राज्य एवं वाल्कन और पश्चिम एशिया में सीमाओं के व्यापक विस्तार की माँग की। उन्होंने बल दिया कि बुल्गर एवं तुर्कों को जर्मन राज्य का उपनिवेश बन जाना चाहिए। सर्व-जर्मन संघ यद्यपि कटु आलोचक था, लेकिन समस्त जर्मनी का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। इसकी उग्र आलोचना का जनसमुदाय प्रबल विरोध करता था। फिर इसके अधिकांश सिद्धान्तों की जर्मन विचारधारा की उन्नति में गहन रुचि थी। दार्शनिक फिशटे (Fichte) ने विचार व्यक्त किया कि जर्मन समुदाय का, अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता के कारण, शेष यूरोप में शान्ति आरोपित करने का लक्ष्य था। आर्यवाद और नोर्डिक सर्वोच्चता ने इस अवधारणा में योगदान किया कि जर्मन समुदाय की अपने से हेय जातियों को अपनी संस्कृति स्वीकार करने के लिए सहमत करना अथवा बाध्य करना दैविक नियति थी। अन्तिम रूप से हैनरिक वान ट्रीटस्के (Heinrich Von Treitschke) जैसे विद्वान दार्शनिकों ने महान् राज्य की पूजा करने और सत्ता को महिमामंडित करने का राष्ट्रीय नीति के उपकरण के रूप में अनुसरण करने का आह्वान किया था। इस नीति ने मध्य एवं उच्च वर्गों के जर्मन समुदाय को अन्य राष्ट्रों के प्रति असहिष्णुता की प्रबल भावना एवं जर्मनी के अपने निर्बल पड़ोसियों पर शासन करने के अधिकार में अटूट विश्वास से अनुप्राणित किया।

प्रचलित सैन्यवाद एवं सैनिक सन्धियों की पद्धति प्रथम विश्वयुद्ध का प्रमुख अन्तर्निहित कारण था। उसकी उत्पत्ति बिस्मार्क की कूटनीति में निहित थी। फ्रान्स-प्रशा सशस्त्र युद्ध में जर्मनी की अभूतपूर्व विजय ने जर्मनी को एक ही झटके में यूरोप की प्रमुख शक्ति बना दिया था। फ्रान्स दलित एवं पृथक् था, और ब्रिटेन स्वयं को महाद्वीपीय राजनीतिक

गतिविधियों से अलग किये हुये थे। यूरोपीय विषयों का उचित मार्गदर्शन देने का दायित्व जर्मनी के कुशल कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क पर था। सन् 1871 के उपरान्त बिस्मार्क की नीति स्व-निर्मित एकीकृत जर्मनी की सुरक्षा के लिए रक्षात्मक थी। बिस्मार्क ने स्पष्ट अनुभव कर लिया था कि फ्रान्स अलजेक-लारेन (Alsace-Lorraine) खनिज सम्पदा से सम्पन्न क्षेत्रों की क्षति के परिणामस्वरूप अपमान को विस्मृत नहीं कर सकता। अस्तु, बिस्मार्क ने जर्मनी को फ्रान्स के सम्भावित प्रतिशोधात्मक आक्रमण से सुरक्षित करने के लिए, फ्रान्स को अन्य शक्तिशाली यूरोपीय राष्ट्रों से विलग करने के उद्देश्य से, जिससे फ्रान्स किसी अन्य यूरोपीय राष्ट्र की सहायता से जर्मनी के विरुद्ध प्रतिशोधात्मक कार्यवाही नहीं कर सके, सैनिक सन्धियों का क्रम आरम्भ किया। इसके परिणामस्वरूप प्रतिरोधात्मक सैनिक सन्धियों का क्रम आरम्भ हो गया। परिणामस्वरूप यूरोपीय शक्तियाँ, दो परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध विरोधी शत्रु दलों में विभाजित हो गयी। बिस्मार्क के अथक कूटनीतिक प्रयासों के उपरान्त जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी एवं इटली के मध्य त्रिराष्ट्रीय सन्धि (Triple Alliance) द्वारा एक शक्तिशाली सैनिक गुट का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार उसने मध्य यूरोप में सुदृढ़ व्यूह की रचना की और जर्मनी इस संगठित दल का सर्वाधिक प्रभावशाली सदस्य था। यूरोप में उसका नेतृत्व निश्चित था। उसके प्रतिरोध में फ्रान्स और रूस की द्विराष्ट्रों की सुरक्षा सन्धि द्वारा विपक्षी सैनिक गुट का आविर्भाव हुआ। कालान्तर में इंग्लैण्ड ने भी फ्रान्स और रूस के साथ सम्मिलित होकर त्रिराष्ट्र मैत्री गुट का निर्माण किया। यह सैनिक गुट की अपेक्षा आत्म-सुरक्षा की दृष्टि से मित्र राष्ट्रों का केन्द्रीय शक्तियों के विरुद्ध एक समूह था। इंग्लैण्ड ने युद्ध की स्थिति में फ्रान्स अथवा रूस का सक्रिय सशस्त्र समर्थन करने का वचन नहीं दिया था, परन्तु जर्मनी की निरन्तर बढ़ती हुई नौ-सैनिक प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण गतिविधियों के कारण द्वि-राष्ट्र (रूस एवं फ्रान्स) के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गये, और किसी गम्भीर स्थिति में सक्रिय सशस्त्र सहयोग के लिए तत्पर था।

दोनों परस्पर विरोधी गुटों की समस्त सन्धियाँ गुप्त थीं। यह मैत्री सन्धियों का सर्वाधिक दोष था। उन सन्धियों का मूलोद्देश्य आत्मसुरक्षा तथा शान्ति स्थापित करना एवं यथास्थिति बनाये रखना था, परन्तु उन सन्धियों ने यूरोप को दो परस्पर विरोधी गुटों में विभाजित करके परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, शंका, सन्देह, प्रतिद्वन्द्विता एवं शत्रुता को प्रोत्साहित किया और समस्त राजनीतिक वातावरण सम्भावित आक्रमणों से भयाक्रान्त हो गया, लेकिन इन शक्तियों को यूरोप के बाहर शक्तियों की महत्वाकांक्षाओं से कोई मतलब नहीं था। यूरोप की स्थिति को "सशस्त्र शान्ति" (Armed·Peace) की संज्ञा दी जा सकती है। विद्वान इतिहासकार बी. लिखते हैं, "युद्ध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण गुप्त गुटबन्दी प्रणाली थी, जिसका विकास फ्रान्स एवं प्रशा के मध्य युद्ध के उपरान्त हुआ था। उसने शनैः-शनैः यूरोपीय शक्तियों को दो ऐसे गुटों में विभाजित कर दिया, जिनमें परस्पर सन्देह बढ़ता रहा और वे अपनी सेना एवं नौ-सेना को निरन्तर बढ़ाते रहे।" इस अवधि का प्रतिस्पर्द्धात्मक विवाद विश्व युद्ध का अन्तर्निहित कारण था।

निरन्तर विकासशील राष्ट्रवादी भावनाएँ, शक्तियों के मध्य बढ़ता हुआ तनाव और प्रतिद्वन्द्वी सन्धि प्रणालियों के आविर्भाव के परिणामस्वरूप यूरोपीय शक्तियों के मस्तिष्क में गहन असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो गयी थी। दोनों गुट सम्भावित आक्रमण के विरुद्ध सैनिक तैयारियों के प्रति सदैव सतर्क तथा सन्देहास्पद रहते थे। जर्मनी ने अपनी नियमित सेना में अत्यधिक वृद्धि कर दी थी। फ्रान्स ने अनिवार्य सैनिक सेवा में वृद्धि करके दो से तीन वर्ष

कर दी थी। रूस ने सेना विस्तार का नया कार्यक्रम स्वीकार कर लिया था। इंगलैण्ड ने अपने नौ-सेना व्यय को बहुत बढ़ा दिया था। अस्त्र-शस्त्रों की प्रतिस्पर्द्धात्मक दौड़ के परिणामस्वरूप समस्त राष्ट्रों में परस्पर भय एवं शत्रुता में अत्यधिक वृद्धि हो गयी थी। इंगलैण्ड जर्मनी की नौ-सेना प्रतिद्वन्द्विता युद्ध के सहयोगी कारणों में एक थी। विद्वान इतिहासकार फे लिखते हैं, "सैन्यवाद के अन्तर्गत दो तथ्य निहित हैं। प्रथम, विशाल सेनाओं तथा नौ-सेनाओं की भयानक एवं व्ययशील व्यवस्था तथा उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला सन्देह, भय एवं घृणा का वातावरण था। दूसरे जनरल स्टाफ की अध्यक्षता में सैनिक एवं नौ-सैनिक अधिकारियों का शक्तिशाली वर्ग था जो किसी भी राजनीतिक संकट के समय नागरिक प्रशासन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करता था।"

जब जर्मनी ने अपनी नौ-सैनिक शक्ति का विकास कार्यक्रम आरम्भ किया, यह प्रक्रिया इंगलैण्ड के लिए एक चुनौती बन गयी। दोनों देशों में नौ-सेना विकास के क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा बढ़ गयी और यूरोप के अन्य देश भी उससे प्रभावित हुए। प्रत्येक देश के लिए सैन्य वृद्धि राष्ट्रीय प्रतिष्ठा एवं गौरव का मानदण्ड बन गया। सन् 1914 में जर्मनी की नियमित सैनिक संख्या 8,70,000 थी। इसके अतिरिक्त 50 लाख प्रशिक्षित व्यक्ति थे, जिनका आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता था।

यूरोपीय शक्ति सन्तुलन (The European Balance of Power)—लेकिन शक्ति सन्तुलन कभी भी पूर्णरूप से अनुकूलित नहीं था। मध्य उन्नीसवीं शताब्दी में नैपोलियन तृतीय सन् 1870 में बिस्मार्क और सन् 1878 में रूस ने शक्ति सन्तुलन को आघात पहुँचाया। सन् 1900 के बाद शक्ति सन्तुलन को पुनः चोट पहुँची। बिस्मार्क के नियन्त्रण में जर्मनी ने यूरोप में शान्ति बनाये रखने का प्रयास किया। बिस्मार्क की दृष्टि में जर्मनी एक सन्तुष्ट शक्ति था, और उसकी रुचि यूरोप में अपनी सर्वोच्चता पर आधारित यथास्थिति बनाये रखने में थी। सन् 1890 में बिस्मार्क के पतन के बाद जर्मनी की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं में अपूर्व वृद्धि हुई। युग के साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के कारण किसी राष्ट्र की महानता का आकलन यूरोपीय स्थिति की अपेक्षा अन्य महाद्वीपों में उस देश के अधिकृत क्षेत्रों के मूल्य एवं विस्तार के आधार पर होता था। महानता के इस मानदण्ड की दृष्टि से जर्मनी अपने प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा बौना ही था। इंगलैण्ड, फ्रान्स एवं रूस ने अपने विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर लिये थे। सन् 1900 तक विश्व शक्ति के प्रबल प्रत्याशियों के मध्य विश्व विभाजित हो चुका था, और जर्मनी न्यूनतम औपनिवेशिक क्षेत्रों के कारण निम्नतम स्थान पर था। अपनी स्वयं की उपलब्धि से गर्व से युक्त, स्वयं को प्रतिद्वन्द्विता से परे विश्व में सर्वाधिक महान् राष्ट्र मानते हुए—शान्ति की कला एवं युद्ध की कला में सर्वाधिक महान् जर्मनी बहुत निम्न स्थान, जो ईश्वर ने उसको साम्राज्यिक क्षेत्र में आवंटित किया था, स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं था।" जर्मनी ने अनुभव किया जब तक वह यूरोप में अपनी स्थिति के अनुरूप विश्व साम्राज्य प्राप्त नहीं कर लेता, वह यूरोपीय शक्तियों के मध्य दूसरे अथवा तीसरे स्थान पर चला जायेगा। अस्तु, 'सूर्य में अपने स्थान' की माँग की और अपनी स्थिति के अनुरूप स्वयं के लिए विश्व साम्राज्य का निर्माण करने के लिए कृत संकल्प था।

अस्तु, बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से जर्मनी ने हर दिशा में विस्तार के समस्त स्रोतों एवं साधनों का प्रयास किया और उसको हर दिशा में मार्ग अवरुद्ध मिला। इस प्रकार जर्मनी अशान्ति का प्रमुख स्रोत बन गया, और उसकी उच्च महत्वाकांक्षा और विश्व साम्राज्य के स्वप्न विश्व युद्ध का निर्णायक कारण माना जा सकता है। यूरोपीय राष्ट्रों में सर्वाधिक

शक्तिशाली एवं घमण्डी जर्मनी से साम्राज्यिक विस्तार की दौड़ में पीछे रहने की आशा नहीं की जा सकती थी, और जर्मनी ने विश्व के विभाजन, जिसको अन्य शक्तियाँ अन्तिम रूप दे चुकी थीं, को अस्वीकार कर दिया। सन् 1900 तक जर्मनी यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली देश बन गया, और साम्राज्यिक विस्तार की दौड़ में पीछ रहने की आशा नहीं की जा सकती जर्मनी की उत्तरी अफ्रीका पर नियन्त्रण करने, तुर्की में आर्थिक साम्राज्यवाद स्थापित करने और ब्रिटेन को नौ-सैन्य शक्ति की चुनौती देने की प्रबल आकांक्षा थी।

सन् 1914 तक जर्मनी का लोहे और कोयले का उत्पादन ब्रिटेन और फ्रान्स के संयुक्त उत्पादन की अपेक्षा बहुत बढ़ गया। रसायनों, एनिलीन रंगों और वैज्ञानिक उपकरणों के उत्पादन में विश्व का सर्वश्रेष्ठ देश बन गया। उसने परिवहन व्यापार में ब्रिटेन को चुनौती दी एवं सर्वाधिक विशालकाय एवं द्रुतगामी जलयानों का उत्पादन किया। अपनी इन उपलब्धियों से उद्वेलित जर्मनी यूरोपीय महाद्वीप में अपनी सर्वोच्चता की अस्वीकृति से क्षुब्ध था। यथार्थ में अनेक विद्वान इतिहासकार इस निर्णय पर पहुँच चुके हैं कि यह यूरोपीय शक्ति सन्तुलन को जर्मनी की धमकियाँ थीं, जो बीसवीं शताब्दी के दो विश्व युद्धों का वास्तविक एवं प्रमुख कारण थीं।

सन्देह एवं अविश्वास (Suspicion and Disbelief)—विरोधी गुटों ने एक-दूसरे गुट को दुर्बल करने के लिए षड्यन्त्रों की रचना की तथा कूटनीतिक प्रयास किये। फ्रान्स ने इटली के साथ गुप्त समझौता करके त्रिगुट को दुर्बल करने का प्रयास किया तथा जर्मनी ने इंग्लैण्ड और फ्रान्स के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धों को भंग करने के उद्देश्य से रूस के साथ गुप्त समझौता करने का प्रयास किया। विद्वान इतिहासकार फे ने इस सन्दर्भ में विचार व्यक्त किया है, "एक दृष्टिकोण से यह प्रणाली यूरोप में शान्ति बनाये रखने में सहायक थी, क्योंकि एक गुट के सदस्य, अपने मित्र राज्य को युद्ध की विभीषिका से बचाने के लिए अपने मित्रों को भी युद्ध से रोकते रहे, परन्तु उस प्रणाली से यह भी निश्चित हो गया कि युद्ध की स्थिति में समस्त महान् शक्तियों को युद्ध में सक्रिय भाग लेना पड़ेगा।" इस प्रकार विश्व की समस्त महान् शक्तियों में परस्पर सन्देह एवं अविश्वास की प्रबल भावना थी।

जब किसी देश को युद्ध का पूर्वानुमान होता है, वह अपने अन्य सहयोगी तथा सहायक मित्रों की खोज करता है। जर्मनी के विख्यात महान् कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क ने भी सन् 1879 में उसी प्रकार की सुरक्षात्मक सैनिक सन्धियों द्वारा मित्रों का गुट बनाने का क्रम आरम्भ किया। सन् 1879 में जर्मनी तथा आस्ट्रिया-हंगरी में परस्पर मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गये। तीन वर्ष उपरान्त इटली भी उस द्विराष्ट्र गुट में सक्रिय रूप से सम्मिलित हो गया, और यह मध्य यूरोप में त्रिगुट के नाम से विश्व इतिहास में विख्यात हुआ। सुरक्षा की भावना ने फ्रान्स को मित्रों की खोज के लिए प्रेरित किया, और सन् 1894 में फ्रान्स एवं रूस सुरक्षात्मक मैत्री सन्धि से परस्पर सम्बद्ध हो गये। सन् 1904 में फ्रान्स एवं इंग्लैण्ड के परस्पर मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए। तदुपरान्त सन् 1907 में रूस की इंग्लैण्ड के साथ सन्धि हो गयी। इस त्रिराष्ट्र मैत्री में सुदृढ़ एवं घनिष्ठ मैत्री सम्बन्धों की अपेक्षा सद्भावना एवं सौहार्द्रता की भावना अधिक थी। इस प्रकार सन् 1914 के प्रथम विश्व युद्ध में यूरोप की 6 प्रमुख शक्तियाँ तीन-तीन शक्तियों के गुट के रूप में एक-दूसरे के सामने थीं। जर्मनी का सम्राट कैसर विलियम द्वितीय अत्यधिक महत्वाकांक्षी, क्रोधी तथा दम्भी स्वभाव का व्यक्ति था। "विश्व प्रभुत्व अथवा सर्वनाश ही उसकी नीति का मूलतन्त्र था।" ब्रिटेन से श्रेष्ठ बनने की प्रबल आकांक्षा थी। वह बिस्मार्क के अनुरूप यह स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं था कि भूमि के चूहे (जर्मनी) का पानी के

चूहे (इंगलैण्ड) से कोई बैर नहीं है। ब्रिटेन नौ-सैनिक शक्ति में जर्मनी की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो, उस विचार मात्र से ही उसको अत्यधिक घृणा थी। परिणामस्वरूप अधिकाधिक श्रेष्ठ तथा अधिक संख्या में युद्धपोतों के निर्माण की तीव्र प्रतिस्पर्द्धा आरम्भ हो गयी। वह ब्रिटेन की तटस्थता की नीति को उसकी भीरुता मानता था। विलियम द्वितीय की उग्र, दम्भी एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों ने प्रथम विश्व युद्ध के लिए वातावरण के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बाल्कन संकट—निकट पूर्वी विवाद (Balkan Crisis—Near Eastern Question)—उस बढ़ते हुए तनाव में पूर्वी यूरोप की अनेक राष्ट्रीयताएँ भी ग्रस्त थीं, जिन्होंने तात्कालिक संकट को उत्तेजित किया, जिसके परिणामस्वरूप प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हुआ। आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य में 11 मुख्य राष्ट्रीयताएँ सम्मिलित थीं। विभिन्न राष्ट्रीयताओं के व्यक्ति अत्यधिक अप्रसन्न तथा असन्तुष्ट थे, और यह साम्राज्य जर्जर साम्राज्य के रूप में प्रसिद्ध था। स्लाव जाति के लोग सर्वाधिक असन्तुष्ट थे, परन्तु सर्ब जाति के लोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से आस्ट्रिया-हंगरी सरकार चिन्तित थी, कि साम्राज्य के दक्षिणी भाग के स्लाव जाति के लोग पृथक् देश बनाने के लिए सर्ब जाति के व्यक्तियों के साथ सम्मिलित हो जायेंगे।

बाल्कन क्षेत्र में सशस्त्र संघर्ष ने बारूद के विशाल विस्फोटक ढेर को प्रज्जवलित किया। दीर्घकालीन बाल्कन क्षेत्रीय संकट के अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से अन्य अनेक संकट उत्पन्न हुए। संकटों की पुनरावृत्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यूरोप अधिकाधिक आशंकित हो रहा था। यूरोपीय राष्ट्र अनुभव कर रहे थे कि उनको अधिकाधिक सशस्त्र सेनाओं तथा मित्रों की आवश्यकता थी। फ्रान्स मोरक्को पर पूर्ण नियन्त्रण करना चाहता था। ट्यूनीशिया तथा अल्जीरिया पर उसका पूर्ण नियन्त्रण था और मोरक्को पर आधिपत्य स्थापित करके पश्चिमी भूमध्य सागरीय क्षेत्र पर एकाधिकार करना चाहता था। रूस-जापान युद्ध में रूस की पराजय से प्रेरित होकर जर्मनी ने मोरक्को में फ्रान्स को चुनौती दी और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गयी। रूस ने सुदूर-पूर्व में निराश होकर बाल्कन क्षेत्र में अनुचित हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। जर्मनी के सम्राट कैसर विलियम द्वितीय ने मोरक्को की यात्रा की और वहाँ की जनता को फ्रान्स की भावी साम्राज्यवादी तथा औपनिवेशिक गतिविधियों के विरुद्ध सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन दिया। इस प्रकार जर्मनी ने फ्रान्स को आतंकित किया। सन् 1911 तक फ्रान्स ने मोरक्को पर अपना नियन्त्रण बढ़ा लिया। अब जर्मनी ने अपना युद्धपोत पैन्थर विरोध स्वरूप मोरक्को बन्दरगाह भेजा। फ्रान्स ने मोरक्को के बदले में पश्चिमी अफ्रीका के कुछ क्षेत्र जर्मनी को देकर सन्तुष्ट किया तथा अपने युद्धपोत वापिस बुलाने के लिए सहमत कर लिया। परस्पर सन्देहास्पद शक्तियों के गुटों में घनिष्ठता अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए गम्भीर संकट था। सन् 1906 से सन् 1914 की अवधि में अनेक संकटों की पुनरावृत्ति के कारण प्रतिद्वन्द्वी गुटों का एक-दूसरे से सामना हुआ था और गुट के सदस्यों ने सहयोगी राष्ट्रों का समर्थन किया। त्रिगुट की कूटनीतिक पराजय हुई जिससे उनकी प्रतिष्ठा तथा सम्मान को आघात पहुँचा। मोरक्को संकटों में फ्रान्स एवं इंगलैण्ड ने जर्मनी को कूटनीतिक चातुर्य से पराजित किया था, और उसको त्रिगुट की पराजय माना जाता था।

बाल्कन क्षेत्र का पहला संकट सन् 1908 में बोस्निया में आरम्भ हुआ। जर्मनी, तुर्की तथा आस्ट्रिया मध्य पूर्व में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था। आस्ट्रिया-हंगरी ने युवा तुर्क

क्रान्ति का लाभ लेते हुए सर्बभाषी बोस्निया एवं हर्जेगोविना प्रान्तों का विलय कर लिया था। बर्लिन की सन्धि के प्रावधानों ने आस्ट्रिया को इन प्रान्तों पर नियन्त्रण रखने एवं शासन करने का अधिकार दिया था। विलय सन्धि का स्पष्ट उल्लंघन था। लेकिन आस्ट्रिया, जर्मनी के सशस्त्र समर्थन से आश्वस्त होकर समस्त विरोधों के उपरान्त साम्राज्य विस्तार की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए कटिबद्ध था। ब्रिटेन ने बर्लिन सन्धि के अनावश्यक अतिक्रमण के विरुद्ध विरोध किया और रूस ने आस्ट्रिया के आक्रमण के विरुद्ध कार्यवाही करने की चेतावनी दी। तात्कालिक संकट स्पष्ट दृष्टिगत होता था, लेकिन जर्मनी ने घोषणा कर दी कि वह आस्ट्रिया की गतिविधियों का समर्थन करेगा, और सैन्य सहायता देगा। जर्मनी ने बर्लिन से बगदाद तक रेलवे का निर्माण कार्य आरम्भ किया। सर्बियावासी भी तुर्की साम्राज्य के बोस्निया प्रान्त पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे, और रूस की सरकार सर्बियावासियों का सक्रिय समर्थन कर रही थी। जर्मनी ने रूस को चेतावनी दी कि यदि रूस ने आस्ट्रिया-हंगरी पर आक्रमण किया, तब जर्मनी रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा। रूस जापान के हाथों पराजय से पीड़ित था, अस्तु, अपने क्रोध को निगल जाने के लिए विवश था और सर्बिया को आस्ट्रिया की उदण्डता के समक्ष मौन सहमति व्यक्त करनी पड़ी, परन्तु कूटनीतिक चातुर्य से कुछ काल के लिए संकट टल गया। सन् 1908 के बोस्निया संकट में आस्ट्रिया-जर्मनी गुट ने त्रिराष्ट्र मैत्री दल पर विजय प्राप्त की तथा रूस को अपमानित किया।

इस प्रकार बारी-बारी से कूटनीतिक पराजयों तथा विजयों से परस्पर कटुता अत्यधिक बढ़ गयी, दोनों विरोधी गुटों में वैमनस्य तथा प्रतिद्वन्द्विता अधिक तीव्र हो गयी, और इस प्रकार युद्ध के लिए मंच तैयार हो गया। बाल्कन युद्धों के महत्व को दर्शाते हुए ग्रान्ट एवं टैम्पर ले ने मत व्यक्त किया है, "सन् 1914 के महायुद्ध के लिए बाल्कन युद्धों के अतिरिक्त अन्य कोई घटना उतनी अधिक उत्तरदायी नहीं थी।" प्रो. एल. मुकर्जी कहते हैं, "बोस्निया संकट ने घटनाओं की शृंखला में एक कड़ी बनायी जिसके परिणामस्वरूप महायुद्ध हुआ।"

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से छोटे से देश सर्बिया का अपनी जाति एवं संस्कृति के समस्त नागरिकों के क्षेत्र तक सीमाओं का विस्तार करके विशाल सर्बिया बनाने का स्वप्न था। बाल्कन संकट अभी समाप्त नहीं हुआ था। बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया तथा सर्बिया के मध्य कटु शत्रुता युद्ध के लिए तात्कालिक अवसर था। बोस्निया तथा हर्जेगोविना प्रान्तों के निवासी सर्बियावासियों की जाति, वंश एवं भाषा के थे। उन दोनों प्रान्तों के विलय से बाल्कन क्षेत्र में दूसरे अलजेक-लारेन का उदय हो गया था। सर्बियावासी अत्यधिक उत्तेजित थे। उनका विचार था कि सर्बिया को उसके जन्मसिद्ध अधिकार और विस्तार के वैध क्षेत्र से वंचित कर दिया था। सर्बिया स्वयं को तुर्की और आस्ट्रिया अधिकृत क्षेत्रों में स्लावों का प्रबल समर्थक एवं मुक्तिदाता मानता था, अस्तु, सर्बिया उग्र राष्ट्रवादी भावना से उद्वेलित था। सर्बियावासियों ने उन दोनों प्रान्तों का सर्बिया में विलय करने के लिए आस्ट्रिया का सक्रिय विरोध आरम्भ किया, परन्तु आस्ट्रिया सर्बिया के विस्तार को रोकने के लिए कृत संकल्प था। आस्ट्रिया को भय था कि सर्बिया अपने क्षेत्राधिकार का विस्तार करके तथा अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि करके आस्ट्रिया शासन के अधीन लाखों क्रोटो-स्रबों को अपनी ओर आकर्षित कर लेगा। अस्तु, सर्बिया को अधिकाधिक रोकना ही आस्ट्रिया की नीति हो गयी थी। जर्मनी भी सर्बिया को निर्बल एवं आज्ञाधीन बनाना चाहता था, अन्यथा बर्लिन-बगदाद विशाल परियोजना के प्रभावित होने की प्रबल सम्भावना थी, क्योंकि इस पर मुख्य रेलवे का पूर्ण नियन्त्रण था। सन् 1912 में सर्बिया, रोमानिया, बुल्गारिया तथा यूनान ने तुर्की पर आक्रमण कर दिया और उसके

बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लिया, परन्तु विवाद का अन्त नहीं हुआ था। अगले वर्ष सन् 1913 में तुर्की के संयुक्त रूप से अधिकृत क्षेत्रों के विभाजन के प्रश्न पर परस्पर सशस्त्र संघर्ष आरम्भ हो गया। द्वितीय बाल्कन युद्ध के बाद रूस समर्थित सर्बिया का मूर्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली देश के रूप में अभ्युदय हुआ और उसका कुल अधिकृत क्षेत्र दुगुना हो गया।

सन् 1912-13 का द्वितीय बाल्कन संकट (The Second Balkan Crisis of 1912-13)—आस्ट्रिया के सर्बिया विरोधी दृष्टिकोण के कारण द्वितीय निकट पूर्व संकट उत्पन्न हुआ। सन् 1912-13 के बाल्कन युद्धों में आस्ट्रिया ने सर्बिया की महत्वाकांक्षाओं को ध्वस्त करने का अथक प्रयास किया और बहुत ही कठोर दृष्टिकोण रखा। जर्मनी के सहयोग से युद्ध की धमकी देकर सर्बिया को, उसके द्वारा तुर्कों से विजित एड्रियाटिक नगरों को खाली करने के लिए बाध्य किया, परन्तु आस्ट्रिया के आग्रह पर सर्बिया को सन् 1912-13 के बाल्कन युद्धों में विजय के कुछ लाभों से वंचित कर दिया गया, और सर्बिया को समुद्र तक कोई मार्ग प्राप्त करने से रोकने के लिए जर्मन राजकुमार के नेतृत्व में अल्बानिया नाम के नये कृत्रिम राज्य का सृजन किया गया। आस्ट्रिया ने सर्बिया पर आक्रमण की योजमा भी बनायी,लेकिन त्रि-राष्ट्र सन्धि के एक सदस्य इटली के असहयोग के कारण आस्ट्रिया को योजना को स्थगित करना पड़ा। आस्ट्रिया युद्ध के लिए उत्सुक था, लेकिन जर्मनी ने उसको रोक दिया, क्योंकि उसकी दृष्टि में समय उपयुक्त नहीं था। आस्ट्रिया की योजना का इंग्लैण्ड और रूस ने कठोर विरोध किया था, और रूस ने सर्बिया के दावों के समर्थन में अपनी सेनाएँ भी भेज दी थीं। इस प्रकार युद्ध का संकट टल गया था।

सर्बिया के राष्ट्रवादियों की गतिविधियों में रूस के सर्व-स्लाववादियों ने सक्रिय सहयोग एवं सहायता की। सर्व-स्लाव आन्दोलन इस सिद्धान्त पर आधारित था कि पूर्वी यूरोप के समस्त स्लाव एक विशाल स्लाव परिवार के सदस्य थे। यह मत व्यक्त किया गया कि रूस को सर्वाधिक शक्तिशाली स्लाविक राज्य के रूप में बाल्कन स्थित छोटे राज्य का मार्गदर्शन करना चाहिए, और उसका संरक्षक बनना चाहिए। सर्व-स्लाववाद कुछ कट्टर राष्ट्रवादियों की मात्र स्वैच्छिक भावना ही नहीं थी, वरन् यह रूस की सरकार की अधिकृत नीति का एक भाग थी। सर्बिया एवं आस्ट्रिया के मध्य संघर्ष में रूस के सशस्त्र समर्थन के पीछे यही नीति निहित थी। आस्ट्रिया के सक्रिय विरोध के उपरान्त भी सर्बिया ने अपने क्षेत्राधिकार का विस्तार किया, और अपने गौरव एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि की। उसकी उग्र देशभक्ति प्रधान भावना ने अखिल स्लाव आन्दोलन को उत्तेजित किया। आस्ट्रिया ने अपने प्रयास, सर्बिया को अन्य शक्तियों से विलग करने तथा सर्बिया का दमन करने पर केन्द्रित किये। इस प्रकार आस्ट्रिया-सर्बिया विवाद अत्यधिक विकराल रूप ग्रहण कर चुका था। केवल 15 माह में आस्ट्रिया के सम्राट के भतीजे आर्कड्यूक फ्रान्सिस फर्डीनेण्ड की बोस्निया की राजधानी सेराजेवो में बोस्नियावासी सर्ब द्वारा हत्या ने विश्व युद्ध के लिए अपेक्षित चिंगारी का कार्य किया। इस प्रकार विश्वमंच पर पर्याप्त मात्रा में प्रज्वलनशील सामग्री उपलब्ध थी और संकलित प्रज्वलनशील साम्रगी को प्रज्वलित करने के लिए किसी भी देश में उग्र राष्ट्रवादियों तथा अन्ध देशभक्तों का अभाव नहीं था। विश्व युद्ध से पूर्व के वर्षों की स्थिति पर विचार व्यक्त करते हुए **लार्ड ऑक्सफोर्ड** ने लिखा था, "हम प्रायः सजग थे कि हम सबसे कम बर्फ की पर्त पर चल रहे (skating) थे और यूरोप की शान्ति अप्रत्याशित एवं अनपेक्षित दुर्घटनाओं के अध्याय की दया पर निर्भर थी।"

महाशक्तियों के उद्देश्यों की विविधता (Variations of Aims of the Great Powers)—महाशक्तियों के विविध उद्देश्यों में ही शक्ति सन्तुलन के लिए धमकी निहित थी। सन् 1900 तक यूरोप की 6 महाशक्तियाँ जर्मनी, फ्रान्स, रूस, इटली, आस्ट्रिया-हंगरी और इंग्लैण्ड शक्ति, सुरक्षा एवं आर्थिक लाभ के लिए प्रतिस्पर्धा में व्यस्त थीं। प्रत्येक का विशिष्ट उद्देश्य था, जिसकी प्राप्ति को वे राष्ट्रहित में अनिवार्य मानते थे। पूर्व की ओर साम्राज्य विस्तार की जर्मनी की प्रबल आकांक्षा थी। सन् 1890 के उपरान्त जर्मन पूँजीवादियों एवं साम्राज्यवादियों ने पूर्व की ओर अभियान का स्वप्न देखा, और ओटोमन साम्राज्य पर आर्थिक नियन्त्रण को सहज और सुविधाजनक बनाने के लिए बर्लिन-बगदाद रेलवे निर्माण की योजना बनायी। आस्ट्रिया की भी पश्चिमी एशिया के किसी भी भाग की अपेक्षा बाल्कन क्षेत्र में गहन रुचि थी। उसका ट्रियेस्ट (Trieste) एवं एड्रियाटिक सागर के तट के अन्य भागों पर नियन्त्रण बहुत संदिग्ध था, क्योंकि अधिकांश भाग में इटलीवासियों का स्थायी निवास था। आस्ट्रिया समुद्र तक अपनी पहुँच को अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित बनाने के उद्देश्य से बाल्कन क्षेत्र से होकर एजियन (Agean) तक मार्ग बनाने के लिए उत्सुक था। समय के साथ-साथ आस्ट्रिया और जर्मनी अधिकाधिक एक-दूसरे पर निर्भर हो गये। आस्ट्रिया के अन्दर एवं बाहर अधिकृत क्षेत्रों में स्लावों की विकट समस्या थी, और जर्मनी बढ़ती हुई घेराबन्दी से भयभीत था। सन् 1879 में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ सन्धि की, जिसका भविष्य में समय-समय पर नवीनीकरण हुआ, और ये सम्बन्ध सुदृढ़ होते गये। "यह एक शव के साथ सन्धि थी, लेकिन जर्मनी जैसे-जैसे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव गहन होता गया, उसके साथ अधिकाधिक चिपकता गया।"

फ्रान्स—बहुत अंशों तक फ्रान्स के उद्देश्य जर्मनी की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति को नियन्त्रित अथवा प्रति-सन्तुलित करने की प्रबल आकांक्षा से शासित थे। सन् 1878 में सिडनी थामस और पी. सी. गिलक्राइस्ट ने निम्नस्तरीय लौह-अयस्क को इस्पात में परिवर्तित करने की विधि का आविष्कार किया था। इससे अलजैक और लारेन लौह-अयस्क एवं कोयले के भण्डारों का मूल्य बहुत बढ़ गया था। फ्रान्स इन प्रान्तों को पुनः प्राप्त करने के लिए उत्सुक था। इन प्रान्तों की प्राप्ति के अतिरिक्त फ्रान्स दुःखद ढंग से कुशासित मोरक्को को यूरोप की अन्य शक्तियों के हितों की उपेक्षा करते हुए अपने साम्राज्य में मिलाने के लिए कृत संकल्प था। पेरिस के राजनीतिज्ञों के उद्देश्य आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों ही थे। मोरक्को खनिज भण्डारों की दृष्टि से बहुत सम्पन्न था। सामरिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। यह एक स्रोत था, जिससे फ्रान्स में मानवशक्ति के अभाव की पूर्ति की जा सकती थी।

रूस—रूस, बोस्फोरस एवं डार्डेनेल्स को 19वीं शताब्दी से अपना "ऐतिहासिक जीवन लक्ष्य" (Historic Mission) मानता था। इन दोनों क्षेत्रों पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित करना रूस की सर्वोच्च महात्वाकांक्षा थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति से कालासागर में नौ-सैनिक शक्ति अथवा अनेक शक्तियों के साथ युद्ध की स्थिति में रूस के नौ-सैनिक बेड़े को दबाये रखने की सम्भावना समाप्त हो जायेगी। इसके अतिरिक्त भू-मध्य सागर तक रूस की निर्विवादित पहुँच सहज हो जायेगी, और सम्भवतः कुस्तुनतुनिया पर पूर्ण नियन्त्रण हो जायेगा। साथ ही यदि ज़ार के अपने आदमी जर्मनवासियों से पहले कुस्तुनतुनिया पहुँच जाते हैं, वे बर्लिन से बग़दाद तक रेलवे के निर्माण कार्य को दिवा-स्वप्न में परिवर्तित कर सकते थे। साम्राज्यिक रूस की अन्य महत्वाकांक्षाओं में फारस की खाड़ी और भारतीय महासागर तक लोलुप पहुँच भी सम्मिलित थी। रूस ने फ़ारस को अपना संरक्षक राज्य बनाने के लिए अनेक वर्षों तक

प्रयत्न किये थे। रूस ने प्रशान्त महासागर तक अपेक्षाकृत अधिक अच्छे बाजार प्राप्त करने के प्रयास किये, और मंचूरिया तक अपने नियन्त्रण का विस्तार करने का प्रयत्न किया। रूस की सर्व-स्लाववाद के माध्यम से आस्ट्रिया-हंगरी शासित क्षेत्रों सहित पूर्वी यूरोप की समस्त स्लाव जनता के मार्गदर्शक एवं रक्षक की भूमिका का निर्वाह करने की प्रबल आकांक्षा थी। रूस की प्रत्येक महत्वाकांक्षा यथास्थिति के लिए स्वयं में एक धमकी थी।

इंग्लैण्ड—यथार्थ में, ब्रिटेन की नीति लगभग प्रत्येक महाशक्ति के विरुद्ध थी। उसको जर्मनी की अपेक्षा रूस की कुस्तुनतुनिया के प्रति महत्वांकाक्षा से कम आशंका एवं सन्देह नहीं था। बीसवीं शताब्दी के पूर्व तक उसको फ्रान्स पर भी अविश्वास था। अपने साम्राज्य की जीवन रेखाओं को बनाये रखना, अपने आयात के स्रोतों और अपने विदेशी बाजारों के लिए समुद्री मार्गों को उन्मुक्त बनाये रखना, एवं यूरोपीय महाद्वीप के राष्ट्रों के मध्य सन्तुलन वनाये रखना, जिससे उनमें से कोई भी इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने योग्य शक्तिशाली न बन जाये, इंग्लैण्ड के तीन प्रमुख उद्देश्य थे। यदि किसी अन्य देश की गतिविधियाँ उपर्युक्त उद्देश्यों में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की धमकी देतीं, इंग्लैण्ड उसका तत्काल शत्रु बन जाता था। ऐसी स्थिति में इंग्लैण्ड आक्रमणकारी देश को कूटनीतिक प्रयासों अथवा उस देश के विरुद्ध मैत्री सन्धि द्वारा शान्त करने का प्रयत्न करता। कूटनीतिक प्रयासों की असफलता के वाद उस देश के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने में संकोच नहीं करता था। सन् 1914 में इंग्लैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध इन्हीं परिस्थितियों में युद्ध की घोषणा की।

इटली की नीति मुख्य रूप से आस्ट्रिया और तुर्की द्वारा विवर्धन (बढ़ा-चढ़ाकर कहना) की आशाओं पर आधारित थी। सन् 1915 तक उन क्षेत्रों, तथाकथित इटेलिया इर्रिडेन्टा (अनिष्पादित इटली) जिन पर इटली अपना न्यायोचित अधिकार मानता था, आस्ट्रिया का आधिपत्य रहा, जबकि तुर्की ने इटली द्वारा त्रिपोली एवं उत्तरी अफ्रीका स्थित अन्य क्षेत्रों पर आधिपत्य के प्रयासों को अवरुद्ध किया।

मनुष्य में निजी स्वार्थ एवं संकुचित हित के आविर्भाव से व्यक्ति में सद्भावना तथा प्रेम कम हो जाता है। उग्र राष्ट्रीयता की सीमित एवं संकुचित भावना, कूटनीतिक चातुर्य से उत्पन्न ईर्ष्या, द्वेष एवं मनोमालिन्य एवं आर्थिक हित चिन्तन की प्रबल भावना के प्रचलन ने शान्ति के आह्वान को निरर्थक कर दिया था। शान्ति और सद्भावना के स्थान पर अविश्वास, सन्देह, भय, घृणा, ईर्ष्या एवं द्वेष की भावनाओं का आविर्भाव हो गया था। ऐसी विषम स्थिति में विभिन्न राष्ट्रों के लिए शान्त मस्तिष्क से विचार करना कठिन हो गया था। इस समय अनेक व्यक्ति डार्विन के सिद्धान्त से प्रभावित थे और सामाजिक डार्विनवाद में पूर्ण आस्था थी। उनका विश्वास था कि सर्वाधिक योग्य एवं सक्षम राष्ट्र ही शेष रहेगा, और उन्नति करेगा। कुछ व्यक्तियों का विश्वास था कि संघर्ष ही जीवन का एक स्वाभाविक नियम है, और विकास के लिए अनिवार्य है। विभिन्न राष्ट्रों की जनता अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को सर्वोत्कृष्ट मानती थी और दलित राष्ट्रों की उन्नति तथा विकास को अपना धार्मिक कर्तव्य समझती थी इस छद्म कर्तव्य के नाम पर अन्य जातियों पर प्रभुत्व स्थापित करना नैतिक दृष्टि से न्यायोचित माना जाता था। अस्तु, भौतिकवादी उन्नति एवं विकास के सन्दर्भ में धार्मिक तथा मानवीय भावनाओं का लोप हो रहा था, और नरसंहार से नैतिक दृष्टिकोण को कोई आघात नहीं पहुँचता था। अपने भौतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सैन्य शक्ति के प्रयोग को सहज, स्वाभाविक एवं न्यायोचित मानते थे।

प्रेस की भूमिका (Role of Press)—आधुनिकीकृत विकसित एवं विकासशील देशों में समाचार-पत्र इस देश की जनभावना, दृष्टिकोण, आस्थाओं, विश्वासों एवं मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, और समाचार-पत्र जनमत को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। इस अवधि में समस्त देशों के समाचार-पत्रों ने उग्र राष्ट्रीयता की प्रबल भावना से उद्वेलित होकर अनेक घटनाओं को इस रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की कि जनता में आक्रोश बढ़ गया और जनता अत्यधिक उत्तेजित हो गयी। ऐसी स्थिति में विभिन्न विवादों का शान्तिपूर्ण समाधान असम्भव हो गया। इंग्लैण्ड के समाचार-पत्रों ने जर्मनी के सम्राट विलियम द्वितीय की नीतियों की कटु आलोचना द्वारा जर्मनी की जनता में इंग्लैण्ड के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, घृणा एवं शत्रुता की भावना को उद्दीप्त किया। फ्रान्स तथा जर्मनी के सम्बन्धों में कटुता, समाचार-पत्रों के माध्यम से अभिव्यक्त उग्र राष्ट्रवादी भावना का ही परिणाम थी। युवराज आर्कड्यूक की नृशंस हत्या के उपरान्त दोनों देशों के समाचार-पत्रों में अत्यधिक कटु एवं आलोचनात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। परिणामस्वरूप दोनों देशों की जनता में एक-दूसरे के प्रति अत्यधिक घृणा, वैमनस्य एवं शत्रुता की भावना थी। जून, 1914 में सेन्ट पीटर्सबर्ग से प्रकाशित होने वाले पत्र 'बोर्स गजट' ने स्पष्ट लिखा था "रूस तैयार है और फ्रान्स को भी तैयार रहना चाहिए।" जर्मन सम्राट इस समाचार से अत्यधिक उत्तेजित हो गया। युद्ध को उत्तेजित करने में यूरोपीय देशों के समाचार-पत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। निःसन्देह अनियन्त्रित एवं अनुत्तरदायी प्रेस की भूमिका भी प्रथम विश्वयुद्ध के अनेक कारणों में एक थी। विद्वान इतिहासकार फे ने इस सन्दर्भ में विचार व्यक्त किया है, "सरकार के नियन्त्रण के अभाव में समाचार-पत्रों के द्वारा सरलता से युद्ध का वातावरण तैयार किया जा सकता है।"

सामान्यतः विश्वास किया जाता है कि प्रथम विश्वयुद्ध का तात्कालिक कारण आर्कड्यूक फ्रान्सिस फर्डीनेण्ड की हत्या था। यह केवल सन्देह और घृणा की संकलित बारूद पर माचिस की तीली मात्र थी। फिर भी यह कोई छोटी घटना नहीं थी। 84 वर्षीय सम्राट फ्रान्सिस जोसेफ का किसी भी समय देहावसान हो सकता था। फ्रान्सिस फर्डीनेण्ड आस्ट्रिया का उत्तराधिकारी होने के कारण शीघ्र ही सम्राट बनने वाला था। उत्तराधिकारी की हत्या को यथार्थ में राज्य पर आक्रमण माना गया। बाल्कन क्षेत्रीय घटनाओं से आस्ट्रिया-हंगरी सरकार की चिन्ता अत्यधिक बढ़ गयी। 28 जून, 1914 को जब आस्ट्रिया के युवराज आर्कड्यूक फ्रान्सिस फर्डीनेण्ड और उसकी पत्नी अपनी बोस्निया की राजधानी साराजेवो की सड़क पर विचरण कर रहे थे, ब्लैक हैन्ड नाम की एक गुप्त आतंकवादी संस्था के एक सक्रिय सदस्य बोस्निया के विद्यार्थी प्रिन्सिप ने युवराज तथा उसकी पत्नी की नृशंस हत्या कर दी। प्रिन्सिप तो सर्बिया के राष्ट्रवादियों का मात्र उपकरण था। इसका षड्यन्त्र बेलग्रेड में रचा गया था। इस षड्यन्त्र का उद्देश्य एवं अन्तनिर्हित कारण क्या था। यह निश्चित रूप से फर्डीनेण्ड के सम्राट बनते ही हैप्सबर्ग साम्राज्य के पुनर्गठन की योजना में निहित था। परीक्षणवाद (Trialism) के नाम से विदित इस योजना में द्वैत राजतन्त्र से त्रिपक्षीय राजतन्त्र में परिवर्तित करने का प्रस्ताव था। तत्कालीन स्वायत्तशासी जर्मन आस्ट्रिया और मैग्यार हंगरी के अतिरिक्त समस्त स्लाव समुदाय की तीसरी अर्द्ध-स्वतन्त्र इकाई बनाने की योजना थी। सर्ब राष्ट्रवादी इस योजना के विरुद्ध थे, उनको आशंका थी कि इस योजना के कार्यान्वयन से उनके एवं क्रोटियन सम्बन्धी हैप्सबर्ग शासन के अन्तर्गत सन्तुष्ट हो जायेंगे। अस्तु, वे फ्रान्सिस फर्डीनेण्ड के आस्ट्रिया-हंगरी का सम्राट बनने से पूर्व ही उसको अपने मार्ग से हटाने के लिए कृत संकल्प थे।

आस्ट्रिया के अधिकारियों की जाँच ने इस तथ्य की पुष्ट कर दी कि षड्यन्त्र की रचना सर्बिया के राष्ट्रवादियों ने की थी। इस घटना से समस्त आस्ट्रिया में सर्बियावासियों के प्रति घृणा का वातावरण बन गया। आस्ट्रिया सरकार ने इस जघन्य हत्या के लिए सर्बिया की सरकार को दोषी घोषित किया। आस्ट्रिया ने जर्मनी से सम्पर्क स्थापित किया, और जर्मनी ने पूर्ण समर्थन का आश्वासन दिया। तदुपरान्त आस्ट्रिया ने साराजेवो घटना के बाद 23 जुलाई, 1914 को सर्बिया को कठोर चेतावनी देते हुए 48 घण्टे की अवधि में अपनी माँगों को स्वीकार करने के लिए निरर्थक प्रयास किया। आस्ट्रिया ने सर्बिया से 11 माँगों के अन्तर्गत आस्ट्रिया विरोधी समाचार-पत्रों का दमन करना, गुप्त देशभक्त समितियों का उन्मूलन करना, सरकार और सेना से आस्ट्रिया विरोधी प्रचार के दोषी व्यक्तियों को हटाना और हैप्सबर्ग साम्राज्य के विरुद्ध आन्दोलन का दमन करने के लिए आस्ट्रिया के अधिकारियों का सहयोग स्वीकार करना था। सर्बिया ने 5 माँगों को स्वीकार कर लिया था। केवल एक माँग को बलपूर्वक अस्वीकार किया था। यद्यपि युद्ध के समस्त आधार समाप्त हो चुके थे। कैसर विलियम ने इस तथ्य को स्वयं स्वीकार किया लेकिन, सर्बिया के उत्तर को असन्तोषजनक कहते हुए कूटनीतिक सम्बन्ध समाप्त कर लिए और सेना को युद्ध के आदेश दे दिये। कुछ माँगों को अपनी प्रभुसत्ता का अतिक्रमण होने की सम्भावना से अस्वीकार कर दिया। सर्बिया ने हेग के न्यायालय अथवा महान् शक्तियों के सम्मेलन में विवाद के निर्णय का प्रस्ताव रखा। आस्ट्रिया इससे सहमत नहीं हुआ।

रूस स्वयं एक स्लाव राज्य था। अस्तु बाल्कन क्षेत्र में स्लाव राज्यों की नियति में उसकी गहन रुचि थी। रूस, सर्बिया जैसे स्लाव राज्य का विशाल शक्ति द्वारा दमन शान्ति पूर्वक नहीं देख सकता था। रूस ने स्पष्ट रूप से घोषणा की, बाल्कन विवाद यूरोपीय चिन्ता का विषय था, और अतीत के बाल्कन प्रायद्वीप से सम्बन्धित समस्त विवादों के निर्णय यूरोपीय शक्तियों के सम्मेलन में लिये जाएँ। जर्मनी द्वारा समर्थित आस्ट्रिया ने अपना कठोर दृष्टिकोण अभिव्यक्त करते हुए घोषणा की, कि यह विवाद उससे एवं सर्बिया से सम्बन्धित है, और किसी भी अन्य देश को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। जर्मनी सहित अधिकांश यूरोपीय देशों ने सर्बिया के प्रस्ताव को न्यायोचित एवं तर्कसंगत स्वीकार किया। जर्मनी के सम्राट कैसर विलियम ने मत व्यक्त किया कि युद्ध के लिए प्रत्येक कारण समाप्त हो गया था, और जब उसकी चेतावनी निरर्थक सिद्ध हुई, रूस ने अपनी सेना आस्ट्रिया के विरुद्ध भेज दी। रूस की सैनिक गतिविधियों के परिणामस्वरूप जर्मनी भी सक्रिय रूप से युद्ध क्षेत्र में आ गया। आस्ट्रिया की सेना ने सर्बिया पर आक्रमण कर दिया। जर्मनी ने आस्ट्रिया की सहायता की, और फ्रान्स ने रूस की सहायता के लिए सशस्त्र सेना भेजी।

अब तक इंगलैण्ड बिल्कुल अलग था, और उसने शान्ति बनाये रखने का अथक प्रयास किया, परन्तु जर्मनी की गतिविधियों ने इंगलैण्ड की तटस्थता को असम्भव कर दिया। जर्मनी ने 3 अगस्त, 1914 को फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जर्मनी ने फ्रान्स पर द्रुतगति से निर्णायक आक्रमण करने के लिए बेल्जियम के अधिकृत क्षेत्र से सेना के जाने के लिए मुक्त मार्ग की माँग की और जब बेल्जियम ने जर्मनी की इस अनुचित माँग को अस्वीकार कर दिया, तब जर्मनी की सशस्त्र सेना ने बेल्जियम की तटस्थता का अतिक्रमण करते हुए उसकी सीमा में प्रवेश किया। प्रशा सहित यूरोपीय शक्तियों ने बेल्जियम की तटस्थता का आश्वासन दिया था। इंगलैण्ड ने अपनी सन्धि के प्रावधानों के प्रति निष्ठावान रहते हुए

अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए 4 अगस्त, 1914 की मध्य रात्रि को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। ब्रिटिश विदेशमन्त्री तत्काल संसद गए और विचार व्यक्त किया कि इंग्लैण्ड को अन्तर्राष्ट्रीय कानून की रक्षा एवं छोटे राज्यों की सुरक्षा करनी चाहिए। उसने आगे कहा कि इन परिस्थितियों में शान्ति नैतिक अपराध होगा और घोषणा की, यदि इंग्लैण्ड इस सन्दर्भ में अपने दायित्वों का निर्वाह करने में विफल होता है, तब इंग्लैण्ड की सभ्य संसार में समस्त सम्मान एवं प्रतिष्ठा समाप्त हो जायेगी। 4 अगस्त को मन्त्रिपरिषद् में जर्मनी को अन्तिम चेतावनी का निर्णय किया गया। जर्मनी से बेल्जियम की तटस्थता बनाये रखने का आग्रह किया और मंध्यरात्रि तक उत्तर की प्रतीक्षा की। रात्रि 12 बजते ही ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

7 अगस्त को मोण्टेने ग्रिन्स सर्बो के समर्थन में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हो गया। 2 सप्ताह बाद जापान ने ब्रिटेन के साथ सन्धि एवं मुख्य रूप से सुदूर पूर्व में जर्मन अधिकृत क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 6 अप्रैल, 1917 को संयुक्त राज्य अमेरिका ने त्रिगुट के पक्ष में युद्ध में प्रवेश किया। नैतिक सिद्धान्तों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने कहा, "विश्व को लोकतन्त्र के लिए सुरक्षित बनाना" निरंकुशता एवं सैन्यवाद को समाप्त करना, अतीत के कूटनीतिक सैनिक प्रशिक्षण अभ्यास को समाप्त करना, युद्ध में प्रवेश के मुख्य कारण थे। समुद्रतट से निचले स्तर पर स्थित देशों जैसे हालैण्ड एवं बेल्जियम की अखण्डता तथा प्रभुसत्ता बनाये रखना अनेक शताब्दियों से इंग्लैण्ड की विदेश नीति का प्रमुख सिद्धान्त रहा था जिससे अपने समुद्र तट के विपरीत समुद्र तटों का शत्रु की नौ-सैना प्रयोग नहीं कर सके। बेल्जियम पर जर्मनी का नियन्त्रण हालैण्ड की सुरक्षा के लिए बहुत बड़ा खतरा था।

इटली ने मत व्यक्त किया कि उसके मित्र राष्ट्र सुरक्षात्मक सशस्त्र संघर्ष नहीं कर रहे थे, अस्तु, त्रिगुट का सदस्य होते हुए भी अपनी तटस्थता की घोषणा की। इटली मई, 1915 तक तटस्थ रहा और त्रिगुट के पक्ष में युद्ध में सम्मिलित हो गया। यह विश्व युद्ध विशालता, व्यापकता तथा पद्धतियों की दृष्टि से अन्य युद्धों से पूर्णतया भिन्न था। यह एक विश्वव्यापी युद्ध था, जिसमें विश्व के समस्त सभ्य देशों ने किसी न किसी रूप में भाग लिया था। सक्रिय सशस्त्र संघर्ष में विभिन्न राष्ट्रों की सेनाओं की संख्या पूर्वापेक्षा अत्यधिक थी। इस युद्ध ने असाधारण एवं अकल्पित मानव संहार किया। इस युद्ध में समस्त शस्त्रास्त्रों का निःसंकोच प्रयोग किया गया। यद्यपि यह युद्ध अनेक दृष्टियों से यूरोपीय युद्धों के अनुरूप शक्ति सन्तुलन के लिए हुआ था। सन् 1871 में प्रशा ने समस्त यूरोप को आतंकित कर रखा था। जर्मनी का प्रभुत्व तथा आक्रामक सैन्यवाद यूरोपीय शान्ति के लिए सदैव संकट बना रहा, और इसी कारण अनेक यूरोपीय राष्ट्रों ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध को समान उद्देश्य स्वीकार कर लिया था।

साक्ष्यों का अध्ययन करने वाले विद्वान इतिहासकारों का मत है कि कोई एक राष्ट्र पूर्णरूप से इस युद्ध के लिए उत्तरदायी नहीं था। सम्भवतः कोई भी महाशक्ति युद्ध नहीं चाहती थी। वे अन्य साधनों से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उत्सुक थे। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने प्रयासों में ऐसी नीतियों का अनुसरण किया, जिसने युद्ध अनिवार्य बना दिया था। सम्भवतः जर्मनी के राष्ट्रीय उद्देश्य सर्वाधिक खतरनाक थे। इन उद्देश्यों ने यूरोप में शक्ति सन्तुलन के लिए अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर खतरा उत्पन्न कर दिया था।

प्रथम विश्व युद्ध का स्वरूप एवं घटनाक्रम
(CHARACTER AND EVENTS OF FIRST WORLD WAR)

आस्ट्रिया ने सर्बिया के उत्तर से असन्तोष व्यक्त करते हुए कूटनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद करके सेना को आक्रमण के लिए भेज दिया था। सर्ब स्वयं भी आस्ट्रिया को किसी प्रकार प्रसन्न करने के मिथ्या भ्रम में नहीं थे। अपना उत्तर भेजने से तीन घण्टे पूर्व अपनी सेना को गमन करने के लिए आदेश दे चुके थे। इस स्थिति में अन्य महाशक्तियों का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण था। इस घटना से कुछ ही पूर्व महाशक्तियों के अनेक शक्तियों का दृष्टिकोण आक्रमणात्मक हो गया था। 18 जुलाई, 1914 को रूस के विदेशमन्त्री सोजोनोव (Sozonov) ने आस्ट्रिया को चेतावनी दी थी कि रूस सर्बिया को अपमानित करने के किसी भी प्रयास को सहन नहीं करेगा। 24 जुलाई को सोजोनोव ने जर्मन राजदूत से कहा था, "मैं आस्ट्रिया से घृणा नहीं करता हूँ। मैं उसको तुच्छ समझता हूँ। आस्ट्रिया सर्बिया को निगलने का बहाना ढूंढ रहा है, लेकिन ऐसी स्थिति में रूस आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा।" रूस के कठोर दृष्टिकोण के पीछे फ्रान्स का समर्थन था। 20 जुलाई को फ्रान्स के राष्ट्रपति रेमन्ड प्वाइनकेयर ने अपनी रूस की यात्रा के अवसर पर सोजोनोव से दृढ़ रहने का आग्रह किया था और किसी ऐसे समझौते से, जिससे त्रिगुट की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचे, बचने के लिए कहा था। उसने आस्ट्रिया को चेतावनी देते हुए कहा था, "रूसी जनता के रूप में सर्बिया के उत्साही मित्र हैं और रूस का अपना मित्र है, फ्रान्स।"

यद्यपि फ्रान्सिस फर्डीनेण्ड की नृशंस हत्या से विलियम कैसर क्षुब्ध एवं उत्तेजित था, लेकिन रूस के कठोर दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति से पूर्व तक उसने कोई उग्र कार्यवाही नहीं की थी। दुर्भाग्य से कैसर विलियम एवं जर्मनी के चान्सलर वान बैथमैन हौलवेग (Von Bethmann Hollweg) सर्बिया को कठोर दण्ड देने का निश्चय कर चुके थे। 6 जुलाई, 1914 को बर्थमैन होलवैग ने आस्ट्रिया के विदेशमन्त्री काउन्ट बर्चटोल्ड (Count Berchtold) को जर्मनी की प्रतिबद्धता का पत्र दिया जिसकी कोरा चैक के रूप में व्याख्या की गयी। कैसर विलियम द्वितीय ने आस्ट्रिया सरकार को सूचित किया कि "वह सन्धि के दायित्वों एवं और पुरानी मित्रता के अनुसार आस्ट्रिया के समर्थन में सच्चा रहेगा।" बैथमैन एवं कैसर विलियम यह वचन देते हुए इस आशा के साथ जुआ खेल रहे थे कि रूस सर्बिया की सुरक्षा के लिए हस्तक्षेप नहीं करेगा और यह विवाद सीमित विवाद बना रहेगा।

28 जुलाई, 1914 को आस्ट्रिया ने सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। नौ-सैनिक बेड़े को बहुत आशा थी कि यह संघर्ष सीमित रहेगा, लेकिन रूस की कार्यवाही ने इसको शीघ्र ही विशाल एवं व्यापक युद्ध में रूपान्तरित कर दिया। 29 जुलाई, 1914 को सोजानोव और सैनिक गुट ने जार से आस्ट्रिया एवं जर्मनी के विरुद्ध सेना के कूच करने के आदेश पर हस्ताक्षर करने का आग्रह किया। 30 जुलाई, 1914 को जार निकोलस ने सेना के लामबन्दी के आदेश जारी कर दिये। सोजोनोव ने इसकी सूचना तत्काल सेनाध्यक्ष को दी। जार की कार्यवाही से स्थिति अत्यधिक जटिल हो गयी। जर्मनी, फ्रान्स और रूस में सेना की लामबन्दी का अर्थ युद्ध था। जार के आदेश के क्रियान्वयन का समाचार मिलते ही जर्मनी के कैसर विलियम ने रूस को 12 घण्टे में सेना की लामबन्दी (Mobilization) रोकने की चेतावनी दी। 1 अगस्त, 1914 को जर्मनी के राजदूत ने रूस के विदेशमन्त्री से जर्मनी की अन्तिम चेतावनी का सहृदय उत्तर का अनुरोध किया। सोजोनोव, रूस के विदेशमन्त्री ने उत्तर

दिया कि सेना की लामबन्दी तो नहीं रुक सकती, लेकिन रूस वार्ता जारी रखने का इच्छुक है। जर्मनी के राजदूत ने नकारात्मक उत्तर के भीषण परिणामों पर बल देते हुए दो-तीन बार अनुरोध किया। सोजोनोव ने अन्तिम उत्तर दिया, "मेरे पास तुमको देने के लिए अन्य कोई उत्तर नहीं है।" राजदूत ने तब विदेशमन्त्री सोजोनोव को युद्ध की घोषणा का पत्र दिया और रोते हुए कमरे से निकल गया। इसी अवधि में जर्मनी के मन्त्रियों ने फ्रान्स को अपनी इच्छाओं को स्पष्ट करने की अन्तिम चेतावनी दी। 1 अगस्त, 1914 को फ्रान्स के प्रधानमन्त्री ने उत्तर दिया कि फ्रान्स अपने हितों के अनुसार कार्य करेगा और तत्काल सेना की सामान्य लामबन्दी के आदेश दे दिये। 3 अगस्त, 1914 को जर्मनी ने फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

त्रिगुट के दो सदस्य फ्रान्स और रूस व्यापक युद्ध में सम्मिलित हो गये थे। यदि बेल्जियम की तटस्थता का उल्लंघन नहीं भी किया जाता, तब भी इंग्लैण्ड का युद्ध से अलग रहना सम्भव नहीं था। यथार्थ में 29 जुलाई, 1914 को सर एडवर्ड ग्रे ने जर्मनी के राजदूत को "मैत्रीपूर्ण एवं व्यक्तिगत" चेतावनी दी थी, यदि फ्रान्स को युद्ध में खींचा जाता है, ग्रेट ब्रिटेन भी युद्ध में प्रवेश करेगा। लेकिन जर्मनी द्वारा बेल्जियम पर आक्रमण ने ब्रिटेन को म्यान से तलवार निकालने के लिए तत्काल अवसर प्रदान किया। सन् 1839 में ब्रिटेन ने अन्य महाशक्तियों के साथ बेल्जियम की तटस्थता सुनिश्चित करने की सन्धि की थी। इसके साथ ही पिछली अनेक शताब्दियों से नीचे स्थित देशों (Low Countries Belgium and Holland) की अखण्डता बनाये रखने अथवा विदेशी प्रभुत्व से बचाने की नीति इंग्लैण्ड की विदेश नीति का प्रमुख सिद्धान्त था। इस नीति का उद्देश्य इंग्लैण्ड के तटों के विपरीत तटों को शत्रु के नौ-सैनिक बेड़े का आधार बनाने से रोकना था। बेल्जियम पर जर्मनी का नियन्त्रण इंग्लैण्ड की सुरक्षा के लिए खतरा होगा। जर्मनी की विख्यात 'स्किलियेफेन योजना' (Schlieffen Plan) बेल्जियम के माध्यम से फ्रान्स पर आक्रमण करने की व्यवस्था थी। इसके अनुसार जर्मनी ने बेल्जियम की स्वतन्त्रता को बनाये रखने एवं क्षतिपूर्ति का वचन देते हुए बेल्जियम सरकार से उसके क्षेत्र से होकर जर्मनी की सेना को भेजने की अनुमति माँगी। जब बेल्जियम सरकार ने अनुमति देने से मना कर दिया, जर्मनी की सेना ने बेल्जियम में प्रवेश करना आरम्भ कर दिया। ब्रिटिश विदेशमन्त्री ने संसद में तत्काल विचार व्यक्त किया कि इंग्लैण्ड को अन्तर्राष्ट्रीय कानून एवं छोटे-छोटे राष्ट्रों की रक्षा करनी चाहिए। इन परिस्थितियों में शान्ति का अर्थ नैतिक अपराध होगा और घोषणा की, यदि ब्रिटेन इस विषय में अपने सम्मानजनक दायित्वों का निर्वाह करने में विफल होता है, वह सभ्य संसार में प्रतिष्ठा एवं सम्मान खो देगा। 4 अगस्त, 1914 को जर्मनी को बेल्जियम की तटस्थता का सम्मान करने का आग्रह करते हुए अन्तिम चेतावनी दी, और मध्य रात्रि तक उत्तर का समय दिया। मध्य रात्रि तक कोई उत्तर नहीं मिला, परन्तु 12 बजे रात्रि के बाद ब्रिटेन और जर्मनी दोनों एक-दूसरे के शत्रु बन गये।

जर्मनी का आक्रमण (The German Offensive)—जर्मनी ने बेल्जियम पर आक्रमण कर दिया। लीग (Liege) और नमूर (Namur) में बेल्जियम की सेना वीरतापूर्वक विरोध करते हुए पराजित हो गयी। जर्मनी की सेना चारलेराय (Charleroi) से फ्रान्स की सेना को पीछे खदेड़ते हुए एवं मौन्स (Mons) में ब्रिटिश सेना पर पीछे से आक्रमण करके हटाते हुए, फ्रान्स-बेल्जियम सीमा की ओर आगे बढ़ी। मौन्स से द्रुतगति से वापसी ने ब्रिटेन एवं फ्रान्स की सेना को विनाश से बचा लिया। मित्र राष्ट्रों की सेनाएँ हट गयीं और केन्द्रीय शक्तियों का प्रभुत्व हो गया। इसी अवधि में फ्रान्स ने अलजैक एवं लारेन पर

असफल आक्रमण किया। जर्मन सेना पेरिस की ओर बढ़ते हुए मार्ने (Marne) नदी से आगे पहुँच गयी। मित्र राष्ट्रों के लिए स्थिति अत्यधिक जटिल हो गयी थी लेकिन जनरल फोच (Foch) के नेतृत्व में सेना ने जर्मन सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया एवं जर्मनी की पहली एवं दूसरी सेनाओं के मध्य बहुत बड़ा रिक्त स्थान उत्पन्न हो गया। जनरल फोच ने ब्रिटिश सेना की सक्रिय सहायता से अवसर का लाभ उठाते हुए जर्मन सेना को मार्ने नदी से एशने (Aisne) नदी की उत्तरी दिशा में वापस जाने के लिए बाध्य किया। मार्ने के युद्ध ने युद्ध की नियति ही बदल दी। इसने जर्मनी की फ्रान्स पर नियन्त्रण करने की योजना को विफल कर दिया, और मित्र राष्ट्रों को संयुक्त कार्यवाही के लिए पर्याप्त समय दिया।

जर्मन सेना ने एशने नदी के तट पर पड़ाव डाल दिया था, और फ्रान्सीसी सेना के समस्त आक्रमणों को विफल कर दिया था। प्रत्येक देश की सेना (जर्मनी और फ्रान्स) ने उत्तर दिशा की ओर बढ़ना आरम्भ किया, और एक-दूसरे पर पीछे से आक्रमण करके पराजित करने का प्रयास किया, लेकिन दोनों ही असफल रहे। तदुपरान्त दोनों देशों की सेनाओं ने स्विट्जरलैण्ड से उत्तरी सागर तक विस्तृत क्षेत्र में 4 वर्ष तक दीर्घकालीन भीषण युद्ध किया। इसी अवधि में जर्मन सेना ने एन्टवर्प पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, और समस्त बेल्जियम को रौंद डाला। जर्मनी ने येप्रेस (Ypres) में ब्रिटिश सेना पर भीषण आक्रमण किये, लेकिन हर बार जर्मनी की पराजय हुई। येप्रेस में विषम परिस्थितियों के उपरान्त भी ब्रिटिश सेना की दृढ़ता, निष्ठा, समर्पण एवं शौर्य के परिणामस्वरूप अपूर्व यश मिला। फ्रान्सीसी सेना ने भी अर्रास के स्थान पर जर्मनी के आक्रमण को विफल किया।

पूर्वी मोर्चा (The Eastern Front)—रूसी सेना ने बहुत पहले कूंच कर दिया था, और पूर्वी प्रशा पर आक्रमण किया लेकिन तन्नानबर्ग (Tannanberg) के स्थान पर हिन्डनबर्ग ने रूसी सेना को पराजित किया और जर्मनी की सीमा से बाहर निकाल दिया। रूस की सेना को आस्ट्रिया के विरुद्ध अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली थी। रूस ने गैलेसिया (Galicia) को ध्वस्त किया, और कारपेथियन दर्रे पर आधिपत्य स्थापित कर लिया, और यहाँ से वह हंगरी के मैदानी क्षेत्रों को धमकी देता था, लेकिन आस्ट्रिया की सहायता के लिए जर्मन सेना ने आकर रूसी सेना को गैलेसिया से खदेड़ दिया, और वारसा पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया। तदुपरान्त जर्मनी ने रूस की सीमा में उत्तर से दक्षिण तक अपनी सुरक्षा पंक्ति स्थापित की।

इटली त्रिराष्ट्र सन्धि द्वारा जर्मनी से सम्बद्ध था लेकिन सन् 1915 में मित्र राष्ट्रों के त्रिगुट में सम्मिलित हो गया। उसका उद्देश्य आस्ट्रिया से उन प्रान्तों को पुनः प्राप्त करना था जो यथार्थ में इटली के थे।

डार्डेनेल्स में गतिविधियाँ (Activities in the Dardanelles)—जर्मनी के विभिन्न षड्यन्त्र के अन्तर्गत तुर्की को मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष में सम्मिलित करने के उद्देश्य से, डार्डेनेल्स पर आधिपत्य द्वारा तुर्की ने मित्र राष्ट्रों और रूस के मध्य संचार प्रणाली ही अवरुद्ध नहीं की, वरन् रूस द्वारा शस्त्रास्त्र प्राप्त करना भी रोक दिया। अस्तु, इंगलैण्ड और फ्रान्स ने डार्डेनेल्स पर नियन्त्रण करने का असफल संयुक्त प्रयास किया। तदुपरान्त मित्र राष्ट्रों ने बहुत बड़ी कीमत पर गैलीपोली (Gallipoli) प्रायद्वीप पर नियन्त्रण करने का प्रयास किया, लेकिन यह प्रयास भी पूर्व की भाँति विनाशकारी ढंग से असफल हो गया, और मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को वहाँ से हटना पड़ा। विद्वान लेखक ने विचार व्यक्त किया है, "गैलीपोली में ब्रिटिश असफलता युद्ध की सम्भवतः सर्वाधिक महान् निराशा थी।"

युद्ध के प्रथम वर्ष में सर्विया ने आस्ट्रिया की सेना का अदम्य साहस एवं वीरता के साथ विरोध किया लेकिन सन् 1915 में दक्षिण की ओर से बुल्गारिया की सेना ने और उत्तर की ओर से जर्मनी-आस्ट्रिया की संयुक्त सेना ने सर्बिया पर आक्रमण कर दिया। सर्बिया की सेना पूर्णरूप से पराजित हो गयी, और समस्त सर्बिया पर नियन्त्रण हो गया। वर्ष 1915 मित्र राष्ट्रों के लिए अत्यधिक निराशाजनक एवं भीषण विनाशकारी रहा। मैसोपोटामिया में ब्रिटिश सैनिक गतिविधियाँ असफल रहीं। टाउनशैड (Townshed) के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना ने कुत-एल-अमारा के स्थान पर तुर्की सेना के समक्ष आत्म-समर्पण किया। इससे पूर्व में ब्रिटिश प्रतिष्ठा को वहुत आघात पहुँचा। कालान्तर में जनरल मौड (Maude) ने तुर्कों से बगदाद ले लिया और तुर्की सेना को देश से बाहर निकाल दिया।

वर्ष 1916—वर्ष 1916 में सर्वप्रथम जर्मनी की सेना ने फ्रान्स के प्रवेश द्वार वर्ढुन (Verdun) पर भीषण आक्रमण किया। यद्यपि दोनों पक्षों को सैनिक दृष्टि से अपार क्षति हुई लेकिन फ्रान्स अपने अपूर्व शौर्य एवं अदम्य साहस के साथ अपनी स्थिति बनाये रखने में सफल रहा। दूसरे, इंगलैण्ड और फ्रान्स की संयुक्त सेनाओं ने सौमे (Saume) पर विशाल स्तर पर आक्रमण किया। भीषण संघर्ष के बाद संयुक्त सेनाओं का कुछ नगरों एवं ग्रामों पर आधिपत्य हो गया, लेकिन जर्मनी की रक्षा पंक्ति पूर्ववत् सुदृढ़ बनी रही। इस आक्रमण ने वर्ढुन पर दवाव समाप्त कर दिया और फ्रान्स अपनी खोई हुई भूमि पुनः प्राप्त करने में सफल हो गया। रूस की सेना को पूर्व में अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली, और आस्ट्रिया की सेना को पीछे हटा दिया, लेकिन जर्मन कुमुक ने रूस की प्रगति को रोक दिया। इटली की सेना ने भी इसोनजो (Isonzo) के किनारे आक्रमण करके गोरिजिया (Gorizia) प्राप्त कर लिया। सन् 1916 में ही रोमानिया ने रूस की सफलता से प्रोत्साहित होकर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और ट्रान्सिलवेनिया (Transylvania) पर आक्रमण कर दिया। जर्मनी-आस्ट्रिया की संयुक्त सेनाओं ने रोमानिया को पराजित कर दिया, और रोमानिया की राजधानी बुकारेस्ट (Bucharest) पर आधिपत्य स्थापित कर लिया।

नौ-सैनिक युद्ध (Naval War)—प्रारम्भ से ब्रिटिश नौ-सेना का समुद्र पर पूर्ण नियन्त्रण रहा था। जर्मनी की व्यापारिक गतिविधियाँ समाप्त हो गयीं, और ब्रिटेन ने समुद्री नाकेबन्दी कर दी। सन् 1915 में उत्तरी सागर में डौगर बैंक (Dogger Bank) और हैलिगोलैण्ड की खाड़ी में दो गौण नौ-सैनिक युद्ध हुए और दोनों में जर्मनी की भारी पराजय हुई, लेकिन सन् 1916 में जूटलैण्ड (Jutland) का युद्ध पूरे विश्वयुद्ध का एकमात्र सर्वाधिक भीषण नौ-सैनिक युद्ध था। यद्यपि दोनों पक्षों की भीषण क्षति हुई थी, लेकिन ब्रिटिश नौ-सेना की क्षति अपेक्षाकृत अधिक थी। अस्तु, यह युद्ध व्यावहारिक दृष्टि से अनिर्णीत था, लेकिन सामरिक दृष्टि से ब्रिटिश नौ-सेना लाभप्रद स्थिति में थी। जर्मनी की नौ-सेना ने उत्तरी समुद्र में प्रवेश करने का साहस नहीं किया।

अन्य क्षेत्रों में एमडेन एवं ड्रेसडेन नाम के जर्मन क्रूजरों ने मित्र राष्ट्रों के अनेक व्यापारिक जलयानों को डुबोकर मित्र राष्ट्रों के व्यापार को बहुत क्षति पहुँचायी, लेकिन वे स्वयं कमजोर होकर डूब गये। चिल्ली के तट पर जर्मनी के एक छोटे नौ-सैनिक बेड़े को विजयश्री मिली, लेकिन शीघ्र ही फाकलैण्ड प्रायद्वीप के निकट जर्मन नौ-सेना की विनाशकारी पराजय हुई।

सर्वोच्च ब्रिटिश नौ-सैनिक शक्ति मित्र राष्ट्रों के लिए अमूल्य थी। ब्रिटिश नौ-सेना ने केवल ब्रिटेन के तटों की जर्मनी के नौ-सैनिक आक्रमण से ही रक्षा नहीं की, वरन् अनेक युद्ध क्षेत्रों तक सैनिकों को ले गयी, सैनिकों को संदेश एवं अपेक्षित शस्त्रास्त्र पहुँचाये, और रसद की आपूर्ति की। साथ ही ब्रिटिश नौ-सेना ने स्वयं एवं मित्र राष्ट्रों के व्यापार की रक्षा की। व्यापार पर ब्रिटेन का अस्तित्व निर्भर था। यदि ब्रिटिश नौ-सेना अपने महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह करने में असफल होती, इंग्लैण्ड भूखों मर जाता।

वर्ष 1917—वर्ष के प्रारम्भ में जर्मनी की सेना हिन्डेनबर्ग नाम की शक्तिशाली सुरक्षा रेखा की नई स्थिति तक सफलतापूर्वक वापस आ गयी। जर्मन सेना जिस देश से निकलकर गयी, उसको पूर्णरूप से नष्ट कर दिया, और मित्र राष्ट्रों की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। फ्रान्स का विशाल सैनिक आक्रमण निरर्थक एवं असफल रहा। अर्रास के युद्ध में ब्रिटिश सेना ने विमीरिज (Vimyridge) पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। समस्त सीमा पर खाइयों का युद्ध चलता रहा लेकिन किसी भी पक्ष को उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली।

वर्ष 1917, रूस की क्रान्ति एवं मित्र राष्ट्रों के समर्थन में संयुक्त राज्य अमेरिका का सशस्त्र प्रवेश, युद्ध की नियति को गम्भीर रूप से प्रभावित करने वाली दो अत्यधिक महत्वपूर्ण घटनाओं के कारण उल्लेखनीय हो गया। रूस की क्रान्ति के परिणामस्वरूप रूस का जार अपदस्थ कर दिया गया, और सत्ता बोल्शेविक के रूप में विख्यात उग्रवादियों के हाथों में आ गयी। सर्वत्र अराजकता थी, सेना विघटित एवं हतोत्साहित थी। शीघ्र ही रूस में कोई सैनिक मोर्चा नहीं था।

ब्रेस्ट लिटोव्स्क की सन्धि (Treaty of Brest Litovsk)—रूस की बोल्शेविक सरकार ने सन् 1918 में जर्मनी के साथ ब्रेस्ट लिटोव्स्क की सन्धि की। इस सन्धि के द्वारा रूस ने स्वयं को युद्ध से अलग कर लिया, और जर्मनी को पोलैण्ड एवं बाल्टिक प्रान्तों सहित समस्त पश्चिमी प्रान्त जर्मनी को दे दिये। इस सन्धि के परिणामस्वरूप जर्मनी ने अपनी विशाल सेना पश्चिमी मोर्चे पर स्थानान्तरित कर दीं, जिससे मित्र राष्ट्रों की स्थिति विकट हो गयी, लेकिन 6 अप्रैल, 1917 को संयुक्त राज्य अमेरिका के युद्ध में प्रवेश से मित्र राष्ट्रों को प्रचुर मात्रा में धन और जन के स्रोत प्राप्त हो गये। अमेरिका ने मुख्य रूप से यूरोप में शक्ति सन्तुलन बनाये रखने के उद्देश्य से प्रवेश किया था। अनेक वर्षों से संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश विभाग, सेना और नौ-सेना में प्रमुख सिद्धान्त था कि अमेरिका की सुरक्षा पुरानी दुनिया में शक्ति सन्तुलन पर निर्भर थी। किसी भी महाशक्ति को समस्त यूरोप पर पूर्ण सर्वोच्चता नहीं स्थापित करना चाहिए। जब तक ब्रिटेन सर्वोच्चता रोकने में पर्याप्त शक्तिशाली था, अमेरिका सुरक्षित था। अमेरिका के अधिकारी ब्रिटिश नौ-सेना को अमेरिका की सुरक्षा के लिए ढाल एवं छोटी ढाल के रूप में स्वीकार करने के अभ्यस्त हो गये थे। इससे भिन्न स्थिति को वह सहन नहीं कर सकता था। जर्मनी ने ब्रिटिश नौ-सेना को चुनौती ही नहीं दी, वरन् ब्रिटिश राष्ट्र को भूखों मारकर आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य करने की धमकी भी दी।

अमेरिका के विश्व युद्ध में प्रवेश का प्रत्यक्ष कारण जर्मनी की पनडुब्बी युद्ध शैली थी। कुछ विद्वान इतिहासकारों ने विचार व्यक्त किया है कि यदि यह नहीं होता, तो अमेरिका ने बिल्कुल भी युद्ध में प्रवेश नहीं किया होता। अस्तु, वे इसको सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण मानते हैं। युद्ध आरम्भ होने के समय जर्मनी के पास पनडुब्बियों का छोटा बेड़ा था, लेकिन

उसने कुछ ही समय में बहुत वृद्धि कर ली। 4 फरवरी, 1915 को जर्मनी ने घोषणा की कि ब्रिटेन की ओर जाने वाले तटस्थ राष्ट्रों के जलयान भी बिना किसी चेतावनी के नष्ट कर दिये जायेंगे। अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने घोषणा की, यदि अमेरिका के जन अथवा सम्पत्ति को किसी प्रकार की क्षति पहुँची, तब जर्मनी 'कठोर उत्तरदायित्व' के लिए दोषी माना जायेगा। जर्मनी पर चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं हुआ। जर्मनी अपनी यू-नौका (U-Boat) सर्वाधिक मूल्यवान हथियार मानता था, और ब्रिटिश नाकेबन्दी के विरुद्ध उसके प्रयोग को न्यायोचित मानता था। जर्मनी ने अमेरिका के अधिकारों का सम्मान करने का वचन दिया था, उस वचन का यात्री जलपोतों को डुबोकर एवं अमेरिका के नागरिकों की हत्या करके, अनेक बार उल्लंघन किया। 1 फरवरी, 1917 को जर्मनी के मन्त्रियों ने घोषणा की कि जर्मनी अनियन्त्रित पनडुब्बी युद्ध अभियान आरम्भ करेगा। राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने तत्काल जर्मनी के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध समाप्त कर दिये। 2 अप्रैल, 1917 को विल्सन काँग्रेस के संयुक्त अधिवेशन के समक्ष गये, और युद्ध की घोषणा के लिए अनुरोध किया। चार दिन बाद काँग्रेस ने घोषणा का अनुमोदन किया।

इस अवधि में शान्ति के अनेक प्रयास किये गये। सन् 1917 की बसन्त ऋतु में डच एवं स्कैन्डीनेविया के समाजवादियों ने युद्ध की विभीषिका को समाप्त करने के उद्देश्य से समस्त युद्धरत शक्तियों को स्वीकार्य योजना का प्रारूप प्राप्त करने की आशा से स्टाकहोम में अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन आयोजित करने का निश्चय किया। पैट्रोग्रेड सोवियट ने इस विचार का प्रबल समर्थन किया, और 15 मई, 1917 को एक परिपत्र जारी करके समस्त राष्ट्रों के समाजवादियों से प्रस्तावित सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजने एवं अपनी-अपनी सरकारों को 'जनता की स्वतन्त्रता के आधार पर बिना किसी विलय अथवा क्षतिपूर्ति के' शान्ति के लिए सहमत करने का अनुरोध किया। ब्रिटेन एवं फ्रान्स ने अपने देश की जनता को इस प्रकार के समाजवादी सम्मेलन में भाग लेने की अनुमति देने से मना कर दिया, जबकि अन्य समस्त देश अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए सहमत थे। अस्तु, प्रस्तावित सम्मेलन स्थगित करना पड़ा।

वर्ष 1918—जनवरी, 1918 में अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन काँग्रेस के अपने सम्बोधन में मित्र राष्ट्रों के युद्ध के उद्देश्यों को अभिव्यक्त कर चुके थे। अपनी विख्यात चौदह सूत्री कार्यक्रम में विल्सन ने शान्ति समझौते की रूपरेखा व्यक्त की, और विश्व के युद्धग्रस्त राष्ट्रों के मध्य स्थायी शान्ति स्थापित करने के आदर्श को अभिव्यक्त किया। प्रस्तावित कार्यक्रम के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित थे :

(1) खुले रूप से निश्चित किये गये शान्ति के खुले प्रतिज्ञा-पत्र अथवा गुप्त कूटनीति का उन्मूलन करना। (2) समुद्रों की स्वतन्त्रता। (3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए आर्थिक अवरोधों को हटाना। (4) शस्त्रास्त्रों में कमी करना। (5) उपनिवेशों की जनता के हितों के आधार पर समस्त औपनिवेशिक दावों का निष्पक्ष रूप से समाधान करना। (6) रूस के क्षेत्र खाली करना। (7) बेल्जियम की स्वतन्त्रता पुनर्स्थापित करना। (8) अलजैक-लारेन फ्रान्स को वापिस देना। (9) स्पष्ट रूप से राष्ट्रीयता की पहचान के आधार पर इटली की सीमाओं का पुनर्समायोजन। (10) आस्ट्रिया-हंगरी के लिए स्वायत्तता का विकास। (11) सर्बिया, मोनटेनग्रो और रोमानिया को सर्बिया के लिए समुद्र तक उन्मुक्त पहुँच के साथ पुनर्स्थापित करना। (12) काले सागर से भू-मध्य सागर 'स्थायी रूप से खुली खाड़ियों के साथ' तुर्की

की जनता के लिए स्वायत्तता का विकास। (13) निर्विवादित रूप से पोलिश जनता से बसे हुए और समुद्र तक सहज मार्ग के साथ एक स्वतन्त्र पोलैण्ड। (14) राष्ट्र संघ की स्थापना करना। इसका उद्देश्य छोटे एवं बड़े राष्ट्र की स्वतन्त्रता एवं क्षेत्रीय अखण्डता सुनिश्चित करना था। 14 सूत्री कार्यक्रम की लाखों प्रतियाँ जर्मनी एवं उसके सहयोगी देशों की जनता एवं सैनिकों को यह विश्वास दिलाने के लिए, कि मित्र राष्ट्र न्यायोचित एवं स्थायी शान्ति के लिए प्रयत्नशील थे, वितरित की गयी।

रूस के साथ शान्ति स्थापित हो जाने के बाद जर्मनी ने पश्चिमी मोर्चे पर अनेक आक्रमण किये। सर्वप्रथम जर्मनी की सेना ब्रिटिश सेना को पराजित करते हुए एमिन्स (Amiens) की ओर आगे बढ़ी लेकिन आक्रमण को रोक दिया गया। तदुपरान्त जर्मनी ने येप्रेस (Ypres) के विरुद्ध प्रारम्भ में कुछ सफलता प्राप्त करते हुए आक्रमण किया, लेकिन बाद में मित्र राष्ट्रों ने रोक दिया। इन दो आक्रमणों में केवल ब्रिटिश सेना के लगभग चार लाख व्यक्ति शहीद अथवा घायल हुए। उसके बाद जर्मनी की सेना ने फ्रान्स की सेना को एशने से मार्ने नदी तक पीछे हटाते हुए रेहम (Rheims) की ओर कूच किया और पेरिस से 40 मील की दूरी तक पहुँच गयी। इस प्रकार जर्मनी को उत्कृष्ट सामरिक विजय मिली लेकिन निर्णायक विजय दूर थी।

अप्रैल, 1918 में मार्शल फोच (Marshall Foch) को मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेना का सेनाध्यक्ष नियुक्त किया गया। इससे मित्र राष्ट्रों को आदेशों की एकता एवं उत्कृष्ट नेतृत्व का अमूल्य लाभ मिला। परिणामस्वरूप सामरिक नीति में भी परिवर्तन हुआ। मित्र राष्ट्रों ने एक साथ अनेक मोर्चों एवं व्यापक क्षेत्र में आक्रमण किये, और शत्रु को पुनःसंगठित होने का भी अवसर नहीं दिया। जनरल फोच ने जर्मनी को मार्ने से पीछे हटाया, ब्रिटिश सेना ने एमिन्स से भगाया, और जनरल हेग ने हिन्डनबर्ग की सुरक्षा पंक्ति को ध्वस्त किया। मित्र राष्ट्रों की सेनाओं से पराजित होते हुए बेल्जियम की सीमा तक पहुँच गया। सितम्बर के अन्त तक केन्द्रीय शक्तियाँ निरन्तर पराजयों के कारण पूर्णतया निराश हो चुकी थीं। 30 सितम्बर, 1918 को बुल्गारिया युद्ध से अलग हो गया। अक्टूबर के प्रारम्भ में जर्मनी के नये चान्सलर बेडन के उदारवादी राजकुमार मैक्स से अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने 14 सूत्री कार्यक्रम के आधार पर शान्ति का आग्रह किया। विल्सन ने कैसर विलियम को हटाने की शर्त की पुनरावृत्ति की। अस्तु, युद्ध चलता रहा। शीघ्र ही जर्मनी के सहयोगी भी पूर्णरूप से विनाश और पतन के कगार पर थे। अक्टूबर के अन्त में आत्मसमर्पण कर दिया। हैप्सबर्ग साम्राज्य स्लावों के विद्रोह के कारण टूट चुका था। साथ ही आस्ट्रिया का इटली के विरुद्ध आक्रमण असफल ही नहीं हुआ, वरन् ट्रीस्ट (Trieste) नगर भी खो दिया और 3 लाख सैनिक बन्दी हो गये। 3 नवम्बर, 1918 को आस्ट्रिया के सम्राट चार्ल्स ने शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर किये, और आस्ट्रिया युद्ध से अलग हो गया।

युद्ध में जर्मनी अकेला रह गया। सैनिकों का मनोबल टूट चुका था। समुद्री नाकेबन्दी के कारण खाद्यान्न का अभाव हो चुका था, और जनता के भूख से मरने का संकट था। क्रान्ति की स्थिति बहुत समय से थी, और अब स्थिति विस्फोटक हो गयी थी। 8 नवम्बर, 1918 को बवेरिया ने गणतन्त्र की घोषणा कर दी। अगले दिन समस्त जर्मनी में समाजवादी क्रान्ति हो गयी। कैसर विलियम द्वितीय द्वारा सत्ता त्याग देने की घोषणा करते हुए राजाज्ञा प्रकाशित हुई, और अगले दिन सम्राट विलियम कैसर हालेण्ड चले गये। जर्मन संसद में समाजवादी

दल के नेता फ्रेडरिक एबर्ट (Friedrich Ebert) ने गणतन्त्र की घोषणा करते हुए देश की अन्तरिम मन्त्रिपरिषद् का गठन किया। एबर्ट एवं उसके सहयोगियों ने तत्काल शान्ति सन्धि पर विचार-विमर्श किया। मित्र राष्ट्रों ने तीन संशोधनों के साथ चौदह सूत्री कार्यक्रम स्वीकार करने पर बल दिया। प्रस्तावित संशोधनों के अनुसार समुद्रों की स्वतन्त्रता का ब्रिटिश अनुरोध के अनुसार कठोरता से पालन किया जाये। दूसरे, विजित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन में क्षतिपूर्ति को भी सम्मिलित किया जाये। तीसरे, आस्ट्रिया-हंगरी के लिए स्वायत्तता की माँग को स्वतन्त्रता में परिवर्तित कर दिया जाये। 11 नवम्बर, 1918 को प्रातः 5 बजे जर्मनी एवं मित्र राष्ट्रों के मध्य शान्ति सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। इसी अवधि में नौ-सेना ने विद्रोह कर दिया जो समस्त जर्मनी में क्रान्ति का सूचक था। 6 घण्टे बाद सेनाओं को युद्ध विराम के आदेश दे दिये। इस प्रकार विश्व युद्ध एवं 4 वर्ष से चल रहे भीषण रक्तरंजित संघर्ष का अन्त हो गया।

प्रथम विश्व युद्ध का आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव
(ECO-SOCIO EFFECT OF THE FIRST WORLD WAR)

कुल 4 वर्ष 3 माह एवं 11 दिन तक चलने वाला, विश्व के इतिहास में एक अद्वितीय युद्ध था। इस युद्ध में विश्व के लगभग 30 देशों के 6 करोड़ 50 लाख सैनिकों तथा नौ-सैनिकों ने सक्रिय भाग लिया। विजयी एवं पराजित दोनों पक्षों की धन-जन की दृष्टि से अत्यधिक क्षति हुई। लगभग 80 लाख सशस्त्र सैनिक युद्ध में शहीद हो गये एवं 2 करोड़ घायल हो गये। इसके अतिरिक्त लगभग 1 करोड़ 40 लाख व्यक्ति युद्ध की विभीषिका में काल-कवलित हो गये। सर्वाधिक कुशल, हृष्ट-पुष्ट एवं योग्य सैनिक शहीद हुए थे। यह वह पीढ़ी थी, जिसको युद्ध एवं मृत्यु के लिए ही तैयार किया गया था।

इस युद्ध ने समस्त विश्व में अपूर्व हिंसा एवं उपद्रवों को प्रोत्साहित किया। लेनिन ने कहा था, कि इस युद्ध ने आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग, जर्मनी के होहेनजोलर्न, रूस के रोमानव और ओटोमन साम्राज्यों को ध्वस्त कर दिया। एक प्रकार से गैर-राष्ट्रीय राज्यों का अन्त हो गया। उन राज्यों का अनेक शताब्दियों से यूरोप के अधिकांश भागों पर नियन्त्रण था।

इस युद्ध ने विश्व के केन्द्र यूरोप को दुर्बल कर दिया, तथा यूरोप की परिधि के बाहर उत्तरी अमेरिका, रूस तथा एशिया को शक्तिशाली बना दिया। एक अन्य युद्ध के उपरान्त संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस का विश्व की दो महाशक्तियों के रूप में अभ्युदय होगा। एक प्रकार से यूरोप के अन्त की कहानी आरम्भ हो गयी, और द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से यूरोप का अन्त हो गया।

सन् 1918 तक युद्ध का पूर्णरूपेण विश्व युद्ध के रूप में विकास हो गया था, और इस युद्ध ने विश्व के अधिकांश भागों को प्रभावित किया था। सन् 1917 में जब फ्रान्स के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया, युद्ध के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मोर्चों के अधिकांश भाग विशाल ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न देशों की सेनाओं पर निर्भर थे। सन् 1918 तक लगभग 2,50,000 भारतीय सैनिक युद्धभूमि में सक्रिय थे। भारतीयों के अद्वितीय योगदान ने युद्ध को उपनिवेशवाद के पतन की ओर उन्मुख किया। भारत के अतिरिक्त मध्य-पूर्व एशिया में भी स्वाधीनता की माँग प्रबल हो गयी। सन् 1919 के उपरान्त मध्य पूर्व एशिया उग्र राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया।

यूरोप के प्रभुत्व का अन्त हो रहा था और भविष्य भी धूमिल एवं निराशाजनक प्रतीत होता था। जनसमुदाय के सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन हुए। स्वचालित प्रगति में विश्वास के साथ उन्नीसवीं शताब्दी का आशावाद युद्ध की विभीषिका में जीवित नहीं रह सका। युद्ध के परिणामस्वरूप लगभग 1 करोड़ स्त्रियाँ विधवा एवं आश्रयहीन हो गयीं। युद्ध का सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मान्यताओं, आचार-विचारों तथा जीवन शैली पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। उद्योगों तथा कृषि क्षेत्रों में पुरुषोचित कार्यों की उपलब्धता से निराश्रित स्त्रियों की पीड़ाओं, मानसिक यातनाओं एवं अभावग्रस्त जीवन में आंशिक रूप से क्षतिपूर्ति हुई थी। इन पीड़ित महिलाओं ने अनेक नारी विरोधी काल्पनिक मान्यताओं एवं सामाजिक बन्धनों को अस्वीकार कर दिया। इन स्त्रियों ने कारखानों तथा खेतों में कठोर शारीरिक श्रम करके अपनी अन्तर्निहित शक्ति, सामर्थ्य, क्षमता एवं योग्यता को सिद्ध किया। परिणामस्वरूप स्त्रियों के आत्म-विश्वास में वृद्धि हुई, तथा राजनीतिक चेतना का संचार हुआ। शस्त्रास्त्र उद्योगों में विषाक्त रासायनिक परीक्षणों तथा दुर्गन्धों के परिणामस्वरूप कार्यरत महिलाओं की त्वचा पीली पड़ गयी, और उनको बहिष्कृत कर दिया गया। इन बलिदानों का स्त्रियों को सुखद लाभांश अथवा फल मिला। युद्धोत्तर काल में ब्रिटेन, जर्मनी, रूस एवं अन्य अनेक देशों में स्त्रियों को मताधिकार प्रदान करने की प्रबल माँग सफल हो गयी। लगभग समस्त युद्धरत देशों में युद्ध प्रयासों ने संगठित श्रमिकों के सक्रिय सहयोग का आह्वान किया। अस्तु, युद्ध की समाप्ति तक श्रमिक संघ अपनी न्यायोचित माँग को स्वीकार करवाने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली हो गये थे।

विनाशकारी युद्ध का सर्वाधिक प्रभाव असैनिक जनता पर पड़ा। जनता खाद्यान्नों के अभाव तथा कुपोषण के परिणामस्वरूप अनेक रोगों से पीड़ित थी। बेल्जियम, जर्मनी तथा आस्ट्रिया की जनता सर्वाधिक पीड़ित थी। अनेक वर्षों तक पौष्टिक आहार के अभाव के कारण मध्य यूरोप के सहस्त्रों व्यक्ति प्रतिश्याय (Influenza) रोग के प्रकोप से काल-कवलित हो गये। अगस्त, 1918 में युद्ध की विभीषिकाओं से त्रस्त जनता सहज ही प्रतिश्याय रोग से ग्रस्त हो गयी।

निःसन्देह सुनियोजित अर्थव्यवस्था के विकास एवं कल्याण राज्य के पवित्र सिद्धान्त के कार्यान्वयन से अत्यधिक निर्धनता का उन्मूलन हो गया, परन्तु युद्ध काल में राज्यों की शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी, और इस तथ्य ने युद्धोत्तर काल में सर्वसत्तावादी (Totalitarian) सरकारों के विकास को सहज एवं सुगम कर दिया। उदारवादी ब्रिटेन तथा साम्राज्यिक जर्मनी में युद्ध ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप को अधिकाधिक प्रबल किया। प्रत्येक वस्तु पर राज्य की आवश्यकताओं का नियन्त्रण था। कोई भी चीज राज्य के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं थी। सार्वजनिक स्थानों के खुलने का समय भी नियन्त्रित था और बियर (जौ की मदिरा) की आपूर्ति भी सीमित हो गयी थी।

युद्ध की समाप्ति के बाद युद्धरत देशों को अपने अनियमित एवं आकस्मिक सैनिकों के समुचित नियोजन के लिए व्यवस्था करनी पड़ी, और युद्धकालीन उद्योगों को शान्तिकालीन उद्योगों में परिवर्तित करना पड़ा। मध्य यूरोप प्रशासनिक तन्त्र सुचारु रूप से निरन्तर कार्य कर रहा था। अस्तु, सामान्य स्थिति पुनर्स्थापित कर दी गयी। हैप्सबर्ग एवं होहेनजोलर्न वंशीय शासकों के काल में उद्भूत एवं विकसित अधिकारी तन्त्र की अपने स्वामियों के अन्त के साथ उपयोगिता एवं सार्थकता समाप्त हो गयी। मध्य यूरोप गृह युद्धों से मुक्त रहा, जबकि

रूस में भीषण गृह युद्ध अनेक वर्षों तक चलते रहे, परन्तु यूरोप में स्थायित्व नहीं आया। युद्ध काल में लाखों व्यक्ति सुनियोजित हिंसात्मक गतिविधियों के अभ्यस्त हो गये थे। अनेक सैनिकों के लिए सामान्य शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करना कठिन हो गया। अवसर प्राप्त होते ही वे पूर्ण उत्साह के साथ सहयोगी अर्द्धसैनिक संगठनों में भर्ती हो गये। सन् 1919 के उपरान्त हिंसा और असुरक्षा मध्य यूरोप में संक्रामक रोग बन गये।

युद्धोत्तर काल में दयनीय आर्थिक स्थिति ने अस्थिरता को प्रोत्साहित किया। इस युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से लगभग 10 खरब रुपये व्यय हुए। युद्ध का समस्त व्यय आन्तरिक एवं विदेशी ऋणों से वहन किया। युद्ध की समाप्ति पर परस्पर सम्बन्धित ऋणों का एक विशाल प्रासाद बन गया। युद्ध के अन्त में इंगलैण्ड का राष्ट्रीय ऋण 74,350 लाख पौंड, फ्रान्स का राष्ट्रीय ऋण 14,74,720 लाख फ्रेंक और जर्मनी का राष्ट्रीय ऋण 16,06,000 मार्क हो गया था। पश्चिमी मित्र राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका के विशाल मात्रा में ऋणों से ग्रस्त थे। पश्चिमी राष्ट्रों को अपने नागरिकों तथा विदेशी ऋणों का भुगतान करना था। युद्धोत्तर काल में अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था इस विकराल समस्या से ग्रस्त थी। अपने ऋणों का भुगतान करने के लिए अनेक यूरोपीय राष्ट्रों ने अनियन्त्रित मात्रा में कागजी मुद्रा प्रचलित कर दी। परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हो गयी, और कागजी मुद्रा का मूल्य बाजार में बहुत कम हो गया, और मुद्रा-स्फीति में वृद्धि हो गयी। मुद्रा स्फीति की प्रक्रिया युद्ध काल में ही आरम्भ हो चुकी थी।

ब्रिटेन ने किसी भी निश्चित सीमा तक प्रत्यक्ष करारोपण में वृद्धि करके वित्त व्यवस्था में सुधार करने का प्रयास किया, परन्तु ब्रिटेन में सामान्य जीवन-स्तर तथा रहन-सहन की स्थितियाँ अत्यधिक निराशाजनक एवं मोह निवारक थीं। सामान्य जन-जीवन की स्थितियों ने सरकार को राष्ट्रीय बीमा के प्रावधानों में कुछ सुधार करने तथा उनका विस्तार करने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि गृह निर्माण के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार हुआ, परन्तु निर्मित मकानों की संख्या अपेक्षित लक्ष्यों से बहुत कम थी। समाज के निश्चित वर्गों में वास्तविक निर्धनता की स्थिति पूर्ववत् बनी रही और सड़कों पर पंगु सैनिकों द्वारा भिक्षा माँगने का दृश्य अत्यधिक हृदय विदारक होता था। यह युद्धकालीन योजनाओं तथा आश्वासनों का कटु एवं पीड़ाकारी उपहास था।

युद्ध के गम्भीर राजनीतिक परिणामों की अपेक्षा आर्थिक परिणाम अत्यधिक भीषण एवं भयावह थे। जर्मनी के अधिकृत क्षेत्रों की क्षति तथा आस्ट्रिया-हंगरी के विघटन ने पराजित शक्तियों को गम्भीर आर्थिक आघात पहुँचाया। विजयी मित्र राष्ट्रों ने पराजित जर्मनी तथा आस्ट्रिया-हंगरी से युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में असीमित माँगों द्वारा पराजित को अत्यधिक पीड़ित एवं व्यथित किया, परन्तु विजयी राष्ट्रों के लिए भी आर्थिक स्थिति सहज और सुगम नहीं थी। पश्चिम में फ्रान्स तथा बेल्जियम के औद्योगिक क्षेत्रों का विनाश हो चुका था। पूर्वी यूरोप में बीजों, उर्वरकों तथा उपयोगी कृषि उत्पादनों के अभाव के कारण कृषि उत्पादनों में पर्याप्त ह्रास हो गया था। समस्त युद्धरत शक्तियों, विशेष रूप से इंगलैण्ड के विदेश व्यापार की अत्यधिक क्षति हुई। विदेशों में इन देशों में उत्पादित वस्तुओं की माँग बहुत कम हो गयी थी। युद्धोपरान्त संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान तथा लैटिन अमेरिका स्थित देशों ने उन बाजारों में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी, जिनमें युद्ध से पूर्व ब्रिटेन एवं जर्मनी का प्रभुत्व था। सन् 1925 तक अमेरिका का विदेश व्यापार युद्ध पूर्व की अपेक्षा दुगुना हो गया। विधि

की विडम्बना ही थी कि अमेरिका जो युद्ध से पूर्व अन्य देशों से ऋण लेता था, अब युद्धोत्तर काल में विश्व का प्रमुख ऋणदाता बन गया। युद्धरत राष्ट्रों ने सामान्य सुरक्षात्मक सीमा-शुल्क प्रणाली को पुनः कार्यान्वित किया, परन्तु इस प्रणाली ने अर्थव्यवस्था में सुधार की गति को मन्द अथवा अवरुद्ध ही किया।

युद्धोत्तर काल का प्रभाव केवल आर्थिक संकट ही नहीं था, वरन् जीवन के अन्य क्षेत्रों में उसके गम्भीर परिणाम हुए। युद्ध के 5 वर्ष बाद भी यूरोप का कुल औद्योगिक उत्पादन युद्ध पूर्व के कुल उत्पादन का दो-तिहाई ही था। अतीत में बेरोजगारी की समस्या थी परन्तु युद्धोपरान्त इस समस्या ने विकराल रूप ग्रहण कर लिया था। वित्तीय विषयों में भी इस आर्थिक संकट की प्रतिक्रिया हुई। यूरोप के समस्त प्रमुख देश मुद्रा-स्फीति से त्रस्त थे। जर्मनी, आस्ट्रिया तथा रूस में मुद्रास्फीति के परिणामस्वरूप मुद्रा का अवमूल्यन हो गया।

युद्ध के उपरान्त भयावह विनाश एवं परिणाम, आर्थिक, सामाजिक एवं मानवीय स्थितियों तथा जनसमुदाय की हृदय विदारक पीड़ाओं ने युद्ध के प्रति मानव समुदाय के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। कुछ मानवतावादियों ने युद्ध के नाम पर हुए भीषण नरसंहार तथा विनाश लीला के औचित्य पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया और कुछ पूर्ण शान्तिवाद की ओर उन्मुख हो गये। सेगफ्रायड सेसन (Siegfried Sasson) तथा विल्फ्रेड ओवन (Willfred Owen) आदि ने युग की विनाश लीला तथा मोहभंगता को मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्त किया। "जो पशु-पक्षियों की तरह काल-कवलित हो गये, उनके लिए मन्दिर, गिरिजाघरों की घंटियों का क्या महत्व है ? उनके लिए बन्दूकों का दानवीय क्रोध ही है।"

त्रिगुट की विजय से यदि पूर्वानुमानित समस्त लाभ प्राप्त कर लिए होते तब भी धन-जन के रूप में ध्वस्त सम्पत्ति का मूल्य कल्पनातीत था। सम्भवतः कोई भी स्थायी लाभ नहीं मिला था। युद्ध जिससे समस्त युद्धों के अन्त की आशा थी, ने भविष्य में अपेक्षाकृत अधिक भीषण युद्ध के बीज बो दिये थे। कैसर विलियम की निरंकुशता नष्ट हो गयी थी, लेकिन नये निरंकुशतावाद के लिए पृष्ठभूमि तैयार थी। इसके समक्ष विलियम द्वितीय का साम्राज्य स्वतन्त्रता का स्वर्ग प्रतीत होता था। इसके अतिरिक्त प्रथम विश्वयुद्ध ने सैन्यवाद अथवा राष्ट्रवाद को समाप्त करने के लिए कुछ नहीं किया।

युद्ध के प्रमुख राजनीतिक परिणाम (Significant Political Results of the War)—राष्ट्रवाद की विजय युद्ध का पहला महान् परिणाम था। इस दृष्टि से पेरिस शान्ति सम्मेलन के समझौते वियाना काँग्रेस के समझौतों से पूर्णरूप से भिन्न थे। वियाना काँग्रेस ने राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया था, जबकि पेरिस सम्मेलन ने इसको प्रतिष्ठित किया एवं उसे यूरोप का सार्वजनिक कानून बनाया। अनेक साम्राज्यों की जनता अपनी इच्छा के विरुद्ध क्रान्स सदृश जीवन व्यतीत कर रही थी, ये साम्राज्य अपनी घटक राष्ट्रीयताओं के अनुरूप विघटित हो गये, और राष्ट्रीयता की विजय हुई। इस प्रकार पुराने रूसी साम्राज्य से फिनलैण्ड, एस्थीनिया, लैटविया एवं लिथुआनिया चार स्वतन्त्र गणतन्त्रों का अभ्युदय हुआ। पोलिश जनता के अनेक टुकड़ों, जिन पर अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम 25 वर्ष की अवधि में पड़ोसी ने नियन्त्रण कर लिया था, को मिलाकर पोलैण्ड का सृजन किया गया था। आस्ट्रिया-हंगरी के विशाल साम्राज्य की विभिन्न जातियों के आधार पर जेकोस्लोवाकिया नया

राज्य बनाया गया, और रूमानिया, इटली एवं सर्बिया (आधुनिक यूगोस्लाविया) की अधिकृत सीमाओं का विस्तार किया गया। फ्रान्स को पुनः अलजेक-लारेन देकर, एवं स्कैल्सविग डेनिश भाषी क्षेत्र डेनमार्क को देकर दीर्घकालीन राष्ट्रीय आपत्तियों का निराकरण किया गया था। यथार्थ में राष्ट्रवाद को युद्ध के माध्यम से अपूर्व प्रोत्साहन मिला, और मुख्य रूप से नये राज्य निश्चयात्मक एवं सजग हो गये।

राष्ट्रवाद का प्रभाव यूरोप तक ही सीमित नहीं था। चीन में नई चेतना का आविर्भाव हुआ, और तुर्की में नया उत्साह आ गया। मिस्र के राष्ट्रवाद के समक्ष ब्रिटेन को समर्पण करना पड़ा, और सन् 1922 में अपना संरक्षण समाप्त कर दिया।

आयरलैण्ड में राष्ट्रीयता के सिद्धान्त ने महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में आरम्भ सीनू-फेन (Sinu Fein) आन्दोलन एक पृथकतावादी आन्दोलन में विकसित हो गया। सन् 1918 में सिन फेनर्स (Sinn Feinners) ने डबलिन में अपनी स्वयं की संसद का गठन किया, और डि वलेरा (De Valera) को अन्तरिम राष्ट्रपति के रूप में चुना। इसी समय ब्रिटिश शासन के विरुद्ध छापामार युद्ध संचालित करने के उद्देश्य से आयरिश गणतांत्रिक (Irish Republican) समुदाय का गठन किया गया। दोनों पक्षों की ओर से निर्मम हत्याएँ हुईं, और घृणित कार्य किये गये। आतंक का प्रति-आतंक से उत्तर दिया गया। सन् 1921 में आयरलैण्ड और इंग्लैण्ड के मध्य सन्धि हुई। इस सन्धि के द्वारा आयरलैण्ड स्वतन्त्र उपनिवेश घोषित किया गया। अल्सटर (आधुनिक उत्तरी आयरलैण्ड) स्वतन्त्र आयरलैण्ड से अलग रहा।

लोकतन्त्र का प्रसार—लोकतन्त्र का प्रसार युद्ध का अन्य महत्वपूर्ण परिणाम था। रूस, जर्मनी एवं आस्ट्रिया में राजतन्त्र समाप्त हो गया, और तीन सर्वाधिक प्राचीन राजवंशों, रोमनअफ (Romanoff), होहेनज़ोलर्न (Hohenzollern) और हैप्सबर्ग का अन्त हो गया। जर्मनी एवं आस्ट्रिया ने लोकतान्त्रिक संविधान स्वीकार किये, जबकि रूस में लोकतान्त्रिक आन्दोलन बोल्शेविकवाद के साथ सम्मिश्रत था। नवस्थापित राज्यों ने सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर संसदीय सरकारें गठित करते हुए गणतान्त्रिक राज्य स्थापित किये। यूनान ने सन् 1922 में तुर्कों से पराजित होने के बाद राजतन्त्र का उन्मूलन करके गणतन्त्र स्थापित किया लेकिन लोकतन्त्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विजय तुर्की में हुई। तुर्की में सल्तनत एवं खलीफा की संस्थाओं को समाप्त करके गणतन्त्र स्थापित किया गया, और कमाल पाशा इसका पहला राष्ट्रपति था। अनेक देशों में जनता ने सैनिक पराजयों में राजतन्त्र को उत्तरदायी मानते हुए युद्ध के बाद भीषण राजनीतिक अराजकता एवं अव्यवस्था के लिए रामबाण के रूप में गणतन्त्रवाद को स्वीकार किया, और रूस में कुशल प्रशासन के लिए साम्यवाद का चयन किया।

युद्धोत्तर यूरोप में विविध प्रकार की अनेक जटिल समस्याएँ थीं, और कुछ देशों में लोकतन्त्र इन समस्यायों का समाधान करने के लिए उपयुक्त नहीं था। अस्तु, इटली, जर्मनी एवं स्पेन में अधिनायकतन्त्र का प्रयोग किया गया। बोल्शेविकवाद, नाजीवाद, फासिस्टवाद लोकतन्त्र विरोधी थे। अस्तु, इन्होंने अधिनायकतन्त्र को प्रोत्साहित किया। इन राज्यों में भाषण की स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता और सरकार में जनता की भागीदारी जैसे लोकतन्त्र के मौलिक विचारों को दुर्बलता के स्रोत मानते हुए अस्वीकार कर दिया था। एक व्यक्ति ने सत्ता अपने

हाथ में ले ली और स्वयं को राज्य का प्रतिनिधि घोषित कर दिया। साथ ही विरोध और आलोचना का दमन किया गया। युद्ध से सम्बन्धित प्रकाशित पुस्तकों में युद्ध के लिए उत्तरदायी राजनीतिज्ञों की कटु आलोचना की गयी, तथा युद्धरत जनरलों के आचरण की कटु निन्दा की गयी। लन्दन तथा यूरोप के अन्य नगरों में उत्साहपूर्वक नृत्य, जाज संगीत, सामूहिक एवं सामान्य राग-रंग को प्रोत्साहित किया गया। यह काल 'सुखद बीस के दशक' के रूप में विख्यात था। ऐसा प्रतीत होता था कि युवा पीढ़ी अपने मस्तिष्क से युद्ध की विभीषिकाओं की स्मृतियों को समूल नष्ट कर देना चाहती थी।

इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध से एक युग का अन्त हो गया, परन्तु युद्धोपरान्त युद्ध की मुक्ति से सन्तोष तथा सुख अल्पकालीन था। द्वितीय विश्व युद्ध सन् 1939 में आरम्भ हो गया। 4 दशक की अवधि में दो विनाशकारी विश्वव्यापी युद्धों द्वारा विश्व की विनाशलीला सर्वाधिक चिन्ता का विषय है। यूरोप के साथ वास्तविक दोष क्या था, एक विचारणीय प्रश्न है ? क्या यथार्थ में यूरोप की नीतियाँ तथा कार्यक्रम उन भीषण विनाशकारी घटनाओं के लिए उत्तरदायी थे ? क्या यह राष्ट्रवाद, सशस्त्र गुटों, व्यक्तियों अथवा आकस्मिक घटनाओं के परिणाम थे ? इन विवादास्पद प्रश्नों पर विद्वान इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है।

विजेताओं की शान्ति (The Victor's Peace)

सन् 1919 एवं सन् 1920 में आयोजित विभिन्न सम्मेलनों में किये गये शान्ति समझौतों का स्वरूप विचार-विमर्श के बाद किये गये समझौतों की अपेक्षा न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयों के अनुरूप था। इसका मुख्य कारण यह था कि युद्ध सरकारों के युद्ध की अपेक्षा जनता का युद्ध बन गया था। संघर्ष काल में जनसमूह की भावनाएँ उत्तेजित हुईं, और उन्होंने तार्किक निर्णयों को अवरुद्ध किया। राजनीतिज्ञों ने इन भावनाओं को और हवा दी, एवं कुछ विषयों में अधिक उत्साह के साथ पुष्ट किया। मित्र देशों के राष्ट्रवाद एवं लोकतन्त्र ने संयुक्त रूप से समझौते को असम्भव बना दिया, और युद्ध की व्याख्या बुराई के विरुद्ध अच्छाई के धर्मयुद्ध के रूप में की गयी।

यदि केन्द्रीय शक्तियाँ युद्ध में विजयी हुई होतीं तो सन्धि के प्रावधान वर्तमान की अपेक्षा अधिक कठोर होते। ब्रेस्ट-लिटोव्स्क और बुकारेस्ट की शान्ति सन्धियाँ स्पष्ट दृष्टान्त हैं।

पेरिस के शान्ति सम्मेलन में अनेक सन्धियों तथा समझौतों के विस्तृत प्रावधानों के प्रारूपों को बनाया गया। इन सन्धियों में जर्मनी के साथ वर्साय की सन्धि सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। इसके अतिरिक्त अन्य पराजित देशों के साथ अलग-अलग सन्धियाँ की गयी थीं। प्रत्येक सन्धि में राष्ट्र संघ की स्थापना के लिए प्रतिज्ञा-पत्र एवं स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित करने के लिए प्रावधान सम्मिलित किये गये थे।

(1) 28 जून, 1919 को जर्मनी के साथ वर्साय की सन्धि हुई।
(2) 10 सितम्बर, 1919 को आस्ट्रिया के साथ सेण्ट जर्मेन की सन्धि हुई।
(3) बुल्गारिया के साथ न्यूइली की सन्धि 27 नवम्बर, 1919 को हुई।
(4) 4 जून, 1920 को हंगरी के साथ ट्रियनों की सन्धि हुई।

(5) ओटोमन साम्राज्य (तुर्की) के साथ 10 अगस्त, 1920 को सेव्रे की सन्धि हुई। ये समस्त सन्धियाँ विश्व के इतिहास में पेरिस की सन्धियों के नाम से ही विख्यात हैं।

प्रथम विश्व युद्ध के अधिकृत रूप से समाप्त होने के पूर्व ही जर्मनी तथा उसके सहयोगी राष्ट्रों का विघटन एवं पतन आरम्भ हो गया था। अनेक देशों में राजनीतिक क्रान्तियाँ हुईं, परन्तु उनका स्वरूप एवं चरित्र हिंसात्मक एवं विनाशकारी नहीं था। ये केवल लोकतान्त्रिक राष्ट्रवादी आन्दोलन थे, और प्रायः उन आन्दोलनों को समाजवादियों ने प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया था।

जर्मनी में म्यूनिख में समाजवादी उपद्रव हुए। 8 नवम्बर, 1918 में बवेरिया ने समाजवादी गणतन्त्र की घोषणा कर दी। जर्मनी का सम्राट कैसर विलियम द्वितीय जर्मनी से पलायन कर गया, और होहेनजोलर्न राजवंश का अन्त हो गया। बर्लिन में भी समाजवादी अधिकारियों ने नियन्त्रण कर लिया, परन्तु समाजवादियों का सुदृढ़ आधार नहीं था। समाजवादियों के पास रूस के बोल्शेविकों के अनुरूप शक्तिशाली संगठन नहीं था। शीघ्र ही समाजवादियों को सत्ता से अपदस्थ कर दिया गया और जर्मनी के लिए सन् 1919 में नये संविधान की रचना की, जो वेमार (Weimar) संविधान के नाम से प्रसिद्ध है।

आस्ट्रिया-हंगरी के विशाल अधिकृत क्षेत्रों में सन् 1918 तथा 1919 की अवधि में अनेक लोकतान्त्रिक की अपेक्षा हिंसात्मक एवं विध्वंसात्मक क्रान्तियाँ हुईं। एक के बाद एक अधीन राष्ट्रीयताओं ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। सर्वप्रथम चैकोस्लोवाकिया ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। यूगोस्लाविया तथा पोलैण्ड ने इस प्रवृत्ति का अनुकरण करते हुए अपनी-अपनी स्वतन्त्रताओं की घोषणा की। नये राष्ट्रों के अभ्युदय के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य का पतन हो गया, और हंगरी एवं जर्मन आस्ट्रिया दो प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों का अभ्युदय हुआ। नये स्वतन्त्र राज्यों के अभ्युदय के साथ इन राज्यों में समाजवादी दलों का भी आविर्भाव हुआ। हंगरी के समाजवादी नेता बेलक्कुन (Belakkun) ने अल्पकालीन सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की घोषणा की। सन् 1919 में वह हंगरी से पलायन कर गया, और एक पागलखाने में शरण ली। जर्मन आस्ट्रियायी गणतन्त्र का गठन समाजवादियों सहित विभिन्न राजनीतिक दलों के परस्पर सौहार्द्रपूर्ण समझौतों के आधार पर हुआ था।

आस्ट्रिया-हंगरी के प्रभुत्व के विरुद्ध युद्धरत देशों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये। बुलगारिया में राजतन्त्रीय प्रशासनिक व्यवस्था पूर्ववत् बनी रही। ओटोमन साम्राज्य में मुस्तफा कमाल पाशा के आविर्भाव से तुर्की का गौरव एवं प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हो गयी। मुस्तफा कमाल पाशा ने अनातोलिया में पृथक् तुर्की सरकार का गठन किया। उसने सन् 1923 में कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया, और ओटोमन साम्राज्य के नाम मात्र के सुल्तान मोहम्मद षष्ठम् को अपदस्थ कर दिया।

सन् 1919 में जर्मनी तथा उनके समर्थकों के विरुद्ध अपने समस्त विवादों के समुचित समाधान के लिए विजयी मित्र राष्ट्रों के पेरिस में आयोजित सम्मेलन तक वातावरण अपेक्षाकृत शान्त हो गया था। युद्ध काल में विजयी मित्र राष्ट्रों ने अनेक आश्वासन दिये थे। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन का चौदह सूत्री कार्यक्रम का कार्यान्वयन भी था। वुडरो विल्सन एक आदर्शवादी राजनीतिक तथा विश्व में न्यायसंगत चिर-स्थायी शान्ति का प्रबल समर्थक था। इसी उद्देश्य से उसने 8 जनवरी, 1918 को अमेरिका

की काँग्रेस के समक्ष अपना चौदह सूत्री शान्ति कार्यक्रम प्रस्तुत किया। वुडरो विल्सन ने घोषणा की थी कि विजयी मित्र राष्ट्रों की दण्ड देने की प्रक्रिया पराजित राष्ट्रों की जनता की अपेक्षा, उन राष्ट्रों की निरंकुश सरकारों के विरुद्ध होगी। वुडरो विल्सन के चौदह सूत्री कार्यक्रम के आधार पर नवम्बर, 1918 में जर्मनी आत्म-समर्पण करने तथा शान्ति स्थापित करने के लिए सहमत हो गया, परन्तु यूरोप के विजयी राष्ट्रों की जनता की प्रवृत्ति एवं दृष्टिकोण पूर्णतया भिन्न था। प्रत्येक मित्र राष्ट्र में बहुमत युद्ध के लिए जर्मनी को दोषी मानता था। फ्रान्स एवं इटली दोनों ने विचार व्यक्त किया कि अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। इंग्लैण्ड में लायड जार्ज ने संसदीय चुनाव के लिए नारा दिया, "कैसर को मृत्युदण्ड दो और जर्मनी को क्षतिपूर्ति भुगतान करने के लिए बाध्य करो।" इस नारे का उसको अपेक्षित लाभ मिला और आम चुनाव में उसको भारी बहुमत मिला। संयुक्त राज्य अमेरिका के दो भूतपूर्व राष्ट्रपतियों ने भी उसी भावना को व्यक्त किया था।

पेरिस का शान्ति सम्मेलन, 1919 (The Peace Conference of Paris, 1919)—18 जनवरी, 1919 को पेरिस में शीशों के विशाल कक्ष में, विजयी मित्र राष्ट्रों एवं सहयोगी राष्ट्रों, कुल 32 राष्ट्रों के आमन्त्रित 70 प्रतिनिधियों का पूर्ण अधिवेशन आरम्भ हुआ। शान्ति सम्मेलन में रूस तथा पराजित राष्ट्रों अर्थात् जर्मनी, आस्ट्रिया, तुर्की एवं बुल्गेरिया को आमन्त्रित नहीं किया गया था। इस सम्मेलन पर फ्रान्सवासियों की अन्तर्निहित उग्र प्रतिशोध की भावना की छाया प्रतिनिधियों के निर्णय पर पड़ी। डॉ. लैंगसम ने मत व्यक्त किया है, "पेरिस की जनता प्रतिशोध की उग्रभावना से पागल थी, और जनता के इस पागलपन से कूटनीतिज्ञों को लकवा मार गया।" इस सम्मेलन में 'चार बड़े' राज्यों अर्थात् संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रान्स तथा इटली को प्रमुख स्थान दिया गया था। निःसन्देह जापान को भी प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया गया था, परन्तु उसके प्रतिनिधियों ने शानतुंग प्रदेश प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य विषयों में विशेष रुचि नहीं ली। इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुये फ्रान्स के राष्ट्रपति पोइनकेअर (Poincare) ने कहा, "आज से 48 वर्ष पूर्व 18 जनवरी, 1871 को वर्साय के विशाल प्रासाद से एक आक्रमणकारी सेना ने जर्मन साम्राज्य की घोषणा की थी, और फ्रान्स के दो सम्पन्न प्रान्तों पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया था। इस प्रकार इस साम्राज्य का उद्भव अन्याय में हुआ था, और अब उसका अन्त भी लज्जाजनक कालिमा में हुआ। आप सब यहाँ इसलिए एकत्रित हुए हैं कि फ्रान्स के साथ जो अन्याय हुआ था, उसका प्रतिकार करें तथा भविष्य में उसकी पुनरावृत्ति नहीं होने दें। विश्व का भाग्य हमारे हाथों में है।"

सम्मेलन की कार्यवाही का सुचारु रूप से संचालन करने के लिए 10 प्रतिनिधियों की एक सर्वोच्च शान्ति परिषद् का गठन किया गया। इस परिषद् में अमेरिका, फ्रान्स, इटली, इंग्लैण्ड और जापान के दो-दो प्रतिनिधि थे। कालान्तर में दस प्रतिनिधियों की परिषद् भी बड़ी दृष्टिगत हुई, और परस्पर विचार-विमर्श को गुप्त रखना कठिन हो गया। अस्तु, सुविधा की दृष्टि से मार्च, 1919 में चार बड़े राष्ट्रों अर्थात् इंग्लैण्ड, फ्रान्स, अमेरिका तथा इटली के प्रतिनिधियों की परिषद् का गठन किया गया, परन्तु इटली के प्रधानमन्त्री औरलैण्डो (Orlando) ने एड्रियाटिक सागर स्थित फ्यूम बन्दरगाह की माँग की थी, जिसको अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने अस्वीकार कर दिया था, औरलैण्डो की माँग से आत्मनिर्णय के

सिद्धान्त का अतिक्रमण होता था। इस आधार पर इटली ने चार बड़े राष्ट्रों की परिषद् से त्यागपत्र दे दिया था। अन्ततोगत्वा तीन बड़े राष्ट्रों की परिषद् ने ही सम्मेलन की समस्त समस्याओं का समाधान किया। वास्तविक कार्य तीन बड़े राष्ट्रों के कूटनीतिज्ञों तथा विशेषज्ञों ने ही किया। ये तीन प्रमुख प्रतिनिधि उत्कृष्ट व्यक्ति थे। लेकिन परस्पर एक-दूसरे से भिन्न थे। फ्रान्स के प्रतिनिधि 'टाइगर' के उपनाम से विख्यात क्लीमैनस्यू (Clemenceau) सर्वाधिक वृद्ध एवं योग्य कूटनीतिज्ञ था। वह राजनीति में कठोर यथार्थवादी था, और उसने स्वयं के समक्ष निर्धारित लक्ष्य विस्मृत नहीं किये। फ्रान्स की सुरक्षा प्राप्त करना एवं जर्मनी को अधिकाधिक कठोर दण्ड देना ही मुख्य उद्देश्य था। विल्सन, अमेरिका का राष्ट्रपति उच्चकोटि का आदर्शवादी एवं थोड़ा अव्यावहारिक था। वह एक नई विश्व व्यवस्था स्थापित करने के प्रति कृत संकल्प था। अस्तु, उसने राष्ट्र संघ की स्थापना पर सर्वाधिक बल दिया। इंग्लैण्ड का प्रतिनिधि ल्याड जार्ज (Lloyd George) एक असीमित ऊर्जा का व्यक्ति था। वह कुशल एवं संसाधनों से युक्त था। उसने इन दोनों के मध्य सन्तुलन बनाये रखने का प्रयास किया। उसने चुनाव के समय जनता को दिये गये वचन कि 'जर्मनी को क्षतिपूर्ति के लिए बाध्य करेगा' से बँधा हुआ था। परिणामस्वरूप वातावरण शान्त, निष्पक्ष, सहृदय एवं सौहार्द्रपूर्ण की अपेक्षा अत्यधिक कटु था।

राष्ट्रपति विल्सन की भूमिका (Role of President Wilson)—विल्सन ने राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञा-पत्र को शान्ति सन्धि के अभिन्न भाग के रूप में सम्मिलित करने का निश्चय कर लिया था। वह क्लीमैनस्यू एवं ल्याड के विरोध के उपरान्त भी राष्ट्र संघ की स्थापना की परियोजना पर निरन्तर बल देता रहा। विल्सन को अपनी परियोजना की स्वीकृति के लिए अपने कार्यक्रम के 13 सूत्रों को समर्पण करना पड़ा अथवा किसी प्रकार समझौता करना पड़ा था। संघ से सम्बन्धित अधिदेश प्राप्त सत्ता (Mandatory System) प्रणाली की स्थापना था। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य जर्मन उपनिवेशों और तुर्की प्रान्तों जिनकी नियति मित्र राष्ट्रों के हाथों में थी, में अपेक्षाकृत अच्छी सरकार स्थापित करना था। विल्सन ने राइन नदी के समस्त बायें तट पर नियन्त्रण की माँग और इटली की एड्रियाटिक सागर पर स्थित फ्यूम बन्दरगाह की माँग का कठोर विरोध किया था। जब शान्ति सन्धियों के विभिन्न प्रावधानों का प्रारूप बनाया जा रहा था। वुडरो विल्सन को अपने 14 सूत्री कार्यक्रम के अधिकांश सिद्धान्तों का बलिदान करने के लिए विवश किया गया। विल्सन के विख्यात 14 सूत्री कार्यक्रम के अन्तिम सूत्र विश्व में शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से प्रस्तावित राष्ट्र संघ की स्थापना को ही स्वीकार किया गया।

वर्साय की सन्धि (Treaty of Versailles)—मई, 1919 में जर्मनी के प्रतिनिधियों को इस शान्ति सम्मेलन में भाग लेने के लिए बुलाया गया, और जर्मन प्रतिनिधियों के समक्ष 1 सहस्त्र धाराओं तथा 80 सहस्त्र शब्दों में लिखित प्रारूप रखा गया। जर्मन प्रतिनिधियों ने प्रारूप के प्रावधानों पर अपना विरोध व्यक्त करते हुए कहा कि उसमें विल्सन के 14 सूत्री कार्यक्रम का कोई भी अंश दृष्टिगत नहीं होता है। जर्मनी के पास सन्धि के प्रावधानों को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। एक जर्मन राजनीतिज्ञ ने इस सन्धि के प्रावधानों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था, "वह कौन-सा हाथ है जो सन्धि के इतने कठोर प्रावधानों पर हस्ताक्षर करके सड़ नहीं जायेगा।" अनेक दिनों तक संशय की स्थिति

में रहने के उपरान्त, स्वीकार करने के लिए दिये गये अतिरिक्त समय-सीमा के अन्तिम दिन, वेमार (Weimar) स्थित जर्मन संविधान सभा ने विजयी राष्ट्रों की सन्धि के प्रावधानों को बिना शर्त स्वीकार कर लिया। 28 जून, 1919 को जर्मन प्रतिनिधि हर्मन मुलर तथा जोहान्स बेल ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर किये। हस्ताक्षर करने के उपरान्त जर्मन प्रतिनिधि ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, "जर्मनी के प्रति प्रसारित उग्र घृणा की भावना से हम सुपरिचित हैं। मेरा देश दबाव के कारण आत्म-समर्पण कर रहा है, किन्तु जर्मनी यह कभी नहीं भूलेगा कि यह अन्यायपूर्ण सन्धि है।" तदुपरान्त विजयी राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये।

विख्यात वर्साय सन्धि के प्रावधानों के अनुसार :

1. जर्मनी ने सन् 1871 में फ्रान्स के खनिजों की दृष्टि से अत्यधिक धनी एवं सम्पन्न प्रदेश अलजेक-लारेन ले लिए थे, फ्रान्स को पुनः वापिस दे दिये। जर्मनी के समस्त प्रदेश को 15 वर्ष की अवधि के लिए अस्थायी रूप से अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के नियन्त्रण में दे दिया गया। 15 वर्ष की अवधि के उपरान्त जर्मनी के भाग्य का निर्णय जनमत संग्रह द्वारा करने की इस सन्धि में व्यवस्था थी।
2. जर्मनी की सीमा पर स्थित यूपेन, एवं मलमेडी के क्षेत्र बेल्जियम को दिये गये। मेमल नगर लिथुआनिया को दिया गया। ऊपरी साइलेशिया का कुछ भाग चैकोस्लोवाकिया को दिया गया।
3. जर्मनी की रूर एवं सार घाटी (Ruhr & Saar) में स्थित कोयला खदानों का नियन्त्रण, फ्रान्स की कोयला खदानों के जर्मनी द्वारा शोषण की क्षतिपूर्ति के रूप में फ्रान्स को दे दिया गया।
4. जर्मनी की पश्चिमी सीमा पर स्थित प्रशायी पोलैण्ड नवनिर्मित पोलैण्ड राज्य को दे दिया गया। साइलेशिया का खनिज सम्पदा की दृष्टि से सर्वाधिक धनी एवं सम्पन्न क्षेत्र भी जनमत के आधार पर पोलैण्ड को मिल गया।
5. स्केल्सविग (Schleswig) में जनमत संग्रह किया गया, और जनमत निर्णय के आधार पर उत्तरी स्केल्सविग डेनमार्क को दिया गया, तथा दक्षिणी स्केल्सविग जर्मनी के क्षेत्राधिकार में ही रहा। डान जिग बन्दरगाह को अन्तर्राष्ट्रीय कर दिया गया और राष्ट्र संघ के नियन्त्रण में उसको उन्मुक्त नगर घोषित किया गया।

जर्मनी को यूरोपीय क्षेत्रों के अतिरिक्त समस्त उपनिवेशों से भी वंचित कर दिया गया। क्याओ चाओ एवं शानतुंग प्रान्त में जर्मनी के औपनिवेशिक क्षेत्र जापान को पट्टे पर दिये गये। प्रशान्त महासागर में स्थित जर्मनी के अधिकृत औपनिवेशिक द्वीप भी जापान को मिल गये। प्रशान्त महासागर स्थित जर्मनी के कुछ अन्य उपनिवेशीय द्वीप आस्ट्रेलिया को दिये गये। सेमाओं द्वीप का जर्मन अधिकृत क्षेत्र न्यूजीलैण्ड को प्राप्त हुआ। अफ्रीका का जर्मन अधिकृत दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र दक्षिण अफ्रीका के नियन्त्रण में दे दिया गया, और जर्मन साम्राज्य का अफ्रीका में पूर्वी भाग ब्रिटेन को प्राप्त हुआ। केमरून तथा टोगोलैण्ड का फ्रान्स तथा इंगलैण्ड ने परस्पर विभाजन कर लिया। चीन, थाइलैण्ड, मिस्र, मोरक्को एवं लाइबेरिया में अपने अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का सन्धि के प्रावधानों के अन्तर्गत परित्याग करना पड़ा। इस प्रकार जर्मनी को लगभग 12 लाख वर्ग मील औपनिवेशिक क्षेत्र राष्ट्र संघ के संरक्षण में देना पड़ा। राष्ट्र संघ ने इन जर्मन अधिकृत उपनिवेशों को प्रशासनिक व्यवस्था के सुचारु रूप से संचालन के लिए विजयी मित्र राष्ट्रों को दे दिया। इस व्यवस्था को राष्ट्र संघ

की शासनादेश पद्धति (Mandate system) कहते हैं। जर्मनी को इन उपनिवेशों की क्षति से कई करोड़ रुपये वार्षिक आय की हानि हुई। सन्धि के प्रावधानों के अन्तर्गत जर्मनी को नवोदित पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, जर्मन आस्ट्रिया तथा बेल्जियम की स्वतन्त्रता को भी मान्यता देनी पड़ी।

सैन्य-शक्ति से सम्बन्धित प्रावधान (Provisions relating to Military)—वर्साय सन्धि में फ्रान्स की सुरक्षा को आश्वस्त करने एवं जर्मनी के सैन्यवाद को समाप्त करने के लिए जर्मनी की सैनिक एवं नौ-सैनिक शक्ति को सदैव के लिए समाप्त करने के उद्देश्य से स्थायी रूप से प्रतिबन्धों का प्रावधान किया गया। जर्मनी की कुल सैनिक शक्ति एक लाख सैनिक निश्चित की गयी। सेनापति विभाग समाप्त कर दिया गया तथा सेना के पुनर्गठन पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये। अब जर्मनी की सेना का मुख्य दायित्व देश में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना तथा अपनी सीमाओं की रक्षा करना था। शस्त्रास्त्रों, गोला, बारूद आदि युद्ध सामग्री के उत्पादन को निषिद्ध कर दिया गया। जर्मनी में प्रचलित अनिवार्य सैनिक सेवा को समाप्त कर दिया। जर्मनी का नौ-सेना बेड़ा विराम-सन्धि के समय स्थानबद्ध कर दिया गया था, उसको ब्रिटेन को समर्पित कर दिया गया। हेलिगोलैण्ड पर निर्मित दुर्ग को नष्ट कर देना था और कील (Kiel) नगर सब राष्ट्रों के लिए मुक्त करने की व्यवस्था थी। तीस मील चौड़े राइन नदी के पूर्वी तट पर जर्मनी को सुदृढ़ दुर्गों के निर्माण तथा उनको शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित करने की भी अनुमति नहीं थी।

जर्मनी की नौ-सेना के साथ भी भेदभावपूर्ण व्यवहार किया गया। जर्मनी की नौ-सेना में 6 युद्धपोत, 6 हल्के युद्धपोत एवं 12 टारपीडो नौकाएँ रखने की अनुमति थी। पनडुब्बी रखना वर्जित था। नौ-सैनिक अधिकारियों सहित कुल नौ-सैनिकों की संख्या 15 हजार निश्चित की गयी। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार अब जर्मनी नये युद्धपोतों का निर्माण नहीं कर सकता था। मित्र राष्ट्रों को सन्धि के प्रावधानों के समुचित रूप से कार्यान्वयन का निरीक्षण करने के लिए अधिकृत किया गया।

विद्वान इतिहासकार **ई. एच. कार** ने जर्मनी के निरस्त्रीकरण से सम्बन्धित सन्धि के प्रावधानों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, "जर्मनी का जिस कठोरता के साथ सर्वांगीण निरस्त्रीकरण किया गया, उतना अतीत में कभी किसी अन्य का नहीं किया गया था। लिखित रूप में प्राप्त आधुनिक इतिहास में ऐसा अन्य कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं है।"

जर्मनी ने, सम्राट विलियम द्वितीय पर अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार तथा सन्धियों के विरुद्ध अपराधी के रूप में सैनिक न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाने के लिए सहमति व्यक्त कर दी। हालैण्ड की सरकार ने विलियम द्वितीय को देने से मना कर दिया। अस्तु सन्धि का प्रावधान निरर्थक सिद्ध हुआ।

जर्मनी को "युद्ध दोषी" (War Guilty) अर्थात् युद्ध के लिए स्वयं को उत्तरदायी स्वीकार करना पड़ा और विजयी मित्र राष्ट्रों की असैनिक जनसंख्या तथा उसकी सम्पत्ति की क्षति के लिए वित्तीय क्षतिपूर्ति का वचन देने के लिए जर्मनी को बाध्य किया गया। प्रारम्भ में जर्मनी को क्षतिपूर्ति के रूप में 5,00,00,00,00,00,00 अर्थात् 50 खरब डालर का भुगतान करना था। इसके अतिरिक्त क्षतिपूर्ति के रूप में अन्य भुगतानों का निर्णय करने के लिए विशेष क्षतिपूर्ति आयोग का गठन किया गया। फ्रान्स के युद्ध में ध्वस्त क्षेत्रों के पुनर्निर्माण के लिए जर्मनी को अपने आर्थिक साधनों को समर्पित करने की भी व्यवस्था की गयी। जर्मनी

को फ्रान्स, इटली, बेल्जियम एवं लक्जमबर्ग को कोयले की आपूर्ति के लिए विवश किया गया। फ्रान्स को तारकोल तथा नौसादर भी प्राप्त हुआ। जर्मनी को सन् 1870-71 के फ्रान्स-प्रशा युद्ध काल में प्राप्त कलाकृतियों, पाण्डुलिपियों, ध्वज एवं अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ फ्रान्स एवं बेल्जियम को वापिस देनी पड़ीं, एवं युद्ध में नष्ट पाण्डुलिपियों एवं पुस्तकों की क्षतिपूर्ति करनी पड़ी।

ऐल्ब, डेन्यूब, ओडर और नीमन नदियों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने राइन नदी क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया। कील नहर और उसके मार्ग को विश्व के समस्त राष्ट्रों के लिए मुक्त कर दिया गया। हेमबर्ग तथा स्टीपन बन्दरगाहों के 11 वर्ष की अवधि के लिए चैकोस्लोवाकिया को बिना किराये के स्वतन्त्र क्षेत्र के रूप में देने का प्रावधान था।

सन्धि के प्रावधानों को समुचित रूप से कार्यान्वित करने के लिए भी व्यवस्था की गयी। राइन नदी के पश्चिमी क्षेत्र पर 15 वर्ष तक विजयी मित्र राष्ट्रों के नियन्त्रण की व्यवस्था थी। सन्धि के प्रावधानों के सुचारु रूप से कार्यान्वयन की स्थिति में कोलोन (Cologne) सेतु क्षेत्र को 5 वर्ष बाद, काबलेन्ज (Coblenze) क्षेत्र 10 वर्ष बाद और मेज (Mainz) क्षेत्र 15 वर्ष बाद खाली करने की व्यवस्था थी। सन्धि को कार्यान्वित नहीं करने की स्थिति में निश्चित समय सीमा में वृद्धि की जा सकती थी।

जर्मनी के अपमान का यहीं अन्त नहीं हुआ। सन्धि में स्पष्ट उल्लेख था कि जब तक सन्धि के समस्त प्रावधान पूर्णरूप से कार्यान्वित नहीं हो जाते, जर्मनी के निश्चित क्षेत्रों पर विजयी मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का पूर्ण नियन्त्रण रहेगा, और समस्त व्यय जर्मनी वहन करेगा। निरस्त्रीकृत एवं भारी क्षतिपूर्ति से बन्धित जर्मनी अपने विजेताओं के प्रभुत्व तथा संरक्षण में रहेगा। संक्षेप में जर्मनी को दण्ड दिया गया, निरस्त्रीकृत किया गया, एवं अपमानित किया गया। यह सन्धि के विभिन्न प्रावधानों की कठोरता ही थी जिसके परिणामस्वरूप एडोल्फ हिटलर ने कालान्तर में सन्धि के प्रावधानों को अस्वीकार कर दिया।

सेन्ट जर्मेन की सन्धि (Treaty of St. Germain)—अन्य सन्धियों में सर्वप्रथम 10 सितम्बर, 1919 को सेन्ट जर्मेन की सन्धि विजयी मित्र राष्ट्रों तथा आस्ट्रिया-हंगरी के मध्य हुई। इस सन्धि के प्रावधानों के अनुसार विशाल आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य का राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर अनेक राज्यों में विभाजन हो गया। आस्ट्रिया अधिकृत बोहेमिया (Bohemia) तथा मोरविया का विलय करके एक नये स्वतन्त्र राज्य चैकोस्लोवाकिया का निर्माण किया गया। सर्बिया को निकटवर्ती स्लाव बहुसंख्यक प्राप्त बोस्निया तथा हर्जेगोविना दे दिये गये, और सर्बिया का यूगोस्लाविया नाम के स्वतन्त्र राज्य के रूप में अभ्युदय हुआ। सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया ने दक्षिणी टायरोल, ट्रेनटाइन, ट्रीस्ट और इस्ट्रिया सहित एड्रियाटिक सागर का उत्तरी भाग इटली को दे दिया। आस्ट्रिया अधिकृत उत्तरी गैलिशिया पोलैण्ड को प्राप्त हुआ। हंगरी आस्ट्रिया से विलग कर दिया गया। इस प्रकार आस्ट्रिया का क्षेत्राधिकार जर्मन, भाषा-भाषी 60 लाख जनसंख्या क्षेत्र तक सीमित रह गया। यह क्षेत्र वियाना के चारों ओर फैला हुआ था। इस प्रकार आस्ट्रिया के साथ सन्धि आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लंघन थी। आस्ट्रिया ने नवोदित हंगरी, चैकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड एवं यूगोस्लाविया की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी, तथा भविष्य में जर्मनी के साथ किसी प्रकार का गठबन्धन नहीं करने का आश्वासन भी दिया। उसकी सैन्य-शक्ति को कुल 30,000 सैनिकों तक सीमित

कर दिया गया और नौ-सेना को समाप्त कर दिया गया। आस्ट्रिया को समस्त बन्दरगाहों से वंचित कर दिया गया। आस्ट्रिया को भी युद्ध के लिए दोषी घोषित किया गया। आस्ट्रिया ने क्षतिपूर्ति का भुगतान करने का वचन दिया। क्षतिपूर्ति की निश्चित राशि का निर्णय क्षतिपूर्ति आयोग को करना था।

निउली की सन्धि (Treaty of Neuilly)—27 नवम्बर, 1919 को निउली (Neuilly) की सन्धि बुल्गारिया के साथ हुई। इसके अन्तर्गत बुल्गारिया ने सन् 1912-13 के बाल्कन युद्धों में विजित समस्त क्षेत्र, थ्रेस यूनान को, मैसीडोनिया का कुछ भाग यूगोस्लाविया को, तथा डोब्रुजा रोमानिया को दे दिये। बुल्गारिया के सैनिकों की कुल संख्या 20,000 निश्चित कर दी गयी, और नौ-सेना को समाप्त कर दिया गया। इसके अतिरिक्त विपुल धनराशि का क्षतिपूर्ति के रूप में भुगतान करना पड़ा।

त्रियानों की सन्धि (Treaty of Trianon)—विजयी मित्र राष्ट्रों तथा हंगरी के मध्य 4 जून, 1920 को त्रियानों (Trianon) की सन्धि हुई। इस सन्धि के द्वारा हंगरी ने ट्रान्सिल्वानिया के क्षेत्र रोमानिया को दे दिया तथा स्लोवक का क्षेत्र चैकोस्लोवाकिया को दिया। क्रोशिया, यूगोस्लाविया को मिल गया। हंगरी केवल भू-आवृत्त क्षेत्र रह गया। उसकी सैन्य-शक्ति कम करके कुल 35,000 सैनिक निश्चित कर दी गयी। उसकी नौ-सेना को समाप्त कर दिया गया। उसकी कुल जनसंख्या 80 लाख थी, और उसका अधिकृत क्षेत्र 35,000 वर्ग मील था। इस प्रकार हंगरी को उसके 3/4 भू-क्षेत्र से वंचित कर दिया गया।

सेव्रे की सन्धि (Treaty of Sevres)—10 अगस्त, 1920 को विजयी मित्र राष्ट्रों ने तुर्की के साथ सेव्रे की सन्धि की। इस सन्धि के द्वारा तुर्की के साथ बहुत कठोर व्यवहार किया गया, और इसके अस्तित्व को एक प्रकार से समाप्त ही कर दिया गया। विशाल ओटोमन साम्राज्य को इसके अधिकांश भू-भाग से वंचित कर दिया गया। लाल सागर के पूर्व में स्थित हिजाज तथा अर्मीनिया को स्वतन्त्र देश बना दिया गया। फिलिस्तीन, इराक, ट्रान्स-जोर्डन तथा सीरिया को ओटोमन साम्राज्य से विलग करके अधिदेश-प्राप्त सत्तात्मक (Mandatory) क्षेत्र घोषित कर दिया। फिलिस्तीन, इराक तथा ट्रान्स-जोर्डन ब्रिटेन को एवं सीरिया फ्रान्स को प्रशासनिक व्यवस्था के लिए दे दिये गये। विवादग्रस्त डार्डेनेल्स तथा बास्फोरस जलडमरु मध्य क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीयकृत करके तटस्थ क्षेत्र बना दिया गया। स्मर्ना (Smyrna) के साथ थ्रेस का पूर्वी भाग यूनान को दिये गये। डोडेकनीज द्वीप समूह, रोडस एवं आरेलिया के प्रदेश इटली को प्राप्त हुए।

इस प्रकार ओटोमन साम्राज्य तुर्की मुख्य के अतिरिक्त समस्त बाह्य अधिकृत क्षेत्रों से वंचित हो गया। नई व्यवस्था के अनुसार ओटोमन साम्राज्य को 4,40,000 वर्ग मील विशाल भू-भाग की क्षति हुई। तुर्की की कुल सैनिक संख्या 50,000 निश्चित की गयी। इस प्रकार विशाल ओटोमन साम्राज्य को एक शक्तिहीन, छोटे राज्य में परिवर्तित कर दिया गया। तुर्की साम्राज्य के नाम मात्र के सुल्तान मोहम्मद षष्ठम् ने इस सन्धि के प्रावधानों को स्वीकार कर लिया, परन्तु मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में अंकारा स्थित तुर्की की राष्ट्रीय सभा ने इस सन्धि का अनुमोदन करने से मना कर दिया। शीघ्र ही तुर्की तथा यूनान के मध्य सशस्त्र संघर्ष आरम्भ हो गया, और यूनान को पराजित कर दिया। विजयी मुस्तफा कमाल पाशा ने पूर्व की सन्धि को समाप्त करने तथा नई सन्धि के लिए पश्चिमी शक्तियों को बाध्य किया। परिणामस्वरूप सन् 1923 में लुसान (Lausanne) की नई सन्धि हुई। इसके अनुसार तुर्की

ने हिजाज, फिलिस्तीन, ट्रान्स-जोर्डन, इराक एवं सीरिया पर अपने स्वामित्व का दावा छोड़ दिया, परन्तु समस्त अनातोलिया, स्मर्ना, कुस्तुनतुनिया और पूर्वी थ्रेस पर तुर्की का नियन्त्रण बना रहा। पूर्व सन्धि-पत्र समाप्त कर दिये गये। सीमा-शुल्क चौकियों से विदेशी नियन्त्रण हटा लिया गया। तुर्की की सेना, नौ-सेना और वायु सेना पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। तुर्की ने खाड़ियों को निरस्त्रीकृत करने की सहमति व्यक्त की और एशिया एवं अफ्रीका में अपने औपनिवेशिक क्षेत्रों पर दावा छोड़ दिया। यह सन्धि मुस्तफा कमाल पाशा के लिए महान् विजय थी और यूरोप की महाशक्तियों के लिए महान् अपमान था। कमाल जो चाहता था, प्राप्त किया। उसकी दृढ़ता के परिणामस्वरूप तुर्की विदेशी नियन्त्रण से मुक्त हो गया। इस सन्धि से यूनान को सर्वाधिक क्षति हुई।

सन् 1919-20 की पेरिस शान्ति सम्मेलन में उपर्युक्त सन्धियाँ ही सम्मिलित नहीं थीं, वरन् विजयी मित्र राष्ट्रों के साथ अनेक सामूहिक निर्णय एवं समझौते भी सम्मिलित थे। उल्लेखनीय है कि उन समस्त सन्धियों में रूस की कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं थी। सर्वाधिक उल्लेखनीय है कि पेरिस की उन सन्धियों में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित करने के लिए राष्ट्र संघ का पवित्र प्रतिज्ञा-पत्र सम्मिलित था। एक अन्य सहायक समझौते के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन स्थापित करने का भी प्रावधान किया गया।

सन्धियों की आलोचना (Criticism of the Treaties)—यूरोप में विशिष्ट संस्कृति, भाषा, जाति, सामाजिक एवं ऐतिहासिक परम्पराओं वाले जनसमुदायों को पृथक् स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की अनुमति दी गयी थी। इन समझौते के अन्तर्गत यूरोप में राष्ट्रीयता और आत्म-निर्णय अथवा स्वतन्त्रता के आधार पर क्षेत्रीय पुनर्व्यवस्था की गयी थी। इसी सिद्धान्त के आधार पर विभिन्न राष्ट्रीयताओं, भाषाओं, धर्मों एवं परम्पराओं वाले विशाल आस्ट्रिया साम्राज्य को विघटित कर दिया, और चैकोस्लोवाकिया एवं यूगोस्लाविया राज्यों का अभ्युदय हुआ था। पोलैण्ड का पुनर्जीवन एवं इटली का क्षेत्रीय विस्तार राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की विजय थी, लेकिन इस सिद्धान्त को जर्मनी के सन्दर्भ में तार्किक ढंग से प्रयुक्त नहीं किया गया। बोहेमिया में जर्मन स्लावों के अधीन थे और डालमेटिया में स्लाव, इटलीवासियों के अधीन थे। कुछ राष्ट्रीयताओं के व्यक्ति परस्पर इतने अधिक मिश्रित हो गये थे कि उनके मध्य व्यावहारिक दृष्टि से विभेदक रेखा खींचना सम्भव नहीं था। परिणामस्वरूप महाशक्तियों द्वारा स्थापित भावी राज्यों में अल्पमत की जटिल समस्या थी। इन अल्पमतों को बहुसंख्यक राज्यों में करना सम्भव नहीं था, और बहुसंख्यकों के अधीन अल्पमतों के हितों को सुरक्षा प्रदान करना विकट समस्या थी। यूरोप के बाहर अधिदेश-प्राप्त सत्तात्मक प्रणाली आत्मनिर्णय अर्थात् स्वतन्त्रता के प्रतिकूल थी। अधिदेश-प्राप्त सत्तात्मक प्रणाली वहाँ की जनता के पिछड़ेपन के कारण विजयी राष्ट्रों द्वारा लूट का माल के रूप में उनका शोषण रोकने के लिए प्रयुक्त की गई थी।

पेरिस शान्ति सम्मेलन में दो विचारों में प्रभुत्व के लिए संघर्ष चल रहा था। एक ओर अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन के द्वारा प्रस्तावित पुनर्निर्माण के आदर्शवादी सिद्धान्त थे। इसके विपरीत मित्र राष्ट्रों के स्वार्थी युद्ध उद्देश्य थे। मित्र राष्ट्र क्षेत्रीय एवं आर्थिक लाभ के साथ-साथ पराजित शत्रु से सम्भावित खतरे के विरुद्ध सुरक्षा चाहते थे। वुडरो विल्सन ने घोषणा की थी, "विश्व को लोकतन्त्र के लिए सुरक्षित बनाना चाहिए।" वुडरो विल्सन द्वारा प्रस्तुत 14 सूत्री कार्यक्रम से उनकी दृष्टि में जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप निष्पक्ष सम्मान

और अधिकार के सार्वभौम प्रभुत्व" पर आधारित न्यायोचित एवं दीर्घकालीन शान्ति सम्भव हो सकेगी। जब तक जर्मनी अपराजित रहा, मित्र राष्ट्रों ने वुडरो विल्सन के उदात्त आदर्शवाद का उच्च स्वर से गुणगान किया, लेकिन जर्मनी के पतन के बाद मित्र राष्ट्रों के मस्तिष्कों में अन्तर्निहित स्वार्थी महत्वाकांक्षाएँ प्रबल हो गयीं, और न्याय के निष्पक्ष वितरण के समस्त विचारों को एक झोंके में उड़ा दिया। पराजित राष्ट्रों पर आरोपित अत्यधिक कठोर शर्तों से स्पष्ट रूप से विजेता राष्ट्रों के निकट अतीत की विभीषिका, निकट भविष्य का भय और प्रतिशोधात्मक भावना दृष्टिगत होती थी। यूरोप में जर्मनी के साम्राज्य को संकुचित कर दिया गया, यूरोप के बाहर जर्मनी के समस्त उपनिवेशों से उसको वंचित कर दिया गया। जर्मनी को कंगाल एवं निरस्त्र कर दिया गया। आस्ट्रिया को पुर्तगाल से भी कम आकार का बना दिया गया। तुर्की को बिल्कुल विलोपन के बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दिया। इन समस्त समायोजनों में निहित मानसिकता को इस लोकोक्ति "लूट विजेताओं की होती है", सर्वोत्कृष्ट रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है। यद्यपि शान्ति समझौतों के आधार के रूप में राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों को प्रयुक्त किया गया, लेकिन इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है, कि इस सिद्धान्त का प्रयोग विजेता के मूल्य पर विजेताओं के पक्ष में किया गया। इस सिद्धान्त को प्रयुक्त करके मध्य शक्तियों को क्षेत्रीय सीमाओं की दृष्टि से अत्यधिक निर्बल कर दिया गया जिससे वे निकट भविष्य में खतरा नहीं बन सके।

लेकिन यह स्वीकार किया जाता है कि शान्ति समझौते अत्यधिक उग्र एवं उत्तेजित तथा जर्मनी के विरुद्ध घृणा एवं शत्रुतापूर्ण वातावरण में किये गये। भीषण युद्ध की विभीषिका एवं क्रूरतम अत्याचार जिसके लिए मित्र राष्ट्र जर्मनी को उत्तरदायी मानते थे, उनके समक्ष अब भी सजीव थे। अस्तु, मित्र राष्ट्रों के लिए कठोर एवं प्रतिशोधात्मक होना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त जर्मनी जब रूस के विरुद्ध विजेता था, उसने ब्रेस्ट-लिटोव्स्क की सन्धि द्वारा रूस के ऊपर अत्यधिक घृणित एवं अन्यायपूर्ण शर्तें आरोपित की थीं। मित्र राष्ट्रों के समक्ष समन्वय के लिए अनेक परस्पर विरोधी हित थे, और अतीत की गुप्त सन्धियों ने उनको पंगु बना दिया था। इन सन्धियों द्वारा मित्र राष्ट्रों ने स्वयं को मध्य शक्तियों के विरुद्ध शक्तिशाली एवं संयुक्त स्वरूप को व्यापक बनाने का प्रयास किया था। इन सन्धियों के द्वारा अनेक राष्ट्रों को उदारतापूर्वक क्षेत्रीय लाभों का प्रलोभन देकर युद्ध में सम्मिलित होने के लिए तैयार किया गया था।

राष्ट्र संघ (League of Nations)

राष्ट्र संघ के पीछे उद्देश्य एवं दायित्व नये नहीं थे। इतिहास में अधिकांश युद्धों ने राष्ट्रों के मध्य युद्धों को रोकने और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सशस्त्र संघर्ष की अपेक्षा पंच निर्णय द्वारा समाधान के विचार अनेक बार प्राप्त हुए हैं। 19वीं शताब्दी में विविध क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का पर्याप्त विकास हुआ था। नैपोलियन कालीन युद्धों के बाद जनसमुदाय ने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की अपेक्षा राष्ट्रवाद पर अधिक बल दिया था। इसी अवधि में युद्ध से बचने और यूरोप के राष्ट्रों को समान हितों के सम्बन्धों को जोड़ने के लिए अनेक प्रयास किये गये। जार अलेक्जेण्डर प्रथम की पवित्र सन्धि, यद्यपि कुछ काल बाद अन्य अनेक प्रेरक तत्वों से प्रभावित हो गयी, का मुख्य उद्देश्य कुछ निश्चित समान उद्देश्यों के लिए समस्त ईसाई मतावलम्बी राष्ट्रों को एकीकृत करना था। जार की इस योजना को आदर्श एवं अव्यावहारिक माना जाता था, और यह गम्भीर विषयों के अनुपयुक्त थी, अस्तु, असफल हो

गयी। शान्ति बनाये रखना यूरोप का समान हित था। इस विचार को सर्व सम्मति से स्वीकार किया गया था। सन् 1815 में चतुर्मुखी राष्ट्रसंघ (Quadruple Alliance) पर आधारित यूरोप की संयुक्त व्यवस्था ने सम्मेलनों (Congresses) के युग का सूत्रपात किया, और सामूहिक रूप से विचार-विमर्श का अवसर दिया। यद्यपि समान हित के विषयों में यूरोपीय राष्ट्रों का सहयोग नहीं मिला, लेकिन समय-समय पर आयोजित सम्मेलनों (Congresses) में विभिन्न राष्ट्रों के कूटनीतिज्ञों के सामूहिक विचार-विमर्श निश्चित रूप से अन्तर्राष्ट्रवाद के क्षेत्र में उपयोगी प्रयोग थे। क्रीमिया युद्ध के बाद पेरिस सम्मेलन के अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाये रखने के सम्बन्ध में विशद् विचार-विमर्श हुआ। 19वीं शताब्दी के अन्तिम 25 वर्षों में अपेक्षाकृत शान्ति काल में वाणिज्यिक, श्रम, सांस्कृतिक एवं वैधानिक क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का आविर्भाव एवं विकास हुआ, लेकिन राजनीति के क्षेत्र में इस भावना का सर्वथा अभाव था। फिर भी राष्ट्रों के मध्य विवादों का समाधान करने के लिए पंच निर्णय की पद्धति में पर्याप्त विकास हुआ। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का बिना सशस्त्र संघर्ष के समाधान किया गया। सन् 1899 एवं सन् 1907 के हेग सम्मेलनों में निरस्त्रीकरण की नीति द्वारा युद्ध के खतरे को समाप्त करने का असफल प्रयास किया गया, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित करके पंच निर्णय के आन्दोलन को निश्चित दिशा दी। इस न्यायालय ने यथार्थ में कुछ महत्वपूर्ण कार्य किये।

इस प्रकार राष्ट्र संघ उन्नीसवीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शान्तिपूर्ण समाधान करके युद्ध से बचने के उद्देश्य के लिए अनवरत प्रयासों का चरमोत्कर्ष था। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सुरक्षित रखने और विविध क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए राजनीति के क्षेत्र में विश्व संगठन की दिशा में रचना-तन्त्र स्थापित किया गया।

राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञा-पत्र में कुल 26 अनुच्छेद थे, इसका मुख्यालय स्विट्ज़रलैण्ड में जेनेवा निश्चित किया गया। राष्ट्र संघ के सुचारु रूप से कार्यान्वयन के लिए दो संस्थाओं का प्रावधान किया गया था। पहली संस्था संघ के सदस्य देशों के प्रतिनिधियों की सामान्य सभा थी। इसमें प्रत्येक देश के तीन प्रतिनिधि थे, लेकिन मतदान केवल एक ही व्यक्ति कर सकता था, एवं दूसरी परिषद् का गठन, स्थायी रूप से स्थापित महान् शक्तियों अर्थात् ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रान्स, इटली और जापान के प्रतिनिधियों के साथ संघ के अन्य सदस्य देशों के सामान्य सभा द्वारा समय-समय पर निर्वाचित 4 सदस्यों द्वारा किया जाता था। परिषद् संघ की कार्यपालिका अथवा मन्त्रिपरिषद् के अनुरूप थी। संघ के दायित्वों के निर्वाह के लिए एक स्थायी सचिवालय की भी व्यवस्था की गयी थी। कालान्तर में स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का अभ्युदय हुआ।

राष्ट्र संघ उन्नीसवीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शान्तिपूर्ण समझौते द्वारा युद्ध से बचने के लिए क्रमानुसार अनेक प्रयासों का चरमोत्कर्ष था। इस राष्ट्र संघ के चार मुख्य उद्देश्य थे : (1) भविष्य में विनाशकारी युद्धों को रोकना। (2) शान्ति प्रयासों तथा संगठनों को गठित करना। (3) शान्ति सन्धियों द्वारा आरोपित विशेष दायित्वों का निर्वाह करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करना। शपथ-पत्र के निर्माताओं के मस्तिष्क में, भविष्य में भीषण विनाशकारी युद्धों को रोकने का उद्देश्य सर्वोपरि था। संघ के अनुच्छेद इस प्रकार के थे, जिनके द्वारा युद्धों को पूर्णरूप से रोकना असम्भव था। इस सन्दर्भ में अनेक अपवाद भी थे। न्यायोचित युद्ध को रोकने में संघ सक्षम नहीं था। संघ के निर्णयों

को सक्रिय रूप से कार्यान्वित करने के लिए अपेक्षित स्वयं की सशस्त्र सेना का अभाव था। शपथ-पत्र में हठी एवं दुराग्रही सदस्य एवं गैर-सदस्यों के विरुद्ध स्पष्ट रूप से दण्ड विधान का भी प्रावधान था, लेकिन दण्ड के क्रियान्वयन के लिए शक्तिशाली अभिकरण का अभाव था।

भावी युद्धों की आशंकाओं को समाप्त करने के अतिरिक्त संघ से, युद्धों के अन्तर्निहित कारणों का उन्मूलन करने तथा शान्ति सम्मेलनों का आयोजन करने, जैसे सकारात्मक कार्यों की भी आशा की जाती थी। प्रतिस्पर्द्धात्मक शस्त्रीकरण की प्रक्रिया का उन्मूलन शपथ-पत्र (Covenant) का प्रमुख लक्ष्य था। परिषद् से शस्त्रास्त्रों को सीमित करने के लिए निश्चित योजनाएँ बनाने के लिए आग्रह किया गया था।

सामान्य मानवीय समस्याओं के विषय में विश्व के देशों में परस्पर सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करके विश्व शान्ति स्थापित करना राष्ट्रीय संघ का मुख्य दायित्व था। राष्ट्र संघ से विश्व के देशों को मानवीय आधार पर समस्याओं के समाधान की बहुत आशा थी। ऐसा विश्वास था कि राष्ट्र संघ मानवोत्थान एवं मानव कल्याण के लिए सक्रिय प्रयास करेगा। राष्ट्र संघ अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए, उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के कल्याण के लिए निष्पक्ष एवं मानवीय परिस्थितियों के निर्माण करने, उपनिवेशों की दीन-हीन एवं दलित जनता के लिए न्यायोचित व्यवहार करने, संचार एवं परिवहन साधनों की स्वतन्त्रता एवं संघ के समस्त सदस्यों के साथ वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्षेत्रों में समान व्यवहार को सहज एवं सुलभ करने और अफीम एवं अन्य घातक पदार्थों के आवागमन को नियन्त्रित करने से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समझौतों को प्रोत्साहित करेगा।

अनेक संक्रामक एवं घातक रोगों के प्रसार को रोकने तथा नियन्त्रित करने तथा समस्त विश्व में मानव कष्टों एवं पीड़ाओं का उन्मूलन करने के लिए समुचित प्रयास करना राष्ट्र संघ का ही दायित्व था।

समस्त सन्धियों के प्रावधानों के कार्यान्वयन और राष्ट्र संघ के कार्य प्रारम्भ होने के समय से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयीं। संयुक्त राज्य अमेरिका के उच्च सदन सीनेट ने पेरिस सन्धियों के प्रावधानों का अनुमोदन करने से मना कर दिया। परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं बन सका। इससे राष्ट्र संघ की गतिविधियाँ अत्यधिक प्रभावित हुईं। अन्य महत्वपूर्ण यूरोपीय देशों की राष्ट्र संघ में अनुपस्थिति बहुत हानिकारक सिद्ध हुई। 14 वर्ष तक रूस राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं था। जर्मनी को भी बहुत बाद में राष्ट्र संघ का सदस्य बनाया गया।

संघ की गतिविधियाँ (Activities of the League)—संघ ने राष्ट्रों के मध्य अनेक गौण विवादों का समाधान किया। आलैण्ड द्वीप के विषय में स्वीडन एवं फिनलैण्ड के मध्य विवाद का सफलतापूर्वक समाधान किया। जर्मनी और पोलैण्ड के मध्य ऊपरी साइलेशिया से सम्बन्धित जटिल विवाद संघ की परिषद् के समक्ष विचारार्थ लाया गया। परिषद् ने विशेष आयोग नियुक्त किया जिसने पोलैण्ड और जर्मनी के मध्य सीमाएँ निर्धारित कीं। संघ ने तीन बार संकटग्रस्त बाल्कन क्षेत्र में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया। सन् 1921 में यूगोस्लाविया द्वारा अल्बानिया पर आक्रमण किया गया लेकिन संघ ने हस्तक्षेप करके अल्बानिया की रक्षा की। सन् 1923 में इटली द्वारा यूनान पर आक्रमण की धमकी के विरुद्ध हस्तक्षेप करके रक्षा की। सन् 1925 में राष्ट्र संघ ने बुल्गारिया और यूनान के मध्य युद्ध की घोषणा को रोककर

सम्भावित संकट को समाप्त किया। इराक और तुर्की के मध्य सीमा विवाद का समाधान संघ की सक्रियता के परिणामस्वरूप हुआ। संघ द्वारा नियुक्त आयोग ने सन्.1926 में अपना निर्णय दिया। इस निर्णय को, यद्यपि तुर्की सन्तुष्ट नहीं था, दोनों दलों ने स्वीकार कर लिया। तुर्की को संघ की सामर्थ्य एवं क्रियान्वयन शक्ति में सन्देह था और रूस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने की ओर अग्रसर हुआ।

संघ के पास अपने निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए प्रभावशाली तन्त्र नहीं था, और संघ महाशक्तियों के मध्य विवाद की स्थिति में शान्ति स्थापित करने में असफल रहा। संघ हिटलर को अपनी महत्वाकांक्षाओं की उपलब्धि में रोकने में असफल रहा।

सामाजिक क्षेत्रों में सफलता (Successes in Social Affairs)—यथार्थ में संघ अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्णतया असफल रहा। निरस्त्रीकरण नहीं हो सका और संघ युद्धों एवं आक्रमणों को रोकने में भी असफल रहा, लेकिन सामाजिक एवं मानव कल्याण के क्षेत्रों में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इसने अपने अभिकरणों के माध्यम से नारी, बच्चों एवं अफीम के अवैध व्यापार के उन्मूलन के लिए चिन्ता व्यक्त की और दासता एवं बंधुआ मजदूरी के विरुद्ध संघर्ष किया। शैक्षणिक एवं बौद्धिक सहयोग को प्रोत्साहित करने, अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन एवं संचार को सुविधाजनक बनाने और समस्त विश्व में विभिन्न स्वास्थ्य एवं वैज्ञानिक संगठनों के मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए बहुत काम किया।

वर्साय की सन्धि का आकलन (Estimate of the Treaty of Versailles)—वर्साय की सन्धि के विस्तृत विवरण के सूक्ष्म अध्ययन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्साय सन्धि का प्रारूप तैयार करने वाले राजनीतिज्ञ अवसर के अनुरूप ऊँचे उठने में असफल रहे। उन्होंने यद्यपि शान्ति का प्रस्ताव तैयार किया था, लेकिन उसमें शान्ति की भावना का सर्वथा अभाव था, और भावी घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि इस शान्ति प्रस्ताव में एक अन्य भीषण विश्व युद्ध के बीज निहित थे। उल्लेखनीय है कि जर्मनी पर आरोपित शर्तें कठोरता की दृष्टि से चौंका देने वाली थी, एवं उनकी पूर्ति असम्भव थी। उसको शस्त्रास्त्रों से वंचित करके शत्रु के समक्ष नंगा खड़ा किया गया। उसको उसके उपनिवेशों के साथ-साथ उसके समस्त हितों और अपने देश के बाहर व्यापारिक विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया गया। क्षेत्रीय सीमाओं की क्षति से उसकी लगभग 60 लाख जनता जर्मनी से अलग हो गयी। जर्मनी को कुछ सर्वाधिक धनी एवं सम्पन्न खनिज जिलों से भी वंचित कर दिया, और युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में विपुल राशि आरोपित की गयी। आरोपित शर्तें केवल कठोर ही नहीं, वरन् असामान्य भी थे। आरोपित शर्तों में विजित शक्तियों की शान्ति एवं मानव कल्याण के प्रति निष्ठा एवं सद्भावना का भी अभाव था। जर्मनी को, बिना पारस्परिकता के मित्र राष्ट्रों को आर्थिक विशेषाधिकार देने के लिए बाध्य किया गया। उसके उपनिवेश अधिदेश प्राप्त (Mandatory) प्रबुद्ध शासन को कुशल प्रशासन के लिए दे दिये गये, लेकिन विजयी राष्ट्रों ने उपनिवेशों एवं अधीनस्थ क्षेत्रों के विषय में कोई उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं किया। सन्धि के अन्तर्गत आत्मनिर्णय अथवा स्वतंन्त्रता के सिद्धान्त के आधार पर क्षेत्रीय पुनर्निर्धारण किया गया था, लेकिन जर्मनी के सन्दर्भ में इसकी उपेक्षा की गयी थी। जर्मनी ने आपत्ति व्यक्त की कि उसने इस आशा से अपने शस्त्रास्त्र समर्पित कर दिये थे कि राष्ट्रपति वुडरो विल्सन द्वारा प्रस्तावित 14 सूत्री कार्यक्रम में समस्त राष्ट्रों के लिए शस्त्रास्त्रों पर सामान्य सीमाओं का

अनुसरण किया जायेगा, लेकिन मित्र राष्ट्रों ने निरस्त्रीकरण के विषय में कुछ भी नहीं किया। अस्तु, जर्मनी अत्यधिक असन्तुष्ट एवं क्षुब्ध था।

"लेकिन सन्धि के नैतिक दोष व्यावहारिक की अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट नहीं हैं।" यह आशा करना निरर्थक ही है कि जर्मनी जैसी महाशक्ति शस्त्रास्त्र के विषय में भेदभाव के विषय में अनिश्चित काल तक समर्पित रहेगी। बेल्जियम जैसा छोटा राष्ट्र शस्त्रास्त्रों एवं सैनिकों की दृष्टि से जर्मनी से श्रेष्ठ है, निरर्थक प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त पोलिश गलियारा बनाकर जर्मनी का दो भागों में विभाजन एवं साइलेशिया के औद्योगिक क्षेत्र के बहुत बड़े भाग को पोलैण्ड को देना, इन दोनों व्यवस्थाओं ने जर्मनी के गौरव को आहत किया था। जर्मनी को फ्रेडरिक महान् की समस्त विजयों से जबरदस्ती वंचित करने का सन्धि का प्रावधान निश्चित रूप से जर्मन जनसमुदाय से अन्य युद्ध की तैयारी करने का आग्रह था। जर्मनी के ऊपर युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में विशाल धनराशि आरोपित की गयी थी लेकिन उसके खनिज सम्पदा के प्राकृतिक स्त्रोतों को कम कर दिया गया था। यह राष्ट्र के पुनरुद्धार के लिए गम्भीर बाधा था। इसने आरोपित क्षतिपूर्ति की वसूली असम्भव बना दी थी। "कोई व्यक्ति हंस को भूखों नहीं मार सकता है, और उससे सोने के अंडे देने की आशा नहीं कर सकता है।" यूरोप को लोकतन्त्र के लिए सुरक्षित नहीं बनाया गया था।

जर्मनी पर आरोपित सन्धि के कठोर प्रावधानों के कारण असीमित समस्याएँ उत्पन्न हो गयीं। सन्धि के कठोर प्रावधानों के प्रति विश्व के विद्वानों ने अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं। दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमन्त्री **जनरल स्मट्स** ने सन्धि पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था, "मैंने सन्धि पर हस्ताक्षर इसलिए नहीं किये कि मैं इसका अनुमोदन करता हूँ, वरन् युद्ध की स्थिति को समाप्त करने के लिए किये हैं। हमें वह वास्तविक शान्ति नहीं मिल सकी जिसकी जनता को आशा थी।" पंडित जवाहरलाल नेहरू कठोर प्रावधानों की आलोचना करते हुए कहते हैं, "मित्र राष्ट्र घृणा एवं प्रतिशोध की भावना से अनुप्राणित थे। वे माँस का पौंड ही नहीं चाहते थे वरन् जर्मनी के अर्द्धमृत शरीर से अन्तिम बूँद तक ले लेना चाहते थे।" यह सन्धि निःसन्देह जर्मनी के लिए अत्यधिक प्रतिशोधात्मक तथा अपमानजनक थी। **लायड जार्ज** ने इसको न्यायोचित सिद्ध करते हुए कहा था, "इस सन्धि के प्रावधान अत्यधिक कठोर हैं परन्तु जर्मनी के कार्य इससे कम भयंकर नहीं थे। यदि जर्मनी विजयी होता तो इसके परिणाम कम भयंकर नहीं होते।"

विद्वान **डी. सी. सीमरवेल** अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखते हैं, "वर्साय की सन्धि द्वारा जर्मनी को गहरा आघात ही नहीं लगा वरन् इससे अधिक इसको अपमानित किया गया। पराजय का अपमान मिट गया और जैसे ही इसके घाव भर गये, इसने पूरी शक्ति से प्रतिशोध लेने का प्रयास किया।" सामान्य रूप से युद्धोपरान्त प्रत्येक सन्धि आरोपित सन्धि होती थी। वर्साय की सन्धि कोई अपवाद नहीं थी, परन्तु इस सन्धि के समय सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टाचार के नियमों एवं परम्पराओं का स्वच्छन्दतापूर्वक अतिक्रमण किया गया। सन्धि पर हस्ताक्षर करते समय जर्मनी के प्रतिनिधियों के साथ अपराधी के रूप में व्यवहार किया गया जिससे उन्हें मानसिक आघात पहुँचा। विद्वान इतिहासकार **ई. एच. कार** इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "वैसे तो युद्ध समाप्त करने वाली प्रत्येक सन्धि एक प्रकार से आरोपित सन्धि होती है, परन्तु वर्साय की सन्धि में अधिदिष्ट किये जाने का भाव आधुनिक काल की किसी भी सन्धि की अपेक्षा अधिक है।" **प्राध्यापक लेंगसम** ने मत व्यक्त किया है, "यह सन्धि एक पक्षीय थी। इसमें भविष्य के संघर्ष के बीज विद्यमान थे।"

पेरिस की समस्त सन्धियों का मूलभूत सिद्धान्त था, "विजेता को ही लूट पर अधिकार है और इस समय मित्र राष्ट्र ही विजेता थे।" जर्मनवासियों का विश्वास था कि सन्धि का आधार वुडरो विल्सन के चौदह सूत्र होंगे, परन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं हुआ। जर्मनी ने इसी विश्वास के साथ युद्ध विराम को स्वीकार किया था। इस दृष्टि से यह सन्धि जर्मनी के साथ विश्वासघात था। अस्तु, वर्साय की अनुचित एवं अन्यायपूर्ण सन्धि ही द्वितीय विश्व युद्ध के लिए उत्तरदायी थी। फ्रान्स के प्रतिनिधि मार्शल फोच ने स्वयं कहा था, "यह सन्धि कोई शान्ति सन्धि नहीं है। यह केवल बीस वर्षों के लिए युद्ध विराम है।" उनका अभिव्यक्त मत भविष्य के गर्भ में निहित घटनाओं की भविष्यवाणी थी।

निःसन्देह यह सन्धि अत्यधिक कठोर थी। इस सत्य को स्वीकार करते हुए लायड जार्ज ने कहा था, "सन्धि के प्रावधान अत्यधिक भयानक किन्तु न्यायपूर्ण थे।" अमेरिका के तत्कालीन विदेशमन्त्री ने भी इस तथ्य की पुष्टि की थी। जर्मनी के चान्सलर बेथवान-हालमेग ने कटु आलोचना करते हुए कहा था, "पराजित को दास बनाने का इससे बढ़कर विश्व ने कभी भी भयानक उपाय नहीं देखा।" भावी ब्रिटिश प्रधानमन्त्री विन्सटन चर्चिल ने विचार व्यक्त किया था, "सन्धि के आर्थिक प्रावधान इतने मूर्खतापूर्ण एवं अनिष्टकारी थे कि यथार्थ में उनका कोई महत्व नहीं रह गया था।

पेरिस की सन्धियों की समीक्षा करते हुए विद्वान प्राध्यापक डेविड थामसन लिखते हैं, "समस्त सम्मेलन में आदर्शवाद एवं यथार्थवाद के मध्य जो संघर्ष चलता रहा, इसके परिणामस्वरूप ऐसी व्यवस्था का सृजन हुआ जिसमें विजित राष्ट्रों के प्रति ऐसे विषयों में कठोरता बढ़ती गयी, जहाँ मृदुल नीति ग्रहण करना श्रेयस्कर होता, तथा ऐसे विषयों में उदारता प्रदर्शित की गयी, जहाँ कठोर होना आवश्यक था। यह ऐसी व्यवस्था थी, जिसे पराजित राष्ट्र सहर्ष स्वीकार नहीं कर सके, और जिसका अतिक्रमण करने के लिए उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता एवं साधन उपलब्ध करा दिये गये। इसके कार्यों की इस परिणति की दृष्टि से इतिहास में पेरिस सम्मेलन को निश्चित रूप से असफल माना जायेगा।"

डास योजना (Dawes Plan)—सन् 1920 से सन् 1923 की अवधि में जर्मन सरकार ने आय से 31,771 मिलियन मार्क्स अत्यधिक व्यय किये। जर्मन सरकार ने सन् 1921 में जिस प्रकार अपनी क्षतिपूर्ति का भुगतान किया था उसी प्रकार इस कमी की पूर्ति की। सन् 1923 के अन्त तक 1783 प्रेस कागज की मुद्रा की माँग की पूर्ति के लिए दिन-रात काम कर रहे थे। परिणामस्वरूप कागज की मुद्रा इतनी अधिक मात्रा में हो गयी कि इसका मूल्य प्रेस से निकलने से पहले कम हो गया। अमेरिका के डालर का मूल्य जुलाई, 1914 में 4·2 मार्क था जो युद्ध की समाप्ति तक 8·9 मार्क हो गया था। तदुपरान्त मार्क का नाटकीय ढंग से अवमूल्यन हुआ। जुलाई, 1920 में एक डालर का मूल्य 39·5 मार्क था; जुलाई, 1922 में 493 मार्क्स था, और वर्ष 1923 में डालर का मूल्य अरबों मार्क्स तक कम हो गया। कर्मचारियों को वेतन सैकड़ो बिलियन मार्क्स दिया जाता था। वस्तुओं के मूल्य दिन में अनेक बार बढ़ जाते थे। जनता अपना धन ठेलों में लेकर चलती थी। धन के भार की अपेक्षा ठेले अधिक मूल्यवान थे। अस्तु, ठेलों के चोरी हो जाने की सम्भावना रहती थी। जीवन अत्यधिक पीड़ाकारी एवं विक्षुब्धतामय था। कीमतें अर्थहीन थीं, जीवनपर्यन्त की बचत मूल्यहीन हो गयी। अर्थव्यवस्था में कोई स्थायित्व नहीं था। समस्त अर्थव्यवस्था ध्वस्त हो चुकी थी।

व्यक्तिगत व्यापारिक योजना का प्रश्न ही नहीं था। दिसम्बर, 1923 तक नियोजकों ने 70% श्रमिकों को निरन्तर बढ़ते हुए वेतन देने में असमर्थता के कारण सेवा से मुक्त कर दिया था।

जर्मनी पर आरोपित कठोर प्रावधानों के परिणामस्वरूप फ्रान्स प्रायः जर्मनी की सैन्य शक्ति के दुःस्वप्न से भयाक्रान्त रहता था, जब कि जर्मनी की, वर्साय सन्धि के कठोर प्रावधानों को कार्यान्वित करने की किंचित इच्छा नहीं थी। फ्रान्स एवं जर्मनी के मध्य विवाद के परिणामस्वरूप फ्रान्स ने जर्मनी के खनिज सम्पदा सम्पन्न रूर (Ruhr) पर अधिकार कर लिया और जर्मनी ने क्षतिपूर्ति से सम्बन्धित वित्तीय दायित्वों की पूर्ति में अपनी असमर्थता की घोषणा कर दी। रूर जर्मनी के औद्योगिक जीवन का मुख्य केन्द्र था। फ्रान्स द्वारा रूर पर अधिकार से जर्मन जनता का उदात्त देशभक्तिपूर्ण प्रबल उत्साह अत्यधिक उत्तेजित हो गया। रूर क्षेत्र में समस्त श्रमिकों ने हड़ताल कर दी। जर्मन उद्योग नष्ट हो गये और जर्मन मुद्रा का अवमूल्यन हो गया। आम हड़ताल ने समस्त रूर के उद्योगों को पंगु कर दिया। अस्तु, फ्रान्स की गतिविधियाँ भी गतिहीन हो गयीं। नीतियों के दो समूहों ने जर्मनी को आर्थिक अव्यवस्था से बाहर निकाला। सर्वप्रथम जर्मनी के चान्सलर **गुस्ताव स्ट्रेसमैन** (Gustav Stresemann) ने रूर के कर्मचारियों से निष्क्रिय विरोध समाप्त करने का अनुरोध किया और नई नियन्त्रित मुद्रा रेन्टेनमार्क (Rentenmark) का सूत्रपात किया, जिसने आशा एवं विश्वास का संचार किया। यद्यपि राजनीतिक ज्वालामुखी को शान्त करने में असमर्थ रहा, लेकिन अर्थव्यवस्था को नया रूप-आकार अवश्य दिया। इससे क्षतिपूर्ति के विषय पर मित्र राष्ट्रों से रचनात्मक सहायता के लिए मार्ग खुल गया। नीतियों के दूसरे समूह में सन् 1924 की डास योजना एवं सन् 1929 की यंग योजना सम्मिलित थी। परिणामस्वरूप विवाद के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार-विमर्श आरम्भ हो गया और सन् 1924 में विख्यात डास योजना (Dawes Plan) को स्वीकार किया गया।

क्षतिपूर्ति के भुगतान विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय आयोग के विवरण (Report) का ही परिणाम डास योजना थी। आयोग ने जर्मनी की विभिन्न कठिनाइयों को स्वीकार किया और भुगतान की किस्तों की राशि कम करने की सिफारिश की। जर्मनी को 1,00,00,00,000 स्वर्ण मार्क्स प्रतिवर्ष से आरम्भ करने, सन् 1928 और उसके बाद 2,50,00,00,000 स्वर्ण मार्क्स तक बढ़ाना था। ये भुगतान सम्भव बनाने के लिए फ्रान्स को रूर खाली करना था और अमेरिका को पर्याप्त मात्रा में जर्मन उद्योग को ऋण देना था। इस योजना के अन्तर्गत जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति के रूप में देय कुल धनराशि में कोई परिवर्तन नहीं किया गया, परन्तु भुगतान के लिए समयावधि में वृद्धि कर दी गयी। जर्मनी ने अपनी स्फीति मुद्रा में कटौती कर दी और अपने आर्थिक पुनरुद्धार के लिए नये कराधान किये। फ्रान्स ने रूर से अपनी सेना हटा ली। सन् 1929 में यंग योजना द्वारा संशोधन किया गया। कुल देय क्षतिपूर्ति राशि कम करके 1,21,00,00,00,000 मार्क्स कर दी गयी, और किस्तों की संख्या बढ़ाकर 59 कर दी गयी। भुगतान की अन्तिम किस्त सन् 1988 में देनी थी। व्यावहारिक दृष्टि से अमेरिका के राष्ट्रपति हूवर ने सन् 1931 में युद्ध ऋणों के भुगतान को निरस्त कर दिया, और भुगतान कभी भी पुनः आरम्भ नहीं किया। जर्मनी ने ऋणों एवं सहायता के रूप में क्षतिपूर्ति के रूप में भुगतान की गयी राशि की अपेक्षा बहुत अधिक ऋण प्राप्त कर लिया था।

शान्ति-स्थापन युग (Period of Pacification, 1924-32)—बेल्जियम, पोलैण्ड एवं छोटे गुट के साथ मैत्री सन्धि के उपरान्त फ्रान्स ने स्वयं को जर्मनी के विरुद्ध असरक्षित अनुभव

किया। जर्मनी को सन्तुष्ट करने के लिए फ्रान्स ने रूर का क्षेत्र खाली कर दिया। फ्रान्स राष्ट्र संघ की सहायता से अपनी स्थिति मजबूत करना चाहता था। फ्रान्स ने राष्ट्र संघ के प्रतिज्ञा-पत्र की दुर्बलताओं को दूर करके राष्ट्र संघ को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया। राष्ट्र संघ की दुर्बलताओं के विषय में फ्रान्स ने मत व्यक्त किया कि राष्ट्र संघ ने आक्रमण को परिभाषित नहीं किया और प्रतिज्ञा-पत्र में उसका उल्लेख नहीं था कि आक्रमणकर्ता के विरुद्ध क्या कार्यवाही की जायेगी। फ्रान्स का दृढ़ मत था, यदि इन कमियों को दूर कर दिया जाये, उसकी सुरक्षा की भावना सुदृढ़ होगी। शान्ति सुरक्षित रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तन्त्र को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्यों से दो प्रयास किये गये। लार्ड राबर्ट सिसिल (Robert Cecil) के प्रस्ताव पर राष्ट्र संघ की सभा ने "परस्पर सहायता सन्धि" (Treaty of Mutual Assistance) का प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप को सदस्य राज्यों को सन् 1923 में अनुमोदन के लिए भेजा गया। फ्रान्स ने इस प्रारूप का स्वागत किया क्योंकि इसने फ्रान्स की सुरक्षा की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया था, और जर्मनी द्वारा आक्रमण की स्थिति में सैनिक सहायता का आश्वासन निहित था, लेकिन इस प्रारूप को ब्रिटेन, ब्रिटेन के स्वतन्त्र उपनिवेशों, स्वीडन, नार्वे एवं हालैण्ड ने अस्वीकार कर दिया।

जेनेवा विज्ञप्ति (Geneva Protocol)—सन् 1924 तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तनाव कम था। फ्रान्स, जर्मनी के प्रति समन्वय की नीति का अनुसरण करना चाहता था। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री रेमजे मैकडोनाल्ड एवं फ्रान्स के प्रधानमन्त्री हेरियट के प्रयासों के परिणामस्वरूप जेनेवा विज्ञप्ति अथवा "अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शान्तिपूर्ण समझौते के लिए विज्ञप्ति" (Protocol for the Pacific Settlement of International Disputes) का प्रारूप राष्ट्र संघ की सभा के समक्ष अनुमोदन के लिए रखा गया।

जेनेवा विज्ञप्ति में अनेक दोष थे। विज्ञप्ति में आक्रमणकर्ता के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की अनिवार्यता का उल्लेख नहीं था। इस कारण यह फ्रान्स को स्वीकार्य नहीं था। उसका उद्देश्य सन् 1919-1920 के शान्ति समझौतों को कार्यान्वित करना था। इसमें संशोधन की माँग को विवाद नहीं माना जायेगा। अस्तु, शान्ति सन्धियों में संशोधन का कोई प्रावधान नहीं था, जबकि प्रारूप पर विचार-विमर्श हो रहा था। जापान ने एक संशोधन का प्रस्ताव रखा कि आन्तरिक क्षेत्राधिकार द्वारा उत्पन्न होने वाले विवादों को ही संघ के समक्ष रखना चाहिए। स्वतन्त्र उपनिवेशों ने इस प्रारूप का विरोध किया। इंग्लैण्ड में जनमत भी अनिवार्य पंच निर्णय एवं आक्रमणकर्ता के विरुद्ध सैनिक आदेश प्रयुक्त करने के विरुद्ध था। इंग्लैण्ड में नये चुनाव के बाद रूढ़िवादी सरकार सत्ता में आ गयी। इस विज्ञप्ति से ब्रिटेन के पूर्वी यूरोप जिसमें इंग्लैण्ड की प्रत्यक्ष रूप से कोई रुचि नहीं थी, के विवाद में सशस्त्र हस्तक्षेप के लिए खींचा जाना निश्चित था। अस्तु, इंग्लैण्ड ने इस विज्ञप्ति को अस्वीकार कर दिया।

लोकार्नो समझौता (Locarno Pact)—राष्ट्र संघ आक्रमणकर्ता के विरुद्ध दण्ड विधान की प्रणाली को प्रवर्तित करने में असफल रहा, अस्तु, क्षेत्रीय समझौतों और सन्धियों पर बल दिया गया। फ्रान्स के प्रधानमन्त्री हेरियट (Heriot) का दृष्टिकोण अपने पूर्वज प्वाइनकेयर की अपेक्षा कम जर्मन-विरोधी था। साथ ही जर्मनी का नया विदेशमन्त्री स्ट्रैसमैन (Stresemann) फ्रान्स-जर्मनी की समस्या के समाधान के लिए पूर्वापेक्षा अधिक उदार एवं सहयोगी था। जर्मनी मित्र राष्ट्रों द्वारा राइन नदी क्षेत्र खाली करवाने के लिए उत्सुक था।

फरवरी, 1925 में जर्मनी ने राइन भूमि परस्पर आश्वासन समझौते (The Rhineland Mutual Guarantee Pact) प्रस्तुत किया जिसका फ्रान्स और इंग्लैण्ड ने स्वागत किया। इसमें जर्मनी अथवा फ्रान्स द्वारा आक्रमण करने की स्थिति में फ्रान्स-जर्मनी सीमाओं की सुरक्षा का आश्वासन दिया गया था, जिससे फ्रान्स की सुरक्षा की समस्या का समाधान हो गया। इटली ने भी ब्रिटेन के साथ सहआश्वासनकर्ता बनने का प्रस्ताव दिया। इसी प्रकार की सन्धि जर्मनी और बेल्जियम के मध्य हुई।

सन् 1925 में राष्ट्र संघ की स्थापना से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापना की दिशा में सर्वाधिक महान् प्रयास के रूप में लोकार्नो समझौता (Pact of Locarno) हुआ। इस समझौते पर हालैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, बेल्जियम एवं इटली ने हस्ताक्षर किये। इस समझौते के अन्तर्गत जर्मनी ने वर्साय की सन्धि में परिभाषित पश्चिमी सीमाओं को स्थायी रूप से स्वीकार कर लिया। फ्रान्स, बेल्जियम एवं जर्मनी में आत्मरक्षा के अतिरिक्त स्पष्ट रूप से परस्पर युद्ध नहीं करने का निश्चय किया। इंग्लैण्ड तथा इटली ने इन तीनों शक्तियों के अतिरिक्त किसी अन्य शक्ति द्वारा इन तीनों में से किसी एक पर आक्रमण की स्थिति में पूर्ण सक्रिय समर्थन देने का वचन दिया। इस प्रकार जर्मनी एवं फ्रान्स और जर्मनी एवं बेल्जियम के मध्य सीमाओं की अतिक्रमणता के विरुद्ध सामूहिक सुरक्षा का आश्वासन था। इस समझौते में फ्रान्स एवं जर्मनी, जर्मनी एवं पोलैण्ड और जर्मनी एवं चैकोस्लोवाकिया के मध्य विवाद की स्थिति में मध्यस्थ-निर्णय की (Arbitration) व्यवस्था थी। इस समझौते से जर्मनी यूरोपीय परिषदों का सदस्य बन गया। परिणामस्वरूप सन् 1926 में राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया और सुरक्षा परिषद् में जर्मनी को स्थायी स्थान प्राप्त हुआ।

कैलोग-ब्रियेन्ड समझौता (Kellog-Briand Pact)—सन् 1928 में कैलोग-ब्रियेन्ड (Kellog-Briand) समझौता विश्व शान्ति की दिशा में एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयास था। यह समझौता फ्रान्स के मन्त्री ब्रियेन्ड तथा अमेरिका के विदेश सचिव कैलाग के संयुक्त प्रयासों का परिणाम था। इसके हस्ताक्षरकर्ताओं ने राष्ट्रीय नीति के अभिन्न अंग के रूप में विवादों के समाधान के लिए सशस्त्र युद्ध का परित्याग करने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया था। इस निश्चय के कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित शक्ति का अभाव था। अस्तु, यह समझौता केवल एक पवित्र घोषणा मात्र थी। इस समझौते को रूस सहित 50 राष्ट्रों ने स्वीकार किया था।

यंग योजना (Young Plan)—सन् 1929 में जर्मनी में सामूहिक प्रदर्शनों के प्रत्युत्तर में क्षतिपूर्ति के विवाद की समीक्षा करने के लिए अर्थशास्त्र विशेषज्ञों का एक अन्य आयोग नियुक्त किया गया। इस आयोग का अध्यक्ष अमेरिका का पूँजीपति ओवन यंग था। इस आयोग ने क्षतिपूर्ति की राशि कम करके तीन-चौथाई कर दी, और बिना किसी विदेशी नियन्त्रण के भुगतान की अवधि 58 वर्ष कर दी। सन्धि के प्रावधानों के अनुसार विजयी मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को राइन नदी क्षेत्र सन् 1930 तक पूरी तरह खाली कर देना था। अक्टूबर, 1929 में विश्व की परिस्थितियों में अनायास परिवर्तन हुआ। सन् 1929 में आरम्भ वाल स्ट्रीट संकट विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी में परिवर्तित हो गया, और इसने लगभग समस्त यूरोपीय देशों को अत्यधिक प्रभावित किया। परिणामस्वरूप जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति के रूप में देय कुल धनराशि में कमी कर दी गयी। तत्कालीन औद्योगिक गतिहीनता के कारण विजयी मित्र राष्ट्रों

ने संयुक्त राज्य अमेरिका को ऋणों का भुगतान करना बन्द कर दिया। जर्मनी से क्षतिपूर्ति के रूप में अंशदान की प्राप्ति बन्द हो गयी थी। परिणामस्वरूप क्षतिपूर्ति के रूप में देय धनराशि तथा विजयी मित्र राष्ट्रों के परस्पर ऋणों को समाप्त कर दिया गया।

वाशिंगटन सम्मेलन (Washington Conference)—क्षतिपूर्ति एवं निरस्त्रीकरण दोनों ही जटिल समस्याओं को विस्मृत कर दिया गया। प्रत्येक राष्ट्र की इच्छा थी कि अन्य कोई राष्ट्र इन समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास आरम्भ करे, परन्तु कोई राष्ट्र स्वयं के ऊपर दायित्व नहीं लेना चाहता था। प्रत्येक राष्ट्र कहता था कि अन्य राज्यों का शस्त्रीकरण विश्व शान्ति के लिए हानिकारक था, परन्तु किसी ने स्वयं के शस्त्रीकरण का कभी उल्लेख नहीं किया। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं इंग्लैण्ड दोनों ने फ्रान्स एवं पोलैण्ड पर अपनी सैन्य शक्ति कम नहीं करने का दोषारोपण किया। सन् 1921-22 नौ-सैनिक शक्ति को सीमित करने के उद्देश्य से वाशिंगटन में प्रमुख नौ-शक्ति सम्पन्न देशों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रान्स, इटली एवं जापान के मध्य समानता के सिद्धान्त पर सहमति हो गयी, परन्तु यह सम्मेलन भी विफल हो गया। इंग्लैण्ड ने फ्रान्स द्वारा पनडुब्बियों के निर्माण कार्य आरम्भ करने के सम्बन्ध में कहना शुरू कर दिया, और अमेरिका ने ब्रिटेन द्वारा निर्धारित संख्या से अधिक क्रूजरों के निर्माण के विषय में कहना आरम्भ कर दिया। इसके उपरान्त दो अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया गया, परन्तु इनका भी कोई उत्साहवर्धक परिणाम नहीं हुआ।

सशस्त्र सेनाओं को कम करने के लिए किये गये प्रयास भी निरर्थक सिद्ध हुए। राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्त आयोग ने पाँच वर्ष तक निरन्तर असफल प्रयास किये। आयोग द्वारा तैयार प्रारूप में संयुक्त राज़्य अमेरिका द्वारा सैन्य शक्ति को कम करने से सम्बन्धित प्रावधानों से वचने के लिए प्रस्तावित विशेष उपाय भी सम्मिलित थे।

लौसाने समझौता (Lausanne Agreement)—सन् 1932 में लौसाने के समझौते (Lausanne Agreement) ने शेष क्षतिपूर्ति राशि को भी समाप्त कर दिया। इस अवधि में राइन नदी तटीय क्षेत्रों से मित्र-राष्ट्रों ने अपनी सेनाओं को हटा लिया, और राष्ट्र संघ ने खनिज सम्पदा सम्पन्न सार (Saar) का क्षेत्र सन् 1935 तक जर्मनी को लौटाने की व्यवस्था कर दी। आन्तरिक युद्ध काल में फ्रान्स की सर्वाधिक क्षति हुई। अधिकांश भीषण युद्ध फ्रान्स के 10 प्रशासनिक विभागों अथवा प्रान्तों के मध्य हुए थे। उनमें से कुछ पूर्णतया नष्ट हो गये। इसके विपरीत राइन नदी तटीय क्षेत्र तथा रूर (Ruhr) में विजयी मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने कभी कोई विनाशकारी आक्रमण नहीं किया था। अस्तु, अधिकांश जर्मन उद्योगों का विनाश नहीं हुआ था। इस सन्दर्भ में स्मरणीय है कि ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं हुआ, जिससे ज्ञात होता कि वर्साय सन्धि के प्रावधानों के अन्तर्गत फ्रान्स एवं बेल्जियम को क्षतिपूर्ति की प्रक्रिया ने जर्मनी के उद्योगों एवं अर्थव्यवस्था को पंगु कर दिया था। जर्मनी की सरकार द्वारा अनियन्त्रित ढंग से कागजी मुद्रा प्रचलन तथा राइन नदी तटीय क्षेत्र के उद्योगों द्वारा भारी सट्टेबाजी के कारण सन् 1919 से 1923 के मध्य स्पष्ट रूप से लगातार मुद्रा स्फीति हुई।

विद्वानों के व्यक्त विचार कि इंग्लैण्ड का दृष्टिकोण बहुत व्यावहारिक एवं उपयोगितावादी था, का वहाँ की तत्कालीन परिस्थितियों ने खण्डन किया है। इंग्लैण्ड की स्थिति फ्रान्स की अपेक्षा अधिक गम्भीर थी। एक उप-समिति में इंग्लैण्ड के प्रतिनिधि ने दावा

किया कि जर्मनी क्षतिपूर्ति के रूप में 1 खरब, 20 अरब डालर का सहज ही भुगतान कर सकता था। फ्रान्स के मन्त्री ने इस राशि को बहुत अधिक कहकर अस्वीकार कर दिया था। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन ने युद्धकालीन निवृत्ति वेतन (War Pensions) तथा युद्धकालीन क्षति (War damages) के लिए पृथक् धनराशि को क्षतिपूर्ति में सम्मिलित करने की माँग करते हुए विवाद को अत्यधिक जटिल कर दिया था।

विजयी मित्र राष्ट्रों में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंग्लैण्ड, जिन्होंने संयुक्त रूप से वर्साय सन्धि प्रावधानों का निर्माण किया था, इस गठबन्धन से अलग हो गये थे, और फ्रान्स एकमात्र देश रह गया था। इस कारण वर्साय सन्धि प्रावधानों का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन सम्भव नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त जर्मन जनमत वर्साय सन्धि प्रावधानों को अधिनायकतन्त्रीय मानता था, और जनमत ने नाजी प्रशासन द्वारा उन प्रावधानों की अवहेलना तथा अस्वीकृति का प्रबल समर्थन किया। इस सन्दर्भ में विद्वानों ने मत व्यक्त किया कि माता-पिता अथवा शासकों द्वारा किये गये अपराधों के लिए अनेक बच्चों को दण्ड देना घातक सिद्ध हो सकता था।

सन् 1814-1914 की शताब्दी में कूटनीतिक तथा मध्यस्थ निर्णयों के लिए एकमात्र सर्वविदित संस्था संयुक्त यूरोपीय सम्मेलन (Concert of Europe) थी। इस संस्था के तत्वाधान में आठ सामूहिक सम्मेलनों (Congresses) का आयोजन किया गया, जिसमें राज्यों के अध्यक्षों ने भाग लिया एवं आठ सामान्य सम्मेलन आयोजित किये गये जिसमें देशों के राजदूतों ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त लगभग 400 गैर-राजनीतिक संगठन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय तार कर्मचारी संघ (International Telegraphic Union) एवं विश्वव्यापी डाक संघ (Universal Postal Union) थे।

राष्ट्र संघ की भूमिका (Role of League of Nations)—इस पृष्ठभूमि में अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि राष्ट्र संघ ने दो महत्वपूर्ण कार्य किये : (1) इसने अन्तर-राजकीय विचार-विमर्श के लिए, उन्नीसवीं शताब्दी के अस्थायी सम्मेलनों की अपेक्षा स्थायी, नियमित, एवं योजनाबद्ध आधार प्रदान किया। (2) इसने राजनीतिक संगठनों के साथ गैर-राजनीतिक संगठनों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिए अपने कार्यक्षेत्र का व्यापक विस्तार किया।

सन् 1930 के दशक के मध्य तक राष्ट्र संघ को अनेक राजनीतिक सफलताएँ मिलीं। सन् 1935 तक जर्मनी के सार (Saar) क्षेत्र पर प्रशासकीय आयोग ने प्रशासन किया, और डानजिग पर उच्चस्तरीय सहृदय आयुक्त ने प्रशासन किया। राष्ट्र संघ ने ऊपरी साइलेशिया एवं पूर्वी प्रशा जैसे अनेक क्षेत्रों में राष्ट्रीय आत्म-निर्णय अथवा स्वाधीनता के सिद्धान्त के अनुरूप जनमत संग्रह करवाये।

सामाजिक क्षेत्र में राष्ट्र संघ की सर्वाधिक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ थीं। अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन ने कुष्ठ रोग के सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य करवाये, विभिन्न रोगों के टीकों के सम्बन्ध में परामर्श दिये, तथा सामान्य प्रयोग की औषधियों का सामान्य स्तर निश्चित किया। संक्रामक रोग आयोग ने पूर्वी यूरोप में आन्त्र ज्वर (Typhoid) तथा हैजा के प्रसार को रोकने तथा रोगियों के उपचार के लिए व्यापक प्रबन्ध किये। नानसेन विवरण (Nansen Report) में पूर्वी यूरोप के युद्धभूमि से लौटकर आये शरणार्थियों के पुनर्वास एवं नियोजन के सम्बन्ध में व्यापक रूप से उल्लेख है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने विभिन्न देशों की सरकारों

से अपने देश में श्रमिकों की सुख-सुविधाओं का निश्चित स्तर एवं मानदण्ड निर्धारित करने के लिए आग्रह किया तथा कर्मचारियों तथा नियोजक उद्योगपतियों के मध्य सम्बन्धों को नियन्त्रित करने के लिए आदेश दिया।

दो विश्व युद्धों के मध्य की अवधि में राष्ट्र संघ को अनायास अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। चार विशाल साम्राज्य नष्ट हो चुके थे, परिणामस्वरूप अनेक नये राज्यों का अभ्युदय हो गया और राज्यों के अधिकृत क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हो गया। वामपंथी एवं दक्षिणपंथी शक्ति सिद्धान्तों का विकास हो चुका था। ऐसी स्थिति में राष्ट्र संघ को अधिकांश महान् शक्तियों के सक्रिय समर्थन तथा सद्भावना की आवश्यकता थी। संकट काल में अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघ की अपेक्षित रचनात्मक भूमिका नहीं थी। संघ तो केवल विश्वशान्ति को सुनिश्चित करने के लिए था, जिसकी प्रारम्भ से विश्व को आवश्यकता थी। एक विद्वान लेखक ने मत व्यक्त किया है कि राष्ट्र संघ अपने अस्तित्व तथा प्रभावशीलता के लिए उद्देश्यों की एकता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना पर निर्भर था, जिसे प्रोत्साहित करने का दायित्व राष्ट्र संघ का स्वयं का था।

राष्ट्र संघ के अनुच्छेद 5 ने संयुक्त कार्यवाही के समस्त रूपों को दुर्बल कर दिया था। इस अनुच्छेद के अनुसार किसी संयुक्त सभा अथवा परिषद् के अधिवेशनों के लिए नये निर्णयों पर इस अधिवेशन में भाग लेने वाले संघ के समस्त सदस्यों की सहमति अनिवार्य होगी। संघ के शपथ-पत्र के अनुच्छेद 16 में स्वीकृत दण्ड प्रक्रिया को प्रवृत्त करना भी उतना ही कठिन था। शपथ-पत्र की यह धारणा थी कि यदि मध्यस्थ निर्णय की प्रक्रिया असफल हो जाती है, फिर भी महान् शक्तियाँ स्वतः ही समस्त नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करेंगी, और शान्ति एवं सद्भावना को प्रोत्साहित करने के लिए प्रवृत्त करेंगी, परन्तु आशा निराशा में परिवर्तित हो गयी, और प्रस्तावित कार्य प्रणाली असफल हो गयी।

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्र संघ से अलग हो जाने के अतिरिक्त ब्रिटेन एवं फ्रान्स के मध्य भ्रान्तियों एवं मतभेदों के कारण संघ के अपने उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में समस्त प्रयास असफल हो गये। ब्रिटेन राष्ट्र संघ को मध्यस्थ निर्णय का एक साधन तथा विभिन्न विचारों की अभिव्यक्ति के लिए एक मंच मानता था। इसके विपरीत फ्रान्स, राष्ट्र संघ से सन् 1919 के पेरिस शान्ति सन्धियों के समस्त प्रावधानों को सुनिश्चित करने के लिए सक्रिय साधन के रूप में सुरक्षा के कठोर कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की आशा करता था। प्रायः दोनों देशों के परस्पर सम्बन्ध अत्यधिक कटु हो गये। ब्रिटेन की फ्रान्स के साथ पूर्ण सहानुभूति थी, और इसने सन् 1933 में रूर (Ruhr) में फ्रान्स की सुरक्षा के लिए प्रयास भी किया, जबकि फ्रान्स ने सन् 1930 में लन्दन में प्रतिनिधियों की सहमति से स्वीकृत आनुपातिक राष्ट्रीय नौ-सेना के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन तथा फ्रान्स राष्ट्र संघ के अन्त तक सक्रिय सदस्य बने रहे।

समय एवं परिस्थितियों के अनुसार सोवियट संघ का दृष्टिकोण परिवर्तित होता रहा। प्रारम्भ में लेनिन ने दोषारोपण करते हुए कहा कि राष्ट्र संघ पूँजीवादी शक्तियों का प्रबल

समर्थक तथा रक्षक था। स्टालिन को भी राष्ट्र संघ किसी भी रूप में उपयोगी प्रतीत नहीं हुआ। लेनिन ने सन् 1920 में जर्मनी के साथ अपने स्वयं के प्रबन्ध किये, परन्तु सन् 1930 में फासिस्टवाद के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के साथ स्टालिन ने अनुभव किया कि उसको पश्चिमी शक्तियों के साथ सक्रिय सहयोग करना चाहिए, अस्तु, सन् 1934 में सोवियट संघ राष्ट्र संघ का सक्रिय सदस्य बन गया। दुर्भाग्य से सोवियट संघ तथा राष्ट्र संघ, दोनों में से किसी की भी परस्पर सम्बन्धों से कोई लाभ नहीं हुआ। इस समय इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स दोनों ही द्वितीय विश्व युद्ध से बचने के लिए फासिस्टवादी राज्यों के प्रति तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण कर रहे थे।

राष्ट्र संघ के अन्तिम अधिवेशन में वक्ताओं में से एक ने, ब्रिटेन में प्रचलित लोकोक्ति के अनुरूप कहा, "राष्ट्र संघ मर चुका है, संयुक्त राष्ट्र दीर्घायु हो।" यदि विश्व के नेताओं ने राष्ट्र संघ के जीवन काल के बहुमूल्य अनुभवों से शिक्षा ग्रहण नहीं की होती तो संयुक्त राष्ट्र संघ का अभ्युदय सम्भव नहीं होता। निःसन्देह राष्ट्र संघ वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ का जनक था।

दो विश्व युद्धों के मध्य की घटनाओं की समीक्षा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि पेरिस की शान्ति सन्धियों, जैसी आशा थी, ने नये युग का सूत्रपात नहीं किया। विभिन्न यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य परस्पर मतभेद एवं उग्र असन्तोष की भावना इतनी अधिक थी कि उनका सन्तोषजनक समाधान असम्भव था। इन सन्धियों ने शान्ति का मार्ग प्रशस्त करने की अपेक्षा यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य विषमताओं, मतभेदों, कटुता, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रतिशोध की भावना को अधिक बढ़ाया था। समस्त सन्धियों के प्रावधानों को पराजित देशों की सहमति से प्रवृत्त नहीं किया जा सकता था। अस्तु यूरोपीय देश द्रुतगति से एक अन्य विश्व युद्ध की दिशा में आगे बढ़ रहे थे और इसका चरमोत्कर्ष द्वितीय विश्वयुद्ध में हुआ।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. प्रथम विश्व युद्ध के विभिन्न कारणों का परीक्षण करें।
   Examine the various causes of the First World War.
   (भागलपुर, 1996; मगध, 1993, 95, 97; पटना, 1996, 98; बी. आर. अम्बेदकर, 1996; 97, 99; जबलपुर, 1996, 98, 2000; रायपुर, 1997, 99, 2000; बिलासपुर, 1998, 2000; मेरठ, 1991, 92, 94, 98, 99; आगरा, 1994; भोपाल, 1998; रांची, 1997, 99; लखनऊ, 1991, 93, 95, 97, 2000; कानपुर, 1999; गोरखपुर, 1992, 95, 97, 99; रुहेलखण्ड, 1994, 98, 99)
2. राष्ट्रसंघ की सफलता एवं विफलता पर निबन्ध लिखें।
   Write an essay on the success and failure of the League of Nations.
   (भागलपुर, 1996; भोपाल, 1995, 97, 99)
3. प्रथम विश्व युद्ध के प्रमुख परिणामों का आलोचनात्मक परीक्षण करें।
   Critically examine the main effects of the First World War. (मगध, 1996)

4. राष्ट्रसंघ की विफलता के क्या कारण थे ?
What were the causes of the failure of the League of Nations ?
(मगध, 1996, 97, 99; बी. आर. अम्बेदकर एवं रांची, 1998; जबलपुर, 1996, 99; मेरठ, 1993)

5. वर्साय की सन्धि के मुख्य प्रावधानों की विवेचना कीजिये।
Critically examine the various provisions of the treaty.
(मगध, जबलपुर एवं बिलासपुर, 1997, 99; पटना, 1997; रायपुर, 1996, 2000; गोरखपुर, 1991, 93, 96, 98, 2000; भोपाल, 1995, 97, 99; लखनऊ, 1998, 2000)

6. राष्ट्रसंघ की स्थापना क्यों हुई ? इसकी उपलब्धियों की विवेचना करें।
Why was the League of Nations formed ? Discuss its achievements.
(पटना, 1996, 98; बी. आर. अम्बेदकर एवं रायपुर, 1997, 99; जबलपुर, 1997, 98; बिलासुपर, 1998, 99; लखनऊ, 1991, 99)

7. "वर्साय की सन्धि समग्र शान्ति को नष्ट करने वाली सिद्ध हुई।" समझाइए।
"Treaty of Versailles proved to be destroyer of peace" Discuss.
(जबलपुर, 1995)

8. प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोप की सुरक्षा की प्रमुख सहायता का विवेचन कीजिये।
Discuss main problem of European Security after First World War.
(रायपुर, 1996, 98)

9. फ्रान्स सुरक्षा की खोज क्यों कर रहा था ? इस सन्दर्भ में लोकार्नो समझौता की उपयोगिता बताइये।
Why France was searching security. Discuss utility of Locorno Pact.
(बिलासपुर, 1998, 99)

10. राष्ट्रपति विल्सन के 14 सूत्री कार्यक्रम क्या था ? वे वर्साय की सन्धि में कहाँ तक सम्मिलित किये गये थे ?
What were the 14 points of President Wilson ? How far these points were included in the treaty of Versailles ? (बिलासपुर, 2000)

11. अमेरिका के प्रथम विश्व युद्ध में प्रवेश करने की परिस्थितियों का रेखांकन एवं विश्लेषण कीजिये।
Trace and analyse the circumstances that led to the U.S. Entry into First World War. (लखनऊ, 1991)

12. प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ करने में शक्तियों के उत्तरदायित्व का परीक्षण कीजिये।
Examine the responsibility of the powers in the break of the First World War. (लखनऊ, 1992, 94, 98; आगरा, 1993)

13. पेरिस शान्ति समझौते पर एक लेख लिखिये।
Write a note on Paris Peace Sattlement. (लखनऊ, 1996, 99)

14. प्रथम विश्व युद्ध के पहले यूरोप शक्तियों के कूटनीतिक गुटबन्दियों का वर्णन कीजिये।
Describe formation of two diplomatic groups of European powers before World War I. (कानपुर, 1996; आगरा, 1992, 95, 96, 98; रुहेलखण्ड, 1993, 97)

15. प्रथम विश्व युद्ध उद्देश्यों का नहीं, तनावों का युद्ध था" इस कथन की विवेचना कीजिये।
First World War was not the war of objects but of tensions. (आगरा, 1999)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. जर्मनी ने .... 1914 को फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी—
   (क) 1 अगस्त (ख) 2 अगस्त (ग) 3 अगस्त (घ) 4 अगस्त
2. इंग्लैण्ड ने .... 1914 की मध्य रात्रि को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी—
   (क) 1 अगस्त (ख) 2 अगस्त (ग) 3 अगस्त (घ) 4 अगस्त
3. 5 अप्रैल, ... को संयुक्त राज्य अमेरिका ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी—
   (क) 1914 (ख) 1915 (ग) 1916 (घ) 1917
4. 28 जुलाई, ... को आस्ट्रिया ने सर्बिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी—
   (क) 1914 (ख) 1915 (ग) 1916 (घ) 1917
5. सन् .... में जूटलैण्ड का युद्ध पूरे विश्व युद्ध का सर्वाधिक भीषण नौ-सैनिक युद्ध था—
   (क) 1914 (ख) 1915 (ग) 1916 (घ) 1917
6. रूस की बोल्शेविक सरकार ने .... जर्मनी के साथ ब्रेस्टलिटोव्स्क की सन्धि की—
   (क) 1915 (ख) 1916 (ग) 1917 (घ) 1918
7. इस युद्ध में .... देशों के सशस्त्र सैनिकों ने सक्रिय भाग लिया—
   (क) 20 (ख) 25 (ग) 30 (घ) 35
8. इस युद्ध में लगभग .... सैनिक शहीद हुए—
   (क) 70 (ख) 80 (ग) 90 (घ) 1 करोड़
9. लगभग .... सैनिक इस युद्ध में घायल हो गये—
   (क) 1 करोड़ (ख) $1\frac{1}{2}$ करोड़ (ग) 2 करोड़ (घ) 3 करोड़
10. 28 जून, ... को जर्मनी के साथ वर्साय की सन्धि हुई—
   (क) 1918 (ख) 1919 (ग) 1920 (घ) 1921

[उत्तर—1. (ग), 2. (घ), 3. (घ), 4. (क), 5. (ग), 6. (घ), 7. (ग), 8. (ख), 9. (ग), 10. (ख) ।]

30

रूस की क्रान्ति

[REVOLUTION OF RUSSIA]

सन् 1917 की क्रान्ति की पृष्ठभूमि (Background of the Russian Revolution)

सन् 1945 तक रूस को यूरोपीय परिवार में स्वीकार नहीं किया गया था। तीन अवसरों पर यूरोपीय राजतन्त्रों, कूटनीतिज्ञों तथा राजनीतिज्ञों ने रूस के साथ भूतपूर्व राजतन्त्र के रूप में व्यवहार किया। रूस की जनता, अन्य यूरोपीय देशों से भिन्न, स्लाव जाति की थी और वे यूनान के रूढ़िवादी चर्च के अनुयायी थे, जबकि अन्य ईसाई मतावलम्बी यूरोपीय देशों का एकमात्र सर्वोच्च धार्मिक केन्द्र इटली स्थित रोम था। रूस की जनसाधारण की दैनिक जीवन की व्यवहृत भाषा भी अन्य यूरोपीय देशों से पूर्णतया भिन्न थी।

यूरोपीय अस्पृश्यता के इन व्यवधानों को समाप्त करने के उद्देश्य से जारवादी आधुनिक रूस के संस्थापक पीटर महान् ने, युवराज (भावी उत्तराधिकारी) के रूप में, लन्दन गोदी में कठिन परिश्रम किया था, और दृढ़ निश्चय किया था कि सिंहासनारूढ़ होने के बाद वह रूस का आधुनिकीकरण करेगा। अपनी इसी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उसने दरबार के सदस्यों को अपनी दाढ़ी बनाने का निर्देश दिया था, जिससे वे अन्य यूरोपवासियों के अनुरूप दृष्टिगत हों। अपने देश को यूरोपीय देशों के परिवार का सदस्य बनाने के उद्देश्य से रूस ने गर्म पानी के निकासों (स्रोतों) की नीति का अनुकरण किया। स्वीडेन को पराजित करने के बाद वह आंशिक रूप से सफल भी हुआ। इस प्रकार पेट्रोग्राद (आधुनिक लेनिनग्राद) का आविर्भाव हुआ था। कालान्तर में कैथरिन महान् ने बाल्कन क्षेत्र तथा काला सागर के माध्यम से भूमध्य सागर में प्रवेश करने का असफल प्रयास किया, किन्तु वह रूस के लिए दूसरा गर्म पानी का स्रोत प्राप्त करने में सफल हो गयी थी। उसने रूस के वैभव, अलंकरण तथा साज-सज्जा के लिए भी प्रयास किया। उसने यूरोप की अनेक बहुमूल्य कलाकृतियों को खरीदा तथा यूरोप के विशेष रूप से फ्रान्स के अनेक गणमान्य बुद्धिवादियों को अपने दरबार में आमन्त्रित किया।

निःसन्देह रूस ने यूरोपीय देशों के परिवार का सदस्य बनने के लिए सतत् संघर्ष किया। इसी प्रकार अन्य यूरोपीय देशों के अनुरूप रूस में भी अपनी सीमाओं के विस्तार की प्रबल महत्वाकांक्षा थी। लोमचर्म के लिए रूस की प्रबल इच्छा ने उसे साइबेरिया में सीमा

विस्तार के लिए प्रेरित किया, और अन्ततोगत्वा उसकी सीमाओं का विस्तार प्रशान्त सागर के तट तक हो गया। इसके अतिरिक्त जार शासित रूस ने पूर्वी विवाद के नाम पर प्रसिद्ध विघटनशील ओटोमन साम्राज्य की स्थिति का शोषण करने का प्रयास किया। रूस के पूर्वी विवाद के शोषण के अनेक प्रयासों को ब्रिटेन तथा फ्रान्स जैसी यूरोपीय शक्तियों ने विफल किया था। सन् 1877 की सेन स्टैफनों की सन्धि द्वारा रूस ने तुर्की साम्राज्य से अपेक्षाकृत अनेक सुविधाएँ प्राप्त करके यूरोपीय शक्तियों पर वर्चस्व स्थापित कर लिया था। शीघ्र ही बिस्मार्क की प्रेरणा से आयोजित बर्लिन काँग्रेस अर्थात् यूरोपीय शक्तियों के सम्मेलन ने रूस को दिये गये लाभों को निरस्त कर दिया।

यूरोपीय शक्तियों ने बाल्कन तथा अन्य यूरोपीय क्षेत्रों में रूस की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को अनेक बार विफल किया था। परिणामस्वरूप उसने पश्चिम एशिया में अपनी साम्राज्यवादी योजनाओं को साकार करने का प्रयास आरम्भ कर दिया। इससे भारत स्थित ब्रिटिश साम्राज्य को संकट उत्पन्न हो गया। यहाँ भी ब्रिटेन ने रूस की साम्राज्य विस्तार की योजनाओं को अवरुद्ध कर दिया। सुदूर पूर्व में रूस की महत्वाकांक्षाओं को कुंठित करने के उद्देश्य से सन् 1902 में ब्रिटेन ने एंग्लो-जापानी सन्धि के नाम से विख्यात जापान के साथ अत्यधिक महत्वपूर्ण सन्धि की। सन् 1904-05 के महत्वपूर्ण युद्ध में जापान ने रूस को पराजित किया। रूस को पर्याप्त दण्ड देने के बाद, 'एंग्लो-रूसी कन्वेंशन' (Anglo-Russian Convention) के नाम से विख्यात, ब्रिटेन ने सन् 1907 में रूस के साथ दोनों शक्तियों के फारस तथा तिब्बत में अपने-अपने दावों के सन्दर्भ में एक समझौता किया।

इस अवधि में रूस की निरन्तर विदेश तथा साम्राज्यवादी नीतियों की असफलताओं के कारण आन्तरिक निराशा तथा असन्तोष में वृद्धि हो रही थी। रूस में अलेक्जेण्डर तृतीय (सन् 1881-1894) ने उदारवादी असन्तोष का दमन करने के लिए सुनियोजित केन्द्रीकरण की नीति को कार्यान्वित किया। कृषक समुदायों पर साम्राज्यिक मन्त्रिपरिषद् द्वारा मनोनीत भू-स्वामियों का पूर्ण नियन्त्रण था। सार्वजनिक शिक्षा-प्रणाली की उपेक्षा की गयी। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों तथा शिक्षक वर्ग दोनों ही पर जार के मनोनीत प्रतिनिधियों का पूर्ण नियन्त्रण था। प्रेस पर नियन्त्रण को प्रवृत्त किया गया। व्यक्तिगत पत्राचार पर भी नियन्त्रण था। पुलिस को किसी भी व्यक्ति को निरंकुश ढंग से बन्दी बनाने तथा दण्डित करने के लिए अधिकृत कर दिया था। साइबेरिया बन्दीगृह में परिवर्तित हो गया था।

इसके अतिरिक्त अलेक्जेण्डर तृतीय ने रूसीकरण की नीति को अत्यधिक उत्साहपूर्वक कार्यान्वित किया। रूस के सांस्कृतिक जीवन को प्रत्येक अल्पमत समुदाय पर आरोपित किया। इन अल्पमत समुदायों को अपनी विशिष्ट राष्ट्रीय भावनाओं, विचारों तथा परम्पराओं को विस्मृत करके रूस के निष्ठावान नागरिक बनने, अपने दैनिक जीवन में रूसी भाषा का प्रयोग करने तथा रूस की आस्थाओं, मान्यताओं तथा भावनाओं के अनुरूप जीवनयापन के लिए विवश किया। पोलैण्ड, उक्रेन और बाल्टिक क्षेत्र के प्रान्तों में रूस की जनता को अत्यधिक कष्ट सहन करने पड़े।

अलेक्जेण्डर तृतीय की रूसीकरण की नीति के अन्तर्गत यहूदियों को अत्यधिक उत्पीड़ित किया गया। उनके विरुद्ध अनेक दमनकारी उपाय किये गये। यहूदी रूस में भू-स्वामी नहीं हो सकते थे, और समस्त यहूदियों को पश्चिमी प्रान्तों की ओर पलायन करने के लिए बाध्य किया गया। अनेक उच्च सरकारी अधिकारियों ने जार की गुप्त सहमति तथा

प्रोत्साहन से पोगरोम (Pogroms) के नाम से प्रसिद्ध यूहूदी विरोधी हिंसात्मक उपद्रव संगठित किये। इन उपद्रवों में यहूदियों की धन-सम्पत्ति को लूटा तथा उनकी निर्मम हत्याएँ कीं।

यद्यपि अलेक्जेण्डर तृतीय ने अपने साम्राज्य की जनता पर अपने नियन्त्रण को सुदृढ़ करने पर विशेष ध्यान दिया, परन्तु अपनी साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षी योजनाओं को भी कार्यान्वित किया। उसने तुर्की साम्राज्य के क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करने के सफल प्रयास किये, और फारस में रूस के प्रभुत्व की आधारशिला रखी। उसने इस आशा से फ्रान्स के साथ सन्धि की थी कि इससे वह एशिया में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में ब्रिटेन की शक्तिशाली चुनौती का सामना करने में समर्थ होगा, और जर्मनी के शासकों की यूरोप में साम्राज्यवादी गतिविधियों को रोकने में सफल होगा।

अलेक्जेण्डर तृतीय के सन् 1894 में निधन के उपरान्त उसका पुत्र निकोलस द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ, और उसने सन् 1917 में रूस की क्रान्ति तक शासन किया। उसके शासनकाल में रूस की नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह एक दुर्बल शासक था। उसका स्वभाव तथा प्रवृत्ति भाग्यवादी तथा रहस्यवादी थी, परन्तु उसके स्वभाव में हल्का-सा दुराग्रह तथा हठ का तत्व था। उसने अपने पिता से पैतृक सम्पत्ति स्वरूप प्राप्त दमनकारी प्रशासनिक तन्त्र को पूर्ववत् बनाये रखा। उसकी स्वयं की कुछ उदात्त भावनाएँ तथा आकांक्षाएँ भी थीं। वह समस्त विश्व में दास-प्रथा के समर्थकों से प्रतिशोध लेने के लिए उत्सुक था, और विश्व शान्ति को प्रोत्साहित करना चाहता था।

उसके पिता के शासनकाल में आरम्भ औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गयी। पोलैण्ड तथा रूस के यूरोपीय क्षेत्रों में औद्योगिक तथा वाणिज्यिक गतिविधियों में पर्याप्त वृद्धि हुई। काक्शस तथा कालासागर एवं कैस्पियन सागर क्षेत्रों में खनिज तेल का उत्पादन आरम्भ हो गया। कीन्व, पीटर्सबर्ग एवं मास्को में बहुत बड़ी संख्या में औद्योगिक कारखाने स्थापित किये गये। रिग, ओडेसा, व्लाडीवोस्टक और आर्केन्जल में जलपोत निर्माण के लिए कारखाने स्थापित किये गये। सन् 1904 तक रूस विश्व के औद्योगिक देशों में चतुर्थ स्थान पर आ गया था।

रूस में औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप मध्य वर्ग के साथ नगरों में श्रमिक वर्ग की जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। समाज के इन दोनों वर्गों ने रूस की निरंकुश सरकार का विरोध करना आरम्भ कर दिया। जारवादी रूस के प्रतिष्ठित व्यक्ति रूस के औद्योगीकरण के प्रश्न पर दो दलों में विभाजित हो गये। उत्साही प्लेव (Pleuve) तथा स्लावोफाइल (Slavophile) औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के विकास को राजतन्त्रीय निरंकुशता तथा ग्रामीण कुलीनतन्त्र को सकारात्मक संकट मानते थे। इसके विपरीत रूस का प्रमुख उद्योगपति काउण्ट विट्टे (Count Witte) तथा रूस के देशभक्तों ने विकास का स्वागत किया। काउण्ट विट्टे राजनीतिक दृष्टि से रूढ़िवादी था, परन्तु उसने वाणिज्यिक तथा औद्योगिक विकास का प्रबल समर्थन किया। काउण्ट विट्टे के मार्गदर्शन में समस्त रूस में रेलवे का निर्माण कार्य हुआ तथा बैंकिंग-प्रणाली का विकास हुआ।

जारवादी शासन के प्रति निष्क्रिय तथा उदासीन विरोधी तत्वों ने नवीन परिस्थितियों का लाभ उठाकर सक्रिय होना आरम्भ कर दिया। समस्त रूसी साम्राज्य मुख्य रूप से कृषि प्रधान था। भौगोलिक दृष्टि से रूस अठारह करोड़ की जनसंख्या तथा कुल विश्व के 1/6 भू-भाग वाला सर्वाधिक विशाल देश था। कुल जनसंख्या के 6/7 व्यक्ति कृषि व्यवसाय में

व्यस्त थे, जबकि शेष 1/7 जनसंख्या शहरों में रहती थी। उल्लेखनीय है कि अनेक कट्टर रूढ़िवादी भू-स्वामियों तथा कृषकों ने बढ़ते हुए विरोध का समर्थन किया। निःसन्देह उनके मस्तिष्क में क्रान्ति का कोई विचार नहीं था, परन्तु वे उद्योगों तथा वाणिज्य के असंगत विकास से क्षुब्ध थे। अनेक भू-स्वामियों तथा कृषकों ने विट्टे की आर्थिक नीतियों तथा उनको स्वीकृति देने वाले प्रशासनिक तन्त्र का विरोध किया। जार निकोलस द्वितीय ने विवश होकर विट्टे को वित्त मन्त्री के पद से मुक्त कर दिया। भू-स्वामियों का वर्ग अत्यधिक प्रसन्न था, परन्तु विट्टे की अधिकांश नीतियों को बनाये रखने के लिए जार के अभिव्यक्त दृढ़ निश्चय से समाज के उदारवादी तत्वों को बल मिला।

इस प्रकार निरन्तर बढ़ते हुए मध्यवर्ग को विश्वास हो गया कि निरंकुशता के मन्द होने तथा संवैधानिक सरकार की स्थापना में ही उनका कल्याण निहित था, और इस प्रकार की सरकार में उनकी भावनाओं तथा विचारों का महत्व होगा। इस विश्वास के परिणामस्वरूप उदारवादियों तथा पाश्चात्य शिक्षा से अभिभूत बुद्धिजीवियों का प्रभाव बढ़ गया। उन्होंने सन् 1904 में स्वयं को 'यूनियन आफ लिबरेटर्स' (Union of Liberators) नाम के एक उदारवादी दल के रूप में संगठित किया।

श्रमिकों में व्याप्त असन्तोष तथा शहरों में श्रमिक वर्ग के मध्य उग्र कान्तिकारी आन्दोलनों के उद्‌भव में स्थिति अत्यधिक विकट हो गयी। परिणामस्वरूप अत्यधिक उग्र बुद्धिजीवियों, श्रमिकों तथा कृषकों की अनेक गुप्त समितियों का आविर्भाव हुआ। उन्होंने सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने, सरकारी अधिकारियों की नृशंस हत्या करने तथा शहीद होने की सुखद अनुभूति के प्रति अभिरुचि विकसित की।

कार्ल मार्क्स के विचारों तथा सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार एवं प्रसार सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। सन् 1898 में स्थापित "सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी"(Social Democratic Party) मार्क्स के समाजवादी सिद्धान्तों को साकार रूप प्रदान करने के लिए कृत संकल्प थी। सन् 1900 में स्थापित "समाजवादी क्रान्तिकारी दल" (Socialist Revolutionary Party) ने मार्क्स के समाजवाद को संशोधित तथा परिष्कृत करके रूस के कृषकों के परम्परागत साम्प्रदायिक जीवन के अनुकूल बनाया। इस दल ने रूस की समस्त भूमि का समाजीकरण करने तथा इस भूमि को उन व्यक्तियों में, जो यथार्थ में भूमि पर कृषि करते थे, वितरित करने पर बल दिया। सामाजिक क्रान्तिकारी, सामाजिक लोकतान्त्रिकों के समान ही शक्तिशाली थे। सन् 1903 में सामरिक तथा रणनीतियों में मतभेदों के कारण सामाजिक लोकतान्त्रिक दल दो दलों में विभाजित हो गया। वामपंथी बहुमत दल बोल्शेविक के नाम से विख्यात हुआ तथा दक्षिणपंथी अल्पमत वाला दल मैनशेविक के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जनता के बढ़ते हुए विरोध के कारण सर्वत्र असन्तोष की भावना में वृद्धि हो रही थी। पोल, यहूदी, फिन तथा अन्य अल्पमत समुदाय रूस के किसी भी राजनीतिक दल के साथ सहयोग करने के लिए तत्पर थे, जो उनको कठोर एवं निर्मम रूसीकरण की प्रक्रिया से मुक्त कराने का वचन दे।

रूस को अपनी सीमाओं में सीमित रखने के उद्देश्य से सन् 1902 में ब्रिटेन ने जापान के साथ एक मैत्री सन्धि की। उस समय तक जापान ने भी विस्तारवादी अभियान आरम्भ करने का निश्चय कर लिया था। मंचूरिया तथा कोरिया में रूस के निहित स्वार्थ, जापान के विस्तारवादी कार्यक्रम के कार्यान्वयन में बहुत बड़ी बाधा थे। इसी कारण सन् 1904 में जापान

ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जापान की अभूतपूर्व विजयों से प्रत्येक व्यक्ति आश्चर्यचकित था। जापान की सेना ने रूस की सेना को कोरिया की सीमा तथा आर्थर बन्दरगाह से पीछे हटने के लिए विवश कर दिया था। जापान ने रूस के नौ-सेनिक बेड़ों को पूर्णतया ध्वस्त कर दिया। जापान ने मंचूरिया में मुकदेन के स्थान पर रूस की सेना को पराजित किया। एशिया के एक छोटे से देश जापान के विरुद्ध रूस जैसे विशाल एवं शक्तिशाली देश की पूर्ण पराजय ने रूस के अन्दर क्रान्तिकारी आलोचकों को प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया, और उनमें नवीन चेतना तथा शक्ति का संचार किया। जारवादी निरंकुशता पर समस्त दोषारोपण किया गया। जारवादी निरंकुशता में भ्रष्ट अधिकारियों तथा अयोग्य अकुशल एवं अनुशासनहीन सेनानायकों का प्रभुत्व था। रूस की सर्वमान्य प्रतिष्ठा तथा गौरव को गहरा आघात पहुँचा।

जुलाई, 1904 में निरंकुश शासन के सर्वाधिक भ्रष्ट एवं चरित्रहीन सेनानायक प्लेव (Pleuva) को बम विस्फोट से नष्ट कर दिया गया। स्थानीय जेमस्त्वो (Zemstvos) तथा नगरपालिका ड्यूमा (Dumas) के प्रतिष्ठित सदस्यों ने प्रशासनिक तथा राजनीतिक प्रणाली में पर्याप्त सुधारों के लिए जार निकोलस द्वितीय से निवेदन किया। इन सदस्यों ने सुधारों के अन्तर्गत रूस की जनता को पर्याप्त स्वतन्त्रता देने, स्वतन्त्र न्यायाधीशों द्वारा न्यायिक प्रशासन, भाषण, प्रकाशन, सार्वजनिक सभाएँ करने, स्थानीय स्वशासन का विस्तार करने तथा राष्ट्रीय संसद स्थापित करने का अनुरोध किया। उन्होंने जनता द्वारा निर्मित संविधान की भी माँग की।

जार ने प्रतिष्ठित सदस्यों के निवेदन की पूर्ण उपेक्षा करते हुए जर्नल ट्रिपोव (Trepov) को पुलिस विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया। मध्यवर्गीय उदारवादियों ने प्रचलित प्रशासनिक प्रणाली के विरुद्ध सार्वजनिक रूप से उत्तेजनात्मक भाषण दिये। श्रमिकों ने मास्को, विलना तथा अनेक औद्योगिक केन्द्रों पर राजनीतिक हड़तालें कीं। रूढ़िवादी पादरी गेपन (Gepan) के नेतृत्व में हड़ताल करने वाले श्रमिकों का जुलूस जब जार को प्रतिवेदन देने जा रहा था, सैनिकों ने निःशस्त्र श्रमिकों पर गोलियों की वर्षा की। 22 जनवरी, 1905 का अमानुषिक रक्तपात रूस के इतिहास में 'लाल रविवार' के रूप गें प्रसिद्ध है। ग्रामीण क्षेत्रों में समाजवादी क्रान्तिकारी नेताओं के नेतृत्व में कृषकों के समूहों ने कुलीनों तथा भू-स्वामियों के विशाल भवनों को लूटा तथा आग लगा दी। विद्रोहियों ने जार के चाचा ग्रेट ड्यूक सर्ज की मास्को में हत्या कर दी।

इन घटनाओं से विचलित एवं द्रवित होकर जार निकोलस द्वितीय ने क्षुब्ध तथा उत्तेजित जनता को शान्त करने के लिए कुछ सुविधाओं की घोषणा की। धार्मिक सहिष्णुता का वचन दिया। निजी विद्यालयों में पोलिश भाषा के प्रयोग की अनुमति दे दी। यहूदी विरोधी अधिनियम को प्रवृत्त करने में शिथिलता तथा सहृदय व्यवहार का आदेश दिया। कृषकों में व्याप्त असन्तोष का उन्मूलन करने के उद्देश्य से निकोलस द्वितीय ने कृषकों को भू-राजस्व के रूप में शेष राशि के भुगतान से मुक्त कर दिया। उदारवादियों की उत्तेजित भावनाओं को शान्त करने के लिए उसने संवैधानिक सरकार स्थापित करने का वचन दिया। इसके उपरान्त भी उपद्रव होते रहे, जार ने सरकार को विधि निर्माण में परामर्श देने के लिए राष्ट्रीय संसद का गठन करने का आश्वासन दिया। इसी अवधि में फिनलैण्ड में देश को जारवादी नियन्त्रण से मुक्त कराने के लिए जनता ने हड़ताल कर दी। जार ने उसकी माँग को स्वीकार कर

लिया। निकोलस द्वितीय ने अपने कुछ परामर्शदाताओं को पदमुक्त कर दिया तथा काउण्ट विट्टे (Count Witte) को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। अक्टूबर के घोषणा-पत्र में रूस के नागरिकों को कुछ व्यक्तिगत स्वंतन्त्रताओं का आश्वासन दिया, और संसद के चुनाव के लिए सामान्य मताधिकार की माँग को स्वीकार कर लिया।

परन्तु सन् 1906 से क्रान्तिकारी भावनाएँ मन्द होने लगीं। जापान से लौटने वाली रूस की सेना का देश में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रयोग किया गया। दो वर्ष से निरन्तर भीषण उपद्रव हो रहे थे, अस्तु, चारों ओर अशान्ति तथा अव्यवस्था का साम्राज्य था। अधिकांश रूसवासी शान्ति एवं व्यवस्था के लिए व्यग्र थे। क्रान्तिकारियों के विभिन्न घटकों में परस्पर संघर्ष के कारण उनकी संगठित शक्ति विघटित हो गयी थी। उदारवादियों के उग्र सुधारवादी दल ने माँग की कि देश की प्रथम संसद अथवा ड्यूमा (Duma) को संविधान निर्माण के लिए संवैधानिक सभा अथवा सम्मेलन के रूप में कार्य करना चाहिए तथा सर्वोच्च सत्ता जार में नाममात्र के लिए निहित होनी चाहिए। रूढ़िवादी उदारवादियों का एक अन्य दल, अक्टूबरवादियों के नाम से विख्यात, अक्टूबर के घोषणा-पत्र की परिधि में रहकर कार्य करने का समर्थन कर रहा था।

सुधारवादियों का पतन हो गया था। प्रतिक्रियावादी तत्व परस्पर मतभेदों को विस्मृत करके रूस में निरंकुशता को बनाये रखने के लिए संघर्ष करना चाहते थे। उन्होंने स्वयं को रूसवादियों के संगठन के रूप में संगठित किया। ब्लैक बैन्ड्स अथवा ब्लैक हन्ड्रेड्स के नाम से प्रसिद्ध उनके अनुयायियों ने प्रतिक्रियात्मक आतंकवाद की गतिविधियाँ आरम्भ कीं, और यहूदियों के विरुद्ध जनसमूह को उत्तेजित किया। उन्होंने जार पर सन् 1906 में स्वीकृत कुछ व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं तथा सुविधाओं को समाप्त करने के लिए दबाव डाला। जार निकोलस द्वितीय ने अपनी पहले की उदार घोषणाओं को निरस्त कर दिया तथा काउण्ट विट्टे को सेवा से मुक्त कर दिया। नये आन्तरिक विषयों के मन्त्री पीटर स्टोलीपिन (Peter Stolypin) ने क्रान्तिकारी विद्रोहों का कठोरता तथा निर्ममता के साथ दमन किया। उसने संसद अर्थात् ड्यूमा को भी भंग कर दिया। सन् 1907 में गठित द्वितीय संसद (ड्यूमा) में भी क्रान्तिकारियों को बहुमत मिल गया। जार ने राजाज्ञा की कि भावी संसद (ड्यूमा) सरकार का विरोध नहीं कर सकती। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निकोलस द्वितीय ने मताधिकार को सीमित कर दिया। परिणामस्वरूप अक्टूबर, 1907 में गठित तृतीय संसद (ड्यूमा) में रूढ़िवादियों तथा अक्टूबरवादियों का बाहुल्य था। संसद (ड्यूमा) के बाहर क्रान्तिकारियों तथा विभिन्न जातियों तथा राष्ट्रों की जनता ने अपना विरोध तीव्र कर दिया।

यथार्थ में सन् 1907 के बाद रूस की सरकार ने अतीत की प्रतिक्रियावादी तथा रूढ़िवादी नीतियों का कार्यान्वयन आरम्भ कर दिया। तीसरी संसद (ड्यूमा) ने कुछ भूमि सुधार कानून पारित किये तथा श्रमिकों के लिए बीमा योजना को कार्यान्वित किया। वास्तव में सरकार प्रशासन का संचालन करती थी, और ड्यूमा अनुकरण करती थी। सन् 1911 में एक यहूदी वकील ने स्टोलीपिन का वध कर दिया, परन्तु प्रशासन का निर्मम दमन कार्य पूर्ववत् चलता रहा।

इसी अवधि में देश की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा तथा गौरव को पुनर्स्थापित करने के लिए उत्सुक रूस के प्रतिक्रियावादी राजनीतिज्ञों ने सन् 1907 में ब्रिटेन के साथ समझौता किया। इस समझौते ने फ्रान्स, रूस के द्वि-राष्ट्र सन्धि (Dual Alliance) को पुष्ट किया तथा त्रि-राष्ट्र

मैत्री सन्धि (Triple Entente) में परिवर्तित हो गया। इस नैतिक समर्थन से प्रोत्साहित होकर रूस ने बाल्कन क्षेत्र में आक्रमणात्मक विस्तारवादी नीति का सक्रिय कार्यान्वयन आरम्भ कर दिया। रूस ने अपनी सेना तथा नौ-सेना के आधुनिकीकरण का कार्य भी आरम्भ कर दिया।

रूस त्रि-राष्ट्र मैत्री सन्धि (Triple Entente) का सदस्य होने तथा बाल्कन क्षेत्र में अपनी उपस्थिति की प्रबल आकांक्षा के कारण जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी तथा ओटोमन साम्राज्य के विरुद्ध भावी सन् 1914 के प्रथम विश्व युद्ध के निकट पहुँच रहा था। सन् 1915 में विभिन्न युद्ध स्थलों पर रूस पराजित हुआ, और भीषण सैनिक क्षति हुई। सन् 1915 में रुस के आक्रमणात्मक अभियान की विफलता के कारण निकोलस द्वितीय ने स्वयं सेना का नेतृत्व करने का निश्चय किया, और इसको वह देश के प्रति सर्वोपरि कर्तव्य मानता था। इसका प्रशासन पर विनाशकारी प्रभाव हुआ। केन्द्र में एक प्रकार की रिक्तता आ गयी और इसकी पूर्ति पूर्वापेक्षा अधिक असंगत, अतार्किक, बुद्धिहीन तथा निरंकुशता की अपूर्व स्वेच्छाचारिता की अभिव्यक्ति के रूप में रासपुटिन तथा साम्राज्ञी अलेक्जेण्ड्रिया ने की। जार निकोलस द्वितीय युद्ध क्षेत्र में था और अपने सैनिकों को यथोचित निर्देश देने में अधिकाधिक असहाय अनुभव कर रहा था। प्रशासन ने स्पष्ट रूप से अधिनायकतन्त्रीय शक्तियाँ ग्रहण कर लीं, और ड्यूमा (संसद) की उपेक्षा करते हुए लगभग 400 विशेष राजाज्ञाएँ प्रचलित कीं। प्रतिनिधि संस्थाओं के साथ संघर्ष के कारण अधिक महत्वपूर्ण, अधिकारीतन्त्र की निष्ठा स्थानान्तरित हो गयी। दिसम्बर, 1916 में कुलीनों के एक दल ने दुष्टात्मा, रूस के विनाश के लिए उत्तरदायी, रासपुटिन की विष देकर हत्या कर दी।

सन् 1916-17 की शीत ऋतु में रूस में सर्वत्र सार्वजनिक असन्तोष, अशान्ति एवं अव्यवस्था व्याप्त थी। एक विद्वान इतिहासकार ने मत व्यक्त किया है, "सरकार हवा में लटक रही थी और ऊपर अथवा नीचे से कोई आधार (समर्थन) नहीं था।" क्षुब्ध तथा निराश देशभक्तों ने मत व्यक्त किया कि सरकार उत्साहपूर्वक युद्ध के संचालन में बाधा डाल रही थी। विभिन्न जातियों तथा देशों की रूस में रहने वाली जनता अत्यधिक चिन्तित थी। कृषकों ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया। श्रमिकों ने सामूहिक हड़तालें आरम्भ कर दीं, और जनसमुदाय ने रोटी के लिए विद्रोह कर दिया। सैनिकों ने अपने दायित्वों का निर्वाह करने से मना कर दिया, और हड़ताल करने वाले श्रमिकों के साथ सहानुभूति व्यक्त की। राजधानी में विद्रोह को निश्चित निर्देश देने एवं स्थानीय सरकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए सैनिकों और श्रमिकों की सोवियट अथवा परिषद् का गठन किया गया।

मार्च 1917 की क्रान्ति (Revolution of March 1917)—फिशर ने क्रान्ति के विषय में विचार व्यक्त किया, "क्रान्ति जो दीर्घकाल से सन्निकट थी, का विस्फोट हो गया, उस रूप में नहीं जैसी आशा की जा रही थी, हिंसक एवं संगठित उपद्रव के रूप में नहीं, वरन् स्पष्ट रूप से आकस्मिक एवं अचिन्तित विरोधों के रूप में फैले, जो विपुल रूप में संचित हो रहे थे, और महत्वपूर्ण थे, जब तक यह स्पष्ट नहीं हुआ कि समस्त देश कुलीनों के साथ-साथ मध्यवर्ग और सैनिकों के साथ-साथ उदारवादियों और समाजवादियों की जार के प्रति निष्ठा समाप्त हो गयी। 11 मार्च, 1917 को सरकार ने आदेश दिया कि पैट्रोग्रेड के हड़ताल में सम्मिलित श्रमिकों को अपने कार्य स्थल लौटकर आ जाना चाहिए तथा हाल ही में पुनर्गठित संसद (ड्यूमा) को वापस लौट जाना चाहिए। हड़ताल करने वाले श्रमिकों ने इस आदेश का

पालन करने से मना कर दिया तथा सैनिकों ने इन श्रमिकों का सक्रिय समर्थन किया। उल्लेखनीय है कि ड्यूमा (संसद) ने भी सरकार के आदेश का पालन करने से मना कर दिया, और संसद ने नई उदारवादी मन्त्रिपरिषद् नियुक्त करने के लिए अनुरोध करते हुए जार निकोलस द्वितीय के पास एक तार भेजा। 15 मार्च, 1917 को ड्यूमा (संसद) का एक प्रतिनिधिमण्डल जार से देश की वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में सिंहासन (सत्ता) त्यागने के लिए जार निकोलस द्वितीय से मिला। शिष्ट मण्डल ने जार को विश्वास दिलाया कि उसको सत्ता त्याग देनी चाहिए। उसने अपने भाई माइकेल के समर्थन में सत्ता (सिंहासन) त्याग दी। स्थिति पर पहले ही नियन्त्रण करना सम्भव नहीं था, अस्तु, माइकेल ने सिंहासन के दायित्व को लेने से मना कर दिया।

तदुपरान्त ड्यूमा (संसद) तथा पैट्रोग्रेड सोवियट ने प्राध्यापक, राजनीतिज्ञ मिलिनकोव (Milinlkov) के नेतृत्व में नरमपंथी गणतन्त्रवादियों की एक अन्तरिम सरकार स्थापित की। अन्तरिम सरकार स्वरूप एवं गठन में मध्यवर्गीय थी। इस सरकार ने तत्काल पाश्चात्य देशों में प्रचलित उदारवादी सुधार जैसे समुदाय बनाने, प्रेस, भाषण तथा धर्म की स्वतन्त्रता की घोषणा की। सरकार ने रूस की स्थायी सरकार के स्वरूप को निर्धारित करने के लिए शीघ्र ही राष्ट्रीय संविधान सभा के लिए निर्वाचन कराने की भी घोषणा की। इसने सहस्त्रों राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया तथा राजनीतिक निर्वासितों पर लगे प्रतिबन्ध को हटा दिया। फिनलैण्ड में पूर्णरूप से स्वशासन स्थापित किया, और पोलैण्ड को स्वशासन का वचन दिया। इसने अखिल पुरुष मताधिकार द्वारा निर्वाचित राष्ट्रीय संविधान सभा के आह्वान की योजना की घोषणा की।

जनसमुदाय में देशभक्ति की पवित्र भावना उद्वेलित करने के लिए अन्तरिम सरकार निष्ठा तथा उत्साहपूर्वक युद्ध का संचालन करने के लिए भी उत्सुक थी, लेकिन राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े रूस में जनसमुदाय को राजनीतिक सुधारों की अपेक्षा, शान्ति और व्यवस्था, भूमि एवं रोटी की अतीव आवश्यकता थी। जनसमुदाय द्वारा आरम्भ क्रान्ति का उद्देश्य राजनीतिक की अपेक्षा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में आमूल परिवर्तन करना था। उदारवादी आन्दोलन ने समाजवादी स्वरूप ग्रहण कर लिया। समस्त रूस में श्रमिकों एवं सैनिकों के सोवियट अथवा परिषदों का गठन हो गया। ये परिषदें सार्वजनिक केन्द्र एवं व्यापक प्रचार के केन्द्र बन गये। सर्वत्र अनुशासनहीनता थी। श्रमिकों ने काम करना बन्द कर दिया, अधिक वेतन एवं काम के घंटों की माँग करने लगे। कृषकों ने कुलीनों के भू-क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। रोग के कीटाणु सेना में भी पहुँच गये। सैनिकों ने आदेश का पालन करने से मना कर दिया और अनेक अधिकारियों की हत्या कर दी। सैनिकों की जर्मन सैनिकों के साथ सहानुभूति थी। रूस के अधीन फिन (Finins) और पोल जैसी अन्य राष्ट्रीयताओं की जनता ने अपनी-अपनी और रूस के साथ सम्बन्ध-विच्छेद करने की घोषणा कर दी। रूसी साम्राज्य द्रुतगति से विघटन की प्रक्रिया में था और रूस में समस्त नैतिक एवं भौतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। उदारवादियों की युद्ध नीति से जनता अत्यधिक अप्रसन्न थी। मित्र देशों की सेनाएँ निरन्तर आक्रमण कर रही थीं। रूस की सेनाएँ विभिन्न मोर्चों पर युद्ध नहीं कर सकी। सेना में अधिकांश कृषक थे, उनके पास आधुनिकतम अपेक्षित अस्त्र-शस्त्रों का अभाव था। सर्वत्र पराजयवाद का द्रुत गति से प्रसार हो गया और रूस में इसके प्रसार ने जनता को सजग तथा चिन्तित कर दिया। रूस के सैनिक विदेशों में उत्साहपूर्वक युद्ध करने

की अपेक्षा अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के लिए अन्तरिम सरकार से कुछ सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अधिक व्यग्र थे। मई, 1917 में मिलिनकोव ने त्याग-पत्र दे दिया, और उग्र सुधारवादी अलेक्जेण्डर केरेन्सकी (Alexander Kerensky) उसका उत्तराधिकारी बना। उसकी नीति युद्ध को जारी रखते हुए द्रुतगति से सम्मानजनक निष्कर्ष पर लाने की थी। वह क्रान्ति को सुरक्षित दिशा में ले जाना चाहता था और उसने जनता को राजनीतिक लोकतन्त्र एवं सामाजिक सुधारों का आश्वासन दिया, लेकिन नरमपंथी समाजवादी होने के कारण वह संवैधानिक पद्धतियों और क्रमिक चरणों में समाजवाद लाना चाहता था। उग्रवादी समाजवादियों ने उसका समर्थन नहीं किया। वे युद्ध के विरोधी थे और बिना किसी क्षेत्र के विलय अथवा क्षतिपूर्ति के शान्ति चाहते थे।

आन्तरिक सुधारों के सामान्य रूप से स्वीकृति कार्यक्रम अथवा सैनिकों, श्रमिकों और कृषकों की सोवियट की चेतना, भावना एवं विचारधारा के द्रुतगति से व्यापक प्रसार को रोकने के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं था। बोल्शेविकों अथवा साम्यवादियों का, नेतृत्व स्विट्ज़रलैण्ड में निर्वासन से लौटकर आने वाला लेनिन कुशलतापूर्वक नेतृत्व कर रहा था। लियोन ट्रॉट्स्की (Leon Trotsky) ने अमेरिका से लौटकर अपने समर्थकों को सम्बोधित करते हुए उपदेश दिया कि क्रान्ति को पूँजीवाद अथवा मध्यवर्ग से किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं करना चाहिए। लेनिन एवं ट्राटस्की का पैट्रोग्रेड सोवियट तथा अन्य सोवियटों पर बहुत प्रभाव हो गया। युद्ध मोर्चों पर नियुक्त सेना में कृषक भी इन दोनों व्यक्तियों से अत्यधिक प्रभावित थे, परन्तु इन लोगों को साम्यवादियों के आर्थिक दर्शन के विषय में स्पष्ट ज्ञान नहीं था। परिणामस्वरूप रूसी सैनिक अपनी सैनिक रेजीमेण्ट्स को छोड़ने के लिए तत्पर थे। इसी समय जर्मनी की कूटनीतिक गतिविधियों के अन्तर्गत पूर्वी सीमा पर भ्रामक प्रचार कार्य ने रूसी सैनिकों को अपनी रेजीमेन्ट छोड़ने के लिए प्रेरित किया।

केरेन्स्की ने मित्र देशों से बिना किसी विजित क्षेत्र के विलय अथवा पर्याप्त क्षतिपूर्ति के, शान्ति स्थापित करने के लिए निरर्थक अनुरोध किया। उसने अपने निराश, निरुत्साही एवं अनुशासनहीन सैनिकों को अनुशासित एवं उत्साहित करने एवं नवीन चेतना का संचार करने का असफल प्रयास किया। निराश एवं विक्षुब्ध केरेन्सकी ने जुलाई, 1917 में आस्ट्रिया और जर्मनी के विरुद्ध आक्रमण कर दिया, परन्तु रूसी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। पूर्णतया निराश केरेन्स्की ने सैनिक अधिनायकतन्त्र स्थापित करने की योजना बनायी। दुर्भाग्य से केरेन्स्की तथा सेनाध्यक्ष, अधिनायकतन्त्र की स्थापना पर परस्पर सहमत नहीं हुए, यद्यपि दोनों में से किसी एक में भी सैनिक अधिनायकतन्त्र स्थापित करने की अपेक्षित योग्यता एवं साहस नहीं था। अब केरेन्स्की ने वामपंथियों से सहयोग और सहायता के लिए अनुरोध किया और द्रुत गति से आन्तरिक सुधारों के लिए वचन दिया। जनरल कोर्निलोव ने असफल प्रति क्रान्ति का प्रयास किया।

बोल्शेविक क्रान्ति (Bolshevik Revolution)—7 नवम्बर, 1917 उस समय रूस में मान्य कैलेण्डर के अनुसार 25 अक्टूबर को द्वितीय क्रान्ति हुई, और केरेन्स्की की अन्तरिम सरकार को अपदस्थ कर दिया गया। लेनिन एवं ट्रॉटस्की के नेतृत्व में बोल्शेविकों की सफल क्रान्ति के बाद अपने कार्य को सुदृढ़ करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य था। साम्यवादियों के अध्यक्ष के रूप में देश की सत्ता लेनिन ने अपने हाथ में ले ली। डैरी एवं जार्मन ने कहा, "युद्ध ने तब अवसर प्रदान किया। भाग्य ने लेनिन के रूप में नेता दिया, उसकी महान् बौद्धिक

एवं व्यक्तिगत शक्तियों ने उसको प्रभुत्व स्थापित करने योग्य बनाया। उसने अवसर को देखा जब अन्यों ने नहीं देखा।" 7 नवम्बर, 1917 में सत्ता ग्रहण करते समय उसके समर्थकों की संख्या यद्यपि कम थी परन्तु जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त करने के लिए उसके पास सुनियोजित कार्यक्रम था।

दूसरे उनको सरकार का गठन करना था और साम्यवादी सिद्धान्तों के आधार पर गठित सरकार की सहायता से रूस के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का निर्माण करना था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम बाह्य शान्ति स्थापित करना था जिससे बोल्शेविक सरकार अपनी समस्त शक्ति और ऊर्जा को देश की आन्तरिक समस्यायों पर केन्द्रित कर सके। अस्तु, लेनिन ने सर्वप्रथम केन्द्रीय शक्तियों से सम्पर्क स्थापित किया, और जर्मनी एवं उसके सहयोगी मित्र राष्ट्रों के साथ ब्रेस्ट लिटोव्स्क (Brest Litovsk) की सन्धि की। इस सन्धि के द्वारा रूस ने स्वयं को युद्ध से अलग हटा लिया, और पोलैण्ड एवं बाल्टिक प्रान्तों सहित समस्त पश्चिमी प्रान्त जर्मनी को दे दिये। यह एक अपमानजनक सन्धि थी, इसके द्वारा रूस ने पीटर महान् के समय से अर्जित समस्त भू-भागीय क्षेत्र खो दिये थे। लेनिन और उसके समर्थकों के लिए कोई भी बलिदान सामाजिक क्रान्ति की विजय के लिए अधिक नहीं था, जिसकी प्राप्ति के लिए वे कृत संकल्प थे। डेविड थामसन ने कहा है, "लेनिन द्वारा निर्धारित इसका कार्यक्रम चार सूत्रीय, कृषकों को भूमि, भूखों को भोजन, सोवियटों को शक्ति और जर्मनी के साथ शान्ति था।"

उसने जनता के समक्ष घोषणा की कि उसका अधिनायकतन्त्र सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र था। इसमें श्रमिकों के साथ कृषक तथा सैनिक भी समान रूप से सम्मिलित थे। उनमें से प्रत्येक के लिए उसने तत्काल लाभों तथा सुविधाओं का प्रस्ताव रखा। औद्योगिक श्रमिकों की आहत भावनाओं को तुष्ट करने के लिए निजी कारखानों तथा औद्योगिक संस्थाओं के अधिग्रहण का आदेश दिया। कृषकों को आकर्षित करने तथा उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए भू-स्वामियों की भूमि को अधिग्रहीत करने का आदेश दिया। युद्ध से त्रस्त सैनिकों को प्रसन्न करने के लिए उसने रूस को प्रथम विश्वयुद्ध से विलग कर लिया। नवम्बर, 1917 में ही लेनिन ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को मान्यता देते हुए जनता के अधिकारों की घोषणा की, और जनसमुदाय के आत्म-निर्णय के अधिकार के लिए वचन दिया। समस्त नागरिकों के लिए श्रम अनिवार्य कर दिया गया। पूर्व रूसी सरकार द्वारा लिये गये समस्त ऋणों को अस्वीकार कर दिया। रूस के रूढ़िवादी चर्चों को लूट लिया गया एवं राजकीय संरक्षण से वंचित कर दिया गया। संक्षेप में, बोल्शेविक शासन ने तत्कालीन रूस की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं को व्यापक रूप से ध्वस्त कर दिया।

अक्टूबर क्रान्ति की विजय ने विश्व के इतिहास में नये अध्याय, मानव समाज के विकास में नये युग, पूँजीवाद के पतन के युग और विश्व स्तर पर समाजवाद एवं साम्यवाद के विजय की घोषणा की। मानव संमुदाय अक्टूबर क्रान्ति के विचारों, अत्यधिक गहन क्रान्तिकारी रूपान्तरों जिन्होंने विश्व में आमूल परिवर्तन कर दिया है, के विचारों की विजय के तत्वाधान में निरन्तर प्रगति कर रहा है। प्रो. एल. मुकर्जी ने विचार व्यक्त किया है, "मध्य यूरोप में राष्ट्रीयता एवं लोकतन्त्र के सिद्धान्तों ने विजय प्राप्त की थी, लेकिन रूस में इसके परिणामस्वरूप महा परिवर्तन हो गया, जो उतना ही सामाजिक एवं आर्थिक था, जितना राष्ट्रीय एवं राजनीतिक था। रूसी क्रान्ति के महत्व का पूर्ण निर्धारण होना शेष है। फ्रान्स की क्रान्ति

के बाद से यह सर्वाधिक महान् परिवर्तन सिद्ध हुआ है। फ्रान्स की क्रान्ति के अनुरूप रूसी क्रान्ति के महान् सिद्धान्तों को क्या सामान्य जनता स्वीकार करेगी, इसका उत्तर भविष्य के गर्भ में निहित है। यह निर्विवाद सत्य है कि इसके कारण रूस में अभूतपूर्व रूपान्तर हुआ है, और दूरगामी परिणामों के साथ नये आन्दोलन का शुभारम्भ किया है।"

विशाल रूस में सन् 1917 के वर्ष में अनेक सोवियटों (समिति, परिषद) का अभ्युदय हो चुका था, और इन्हीं के माध्यम से सार्वजनिक हित के विभिन्न कार्यान्वित कार्यक्रमों का व्यापक प्रचार किया गया। यथार्थ में जार शासन के प्रबल समर्थक, संवैधानिक लोकतन्त्रवादी अथवा उग्र सुधारवादी दल जैसे सामाजिक क्रान्तिकारी और मैनशेविक समाजवादी, लेनिन और उसके कार्यक्रमों के कटु आलोचक थे, और तीव्र विरोध कर रहे थे। वास्तव में, लेनिन के सत्ता ग्रहण करने से पूर्व गठित संविधान सभा में तीन-चौथाई स्थान बोल्शेविक विरोधियों ने प्राप्त कर लिये थे। जनवरी, 1918 में संविधान सभा का सत्र आरम्भ होने पर लेनिन ने यह कहते हुए कि यह प्रतिक्रियावादियों की भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है, संविधान सभा को अस्वीकार कर दिया था, और सैनिकों ने इसे भंग कर दिया। समस्त देश में साम्यवादी सोवियटों ने, यद्यपि उनकी संख्या कम थी, जनसमुदाय को आतंकित किया था। उद्दण्ड कुलीनों तथा पूँजीवादियों के विरुद्ध निर्ममतापूर्वक कठोर कार्यवाही की गयी। पुराने शासन के सैनिक अधिकारियों तथा अधिकारीतन्त्र के विरुद्ध भी कठोर कार्यवाही की गयी। उन व्यक्तियों की, जो पलायन नहीं कर सके, हत्या कर दी गयी। समस्त ईसाई धर्माधिकारियों (पादरियों) को शान्त करने के लिए सन् 1918 में रूस में रूढ़िवादी चर्च को समाप्त कर दिया। स्थानीय सोवियट के आदेश से जार निकोलस द्वितीय, उसकी पत्नी तथा उसके बच्चों का जुलाई, 1918 में उरल्स के निकट वध कर दिया गया। प्रत्येक भिन्न राजनीतिक दल के विरुद्ध साम्यवादी सैनिकों तथा क्रान्तिकारी न्यायालयों ने आतंकवादी शासन स्थापित किया। विरोधी दलों का महत्वपूर्ण भाग भयभीत होकर निष्क्रिय तथा उदासीन हो गया। सहस्रों व्यक्तियों का निर्दयतापूर्वक वध कर दिया गया तथा अन्य सहस्रों देश से पलायन करके अन्यत्र चले गये।

विदेशी हस्तक्षेप (Foreign Intervention)—लेकिन पूँजीवादी विश्व में समाजवादी शासन ने विश्व के देशों को सजग एवं सतर्क कर दिया। युद्धोपरान्त सर्वत्र आर्थिक मन्दी, अव्यवस्था एवं अराजकता थी, और पश्चिमी शक्तियों को अपने देशों में रूस के अनुरूप श्रमिक वर्ग द्वारा विद्रोह की पूर्ण आशंका थी। बोल्शेविक समर्थकों के विश्वव्यापी सामाजिक क्रान्ति के व्यापक प्रचार ने आशंका को बहुत बढ़ा दिया था। विदेशी हस्तक्षेप के कारण यह आतंक बहुत बढ़ गया। जर्मनी ने अपनी सैनिक स्थिति को सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाने के लिए तथा मध्य यूरोप में साम्यवाद के प्रचार और प्रसार को रोकने के लिए मार्च, 1918 में हस्तक्षेप किया। जर्मनी ने बोल्शेविक सरकार को वचन देने के लिए बाध्य किया कि वे मध्य यूरोप में विद्रोही प्रचार का समर्थन नहीं करेंगे। जर्मनी ने यूक्रेन सहित सीमा पर स्थित समस्त मुक्त देशों के नेताओं को जर्मनी से सम्बद्ध राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया, परन्तु नवम्बर, 1918 में जर्मनी के बाद रूस के साम्यवादियों पर दबाव कम हो गया।

उस समय तक मित्र राष्ट्रों ने भी हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था। फ्रान्स, ब्रिटेन, जापान तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के राजनीतिज्ञ, प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा बुद्धिजीवी लेनिन के

अधिनायकतन्त्र, युद्ध से विलग होने के निर्णय, पृथक् शान्ति स्थापित करने, अतीत में विदेशों से प्राप्त ऋणों को अस्वीकार करने तथा साम्यवादी क्रान्ति का विश्वव्यापी प्रचार करने के कारण अत्यधिक क्रुद्ध थे। रूस में प्रचलित अराजकता की स्थिति का स्वयं के लाभ के लिए जर्मनी को शोषण करने से रोकना और सन् 1918 से 1922 की अवधि में प्रति क्रान्ति के विभिन्न प्रयासों को समर्थन देकर बोल्शेविक सरकार को अपदस्थ करना ही मुख्य उद्देश्य थे। जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की कार्यवाही के रूप में मित्र राष्ट्रों का सक्रिय हस्तक्षेप मार्च, 1918 में आरम्भ हुआ था। मित्र राष्ट्रों ने, रूस को जर्मनी के साथ ब्रेस्ट लिटोव्स्क (Brest Litovsk) की सन्धि करने के कारण मान्यता देने से मना कर दिया तथा रूस के विरुद्ध आर्थिक नाकेबन्दी (Blockade) प्रवृत्त कर दी। इसके अतिरिक्त आर्कटिक महासागर के तट पर स्थित आर्कएन्जेल (Archangel), मुरमनस्क (Murmansk), पूर्वी साइबेरिया में स्थित व्लाडीवोस्तक तथा कालासागर के तट पर स्थित ओडेसा (Odessa) में अपनी सशस्त्र सेनाएँ भेज दीं। जापानी सेना ने व्लाडीवोस्तक पर नियन्त्रण कर लिया। ब्रिटिश सेना ने प्रति क्रान्तिकारी आन्दोलन को सहायता देने के लिए आधार के रूप में दक्षिणी रूस स्थित काकसस (Caucasus) और फ्रान्स अधिकृत कुछ स्थानों पर नियन्त्रण कर लिया। इनमें से सर्वाधिक गम्भीर पहले कॉर्निलव (Kornilov) बाद में डेन्किन (Denkin) और अन्ततोगत्वा रैंगल (Wrangel) के नेतृत्व में दक्षिण के कौसेक (Cossacks) के लिए सैन्य अभियान था। विदेशी सेनाओं की उपस्थिति से प्रोत्साहित होकर रूस के अनेक जनरलों ने स्वयं को श्वेत सेना के रूप में संगठित किया। साम्यवादी लाल सेना तथा पुराने शासन की प्रतीक श्वेत सेना के मध्य गृह-युद्ध आरम्भ हो गया।

सन् 1918 के अन्त तथा सन् 1919 में सदैव ऐसा प्रतीत होता था कि शीघ्र ही लेनिन की सरकार का पतन हो जायेगा। श्वेत सेना की सहायता से मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने उत्तर में आर्कएन्जेल, दक्षिण में क्रीमिया प्रायद्वीप तथा पूर्व में साइबेरिया के अधिकांश भाग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। जनरल डेनीकिन (Denikin) ने क्रीमिया से मास्को की ओर कूच किया। पश्चिमी साइबेरिया में स्थित ओमस्क में केरेन्स्की की सरकार के वैध उत्तराधिकारी के रूप में संविधान सभा का गठन किया गया। इसका रूस के एडमिरल कोलचक के नेतृत्व में सेना ने पूर्ण समर्थन किया। इनको रूस के कारागृहों से मुक्त जैको-स्लोवक शक्ति ने सक्रिय सहयोग दिया। ये सैन्य अभियान प्रशान्त महासागर के मार्ग से यूरोप जाना चाहता था। फ्रान्स द्वारा उत्तेजित एवं प्रेरित पोलैण्ड जो अपनी सीमाओं का विस्तार करना चाहता था, ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

ज्वलन्त प्रश्न था कि विदेशी हस्तक्षेप का मूल अभिप्राय क्या था ? पूँजीवादी विश्व साम्यवाद से भयभीत था। नये धर्म योद्धाओं के अनुरूप पूँजीवादियों ने क्रान्तिवादी विरोधी दलों का प्रबल समर्थन किया। सोवियट रूस अपने उद्भव के समय ही अशक्त तथा गतिहीन हो गया। इस कारण सोवियट सरकार ने अपनी दमनकारी गतिविधियों को पूर्वपिक्षा अधिक तीव्र कर दिया। प्रत्येक राष्ट्र अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। कोई भी राष्ट्र बिना संघर्ष के आत्मसमर्पण नहीं करता है। सोवियट रूस द्वारा सशस्त्र संघर्ष में ये मूलभूत तत्व निहित थे। नये नेताओं का दृढ़ विश्वास था कि वे एक पवित्र उद्देश्य के लिए साहस और शौर्य के साथ संघर्ष कर रहे थे। विश्व के समस्त धर्मों तथा साम्यवाद में एक मूलभूत समानता है। प्रत्येक धर्म अपने सर्वाधिक निर्धन एवं सर्वाधिक दयनीय, पतितों की स्थिति में

सुधार करने के लिए सदैव उत्सुक रहता है। मार्क्स ने भी निर्धनों तथा दीनहीन दयनीय पतितों की रक्षा करने का प्रयास किया, परन्तु दोनों में एक महत्वपूर्ण अन्तर भी है। धार्मिक नेता स्वप्नदृष्टा तथा आदर्शवादी थे, और वे अधिकतर इसके उपरान्त सुखद परिणामों का आश्वासन देते थे। इसके विपरीत मार्क्स के सिद्धान्त जीवन की भौतिक समस्याओं पर आधारित हैं, और इनका विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है। विश्व के समस्त धर्मों तथा साम्यवाद के मध्य अन्तर्निहित समानताओं के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये हैं। मार्क्सवादियों अथवा मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों ने किसी भी धर्म के अपूर्व निष्ठावान धर्मावलम्बियों के सदृश ही आस्था एवं उत्साह व्यक्त किया। सोवियट सरकार ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के अतिरिक्त नये धर्म (साम्यवाद) को न्यायसंगत सिद्ध करने तथा विजय के लिए संघर्ष किया।

बोल्शेविकवाद की सफलता के कारण (Causes of the Success of Bolshevism)—शनैः-शनैः बोल्शेविक अथवा साम्यवादी अपनी प्रारम्भिक विपत्तियों से मुक्त हो गये। विरोधी सेना के जनरलों की व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विताओं, ईर्ष्या और द्वेष के कारण वे स्वतः शक्तिहीन तथा निष्क्रिय हो गये। राजतन्त्रवादियों और गणतन्त्रवादियों में तथा सैनिकों एवं राजनीतिज्ञों के मध्य तीव्र मतभेद और परस्पर द्वेष था। दूसरे कृषकों को भय था कि भू-स्वामियों के वापस आने से नव-प्राप्त भूमि पुनः छिन जायगी। अस्तु, कृषकों ने पूर्ण समर्थन किया। गैर-साम्यवादी दलों के अनुयायियों में केवल इस विषय पर तीव्र विवाद था कि बोल्शेविकवाद के स्थान पर क्या होना चाहिए। दूसरी ओर बोल्शेविक समर्थकों में परस्पर किसी प्रकार का कोई मतभेद अथवा विवाद नहीं था। उद्देश्य की एकाग्रचित्तता, निष्ठा, अटूट धर्मान्धता, साम्यवाद के व्यापक प्रचार एवं प्रसार तथा कुशल सैनिक संगठन ने विरोधी शक्तियों को पराजित कर दिया। ट्राटस्की की युद्ध में लेनिन के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी, और वह संकट के क्षणों में सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हुई। उसने रूस के कृषकों तथा श्रमिकों की श्वेतों के प्रति घृणा को उद्वेलित किया। यद्यपि साम्यवादी लाल सैनिकों की वेशभूषा दयनीय थी और उनके पास अस्त्र-शस्त्र पर्याप्त नहीं थे, परन्तु उनमें अपने शत्रु की अपेक्षा बहुत अधिक साहस तथा उत्साह था। सन् 1919 के अन्त तक लाल सैनिकों की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी। परस्पर मतभेदों द्वारा विभाजित बोल्शेविक विरोधी बहुत निर्बल थे एवं विदेशी सहायता से वंचित थे, अस्तु, पूर्णतया पराजित हो गये।

इसके अतिरिक्त विदेशी शक्तियाँ रूस में व्यापक स्तर पर सैनिक अभियान आरम्भ करने की स्थिति में नहीं थीं। जर्मनी पंगु हो गया था। फ्रान्स, रूस से अत्यधिक व्ययशील शक्ति के द्वारा अपने ऋणों की वसूली की अपेक्षा जर्मनी को दण्ड देने के लिए अधिक उत्सुक था। ग्रेट ब्रिटेन के समक्ष विभिन्न जटिल साम्राज्यवादी समस्याएँ तथा इंगलैण्ड में स्वयं बढ़ते हुए शान्तिवाद की समस्या थी। जापान की रूस और यूक्रेन, बाईलोरशा (Byelorussia) जो पूरी तरह यूरोपीय थे, की अपेक्षा चीन पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने में अधिक रुचि थी। एशिया महाद्वीप में कुल आठ राज्य थे। इन समस्त राज्यों में रूस अधिकृत एशिया का राज्य सर्वाधिक विशाल तथा महत्वपूर्ण था। इस राज्य का क्षेत्रफल कुल रूस के क्षेत्रफल का तीन चौथाई थी और कुल जनसंख्या की दो-तिहाई जनसंख्या थी।

सोवियट संविधान (Soviet Constitution)—साम्यवादियों ने देश पर शासन करने के लिए सन् 1918 में एक संविधान स्वीकार किया। इस संविधान में सन् 1923, सन् 1936 तथा सन् 1977 में संशोधन किया गया तथा परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार इसका विस्तार

किया गया। औपचारिक दृष्टि से ये संविधान लोकतान्त्रिक हैं। यथार्थ में सर्वोच्च सत्ता साम्यवादी दल में निहित है। सर्वहारा दल के अधिनायकतन्त्र का अर्थ बोल्शेविकवादियों का अधिनायकतन्त्र है, जिनकी भर्ती मुख्य रूप से शहरों के श्रमिकों से की जाती है। साम्यवादी दल के अतिरिक्त अन्य कोई राजनीतिक दल रूस में रह ही नहीं सकता। साम्यवादी दल में व्यक्ति को मार्क्स एवं लेनिन के विचारों एवं सिद्धान्तों में अटूट आस्था रखनी पड़ती है। यही एकमात्र दल सरकारी पदों के लिए प्रत्याशियों का चुनाव करता है।

प्रत्येक नगर अथवा ग्रामीण जिले में श्रमिकों की सोवियट अथवा परिषद् थी। ये स्थानीय सोवियट प्रान्तीय सोवियटों में प्रतिनिधित्व के लिए अपने प्रतिनिधि चुनते थे, और इन प्रान्तीय सोवियटों में से सोवियटों की अखिल रूसी काँग्रेस का चयन किया जाता था, जिसमें सर्वोच्च सत्ता निहित थी। यह राष्ट्रीय काँग्रेस केन्द्रीय कार्यपालिका समिति का चयन करती थी, जो मन्त्रियों की परिषद् जो 'पीपुल्स कमिस्सार' (People's Commissars) के नाम से विदित थी, को चुनती थी। सोवियट चुनाव के लिए रूस के समस्त 18 वर्ष अथवा उससे अधिक उत्पादक श्रम द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले पुरुषों एवं महिलाओं को समान रूप से मताधिकार प्राप्त था। क्रान्तिकारी सैनिकों एवं नाविकों को भी मताधिकार प्राप्त था लेकिन पादरी वर्ग, कुलीन वर्ग एवं अधिकांश मध्यवर्गीय व्यक्ति मताधिकार से वंचित थे। मतदान प्रणाली भी कृषकों की अपेक्षा शिल्पकारों के लिए अपेक्षाकृत अधिक सहज और सुविधाजनक थी। अखिल रूसी काँग्रेस का इस प्रकार गठन किया गया था जिससे शहरों के प्रतिनिधियों का ग्रामीण प्रतिनिधियों पर वर्चस्व सुनिश्चित हो जाये। सन् 1922 में रूस के अनेक क्षेत्र जो उसने सन्धि के प्रावधानों के अन्तर्गत दे दिये थे, पुनः प्राप्त हो गये। अस्तु, समाजवादी सोवियट गणतन्त्रों के संघ (Union of Socialist Soviet Republics) के रूप में विदित संघ राज्य प्रणाली स्थापित की गयी। इसके प्रत्येक घटक का गणतन्त्र रूस के अनुरूप संविधान था। समस्त गणतन्त्र संघीय सरकार के अधीन परस्पर संगठित थे। संघीय सरकार में अखिल संघ काँग्रेस, केन्द्रीय कार्यपालिका एवं कमिस्सरों की परिषद् सम्मिलित थी।

साम्यवादी दल का संक्षेप में विवादों का निर्णय करने तथा निर्णयानुसार विरोधियों को समुचित दण्ड देने के लिए अपना असाधारण न्यायालय था। सन् 1922 से पूर्व 50,000 विरोधियों का वध किया गया। सन् 1923 में ओ. जी. पी. यू. (OGPU, The Soviet Secret Police) के तत्वाधान में इस प्रक्रिया को पुनर्जीवित किया गया। सोवियट गुप्त पुलिस को राजनीतिक अथवा आर्थिक क्षेत्र में क्रान्ति विरोधी गतिविधियों के लिए सन्देहास्पद स्थिति में किसी भी व्यक्ति को निरंकुशतापूर्वक पकड़ने, कारावास का दण्ड देने, निर्वासित करने अथवा मृत्यु-दण्ड देने का अधिकार प्राप्त था। "गोली मारना सामाजिक सुरक्षा का सर्वोत्कृष्ट उपाय है।"

दलीय संगठन के सर्वोच्च पद पर अधिनायक था। लेनिन प्रथम अधिनायक था। हेजन ने कहा है, "जूलियस सीजर के समय से इतिहास में सम्भवतः वह सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति था।" लेनिन सरकार में कमिस्सारों (प्रतिनिधियों, Commissars) की परिषद् का राष्ट्रपति तथा दल में पोलिट ब्यूरो का राष्ट्रपति था। इस प्रकार वह एक साथ दो पदों पर था। बोल्शेविकवाद राजनीतिक एवं आर्थिक आन्दोलन था। इसका राजनीतिक सिद्धान्त सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र है अर्थात् शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिकों का अधिनायक तन्त्र है।

यह श्रमिकों के अन्य किसी वर्ग को स्वीकार नहीं करता है। यह सर्वहारा वर्ग की सत्ता को चुनौती देने वाले अन्य समस्त वर्गों को समूल समाप्त कर देना चाहता है। बोल्शेविकवाद का अर्थ श्रमिक वर्ग का शासन है। राजनीतिक लोकतन्त्र नाम की कोई चीज नहीं है। इसका आर्थिक सिद्धान्त मार्क्सवादी समाजवाद पर आधारित है। पूँजीवाद पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त करना ही इसका मूल उद्देश्य है। इसका अर्थ व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन एवं भूमि एवं उत्पादन के समस्त उपकरणों का राष्ट्रीयकरण है। सन् 1922 तक लेनिन आंशिक रूप से शक्तिहीन हो गया था। परिणामस्वरूप ट्राटस्की तथा स्टालिन में कटु प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हो गयी। स्टालिन ने साम्यवादी दल पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लिया था। अतः सन् 1924 में लेनिन के देहावसान के उपरान्त वह स्वयं अधिनायक बन गया। ट्राटस्की को युद्ध की कमीसरियट (Commissariat) से पद-मुक्त कर दिया गया, दल से निकाल दिया गया तथा अन्ततोगत्वा परिस्थितियों ने उसे विदेश पलायन के लिए विवश कर दिया।

साम्यवादी अधिनायकतन्त्र का कृत संकल्प मुख्य उद्देश्य, मार्क्स द्वारा कठोर श्रमशील जनसमुदाय को दिये गये वचन के अनुसार, रूस में भौतिक तथा आर्थिक स्वर्ण युग की प्राप्ति था। पूँजीवाद को नष्ट कर देना चाहिए तथा लाभार्जन की प्रवृत्ति को समाप्त कर देना चाहिए।

सोवियट संघ में आर्थिक अव्यवस्था (Economic Dislocation in Soviet Union)—इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रयोग किये गये। "युद्ध साम्यवाद" के नाम से प्रसिद्ध नीति के अनुसार सन् 1918 में व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिग्रहण का आदेश दिया गया। औद्योगिक प्रतिष्ठानों, कारखानों तथा भूमि का समाजीकरण किया गया। अधिनायकतन्त्रीय साम्यवादी सरकार ने आन्तरिक तथा विदेशी, दोनों ऋणों को अस्वीकार कर दिया। औद्योगिक स्थिति भी गम्भीर थी। कारखानों और विशाल औद्योगिक प्रतिष्ठानों का राष्ट्रीयकरण करके श्रमिकों के संरक्षण एवं प्रबन्धन में दे दिया गया। कुछ ही श्रमिक प्रबन्धन में प्रशिक्षित थे। परिणामस्वरूप कारखानों एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों में अनुशासन एवं कुशलता का अभाव था। इसके अतिरिक्त श्रमिकों ने कठोर परिश्रम करके उत्पादन वृद्धि की प्रवृत्ति को अभिव्यक्त नहीं किया। अस्तु, उत्पादन में गिरावट आयी और मूल्यों में वृद्धि हो गयी। सरकार ने उद्योगों को कच्चे माल तथा अपेक्षित मशीनों के रूप में वित्तीय सहायता दी और उद्योगों ने अपना समस्त उत्पादन राज्य को दे दिया। राज्य ने इन उत्पादनों का समस्त देश में अन्य उद्योगों, सेना, ग्रामीणों में वितरण किया। युद्ध साम्यवाद की नीति अपेक्षानुसार सफल नहीं हुई। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन तथा उपभोग में विनाशकारी ह्रास हुआ। सन् 1920 में औद्योगिक उत्पादन युद्ध पूर्व के स्तर से 12 प्रतिशत कम हो गया।

इसके अतिरिक्त रेलवे प्रणाली के भंग हो जाने से स्थिति अत्यधिक विकट हो गयी। रेलवे द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं कृषकों से प्राप्त खाद्यान्न एक स्थान से अन्य स्थानों पर भेजा जाता था। खाद्यान्नों की कमी एवं निरन्तर गिरते हुए औद्योगिक उत्पादनों के कारण अत्यधिक असन्तोष एवं निराशा का वातावरण था। सर्वत्र उच्च स्वर में "सोवियट सरकार को हटाओ" (Down with the Soviet Government) का अधिकाधिक आह्वान हो रहा था। सन् 1921 में कोयले का उत्पादन शून्य हो गया। कृषकों को यथार्थ में साम्यवादी सिद्धान्तों से कोई मतलब नहीं था, और वे लाभ की पूँजीवादी प्रवृत्ति से कृषि करना चाहते थे, और अपने आवश्यकता से अधिक उत्पादन को सरकार को देने के लिए तत्पर नहीं थे। जब अधिकारियों

ने अतिरिक्त खाद्यान्न देने के लिए बाध्य किया, तब कृषकों ने उत्पादन कम करने का निश्चय किया। उनके निर्णय की सहायतार्थ भीषण सूखा पड़ गया और सन् 1921 का अकाल सर्वाधिक भीषण अकाल में एक था। कृषि उत्पादन 33 प्रतिशत कम हो गया था। लगभग 4 करोड़ व्यक्ति कुपोषण से पीड़ित थे और लगभग 50 लाख क्षुधा पीड़ित व्यक्ति काल के ग्रास बन गये। विदेशों की सहृदयता, विशेष रूप से अमेरिका की राहत समितियों से उदारतापूर्वक प्राप्त सहायता ने लाखों व्यक्तियों के जीवन की रक्षा की।

नई आर्थिक नीति (New Economic Policy)—युद्ध साम्यवाद की नीति की भीषण असफलता का अनुभव करते हुए लेनिन ने सन 1921 की बसन्त ऋतु से एन. ई. पी. (N.E.P.) के नाम से प्रसिद्ध नई आर्थिक नीति का शुभारम्भ किया। नीति परिवर्तन की अतीव आवश्यकता थी। मार्क्सवादी साम्यवाद से पीछे हटकर समाजवाद एवं पूँजीवाद के मध्य समझौता किया। कृषकों को अपनी कुल उपज का निश्चित प्रतिशत सरकार को देने के बाद लाभार्जन के लिए खुले बाजार में बेचने की अनुमति दे दी गयी। निजी क्षेत्र में छोटे उद्योग स्थापित करने की अनुमति दे दी गयी, परन्तु बैंकिंग, परिवहन तथा विशाल उद्योगों का पूर्व की भाँति समाजीकरण बना रहा। परिणामस्वरूप स्थिति में कुछ सुधार हुआ। सन् 1927 में कुल औद्योगिक उत्पादन सन् 1913 के स्तर तक पुनः पहुँच गया, यद्यपि लौह-अयस्क तथा खाद्यान्नों का उत्पादन सन् 1913 के स्तर से कम हुआ।

नगद पूँजी एवं लाभ बाँटने के लिए विशाल स्तरीय कृषि अभियान्त्रिकी परियोजनाओं में निवेश के उद्देश्य से विदेशी पूँजीपतियों को अनेक सुविधाएँ दीं, लेकिन परियोजनाओं के उत्पादों को खरीदने का विकल्प सरकार ने अपने पास रखा। कुछ निश्चित प्रावधानों के साथ व्यक्तिगत खुदरा व्यापार करने की अनुमति दी गयी थी, लेकिन प्रतिस्पर्द्धा के लिए सरकार ने अपने खुदरा विक्रय केन्द्र स्थापित किये और उपभोक्ता सहकारी समितियों को प्रोत्साहित किया।

यद्यपि नई आर्थिक नीति पूँजीवाद की ओर पूर्ण वापिसी नहीं थी, लेकिन मार्क्सवादी साम्यवाद से हटकर निश्चित रूप से थी, लेकिन लेनिन एवं अन्य साम्यवादी नेता इसको अस्थायी व्यवस्था मानते थे। इसके सुखद परिणाम हुए, और रूस को पूर्ण विनाश से बचाने के साथ-साथ बोल्शेविक सरकार को भी बचा लिया। **डेविड थामसन** ने आर्थिक नीति के विषय में विचार व्यक्त किया, "उसका नया कामचलाऊ प्रबन्ध नई आर्थिक नीति युद्ध साम्यवाद की नीतियों के विपरीत था।"

देश के आर्थिक विकास के लिए ठोस उपाय करने की अतीव आवश्यकता थी। साम्यवादी दल में दीर्घकालीन कटु विचार-विमर्श हुए। स्टालिन ने, लेनिन के सर्वमान्य उत्तराधिकारी बन जाने के बाद अधिकारीतन्त्रीय राज्य समाजवाद का सूत्रपात किया। उसने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सामूहिक कृषि तथा औद्योगीकरण के विकास को प्रोत्साहित किया। सन् 1928 से 1933 तक प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल में औद्योगिक उत्पादन दुगुना हो गया। विद्युत शक्ति आपूर्ति में तीन गुना वृद्धि हुई। अनेक नये उद्योग स्थापित किये गये। कृषि में मशीनों का प्रयोग किया गया परन्तु कृषि उत्पादनों में आशानुरूप वृद्धि नहीं हुई। **डेविड थामसन** ने आर्थिक नीति के परिणामों के सन्दर्भ में लिखा है, "इसके सर्वाधिक नाटकीय एवं दूरगामी परिणाम, लेनिन की नई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप सोवियट संघ का आर्थिक समुत्थान था।"

देश जटिल तथा भीषण आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त था। सोवियट सरकार ने अधिनायकतन्त्र को सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाने के लिए सार्वजनिक प्रचार साधनों का सर्वाधिक उपयोग किया। भिन्न राजनीतिक समूहों को समाप्त कर दिया गया। समाचार-पत्र केवल अनुमोदित साम्यवादी भावनाओं एवं विचारों को प्रकाशित कर सकते थे। विश्वविद्यालयों तथा विद्वत परिषदों को अधिनायकतन्त्र विरोधी विद्वानों तथा प्राध्यापकों से मुक्त कर दिया गया।

धार्मिक क्षेत्र में कठोर उपाय किये गये। राज्य एवं चर्च को सन् 1918 में ही एक-दूसरे से विलग कर दिया गया था। चर्च की समस्त सम्पत्ति का अधिहरण कर लिया गया था, और चर्च द्वारा संचालित विद्यालयों को बन्द कर दिया गया था। रूढ़िवादी चर्च तथा अन्य ईसाई संस्थाओं को व्यक्तिगत समुदायों का स्वरूप दे दिया गया। अनेक ईसाई पादरियों को निर्वासित कर दिया गया अथवा उनका वध कर दिया गया। सार्वजनिक रूप से धर्म की शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

दूसरी ओर सरकार ने निरीश्वरवादात्मक प्रचार को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया। ईश्वरविहीन एक सैन्यवादी समाज का उद्भव हुआ। धर्म विरोधी चित्रों तथा व्यंग चित्रों की स्थायी प्रदर्शनी की व्यवस्था की गयी। अनेक जन प्रदर्शनों का आयोजन किया गया। पादरियों के विरुद्ध क्रमबद्ध ढंग से निन्दा अभियान का संचालन किया गया तथा पादरियों को धार्मिक स्थलों तथा उत्सवों के अवसर पर अपमानित किया गया।

लेनिन ने कहा था, "हम सब कुछ नष्ट कर देंगे और अवशेषों पर हम अपने मन्दिर बनायेंगे। यह मन्दिर सबके सुख और समृद्धि के लिए होगा।" साम्यवाद स्वयं ही एक धर्म बन गया तथा इसने जनता को सुख, समृद्धि तथा सम्पन्नता का आश्वासन दिया। फ्रान्स की क्रान्ति के काल में जैकोबिनवाद भी रूस के साम्यवाद के अनुरूप सबको स्वीकार करने के लिए बाध्य करने वाला धर्म नहीं था। लेनिन अपनी परिवर्तित आर्थिक नीति का पूर्ण क्रियान्वयन नहीं देख सका। बोल्शेविक क्रान्ति के जनक एवं नये रूस के सृष्टा के रूप में उसका नाम इतिहास में अमर रहेगा। उसमें प्रेरक शक्ति, दृढ़ इच्छाशक्ति और साम्यवाद में अटूट आस्था थी। साथ ही राजनीतिक स्वार्थ परायणता सर्वोत्कृष्ट थी। अपनी आर्थिक नीति में परिवर्तन करके बोल्शेविक क्रान्ति एवं रूस को विनाश से बचा लिया था। सन् 1924 में लेनिन की मृत्यु के उपरान्त उसके नश्वर शरीर को औषधियों का लेप करके मास्को के लाल चौक (Red Square) में सार्वजनिक पूजा के लिए रखा गया। श्रमिकों के घरों तथा कृषकों की झोपड़ियों में, परम्परागत मोमबत्तियों के मध्य मूर्तियों के सदृश, लेनिन, मार्क्स तथा स्टालिन के चित्र दीवारों पर लगे हुए थे। साम्यवादियों ने लेनिन को देवत्व का स्थान प्रदान किया, और मास्को स्थित उसका मकबरा पवित्र स्थल एवं सार्वजनिक उपासना का प्रतीक बन गया। साम्यवाद का धर्म यद्यपि औपचारिक था परन्तु यह अत्यधिक गम्भीर तथा असहिष्णु था।

रूस की विख्यात लाल सेना, साम्यवादी प्रचार का एक अन्य प्रमुख साधन थी। श्वेत सेनाओं की पराजय के बाद प्रारम्भ में गठित लाल सेना को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया गया। सन् 1925 से आधुनिक सैन्य पद्धति पर आधारित लाल सेना का गठन किया गया। सन् 1935 में लाल सेना के तीन-चौथाई अधिकारी साम्यवादी दल के सदस्य थे अथवा इसके युवा संघ से सम्बद्ध थे।

रूस की क्रान्ति के कारण

सकारात्मक शास्त्रों में जब कभी कारण-कार्य सम्बन्ध का निष्कर्ष स्पष्ट हो जाता है, उस समय इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि एक भौतिक तथ्य का अनिवार्य रूप से अन्य परिणाम होता है। उदाहरणार्थ, 100 डिग्री तापक्रम पर उबलते हुए पानी का हवा का दबाव समुद्र की सतह के हवा के दबाव के समान होता है। इतिहास सहित समस्त सामाजिक शास्त्रों में इस प्रकार का कारण-कार्य निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है। किसी सामाजिक स्थिति में भौतिक तथ्यों को नियन्त्रित करने वाले सर्वमान्य विश्वव्यापी नियम का अभाव कारण-कार्य सम्बन्धों के निष्कर्षों को निकालने में सर्वाधिक बाधा है। दो मनुष्य अथवा दो जातियाँ अथवा दो समुदाय कभी भी एक समान नहीं होते हैं। सामाजिक घटनाओं तथा स्थितियों के लिए उत्तरदायी कारण-कार्य सम्बन्धों को निश्चित करना असम्भव होता है। दूसरी ओर सकारात्मक तथा प्राकृतिक शास्त्रों में समस्त भौतिक पदार्थ, जिनका प्रयोगशाला में परीक्षण किया जाता है, समस्त विश्व में एक समान होते हैं। उदाहरणार्थ—1 ग्राम कापर सल्फेट की स्थिति दिल्ली अथवा लन्दन में एक ही रहती है।

इस प्रकार की कठिन स्थिति में रूस की क्रान्ति के कारणों का पता लगाना अत्यधिक दुष्कर कार्य है। हम भौतिक तथ्यों की, जिन्होंने रूस की क्रान्ति के लिए वातावरण बनाया, व्याख्या कर सकते हैं, परन्तु किसी एक निश्चित कारण का, जिसके परिणामस्वरूप क्रान्ति हुई, उल्लेख नहीं कर सकते हैं।

रूस की क्रान्ति के लिए उत्तरदायी किसी एक कारण की पहचान करने में असमर्थ होने के उपरान्त भी हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अनके गौण कारणों के अतिरिक्त कुछ निश्चित मूलभूत कारण भी हैं। मूलभूत कारणों में कुछ की सर्वाधिक भूमिका थी, यद्यपि मार्क्सवादियों ने व्यक्तियों के किसी ऐतिहासिक घटना से सम्बद्ध होने की अपेक्षा, उस युग अथवा तत्कालीन वातावरण पर अधिक बल दिया है। रूसी क्रान्ति के कारण अनेक दृष्टियों से अठारहवीं शताब्दी में फ्रान्स की क्रान्ति के अनुरूप ही थे।

श्रमिकों का असन्तोष (Dis-satisfaction among Labours)

अलेक्जेण्डर द्वितीय (सन् 1858-1881) के अन्तिम वर्षों में तथा अलेक्जेण्डर तृतीय (सन् 1881-1894) के शासनकाल में रूस में औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गयी। विशाल नगरों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई, और बड़ी संख्या में औद्योगिक कारखाने स्थापित किये गये। पूँजीपति तथा श्रमिक वर्गों का अभ्युदय हुआ। परिणामस्वरूप श्रमिकों के कठोर अभावहीन जीवन से अनेक नवीन समस्याओं का आविर्भाव हुआ। श्रमिकों की नगरों में जीवन-शैली अत्यधिक अभावग्रस्त थी। रूस के ग्रामों से अभावग्रस्त दीनहीन कृषकों के नगरों की ओर पलायन तथा विदेशी पूँजी निवेश से समस्याएँ अत्यधिक विकट हो गयीं। विदेशी पूँजीपतियों ने कृषकों की असहाय तथा दयनीय स्थिति का अपने लाभ के लिए अधिकाधिक शोषण किया। इन श्रमिकों से न्यूनतम वेतन पर अधिकाधिक कार्य लिया जाता था। उनको प्रतिदिन 12 घण्टे कठोर काम करना पड़ता था, परन्तु प्राप्त वेतन जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं था। श्रमिक शुद्ध वायु तथा प्रकाश से मुक्त विभिन्न घातक रोगों के केन्द्र गन्दी बस्तियों में कुंठाग्रस्त जीवन निर्वाह के लिए विवश थे। रूस के श्रमिकों की दयनीय स्थिति अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के श्रमिकों के अनुरूप ही थी। समाजवाद के पवित्र संदेश का पीड़ित

सर्वहारा वर्ग ने हृदय से स्वागत किया। मार्क्स के विचार एवं सिद्धान्त उन्नीसवीं शताब्दी में ही लोकप्रिय हो चुके थे। टाल्सटाय, तुर्गनेव, डोस्तोइवस्की तथा मैक्सिमगोर्की बाकुनिन आदि उग्रसुधारवादी उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में समाज में व्याप्त विषमताओं तथा अभावग्रस्त दीनहीन श्रमिकों की मर्मस्पर्शी पीड़ाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करके जनसमुदाय में राजनीतिक चेतना का संचार किया। समाजवादी विचारों तथा सिद्धान्तों ने श्रमिकों तथा देश के बुद्धिजीवियों ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा उग्र राजनीतिक सुधारों के लिए प्रबल आग्रह किया। इसी अवधि में शून्यवाद का भी आविर्भाव हुआ। इसने प्राचीन परम्पराओं तथा मान्यताओं का उन्मूलन करने का प्रयास किया। शून्यवाद समाप्त हो गया, लेकिन समाजवाद का विकास हुआ।

सन् 1883 के उपरान्त मार्क्स के विचारों एवं सिद्धान्तों का उपन्यासकार मैक्सिमगोर्की ने समाजवादी विचारधारा के रूप में तीव्र गति से प्रचार और प्रसार किया। सन् 1895 में अन्य देशों के समाजवादियों के अनुरूप सिद्धान्तों तथा कार्यक्रमों के साथ "वर्कमैन्स सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी" स्थापित की गयी। मध्यवर्गीय उग्र सुधारवादियों के नेतृत्व में कृषकों ने शहरों के सर्वहारा वर्ग का अनुकरण किया, और सन् 1901 में सामाजिक क्रान्तिकारी दल (Social Revolutionary Party) का गठन किया। यह दल समस्त कृषकों को संगठित कर समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहता था। इस दल का मुख्य कार्यक्रम कुलीनवर्ग के विशाल भू-क्षेत्रों का अधिहरण करके छोटे कृषकों में विभाजित करना था। यह आतंकवाद को अपना मूल अस्त्र मानता था। इस प्रकार क्रान्तिकारी आन्दोलन का शुभारम्भ हुआ। इसका उद्देश्य समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित रूस का सामाजिक एवं राजनीतिक पुनर्निर्माण करना था। आतंकवादी कार्यक्रम बनाये तथा अनेक हत्याएँ कीं। सन् 1903 में सामाजिक लोकतान्त्रिक दल, दलीय अनुशासन, कार्यक्रमों तथा भावी रणनीति के प्रश्न पर दो दलों में विभाजित हो गया, और इसके उग्र सुधारवादी वर्ग का लेनिन के नाम से विख्यात व्लीदीमीर उलीनव (Vladimir Ulianov) ने नेतृत्व किया। यह वर्ग बोल्शेविक (बहुमत दल) के नाम से विख्यात हुआ। विभाजन के विषयों पर इनका बहुमत था। दल का अधिक नरमदल मैनशेविक (अल्पमत दल) के नाम से प्रसिद्ध था। दल के रूप में बोल्शेविक, संख्या की दृष्टि से मैनशेविकों से बहुत कम थे। बोल्शेविक उग्र सुधारवादी उपायों के प्रबल समर्थक थे, और प्रथम प्राप्त अवसर पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र स्थापित करने के लिए उत्सुक थे। इसके लिए शक्ति का प्रयोग करने तथा हिंसात्मक कार्यवाही करने के लिए तत्पर थे। वे श्रमिकों के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ग को मान्यता नहीं देते थे, और मध्यवर्गीय राजनीतिक दलों के साथ किसी प्रकार का सहयोग करने के विरुद्ध थे। इसके विपरीत मैनशेविकों के विचारों, कार्य-प्रणाली तथा सामाजिक सुधारों में उग्र दृष्टिकोण का अभाव था। वे मन्द गति से शनैः-शनैः समाजवाद की विजय के लिए प्रतीक्षा करने के लिए तत्पर थे। रूस में निरंकुशतन्त्र को अपदस्थ करने के लिए अन्य राजनीतिक दलों के साथ सहयोग करने के लिए भी तैयार थे।

आर्थिक एवं सामाजिक विषमता (Economic and Social Disparity)

रूस में सामाजिक व्यवस्था फ्रान्स में सन् 1789 की क्रान्ति के अनुरूप ही थी। समस्त समाज उच्च तथा निम्न वर्गों में विभाजित था और दोनों में अत्यधिक विषमता थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक रूसी समाज में कुलीनों तथा पद-दलित कृषि दासों के दो वर्ग थे। विशेषाधिकार प्राप्त कुलीन वर्ग में ज़ार के कृपा पात्र सम्मिलित थे। यह वर्ग अत्यधिक धनवान

एवं सम्पन्न था। राज्य के अधिकांश महत्वपूर्ण पदों तथा अधिकांश भूमि पर इस वर्ग का अधिकार था। दूसरी ओर अधिकारहीन, पद-दलित कृषि दासों का वर्ग था। इसकी आर्थिक स्थिति जंगल काटने वाले तथा पानी खींचने वाले दासों की अपेक्षा अच्छी नहीं थी। इनको कुलीन वर्ग के विभिन्न अमानुषिक अत्याचारों को सहन करना पड़ता था। दास-प्रथा के उन्मूलन के बाद भी इनकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। अत्यधिक दयनीय आर्थिक स्थिति, प्राकृतिक विपत्तियों के कारण भीषण धन-जन की क्षति तथा जारवादी सरकार द्वारा किसी प्रकार की आर्थिक सहायता देने से मना करने के कारण, इन कृषि दासों में अत्यधिक असन्तोष था। प्रथम विश्व युद्ध काल में सेना में भर्ती कृषकों की पीड़ाएँ एवं कष्ट असहनीय थे। वे किसी भी आन्दोलन, जो उनको पीड़ाओं तथा कष्टों से मुक्त कराने का वचन दे, के साथ सक्रिय सहयोग करने के लिए सहर्ष तत्पर थे।

रूसीकरण की नीति (The Policy of Russification)

रूस की कुल जनसंख्या में विभिन्न जातियों, धर्मों तथा भाषाओं के लोग सम्मिलित थे। यहूदी, पोल, फिन, उजबेक, तातार, कजाक, अर्मीनियावासी आदि की अपनी संस्कृति, सभ्यता, आस्थाएँ, मान्यताएँ एवं परम्पराएँ थीं। बहुसंख्यक रूस के मूल लोगों को अल्पसंख्यकों के साथ कोई सहानुभूति नहीं थी। इन अल्पसंख्यकों के विरुद्ध जार अलेक्जेण्डर तृतीय के काल में रूसीकरण की नीति "रूस रूसवासियों के लिए" को कठोरता तथा निर्ममता-पूर्वक कार्यान्वित किया गया। अल्पसंख्यकों पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। इनकी भाषाओं पर प्रतिबन्ध लगाये गये। इनकी सम्पति का अधिहरण कर लिया गया। सन् 1905 में जार्जिया, पोलैण्ड तथा बाल्टिक क्षेत्र में भीषण विद्रोह हुए। निकोलस द्वितीय ने अमानुषिक अत्याचारों द्वारा इन विद्रोहों का दमन कर दिया। इनमें सर्वत्र असन्तोष व्याप्त था। असन्तोष के विभिन्न तत्वों के परिणामस्वरूप उदारवादी तथा समाजवादी दो प्रकार के आन्दोलन हुए। ये दोनों साथ-साथ विकसित हुए और अत्यधिक शक्तिशाली बन गये।

कृषकों की दयनीय स्थिति (Deplorable Condition of the Peasants)

रूस यद्यपि कृषि प्रधान देश था, परन्तु कृषकों की स्थिति सदैव अत्यधिक दयनीय ही रही। जार अलेक्जेण्डर द्वितीय ने सन् 1861 में कृषि दासों को मुक्त करने की घोषणा की, परन्तु कृषकों की आर्थिक स्थिति में आशातीत सुधार नहीं हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक 30,000 बड़े भू-स्वामियों के पास 1,800 लाख एकड़ कृषि भूमि थी जबकि लगभग 1 करोड़ कृषकों के पास केवल 1,900 लाख एकड़ भूमि थी। रूस की कुल कृषक जनसंख्या के एक-तिहाई कृषक भूमिहीन थे। कृषि पुरानी परम्परागत पद्धति से होती थी। अधिकांश भूमिहीन कृषिकों को भू-स्वामियों की भूमि पर बिना पारिश्रमिक के काम करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त इन्हें अनेक प्रकार के करों का भुगतान भी करना पड़ता था। परिणामस्वरूप कृषकों को दोनों समय का भोजन भी नहीं मिलता था। सन् 1902 में हारकोवा तथा पोल्टावा के कृषकों ने शासन के विरुद्ध विद्रोह किया। सामाजिक क्रान्तिकारी दल ने कृषकों में व्याप्त असन्तोष तथा आक्रोश को सशस्त्र संघर्ष के लिए उत्तेजित किया। सन् 1905 में यूक्रेन के दक्षिण-पश्चिमी भाग, काकेशस, पोलैण्ड तथा वोल्गा नदी के तटीय क्षेत्र में कृषकों के अनेक विद्रोह हुए। इसी वर्ष मास्को में कृषक प्रतिनिधियों का सम्मेलन आयोज़ित किया गया और इसमें 'रूसी कृषक संघ' बनाने का निश्चय किया गया। सन् 1906 में विधि द्वारा कृषकों को 'कम्यून' (समुदाय) से अपनी भूमि अलग करने का अधिकार दिया गया। 1910 के

भू-अधिनियम के अन्तर्गत कृषकों को अपनी भूमि का समीकरण (Consolidation) का भी अधिकार मिल गया, परन्तु भूमिहीन कृषकों की समस्याओं का निदान नहीं हो सका।

उदारवादी तथा समाजवादी बुद्धिजीवियों का योगदान (Contribution of the Liberals and Socialist Inteligentia)

फ्रान्स के अनुरूप रूस में वास्तविक क्रान्ति से पूर्व औद्योगीकरण के कारण नगरों तथा नगरों की जनसंख्या के साथ ही जनसमुदाय की भावनाओं तथा विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुका था। रूस के जारों ने रूस में उदारवादी तथा पाश्चात्य देशों के विचारों के प्रचार एवं प्रसार को रोकने का अथक प्रयास किया, परन्तु जनसमुदाय पाश्चात्य यूरोपीय विचारों से प्रभावित हो चुका था। परिणामस्वरूप एक आन्दोलन का बीजारोपण हो गया था, जो अन्ततोगत्वा तत्कालीन निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन के लिए घातक सिद्ध हुआ। फ्रान्स के अनुरूप ही पाश्चात्य विचारों, भावनाओं तथा सिद्धान्तों को साहित्यिक कृतियों में अभिव्यक्त किया गया। टाल्सटाय, तुर्गनेव, दास्तावेस्की (Dostoievsky) के महान् उपन्यासों ने रूस के युवाओं की भावनाओं को उद्वेलित किया। 'प्रबुद्ध वर्ग' के नाम से विख्यात, समाज के उदारवादी तथा शिक्षित वर्ग ने पाश्चात्य विचारों तथा सिद्धान्तों के आधार पर राजनीतिक सुधारों का आग्रह किया, परन्तु मार्क्स तथा बाकुनिन से प्रेरित बुद्धिजीवियों ने समाजवाद तथा अराजकतावाद का प्रचार किया। इसके परिणामस्वरूप ही शून्यवाद का विकास हुआ, जिसका मुख्य उद्देश्य रूस की तत्कालीन व्यवस्था का पूर्ण विनाश था। नवोदित उदारवाद का पूँजीवादियों तथा मध्यवर्गीय शिक्षित वर्गों ने प्रबल समर्थन किया, परन्तु उनके विचारों में प्रबुद्ध वर्ग की अपेक्षा उग्रता का अभाव था। बुद्धिजीवी संवैधानिक सरकार की स्थापना द्वारा निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन पर अंकुश लगाना चाहते थे।

निरंकुश शासन तथा दमनकारी प्रवृत्तियाँ (Autocratic Rule and Refreasive Measures)

अलेक्जेण्डर प्रथम के शासनकाल से ही रूस के जार की निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन एवं दैवी अधिकार सिद्धान्त में अटूट आस्था थी। प्रारम्भ में अलेक्जेण्डर प्रथम ने उदार नीति का अनुसरण किया था, परन्तु पोलैण्ड के विद्रोह तथा अन्य बाह्य प्रभावों के कारण वह पुनः प्रतिक्रियावादी हो गया था। जार अलेक्जेण्डर द्वितीय (सन् 1858 से सन् 1881) का जनसमुदाय के प्रति उदार दृष्टिकोण था। उसने सन् 1861 में कृषक दासों की मुक्ति की घोषणा तथा अन्य स्थानीय स्वशासन सम्बन्धी सुधार किये, परन्तु कुलीन वर्ग के विरोध के कारण उसे प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण स्वीकार करना पड़ा। उसी के काल में क्रान्तिकारी तथा आतंकवादी संस्थाएँ स्थापित हो गयी थीं। इन्हीं आतंकवादियों ने सन् 1881 में बम विस्फोट द्वारा अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या कर दी। अलेक्जेण्डर द्वितीय मुक्तिदाता जार के रूप में विख्यात था। उसके निधन से रूस में सुधारों की प्रक्रिया को गहरा आघात पहुँचा, और देश में अविस्मरणीय प्रतिक्रियावादी युग का सूत्रपात हुआ जिसने प्रतिकार स्वरूप क्रान्तिकारी आन्दोलनों को उत्तेजित किया। परिणामस्वरूप रूस का आन्तरिक इतिहास जारवादी सरकार तथा उदारवादी एवं क्रान्तिकारी शक्तियों के मध्य संघर्ष की कहानी बन गया।

अलेक्जेण्डर द्वितीय की निर्मम हत्या के बाद उसका पुत्र अलेक्जेण्डर तृतीय सिंहासनारूढ़ हुआ। उसमें अपने पिता के अनुरूप सहानुभूति तथा सहृदयता का सर्वथा अभाव था। उसका दृष्टिकोण संकुचित था, और उसके विचार मध्यकालीन थे। अस्तु, वह अत्यधिक

कठोर प्रतिक्रियावादी था एवं नवीन शक्तियों के प्रति अविश्वास की भावना थी। उसका दृढ़ विश्वास था कि रूस का पुनरुत्थान संसदीय संस्थाओं तथा पाश्चात्य उदारवादी विचारों की अपेक्षा रूस के स्थानीय महान् सिद्धान्तों द्वारा ही सम्भव था। निरंकुशता, रूढ़िवादिता तथा स्लाव राष्ट्रवाद रूस के महान् सिद्धान्त थे। पवित्र सिनोड (Synod) का राज्यपाल पोबीडोनोस्टेव (Pobeydonostsev) जार के विचारों तथा दृष्टिकोण का प्रबल समर्थक था। उसने वास्तविक प्रतिक्रियावादी दर्शन का विकास किया। उसने मत व्यक्त किया कि पाश्चात्य यूरोप की सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ अनिवार्य रूप से अहितकर थीं, और रूस की परम्पराओं तथा मान्यताओं के प्रतिकूल थीं। अस्तु, रूस में उनको प्रयुक्त करना सम्भव नहीं था। रूस का आदर्श 'एक जार, एक चर्च, एक रूस' होना चाहिए। यह आदर्श ही रूस को अराजकता तथा पश्चिमी यूरोप के संदेहवाद से बचा सकता था। रूस का अधिकांश अशिक्षित जनसमुदाय रूढ़िवादी था, अस्तु, जार की नीति कुछ काल तक सफल हुई।

अलेक्जेण्डर तृतीय ने सर्वप्रथम अराजक तत्वों की ओर ध्यान दिया। उसके पिता के हत्यारों को मृत्यु दण्ड दिया गया अथवा साइबेरिया भेज दिया गया। अन्य शून्यवादियों तथा आतंकवादियों को उत्साह के साथ पकड़ा गया। प्रशासनिक कार्यवाही इतनी कठोर थी कि क्रान्तिकारी प्रचार कुछ काल के लिए शान्त हो गया। प्रेस पर अंकुश लगा दिया। विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकों पर कठोर निगरानी की गयी। सन् 1890 में जैम्स्टवो (Zemstvo) (रूस में एक जिला एवं प्रान्तीय विधान सभा थी। इसको सन् 1866 में जिले तथा प्रान्त का आर्थिक विषयों का प्रशासन दिया गया था।) के अधिकारों को बहुत कम कर दिया गया। जनता के प्रति जार ने रूसीकरण की नीति को कार्यान्वित किया। वह गैर-रूसी जनता (जैसे फिन् तथा पोल) के विशेषाधिकारों को समाप्त करके एकरूपीय वातावरण तथा परिस्थितियाँ बनाना चाहता था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि उसके साम्राज्य के प्रत्येक भाग में एक भाषा, एक धर्म तथा एक कानून हो। हर मूल्य पर देश में एकरूपता स्थापित करनी थी, और भिन्न-भिन्न धर्मों तथा महत्वहीन भाषाओं को समाप्त करना था। दक्षिण के प्रोटेस्टेंट अनुयायियों की निर्दयतापूर्वक हत्याएँ की गयीं। उपदेशों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हर प्रकार की भिन्नता का निर्ममतापूर्वक दमन किया। पोल, बाल्टिक प्रान्तों के जर्मन तथा फिन को अनेक यातनाएँ दी गयीं। इनमें यहूदियों को सर्वाधिक कष्ट तथा पीड़ाएँ दी गयीं। उनको पश्चिम के कुछ निश्चित नगरों तक सीमित रखा गया, स्थानीय सरकार तथा शिक्षा से आंशिक रूप से वंचित किया गया। कृषि व्यवसाय पर प्रतिबन्ध था, वे भू-स्वामी नहीं बन सकते थे। संगठित रूप से उन पर आक्रमण किये जाते थे। उनकी सम्पत्ति को लूटा जाता था तथा घरों में आग लगा दी जाती थी। इन समस्त गतिविधियों में सरकार का अप्रत्यक्ष सहयोग तथा समर्थन रहता था। अलेक्जेण्डर तृतीय के कठोर निर्दयतापूर्ण निरंकुशतावाद तथा दमनकारी नीतियों के कार्यान्वयन से चाटुकारों, सभासदों तथा कुलीन वर्गों के अतिरिक्त समाज के समस्त वर्ग पीड़ित थे।

अलेक्जेण्डर तृतीय के निधन के बाद उसका पुत्र निकोलस द्वितीय रूस का अन्तिम जार सिंहासनारूढ़ हुआ। उसकी निरंकुशतावाद में अटूट आस्था थी, और उसको पूर्ववत् बनाये रखने के लिए वह कृत संकल्प था। अस्तु, उसने अपने पिता की दमनकारी नीतियों को पूर्ववत् कार्यान्वित किया। वह दुर्बल था तथा दृढ़ निश्चय का उसमें अभाव था। वह शीघ्र ही जरीना के अनुत्तरदायी प्रभावों से ग्रस्त हो गया। जरीना स्वयं रासपुटिन नामक

दुष्टात्मा से सर्वाधिक प्रभावित थी। यथार्थ में निकोलस द्वितीय में निरंकुश शासक के गुणों का सर्वथा अभाव था। उसका प्रतिक्रियावादी दार्शनिक पोवीडोनोस्टेव (Pobeydonostsev) तथा प्रतिक्रियावादी निरंकुशता के साकार रूप प्लेहेव (Plehve) में अटूट विश्वास था। परिणामस्वरूप दुर्बल शासक के अधीन सरकार असाधारण रूप से दमनकारी हो गयी। उदारवाद के प्रत्येक लक्षण को तत्काल नष्ट कर दिया गया। यहूदियों के विरुद्ध अधिनियम को कठोरता से कार्यान्वित किया गया, और सामूहिक हत्याओं (Pograms) की घटनाओं में पर्याप्त वृद्धि हो गयी। अधिकांश बुद्धिजीवी क्रान्तिकारियों को निर्ममतापूर्वक उत्पीड़ित किया गया। फिनलैण्ड में भी संविधान को समाप्त कर दिया तथा देश में रूसीकरण की प्रक्रिया को कठोरता के साथ कार्यान्वित किया गया। गुप्तचरों की एक विशाल सेना का गठन किया गया। कोई भी व्यक्ति बन्दी बनाये जाने, निर्वासन तथा अन्य दण्ड से सुरक्षित नहीं था। सर्वत्र मर्मान्तक पीड़ा, कुंठा, असन्तोष तथा आक्रोश का वातावरण था।

दमनकारी निरंकुश शासन के परिणामस्वरूप भावी जन विस्फोट, जिसने जारवादी शासन को अन्ततोगत्वा समूल नष्ट कर दिया, के स्पष्ट संकेत मिलने लगे। निकोलस के सिंहासनारूढ़ होते ही जैम्स्टवों (रूस में एक जिला एवं प्रान्तीय विधान सभा थी जिसको सन् 1866 में जिले तथा प्रान्त का आर्थिक प्रशासन दिया गया था।) ने परस्पर सहयोग करना आरम्भ कर दिया तथा विभिन्न क्षेत्रों में अधिक स्वतन्त्रता का आग्रह किया। उन्होंने सरकार के ऊपर इतना दवाव डाला कि विट्टे ने आवश्यक सुधारों के लिए अनेक कृषि समितियों का गठन किया। इन समितियों ने प्रतिनिधि सरकार प्रेस की स्वतन्त्रता तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं की स्वीकृति के लिए अनुशंसा की। समितियों की अनुशंसाएँ तत्कालीन संस्थाओं के विरुद्ध थी, विट्टे को इनके लिए दोषी मानकर सन् 1903 में पदमुक्त कर दिया गया। निरंकुशता अपने चरमोत्कर्ष पर थी, और प्लेहेव ने तत्कालीन उदार तथा उग्र सुधारवादी जन भावनाओं को दमन करने के लिए अथक प्रयास किया।

जनता कुछ काल तक विस्फोट की प्रतीक्षा में शान्त रही। सन् 1904 में रूस-जापान का सशस्त्र युद्ध आरम्भ हो गया। अकुशल तथा अयोग्य सेनाधिकारियों ने युद्ध का संचालन किया। प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा अधिकारियों की अयोग्यता के समाचारों ने देश को उत्तेजित कर दिया। युद्ध के विभिन्न क्षेत्रों में रूस की निरन्तर पराजय के समाचारों से समस्त राष्ट्र उदात्त राष्ट्रीय भावनाओं से उत्तेजित हो गया। जनता ने रूस की पराजयों के लिए निरंकुशता को ही दोषी माना, और प्रतिक्रियावादी निरंकुशता के साकार रूप प्लेहेव की नृशंस हत्या कर दी। जेम्स्टवों ने उदारवादी सुधारों की माँग की, और इन माँगों के समर्थन में श्रमिकों ने नगरों में सामूहिक आन्दोलन किये। जार पूर्ववत् आन्दोलनों तथा हड़तालों का दमन करता रहा। सन् 1905 में हड़ताल में सम्मिलित जनसमूह प्रतिष्ठित ईसाई पादरी गेपोन (Gapon) के नेतृत्व में जार निकोलस द्वितीय को प्रतिवेदन देने जा रहा था कि मार्ग में सैनिकों ने अमानुषिक गोली वर्षा की। सैकड़ों व्यक्ति हताहत हो गये, और यह दिन रूस के इतिहास में 'लाल अथवा रक्तपूर्ण रविवार' (Red or Bloody Sunday) के नाम से विख्यात है। इस घटना ने समस्त जनता को अत्यधिक उत्तेजित कर दिया, चारों ओर असन्तोष एवं अशान्ति थी। कृषकों ने भू-स्वामियों तथा पुलिस अधिकारियों को लूटना एवं उनकी हत्या करना आरम्भ कर दिया। मास्को में जार के चाचा ड्यूक सर्ज की हत्या कर दी गयी, और सेना एवं नौ-सेना ने विद्रोह कर दिया। जारवाद की आधारशिला ध्वस्त होने लगी।

सार्वजनिक असन्तोष तथा अशान्ति से भयभीत होकर जार ने विरोधी पक्षों के साथ शान्ति स्थापित करने का प्रयास किया। सुधारों के सम्बन्ध में परामर्श के लिए उसने ड्यूमा अथवा संसद का आह्वान करने की घोषणा की। उसने प्रतिक्रियावादी मन्त्रियों को पदमुक्त कर दिया, विट्टे को पुनः प्रधानमन्त्री नियुक्त किया और सन् 1905 में विख्यात अक्टूबर घोषणा-पत्र को प्रचलित किया। इसमें धार्मिक स्वतन्त्रता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और समुदाय गठन करने की स्वतन्त्रता का आश्वासन था। व्यापक मताधिकार के आधार पर ड्यूमा के गठन का प्रावधान था तथा विधि निर्माण की शक्तियाँ इसमें निहित होनी थीं।

मई, 1906 में अत्यधिक उत्तेजित वातावरण में ड्यूमा का अधिवेशन आरम्भ हुआ, परन्तु संवैधानिक सरकार स्थापित करने का प्रयास विफल हो गया। देश तथा विभिन्न दलों में परस्पर उग्र मतभेद थे। क्रान्तिकारियों में एकता का अभाव था, और संवैधानिक सरकार के प्रश्न पर मतभेद थे। अक्टूबरवादियों के नाम से विख्यात उदारवादी, जार द्वारा अक्टूबर के घोषणा-पत्र में घोषित सुधारों से सन्तुष्ट थे, और जार की स्वैच्छिक सहमति पर आधारित संवैधानिक सरकार के समर्थक थे। संवैधानिक लोकतान्त्रिक दल (Constitutional Democratic Party) के नाम से विख्यात उग्र समूह सार्वजनिक प्रभुसत्ता के सिद्धान्त पर आधारित प्रतिनिधि सरकार के साथ उत्तरदायी सरकार की माँग कर रहा था। इसके अतिरिक्त कुछ समाजवादी वर्ग भी सहयोग कर रहे थे। इन विभिन्न समूहों ने परस्पर संघर्षों में अपनी शक्ति को नष्ट किया एवं सरकार ने मतभेदों का लाभ उठाकर प्रस्तावित संसद के द्वितीय सदन का गठन किया। इसमें अधिकांश सदस्य रूढ़िवादी तथा निरंकुशता समर्थक थे। इस सदन ने एक विधेयक पारित करके जार को निरंकुश बना दिया। संसद की प्रतिनिधि सभा शक्तिहीन थी और जब इसने मन्त्रिपरिषद् पर नियन्त्रण करने का प्रयास किया, इसको अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने के आरोप में भंग कर दिया गया। संवैधानिक लोकतान्त्रिक दल के सदस्य अत्यधिक हताश थे, और उन्होंने फिनलैण्ड में स्थित विबोर्ग से घोषणा-पत्र प्रचलित किया। इसमें रूस की जनता से करों का भुगतान नहीं करने तथा सरकार को सैनिक सेवा करने से मना करने के लिए आग्रह किया गया। क्रान्ति की उत्तेजना समाप्त हो चुकी थी, इस कारण घोषणा-पत्र का कोई प्रभाव नहीं हुआ। परिणामस्वरूप सरकार ने पूर्वापेक्षा अधिक क्रूरतापूर्वक क्रान्तिकारियों तथा हस्ताक्षरकर्ताओं का दमन किया।

मार्च, 1907 में द्वितीय ड्यूमा का अधिवेशन हुआ, परन्तु सदस्यों तथा मन्त्रिपरिषद् में पूर्व की भाँति तीव्र मतभेदों के कारण चार माह बाद इसे भी भंग कर दिया गया। नवम्बर, 1907 में संशोधित निर्वाचन कानून के आधार पर तीसरी ड्यूमा का गठन किया गया। इसमें मताधिकार को बहुत सीमित कर दिया गया था। परिणामस्वरूप इसमें अधिकांश सदस्य रूढ़िवादी तथा सरकार की क्रूर दमनकारी नीतियों के समर्थक ही थे। इसका स्वरूप विधि निर्मात्री सभा की अपेक्षा परामर्शदात्री समिति का था। सन् 1912 में तृतीय ड्यूमा का कार्यकाल समाप्त होने के बाद चतुर्थ ड्यूमा का गठन हुआ। इसका राजनीतिक स्वरूप तृतीय ड्यूमा के अनुरूप ही था। इसके सदस्यों में राजनीतिक लोकतन्त्र के अंकुर विद्यमान थे। अस्तु, उन्होंने ड्यूमा में राष्ट्रीय एवं लोकतान्त्रिक विचारों तथा भावनाओं को अभिव्यक्त किया। इस प्रकार रूस में स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष समाप्त हो गया।

सन् 1907 से प्रतिक्रियावादी तत्वों का पूर्ण नियन्त्रण हो गया और निरंकुशता तथा क्रूर दमनकारी प्रवृत्तियाँ अपने चरमोत्कर्ष पर थीं। रूस के बिस्मार्क के रूप में विख्यात

स्टोलीपिन (Stolypin) को सन् 1906 में रूस का प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया। उसने निरंकुश सरकार के साथ सुधारों का समन्वय करने का प्रयास किया। वह निरंकुश प्रशासनिक व्यवस्था के साथ ड्यूमा को क्रान्ति का केन्द्र बनाने की अपेक्षा सरकार का सहयोगी बनाना चाहता था। उसने उपद्रवों तथा अराजकता का क्रूरतापूर्वक दमन किया, परन्तु श्रमिक वर्गों के साथ शान्ति स्थापित करने का भी प्रयास किया। उसने कृषकों को मीर अथवा ग्राम समुदाय से विलग होकर अपनी कृषित भूमि का भू-स्वामी बनने की अनुमति दी। उसने श्रमिक संघों को वैध घोषित कर दिया। उसने श्रमिकों की सामान्य बीमा योजना का भी सूत्रपात किया, परन्तु सन् 1913 में उसका वध कर दिया गया, और उसकी मृत्यु से निरंकुशता का विश्वसनीय उपकरण एवं प्रबल समर्थक का अन्त हो गया। **इस प्रकार निकोलस द्वितीय की स्वयं की विकृत स्थिति तथा दीर्घकाल से संचित नवोदित शक्तियों की अन्तर्निहित शक्ति के प्रति उसकी पूर्ण उदासीनता एवं उपेक्षा रूस की क्रान्ति का प्रमुख कारण थी।**

स्मरणीय है कि रूस-जापान युद्ध में रूस की अपमानजनक पराजय ने रूस में जारवादी शासन की आधारशिला को विचलित कर दिया था, परन्तु प्रथम विश्व युद्ध ने जारवादी शासन को समाप्त ही कर दिया। इस युद्ध ने एक बार पुनः रूस के क्रूर निरंकुश शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा अधिकारीतन्त्र की अकुशलता एवं अयोग्यता को अभिव्यक्त किया तथा जनसमुदाय में संचित असन्तोष और आक्रोश को उत्तेजित किया। युद्ध ने उन सबको समाप्त करने, जिनका सुधार नहीं किया जा सकता था, का अनुकूल एवं उपयुक्त अवसर दिया। रूस पूर्ण उत्साह के साथ प्रथम विश्व युद्ध में सम्मिलित हुआ था, और प्रारम्भ में उसको कुछ सफलता भी मिली थी, परन्तु शीघ्र ही उसका मोहभंग हो गया। सन् 1915 में अनेक स्थानों पर जर्मनी द्वारा पराजय ने अधिकारियों की अयोग्यता, अकुशलता तथा सैनिकों के पास आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों के अभाव को स्पष्ट कर दिया। इन पराजयों से राष्ट्रीय प्रतिष्ठा एवं गौरव को गहरा आघात पहुँचा था। जार निकोलस द्वितीय स्वयं दुर्बल था, और अनेक अयोग्य, अकुशल, बेईमान तथा भ्रष्ट मन्त्रियों के संकेतों पर कार्य कर रहा था। निरंकुश शासन परिस्थितियों के अनुरूप चतुरता एवं कुशलतापूर्वक कार्य करने में असमर्थ था। जनता तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था से अत्यधिक क्षुब्ध थी। जार जर्मनी के साथ अलग सन्धि करना चाहता था, इस समाचार के प्रचार ने स्थिति को अत्यधिक जटिल बना दिया। यथार्थ में प्रतिक्रियावादियों को आशंका थी कि युद्ध में रूस की पराजयों से विद्रोह हो सकता था। इस कारण वे युद्ध से विलग होने के लिए उत्सुक थे। प्रतिक्रियावादियों का नेतृत्व जरीना, जो क्रूर रासपुटिन से सर्वाधिक प्रभावित थी, कर रही थी। दोनों ही अत्यधिक निष्ठावान शान्तिवादी थे। सेना के अधिकारियों तथा ड्यूमा दोनों ही ने आरोप लगाया कि सरकार युद्ध के संचालन में बाधा डाल रही थी। जनता में सर्वत्र अत्यधिक आक्रोश था, और इस क्रोधाग्नि के विस्फोट में रासपुटिन का वध कर दिया गया। ग्रामों में कृषकों ने सशस्त्र विद्रोह किये। नगरों में श्रमिकों ने हड़तालें कीं तथा सैनिकों ने सेना से पलायन कर दिया। इसी समय डबलरोटी का अभाव हो गया। इससे जनसमुदाय के कष्ट अत्यधिक बढ़ गये।

मार्च, 1917 में पैट्रोग्राड में संकट उत्पन्न हो गया। श्रमिकों ने काम करना बन्द कर दिया और जनता ने डबलरोटी के लिए उपद्रव किये। सैनिकों ने शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए अपने कर्तव्य पालन से मना कर दिया, और हड़ताल करने वाले श्रमिकों के साथ भ्रातृत्व भाव से सहयोग किया। राजधानी में विद्रोहियों को मार्गदर्शन देने तथा स्थानीय

शासन के दायित्व का निर्वाह करने के लिए सैनिकों तथा श्रमिकों की सोवियट अथवा परिषद् का गठन किया गया। ड्यूमा ने अन्तरिम सरकार का गठन किया और जार निकोलस द्वितीय को पद त्याग करने के लिए विवश किया।

अन्तरिम सरकार का दृष्टिकोण तथा स्वरूप मध्यवर्गीय ही था। इसमें अधिकांश संवैधानिक लोकतन्त्रवादी ही थे। ये नरम गणतन्त्रवादी थे और इनका प्राध्यापक-राजनीतिज्ञ मिलिनकोव (Milinkov) ने नेतृत्व किया। उसने पश्चिमी देशों में प्रचलित अनेक उदारवादी सुधारों जैसे विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, समुदाय गठित करने अथवा किसी समुदाय का सदस्य बनने की स्वतन्त्रता, प्रेस तथा धर्म की स्वतन्त्रता को प्रवृत्त किया। उसने घोषणा की कि एक राष्ट्रीय संविधान सभा का गठन किया जायेगा। प्रथम विश्वयुद्ध को सक्रिय रूप से चलाने की घोषणा की, और जनता में देशभक्ति की भावना को उद्वेलित करने का प्रयास किया, परन्तु रूस जैसे राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े हुए देश में जनता राजनीतिक सुधारों के लिए अधिक चिन्तित नहीं थी। उनकी तात्कालिक माँग शान्ति, भूमि तथा रोटी थी। वे राजनीतिक क्रान्ति की अपेक्षा उग्र सामाजिक तथा आर्थिक सुधारों की माँग करते थे। इस प्रकार यह क्रान्ति जो उदारवादी आन्दोलन के रूप में आरम्भ हुई थी, समाजवाद की ओर उन्मुख हो गयी। समस्त रूस में सैनिकों तथा श्रमिकों की स्थानीय सोवियटों का गठन किया गया। समस्त देश में अनुशासनहीनता का साम्राज्य था। श्रमिकों ने उच्च वेतन तथा काम के घण्टों को कम करने की माँग करते हुए काम करना बन्द कर दिया। कृषकों ने कुलीन वर्ग के विशाल भू-भाग पर अधिकार कर लिया। यह संक्रामक रोग सेना में भी फैल गया। सैनिकों ने अपने उच्चाधिकारियों के आदेशों का पालन करने से मना कर दिया तथा अनेक अधिकारियों की नृशंस हत्या कर दी। उन्होंने सीमाओं के दूसरी ओर जर्मनवासियों के साथ बन्धुत्व स्थापित किया। अन्ततोगत्वा फिन तथा पोल राष्ट्रवादियों ने अपनी स्वतन्त्रता के निश्चय को व्यक्त करना आरम्भ कर दिया तथा रूस से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। रूस की समस्त नैतिक तथा भौतिक व्यवस्था ध्वस्त होने लगी। संवैधानिक लोकतान्त्रिकों की युद्ध नीति अत्यधिक अलोकप्रिय हो गयी। अस्तु, उनको अन्तरिम सरकार से हटा दिया गया, और उनके स्थान पर अलेक्जेण्डर केरेन्सकी के नेतृत्व में मैनशेविक के नाम से प्रसिद्ध नरम समाजवादियों ने देश की सत्ता ग्रहण की।

केरेन्सकी की स्थिति अत्यधिक शोचनीय थी। वह युद्ध को चलाना चाहता था, परन्तु शीघ्र ही सम्मानजनक निष्कर्ष के लिए भी उत्सुक था। वह क्रान्ति का सुरक्षित मार्गों से मार्ग दर्शन करना चाहता था, और उसने जनता को राजनीतिक लोकतन्त्र तथा सामाजिक सुधारों का आश्वासन दिया। वह नरम समाजवादियों के नेता के रूप में संवैधानिक पद्धतियों तथा क्रमिक चरणों में समाजवाद की स्थापना करना चाहता था। बोल्शेविक के नाम से प्रसिद्ध उग्र समाजवादियों ने केरेन्सकी की नीतियों का समर्थन नहीं किया। उग्र समाजवादी युद्ध के विरुद्ध थे और किसी भी क्षेत्र का बिना विलय किये तथा युद्ध की क्षतिपूर्ति का भुगतान किये बिना शान्ति स्थापित करने के लिए उत्सुक थे। वे हिंसक साधनों से तत्कालीन व्यवस्था को अपदस्थ करके सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र स्थापित करना चाहते थे। निष्कासन से लौटकर आये लेनिन तथा ट्राटस्की उग्र समाजवादियों का नेतृत्व कर रहे थे।

प्रारम्भ में केरेन्सकी ने सेना में साहस तथा उत्साह को प्रोत्साहित किया था, और गालिशिया में जर्मनवासियों पर भीषण आक्रमण भी किया था, परन्तु यह सफलता अस्थायी

थी। शीघ्र ही बोल्शेविकों के शान्तिवादी प्रचार से प्रभावित सैनिकों ने युद्ध में सक्रिय रूप से भाग लेने से मना कर दिया, और रूस की विशाल सेना के सैनिक विद्रोही हो गये। जनरल कोर्निलोव ने प्रतिकारात्मक क्रान्ति का असफल प्रयास किया। रूस में व्याप्त अशान्ति तथा अराजकता की स्थिति का लाभ उठाते हुए जर्मनी ने रिगा (Riga) पर नियन्त्रण कर लिया तथा पैट्रोग्रेड पर आक्रमण की चेतावनी दी। इस अवधि में बोल्शेविकों ने अपने संगठन को सुदृढ़ कर लिया था, और उनकी सदस्यों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हो गयी थी। नवम्बर, 1917 में बोल्शेविकों ने सैनिक विद्रोह द्वारा अन्तरिम सरकार को अपदस्थ कर दिया तथा पैट्रोग्रेड पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया। केरेन्सकी पलायन कर गया। इस प्रकार द्वितीय क्रान्ति का संचालन हुआ, और सत्ता बोल्शेविकों के हाथों में स्थानान्तरित हो गयी।

रूस की क्रान्ति के कुछ मूलभूत कारण निम्नलिखित थे :

(1) लेनिन का नेतृत्व और संगठित बोल्शेविक दल सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। केरेन्सकी की अन्तरिम सरकार को अपदस्थ करने के उपरान्त लेनिन ने नवम्बर, 1917 की क्रान्ति को सफल बनाने के लिए हर अवसर पर चतुर, दूरदर्शी तथा बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय किये। रूसवासियों की श्वेत सेना तथा विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध सशस्त्र लाल सेना के संगठन में ट्रोटस्की (Trotsky) निःसन्देह उत्कृष्ट था। लेनिन की वास्तविक महानता, समय एवं परिस्थितिनुकूल उचित सैनिक कार्यवाही में ही नहीं वरन् युद्ध साम्यवाद की नीति के अनुकूल परिवर्तनों में निहित थी। लेनिन ने प्रारम्भिक आर्थिक नीति की असफलता को निःसंकोच स्वीकार करते हुए, नवीन आर्थिक नीति (New Economic Policy) का सूत्रपात किया था। पूर्ण अनुशासित बोल्शेविक के सक्रिय सहयोग एवं समर्थन द्वारा लेनिन ने क्रान्तिकारी आन्दोलन काल में विशाल रूस में घटित होने वाली प्रत्येक घटना, अनुशासित सैनिकों की न्यायसंगत एवं उचित सामरिक कार्यवाही तथा प्रतिरोधी क्रान्तिकारियों की गतिविधियों पर सर्तकतापूर्वक पूर्ण नियन्त्रण रखा। उसने कभी भी भावी दूरदर्शितापूर्ण सामरिक नीति की उपेक्षा नहीं की। ट्रोटस्की सन् 1921 तक गाड़ी में ही रहा, परन्तु उसको दूरभाष के माध्यम से लेनिन के उचित निर्देश प्रत्येक दिन मिलते रहे। चेका तथा ओ. जी. पी. यू. ने देशद्रोहियों का क्रूरतापूर्वक दमन किया। लेनिन ने आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न कठिनाइयों को स्वयं स्वीकार किया। रूस के विदेशों से सम्बन्धों में सुधार करने के लिए रूस ने अपने अनेक क्षेत्रों का बलिदान किया। लेनिन मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का उत्कृष्ट प्रचारक था। इसमें उसकी अटूट आस्था थी। इसके अतिरिक्त वह एक उत्कृष्ट व्यावहारिक प्रतिभा था। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसकी उपलब्धियों को सुदृढ़ करने का ही कार्य शेष रह गया था। लेनिन की तुलना में उसके उत्तराधिकारी स्टालिन का व्यक्तित्व यद्यपि नगण्य ही था, परन्तु वह लेनिन की क्रान्ति की उपलब्धियों को सुदृढ़ करने में सफल रहा, और द्वितीय विश्वयुद्ध में रूस की विजय का श्रेय उसी को है।

(2) उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में सोवियट रूस में बौद्धिक वातावरण अत्यधिक महत्वपूर्ण था। आधुनिकतावादी विचारों का जारवादी रूस में शनैः-शनैः प्रसार हो रहा था। उल्लेखनीय है, सन् 1771 में पहली बार रूसवासियों ने उन्मुक्त राजगीरी, (देववाद का प्रचार करने के उद्देश्य से गठित एक गुप्त समिति) का अनुभव किया।

टाल्सटाय, चेखव एवं मैक्सिमगोर्की ने रूसी साहित्य में यथार्थवाद का सूत्रपात किया। टाल्सटाय अपने बाद के उपन्यासों में पूर्वापेक्षा अधिक दार्शनिक दृष्टिगत होता है। उसने

समस्त निजी सम्पत्ति का परित्याग करते हुए, एक प्रकार के साम्यवाद तथा अराजकतावादी ईसाई धर्म की प्रशंसा की। इस प्रकार उसके उपन्यासों में क्रान्तिकारी विचारों तथा भावनाओं की सजीव अभिव्यक्ति है। चेखव ने मुख्य रूप से कृषकों के जीवन को ही अपने उपन्यासों का आधार बनाया। उसने उनके सरल परन्तु कारुणिक जीवन का सजीव एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। गोर्की की बाद की अधिकांश कृतियों के कथानक सामाजिक समस्यायों से सम्बन्धित हैं। प्रारम्भ में अभिव्यक्त विचार असंगत प्रतीत होते हैं, परन्तु कालान्तर में क्रान्तिकारी दृष्टिगत होते हैं। यथार्थवादी सम्प्रदाय के इन लेखकों ने मुख्य रूप से व्यक्ति के पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण को चित्रित किया है तथा पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं के प्रति मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ, दृष्टिकोण तथा निंदान के लिए प्रयासों को अभिव्यक्त किया है। व्यक्ति के परम्पराओं तथा संस्थाओं के नैतिक मूल्यों एवं सिद्धान्तों के प्रति विचारों, भावनाओं एवं दृष्टिकोण को भी चित्रित किया है। यथार्थवाद के समस्त लेखकों ने इसके साथ अपनी कृतियों के माध्यम से न्यायसंगत उग्र सामाजिक सुधारों जैसे श्रमिक वर्गों के विकास एवं उत्थान, स्त्रियों की मुक्ति, समाज एवं युद्ध की कुरीतियों एवं दोषों के उन्मूलन और सम्पत्ति के पुनर्वितरण का सशक्त आग्रह किया है।

मनुष्य की शाश्वत संवेदनाएँ, भावनाएँ एवं मानव-कल्याण के लिए अन्तर्निहित उत्कट आकांक्षा यथार्थवादी रूसी लेखकों की कृतियों के कथानकों की विशिष्टता है। रूसी साहित्य, जर्मनी के सदृश अपेक्षाकृत अधिक सैन्य प्रवृत्तियों से युक्त राष्ट्रवादी साहित्य से भिन्न है। रूस का जनसमुदाय राष्ट्रीय एकता एवं स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील नहीं रहता (ये दोनों उसके पास पहले से थीं) वरन् अधिकाधिक मानव सुख, मानसिक शान्ति एवं अपेक्षाकृत कम दमनकारी सामाजिक व्यवस्था की आकांक्षा करता है। रूस में राष्ट्रवाद, भाग्य तथा प्राकृतिक तत्वों की परम्पराओं, कुरीतियों, विषमताओं तथा जीवन की कठोरताओं के विरुद्ध विद्रोह था। उन्होंने मानव हृदय की संघर्षों की संस्कृति और आत्मा की समस्याओं का प्रतिनिधित्व किया था। राष्ट्रीयता की अपेक्षा विद्रोह की संस्कृति को अभिव्यक्ति प्रदान की है। बोरोडिन और टिकोइकोस्की (Tchoikovsky) के स्वर-संगतियों, रिम्स्की तथा कोरसकोव के संगीत कार्यक्रमों एवं मिसोरग्स्की (Misorgski) के गीतों की भी यही विशिष्टता थी। इन सबने अपने कथानक रूस की पौराणिक गाथाओं तथा लोक कथाओं से लिये है।

रूस में बुद्धिवादी वर्ग की इस प्रवृत्ति ने जनसमुदाय में निष्पक्षता तथा न्यायप्रियता की पवित्र भावनाओं को उद्वेलित किया। बुद्धिवादी वर्ग में कुछ कुलीन, व्यापार तथा अन्य व्यवसायों में व्यस्त शहरों की जनता, अधिकांश विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी तथा स्नातक थे। नवीन, चिरस्थायी एवं अति विशाल मानव संवेदनाओं, जो रूस की अपनी विशिष्टता है, से प्रेरित बुद्धिजीवियों ने उग्र सुधारवाद और क्रान्तिकारी आन्दोलनों को विविध आयाम प्रदान किये। परिणामस्वरूप जारवादी शासन तथा पुरातन व्यवस्था के पतन के बाद उग्र सुधारवाद तथा क्रान्तिकारियों ने पूर्ण नियन्त्रण कर लिया।

सर्वविदित है कि उन्नीसवीं शताब्दी में ही समस्त यूरोप में राष्ट्रवाद, उदारवाद एवं कुछ अंशों में समाजवाद का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हो चुका था, और अधिकांश देशों में इनके सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत किया जा रहा था। अस्तु, रूस की भावी राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था को अवरुद्ध करना असम्भव था।

लेनिन द्वारा बोल्शेविक दल का नेतृत्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। उसने बुद्धिवादी वातावरण को अपने लाभ के लिए नई दिशा दी। लेनिन, ट्रोटस्की एवं स्टालिन तीनों महान् नेता प्रायः निर्वासन में रहते थे, परन्तु इन नेताओं ने जारवादी शासन तथा अपने अन्य विरोधियों की प्रत्येक त्रुटि और भूल का अपने लाभ के लिए समुचित शोषण किया।

रूस की क्रान्ति का महत्व
(IMPORTANCE OF RUSSIAN REVOLUTION)

रूसो ने लिखा है, "मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है, परन्तु हर स्थान पर वह जंजीरों (बन्धनों) में है।" सन् 1848 में **मार्क्स** ने लिखा, "श्रमजीवियों को अपनी जंजीरों के अतिरिक्त कुछ नहीं खोना है। उनके पास जीतने के लिए विश्व है। समस्त देशों के श्रमिकों, एक हो जाओ।" इन दो महान् दार्शनिकों के कथन का महत्व सन् 1917 की रूस की क्रान्ति में अभिव्यक्त हो गया है। यह एक मार्क्सवादी समाजवादी क्रान्ति थी, जिसका उद्देश्य सर्वहारा वर्ग के अधिनायक तन्त्र को स्थापित करना था। यह कुछ काल बाद साम्यवाद के नाम से विख्यात साम्यवादी आदर्शों की दिशा में ले जायेगा। इसको हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि रूस की क्रान्ति, फ्रान्स की क्रान्ति की प्रतीकात्मक निरन्तरता है। फ्रान्स की क्रान्ति मध्यमवर्ग की पुरातन (समय के प्रतिकूल) सामन्तवादी व्यवस्था तथा निरंकुश राजतन्त्र के विरुद्ध क्रान्ति थी।

रूस का औद्योगिक आधार नगण्य ही था, अस्तु, जारवादी रूस सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति के लिए परिपक्व नहीं था, परन्तु क्रान्तिकारियों द्वारा क्रान्ति के आह्वान में श्रमिकों की मुख्य भूमिका रही, और मार्क्सवादी सिद्धान्तों को पूर्णरूप से आत्मसात् किये हुए श्रमिकों की भूमिका उल्लेखनीय रही।

रूस की क्रान्ति एक पूर्व नियोजित घटना थी। यह इस क्रान्ति की उल्लेखनीय विशेषता थी। इस क्रान्ति ने मार्क्स की चिर आकांक्षाओं को साकार रूप प्रदान किया था। मार्क्स ने एक स्थान पर लिखा है कि अब तक दार्शनिकों ने इतिहास की व्याख्या की थी, परन्तु भावी दार्शनिकों को इतिहास के मार्ग में ही परिवर्तन करना चाहिए। मार्क्स ने अपने जीवन काल में ही भावी क्रान्तियों को प्रेरित तथा प्रोत्साहित करने के लिए साम्यवादी संगठन स्थापित किये थे। निःसन्देह मार्क्स के स्वयं के प्रयास उसके जीवन काल में सफल नहीं हुए, परन्तु क्रान्ति के निर्विवाद नेता लेनिन ने सन् 1917 से 1924 तक क्रान्ति का सफलतापूर्वक नेतृत्व करके मार्क्स के स्वप्न को मूर्त रूप प्रदान किया था। यह एक पाठ्य पुस्तकीय क्रान्ति थी।

विश्व का इतिहास साक्षी है कि कभी भी कोई एक व्यक्ति रूस की क्रान्ति की सदृश शक्तिशाली क्रान्ति के लिए उत्तरदायी नहीं रहा है। अतीत में इंगलैण्ड का गृहयुद्ध, अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम और फ्रान्स की क्रान्ति हुई, परन्तु इनमें से किसी एक क्रान्ति की एक ही व्यक्ति ने योजना नहीं बनायी और उसी व्यक्ति ने उसको कार्यान्वित नहीं किया। यह गौरव केवल लेनिन को ही प्राप्त है। लेनिन ने ही स्वयं योजना बनायी और सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया। सत्रहवीं शताब्दी में इंगलैण्ड के राजतन्त्र के निष्ठावान समर्थक अथवा लोकतन्त्र समर्थक किसी भी संकट को उग्ररूप देने अथवा बढ़ाने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु घटनाओं ने आदि से अन्त तक देश के लोकतन्त्र समर्थकों को उत्तेजित किया। परिणामस्वरूप चार्ल्स प्रथम का वध कर दिया गया, और अतिनैतिकतावादियों (प्यूरिटन) का अधिनायक तन्त्र स्थापित हो गया। इसी प्रकार फ्रान्स में बेस्टिल पर आक्रमण करने वाले उपद्रवियों अथवा धर्माधिकारी

वर्ग एवं कुलीन वर्ग के उन उत्साही व्यक्तियों, जिन्होंने एक ही रात्रि में प्राचीन व्यवस्था को समाप्त कर दिया था, ने कभी भी आतंकवाद के शासन (Reign of Terror) अथवा नैपोलियन की राजतन्त्रीय महत्वाकांक्षाओं की पूर्व कल्पना नहीं की थी। अमेरिका की क्रान्ति के सन्दर्भ में भी यही विचार सत्य है। उल्लेखनीय है कि अमेरिका की स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षरकर्ताओं में जॉन हैनकाक नाम का एक कुख्यात तस्कर भी था और उसने सोच-समझकर बड़े वर्णाक्षरों में अपने हस्ताक्षर किये थे। यह वर्णाक्षर आकार में इतने बड़े थे कि इंग्लैण्ड का जार्ज तृतीय नग्न नेत्रों से सहज ही पढ़ सकता था। इन समस्त क्रान्तियों से पूर्णतया भिन्न सन् 1917 की रूस की क्रान्ति थी। लेनिन को भली-भाँति ज्ञात था कि वह भविष्य में जन क्रान्ति का नेतृत्व करेगा, अस्तु, उसने प्रारम्भ से ही क्रान्ति के प्रत्येक चरण की स्वयं योजना बनायी। जर्मनवासियों को इस क्रान्ति का पूर्वाभास था। लेनिन अपने निर्वासन काल में स्विट्‌जरलैण्ड में जीवन व्यतीत कर रहा था। जर्मनवासियों ने क्रान्ति के पूर्वाभास के कारण ही लेनिन को अपने देश रूस जाने की अनुमति दे दी थी। इस तथ्य को गुप्त रखने के लिए जर्मनवासियों ने लेनिन को रूस की सीमाओं तक एक चारों ओर से बन्द गाड़ी में भेजा। कालान्तर में घटनाओं ने जर्मनवासियों के पूर्वाभास की पुष्टि की।

रूस की क्रान्ति का पाठ्यपुस्तकीय स्वरूप एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य था। युद्धपोत अरोरा के लेनिनग्राद पर आक्रमण करने के दिन से लेकर सन् 1928 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के निर्माण तक, क्रान्ति के नेता, मार्क्स एवं एन्जिल की कृतियों के साथ, लेनिन द्वारा अपनी कृतियों में मार्क्सवाद की व्यापक तथा सारगर्भित व्याख्या को ही मूल प्रेरणा स्रोत और मार्ग दर्शन मानते रहे। लेनिन ने सिद्धान्त रूप में सर्वाधिक कठोर रूढ़िवादिता का उत्कृष्ट व्यावहारिक लचीलेपन के साथ समन्वय किया। यथार्थ में उसकी व्यावहारिक घटनाएँ उसके सिद्धान्तों से पूर्व घटित होती थीं, परन्तु उसकी रूढ़िवादिता उन परिवर्तनों, जिनको वह स्वयं मार्क्सवादी भावनाओं के अनुरूप कर रहा था, को स्वीकार करने से रोकती थीं। उसने एक व्याख्या द्वारा दोनों को अभिन्न रूप से बाँध दिया। यह व्याख्या व्यक्त करती थी कि "मार्क्स का सदैव वही अर्थ होता था जो लेनिन ने निश्चय कर लिया था एवं जो अर्थ उसे तत्कालीन समस्या में करना चाहिए। यह कोई असाधारण मार्ग नहीं है, जिसके द्वारा लोग जो अत्यधिक हठधर्मी हैं, परन्तु अपने नैतिक संकोचों के साथ समन्वय करने के पर्याप्त व्यावहारिक एवं बुद्धिमान होते हैं, संकोचों का वही अर्थ होता है, जो वह करना चाहते हैं।"

लेनिन के सत्तारूढ़ होने के समय से विभिन्न देशों के नागरिकों के भविष्य के सम्बन्ध में लिये गये निर्णय रूस की क्रान्ति का तात्कालिक महत्व था। साम्यवादी विचारकों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था, कि राष्ट्रीय भावना स्वयं में कोई अपराध नहीं थी। लेनिन ने विभिन्न उपनिवेशों में राष्ट्रवादी नेताओं को अपने प्रथम लक्ष्य के रूप में अपने उपनिवेशों को मुक्त रखने का परामर्श दिया था, परन्तु समाजवाद की प्राप्ति के लिए उसने कुछ नहीं कहा था। सोवियट संघ की सीमाओं के अन्दर राष्ट्रवादी नेता अपने राष्ट्र की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को प्रोत्साहित करने तथा सुरक्षित रखने के लिए निरन्तर कार्य करते रहे, और क्रान्ति के प्रारम्भ में सोवियट रूस को उन क्षेत्रों, जिन पर पोल लोगों ने दावा किया था, को पोल जाति के लोगों को समर्पित करने पर किसी प्रकार का खेद नहीं था।

सोवियट संघ द्वारा क्रान्ति के उपरान्त समाज के संरचनात्मक परिवर्तनों को लाने के लिए किये गये विभिन्न प्रयोगों के कारण भी रूस की क्रान्ति का विशेष महत्व था। कुछ

समय तक सोवियट संघ ने पारिवारिक संवेदनाओं को हतोत्साहित करने के लिए प्रयास किये, परन्तु कालान्तर में ये प्रयास बन्द कर दिये। आर्थिक क्षेत्र में युद्ध साम्यवाद के द्वारा देश ने प्रगति की, परन्तु इसको आशातीत सफलता नहीं मिलने के कारण लेनिन ने सन् 1923 में नवीन आर्थिक नीति (N.E.P.) के द्वारा आर्थिक कार्यक्रमों तथा गतिविधियों को नई दिशा दी। दोनों विश्व युद्धों के मध्य की अवधि में इन प्रयोगों ने बुद्धिजीवियों को आकर्षित किया। ऐसा चरितार्थ है कि 20 और 30 के दशकों में अधिकांश बुद्धिजीवी समाजवाद की ओर आकर्षित थे, और कुछ मार्क्सवाद लेनिनवाद से प्रभावित थे। नवीन आर्थिक नीति एवं उसके कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में बुद्धिजीवियों ने फ्रान्स और उसकी सेना के विरोध के उपरान्त भी स्पेन के गृहयुद्ध में सक्रिय भाग लिया।

प्रारम्भिक चरणों में सोवियट संघ का विश्व के अनेक देशों पर व्यापक प्रभाव था। पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर भी अत्यधिक प्रभावित थे। सोवियट संघ से लिखे एक पत्र में गुरुदेव टैगोर ने स्पष्ट विचार व्यक्त किया था कि सोवियट संघ की उन्नति तथा प्रगति की भारत में समाज के पुनरुत्थान के लिए पुनरावृत्ति की जानी चाहिए। प्रारम्भिक चरणों में सोवियट संघ के रूढ़िवादी कट्टरपंथियों के अतिरिक्त अन्य समस्त जनसमुदाय ने पूर्ण निष्ठा, उत्साह तथा समर्पण की भावना से नये राष्ट्र के निर्माण के लिए अथक परिश्रम किया। विशाल सामूहिक राष्ट्रीय प्रयास ने तत्कालीन विश्व के समस्त बुद्धिजीवियों को सर्वाधिक प्रभावित किया।

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में हमें निःसंकोच स्वीकार करना पड़ता है कि रूस की क्रान्ति की सफलता ने समाजवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया। सुनियोजित ढंग से तथा कुशलतापूर्वक पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप सोवियट संघ की आर्थिक क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियों ने विश्व के अधिकांश देशों को मन्त्र मुग्ध किया। आज विश्व के लगभग 130 देश समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का साधन के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। सोवियट रूस का अस्तित्व ही पूँजीवादी समाज के लिए चुनौती है। सामान्य व्यक्ति के दृष्टिकोण से भी निःसन्देह यह ज्ञात होता है कि सोवियट संघ अनेक क्षेत्रों में संयुक्त राज्य अमेरिका से बहुत पीछे है, परन्तु समस्त पूँजीवादी राष्ट्रों के लिए राष्ट्रपति गर्बाचोव के सत्तारूढ़ होने तक गम्भीर चुनौती बना रहा। गर्बाचोव के शासनकाल में रूस की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक संरचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये। साम्यवादी दल को समूल नष्ट किया जा रहा है। गर्बाचोव के विरुद्ध कट्टरपंथी साम्यवादियों का विद्रोह विफल हो गया है। सोवियट संघ के अनेक राज्यों ने अपनी औपचारिक स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी है। सोवियट संघ में महत्वपूर्ण मूलभूत सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति गृहिणी अथवा राजनीतिज्ञ देश का भाग्य निर्माता रहा है, और प्रत्येक ने राष्ट्र की सीमाओं में रहने वाले समस्त प्राणियों के सामूहिक कल्याण के लिए अपने उपलब्ध स्रोतों का सर्वाधिक तथा सर्वोत्कृष्ट प्रयोग किया। सामान्य सत्य यह है कि एक देश, जिसमें प्राकृतिक स्रोतों का अभाव नहीं है, निजी उद्यमियों को, स्रोतों का अपनी इच्छानुसार प्रयोग करने की अनुमति दे सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका एक ऐसा ही देश है, परन्तु विश्व के अधिकांश देशों के पास सीमित स्रोत हैं। अस्तु, उनके लिए उपलब्ध सीमित स्रोतों का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प शेष नहीं रहता है। समाजवाद की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील किसी भी देश की आर्थिक नीति की यह कठोर वास्तविकता है। अस्तु, विश्व के

लगभग 130 देशों का मुख्य उद्देश्य समाजवाद की प्राप्ति है, और पंचवर्षीय योजनाएँ इस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन हैं।

रूस की क्रान्ति का महत्व इस तथ्य में निहित है कि समाजवाद अथवा मार्क्सवाद पूँजीवाद व्यवस्था की प्रत्यक्ष उत्पत्ति है, अस्तु, पूँजीवादी समाजों को अपनी ही उत्पत्ति के साथ निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है। आधुनिक संघर्ष, पुरातन आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था, जो रूढ़िवादी एवं जीर्ण-शीर्ण है तथा जिसकी आधुनिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में उपयोगिता समाप्त हो चुकी है, एवं आधुनिक युवाशक्ति, चेतना तथा साहस से अनुप्राणित व्यवस्था के मध्य है। आधुनिक व्यवस्था समस्त मानव समुदाय को पीड़ा विहीन, कल्याणप्रद भविष्य का आश्वासन देती है। तत्कालीन सोवियट व्यवस्था का अन्य कोई व्यवस्था स्थान लेगी अथवा नहीं, यह एक परिकल्पनात्मक प्रश्न है। यदि विश्व में समाजवादी समाज का अन्त हो जाता है, समाजवाद के मूल विचार अर्थात् सम्पत्ति के समानरूप से वितरण तथा समाज में निम्नतम प्राणी के साथ सद्‌भावनापूर्ण सहृदय एवं निष्पक्ष व्यवहार को बन्द करके नहीं रखा जा सकता है। समाजवाद कोई निन्दनीयं कोष अथवा क्रूर दानव नहीं है, वरन् यह लोकतान्त्रिक परम्पराओं का न्यायसंगत एवं तर्कसंगत उत्कर्ष है। लोकतन्त्र के प्रबल समर्थक लोकतन्त्र के लिए शहीद व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की राजनीतिक स्वतन्त्रताएँ जैसे भाषण की स्वतन्त्रता, विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता आदि देने में लगभग सफल हुआ। राजनीतिक तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं को प्राप्त करने के बाद निर्धन तथा दीन-हीन व्यक्तियों ने भोजन, वस्त्र, आश्रय एवं समुचित सुरक्षा की माँग की। इस प्रकार समाजवाद, लोकतान्त्रिक परम्पराओं का तर्कसंगत विस्तार है। सोवियट संघ रहे या नहीं रहे इसको समाप्त नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में, रूस की क्रान्ति मानव मुक्ति की स्मरणीय ऐतिहासिक घटना है।

इसके अतिरिक्त रूस की क्रान्ति का महत्व इस तथ्य में भी निहित है, कि यह एक ऐसी घटना है कि जिसने पूर्व इतिहास के समाप्ति की घोषणा की, जिससे नये इतिहास का सूत्रपात हो सके। मार्क्स ने विचार व्यक्त किया है कि अतीत में समस्त राजनीतिक परिवर्तन अल्पमतों का काम था, और प्रत्येक राजनीतिक परिवर्तन ने शोषकों के समूह में परिवर्तन किया। सर्वविदित है कि प्रत्येक राजनीतिक परिवर्तन में एक विशिष्ट शोषक दल को उत्पादन के समस्त साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त मानव अधिरचना के विभिन्न अंगों जैसे संस्थाओं, प्रणालियों, सिद्धान्तों, मूल्यों, धर्म, साहित्य, कला और विज्ञान ने केवल समाज के आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं प्रभावशाली वर्ग के उद्देश्यों की प्राप्ति में ही सहायता की थी, जबकि निर्धन वर्ग को केवल विश्वास करने तथा प्रबल आकांक्षा के लिए वाध्य किया कि समस्त अधिरचना उनके क़ल्याण के लिए थी। साम्यवाद में उत्पादन के समस्त साधनों पर समस्त समाज का स्वामित्व था। अस्तु, सम्पन्न एवं धनी व्यक्तियों द्वारा पुष्ट एवं पोषित अधिरचना को नष्ट किया जा सकता था। तार्किक दृष्टि से मूल्यों, सिद्धान्तों प्रणालियों एवं संस्थाओं के ऐसे भावी समाज में प्रत्येक वस्तु, कुछ सम्पन्न व्यक्तियों की अपेक्षा समस्त मानव समाज के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य कर सकती थी। मार्क्स ने विचार व्यक्त किया था कि इस प्रकार समाज का पूर्णरूप से रूपान्तर हो जायेगा। अस्तु, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना से पूर्व इतिहास का अन्त हो जायेगा, तथा नये इतिहास का शुभारम्भ होगा अर्थात् सभ्यता से पूर्व मानव की कहानी समाप्त हो जायेगी, और

वास्तविक सभ्यता का सूत्रपात होगा। रूस की क्रान्ति ने सृष्टि के आदि मानव एडम के नये सुखद उद्यान का वचन दिया था। यही इसकी सर्वोपरि विशिष्टता थी।'

सोवियट संघ का आर्थिक व सामाजिक पुनर्निर्माण

(ECO-SOCIO RECONSTRUCTION OF SOVIET UNION)

रूस का जार निकोलस द्वितीय (सन् 1894-1917) एक अयोग्य परन्तु हठधर्मी शासक था। प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ के कुछ महीनों में निष्ठावान, कर्तव्यपरायण एवं साहसी रूसवासियों ने उदात्त देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर जार की सरकार के प्रत्येक निर्णय एवं कार्यवाही का समर्थन किया था, परन्तु अविश्वास ने शीघ्र ही उनकी निष्ठा को क्षतिग्रस्त किया। पूर्वी युद्ध मोर्चे पर रूस की सेना की भीषण क्षति हुई। युद्ध सामग्री तथा शस्त्रास्त्रों का अभाव था। उच्च प्रशासनिक एवं सैनिक अधिकारियों, तथा रसद आपूर्ति विभाग में भ्रष्टाचार एवं बेईमानी चरम सीमा पर थी। साम्राज्ञी जरीना तथा उसके कृपापात्र सामन्त युद्ध की गतिविधियों में निरन्तर उचित एवं अनुचित हस्तक्षेप कर रहे थे। परिणामस्वरूप रूस की सेना की युद्ध के मोर्चों पर पराजय हुई। युद्ध के प्रथम तीन वर्षों में 1,50,00,000 सैनिक युद्ध क्षेत्र में भेजे गये। अस्तु, कृषि श्रमिकों का अभाव हो गया, और खाद्यान्न उत्पादन भी बहुत कम हो गया। ऐसी स्थिति में जनता का असन्तोष तथा आक्रोश निरन्तर बढ़ रहा था। एक ओर जनता रूस की सेना की युद्ध क्षेत्र में अपमानजनक पराजय से क्षुब्ध थी, दूसरी ओर खाद्यान्नों, ईंधन एवं अन्य दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं के अभाव में अत्यधिक पीड़ित थी। देश में दुर्भिक्ष की सम्भावना हो गयी थी। इन परिस्थितियों ने जनता को विद्रोह के लिए परिपक्व कर दिया था। जनता में जनश्रुतियों का व्यापक प्रचार था कि जार के दरबार में विदेशी शक्तियों का प्रभाव था। जार और साम्राज्ञी जरीना दुष्ट प्रवृत्ति के भिक्षुक रासपुटिन के प्रभाव में काम कर रहे थे। युद्ध के कारण अनेक नगरों में व्यापारिक गतिविधियाँ अवरुद्ध हो गयीं। समाज का प्रत्येक वर्ग अत्यधिक असन्तुष्ट एवं क्षुब्ध था। ये सब राजतन्त्र के उन्मूलन के लिए पर्याप्त था।

मार्च, 1917 में श्रमिकों की सेन्ट पीटर्सबर्ग के बाहर हड़तालें आरम्भ हो गयीं। सेना के साथ मुख्यालय से जार निकोलस द्वितीय ने तार भेजकर उपद्रवियों का दमन करने तथा ड्यूमा को भंग करने का आदेश दिया, परन्तु सैनिकों ने विद्रोहियों पर गोलियों की वर्षा करने से मना कर दिया। ड्यूमा ने जार के आदेश को अस्वीकार कर दिया। रूस की जनता का निरंकुश शासक अनायास ही परित्यक्त तथा असहाय हो गया। 15 मार्च, 1917 को निकोलस द्वितीय ने सत्ता का परित्याग कर दिया। इस प्रकार तीन शताब्दी से शासन कर रहे रोमानव (Romanov) राजवंश का अन्त हो गया।

उदारवादी कुलीनवर्गीय प्रिन्स ल्वोव (Prince Lvov) तथा प्रबल क्रान्तिकारी अलेक्जेण्डर केरेन्सकी के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार का गठन किया गया। इसका जनसम्पर्क नहीं था। इसके सदस्यों के मध्यमवर्गीय सम्बन्धों ने अविश्वास की प्रबल भावना का संचार किया। प्रथम विश्व युद्ध में मध्य यूरोपीय शक्तियों के विरुद्ध रूस की सक्रिय भूमिका के कार्यक्रम के प्रति जनता में किसी प्रकार का उत्साह नहीं था। रूसी सैनिक युद्ध से पूर्णतया श्रमित एवं त्रस्त थे। अस्तु, केरेन्सकी के सैनिकों में नये युद्ध अभियान के लिए उत्साह तथा साहस का संचार करने के समस्त प्रयास विफल हो गये।

जून, 1917 में समस्त सोवियटों के प्रथम सम्मेलन (काँग्रेस) के समय बोल्शेविक अल्पमत में थे परन्तु उनकी शक्ति में द्रुतगति से वृद्धि हुई। अक्टूबर, 1917 तक लेनिन की माँग "समस्त सत्ता सोवियटों को" सार्वजनिक आह्वान बन गयी थी, और भूमि के भूखे कृषकों, युद्ध से त्रस्त सैनिकों तथा दुर्भिक्ष की आशंका से भयाक्रान्त श्रमिकों का भूमि, शान्ति तथा रोटी का निश्चित आश्वासन, अप्रतिरोध्य माँग बन गयी थी। केरेन्सकी ने 25 नवम्बर, 1917 को संविधान सभा के लिए निर्वाचन की घोषणा की, परन्तु सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की वैधानिक औपचारिकताओं के लिए घटनाचक्र तीव्र गति से चल रहा था।

केरेन्सकी ने अपने शासन को बनाये रखने तथा क्रान्तिकारियों का दमन करने के लिए युद्ध क्षेत्र से रूस के सैनिकों का आह्वान किया, परन्तु रेलवे कर्मचारियों ने सैनिकों को ले जाने से मना कर दिया और 7 नवम्बर, 1917 को सोवियटों के द्वितीय सम्मेलन (काँग्रेस) में घोषणा की कि अन्तरिम सरकार का अन्त आ गया। इस अधिवेशन में तत्काल मध्य यूरोपीय शक्तियों के साथ 3 माह की युद्ध विराम तथा शान्ति सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार किया। स्वीकृत प्रस्ताव में किसी भी विजित क्षेत्र के विलय नहीं करने तथा युद्ध की क्षतिपूर्ति नहीं करने की भी व्यवस्था थी। बोल्शेविक समर्थक रूस की कुल जनसंख्या में अल्पमत में थे। अपने शासन के प्रति देश की जनता तथा बाह्य देशों का समर्थन प्राप्त करना अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त देश में सुदृढ़ सरकार का गठन तथा उसकी सहायता से साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुरूप रूस के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का पुनर्निर्माण अन्य मूलभूत आवश्यकता थी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बाह्य देशों के साथ शान्ति स्थापित करना अति आवश्यक था, जिससे बोल्शेविक अपनी शक्ति तथा ऊर्जा को रूस के पुनर्निर्माण पर केन्द्रित कर सकें। लेनिन ने विश्वयुद्ध के सन्दर्भ में मत व्यक्त किया था कि युद्ध पूँजीवादियों के मध्य सशस्त्र संघर्ष था। लेनिन ने सर्वोच्च सत्ता ग्रहण करने के तत्काल बाद मध्य यूरोपीय शक्तियों के साथ विचार-विमर्श आरम्भ किया और जर्मनी एवं उसके राष्ट्रों के साथ सन् 1918 में ब्रेस्ट-लिटोव्स्क (Brest-litovsk) की पृथक् शान्ति सन्धि की। इस सन्धि के द्वारा रूस ने स्वयं को प्रथम विश्वयुद्ध से अलग कर लिया और पोलैण्ड एवं बाल्टिक प्रान्तों के साथ समस्त पश्चिमी प्रान्त जर्मनी को दे दिये। लेनिन तथा उसके प्रबल समर्थकों ने अनुभव किया कि सामाजिक क्रान्ति की विजय प्राप्त करने के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं था। क्रान्ति की सफलता के लिए वे कृत संकल्प थे। लिटोव्स्क की सन्धि के अन्तर्गत लेनिन ने जारकालीन समस्त अभिलेखों तथा गुप्त कृतियों को प्रकाशित कर दिया। जर्मनी के साथ लेनिन ने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया कि बोल्शेविक अस्थायी पराजय तथा अपमान सहन करने के लिए तैयार थे। इन घटनाओं को प्रथम विश्व युद्ध में पश्चिम के मित्र राष्ट्रों ने रूस की शत्रुतापूर्ण कार्यवाही की संज्ञा दी। बेस्ट-लिटोव्स्क में रूस के आत्मसमर्पण के बाद जर्मनी ने पश्चिमी युद्ध मोर्चों पर नये आक्रमण आरम्भ कर दिये जिससे मित्र राष्ट्रों की स्थिति अधिक जटिल हो गयी।

पश्चिमी मित्र राष्ट्रों को आशंका थी कि रूस की श्रमिक वर्ग की क्रान्ति उनके देशों में श्रमिक वर्ग को क्रान्ति के लिए प्रेरित कर सकती थी। बोल्शेविक समर्थकों के सामाजिक क्रान्ति के लिए विश्वव्यापी व्यापक प्रचार ने मित्र राष्ट्रों की आशंका को पुष्ट कर दिया। अस्तु, मित्र राष्ट्रों ने सोवियट सरकार को मान्यता देने से मना कर दिया। लेनिन ने जारवादी शासन द्वारा लिये गये विदेशी ऋणों को अस्वीकार कर दिया था। अस्तु, पश्चिमी राष्ट्र अत्यधिक

क्रुद्ध थे और रूस के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप करने के लिए उत्सुक थे। पश्चिमी राष्ट्र जर्मनी को रूस की अशान्त स्थिति का अपने लाभ के लिए शोषण करने से रोकना चाहते थे तथा बोल्शेविक सरकार को अपदस्थ करने के लिए क्रान्ति विरोधी शक्तियों का सक्रिय समर्थन करना चाहते थे। मित्र राष्ट्रों की सर्वोच्च युद्ध परिषद् ने निश्चय किया कि उसको रूस को पुनः विश्वयुद्ध में वापिस लाना चाहिए, और इसके लिए अपेक्षित सैनिक हस्तक्षेप का भी निर्णय किया। ब्रिटिश द्रुतगामी सेना उत्तर रूस में बोल्शेविक विरोधियों का समर्थन करने के लिए मुरस्मन्स्क (Mursmansk), आर्केन्जिल और कैस्पियन सागर भेज दी, और अधिकांश जापानी सैनिकों की एक अन्य सेना ने व्लाडीवोस्तक पर अधिकार कर लिया। ब्रिटिश सेना ने काक्शस में कुछ सामरिक महत्व के स्थानों पर अधिकार कर लिया तथा फ्रान्स की सेना ने रूस के दक्षिण में काला सागर स्थिति क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त जापान एवं अमेरिका दोनों ने साइबेरिया में कुछ स्थानों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस हस्तक्षेप ने शीघ्र ही नया रूप ग्रहण कर लिया। ये शक्तियाँ रूस में क्रान्ति विरोधी शक्तियों का सक्रिय समर्थन करने लगीं, और श्वेत सेना को पूर्ण सैनिक सहायता दी गयी। बोल्शेविकों ने पोलैण्ड की सीमा के अतिरिक्त अन्य समस्त क्षेत्रों में विदेशी शक्तियों तथा आन्तरिक श्वेत सेना का साहस तथा शौर्य के साथ सामना किया। क्रान्ति विरोधियों में विभिन्न विषयों पर परस्पर मतभेद थे। अस्तु, दीर्घकाल तक संयुक्त कार्यवाही असम्भव थी। कृषकों ने नई सरकार का पूर्ण समर्थन किया। मित्र राष्ट्रों की सेना विश्वयुद्ध के मानसिक तनाव से त्रस्त थी। अतः मित्र राष्ट्रों के सैनिक हस्तक्षेप में उत्साह और कर्तव्यपरायणता का अभाव था, तथा सैन्य शक्ति भी पर्याप्त नहीं थी। बोल्शेविक शासन ने पश्चिमी शक्तियों को दिखा दिया कि क्रान्तिकारी गतिविधियों के अन्तर्गत बोल्शेविकों में परस्पर किसी प्रकार का मतभेद नहीं था।

बोल्शेविक प्रेरित हंगरी की क्रान्ति विफल हो गयी। नवम्बर,1921 में बर्लिन में विद्रोह का दमन कर दिया गया। लेनिन ने स्वीकार किया कि इतने कम समय में विश्वव्यापी क्रान्ति नहीं हो सकती। अस्तु, सन् 1921 से 24 की अवधि में लेनिन एवं अन्य नेताओं ने विश्व समुदाय में अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए कुशल कूटनीतिक उपायों का प्रयोग किया। रूस और जर्मनी ने रैपेलो (Rapallo) की सन्धि पर हस्ताक्षर किये। परिणामस्वरूप जर्मनी ने रूस में पूँजीनिवेश किया तथा बहुमूल्य सैनिक परामर्श दिये।

रूस के सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्निर्माण का कार्य लेनिन ने मार्क्सवाद के समाजवादी सिद्धान्तों को मूर्तरूप देने से आरम्भ किया। लेनिन ने सन् 1917 में सत्ता ग्रहण करने के बाद पूर्णरूप से साम्यवादी अर्थव्यवस्था का शुभारम्भ करने का प्रयास किया। देश में कृषकों को कृषि कार्य के लिए आमन्त्रित किया गया। वे भू-राजस्व (किराया) मुक्त भूमि पर काम करते थे। एक आदेश के द्वारा समस्त निजी स्वामित्व को समाप्त कर दिया गया, और भूमि कृषकों में वितरित कर दी जिससे वे राज्य के लाभ के लिए कृषि करें। कारखानों तथा कार्यशालाओं पर बिना उनके स्वामियों को क्षतिपूर्ति किये, सोवियट सरकार ने पूर्ण नियन्त्रण कर लिया। रेलवे, बैंक, खदान एवं अन्य अनेक विशाल उद्यम राज्य-सरकार की सम्पत्ति बन गये। विशाल कारखानों की प्रबन्ध व्यवस्था श्रमिकों ने अपने हाथ में ले ली। रूस की पूर्व सरकार द्वारा लिए गये समस्त आन्तरिक तथा विदेशी ऋणों को बोल्शेविक सरकार ने अस्वीकार कर दिया इससे विदेशी सरकारें, जिन्होंने युद्ध से पूर्व वर्षों में रूस को वित्तीय सहायता दी थी, अत्यधिक

अप्रसन्न थीं। रूस के रूढ़िवादी चर्च की समस्त सम्पत्ति का अधिहरण कर लिया गया, और किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति भी नहीं की गयी। संक्षेप में, बोल्शेविक सरकार ने रूस की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक संस्थाओं का पूर्ण रूपान्तर कर दिया, और उसी आधार पर विश्व क्रान्ति की तैयारी आरम्भ कर दी। श्रमिकों को नकद वेतन नहीं दिया जाता था। मुद्रा के स्थान पर श्रमिकों को निःशुल्क आवास तथा परिवहन सुविधा तथा खाद्य वस्तुओं तथा वस्त्रों के लिए राशन कार्ड दिये जाते थे। देश की समस्त भूमि पर सरकार का स्वामित्व था और कृषकों को अपना समस्त कृषि उत्पादन, विशेष रूप से गृहयुद्ध काल में सरकार को देना पड़ता था। गृहयुद्ध की अवधि में साम्यवाद को अत्यधिक संकट के कारण लेनिन ने क्रूरता एवं निर्ममतापूर्वक शासन किया। इस अवधि को उसने युद्ध साम्यवाद की संज्ञा प्रदान की।

सन् 1918 के मध्य तक बोल्शेविकों ने अनुभव किया कि वे एक नये परिवर्तन का सूत्रपात कर सकते हैं। सन् 1918-21 की अवधि में युद्ध साम्यवाद की नीति का शुभारम्भ किया गया। उत्पादन एवं वितरण के समस्त भागों पर पूर्ण राज्य नियन्त्रण की व्यवस्था आरम्भ की गयी। इस प्रकार के कठोर एवं द्रुतगति से परिवर्तनों ने नये शासन के प्रति विरोध को उत्तेजित किया। नगरों में श्रमिक तथा ग्रामों में कृषक ही बोल्शेविक शासन का प्रबल समर्थन कर रहे थे, परन्तु भू-स्वामी, व्यापारी तथा धर्माधिकारी वर्ग व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिहरण (जब्त करना) तथा विशेषाधिकारों के उन्मूलन का सक्रिय विरोध कर रहे थे। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की वेदी पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक लोकतन्त्र के बलिदान का बुद्धिजीवियों के अतिरिक्त समाजवादियों के मैनशेविक वर्ग ने भी तीव्र विरोध किया, परन्तु बोल्शेविकों ने स्पष्ट रूप से अपनी नीतियों का विरोध करने वालों के साथ क्रूर दमनकारी कार्यवाही की। 'चेका' के नाम से प्रसिद्ध विशेष न्यायालय ने सहस्रों विरोधियों को मृत्यु दण्ड दिया। देश के अन्दर और बाहर, दोनों ओर हिंसा, आतंक, अराजकता तथा अशान्ति का वातावरण था। बोलशेविकों ने क्रूर एवं अमानुषिक प्रवृत्तियों के द्वारा विनाश को पूर्ण कर दिया तथा अतीत के मध्य वर्ग की चेतना का दमन कर दिया। पूर्ण राज्य नियन्त्रण ही प्रवृत्त नहीं किया गया, वरन् विश्व युद्ध में रूस की सक्रियता को भी रोक दिया गया। इस समय लेनिन ने अनुभव किया कि विशुद्ध साम्यवाद की स्थापना से घातक आर्थिक स्थिति उत्पन्न हो रही थी, और सोवियट सरकार का विनाश हो रहा था। आर्थिक नीति में आमूल परिवर्तन की अतीव आवश्यकता थी। लेनिन ने अनुभव किया था कि साम्यवादी जनता को कठोर यातनाएँ दे रहे थे। सम्पन्न कृषक अपने कृषि उत्पादनों के राज्य द्वारा लिए जाने की पद्धति से असन्तुष्ट थे। अनेक साम्यवादी प्रतिनिधियों की नृशंस हत्या कर दी गयी। सर्वत्र दुर्भिक्ष की स्थिति हो गयी, और लगभग 2,50,00,000 व्यक्ति विकट दुर्भिक्ष से पीड़ित थे। गृह युद्ध में भीषण विनाश, कृषकों के असहयोग तथा यूक्रेन में फसलों के विनाश के कारण दुर्भिक्ष की स्थिति हो गयी थी। क्रोनस्टेट (Kronstadt) नौ-सैनिक बेड़े में नाविकों ने सन् 1921 में गम्भीर विद्रोह कर दिया।

नई आर्थिक नीति (New Economic Policy)—विकट परिस्थितियों एवं वास्तविकताओं का साहस तथा दृढ़ निश्चय के साथ सामना करने की अपूर्व क्षमता और योग्यता तथा अपनी नीतियों के असफल होने की स्थिति में नीतियों में तत्काल परिवर्तन करने की कुशलता एवं चतुरता, एक क्रान्तिकारी नेता के रूप में लेनिन के महान् गुण थे। अपने

कुछ प्रबल समर्थकों के विरोध के उपरान्त भी लेनिन ने सन् 1921 में अपने मार्ग तथा दिशा में परिवर्तन करने का निश्चय किया। अस्तु, सन् 1921 में नई आर्थिक नीति (N.E.P.—New Economic Policy) की घोषणा की। यह मार्क्सवादी साम्यवाद से सामरिकीय पीछे लौटना था, और समाजवाद तथा पूँजीवाद के मध्य एक प्रकार समझौता था। इस नीति का मुख्य उद्देश्य कृषकों का समर्थन प्राप्त करना था। इस नई नीति के अन्तर्गत कृषकों से समस्त कृषि उत्पादन लेने की प्रचलित पद्धति को समाप्त कर दिया गया, और इसके स्थान पर खाद्यान्न के रूप में निश्चित कर भुगतान की व्यवस्था की गयी। कृषकों को वार्षिक खाद्यान्न के रूप में कर देना पड़ता था, और सन् 1924 के बाद भू-राजस्व के नकद भुगतान की भी अनुमति दे दी गयी। वार्षिक निश्चित कर के भुगतान के बाद अतिरिक्त खाद्यान्न को खुले बाजार में बेचने की भी अनुमति दे दी गयी, व्यापारी एवं कृषक लघुस्तर पर व्यापार कर सकते थे। राष्ट्रीयकरण की नीति केवल विशाल उद्योगों तथा सार्वजनिक उपयोगिता वस्तुओं पर ही प्रयुक्त होती थी। द्रव्य मुद्रा प्राप्त करने के लिए विदेशी पूँजीपतियों को विशाल स्तरीय कृषि तथा अभियान्त्रिकी योजनाओं में लाभ विभाजन की सुविधाएँ प्रदान की गयीं, परन्तु ऐसे उद्योगों के उत्पादनों को क्रय करने का अधिकार सरकार के पास था। निजी फुटकर व्यापार की कुछ सीमाओं के अन्दर ही अनुमति थी, परन्तु सरकार ने व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा के लिए सरकारी फुटकर विक्रय केन्द्र स्थापित किये थे, और उपभोक्ता सहकारी समितियों को प्रोत्साहन दिया। श्रमिकों को भी पुनः नकद भुगतान किया जाता था। सन् 1917 के बाद पहली बार सोवियट रूस ने यूरोपीय देशों के साथ व्यापार आरम्भ किया। नवीन आर्थिक नीति मार्क्सवादी सिद्धान्तों से कुछ हटकर थी, परन्तु पूर्णरूप से पूँजीवाद समर्थक नहीं थी। लेनिन एवं अन्य साम्यवादी नेता इसको अस्थायी परिवर्तन मानते थे। निःसन्देह नई नीति ने उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि की और औद्योगिक उत्पादन युद्ध से पूर्व के स्तर तक पहुँच गया। प्रारम्भिक साम्यवादी प्रयोगों की पीड़ाओं का उपचार करके नई नीति ने देश को भीषण विनाश से बचा लिया, और बोल्शेविक सरकार का अस्तित्व भी सुनिश्चित किया।

सन् 1922 एवं 1923 में भुखमरी के शिकार कृषकों की सहायता के लिए लेनिन ने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कुछ अंशों में ब्रिटेन तथा फ्रान्स से खाद्यान्नों एवं वस्त्रों के उपहार स्वीकार करने की सहमति व्यक्त कर दी। नवीन आर्थिक नीति ने साम्यवाद को पतन से बचा लिया। शनैः-शनैः नवीन आर्थिक नीति सफल होने लगी। खाद्यान्नों के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हो गयी, और दुर्भिक्ष का संकट समाप्त हो गया। औद्योगिक उत्पादन में भी वृद्धि हुई। लेनिन निःसन्देह आधुनिक इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति था। वह निर्धनों की दयनीय स्थिति एवं मार्मिक पीड़ाओं के लिए अत्यधिक चिन्तित था, और साम्यवाद में उसने निर्धनों की समस्त पीड़ाओं का सुखद उपचार देखा। वह एक उत्कृष्ट सफल राजनीतिज्ञ भी था। वह भली-भाँति जानता था कि कब समझौता करना है। वह स्टालिन के अनुरूप कभी भी अधिनायक नहीं था। लेनिन के नेतृत्व में अनेक समितियाँ रूस के शासन का संचालन करती थीं, और वह स्वयं इन समितियों का एक वरिष्ठ सदस्य था। उसको सदैव आशा थी कि एक दिन साम्यवाद विश्व के समस्त देशों में उन्नति करेगा। इसी कारण उसने सन् 1919 में, साम्यवाद कामिनटर्न (Comintern) के नाम से प्रसिद्ध तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद स्थापित किया। इसके माध्यम से वह साम्यवादी विश्व राज्य स्थापित करना चाहता था। सन् 1924 में लेनिन् का देहावसान नवोदित साम्यवादी रूस के लिए एक भीषण आघात था।

बोल्शेविक समर्थकों सहित अनेक व्यक्तियों ने मत व्यक्त किया कि लेनिन दीर्घकाल तक रूस के बाहर रहा था। इस प्रकार वह रूस की वास्तविक स्थिति को नहीं समझ पाया। उसका व्यक्तित्व अत्यधिक आकर्षक एवं भव्य था और उसमें अद्‌भुत तर्क शक्ति थी, और इसी के माध्यम से उसने बोल्शेविक दल को अपनी सुनिश्चित नीति के अनुरूप परिवर्तित कर लिया था। वह केवल सात वर्ष ही सत्ता में रहा, परन्तु उसकी अल्पावधि में उपलब्धियों ने उसको आधुनिक इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति बना दिया। उसकी साम्यवादी आस्थाएँ, सुसंस्कृत एवं परिष्कृत थीं, और उन्होंने विश्व के करोड़ों निर्धनों, पद-दलितों तथा पीड़ितों के हृदय में आशा का संचार किया था। लेनिन एक महान् राजनीतिक विचारक की अपेक्षा बहुत अधिक कुशल राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, दार्शनिक एवं विचारक था। वह अत्यधिक चतुर बुद्धिमान तथा व्यावहारिक राजनीतिज्ञ था। उसने सन् 1917 की घटनाओं का कुशलतापूर्वक उपयोग किया। उसका कार्यान्वयन का समय सुनियोजित तथा परिस्थितियों के अनुकूल होता था। सन् 1918 से सन् 1921 तक अत्यधिक जटिल स्थिति में भी, वह सदैव सन्तुलित एवं शान्त रहा। उसने अपने सहयोगियों पर अपनी प्रखर बुद्धि एवं व्यक्तित्व के मिश्रण से प्रभुत्व स्थापित किया। वह मूलरूप से सरल हृदय साधारण व्यक्ति था। अहं अथवा घमण्ड से बहुत दूर था। अपनी सफलताओं पर कभी अहंकार नहीं करता था, और अन्तर्मन से सामान्य व्यक्ति के कल्याण के लिए चिन्तित रहता था। लेनिन के एक सहयोगी क्रान्तिकारी ने उसके रूस में सत्तारूढ़ हो जाने के बाद उसकी जीवन-शैली का वर्णन किया है, "क्रेमलिन में वह अब भी एक नौकर के लिए बने एक छोटे मकान में रहता था। अभी हाल की शीत ऋतु में प्रत्येक अन्य व्यक्ति के समान उसके पास भी गर्म करने का कोई प्रबन्ध नहीं था। जब वह नाई की दुकान पर गया, यह सोचते हुए कि अनावश्यक रूप से कोई उसको पहले स्थान दे, उसने अपने क्रम में स्थान ग्रहण किया। एक बूढ़ा घर की व्यवस्था करने वाला ही उसके कमरों की देखभाल करता था और टूट-फूट ठीक करवाता था।" इसके उपरान्त भी जब साम्यवादी क्रान्ति संकट में प्रतीत हुई, उसने अपने राजनीतिक विरोधियों के विरुद्ध क्रूर तथा कठोर कार्यवाही करने में कभी भी तनिक संकोच नहीं किया। उसकी मृत्यु के समय कठोर राजनीतिक नियन्त्रण में एक शक्तिशाली गुप्त पुलिस दल नवोदित रूस का अभिन्न अंग था। लेनिन ने प्रथम सफल साम्यवादी क्रान्ति का कुशलतापूर्वक संचालन करके तथा प्रारम्भ के कुछ वर्षों में आन्तरिक एवं बाह्य संकटों से रूस को सफलतापूर्वक निकालकर इतिहास की दिशा में परिवर्तन कर दिया।

उसके जीवन काल में ही सोवियट सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने वाले अथवा इसकी उन्मुक्त आलोचना करने वाले को बन्दी बना लिया जाता था। एक विशेष रूप से स्थापित गुप्त न्यायालय में न्यायिक प्रक्रिया होती थी, और गुप्त रूप से मृत्यु दण्ड दिया जाता था। सन् 1917 में "असाधारण आयोग" क्रान्ति विरोधी गतिविधियों का दमन करने के लिए गठित किया गया था। इस आयोग ने निर्दयतापूर्वक तथा अत्यधिक कुशलतापूर्वक कार्य किया, और जारवादी पुलिस की अपेक्षा अधिक सतर्कता तथा चतुरता के साथ क्रान्ति विरोधियों का पता लगाया। सन् 1922 में इस आयोग, 'चेकस' का स्थान संक्षेप में ओ. जी. पी. यू. के नाम से विख्यात, एक नये राजनीतिक पुलिस संगठन ने लिया।

रूस की विदेश नीति (Soviet Russia's Foreign Policy)—सन् 1919 में लेनिन ने अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादियों का, सामान्य रूप से कामिनटर्न (Comintern) के रूप में विख्यात तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद का मास्को, जो इसका मुख्यालय था, का आयोजन किया था। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद ने विश्व क्रान्ति की नीति के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की

और सर्वत्र पूँजीवादी विरोधी गतिविधियाँ संचालित करने का विशद् कार्यक्रम बनाया। साम्यवादियों एवं सोवियट सरकार ने कुछ समय तक परस्पर सौहार्द्रतापूर्वक कार्य किया। सन् 1918 से सन् 1922 तक रूस की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य समस्त विश्व में विश्व क्रान्ति को उत्तेजित करके और साम्यवादी उपद्रवों को समुचित सहायता देकर प्रोत्साहित करना था। बोल्शेविकों ने एशियावासियों से साम्यवाद का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से पश्चिमी शक्तियों के साम्राज्यवाद को त्याग दिया। रूस की सोवियट सरकार ने जार के शासनकाल में चीन में प्राप्त विशिष्ट विशेषाधिकार एवं तुर्की में क्षेत्रीय तथा वित्तीय अधिकारों को त्याग दिया। ब्रिटिश शासन का सक्रिय विरोध करने के लिए अफगानों को उत्तेजित किया। इस नीति के परिणामस्वरूप विश्व शक्तियाँ परस्पर उलझ गयीं, और सोवियट रूस कुछ काल के लिए यूरोपीय राजनीति से विलग रहा।

लेकिन लेनिन एवं अन्य सोवियट नेताओं ने अनुभव किया कि पश्चिमी देशों में पूँजीवाद की जड़ें बहुत मजबूत थीं। इनको सहज ही उखाड फेंकना सम्भव नहीं था। रूस स्वयं में विशुद्ध साम्यवादी सिद्धान्त एवं विचारधारा असफल हो चुकी थी, और लेनिन ने अपनी नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत पर्याप्त संशोधन किया था। इसके अतिरिक्त लेनिन आश्वस्त था कि मध्यवर्ग के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के बिना बोल्शेविकों की सत्ता को सुदृढ़ करना, और रूस की अव्यवस्थित आर्थिक स्थिति में सुधार करना सम्भव नहीं था। जब तक बोल्शेविक अपना प्रचार कार्य बन्द नहीं करते, रूस को विदेशी उत्पादक एवं प्रौद्योगिकी, जिनकी अतीव आवश्यकता थी, मिलने की कोई आशा नहीं थी। अस्तु, लेनिन रूस वाणिज्यिक एवं कूटनीतिक एकाकीपन समाप्त करना चाहता था। उसने इंग्लैण्ड के साथ सन् 1921 में इंग्लैण्ड-रूस (Anglo-Russian Trade Agreement) व्यापारिक समझौता किया, और एशियावासियों को ब्रिटेन के विरुद्ध उत्तेजित नहीं करने का वचन दिया। एक ही वर्ष में 11 अन्य देशों के साथ इसी के अनुरूप व्यापारिक समझौते किये। इस प्रकार रूस को अनेक देशों से वास्तविक (de-facto) मान्यता मिल गयी, यद्यपि पूर्णरूपेण कूटनीतिक सम्बन्ध पुनर्स्थापित नहीं किये गये थे, लेकिन इंग्लैण्ड में मैकडोनाल्ड (Mac Donald) के नेतृत्व में श्रमिक दल के सत्ता में आते ही इंग्लैण्ड ने सन् 1921 में रूस को बिना शर्त कानूनी मान्यता दे दी। सन् 1924 तक इटली एवं अन्य देशों ने रूस को कानूनी मान्यता दे दी थी। इस प्रकार रूस ने पुनः विश्व राजनीति में प्रवेश किया। राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद सन् 1925 में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की दिशा में लोकार्नो समझौता (Locarno Pact) सर्वाधिक महान् सामूहिक उपाय था। इस समझौते पर ब्रिटेन, जर्मनी, बेल्जियम, फ्रान्स एवं इटली ने हस्ताक्षर किये थे। इसके अतिरिक्त फ्रान्स और जर्मनी, जर्मनी एवं पोलैण्ड, जर्मनी और चैकोस्लोवाकिया के मध्य विवादों की स्थिति में पंच फैसलों की व्यवस्था थी। लोकार्नो समझौते में रूस नहीं था, और उसको इसके क्रियान्वयन में सन्देह भी था। अस्तु, रूस ने अपनी सुरक्षा के लिए जर्मनी, तुर्की एवं अन्य अनेक पड़ोसी देशों के साथ अनाक्रमण समझौते (Non-aggression Pacts) किये। सन् 1924 में लेनिन के निधन के बाद स्टालिन सत्तारूढ़ हुआ और सोवियट विदेश नीति अत्यधिक जटिल हो गयी। यद्यपि स्टालिन साम्यवाद की विश्वव्यापी विजय में विश्वास करता था, परन्तु उसने रूस में व्यवहार्य समाजवाद का मार्ग ग्रहण किया। पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता के लिए शान्ति अति आवश्यक है। विदेशी पूँजी तथा विदेशी प्रौद्योगिकी कुशल कर्मचारियों के अभाव में रूस का द्रुतगति से औद्योगीकरण सम्भव नहीं था। अस्तु, उसने तत्काल विश्व क्रान्ति की कामिनटर्न योजना को

अस्वीकार कर दिया। उसने घोषणा की कि रूस की सफलता और उनकी उपलब्धि ही साम्यवाद का सर्वोत्कृष्ट प्रचार होगा। यह भी विश्वास किया जाता था कि रूस को प्रत्यक्ष रूप से सशस्त्र संघर्ष से अलग रहना चाहिए, परन्तु यूरोपीय शक्तियों के मध्य अनिवार्य रूप से सशस्त्र संघर्षों से लाभ उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए।

स्टालिन को सैन्यवादी जापान तथा हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी की आक्रमणात्मक कार्यवाहियों का सन्देह था। अस्तु, उसने राष्ट्र संघ (League of Nations) के प्रति उदासीनता की नीति त्याग कर, अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए सन् 1934 में राष्ट्र संघ की सदस्यता स्वीकार कर ली। विश्व में भीषण आर्थिक दबाव ने नाजीवादियों को प्रोत्साहित किया। ट्रोटस्की रूस के नेताओं में अपवाद था। स्टालिन ने कूटनीतिक चतुरता से कार्य किया। वह सामूहिक सुरक्षा के लिए अथक प्रयास कर रहा था। जर्मनी की साम्राज्यवादी योजनाओं को निष्फल करने के लिए सन् 1935 में परस्पर सहायता के आधार पर फ्रान्स-सोवियट तथा सोवियट-चैकोस्लोवाकिया समझौते किये। इन समझौतों के सार्वजनिक समर्थन तथा फासिस्टवाद के विकास को रोकने के लिए समस्त यूरोप में जनमोर्चों का गठन किया गया।

सन् 1938 में एक महत्वपूर्ण मध्य रात्रि तक स्टालिन को विश्वास हो गया कि पश्चिमी शक्तियाँ विश्वसनीय मित्र नहीं थीं। जर्मनी द्वारा सहज एवं सरल ढंग से सूडेटनलैण्ड के विलय से स्टालिन को अत्यधिक मानसिक पीड़ा हुई। एकमात्र रूस ने ही चैकोस्लोवाकिया को सैनिक सहायता दी थी। ठीक उसी समय मंचूरिया तथा मंगोलिया की सीमाओं पर रूस तथा जापान की सशस्त्र सेनाओं के मध्य सशस्त्र संघर्ष हुए।

ब्रिटेन में चर्चिल रूस के साथ मैत्री सन्धि करने के लिए उत्सुक था, परन्तु चैम्बरलेन को रूस पर कोई विश्वास नहीं था, परन्तु स्टालिन की फ्रान्स तथा ब्रिटेन के साथ परस्पर सहयोग पर आधारित सामूहिक सुरक्षा की नीति में मध्य यूरोप में घटनाओं के परिणामस्वरूप क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया था। स्टालिन को ब्रिटेन एवं फ्रान्स के नेताओं पर किंचित भी विश्वास नहीं था। फ्रान्स और ब्रिटेन म्यूनिख में हिटलर की माँगों को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गये थे। अस्तु, स्टालिन ने विवश होकर अपनी नीति में परिवर्तन किया और द्वितीय विश्व युद्ध से कुछ पूर्व सन् 1939 में जर्मनी के साथ तटस्थता के समझौते पर हस्ताक्षर किये। यदि उस समय हिटलर ने रूस पर आक्रमण किया होता, तो वह लाभप्रद स्थिति में रहता। सन् 1941 में हिटलर ने बारबरोसा के विरुद्ध सैनिक अभियान आरम्भ किया था। स्टालिन को स्वप्न में भी इस आक्रमण की आशा नहीं थी, इसी कारण उसने अपनी लाल सेना को सतर्क नहीं किया था। भाग्य की विडम्बना ही थी कि रूस ने सामरिक महत्व के कच्चे माल की जर्मनी को आपूर्ति की थी और नाजियों ने इसका भुगतान करना भी बन्द कर दिया था, परन्तु जून, 1941 में हिटलर ने आक्रमण कर दिया। पहले 6 महीनों में लाखों सोवियट सैनिकों ने आत्म-समर्पण कर दिया।

पंचवर्षीय योजनाएँ (Five Year Plans)—सन् 1929 में ही स्टालिन ने विदेशी आक्रमणों का सामना करने के लिए सोवियट अर्थव्यवस्था के मूल आधार में ही रूपान्तर करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लाल सेना को ही संस्थाओं का रूप-आकार बनाकर कृषि को सामूहिक आधार माना गया। स्टालिन रूस की अर्थव्यवस्था में पुनरुत्थान करने के लिए कृत संकल्प था। उसने दीर्घकालीन पंचवर्षीय योजना का सूत्रपात किया। यह योजना सन् 1928 में भावी पाँच वर्षों के लिए सोवियट संघ के आर्थिक तथा

सांस्कृतिक जीवन का पूर्ण पूर्वानुमान थी। राष्ट्रीयकरण, उत्पादन में वृद्धि तथा औद्योगीकरण इस योजना के मुख्य सिद्धान्त थे। आर्थिक आत्म-निर्भरता तथा व्यक्तिगत पूँजीवाद का उन्मूलन मुख्य उद्देश्य थे। समस्त पंचवर्षीय योजनाओं के साथ राज्य सरकार का दमनकारी तन्त्र था। ओ. जी. पी. यू. (O.G.P.U., The Soviet Secret Police, The O. stands for Obyedinyennoye) तथा एन. के. वी. डी. दो गुप्त सेवाओं का गठन किया गया। इन संस्थाओं ने कृषकों द्वारा सामूहिक कृषि के विरोध का क्रूरता तथा निर्दयतापूर्वक दमन किया और श्रमिक संघों को दल के संचारण केन्द्र तक सीमित कर दिया।

पंचवर्षीय योजनाओं ने उत्पादन के लक्ष्य निश्चित किये। विशेष उद्योगों के लिए पाँच वर्ष की अवधि में इन लक्ष्यों की प्राप्ति अनिवार्य थी। एक दलीय पुलिस राज्य के समस्त स्रोतों द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति को आश्वस्त करने के लिए निरन्तर सक्रिय रहती थी। डोनेट्ज बेसिन के एक कोयला खदान श्रमिक स्टाखनोव (Stakhanov) ने अपने उत्पादन में 1,400 प्रतिशत की वृद्धि की। सरकारी सूचना एवं प्रसारण सेवाओं ने उसकी उपलब्धियों का व्यापक प्रचार किया, और उत्पादन में वृद्धि के उद्देश्य से 'समाजवादी प्रतिस्पर्द्धा' को प्रोत्साहित करने के लिए स्टाखनोववादी आन्दोलन का शुभारम्भ हुआ। लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल कारखानों के प्रबन्धकों की तत्काल सेवा मुक्ति तथा अपमान सम्भवतः सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए।

ये आँकड़े निश्चित रूप से अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। अनेक निश्चित लक्ष्य उत्पादन की दृष्टि से बहुत पीछे रह गये, परन्तु उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हुईं। परिणामस्वरूप रूस के कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में अनेक नये विशाल नगरों का आविर्भाव हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियाँ सांख्यिकी आंकड़ों से कहीं अधिक थीं। कोयला, पिग आयरन और पेट्रोलियम का उत्पादन दुगुना हो गया। विद्युत शक्ति आपूर्ति तिगुनी हो गयी। अनेक स्थानों पर ट्रैक्टरों, मोटर वाहनों आदि के विशाल कारखाने स्थापित किये गये। श्रमिकों को अपने निश्चित मात्रा से अधिक उत्पादन के लिए पुरस्कारों तथा विशेष राशन द्वारा पुरस्कृत करके प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार नागरिकों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए हर सम्भव प्रयास किया गया। प्रौद्योगिक विद्यालय स्थापित किये गये एवं विदेशी कुशल कर्मचारियों की सेवाओं का सदुपयोग किया गया। इतनी अल्पावधि में इतने अधिक विशाल उद्योगों तथा उद्यमों की स्थापना इतिहास में एक अद्वितीय घटना है।

कृषि के क्षेत्र में धनी कृषकों अथवा कुलकों द्वारा व्यक्तिगत कृषि को समाप्त करना पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य था। सामूहिक कृषि की व्यवस्था की गयी। छोटे कृषकों के समूह बनाकर सहकारिता के आधार पर सामूहिक कृषि का शुभारम्भ किया गया। विशेष सुविधाएँ जैसे करों में कमी एवं सरल ऋण सुविधाएँ देकर सामूहिक कृषि को प्रोत्साहित किया गया। सामूहिक कृषि का विरोध करने वाले कुलकों का निर्ममतापूर्वक दमन किया गया। वैज्ञानिक यन्त्रों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया गया। सामूहिक कृषि में कृषकों को उनके धन तथा श्रम के अनुपात में कुल लाभ का लाभांश मिलता था।

द्वितीय योजना यद्यपि कम महत्वाकांक्षी थी परन्तु अधिक सफल थी। इस अवधि में मास्को-डोनेट रेलवे, बाल्टिक-श्वेत सागर नहर आदि विशाल योजनाएँ पूर्ण हुईं। 10 वर्ष की अवधि में रूस के उद्योगों का रूपान्तर हो गया। रूस के अर्थशास्त्रियों ने दावा किया कि वार्षिक वृद्धि दर 20% थी जबकि पश्चिमी देशों के अर्थशास्त्रियों ने मत व्यक्त किया कि वृद्धि दर 12% से 14% थी। निःसन्देह यह एक महान् उपलब्धि थी।

सन् 1931 में कृषि फसलों की अत्यधिक क्षति हुई और सन् 1932-33 में यूक्रेन में भीषण दुर्भिक्ष हुआ। तीव्र विरोध, भीषण विपत्तियों तथा पीड़ाओं के उपरान्त भी स्टालिन ने

योजनाओं के कार्यान्वयन पर बल दिया। रूस स्थित मैनचेस्टर गार्जियन के संवाददाता मैल्काम मगरिज ने सन् 1933 में काक्शस के एक छोटे बाजार की यात्रा का वर्णन किया है। मैंने एक व्यक्ति से पूछा, "तुम्हारे साथ स्थितियाँ कैसी हैं ?" उसने चारों ओर उत्सुकता से, यह देखने के लिए कि आसपास कोई सैनिक तो नहीं है, देखा और कहा, "हमारे पास कुछ नहीं है, बिल्कुल कुछ नहीं, वे हमसे सब कुछ ले गये हैं।" वह वहाँ से भाग गया। यह नितान्त सत्य था। उनके पास कुछ नहीं था। वे सब कुछ ले गये थे। यह दुर्भिक्ष भी संगठित तथा कृत्रिम है। कुछ खाद्यान्न जो वे ले गये हैं, विदेशों को निर्यात किया जा रहा है। कृषक इस तथ्य को भली-भाँति जानते हैं।

सामूहिक कृषि के वास्तविक मूल्य का आकलन करना कठिन है। एक रूढ़िवादी अनुमान के अनुसार 20 लाख व्यक्तियों का देहावसान हो गया तथा अन्य लाखों व्यक्ति आश्रयविहीन हो गये। इसके उपरान्त भी इस नीति से कृषि उत्पादनों में कोई तात्कालिक उन्नति नहीं हुई। सन् 1929 से 1940 की अवधि में केवल सन् 1938 में कृषि उत्पादनों में वृद्धि हुई था अन्यथा सदैव उत्पादन कम रहा।

शिक्षा एवं धर्म (Education and Religion)—यथार्थ में सन् 1917 के उपरान्त रूसवासियों ने उनकी पीड़ाओं से सुखद संसार के उदय की आशा से, अतीत की अपेक्षा अधिक कष्टों तथा पीड़ाओं को सहन किया। कारखानों अथवा सामूहिक खेतों पर कठोर श्रम करने वाले धर्मान्ध साम्यवादी नवयुवक ही अपने देश के स्तुत्य नायक थे, जो सम्भवतः जार के शासन काल में सम्भव नहीं था। कुछ क्षेत्रों में वे पूर्वापेक्षा अधिक सुखी थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना का निरक्षरता उन्मूलन प्रमुख विषय था। साम्यवादी मध्यवर्गीय विचारधारा सिद्धान्तों एवं मान्यताओं को ध्वस्त करके नई संस्कृति के निर्माण के लिए उत्सुक थी। समस्त सोवियट संघ में शैक्षणिक एवं तकनीकी शिक्षा देने के लिए साम्यवादी नियन्त्रित विद्यालय स्थापित किये गये। प्रत्येक शिशु के लिए सात वर्ष तक शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी। सन् 1914 में साक्षरता दर केवल 27% थी जो सन् 1933 में बढ़कर 81% हो गयी। सन् 1938 तक रूस के प्रत्येक बच्चे को कम से कम चार वर्ष तक विद्यालय में शिक्षा उपलब्ध थी। नगरों में बच्चे सात वर्ष तक शिक्षा की आशा कर सकते थे। स्वास्थ्य तथा कल्याण सेवाओं में भी पर्याप्त प्रगति हुई। युवा पीढ़ी पर साम्यवाद का निर्विवाद प्रभुत्व था।

सैद्धान्तिक दृष्टि से मार्क्सवादी दर्शन में धर्म का कोई स्थान नहीं है। लेनिन एवं उसके अन्य अनुयायियों के लिए धर्म 'एक जनता का स्वापक' (मन्द कर देने वाला) था। धर्म जनता के मस्तिष्क को तत्कालीन विश्व के प्रचलित दोषों से हटाकर अन्य जगत में पुरस्कार का वचन देने वाला उपकरण मात्र था। रूस के रूढ़िवादी चर्च सदैव ही जारवादी शासन के सर्वाधिक निष्ठावान मित्र रहे थे। धर्म के प्रति पूर्णरूप से उदासीन साम्यवादी रूढ़िवादी चर्च को कठोरतम आघात पहुँचाने के लिए कृत संकल्प थे। सन् 1918 में चर्चों को विघटित कर दिया गया। उनकी चल-अचल सम्पत्तियों को अधिग्रहीत कर लिया गया, एवं अनेक विशाल प्रासादों को संग्रहालयों एवं क्लबों में परिवर्तित कर दिया गया। समस्त धार्मिक उपदेशों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। नास्तिकता को प्रोत्साहित किया गया। शिक्षा एवं विवाहों पर पादरियों के नियन्त्रण को समाप्त कर दिया गया। साम्यवादी सदस्यों के लिए चर्च में उपस्थिति पर प्रतिबन्ध था लेकिन नागरिक स्वतन्त्र थे।

स्टालिन का अधिनायकतन्त्र (Stalin's Dictatorship)—स्टालिन के अधिनायकतन्त्र को चुनौती देने वाले प्रत्येक व्यक्ति की नृशंस हत्या उसकी सफलता का दूसरा मुख्य कारण थी। सन् 1934 में स्टालिन ने अपने शत्रुओं के उन्मूलन की तीव्र प्रक्रिया आरम्भ की।

सन् 1917 की क्रान्ति के सहयोगियों तथा नेताओं को बन्दी बनाकर उनका वध करवा दिया गया। दो (महान्) शो (Show) विशेष न्यायालयों के दल के सदस्यों ने स्टालिन के विरुद्ध षड्यन्त्र को 'स्वीकार' किया। स्टालिन ने संदेहास्पद प्रमुख सेनाधिकारियों तथा गुप्त पुलिस के सदस्यों का भी उन्मूलन किया। स्टालिन किसी पर विश्वास नहीं करता था। अतः कोई भी सुरक्षित नहीं था। जब स्टालिन ने स्वयं को सुरक्षित अनुभव किया, 20 रूसवासियों में एक को बन्दी बनाया जा चुका था। साम्यवादी दल में एक-तिहाई सदस्यों को समाप्त कर दिया गया था। देश के कारागृहों की कुल जनसंख्या 1 करोड़ हो गयी थी। समस्त विरोधियों को समाप्त कर दिया गया था, और स्टालिन ने जार के अनुरूप निरंकुशतापूर्वक शासन किया।

विशाल उद्योगों की स्थापना स्टालिन की सकारात्मक उपलब्धि थी। इस्पात तथा कोयले के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई और सोवियट संघ भारी वाहनों का विश्व में सर्वाधिक उत्पादक देश बन गया। उल्लेखनीय है कि स्टालिन ने देश के स्रोतों का उपयोग किया। पश्चिमी देशों से पूँजी निवेश की अपेक्षा नहीं की। उद्योगों की सहायता के लिए कृषि का सर्वाधिक उपयोग किया और सामान्य उपभोक्ता से धन की एक-एक बूँद निचोड़ ली। पूँजी संचय के लिए स्टालिन ने क्रूर तथा निर्मम परन्तु प्रभावशाली उपाय किये।

कुछ आलोचकों ने स्टालिन की उपलब्धियों की कटु आलोचना की है। स्टालिन ने अपर्याप्त सांख्यिकी सूचनाओं के आधार पर सामूहिक कृषि का शुभारम्भ किया। तीस के दशक में सामूहिक कृषि के लिए कृषकों को बर्बर एवं अमानुषिक यातनाएँ दी गयीं। कृषकों ने खाद्यान्न उत्पादन का 50% कुल घोड़ों की संख्या का 50% तथा भेड़ों एवं बकरियों का 66% नष्ट कर दिया। अनेक कृषक, जब तक उनको यह ज्ञान नहीं हुआ कि हिटलर की उनके लिए योजनाएँ स्टालिन की अपेक्षा अधिक क्रूर, बर्बर एवं अमानुषिक थीं, जर्मन सेना का स्वागत करने के लिए उत्सुक थे।

स्टालिन के ऊपर दोषारोपण किया जा सकता है कि उसने कृषि उत्पादन 25 वर्ष पीछे कर दिया तथा भविष्य के लिए एक भयावह पूर्वोदाहरण प्रस्तुत किया। स्टालिन ने एक बार स्वयं कहा था कि उसका देश दो असमान पैरों पर चल रहा था। इस विकलांगता के लिए वह स्वयं दोषी था।

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. 1917 की रूसी क्रान्ति के कारणों एवं परिणामों का परीक्षण करें।
   Discuss the causes and effects of the Russian Revolution of 1917.
   (बिलासपुर, 1998, 2000; जबलपुर, 1996, 99; लखनऊ, 1991, 93, 95, 96, 98, 2000; गोरखपुर, 1991, 94, 98; भोपाल, 1999; मगध एवं बी. आर. अम्बेदकर, 1996, 98)
2. "1917 की रूस की क्रान्ति एक आर्थिक विस्फोट थी जिसमें निरंकुश शासकों की मूर्खता सहायक हुई।" विवेचन करें।
   The Russian Revolution of 1917 was an economic explosion hastened by that stupidities of the autocratic Government." Discuss. (पटना, 1996)
3. सोवियट रूस के आधुनिकीकरण में स्टालिन के योगदान का विवेचन करें।
   Examine Stalin's contribution to the modernisation of Soviet Russia.
   (बिलासपुर, 2000; बी. आर. अम्बेदकर, 1996, 98)

4. लेलिन काल में सोवियट रूस की विदेश नीति की विवेचना करें।
Discuss Soviet Russian Foreign Policy during Lenin's period.
(बिलासपुर, 1997)

5. आधुनिक रूस के निर्माण में लेनिन के योगदान का समीक्षात्मक विश्लेषण करें।
Critically examine Lenin's contribution to the construction of modern Russia. (मगध, 1993; रांची, 1997, 99; भोपाल, 1996)

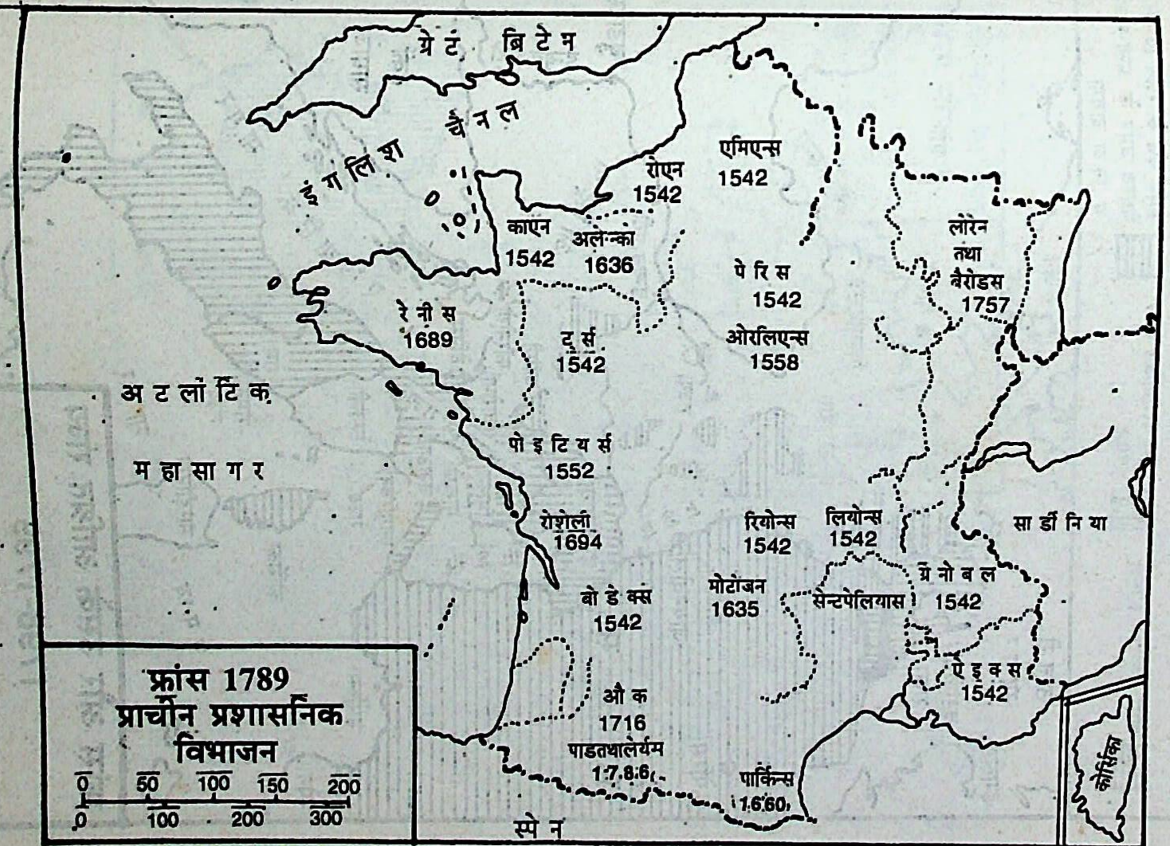
6. 1917 ई. की रूसी क्रान्ति के कारणों का परीक्षण करें।
Examine the causes of the Russian Revolution. (पटना, 1998)

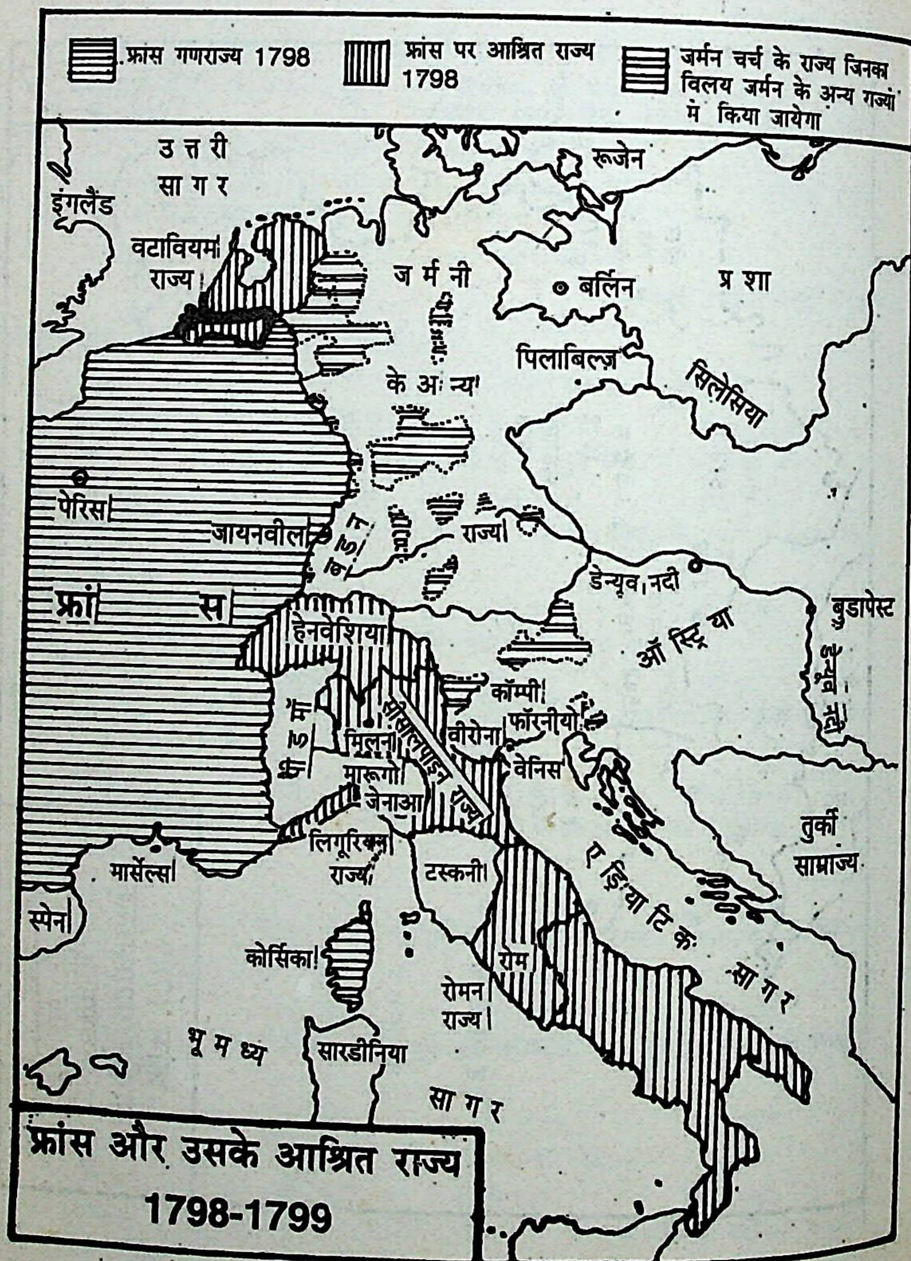
7. रूस की बोल्शेविक क्रान्ति पर एक निबन्ध लिखिये।
Write an essay on Russian Bolshevik Revolution.
(रायपुर, 1998; मेरठ, 1993)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

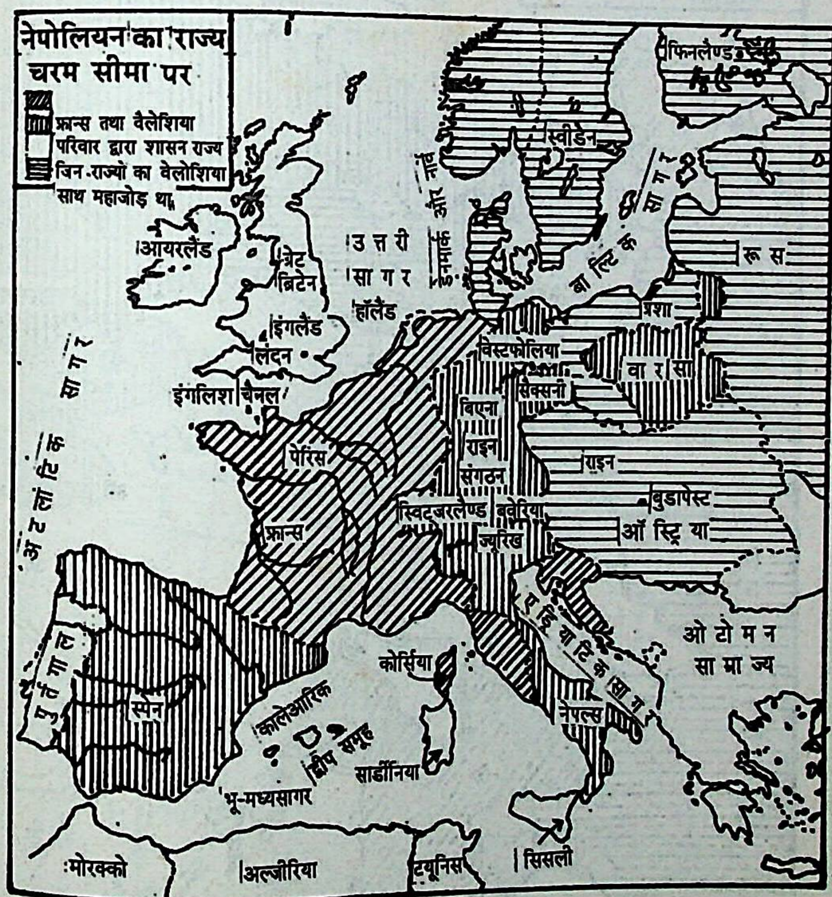
1. निकोलस द्वितीय ने सन् .... में रूस की क्रान्ति तक शासन किया—
(क) 1915 (ख) 1916 (ग) 1917 (घ) 1918
2. सन् .... तक रूस विश्व के औद्योगिक देशों में चतुर्थ स्थान पर आ गया था—
(क) 1902 (ख) 1903 (ग) 1904 (घ) 195
3. भौगोलिक दृष्टि से रूस 18 करोड़ की जनसंख्या तथा कुल विश्व के .... भूभाग वाला सर्वाधिक विशाल देश था—
(क) 1/6 (ख) 5/6 (ग) 6/7 (घ) 7/8
4. कुल जनसंख्या के .... व्यक्ति कृषि व्यवसाय में व्यस्त थे—
(क) 3/7 (ख) 4/7 (ग) 5/7 (घ) 6/7
5. सन् .... में स्थापित 'सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी' मार्क्स के समाजवादी सिद्धान्त को साकार रूप प्रदान करने के लिए कृत संकल्प थी—
(क) 1895 (ख) 1897 (ग) 1898 (घ) 1899
6. 22 जनवरी, ... का अमानुषिक रक्तपात रूस के इतिहास में 'लाल रविवार' के रूप में प्रसिद्ध है—
(क) 1905 (ख) 1906 (ग) 1909 (घ) 1908
7. जुलाई .... में निरंकुश शासन के सर्वाधिक भ्रष्ट एवं चरित्रहीन सेनानायक प्लेव को बम विस्फोट से नष्ट कर दिया गया—
(क) 1902 (ख) 1903 (ग) 1904 (घ) 1905
8. 7 नवम्बर, ... में द्वितीय क्रान्ति हुई और केरेन्सकी की अन्तरिम सरकार को अपदस्थ कर दिया गया—
(क) 1914 (ख) 1915 (ग) 1916 (घ) 1917
9. सन् .... में रूस में रूढ़िवादी चर्च को समाप्त कर दिया—
(क) 1917 (ख) 1918 (ग) 1919 (घ) 1920
10. साम्यवादियों ने देश पर शासन करने के लिए सन् .... में एक संविधान स्वीकार किया—
(क) 1916 (ख) 1917 (ग) 1918 (घ) 1919

[उत्तर—1. (ग), 2. (ग), 3. (क), 4. (घ), 5. (ग), 6. (क), 7. (ग), 8. (घ), 9. (ख), 10. (ग)।]

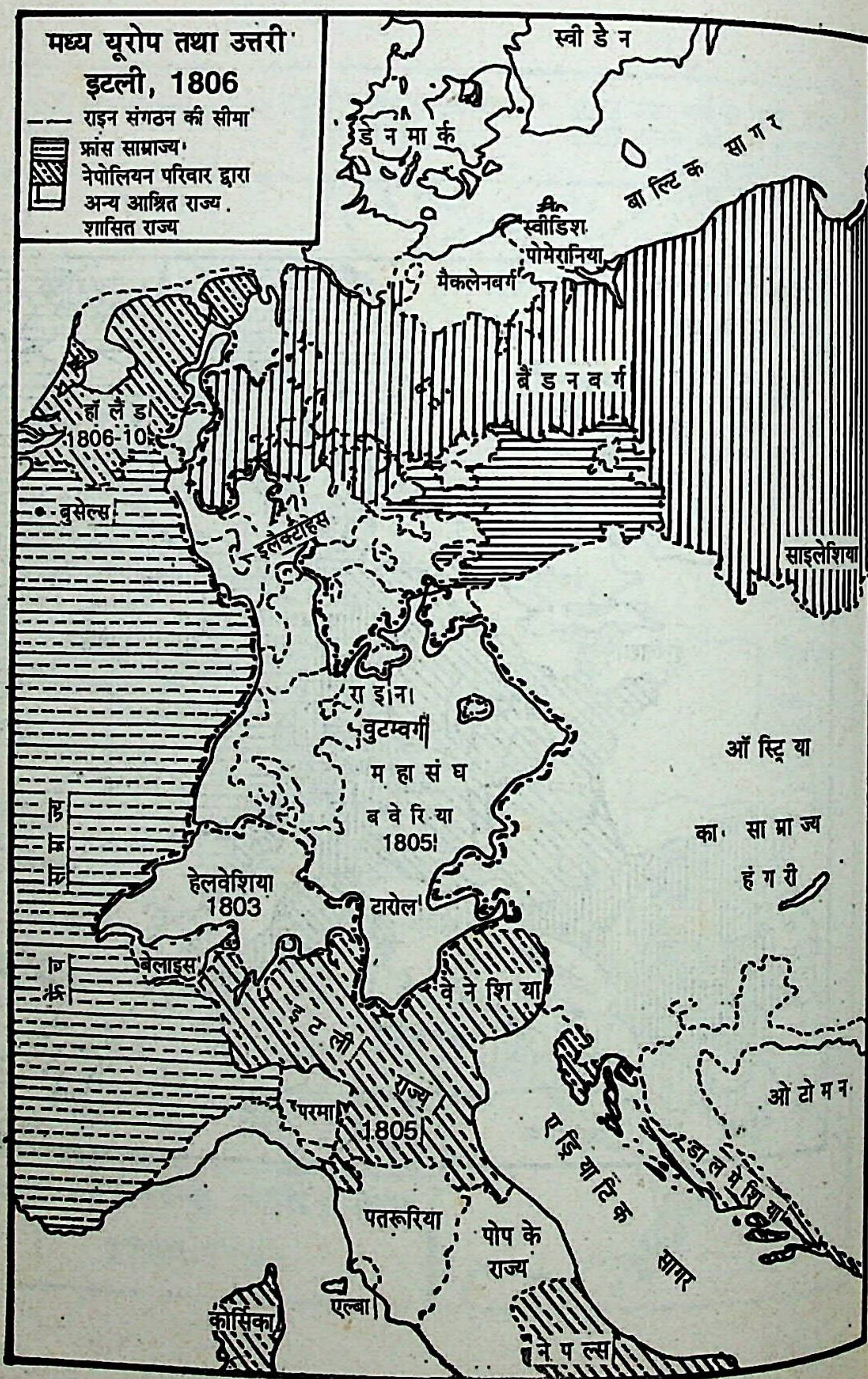

ग्रेट ब्रिटेन
इंगलिश चैनल
अटलांटिक
महासागर
स्पेन
सार्डीनिया
कोर्सिका
एमिएन्स 1542
रोएन 1542
काएन 1542
अलेन्का 1636
पेरिस 1542
लोरेन तथा बैरोइस 1757
रेनीस 1689
टूर्स 1542
ओरलिएन्स 1558
पोइटियर्स 1552
रोशेली 1694
रियोन्स 1542
लियोन्स 1542
ग्रेनोबल 1542
मोटोंजन 1635
बोर्डेक्स 1542
सेन्टपेलियास
ऐइक्स 1542
औक 1716
पाडतथालेर्यम 1786
पार्किन्स 1660
फ्रांस 1789
प्राचीन प्रशासनिक
विभाजन
0 50 100 150 200
0 100 200 300

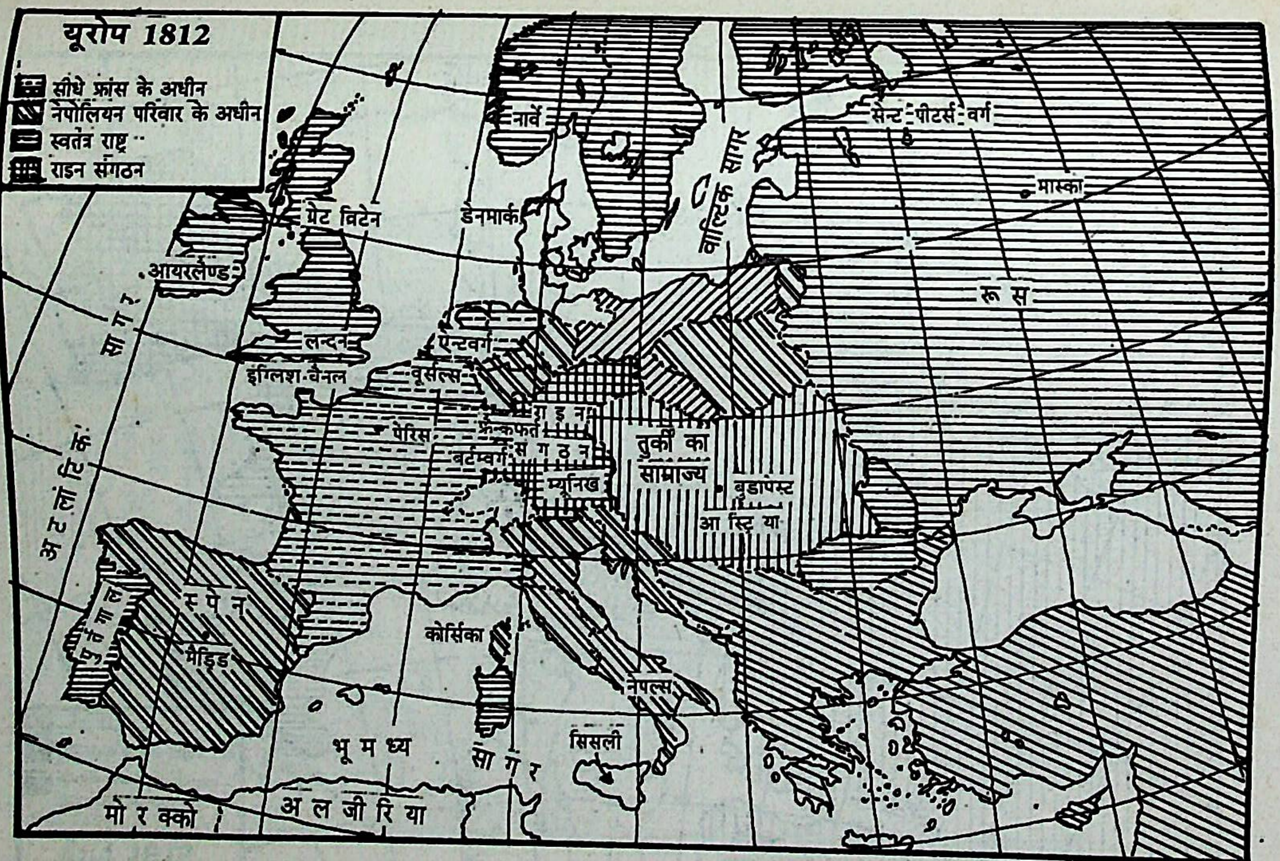


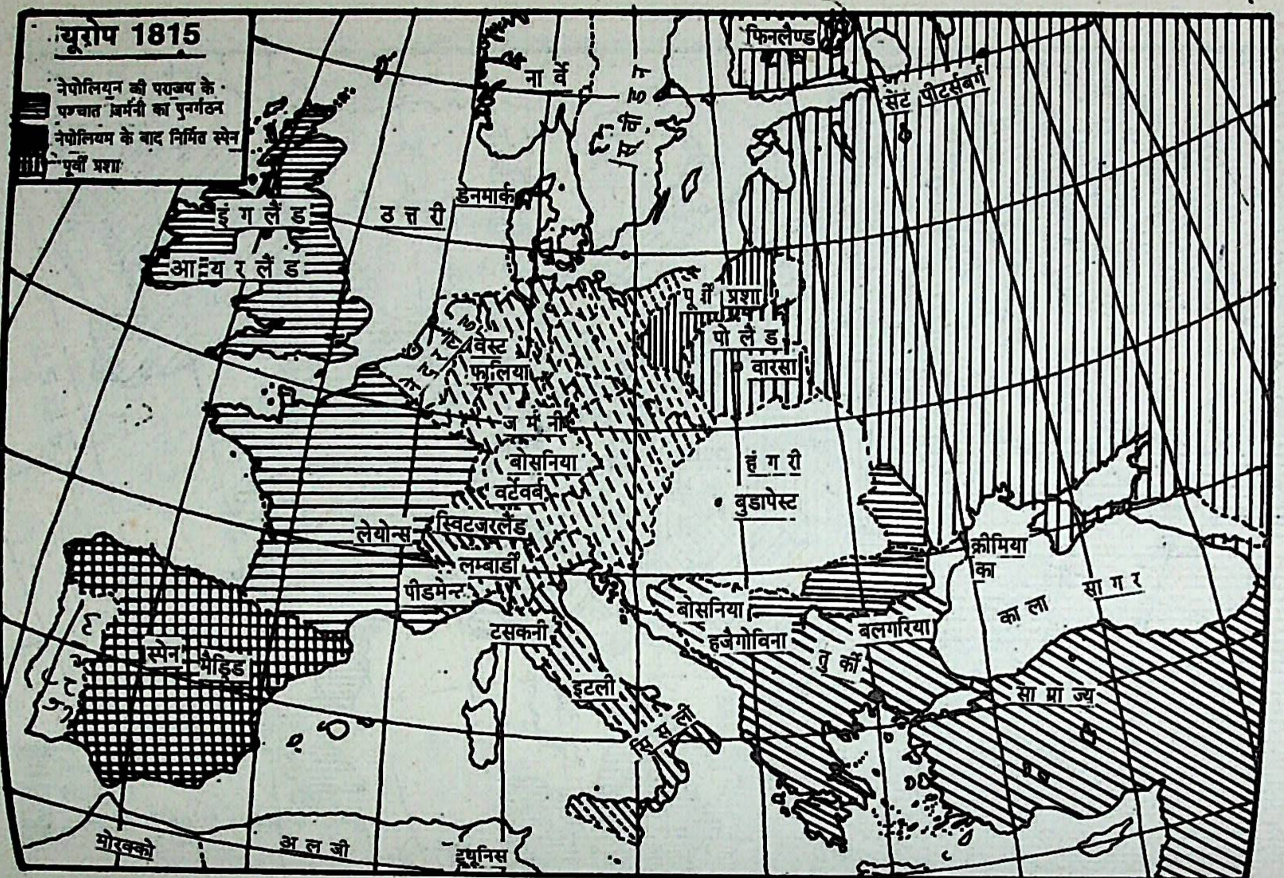
फ्रांस और उसके आश्रित राज्य 1798-1799

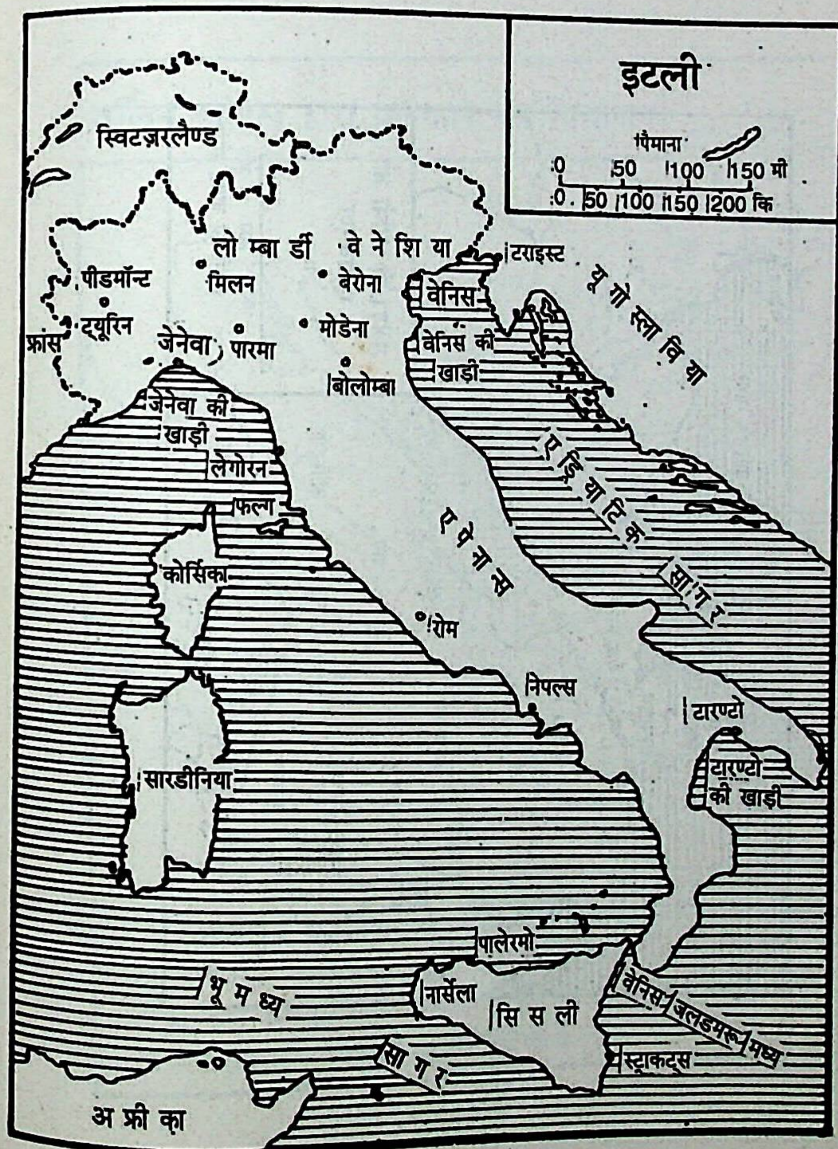


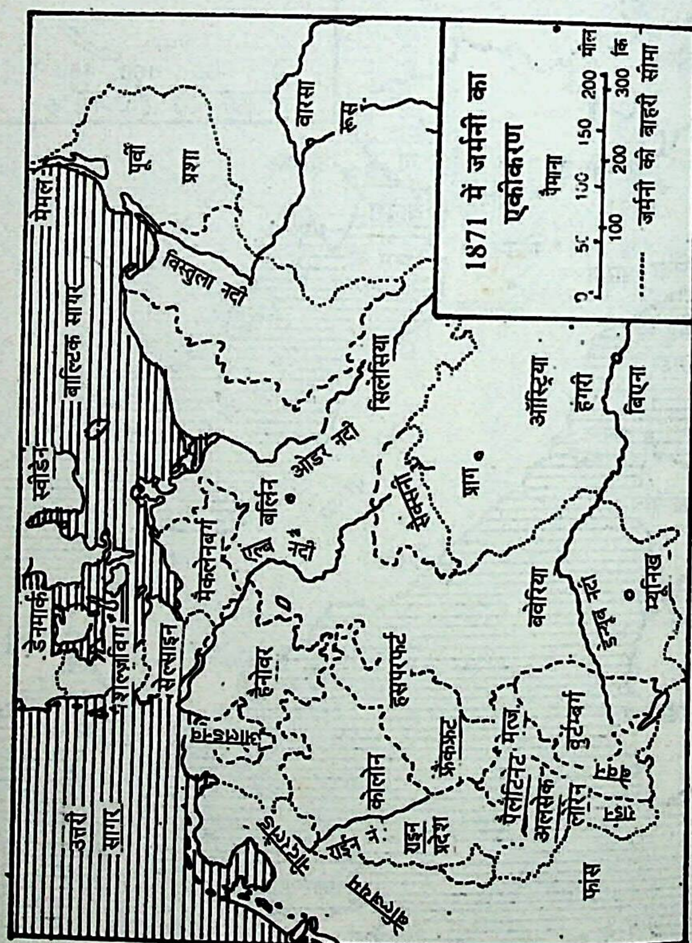
नेपोलियन का राज्य चरम सीमा पर
फ्रान्स तथा वैलेशिया परिवार द्वारा शासन राज्य
जिन राज्यों का वेलोशिया साथ महाजोड़ था
आयरलैंड
ग्रेट ब्रिटेन
इंगलैंड
लंदन
इंगलिश चैनल
उत्तरी सागर
हॉलैंड
डेनमार्क और नार्वे
स्वीडन
फिनलैंड
बाल्टिक सागर
रूस
प्रशा
वारसा
विस्टफोलिया
सेक्सनी
विएना
राइन संगठन
राइन
बुडापेस्ट
ऑस्ट्रिया
पेरिस
फ्रान्स
स्विटजरलेण्ड
बवेरिया
ज्यूरिख
एड्रियाटिक सागर
ओटोमन साम्राज्य
अटलांटिक सागर
पुर्तगाल
स्पेन
कोर्सिया
कालेआरिक द्वीप समूह
सार्डीनिया
नेपल्स
भू-मध्यसागर
मोरक्को
अल्जीरिया
ट्यूनिस
सिसली


मध्य यूरोप तथा उत्तरी इटली, 1806
राइन संगठन की सीमा
फ्रांस साम्राज्य
नेपोलियन परिवार द्वारा शासित राज्य
अन्य आश्रित राज्य
स्वीडेन
डेनमार्क
बाल्टिक सागर
स्वीडिश पोमेरानिया
मैकलेनबर्ग
बैंडनबर्ग
हॉलैंड 1806-10
बुसेल्स
इलेक्टोरेट
साइलेशिया
राइन।
वुटम्बर्ग
महासंघ
बवेरिया 1805
ऑस्ट्रिया
का साम्राज्य
हंगरी
हेलवेशिया 1803
टारोल
वेलाइस
वेनेशिया
इटली राज्य 1805
परमा
ओटोमन
एड्रियाटिक सागर
डालमेशिया
पतरूरिया
पोप के राज्य
एल्बा
कोर्सिका
नेपल्स

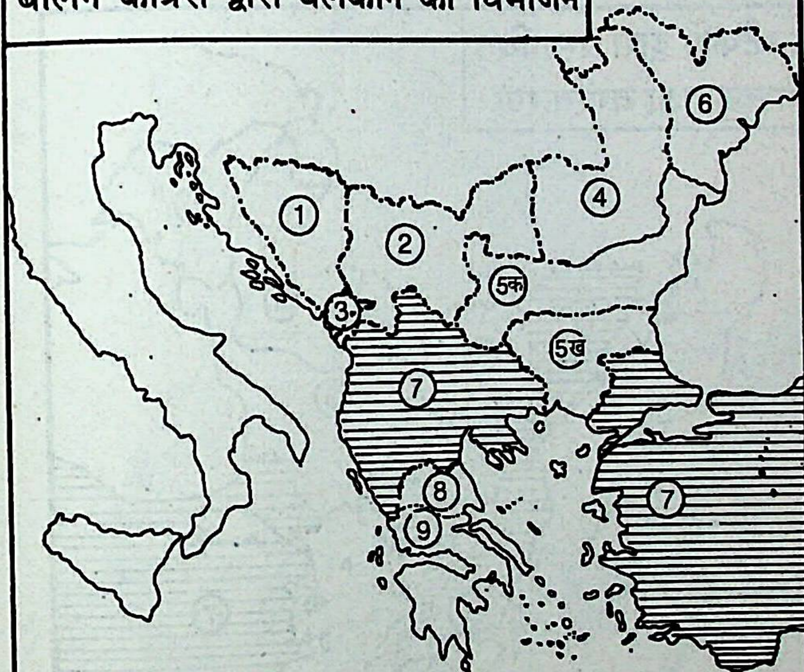

यूरोप 1812
सीधे फ्रांस के अधीन
नेपोलियन परिवार के अधीन
स्वतंत्र राष्ट्र
राइन संगठन
नार्वे
सेन्ट-पीटर्स-वर्ग
मास्को
बाल्टिक सागर
डेनमार्क
ग्रेट ब्रिटेन
आयरलैण्ड
रूस
लन्दन
ऐन्टवर्प
इंग्लिश चैनल
ब्रूसेल्स
पेरिस
फ्रैंकफर्ट
राइन संगठन
बर्टम्बर्ग
म्यूनिख
तुर्की का साम्राज्य
बुडापेस्ट
आस्ट्रिया
अटलांटिक सागर
स्पेन
मैड्रिड
पुर्तगाल
कोर्सिका
नेपल्स
सिसली
भूमध्य सागर
मोरक्को
अलजीरिया


यूरोप 1815
नेपोलियन की पराजय के पश्चात जर्मनी का पुनर्गठन
नेपोलियम के बाद निर्मित स्पेन
पूर्वी प्रशा
फिनलैण्ड
सेंट पीटर्सबर्ग
ना र्वे
डेनमार्क
उ त्त री
इं ग लैं ड
आ य र लैं ड
पूर्वी प्रशा
पो लैं ड
वारसा
वेस्ट फालिया
ज र्म नी
बोसनिया
वर्टेवर्ग
हं ग री
बुडापेस्ट
लेयोन्स
स्विटजरलैंड
लम्बार्डी
पीडमेन्ट
क्रीमिया
का ला सा ग र
बोसनिया
हर्जेगोविना
बलगरिया
तु र्की
सा म्रा ज्य
टसकनी
इटली
स्पेन
मैड्रिड
मोरक्को
अ ल जी
ट्यूनिस


इटली
पैमाना
0 50 100 150 मी
0 50 100 150 200 कि
स्विटज़रलैण्ड
लो म्बा र्डी
वे ने शि या
पीडमॉन्ट
मिलन
बेरोना
ट्रिएस्ट
वेनिस
ट्यूरिन
मोडेना
फ्रांस
जेनेवा
पारमा
वेनिस की खाड़ी
बोलोग्ना
यु गो स्ला वि या
जेनेवा की खाड़ी
लेगोरन
एड्रियाटिक
फ्लो
ए पे ना इ
कोर्सिका
सा ग र
रोम
नेपल्स
टारण्टो
टारण्टो की खाड़ी
सारडीनिया
पालेरमो
भू म ध्य
नार्सेला
सि स ली
वेनिस जलडमरू मध्य
स्राकद्स
सा ग र
अ फ्री का


1871 में जर्मनी का
एकीकरण
पैमाना
0 50 100 150 200 मील
100 200 300 कि
जर्मनी की बाहरी सीमा
उत्तरी सागर
डेनमार्क
स्वीडेन
मेमल
बाल्टिक सागर
शेल्ज़विग
सेल्साइन
मैकलेनबर्ग
पूर्वी प्रशा
विस्तुला नदी
ओल्डनबर्ग
हैनोवर
बर्लिन
एल्ब नदी
ओडर नदी
वारसा
रूस
बेल्जियम
राइन नं.
कोलोन
हसपरफर्ट
सिलेसिया
सैक्सनी
राइन प्रदेश
फ्रैंकफ्रट
प्राग
पैलेटिनेट
मेत्ज़
अलसेक
लॉरेन
बवेरिया
ऑस्ट्रिया
हंगरी
फ्रांस
वुर्टम्बर्ग
डेन्यूब नदी
म्यूनिख
बिएना

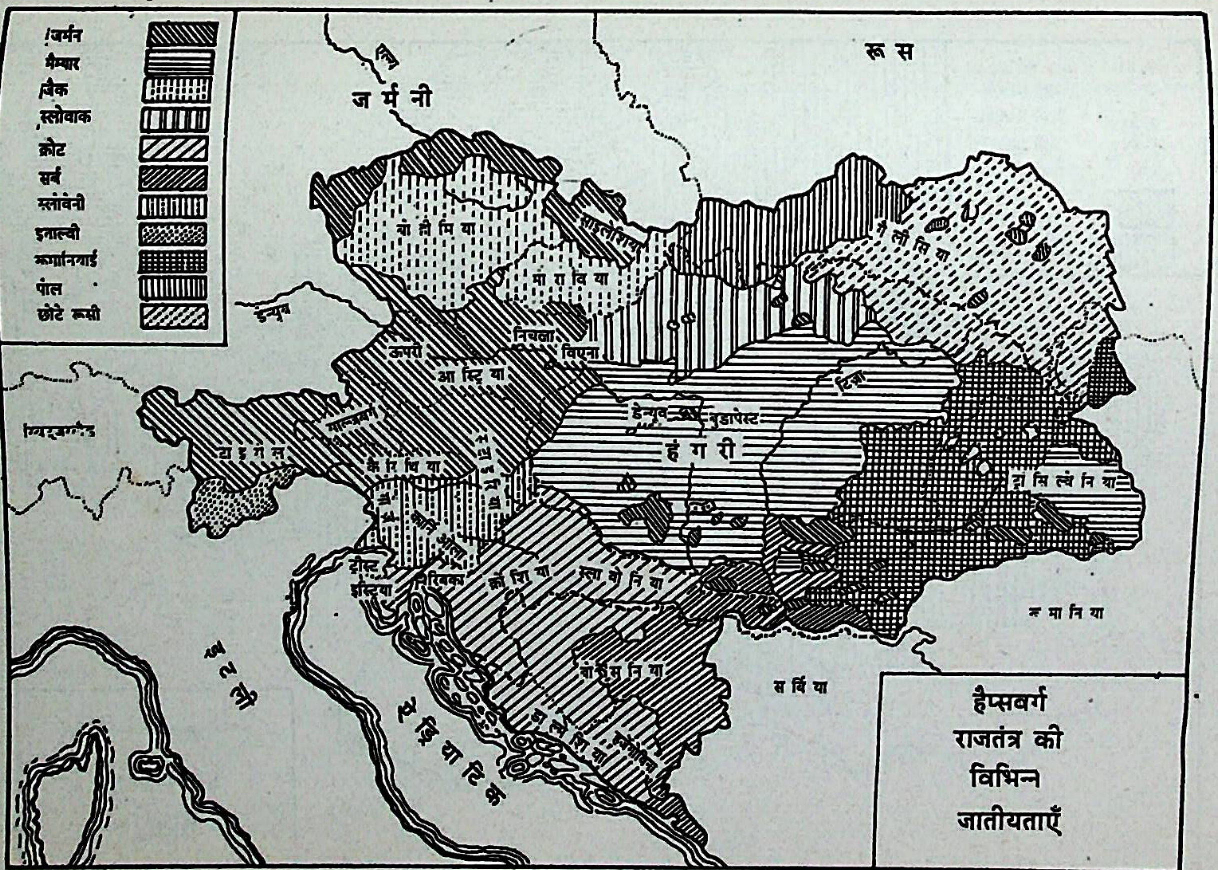
बर्लिन कांग्रेस द्वारा बलकान का विभाजन

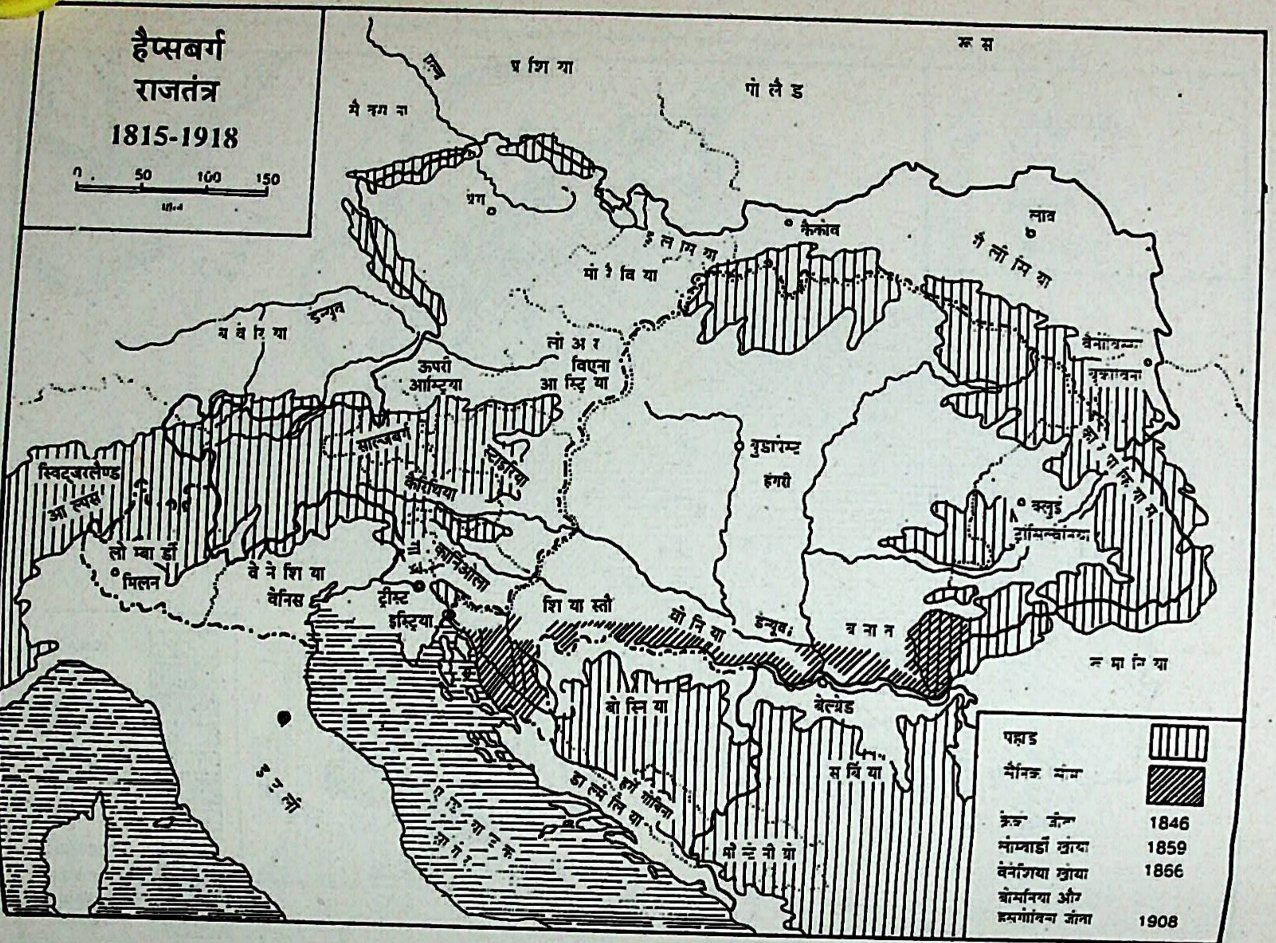


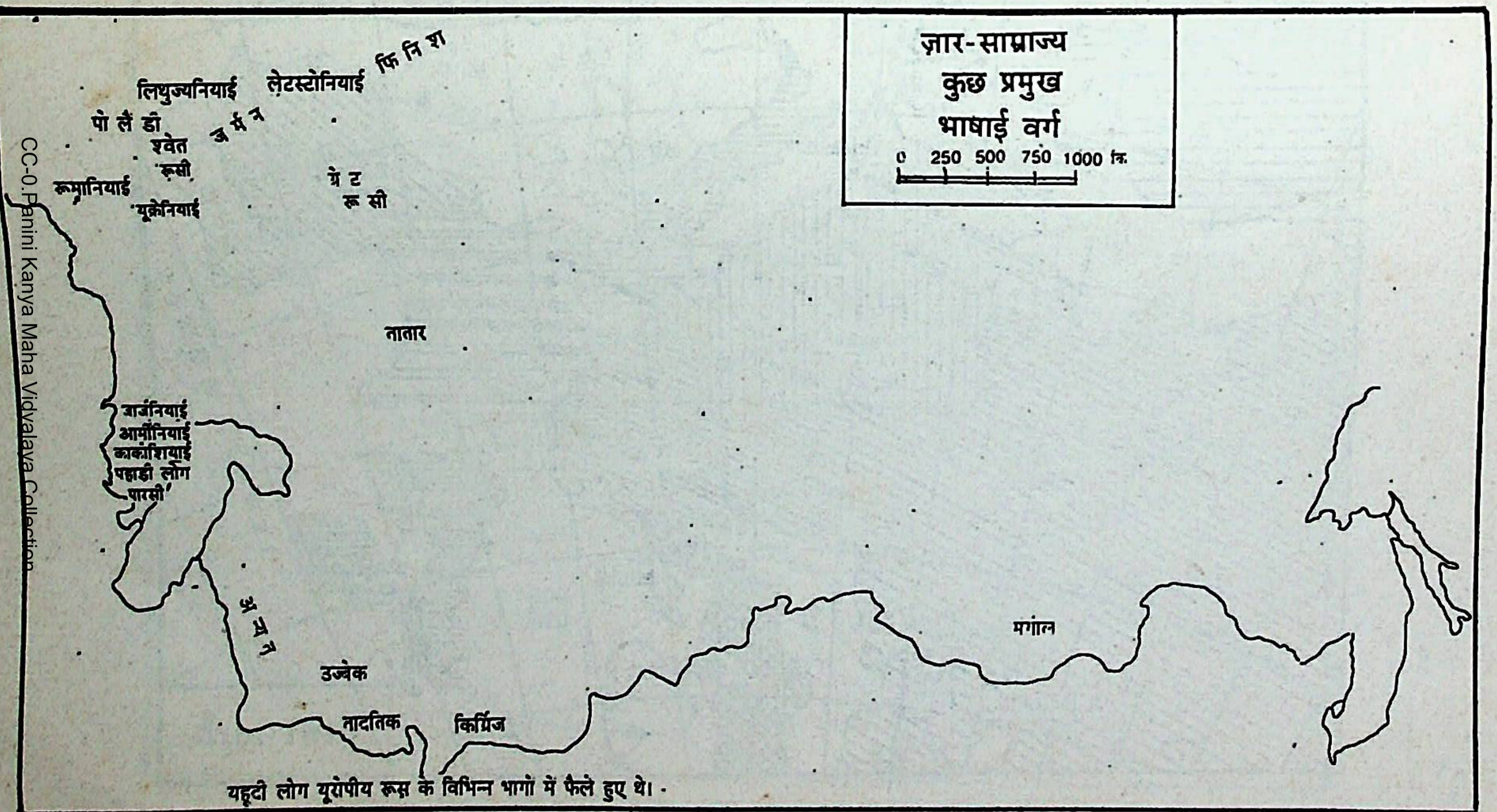
1. बोसनिया व हरज़ेगोविना जो ऑस्ट्रिया को प्रशासन के लिए दिये गये
2. सर्बिया 3. मांटीनीग्रो 4. रूमानिया 5 क. बुलगारिया
5 ख. ईस्ट रूमेनिया 6. रूस को दिया गया प्रदेश 7. तुर्की साम्राज्य
8. यह प्रदेश जो 1881 में यूनान को मिला 9. यूनान

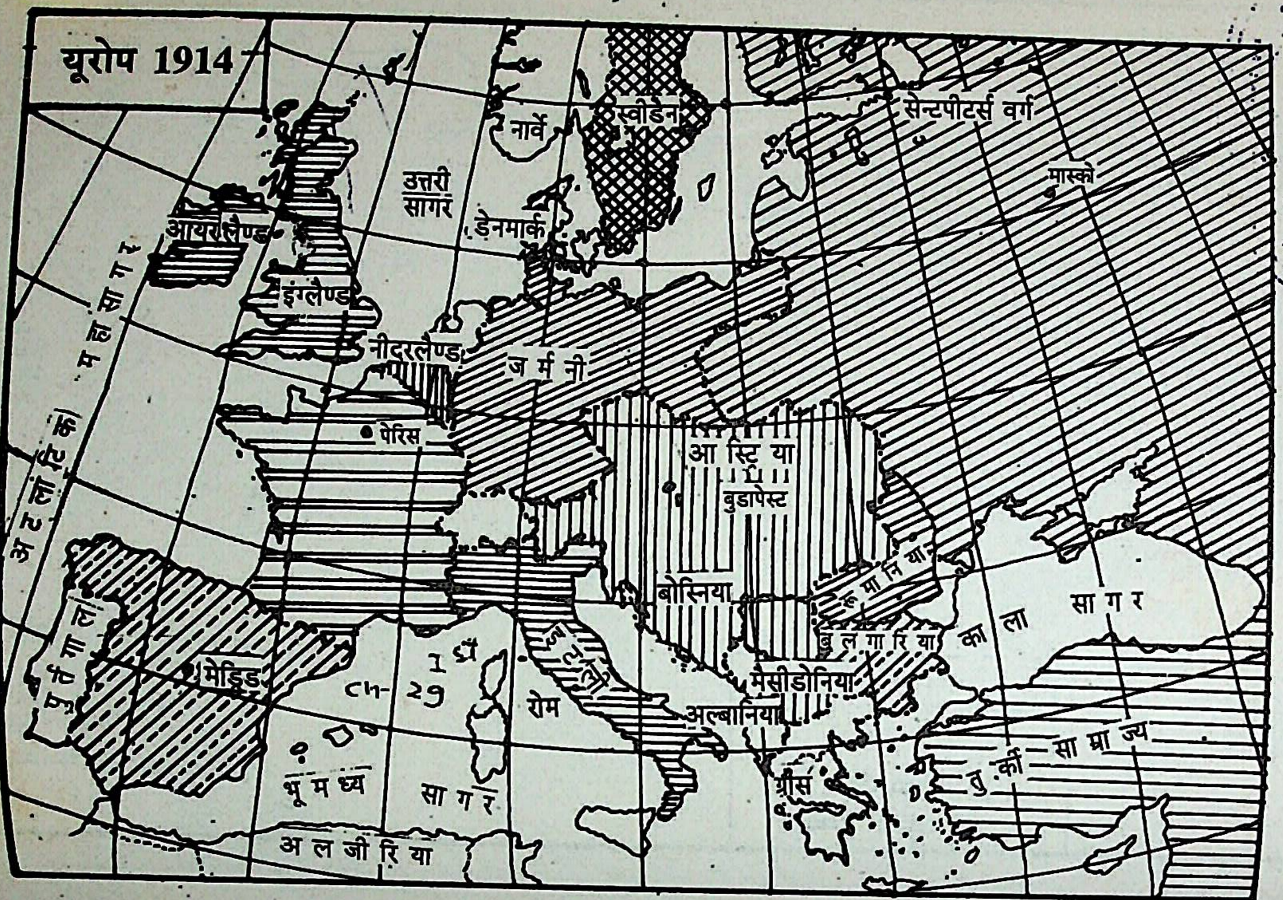


1. सर्बिया 2. मांटीनीग्रो 3. बलगारिया 4. रूमानिया 5. रूस को दिया गया प्रदेश 6. यूनान 7. तुर्की "साम्राज्य


हैप्सबर्ग राजतंत्र की विभिन्न जातीयताएँ
जर्मन
मैग्यार
चैक
स्लोवाक
क्रोट
सर्ब
स्लोवेनी
इटाल्वी
रूमानियाई
पोल
छोटे रूसी
रू स
ज र्म नी
बो ही मि या
मा रा वि या
साइलेशिया
गै ली सि या
निचला
विएना
ऊपरी
आ स्ट्रि या
हं ग री
बुडापेस्ट
टा इ रो ल
कै रि थि या
क्रो शि या
स्ला वो नि या
ट्रा सि ल्व नि या
रू मा नि या
स र्बि या
बो स्नि या
ड ल्मे शि या
हर्जगोविना
ट्रीस्ट
इस्ट्रिया
ए ड्रि या टि क
इ ट ली


हैप्सबर्ग
राजतंत्र
1815-1918
0 50 100 150
प्रशिया
गोलैंड
रूस
प्राग
क्रेकोव
गैलीसिया
बोहेमिया
मोरेविया
बवेरिया
डेन्यूब
लोअर
विएना
आस्ट्रिया
ऊपरी
आस्ट्रिया
बुडापेस्ट
हंगरी
क्लुज
ट्रांसिल्वेनिया
स्विट्जरलैण्ड
आल्प्स
लोम्बार्डी
मिलन
वेनेशिया
वेनिस
ट्रीस्ट
इस्ट्रिया
कार्निओला
कैरिंथिया
शियास्लो
बोस्निया
बेलग्रेड
सर्बिया
माँटीनीग्रो
हर्जेगोविना
पहाड़
1846
1859
1866
1908


ज़ार-साम्राज्य
कुछ प्रमुख
भाषाई वर्ग
0 250 500 750 1000 कि.
लिथुज्यनियाई
लेटस्टोनियाई
फि नि श
पो लैं डी
श्वेत रूसी
ज र्म न
रूमानियाई
यूक्रेनियाई
ग्रे ट रू सी
तातार
जार्जनियाई
आर्मीनियाई
काकेशियाई
पहाड़ी लोग
पारसी
अ र्मे न
उज्बेक
तादतिक
किर्ग्रिज
मगोल
यहूदी लोग यूरोपीय रूस के विभिन्न भागों में फैले हुए थे।


यूरोप 1914
अटलांटिक महासागर
आयरलैण्ड
इंग्लैण्ड
उत्तरी सागर
नार्वे
स्वीडन
डेनमार्क
सेन्टपीटर्स वर्ग
मास्को
नीदरलैण्ड
जर्मनी
पेरिस
आस्ट्रिया
बुडापेस्ट
बोस्निया
रूमानिया
बुलगारिया
काला सागर
मैसीडोनिया
अल्बानिया
ग्रीस
तुर्की साम्राज्य
इटली
रोम
पुर्तगाल
मैड्रिड
भूमध्य सागर
अलजीरिया



यूरोप 1920

नार्वे
स्वीडन
फिनलैण्ड
संयुक्त सोवियत गणराज्य
एस्टोनिया
लेटेविया
लिथुआनिया
पूर्वी प्रशा
पोलैंड
स्काटलैंड
यूनाइटेड किंगडम
आयरलैंड
उत्तरी सागर
डेनमार्क
हॉलैंड
इंगलैंड
इंगलिश चैनल
जर्मनी
बेल्जियम
लक्जमबर्ग
चैकोस्लोवाकिया
स्विट्ज़रलैंड
फ्रांस
ऑस्ट्रिया
हंगरी
रूमानिया
काला सागर
अटलांटिक सागर
युगोस्लाविया
बल्गारिया
पुर्तगाल
स्पेन
इटली
अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र
तुर्की
अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र
भूमध्य सागर
सिसली
अल्बानिया
ग्रीस-यूनान



तुर्की के महान साम्राज्य का पतन 1683-1924

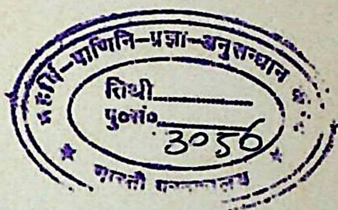
यूरोप 1945

0 100 200 300 मील
100 200 300 400 कि.
तथाकथित "आयरन करटेन" 1955 के बाद

आयरलैंड
इंगलैंड
लंदन
इंगलिश चैनल
डेनमार्क
स्टाकलैंड
लेनिनग्राद
मास्को
यू. एस. एस. आर.
पूर्वी
बर्लिन
पोलैंड
पश्चिमी जर्मनी
चेकोस्लोवाकिया
आस्ट्रिया
हंगरी
रूमानिया
पेरिस
फ्रांस
स्पेन
मैड्रिड
पुर्तगाल
अटलांटिक महासागर
इटली
रोम
यूगोस्लाविया
बेलग्रेड
बुडापेस्ट
अलबानिया
काला सागर
तुर्की साम्राज्य
भूमध्य






महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं०
3056